भाग- 1

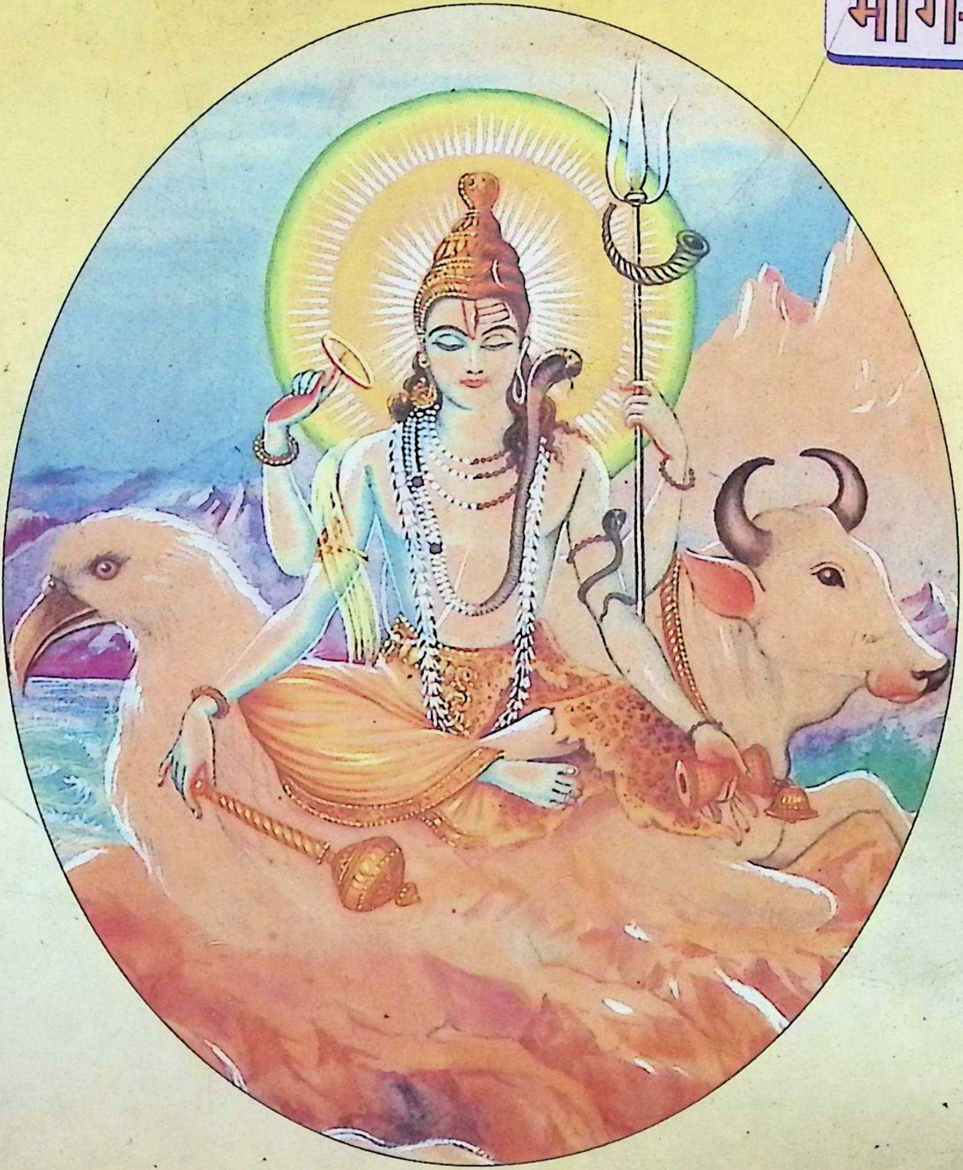

ईशानः सर्वदेवानाम्

डॉ. विनोद शंकर

ईशानः सर्वदेवानाम्

(धार्मिक साहित्य में शिवतत्त्व-स्वरूप, उपासना तथा उसके भक्त)

114630

इन्द्रं॑ मि॒त्रं वरु॑णम॒ग्निमा॑हु॒-
रथो॑ दि॒व्यः स सु॑प॒र्णो ग॒रुत्मा॑न्।
एकं॒ सद् विप्रा॑ बहु॒धा व॑द-
न्त्य॒ग्निं य॒मं मा॑त॒रिश्वा॑नमाहुः।

(ऋग्वेदसंहिता 1/164/46 तथा अथर्ववेदसंहिता 9/10/28)

"जो एक सत् रुद्र है उसे ही बहुत प्रकार से मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करते हुए इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, वायु, यम और उत्तम प्रकाशयुक्त, उदय-अस्तरूप से गमन करनेवाले, सूर्यरूप पक्षी इत्यादि नामों से पुकारते हैं।"

इस सम्पूर्ण पुस्तक को उपरोक्त वैदिक ऋचा का वेदों, उपनिषदों, रामायण ग्रन्थों, महाभारत सभी महापुराणों तथा अनेक उपपुराणों पर आधारित एक भाष्य माना जा सकता है। इसमें परब्रह्म सदाशिव के तत्त्व का विवेचन, अन्यान्य देवों से उनकी विशेषता तथा उनकी उपासना की सार्वभौमिक अनिवार्यता की चर्चा करते हुए उनकी अन्य प्रमुख देवों से अनन्यता का प्रतिपादन किया गया है। परब्रह्म तो एक ही है जो सर्ग, रक्षा एवं लय आदि कारणों से अपने को अनेक देव-रूपों में प्रकट करता है। अतः सभी देवरूप मूलतः एक ही हैं। और इस दृष्टि से देखने पर वे सभी रूप आपस में समान हैं— न कोई छोटा है न बड़ा।

इस प्रकार की उदार दृष्टि ही सभी ग्रन्थों का आशय है जिसकी उपेक्षा कर देने से विशेष देव का उपासक अन्य देवों के उपासकों से झगड़ पड़ता है और वह पाप का भागी बनता है। यह पुस्तक विरोधी विचारधाराओं, मुख्यतः शैव एवं वैष्णव, के समन्वय का एक लघु-प्रयास है। इस प्रयास में हमने पहले बहुप्रचलित एवं प्रचारित देवता(मुख्यतः उत्तर भारत में) भगवान् विष्णु की सभी विशेषताओं का भगवान् शिव में होना एवं उनकी उपासना की सार्वभौमिकता -दोनों ही शास्त्र-सम्मत हैं दिखाकर उन दोनों में तादात्म्य का संबंध स्थापित किया गया है। संक्षेपतः इस पुस्तक में शिवतत्त्व एवं उसकी उपासना संबंधी अनेक पहलुओं पर शास्त्रोचित प्रकाश डाला गया है, जो मुख्यतः शैवों एवं वैष्णवों में पारस्परिक सामञ्जस्य स्थापित करने में सहायक हो सकता है।

3/909.9 पुस्तकालय 114630
रुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
ख्या ____ आगत नं० ____
विनोद शंकर
ईशान सर्वदेवानाम प्रभु
शिव माहात्म्य के

क	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

BV-P

R
18·3/२०१९

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या........ आगत संख्या 114630

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

Stock Verification-2024

ईशानः सर्वदेवानाम्

(धार्मिक साहित्य में शिवतत्त्व-स्वरूप, उपासना तथा उसके भक्त)

114630

114630

प्रथम भाग

Stock Verification-2024

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

डॉ० विनोद शंकर

सुभाष पब्लिशर्स
चुडेश्वर मंदिर, गाँव-गैल-सरी (कोटी)
तहसील-कसौली, जिला-सोलन, हिमाचल प्रदेश
दूरभाष : 01792-77202
आईएसबीएन नं0 : 87732-00-8

प्रथम संस्करण : अगस्त 1999

© सर्वाधिकार सुरक्षित

R
९८.२
१०७.१

न्यौछावर : रु. 800.00

टंकण : आर.बी.एस. प्रिन्टिंग्स
नई दिल्ली-110015
दूरभाष : 011-5179350
मुद्रण : जय प्रिंट पैक (प्र.) लिमिटेड, नई दिल्ली-110 015

आवरण : परिकल्पना - विनोद तनेजा

शिव माहात्म्य खण्ड

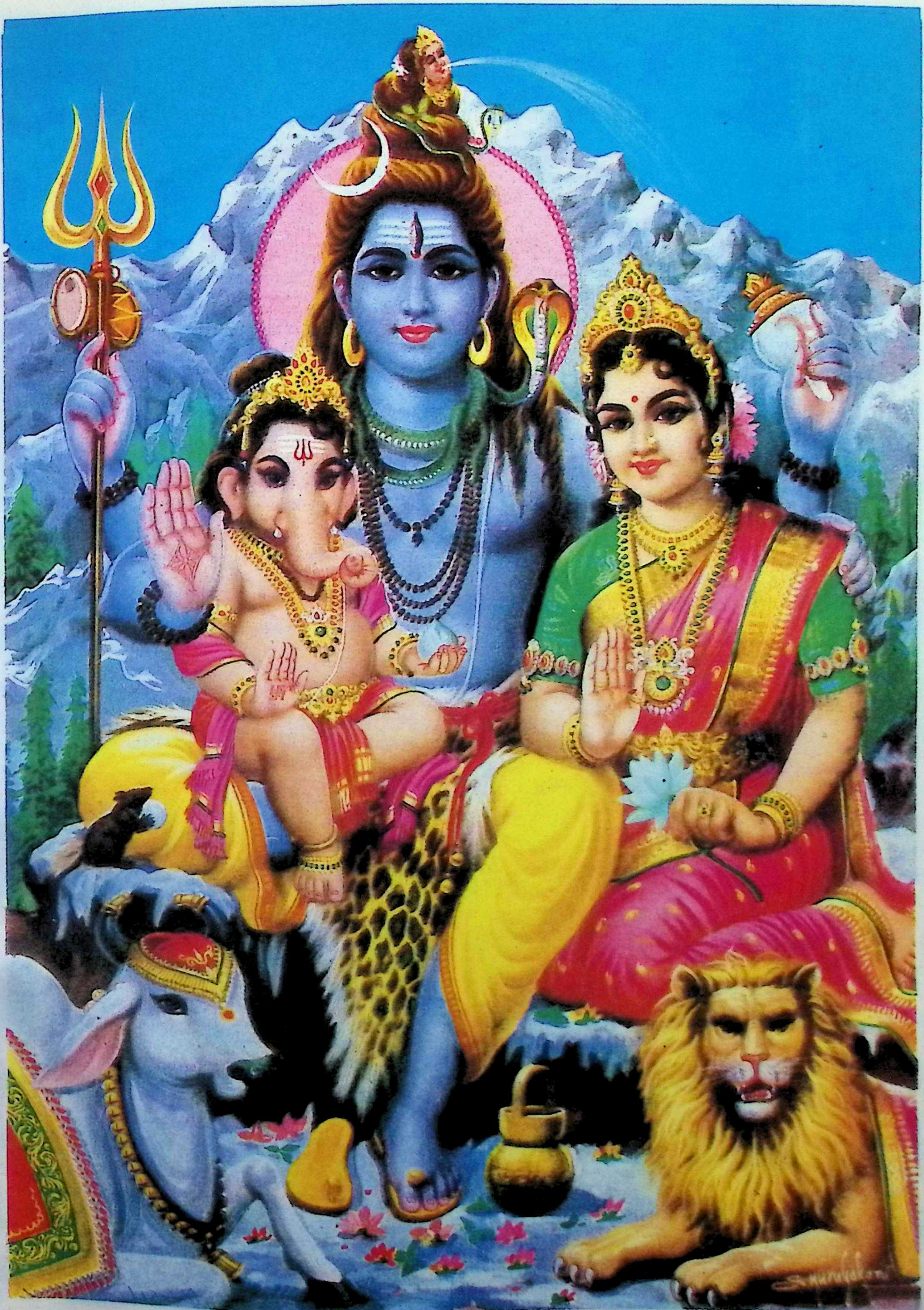

विषयानुक्रम

पृष्टाङ्क

क) समर्पण xvii

ख) प्रस्तावना xix-xxii

ग) पूज्यपाद श्री शिवलौती महाराज का संक्षिप्त परिचय xxiii-xxxvi

1 वैदिक संहिताओं में रुद्र का स्वरूप 1–19

रुद्र का स्वरूप 2

(1) रुद्र शब्द का अर्थ 3

(2) रुद्र का भौतिक आधार 3

(3) रुद्र की जटायँ, उनका विष–पान एवं नीलकण्ठत्व 4

(4) रुद्र के कुछ विशिष्ट अभिधान 5

(5) शतरुद्रियम् और रुद्र 9

(6) रुद्राः या रुद्र के गण 9

(7) रुद्र की अष्ट मूर्तियाँ 12

(8) दक्ष–यज्ञविध्वंस 13

(9) रुद्र द्वारा त्रिपुरासुर–विनाश 13

(10) शिव का त्रिशूल 14

(11) शिवसंबंधी अन्य कथाएँ 14

(12) रुद्रदेव परमतत्त्व के रूप में 15

उपसंहार 17

2 उपनिषदों में शिवतत्त्व–स्वरूप एवं महत्त्व 20–57

भगवान् शिव ब्रह्म के रूप में 24

शिव एक, नाम–रूप अनेक 31

भुक्ति–मुक्तिदाता शिव 35

शिवोपासना 39

उपसंहार 55

विषयानुक्रम पृष्टाङ्क

3 रामायण ग्रन्थों में भगवान् शिव 58 – 95
बाल्मीकीय रामायण 58
रामचरितमानस 63
(1) भगवान् शिव का स्वरूप 66
(2) भगवान् शिव एवं भगवान् राम 70
(3) सगुणोपासना 76
वसिष्ठ रामायण 84
(1) सदाशिव परमदेव के रूप में 85
(2) मानस – शिवपूजा 90
अन्य रामायण 92
उपसंहार 94
4 महाभारत में शिवतत्त्व 96 – 121
भगवान् शिव का स्वरूप 96
शिवोपासना 106
(1) शिवभक्ति की महिमा 109
(2) लिंगार्चन – माहात्म्य 111
(3) पाशुपतयोग एवं शिवभक्त की महिमा 112
(4) शैवतीर्थ 113
भगवान् शिव एवं विष्णु 115
उपसंहार 119
5 पौराणिक साहित्य में भगवान् शिव 122 – 126
6 ब्रह्मपुराण में शिवतत्त्व 127 – 145
भगवान् शिव का स्वरूप 127
भगवान् शिव की उपासना 133
त्रिदेवों की एकता तथा भगवान् शिव का माहात्म्य 140
उपसंहार 144

विषयानुक्रम **पृष्टाङ्क**

7 **पद्ममहापुराण में शिवतत्त्व** 146 – 173

भगवान् शिव का स्वरूप 146

शिवोपासना 152

(1) रुद्राक्ष की महिमा 154

(2) शिवभक्ति तथा नाम – महिमा 155

(3) लिंगार्चन तथा भस्म माहात्म्य 158

(4) तीर्थ प्रकरण 162

भगवान शिव एवं विष्णु 165

उपसंहार 171

8 **शिवमहापुराण में शिवतत्त्व एवं उसकी उपासना** 174 – 240

भगवान् शिव का स्वरूप 174

(1) भगवान् शिव ब्रह्म के रूप में 174

(2) भगवान् शिव के निष्कल एवं सकलरूप 179

(3) निष्कल शिव से सृष्टि – विकास की प्रक्रिया 180

(4) शिव त्रिदेवान्तर्गत रुद्र से पृथक हैं 182

(5) श्रीहरि के कर्त्तव्य का निर्धारण 183

(6) रुद्र के ब्रह्माजी के मुख से प्रकट होने का रहस्य 184

(7) शिवतत्त्व एवं जगत्प्रपंच 184

(8) भगवान् शिव की विभूतियाँ 187

(9) शिव, विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा 188

(10) भगवान् शिव की प्रणव – रूपता 190

शिवोपासना 192

(1) पशु, पाश और पशुपति 194

(2) बन्धन एवं मोक्ष 196

(3) शिवधर्म के प्रकार एवं उनके पाद तथा अधिकारी 196

(4) योग और ध्यान का महत्त्व 198

(5) शिवलिंग पूजा 200

(6) शिवलिंग की स्थापना और पूजनविधि 201

विषयानुक्रम		पृष्टाङ्क
	(7) पार्थिवलिंगनिर्माण एवं उसकी पूजाविधि	203
	(8) भगवान् शिव की भक्ति	205
	(9) शिव-नामजप	209
	(10) प्रणवोपासना	212
	(11) सूक्ष्म प्रणव का जप	214
	(12) पंचाक्षरमंत्र की साधना	216
	(13) पंचाक्षर मन्त्र का जप	216
	(14) जप संबंधी अवश्यक निर्देश	219
	(15) पंचाक्षर मन्त्र की विशेषता	220
	(16) भस्म एवं त्रिपुण्ड्र का महत्त्व	222
	(17) रुद्राक्ष महिमा	224
	(18) शिवरात्रि-व्रत के उद्यापन की विधि	230
	(19) बिल्व का माहात्म्य	231
	(20) शिवनैवेद्य का माहात्म्य	232
	(21) मोक्ष-दायक पुण्यक्षेत्र	232
	(22) शिव पूजा के विविध प्रकार	234
	(23) कुछ महत्त्वपूर्ण स्तोत्र तथा मंत्र	234
	त्रिदेवों की एकता तथा शिवनिन्दा का फल	235
	उपसंहार	238
9	**वायुमहापुराण में शिवतत्त्व**	241–263
	भगवान् शिव का स्वरूप	242
	शिवोपासना	250
	लिंगपूजा	253
	पाशुपत योग	253
	शिवोपासना संबंधी अन्य बातें	255
	त्रिदेवों की एकता एवं उनके संबंध	256
	उपसंहार	262

विषयानुक्रम **पृष्टाङ्क**

10 श्रीमद्भागवत में शिवतत्त्व 264–276
- भगवान् शिव परब्रह्म के रूप में 264
- त्रिदेवों की तात्त्विक एकता 268
- भुक्ति–मुक्ति–दाता भगवान् शिव 269
- शिवोपासना 273
- उपसंहार 276

11 नारदमहापुराण में शिवतत्त्व–विवेचन 277–298
- भगवान् शिव परब्रह्म के रूप में 277
- पशुपति, पशु एवं पाश 281
- शिवोपासना एवं शिवनाम महिमा 283
- भगवान् शिव एवं विष्णु 291
- उपसंहार 297

12 अग्नि, मार्कण्डेय एवं भविष्यपुराण में भगवान् शिव 299–309
- भगवान् शिव का स्वरूप 299
- शिवोपासना 302
- त्रिदेवों की एकता 306
- उपसंहार 308

13 ब्रह्मवैवर्तपुराण एवं भगवान् शिव 310–331
- भगवान् शिव का स्वरूप 310
  - (1) भगवान् शिव ब्रह्मरूप में 311
  - (2) तत्त्वज्ञान, मोक्षादि एवं हरिभक्तिदाता शिव 314
  - (3) योगियों एवं ज्ञानियों के गुरु–भगवान् शिव 316
  - (4) भगवान् शिव के विलक्षणस्वरूप का रहस्य 317
- शिवोपासना तथा शिवनाम की महिमा 319
- भगवान् शिव एवं कृष्ण 323

विषयानुक्रम **पृष्टाङ्क**

काशीमाहात्म्य 328
शिवनिन्दा का फल 328
उपसंहार 330
14 लिंगपुराण में शिवतत्त्व तथा उसकी उपासना 332–381
भगवान् शिव का स्वरूप 332
शिवोपासना 343
(1) शिवभक्ति का महात्म्य 344
(2) लिंगार्चन का महत्त्व 348
(3) लिंगार्चन विधि 351
(4) शिवप्रतिमास्थापन एवं मन्दिरनिर्माण 354
(5) शिवसंबंधी पंचाक्षर मन्त्र 357
(6) पशु, पाश एवं पशुपति 360
(7) पाशमुक्ति के उपाय 362
(8) पाशुपतव्रत 363
(9) पाशुपत योग 366
(10) शिवसंबंधी स्तोत्र 367
(11) प्रमुख शैवतीर्थ 369
(12) शिवोपासना संबंधी कुछ अन्य बातें 370
त्रिदेवों का आपसी संबंध 375
उपसंहार 379
15 वराह, गरुड़ एवं विष्णु पुराणों में शिवतत्त्व 382–390
भगवान् शिव ब्रह्म के रूप में 382
शिवोपासना 385
त्रिदेवों की एकता 387
उपसंहार 390
16 स्कन्दपुराण में भगवान् शिव 391–446
भगवान् शिव का स्वरूप 392

विषयानुक्रम **पृष्टाङ्क**

भगवान् शिव की उपासना 405
- (1) भगवान् शिव की भक्ति एवं लिंगोपासना 412
- (2) शिवनाममहिमा एवं पञ्चाक्षर मन्त्र 418
- (3) भगवान् शिव के स्तोत्र एवं कवच 422
- (4) कुछ प्रसिद्ध शैव-व्रत 424
- (5) तीर्थ-प्रकरण 428
- (6) भगवान् शिव के विभिन्न तीर्थ 432

त्रिदेवों की एकता 438

उपसंहार 444

17 वामनमहापुराण में शिवतत्त्व 447 – 461

भगवान् शिव का स्वरूप 447

शिवोपासना 451
- (1) लिंगपूजा का महत्त्व 452
- (2) शैवतीर्थ 453
- (3) शतरुद्रिय तथा शिवनाममहिमा 453
- (4) वेनकृत शिवसहस्रनाम 454

भगवान् शिव एवं विष्णु 454

वामन पुराण में शिवसंबंधी प्रचलित कथाओं का रूप 456
- (1) दक्षयज्ञ और सती की कथा 456
- (2) काम-दहन की कथा 457
- (3) शिवलिंगपूजा 458
- (4) श्रीहरि को सुदर्शन चक्र की प्राप्ति 459

उपसंहार 460

18 कूर्म-पुराण में शिवतत्त्व 462 – 485

भगवान् शिव का स्वरूप 462

शिवोपासना 470
- (1) शिवभक्ति की श्रेष्ठता 471

विषयानुक्रम **पृष्टाङ्क**

(2) मोक्षसाधन 473
(3) लिंगार्चन का महत्त्व 474
(4) भगवद्प्राप्ति के अन्य साधन 476
(5) शैवतीर्थों के माहात्म्य 478
त्रिदेवों की एकता एवं शिवनिन्दा का फल 481
उपसंहार 483
19 मत्स्यपुराण में शिवतत्त्व 486 – 499
भगवान् शिव का स्वरूप 486
शिवोपासना 491
(1) शिवलिंग की उपासना 492
(2) भगवान् शिव की मूर्तिपूजा 493
(3) शैवतीर्थ 494
(4) शैवव्रत 497
त्रिदेवों की एकता 497
उपसंहार 498
20 ब्रह्माण्डमहापुराण में शिवतत्त्व 500 – 514
भगवान् शिव का स्वरूप 500
शिवोपासना 507
(1) लिंगार्चन 508
(2) भस्ममाहात्म्य एवं पाशुपत अथवा कापालिकव्रत 509
(3) शिवोपासना संबंधी कुछ अन्य बातें 511
भगवान् शिव एवं विष्णु 512
उपसंहार 513
21 हरिवंशपुराण में शिवतत्त्व 515 – 528
भगवान् शिव का स्वरूप 515
शिवोपासना 521
भगवान् शिव एवं श्रीकृष्ण 525
उपसंहार 527

विषयानुक्रम पृष्टाङ्क

22 विष्णुधर्मोत्तर पुराण में शिवतत्त्व 529 – 534
भगवान् शिव का स्वरूप 529
शिवोपासना 532
त्रिदेवों की एकता 533
उपसंहार 534

23 बृहद्धर्मपुराण में शिवतत्त्व 535 – 550
भगवान् शिव का स्वरूप 535
शिवोपासना 537
भगवान् शिव एवं विष्णु 544
उपसंहार 549

24 एकाम्रपुराण में शिवतत्त्व 551 – 570
भगवान् शिव का स्वरूप 551
शिवोपासना 556
(1) शिवनाममहिमा 559
(2) एकाम्रकक्षेत्रस्थ शैवतीर्थ 560
(3) भगवान् शिवसंबंधी स्तोत्र 565
(4) शिवोपासना संबंधी कुछ अन्य बातें 566
भगवान् शिव एवं विष्णु 567
उपसंहार 569

25 श्री मद्देवीभागवत में शैवतत्त्व 571 – 577
भगवान् शिव का स्वरूप 571
त्रिदेवों की एकता 573
अन्य शैवतत्त्व 575
उपसंहार 577

विषयानुक्रम पृष्टाङ्क

26 महाभागवतपुराण में शिवतत्त्व 578 – 595

भगवान् शिव का स्वरूप 578

शिवोपासना 582

(1) लिंगपूजा तथा शिवनाममहिमा 584

(2) रुद्राक्ष का महत्त्व 587

(3) शैव-स्तोत्र एवं तीर्थ 588

(4) शिवपूजा संबंधी कुछ अन्य बातें 590

भगवान् शिव एवं विष्णु 590

भगवान् शिव का राधा के रूप में अवतार 592

उपसंहार 593

27 देवीपुराण में शिवतत्त्व 596 – 604

भगवान् शिव का स्वरूप 596

शिवोपासना 598

उपसंहार 603

28 कलिकापुराण में शिवतत्त्व 605 – 612

भगवान् शिव का स्वरूप 605

शिवोपासना 609

त्रिदेवों की एकता 611

उपसंहार 612

29 मुद्गलपुराण में शिवतत्त्व 613 – 617

भगवान् शिव का स्वरूप 613

शिवोपासना 615

उपसंहार 616

30 कल्कि, वासुकि एवं नरसिंह पुराणों में शिवतत्त्व 618 – 626

भगवान् शिव का स्वरूप 618

विषयानुक्रम **पृष्टाङ्क**

शिवोपासना 620

त्रिदेवों की एकता 624

उपसंहार 625

31 सौरपुराण में शिवतत्त्व 627–638

भगवान् शिव का स्वरूप 627

शिवोपासना 628

(1) भक्ति का महत्त्व 631

(2) शिवनाम एवं पंचाक्षर मन्त्र की महिमा 632

(3) लिंगार्चन का महत्त्व 633

(4) शिवपूजन संबंधी अन्य बातें 633

भगवान् शिव एवं विष्णु 635

उपसंहार 637

32 बृहन्नारदीयपुराण में शिवतत्त्व 639–648

भगवान् शिव का स्वरूप 639

शिवोपासना 640

(1) शिवनाममहिमा 642

(2) लिंगार्चन 643

(3) शिवोपासना संबंधी अन्य बातें 644

त्रिदेवों की एकता 646

उपसंहार 648

33 शिवप्रोक्त गीताओं में शिवतत्त्व 649–675

शिवगीता में शिवतत्त्व 649

भगवान् शिव का स्वरूप 650

शिवभक्ति की महिमा 654

शिवोपासना 656

विषयानुक्रम पृष्टाङ्क

ईश्वरगीता में शिवतत्त्व 663
    भगवान् शिव का स्वरूप 664
    शिवोपासना 667
महेश्वरगीता में शिवतत्त्व 671
उपसंहार 674

34 भगवान् शिव के माहात्म्यसंबंधी प्रकीर्ण संन्दर्भ 676 – 684

35 शिव – नामकी महिमा 685 – 704

36 श्रीकृष्ण द्वारा युधिष्ठिर के प्रति महादेवजी के माहात्म्य का कथन 705 – 738
    (1) उपमन्यु द्वारा शिव की आराधना तथा वरप्राप्ति 709
    (2) भगवान् कृष्ण की तपस्या 721
    (3) श्रीकृष्ण को शिव-पार्वती से वर की प्राप्ति 725
    (4) बह्मपुत्र तण्डि की शिवभक्ति 726
    (5) शिवसहस्त्रनामस्तोत्र और उसके पाठ का फल 730
    (6) शिवभक्ति एवं शिवसहस्त्रनाम की महिमा संबंधी ऋषियों का अनुभव 733

37 शिव – विष्णु का आलौकिक प्रेम 739 – 742

38 ईशानः सर्वदेवानाम् 743 – 762
    त्रिदेवों की एकता 743
    बह्म के शिवस्वरूप की विशेषता 755
    उपसंहार 761

समर्पण

ॐ नमः शिर्गुलाय च मयोभवाय च।
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च चूडेश्वराय च।।
सच्चिदानन्दरूपाय भक्तानुग्रहकारिणे।
मायानिर्मितविश्वाय शिर्गुलाय नमो नमः।।
शिर्गुल! शङ्कर! हर! गिरिजेश!
शम्भो! पशुपते! श्रीचूडेश!
नान्या गतिर्मम त्वां विहाय
प्रभो! मयीमां करुणां कुरुष्व।।
नृपभूकङूः पिता यस्य दुदमा जननी तथा।
शाया जन्मस्थली यस्य भ्राता तु विजटः स्मृतः।।
यस्योग्रदिव्यतपसो महनीयभूमिः
श्रीचूडधार इति या प्रथिता पुराणी।
गन्धैः मनोहरसुखैश्चिडदेवदारु–
वृक्षैर्वनं परिविभाति धराधराणाम्।।
यस्य कृपां विना पूर्णं मनोभिलषितं न हि।
तस्मै दिव्यमिमं ग्रन्थं शिर्गुलाय समर्पये।।

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। इसके गौरव की गाथा का गान पूर्व एवं पश्चिम के मूर्धन्य विद्वान् करते रहे हैं। इस संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता इसकी समन्वयवादी दृष्टि रही है – चाहे वह धार्मिक मान्यताओं से संबंधित हो चाहे कोई अन्य। एक बार किसी ने गाँधीजी से पूछा कि जब आपकी नजर में सभी धर्म या मजहब समान हैं तो आप अपने को हिन्दू ही क्यों कहते हैं? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि हिन्दू होकर ही मैं ऐसा कह सकता हूँ कि "सभी मजहब समान हैं।" उनके इस कथन के पीछे यह भाव छिपा है कि हिन्दू धर्म ज्यादा उदार है, इसके अन्दर हर तरह की विचारधाराएँ घुली – मिली हैं। इसके अन्दर द्वैत, अद्वैत, शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि सभी प्रकार की विचारधाराएँ एक सामञ्जस्य में स्थित हैं। प्राचीन ऋषियों एवं मुनियों ने विचारों की विभिन्नता के सामञ्जस्य के लिये सूत्र ढूँढ़ निकाले और प्रत्येक प्रकार की यहाँतक कि विरोधी विचारधाराओं को भी उन्होंने पिरोकर एक अत्यन्त उदार आध्यात्मिक एवं धार्मिक संस्कृति को जन्म दिया जिसे हम सनातन धर्म एवं संस्कृति कह सकते हैं। अपने ग्रन्थों में इन ऋषियों ने अपने समन्वयात्मक एवं उदार विचारों का प्रतिपादन किया।

परन्तु दुर्भाग्यवश राग – द्वेष के कारण हमने अपने पूर्वज मनीषियों के सन्देश को भुला दिया। फलस्वरूप हम आपस में सम्प्रदाय एवं मजहब के नाम पर बुरी तरह से लड़ने लगे। हमारे आपसी लड़ाई की कोई सीमा नहीं रही, छोटी – छोटी धार्मिक बातों को लेकर भी लड़ने लगे। परस्पर श्रेष्ठता को लेकर शैवों एवं वैष्णवों की लड़ाईयाँ तो इतिहास में प्रसिद्ध रही ही हैं, लेकिन वैष्णव तथा शैव अपने – अपने सम्प्रदायों के भीतर भी लड़ते रहे हैं। कई बार लड़ाईयाँ इतनी छोटी – छोटी बातों को (जैसे तिलक या त्रिपुण्ड्र को) लेकर होती रही हैं कि सामान्यरूप से विचारवान व्यक्ति यह कह बैठता है कि धर्म व्यर्थ की वस्तु है, यह अशान्ति एवं कलह की वस्तु है, यह मानव को जोड़ने की बजाय तोड़नेवाली वस्तु है। अत: आज पुन: इस बात की आवश्यकता है कि हम अपने पूर्वजों के सामञ्जस्यवादी विचारों की याद दिलायें।

प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक लघु प्रयास है। इसे लिखने की प्रेरणा मुझे 1995 – 96 के बीच अपने गुरुदेव अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद(स्वामी) श्रीगोपीचन्दजी महाराज(ख्यातनामा शिवलौती महाराज) से मिली। गुरुदेव वार्तालाप के दौरान कई बार यह बताते थे कि अधिकांश वैष्णव – भक्त भगवान् शिव के स्वरूप का सही मूल्यांकन नहीं कर पाते और वे शिव की उपासना को हेय अथवा निम्नकोटि की समझते हैं। न केवल वैष्णव संत बल्कि आम (कम से कम उत्तर – भारत के) लोगों को भी शिव एवं शिवोपासना के महत्त्व का उचित ज्ञान नहीं है। उनकी बातों से मैं भी सहमत था,

क्योंकि मैंने भी अपने जीवन में ऐसा ही अनुभव किया था। गुरुदेव से इस प्रकार की बातें सुनकर कभी-कभी मैं उनसे कहता कि शास्त्रों में वैसी बातें नहीं लिखी हैं जैसा अधिकांश वैष्णवजन सोचते हैं। मेरे द्वारा ऐसा कहने पर वे पूछते कि तब ऐसा क्यों है कि लोग शिव एवं शिवोपासना को उचित स्थान नहीं देते? उनके इस प्रकार प्रश्न करने पर हम इसके कारणों पर विचार करने लग जाते।

इसके अनेक ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारण हैं। उन सबकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है। हम यहाँ सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि आमलोगों या आम वैष्णव संतलोगों को शास्त्रों की बातों का ज्ञान नहीं है क्योंकि प्रमुख ग्रन्थों को पढ़ने की उन्हें या तो सुविधा नहीं है या अवकाश एवं अवसर नहीं है या योग्यता नहीं है। आमलोगों को उन्हीं बातों का ज्ञान होता है जिसका ज्यादा प्रचार-प्रसार होता है। पिछले सैकड़ों सालों से (विशेषकर तुलसीदास एवं सूरदास जैसे सन्तों की रचनाओं के बाद से) जिन बातों का प्रचार-प्रसार प्रभावशाली ढंग से होता रहा है उन्हीं बातों का जनमानस पर असर पड़ा, वे ही उनके विचारों को ढालते रहे तथा वे ही मन की धारणाओं को जन्म देते रहे। रामलीला एवं कृष्णलीला के नियमित, व्यापक एवं दीर्घकालीन मंचन तथा रामायण एवं भागवत की कथाओं के नियमित और व्यापक प्रचार अभियान के कारण (विशेषतः उत्तर) भारतीयों का मानस वैष्णव मान्यताओं से इतना प्रभावित हो गया है कि उनके लिये शिव एवं शिव की उपासना महत्त्वहीन या तुच्छ लगने लगी है। अन्य कारणों के अलावा यह तथ्य एक प्रमुखतम कारण है जिसके प्रभाव से वर्त्तमान काल के अधिकांश वैष्णव शिव एवं शिवोपासना को हेय कोटि का समझते हैं। और उनकी इस प्रकार की समझ शैव एवं वैष्णवों के बीच तनाव का कारण बनती है।

सम्भवतः इन कारणों को ध्यान में रखकर ही गुरुदेव ने मुझसे एक बार कहा कि क्यों न ऐसी पुस्तक लिख डालो जिसमें सभी प्रमुख शास्त्रों या ग्रन्थों के प्रमाण के साथ भगवान् शिव की गरिमा प्रतिष्ठित हो। लोगों को न तो ग्रन्थ उपलब्ध होते और न ही विशाल ग्रन्थों को पढ़ने के लिये समय एवं श्रम उपलब्ध होता है। तथा सभी ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद उपलब्ध न होने से सामान्य लोगों को पढ़ने में कठिनाई भी आती है। गुरूदेव की बात मुझे जँच गयी और मैंने एक ऐसी पुस्तक लिखने का विचार किया जिससे वैष्णवों एंव शैवों के बीच सामञ्जस्य स्थापित करने में मदद मिल सके। पुस्तक के लक्ष्य का निर्धारण करने के बाद उसके स्वरूप पर विचार किया गया। निर्णय यह हुआ कि पुस्तक ऐसी हो जिसमें शिवतत्त्व के महत्त्व का प्रतिपादन हो ताकि विष्णुतत्त्व एवं उनके विभिन्न अवतारों के महत्त्व-संबंधी प्रचारों के प्रकाश में लोग शिवतत्त्व तथा शिवोपासना का सही मूल्यांकन कर सकें।

मेरे लिये इस प्रकार की पुस्तक के लेखन का कार्य अत्यन्त कठिन था कारण कि कई ग्रन्थों

के हिन्दी अनुवाद ही नहीं हैं। परन्तु मैंने इस कार्य को स्वीकार कर लिया।

संस्कृत का विद्यार्थी न होते हुए भी मैंने पुस्तक लिखने का कार्य प्रारंभ कर दिया। रास्ते में अनेक कठिनाइयाँ आयीं। संस्कृत के विद्वानों से कई जगह परामर्श लेने पड़े। कई स्थलों पर विशेषज्ञों के परामर्श के अभाव में मैंने अपने ही विवेक का प्रयोग कर श्लोकों की व्याख्याएँ की। अगर विद्वान् पाठकों को कहीं पर व्याख्या की भूलें मिलें तो वे मुझे क्षमा कर देंगे और वे मुझे सूचित करेंगे ताकि उन्हें अगले संस्करण मे सुधार दिये जायँ।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन के आरंभ में जो लक्ष्य था उसमें थोड़ा परिवर्तन हुआ। बाद में यह भी सोचा गया कि पुस्तक को ज्यादा उपयोगी बनाने के लिये इसमें भगवान् शिव की उपासना संबंधी कुछ उपयोगी बातें भी जोड़ दी जायँ। उपासना संबंधी बातों को सम्मिलित करलेने पर पुस्तक का कलेवर ज्यादा बढ़ गया। फलस्वरूप इस पुस्तक को दो भागों में छापने का विचार बना। दूसरे भाग में उपासना संबंधी बातें छापने की योजना बनी। अतः सम्पूर्ण पुस्तक को चार खण्डों में बाँटा गया। प्रथम भाग में 'शिव माहात्म्य खण्ड' को तथा द्वितीय भाग में 'शिवोपासना खण्ड', 'शिवोपासक खण्ड' तथा 'शैवतीर्थ खण्ड' को सम्मिलित किया गया।

शिवमाहात्म्य खण्ड के अन्तर्गत वेदों, उपनिषदों, कुछ प्रमुख रामायणों, महाभारत, अठारह महापुराणों, कई उपपुराणों तथा शिवप्रोक्त कुछ प्रमुख गीताओं जैसे अनेक ग्रन्थों में निहित शिव के स्वरूप एवं उनकी साधना संबंधी प्रमुख बातों का विवेचन करते हुए भगवान् शिव के माहात्म्य को दर्शाया गया है तथा उनकी श्रीविष्णु से अभिन्नता को भी प्रदर्शित किया गया है। दूसरे खण्ड में भगवान् शिव की उपासना विधियों जैसे लिंगार्चन, पार्थिवलिंगपूजन, मानसपूजा, नाना प्रकार के स्तोत्र, महामृत्युंजय तथा पंचाक्षर मन्त्रों के जप आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। दूसरे भाग के तृतीय खंड में (कुछ पौराणिक एवं ऐतिहासिक) प्रमुख शिव-भक्तों जैसे दधीचि, कालिदास, विवेकानन्दादि के बारें में चर्चा की गयी है। दूसरे भाग के चौथे खण्ड में प्रमुख शैवतीर्थों जैसे 12 ज्योतिर्लिंग, कैलास-मानसरोवर, पशुपतिनाथ आदि का वर्णन किया गया है।

प्रथम भाग में शिव-माहात्म्य के साथ-साथ उनके नाम की महिमा के बारे में भी बताया गया है। इस खण्ड में महाभारत के कई अंश जो शिव के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं, उन्हें मूलरूप में संक्षिप्त करके प्रस्तुत किये गये हैं। इस खण्ड के पाठक को शिव के स्वरूप एवं उनकी उपासना संबंधी बातें शीर्षकगत ग्रन्थों के मूल उद्धरण के साथ-साथ प्राप्त होंगी। परन्तु इससे पाठक को यह नहीं समझ लेना चाहिये कि ग्रन्थ विशेष के मात्र इतने ही उद्धरण या संदर्भ शिवमाहात्म्य एवं शिवोपासना से

संबंधित हैं। यहाँ तो केवल चुने हुए उद्धरण ही प्रस्तुत किये गये हैं। हाँ कुछ छोटे ग्रन्थों के उद्धरण काफी हदतक पूर्ण-रूपेण दे दिये गये हैं।

इस पुस्तक को लिखने की दृष्टि धार्मिक एंव समन्वयवादी रही है न कि ऐतिहासिक, बुद्धिवादी एवं विशेषज्ञ की। पुस्तक को सामान्य लोगों के उपयोग के लिये समझकर लिखा होने के कारण इसमें बौद्धिक एवं विशेषज्ञों की दृष्टि से अनेक कमियाँ होंगी। परन्तु इस कमी के बावजूद भी पुस्तक जन-सामान्य के साथ-साथ ऐसे विद्वानों एवं विद्यार्थियों के लिये भी उपयोगी साबित हो सकती है जो शैवमत में रुचि रखते हों।

पुराणों का विभाजन कई प्रकार से किया गया है जैसे सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक। सात्त्विक पुराणों में भगवान् विष्णु की, राजसी में ब्रह्माजी की तथा तामसिक में भगवान् शिव की महत्ता का अधिकांशतः वर्णन है। पुराणों का विभाजन चाहे हम किसी भी प्रकार से क्यों न करें एक बात पुराण-पाठकों के सामने अवश्य बार-बार आती है। वह यह कि जिस पुराण का जो प्रमुख देवता होता है उसी को सर्वश्रेष्ठ बताया जाता है तथा अन्य देवताओं का उसे अधिपति बताया जाता है। अन्य ग्रन्थों में भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति मिलती है। उदाहरण के लिये रामायण में राम को, भागवत में कृष्ण को, विष्णु पुराण में विष्णु को, मुद्गल पुराण में गणेश को, देवी भागवत एवं मार्कण्डेय पुराण में देवी को ही सर्वश्रेष्ठ और अन्य को उनके अधीनस्थ बताया गया है। इसी प्रकार इन ग्रन्थों में तत्संबंधी देवता की उपासना तथा उसके मन्त्रों को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। इस पुस्तक में यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि इन ग्रन्थों को ध्यान से पढ़ा जाय तो उन्हें इन विरोधी प्रतिपादनों से कोई परेशानी नहीं होगी। जब पाश्चात्य विद्वानों जैसे मैक्समूलर आदि ने भी इस तरह की बातें देखीं तो उन्होंने भारतीय धर्म की इस प्रवृत्ति को समझाने के लिये नये शब्द हीनोथीइज्म का निर्माण किया। जिसका अभिप्राय यह है कि सभी देवता एक ही देवता के विभिन्न रूप हैं। एक देवता ही सभी रूपों एवं तत्संबंधी नामों को धारण करता है। यही नहीं वह एक देवता स्वयं भी अनेक नामों से पुकारा जाता है। 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'। दूसरे शब्दों में सारे नाम एवं सारे रूप उसी एक परमतत्त्व शिव के हैं। एक ही भगवान् विभिन्न लीलाव्यापार के लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकार-सम्पन्न साधकों के कल्याण के लिये अनन्त रूपों में प्रकट होते रहे हैं। भगवान् के ये सभी रूप नित्य, पूर्ण और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। अपनी-अपनी रुचि और निष्ठा के अनुसार जो जिस रूप और नाम को इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपों से समस्त रूपमय एकमात्र भगवान् को प्राप्त कर लेता है।

सभी ग्रन्थों में स्पष्टरूप से यह प्रतिपादित किया गया है कि सभी प्रमुख देव मूलतः एक ही हैं।

एक ही तत्त्व अपने को, सृष्टि के आदि में, तीन प्रमुख देवों के रूप में प्रकट करता है। वैष्णव कहे जानेवाले पुराणों में शिव की तथा शैव कहे जानेवाले पुराणों में विष्णु की महिमा गायी गयी है और दोनों को एक या अभिन्न बताया गया है तथा उक्त पुराण विशेष के विशिष्ट प्रधान देव ने अपने ही मुख से अन्य पुराणों के प्रधान देवता को अपना ही स्वरूप बतलाया है।

पुराणों में कई बार परस्पर विरोधी या थोड़ी-बहुत भिन्नता के साथ कथाएँ मिलती हैं। उनका एक कारण समय के साथ ग्रन्थों में साम्प्रदायिक भावनाओं का जुड़ जाना है। कथाओं में मिलावट कर अपने सम्प्रदाय को पुष्ट करने तथा दूसरों को हेय दिखवाने का प्रयास किया जाता है। दूसरा कारण कथाओं का कल्प भेद या सृष्टिभेद है। प्रत्येक कल्प में सृष्टि-रचना की प्रक्रिया तथा सृष्ट वस्तुओं के स्वरूप आदि लगभग एक समान होते हैं परन्तु कभी-कभी उनमें कुछ अन्तर भी आ जाता है। पुराणों के सृष्टितत्त्व को जाननेवाले लोग इसे सहज में ही समझ सकते हैं। उदाहरण के लिये वायु पुराण की कथाएँ श्वेत कल्प की, अग्नि पुराण की ईशान कल्प की, भविष्य पुराण की अघोर कल्प की, नारद पुराण की वृहत्कल्प की तथा भागवत की ब्राह्म कल्प की हैं। इन कल्पों के भेद से देवताओं की प्रमुखता में भी भेद हो जाता है। किसी कल्प की कथा में ब्रह्मा की तो किसी में विष्णु की तो किसी में शिव की महत्ता का कथन किया जाता है।

पुस्तक के प्रथम भाग (जिसमें प्रथम खण्ड का वर्णन है) के अध्ययन से यह बात उभरकर आती है कि भगवान् शिव परमतत्त्व अथवा ब्रह्म हैं जिनके निर्गुण एवं सगुण दो रूप हैं। निर्गुणरूप में उन्हें कूटस्थ, अचिन्त्य, चैतन्यस्वरूप, मन-वाणी से परे, अविनाशी, निरञ्जन, अद्वैत, ॐकारस्वरूप, नित्य, शुद्ध तथा निष्प्रपंच आदि कहा गया है। सगुणरूप में उन्हें सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहारकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र-स्वरूप, जगत्स्वरूप, तीनों लोंकों के अधीश्वर, पंचमुख, दस भुजावाले, त्रिनेत्र, चन्द्रमा, गंगा, गजचर्म, मृगचर्म, मुण्डमाला, त्रिशूल तथा पिनाक आदि को धारण करनेवाले, वरदाता, आशुतोष, भोगमोक्ष-दाता, अर्द्धनारीश्वर, नीलकंठ, त्रिपुर, जालंधर तथा अधंक आदि राक्षसों का वध करनेवाले, पशुपति, भूतपति, जगत्पति, कैलासवासी, सब पर दया करनेवाले, भक्तवत्सल, लिंगरूप, वृष पर सवारी करनेवाले, कर्पूर के समान गौर वर्णवाले इत्यादि विशेषणों व संज्ञाओं से युक्त माना गया है।

इसी प्रकार ग्रन्थों में लिंगोपासना को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। शिव के प्रमुख मन्त्रों में पंचाक्षर, ॐकार तथा महामृत्युञ्जय की विस्तृत चर्चा की गयी है। पंचाक्षर मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) को सर्वश्रेष्ठ मन्त्र माना गया है तथा इसमें सभी लोगों-स्त्री, शूद्र, मलेच्छ तथा राक्षस आदि और शुद्ध वा अशुद्ध का समानरूप से अधिकार है। शैवतीर्थों में काशी को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसका उल्लेख

लगभग सभी ग्रन्थों में है।

सभी ग्रन्थों में यह कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रदेव तीनों तत्त्वतः एक ही हैं। एक ही परम सत्ता, सदाशिव, सृष्टि-व्यापार के लिये अपने को तीन रूपों में विभक्त कर लेती है। अतः प्रपंच के धरातल पर इन तीनों में भेद है परन्तु मूलतः वे सब एक ही हैं। ये तीनों देव प्रकृति के गुणों की भिन्नता से पैदा हुए हैं अतः इनमें अलग-अलग गुणों की प्रधानता होती है। इसी कारण इनके कार्य भी अलग-अलग नियत किये गये हैं। भगवान् विष्णु का कार्य सृष्टि का पालन करना है अतः वे धरती पर अवतार लेकर दुष्टों या राक्षसों का विनाश करते रहते हैं। चूँकि वे सत्त्वगुण से युक्त हैं अतः उन्हें संहार करने के लिये शिव की शक्ति का सहारा लेना पड़ता है क्योंकि वे ही संहार के देवता हैं। इसीलिये अनेक पुराणों में विष्णुजी को संहारक अस्त्रों (जैसे सुदर्शन चक्र आदि) की प्राप्ति शिवजी से दिखायी गयी है। तीनों ही देवता एक दूसरे की मदद से सृष्टि-व्यापार चलाते रहते हैं। अन्त में परमशिव ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र सहित समस्त सृष्टि का नाश कर डालते हैं और अपनी अद्वैत निष्कल समाधि में लीन हो जाते हैं।

कुछ लोग शिव को तामसी देव मानकर उनकी उपासना में दोष समझते हैं। वास्तव में यह उनका भ्रम है जो साम्प्रदायिक मनुष्यों द्वारा पैदा किया हुआ है। जिन भगवान् शिव का गुणगान वेदों, उपनिषदों और वैष्णव कहे जानेवाले पुराणों में भी गाया गया है, उन्हें तामसी बताना ठीक नहीं है। परात्पर शिव तो गुणातीत हैं, वहाँ तो गुणों की क्रिया ही नहीं है। जिस गुणातीत नित्य दिव्य साकार चैतन्य रस-विग्रहस्वरूप में क्रिया है, उसमें भी गुणों का खेल नहीं है। भगवान् की दिव्य प्रकृति ही वहाँ क्रिया करती है। और जिन त्रिदेव-मूर्तियों में सत्त्व, रज एवं तम की लीलाएँ होती हैं, उनमें भी उनका स्वरूप गुणों की क्रिया के अनुसार नहीं है। भिन्न-भिन्न क्रियाओं के कारण उनपर सत्त्व, रज एवं तम का आरोप है। वस्तुतः ये तीनों दिव्य चेतन-विग्रह अपने आप में गुणातीत हैं।

शिव के उपासक निर्गुण ब्रह्म को सदाशिव, सर्वव्यापी तथा निराकार सगुण ब्रह्म को महेश्वर, सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले को ब्रह्मा, पालनकर्त्ता को विष्णु और संहारकर्त्ता को रुद्र कहते हैं और इन पाँचों को ही शिव का रूप बतलाते हैं। इसी प्रकार विष्णु के उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्म को महाविष्णु; सर्वव्यापी एवं निराकार सगुण ब्रह्म को वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपों को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश कहते हैं। नाना प्रकार के ग्रन्थों के विवेचन से उपरोक्त तथ्यों को इस पुस्तक में दर्शाया गया है। और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण आदि तत्त्वतः एक ही हैं। सभी प्रकार के उपासक एक सत्य विज्ञानानन्दघन परमात्मा को ही मानकर सच्चे सिद्धान्त पर चल रहे हैं। नाम-रूप का भेद है, परन्तु वस्तु-तत्त्व में कोई भेद नहीं है।

सबका लक्ष्य एक ही है।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी परमात्मा शिव के उपर्युक्त तत्त्व को न जानने के कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णु की और कुछ वैष्णव भगवान् शिव की निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्रायः उदासीन से रहते हैं। परन्तु इस प्रकार के व्यवहार ज्ञानरहित समझे जाते हैं। यदि यह कहा जाय कि ऐसा करने से एकनिष्ठ अनन्य उपासना में दोष आता है, तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पति को ही इष्ट मानकर उसकी आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई पति के माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि और पति के अन्यान्य संबंधी-प्रेमी बन्धुओं की भी पति की आज्ञानुसार पति की प्रसन्नता के लिये यथोचित आदरभाव से मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्म से जरा भी न गिरकर उलटे शोभा और यश को प्राप्त करती है। वास्तव में दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धि में है। यथोचित वैध-सेवा तो कर्त्तव्य है। इसी प्रकार परमात्मा के किसी एक नाम-रूप को अपना-अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्य भाव से भक्ति करते हुए भी अन्यान्य देवों की अपने इष्टदेव की आज्ञानुसार उसी स्वामी की प्रीति के लिये श्रद्धा और आदर के साथ यथायोग्य सेवा करनी चाहिये। इस पुस्तक में पाठक अनेक ग्रन्थों के सन्दर्भ में यह पायेंगे कि भगवान् शिव विष्णु से या विष्णुजी शिव से यह कहते हैं कि हम दोनों में कोई अन्तर नहीं है, जो अन्तर करता है वह नरक में जाता है। तथा जो आपका भक्त है, वह मेरा भक्त है जो आपकी भक्ति करता है वह मेरी भक्ति करता है तथा जो आपसे द्वेष करता है वह मेरे से द्वेष करता है। इसी प्रकार वे आपस में कहते हैं जो आपके दर्शन का फल है वही मेरे दर्शन का फल है।

वे लोग आपस में आगे कहते हैं कि आपसे बढ़कर मुझे कोई प्यारा नहीं है। मैं आपके हृदय में तथा आप मेरे हृदय में स्थित हैं। श्रीरामचरितमानस में भगवान् श्रीराम कहते हैं-

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।। (लंका का. 2)
औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।। (उत्त. का. 45)

ऐसी स्थिति में जो मनुष्य दूसरे के इष्टदेव की निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तव में अपने ही इष्टदेव का अपमान करता है। परमात्मा की प्राप्ति से पहले भक्त अपनी समझ के अनुसार अपने उपास्यदेव के स्वरूप की जो कल्पना करता है, उपास्यदेव का असली स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण होता है, तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचि के अनुसार की हुई सच्ची उपासना को

परमात्मा सर्वथा स्वीकार करते हैं। क्योंकि ईश्वर-प्राप्ति के पूर्व ईश्वर का यथार्थ स्वरूप किसी के भी चिन्तन में नहीं आ सकता।

वास्तव में हरि एवं हर (अथवा कोई अन्य इष्ट) में तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। और न ही कोई किसी से छोटा या बड़ा है। इनमें केवल दृष्टि का भेद है। उपासक के अधिकार और रुचि के अनुसार किसी भी रूप में प्रधान-दृष्टि की जा सकती है। पुराणादि में जो कहीं किसी की और कहीं किसी की प्रधानता लिखी है, वह भी उस अधिकारी का मनोभाव उस रूप में दृढ़ करने के लिये-उसी रूप में 'ब्रह्म-दृष्टि' कराने के उद्देश्य से है, किसी के वास्तविक उत्कर्ष या अपकर्ष का कहीं भी तात्पर्य नहीं है।

न हि निन्दा निन्द्यान् निन्दितुं प्रवर्तते अपितु स्तुत्यान् स्तोतुम्।

अर्थात्-निन्दा निन्दनीय की निन्दा के उददेश्य से नहीं होती, अपितु स्तुत्य की स्तुति के उद्देश्य से होती है।

भगवान् के असंख्य नाम एवं रूप हैं परन्तु मनुष्य उन असंख्य नाम-रूपों से एक साथ प्रेम या भक्ति नहीं कर सकता। प्रेम या भक्ति तो एक से ही होती है और प्रेम के प्रकट हो जानेपर वह अनेक को एक कर देता है। अनेक में एक को यथार्थतः देखना और एक में अनेक को कल्पित देखना-यही सत्य है, यही ईश्वर के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति और वेदान्त का सार है।

किसी भी उपास्यरूपों में भेद नहीं होता है। भेद केवल बाहरी क्रिया और नाम-रूपों में होता है। जैसे नाटक में अभिनेता नाना रूप धारण करता है परन्तु वस्तुतः वह जो है सो वही रहता है। इसी प्रकार हरि या हर एक ही देव की अभिव्यक्तियाँ होने के कारण मूलतः वे दोनों अभिन्न हैं।

शिव एवं विष्णु में भेद करना नामापराध में गिना जाता है। वैष्णव ग्रन्थों 'श्रीहरिभक्ति विलास', पद्मपुराण तथा नारदादि पुराणों में इसकी चर्चा विस्तार से है। पाठक इन सब बातों को यथास्थान पुस्तक में पायेंगे।

कुछ लोग शिव को संहारकर्त्ता कहकर उपासना के योग्य नहीं मानते। किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि एक दृष्टि से जो संहार है, वही दूसरी दृष्टि से उत्पादन एवं पालन है। इन सबमें नाममात्र का भेद है। दूसरे शब्दों में सृष्टि, पालन एवं संहार सापेक्ष हैं। उदाहरण के लिये पेड़ का कटना (संहार) ही लकड़ी के समान बनाने (सृजन) का आधार होता है। एक की मृत्यु दूसरे के जन्म का आधार तथा तीसरे के पालन का आधार बन सकती है। इसके अतिरिक्त सृष्टि की भाँति संहार भी तो ईश्वर का कार्य है और वह अवश्यम्भावी है। समय पर उत्पादन एवं पालन जैसे नियत हैं, वैसे ही संहार भी नियत है। ये तीनों ही कार्य ईश्वर के माने जाते हैं। अगर कोई यह कहता है कि सर्जक, पालक एवं संहारक

तत्त्व एक ही है तब भी संहाररूप का ध्यान नहीं करना चाहिये तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि शिव न केवल जगत् एवं जीवन का विनाश करते हैं अपितु दुष्टों, विपत्तियों, दर्दों तथा अज्ञान आदि का भी विनाश करते हैं। अशुभ का विनाश ही शुभ का सृजन है। अतः विनाशक सर्जक भी होता है।

कुछ लोग भगवान् शंकर पर श्रद्धा रखते हैं परन्तु उन्हें मुक्तिदाता न मानकर लौकिक फलदाता ही समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आशुतोष शिव में दया की लीला का विशेष प्रकाश होने के कारण वे भक्तों को मनमानी वस्तु देने के लिये सदा तैयार रहते हैं परन्तु इन्हें मुक्तिदाता न समझना भूल है। शास्त्रों के अनुसार भगवान् शिव के स्वरूप का तत्त्वज्ञान ही मुक्ति है, तब उन्हें मुक्तिदाता न मानना एक भ्रम है। पाठक इस पुस्तक को पढ़कर इस तथ्य को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

भगवान् शिव की परात्पर ब्रह्म के रूप में उपासना करनेवाले के लिये तो वे परब्रह्म हैं ही पर अनान्य भगवत्स्वरूपों के उपासकों के लिये वे मार्गदर्शक परम गुरु हैं। भगवान् शिव के परमगुरु या जगद्गुरु होने की बात अनेक ग्रन्थों में पायी जाती है। पाठक स्वयं ही देखेंगे। शास्त्रों का आदेश है कि गुरु की प्राप्ति तथा उनकी कृपा के बिना इष्टदेव की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसका तात्पर्य है कि जबतक मनुष्य श्रीशिवजी को प्रसन्न कर उनका कृपा-पात्र नहीं बन जाता, तबतक उसे इष्ट का साक्षात्कार नहीं हो सकता। रामायण में भगवान् राम अपने श्रीमुख से कहते हैं-

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि।
भगति मोरि तेहि संकर देइहि।। (लंका का. 2/2)

इस प्रकार भगवान् विष्णु के भक्त के लिये भी कम से कम सद्गुरुरूप से शिव की उपासना आवश्यक है। अन्य वैष्णव ग्रन्थों में भी इस तथ्य का उल्लेख है। पुनः शक्ति के उपासक शक्तिमान् शिव को कैसे छोड़ सकते हैं, शिव के बिना अकेली शक्ति की उपासना अधूरी रहती है। गणेशजी तो शिव के पुत्र ही हैं? अतः गणेश उपासक पुत्र की पूजा करें और पिता का अपमान करें या उपेक्षा करें, यह शिष्ट मर्यादा नहीं हो सकती। इसी प्रकार सूर्योपासक भी शिवोपासना ही करते हैं क्योंकि सूर्यदेव भगवान् शिव के तेजोलिंग के नामान्तर हैं तथा वे शिव की अष्टमूर्तियों में से एक हैं। योगियों के लिये तो परम योगीश्वर शिव की आराधना आवश्यक है ही। पुस्तक में यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि वैदिक संहिताओं से लेकर पौराणिक युगतक सर्वत्र शिव योगियों के ध्येय रहे हैं। ज्ञान के साधक न्याय, वैशेषिक, वेदान्त आदि दर्शन परम कल्याणरूप शिव को ही प्राप्त करना चाहते हैं। तन्त्र तो मूलरूप से शिवोपासना के लिये ही बने हैं। अतः निष्कर्ष यह है कि किसी भी दृष्टि से-शिव को परम परात्पर ब्रह्म मानकर, महाज्ञानी, सभी विद्याओं के अधीश्वर या महान् विद्वान्, योगीश्वर, देवदेव, जगद्गुरु,

महान् उपदेशक (क्योंकि सभी शास्त्र शिव द्वारा ही उपदिष्ट हैं), उत्पादक, संहारक - कुछ भी मानकर - उनकी उपासना करना सबके लिये कर्त्तव्य है।

कहीं - कहीं ऐसा आता है कि वैष्णव शिवलिंग को नमस्कार न करे। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वैष्णव का शंकर से द्वेष है। इसका तात्पर्य यह है कि वैष्णवों के मस्तक पर उर्ध्वपुण्ड्र का जो तिलक रहता है, उसमें विष्णु के दो चरणों के बीच में लक्ष्मीजी का लाल रंग का चिन्ह (श्री) रहता है। लक्ष्मीजी को शिवलिंग के पास जाने में लज्जा आती है। अतः वैष्णवों के लिये शिवलिंग की पूजा तथा नमस्कार करने का निषेध आया है। परन्तु तिलक लगाने से पहले वह शिवलिंग की पूजा कर सकता है। पुनः शंकरजी की प्रतिमा के लिये ऐसा कोई निषेध वैष्णव ग्रन्थ में नहीं मिलता। कई बार उपरोक्त निषेध का साम्प्रदायिक अर्थ भी लिया जाता है क्योंकि प्राचीन काल में लिंग सर्वोच्च शक्ति महादेव का प्रतीक था। सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्मा एवं विष्णु के विवाद के दौरान जो ज्योतिर्मय लिंग प्रकट हुआ था वह त्रिदेववाले रुद्र का नहीं अपितु परात्पर ब्रह्म का लिंग अथवा प्रतीक था जो ॐकारमय था। यहाँ लिंग का अर्थ जननेन्द्रिय नहीं है। अतः लक्ष्मीजी को शिवलिंग के सामने आने में लज्जा तभी आयेगी जब उसे जननेद्रिय माना जाय। बाद में पुराणों के देव - दारू वन की कथा(तथा कुछ अन्य कथाओं) के आधार पर लोग कहीं - कहीं लिंगपूजा का अर्थ शिव के जननेन्द्रिय की पूजा समझ लेते हैं। खैर वास्तविक स्थिति जो भी हो, यहाँ कहने का अभिप्राय यह है कि शैवों एवं वैष्णवों में इस बिन्दु को लेकर झगड़ने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि किन्हीं भी प्राचीन ग्रन्थों में वैष्णवों को शिवलिंग पूजा करने की मनाही नहीं है। यों तो शैव एवं वैष्णव सभी ग्रन्थों में समय के साथ - साथ साम्प्रदायिक मिलावटें की गयी हैं, उनसे हमें सावधान रहना चाहिये। इन मिलावटों की पहचान तत्संबंधी ग्रन्थों की सम्पूर्ण विचारधारा के साथ उसकी तुलना कर की जा सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रयोजन मुख्यतः सभी देवस्वरूपों, विशेषकर शिव एवं विष्णु, की एकता को प्रदर्शित करना रहा है। गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण का भी यही लक्ष्य रहा है। इसके द्वारा प्रकाशित दो विशेषांक 'शिवांक' एवं 'शिवोपासनांक' में भी इस पुस्तक का प्रयोजन कुछ सीमातक पूरा होता है। परन्तु इस पुस्तक को लिखने की आवश्यकता इसलिये पड़ी की उपरोक्त विशेषांक विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखे गये लेखों का संग्रह होने की वजह से न केवल उनके विषयों में विभिन्नता तथा पुनरावृत्ति है अपितु उनके अन्दर ठीक ढंग से शास्त्रों के सन्दर्भ भी नहीं दिये गये हैं। उनके द्वारा न तो प्रत्येक शास्त्रों का प्रतिनिधित्व होता है और न ही वे पर्याप्त एवं व्यवस्थित हैं। कई जगहों पर केवल ग्रन्थ का नाम दिया गया है, उनका सन्दर्भ नहीं। कहीं - कहीं अधूरे या अपूर्ण

सन्दर्भ दिये गये हैं, इस कारण से पाठकों के एक वर्ग को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उपरोक्त कमियों के बावजूद भी इन अंकों की कुछ सामग्री बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उन महत्त्वपूर्ण अंशों को हमने भी इस पुस्तक में सम्मिलित कर लिया है।

भगवान् शिव के स्वरूप संबंधी इस पुस्तक में निकाले गये निष्कर्षों को कई विद्वान् पाठक इस आधार पर हजम करने में कठिनाई महसूस कर सकते हैं कि इसके निष्कर्ष मुख्यतः देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों तथा असुरों आदि की शिव-संबंधी स्तुतियों पर आधारित हैं। स्तुतियाँ स्तोता की संवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं न कि तथ्यात्मक। अतः संवेगात्मक उद्‌गारों(स्तुतियों) के आधार पर तथ्यात्मक निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। शिव की प्रसन्नता, कृपा अथवा सहायता प्राप्त करने के लिये की गयी स्तुतियाँ ठीक उसी प्रकार की मानी जा सकती हैं जिस प्रकार कि दुःख या कठिनाई की स्थिति में या अपना काम निकालने के लिये अथवा डर के कारण व्यक्तियों द्वारा की गयी चापलूसी। परन्तु स्तुतियों की इस तरह की व्याख्या ठीक नहीं है। यह सत्य है कि स्तुतियाँ भक्ति की भावना से प्रेरित होती हैं परन्तु वे चाटुकारों की अभिव्यक्तियों की भाँति छल-कपटपूर्ण नहीं होतीं। वे निष्कपट, सरल एवं सच्चे हृदय से की गयी होतीं हैं। स्तुतियाँ स्तोता के पूर्व अनुभवों, ज्ञान एवं अपने गुरुजनों अथवा पूर्वजों की शिक्षाओं पर आधारित होती हैं। अतः वे पूर्णतः भावात्मक न होकर तथ्यात्मक भी होतीं हैं। अगर वे तथ्यात्मक न होतीं तो एक ही आशय की स्तुति सभी स्तोता अलग-अलग परिस्थितयों में कैसे करते? कुछ स्तुतियाँ भगवान् शिव के दर्शन से पहले की गयी हैं तथा कुछ दर्शन के बाद। जो स्तुतियाँ बाद में की गयी हैं उनके आशय भी पहले जैसे ही हैं। धार्मिक जगत् में ऐसा माना जाता है कि भगवान् के दर्शन से व्यक्ति को अन्य बातों के अलावा उनके स्वरूप का भी ज्ञान हो जाता है। फलस्वरूप भगवान् शिव के दर्शन के पश्चात् की गयी स्तुति भावों के अलावा शिव-संबंधी प्रामाणिक तथ्यों को भी व्यक्त करती हैं। आध्यात्मिक-संसार में यह माना जाता है कि साधक पहले गुरु के वचनों को सत्य मानकर भगवान् के स्वरूप को समझता है। उसी समझे हुए स्वरूप को जब वह शास्त्रों में भी पाता है तो उसका विश्वास और पक्का हो जाता है। और जब वह स्वयं अपने अनुभव में भी उसी स्वरूप को पाता है तो उसे गुरु के वचनों की सत्यता का प्रमाण मिलने के साथ-साथ भगवान् के यथार्थ-स्वरूप का भी परिचय हो जाता है। गुरु के वचन, शास्त्र एवं व्यक्तिगत अनुभव-तीनों की एकरूपता ही आध्यात्मिक सत्य की प्रामाणिकता की कसौटी है। अतः जब स्तोता स्तुति प्रारम्भ करता है तो वह स्वयं अपने स्तुत्य के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता है(उसे केवल स्तुति के अनुरूप मानता भर है)। परन्तु जब उसे भगवान् के दर्शन हो जाते हैं तो उसे उनके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान

हो जाता है।[1] तदनन्तर की हुई उसकी स्तुति ज्ञानमिश्रित होने के कारण प्रामाणिक मानी जानी चाहिये। पुनः स्तुति सामर्थ्यवान् की ही की जाती है। झूठी स्तुति से किसी में सामर्थ्य नहीं पैदा हो जायगी, फ़लस्वरूप वह कार्य भी सिद्ध न होगा जिसके लिये स्तुति की गयी है। अतः स्तुतियों के आधार पर निकाले गये तथ्यात्मक निष्कर्षों की प्रामाणिकता पर सन्देह नहीं किया जाना चाहिये। स्तुतियों से जो तथ्यात्मक निष्कर्ष निकाले गये हैं उनकी पुष्टि तद्ग्रन्थगत अन्य महान् व्यक्तियों, देवों अथवा गुरुओं के वचनों द्वारा भी की गयी है। अतः शिव के स्वरूपसंबंधी निकाले गये निष्कर्षों की प्रामाणिकता पर सन्देह करना तर्क संगत नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक कई पाठकों को ऊबानेवाली हो सकती है क्योंकि सभी ग्रन्थों में एक ही तरह के विचार एवं एक ही तरह के श्लोक हैं। दूसरे शब्दों में विभिन्न ग्रन्थों के (शिव के माहात्म्य संबंधी) विषयों में नवीनता का अभाव होने के कारण ऊब पैदा हो सकती है। परन्तु विद्वान् एवं सजग पाठक जो प्रस्तुत विषय के संबंध में सभी ग्रन्थों के विचारों को जानने में रुचि रखते हैं उनके लिये यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। आस्थावान् शिवभक्तों के लिये इस पुस्तक में समस्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में निहित भगवान् शिवसंबंधी विचारों का सारांश मूल संदर्भों के साथ प्राप्त हो जायगा। अतः पुस्तक को पढ़कर वे सभी ग्रन्थों के पढ़ने का लाभ उठा सकेंगे। अन्य प्रकार के भक्तों को इस पुस्तक से शिवमाहात्म्य का परिचय विस्तार से हो जायगा फलस्वरूप वे शिवतत्त्व का पहले से बेहतर मूल्यांकन कर सकेंगे और पुण्य के भागी बनेंगे। क्योंकि शिवतत्त्व का गलत मूल्यांकन नरक पहुँचानेवाला और सही मूल्यांकन इष्ट की भक्ति तथा पुण्यफल प्रदान करनेवाला कहा गया है। सभी शास्त्रों का यही मत है, ऐसा इस पुस्तक में दिखाया गया है। अन्त में हम इतना कहेंगे कि अगर पाठकों को इस पुस्तक से शिवतत्त्व एवं उसकी उपासना के विषय में प्राप्त जानकारी उन्हें सभी प्रकार के इष्टों (भगवत्स्वरूपों) की समानता में विश्वास अथवा शिवभक्ति की ओर प्रेरित करती है तो हमारा पुस्तक लिखने का प्रयास सफल होगा।

क्षमा प्रार्थना एवं आभार

पुस्तक लिखने का प्रयोजन जैसा बताया जा चुका है, धार्मिक सहिष्णुता बढ़ाना है। इस पुस्तक

---

[1] भगवान् के दर्शन से पहले गुरु या शास्त्र के शब्दों के आधार पर ही साधक भगवान् के रूप की कल्पना करता है। जो यथार्थ से दूर होता है। उनके शब्दों के सही अर्थों का ज्ञान भगवद्दर्शन से पहले नहीं हो सकता। इसीलिये कहा जाता है कि भगवद्दर्शन से पूर्व भगवान् के स्वरूप की सही कल्पना कोई भी नहीं कर सकता। भगवान् के दर्शन हो जानेपर ही गुरु या शास्त्र के शब्दों का अर्थ साधक के हृदय में प्रकाशित होता है। जैसे जन्म से अंधे व्यक्ति को रूप का वर्णन तभी बोधगम्य होगा जब वह आँखों की चिकित्सा के उपरान्त देखने लग जाय।

में जो कुछ भी लिखा गया है वह ग्रन्थों पर ही आधारित है। अपनी ओर से इसमें कुछ भी ऐसा नहीं कहा गया है जो किसी को आपत्तिजनक हो। इस बात की पूरी सावधानी रक्खी गयी है कि किसी को भी कहीं पर आपत्ति न हो तथा किसी की भावनाओं को आघात न पहुँचे। परन्तु इस सावधानी के बावजूद भी अगर किसी को किसी स्थल पर आक्षेप हो या उनकी भावनाओं को आघात पहुँचता हो तो उसके लिये हम क्षमा चाहते हैं तथा उन स्थलों को बताने पर हम उसका अगले संस्करण में ध्यान रक्खेंगे।

संस्कृत का विद्यार्थी न होने के कारण तथा आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञ विद्वानों की सलाह प्राप्त न होनेपर मैंने अपने विवेक से स्वयं ही कई श्लोंको की व्याख्या की है। ऐसे स्थलों पर भूलें हो सकती हैं। अत: विद्वान् पाठकों से क्षमा चाहता हूँ तथा उनसे निवेदन है कि ऐसे स्थलों को हमें बतायें ताकि उनकी पुनरावृत्ति अगले संस्करण में न हो सके।

पुस्तक लिखने में कई विद्वानों की पुस्तकों का प्रयोग किया गया है। उनमें से कुछ का स्पष्ट हवाला पुस्तक में यथास्थान दे दिया गया है। जिन स्थलों पर प्रमादवश या किन्हीं कारणों से हवाले छूट गये हैं उन विद्वानों से मैं क्षमा चाहूँगा। पुस्तक में कुछ स्थल ऐसे भी हो सकते हैं जिसकी सामग्री अन्य पुस्तकों से ली गयी हो परन्तु उन स्थलों का उद्धरण न दिया गया हो। इस तरह की अनजान में या प्रमादवश हुई भूलों के लिये भी विद्वानों से क्षमा चाहता हूँ।

अन्त में छपाई में होनेवाली भूलें जिनसे पाठकों को समझने में कठिनाई का सामना करना पड़े उसके लिये भी मैं क्षमा चाहता हूँ।

मैं गुरुदेव पूज्यपाद श्रीशिवलौती महाराज का अत्यन्त आभारी हूँ जो न केवल पुस्तक लिखने के प्रेरणास्त्रोत रहे अपितु संपूर्ण पुस्तक के प्रकाशन के व्यवस्थापक भी हैं। उन्होंने पुस्तक के शीर्षक, स्वरूप एवं सामग्री संबंधी महत्त्वपूर्ण विचार देकर तथा पुस्तक के प्रकाशन की सम्पूर्ण जिम्मेवारी ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत किया है, इसके लिये मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

पुस्तक लिखने के लिये मैंने जिन-जिन पुस्तकों का प्रयोग किया है उनके लेखकों एवं प्रकाशकों का भी आभार प्रदर्शन करता हूँ। पुस्तक लिखते समय श्लोकों के अर्थ-संबंधी या अन्य व्याकरण-संबंधी जो-जो परामर्श जिन-जिन विद्वानों से हमने प्राप्त किया है मैं उन सबका आभार व्यक्त करता हूँ। इन विद्वानों में संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के डॉ. अरविन्द कुमार तथा डॉ. सुरेन्द्र मोहन मिश्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रकाशकों में 'कल्याण' प्रेस का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिनके विपुल प्रकाशनों से मैंने लाभ उठाया है। 'कल्याण' के प्रमुख प्रकाशन जिनका यहाँ उपयोग किया गया है इस प्रकार हैं-महाभारत, बाल्मीकि तथा अध्यात्मरामायण, रामचरितमानस, संक्षिप्त

योगवासिष्ठ, भागवत महापुराण, विष्णु महापुराण, हरिवंश पुराण, संक्षिप्त पद्मपुराण, संक्षिप्त स्कन्दपुराण, संक्षिप्त वराहपुराण, संक्षिप्त भविष्यपुराण, संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त पुराण, संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराण, संक्षिप्त देवी भागवत, संक्षिप्त शिवपुराण, संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराण, उपनिषद्-अंक, शिवांक, शिवोपासनांक, वेदान्त दर्शन, छान्दोग्य एवं वृहदारण्यक उपनिषद्(शंकरभाष्य), तीर्थांक, गर्ग संहिता, पातंजलयोगप्रदीप। हम 'कल्याण' के विशेष आभारी इसलिये भी हैं कि इस पुस्तक की तैयारी में इनके प्रकाशनों से विशेषकर तीर्थांक, शिवांक एवं शिवोपासनांक से काफी सामग्री ली गयी है।

इसी प्रकार वेंकटेश्वर प्रेस एवं नाग पब्लिशर्स का भी हम विशेषरूप से आभार व्यक्त करते हैं क्योंकि इनके कई महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों जैसे चारों वेद, अद्भुत रामायण, शिवगीता, अनेक महापुराण एवं उपपुराण आदि का प्रयोग इस पुस्तक में किया गया है।

इस पुस्तक के टंकण, प्रूफ-संशोधन तथा प्रकाशन के प्रत्येक स्तर पर सहायता करनेवाले अपने गुरु भाई श्री विनोद तनेजा का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। उन्होंने बड़ी चुस्ती से प्रूफ एवं टंकण जैसे कठिन कार्य को निपटाया। इसके लिये मैं उनका विशेष रूप से आभारी हूँ। इसी प्रकार शिवलोती महाराज के शिष्य डॉ. प्रकाशवीर अरोड़ा का भी मैं प्रमुख रूप से आभारी हूँ जो पुस्तक-लेखन के प्रत्येक स्तर-शीर्षक एवं आकार-प्रकार का निर्धारण, ग्रन्थ उपलब्ध कराना, प्रूफ संशोधन आदि-पर यथायोग्य सहायता करते रहे। दुर्लभ पुस्तकों को उपलब्ध कराने में मुझे अपने जिन-जिन मित्रों से सहायता मिली है उन सबका मैं आभार व्यक्त करता हूँ। अन्त में इस पुस्तक को लिखने में हमें जिन-जिन लोगों से प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप से किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त हुई है उन सबका मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

चूड़ेश्वर महादेव मन्दिर,
गैल, कोटि,
डाक.-जाबली (सोलन, हिमाचल प्रदेश)
अगस्त 1999

विनोद शंकर

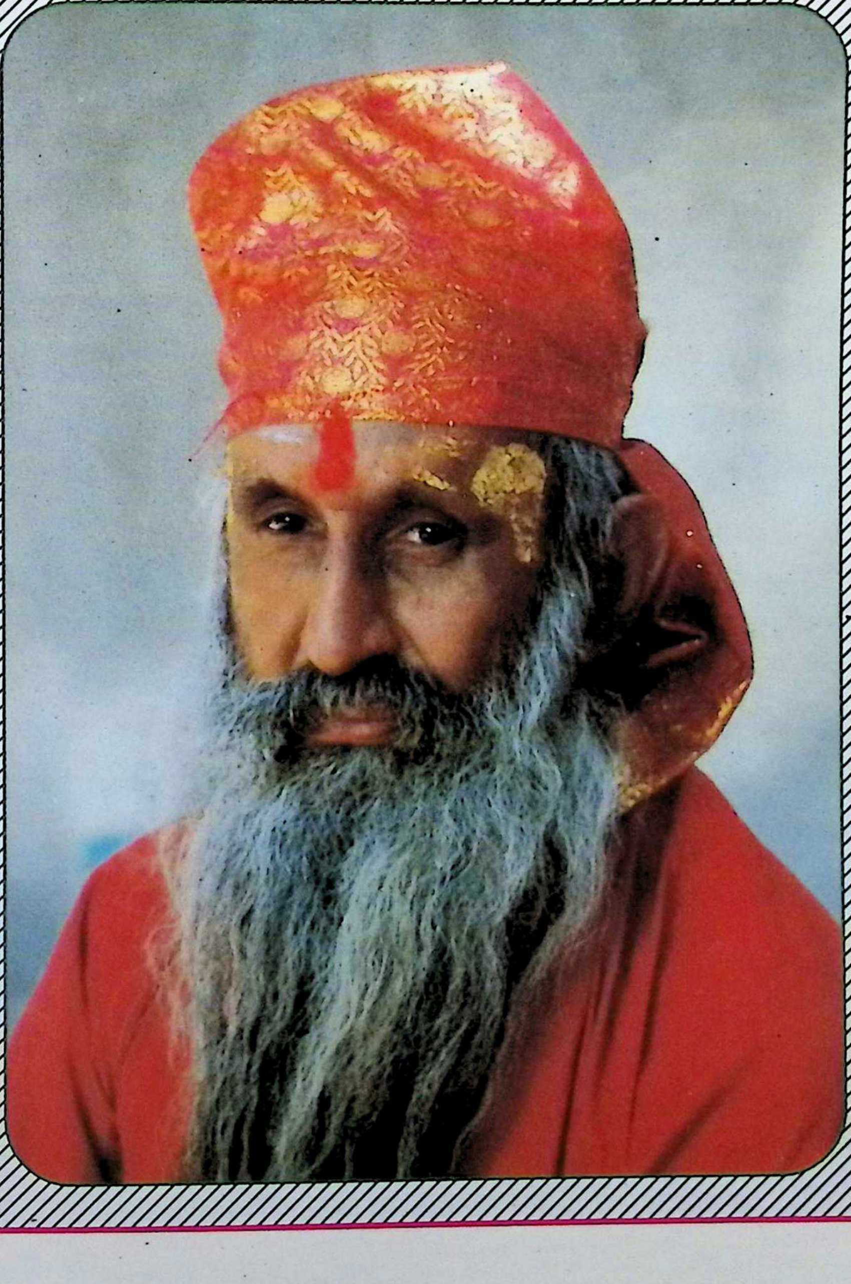

पुस्तक के प्रेरणा स्त्रोत पूज्यपाद श्री शिवलौती महाराज

पूज्यपाद श्री शिवलौती महाराज का संक्षिप्त परिचय

आज से लगभग साठ साल पहले हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला से करीब डेढ सौ किलोमीटर दूरस्थ प्रान्त के एक पिछड़े तहसील चौपाल की सीमा में आने वाले गाँव-हीराह(पोस्ट-टिकरी, परगना-नेवल) के खानदानी राजपूत श्री दिलमी रामजी के सुपुत्र श्री अनन्त रामजी के सबसे छोटी सन्तान के रूप में महाराजजी ने राजयोग में जन्म लिया। अपने पिता की सन्तानों में सबसे बड़ी बहन थी उससे दो साल छोटे एक भाई थे तथा उस भाई से 13 साल छोटे महाराजजी थे जिनका नाम गोपी चन्द रखा गया। इनके दादा एवं पिताजी को जुब्बल के राजा से नम्बरदारी प्राप्त थी। पिता के पास सैकड़ों बिघे जमीन थी तथा वे काफी सम्पन्न थे। इनका गाँव समुद्रतट से लगभग 2500 से 3000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। महाराजजी का बचपन इसी गाँव में प्रकृति के सांनिध्य में गुजरा।

पिछड़े पहाड़ी क्षेत्र में पैदा होने के कारण इन्हें काफी परिश्रम के बाद भी नौवीं कक्षातक की शिक्षा से ही संतोष करना पड़ा। इसके पश्चात् पिताजी के ठेकेदारी के काम में हाथ बँटाना शुरू कर दिया और कुछ ही दिनों में एक सफल ठेकेदार बन गये। ठेकेदारी का काम करते-करते समय गुजरता गया और लगभग 35 साल की आयु में अपनी इच्छा न होते हुए भी पिताजी की अन्तिम इच्छा के सम्मान हेतु शादी की। वे 6 वर्षतक गृहस्थी का बोझ उठाते रहे। इस बीच इन्हें दो पुत्र पैदा हुए जिनमें से पहला जीवित न रहा।

शिक्षा की तरह उचित स्वास्थ्य-सेवाओं के अभाव में 41-42 साल की उम्र में इन्हें होनेवाली बिमारी का सही इलाज यथासमय न होने से उन्हें एक पैर से विकलांग होना पड़ा।

महाराजजी को बचपन से ही मूर्ति बनाने, उसकी पूजा करने तथा दूसरों द्वारा उसकी पूजा करवाने का शौक था। प्रबल आध्यात्मिक रुची के कारण शुरू से ही उन्हें संतों एवं सिद्धि सम्पन्न लोगों की सतत तलाश थी। अध्यात्म एवं रहस्यमयी सिद्धियों के प्रति इतना आर्कषण था कि उनकी प्राप्ति के लिये वे हर तरह का उद्योग कर सकते थे। उनमें प्रबल इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति एवं मेधा-शक्ति का निवास था। दुनियाँ में इन तीनों गुणों का एक साथ पाया जाना दुर्लभ है। आध्यात्मिक रुची को पूरा करने के साथ-साथ वे ठेकेदारी का भी काम करते थे। लगभग 20 साल की उम्र में ठेकेदारी शुरू की थी तथा वह लगभग दस सालतक चलती रही।

इसी ठेकेदारी के दौरान उन्हें एक सिद्धि सम्पन्न व्यक्ति श्री आर. डी. ममगाई, जो गढ़वाल के श्रीनगर जनपद के रहनेवाले थे, से मुलाकात हुई। वे उच्च शिक्षा प्राप्त तथा माता के परम पुजारी थे। उनके अन्दर अतीत, अनागत एवं वर्तमान-तीनों कालों की बातें जानने के साथ-साथ दूसरों के मनोभावों को भी जानने की शक्ति थी। उन्होंने महाराजजी के अंगभंग एवं शिव-भक्ति की प्राप्ति की भविष्यवाणी बहुत पहले ही कर दी थी।

श्री आर. डी. ममगाई की मृत्यु के बाद शिमला में तपोलीन गिरीनामा चमत्कारी नागा संन्यासी श्री संतोष गिरी, जो पूर्व आश्रम में ग्वालियर-महाराजा के परिवार से संबंधित थे, जो जूना अखाड़े के सेक्रेट्री भी रह चुके थे तथा जो बारह सालतक खड़े रहकर तप भी कर चुके थे, को अपना दूसरा गुरु बना कर

उनसे दीक्षा ली थी। वहाँ कई सालोंतक उनकी सेवा की तथा उनसे तपस्या एवं एकाहार का गुण हासिल किया। अपने पहले गुरु से उन्होंने पूजा एवं उपासना की विधियों का ज्ञान प्राप्त किया था।

श्री संतोष गिरी के समाधिस्थ होने के बाद उन्होंने फौज से सेवानिवृत्त दक्षिण भारतीय सिद्धि सम्पन्न महात्मा श्री रत्ना स्वामी, जो उन दिनों नाहरी (जो हिमाचल प्रदेश के कसौली कसबे के निकट है) में रहते थे, की शरण ली, क्योंकि अभीतक उन्हें अपने अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हुई थी, और उनकी सेवा में लग गये।

कुछ दिनों बाद इनकी माता एवं पत्नी का देहान्त हो गया और वे घर-द्वार छोड़कर अपने एकमात्र पुत्र, जो लगभग ढाई साल का था, को साथ लेकर अपने तीसरे गुरु की सेवा में तन-मन से लीन हो गये। लगभग 12-13 सालतक मंदिर एवं आश्रम में झाड़ू-पोछा, सफाई, लंगर बनाने एवं बर्तन धोने आदि छोटे से छोटे कार्यों को बड़ी श्रद्धा-भक्ति से करते रहे। एक पैर एवं विकृत शरीर से न केवल लगातार कठोर शारीरिकरूप से सेवा करते रहे अपितु रात को बहुत कम सोकर अथवा कभी-कभी बिना सोये ही मंदिर में बैठकर जप, ध्यान, पूजा, स्वाध्याय न जाने क्या-क्या करते रहे। प्रतिदिन वे बिना किसी अपवाद के रात्रि के न केवल तीसरे प्रहर के समाप्त होने से पहले अपितु सभी आश्रम वासियों से पहले ही भगवान् शिव को जल अर्पण कर देते थे। उनकी कठोर सेवा एवं भक्ति का उदाहरण उनके गुरुजी अन्य शिष्यों को देते रहते थे। महाराज के सन्दर्भ में वे कभी-कभी अपने शिष्यों से कहते कि "वह तो पिछले जन्म से ही दीक्षित है; इस जन्म में उसे दीक्षित करना या न करना कोई अर्थ नहीं रखता। तुम सब लोग भक्ति एवं सेवा से भाग जाओगे परन्तु वह अपनी सेवा एवं भक्ति में डटा रहेगा।" उनका अभिप्राय यह था महाराजजी की भक्ति पिछले जन्मों से चली आ रही है और वह उत्तरोत्तर अपने मंजिल की और बढ़ती जायगी। जबकि अन्य भक्तों के भक्ति की शुरुआत इसी जन्म से है अतः वह कभी भी थोड़े से झटके में समाप्त हो जायगी।

सेवा करते-करते आखिर एक दिन कुल देवता, गुरु एवं भगवान् शिव की कृपा अवतरित हुई और उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी। प्रारंभ में जब महाराजजी ने घर छोड़ा था तो उस समय उन्हें भगवान् शिव एवं पार्वती का दर्शन एवं आशिर्वाद प्राप्त हुआ। उनका वह आशिर्वाद पूर्णरूप से फलीभूत होने में लगभग 12 वर्ष बीत गये। तबतक उनके गुरु ने उन्हें संन्यास धर्म में दीक्षित कर दिया था।

महाराजजी की सिद्धि प्राप्ति के कुछ दिन बाद ही उनके गुरुजी ने नाहरी से करीब 30 कि. मी. नीचे उतरकर सूरजपुर में मंदिर बनाकर अपने शिष्यों के साथ रहने लगे। कुछ दिन बीतने के बाद उन्होंने महाराजजी को पिन्जौर के निकट कौसल्या नदी के किनारे एकान्त श्मशान के समीप शिवलौती नामक स्थान पर रहने के लिये अकेले ही भेज दिया। वहाँपर उन्होंने स्वयं की अपनी तपस्या एवं सिद्धि के बलपर लगातार भंडारा या लंगर चलाते रहे, लोगों की समस्याओं का समाधान करते रहे तथा मंदिर एवं आश्रम के निर्माण का प्रयास करते रहे। बिना अपने गुरु के आर्थिक सहयोग के ही भंडारा या लंगर आदि की व्यवस्था करते रहे। धीरे-धीरे लोगों में उनका प्रचार बढ़ने लगा। उनकी सिद्धियों से अधिकाधिक लोगों का भला होने लगा और लोगों की भीड़ शिवलोती में इकट्ठी होती गयी। वहाँपर महाराजजी की साधना एवं सिद्धि दोनों ही अपनी चरम सीमा पर थीं। घंटों एक पैर पर खड़े होकर उपासना एवं भक्ति

करते रहते। रविवार के दिन वहाँ हजारों की भीड़ इकट्ठी होती। धीरे- धीरे दो-तीन सालों में ही उस विरान जगह की काया पलट गयी। वहाँ एक विशाल शिव-मंदिर तथा कई कमरों का निर्माण हो गया। महाशिवरात्रि एवं श्रावणी(रक्षा-बन्धन) पूजा के दौरान हजारों भक्तों का समागम तथा विशाल भण्डारा होता। बड़े-बड़े अधिकारी, गरीब, अमीर, व्यापारी, किसान, विद्यार्थी तथा उद्योगपति-अनेकों प्रकार के लोग अपनी-अपनी समस्याओं के समाधान के लिये उनके पास आते रहे। सभी आनेवालों को वे अन्य बातों के साथ-साथ उपासना या भक्ति का(मुख्यत: शिवजी की) उपदेश करते थे। सभी आनेवालों को मद्य-मांस आदि छोड़ने की प्रेरणा देते। फलस्वरूप अनेक लोगों ने उनसे प्रेरित होकर मद्य-मांस आदि को त्याग दिया। वहाँ पर महाराजजी को लोग 'शिवलौती महाराज' के नाम से पुकारने लगे।

शिवलौती में समय यों ही गुजरता जा रहा था। प्रतिदिन आनेवाले श्रद्धालुओं की भीड़ बढ़ती जा रही थी। अचानक 7/8/1988 के दिन भयंकर बाढ़ के कारण नदी के किनारे स्थित मंदिर एवं आश्रम में पानी भरने की आशंका बढ़ गयी थी। वहाँ ठहरे हुए लोगों को वापस चले जाने के लिये आदेश दे दिये गये थे। फिर भी कुछ चुने हुए भक्त महाराज को छोड़कर जाने के लिये तैयार नहीं हुए। 7/8/1988 को ही रात्रि में महाराज को तुरन्त स्थान छोड़कर चले जाने का दैवीय आदेश प्राप्त हुआ। फलस्वरूप महाराजजी ने रात में बचे हुए शिष्यों को वहाँ से चले जाने का आदेश दे दिया। उन्होंने स्वयं अपने द्वारा स्थापित शिव को छोड़कर वहाँ से जाना उचित नहीं समझा। यह उनके भक्ति की पराकाष्ठा ही कही जायगी कि उन्होंने दैवीय आदेश को भी नहीं माना और हठपूर्वक अपनी भक्ति की परीक्षा मानकर डटे रहे। अन्त में दैवीय विधान के अनुरूप 8/8/1988 को प्रात: 6 बजे के लगभग नदी की बाढ़ ने मंदिर सहित सभी आश्रम को अपने प्रवाह में ले लिया। आश्रम में टिके बाहर से आये तीन भक्तों की मृत्यु हो गयी। महाराज की चेतावनी के कारण कुछ अंतरंग भक्त चौकन्ने थे और वे बच निकले। महाराज को भी बाढ़ ने अपने प्रवाह में घसीट लिया और वे बह चले। परन्तु शायद भगवान् शिव उनकी भक्ति से द्रवित हो उन्हें बचाने के लिये ही उनकी जटा का कुछ अंश जल के ऊपर भक्तों के दृष्टिपथ में ले आये। जटा के संकेत से जल-प्रवाह में बहते हुये महाराज का पता पाकर शिष्यों ने जटा पकड़ कर अपने को बचाते हुए उन्हें भी बचा लिया। एक पैरवाले वैशाखी के सहारे से चलनेवाले महाराज जो सब तरफ से लाचार थे उनका नदी के भीषण जल-प्रवाह से बचना बिना भगवद्कृपा के संभव नहीं था।

तदनन्तर महाराजजी अपने गुरुजी के सूरजपुर स्थित आश्रम पर गये और कुछ दिन वहाँ रहे। हिमाचल प्रदेश में परवाणु के समीप अम्बोटा गाँव में स्थित कम से कम 200 साल प्राचीन शिवमंदिर काफी दिनों से उपेक्षित पड़ा था। उसकी देख-भाल करनेवाला कोई न था। गाँववालों ने महाराज के गुरुजी से उस मंदिर की व्यवस्था संभालने की पेशकश की। फलस्वरूप उन्होंने महाराजजी को ही उसकी व्यवस्था का कार्य सौंप दिया। महाराजजी के वहाँ पहुँचनेपर पुन: धीरे-धीरे भीड़ बढ़ने लगी और हजारों लोग उनके प्रशंसक बन गये। वहाँपर पुराने मंदिर की मरम्मत के अलावा एक नये विशाल शिवमंदिर का निर्माण हुआ। आश्रम के लिये कई कमरों का भी निर्माण हुआ। 4-6 सालों में ही वहाँ काफी प्रगति हो गयी। वहाँपर भी छोटे-बड़े हर तरह के लोगों का आना-जाना शुरू हो गया और आश्रम का भी विस्तार होता चला गया। कौसल्या नदी दो पहाड़ियों के बीच से होकर बहती है। शिवलौती का मंदिर, जिसे नदी ने 1988

में बहा दिया था, नदी के किनारे पहाड़ी की जड़ में बना था। उसी स्थान की सीध में पहाड़ी के ऊपर थोड़ा पीछे की ओर हट कर पुराने मंदिर की यादगार में तथा उस स्थान की आध्यात्मिक महत्ता के कारण एक नये विशाल शिवमंदिर का भी निर्माण महाराजजी द्वारा कराया गया।

इसी बीच उनके अन्तिम गुरुजी का स्वर्गवास हो गया। स्वर्गवास से थोड़ा पहले उन्होंने नाहरीवाले मंदिर की भी व्यवस्था का भार महाराजजी को सौंप दिया। नाहरीवाले मंदिर की जर्जर अवस्था का काया-पलट करने के साथ-साथ उसका विस्तार भी महाराज ने करवाया। विगत दो सालों से वे जाबली के नजदीक गैल गाँव से लगभग 700-800 फीट ऊपर एकान्त पहाड़ी पर आश्रम एवं मंदिर के निर्माण का कार्य करा रहे हैं। इस वीरान एवं कठिन चढ़ाईवाले स्थान पर भी श्रद्धालुओं की भीड़ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। मंदिरनिर्माण का कार्य पूरा ही होनेवाला है। अम्बोटा मंदिर गाँव के नजदीक एवं सड़क के किनारे होने की वजह से श्रद्धालुओं के साथ-साथ पिकनिक मनानेवालों, अश्रद्धालुओं एवं असामाजिक तत्त्वों की भीड़ बढ़ने के कारण ही महाराजजी ने दुर्गम एवं निर्जन गैल एवं सरी गाँवों के मध्य की जगह में मंदिर एवं आश्रम बनाना पसन्द किया। इस स्थलपर पहुँचने के लिये आम लोगों को 45 से 60 मिनट की कठिन चढ़ाई चढ़ना होता है। इसलिये यहाँ केवल श्रद्धालु व्यक्ति ही आने का साहस कर सकता है। इस स्थान से महाराज के कुल देवता 'श्रीगुल महाराज' की प्रसिद्ध तपोभूमी चूड़धार पर्वत की चोटी ठीक सामने दीखती है।

गीता आदि महान् ग्रन्थों की भाँति महाराजजी भी कर्मयोग को ज्यादा महत्त्व देते हैं। उनका कहना है कि कर्म से ही ज्ञान एवं भक्ति प्राप्त होती है जिससे व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। वे कहते हैं कि उन्हें मुख्य रूप से कर्म-योग द्वारा ही सिद्धि प्राप्त हुई है। उनकी दृष्टि में कर्मयोग का अर्थ पूर्ण निष्ठा, लगन एवं शक्ति के साथ बिना किसी शिकायत के गुरु के आदेशानुसार भगवान् एवं गुरु की सेवा तन, मन या धन-जिसके पास जिस तरह की सामर्थ्य है, से करना। मंदिर में झाड़ू, भंडारा गऊ सेवा, सफाई आदि जितने भी छोटे-बड़े कार्य किये जाते हैं उन सबका महत्त्व जप-पूजा-ध्यान से कम नहीं है। उनके अनुसार रोजाना स्नानकर शिवलिंग पर जल-फूल आदि चढ़ाना तथा सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। सभी प्रकार के नशे विशेषकर शराब का अवश्य ही त्याग कर देना चाहिये।

अन्नदान, जिसकी प्रेरणा महाराजजी को अपने तीसरे गुरु से प्राप्त हुई तथा जिसे शास्त्रों में भी सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, को वे सबसे बड़ा दान एवं पुण्यकर्म मानते हैं। फलस्वरूप आश्रम में प्रतिदिन दोपहर से राततक सबके लिये नियमित भण्डारा बिना किसी भेदभाव के चलता रहता है। वे सभी लोगों को शिवलिंग की पूजा यथा संभव शुद्ध होकर जल आदि तथा पंचाक्षर मन्त्र से करने का आदेश देते हैं। शुद्धि के लिये वे स्नान पर भी बल देते हैं। शिवलिंग की पूजा में लोगों को प्रवृत्त करने के लिये ही वे जगह-जगह शिवालय का निर्माण करवाते तथा लोगों को लिंगपूजा के लिये सतत प्रेरित करते रहते हैं। स्वयं त्रिकाल स्नान एवं लिंगपूजा करते हैं ताकि लोग उनका अनुसरण कर सकें। आश्रम के परिसर में अन्य बातों के अलावा बिड़ी-सिगरेट या किसी प्रकार का नशा करना सख्त मना है। प्रत्येक दर्शनार्थी को यहाँ स्नान करके ही आना चाहिये, अन्यथा उनका प्रवेश नहीं होगा।

वैदिक संहिताओं में रुद्र का स्वरूप

हिन्दूधर्म की समस्त शाखाओं तथा संप्रदायों के मूलभूत विचारों के बीज वैदिक संहिताओं में पाये जाते हैं। ये मूलभूत विचार चाहे उनके दार्शनिक पक्ष से जुड़े हों चाहे धार्मिक कर्मकाण्डों से चाहे पौराणिक कथाओं से, इनके सूत्र वैदिक संहिताओं में खोजे जा सकते हैं। यही कारण है कि संहिताओं में विस्तार से सभी बातें न बताकर मात्र उनका संकेत भर दिया गया है। क्योंकि विस्तार से बताने पर ऋषियों का काफी समय एवं श्रम लगता तथा उन सबको स्मरण रखना भी संभव नहीं था। पहले ऋषि लोग संहिताओं को कण्ठस्थ रखते थे फलस्वरूप ये गुरु-शिष्य परम्परा से अक्षुण्ण रूप से आधुनिक कालतक चली आयी हैं। गुरु से सुनकर याद रखने के कारण ही इसे श्रुति भी कहते हैं। वैदिक संहिताओं में निहित धार्मिक सूत्रों का विकास क्रमशः ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, इतिहास (रामायण एवं महाभारत आदि) एवं पुराण आदि ग्रन्थों में हुआ है। इस अध्याय में हम कुछ प्रमुख शैवमान्यताओं के बीज वैदिक संहिताओं में खोजने का प्रयत्न करेंगे।

भगवान् शिव का व्यक्तित्व इतना अधिक वैविध्यपूर्ण तथा विचित्र है जितना अन्य किसी देवता का नहीं है। एक ओर तो वे भयंकर तथा विनाशक हैं, प्रलयकाल में जिनके तृतीय नेत्र से उद्‌भूत कालाग्नि जगत् की प्रत्येक वस्तु को भस्मसात कर देती है और जो दिग्गजों को अपने शूल की नोक से छेदते हुए अपने प्रचण्ड ताण्डव से ब्रह्माण्ड को हिला देते हैं और साथ ही दूसरी ओर वे कल्याणमय (शिव), मंगल प्रदान करनेवाले (शंकर) तथा आशुतोष भी हैं जो भक्तों की जरा सी तपस्या से तुष्ट होकर उन्हें मनचाही सिद्धि प्रदान करते हैं। एक ओर जहाँ वे श्मशान में नग्न विचरण करनेवाले भूतों तथा प्रेतों के साथी हैं तो दूसरी ओर श्वेताश्वतर-उपनिषद् आदि श्रुतियों तथा कश्मीर शैव-सिद्धान्त में उनकी माया के अधीश्वर, जगत् के कारण-स्वरूप, अव्यक्त, परमतत्त्व के रूप में भी प्रतिष्ठा है। शिव के इन सब रूपों का सामंजस्य करना, सबमें सम्बंध के स्पष्ट या अस्पष्ट सूत्र का वैदिक संहिताओं में अन्वेषण करना अत्यन्त दुष्कर है।

परम्परा से वेदों की संख्या चार स्वीकार की गयी है- ऋग्वेद[1], यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। पुनः प्रत्येक वेद के चार भाग माने जाते हैं-संहिता या मंत्र, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। प्रत्येक वेद के अनेकों ब्राह्मण, उपनिषद् एवं आरण्यक ग्रन्थ आजकल लुप्त हो गये हैं। वेदों की संहिताओं के भी कई अंश लुप्त माने जाते हैं। वेदों के मंत्रों के अर्थसंबंधी चार सम्प्रदायों का भी उल्लेख अतिप्राचीन है- 1. अधिदैविक 2. आध्यात्मिक 3. आधिभौतिक एवं 4. अधियज्ञीय। इनके अलावा अर्थ-निर्धारणसंबंधी अन्य सम्प्रदाय भी हैं जैसे-रहस्यवादी, विज्ञानवादी तथा राष्ट्रवादी। यहाँपर इतना

---

[1] ऋगवेद को सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन वेद माना जाता है और यह वेद सभी से बड़ा है। सामवेद में, जो सबसे छोटा वेद है, मुख्यतः ऋग्वेद एवं यजुर्वेद की ही गेय संहिताओं का संकलन किया गया है। इसमें लगभग 100 मौलिक मंत्र हैं। बाकी सभी अन्य वेदों से लिये गये हैं।

ही कहना पर्याप्त है कि कोई भी वेदार्थ की दृष्टि सम्पूर्ण नहीं है। अलग-अलग प्रसंगों में अलग-अलग दृष्टियों से अर्थ करना ज्यादा उपयुक्त होता है, उपरोक्त सभी दृष्टियाँ स्थल-विशेष पर ठीक हो सकती हैं पर कोई भी दृष्टि सम्पूर्ण स्थलों पर उपयुक्त नहीं है। प्रस्तुत लेख में किसी एक दृष्टि को लेकर शिव-स्वरूप की विवेचना नहीं की जायगी।

रुद्र का स्वरूप

ऋग्वेद में रुद्र को गौर वर्ण के तेजस्वी युवक के रूप में चित्रित किया गया है जो अपने धनुष एवं बाणों को लेकर विचरण करते हैं तथा क्रुद्ध होनेपर मनुष्यों तथा पशुओं का विनाश कर डालते हैं। इनका रूप अत्यन्त तेजयुक्त है(**"त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे"**, ऋ. वे. 1/114/5) और आभावान् सूर्य या सोने की तरह चमकता है(**"यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते"**, ऋग्वेद 1/43/5)। इनके स्वर्ण के आभूषणों आदि की भी चर्चा(ऋ. वे. 2/33/9 तथा 2/33/10 में) की गयी है। इनके शरीर का रंग भूरा माना गया है(ऋ. वे. 2/33/5, 9)। इनको युवक कहा गया है(ऋ. वे. 2/33/11 तथा 5/60/5)। इनके अंग पुष्ट एवं दृढ़ हैं(ऋ. वे. 2/33/9)। अंगों में इनके हाथ एवं बाहु का विशेष उल्लेख किया गया है। इनका हाथ मंगलमय तथा शीतलता पहुँचानेवाला है(ऋ. वे. 2/33/7)।

रुद्र का वाहन रथ एवं शस्त्र धनुष है(**"तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा ...."**, ऋ. वे. 5/42/11 तथा **"अहं रुद्राय धनुरा तनोमि"** ऋ. वे. 10/125/6)। वाजसनेयी संहिता(3/61)[1] में रुद्र के धनुष का नाम पिनाक बताया गया है(**"अवततधन्वा पिनाकावसः"**)। रुद्र के धनुष के अलावा अन्य अस्त्रों वज्र(ऋ. वे. 2/33/3) एवं विद्युत(ऋ. वे. 7/46/3) का भी उल्लेख है।

रुद्र के स्वरूप की जो विशेषता उन्हें अन्य देवताओं से अलग करती है वह उनका भयानक, उग्र तथा संहारकरूप है। उनके लिये भीम, उग्र, तथा उपहत्नु(घातक) विशेषण प्रयुक्त हुए हैं(ऋ. 2/33/11)। अथर्ववेद(11/2/7) में उनको अर्धकघाती(पौराणिक अन्धकासुर) कहा गया है (**रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि**)। रुद्र के प्रति कहे गये ऋ. वे. के मन्त्रों में स्तुतिकर्त्ता का भय झलकता है(ऋ. वे. 1/114/7 तथा 8)। ऋ. वे.(2/33/14) में रुद्र के शूल से बचने की प्रार्थना की गयी है। अथर्ववेद(11/2/22 तथा 26) में ज्वर, विष, खांसी एवं दिव्य अग्नि या तड़ित ये चार रुद्र के प्रमुख अस्त्र बताये गये हैं। रुद्र से इन सबको अपने से दूर रखने की प्रार्थना की गयी है।

किन्तु इनके साथ ही ऋ. वे. में रुद्र के स्वरूप का दूसरा पक्ष भी है जिसमें उन्हें कृपालु, कल्याणमय तथा श्रेष्ठ वैद्य कहा गया है जो अपनी विविध औषधियों के द्वारा मनुष्य के सभी रोगों को दूर करते हैं। उनका हाथ मृलयाकु(मंगलमय) है(ऋ. वे. 2/33/7), तथा वे उदारदाता(मीढ्वान्) हैं(ऋ वे. 1/114/3 तथा 2/33/14)। वाजसनेयी संहिता(16/51) तथा अथर्ववेद में मीढुष्टम(अत्यन्त

---

[1] वाजसनेयी संहिता को (शुक्ल) यजुर्वेद भी कहा जाता है।

उदार) शब्द केवल रुद्र के लिये प्रयुक्त हुआ है। वे अत्यन्त मंगलमय (शिव) हैं तथा स्तोता को प्रचुर धन-धान्यादि से पूर्ण कर देते हैं। रुद्र अन्य देवों के क्रोध तथा उनसे होनेवाले संकटों को भी दूर करते हैं (**"आरे अस्मद् दैव्यं हेलो अस्यतु"**, ऋ. वे. 1/114/4)। 'शम्' (कल्याण) तथा मयस् (सुख) के वे कर्त्ता हैं (ऋ. वे. 1/43/6) इसीलिये उनको वाजसनेयी संहिता (16/41 आदि) में 'शंकर' एवं 'मयस्कर' कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण (2/2/5/5) का कथन है कि जो 'शिव' है वही 'मय' भी है (**यद्वै शिवं तन्मयः**)। संसार की सभी औषधियों पर उनका अधिकार है (ऋ. वे. 5/42/11)। उनके पास सहस्रों औषधियाँ हैं (ऋ. वे. 7/46/3), अपने स्तोताओं के लिये वे इन्हें हाथ में लिये रहते हैं (ऋ. वे. 1/114/5) और इन औषधियों का उपयोग करके मनुष्य 100 वर्षों तक जीवित रह सकता है (ऋ. वे. 2/33/2)। यही कारण है कि उन्हें वैद्यनाथ की उपाधि दी गयी है (ऋ. वे. 2/33/4)।

(1) रुद्र शब्द का अर्थ

वैदिक रुद्र का आधिभौतिक स्वरूप क्या था? इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। परन्तु इसी के स्वरूप पर रुद् शब्द का अर्थ निर्भर करता है।

एक स्थान पर शतपथ ब्राह्मण रुद् धातु को णिजार्थक मानते हुए रुद्र का अर्थ 'रुलानेवाला' करता है। शतपथ ब्रा. (11/6/3/7) में कहा गया है कि दस प्राण और आत्मा इनको मिलाकर रुद्र कहते हैं क्योंकि शरीर से निकलते समय वे सम्बन्धियों को रुलाते हैं।

स्वामी दयानन्द जैसे कुछ आधुनिक विद्वान् भी रुद्र का अर्थ 'रुलानेवाला' लेने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार पापियों एवं दुष्टों को रुलाने के कारण परमात्मा का ही नाम रुद्र है।

महाभारत (शान्तिपर्व 284/77) में दक्ष शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि 'रु' संकट को कहते हैं और उनको 'दूर करने' (द्रावण = भगाना) के कारण आपका नाम रुद्र है। इसी प्रकार ऋ. वे. (1/114/1 तथा 2/1/6) की व्याख्या में सायण ने भी रुद् का अर्थ 'कष्ट', 'दुःख' लेकर रुद्र का अर्थ 'कष्ट का अपनोदन करनेवाला' लिया है।

(2) रुद्र का भौतिक आधार

तैत्तिरीय संहिता में अग्नि को रुद्र बतलाया गया है। शतपथ ब्राह्मण में भी अनेक स्थानों पर स्पष्ट शब्दों में अग्नि को ही रुद्र कहा गया है-**यो वै रुद्रः सो अग्निः** (5/2/4/13), **अग्निर्वैरुद्रः** (5/3/1/10)। इसी ब्राह्मण में (1/7/3/8) अग्नि के विषय में जो शब्द कहे गये हैं उनके अनुसार अग्नि के ही 'शर्व' तथा 'भव' ये दो नामान्तर हैं। 'शर्व' तथा 'भव' इसी ब्राह्मण में अन्यत्र (6/1/3/8-18) रुद्र के आठ नामों में परिगणित हुए हैं। शतपथ ब्रा. (9/1/1/1-2) में शतरुद्रिय के मंत्रों की व्याख्या करता हुआ ऋषि कहता है कि अग्नि का दाहकताशक्ति से पूर्ण, अमर रूप ही रुद्र है। अपने इस अविनाशीरूप में अग्नि सर्वभक्षी और सर्वविनाशक है। अतः उसे रुद्र कहते हैं। देवताओं ने उससे डरकर उसे शान्त करने के लिये (शतपथ ब्रा. 9/1/1/1) मन्त्रों का पाठ किया।

अग्नि को रुद्र मानने के बीज ऋग्वेद में भी हैं। उदाहरणार्थ -

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे। (ऋ. वे. 2/1/6)

इस मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य लिखते हैं कि रुद्(दुःख) को दूर करने(द्रावण) के कारण ही अग्नि को रुद्र कहते हैं। आगे चलकर सायण ने रुद्र शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति दी है। उसका पूजन न करके मनुष्य दुःख में पड़कर रोते हैं। ऋ. वे.(3/2/5 एवं 4/3/1) से भी अग्नि एवं रुद्र में एकात्मकता सिद्ध होती है। ऋ. वे.(6/16/39) तथा अथर्ववे.(7/87/1) में भी रुद्र एवं अग्नि में तादात्म्य माना गया है। महाभारत अनुशासनपर्व(160/39 एवं 161/2) में कहा गया है कि -

स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वः स सर्वजित्। (160/39)

वदन्त्यग्निं महादेवं तथा स्थाणुं महेश्वरम् । (161/2)

आगे महाभारत (अनुशासनपर्व 161/3-4) में रुद्र तथा शिव ये दो घोर तथा शान्तमूर्तियाँ बतायी गयीं हैं। इनमें से घोरमूर्ति अग्नि, विद्युत तथा सूर्य के प्रचण्डरूप को सूचित करती है तथा शान्तमूर्ति जल-सोमात्मक है।

वायुपुराण(21/75 तथा 31/23) में अग्नि को कालरुद्र कहा गया है। विष्णुपुराण(6/3/24) में भी कालाग्नि के लिये रुद्र संज्ञा प्रयुक्त है।

उपरोक्त अनेक प्रमाणों से अग्नि को रुद्र स्वीकार कर लेनेपर इसे वेदों का प्रमुख देवता स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि अग्नि को विद्वानों ने वेदों के प्रमुख देवता के रूप में स्वीकार किया है।

(3) रुद्र की जटायें, उनका विष-पान एवं नीलकण्ठत्व

अथर्ववेद(11/2/18) में रुद्र के लिये केशी(बालोंवाला) विशेषण प्रयुक्त हुआ हैं। ऋग्वेद(1/114/1 तथा 1/114/5) तथा यजुर्वेद(16/10, 29, 48 आदि) में रुद्र को कपर्दी(जटाधारी) विशेषण से सूचित किया गया है। महाकाव्यों तथा पुराणों में कपर्दी के ही अर्थ में शिव के लिये 'धूर्जटि' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। महाभारत अनु. पर्व(161/9) में शिव एवं अग्नि का साम्य दिखाते हुए कहा है कि धूम्रवर्णयुक्त जटा होने के कारण ही शिव(रूपी अग्नि) को धूर्जटि कहा जाता है। कुछ ऐसा ही भाव रुद्र की 'नीलशिखण्डिन्' उपाधि का भी है। अथर्ववेद(2/27/6, 11/2/7 इत्यादि) में रुद्र के लिये यह विशेषण(नीलशिखण्डिन्) प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ है "नीले केशों या शिखावाला।"

शुक्ल यजुर्वेद(16/7, 8, 28, 56, 57 आदि) तथा कृष्ण यजुर्वेद(तै. सं. 16/1/66/8) में रुद्र की उपाधि नीलग्रीव प्राप्त होती है। ये ही वे बीज हैं जिनपर पौराणिक युग में शिव के विषपान और तदनन्तर नीलकण्ठ हो जाने की कथा आधारित है।

अनेक विचित्र कर्मों के कर्त्ता एवं असामान्य आचरणवाले शिव का विषपानरूपी कर्म के लिये उपयुक्त समझा जाना स्वाभाविक था। बा. रामायण(बालकाण्ड 45/18-26), महाभारत(आदिपर्व 18/41-43), अग्नि पु.(3/1-10) तथा भागवत(8/7/18-46) आदि अनेक स्थानों पर

विषपान का प्रसंग वर्णित है।

उपर्युक्त उद्धरणों में शिव के जिस विषपानरूपी विचित्र कर्म का उल्लेख है उसका संकेत ऋग्वेद के एक अस्पष्ट मन्त्र में प्राप्त होता है। इसके उत्तरार्द्ध में कहा गया है कि केशी ने रुद्र के साथ विषपान किया -

वायुरस्मा उपामन्थत् पिनष्टि स्मा कुनन्नमा।
केशी विषस्य पात्रेण यद् रुद्रेणापिबत् सह।। (ऋ. वे. 10/136/7)

(4) रुद्र के कुछ विशिष्ट अभिधान

बाद के साहित्य में रुद्र के लिये प्रयुक्त कुछ अन्य विशेषण भी ऋ. वे. तथा य. वे. में प्राप्त होते हैं। ऋ. वे. के विशेषणों में 'उग्र' तथा 'ईशान' महत्त्वपूर्ण हैं। 'उग्र' विशेषण रुद्र के लिये तीन बार प्रयुक्त हुआ है - (ऋ. वे. 2/33/9, 2/33/11, 10/126/5)।

पुराणादिकों में ईशान या ईश शब्द शिव का नियमित विशेषण है। इसकी परम्परा प्राचीन है और ऋ. वे.(2/33/9) में ही यह रुद्र का एक प्रमुख विशेषण बन चुका था।

ईशानादस्य भुवनस्य भूरेः न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम्।।

रुद्र को **'अस्य भूरेः भुवनस्य ईशानः'** कहकर जगत् के ऊपर रुद्र की प्रभुसत्ता व्यक्त की गयी है।(ऋ. वे. 1/114/1-2)[1] में रुद्र के लिये जो क्षयद्वीर विशेषण प्रयुक्त हुआ है उसका भी सम्भवतः यही भाव है। 'क्षि' धातु ऋ. वे. में प्रायः ऐश्वर्य के अर्थ में प्रयुक्त है(उदाहरणार्थ ऋ. वे. 5/42/11)। अतः इस शब्द का अर्थ है 'मनुष्यों' पर शासन करनेवाला। ऋ. वे. (2/1/6) तथा(5/42/11) में उन्हें 'असुर' अथवा शक्तिशाली भी कहा गया है। इस प्रकार ऋ. वे. में ही रुद्र को परमशक्ति के रूप में देखा गया है।

महादेव शब्द भी रुद्र के उत्कर्ष का वाचक है और उनके लिये सर्वप्रथम अथर्ववेद के गौ सूक्त(9/7/7) में यह विशेषण प्राप्त होता है। यहाँ स्मरणीय है कि विष्णु का वैदिक संहिताओं में इतना गौरव नहीं बढ़ा है कि उन्हें महादेव की उपाधि दी जाय। उनके उत्कर्ष का आरंभ ब्राह्मण ग्रन्थों से होता है। अ. वे. में प्राप्त होनेवाला शिव का एक प्रमुख विशेषण है पशुपति। यह लगभग 10 स्थानों पर उनके लिये स्पष्टरूप से प्रयुक्त हुआ है उदाहरणार्थ -

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम्। (अ. वे. 2/34/1)

इसी प्रकार अ. वे.(5/24/12, 11/2/1 आदि) में रुद्र को पशुओं तथा मनुष्यों का स्वामी माना गया है। अ. वे.(11/2/1) तथा अन्य स्थानों में उन्हें पशुपति के साथ-साथ भूतपति भी कहा गया है। य. वेद(16/17, 28, 40 आदि) में भी पशुपति विशेषण कई बार आया है। रुद्र की भूतपति

---

[1] **इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।** (ऋ. वे. 1/114/1)
मृला नो रुद्रोत नो मयस्कृधि-क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते। (ऋ. वे. 1/114/2)

उपाधि आगे चलकर रुद्र को भूतों तथा प्रेतों का अधिपति बनाने में सहायक सिद्ध हुई।

ऋ. वे.(7/59/12) तथा शुक्ल यजुर्वेद (3/60) में हमें रुद्र का एक विशेषण 'त्र्यम्बक' प्राप्त होता है। उपरोक्त दोनों स्थलों पर हमें वह प्रसिद्ध मन्त्र प्राप्त होता है जिसे बाद में 'महामृत्युञ्जय मंत्र' की संज्ञा मिली। इसी मन्त्र में यह विशेषण आता है।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् .... (ऋ वे. 7/59/12 तथा य. वे 3/60)

शतपथ ब्राह्मण का मत है कि रुद्र की अम्बिका नामक बहन है। उस स्त्री अम्बिका से संबंधित होने के कारण रुद्र को त्र्यम्बक कहते हैं। (श. ब्रा. 2/6/2/9)

किन्तु इस शब्द की यह व्याख्या संतोषजनक नहीं लगती। 'अम्बक' शब्द का एक अर्थ नेत्र भी होता है। अतः धीरे-धीरे रुद्र के उस विशेषण से उनके तीन नेत्र होने की धारणा परवर्ती काल में विकसित हुई। परवर्ती साहित्य में शिव के ये तीन नेत्र सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि बताये गये।

रुद्र के स्वरूप के विभिन्न तत्त्वों की व्याख्या एवं उनमें सामंजस्य करने की भावना ने विद्वानों को भाँति-भाँति की कल्पनाएँ करने के लिये प्रेरित किया। सबसे जटिल समस्या यही है कि परवर्ती साहित्य में इनके व्यक्तित्त्व में घोर और मांगलिक दोनों ही प्रकार के तत्त्व प्राप्त होते हैं। रुद्र (भयानक) और शिव (कल्याणकारी) ये दोनों शब्द ही विरोधी विचारधाराओं के सूचक हैं। एक ओर तो वे संहारक हैं और दूसरी ओर वे आशुतोष भी हैं जो जरासी भक्ति से प्रसन्न होकर अपने भक्तों को सर्वस्व प्रदान करते हैं।

अंग्रेज विद्वान् क्लेटन[1] का मत है कि रुद्र आर्यों के देवता हैं और शिव अनार्यों के। ऋग्वेद के समयतक आर्य अपने धार्मिक विचारों में स्वतंत्र थे। किंतु धीरे-धीरे अनार्यों के संपर्क के कारण उनके देवता आर्य देवमंडल में प्रविष्ट होने लगे। इस प्रक्रिया में अनार्यों के कल्याणकारी देवता शिव एवं आर्यों के संहारक देवता रुद्र का तादात्म्य होने लगा और धीरे-धीरे इस संयुक्त देवता का महत्त्व बढ़ता गया। यजुर्वे. (की वा. सं. 3/61, 3/63 तथा 16/49, 51 इत्यादि) में रुद्र के साथ आया हुआ 'शिव' विशेषण उस समयतक संपन्न 'दोनों के तादात्म्य को सूचित करता है। क्लेटन ने 'शिव' को वैदिकभाषा का शब्द नहीं माना है। उनके अनुसार यह द्रविड़ भाषा की 'से' या 'सेव्' जैसी किसी धातु से बना है जिसका अर्थ है "लाल (या भूरा) होना" और इस प्रकार यह रुद्र के 'बभ्रु' विशेषण का पर्यायवाची है।

क्लेटन का मत सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है। रुद्र के ऋग्वैदिकस्वरूप में ही भीषण तथा सौम्य दोनों ही रूपों का समावेश है (जैसा हम पहले ही देख चुके हैं)।

ग्रीसवोल्ड का यह विचार कि भंयकर एवं विनाशकारी रुद्र से डरकर उनकी चाटुकारी करते हुए

---

[1] ए. सी. क्लेटन, ऋग्वेद एण्ड वैदिक रिलिजन, मद्रास, 1913

वैदिक कवि उन्हें 'मील्हुष्' (मीढ्वान्) या उदार और सौम्य आदि बताते हैं[1], भी उचित नहीं है। वात्या एवं वर्षा आदि से संबंधित किसी भी देवता के चरित्र में ऐसे विरोधी तत्त्वों का होना अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि एक ओर तो जहाँ उसमें झंझावात की प्रचण्डता (विशेषत: शिशिर ऋतु में) तथा तड़ित्पात आदि दु:खदायी तत्त्व रहते हैं वहीं औषधियों तथा धन-धान्यादि की वृद्धि का भी वह कारण है। 'शिव' शब्द रुद्र के लिये ऋग्वेद में ही प्राप्त होता है इससे इस धारणा का पूर्णत: निराकरण हो जाता है कि शिव शब्द द्रविड़ भाषा की 'से' धातु से बाद में गढ़ा जाकर आर्यभाषा में लिया गया।

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः।।

(ऋ. वे. 10/92/9)

उपर्युक्त मंत्र से यह सिद्ध होता है कि रुद्र के शिव या मंगलमय होने की धारणा प्राचीन है और किसी आर्येतर देवता के रुद्र से तादात्म्य का परिणाम नहीं है। साथ ही यह 'शिव' विशेषण रुद्र के लिये बहुश: प्रयुक्त होनेपर भी अथर्ववेदतक अन्य देवों के लिये भी आया है जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह वैदिकभाषा का एक प्राचीन सामान्य विशेषण है और इसका प्रयोग रुद्र के लिये ही सीमित नहीं है।

अथर्ववेद में रुद्र की सामान्यत: वे ही विशेषतायें विकसित हुई हैं जिनका उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है। परन्तु रुद्र का मानवीकरण ऋग्वेद की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। उनके मुख, आँखें, त्वचा, रूप, उदर, जिह्वा, दाँत तथा नासिका आदि का उल्लेख हुआ है (अ. वे. 11/2/5, 6)। रुद्र का बाण मनुष्यों के अंगो तथा हृदय में प्रविष्ट हो जाता है (अ. वे. 6/90/1)। स्तुतिकर्त्ता रुद्र से प्रार्थना करता है कि वे उसके शत्रुओं, तथा राक्षस-पिशाचादिकों का वध करें (अ. वे. 11/2/25, 26 इत्यादि)। अथर्ववेद में रुद्र की ओषधियों का भी उल्लेख किया गया है और साथ ही स्वयं रुद्र का भी ज्वर तथा व्याधिनाश के लिये आवाहन किया गया है (अ. वे. 6/20/2; 6/57/1; 19/10/5)।

कुछ अंशों में अथर्ववेद रुद्र के विषय में महत्त्वपूर्ण संकेत देता है। इसका पंचदश काण्ड व्रात्यकाण्ड नाम से प्रसिद्ध है। इस काण्ड के अनेक सूक्तों में व्रात्य का रुद्र से घनिष्ठ संबंध बताया गया है । प्रथम सूक्त के चौथे तथा पाँचवें मंत्रों में ही कहा गया है कि "व्रात्य बढ़ा, वह महान् हुआ और महादेव बन गया"। "उसने देवों के ऊपर आधिपत्य (ईशा) स्थापित कर लिया और ईशान बन गया" –

सः अवर्धत स महानभवत् स महादेवः अभवत्। (अ. वे. 15/1/4)
स देवानाम् ईशां पर्येत् स ईशानः अभवत्।। (अ. वे. 15/1/5)

सप्तम तथा अष्टम मंत्रों में रुद्र की भाँति व्रात्य को भी नीललोहित बताया गया है। इन रूपों

---

[1] ग्रिसवोल्ड, रिलिजन ऑफ़ दि ऋग्वेद

से वह अप्रिय व्यक्तियों तथा शत्रुओं का वध करता है, ऐसा ब्रह्मवादी कहते है –

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम्। (अ. वे. 15/1/7)
नीलनैवाप्रियं ....ब्रह्मवादिनो वदन्ति।। (अ. वे. 15/1/8)

15 वें काण्ड के पंचम सूक्त में रुद्र का व्रात्य से और भी घनिष्ठ सम्बन्ध बताया गया है। यहाँ रुद्र के विभिन्न रूपों, भव, शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, महादेव तथा ईशान, को व्रात्य का अनुष्ठाता बताया गया है। रुद्र के ये रूप व्रात्य की सभी ओर से रक्षा करते हैं।

व्रात्य शब्द के अर्थ का ठीक–ठीक निश्चय अभीतक नहीं हो सका है।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि व्रात्य एक विशेष प्रकार का परिव्राजक वर्ग था जिनमें ब्रह्मविद्या या वे दार्शनिक सिद्धान्त प्रतिष्ठित थे जिनका बाद में उपनिषदों में विकास हुआ। वे कर्मकाण्ड में ज्यादा आस्थावान न थे। यह भी संभव है कि व्रात्य योग–शास्त्र या ध्यान, समाधि आदि में निपुण थे। वैदिक कर्मकाण्ड से पृथक एवं लौकिकक्षेत्र में पूज्यमान् देव रुद्र को व्रात्यों ने सम्भवतः इष्टदेव के रूप में स्वीकार कर लिया था। यदि यह अनुमान सत्य मान लिया जाय तो हम श्वेताश्वतर उपनिषद् तथा बाद में पाशुपत–दर्शन में जगत् के आदिकारण के रूप में मान्य रुद्र के उत्कर्ष की व्याख्या कर सकते हैं और दूसरी ओर उनके 'योगीश्वरत्व' तथा योग आदि रहस्यमय गूढ़ विद्याओं के अधिष्ठातृत्व की भी।

जो भी हो इतना तो निश्चित है कि अथर्ववेद के समय रुद्र की लोकप्रियता धीरे–धीरे इतनी बढ़ चुकी थी कि केवल उन्हीं के लिये 'महादेव' विशेषण (अ. वे. 9/7/7 इत्यादि) का प्रयोग हुआ है।

त्र्यम्बक–होम कृष्ण तथा शुक्ल यजुर्वेद में राजसूय–यज्ञ से संबंधित कर्मकाण्ड का एक प्रमुख अंग है (तै. सं. 1/8/6, कठ. सं. 9/7, कापि. सं. 8/11, मै. सं. 1/10/4 तथा वा. सं. 3/57, 58 और 61)। इन उद्धरणों में मूषक को रुद्र का पशु, अम्बिका को 'रुद्र की बहन' तथा मनुष्यों की माता तथा रुद्र को कृतिवासा या खाल पहननेवाला बताया गया है। तथा रुद्र को मूजवत् पर्वत के पीछे जाने की प्रार्थना की जाती है।

रुद्र का पशु मूषक परवर्ती देवशास्त्र में गणेश का वाहन बन गया। अंबिकादेवी बाद के पौराणिक युग में गौरी के रूप में शिव की पत्नी बन गयीं, रुद्र का कृतिवासस् विशेषण बाद में गजासुर या अन्धकवध की कथा का आधार बना। कूर्म पुराण (पूर्वभाग अध्याय 30/18) में शिव ने गजासुर को मारकर उसकी खाल ओढ़ना प्रारंभ कर दिया। लिंग पुराण में उन्हें व्याघ्रचर्मधारी भी कहा गया है (पूर्वार्द्ध 92/80)। शिवपुराण में शिव के द्वारा शरभावतार लेकर नृसिंह का वध करके उनकी खाल पहनने का भी उल्लेख है। (शतरुद्रसं. 12/36)

---

[1] 'व्रात्य' शब्द के आध्यात्मिक अर्थ तथा इस काण्ड के मंत्रों की दार्शनिक व्याख्या के लिये देखिये, डॉ. सम्पूर्णानन्द, व्रात्यकाण्ड ऑफ़ अथर्ववेद, मद्रास।

तैत्तिरीय संहिता (1/8/6) में रुद्र के पिनाक का उल्लेख किया गया है। महाकाव्यों तथा पुराणों में यह शिव के धनुष का नाम है। तै. सं. एवं वा. स. (3/61) में रुद्र को अवततधन्वा तथा पिनाकधारी कहा गया है। पुराणों में रुद्र के लिये पिनाकी, पिनाकधृक या पिनाकपाणी विशेषण का आधार उपरोक्त वैदिक संहितायें ही प्रतीत होती हैं।

(5) शतरुद्रियम् और रुद्र

यजुर्वेद का एक पूरा अध्याय ही रुद्र की स्तुति में प्रयुक्त किया गया है। यह 'रुद्राध्याय' यजुर्वेद की अनेकों संहिताओं में थोड़े बहुत अन्तर के साथ उपलब्ध होता है। वा. सं. का 16 वाँ अध्याय, 'रुद्राध्याय' के नाम से विख्यात है।

यजुर्वेद के शतरुद्रियसूक्त (तै. स. 4/5, कठ. सं 17/11, कापि. सं. 27/1, मै. सं. 2/9/14 तथा वा. सं. 16वाँ अध्याय) में हमें रुद्र के तत्कालीन व्यक्तित्व की सम्पूर्ण रूप-रेखा प्राप्त होती है। विष्णु या शिव सहस्त्रनाम जैसे स्तोत्रों की भाँति यहाँ भी रुद्र को सैकड़ों विशेषणों तथा उपाधियों से विभूषित किया गया है। स्थूल अथवा सूक्ष्म, भौतिक अथवा आध्यात्मिक कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो रुद्र से संबंधित न हो और जिसपर रुद्र का आधिपत्य न हो। यद्यपि रुद्र के लिये शिव विशेषण यहाँ कई बार प्राप्त होता है और उन्हें 'मयोभु', 'शंकर' तथा 'मीढुष्टम' भी कहा गया है फिर भी रुद्र के भयानक रूप से भयभीत होकर उनसे अपने कल्याणमयरूप को दिखाने की प्रार्थना की गयी है।

रुद्र को यहाँ अघोर भी कहा गया है (वा. सं. 16/2)। शिव का शायद ही कोई ऐसा प्रमुख विशेषण होगा जिसको शतरुद्रिय में रुद्र से सम्बन्धित न किया गया हो। रुद्र का लौकिकस्वरूप यजुर्वेद के समय अत्यन्त प्रबल था और उन्हें मानव-समाज के क्या उच्च क्या निम्न, सभी प्रकार के वर्गों का स्वामी माना जाता था।

जैसे श्रीमद्भगवद्गीता (अ. 11) में भगवान् कृष्ण के 'विश्व-रूप' का वर्णन है वैसे ही उपरोक्त रुद्रसूक्तों में रुद्रस्वरूपी परमेश्वर के विश्वरूप का वर्णन किया गया है। रुद्र के विश्वरूप के प्रसंग में विद्युत, अग्नि, वायु, सोम, गृत्स, पुलस्ति, भिषक्, सभा, सभापति, धन्वी, सुआयुध, कवची, अश्वपति, वृक्षपति, पशुपति, शिल्पी, रथकार, सूत, कुलाल, निषाद, परिचर, स्तेन आदि-ये सब रुद्र के रूप हैं, ऐसा (रुद्रसूक्त में) कहा गया है। गीता में भगवान् की केवल थोड़ी सी विभूतियाँ कही गयीं हैं जबकि रुद्रसूक्त में उससे कई गुना अधिक विभूतियों का वर्णन किया गया है जो उनसे अधिक व्यापक हैं।

(6) रुद्राः या रुद्र के गण

शतरुद्रिय के प्रथम 53 मंत्रों में रुद्र की विशेषताओं का गुणगान करने के बाद आगे के 13 मन्त्रों में रुद्रगण (या रुद्राः) का वर्णन किया गया है। ये रुद्राः रुद्र के आधिपत्य में रहनेवाले उनके

अनुचर हैं जिनका कार्य मनुष्यों को कष्ट देता है। इन रुद्रों की लगभग वे ही विशेषताएँ बतायी गयीं हैं जो प्राय: रुद्र के लिये बतायी गयीं हैं। इनकी संख्या गणनाहीन है। वे भूमि, समुद्र, अन्तरिक्ष तथा आकाश सभी स्थानों में व्याप्त हैं। कुछ वृक्षों पर रहते हैं तो कुछ भूमि के अन्दर भी विचरण करते हैं। कुछ भूरे, कुछ नीलग्रीव तथा कुछ विलोहित हैं। वे जटायें रखते हैं पर उन्हें ऊपर नहीं बाँधते। नदी, तालाब आदि स्थानों में वे बर्छियाँ तथा धनुषबाण लेकर घूमते रहते हैं। आकाशचारी रुद्रों के बाण हैं वर्षा, अन्तरिक्षचारी के वायु, भूमिचारी के अन्न जिनसे वे व्याधियाँ फैलाते हैं।

उपरोक्त वर्णन से ऐसा स्पष्ट होता है कि ये रुद्रा: आजकल के लोकविश्वास के भूत, प्रेत, ब्रह्मराक्षस आदि के समान सूक्ष्म शरीरधारी जीव हैं। इन रुद्रों को रुद्र के गण कहा गया है। इन गणों (रुद्र की सेना) का उल्लेख अथर्ववेद (11/2/31) में प्राप्त होता है। यजुर्वेद के अन्तर्गत सभी गणों के स्वामी को रुद्र बताया गया है। शतरुद्रिय में ही **'नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च'** (मन्त्र 25) कहकर गण एवं गणपति दोनों की वन्दना की गयी है। वा. सं. (23/19) में जो **"गणानां त्वा गणपति ꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ꣳ हवामहे"** आदि प्रसिद्ध मन्त्र आते हैं वे भी संभवत: रुद्र और उनके गणों के ही बोधक हैं।

रुद्र के इन गणों का बाद के साहित्य में बड़ा विचित्र तथा मनोरंजक वर्णन है। इनमें से कोई बौना, कोई लंबा, कोई कुबड़ा तो कोई मोटा है। किसी का मुख व्याघ्र की भाँति तो किसी का हाथी की तरह है, कोई अजमुख और कोई मेषमुख है (उदाहरणार्थ मत्स्य पुराण 153/530-536)। वहाँ पर विवाहोपरान्त घर आयी हुई पार्वती शिव के इन विचित्र गणों को देखती है और उत्सुकतावश शिव से इनकी संख्या आदि के बारे में पूछती है (153/537)। शिव उत्तर देते हैं कि ये गण करोड़ों की संख्या में हैं, इनकी गणना नहीं हो सकती। सारा संसार इनसे भरा हुआ है। तीर्थों में, सड़कों पर, दानवों के शरीर आदि में सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। इनका आहार भी अनेक प्रकार का है। कोई अग्नि तो कोई जल का फेन, कोई धूम, कोई मधु, कोई रक्त तो कोई वायु खाकर जीवित रहता है। ये इतने विविध कर्म और गुणवाले हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता (मत्स्य पु. 153/538-541)।

वायुपुराण के एक उल्लेख से यह स्पष्टरूप से सिद्ध होता है कि पुराणों में वर्णित रुद्रगण शतरुद्रिय सूक्त में रुद्रा: नाम से विख्यात हैं। दसवें अध्याय (45-62) में एक कथा आती है कि ब्रह्माजी ने एक बार नीललोहित महादेव को सृष्टि करने के लिये कहा। इसपर महादेवजी ने अपने समान गुण और स्वभाववाले अमर मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। ये सभी चर्म धारण किये, हरित केश, क्रूरदृष्टि और कपालधारी थे। इनके कई हाथ, मुख तथा नेत्र थे .... आदि। इस रौद्रसृष्टि को देखकर ब्रह्माजी घबराये और उनसे सौम्य तथा मरणशील सृष्टि करने के लिये कहा। शिव ने कहा, ऐसी प्रजा पैदा करना हमारे वश का नहीं है। यह काम आप ही कीजिये। पर "हमने जो इन नीललोहित और विरूप जीवों को पैदा किया है ये महाबली देवगण भूलोक और अन्तरिक्ष में रुद्र नाम से प्रसिद्ध होकर

यज्ञीय देवों के मध्य परिगणित होंगे एवं शतरुद्र नाम से विख्यात होकर यज्ञ-भाग का भोग करेंगे।"

वायुपुराण(54/25-30) तथा(69/240-256); स्कन्दपुराण, काशीखण्ड(53/8-12); वराहपुराण(अध्याय 21) आदि में भी शिव के इन गणों का विशेष वर्णन है।

वेदों में कहीं पर एक रुद्र तो कहीं पर अनेक रुद्रों की चर्चा की गयी है। इन चर्चाओं से लोगों में भ्रम हो जाता है कि रुद्र एक हैं या अनेक। अगर वेदों में दोनों प्रकार के कथन मिलते हैं तो उनका क्या अभिप्राय है?

यजुर्वेद (16/54) में **"असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्"** (अर्थात् "असंख्य और हजारों रुद्र भूमि के ऊपर हैं") कहा गया है। पुन: निम्नलिखित कथनों पर विचार करें :

...... रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे।। (ऋ. वे. 10/64/8)
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः .... । (ऋ. वे. 7/35/6)
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृलयाति नः .... (ऋ. वे. 10/66/3)
...... रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम्। (ऋ. वे. 7/10/4)

इन मन्त्रांशों में कहा गया है कि एक रुद्र अनेक रुद्रों के साथ रहता है। इन कथनों के आधार पर यह मानना पड़ेगा कि एक रुद्र भिन्न है और अनेक रुद्र उससे भिन्न हैं। श्वेता. उ.(3/2), तै. सं.(1/8/6/1), अथर्वशिरस् उप.(5) में कहा गया है कि **"एको रुद्रो न द्वितीयाय"** अर्थात् रुद्र एक है, दूसरा रुद्र नहीं है। पुन: अथर्ववेद(7/92/1) में कहा गया है कि जो रुद्र अग्नि में, जल में, ओषधि-वनस्पतियों में है और जो सब भुवनों का निर्माण करता है, उस तेजस्वी रुद्र को हमारा नमस्कार हो। पुन: ऋ. वे.(6/49/10) में कहा गया है कि सब भुवनों का रक्षक रुद्र है, वह बड़ा, ज्ञानी, प्रेरक तथा जरारहित है, उसकी हम दिन और रात्रि में प्रशंसा करते हैं। उपरोक्त मन्त्रों से रुद्र की अद्वितीयता प्रतिपादित होती है।

इन विरोधी विचारों में समन्वय का एक रास्ता पहले ही सुझाया जा चुका है जिसमें 'एकरुद्र' का अर्थ परमात्मा, जगत् स्रष्टा तथा संहरता आदि है तथा 'अनेकरुद्र' का अर्थ रुद्रगण है। कई बार इनका आध्यात्मिक अर्थ भी किया जाता है जिसके अनुसार 'एक रुद्र' का अर्थ परमात्मा तथा अनेक रुद्र का आत्मा किया जाता है। आत्मा ईश्वरांश होने के कारण अन्य सभी गुणों में ईश्वर के समकक्ष ही है। जैसे अमरता, सत्स्वरूप, चितस्वरूप और अन्त में मुक्त हो जानेपर उसके समान हो जाना आदि। इसी प्रकार रुद्रगण भी रुद्र के समान ही स्वरूप, आयुध एवं अन्य गुण रखते हैं। वेद के भाष्यकार सायणाचार्य ने भी 'एकरुद्र' का अर्थ परमेश्वर ही माना है(जैसे उनके ऋ. वे. 6/28/7 और अथर्ववेद 1/19/3, 7/92/1 तथा 11/2/3 के भाष्य देखें)। अथर्ववेद(13/4 इत्यादि) में भी रुद्र, महादेव, मृत्यु, अग्नि, वायु, सूर्य, धाता और विधाता आदि को परमात्मा का ही रूप माना गया है।

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ.............।
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः। (अथ. वे. 13/4/3-5)

(7) रुद्र की अष्ट मूर्तियाँ

कौषीतकि ब्राह्मण(6/1-9) एवं शतपथ ब्राह्मण(6/1/3/8-18) में रुद्र के आठ नामों(शर्व, पशुपति, उग्र, अशनि(विद्युत), भव, महादेव तथा ईशान) की उत्पत्ति संबंधी कथाएँ दी गयी हैं। साथ ही इन नामों का प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों से तादात्म्य भी किया गया है। जिन तत्त्वों से जिस नाम का तादात्म्य स्थापित किया गया हैं उनमें पर्याप्त भेद इन दोनों ब्राह्मण ग्रन्थों में पाया जाता है। एक ब्राह्मण के अनुसार -

भवः आपः, शर्वो अग्निः, पशुपतिर्वायुः, उग्रो देव ओषधयः, महान्देव आदित्यः, यद्रुद्रश्चन्द्रमाः, यदीशानो अन्नम्, यदशनिरिन्द्रः। निम्नलिखित तालिका से भेद स्पष्ट हो जायगा।

कौषीतकि ब्रा.		**शतपथ ब्रा.**	
अग्निः	(शर्व)	अग्निः	(रुद्र)
आपः	(भव)	आपः	(शर्व)
ओषधयः	(उग्र)	ओषधयः	(पशुपति)
वायुः	(पशुपति)	वायुः	(उग्र)
अन्नम्	(ईशान)	पर्जन्य	(भव)
इन्द्र	(अशनि)	विद्युत	(अशनि)
चन्द्रमा	(रुद्र)	चन्द्रमा	(महान्देव)
आदित्य	(महान्देव)	आदित्य	(ईशान)

रुद्र के इन नामों की व्युत्पति के बारे में शतपथ ब्राह्मण कर्मकाण्डीय प्रमाण देकर उसके पीछे तर्क की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा करता है।

कौषीतकि के अनुसार रुद्र के रूप होने के कारण आपः, अग्नि तथा वायु आदि सौम्य तत्त्व कभी-कभी भयंकर होकर विनाश कर सकते हैं।

भौतिक जगत् के उक्त आठ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों से रुद्र के तादात्म्य से स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्र का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया था। प्रकृति की प्रत्येक प्रमुख वस्तु उनका ही रूप मानी जाने लगी थी और इस प्रकार उनका व्यक्तित्व महनीय एवं सर्वव्यापी हो गया था। यजुर्वेद(16/8, 13, 29; 31/1 आदि), ऋ. वे.(10/90/1) तथा अथ. वे.(19/6/1) आदि में उनके विशेषण 'सहस्राक्ष' तथा 'सहस्रपात्' उन्हें सृष्टि के आदि कारण के रूप में स्वीकार करने की प्रेरणा देते हैं।

रुद्र का इन तत्त्वों से संबंध पुराणों में भी कुछ परिवर्तन के साथ पाया जाता है। उपरोक्त सूची से ओषधि, अन्न और अशनि इन तीन असंगत तत्त्वों को हटाकर पुराणों ने आकाश, पृथ्वी तथा दीक्षित यजमान को रुद्र की अष्ट मूर्तियों में परिगणित कर दिया। परवर्ती साहित्य में शिव की आठ मूर्तियाँ निम्न हैं- पञ्चमहाभूत(अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश), सूर्य, चन्द्रमा, तथा यजमान या शिवभक्त।

(8) दक्ष-यज्ञविध्वंस

तै. सं.(2/6/8) में दक्ष-यज्ञविध्वंस की कथा का प्राचीनतर रूप प्राप्त होता है। इसमें कहा गया है कि देवों ने एक बार रुद्र को यज्ञ से बहिष्कृत कर दिया। इसपर रुद्र ने क्रुद्ध होकर यज्ञ को बाण से विद्ध कर डाला। तब सभी देवता रुद्र के पास पहुँचे और उनसे यज्ञ को सकुशल कर देने की प्रार्थना की। तै. सं.(3/2/4) में रुद्र को मखहत् कहा गया है(**"नमो रुद्राय मखघ्ने"**)।

दक्ष-यज्ञविध्वंस की कथा के अन्त में रुद्र के लिये देवगण जो भाग निर्धारित करते हैं वह यज्ञ से बची हुई उच्छिष्ट सामग्री होती है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी रुद्र को यज्ञोच्छिष्ट ही अर्पित किये जाने का समर्थन है। इसका उल्लेख ऐतरेय ब्रा. में चर्चित नाभानेदिष्ठ की कथा में होती है(ऐ. ब्रा. 5/2/9)। यह कथा थोड़े बहुत अन्तर के साथ शिवपुराण(शतरुद्रस. अ. 29) में भी प्राप्त होती है। तै. स. (3/1/9) में भी यह कथा किंचित् भिन्न रूप से आती है। भागवत(9/4/1-11) में भी यह कथा थोड़े भेद से प्राप्त होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दक्ष-यज्ञविध्वंस की कथा का स्रोत भी वैदिक संहितायें हैं।

(9) रुद्र द्वारा त्रिपुरासुर-विनाश

पुराणों में तथा महाकाव्यों में रुद्र का त्रिपुरान्तक या त्रिपुरारि विशेषण अत्यन्त सामान्य है। यह विशेषण उन्हें असुरों की तीन पुरियों, जो क्रमशः लौह, रजत तथा स्वर्ण से बनीं थीं, को नष्ट करने पर मिला है। इस कथा का प्रारंभिक रूप अनेक ब्राह्मणों तथा कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं में प्राप्त होता है। विशेषतः तै. सं.(6/2/3), मै. स.(3/8/1), कठसं.(24/10), कापि. सं.(38/3), श. ब्रा. (3/4/4/3-20) तथा ऐ. ब्रा.(1/4/6/8) में यह कथा सोमयाग से संबंधित उपसद् नामक कृत्य-विशेष की व्याख्या में कही गयी है।

ऐ. ब्रा. तथा श. ब्रा. में इस कथा का प्राचीनतमरूप प्राप्त होता है। यहाँ कहा गया है कि एक बार असुरों ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा आकाश में तीन दुर्ग बनाये जो क्रमशः लोहे, चाँदी तथा सोने के थे ....देवों ने उपसदों का सहारा लिया ....प्रथम उपसद से उन्होंने उनको पृथ्वी के दुर्ग से भगा दिया, द्वितीय के द्वारा अन्तरिक्ष से और तृतीय के द्वारा आकाश से ....। उपसदों ने देवों के लिये बाण का काम किया। अग्नि उस बाण की नोक थी, सोम फाल (शल्य), विष्णु शलाका एवं वरुण पत्र। घी से उन्होंने धनुष का काम लिया ....(ऐ. ब्रा. 1/4/6/8)।

ऐ. ब्रा. तथा श. ब्रा. में इस प्रसंग में रुद्र का कोई उल्लेख नहीं है। इसका कारण यह है कि इनमें उपसदों की केवल कर्मकाण्डीय व्याख्या दी हुई है, उसका कथात्मक रूप अभी विकसित नहीं हुआ है। तै. सं. में यह प्रसंग छोटी सी कथा का रूप धारण करता है। ऐ. ब्रा. एवं श. ब्रा. का बाण एवं धनुष प्रतीकात्मक हैं। किन्तु तै. सं. में रुद्र असुरों के इन दुर्गों के प्रमुख नाशक के रूप में उपस्थित होते हैं। देवों से 'पशुपति' होने का वर प्राप्त करके रुद्र अग्नि-विष्णु-सोमात्मक उपसद-बाण छोड़ते

हैं(तै. सं. 6/2/3)। तै. सं. इन पुरों से केवल असुरों के भगा दिये जाने का उल्लेख करती है, किन्तु मै. सं. का कथन है कि रुद्र के बाण से उन तीनों दुर्गों में आग लग गयी और वे नष्ट हो गये(मै. सं. 3/8/1)। महाभारत के अनुशासनपर्व(160/25-31) में त्रिपुरदाह की कथा जो पायी जाती है वह अधिकांशतः तैत्तिरीय तथा मैत्रायणी सं. में प्राप्त होती है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ रुद्र के बाण का पुंख यम बनते हैं, वेद धनुष और गायत्री प्रत्यञ्चा तथा सारथी ब्रह्मा। महाभारत के कर्णपर्व के दो(33, 34) अध्यायों में प्राप्त होनेवाली त्रिपुरदाह की कथा काफी विकसित एवं परिवर्धित है।

सर्वाधिक विस्तार से यह कथा मत्स्य पु. में (129 वें अध्याय से लेकर 140 वें अध्यायतक, पूरे 12 अध्याय तथा 626 श्लोकों में) खण्डकाव्य के रूप में पायी जाती है। श्रीमद्भागवत(7/10/51-70) में वर्णित त्रिपुरदाह की कथा में महाभारत की अपेक्षा कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है, इतना अन्तर यहाँ अवश्य है कि विष्णु भगवान् एक गौ का रूप धारण करके ब्रह्माजी को बछड़ा बनाकर, दैत्यों को अपनी माया से विमोहित करते हुए त्रिपुर में मय द्वारा निर्मित अमृतयुक्त बावड़ी का पान कर जाते हैं जिससे असुर असहाय हो जाते हैं और शिव का कार्य आसान हो जाता है। शिवपुराण आदि में भी यह कथा किंचित भेद से प्राप्त होती है।

(10) शिव का त्रिशूल

वैदिक ग्रन्थों में शिव का प्रमुख अस्त्र धनुष है किन्तु बाद में उसका स्थान त्रिशूल ने ले लिया। यद्यपि बाद के ग्रन्थों में भी पिनाक एवं पाशुपतास्त्र की चर्चा की गयी है और शिव को धनुष विद्या का आचार्य माना गया है(रामायण बा. का. 55/12-18 में विश्वामित्र तथा महा. वन. प. 40/8-21 में अर्जुन शिव की कृपा से धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करते हैं), किन्तु उनका सर्वाधिक प्रिय अस्त्र त्रिशूल ही है। शिव के इस त्रिशूल का बीज तै. सं.(5/5/6) में है। यहाँ कहा गया है कि अग्नि ही रुद्र है, उसके तीन शूल हैं ....।

(11) शिवसंबंधी अन्य कथाएँ

रुद्र के संबंध में मदन-दहन की कथा का बीज वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से नहीं मिलता। इसी प्रकार शिव के द्वारा गंगा-धारण की कथा है। ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्र को उत्तर दिशा की ओर रहनेवाला तथा शतरुद्रिय या यजुर्वेद(16/3, 4) में पर्वतों पर रहनेवाला बताया गया है। पुराणों में कैलास पर्वत ही उनका विशेष निवास स्थान माना गया है जहाँ से गंगा नदी निकलती है। मात्र इतना आधार ही गंगा का शिव से संबंध बताता है।

मत्स्यपु.(अ. 179), कूर्मपुराण (पू. अध्याय 15) तथा शिवपुराण (रुद्र. स. युद्धरदण्ड अ. 44-49) आदि में अन्धकासुर के दलन का वर्णन है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह अन्धक वैदिक अर्धक ही है। अ. वे.(11/2/7) में रुद्र को अर्धकघाती कहा गया है। इसी का पौराणिक रूप अन्धक या अन्तक है।

वैदिक साहित्य में सर्वत्र रुद्रों के एकादश होने का उल्लेख किया गया है (उदाहरण के लिये ऐ. ब्रा. 1/2/4), किन्तु कहीं भी उनके नामों का उल्लेख नहीं हुआ है। श. ब्रा. (11/6/3/7) ने स्वेच्छा से दस प्राणों एवं आत्मा को एकादश रुद्र घोषित किया है। वायुपु. (25/21) में भी प्राणों को रुद्र कहा गया है। गीता (10/23) में भगवान कृष्ण कहते हैं कि "मैं रुद्रों" मैं शंकर हूँ इससे प्रतीत होता है कि महाभारत में 11 रुद्र अलग-अलग माने जाते थे और शंकर या शिव उनमें से एक थे। किन्तु उनको शेष दस का नायक समझा जाता था। विष्णु पु. (1/7/12-14) में भी एकादश रुद्र एक ही शिव के विभिन्न रूप प्रतीत होते हैं। मत्स्य पु. (171/35-40) में 11 रुद्रों के साथ शिव को जोड़कर 12 रुद्र बताये गये हैं। जहाँ मत्स्यपु. का उपरोक्त उद्धरण 11 अथवा 12 रुद्रों को मानता है वहीं इसी पुराण में अन्यत्र (5/29-32) कहा गया है कि रुद्रों की संख्या 84 करोड़ है जिनमें 11 रुद्र प्रधान अथवा गणेश्वर हैं। परन्तु गणेश्वर रुद्रों के नामों की सूची तथा उपरोक्त उद्धरण के 11 नामों की सूची में पर्याप्त अन्तर है। भागवतपु. (6/6/17-18) में भी रुद्रों की संख्या करोड़ों मानी गयी है जिनमें 11 प्रमुख हैं। पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड 6/29-32) में भी इसी तरह की बात कही गयी है।

एकादश रुद्रों के नामों का उल्लेख वेदों में न होते हुए भी बाद के साहित्य में दिये गये उनके नाम वेदों में बिखरे हुए पाये जाते हैं। उनमें से अधिकांश रुद्र के प्राचीन अथवा नवीन विशेषणमात्र हैं। भव, भीम, उग्र, महान् (देवः), बहुरूप (**स्थिरेभिरंगैः पुरुरूप उग्रो.....**, ऋ. वे. 2/33/9), ईश्वर (या ईशान), शंभु, कपर्दी एवं त्र्यम्बक रुद्र के वैदिक विशेषण हैं तथा विरुपाक्ष, पिनाकी, हर तथा कपाली आदि पौराणिक।

(12) रुद्रदेव परमतत्त्व के रूप में

अथर्ववेद में कहा गया है 'अग्नि, वायु, विद्युत, सूर्य आदि प्रकाशवाले समूह में जो रुद्र पुरुषरूप से प्रविष्ट हुआ है तथा जो जल, चन्द्रमा, नक्षत्रादिकों में व्यापक है, वही प्राणियों के हृदय, कण्ठ और चक्षु में तथा वनस्पतियों के अन्तर्गत अन्न, घास आदि में स्थित है। इन नाम-रूपात्मक समस्त चराचर को उत्पन्न करके पालन करने तथा अन्तकाल में इनका संहार करने में जो समर्थ है उस अद्वितीय व्यापक रुद्र के लिये नमस्कार है।'

यो अग्नौ रुद्रो यो अपस्व-
न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृषे
तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये। (अथर्ववेद 7/87/1)

इसी प्रकार अथर्ववेद (13/4/3-5) में जिसका उद्धरण पहले ही आ चुका है, कहा गया है कि जो रुद्र हैं, वहीं महादेव हैं, वही अग्नि व सूर्य हैं। अर्थात् विभिन्न देव एक ही सत्ता रुद्रदेव की अभिव्यक्तियाँ हैं। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में कहा गया है कि-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋ. वे. 1/164/46 तथा अ. वे. 9/10/28)

इस मन्त्र में 'अग्नि' शब्द दो बार आया है, एक बार अग्नि देवता के लिये और दूसरी बार रुद्र के लिये। इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि जो एक रुद्र है उसे ही बहुत प्रकार से मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करते हुए इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, वायु, यम और उत्तम प्रकाशयुक्त, उदय-अस्त रूप से गमन करने वाले, सूर्यरूप पक्षी इत्यादि नामों से पुकारते हैं।

अथर्ववेद (15/1/4, 5) में, जिसका उद्धरण पहले ही आ चुका है, बताया गया है कि 'व्रात्य' (योगियों एवं ज्ञानियों के उपास्यदेव) ही महादेव एवं ईशान बन गया और सभी देवताओं पर आधिपत्य जमा लिया। अथर्ववेद (9/7/7) में भी रुद्र के लिये महादेव शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार यजुर्वेद (16/9, 53) में उन्हें ईशान एवं भगवान् कहा गया है।

ऋ. वे. में कहा गया है-

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ।
बृहन्तमृष्वमजरं..................................कविनेषितासः।। (ऋ. वे. 6/49/10)

भावार्थ यह है कि जो सब भुवनों का रक्षक रुद्र है, वह बड़ा ज्ञानी, प्रेरक, तथा जरारहित है, उसकी हम दिन में तथा रात्रि में प्रशंसा करते हैं।

उपरोक्त उद्धरणों पर अगर हम विचार करें तो रुद्रदेव या शिव परमतत्त्व सिद्ध होते हैं। इनके दो रूप-उग्र एवं सौम्य हैं। इसी प्रकार वे सगुण-साकार एवं निर्गुण-निराकार भी हैं।

यजुर्वेद में एक स्थल पर कहा गया है-

पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च।। (16/28)

यह मन्त्र का उत्तरार्ध भाग है जिसमें भगवान् शिव को पशुपति, नीलकण्ठ एवं श्वेतकण्ठ होने की बात कही गयी है। इस मन्त्र में कई लोग भगवान् शिव के अर्धनारीस्वरूप की झलक पाते हैं। भगवान् शिव नीलकण्ठी हैं और उमा श्वेतकण्ठी। इसी कारण उक्त प्रार्थना में एक साथ ही भगवान् शिव के नीलकण्ठ एवं श्वेतकण्ठ होने की बात कही गयी है।

अगर हम इस व्याख्या को स्वीकार कर लेते हैं तो भगवान् शिव के साकार विग्रह में नर एवं नारी दोनों ही तत्त्व विद्यमान हैं। अर्थात् शिव-शक्ति की एकता तथा उनके सम्मिलित विग्रह, जिसका विकास बाद के साहित्य में होता है, का संकेत वैदिक संहिताओं में भी उपलब्ध है।

शिव ही मोक्षदाता हैं इसीलिये ऋ. वे.(7/59/12) तथा यजुर्वेद(3/60) में आये हुए मन्त्र (जिसे कालान्तर में महामृत्युंजय मन्त्र की संज्ञा प्राप्त हुई) में 'त्र्यम्बक'(भगवान् शिव) से मोक्षप्राप्ति के लिये प्रार्थना की गयी है। मन्त्र इस प्रकार है-

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

(ऋ. वे. 7/59/12 तथा य. वे. 3/60)

इसी प्रकार यजुर्वेद के 16 वें अध्याय में कहा गया है–

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।। (य. वे. 16/41)

भावार्थ है– कल्याण (मोक्ष) एवं सुख के मूल स्रोत भगवान् शिव को नमस्कार है। कल्याण (मोक्ष) के विस्तार करनेवाले तथा सुख के विस्तार करनेवाले भगवान् शिव को नमस्कार है। मंगलस्वरूप और मंगलमयता की सीमा भगवान् शिव को नमस्कार है। दूसरे शब्दों में मोक्ष, सुख एवं लौकिक सुख प्रदान करनेवाले भगवान् शिव को नमस्कार है।

उपरोक्त मन्त्र के अतिरिक्त भी यजुर्वेद में ऐसे मन्त्र हैं (जैसे 16/51 आदि) जिनसे यह स्पष्ट होता है कि भगवान् शिव भोग एवं मोक्ष के दाता, कर्मों के फलदाता तथा कल्याणकर्त्ता हैं।

उपसंहार

प्रत्येक वेदों में कई मण्डल (अध्याय) होते हैं तथा उन मंडलों में अनेकों सूक्त होते हैं तथा प्रत्येक सूक्त में अनेक श्लोक पाये जाते हैं। प्रत्येक सूक्त के प्रारंभ में सूक्त के ऋषि, देवता तथा छंद का उल्लेख करने के बाद ही मन्त्रों या श्लोकों का वर्णन किया जाता है। कुछ सूक्तों में किसी एक देवता का वर्णन न होकर अनेक देवताओं का साथ-साथ वर्णन होता है।

ऋग्वेद में केवल 3 सूक्त–प्रथम मण्डल का 114 वाँ, द्वितीय मण्डल का 33 वाँ तथा सप्तम मण्डल का 46 वाँ सूक्त–पूर्णतः रुद्र देवता के विषय में हैं। इनके अतिरिक्त अन्य देवताओं के साथ इनका उल्लेख पचासों बार आता है। ऋग्वेद में रुद्र का स्थान अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि की तुलना में बहुत ही कम है परन्तु यदि रुद्र को अग्नि स्वीकार कर लें (जैसा कि हम पहले यह दिखाने का प्रयास कर चुके हैं) तो ऋ. वे. के प्रमुख देवता अग्नि होने के कारण रुद्र को भी उसका प्रमुख देवता स्वीकार किया जा सकता है। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में रुद्र का स्थान बहुत ही परिवर्द्धित एवं महत्त्वपूर्ण है। यजुर्वेद का एक पूरा अध्याय ही इनकी स्तुति में प्रयुक्त किया गया है। यह 'रुद्राध्याय' यजुर्वेद की अनेक संहिताओं में थोड़े-बहुत अन्तर के साथ उपलब्ध होता है। वाजसनेयी संहिता का 16 वाँ अध्याय 'रुद्राध्याय' के नाम से विख्यात है। अथर्ववेद के 11 वें काण्ड के द्वितीय सूक्त में रुद्रदेव की विस्तृत स्तुति की गयी है।

वेदों में रुद्र के दोनों रूपों–क्रूर एवं सौम्य, प्रलयकारी एवं कल्याणकारी–का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार उनके सगुण-साकाररूप का भी वर्णन मिलता है। आजकल हमें शिवसंबन्धी जितने विशेषण एवं कथाएँ प्राप्त होती हैं उनमें से अनेक का मूल वेदों में पाया जाता है। सूत्र रूप में जो

विशेषण या कथाएँ वेदों में नहीं हैं, जरुरी नहीं कि वे वैदिक नहीं हैं। हो सकता है कि वेदों की प्राचीन लुप्त शाखाओं में उनका वर्णन हो।

ऋग्वेद में शिव या रुद्र के सगुणरूप का वर्णन है जिसमें कहा गया है कि वे गौरवर्ण के तेजस्वी युवक हैं। उनका शरीर बलिष्ठ है, होठ अत्यन्त सुन्दर हैं, उनके मस्तक पर बालों का एक जटा समूह है जिसके कारण वे कपर्दी कहलाते हैं। उनका रंग भूरा तथा आकृति दैदीप्यमान है। वे नानारूप धारण करनेवाले(पुरुरूपः) हैं। यजुर्वेद के रुद्राध्याय एवं अथर्ववेद के रुद्रसूक्त में उनके सगुण स्वरूप का अधिक विशद वर्णन है। रुद्र के अनेक अंगों के वर्णन के साथ-साथ उनके सहस्त्र नेत्र होने(सहस्त्राक्ष) तथा उनकी गर्दन का रंग नीला(नीलग्रीव) तथा कण्ठ उज्जवल(शितिकण्ठ) होने का भी वर्णन है।

रुद्राध्याय में उन्हें दुनियाँ के तमाम विशेषणों से युक्त माना गया है। वहाँपर उन्हें धनुष-बाण-धारी(जिनके धनुष का नाम पिनाक है) बज्रधारी, खड्गधारी, चर्मधारी(कृति वसानः) आदि माना गया है। रुद्र को अत्यन्त बलशाली तथा तरुण माना गया है तथा उनका तारुण्य सदा टिकनेवाला बताया गया है। अर्थात् उन्हें चिरयुवा(जरारहित) के रूप में माना गया है।

रुद्र को मरुतों का पिता भी माना गया है। ऋ. वे.(7/59/12) एवं शुक्ल यजुर्वेद (3/60) में उन्हें त्र्यम्बक भी कहा गया है। रुद्राध्याय में रुद्र के लिये भव, शर्व, पशुपति, उग्र, भीम शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ प्रत्येक दशा में वर्त्तमान प्राणियों के ऊपर उनका अधिकार भी बताया गया है। विश्व में ऐसा कोई स्थान नहीं है, चाहे स्वर्ग, चाहे अन्तरिक्ष, चाहे भूतल या भूतल से नीचे, जहाँ भगवान् रुद्र का आधिपत्य न हो । रुद्र को जगत् के समग्र पदार्थो का स्वामी कहा गया है।

रुद्र अग्निरूप या अग्नि के प्रतीक हैं। रुद्र के लिंग की पूजा प्रचलित होने के संदर्भ में अनेक पुराणों में यह कथा आती है कि विष्णु एवं ब्रह्मा में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद छिड़ जाने पर उनके मध्य अग्नि का एक विशाल स्तंभ आकर खड़ा हो गया जो कालान्तर में तेजोलिंगरूप(जो शिव की अष्टमूर्तियों में से माना गया है तथा जिसका मन्दिर अरुणाचल में है) में पूजित हुआ। रुद्र के अग्निमयरूप को पुराणों ने इस घटना के माध्यम से समझाया है।

अग्नि शिखा ऊपर उठती है अतः रुद्र के उर्ध्वलिंग की कल्पना की गयी है। अग्नि को वेदी पर जलाते हैं। इसी कारण शिव जलधारी के बीच रखे जाते हैं। अग्नि में घृत की आहुति दी जाती है इसलिये शिव के ऊपर जल से अभिषेक किया जाता है। शिव-भक्तों के लिये भस्म-धारण करने की प्रथा की भी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। उपरोक्त व्याख्या के पोषक वैदिक प्रमाणों पर ध्यान दिया जा सकता है जिसमें रुद्र को अग्नि से अभिन्न माना गया है जैसे ऋ. वे.(2/1/6), अथर्व वे.(7/87/1) श. ब्रा.(3/1/3) आदि। पुनः रुद्र की आठमूर्तियों में रुद्र को 'अग्नि', शर्व को 'जल' रूप .... माना गया है। शत्पथ ब्राह्मण(1/7/3/8) में रुद्र की अष्टमूर्तियों के नाम वस्तुतः अग्नि

के ही नाम हैं। यजुर्वेद (39/8) में भी अग्नि, अशनि, पशुपति, भव, शर्व, ईशान, महादेव तथा उग्र को एक ही देवता के पृथक-पृथक नाम कहे गये हैं।

रुद्र को भयानक बताने के साथ-साथ उन्हें शिव भी बताया गया है। वह अपने भक्तगणों को विपत्तियों से बचाता है, उनका मंगल करता है। यहाँतक कि वह मोक्ष भी प्रदान करता है। रुद्र के रोगनिवारण की शक्ति का अनेक बार उल्लेख मिलता है। उनके पास हजारों औषधियाँ हैं जिनसे वे ज्वर, विष आदि का निवारण करते हैं। वैद्यों में उन्हें श्रेष्ठ वैद्य होने के कारण वैद्यनाथ भी कहते हैं। यही कारण है कि वैदिक परम्परा का अनुसरण करते हुए आज भी रोगादि कष्टों के निवारण हेतु शिव की उपासना, या शिवसंबंधी अनुष्ठान का उपयोग किया जाता है, जिसमें महामृत्युंजय तथा सोमवार व्रत आदि प्रसिद्ध हैं।

वस्तुतः अग्नि के दो रूप है-घोरातनु और अघोरातनु। अपने भयंकर घोररूप से वह संसार का संहार करने में समर्थ होता है। परन्तु अघोररूप में वही संसार के पालन में भी समर्थ है। यदि अग्नि का इस संसार से लोप हो जाय तो एक क्षण भी जीवन संभव नहीं है। अतः उग्ररूप के जो रुद्रदेव हैं वे ही मंगलसाधन के कारण शिव हैं जो रुद्र है, वही शिव है। इन दोनों की अभिन्नता परवर्ती वैदिक साहित्य में स्पष्टरूप से प्रतिपादित है। इस एकता का सूत्र हमें ऋ. वे. (2/33/7 तथा 10/92/9) में ही मिल जाता है।

अन्त में इतना कहा जा सकता है कि ऋ. वे. में रुद्र को परमशक्ति के रूप में देखा गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि रुद्र अग्नि में हैं, जल में हैं, औषधियों एवं वनस्पतियों में हैं तथा समस्त भूत उन्होंने ही रचे हैं (7/87/1)। यह मन्त्र श्वेताश्वतर (2/17) और अथर्वशिरस् उपनिषद् में भी मिलता है किन्तु श्वेताश्वतर में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया गया है। उन्हें अथर्ववेद में भूतपति एवं पशुपति (11/2/1) कहा गया है। इन श्लोकों से भी रुद्र जगत् के स्वामी सिद्ध होते हैं।

रुद्र को महादेव कहा गया है। महादेव उपाधि विष्णु को वैदिक संहिताओं में नहीं मिली है। विष्णु के महत्त्व में वृद्धि की शुरुआत ब्राह्मण ग्रन्थों से होती है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक ऋचाओं में रुद्र को ही सृष्टिकर्त्ता, संहारकर्त्ता, पालनकर्त्ता एवं परमशक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। उपनिषदों के आनेतक शिव को और ज्यादा स्पष्टरूप से जगत् का सृष्टि, पालन एवं संहारकर्त्ता स्वीकार किया जाने लगा और उसे ही ब्रह्म तथा जगत् का मूलकारण स्वीकारा जाने लगा।

(प्रस्तुत निबंध मुख्यरूप से नाग प्रकाशक, दिल्ली द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद संहिता (1990), अथर्ववेद संहिता (1994) तथा यजुर्वेद संहिता (1997) तथा भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली द्वारा 1982 में प्रकाशित तथा डॉ. गया चरण त्रिपाठी द्वारा लिखित 'वैदिक देवता' पर आधारित है।)

* * *

उपनिषदों में शिवतत्त्व – स्वरूप एवं महत्त्व

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चार प्रकार के पुरूषार्थों में परम निःश्रेयस मोक्ष ही मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है। चौरासी लाख योनियों में बार - बार जन्म - मरण की प्राप्तिरूप घोर - संसार से पार होने के लिये मनुष्य को परमशान्ति - रूप मोक्ष की प्राप्ति के लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये। परम्परा से मोक्षसाधन हेतु उपनिषदों का अध्ययन आवश्यक माना गया है।

वेद के चार भागों(संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्) में केवल उपनिषदों में ही "ज्ञान' का प्रतिपादन किया गया है। अन्य(संहिता आदि) भागों में मुख्यतः कर्म, उपासना आदि का विवेचन किया गया है। अतः उपनिषद् - विद्या अन्य विद्याओं की अपेक्षा प्रधानतम एवं गौरवमयी है। इसी विद्या को लक्ष्य करके कहा जाता है कि **"सा विद्या या विमुक्तये"** (वही वास्तविक विद्या है, जो मोक्ष दिलाने में सहायक हो)।

गीता(10/32) में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि "मैं विद्याओं में अध्यात्मविद्या हूँ" (**अध्यात्मविद्या विद्यानाम्**)। श्रुतियों में उपनिषदों को मोक्षदायिनी विद्या, अध्यात्मविद्या तथा पराविद्या आदि कहा गया है। यही विद्या सब अनर्थों के मूलभूत संसार की निवृत्ति करती हुई परमानन्दरूप मोक्ष की प्राप्ति का मुख्य कारण बतायी गयी है। इसीलिये इसे सबसे श्रेष्ठ कहा गया है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से "जो समस्त अनर्थों को उत्पन्न करनेवाले संसार का नाश करती, संसार की कारणभूत अविद्या को शिथिल करती तथा ब्रह्म की प्राप्ति कराती है, उसे उपनिषद् कहते हैं।" इसका दूसरा नाम वेदान्त भी है। यह वेदों का अन्तिम भाग है इसलिये यह वेदान्त है। अथवा वेद का सिद्धांत चरमरूप में उपनिषदों में ही वर्णित है इस कारण इसे वेदान्त नाम दिया गया है।

सनातन हिन्दूधर्म के सिद्धांत - प्रतिपादक प्रमुख ग्रन्थों में(जिन्हें प्रस्थान त्रयी कहते हैं) गीता, ब्रह्मसूत्र तथा उपनिषद् आते हैं। वास्तव में उपनिषदों के सिद्धांतों का ही निरूपण गीता एवं ब्रह्मसूत्र में हुआ है। कई बार गीता को भी गीतोपनिषद् कहा जाता है। वेदान्त के सभी आचार्यों ने अपने - अपने भाष्य इन तीनों पर लिखे हैं।

उपनिषदों को यद्यपि वेदों का अन्तिम भाग माना जाता है फिर भी वर्तमान में उपलब्ध सभी उपनिषदों को वेदों का भाग नहीं माना जाता। वर्तमान में पायी जानेवाली उपनिषदों की संख्या 225 से ऊपर हो सकती है जिनमें से बहुत सी अर्वाचीन हैं। उदाहरण के लिये 'अल्लोपनिषद्' जिसमें 'अल्लाह' आदि का उल्लेख है जो निश्चितरूप से अवैदिक हैं। प्राचीन आचार्यों ने जिनपर भाष्य लिखा है वे संख्या में अत्यल्प हैं(मात्र 11 - 13)। यद्यपि ये उपनिषदें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन इनके अलावा भी अन्य उपनिषदें हैं जो वैदिक मानी जाती हैं। इस लेख में हम मुख्य - मुख्य उपनिषदों को जिन्हें वैदिक माना जाता है उनके आधार पर ही शिव - स्वरूप पर विचार करेंगे। वैसे तो प्रमुख उपनिषदों की संख्या 108 मानी जाती है परन्तु इनमें से बहुत सी उपनिषदें बाद की हैं और उनमें साम्प्रदायिक बातें भी हैं।

R
18.3/101.1

गुरुकुल पुस्तकालय

उपनिषदों में वैदिक संहिताओं के मन्त्रों की आध्यात्मिक एवं तात्त्विक व्याख्या के साथ-साथ उनका विस्तार भी किया गया है। संहिताओं के बहुत से मन्त्र उपनिषदों में यथावत् पाये जाते हैं तथा कुछ थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ। उनमें कुछ नये मन्त्र भी पाये जाते हैं। कुछ उपनिषदों (यथा 'ईशोपनिषद्') के तो सभी मन्त्र वेदों से ही लिये गये हैं।

उपनिषदों में रुद्र-शिव संबन्धी विचारों ने अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त कर लिया है। रुद्र की प्रधानता का परिचय हमें छान्दोग्य(3/7/4), वृहदारण्यक(3/9/4), मैत्रेयी(6/5 आदि) महानारायणोपनिषद्(12/2 आदि), नृसिहोंत्तरतापिनि(3), श्वेताश्वतर(3/2-5, 8, 11-12, 17; 4/1, 10, 11, 14-17; 5/14 तथा 6/7 आदि) एवं केन(4/1-3) आदि प्राचीन उपनिषदों में प्राप्त होता है। बाद की उपनिषदों जैसे अथर्वशिरस्(3/5 आदि), रुद्रहृदयोपनिषद् (4-16), नीलरुद्रोपनिषद्, गर्भोपनिषद्, कैवल्योपनिषद्, जाबाल्युपनिषद् एवं रुद्रोपनिषद् आदि में भी शिव के उत्कृष्टस्वरूप की झलक मिलती है।

114630

श्वेताश्वतर-उपनिषद् पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक कर्मकाण्ड से अलग होने के कारण, कर्मकाण्ड से स्वतंत्र तथा अंशतः विरोधीरूप में विकसित होनेवाली दार्शनिक विचारधारा में, रुद्र को जगत् की सर्वोत्कृष्ट शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। उपनिषदों की इस प्राचीन विचारधारा में सांख्य, योग तथा वेदान्त, सभी के तत्त्व घुले-मिले हैं। जगत् की कारण-शक्ति के रूप में त्रिगुणमयी माया की धारणा भी उभरकर उपनिषदों में आयी है। अतः वहाँ रुद्र को माया का अधिपति तथा संसार का सर्वतोभावेन ईश घोषित कर दिया गया है।

श्वेताश्वतर उ.(3/2) में कहा गया है कि एकमात्र रुद्र ही इस संसार को अपनी शक्ति से संचालित करते हैं। वे संसार के प्राणियों की सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं तथा अन्त में संहार करते हैं। वे सबके अन्दर व्याप्त हैं। यही नहीं, वे सम्पूर्ण देवों की भी उत्पत्ति एवं अस्तित्व के हेतु हैं। उन्होंने ही हिरण्यगर्भरूपी प्रजापति को आदि में उत्पन्न किया था(श्वेता. उ. 3/4)।

श्वेता.(3/7) में कहा गया है कि ईश(रुद्र) महान् एवं उत्कृष्ट परब्रह्म हैं, उन्हें जान लेने पर मनुष्य अमर हो जाता है। पुनः श्वेता(3/11) में कहा गया है कि उनके सब ओर मुख, सिर एवं ग्रीवा हैं, वे सम्पूर्ण प्राणियों की हृदयगुहा में वर्त्तमान हैं, वे सर्वगत तथा सर्वव्यापी हैं। श्वेता.(3/14, 15) में ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त श्वेता.(10/90/1-2) के दो मन्त्र(**सहस्रशीर्षा, तथा पुरुष एवेदं**) उद्धृत करके ऋ. वे. के यज्ञ-पुरुष से शिव का तादात्म्य किया गया है। श्वे.(4/10) में कहा गया है कि महेश्वर-रुद्र माया के अधिपति हैं, **"मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।"** और वहीं पर आगे श्वेता.(4/16) में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि "सब भूतों में सूक्ष्मरूप से प्रविष्ट और संसार को परिव्याप्त कर लेनेवाले शिव को जानकर मनुष्य सब बन्धनों से छूट जाता है।"

श्वेताश्वतर उपनिषद् के ये ईशान, महेश्वर, रुद्र अथवा शिव निश्चित रूप से प्राचीनतर वैदिक

रुद्र के ही रूप हैं। यहाँ ऐसा नहीं समझना चाहिये कि रुद्र, शिव, ईशान तथा महेश्वर आदि शब्द उपनिषदों में विकासमान नये दार्शनिकतत्त्व ब्रह्म के लिये केवल विशेषण मात्र हैं और वैदिक संहिताओं अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों में पाये जानेवाले रुद्र देवता तथा उपनिषदों के रुद्र में कोई साम्य नहीं है। श्वेताश्वतर में परब्रह्म के रूप में मान्य रुद्र और शतरुद्रिय में वर्णित रुद्र में साम्य की शृंखला स्पष्ट है। शतरुद्रिय के दो मन्त्र(वा. सं. 16/2, 3) श्वेताश्वतर(3/5, 6) में उद्धृत किये गये हैं। इन मन्त्रों का उल्लेख इसे स्पष्ट करता है कि शतरुद्रिय के रुद्र एवं इस उपनिषद के रुद्र दोनों एक ही हैं। अतः स्पष्ट है कि उपनिषदों की दार्शनिक विचारधारा में विश्वास रखनेवाले ब्रह्मज्ञानी लोग शिव को परब्रह्म मानकर उन्हें जगत् का आदितत्त्व समझते थे। उनका विश्वास था कि इस परम पुरुष का ज्ञान सांख्य तथा योग की प्रक्रिया से ही संभव है(श्वे. 6/13)। उसको जानकर मनुष्य सांसारिक बंधनों से छूट जाता है, इसलिये मोक्ष की इच्छा करनेवालों को उन्हीं की शरण लेनी चाहिये (श्वे. 6/18)। यही कारण है कि वेदान्त, सांख्य तथा योगादि के सिद्धान्तों के समर्थकों ने वैदिक कर्मकाण्ड की उपेक्षा की है। दार्शनिक ग्रन्थों में प्रायः सर्वत्र कहा गया है कि मनुष्य को यज्ञादि काम्यकर्म(स्वर्गादि की प्राप्ति हेतु किया कर्म) सर्वथा छोड़ देना चाहिये क्योंकि इनसे जो पुण्य उत्पन्न होगा उससे मनुष्य स्वर्ग जाता है और पुण्य के क्षीण होनेपर पुनः उसे मृत्युलोक में आना पड़ता है। मोक्ष तबतक नहीं मिल सकता जबतक मनुष्य के पुण्य और पाप दोनों ही नष्ट न हो जायँ। वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में मोक्ष की धारणा पर बल नहीं दिया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों का कर्मकाण्ड केवल ऐहिक सुखों या स्वर्ग के लिये है। इसके विपरीत दार्शनिक विचारधारा, जो उपनिषदों की है, मोक्ष का पक्षपाती है। और यह मोक्ष शिव का आश्रय लेने से प्राप्त होता है न कि वैदिक कर्मकाण्डों से।

श्वेताश्वतर उपनिषद् शिव-स्वरूप प्रतिपादक सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन उपनिषद् माना जाता है। इसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा अन्य संहिताओं के मन्त्र पाये जाते हैं। जो मन्त्र इसमें पाये जाते हैं उनमें से कई मन्त्र मुण्डक एवं कठ उपनिषदों में भी पाये जाते हैं। इस उपनिषद् में ईश्वर, जीव एवं जड़ जगत् के स्वरूप तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धविषयक सत्य पाये जाते हैं। मोक्ष का मार्ग परमात्मा का ध्यान है। ध्यान का मार्ग ही सामान्यतः उपनिषदों की विशेषता है। इस ध्यान को फलोत्पादक बनाने के लिये कतिपय योगक्रियाएँ भी बतायी गयीं हैं। अन्तिमफल सर्वव्यापी परमात्मा का दर्शन है जो शाश्वत आनंद से युक्त है। उपनिषदों का ईश्वरवाद श्वेताश्वतर उप. में अपनी पूर्णता को पहुँच गया है और ईश्वर भी व्यक्तित्व से युक्त हो गया है। वहाँपर परमात्मा के वाचक शब्द अत्यन्त सामान्य हैं। उसे रुद्र, शिव, ईशान तथा महेश्वर से अभिन्न बतलाया गया है और उसकी शक्तियों को ईशानी कहा गया है।

यह उपनिषद् बाद के ग्रन्थों की भाँति किसी सम्प्रदाय विशेष से संबद्ध नहीं है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य एवं विभिन्न मतों के आचार्यों ने इससे उद्धरण दिये हैं। इसकी रचना भगवद्गीता से पूर्व

हो चुकी होगी क्योंकि गीता में इस उपनिषद् के डेढ़ श्लोक यथावत् प्राप्त होते हैं (श्वेता. उप. 3 / 16, 17 की तुलना गीता के 13 / 13, 14 से करें)। इस उपनिषद् के धार्मिक - दार्शनिक चिन्तन का स्वरूप औपनिषद् (ज्ञानमार्गी) होनेपर भी अन्य उपनिषदों की अपेक्षा उत्तरकालीन (बाद के) भक्तिमार्ग के अधिक समीप है। इसका ईश्वर और परमानन्द का वर्णन प्रेम और स्तुति से ओत - प्रोत है। इस ग्रन्थ का अन्त उस ईश्वर के समक्ष आत्मनिवेदन की अभिव्यक्ति के साथ होता है जो पुरुष की बुद्धि में स्वयं प्रकाशित होता है। अतएव श्वेताश्वतर उपनिषद् भक्तिसम्प्रदाय के द्वारपर अवस्थित है एवं अपनी प्रेमपूर्ण अभ्यर्थना रुद्र - शिवपर अर्पित करती है, वासुदेव कृष्णपर नहीं, जैसा कि आगे चलकर बाद में जब भक्ति अपने पूरे प्रवाह में थी, भगवद्गीता ने किया। वासुदेव कृष्ण का एक ऐतिहासिक आधार था और उनको परमेश्वररूप में चित्रित करनेवाली परिस्थितियाँ बाद में उपस्थित हुईं। परन्तु श्वेताश्वतर उपनिषद्काल में सर्वोच्च देव रुद्र - शिव ही थे एवं भक्ति या अनुराग के अंकुर जो उस समय प्रकट हुए थे, उन्हीं के लिये ही प्रेरित थे।

इस उपनिषद् में रुद्र - शिव की पत्नी का उल्लेख नहीं मिलता। केन उप. में जो निश्चितरूप से एक प्राचीन उपनिषद् है, उमा का नाम मिलता है। उन्हें हैमवती या हिमवान् की पुत्री कहा गया है (केन उप. 3 / 12)। अथर्वशिरस् रुद्र से संबंधित एक अन्य महत्त्वपूर्ण उपनिषद् है जो बहुत बाद का माना जाता है। इसमें भी श्वेताश्वतर उप. के कई श्लोक थोड़ा - बहुत पाठान्तर के साथ उपलब्ध होते हैं। इस उपनिषद् में रुद्र को सर्वोच्च देवता बताने के साथ - साथ उसे प्राप्त करने के लिये पाशुपतव्रत का विधान भी बताया गया है। इसमें शिवभक्तों के लिये मन्त्रजप के अनन्तर भस्म लगाने का विधान किया गया है जिसे जीवनबन्धन से मुक्ति दिलानेवाला माना गया है।

भगवान् शिव की अष्ट मूर्तियों (शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव) का उल्लेख भी उपनिषदों में पाया जाता है। उदाहरण के लिये नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद् में अष्टमूर्तियों को इस प्रकार नमस्कार किया गया है -

शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, भवाय जलमूर्तये नमः, रुद्राय अग्निमूर्तये नमः, उग्राय वायुमूर्तये नमः, भीमाय आकाशमूर्तये नमः, पशुपतये यजमानमूर्तये नमः, महादेवाय सोममूर्तये नमः, ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः।

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमा।
सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिताः।। (प्रथम खण्ड)

'ॐ महादेवाय नमः', 'ॐ महेश्वराय नमः', 'ॐ शूलपाणये नमः', 'ॐ पिनाकधृषे नमः', आदि शिव के अष्टाक्षर मंत्र हैं। ये अष्टमूर्ति और प्रणव के आठ भागों के सूचक माने जाते हैं। अकार, उकार, मकार, विन्दु, नाद, शब्द, काल और कला से युक्त प्रणव 'दीर्घप्रणव' है। दीर्घप्रणव के अकार, उकार, मकार, नाद, विन्दु, कला, अनुसंधान और ध्यान ये आठ प्रभेद भी माने गये हैं। इनमें 'अकार' सद्योजात, 'उकार' वामदेव, 'मकार' अघोर, 'नाद' तत्पुरुष, 'विंदु' ईशान और 'कला'

व्यापक है। 'अनुसंधान' नित्य है। 'ध्यान' ब्रह्मस्वरूप है। इस प्रकार सर्वव्यापक अष्टाक्षर हैं।

अकारोकारमकारनादविन्दुकलानुसंधानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति।।"

(नारायण पूर्वतापिन्युपनिषद्, प्रथम खण्ड)

अतः शिवपुराण के शतरुद्र संहिता के अध्याय 2 – 3 तथा अन्य स्थलोंपर जिन अष्टमूर्तियों का उल्लेख है उनका उपनिषदीय आधार है।

भगवान् शिव ब्रह्म के रूप में

श्वेताश्वतरोपनिषद् के प्रारंभ में ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा उठायी गयी है। वहाँ पूछा गया है कि जगत् का कारण जो ब्रह्म है, वह कौन है?

किं कारणं ब्रह्म (1/1)

आगे चलकर ब्रह्म के स्थानपर रुद्र एवं शिव शब्द का प्रयोग किया गया है। उपरोक्त प्रश्न के समाधान में बताया गया है कि जगत् का कारण स्वभाव इत्यादि न होकर स्वयं भगवान् शिव ही इसके अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं –

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य
इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः
.. (3/2)

अर्थात् –जो अपनी शासन– शक्तियों के द्वारा लोकोंपर शासन करते हैं, वे रुद्र भगवान् एक ही हैं। इसीलिये विद्वानों ने जगत् के कारण के रूप में किसी अन्य को स्वीकार नहीं किया है। वे प्रत्येक जीव के भीतर स्थित हैं, समस्त जीवों का निर्माणकर पालन करते हैं तथा प्रलय में सबको समेट भी लेते हैं।

वहींपर आगे कहा गया है कि–

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।। (श्वेत. उप. 3/4)

अर्थात्– सबको अपने शासन में रखनेवाले जो रुद्ररूप परमेश्वर(इन्द्रादि समस्त) देवताओं को उत्पन्न करते और बढ़ाते हैं तथा जो सबके अधिपति और महान् ज्ञानी– सर्वज्ञ हैं, जिन्होंने सृष्टि के आदि में हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वे परमदेव परमात्मा हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करें।

इस प्रकार शिव और रुद्र ब्रह्म के पर्यायवाची सिद्ध होते हैं। शिव को रुद्र इसलिये कहा जाता है कि वे अपने उपासकों के सामने अपना रूप शीघ्र ही प्रकट कर देते हैं –

कस्मादुच्यते रुद्रः? यस्मादृषिभिः .... द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते।

(अथर्वशिरस् उप. 4)

इसीलिये भगवान् शिव को आशुतोष भी कहा जाता है।

भगवान् शिव को रुद्र इसलिये भी कहते हैं कि ये 'रुत्' अर्थात् दुःख को विनष्ट कर देते हैं। "रुत = दुःखम्, द्रावयति = नाशयतीति रुद्रः।" श्वेताश्वतर(3/3, 4, 11; 4/10, 12, 14, 18, 21 इत्यादि) के अतिरिक्त अन्य उपनिषदों में भी शिव को ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया गया है। कैवल्योपनिषद् में कहा गया है-

अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं शिवं प्रशान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्।।
तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।
स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः।।
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये।। (1/6-9)

"जो अचिन्त्य है, अव्यक्त और अनन्तस्वरूप है, कल्याणमय है, प्रशान्त है, अमृत है, जो ब्रह्म अर्थात् निखिल ब्रह्माण्ड का मूल कारण है, जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं, जो एक अर्थात् अद्वितीय है, विभु और चिदानन्द है, रूपरहित और अद्भुत है, उस उमासहित अर्थात् ब्रह्मविद्या के साथ परमेश्वर को, समस्त चराचर के स्वामी को, प्रशान्तस्वरूप, त्रिलोचन, नीलकण्ठ महादेव अर्थात् परात्पर परब्रह्म को-जो सब भूतों का मूलकारण है, सबका साक्षी है तथा अविद्या से परे प्रकाशमान हो रहा है, उसको मुनिलोग ध्यान के द्वारा प्राप्त करते हैं।"

"वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर- अविनाशी परमात्मा है, वही विष्णु है, वह प्राण है, वह काल है, वह अग्नि है और वह चन्द्रमा है। जो कुछ हो चुका है और जो भविष्य में होनेवाला है, वह सब वही है; उस सनातन तत्त्व को जानकर प्राणी मृत्यु के परे चला जाता है। इसके अलावा मुक्ति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है।"

जाबालोपनिषद् में कहा गया है कि -

.............रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे .... (जाबालोपनिषद्-1)

अर्थात्- रुद्र तारनेवाले ब्रह्म हैं, ज्ञानी को देहत्याग करते समय रुद्र भगवान् ॐकार मन्त्र का उपदेश देते हैं। अथर्वशिरस् उप. में कहा गया है-

य ओङ्कारः स प्रणवः यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तः योऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत् सूक्ष्मं यत् सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म स एकः रुद्रः स ईशानः स भगवान् महेश्वरः स महादेव।[1] (अथर्वशिरस् उप. 2/3)

---

[1] इस मन्त्र के कुछ अप्रासंगिक पद छोड़ दिये गये हैं।

अर्थात्– "जो ॐकार है वह प्रणव है, जो प्रणव है वह सर्वव्यापी है, जो सर्वव्यापी है वह अनन्त (शक्तिस्वरूप उमा) है, जो उमा है वही तारकमन्त्र ब्रह्मविद्या है, जो तारक है वही सूक्ष्म ज्ञानशक्ति है, जो सूक्ष्म ज्ञानशक्ति है वही शुद्ध है, जो शुद्ध है वही विद्युत– अभिमानी उमा है, जो उमा है वही परब्रह्म है, वही अद्वितीय रुद्र है, वही ईशान है, वही भगवान् महेश्वर है और वही महादेव है।"

रुद्रहृदयोपनिषद् में उल्लेख है कि शुकदेवजी व्यासजी के चरणों में एक बार शिर झुकाकर प्रणामकर बोले "भगवन्! बतलाइये, सब वेदों में किस एक देवता का प्रतिपादन हुआ है और किसमें सारे देवता वास करते हैं? किसकी सेवा–पूजा करने से सर्वदा सब देवता मुझपर प्रसन्न रहेंगे?"

शुक्रदेवजी की इस बात को सुनकर उनके पिता उनसे बोले "शुक! सुनो– भगवान् रुद्र सर्वदेवस्वरूप हैं, और सब देवता रुद्रस्वरूप हैं। .... जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं, वे शंकरजी को नमस्कार करते हैं और जो भक्तिपूर्वक विष्णुभगवान् की अर्चना करते हैं, वे वृषभध्वज अर्थात् शंकरजी की ही पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष अर्थात् भगवान् आशुतोष से द्वेष करते हैं, वे जर्नादन से ही द्वेष करते हैं। जो रुद्र को नहीं जानते, वे केशव को भी नहीं जानते। रुद्र से बीज उत्पन्न होता है और उस बीज की योनि(अर्थात् क्षेत्र) भगवान् विष्णु हैं। जो रुद्र हैं वे स्वयं ब्रह्म हैं। ....रुद्र ब्रह्मा और विष्णुस्वरूप हैं। और अग्नि– सोमात्मक समस्त जगत् भी रुद्र ही है। सृष्टि में जितने पुँल्लिंग प्राणी हैं सब महेश्वर हैं और जितने स्त्रीलिंग प्राणी हैं, सब भगवती उमा हैं। सारी स्थावर और जंगमस्वरूप सृष्टि उमा–महेश्वर रूप है।[1] समस्त व्यक्त जगत् उमा का स्वरूप है और अव्यक्त जगत् महेश्वर का स्वरूप है। .... प्रयोजन के अनुसार रुद्र ने अपनी एक ही मूर्ति को तीन प्रकार से व्यवस्थित किया है। धर्म रुद्रस्वरूप है, जगत् विष्णुस्वरूप और समस्त ज्ञान ब्रह्मास्वरूप है। 'श्रीरुद्र रुद्र रुद्र', इस प्रकार से जो बुद्धिमान् जपता है, इससे समस्त देवों का कीर्तन हो जाने के कारण वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।" (रुद्रहृदयोपनि. 2 – 17)

सर्वदेवात्मको रुद्रः सर्वे देवाःशिवात्माकाः ....
..........ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
..........ये द्विषन्ति विरुपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम् ।
..........रुदात्प्रवर्तते बीजं बीजयोनिर्जनार्दनः। यो रुद्रः
सस्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा स हुताशनः।
ब्रह्मविष्णुमयो रुद्र अग्निसोमात्मकं जगत्।..........
प्रयोजनार्थ रुद्रेण मूर्तिरिका त्रिधाकृता।
धर्मो रुद्रो जगद्विष्णुः सर्वज्ञानं पितामहः।
श्रीरुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः।।
कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते। (4 – 17)

---

[1] शिवपुराण में भी इसी तरह की बातें कही गयीं हैं(शि. पु., वायवीय सं., उत्तरखण्ड, अध्याय 4)।

जाबाल्युपनिषद् में जाबालि पिप्पलाद से महादेवजी की उपासना के सन्दर्भ में कहते हैं कि "पशुपति ही अहंकार से युक्त होकर जब सांसारिक जीव बनते हैं, तब पशु कहलाते हैं। पाँच कृत्यों[1] से संपन्न सर्वज्ञ एवं सर्वेश्वर महेश्वर ही पशुपति हैं.............जीव ही पशु कहलाते हैं तथा उनके स्वामी.............. सर्वज्ञ ईश्वर ही पशुपति हैं।"

पशुपतिरहंकाराविष्टः संसारी जीवः स एव पशुः। सर्वज्ञः पंचकृत्यसंपन्नः सर्वेश्वर ईशः पशुपतिः ....तत्स्वामिन ....सर्वज्ञ ईशः पशुपतिः। (जाबाल्युपनिषद्)

यहाँपर अभिप्राय यह है कि पशुपति ही समस्त जीवों का कर्त्ता एवं उद्धरता है। वही परम ब्रह्म है।

नीलरुद्रोपनिषद् में भगवान् शंकर की प्रार्थना में उन्हें श्रीकृष्ण और श्रीहरि आदि से अभिन्न बताया गया है। यहाँपर भी यही अभिप्राय है कि भगवान् रुद्र ही परम ब्रह्म हैं। निम्नलिखित उद्धरण देखें-

"विलोहित (अधिक रक्तवर्ण) नीलकण्ठ भगवान्! हमने अवतार ग्रहण करते हुए आपको देखा है। आपको (उस अवताररूप में) या तो गोपों ने देखा है या जल भरनेवाली गोपसुन्दरियों ने देखा है। योगियों के लिये भी दुर्दर्श आपको (उस श्यामसुन्दररूप में) विश्व के समस्त प्राणियों ने देखा है। उस देखे हुए श्रीकृष्णरूपधारी आपको नमस्कार। ....आप ही महान् शक्तिशाली इन्द्र हैं[2] ......। जो भगवान् शंकर ....अपने निज जनों के लिये हरितवर्ण श्रीहरिरूप बन जाते हैं.........।" (नीलरुद्रोपनिषद् 2, 3 कल्याण, उपनिषद् अङ्क पृ. 640-41)

महानारायणोपनिषद् में कहा गया है-

यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वा धियो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भ पश्यति जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु (9/3)

उपरोक्त मंत्र थोड़ा परिवर्तन के साथ श्वेताश्वतरोपनिषद् में दो स्थानों (3/4 तथा 4/12) पर आया है जिसका अभिप्राय यह है कि रुद्ररूप परमेश्वर सभी देवताओं को उत्पन्न करते हैं, उनके अधिपति हैं और महान् ज्ञानी हैं। सृष्टि के आदि में उन्होंने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था।

महानारायण उपनिषद् में भगवान् शिव की अनेक नामों से वन्दना करते हुए यह कहा गया है-

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिः ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् .... (17/5)

इसका अभिप्रायः यह है कि भगवान् शिव सभी विद्याओं, भूतों एवं ब्रह्मादि सभी के अधिपति हैं। अर्थात् भगवान् शिव ही ब्रह्म या परमेश्वर हैं।

---

[1] सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह-ये महेश्वर के पाँच कृत्य कहलाते हैं।

[2] यहाँ इन्द्र का तात्पर्य देवराज इन्द्र नहीं, जो असुरों से पराजित होते हैं। यहाँ इन्द्र का तात्पर्य गोविन्द से है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् के प्रसिद्ध मन्त्र (3/2) को हम अथर्वशिरस् उपनिषद् में थोड़े रूपान्तर के साथ पाते हैं -

एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता।।

(अथर्वशि. उ. 2/5)

अर्थात्- जो अपनी स्वरूपभूत विविध शासनशक्तिओं द्वारा इन सब लोकोंपर शासन करते हैं-उनका नियमानुसार संचालन करते हैं, वे रुद्ररूप परमेश्वर एक हैं। इन समस्त लोकों की रचना करके उनकी रक्षा करनेवाले परमेश्वर प्रलयकाल में स्वयं ही इन सबको समेट लेते हैं, अर्थात् अपने में विलीन कर लेते हैं। उस समय इनकी भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्ति नहीं रहती।

तैत्तिरीयारण्यक में कहा गया है-

सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु।
पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः।
विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत्।
सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु। (तैत्तिरीयारण्यक 10/16)

अर्थात्- जो रुद्र उमापति हैं वही सब शरीरों में जीवरूप से प्रविष्ट हैं उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है, वह ब्रह्मलोक में ब्रह्मारूप से, प्रजापतिलोक में प्रजापतिरूप से, सूर्यमण्डल में वैराटरूप से तथा देह में जीवरूप से स्थित हुआ है-उस महान् सच्चिदानन्दस्वरूप रुद्र को बारम्बार प्रणाम हो। समस्त चराचरात्मक जगत् जो विद्यमान है, हो गया है तथा होगा वह सब प्रपंच रुद्र की सत्ता से भिन्न नहीं हो सकता। यह सबकुछ रुद्र ही है, इस रुद्र के प्रति प्रणाम हो।

केन उपनिषद् में कथा आती है कि परब्रह्म की कृपा से देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की। इस विजय से देवता गर्वोन्वित हो उठे। फलस्वरूप उनके गर्व को समाप्त करने के लिये भगवान् (रुद्र) यक्ष का रूप धारण कर उनके समक्ष प्रकट हो गये। उस यक्ष के परिचय को जानने के लिये अग्नि एवं वायु क्रमशः उसके पास पहुँचे पर वे उससे पराजित हो बिना परिचय पाये ही वापस लौट आये। तब इन्द्र स्वयं ही यक्ष का परिचय प्राप्त करने गये। इन्द्र के आते ही यक्ष अन्तर्धान हो गया। अन्तर्धान होने के बाद भी इन्द्र वहीं खड़े रहे। इतने में ही उन्होंने देखा कि जहाँ दिव्य यक्ष खड़ा था ठीक वहीं अत्यन्त शोभामयी हिमाचलकुमारी उमादेवी प्रकट हो गयी हैं। इन्द्र के पूछने पर उमादेवी ने दिव्य यक्ष का इस प्रकार परिचय दिया -

सा ब्रह्मेति होवाच । ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति, ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति।।

(के. उ. 4/1)

उमादेवी ने इन्द्र से कहा कि "तुम जिन दिव्य यक्ष को देख रहे थे और जो इस समय अन्तर्धान हो गये हैं वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं।" इस प्रसंग में उमादेवी ने जिस ब्रह्म का परिचय दिया है, कुछ विद्वानों ने उसे भगवान् रुद्र का ही परिचय माना है। रुद्र ने ही यक्ष का रूप धारण किया था। शिवपुराण में देवी ने भी इसी प्रकार दिव्यरूप धारणकर देवताओं का असुरों पर विजय - संबन्धी अभिमान भंजित किया था (शिव पु. उमासंहिता अ. 48)।

योगशिखोपनिषद् में शिव के स्वरूप की झलक वहाँ प्राप्त होती है जहाँपर यह बताया गया है कि यदि मनुष्य में काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ आदि रजोगुणोत्पन्न तत्त्वों का अभाव हो तथा वह जन्म, मृत्यु, कार्पण्य, शोक, तन्द्रा, भूख, प्यास, तृष्णा, लज्जा, भय, दुःख, विषाद्, हर्ष आदि दोषों से रहित हो तो वह शिव हो जाता है। अर्थात् इन सब (अव) गुणों के साथ जीव शिवस्वरूप से अपना तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता। स्पष्ट है कि उपरोक्त सभी गुणों का अभाव तो मात्र भगवान् में ही हो सकता है।

क्रामक्रोधभयं चापि मोहलोभमथो रजः।
जन्म मृत्युश्च कार्पण्यं शोकस्तन्द्रा क्षुधा तृषा।।
तृष्णा लज्जा भयं दुःखं विषादो हर्ष एव च।
एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सजीवः शिव उच्चते ।। (योगशिखोपनिषद् 1/10 - 11)

इन श्लोकों को शिवतत्त्व की परिभाषा भी मानी जा सकती है। अर्थात् भगवान् शिव में इन सारे अवगुणों का अभाव है। फलस्वरूप वे ब्रह्मस्वरूप हैं क्योंकि ब्रह्म में इस तरह की अपूर्णता नहीं होती।

शरभोपनिषद् में कहा गया है कि एकमात्र शिव ही नित्यतत्त्व अथवा परमसत् है, जगत् की शेष सभी वस्तुएँ असत् हैं। अद्वैत - वेदान्त के 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' जैसी बात यहाँ कही गयी है।

एक एव शिवो नित्यस्ततोऽन्यत्सकलं मृषा। (शरभोपनिषत् 30)

आत्मोपनिषत् में कहा गया है कि शिवसंज्ञावाली आत्मा सदैव एक एवं शुद्ध होती है।

आत्म संज्ञः शिवः शुद्ध एक एवाद्वयः सदा। (आत्मोपनिषत् 1)

भाव यह है कि आत्मा जब समस्त पाशों से मुक्त हो जाता है तो वह अद्वैतस्वरूप शुद्ध शिव हो जाता है। जैसा स्कन्दोपनिषत् में कहा गया है -

पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः (स्कन्दोपनिषत् 7)

अर्थात् - पाशों से बँधे रहनेवाला जीव तथा पाशों से मुक्त सदाशिव कहलाता है। जीव पाशों में बँधा रहने के कारण पशु कहलाता है। पशुओं को पाशों से मुक्त करनेवाला शिव कहलाता है, तथा पाशमुक्त होनेवाला जीव स्वयं शिवसायुज्य को प्राप्तकर शिव हो जाता है।

त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में शिव को निष्कल्मष, आदिदेव, अन्तिम सत्ता, अक्षर, अपरिवर्तित रहनेवाला तथा परमपद आदि कहा गया है।

परमात्मा सदाशिवः आदिभूतः परः ....।

सदाशिव एव निष्कल्मष आद्यो देवोऽन्त्यमक्षरं व्याक्रियते।

परमं पदं .... (त्रिपुरातापिन्युपनिषत् पहला उपनिषद्)

त्रिपुरोपनिषत् में शिव को समस्त जगत् अथवा लोकों का कर्त्ता अथवा विधाता, धारण करनेवाला तथा उनका विनाश करनेवाला कहा गया है। संपूर्ण जगत् उसी का स्वरूप है।

शर्वः सर्वस्य जगतो विधाता धर्ता हर्ता विश्वरूपत्वमेति। (त्रिपुरोप. 15)

निरालम्बोपनिषत् में गुरुरूप शिव को सच्चिदानन्दमूर्ति, निष्प्रपंच, शान्त, आलम्बनरहित तथा तेजस्वरूप कहा गया है।

ॐ नमः शिवाय गुरुवे सच्चिदानन्दमूर्तये।
निष्प्रपञ्चाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ।। (निरालम्बो. 1)

शुकरहस्योपनिषत् में शुकदेवजी कहते हैं कि देवों के आदिदेव, सर्वज्ञ, सच्चिदानन्दरूप, करुणा के सागर, भूतों के स्वामी उमापति प्रसन्न हो जाइये।

देवादिदेव सर्वज्ञ सच्चिदानन्द लक्षण।
उमारमण भूतेश प्रसीद करुणानिधे।। (श्लोक 9)

नारदपरिव्राजकोपनिषत् में भगवान् शिव को कवि(ब्रह्मा), पुराणपुरुष, पुरुषोत्तम, सर्वेश्वर, सभी देवों का उपास्य, अनादि, जगत् का आदि, मध्य एवं अन्त, अनन्त, अव्यय, परात्पर, शाश्वत आदि - आदि कहा गया है।

कविं पुराणं पुरुषोत्तमोत्तमं सर्वेश्वरं सर्वदेवैरुपास्यम्।
अनादि मध्यान्तमनन्तमव्ययं शिवाच्युताम् ....।।
..।
परात्परं यन्महतो महान्तं स्वरूपतेजोमयशाश्वतं शिवम्।। (नारदपरिव्रा. 9/17 - 18)

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत् में कहा गया है कि जो कुछ भी हमारे चारों तरफ है उसे शिव ही जानना चाहिये। नित्य, शुद्ध, निरञ्जन, सर्वव्यापी तथा अद्वैतस्वरूप शिव ही नाना प्रकार के पिण्डों के रूप में भासता है अथवा प्रतिबिम्बित होता है।

सर्वमिदं शिव एव विजानीहि। किंतु नित्यः शुद्धो निरञ्जनो विभुरद्वयः शिव एकः स्वेनभासेदं सर्वं दृष्टवा तप्तायः पिण्डवदेकं भिन्नवदवभासते। (श्लोक 1)

आगे कहा गया है कि जीव और शिव में तात्त्विक भेद न होकर केवल अज्ञान आदि मलों का भेद है। अर्थात् विकारों से छूट जाने के बाद जीव स्वयं शिव(सायुज्य को प्राप्त) हो जाता है।

सविकारस्तथा जीवो निर्विकारस्तथा शिवः। .... (श्लोक 13)

पंचब्रह्मोपनिषत् में भगवान् शिव को सच्चिदानन्द तथा मुमुक्षुओं के अन्वेषण का विषय कहा

गया है। यहाँ भाव यह है कि मुमुक्षुओं के परमलक्ष्य भगवान् शिव हैं जो स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप हैं।

स शिवः सच्चिदानन्दः सोऽन्वेष्टव्यो मुमुक्षुभिः। (श्लोक 35)

शाण्डिल्योपनिषत् में भी दूसरे तथा तीसरे अध्याय में शिव को परब्रह्म स्वीकार किया गया है। एक, अक्षर, निष्क्रिय, सन्मात्र, परमब्रह्म शिव से किस प्रकार विश्व पैदा, स्थिर तथा लय को प्राप्त होता है? ऐसा प्रश्न पूछा गया है–

यदेकमक्षरं निष्क्रियं शिवं सन्मात्रं परंब्रह्म। तस्मात्कथमिदं विश्वं जायते कथं स्थीयते कथमस्मिंल्लीयते। (शाण्डिल्योपनिषत् अध्याय 3/1)

उपरोक्त उद्धरणों के अलावा भी सैकड़ों अन्य सन्दर्भ हम उपनिषदों में बिखरे पाते हैं जो भगवान् शिव को परब्रह्म सिद्ध करते हैं। यहाँपर हमने कुछ प्रचलित एवं प्रमुख उपनिषदों का ही उद्धरण दिया है।

उपनिषदों में भगवान् शिव के सगुण–साकाररूप की भी चर्चा है। उदाहरण के लिये पंचब्रह्मोपनिषत् में भगवान् शिव के पाँचो मुखों की विशेषताओं की चर्चा है। भस्मजाबालोपनिषत् में भगवान् शिव के साकार–विग्रह के ध्यान की चर्चा में उन्हें चन्द्रशेखर, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निरूपी नेत्रवाला तथा विभूति धारण करनेवाला कहा गया है। जिसके ध्यान से व्यक्ति पापों से मुक्तहोकर शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिव कहते हैं–

चन्द्रकिरीटं सोमसूर्याग्निनयनंभूतिभूषितविग्रहं शिवं मामेवमभिध्यायन्तो मुक्तकिल्बिषास्त्यक्ताबन्धामय्येव लीना भवन्ति। (भस्मजाबालो. अध्याय 2)

आगे भगवान् शिव ब्राह्मण के कर्त्तव्य को बताते हुए अपने स्वरूप के ध्यान की चर्चा करते हैं। उसमें वे अपने सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों को एक साथ ही ध्यान के विषय के रूप में प्रतिपादित करते हैं। वे कहते हैं कि मुझे पार्वती के साथ वृषपर आरूढ़, कृष्णपिंगल रूपवाला, सुवर्णमय बाहु एवं रूपवाला, पशुपाश विमोचक, सहस्र आँख, सिर, पैर, बाहुवाला, विश्वात्मा, एक, अद्वैतस्वरूप, निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, अक्षर, अव्यय, हरि, हर तथा हिरण्यगर्भ के स्रष्टा, अप्रमेय, अनादि तथा अनंत के रूप में ध्याना चाहिये।

.... ध्यात्वा साम्बं मामेव वृषभारूढं हिरण्यबाहुं हिरण्यवर्णं हिरण्यरूपं पशुपाशविमोचकं पुरुषं कृष्णपिङ्गलमूर्ध्वरेतं विरूपाक्षं विश्वरूपं सहस्राक्षं सहस्रशीर्षं सहस्रचरणं विश्वतोबाहुं विश्वात्मानमेकमद्वैतं निष्कलं निष्क्रियं शान्तं शिवमक्षरमव्ययं हरिहरहिरण्यगर्भस्रष्टा–रमप्रमेयमनाद्यन्तं ....। (भस्मजाबालोपनिषत् अध्याय 2)

शिव एक, नाम–रूप अनेक

शिवतत्त्व तो एक ही है–**'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** (छान्दोग्य उप. 6/2/1)। उस अद्वैत तत्त्व के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं–**"एकमेवसत्। नेह नानास्ति किंचन"** (वृहदारण्यक उप.

4/4/19)। परन्तु उस तत्त्व के नाम अनेक होते हैं।

ऋगवेद तथा अथर्ववेद में कहा है-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

(ऋ. वे. 1/164/46 तथा अथर्ववेद 9/10/28)

इस मन्त्र में 'अग्नि' शब्द दो बार आया है। एक बार अग्नि देवता के लिये और दूसरी बार रुद्र के लिये। इसका भाव यह है कि जो एक रुद्र है उसे ही बहुत प्रकार से मन्त्रद्रष्टा ऋषि वर्णन करते हुए इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, वायु, यम और उत्तम प्रकाशयुक्त, उदय अस्तरूप से गमन करनेवाले, सूर्यरूप पक्षी इत्यादि नामों से पुकारते हैं। शिवसहस्रनाम में हम शिव की हजार नामों से वंदना करते हैं पर उसके केवल हजार नाम ही नहीं हैं। उसके अनन्त नाम विद्वानों ने कल्पित किये हैं।

नाम की तरह उस एक तत्त्व शिव के रूप भी अनेक होते हैं। ऋग्वेद में **"पुरुरूपः"** लिखकर इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। उपनिषद् में उदाहरण देकर समझाया गया है कि एक ही भगवान् अनेक रूपों में कैसे आ जाते हैं-

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

जैसे कण-कण में व्याप्त अग्नि एक ही है, किन्तु अनेक रूपों में हमारे सामने प्रकट होती है, वैसे ही भगवान् शिव एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट होते हैं। लोक-कल्याण के लिये सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, ईशान आदि अनेक अवतार-रूपों में वे प्रकट हुए हैं(शिवपुराण, शतरुद्र संहिता, अध्याय 1)

यहाँपर जिज्ञासा हो सकती है कि शिव एक ही हैं, तब वे अनेक नाम-रूपों को क्यों ग्रहण करते हैं। इसका उत्तर उपनिषदों में यह दिया गया है कि प्रयोजनवश भगवान् शिव अपनी अनेक मूर्तियाँ बना लेते हैं। उदाहरण के लिये रुद्रहृदयोपनिषद्(15) का उपरोक्त उद्धरण देखिये जहाँ कहा गया है कि-

प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरिका त्रिधा कृता (रुद्रहृ. उप.-15)

जिसका भाव यह है कि प्रयोजन के अनुसार रुद्र ने उपनी एक ही मूर्ति को तीन प्रकार से व्यवस्थित किया है(धर्म रुद्रस्वरूप, जगत् विष्णुस्वरूप और ज्ञान ब्रह्मास्वरूप)। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि रूद्रदेव का प्रयोजन क्या है? भगवान् का 'प्रयोजन' सांसारिक प्रयोजनों से नितान्त भिन्न होता है जिसकी बौद्धिक व्याख्या लीला के रूप में की जाती है। लीला ही भगवान् का प्रयोजन है। योगी अरविन्द की दृष्टि में लीला भगवान् के आनंद की अभिव्यक्ति मात्र है। जैसे हँसने की क्रिया हमारे

आनंद की अभिव्यक्ति है उसी प्रकार सृष्टिरूप क्रिया ब्रह्म के आनंद की अभिव्यक्ति है। कवि-लेखक, मूर्तिकार, चित्रकार एवं कलाकार जिस प्रकार अपनी-अपनी सर्जना के माध्यम से अपने आनंद के भावों को व्यक्त करते हैं उसी प्रकार शिव का आनंदातिरेक सृष्टिरूप सर्जना में प्रकट होता है। ब्रह्मसूत्र में बताया गया है कि लीला के अतिरिक्त इस सृष्टिरूपी विविधता का कोई प्रयोजन नहीं है-

'लोकवत् तु लीलाकैवल्यम्' (ब्रह्मसूत्र 2/1/33)

अर्थात्- वह एक तत्त्व जो सृष्टि के रूप में प्रकट होता है, उसका प्रयोजन एकमात्र 'लीला' है। प्रश्न उठाया जाता है कि ईश्वर तो आप्तकाम है अर्थात् उसकी सब इच्छायें पूर्ण रहती हैं, फिर वह खेल की कामना कैसे कर सकता है? ईश्वर को तो किसी वस्तु का अभाव नहीं है फिर वे कामना किसकी करेंगे? यह जिज्ञासा महात्मा विदुरजी को भी उठी थी फलस्वरूप उन्होंने मैत्रेयजी से पूछा था-

ब्रह्मन् कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः।
लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः।।
क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषान्यतः।
स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदान्यतः।।

(श्रीमद्भागवत महापुराण 3/7/2-3)

ईश्वर प्रेमस्वरूप हैं- **'तस्मात् प्रेमानन्दात्'** (सामरहस्योपनिषद्)। अतः ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति लीला में होती है। लीला को प्रेम का एक अभिन्न अंग माना जाता है। अतः प्रेमलीला की अभिव्यक्ति हेतु ही भगवान् अद्वैत से द्वैत स्वरूप को ग्रहण कर लेता है। सन्मय, चिन्मय और आनंदमय निर्गुण शिव स्वयं ही स्थावर एवं जंगम दोनों बन जाते हैं। उनका स्थूल से स्थूल रूप है ब्रह्माण्ड, जो क्रीड़ास्थली का काम देता है-

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्।
यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्।।

(श्रीमद्भागवत 2/1/24)

अर्थात्- यह ब्रह्माण्ड जिसमें भूत, वर्तमान और भविष्य की समस्त वस्तुएँ दीख पड़ती हैं, भगवान् का स्थूल-से-स्थूल शरीर है।

प्राकृत होने के कारण प्रारंभ में यह ब्रह्माण्ड निर्जीव था। भगवान् ने इसमें प्रवेश कर इसे जीवित कर दिया- **'जीवो जीवेन जीवयत्'** (श्रीमद्भागवत)। फिर वे विराट-पुरुष के रूप में आये। उसके बाद दो पैरोंवाले और चार पैरोंवाले बहुत-से शरीर बनाये और अंशरूप से इनमें भी प्रविष्ट हो गये-

पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः।
पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशत्........।।

(वृहदारण्यक उप. 2/5/18)

इस प्रकार सृष्टि होजानेपर खेल(लीला) में भाग लेनेवालों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। इन प्राणियों के जो अनन्त शिर, अनन्त आँखे और अनन्त पैर हैं, ये सब उन्हीं के ब्रह्माण्ड-देह में हैं। इसी से ब्रह्म को **"सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्"** कहा गया है-

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।। (श्वेताश्वतर उप. 3/14)

भगवान् शिव ने सब जगह आँखें, मुँह और पैर कर लिये-

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
(श्वेत. उप. 3/3)

उन्होंने ऐसा इसलिये किया कि वे अपने प्रेमियों को हजार-हजार नेत्रों से निरन्तर निहारा करें, उनके द्वारा अर्पित वस्तुओं का भोग लगा सकें, हजारों हाथों से उनका रक्षण कर सकें एवं उन्हें स्नेह से गले लगा सकें और जहाँ-कहीं बुलाया जाय, वहाँ तत्काल पहुँच सकें।

इस तरह भगवान् शिव क्रीडा-स्थली का निर्माणकर एवं जीवों को प्रकटकर इनके शरीर-रूपी नगर में तथा बाह्य-जगत् में बसकर लीला कर रहे हैं-

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः। (श्वेत. उ. 3/18)

अर्थात्- नौ दरवाजोंवाले मनुष्यशरीररूप नगर में अन्तर्यामीरूप से स्थित परमेश्वर ही इस बाह्य- जगत् में भी लीला कर रहे हैं।

भक्त अपनी रुची के अनुसार भगवान् के नाम और रूप का वर्णन कर सकें, इसलिये वे अनन्त नामों और रूपों में आते हैं-

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना।। (श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् 1/7)

अर्थात्- ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय तथा प्राकृत शरीर से रहित है फिर भी वह उपासकों के अभीष्ठ कार्य की सिद्धि के लिये नाना रूपों में प्रकट होता है।

वही विराट्-पुरुष के रूप में आता है, विष्णु, दुर्गा, गणेश और सूर्य के रूप में आता है- **"ब्रह्मण्येवं हि पञ्चधा"** (श्रीराम पू. उप. 1/10)। पंच देवों के रूप में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण व्यक्त एवं अव्यक्त के रूप में प्रभु शिव ही हैं।

उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावरजङ्गमाः।
व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरम्।। (रुद्रहृदयोपनिषद् 10)

अर्थात्- स्थावर और जंगमस्वरूप सृष्टि उमा-महेश्वर रूप है। समस्त व्यक्त जगत् उमा का स्वरूप है और अव्यक्त जगत् महेश्वर का स्वरूप है।

जिस प्रकार समस्त सृष्टि के स्थावर-जंगम उमा-महेश्वर रूप हैं उसी प्रकार समस्त देव भी उन्हीं के रूप हैं। सृष्टिव्यापार के निमत्त भगवान् शिव स्वयं पहले तीन प्रमुख देवों-ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र-के

रूप में व्यक्त होते हैं। तदनन्तर ये तीनों देव सृष्टि-प्रक्रिया को संभालते रहते हैं। उपनिषदों में भी हमें शिव एवं विष्णु की अथवा तीनों देवों की एकता का स्पष्टरूप से प्रतिपादन प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ स्कन्दोपनिषत् में शिव एवं विष्णु को अभिन्न बताया गया है। वहाँ कहा गया है कि शिव विष्णुरूप हैं तथा विष्णु शिवरूप हैं। शिव के हृदय में विष्णु तथा विष्णु के हृदय में शिव विद्यमान हैं। जैसे शिव विष्णुमय हैं वैसे ही विष्णु शिवमय हैं। इनमें कोई अन्तर नहीं है।

शिवाय विष्णुरूपाय शिवरूपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।।
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।
यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्तिरामुषि।। (स्कन्दोपनिषत् 8-9)

उपरोक्त उद्धरण से पहले कहा गया है कि वही महादेव है, वही हरि है, वही ज्योतियों की ज्योति तथा परमेश्वर है।

स एव हि महादेवः स एव हि महाहरिः।।
स एव ज्योतिषां ज्योतिः स एव परमेश्वरः। (स्कन्दोप. 4-5)

शाण्डिल्योपनिषत् में कहा गया है कि मायावी महेश्वर ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र तथा सभी देवों का रूप है।

.... स ब्रह्मा स विष्णु स रुद्रः स इन्द्रः स सर्वे देवाः ....।
(शाण्डिल्योप. 3/1)

यहाँपर सभी देवताओं की तात्त्विक एकता का संकेत किया गया है। इसी प्रकार के अनेक उद्धरण हमें अन्य उपनिषदों में भी प्राप्त होते हैं।

भुक्ति-मुक्तिदाता शिव

वेदों एवं उपनिषदों में भक्तों की भगवान् रुद्र से अपने आरोग्य, आयुवृद्धि, माता-पिता, पुत्र-कलत्र, मित्र-सेवक, सैनिक तथा पशु आदि की रक्षा के निमित्त प्रार्थनाएँ वर्णित है यथा-

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि।।
..।।
(श्वे. उप. 3/5, 6 तथा यजुर्वे. 16/2, 3)

अजात इत्येवं कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते।[1]
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।। (श्वे. उप. 4/21)

---

[1] किसी-किसी जगह पर 'प्रपद्यते' के स्थान पर 'प्रतिपद्यते' पाठ प्राप्त होता है। परन्तु इस पाठान्तर से भाव में कोई फर्क नहीं पड़ता।

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे।।

(श्वेता. उप. 4/22; य. वेद 16/16 तथा ऋ. वे. 1/114/8)

उपरोक्त उद्धरणों से पता लगता है कि भगवान् शिव भक्त को समस्त संकटों - भौतिक, आधिभौतिक या आध्यात्मिक - से मुक्ति दिलाते हैं। भगवान् न केवल भौतिक अपितु परम आध्यात्मिक - लाभ, मुक्ति, के भी दाता हैं। भगवान् रुद्र अपने भक्तों पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं इसी कारण उन्हें आशुतोष भी कहा जाता है। अर्थवशिरस् उपनिषद् में रुद्र किसे कहते हैं? प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि जो उपासकों के समक्ष अपना रूप शीघ्र प्रकटकर दे उसे रुद्र कहते हैं (देखिये मंत्र 4)। अतः बुद्धिमान् उपासक इस रहस्य को जानकर अपने कष्टों के निवारण हेतु भगवान् शिव की शरण लेता है।

'रुद्र' शब्द की व्युत्पत्ति - जनक एक अर्थ विद्वानों ने यह बताया है कि जो दुःखों को नष्टकर दे। न केवल भौतिक अपितु आध्यात्मिक कष्टों को भी जो दूर कर दे उसे रुद्र कहते हैं। रुद्र के अनेक नामों जैसे शिव, शंकर, महादेव, ईशान, कामारि, पशुपति, महेश्वर आदि पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने पर लगता है कि एकमात्र भगवान् शिव का आश्रय ही सर्वोत्तम है। कारण कि वे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, भौतिक एवं आध्यात्मिक सभी दुःखों को दूर करनेवाले तथा सुखों को प्रदान करनेवाले हैं।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है कि -

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।। (4/14)

अर्थात् - जो परब्रह्म सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं (अर्थात् जो बिना उनकी कृपा के जाने नहीं जाते), जो सबकी हृदयगुहा के भीतर स्थित हैं (अर्थात् जो हमारे अत्यन्त समीप हैं), जो अखिल विश्व की रचना करते हैं तथा स्वयं विश्वरूप होकर अनेक रूप धारण किये हुए हैं - यही नहीं, जो (निराकाररूप से) समस्त जगत् को सब ओर से घेरे रहते हैं, उन (सर्वोपरि एक - अद्वितीय कल्याणरूप) महेश्वर को जानकर मनुष्य सदा रहनेवाली (असीम) शान्ति (अर्थात् मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है।

महेश्वर की शरण लेने से मनुष्य को मोक्ष सुगमता से प्राप्त हो जाता है। जाबालोपनिषद् में रुद्र को तारकब्रह्म कहा गया है (जाबालोपनिषद् - 1)। ज्ञानी को देहत्याग करते समय भगवान् रुद्र ॐकार मन्त्र का उपदेश देते हैं ताकि वह मुक्त हो जाय। अथर्वशिरस् उपनिषद् (2/3) में (जैसा ऊपर कहा जा चुका है) ॐकार को रुद्र का ही स्वरूप बताया गया है। अतः ज्ञानी को भगवान् रुद्र स्वयं ही मुत्यु के समय अपने स्वरूप का ज्ञान प्रदान करते हैं।

रुद्रहृदयोपनिषद् में भी यह बताया गया है कि श्रीरुद्र के जप से समस्त देवताओं का कीर्तन हो जाता है तथा व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है (देखिये उपरोक्त उद्धरण– रुद्रहृ. उप. 17)। नारायण (1/5) तथा जाबाल उपनिषदों में पापमुक्ति हेतु रुद्रगायत्री का उल्लेख है। रुद्र – गायत्री इस प्रकार है–

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

(नारायणोपनिषद् 1/5)

नारायणोपनिषद् (2/56), य. वेद (3/60) एवं ऋ. वेद (7/59/12) में मृत्यु को जीतने वाले मृत्युञ्जय मंत्र का उल्लेख है। इस मंत्र में भगवान् शिव से मुक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है। इस मन्त्र की विषद व्याख्या शिवपुराण की रुद्रसंहिता के सतीखण्ड के अध्याय 38 में की गयी है।

जाबाल एवं रामोत्तरतापिनि उपनिषदों में बृहस्पति ने याज्ञवल्क्य से पूछा – प्रभो जिस तीर्थ के सामने कुरुक्षेत्र भी छोटा लगे, जो देवताओं के लिये भी देवपूजन का स्थान हो, जो समस्त प्राणियों के लिये परमात्मा प्राप्ति का निकेतन हो, वह कौन है? यह प्रश्न सुनकर याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया – निश्चय ही अविमुक्त तीर्थ (काशी) ही प्रधान कुरुक्षेत्र (सत्कर्म का स्थान) है। वही देवताओं के लिये भी देव – पूजा का स्थान है; वही समस्त प्राणियों के लिये परमात्मप्राप्ति का निकेतन है। अतः जहाँ – कहीं भी जायँ, उस अविमुक्त तीर्थ को ही प्रधान कुरुक्षेत्र मानें। वही सम्पूर्ण प्राणियों के लिये परब्रह्मप्राप्ति का स्थान है। यहीं जीव के प्राण निकलते समय भगवान् रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं जिससे वह अमृतमय होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसीलिये अविमुक्त (काशी) का ही सेवन करें, उसका कभी परित्याग न करें।

.........अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म
व्याचष्टे येन सावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति........।

(जाबालोपनिषद् 1 तथा रामोत्तरतापिन्युपनिषद् 1)

उपरोक्त संदर्भों से स्पष्ट है कि उपनिषदों में काशी को तीर्थराज के रूप में स्वीकृति दी गयी है तथा इसके सेवन से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। हिन्दू – समाज की वर्त्तमान परम्परा के अनुसार भी मरणासन्न व्यक्ति को या अन्तिम समय में काशीवास करना चाहिये। यही कारण है कि वहाँपर आज भी कई ऐसे आवास – स्थान धर्मार्थ बनाये गये मिलते हैं जहाँ केवल मरणासन्न व्यक्ति रहते हैं और वहाँपर सतत कीर्तन – भजन चलता रहता है।

वृहज्जाबाल (7वाँ ब्राह्मण), रुद्राक्षजाबाल, भस्मजाबाल (प्रथम अध्याय) एवं जाबाल्युपनिषद् में शिवमाहात्म्य एवं शिवस्मरणपूर्वक भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करने की विधि एवं उनके फलों को विस्तार से बताया गया है। भस्म एवं रुद्राक्ष का विधिपूर्वक धारण शिवसायुज्य को प्राप्त करा सकता है।

जाबाल्युपनिषद् में यह पूछे जानेपर कि पशुपति का ज्ञान किस उपाय से होता है? यह कहा गया है कि "विभूतिधारण करने से।" उसके धारण करने की विधि क्या है? तथा उसे कहाँ-कहाँ धारण करना चाहिये? इसके उत्तर में कहा गया है कि **'सद्योजातादि**[1] ......' पाँच ब्रह्मसंज्ञक मंत्रों से भस्म संग्रह करें। **'अग्निरितिभस्म**[2] ....' इस मन्त्र से भस्म को अभिमंत्रित करें, **'मा नस्तोके**[3]......' इस मन्त्र से उठाकर जल से मलें, **'त्र्यायुषम्**[4] ......' इत्यादि मंत्र से मस्तक, ललाट, वक्षस्थल और कंधे पर त्रिपुण्ड्र करें। **'त्र्यायुषम्'** तथा **'त्र्यम्बकम्**[5] ...... इन दोनों मन्त्रों को तीन बार पढ़ते हुए तीन रेखायें खींचें। यह **"शाम्भव"** व्रत है। मुमुक्षु आवागमन से बचने के लिये इसका सम्यक आचरण करें। त्रिपुण्ड्र-धारण की तीन रेखायें ललाटभर में चक्षु और भ्रुवों के मध्यतक होती हैं। पुनः इन रेखाओं के रहस्य को विस्तार से समझाने के बाद कहा गया है कि जो इन रहस्यों को समझकर भस्म का त्रिपुण्ड्र धारण करता है वह आवागमन से मुक्त होजाता है। शिवपुराण में भी भस्म-धारण करने की इसी विधि का अनुमोदन किया गया है (देखिये शि. पुराण, विद्येश्वरसंहिता, अध्याय 13)।

---

1. महानारायणोपनिषद् अथवा नारायणोपनिषद् से ये मन्त्र लिये गये हैं-

(क) सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजातय वै नमो नमः। भवे भवेनातिभवे भजस्व मां भवोद्भवाय नमः।।
(कहीं-कहीं पर 'भजस्व' की जगह 'भवस्य' पाठ मिलता है)

(ख) वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो (बलाय नमो) बल प्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।।
(कहीं-कहीं पर बलविकरणाय नमो के बाद 'बलाय नमो' फिर बल प्रमथनाय नमः पाठ मिलता है तथा 'मनोन्मनाय' की जगह 'मनोन्मथाय' पाठ मिलता है।)

(ग) अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।।
(कहीं-कहीं पर घोरतरेभ्यः के बाद सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो पाठ मिलता है)

(घ) तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।।

(ड.) ईशानः सर्वविद्यानाम् ईश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्।।
उपरोक्त पाँचों मन्त्रों के प्रारम्भ में 'ॐ' को जोड़ लेना चाहिये। (महानारायणोपनिषद् खण्ड 17/1-5)

2. **ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म देवा भस्म ऋषयो भस्म । सर्वं ह वा एतदिदं भस्म।।** (भस्मजाबाल उप. अध्याय 1)

3. **मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मानो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे।।** (य. वेद 16/16)
(ऋ. वेद (1/114/8) में पहली पंक्ति में 'आयुषि' की जगह 'आयौ' तथा दूसरी में 'भामिनो' की जगह 'भामितो' पाठ मिलता है।

4. **त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।**
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।। (युजुर्वेद 3/62)

5. **त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।**
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।। (यजु. वे. 3/60 तथा ऋ. वे. 7/59/12)

गर्भोपनिषद् में बताया गया है कि गर्भस्थजीव दुःख-निवृत्ति हेतु भगवान शिव से प्रार्थना करता है। जब जीव माता के गर्भ में आता है और नवें मास में अंग-प्रत्यंग पूर्ण हो जाते हैं, ज्ञान-सामग्री (इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि) के उदय होने से इसको पूर्व-जन्मों के किये शुभाशुभ कर्मों का स्मरण आता है, तब वह पश्चात्ताप करता है कि-

मैंने सहस्रों पूर्व-जन्मों को देखा, उनमें नाना प्रकार के भोजन किये, नाना प्रकार के नाना योनियों के स्तनों का पान किया। मैं बारंबार पैदा हुआ, मृत्यु को प्राप्त हुआ। अपने परिवारवालों के लिये जो मैंने शुभाशुभ कर्म किये, उनको सोचकर मैं आज यहाँ अकेला दग्ध हो रहा हूँ ....। यदि इस योनि से छूट जाऊँगा-इस गर्भ के बाहर निकल गया तो अशुभ कर्मों का नाश करनेवाले तथा मुक्तिरूप फल को प्रदान करनेवाले महेश्वर के चरणों का आश्रय लूँगा ....।

पूर्वयोनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया।

...

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम्।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम्।। (गर्भोपनिषद् 4)

उपरोक्त उद्धरण में शिव को अशुभ को दूर करनेवाला एवं मुक्ति प्रदान करनेवाला माना गया है। अनेक उपनिषदों में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है, परन्तु उन सबका उल्लेख यहाँ संभव नहीं है।

शिवोपासना

पशुविलक्षण परात्पर परब्रह्म परमेश्वर का नाम शिव है। पाश-युक्त पशुतुल्य अशिव जीवों को पाशमुक्त करनेवाली उपासना शिवोपासना कहलाती है।

अशिवाःपाशसंयुक्ताः पशवः सर्वचेतनाः।
यस्माद् विलक्षणास्तेभ्यस्तस्मादीशः शिवः स्मृतः।। (शिवोपानिषद् 1/10)

त्रिगुण की साम्यावस्था प्रकृति है। प्रकृतिसहित उसके परिणाम बुद्धि (महत्), अहं, शब्द-स्पर्शादि पंच तन्मात्राएँ, मन, श्रोत्र-वाणी आदि दस इन्द्रियाँ और आकाशादि पंचभूत-ये चौबीस तत्त्व 'पाश' कहे गये हैं। सच्चिदानन्द होते हुए भी अनादि अज्ञान के कारण इनमें निबद्ध जीव शैवागमों में 'पशु' माना गया है।

त्रिगुणमयी प्रकृति जबतक बन्धन का कारण बनी रहती है, तबतक उसकी अज्ञान (अविद्या) संज्ञा रहती है। शिवोपनिषद् के अनुसार अज्ञान 25 वाँ तत्त्व है। उससे तादात्म्य प्राप्त अज्ञ जीव छब्बीसवाँ तत्त्व है। नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त सर्वेश्वर जीव सत्ताईसवाँ शिवतत्त्व है। शिवतत्त्व के विचार से तत्त्वज्ञान एवं तत्त्वज्ञान से मुक्ति संभव है। (शिवोपनिषद् 1/11-16)

यद्यपि उपनिषदों को ज्ञान-काण्ड कहा जाता है तथापि उनमें मोक्षप्राप्ति के सभी प्रकार के साधनों-ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग आदि-के वर्णन संक्षिप्त अथवा विस्तृतरूप में प्राप्त होते हैं। प्राचीन उपनिषदों में मुख्यतः ज्ञान एवं योग को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार की शिवोपासना हमें उपनिषदों में प्राप्त होती है।

शिव उपासना के सन्दर्भ में दक्षिणामूर्ति उपनिषद् में कहा गया है -

सर्गादिकाले भगवान् विरञ्चिरूपास्यैनं सर्गसामर्थ्यमाप्य।
तुतोष चित्ते वाञ्छितार्थंश्च लब्ध्वा धन्यः सोपास्योपासको भवति धाता।।

(दक्षिणामूर्ति उप. 20)

अर्थात्- सृष्टि के आदि में भगवान् ब्रह्मा शिव की उपासना करने से सामर्थ्य प्राप्तकर और मनोभिलषित अर्थ को पाकर संतुष्ट होते हैं। इन उपास्य(शिव) का उपासक धन्य है क्योंकि वह भी धाता(सबका धारण-पोषण करनेवाला) हो जाता है।

बहुत से लोग शिव को तामसी देव मानकर उनकी उपासना में दोष समझते हैं। वास्तव में उनका यह भ्रम है, जो बाह्य दृष्टिवाले साम्प्रदायिक आग्रही लोगों द्वारा पैदा किया हुआ लगता है। जिस शिव का गुणगान वेदों, उपनिषदों एवं वैष्णव कहे जानेवाले पुराणों में भी गाया गया है (जिसकी चर्चा आगे के अध्यायों में की जायेगी।) उन्हें तामसी बतलाना अपने ही तमोगुण का परिचय देना है। परात्पर महाशिव तो सर्वथा गुणातीत हैं(जैसा पहले, शिवोपनिषद् के संदर्भ में बताया गया है), वहाँ गुणों की क्रिया ही नहीं है। जिस गुणातीत, नित्य, दिव्य, साकार चैतन्य रसविग्रह-स्वरूप में क्रिया है, उसमें भी गुणों का खेल नहीं है। भगवान् की दिव्य प्रकृति ही वहाँ क्रिया करती है और जिन ब्रह्मादि त्रिदेव-मूर्तियों में सत्त्व, रज एवं तम की लीलाएँ होती हैं, उनमें भी उनका स्वरूप गुणों की क्रिया के अनुसार नहीं है। भिन्न-भिन्न क्रियाओं के कारण उनपर सत्त्व, रज, तम का आरोप है। वस्तुतः ये तीनों दिव्य चेतन-विग्रह गुणातीत ही हैं।[1]

कुछ लोग भगवान् शंकर को परमेश्वर मानते हैं परन्तु मुक्तिदाता न मानकर लौकिक फलदाता ही समझते हैं और प्रायः लौकिक कामनाओं की सिद्धि के लिये ही उनकी भक्ति करते हैं। यह मान्यता भी उपनिषदों की मान्यता के विपरीत है। इसमें सन्देह नहीं है कि परम उदार आशुतोष, भगवान् शिव में दया की लीला का विशेष प्रकाश होने के कारण वे भक्तों की मनमानी वस्तु देने के लिये सदा ही तैयार रहते हैं परन्तु इन्हें मुक्तिदाता न समझना ठीक नहीं है। जब भगवान् शिव के

---

[1] भागवत महापुराण में कहा गया है कि प्रभो(शिव) अपनी गुणमयी शक्ति से इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के लिये आप अनन्त, एकरस होनेपर भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि नाम धारण कर लेते हैं(भागवत महापुराण 8/7/23)। उपनिषदों में भी त्रिदेवों की एकता स्वीकार करते हुए शिव को परमब्रह्म माना गया है। उपनिषदों के उद्धरण ऊपर दिये जा चुके हैं।

स्वरूप का तत्त्वज्ञान ही मुक्ति का नामान्तर है तब उन्हें मुक्तिदाता न मानना सिवा भ्रम के और क्या हो सकता है? इस प्रसंग में श्वेताश्वतर उपनिषद् के उपरोक्त मन्त्र(4/14) पर विचार करें।

भगवान् शंकर को भोलानाथ मानकर बहुत से लोग उन्हें गँजेड़ी, भँगेड़ी, नशेबाज और बावला समझकर उनका उपहास करते हैं। विनोद से(या मखौल में) भक्त सब कुछ कह सकते हैं और भक्त का आरोप भगवान् स्वीकार भी कर लेते हैं। परन्तु जो सचमुच में शिव को पागल, श्मशानवासी, औघड़, नशेबाज आदि समझते हैं, वे गहरी भूल में हैं। शंकर का श्मशान-निवास, उनकी उन्मत्तता, उनका विषपान, उनका सर्वांगीपन आदि बहुत गहरे रहस्य को लिये हुए हैं, जिसे शिव की कृपा से शिवभक्त ही समझ सकते हैं। वेदों व उपनिषदों में इसके गहन आध्यात्मिक अर्थों की ओर संकेत प्राप्त होते हैं। जैसे व्यभिचारप्रिय लोग भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला को व्यभिचार का रूप देकर प्रकारान्तर से अपने व्यभिचारदोष का समर्थन करते हैं, इसी प्रकार सदाचारहीन, अवैदिक क्रियाओं में रत नशेबाज मनुष्य शिव के अनुकरण का ढोंग रचकर अपने दोषों का समर्थन करना चाहता है। वस्तुतः उपनिषदों के अनुसार शिवभक्त को सदाचारपरायण रहकर गाँजा, भाँग, नशा, अपवित्र वस्तुओं के सेवन एवं अपवित्र आचरण आदि से बचते रहना चाहिये।[1]

भगवान् शिव को परात्पर मानकर उपासना करनेवालों के लिये तो वे परब्रह्म हैं। अन्यान्य भगवत्स्वरूपों के उपासको के लिये भगवान् शिव उनके लिये मार्गदर्शक परमगुरु हैं क्योंकि उपनिषदों एवं पुराणों में उन्हें सभी विद्याओं का प्रवर्तक माना गया है- **"ईशानः सर्व विद्यानाम् ....।**[2] भगवान् विष्णु के भक्त के लिये भी सद्गुरुरूप से शिव की उपासना आवश्यक है। बिना शिवभक्ति के अन्य देवों की भक्ति संभव नहीं। वैष्णव ग्रन्थों में इसका यथेष्ट उल्लेख है। उदाहरण के लिये रामचरितमानस में कहा है-

संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि। (उत्तरकाण्ड 45)
होई अकाम जो छल तजि सेइहि।
भगति मोरि तेहि संकर देइहि।। (लंकाकाण्ड-2/2)
सिव सेवा कर फल सुत सोई।
अबिरल भगति राम पद होई।। (उत्तरकाण्ड 105(ख)/1)

---

[1] भागवत(जो वैष्णव पुराण है) में भगवान् शिव के प्रति कहा गया है कि-जीवनमुक्त आत्माराम पुरुष अपने हृदय में आपके युगल चरणों का ध्यान करते रहते हैं तथा आप स्वयं भी निरन्तर ज्ञान और तपस्या में ही लीन रहते हैं। फिर भी सती के साथ रहते देखकर जो आपको आसक्त एवं श्मसानवासी होने के कारण उग्र अथवा निष्ठुर बतलाते हैं-वे मूर्ख आपकी लीलाओं का रहस्य भला क्या जानें? उनका वैसा कहना निर्लज्जता से भरा है।(भागवत महापु. 8/7/33)।

[2] महानारायणोपनिषद्(17/5) तथा श्रीमद्भागवत्(12/10/8)।

पुनः शाक्त लोग शिव के बिना शक्ति की पूजा कैसे कर सकते हैं? गाणपत्य लोग गणेश की पूजा करें और उनके पिता शिव की न करें, यह शिष्ट मर्यादा नहीं हो सकती। सूर्य भगवान् शिव के तेजोलिंग के ही नामान्तर हैं। अतः सूर्योपासक भी शिवोपासना से अलग नहीं रह सकते। योगियों के लिये तो परम योगीश्वर शिव की आराधना की आवश्यकता है ही। ज्ञान-मार्गियों के लिये शिव की प्राप्ति ही परम कल्याणदायी है। न्याय-वैशेषिक दर्शन भी शिवविद्या के ही प्रचारक हैं। पुनः तन्त्र तो मुख्यतः शिवोपासना के लिये ही बना है। ऐसी स्थिति में जिस किसी भी दृष्टि से शिव को परम परात्पर परमात्मा, महाज्ञानी, महान् विद्वान्, योगीश्वर, जगद्गुरु, उत्पादक, संहारक-कुछ भी मानकर उनकी उपासना करना सबके लिये अपेक्षित है। वास्तव में कैवल्य उपनिषद् में कहा गया है कि -वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर है, वही विष्णु है ....। जो कुछ हो चुका और जो होने वाला है वह सब वही है। उस सनातन तत्त्व (शिव) को जानकर प्राणी मृत्यु के परे चला जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है।[1] (कैवल्योपनिषद 1/8-9)

पुनः रुद्रहृदयोपनिषद् (2-16) में कहा गया है कि रुद्र को जपने से समस्त देवों का कीर्तन हो जाता है क्योंकि रुद्रदेव ही त्रिदेवों के रूप में अपने को प्रकट करते हैं।

आध्यात्मज्ञान में गुरु के महत्त्व को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। उपनिषदों में भी गुरु-भक्ति की बात कही गयी है। वेदान्तज्ञान को गुरु द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिये क्योंकि इस ज्ञान से ही मुक्ति संभव है। यहाँ वेदान्तज्ञान का तात्पर्य है शास्त्रों में वर्णित मोक्षमार्ग का उपदेश।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है-

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः।।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।। (श्वेताश्वतर उप. 6/22, 23)

अभिप्राय यह है कि-यह परम रहस्यमय ज्ञान (आध्यात्मविद्या) पूर्वकल्प में भी वेद के अन्तिम भाग-उपनिषदों में भलीभाँति वर्णित हुआ था। भाव यह कि इस ज्ञान की परम्परा कल्प-कल्पान्तर से चली आ रही है, यह कोई नयी बात नहीं है। इसका उपदेश किसे दिया जाय किसे नहीं, ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं कि "जिसका अन्तःकरण वासनाओं से शान्त न हो गया हो ऐसे मनुष्य को

---

[1] भागवत में कहा गया है कि सारे जगत् को बाँधने और मुक्त करने में एकमात्र आप (शिव) ही समर्थ हैं। इसीलिये विवेकी पुरुष आपकी ही आराधना करते हैं क्योंकि आप शरणागत की पीड़ा नष्ट करनेवाले एवं जगद्गुरु हैं।

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम्।। (भागवत महापु. 8/7/22)

इस रहस्य का उपदेश नहीं देना चाहिये तथा जो अपना पुत्र अथवा शिष्य न हो, उसे भी नहीं देना चाहिये।" भाव यह है कि या तो जो सर्वथा शान्तचित्त हो ऐसे अधिकारी को देना चाहिये अथवा जो पुत्र या शिष्य हो, उसे देना चाहिये; क्योंकि पुत्र और शिष्य को अधिकारी बनाना पिता और गुरु का ही काम है। जिस साधक की परमदेव परमेश्वर में परम भक्ति होती है और उसी प्रकार अपने गुरु में भी होती है, उस महात्मा-पुरुष के हृदय में ही ब्रह्म-विद्या संबंधी बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। अत: जिज्ञासु को पूर्ण श्रद्धा (गुरु तथा भगवान् में) रखनी चाहिये तभी ब्रह्मज्ञान हृदय में प्रकट होगा।

उपनिषदों में ज्ञानयोग के सन्दर्भ अनेक जगहों पर हैं। उदाहरणार्थ श्वेताश्वतर उपनिषद् में क्षर और अक्षरतत्त्व के ज्ञान से व्यक्ति माया के बन्धनों से छूट जाता है- "प्रकृति तो क्षर है और इसको भोगनेवाला अक्षरतत्त्व है। इन क्षर और अक्षर दोनों तत्त्वों पर परमदेव परमेश्वर शासन करते हैं, वे ही जानने योग्य हैं। उन्हें तत्त्व से जानना चाहिये-इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके उन परमदेव परमात्मा का निरन्तर ध्यान करने से, उन्हीं में रात-दिन लगे रहने से और उन्हीं में तन्मय हो जाने से अन्त में उन्हीं को पा लिया जाता है। फिर इससे सम्पूर्ण माया की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है" (1/10)।

आगे कहा है-

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
.... केवल आप्तकामः।। (श्वेत. उ. 1/11)

अर्थात्- उस परमेदव का निरन्तर ध्यान करने से उस प्रकाशमय परमात्मा का ज्ञान हो जाता है तथा उसको जान लेनेपर समस्त बन्धनों का नाश हो जाता है क्योंकि क्लेशों का नाश हो जाने के कारण जन्म-मृत्यु का सर्वथा अभाव हो जाता है। अत: वह शरीर का नाश होनेपर तीसरे लोक (स्वर्ग) तक के समस्त ऐश्वर्यों का त्याग करके सर्वथा विशुद्ध पूर्णकाम हो जाता है।

आगे पुनः कहा है -

एतज् ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं
नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।। (श्वेता. उप. 1/12)

भावार्थ यह है कि परब्रह्म अपने ही भीतर-हृदय में अन्तर्यामीरूप से स्थित है। इसको जानने के लिये कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं को सदा जानने की चेष्टा करनी चाहिये क्योंकि इनसे बढ़कर जाननेयोग्य दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इन एक को जानने से ही सबका ज्ञान हो जाता है। मनुष्य भोक्ता (जीवात्मा), भोग्य (जड़वर्ग) और इन दोनों का प्रेरक ईश्वर को जानकर सब

कुछ जान लेता है। जिनके ये तीन भेद बताये गये हैं वे ही समग्र ब्रह्म हैं अर्थात् जड़ प्रकृति, चेतन आत्मा और उन दोनों का आधार-ये तीनों ब्रह्म के ही रूप हैं।

ज्ञानमार्गी साधक ॐकार की साधना द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। कहा गया है कि अग्नि को प्रकट करने के लिये जैसे दो अरणियों का मन्थन किया जाता है, उसी प्रकार अपने शरीर में परमपुरुष परमात्मा (शिव) को प्राप्त करने के लिये शरीर को तो नीचे की अरणि बनाना चाहिये और ॐकार को ऊपर की अरणि। अर्थात् शरीर को नीचे की अरणि की भाँति समभाव से निश्चल करके ऊपर की अरणि की भाँति ॐकार का वाणीद्वारा जप और मन से उसके अर्थस्वरूप परमात्मा (शिव) का निरंतर चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार इस ध्यानरूप मन्थन के अभ्यास से साधक को काष्ठ में छिपी हुई अग्नि की भाँति अपने हृदय में छिपे हुए परमेश्वर को देख लेना चाहिये।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्॥ (श्वेता. उप. 1/14)

प्रश्नोपनिषद् (5/5-6) में ॐकार की त्रिमात्रायुक्त उपासना करने से परमपुरुष की प्राप्ति होने का उल्लेख है। माण्डूक्योपनिषद् (12) में कहा गया है कि ॐकार के निराकारस्वरूप की परब्रह्म परमात्मा के निर्गुण-निराकार निर्विशेषरूप के साथ समानता है। जो मनुष्य इस प्रकार ॐकार और परब्रह्म की अर्थात् नाम और नामी की एकता के रहस्य को समझकर परब्रह्म को पाने के लिये उनके नाम का (ॐ)-जप अवलम्बन लेकर तत्परता से साधन करता है तो वह ब्रह्म (अर्थात् शिव) को प्राप्त कर लेता है। ओंकार का महत्त्व तैत्तिरीयोपनिषद् (1/8) में बड़े विस्तार से बताया गया है। ज्ञान-योग के साधन का श्वेताश्वतर उप. (6/6) में संकेत किया गया है। कठोपनिषद् (1/2/15-17) में बताया गया है कि नामरहित होनेपर भी परमात्मा अनेक नामों से पुकारे जाते हैं। उनके सब नामों में 'ॐ' सर्वश्रेष्ठ माना गया है। नाम और नामी को अभिन्न मानकर प्रणव का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ॐकार ही परब्रह्म की प्राप्ति के लिये सब प्रकार के आलम्बनों से श्रेष्ठ है। इस नाम की शरण हो जाना ही उसकी प्राप्ति का अमोघ साधन है।

एतदालम्बनम् श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ (कठोप. 1/2/17)

श्वेताश्वतर उपनि. (6/4) में कर्मयोग का संकेत किया गया है। वहाँ कहा गया है कि जो कर्मयोगी सत्त्व, रज और तम-इन तीनों गुणों से व्याप्त अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थिति के अनुकूल कर्त्तव्यकर्मों का आरंभ करके उनको और अपने सब प्रकार के अहंता, ममता, आसक्ति आदि भावों को उन परब्रह्म परमेश्वर में लगा देता है, उनके समर्पण कर देता है तो उस समर्पण से उन कर्मों के साथ साधक का संबंध न रहने के कारण वे उसे फल नहीं देते । इस प्रकार उनका अभाव हो ज़ाने से पहले किये हुए संचित कर्म-संस्कारों का भी सर्वथा नाश हो जाता है। इस प्रकार कर्मों का नाश

हो जाने से वह तुरंत परमात्मा को (अर्थात् शिव को) प्राप्त हो जाता है।

कठोपनिषद् (2/3/10-11) में कहा गया है कि योगधारणा द्वारा मन एवं इन्द्रियों को रोककर परमात्मा (शिव) को प्राप्त किया जा सकता है। योगाभ्यास करते-करते मन के सहित पाँचों इन्द्रियाँ जब स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी एक परमात्मा के स्वरूप में इस प्रकार स्थिर हो जाती है जिससे उसको परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु का तनिक भी ज्ञान नहीं रहता, उस स्थिति को योगीगण परमगति बतलाते हैं। इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा का ही नाम योग है-ऐसा माना जाता है; क्योंकि उस समय साधक विषय-दर्शनरूप सब प्रकार के प्रमाद से सर्वथा रहित हो जाता है। परन्तु यह योग उदय और अस्त होनेवाला है; अतः परमात्मा को प्राप्त करने की इच्छावाले साधक को निरन्तर योगयुक्त रहने का अभ्यास करते रहना चाहिये।

..॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ (कठ. उप. 2/3/10-11)

श्वेताश्वर उप. (2/6-15) में ध्यानयोग का सविस्तार वर्णन है। वहाँ बताया गया है कि ध्यानयोगी सिर, गले और छाती को ऊँचा उठाये रक्खे, अर्थात् शरीर को सीधा और स्थिर रक्खे। फिर ॐकार का जप और उसके वाच्य परमात्मा (शिव) का ध्यान करे। योगसाधक को यथायोग्य आहार-विहार करना चाहिये। फिर योगशास्त्र की विधि के अनुसार प्राणायाम करते-करते जब प्राण अत्यन्त सूक्ष्म हो जाय, तब नासिका द्वारा उसे बाहर निकाल दे। इसके बाद जैसे दुष्ट घोड़ों से जुते हुए रथ को अच्छा सारथी बड़ी सावधानी से चलाकर अपने गन्तव्य स्थानपर ले जाता है उसी प्रकार साधक सावधानी के साथ अपने मन को वश में रक्खे। ध्यान लगाने के लिये ऐसी भूमि का चुनाव हो जो पवित्र हो तथा ऊँची नीची न हो। जहाँ कंकड़-रेत न हो, अग्नि या धूप भी न हो, जहाँ विक्षेप पैदा करनेवाला शब्द न होता हो, यथावश्यक जल प्राप्त हो सके, जहाँ शरीर-रक्षा के लिये उपयुक्त आश्रय हो, जहाँ का दृश्य पीड़ा पहुंचानेवाला भयानक न हो, ऐसे गुफा आदि वायुशून्य एकान्त में आसन लगाकर अपने मन को परमात्मा में लगाने का अभ्यास करना चाहिये।

संक्षेप में श्वेताश्वर उप. में आहार-विहार, आसन, प्राणायाम, ध्यान, सिद्धि आदि योगांगों का बड़ा ही स्पष्ट वर्णन किया गया है। कैवल्योपनिषद् (7) में कहा गया है कि त्रिलोचन, नीलकण्ठ महादेव अर्थात् परात्पर ब्रह्म को-जो सब भूतों का मूल कारण है, सबका साक्षी है तथा अविद्या से परे प्रकाशमान हो रहा है, उसको मुनिलोग ध्यान के द्वारा प्राप्त करते हैं। यहाँपर योग के प्रमुख अंग ध्यान का उल्लेख किया गया है जिसके द्वारा ईश्वर प्राप्त हो सकता है।

जाबालदर्शनोपनिषद् में योग के सभी अंगों का सविस्तार वर्णन है। पातंजल योग-दर्शन के अनुसार योग के यम (पाँच), नियम (पाँच), आसन (अनेकों), प्राणायाम (अनेकों), प्रत्याहार, धारणा,

ध्यान और समाधि(अनेकों)-ये आठ अंग हैं। इन सभी अंगों एवं उपांगों का बड़े स्पष्टरूप से जाबालदर्शनोपनिषद् में विवेचन किया गया है। इस उपनिषद् में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव(सरलता), क्षमा, घृति, परिमित आहार और बाहर-भीतर की पवित्रता ये दस यम माने गये हैं।

तप, संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वरपूजा, सिद्धान्तश्रवण, लज्जा, मति, जप और व्रत ये दस नियम कहे गये हैं। इसके अलावा नौ प्रकार के आसनों, प्राणायाम की विधियों, प्रत्याहार एवं धारणा के स्वरूप एवं प्रकार, दो प्रकार के ध्यान तथा सामाधि का बड़ा ही खुलासा वर्णन हम इस उपनिषद् में पाते हैं।

आत्मतीर्थ[1], जिसमें ज्ञानी और योगी स्नान करते हैं, की महिमा के संदर्भ में जाबालदर्शनोपनिषद् में कहा गया है कि- "अपने शरीर में मस्तक के स्थानपर श्रीशैल नामक तीर्थ है। ललाट में केदारतीर्थ है। (दत्तात्रेयजी अपने शिष्य से कहते हैं कि)हे महाप्राज्ञ! नासिका और दोनों भौहों के मध्य में काशीपुरी है(अर्थात् आज्ञाचक्र, जिसपर ध्यान लगाया जाता है, काशीपुरी है) .... हृदय के मध्य भाग में चिदम्बरतीर्थ है। मूलाधार-स्थान में कमलालय तीर्थ है। जो इस आत्मतीर्थ(अपने भीतर रहनेवाले) का परित्याग करके बाहर के तीर्थों में भटकता रहता है, वह हाथ में रक्खे हुए बहुमूल्य रत्न को त्यागकर काँच खोजता फिरता है। भावनामय तीर्थ ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हैं। ....योगी पुरुष अपने आत्मतीर्थ में अधिक विश्वास और श्रद्धा रखने के कारण जल से भरे तीर्थों और काष्ठ आदि से निर्मित देवप्रतिमाओं की शरण नहीं लेते...........। शरीर के भीतर रहनेवाला दूषित चित्त बाह्य तीर्थों में गोते लगानेमात्र से शुद्ध नहीं होता............। अपने भीतर होनेवाले जो विषुवयोग, उत्तरायण-दक्षिणायन काल और सूर्य-चन्द्रमा के ग्रहण हैं, उनमें नासिका और भौहों के बीच में स्थित वाराणसी आदि तीर्थों में भावना द्वारा स्नान करके मनुष्य शुद्ध हो सकता है। मुनिश्रेष्ठ! ज्ञानयोग में तत्पर रहनेवाले महात्माओं का चरणोदक अज्ञानी मनुष्यों के अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिये उत्तम तीर्थ है।" (जाबालदर्शनोप. 4/48-56, कल्याण, उपनिषद्-अंक पृ. 704)

वहीं पर आगे कहा गया है- "शिवस्वरूप परमात्मा इस शरीर में ही प्रतिष्ठित है। इनको न जाननेवाला मूढ़ मनुष्य तीर्थ, दान, जप(कर्म-काण्डवाला जप), यज्ञ, काठ और पत्थर(की प्रतिमा)

---

[1] स्कन्द पुराण में मानस तीर्थ की श्रेष्ठता को बताते हुए कहा गया है कि जिसने अपने इन्द्रिय समुदाय को वश में कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ निवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं। ध्यान से पवित्र तथा ज्ञानरूपी जल से भरे हुए, राग-द्वेषमय मल को दूर करनेवाले मानसतीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है, वह उत्तम गति को प्राप्त करता है।

निगृहीतेंद्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च।।
ध्यानपूते ज्ञान जले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।। (स्क. पु. का. ख. पू. 6/40-41)

में ही सर्वदा शिव को ढूँढ़ा करता है। साङ्कृते! (दत्तात्रेयजी का शिष्य)जो अपने भीतर नित्य-निरन्तर स्थित रहनेवाले परमात्मा की उपेक्षा करके केवल बाहर की स्थूल प्रतिमा का ही सेवन करता है, वह हाथ में रक्खे हुए अन्न के ग्रास को फेंककर अपनी कोहनी चाटता है। योगी पुरुष अपनी आत्मा में ही शिव का दर्शन करते हैं, प्रतिमाओं में नहीं। अज्ञानी मनुष्यों के हृदयों में भगवान् के प्रति भावना जाग्रत् करने के लिये ही प्रतिमाओं की कल्पना की गयी है।"[1] (जाबालदर्शनोपनिषद् 4/57-59, कल्याण, उपनिषद्-अंक पृ. 704)

योगराजोपनिषद् में चार प्रकार के योगों की चर्चा की गयी है-मन्त्रयोग, लययोग, राजयोग, और हठयोग। आसन, प्राणायाम, ध्यान एवं समाधि ये चार योग के प्रमुख चरण हैं(योगराजोपानिषद् -2)। चार प्रकार के योगों की चर्चा योगतत्त्वोपनिषद्(19) में भी की गयी है। वहींपर अष्टांग योग-यम, नियम, ... तथा समाधि-की भी चर्चा है(24, 25)। योगचूड़ामण्युपनिषद् में योग के छः अंग(यम-नियम को छोड़कर) स्वीकार किये गये हैं(2)। अमृतनादोपनिषद् में योग के प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, तर्क और समाधि(6) ये छः अंग स्वीकार किये गये हैं। संक्षेप में अनेक उपनिषदों में योगसाधन द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार की बाते बतलायी गयीं हैं।

भगवान् शिव के सगुणरूप का प्रादुर्भाव वेदों में ही हो गया था। उदाहरण के लिये अथर्ववेद में कहा गया है-

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव...........।। (अथर्ववे. 11/2/5-6)

अर्थात्- हे पशुपति शिव! आपके मुख को, तीन नेत्रों को, त्वचा को, रूप को, पृष्ठ देश को अंगों को, उदर को, जिह्वा को और आस्यमण्डल आदि समस्त अंगों को नमस्कार है। यहाँ शिव के साकाररूप की कल्पना की गयी है। इसी तरह रुद्राध्यायी में कहा गया है-

.... नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च। (यजु. संहिता 16/28)

अर्थात्- नीलकण्ठ एवं श्वेत कंठवाले रुद्र को नमस्कार। यहाँपर शिव के नील एवं श्वेत कण्ठवाले साकाररूप की वन्दना की गयी है। भगवान् शिव नीलकण्ठी हैं और शिवा श्वेत कण्ठी। इसी कारण शिव के अर्द्धनारीश्वररूप की वन्दना ही उपरोक्त मन्त्र में की गयी प्रतीत होती है।

कैवल्योपनिषद् में कहा गया है -

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।

(कैवल्योपनिषद् 7)

---

[1] शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः।
अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः।। (जाबालदर्शनोपनिषद् 4/59)

अर्थात्– "उमासहित परमेश्वर को, प्रशान्तस्वरूप, त्रिलोचन, नीलकण्ठ महादेव को, जो सब भूतों का मूल कारण है, सबका साक्षी है तथा अविद्या से परे प्रकाशमान हो रहा है, उसको मुनिलोग ध्यान के द्वारा प्राप्त करते हैं।" यहाँपर भी भगवान् शिव को सगुण–साकाररूप में स्वीकार किया गया है। नीलरुद्रोपनिषद्(तीसरे खण्ड) में कहा गया है कि भगवान् शंकर अपने भक्तों के लिये नीलकण्ठस्वरूप धारण करते हैं, अपने निजजनों के लिये हरितवर्ण श्रीहरिरूप बन जाते हैं। इसी प्रकार अन्य उपनिषदों में भी भगवान् शिव को सगुण–साकाररूप में माना गया है। भक्ति के लिये साकाररूप की आवश्यकता होती है।

परमात्मा को भक्ति से जाना जा सकता है इसका उल्लेख हम श्वेताश्वतर उपनिषद् में पाते हैं। वहाँ कहा गया है कि परमात्मा का स्वरूप दृष्टि के सामने नहीं ठहरता। जब साधक मन के द्वारा उनका चिन्तन करता है, तब विशुद्ध अन्तःकरण में किसी–किसी समय उस परमेश्वर के स्वरूप की झलक–सी आती है, परन्तु वह निश्चल नहीं होती। इन परब्रह्म परमात्मा को कोई भी प्राकृत नेत्रों द्वारा नहीं देख सकता। जिसको वे परमात्मा स्वयं कृपा करके दिव्यदृष्टि प्रदान करते हैं, वही उन्हें देख सकता है। जो साधक इस रहस्य को समझकर अपने हृदय में स्थित इन अन्तर्यामी परमात्मा को उनके गुण एवं प्रभाव का श्रवण करके भक्तिभाव से द्रवित हृदय के द्वारा तथा निर्मल मन के द्वारा निरंतर उनका चिन्तन करके उन्हें जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं।(श्वेताश्वतर उप. 4/20)

वहीं पर आगे कहा है–हे रुद्र! आप स्वयं अजन्मा हैं, अतः दूसरों को भी मृत्यु–जन्म से मुक्त कर देना आपका स्वभाव है– यह समझकर कोई जन्म–मरण के भय से डरा हुआ साधक इस संसार–चक्र से छुटकारा पाने के लिये आपकी शरण लेता है। मैं भी इस संसार–चक्र से छुटकारा पाने के लिये ही आपकी शरण में आया हूँ; अतः जो आपका दाहिना मुख है, अर्थात् जो आपका परम शान्त कल्याणमयस्वरूप है, उसके द्वारा आप मेरी इस जन्म–मरणरूप महान् भय से सदा के लिये रक्षा करें। मुझे सदा के लिये इस भय से मुक्त कर दें।

अजात इत्येवं कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।। (श्वेताश्वतर उप. 4/21)

यहाँ उपरोक्त मंत्र में भगवान् शिव के साकार विग्रह(जो पंचानन है) के दक्षिण दिशावाले मुख को कल्याणकारी बताया गया है। उपनिषदों में शिव के साकार विग्रह की पूजा–अर्चना के अनेकों प्रमाण हैं जिनमें से कुछ का उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है। उपरोक्त मन्त्र में भक्ति के मूल तत्त्व शरणागति की भी चर्चा की गयी है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में ही अन्यत्र कहा गया है कि ईश्वर को भाव–भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है–

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।

कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्।। (श्वेता. उप. 5/14)

अर्थात् - परब्रह्म आश्रयरहित (अर्थात् शरीररहित) हैं, यह प्रसिद्ध है; तथा वे जगत् की उत्पत्ति और संहार करनेवाले तथा (प्रश्नोपनिषद् 6/6/4 में बतायी हुई) सोलह कलाओं को भी उत्पन्न करनेवाले हैं। ऐसा होनेपर भी वे कल्याणस्वरूप परमेश्वर (शिव) श्रद्धा, भक्ति और प्रेमभाव से पकड़े जा सकते हैं। जो मनुष्य उन परमदेव को जान लेता है वह शरीर से अपना संबंध सदा के लिये छोड़ देता है। अर्थात् इस संसार - चक्र से सदा के लिये छूट जाता है।

भक्तिमार्ग में नाम - जप का बड़ा महत्त्व है। रुद्रहृदयोपनिषद् में कहा गया है कि -

धर्मो रुद्रो जगद्विष्णुः सर्वज्ञानं पितामहः।
श्रीरुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः।।
कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैःप्रमुच्यते। (रुद्रहृदयोपनिषद् 16 - 17)

भावार्थ यह है कि धर्म रुद्रस्वरूप है, जगत् विष्णुस्वरूप है और समस्त ज्ञान ब्रह्मास्वरूप है। 'श्रीरुद्र रुद्र रुद्र' इस प्रकार से जो बुद्धिमान् जपता है, इससे समस्त देवों का कीर्तन हो जाने से वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

शिवोपनिषद् में कहा गया है -

नामसंकीर्तनादेव शिवस्याशेषपातकैः।
यतः प्रमुच्यते क्षिप्रं मन्त्रोऽयं द्व्यक्षरः परः।।
यः शिवं शिवमित्येवं द्व्यक्षरं मन्त्रमभ्यसेत्।
एकाक्षरं वा सततं स याति परमं पदम्।।

(शिवोपनिषद 1/20 - 21)

भावार्थ यह है कि भक्ति - भावपूर्वक 'शिव' के नाम - संकीर्तन से शीघ्र ही समस्त पापों से निवृत्ति और शिव - पद की प्राप्ति हो सकती है।

शरभोपनिषत् में कहा गया है कि रुद्र के ध्यान - पूजा से सभी लोगों को सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। भगवान् शिव भव - बंधन से छुड़ानेवाले हैं, इसलिये सदैव उनका ध्यान (या उपासना) करना चाहिये।

स एको रुद्रो ध्येयः सर्वेषां सर्वसिद्धये।
शिव एव सदाध्येयः सर्व संसार मोचकः। (शरभोपनिषत् 7 तथा 31)

पाशुपतब्रह्मोपनिषद् में रुद्र को समस्त यज्ञों का कर्त्ता बताया गया है (**समस्त यागानां रुद्रः पशुपतिः कर्त्ता -** श्लोक 1)। भावार्थ यह है कि यज्ञफल पानेवाले को रुद्रोपासना करनी चाहिये। त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में शिव को परमपद (पहला उपनिषत्) कहा गया है। भस्मजाबालोपनिषत् में कहा गया है कि शिव के विग्रह का ध्यान करने से व्यक्ति पापों से छूट जाता है (अध्याय - 2)। इसी

प्रकार नारदपरिव्राजकोपनिषत् में भगवान् शिव को सभी देवों का उपास्य बताया गया है(9/17)।

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव की उपासना से व्यक्ति पापों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

अथर्वशिखोपनिषत् में ध्यान-संबंधी सनत्कुमार आदि के प्रश्नों का उत्तर देते हुए अथर्वण ऋषि कहते हैं कि-

ध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्। सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते ....
कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः। सर्वेश्वरः शम्भुराकाशमध्ये। (अथर्वशिखो.-3)

यहाँपर 'ध्यायीतेशानम्' से शिवजी को ध्यान योग्य अथवा ध्यान का विषय बताया गया है। तदनन्तर शिव से इतर सम्पूर्ण देवताओं की उपेक्षाकर शिवजी का ही ध्यान करना चाहिये, यह दिखाने के लिये ही इस प्रकार का पदविन्यास प्रयुक्त किया गया है। सब देवताओं में प्रधान देवता ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार में नियुक्त हैं; किन्तु वे भी भूत एवं इन्द्रिय आदि के समान परमेश्वर से उत्पन्न होते हैं। सब कारणों के कारण शिवजी कदापि उत्पत्ति, विनाश आदि विकारों को प्राप्त नहीं होते। इस प्रकार सब देवताओं से शिवजी की विशिष्टता का निश्चय कर, उपपत्तिपूर्वक वे सबके ध्येय हैं, ऐसा उपसंहार किया है।

भक्तिमार्ग में जप, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन एवं इनसे संबंधित कुछ कर्मकाण्ड होते हैं। तीर्थाटन के संबंध में रामोत्तरतापनीयोपनिषद्, जाबालोपनिषद् एवं मुक्तिकोपनिषद् में काशीतीर्थ की महिमा बतायी गयी है। वहाँ पर कहा गया है कि-

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु.............
अविमुक्तं न विमुञ्चेत् .... ।

(रामोत्तर. उप. 1 एवं जाबालोपनिषद् 1)

भावार्थ यह है कि यहाँ(काशी में) जीव के प्राण निकलते समय उसे भगवान् रुद्र तारकब्रह्म का उपदेश करते हैं, जिससे वह अमृतमय होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसलिये अविमुक्त का ही सेवन करें। अविमुक्त(काशी) तीर्थ को कभी न छोड़ें।

.........यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेश्वरः।।
जन्तोर्दक्षिणकर्णे तु मत्तारं समुपादिशेत्।
निर्धूताशेषपापौघो मत्सारूप्यं भजत्ययम्।। (मुक्ति. उप. 20-21)

भावार्थ यह है कि काशीक्षेत्र में चाहे कहीं भी मृत्यु हो, शंकरजी प्राणी के दाहिने कान में मेरे(भगवान् राम के) तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं, जिससे उसके सारे पापों के समूह झड़ जाते हैं, तथा वह मेरे सारूप्य को प्राप्त हो जाता है।

भस्मजाबालोपनिषत् में काशी को मुक्तिस्थान मानते हुए भी यह कहा गया है कि यहाँपर जो

मल-मूत्र त्यागते, प्रतिग्रह में रत रहते, भस्म एवं रुद्राक्ष से रहित होते, जो सोमवार व्रत तथा यज्ञादि नहीं करते, जो विश्वेश्वर की पूजा नहीं करते, पंचाक्षर का जप नहीं करते तथा भैरव की अर्चना नहीं करते उनकी पहले घोर भैरवी नरक की यातना भोगने के बाद शुद्धि होती है और फिर शिव की प्राप्ति होती है।

ये चान्ये काश्यां पुरीषकारिणः प्रतिग्रहरतास्त्यक्तभस्मधारणास्त्यक्त रुद्राक्षधारणा–स्त्यक्तसोमवारव्रतास्त्यक्तग्रहयागास्त्यक्तविश्वेश्वरार्चनस्त्यक्त पञ्चाक्षरजपा–स्त्यक्तभैरवार्चना भैरवीं घोरदियातनां नाना विधां काश्यां परेता भुक्त्वा ततः शुद्धा मां प्रपद्यन्ते च। (अध्याय-2)

आग्नेय, वारुण, मान्त्र, वायव्य, ऐन्द्र, मानस, शान्ति (क्षमा) और ज्ञान-ये आठ प्रकार के स्नान यथा अवसर तथा यथायोग्य शिवोपासकों को करना चाहिये। रुद्रमन्त्र से विधिवत् विनिर्मित भस्म-विलेपन का नाम 'आग्नेय' स्नान है। जलस्नान 'वारुण' स्नान है। यह स्नान तीन बार प्रतिदिन करना चाहिये। मूर्धा को हाथ से स्पर्श करते हुए शिव के ध्यानपूर्वक एकादश शिवनामोच्चारण 'मान्त्र' स्नान है। वातनिक्षिप्त गोपदरजस्नान 'वायव्य' स्नान है। सूर्यालोक की स्थिति में बरसते हुए जल से 'एन्द्री' दिशा में स्थित होकर किया जानेवाला स्नान 'एन्द्र' स्नान है। सर्वतीर्थो का स्मरण करते हुए हाथ से जल ग्रहण कर सिरपर छिड़कना 'मानस' स्नान है। भीषण ताड़ना और तिरस्कार प्राप्त होनेपर भी अनुद्विग्न और आक्रोशरहित रहना 'क्षमा' स्नान है। तीर्थयात्रियों, योगियों, तपस्वियों और ब्रह्मवेत्ताओं को जिस फल की प्राप्ति होती है उसी फल की प्राप्ति क्षमाशील को होती है-

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरांस्यायतनानि च।
तेषु स्नातस्य यत् पुण्यं तत्पुण्यं क्षान्तिवारिणा।।
यैव ब्रह्मविदां प्राप्तिर्यैव प्राप्तिस्तपस्विनाम्।
यैव योगाभियुक्तानां गतिः सैव क्षमावताम्।। (शिवोपनिषद् 5/37, 40)

शिव-ज्ञान से स्नान 'ज्ञान-स्नान' है। शिवविज्ञानी सूर्यरश्मिवत् नित्य शुद्ध रहता है-

ज्ञानामलाम्भसा स्नातः सर्वदैव मुनिः शुचिः।
निर्मलः सुविशुद्धश्च विज्ञेयः सूर्यरश्मिवत्।। (शिवोपनिषद् 5/41)

शिवोपनिषद् के अनुसार शिवोपासना के लिये जल, मन्त्र, दया, दान, सत्य, इन्द्रियसंयम, ज्ञान, भावात्मशुद्धिरूप अष्टविध शौच का नित्य ही आलंबन लेना चाहिये -

जलं मन्त्रं दया दानं सत्यमिन्द्रियसंयमः।
ज्ञानं भावात्मशुद्धिश्च शौचमष्टविधं श्रुतम्।। (शिवोपनिषद् 5/44)

शिवार्चन में भस्म एवं रुद्राक्ष का बड़ा ही महत्त्व माना गया है। जाबाल्युपनिषद् में पाशुपत मत की व्याख्या करते समय पशुपति के ज्ञान हेतु विभूति धारण करने को कहा गया है। वहाँपर विभूति

धारण करने की विस्तृत विधि भी बतायी गयी है। इस विधि का ऊपर उल्लेख हो चुका है। बृहज्जाबाल(3, 4 ब्राह्मण), कालाग्निरुद्र, अथर्वशिरस्(3/5), भस्मजाबाल(अध्याय 1), शिवोपनिषद्, सिद्धांतशिखोपनिषद्, रुद्रोपनिषद् जैसे अनेक उपनिषदों में भस्मधारण की विधि एवं महात्म्य को बतलाया गया है।

शिवोपासना में रुद्राक्ष मुख्य अंग है। इस कारण रुद्राक्ष का विशेष महत्त्व बताया गया है। रुद्राक्षजाबाल आदि उपनिषदों में इसकी उत्पत्ति, प्रकार एवं धारणविधि का विस्तार से वर्णन है। त्रिपुरासुर के वध के समय भगवान् शिव की आँखों से अश्रुबिन्दु गिरे जिनसे रुद्राक्ष की उत्पत्ति हुई। इस घटना का विस्तृत वर्णन शिवपुराण एवं देवीभागवत आदि पुराणों में पाया जाता है।

रुद्राक्ष वर्णो के अनुकूल चार प्रकार के होते हैं- श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण। श्वेत ब्राह्मण को, रक्त क्षत्रिय को, पीत वैश्य को तथा कृष्ण शूद्र को धारण करना चाहिये। रुद्राक्षजाबाल उप. के अनुसार रुद्राक्ष सभी-वर्णों को धारण करना चाहिये क्योंकि यही शिवजी की आज्ञा है।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया। (1/8)

यही बात शिवपुराण की विद्येश्वरसंहिता(25/47) में कही गयी है। रुद्राक्ष एक से चौदह मुखतक के होते हैं। जिस रुद्राक्ष में स्वंय छिद्र होता है उसे उत्तम तथा जिसमें व्यक्ति छेद करता है वह मध्यम कोटि का माना गया है(रुद्राक्षजाबाल 1/12-13)। शिवपुराण तथा देवीभगवत में भी रुद्राक्षधारण संबन्धी विधि तथा उनके फलों का वर्णन रुद्राक्षजाबालोपनिषद् के समान ही किया गया है। एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिवस्वरूप, द्विमुखी साक्षात् अर्धनारीश्वररूप, त्रिमुखी तीन अग्नियों का रूप, चतुर्मुखी साक्षात् ब्रह्माजी का स्वरूप, पंचमुखी पंचदेवस्वरूप, षण्मुखी कार्तिकेयस्वरूप, सप्तमुखी अनंग नामवाला, अष्टमुखी साक्षात् विनायक, नवमुखी नवदुर्गारूप, दशमुखी साक्षात् जर्नादनरूप, एकादशमुखी साक्षात् रुद्र, द्वादशमुखी साक्षात् महाविष्णुरूप, त्र्योदशमुखी विश्वदेवरूप तथा चतुर्दशमुखी भगवान् शिव का नेत्रस्वरूप है।(रुद्राक्षजा. उ. 2/1-16)

रुद्राक्ष धारण करनेवाले को निम्नलिखित पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये-

मद्यं मांसं च लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च।
श्लेष्मातकं विड्वराहमभक्ष्यं वर्जयेन्नरः।। (रुद्राक्षजाबाल. उप. - 2/17)

अर्थात्- रुद्राक्ष धारण करनेवाले को मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहजन, लिसोड़ा और विड्वराह (ग्राम्य सूकर)-इन पदार्थों का परित्याग कर देना चाहिये।

भगवान् शिव की (सगुण-साकार-विधि से की जानेवाली) पूजा मूर्ति एवं लिंग दोनों रूपों में होती है। साथ ही शिवपरिवार के अन्य सदस्यों की भी पूजा होती है। शिवपरिवार के प्रमुख सदस्यों में देवी, गणेश, नन्दी, कार्तिकेय आदि हैं। केनोपनिषद्(3/12), मैत्रेयी सं.(2/9/1/4), महानारायणोपनिषद्(2/12, 13, 14; 12/4), कैवल्योपनिषद्(7) आदि अनेक स्थानों पर देवी

उमा या गौरी आदि का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार नन्दी तथा गणेश का उल्लेख भी अनेक स्थलों यथा महानारायणोपनिषद्(2/3, 4, 11, इत्यादि), बोधायन गृह्यसूत्र (3/3/10, 11, 12, 13, 14), गणेशपूर्वता. उप.(1/5), गणपत्युपनिषद्(प्रथमखण्ड) में पाया जाता है। इसी प्रकार कार्तिकेय का उल्लेख भी महानारायणोपनिषद्(2/5), मैत्रेयीसंहिता (2/9/1/5), तैत्तिरीयआरण्यक(10/1/6), जाबालदर्शनोपनिषद् तथा जाबाल्युपनिषद् इत्यादि में अनेक स्थलों पर हुआ है।

शिवलिंग का उल्लेख भी अनेक उपनिषदों में हुआ है। उदाहरण के लिये नारायणोपनिषद्[1] (3/16) जहाँपर **'शिवाय नमः। शिव लिंगाय नमः।'** कहा गया है, इसी प्रकार रुद्रोपनिषद् में शिवलिंग के माहात्म्य को दर्शाते हुए कहा गया है कि चाण्डाल भी लिंगार्चन कर ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ हो जाता है।

शिवलिंगार्चनयुतश्चाण्डालोऽपि स एव ब्राह्मणाधिको भवति।

(रुद्रोपनिषद्)

नारायणोपनिषद्(चौखम्बासंस्करण) एवं लिंगोपनिषद् में भगवान् शिव के अनेक प्रकार के लिंगों का उल्लेख है-उर्ध्वलिंग, सुवर्णलिंग, दिव्यलिंग, भवलिंग, शर्वलिंग, आत्मलिंग, ओंकारलिंग, वाणलिंग, प्रणवलिंग इत्यादि। वास्तव में संसार में जो कुछ स्थावर-जंगम है वह सब शिव की विभूति होने के कारण लिंगरूप ही है। इसी कारण ग्रन्थों में नाना प्रकार के लिंगों की कल्पना की गयी है। शिव पुराण में भी उपरोक्त कई प्रकार के लिंगो की चर्चा की गयी है।

विद्वानों ने शिवलिंग के कई अर्थ बताये हैं। यथा- पहला अर्थ ज्ञापक अर्थात् प्रकट करनेवाला है। क्योंकि निर्गुण शिव के व्यक्त होने से सृष्टि की उत्पत्ति हुई। दूसरा अर्थ आलय है, अर्थात् यह प्राणियों का परमकारण है और निवासस्थान है। तीसरा अर्थ है **'लीयते यस्मिन्निति लिङ्गम्'**, अर्थात् सब दृश्य जिसमें लय हो जायँ वह परमकारण लिंग है। शिवपुराण में लिखा है कि एकमात्र शिव ही निर्गुण-निराकार होने से निष्कल हैं; निष्कल होने से ही शिव का निराकार(आकारविशेषशून्य) लिंग ही पूज्य होता है। शिव सकल एवं निष्कल दोनों ही हैं। अतः उनका निराकार लिंग और साकार स्वरूप दोनों ही पूज्य होते हैं। शिव से समस्त विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त में उनका लय होता है। सबके आश्रय होने से और सबके लय का अधिष्ठान होने से भगवान् शिव ही लिंग कहलाते हैं। अथवा कार्य द्वारा कारणरूप से लिंगित या अवगत होने से ही भगवान् 'लिंग' शब्द द्वारा पुकारे जाते हैं।

पुनः कूटस्थ स्थाणु परब्रह्म ही शिव हैं। स्थाणु(ठूँठ) लिंगरूप में व्यक्त शिव हैं, शिवा जलहरी हैं। शिवलिंग का कुछ अंश जलहरी से ग्रस्त होता है, यही योनिग्रस्त लिंग कहलाता है। अर्थात् प्रकृति

---

[1] नारायणोपनिषद् के अलग-2 पाठ मिलते हैं। उपरोक्त पाठ, **'ईशादिअष्टोत्तरशतोपनिषद्'** जो चौखम्बा विद्या भवन से 1991 में प्रकाशित है, से लिया गया है।

से युक्त परमेश्वर कहलाता है–

पीठमम्बामयं सर्वंशिवलिंग च चिन्मयम्।

लिंग का ऊपर का अधिकांश अंश, जो योनि से बाहर होता है, प्रकृति से परे होता है। प्रकृति से युक्त परम ब्रह्म ही सर्वकर्त्ता तथा सर्वफलदाता है। जबकि प्रकृति से परे निर्गुण केवलस्वरूप ब्रह्म उदासीन होता है। शुद्ध शिवतत्त्व त्रिगुणातीत है। इसीलिये शिवलिंग, जिसमें शिव–शक्ति दोनों ही अंकित होते हैं, की पूजा की जाती है।

भस्मजाबालोपनिषत् में ब्राह्मणके कर्त्तव्य बताते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि उसे(अन्य बातों के अतिरिक्त) शिवलिंग की त्रिकाल अर्चना करनी चाहिये। इसके बाद कुश के आसन पर बैठकर साम्बशिव का(सगुण–निर्गुण) ध्यान कर रुद्रसूक्त(शतरुद्रिय के मन्त्र) द्वारा लिंग का श्वेत भस्म से अभिषेक करना चाहिये तथा सूखे अथवा गीले त्रिदलयुक्त बिल्वपत्र को भी चढ़ाना चाहिये।

शिवलिङ्गं त्रिसंध्यमभ्यर्च्य कुशेष्वासीनोध्यात्वा साम्बं मामेव वृषभारूढं हिरण्यबाहुं .... अनाद्यन्तं रुद्रसूक्तैरभिषिच्य सितेन भस्मना श्रीफलदलैश्च त्रिशाखैरार्द्रैरनार्द्रैर्वा। (अध्याय–2)

इसके पश्चात् अन्य मन्त्रों के अलावा पंचाक्षर मन्त्र को जपना चाहिये।

भगवान् शिव की उपासना में बिल्वपत्र का बड़ा माहात्म्य माना गया है। भगवान् शिव को बिल्वपत्र बहुत ही प्रिय हैं। बिल्व के पेड़ की भी शैवों ने बहुत महिमा गायी है। उपनिषदों में भी इनके महत्त्व की चर्चा की गयी है। उदाहरण के लिये जाबालदर्शनोपनिषद्(5/4) में आत्मशुद्धि या नाड़ी–शुद्धि के उपाय बताते हुए कहा गया है कि इस उपाय को पर्वत–शिखर, नदी–तट, बिल्ववृक्ष के समीप, एकान्त वन अथवा किसी पवित्र एवं मनोरम स्थान में अपनाना चाहिये। स्पष्ट है कि यहाँपर बिल्ववृक्ष को पवित्र एवं सिद्धि देनेवाला स्वीकार किया गया है। बिल्वोपनिषद् में इस प्रश्न के उत्तर में कि सभी पापों से मुक्त हो शिव–सायुज्य किस वस्तु द्वारा पूजा किये जानेपर प्राप्त हो सकता है? ऐसी एक कौन–सी वस्तु है जिससे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? भगवान् शिव कहते हैं–

न वक्तव्यं न वक्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन।
मत्स्वरूपस्त्वयं ज्ञेयो बिल्ववृक्षो विधानतः
एकेन बिल्वपत्रेण संतुष्टोऽस्मि महामुने।। (बिल्वोपनिषद्)

भावार्थ यह है कि बिल्ववृक्ष भगवान् शिव का स्वरूप है तथा मात्र एक बिल्वपत्र द्वारा पूजा करने पर भगवान् शिव प्रसन्न हो जाते हैं। आगे पूजा–विधि की चर्चा के दौरान यह कहा गया है कि बिल्व–पत्र के बिना पूजा सदैव व्यर्थ हो जाती है।

बिल्वपत्रं बिना पूजा व्यर्थभवति सर्वदा। (बिल्वोपनिषद्)

बिल्वोपनिषद् में बिल्व की महिमा का सर्वत्र व्याख्यान किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पुराणों में बिल्वपत्रों को जो महत्त्व दिया गया है उसका आधार भी उपनिषद ही है।

उपनिषदों में पंचाक्षर मंत्र की भी बहुत ही महिमा बतायी गयी है। त्रिपुरातापिन्युपनिषत् में कहा गया है कि पंचाक्षर तथा यजुर्वेद के मन्त्रों(रुद्रि) द्वारा शिवोपासना करनेवाला रुद्रत्व को प्राप्त कर लेता है। मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

ॐ नमः शिवायेति याजुषमन्त्रोपासको रुद्रत्वं प्राप्नोति। कल्याणं प्राप्नोति।

(चौथा उपनिषत्)

पंचब्रह्मोपनिषद् में कहा गया है कि भगवान् शिव, जो परब्रह्मस्वरूप हैं, पंचाक्षरमय हैं। इस तथ्य को जानकर पंचाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये।

पञ्चाक्षरमयं शंभुं पर ब्रह्मस्वरूपिणम्।
नकारादियकारान्तं ज्ञात्वा पञ्चाक्षरं जपेत्। (24, 25)

भस्मजाबालोपनिषद् में पंचाक्षर मन्त्र को सर्वश्रेष्ठ एवं तारक मन्त्र कहा गया है।

..........परमो मन्त्रः। तारकोऽयं पञ्चाक्षरः (अध्याय - 2)

आगे काशी के सन्दर्भ में कहा गया है कि वहाँ पर शैव लोग मुक्तिप्राप्ति के लिये पंचाक्षर मन्त्र का उपदेश करते हैं।

तत्रैव मुक्त्यर्थमुपदिश्यते शैवोऽयं मन्त्रः पञ्चाक्षरः। (अध्याय - 2)

वहीं पर यह भी कहा गया है कि ॐकार के साथ पंचाक्षर मन्त्र के जप से कल्याण (मोक्ष) प्राप्त होता है।

उपसंहार

उपनिषदों में शिव या रुद्र संबन्धी विचार उत्कृष्टता को प्राप्त कर चुका था। रुद्र की प्रधानता का परिचय हमें छान्दोग्य, बृहदारण्यक, मैत्रेयी, महानारायणोपनिषद्, नृसिंहोत्तरतापनि, केन, श्वेताश्वतर आदि प्राचीन उपनिषदों तथा अथर्वशिरस्, रुद्रहृदय, नीलरुद्र, कैवल्य, रुद्र, गर्भ, जाबालि, बिल्व, लिंग, शिव, भस्मजाबाल, रुद्राक्षजाबाल, बृहज्जाबाल, इत्यादि बाद की उपनिषदों में मिलता है। इन उपनिषदों में भगवान् शिव को परब्रह्म, सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता एवं हर्त्ता स्वीकार किया गया है। उनकी उपासना से ही व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

प्रारम्भ की उपनिषदों में साम्प्रदायिकता का अभाव होने के कारण ही प्राचीन आचार्यों द्वारा उनके उद्धरण दिये गये हैं। बाद की कुछ उपनिषदों पर शैव, कुछ पर शाक्त तथा कुछ पर वैष्णव आदि मतों के प्रभाव मिलते हैं। इतना होनेपर भी बहुत सी शुद्ध वैष्णव उपनिषदों जैसे रामोत्तरतापनीयोपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद्, नारायणोपनिषद्, श्रीकृष्णोपनिषद् आदि में भी शिवमाहात्म्य का संक्षिप्त परिचय मिलता है।

उपनिषदों में निर्गुण शिव के साथ-साथ सगुण शिव की भी कल्पना प्राप्त होती है। शिव की अष्टमूर्तियों के उल्लेख भी वहाँ प्राप्त होते हैं। सगुण-साकार की उपासना के साथ-साथ लिंगोपासना

का भी परिचय हमें उपनिषदों में प्राप्त होता है। भगवान् शिव की प्राप्ति के ज्ञान, कर्म, भक्ति एवं योग आदि साधनों का वर्णन भी वहाँ प्राप्त होता है। सगुण उपासना के संदर्भ में भस्म, रुद्राक्ष, बिल्वपत्र, काशीतीर्थ की महिमा एवं उनके उपयोग की विधि का भी सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है। उपासना के सन्दर्भ में कहीं-कहीं इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि 'इस साधन' के अतिरिक्त अन्य सभी साधन तुच्छ हैं। जहाँपर ऐसी बातें मिलती हैं उससे यह नहीं समझना चाहिये कि अन्य साधन सचमुच में व्यर्थ हैं।

जब किसी साधन का उपदेश दिया जाता है तो वह उपदेश लेनेवाले की योग्यता, क्षमता, रुची आदि के संदर्भ में होता है। उदाहरण के लिये बुद्धि-प्रधान, सतोगुणी, आत्मविश्वासी, वीतरागी, चिन्तन-प्रधान, साधन चतुष्टय सम्पन्न[1] व्यक्ति के लिये ज्ञान-मार्ग (जिसमें चिन्तन एवं ध्यान प्रमुख होता है); रजोगुणी, बहिर्मुखी प्रवृत्तिवाला, चंचल, वासना-प्रधान व्यक्तित्व के लिये कर्मयोग; भावना या भाव-प्रधान, न तो पूर्णतया बहिर्मुखी हो और न ही पूर्णतया अन्तर्मुखी, सरल, कोमल एवं सरस हृदयवाले व्यक्ति के लिये भक्तिमार्ग एवं सतोगुणी, बलिष्ठ शरीरवाले, अन्तर्मुखी, वीतरागी, दृढ़ संकल्प-वाले, आत्मविश्वासी व्यक्ति के लिये योगमार्ग सबसे श्रेष्ठ मार्ग माना जाता है। ऊपर बताए गुणों से युक्त व्यक्तित्त्ववालों को उनके अनुसार ही साधन-मार्ग का उपदेश सर्वोत्कृष्ट माना जायगा। परन्तु इससे यह नहीं समझा जाना चाहिये कि दूसरे साधनों से सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। यथार्थतः सभी साधन एक ही लक्ष्यतक पहुँचाते हैं। परन्तु यह जरुरी नहीं है कि हर व्यक्ति एक ही प्रकार का साधन करे। क्योंकि साधन करने की योग्यता सबमें अलग-अलग होती है। किसी को ज्ञान तो किसी को भक्ति से तो किसी को योग-साधन से शीघ्र सफलता प्राप्त हो सकती है। कहा जाता है कि अनेक जन्मों की साधना के उपरान्त ही सिद्धि प्राप्त होती है (गीता 6/45)। पिछले जन्मों से व्यक्ति जिस तरह की साधना करता आ रहा है उसी तरह की साधना वर्त्तमान जन्म में शीघ्र सिद्धी प्रदान करती है अतः उसके लिये उसी प्रकार की साधना सर्वोत्तम होगी। पिछली साधना के अनुसार ही उसकी रुचि, व्यक्तित्व, सुविधा, गुरु आदि की प्राप्ति वर्त्तमान जन्म में होती है। हर एक गुरु अलग-अलग मार्गों से सिद्धि को प्राप्त किया हुआ होता है और उसी मार्ग का वह उपदेश अपने शिष्यों को देता है।

पुनः यह भी नहीं समझना चाहिये कि प्रत्येक मार्ग एक दूसरे से पूर्णतया स्वतंत्र हैं। सच तो यह है कि ज्ञान, भक्ति, कर्म तथा योग- इन सभी साधनों का प्रयोग हर-एक व्यक्ति करता है चाहे वह ज्ञानमार्गी है या कर्म या भक्ति या योगमार्गी है। परन्तु ज्ञानमार्गी में ज्ञान की प्रधानता, कर्ममार्गी में कर्म की प्रधानता, भक्तिमार्गी में भाव की प्रधानता तथा योगमार्गी में ध्यान की प्रधानता होती है। इसी कारण कुछ विद्वान्, जैसे महर्षि अरविन्द, सभी साधनों को एक दूसरे का पूरक मानते हैं। शुद्ध

---

[1] ऐसा व्यक्ति जिसमें नित्यानित्यवस्तुविवेक हो; सभी प्रकार के भोगों-सांसारिक एवं स्वर्गीय-से निवृत्त हो; शम, दम, तितिक्षा, उपरति, उपराम और श्रद्धा रूपी षडसंम्पत्तियुक्त हो तथा मोक्षप्राप्ति की तीव्र इच्छा से भी अभिभूत हो।

ज्ञान बिना भक्ति, कर्म एवं ध्यान के कैसे फलदायी होगा? इसी प्रकार योग की सफलता के लिये भी भक्ति, भाव, ज्ञान एवं कर्म की सहायता आवश्यक है। कहने का अभिप्राय यह है कि हर व्यक्ति के लिये कोई एक साधन प्रमुख होता है तथा अन्य साधन गौण होता है। ऐसा नहीं होता कि केवल एक ही साधन का व्यक्ति उपयोग करके सिद्धि को प्राप्त कर जाय।

संक्षेप में उपनिषदों में कहीं भक्तिपर कहीं ज्ञानपर और कहीं योगपर बल दिया गया है। जिसका तात्पर्य अन्य मार्गों की हीनता दिखाना नहीं है यद्यपि उनकी भाषा कहीं-कहीं ऐसी लगती है। ऐसे स्थलों को अगर हम उसी उपनिषद् के अन्य प्रसंगों के साथ रखकर समझने का प्रयास करेंगे तो जैसा ऊपर कहा गया है वैसा ही निष्कर्ष प्राप्त होगा।

(प्रस्तुत निबंध मुख्यरूप से निम्नलिखित ग्रन्थों पर आधारित है:

1. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी द्वारा 1991 में प्रकाशित तथा वासुदेव लक्ष्मण पनशिकर द्वारा संपादित 'ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्'।
2. मोतीलाल बनारसीदास द्वारा 1984 में प्रकाशित तथा पं. जगदीश शास्त्री द्वारा संपादित 'उपनिषत्संग्रह'।
3. गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण का 'उपनिषद्-अंक')

* * *

मांसाहार न करने की प्रशंसा

इष्टं दत्तमधींत च क्रतवश्च सदक्षिणाः।
अमांसभक्षणस्यैव कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।
सर्वे वेदा न तत् कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत।
यो भक्षयित्वा मांसानि पश्चादपि निवर्तते।।

यज्ञ, दान, वेदाध्ययन तथा दक्षिणासहित अनेकानेक क्रतु (यज्ञ)-ये सब मिलकर मांस-भक्षण के परित्याग की सोहलवीं कला के बराबर भी नहीं होते।

(महाभारत, अनुशासनपर्व, गीताप्रेस, अध्याय 145 दक्षिणात्यपाठ अ. 11 पृ. 5990)

भारत! जो पहले मांस खाता रहा हो और पीछे उसका सर्वथा परित्याग कर दे, उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसे सम्पूर्ण वेद और यज्ञ भी नहीं प्राप्त करा सकते।

(महाभारत, अनुशासन पर्व 115/116)

रामायण ग्रन्थों में भगवान् शिव

वर्तमान समय में अनेक रामायण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। धार्मिक ग्रन्थों में रामायणों की संख्या सौ करोड़ बतायी गयी है क्योंकि प्रत्येक कल्प एवं प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामरूप से भगवान् विष्णु या महाविष्णु अवतरित हो लीलाएँ करते रहे हैं। इन लीलाओं की भिन्नता से ही अनेक रामायणों की रचना हुई। उदाहरण के लिये 'रामचरितमानस' में चार कल्प के रामों की मिली-जुली कथा है[1]। रामचरितमानस में कहा गया है-

नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा।। (बालकाण्ड 32 ख/3)
कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए।। (बा. का. 32 ख/4)
पुनः- **राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका।।** (बा. का. 121/1)

अद्भुत रामायण (1/3, 4) में कहा गया है कि सौ करोड़ में से 25000 रामायण पृथ्वी लोक में प्रचलित हैं शेष ब्रह्म आदि लोकों में पितर, देवता आदि लोग श्रवण करते हैं।

आजकल मान्यता प्राप्त सभी रामायणों में बाल्मीकीय रामायण सबसे प्राचीन तथा तुलसीदास-कृत रामचरितमानस सबसे अर्वाचीन माना जाता है। प्रस्तुत लेख मुख्यरूप से इन्हीं दोनों रामायणों पर आधारित है।

(1) बाल्मीकीय रामायण

चूँकि रामायण रामभक्ति प्रतिपादक वैष्णव ग्रन्थ है फलस्वरूप इसमें भगवान विष्णु को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया गया है। परन्तु जहाँ-जहाँ भगवान् शिव का प्रसंग आया है, शिव को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उन्हें देवताओं में सर्वोच्च तथा देवों के देव माना गया है (बा. रामायण, बालकाण्ड 45/22-26, 55/12-13, 66/11-12, इत्यादि, उ. का. 87/11 इत्यादि)।

बा. रामायण में शिव सदा ही मानव कल्याण में लगे रहते हैं। विवाह के बाद भी महादेवजी के उमादेवी के गर्भ से कोई पुत्र नहीं हुआ तब ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शिव के पास जा उन्हें प्रणाम कर बोले -

देवदेव महादेव लोकस्यास्य हिते रत।
सुराणां प्रणिपातेन प्रसादं कर्तुमर्हसि।। (बा. काण्ड 36/9)

अभिप्राय यह है कि इस लोक के हित में तत्पर रहनेवाले देवदेव महादेव! देवता आपके चरणों

---

[1] एक कल्प में शिव के गण, नारदजी के श्रापवश, रावण एवं कुंभकरण बने। दूसरे कल्प में राजा भानुप्रताप ब्राह्मणों के श्रापवश रावण बना। तीसरे कल्प में जलंधर रावण बना। चौथे कल्प में हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु रावण एवं कुंभकरण बने। इन रावणों के वध हेतु श्रीहरी ने भी भिन्न-भिन्न कारणों से अनेक बार रामरूप धारण किया। (देखिए मानस बालकाण्ड 121/2 से 123/3 तथा 175/1-2)।

में मस्तक झुकाते हैं। इससे प्रसन्न होकर आप इन देवताओं पर कृपा करें। भगवान् शिव वरदाता, आशुतोष और दयानिधि हैं।(बा. काण्ड 55/13, उ. का. 16/33 आदि)

भगवान् शिव अपने ललाट पर चन्द्रमा को धारण करते हैं, वे सत्पुरुषों की पीड़ा हरनेवाले तथा भक्तों को मनोवांछित वर प्रदान करनेवाले श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट देवता हैं।

ततः सतामार्ति हरं परंवरंवरप्रदं चन्द्रमयूखभूषणम्। (बा. रा. उत्त. का. 31/44)

त्रिमूर्ति में ब्रह्मा प्रायः पीछे-पीछे ही रहते हैं और विश्व के सक्रिय संचालन और नियन्त्रण के कार्य में इनका स्थान त्रिमूर्ति के अन्य दो देवताओं, विष्णु एवं शिव की अपेक्षा घटकर है। जब-जब देवताओं पर कोई संकट पड़ता है, बहुधा ब्रह्मा देवताओं की ओर से इन्हीं दो देवताओं में से किसी एक से सहायता की याचना करते हुए नजर आते हैं(बा. काण्ड 36/8)। प्रत्येक महान् संकट में देवतागण सहायता और परित्राण के लिये भगवान् शिव के पास दौड़े जाते हैं। एक बार तो स्वयं विष्णु अन्य देवताओं को लेकर उनकी शरण में गये थे(बा. काण्ड 45/21-22)।

बा. रामायण में एक स्थल पर तो स्पष्टरूप से शिव को जगत् की सृष्टि और अन्त करनेवाला, सब लोकों का आधार और परमगुरु कहा गया है।

जगत्सृष्ट्यन्तकर्तारमजमव्यक्तरूपिणम्।
आधारं सर्वलोकानामाराध्यं परमं गुरुम्।। (उत्तरकाण्ड- 6/2)

उपरोक्त श्लोक का भावार्थ यह है कि "जो जगत् की सृष्टि और संहार करनेवाले, अजन्मा, अव्यक्त रूपधारी, सम्पूर्ण जगत् के आधार, आराध्य देव और परमगुरु हैं।"

एक अन्य स्थल पर शिव को अक्षर और अव्यय माना गया है(उत्तरकाण्ड 4/29)। वास्तव में शिव का जो स्वरूप बाल्मीकीय रामायण में दिखाई देता है, उसको हम उनके दार्शनिक परब्रह्मस्वरूप, जिनकी चर्चा श्वेताश्वतरादि उपनिषदों में स्पष्टरूप से की गयी है, का ही एक लोकप्रिय और सहजगम्यरूप मान सकते हैं।

भगवान् शिव का योगाभ्यास के साथ जो सम्बन्ध पहले-पहल उपनिषदों में दृष्टिगोचर होता है, वह रामायण में अधिक स्पष्ट हो जाता है। शिव की उपासना का और उनको प्रसन्न करने का सामान्य मार्ग तपश्चर्या है। 'भगीरथ' ने उनको इसी प्रकार सन्तुष्ट किया(बा. काण्ड 43/1, 2) और विश्वामित्र ने भी(बा. काण्ड 55/12, 14)। स्वयं देवताओं को भी शिव से वर पाने के लिये तप करना पड़ता है(उ. काण्ड 13/21-22)। भगवद्दर्शन और मोक्ष-प्राप्ति के लिये तप एवं योग को अत्यन्त उपयुक्त साधन माना गया है। तप एवं योगाभ्यास से मानव एवं दानव देवताओं से वर की प्राप्ति करते थे। रामायण में तप एवं योग को इतना महत्त्व दिया गया है कि शिव तक को, जो स्वयं योगाधिगम्य थे, योगाभ्यासी माना गया है और उन्हें हिमालय में तप एवं योगाभ्यास करते हुए दिखाया गया है(बालकाण्ड 36/26, 37/1, 3)।

यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये कि भगवान् शिव को तपस्या की क्या आवश्यकता है? अगर उन्हें तपस्या की आवश्यकता है तो वे सर्वोच्च देव कैसे हो सकते हैं? वास्तव में हिन्दू ग्रन्थों में त्रिदेवों को तप-योग करते दिखाया गया है परन्तु भगवान् शिव को परमयोगी एवं परमतपी दिखाया गया है। उन्हें योगाचार्य भी कहा जाता है। उन्हें ऐसा करते इसलिये दिखाया गया है कि वे योगियों एवं तपस्वियों के आदर्श बन सकें। गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं कि तीनों लोकों में हमारे लिये कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है फिर भी मैं कर्म या कर्त्तव्य का पालन इसलिये करता हूँ कि महापुरुषों का आचरण ही लोगों को आदर्श आचरण की शिक्षा देता है-

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते।।
न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।। (गीता 3/21-24)

इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव भी लोकशिक्षा एवं आदर्श स्थापना हेतु सतत योगाभ्यास में रहते हैं। इसी तथ्य को ग्रन्थों में अपने-अपने ढंग से व्यक्त किया गया है।

भगवान् शिव की उदारता एवं दयालुता संबंधी कई कथाएँ रामायण में पायी जाती हैं। एक कथा शिव के विष-पान की है। यह कथा देवताओं के सागरमन्थन की वृहत कथा का एक भाग है। मन्थन से प्रकट विष की ज्वाला से भयभीत देवतागण शिव के पास गये और देवताओं की ओर से विष्णु ने प्रार्थना की कि वह सागरमन्थन के प्रथम फल के रूप में इस हलाहल को ग्रहण करें। इस पर भगवान् शिव उस भयंकर विष को इस प्रकार पी गये मानो वह अमृत हो।(बा. काण्ड सर्ग 45/18-26)

दूसरी कथा गंगावतरण की है। भगीरथ की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने गंगा के वेग को रोकने के लिये, उसे पृथ्वी पर पहुँचने से पहले अपने सिर पर लेना स्वीकार कर लिया(बा. काण्ड सर्ग 42/23-24 एवं 43/1-11 आदि)।

भगवान् शिव का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि उनकी उपासना न केवल देवता और मनुष्य करते हैं अपितु इन दोनों के शत्रु माने जानेवाले दानव भी करते हैं। विद्युतकेश दानव के पुत्र सुकेश पर पार्वती एवं भगवान् शिव ने कृपा की थी तथा उसे अमर बनाकर उसके रहने के लिये एक आकाशचारी नगराकार विमान दिया था(उ. का. 4/28-32)। एक बार देवताओं की प्रार्थना पर भी भगवान् शिव ने दानवों(सुकेश पुत्रों) का संहार करने से इन्कार कर दिया क्योंकि वह पहले ही उन दानवों का संहार न करने का वचन दे चुके थे(उ. का. 6/3-10)। रावण का जब एक बार अंहकार टूट गया था तब वह शिव का भक्त हो गया था तथा उनसे वरदान में चन्द्रहास नामक खड्ग प्राप्त किया था(उ. का. 16/23-44 तथा 31/40-44)। पुनः रावण-पुत्र मेघनाद को पूर्वकाल में

महादेवजी से तमोमयी माया प्राप्त हुई थी जिसके प्रभाव से वह अपने को अन्तर्धान कर लेता था (उ. का. 29/23)। लवणासुर के पास जो अमोघ शूल था वह भी भगवान् शिव का ही दिया हुआ था। (उ. का. 63/25)। इला को भगवान् शिव के वरदान से ही पुरुषत्व की प्राप्ति हुई थी (उत्तर का. 90/19-20)। वहीं पर बताया गया है कि भगवान् शिव को अश्वमेध यज्ञ सबसे बढ़कर प्रिय है। (उत्तर का. 90/12)

भगवान् शिव से नितान्त भिन्न स्वभाव भगवान् विष्णु का है। विष्णु ने कदाचित् ही किसी दानव को कोई वर दिया हो और कदाचित् ही किसी दानव ने कभी विष्णु की उपासना की हो।[1] वे सदा देवताओं के पक्षपाती तथा दानवों के संहारक रहे हैं। रामायण में शिव दानवों की उपासना स्वीकार करते हुए और उन्हें वरदान देते हुए पाये जाते हैं। इस प्रकार शिव मनुष्यों, सुरों और दानवों सभी के उपास्य-देव थे। शिव की इस विशेषता को लेकर उनके उपासकों ने उनका पदोत्कर्ष किया क्योंकि इस आधार पर उन्हें समदर्शी एवं पक्षपात रहित देवता माना। वही एक ऐसे देवता थे जिन्हें सारी सृष्टि के लोग पूजते थे। स्वयं विष्णु भी यह दावा नहीं कर सकते थे। इसी कारण शिव-भक्तों ने शिव को ही देवाधिदेव और परमेश्वर माना। एक देवता ब्रह्मा भी थे जिनकी उपासना देव और दानव दोनों करते थे। परन्तु ब्रह्मा के इस प्रकार पूजे जाने के कारण बिल्कुल भिन्न और अपेक्षाकृत बड़े सरल थे।

चराचर के स्रष्टा के रूप में उनकी कल्पना की गयी है। उन्होंने जहाँ देवों की सृष्टि की, वहाँ दानवों और मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों की भी। इस तथ्य को प्रजापति और उनकी दोनों पत्नियों, दिति एवं अदिति की कथा में लक्षणरूप से दर्शाया गया है। एक से दैत्य और दूसरे से देवता उत्पन्न हुए। देवों और दानवों के स्रष्टा होने के नाते दोनों के द्वारा ब्रह्मा की उपासना होनी स्वाभाविक थी। परन्तु ज्यों-ज्यों विष्णु एवं शिव का महत्त्व बढ़ने लगा, त्यों-त्यों ब्रह्मा का महत्त्व घटता गया और अन्त में लुप्तप्राय हो गया। यद्यपि प्राचीनता के नाते ब्रह्मा की गणना त्रिमूर्ति में होती रही; परन्तु वास्तव में भगवान् शिव ही एक ऐसे देवता रह गये जिनको यथार्थ में सर्वेश कहा जा सकता था।

डॉ. यदुवंशी (केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय दिल्ली) ने अपनी पुस्तक "शैव मत", जो लन्दन-विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत थीसिस है (तथा बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद पटना द्वारा 1955 में छपी है), के पृष्ठ 65-66 पर लिखा है कि "यह ध्यान देने योग्य बात है कि रामायण में लिंग का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उस समय लिंगोपासना का अस्तित्व न था। वास्तव में बाल्मीकीय रामायण से हमें शिवोपासना के संबंध में, वे सच्ची भक्ति से प्रसन्न होते थे और तपश्चर्या द्वारा उनसे वरदान प्राप्त किए जा सकते थे, इसके सिवा बहुत कुछ पता नहीं लगता। किसी शिव-मन्दिर अथवा शिव की मूर्ति का रामायण में उल्लेख नहीं है। चूँकि रामायण भक्तिवाद का विकसित रूप है और भक्तिवाद के विकास के साथ ही साथ मन्दिर एवं मूर्तियों का

---

1. अपवाद-स्वरूप प्रहलाद आदि कोई-कोई दानव ही विष्णुभक्त रहा है।

निर्माण हुआ, अतः यह मानना युक्तिसंगत होगा कि रामायण के समयतक मन्दिर में पूजा करने की प्रथा का प्रादुर्भाव हो चुका था और शिव की मूर्तियाँ भी बनायी जाती थीं और उनकी उपासना होती थी।"

डॉ. यदुवंशी का उपरोक्त कथन[1] कि रामायण में लिंगपूजा का उल्लेख नहीं है, ठीक नहीं है। रामायण का निम्नलिखित उद्धरण उपरोक्त मत का निराकरण करने के लिये पर्याप्त है -

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः।
जाम्बूनदमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते।।
वालुकावेदिमध्ये तु तल्लिङ्गं स्थाप्य रावणः।
अर्चयामास गन्धैश्च पुष्पैश्चामृतगन्धिभिः।। (उत्तरकाण्ड 31/42-43)

अर्थ यह है - राक्षसराज रावण जहाँ-जहाँ भी जाता था, वहाँ-वहाँ एक सुवर्णमय शिवलिंग अपने साथ लिये जाता था। रावण ने बालू की वेदी पर उस शिवलिंग को स्थापित कर दिया और चन्दन तथा अमृत के समान सुगन्धवाले पुष्पों से उसका पूजन किया।

एक अन्य जगह पर (युद्धकाण्ड 123/19-21), जहाँ श्रीराम के सेतुबन्धन का उल्लेख है, कहा गया है कि इस स्थान पर भगवान् शिव ने राम पर कृपा की थी। श्रीराम सीता से कह रहे हैं कि यह तीर्थ परम पवित्र और महान् पातकों का नाश करनेवाला होगा।

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद् विभुः।
एतत् तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्।
एतत् पवित्रं परमं महापातकनाशनम्।। (बा. रा. युद्धका. 123/20-21)

रामायणकार ने यहाँ पर संक्षेप में ही शिव की महत्ता तथा उनकी रामकृत उपासना का संकेत किया है। साथ ही यह कहा है कि यह स्थल एक महान् तीर्थ है। तीर्थ बिना मंदिर या मूर्ति के अधूरा ही होता है। अतः यद्यपि रामायण में स्पष्ट नहीं लिखा है कि राम ने शिवलिंग या मूर्ति स्थापित की परन्तु वर्णन से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि राम ने अवश्य ही कोई शिवप्रतिमा या लिंग स्थापित किया होगा जैसा कि अन्य रामायणों में उल्लेख है।

भगवान् शिव को सभी विद्याओं का आचार्य माना गया है। रामायण में एक जगह उन्हें धनुर्वेद का भी आचार्य माना गया है। विश्वामित्र ने तपस्या द्वारा भगवान् शिव को सन्तुष्ट कर उनसे अंग, उपांग, उपनिषद् और रहस्यों सहित धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था (बा. काण्ड 55/12-17)।

---

[1] डॉ. यदुवंशी के मत को ही डॉ. गया चरण त्रिपाठी तथा श्रीरामकृष्ण गोपाल भण्डारकर निम्नलिखित पुस्तकों में स्वीकार करते हैं। डॉ. गया चरण त्रिपाठी : वैदिक देवता; भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 548 तथा श्रीरामकृष्ण गोपाल भण्डारकर; वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत; भारतीय विद्या प्रकाशन, 1977, पृष्ठ 131

संक्षेप में बाल्मीकीय रामायण में भगवान् शिव को अविनाशी, अक्षर, अव्यय, जगत् का स्रष्टा, संहारकर्त्ता, जगदाधार, सबके आराध्य और परमगुरु माना गया है। यहाँतक कि श्रीहरि ने स्वयं भगवान् शिव को सब देवताओं में अग्रगण्य माना है (बालकाण्ड 45/24)। भगवान् शिव की भगवान् राम पर कृपा का भी उल्लेख रामायण में किया गया है। और उसी सन्दर्भ में रामेश्वर तीर्थ का भी उल्लेख किया गया है।

(2) रामचरितमानस

धार्मिक ग्रन्थों में (कम से कम उत्तर भारत में) सर्वाधिक जनप्रिय रामचरितमानस है। इस ग्रन्थ की विद्वानों ने अनेक दृष्टियों से प्रशंसा की है जिनमें एक रामचरितमानस की समन्वयात्मक भूमिका भी है। इसके अन्दर विभिन्न दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धान्तों का समन्वय है तथा इसमें किसी भी मत की आलोचना नहीं है। यद्यपि तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे और उन्होंने रामभक्ति का ही विस्तृत वर्णन अपने 'मानस' में किया है तथापि शैवों के लिये भी उनके मानस में पर्याप्त स्थान है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य शिवमहिमा एवं उसका स्वरूप, जो रामचरित मानस में चित्रित है उसकी रूपरेखा प्रस्तुत करना है।

अपने ग्रन्थ के आरंभ में वे गणेश की वन्दना के बाद भगवान् शिव की वन्दना करते हैं, उसके बाद अपने गुरु की और अन्त में अपने इष्टदेव की उसके पश्चात् हनुमान जी की। प्रश्न यह है कि तुलसीदास ने ऐसा क्यों किया कि दूसरे नम्बर पर अपने इष्टदेव भगवान् राम की जगह भगवान् शिव की प्रार्थना की? इसका उत्तर उनकी प्रार्थना में ही मिल जाता है और बाद में उसी बात का खुलासा अनेक जगहों पर मिलता है –

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्।। (मानस बा. काण्ड श्लोक 2)

अर्थात्– श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्रीपार्वतीजी और शंकरजी की मैं वन्दना करता हूँ जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते।

भाव यह है कि श्रद्धा–विश्वास की प्राप्ति के बिना ईश्वर–दर्शन नहीं होता तथा श्रद्धा–विश्वास भगवान् शिव एवं पार्वती की कृपा के बिना नहीं प्राप्त हो सकता। अन्य स्थल पर तुलसीदास ने यह लिखा है कि **"संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि"** (मानस, उत्तरकाण्ड 45)। भगवान् राम का यह कथन अपने नगरवासियों के प्रति दिये गये उपदेश का एक अंश है। यहाँ कहा गया है कि भगवान् राम की भक्ति बगैर शंकर के भजन के या उनकी कृपा के संभव नहीं है। इसी प्रकार काकभुशुण्डि को उनके गुरु ने उपदेश देते समय कहा है कि **"सिव सेवा कर फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई।।"** (उत्तरकाण्ड 105 ख/1)। भावार्थ यह है कि शिवजी की सेवा से भगवान् राम की दृढ़भक्ति प्राप्त होती है।

रामेश्वर के प्रसंग में भगवान् राम कहते हैं कि–

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि।।

(मानस लंकाकाण्ड 2/2)

भाव यह है कि जो छल छोड़कर और निष्काम होकर रामेश्वरजी की सेवा करेंगे, उन्हें शिवजी मेरी (राम की) भक्ति देंगे।

तुलसीदास भगवान् राम की भक्ति चाहते थे और यह तभी प्राप्त हो सकती थी जबकि पहले भगवान् शिव की भक्ति उन्हें प्राप्त हो जैसा ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है। तुलसीदास ने न केवल ग्रन्थ के प्रारंभ में अपितु जहाँ से रामचरितमानस की मूल कथा प्रारंभ करते हैं उसके पहले भी वे भगवान् शिव को याद करते हुए कहते हैं–

सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनऊँ बिसद राम गुन गाथा।। (बा. का. 33/2)
संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी।। (बा. का. 35/1)
पुनः **गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।** (बा. का. 14छ/2)

पहले का अर्थ यह है कि "अब मैं आदरपूर्वक श्रीशिवजी को सिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजी के गुणों की कथा को विस्तार से कहता हूँ।"

दूसरे का अर्थ है "श्रीशिवजी की कृपा से उसके (तुलसी के) हृदय में सुन्दर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे यह तुलसीदास 'रामचरितमानस' का कवि हुआ।"

तीसरे का अर्थ है "श्रीमहेश और पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु व माता–पिता हैं, जो दीनबन्धु, और नित्य दान करनेवाले हैं।"

एक अन्य स्थल पर उन्होंने कहा हैं–

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ।।

(बा. का.–14(छ)/4)

"पार्वतीजी और शिवजी दोनों का स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर मैं चाव भरे चित्त से श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र का वर्णन करता हूँ।"

ग्रन्थ के आरंभ में तुलसीदास ने भगवान् शिव को मात्र इसलिये नहीं याद किया है कि रामचरितमानस के आदि रचयिता भगवान् शिव हैं (भगवान् शिव ही मानस के प्रवर्तक हैं ऐसा तुलसी ने अनेक जगहों पर स्वीकार किया है। जैसे बा. का. 34/5–6)। बल्कि इसलिये भी कि भगवान् शिव तुलसी की दृष्टि में परमात्मा, ब्रह्म, आदिगुरु, सर्वज्ञ, आशुतोष, निर्गुण एवं सगुण, कृपासिंधु, चिदानंद, कैवल्य मुक्ति प्रदान करनेवाले, कल्पवृक्ष तथा कलियुग के पाप–समूह का नाश करनेवाले हैं और राम आदि अन्य देवों की भक्ति प्रदान करनेवाले हैं। इन बातों का स्पष्टीकरण नीचे किया जायगा। भगवान् शिव सभी गुणों से पूर्ण एवं रामेश्वर हैं और तुलसीदास यह कहते भी हैं कि–

जरत सकल सुर बृंद विषम गरल जेहिं पान किय।

तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस।।

(कि. का. प्रारंभ का 2 सरा सोरठा)

जिस भीषण हलाहल विष से सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन शंकरजी को क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु (और) कौन है?

फिर भी तुलसीदास ने (शिव के बजाय) राम को क्यों अपना इष्ट बनाया? इस प्रश्न के उत्तर का भी संकेत हमें मानस से प्राप्त हो सकता है।

बालकाण्ड में पार्वती के शिव-प्रेम की परीक्षा लेते समय सप्तर्षि-गण शिव की निन्दा[1] (बा. का. 78/3) एवं भगवान् विष्णु की प्रशंसा करते हैं तथा यह भी कहते हैं कि नारद के उपदेश से किसी का भी घर नहीं बसा है (बा. का. 78)। इसपर पार्वती उत्तर देती हैं-

नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ।।
गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही।।

(बा. का. 79/4)

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल-गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।। (बा. का. 80)

भावार्थ यह है- "मैं नारदजी के वचनों को नहीं छोड़ूँगी, चाहे घर बसे या उजड़े, इससे मैं नहीं डरती। जिसको गुरु के वचनों में विश्वास नहीं है, उसको सुख और सिद्धि स्वप्न में भी सुगम नहीं होती।"

"माना कि महादेवजी अवगुणों के भवन हैं और विष्णु समस्त सद्‌गुणों के धाम हैं, पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो उसी से काम है।"

यहाँ पर पार्वती ने अपने पक्ष में दो तर्क दिये हैं। पहले तर्क में उन्होंने कहा कि गुरु के वचनों में श्रद्धा ही सिद्धि देती है अत: मुझे अपने गुरु के वचनों (नारद के वचनों) में विश्वास है। दूसरा तर्क यह है कि जिसका दिल जिसमें रम जाय या लग जाय उसे किसी अन्य की आवश्यकता नहीं होती। उपरोक्त तर्कों के आलोक में अगर हम देखें तो तुलसीदास की रामभक्ति का कारण समझ में आ सकता है। उनके गुरु ने रामभक्ति का उपदेश दिया था फलस्वरूप उनका मन रामभक्ति में एक बार (बचपन में ही) रम गया तो उन्हें अन्य की भक्ति का अवकाश ही नहीं। निम्न उद्धरण पर ध्यान दीजिए। रामकथा के संदर्भ में वे कह रहे हैं-

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत।। (बा. का. 30-क)

---

[1] प्रत्यक्ष में उनके निन्दापरक वचन थे परन्तु उनके पीछे गूढ़-दार्शनिक ब्रह्म के लक्षण छिपे थे। आगे हम इसका खुलासा करेंगे।

पुन : **तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।।**
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई।। (बा. का. 30 (ख) /1)

अर्थ है कि "वही (राम) कथा मैंने वाराह-क्षेत्र (सूकर-क्षेत्र) में अपने गुरु से सुनी, परन्तु उस समय मैं लड़कपन के कारण बहुत बेसमझ था, इससे उसको उस प्रकार (अच्छी तरह) नहीं समझा।"

"तो भी गुरुजी ने जब बार-बार कथा कही, तब बुद्धि के अनुसार कुछ समझ में आयी। वही अब मेरे द्वारा भाषा में रची जायगी जिससे मेरे मन को संतोष हो।" तुलसीदास की रामभक्ति का कारण समझ में आ जाने के बाद यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रामभक्ति शिवकृपा के बिना संभव नहीं है, इसलिये मानस में शिव-वंदना पहले की गयी है।

भगवान् शिव का स्वरूप

रामचरित मानस में भगवान् शिव को ब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है। ब्रह्म का लक्षण है-सच्चिदानंद, सर्वेश, भगवान्, निर्गुण एवं अकाम आदि विशेषणों से जो युक्त हो। नीचे हम मानस से ऐसे उद्धरणों को उद्धृत करने जा रहे हैं जो भगवान् शिव को ब्रह्म अर्थात् सर्वश्रेष्ठ देव प्रतिपादित करते हैं।

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं।।
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी।। (बा. का. 47 /1)

यहाँ अगस्त्य ऋषि द्वारा शिव-पार्वती को अखिलेश्वर एवं जगज्जननि माना गया है।

संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा।। (बा. का. 49 /3)

यहाँ शिवजी को जगत् के सभी लोगों द्वारा वंदित एवं उनपर शासन करनेवाला कहा गया है।

कृपा सिन्धु सिव परम अगाधा ..... (बा. का. 57 ख /1)

यहाँ शिव को दया का सागर कहा गया है।

बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी।। (बा. का. 59 /1)

यहाँ शिव को अविनाशी कहा गया है।

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी।। (बा. का. 63 /3)

यहाँ शिवजी को जगदात्मा तथा संसार का रचयिता माना गया है।

अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना।। (बा. का. 66 /4)
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल वेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेरव।। (बा. का. 67)

इन उद्धरणों में नारदजी उमा के भावी पति की विशेषताओं की भविष्यवाणी हस्तरेखा के आधार पर कर रहे हैं। कह रहे हैं कि गुणहीन, मानहीन, माता-पिता-विहीन, उदासीन, संशयहीन (लापरवाह), योगी, जटाधारी, निष्कामहृदय, नंगा और अमंगल वेषवाला, ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी है।

भावी पति का ऐसा वर्णन सुनकर हिमवान तथा मैना आदि बड़े दु:खी हुए। तब नारदजी ने उनसे कहा कि विधाता ने जो कुछ लिख दिया है उसको कोई नहीं मिटा सकता। तो भी एक उपाय मैं बताता हूँ। मैंने वर के जो-जो दोष बतलाये हैं वे सभी शिवजी में हैं। यदि शिवजी के साथ विवाह हो जाय तो उपरोक्त दोषों को भी सब लोग गुणों के समान ही कहेंगे।

जे जे बर के दोष बरवाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने।।
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई।। (बा. का. 68/2)

पुन: **संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना।।**
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू।।
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपरारी।।
बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिन्धु सेवक मन रंजन।।
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें।।

(बाल काण्ड 69/2-4)

यहाँ शिवजी को सर्वसमर्थ, भगवान्, दुराराध्य, तप से शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, भावी या भाग्य को भी मिटा देनेवाले, वर देनेवाले, कृपा-सिन्धु, शरणागत के दु:खों का नाश करनेवाले तथा सेवकों के मन को प्रसन्न करनेवाले कहा गया है। आगे कहा गया है कि शिवजी की आराधना किये बिना करोड़ो योग और जप करने पर भी वाञ्छित फल नहीं मिलता।

सती के शरीर-त्याग के उपरान्त तुलसीदास लिखते हैं -

चिदानन्द सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम। (बा. का. 75)
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना।।

(बा. का. 75/1)

यहाँ शिवजी को चिदानंद, सुखधाम, काम, मोह, मद आदि से रहित कहा गया है। ऐसा होने पर भी अपने भक्त (सती) के वियोग से दु:खी हैं ऐसा बताया गया है। अभिप्राय यह है कि वे भक्त-वत्सल हैं। वे भक्तों के दु:ख से दु:खी तथा उनके सुख से सुखी होते हैं। वे स्वयं तो सुख-दु:ख से परे त्रिगुणातीत हैं।

सप्तर्षिगण पार्वती के शिव-प्रेम की परीक्षा लेने के बाद उनकी जय-जयकर करते हुए कहते हैं-

तुम्ह माया भगवान सिव सकल जगत पितु मातु।
नाइ चरन सिर मुनि चले पुनि पुनि हरषत गातु।। (बा. का. 81)

इस दोहे में शिवजी को भगवान् तथा पार्वती को उनकी माया तथा इन दोनों को जगत् का माता-पिता कहा गया है। बा. का. (102/2) में भी उन्हें जगत् का माता-पिता कहा गया है।

पार्वती की महिमा बतलाते हुए कहा गया है-

अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधंग निवासिनि।।
जग संभव पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला बपु धारिनि।।

(बा. का. 97/2)

अर्थ यह है कि-पार्वती अजन्मा, अनादि, अविनाशिनी शक्ति हैं। सदा शिवजी के अर्द्धांग में रहती हैं। ये जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हैं, और अपनी इच्छा से ही लीला-शरीर धारण करती हैं।

यहाँ पर शिव-शक्ति की अनन्यता का कथन किया गया है। भगवान् शिव की माया-शक्ति होने के कारण उन्हें जगत् की उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारिणी माना गया है।

एक स्थल पर पार्वती भगवान् शिव के प्रति कह रही हैं-

.... त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी।।
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पंकज सेवा।।

(बा. का. 106/4)

प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम।। (बा. का. 107)

भाव यह है कि शिवजी की महिमा त्रिभुवन में ज्ञात है। चर-अचर, नाग, नर, देव सभी उनकी पूजा करते हैं; वे समर्थ, सर्वज्ञ, सभी कलाओं एवं गुणों के धाम हैं; योग, ग्यान, वैराग्य के भण्डार हैं तथा उनका नाम शरणागतों के लिये कल्पवृक्ष है।

पार्वती ने पुनः कहा है-

तुम्ह त्रिभवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना।। (बा. का. 110/3)

यहाँ भगवान् शिव को त्रिभुवन का गुरु कहा गया है।

तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर भगवान् शिव के गुणों का गान किया है। शिवोपसना सिद्ध, योगी, सुर, किन्नर, मुनि सभी करते हैं(बा. का. 105; 106/4 इत्यादि)। शिवोपासना नारद(बा. का. 137/3), दशरथ(बा. का. 309/1; 346/4 अयो. का. 43/4; 44), जनक(बा. का. 309/1), भगवान् राम(आयो. का. 102/1; 104; 105/3; 225/4; बा. का. 357; लंका का. 1/3; 119-क), भरत(अयो. का. 156/4), अयोध्यावासी(अयो. का. 1), कौसल्या(बा. का. 345) आदि द्वारा की गयी है। इन उपासना संबंधी संदर्भो से भी शिव की गरिमा का परिचय मिलता है। शिव की भक्ति के बिना व्यक्ति को सुख-शान्ति नहीं मिल सकती तथा शिव-द्रोह से अशान्ति एवं दुख ही मिलता है(बा. का . 266/1, अयो. का. 171/3, किष्कि. का. 16/3, लंका का. 31 ख/1, बाल का.

63/2, बाल का. 64/2 उत्तरकाण्ड 107 ख./7; 120 ख/12 इत्यादि)।

बालकाण्ड 69/4 में कहा गया है कि शिवजी की आराधना किये बिना करोड़ों योग और जप करने पर भी वाञ्छित फल नहीं मिलता (**इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें**)।

तुलसीदास लंकाकाण्ड के प्रारंभ में शिव की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि–

....

काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम्।।
यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे।।

जिसका अर्थ है–काशीपति, कलियुग के पाप-समूह का नाश करनेवाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, गुणों के निधान और कामदेव को भस्म करनेवाले पार्वतीपति वन्दनीय शंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सत्पुरुषों को अत्यन्त दुर्लभ कैवल्यमुक्तितक दे डालते हैं और जो दुष्टों को दण्ड देनेवाले हैं, वे कल्याणकारी श्रीशम्भु मेरे कल्याण का विस्तार करें।

इसी प्रकार उत्तरकाण्ड के प्रारंभ के तीसरे श्लोक में तुलसीदास कहते हैं–

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम्।।

भावार्थ है–कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शंख के समान सुन्दर गौरवर्ण, जगज्जननी पार्वतीजी के पति, वाञ्छित फल के देनेवाले, (दुःखियों पर सदा) दया करनेवाले, सुन्दर कमल के समान नेत्रवाले, कामदेव से छुड़ानेवाले श्रीशंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

उपरोक्त दोनों काण्डों से उद्धृत श्लोकों से भगवान् शिव कलियुग के पापों को दूर करनेवाले, सर्वगुणसम्पन्न, कल्पवृक्ष के समान, कैवल्य प्रदान करनेवाले तथा कामदेव से मुक्ति दिलानेवाले सिद्ध होते हैं।

उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत ही भगवान् शिव का निम्नलिखित प्रसिद्ध स्तुति का अष्टक आता है जिसमें भगवान् शिव को मोक्ष-स्वरूप, विभु, ब्रह्म, वेद-स्वरूप, ईश्वर, सबके स्वामी, माया आदि से रहित, गुणों से रहित, भेदरहित, इच्छारहित, चेतन आकाशरूप, दिगम्बर, निराकार, ओंकार के मूल, वाणी, ज्ञान और इन्द्रियों से परे, कैलासपति, महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणों के धाम, परमेश्वर, गंगाधारी, अजन्मा, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशवाला, तीनों प्रकार के दुःखों को दूर करनेवाला, सच्चिदानन्दघन, मोह को हरनेवाला तथा समस्त जीवों के हृदय में निवास करनेवाला माना गया है।

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं ....
.... प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो।। (उत्तरकाण्ड 107 (ख)/1-8)

उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत दिये गये उद्धरणों से भगवान् शिव परब्रह्म सिद्ध होते हैं। ब्रह्म का वर्णन करना वेदों की सामर्थ्य के बाहर है इसीलिये उसे वेदों में नेति-नेति कहा गया है। तुलसीदास कहते हैं-

चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि अति मतिमंद गवाँरु।। (बा. का. 103)

अर्थात्- भगवान् शिव का चरित्र समुद्र के समान है जिसका पार वेद भी नहीं पाते तो मंदबुद्धि और गँवार तुलसीदास उनका वर्णन किस प्रकार कर सकता है।

भगवान् शिव एवं भगवान् राम

शिवचरित कहते हुए तुलसीदास ने पार्वती के प्रति सप्तर्षि के मुख से निन्दा के बहाने शिव तत्त्व-निरूपण बड़ी सुन्दरता से कराया है। सप्तर्षि कहते हैं -

निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगम्बर ब्याली।।
कहहु कवन सुखु अस बरु पाएँ। भल भूलिहु ठग के बौराएँ।।
(बा. काण्ड 78/3-4)

इसका सतही अर्थ है- "जो गुणहीन, निर्लज्ज, बुरे वेषवाला, नरकपालों की माला पहननेवाला, कुलहीन, बिना घर-बार का, नंगा और शरीर पर साँपों को लपेटे रखनेवाला है ऐसे वर के मिलने से कहो तुम्हें क्या सुख होगा? तुम उस ठग(नारद) के बहकावे में आकर खूब भूली।"

यहाँ जो वर का दोष पार्वती को सप्तर्षि बता रहे हैं वही शिव-तत्त्व-निरूपण है। शिव निर्गुण हैं क्योंकि वे निष्कल और निर्विशेष हैं। शिव निलज हैं, क्योंकि 'एकमेवाऽद्वितीयम्' हैं। अर्थात् ब्रह्माण्ड में उस एक तत्त्व के अलावा अन्य कोई भी नहीं है, वही सब कुछ हैं, इसलिये वहाँ लज्जा का स्थान कहाँ है, लज्जा तो अपने से भिन्न किसी और के प्रति होती है। शिव कुवेष हैं, क्योंकि वे वैराग्य की मूर्ति हैं। शिव कपाली[1] हैं क्योंकि वे सनातन हैं। शिव अकुल हैं, क्योंकि वे अनादि एवं अजन्मा हैं। शिव अगेह हैं, क्योंकि वे अपरिच्छिन्न हैं। अर्थात् परिच्छिन्न(सीमित) वस्तु का ही कोई गेह(रहने का स्थान) होगा। अपरिच्छिन्न होने से वे सर्वत्र हैं, उनका कोई गेह संभव नहीं। शिव दिगम्बर हैं, क्योंकि वे निरावरण हैं। अर्थात् उनपर कोई आवरण या ढकनेवाली वस्तु नहीं है। जो स्वयं निर्गुण है उसपर आवरण या पर्दा कैसे हो सकता है? शिव व्याली हैं, क्योंकि वे सबके अभिभावक या स्वामी हैं। सबके स्वामी होने के नाते वे व्यालों, जिससे सभी दूर रहते हैं, को भी अपने पास रखते हैं।

---

[1] पौराणिक साहित्य में शिव को कपाली इसलिये कहा जाता है कि उनके हाथ में ब्रह्मदेव का कपाल है। भाव यह है कि जो ब्रह्मा की सृष्टि और संहार कर सकता है वही सनातन देव है।

उपरोक्त विशेषताओं के होते हुए भी शिव को तुलसीदास ने महाभागवत के रूप में चित्रित किया है। शिव का भागवत होना उनकी अपार लीला को ही व्यक्त करती है। एक रूप से शिव निर्गुण, निराकार, निष्कल, निरञ्जन हैं; दूसरे रूप से वही शिव भगवान्, सगुण, साकार, मृत्युञ्जय, जगद्गुरु, योगीश्वर, विश्वेश्वर, विश्वमूर्त्ति तथा आशुतोष महादेव हैं और तीसरी मूर्त्ति से वही शिव महाभागवत, काशी में तारक मन्त्र का उपदेश करनेवाले, परमत्यागी, कामदेव को जलानेवाले और दया के समुद्र हैं।

तुलसीदास ने शिव एवं राम दोनों को समान ऐश्वर्य एवं विशेषताओं से युक्त माना है। फिर भी शिव की गरलपान जैसी विशेषताएँ शिव को राम से विलक्षण सिद्ध करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसी की दृष्टि में शिव एवं राम में तादात्म्य है। अर्थात् तत्त्वतः शिव राम हैं या राम शिव हैं। अगर ऐसा न होता तो तुलसीदास यह नहीं लिखते कि–

गुर पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।
सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपाधि सब बिधि तुलसी के।।

(बालकाण्ड 14 (छ)/2)

"श्रीमहेश और पार्वती को मैं प्रणाम करता हूँ, जो मेरे गुरु और माता–पिता हैं जो दीनबन्धु और नित्य दान करनेवाले हैं, जो सीतापति रामचन्द्रजी के सेवक, स्वामी और सखा हैं तथा मुझ तुलसीदास का सब प्रकार से सच्चा हित करनेवाले हैं।"

तादात्म्य के बिना सेवक–स्वामी–सखा– इन तीन अत्यन्त भिन्न संबंधों का एकत्र सन्निवेश नहीं हो सकता। वही शिव जो राम से तत्त्वतः अभिन्न हैं तथा उनके स्वामी भी हैं, वे लोकशिक्षा के लिये रामचरित मानस में आदर्श भागवत हैं। अर्थात् राम को इतना सम्मान देते हैं कि उनको वे इष्टरूप से जपते हैं, याद करते हैं। मानस में भगवान् शिव एवं हनुमान्जी को महाभागवत के रूप में चित्रित किया गया है।

वही शिव सती के विरह से दुःखी हैं, कैलास उन्हें अच्छा नहीं लगता क्योंकि वहाँ रहने से सती की स्मृति मन में आती रहती है। फलस्वरूप –

जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा।। (बाल का. 74/4)
चिदानंद सुखधाम सिव बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक अभिराम।। (बा. का. 75)
कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना।। (बा. का. 75/1)

भाव यह है कि सती के वियोग (भक्त के वियोग) से भगवान् शिव दुःखी हैं तथा वे कैलास छोड़कर भगवान् राम के गुणों की चर्चा करते तथा मुनियों को उपदेश देते हुए धरती पर घूम रहे थे। जो शिव चिदानंद, सर्वज्ञ, मोह, मद एवं काम से रहित हैं उनकी ऐसी दशा है। यह दशा ठीक राम के समान है जो भगवान् होते हुए भी सीता के वियोग में दुःखी होते जंगलों में भटक रहे थे। वास्तव में

शिव एवं सती, राम एवं सीता का तात्त्विक रूप से वियोग हो ही नहीं सकता। यह सब तो लोकशिक्षा के लिये ही होता है।

जब भगवान् शिव इस प्रकार सती के वियोग में भटक रहे थे तो वहाँ भगवान् राम प्रकट होकर सती के हिमालय के घर जन्म लेने का संदेश देते हैं और उनकी प्रशंसा करते हुए उनके पाणिग्रहण के लिये अनुरोध करते हैं-

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु।। (बा. का. 76)

यहाँ भगवान् राम कहते हैं- "हे शिवजी यदि मुझपर आपका स्नेह है तो अब आप मेरी विनती सुनिये। मुझे यह माँगे दीजिए कि आप जाकर पार्वती के साथ विवाह कर लें।"

यहाँ राम की यह दशा है कि वे प्रार्थना करते हैं, अपने प्रेम की याद दिलाते हैं, याचना करते हैं। भागवत शिव संकट में पड़ जाते हैं, उन्हें विरह-दुःख स्वीकार है, परन्तु सीता का रूप धारण करनेवाली सती का पाणिग्रहण करके भक्तिपथ से विचलित होना स्वीकार नहीं है।

मानस में शिवजी को भागवत रूप में जहाँ चित्रित किया गया है उसमें कहा गया है कि सती ने राम की परीक्षा के समय सीता का रूप धारण किया था। चूँकि राम उपास्य हैं अतः सीता भी मातृ-स्वरूप होने से उपास्य ही हैं। सती सीता का रूप धारणकर उपास्यरूप हो गयी(पत्नीरूप नहीं रही) इसी कारण शिव के सामने संकट उत्पन्न हो गया है कि नये जन्मवाली सती के साथ वे विवाह कैसे करें? विवाह करने से वे भक्तिपथ से विचलित हो जायँगे।

पर भागवत होने से भगवान् राम के वचन का उलंघन नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया-

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं।।
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा।

(बा. का . 76/1)

शिवजी ने कहा-यद्यपि ऐसा उचित नहीं है परन्तु स्वामी की बात भी मेटी नहीं जा सकती। हे नाथ! मेरा यही परम धर्म है कि मैं आपकी आज्ञा को सिरपर रखकर उसका पालन करूँ।

राम द्वारा शिव को विवाह के लिये आग्रह करना तथा शिव का उसे स्वीकार करना यह सब लोकहित से ही प्रेरित था। तारकासुर का वध उसका एक प्रेरक था। शिव-विवाह का उद्देश्य कोई भोग-विलास नहीं था यद्यपि लौकिक दृष्टि का अनुसरण कर भगवान् शिव यथा अवसर उचित व्यवहार करते थे। अतः भगवान् शिव का पार्वती के साथ कैलासपर भोग-विलास जगत् के कल्याण के लिये ही होता है। परम भागवत शिव संसाररूपी लीला में अपनी भूमिका लोकआदर्श एवं लोककल्याण के लिये ही निभा रहे थे। जिन्होंने काम को भस्म किया उनका भोग-विलास कैसा? इस

भोग-विलास का तत्त्व तुलसीदास ने स्वयं भगवती के मुख से सप्तर्षि के प्रति कहलवाया है। सप्तर्षियों ने उमा को शिव-प्रेम से विचलित करने के लिये कहा था कि जिस शिव ने काम को जला डाला है उससे तुम्हें कौन सा सुख मिलेगा? इसपर उमा उत्तर देती हैं-

तुम्हरें जान कामु अब जारा।
अब लगि सम्भु रहे सबिकारा।। (बा. का. 89/1)
हमरें जान सदा सिव जोगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी।। (बा. का. 89/2)

अर्थ है- "आपकी समझ में शिवजी ने कामदेव को अब जलाया है, अबतक तो वे विकार युक्त(कामी) ही रहे। किन्तु हमारी समझ से तो शिवजी सदा से ही योगी, अजन्मा, अनिन्द्य, काम-रहित और भोगहीन हैं।"

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा।
सो अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा।। (बा. का. 89/3)

"आपने जो यह कहा कि शिवजी ने कामदेव को भस्म कर दिया, यह आपकी बड़ी भारी मूर्खता है।"

तात अनल कर सहज सुभाऊ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।।
गएँ समीप सो अवसि नसाई।
अस मन्मथ महेस की नाई।। (बा. का. 89/4)

"हे तात! अग्नि का तो यह सहज स्वभाव ही है कि ठंढ (या बर्फ) उसके समीप कभी नहीं आ सकती और आ जानेपर वह अवश्य नष्ट हो जायगी। महादेवजी और कामदेव के संबंध में यही बात समझनी चाहिये।"

भावार्थ यह कि न तो पार्वती और न ही शिव ने लौकिक भोग-विलास के लिये विवाह किया। इसके पीछे महान् उद्देश्य था लोक-कल्याण एवं लोक-आदर्श की स्थापना। भगवान् शिव ने परम भागवत अर्थात् भक्त का आदर्श प्रस्तुत करने के कारण ही सती का मानसिक त्याग किया था। और उसी परम्परा को निभाने के लिये वे पार्वती से विवाह करने में संकोच कर रहे थे। परन्तु भगवान् राम द्वारा प्रेरित करनेपर ही उन्होंने विवाह किया।

जहाँतक भगवान् शिव एवं भगवान् राम के लौकिक या लीलामय(न कि तात्त्विक) संबंधों की बात है तुलसीदास ने तीन प्रकार के संबंध माने हैं। पहला संबंध है सेवक और स्वामी का। सेतुबंध रामेश्वर की स्थापना इसका एक उदाहरण है। यहाँ राम के ईश्वर या स्वामी भगवान् शिव हैं। इसी प्रकार भगवान् शिव का पंचवटी में विचरते हुए विरही राम को नमस्कार करना राम को शिव का उपास्य होने

का एक उदाहरण है, अर्थात् दोनों एक दूसरे के प्रति सेवक एवं सेव्य भाव रखते हैं।[1]

दूसरा संबंध मित्रता का है, बराबरी का है। तीसरा संबंध अनन्यता का है। तात्त्विक दृष्टि से राम की जो विशेषताएँ बतायी गयीं हैं वे सभी विशेषतायें भगवान् शिव की भी बतायी गयीं हैं। निम्नलिखित उदाहरणों से ये सभी संबंध स्पष्ट हो जायँगे।

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी। (लंका का. 1/3-4)
संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।। (लंका का. 2)
जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं।।
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि।।
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि।भगति मोरि तेहि संकर देइहि।।
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही।।
(लंका का. 2/1-2)

उपरोक्त उद्धरणों में भगवान् शिव की पूजा करने के उपरान्त राम ने कहा है कि शिव हमारे लिये अत्यन्त प्रिय हैं। शिव-द्रोही मेरा द्रोही है, उसको मेरा न तो दर्शन हो सकता है न ही भक्ति मिल सकती है। शिव-द्रोह से कल्पभर नरकवास होता है। पुनः रामेश्वर-दर्शन के महात्म्य को बताते हुए राम द्वारा कहा गया है कि उसके दर्शन से मेरी (राम की) भक्ति तथा मुक्ति प्राप्त होती है।

उपरोक्त संदर्भों के अलावा भी भगवान् शिव की पूजा राम द्वारा किये जाने का उल्लेख है (अयो. का. 225/4; 105/3; 102/1; लंका का. 119 क आदि में)।

यो देवकार्यणि सद कुरूते परमेश्वरः।
मनुष्य भावमाश्रित्य स मां स्तौति युगे युगे।।
लोकमार्गप्रवृत्त्यर्थं देवकार्यार्थ सिद्धये।
अहं च तौ सदा स्तौमि श्वेतद्वीपे कृते युगे (वराह पु. 72/7, 8)

पुनः भगवान् शिव के संदर्भ में निम्नलिखित संदर्भ देखें-

संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा।। (बा. का. 49/3)
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानन्द परधामा। (बा. का. 49/4)

सती मन में सोच रही हैं कि शंकरजी की वन्दना सारा जगत् करता है फिर भी उन्होंने एक

---

[1] वराह पुराण में भगवान् शिव ऋषियों से कह रहे हैं कि भगवान् विष्णु देवताओं के कार्य के लिये प्रत्येक युग में मनुष्य शरीर धारण करते हैं तथा जगत् एवं देवताओं के कल्याण के लिये मैं भी भगवान् विष्णु के दोनों विग्रहों (दैवी एवं मानवी) की उपासना श्वेतद्वीप में कृतयुग में करता हूँ (72/7, 8)।

यो देवकार्याणि सदा कुरुते परमेश्वरः। मनुष्यभावमाश्रित्य स मां स्तौति युगे युगे।।
लोकमार्गप्रवृत्त्यर्थं देवकार्यार्थ सिद्धये। अहं च तौ सदा स्तौमि श्वेतद्वीपेकृते युगे।।

राजपुत्र को सच्चिदानंद परमधाम कहकर प्रणाम किया।

भरद्वाज मुनि याज्ञवल्क्यजी से पूछते हैं कि रामनाम की बहुत महिमा बतायी गयी है तो मैं यह जानना चाहता हूँ वे कौन से राम हैं जिनकी इतनी महिमा बतायी है कि जिसे भगवान् शिव सदा जपते रहते हैं(बा. का. 45/2; तथा 46)।

मित्रता एवं अनन्यता के संदर्भ में निम्नलिखित उद्धरण देखिए -

याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी से कहते हैं -

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं।।
बिनु छल बिश्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू।।

(बा. का. 103/3)

भगवान् विष्णु नारद-मोह के पश्चात् उनको सलाह देते हैं -

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा।।
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें।।
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी।।
अस उर धरि महि बिचरहु जाई। अब न तुम्हहि माया निअराई।।

(बा. का. 137/3-4)

अर्थ यह है कि- "शिवजी के चरणकमलों में जिनकी प्रीति नहीं है, वे रामजी को सपने में भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ श्रीशिवजी के चरणों में निष्कपट प्रेम होना यही रामभक्त का लक्षण है।"

"(भगवान् विष्णु ने नारदजी से कहा-) जाकर शंकरजी के शतनाम का जप करो, इससे हृदय में तुरंत शान्ति होगी। शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वास को भूलकर भी न छोड़ना।"

"हे मुनि! (नारद) शिवजी जिसपर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता। हृदय में ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वी पर विचरो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आवेगी।"

राम एवं शिव में बहुत सी समानतायें बतायी गयीं हैं तथा दोनों ही एक दूसरे को प्रिय हैं। एक की भक्ति बिना दूसरे की भक्ति के संभव नहीं है। यही कारण है कि नामजप के दौरान होनेवाले अपराधों में से एक अपराध यह भी है कि शिव एवं विष्णु में भेद करना। जो ऐसा भेद करता है उसे जप से सिद्धि नहीं मिलती। समानता के तत्त्वों में से कुछ के उद्धरण देखें-

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी।

(बा. का.50/1)

यहाँ दोनों को समान रूप से सर्वज्ञ बताया है।

संत संभु श्रीपति अपबादा .... (बा. का 63/2)

यहाँ शिव एवं विष्णु की निन्दा नहीं सुननी चाहिये-इसका उपदेश है।

हरि हर निन्दा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना।(लंका का. 31 (ख)/1)

यहाँ कहा गया है कि हरि और हर दोनों की निन्दा सुनना गौघात के समान है।

भगवान् राम एवं भगवान् शिव दोनों को ही मानस में ऐसी-ऐसी विशेषताओं से युक्त माना

गया है जिससे वे दोनों ब्रह्म साबित होते हैं। अतः दोनों में अनन्यता का संबंध सिद्ध होता है अर्थात् शिव और राम दोनों तात्त्विक दृष्टि से ब्रह्म ही हैं।

जिस प्रकार लोकशिक्षा एवं लोककल्याण के लिये भगवान् शिव अनेक रूप(कभी राम के स्वामी, कभी सेवक कभी ब्रह्मरूप) धारण करते हैं उसी प्रकार भगवान् विष्णु भी अनेक रूपों(जैसे शिवभक्त, शिव के स्वामी इत्यादि) को धारण करते हैं।[1]

यद्यपि भगवान् राम तत्त्वतः भगवान् शिव से अभिन्न हैं तथापि उनकी बाह्य लीलाओं में भेद है। भगवान् विष्णु राम, कृष्ण आदि रूपों में धरती पर सीमित समय के लिये आते हैं। उनका बाहरी रूप समय के साथ-साथ भिन्न-भिन्न होता है। जबकि भगवान् शिव का सगुण साकाररूप भी सदा एकरस रहता है। इसीलिये उन्हें अविनाशी कहा गया है। राम का जन्म हुआ और मृत्यु भी हुई।

पुनः समुद्रमन्थन से उत्पन्न हलाहल को पान करने में जब सभी देवता असमर्थ हो गये तब भगवान् विष्णु ने भगवान् शिव से निवेदन किया कि वे उस महान् कर्म को करें।

जरत सकल सुर बृन्द बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस।।

(किष्किन्धाकाण्ड प्रारंभ का सोरठा)

भगवान् शिव का अविनाशी होना, दयावश गरलपानरूपी कर्त्तव्य करना तथा आशुतोष होना उन्हें भगवान् राम से विलक्षण सिद्ध करता है।

सगुणोपासना

सगुण उपासना में भगवान् की मूर्ति का पूजन तथा तीर्थ का सेवन किया जाता है। मूर्तिपूजन में नामजप का सबसे ज्यादा महत्त्व है। रामचरित मानस में भगवान् शिव पार्वती को कह रहे हैं कि-

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा।।
अगुन अरूप अलरव अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।

(बा. का. 115/1)

भाव यह है कि सगुण एवं निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं है-मुनि, पुराण, पण्डित, वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अरूप(निराकर), अलरव(अव्यक्त) और अजन्मा है, वही भक्तों के प्रेमवश

---

[1] महाभारत में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हम और भगवान् शिव दो नहीं हैं। एक ही शक्ति की दो अभिव्यक्तियाँ हैं। इस अवस्था में हम किस देवता की पूजा करें, जबकि हमसे परे कोई है ही नहीं? और यदि किसी की पूजा नहीं करते हैं तो मर्यादा भंग होती है। मेरे किये हुए कार्य को प्रमाण या आदर्श मानकर सब लोग उसका अनुकरण करने लग जायँगे। जिनकी पूजनीयता वेद-शास्त्रों द्वारा प्रमाणित है, उन्हीं देवताओं की पूजा करनी चाहिये। ऐसा सोचकर ही मैं रुद्र देवता की पूजा करता हूँ तथा रुद्रदेव हमारी। अतः संसार को आदर्श प्रदान करने या लोक-शिक्षा के लिये हम दोनों आपस में एक दूसरे की पूजा कर लेते हैं।(महाभारत-शान्तिपर्व-मोक्षधर्मपर्व-341/23-26)। मूल श्लोकों के लिये कृपया 'महाभारत में शिवतत्त्व' नामक लेख (जो इसी पुस्तक में है) देखें।

सगुण हो जाता है।

निर्गुण ब्रह्म की भक्ति अत्यन्त कठिन होने के कारण सर्वसुलभ नहीं है जबकि सगुण–साकार की भक्ति अत्यन्त सुलभ एवं सरल है। रामचरित मानस में कहा गया है–

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ। (उत्तर काण्ड 73 (ख))

"भगवान् का निर्गुणरूप अत्यन्त सुलभ (सहज ही समझ में आ जानेवाला) है परन्तु सगुणरूप को कोई नहीं जानता। इसलिये उन सगुण भगवान् के अनेक प्रकार के सुगम और अगम चरित्रों को सुनकर मुनियों के भी मन को भ्रम हो जाता है।" यह दोहा भगवान् राम के बाह्य व्यवहार को देखकर उत्पन्न मोह के प्रसंग में आया है। जैसे सती को भगवान् राम का सीता के वियोग में घूमते देखकर तथा नागफाँस में बँध जाने को देखकर गरुड़ को मोह हो गया था वैसे ही लोगों को मोह भगवान् के सगुण रूप में किये व्यवहार को देखकर हो जाता है–चाहे वे सगुणरूप के व्यवहार भगवान् राम के हों या भगवान् शिव के।

उदाहरण के लिये भगवान् शिव के भक्तों (जैसे काकभुशुण्डि, उत्तर का. 105 (ख)/3) को यह मोह हो सकता है कि वे (शिवजी) सबके कारण होते हुए भी राम को क्यों भजते हैं? जैसा पहले ही बताया गया है कि इन सबके पीछे कुछ रहस्य छिपे होते हैं जैसे लोकशिक्षा तथा लोककल्याण[1] आदि। रामचरितमानस में आया है –

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही।।
(अयोध्या काण्ड – 217/4)

भाव है – "सारा जगत् श्रीराम को जपता है, और श्रीरामजी भरत को जपते हैं। उस भरतजी जैसा श्रीरामचन्द्रजी का प्रेमी कौन होगा?" शास्त्रों में ऐसा वर्णन आता है कि जो भगवान् को जिस प्रकार जपता है भगवान् भी उसको उसी प्रकार जपते हैं। जैसे गीता में भगवान् ने कहा है–

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। (भगवद्गीता 4/11)

"जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।" मानस में भी उपरोक्त संदर्भ में यही बताया गया है कि भरत राम को अतिशय प्रेम के कारण भजते हैं इसीलिये भगवान् राम भी उन्हें बड़े प्रेम से सदा भजते रहते हैं।

यही कारण है कि भगवान् शिव भी श्रीराम को भजते हैं क्योंकि भगवान् राम को शिव से

---

[1] श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि "जगत्पति महादेवजी सारे संसार के सुहृद् हैं, स्नेहवश सबका कल्याण करनेवाले है; वे लोकहित के लिये ही उपासना, चित्त की एकाग्रता और समाधि आदि साधनों का आचरण करते रहते हैं। (भागवत 4/6/35)

विद्यातपोयोगपथमास्थितं तपधीश्वरम्।
चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम्।।

ज्यादा कोई भी प्रिय नहीं है। (लंका का. 1/3)

यद्यपि सगुणरूप समझने में कठिन है फिर भी साधन करने में सरल है। कलियुग में भक्ति के साधन को सरल बताया गया है तथा भक्ति के पक्ष में मानस में बहुत कुछ कहा गया है–

ग्यान पंथ कृपान कै धारा .... (उत्तर का. 118 ख/1)
भगति कि साधन कहऊँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी।
(अर. काण्ड 15/3 इत्यादि)

अर्थात्– ज्ञान का मार्ग दुधारी तलवार के समान है अर्थात् कठिन है जबकि भक्ति के साधन से भगवान् को सरलता से पाया जा सकता है।

मानस में, जैसा पहले ही कहा जा चुका है कि, शिवजी कलियुग के पापों से मुक्ति देनेवाले हैं (लंका का. श्लोक 2, 3)। पुनः आगे कहा गया है–

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।।
(लंकाका. 1/3)

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं।।
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि।। (लंकाका. 2/1)

भावार्थ है– जो रामेश्वर का दर्शन करेंगे वे मरणोपरान्त श्रीविष्णु के लोक को पधारेंगे। जो रामेश्वरजी को गंगाजल लाकर चढ़ायेगा वह व्यक्ति सायुज्य मुक्ति पायेगा।

अन्यत्र कहा है –

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न।। (किष्कि. का. प्रारंभ का सोरठा)

"जहाँ श्रीशिव–पार्वती बसते हैं, उस काशी को मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खान और पापों का नाश करनेवाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाय?"

उपरोक्त उद्धरणों में भगवान् शिव की सगुण–साकार पूजा का संकेत मिलता है। लिंगपूजन, रामेश्वर एवं काशीतीर्थ का सेवन भगवान् शिव की सगुण–पूजा के अंग हैं जिनसे मुक्ति मिल सकती है।

मानस में भगवान् शिव की पार्थिवपूजा का भी उल्लेख है। वनवास के लिये प्रस्थान करने के उपरान्त गंगानदी को केवट की नाव से पार करने के बाद भगवान् राम ने स्नान कर पार्थिवपूजन किया।

"तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायउ माथा।।"
(अयो. का. 102/1)

"फिर रघुकुल के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शिवजी को सिर नवाया।"

रामजी के उपरोक्त आचरण से यही आदर्श स्थापित होता है कि भगवान् शिव की पार्थिवपूजा करनी चाहिये(अगर शिवपूजा के लिये स्थापित लिंग न मिले तो)। पार्थिवपूजा हर कोई-स्त्री, शूद्र अनत्यज-कर सकता है उसके लिये कोई निषेध नहीं है।

मानस के कुछ उद्धरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् शंकर ही लोगों के (भजन या उपासना से संबंधित) कर्मों का फल देते हैं(अयोध्या का. 167/4 आदि)। अतः उपासक को दृढ़ विश्वास के साथ वेदमत का अनुसरण करते हुए शिव की पूजा करनी चाहिये। भूत-प्रेत तथा वाममार्गी पूजा को उपरोक्त संदर्भों में निन्दित बताया गया है। (अयो. का 167 आदि)

नारदजी हिमालय को उपदेश दे रहे हैं कि यदि तुम्हारी कन्या तप करे तो महादेवजी होनहार को मिटा सकते हैं(बा. का. 69/3)।

वहीं पर आगे कह रहे हैं-

बर दायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन।
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें।।

(बा. का. 69/4)

भाव यह है कि इच्छित फल की प्राप्ति शिव की आराधना के बिना (योग तथा जप आदि) अन्य किसी साधन से नहीं हो सकती। इसी कारण से न केवल शैव अपितु वैष्णव एवं शाक्त आदि सभी को अपने इष्ट की कृपा या भक्ति प्राप्ति हेतु भगवान् शिव की आराधना करनी चाहिये तथा इसी कारण से तुलसीदास 'विनय पत्रिका' में भगवान् शिव से राम-भक्ति की याचना करते हैं(विनय पत्रिका 3/4, 7/5, 10/9आदि)।

……………………………………………………………………

देहु काम-रिपु राम-चरन रति, तुलसीदास कहँ कृपानिधान।

(विनय पत्रिका 3/4)

……………………………………………………………………

देहु काम-रिपु! राम-चरन रति। तुलसीदास प्रभु हरहु भेद-मति।।

(विनय पत्रिका 7/5)

रामचरित मानस में कथित शिव-पूजा के माहात्म्य को पढ़ने पर एक बहुत ही मनोरंजक एवं महत्त्वपूर्ण प्रश्न उभर कर सामने आता है। इस प्रश्न को उठाने से पहले हम मानस के शिवपूजा संबंधी महत्त्वपूर्ण उद्धरणों में से एक को लें-

एक बार रघुनाथजी ने एक आम सभा बुलवायी जिसमें गुरु वसिष्ठ तथा ब्राह्मणों सहित सभी नगरवासी उपस्थित थे। जब सभी विशिष्ठ व्यक्तियों सहित गुरु वसिष्ठ आदि ने यथायोग्य आसन ग्रहण कर लिया तब उनको वे ज्ञान एवं भक्ति से संबंधित उपदेश देने लगे। इसी उपदेश के प्रसंग

में वे कहते हैं-

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहऊँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।। (उत्तर का. 45)

इसका अर्थ है- "और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरजी के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता।"

भगवान् राम पुरवासियों को सत्संग, भक्ति एवं गुरु की महिमा का बखान करने के बाद इस गुप्त या रहस्यमय मत को बतलाते हैं।

प्रश्न यह है कि भगवान् राम का यह मत रहस्यमय या गोपनीय क्यों है? तथा राम की भक्ति विना शिव की उपासना के क्यों नहीं संभव है? यह मत रहस्यमय इसलिये है कि यह सबको आसानी से समझ में आनेवाली नहीं है।

रामभक्ति बगैर शिवभक्ति के प्राप्त नहीं होती इसका एक कारण यह हो सकता है कि भक्ति भी सांसारिक कार्यों की भाँति (जैसे कोई अर्जी सीधे बड़े साहब को न जाकर पहले छोटे साहब के पास जाती है जहाँ से वह अनुशंसित होकर बड़े साहब के पास पहुँचती है) पहले छोटे देवता की उसके बाद बड़े देवता की करनी चाहिये। पहले हम देख चुके हैं कि भगवान् शिव राम के उपास्य भी हैं। अतः उपरोक्त प्रकार की व्याख्या स्वीकार नहीं की जा सकती।

असली कारण यह हो सकता है कि चूँकि भगवान् शिव सभी देवताओं के अग्रज एवं श्रेष्ठ हैं इसलिये अग्रपूजा के तौर पर सभी देवताओं के उपासकों को (न कि मात्र रामजी के) भगवान् शिव की पूजा अपेक्षित है। बाल्मीकीय रामायण में भगवान् विष्णु भगवान् शिव को 'हलाहल' अर्पित करते समय कहते हैं- "सुरश्रेष्ठ (रुद्रदेव) देवताओं के समुद्रमंथन करने पर जो वस्तु सबसे पहले प्राप्त हुई है, वह आपका भाग है; क्योंकि आप सब देवताओं में अग्रगण्य हैं। प्रभो अग्रपूजा के रूप में प्राप्त हुए इस विष को आप यहीं पर ग्रहण करें।" (बा. रामा. बालकाण्ड 45/23-24)

चूँकि भगवान् शिव सगुण रूप में भी अविनाशी हैं इसलिये उन्हें भगवान् राम सहित सभी देवों का अग्रज माना गया है। पुनः भगवान् शिव के सर्वदेवमय होने के कारण उनकी उपासना पहले होनी चाहिये। भगवान् राम को भगवान् शिव इतने प्रिय हैं कि वे अपने अग्रज की पूजा के विना किसी व्यक्ति की पूजा सीधे-सीधे ग्रहण नहीं करते। सीधी पूजा ग्रहण करना उन्हें भगवान् शिव की अवहेलना लगती है। इसी कारण भगवान् शिव की कृपाप्राप्ति के बगैर भगवान राम की भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

सारांश यह है कि भगवान् शिव की पूजा करने से सभी देवताओं की पूजा हो जाती है तथा किसी भी देवता की (विशेषतः श्रीराम की) भक्ति प्राप्त हो सकती है।

तुलसीदास ने मानस में भगवान् शिव की दयालुता, आशुतोषपने आदि गुणों का संक्षेप में

प्रसंगानुसार बखान किया है परन्तु 'विनयपत्रिका' में उन गुणों का बहुत ही खुलासा किया है, जिससे शिव-भक्ति का आकर्षण और अधिक हो जाता है। उदाहरण के लिये भगवान् शिव आशुतोष हैं जो जरा सी भक्ति से सब कुछ देने के लिये तत्पर हो उठते हैं, वे महादानी हैं। काशी में मरनेवालों को भगवान् शिव मुनियों को भी जो गति दुर्लभ है वह गति प्रदान करते हैं। 'विनय पत्रिका' के निम्नलिखित सन्दर्भ देखिये-

को जाँचिये संभु तजि आन।
दीनदयालु भगत आरति-हर, सब प्रकार समरथ भगवान।। (3/1)
जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत संत, श्रुति, सकल पुरान।
सो गति मरन-काल अपने पुर, देत सदासिव सबहिं समान।। (3/3)
दानी कहुँ संकर - सम नाहीं।

……

(4/1)
जोग कोटि करि जो गति हरिसों, मुनि माँगत सकुचाहीं।
बेद-बिदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतंग समाहीं।।
ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं।
तुलसिदास ते मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं।। (4/3-4)
जाँचिये गिरिजापति कासी। जासु भवन अनिमादिक दासी।।
औढर-दानि द्रवत पुनिथोरें। सकत न देखि दीन कर जोरें।।
सुख-संपति, मति-सुगति सुहाई। सकल सुलभ संकर-सेवकाई।।

……

तुलसिदास जाचक जस गावै। विमल भगति रघुपति की पावै।। (6/1-5)
देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।
किये दूर दुख सबनिके, जिन्ह-जिन्ह कर जोरे।। (8/1)
जलज-नयन, गुन-अयन, मयन-रिपु, महिमा जान न कोई।
बिनु तव कृपा राम-पद-पंकज, सपनेहुँ भगति न होई।।
रिषय, सिद्ध, मुनि, मनुज, दनुज, सुर, अपर जीव जग माहीं।
तव पद बिमुख न पार पाव कोउ, कल्प कोटि चलि जाहीं।।

……

तुलसिदास हरि-चरन-कमल-बर, देहु भगति अबिनासी।। (9/2-3, 5)
ज्ञान-वैराग्य, धन-धर्म, कैवल्य-सुख, सुभग सौभाग्य शिव! सानुकूलं।।
तदपि नर मूढ आरूढ संसार-पथ, भ्रमत भव, विमुख तव पादमूलं।।

नष्टमति, दुष्ट अति, कष्ट – रत्त, खेद – गत, दास तुलसी शंभु – शरण आया।
देहि कामारि! श्रीराम – पद – पंकजे भक्ति अनवरत गत – भेद – माया।।
(10 / 8 – 9)

कंबु – कुंदेंदु – कर्पूर – गौरं शिवं, सुन्दरं, सच्चिदानंदकंदं।
सिद्ध – सनकादि – योगीन्द्र – बृंदारका, विष्णु – विधि – वन्द्य चरणारविंदं।।
लोकनाथं, शोक – शूल – निर्मूलिनं, शूलिनं मोह – तम – भूरि – भानुं।
कालकालं, कलातीतमजरं, हरं, कठिन – कलिकाल – कानन कृशानुं।।
(12 / 2, 4)

जिन्ह कहँ बिधि सुगति न लिखी भाल। तिन्ह की गति कासीपति कृपाल।।
उपकारी कोऽपर हर – समान। सुर – असुर जरत कृत गरल पान।।
बहुकल्प उपायन करि अनेक। बिनु संभु – कृपा नहिं भव – बिबेक।।
बिग्यान – भवन, गिरिसुता – रमन। कह तुलसिदास मम त्रास समन।।
(13 / 6 – 9)

कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान। उर बसि प्रपंच रचे पंचबान।।
करि कृपा हरिय भ्रम – फंद काम। जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम।।
(14 / 8 – 9)

"भगवान् शिव को छोड़कर और किससे याचना की जाय? आप दीनों पर दया करनेवाले, भक्तों के कष्ट हरनेवाले और सब प्रकार से समर्थ ईश्वर हैं।" (3 / 1)

"जिस परमगति को संत – महात्मा, वेद और सब पुराण महान् मुनियों के लिये भी दुर्लभ बताते हैं, हे सदाशिव! वही परमगति काशी में मरने पर आप सभी को समान भाव से देते हैं।" (3 / 3)

"शंकर के समान दानी कहीं नहीं हैं।" (4 / 1)

"करोड़ों प्रकार से योग की साधना करके मुनिगण जिस परमगति को भगवान् हरि (विष्णु) से माँगते हुए सकुचाते हैं वही परमगति त्रिपुरारि शिवजी की पुरी काशी में कीट – पंतग भी पा जाते हैं, यह वेदों से प्रकट है।" (4 / 3)

"ऐसे परम उदार पार्वतीपति को छोड़कर जो लोग दूसरी जगह माँगने जाते हैं, उन मूर्ख माँगनेवालों का पेट भली – भाँति कभी नहीं भरता।" (4 / 4)

"पार्वतीपति शिवजी से ही याचना करनी चाहिये, जिनका घर काशी है और अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ जिनकी दासी हैं। शिवजी महाराज औढरदानी हैं, थोड़ी सी सेवा से ही पिघल जाते हैं। वे दीनों को हाथ जोड़े खड़ा नहीं देख सकते, उनकी कामना बहुत शीघ्र पूरी कर देते हैं। शंकर की सेवा से सुख – संपत्ति, सुबुद्धि और उत्तम गति आदि सभी पदार्थ सुलभ हो जाते हैं। जो आतुर जीव

उनकी शरण गये, उन्हें शिवजी ने तुरन्त अपना लिया और देखते ही पलभर में सबको निहाल कर दिया। भिखारी तुलसीदास भी यश गाता है, इसे भी राम की निर्मल भक्ति की भीख मिले।"(6/1-5)

"हे शंकर! आप बड़े देव हैं, बड़े दानी हैं और बड़े भोले हैं। जिन-जिन लोगों ने आपके सामने हाथ जोड़े, आपने बिना भेद-भाव के उनसब लोगों के दुःख दूर कर दिये।"(8/1)

"आपके नेत्र कमल के समान हैं, आप सर्वगुणसम्पन्न हैं, कामदेव के शत्रु हैं, आपकी कृपा बिना न तो कोई आपकी महिमा जान सकता है और न श्रीराम के चरणकमलों में, स्वप्न में भी उसकी भक्ति होती है।"(9/2)

"ऋषि, सिद्ध, मुनि, मनुष्य, दैत्य, देवता और जगत् में जितने जीव हैं, वे सब आपके चरणों से विमुख रहते हुए करोड़ों कल्प बीत जानेपर भी संसार-सागर का पार नहीं पा सकते।"(9/3)

"हे काशीपते! हे श्मशानवासी! हे पार्वती के मनरूपी मानसरोवर में विहार करनेवाले राजहंस! तुलसीदास को श्रीहरि(विष्णु) के श्रेष्ठ चरणकमलों में अनपायिनी भक्ति का वरदान दीजिए।"(9/5)

"हे शिव! आप जिसपर अनुकूल होते हैं उसको ज्ञान, वैराग्य, धन-धर्म, कैवल्य-सुख(मोक्ष) और सुन्दर सौभाग्य आदि सब सहज ही मिल जाते हैं, तो भी खेद है कि मूर्ख मनुष्य आपकी चरणसेवा से मुँह मोड़कर संसार के विकट पथ पर इधर-उधर भटकते फिरते हैं।"(10/8)

"हे शम्भो! हे कामारि! मैं नष्ट-बुद्धि, अत्यन्त दुष्ट, कष्टों में पड़ा हुआ, दुखी तुलसीदास आपकी शरण आया हूँ; आप मुझे श्रीराम के चरणारविन्द में ऐसी अनन्य एवं अटल भक्ति दीजिये जिससे भेदरूप माया का नाश हो जाय।"(10/9)

"जिनका शरीर शंख, कुन्द, चन्द्र और कपूर के समान चिकना, कोमल, शीतल, श्वेत और सुगन्धित है, जो कल्याणरूप, सुन्दर और सच्चिदानन्दकन्द हैं। सिद्ध, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, योगीराज, देवता, विष्णु और ब्रह्मा जिनके चरणारविन्द की वन्दना किया करते हैं।"(12/2)

"जो लोकों के स्वामी, शोक और शूल को निर्मूल करनेवाले, त्रिशूलधारी तथा महान् मोहान्धकार को नाश करनेवाले सूर्य हैं। जो काल के भी काल हैं, कालातीत हैं, अजर हैं, आवागमनरूप संसार को हरनेवाले और कठिन कलिकालरूपी वन को जलाने के लिये अग्नि हैं।"(12/4)

"विधाता ने जिनके मस्तक पर अच्छी गति का कोई योग ही नहीं लिखा, काशीनाथ कृपालु शिवजी उनकी गति हैं-शिवजी की कृपा से वे भी सुगति पा जाते हैं।"(13/6)

"श्रीशंकर के समान उपकारी संसार में दूसरा कौन है, जिन्होंने विष की ज्वाला मे जलते हुए देव-दानवों को बचाने के लिये स्वयं विष पी लिया।"(13/7)

"अनेक कल्पोंतक कितने ही उपाय क्यों न किये जायँ शिवजी की कृपा बिना संसार के असलीस्वरूप का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।"(13/8)

"तुलसीदास कहते हैं कि हे विज्ञान के धाम पार्वती-रमण शंकर! आप ही मेरे भय को दूर

करनेवाले हैं।"(13/9)

"तुलसीदास कहते हैं कि हे परमज्ञानी शिवजी! यह कामदेव मेरे हृदय में बस कर बड़ा प्रपञ्च रचता है।"(14/8)

"इस काम की भ्रम-फाँसी को काट डालिये, जिससे सुखस्वरूप श्रीराम मेरे हृदय में सदा निवास करें।"(14/9)

उपरोक्त उद्धरणों में तुलसीदास भगवान् शिव से केवल रामभक्ति की याचना करते हैं न कि मोक्षादि की। इसका कारण यह है कि अन्य भक्तिमार्गियों की भाँति तुलसीदास भी सबसे बड़ा पुरुषार्थ मोक्ष को न मानकर भक्ति को मानते हैं क्योंकि उनके मत में भक्ति मुक्ति से बढ़कर है। मानस में तुलसीदास भरत से कहलवाते हैं-

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।। (अयोध्याकाण्ड 204)

अर्थात्-मुझे न अर्थ की इच्छा है, न धर्म की, न काम की और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म-जन्म में मेरा श्रीरामजी के चरणों में प्रेम हो, बस, यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं।

काकभुशुण्डि के मुख से भगवान् के प्रति कहलावाया गया है-

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव।।

……………………………………………………

सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।। (उ. काण्ड 84 क एवं ख)

अर्थात्- आपकी जिस अविरल(प्रगाढ़) एवं विशुद्ध भक्ति को श्रुति और पुराण गाते हैं, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और प्रभु की कृपा से कोई विरला ही जिसे पाता है; हे प्रभु राम! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिये।

अतः तुलसीदास भगवान् शिव से जिस वस्तु की याचना करते हैं उसी की भगवान् राम से भी याचना करते हैं(उ. का. 130 (ख) आदि)। क्योंकि बगैर शिव की भक्ति या पूजा से राम-भक्ति नहीं मिल सकती।

(3) वसिष्ठ रामायण

इसे महारामायण तथा योगवासिष्ठ आदि नामों से जाना जाता है। इसे महर्षि वाल्मीकि की रचना कहा जाता है। यह ग्रन्थ ज्ञानपरक होने के कारण ज्ञानियों तथा योगियों में ज्यादा प्रसिद्ध है। साधना के अनेक रास्तों में एक प्रमुख रास्ता ज्ञान का बताया गया है। इस ज्ञान को साधना अत्यधिक कठिन है। यह ग्रन्थ ज्ञानप्रधान होने के कारण शिवतत्त्व के बारे में भी ज्ञानदृष्टि रखता

हुआ वर्णन करता है।

सदाशिव परमदेव के रूप में

भुशुण्डजी वसिष्ठजी से अपने जन्मवृत्तान्त के प्रसंग में महादेवजी का वर्णन करते हुए कहते हैं "मुनिवर वसिष्ठजी इस जगत् में देवाधिदेव महादेव समस्त स्वर्गवासी देवताओं में श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मादि देवता भी उनकी वन्दना करते हैं। उनके शरीर के वामार्ध में सौन्दर्यशालिनी भगवती पार्वती विराजमान रहती हैं ....।"

अस्त्यस्मिञ्जगति श्रेष्ठः सर्वनाकनिवासिनाम्।
देवदेवो हरो नाम देवदेवाभिवन्दितः।। (योग0 नि0 प्र0 पूर्वार्ध 18/1)

इसी सर्ग में पूर्वोक्त स्थल पर भगवान् शिव के सगुण-साकाररूप का विस्तार से वर्णन किया गया है। वह रूप वैसा ही है जैसा पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों में पाया जाता है।

एक स्थल पर महादेवजी वसिष्ठजी से कहते हैं कि- "विशुद्ध अन्तःकरण वाले मुमुक्षु पुरुषों ने मोक्ष के उपासकों के बोध के लिये नाम-रूपरहित सच्चिदानन्द परमात्मा में चेतन, ब्रह्म, शिव, आत्मा, ईश, परमात्मा और ईश्वर आदि पृथक्-पृथक् नाम-रूपों की कल्पना कर रक्खी है। वसिष्ठजी! इस तरह जगत्तत्त्व एवं शिवनामक परमात्मतत्त्व ही सर्वदा सब तरह से सब कुछ है। प्राचीन मुमुक्षु लोगों ने शिव, आत्मा और परब्रह्म इत्यादि नामों से उस परमात्मा की भिन्न-भिन्न कल्पना की है; वस्तुतः परमात्मा एक ही है, उसमें कुछ भी भेद नहीं है।"

मोक्षोपासकबोधाय....................................।
...
चिद्ब्रह्म शिव आत्मेशपरमात्मेश्वरादिका।
एतस्मिन्कल्पिता संज्ञा निःसंज्ञे पृथगीश्वरे।।
एवमेतज्जगत्तत्त्वं स्वं तत्त्वं शिवनामकम्।
सर्वथा सर्वदा सर्व सर्वं यत्सुरवमास्व भो।।
शिव आत्मा परं ब्रह्मेत्यादिशब्दैस्तु भिन्नता।
पुरातनैर्विरचिता तस्य भेदो न वस्तुतः।।

(योगवा. निर्वा. प्र. पू. 41/21-25)

अनेक सर्गों में उपरोक्त बात दुहरायी गयी है (जैसे नि. प्र. पू./35/13-14)। सदाशिव ही सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं। एक स्थल पर वसिष्ठजी भगवान् शिव से पूछते हैं- "जगत् के स्वामिन्! इन सदाशिव की कौन-सी शक्तियाँ हैं, वे किस तरह से रहती हैं, ...?" (संक्षिप्त योगवा. नि. प्र. पू. स. 37 पृ. 403)

महादेवजी उत्तर देते हैं- "उस निराकार, सर्वात्मक, अप्रमेय, परमशान्त, सच्चिदानन्दघन

सदाशिव परमात्मा की इच्छासत्ता, व्योमसत्ता, कालसत्ता, नियतिसत्ता और महासत्ता – ये पाँच सत्तात्मक शक्तियाँ हैं (तात्पर्य यह है कि **'सोऽकामयत बहु स्याम्'** इस श्रुतिवाक्य के अनुसार सबसे पहले उनकी इच्छासत्ता अभिव्यक्त हुई। तदनन्तर आकाशकी अभिव्यक्ति होनेपर आकाशसत्ता, तदन्तर कालात्मक सूत्र की अभिव्यक्ति होनेपर कालसत्ता, सद्रूप के नियत संस्थानवाले भूत एवं भौतिक पदार्थों का अविर्भाव होनेपर नियति – सत्ता अभिव्यक्त हुई और तदनन्तर उनमें अनुस्यूत महासत्ता अभिव्यक्त हुई)। इनके सिवा ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, कर्तृत्वशक्ति और अकर्तृत्वशक्ति आदि परमात्मा की अनेक शक्तियाँ हैं। उन सदाशिव – स्वरूप परमात्मा की इन शक्तियों का कोई अन्त नहीं है।

अप्रमेयस्य शान्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
सौम्य चिन्मात्ररूपस्य सर्वस्यानाकृतेरपि।।
इच्छासत्ता व्योमसत्ता कालसत्ता तथैव च।
तथा नियतिसत्ता च महासत्ता च सुव्रत।।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः कर्तृताऽकर्तृतापि च।
इत्यादिकानां शक्तीनामन्तो नास्ति शिवात्मनः।।

(योगवा. निर्वा. प्र. पू. 37/14 – 16)

इस सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं। उनमें से एक ब्रह्माण्ड – विशेष के महाप्रलय के दृश्य का वर्णन करते हुए वसिष्ठजी श्रीराम से कहते हैं –

"जब ब्रह्मलोकपर्यन्त वह सारा ब्रह्माण्ड एकार्णव के जल से परिपूर्ण हो गया, ...तब इसी बीच में मैंने वहाँ एक भंयकर रूप देखा, जो आकाश के मध्यभाग से प्रकट हुआ था। .... उसने सारे आकाश को व्याप्त कर रखा था और देखने में ऐसा जान पड़ता था मानों .... अंधकार ही देहधारण करके खड़ा हो गया हो। वह प्रातःकाल के एक लाख सूर्यो का प्रकाशमान तेज अकेला ही धारण करता था। उसके तीन नेत्र थे, जो तीन सूर्यों के समान दिखायी देते थे ....। उसके पाँच मुख, दस भुजाएँ और प्रत्येक मुख में तीन – तीन नेत्र थे। उसने अपने हाथ में एक त्रिशूल ले रखा था। उस अनन्त आकाश में उसका वह विशाल शरीर व्याप्त हो रहा था .... मैंने उपरोक्त लक्षणों से पहचान लिया कि ये भगवान् रुद्र हैं। तब मैंने (वसिष्ठजी) दूर से ही उन परमेश्वर को नमस्कार किया।" (सं. योगवा. नि. प्र. उ. स. 80 पृ. 595 – 596)

उपरोक्त बातें सुनकर रामजी वसिष्ठजी से पूछते हैं "मुने! रुद्रदेव ने वैसा भंयकर रूप क्यों धारण किया था? वे काले और विशालकाय क्यों थे? उनके पाँच मुख कौन – कौन और कैसे हैं? वे कैसे और कौन सी दस भुजाएँ धारण करके वहाँ उपस्थित हुए? उनके तीन नेत्र कौन – कौन से थे? वे अकेले क्यों थे? उनका वहाँ प्रकट होने में क्या प्रयोजन था? वे किससे प्रेरित होकर आये थे?

उन्होंने वहाँ क्या किया था? और उनकी छाया कौन थी? ये सब बातें मुझे बताइये।" (वही पृ. 596)

इन प्रश्नों के उत्तर द्वारा वसिष्ठजी ने शिवतत्त्व का स्वरूप रामजी को समझाया। वे कहते हैं- "परमेश्वर वहाँ अंहकार के अभिमानीरूप से रुद्रनामधारी होकर प्रकट हुए थे। उस समय उनकी जो मूर्ति दिखायी दी थी, वह निर्मल आकाशरूपी ही थी। वे महातेजस्वी भगवान् रुद्र आकाशरूपधारी होने के कारण आकाश के समान ही श्यामवर्ण से युक्त दिखायी देते थे। चेतनाकाशमात्र ही उनका सारभूत स्वरूप है, इसलिये वे आकाशात्मा कहे गये हैं। सम्पूर्ण भूतों के आत्मा और सर्वव्यापी होने के कारण ही वे विशालकाय बताये गये हैं। उन अंहकाररूपी रुद्र की प्रत्येक शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली जो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, उन्हीं को ज्ञानी पुरुष उन रुद्रदेव के पाँच मुख बताते हैं। इसीलिये ज्ञानेन्द्रियाँ सब ओर से प्रकाशस्वभाव कही गयी हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा उनके पाँच विषय-ये दस क्रमश: उनके दाहिनी एवं बायीं भुजाएँ हैं। उस प्रलयकाल में सम्पूर्ण भूतों से परित्यक्त होकर आकाशमात्र रूपधारी वे रुद्रदेव एक क्षणतक वहाँ सबको विक्षुब्ध करते हुए-से स्थित रहते हैं। फिर कारणभूत अंहकार-शरीर से रहित हो परमशान्त हो जाते हैं। सत्त्व, रज और तम-ये तीन गुण; भूत, भविष्य और वर्तमान-ये तीन काल; चित्त, अहंकार और बुद्धि- ये त्रिविध अंतःकरण; अ, उ और म्- ये प्रणव के तीन अक्षर तथा ऋक्, साम और यजुष्-ये तीन वेद ही उन भगवान् रुद्रदेव के नेत्ररूप से स्थित हैं। उन्होंने अपनी मुट्ठी में त्रिलोकीरूप त्रिशूल को धारण कर रखा है। उस समय समस्त भूतगणों में भी उनके सिवा दूसरा कोई स्थित नहीं था। इसलिये वे वहाँ अहंकारात्मक रुद्र के रूप में देहाभिमानी-से होकर खड़े थे ।. .... अंहकारस्वरूप भगवान् रुद्र ही कल्पपर्यन्त बड़वानल होकर समुद्र में निवास करते हैं और उसका जल पीते रहते हैं। किन्तु प्रलयकाल में वे सारे समुद्र को ही पी जाते हैं ....।" (योगवा. नि. प्र. उ. सर्ग 80/19-29, 35)

वसिष्ठजी पुन: कहते हैं- "रघुनन्दन! तदनन्तर उस समय उस महाकाश में मैंने देखा, भगवान् रुद्र मत्त-से होकर अकाण्ड ताण्डव में प्रवृत्त हो रहे हैं। उनकी आकृति बहुत दूरतक फैली हुई थी. .... इसके बाद मुझे दिखायी दिया कि उनके शरीर से छाया-सी निकल रही है, जो ताण्डव-नृत्य में उनका अनुकरण एवं अनुसरण करनेवाली है। उस समय मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि बारह सूर्यो के विद्यमान न रहने पर जब आकाश में महान् अन्धकार छा रहा है, तब यह छाया कैसे स्थित हुई है? मैं इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि वह तत्काल नृत्य करती हुई शीघ्रतापूर्वक उनके आगे जाकर खड़ी हो गयी। उसका शरीर भी बहुत विस्तृत था तथा वह भी अपने तीन नेत्रों से सुशोभित हो रही थी। उसका रंग घोर काला था। वह बहुत ही दुर्बल थी। .... वह जरा से जर्जर हो रही थी। .... ब्रह्माण्डरूपी घुँघुरुओं से बनी हुई विशाल माला उसके कटिभाग में करधनी का काम दे रही थी। शिखर, वन और नगररूपी पुष्प-गुच्छों से युक्त तथा पुराने नगर, वन, द्वीप और ग्रामरूपी कोमल पल्लवों से अलंकृत सातों कुलपर्वत उस भगवती काली के गले की पुष्प मालाएँ बने

हुए थे।" (सं. योगवा. नि. प्र. उ. सर्ग 81 पृ. 597 - 98)

प्रलयकाल के उपरोक्त वर्णन को सुनकर भगवान् राम पुनः प्रश्न करते हैं कि जब प्रलयकाल में सब कुछ नष्ट हो गया, तब उस देवी कालरात्रि के शरीर में शिखर, वन, नगर आदि वस्तुओं की स्थिति क्यों और कैसे सम्भव है? निर्वाण को प्राप्त हुआ जगत् किस प्रकार काली के शरीर के माध्यम से नाचने लगा?

उपरोक्त प्रलय के वर्णन का दार्शनिक या आध्यात्मिक अर्थ समझाते हुए वसिष्ठजी श्रीराम से कहते हैं- "वास्तव में न वहाँ पुरुष था न वहाँ स्त्री थी, न वह नृत्य हुआ न वे दोनों रुद्र और काली वैसे विशेषणों से युक्त ही थे। उनके आचार-व्यवहार भी वैसे नहीं थे और उनकी वे आकृतियाँ भी नहीं थीं। जो कारणों का भी परम कारण है, वह अनादि, चिन्मय आकाशस्वरूप, अनन्त, शान्त, प्रकाशस्वरूप, अविनाशी, सर्वव्यापी, सच्चिदानन्दघन, शिवस्वरूप साक्षात् ब्रह्म ही भैरव (रुद्र) के आकार में दिखायी देता था। जगत् का नाश हो जानेपर उस रुद्रदेव के रूप में स्थित हुआ वह चेतनाकाशरूप परमात्मा ही था। चेतन होने के कारण वह परमात्मा अपने चैतन्यस्वभाव वैभव को छोड़कर नहीं रह सकता। जैसे सुवर्ण कटक-कुण्डल आदि के रूप में ही अवस्थित होता है, वह उन आकृतियों का सर्वथा त्याग करके नहीं रहता, उसी प्रकार परमात्मा भी लीला के लिये उमा, महेश्वर आदि सगुणरूप धारण करता है। वह अपने लीला-स्वभाव को सर्वथा छोड़ नहीं सकता। ....मैंने जिस चिन्मय परमाकाश का वर्णन किया है, वह परमात्मा ही शिव कहा गया है। यह सनातन पुरुष है। यही विष्णुरूप से स्थित होता है और यही पितामह ब्रह्मा है। यही चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, ... है। यही भूत, भविष्य, और वर्तमान काल है। जो वस्तु है और जो नहीं है, वह सब परमाकाशरूप परमात्मा ही है।" (संक्षिप्त योगवा. नि. प्र. उ. सर्ग 82 - 83 पृ. 599 - 600)

वसिष्ठजी आगे कहते है- "मैंने जिस चिन्मय परमाकाशस्वरूप परमात्मा का वर्णन किया है, वही श्रुतियों में शिव कहा गया है और वही प्रलयकाल में रुद्र होकर नृत्य करता है। .... उस रुद्रदेव की जो आकृति बतायी गयी है, वह वास्तव में उसकी आकृति नहीं है। उस समय सच्चिदानन्दघनरूप आकाश ही उस आकार में स्फुरित होता है। तत्त्वदृष्टि से मैंने वह आकृति उस समय शान्त चेतनाकाशरूप ही देखी। मैंने ही उसे यथावत्रूप से जाना। दूसरा कोई पुरुष जो तत्त्वदृष्टि से रहित है उसे उस रूप में नहीं देखता है। जैसे सुवर्ण ही विभिन्न आकृतियों से सुशोभित होने वाले कटक-कुण्डल आदि अलंकारों के रूप में स्थित होता है, वैसे ही सत्स्वरूप चेतन ब्रह्म ही अपने स्वभाव से रुद्ररूप धारण करके विराजमान होता है। जो चिद्घन परमात्मा का स्पन्द है, वही भगवान् शिव का स्पन्द (स्फुरण) है। वही हम लोगों के सामने वासनावश नृत्यरूप में प्रकाशित होता है। अतः प्रलयकाल में वे भगवान् शिव भंयकर आकृतिवाले रुद्र होकर जो वेगपूर्वक नृत्य करते हैं, उसे सच्चिदानन्दघन परमात्मा का अपना सहज विलास (लीला) ही समझना चाहिये।" (योगवा. निर्वा. प्रक. उ. सर्ग 83 / 1-4, 17-18)

चिन्मात्रपरमाकाश एष यः कथितो मया
एषोऽसौ शिव इत्युक्तस्तदा रुद्रः प्रनृत्यति।।
यासौ तस्याकृतिर्नासावाकृतिः कृतिनां वर।
तच्चिन्मात्रघनं व्योम तथा कचति तादृशम्।।
मया दृष्टा तदाकाशमेव शान्तं तदाकृतिः।
मयेव तत्परिज्ञातं नान्यः पश्यति तत्तथा।।
यथा नाम स कल्पान्तः स रुद्रः सा च भैरवी।
मायामात्रं तथा सर्वं परिज्ञातमलं मया।।
यः स्पन्दश्चिद्धनस्यास्य शिवस्यास्य स एव नः।
स्ववासनावेशवशात्स्वयमेव विराजते।।
अतः स कल्पान्तशिवो रुद्रो रौद्राकृतिर्द्रुतम्।
यन्नृत्यति हि तद्विद्धि चिद्धनस्पन्दनं निजम्।।
(योगवा. निर्वा. प्र. उत्त. 83/1-4, 17-18)

शिव और शक्ति के स्वरूप को समझाते हुए योगवासिष्ठ में कहा गया है कि "स्पन्दन या मायाशक्ति के द्वारा ही शिव लक्षित होते हैं (या जाने जाते हैं), अन्यथा नहीं। शिव को ब्रह्म ही समझना चाहिये, उस शान्तस्वरूप शिव का वर्णन बड़े-बड़े वाणी-विशारद विद्वान् भी नहीं कर सकते। मायामयी जो स्पन्दनशक्ति है, वही ब्रह्मस्वरूप शिव की इच्छा कही जाती है। वह इच्छा इस दृश्याभासरूप जगत् का उसी तरह विस्तार करती है, जैसे साकार पुरुष की इच्छा काल्पनिक नगर का निर्माण करती है। इस प्रकार शिव की इच्छा ही कार्य करती है। निराकार ब्रह्म-शिव की वह मायामयी स्पन्दनशक्तिरूपा इच्छा ही इस सम्पूर्ण दृश्यजगत् का निर्माण किया करती है।" (योग निर्वा. प्र. उ. सर्ग 84/5-7)

तत्स्पन्दमायाशक्त्यैव लक्ष्यते नान्यथा किल।
शिवं ब्रह्म विदुः शान्तमवाच्यं वाग्विदामपि।।
स्पन्दशक्तिस्तदिच्छेदं दृश्याभासं तनोति सा।
साकारस्य नरस्येच्छा यथा वै कल्पनापुरम्।।
करोत्येव शिवस्येच्छा करोतीदमनाकृतेः। (योगवा. निर्वा. प्र. उत्त. 84/5-7)

पुनः "जैसे वायु की गति या चेष्टा वायु से भिन्न नहीं है, वैसे ही शिवस्वरूप परमात्मा की इच्छा-स्वरूपा वह कालरात्रि (काली) उससे भिन्न नहीं है। जैसे वायु के भीतर की चेष्टा वायुरूप ही है, वैसे ही शिव की इच्छा शिव के स्वरूप से भिन्न नहीं है, अतएव शिवरूप ही है। इसलिये वह अनिच्छा ही है। इस दृष्टि से शिव में इच्छा का अभाव है। ...." (योगवा. नि. प्र. उ. 85/5 आदि)

"वह शिवा परमेश्वर शिव की इच्छारूपा प्रकृति कही गयी है। वही जगन्माया के नाम से विख्यात है। वह परमेश्वर शिव की स्वाभाविक स्पन्द-शक्ति है। वे परमेश्वर प्रकृति से परे पुरुष कहे गये हैं। .... वे शिवरूप-धारी शान्त परमात्मा शरत्काल के आकाश की भाँति निर्मल एवं परम शान्तिमान् हैं।"

सा राम प्रकृतिः प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा।।
स परः प्रकृतेः प्रोक्तः पुरुषः पवनाकृतिः।
शिवरूपधरः शान्तः शरदाकाशशान्तिमान्।।

(योगवा. निर्वा. प्र. उत्त. 85/14-15)

यह चिति देवी (इच्छारूपा प्रकृति) जब शिव का स्पर्श करती है, तब पूर्णतः शिवस्वरूप ही हो जाती है। जैसे नदी समुद्र का स्पर्श करते ही अपने नाम और रूप को त्यागकर उसके भीतर समा जाती है, वैसे ही प्रकृति पुरुष का स्पर्श प्राप्त करते ही उसके भीतर एकता को प्राप्त हो अपनी प्रकृति-रूपता का परित्याग कर देती है। उस समय प्रकृति चिति-निर्वाण-रूप परम पद को प्राप्त हो तद्रूप बन जाती है, जैसे नदी समुद्र में मिलकर समुद्ररूप हो जाती है।" (योगवा. निर्वा. प्र. उ. सर्ग 85/18-19)

उपरोक्त संदर्भो में शिव को परब्रह्म स्वीकार किया गया है, वही रुद्ररूप से सृष्टि का संहार करते हैं तथा प्रलय हो जाने के बाद अपनी माया, शक्ति अथवा इच्छा, को समेटकर आत्मस्थ हो सदाशिवरूप धारण कर लेते हैं। जब वे अपनी अद्वैत निराकर सदाशिव अवस्था में सृष्टि का संकल्प करते हैं तो उनकी शक्ति माया (उमा) सृष्टि की रचना कर देती है और वही शिव द्वैत रूप धारण कर लेता है। फलस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सहित समग्र सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। अतः कहा जा सकता है कि तीनों प्रमुख देव तात्त्विक दृष्टि से एक ही तत्त्व की पृथक-पृथक अभिव्यक्तियाँ हैं। द्वैत की अवस्था में शिव एवं शक्ति का अलगाव रहता है परन्तु प्रलय के समय पुनः अद्वैत स्थिति प्राप्त हो जाती है उस समय शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं रह जाता। फलस्वरूप आत्मस्थ सदाशिव इच्छा रहित या मायातीत होता है। अतः भगवान् शिव या उमापति को देव-देवेश (सं. योग. नि. प्र. पू. सर्ग 115, पृ. 498) तथा त्रिभुवन का अधिपति (सं. योग वा. नि. प्र. पू. सर्ग 42, पृ. 409) कहा गया है।

मानस-शिवपूजा

भगवान् शंकर ने कैलास पर्वत की कन्दरा में वसिष्ठजी को जन्म-मरणरूप दुःख की शान्ति तथा अज्ञान के नाश के लिये मानस-शिवपूजा की विधि समझायी थी:

भगवान् शिव से वसिष्ठजी पूछते हैं कि "देवेश! .... वह देवार्चन-विधान किस तरह का है, जो उद्वेग का नाशक, विकाररहित, समस्त पापों का विनाशकारी तथा समस्त कल्याणों का अभिवर्धक है? ...."

ब्रूहि प्रसन्नया बुद्ध्या त्यक्तोद्वेगमनामयम्।
सर्वपापक्षयकरं सर्वकल्याणवर्धनम्।।
देवार्चनविधानं तत्कीदृशं भवति प्रभो।। (योगवा. निर्वा. प्र. पू. 29/115-116)

महादेवजी उत्तर में कहते हैं "मैं तुमसे सर्वश्रेष्ठ वह देवार्चन का विधान कहता हूँ, जिसका अनुष्ठान करने से तत्काल मनुष्य मुक्त हो जाता है। .... इस विषय का तात्त्विक ज्ञान रखनेवाले विद्वान् कहते हैं कि एकमात्र निर्गुण निराकार विज्ञानानन्दघन विशुद्ध परमात्मा शिव ही पूज्य है और उसकी पूजन-सामग्री में ज्ञान, समता और शान्ति-ये सबसे श्रेष्ठ पुष्प हैं। महर्षे! ज्ञानस्वरूप परमात्मदेव की ज्ञान, समता और शान्तिरूप पुष्पों से जो पूजा की जाती है, उसी को आप वास्तविक देवार्चन जानिये। परमात्मा ही विज्ञानस्वरूप देव, भगवान् शिव और परम कारणस्वरूप है। अतः ज्ञानरूप पूजन-सामग्री से उसी की सदा-सर्वदा पूजा करनी चाहिये।

शृणु ब्रह्मविदां श्रेष्ठ देवार्चनमनुत्तमम्।
वदामि मुच्यते येन कृतेन सकृदेव हि।।
शिवं चिन्मात्रममलं पूज्यं पूज्यविदो विदुः।
शमबोधादिभिः पुष्पैर्देव आत्मा यदर्च्यते।
आत्मैव देवो भगवाञ्छिवः परमकाणम्।
ज्ञानार्चनेनाविरतं पूजनीयः स सर्वदा।।

(योगवा. निर्वा. प्र. पू. 29/117, 127, 131)

वह सच्चिदानन्द कल्याणस्वरूप शिव समस्त गुणों से अतीत और सम्पूर्ण संकल्पों से रहित है। मुने ! देश और काल आदि परिच्छेदों से रहित, समस्त संसार का प्रकाश करनेवाला विशुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा ही देव कहा जाता है। वही परब्रह्म परमात्मा 'ॐ', 'तत्', 'सत्'-इन नामों से कहा गया है। ....चिन्मय परमात्मा ने ही गदा, चक्र आदि आयुधों से युक्त चतुर्भुज विष्णुरूप से समस्त असुर-समूह का विनाश किया था। चेतन परमात्मा ने ही वृषभ और चन्द्रमा के चिन्हों से युक्त त्रिनेत्र रूप धारण कर गौरी को प्राप्त किया है। चेतन परमात्मा ही भगवान् विष्णु के नाभी-कमल में भ्रमर के समान ध्यान में तल्लीन ब्रह्माजी का रूप धारण करता है .... सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही नारायण होकर समुद्र में शयन करता है, ब्रह्मा होकर ब्रह्मलोक में ध्यान में स्थित रहता है, हिमालय पर्वत पर पार्वती के सहित महादेवजी का रूप धारण कर निवास करता है और बैकुण्ठ में विष्णु का रूप धारण कर रहता है। वह परमात्मा सूर्य बनकर दिन का निर्माण करता है (आदि-आदि) ....।(योगवा. निर्वाण प्र. पू: सर्ग 30/11-12, 37-39, 93-94)

शिवः सर्वपदातीतः सर्वसंकल्पनातिगः।
सर्वसंकल्पवलितो न सर्वो न च सर्वकः।।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नः सर्वारम्भप्रकाशकृत्।
चिन्मात्रमूर्तिरमलो देव इत्युच्यते मुने।। (योगवा. निर्वा. प्र. पू. 30/11-12)

उपरोक्त ज्ञान-दृष्टि, कि सम्पूर्ण विश्व उस सदाशिव का ही रूप है, तात्त्विक दृष्टि से ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य आदि सभी देवता एवं आत्माएँ एक ही शिव के विविध रूप हैं, से समस्त व्यवहार करना ज्ञान द्वारा परमात्मा शिव की पूजा कही जाती है। व्यवहार में सभी स्थितियों(सुख-दुख, लाभ-हानि, मान-अपमान, जय-पराजय आदि-आदि) में मानसिकरूप से सम या उद्वेगरहित रहना, यह ब्रह्म की समतारूपी पूजा कही जाती है। सदैव अपने आप को मानसिक स्तर पर शान्त बनाये रखना यह भगवान् शिव की शान्तिरूप पूजा है। वसिष्ठजी ने शिव-मानसपूजा के इन तीन तत्त्वों का उपदेश भगवान् शिव से प्राप्त किया था।

जैसा यह पहले ही बताया जा चुका है कि योगवासिष्ठ ज्ञान-प्रधान ग्रन्थ है अतः इसमें केवल मानस-पूजा, योग, ध्यान आदि का ही मोक्ष के साधन के रूप में वर्णन किया गया है।

(4) अन्य रामायण

अन्य प्रचलित रामायणों में अध्यात्मरामायण तथा अद्भुत रामायण मुख्य हैं। अध्यात्मरामायण को ब्रह्माण्डपुराण के उत्तरखण्ड का अंश माना जाता है[1] जबकि अद्भुत रामायण को धार्मिक परम्परा में महर्षि बाल्मीकि की रचना मानी जाती है। यहाँ हम इन दोनों के आधार पर शिव माहात्म्य का वर्णन करेंगे।

अध्यात्मरामायण एवं अद्भुत रामायण में भगवान् शिव से संबंधित संदर्भ बहुत ही कम मिलते हैं परन्तु जो मिलते हैं वे शिव की गरिमा के संबंध में महत्त्वपूर्ण संकेत देते हैं।

अध्यात्मरामायण के प्रारंभ में उसके माहात्म्य की चर्चा की गयी है। चर्चा शुरू करने से पहले कहा गया है-

अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये।
मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तये नमः।। (अ. रा. माहा. श्लोक-1)

"जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परे, त्रिगुणातीत, मलहीन अर्थात् निर्मल, ज्ञानस्वरूप और मन, वाणी आदि से अगम्य या परे हैं, उन दक्षिणामूर्ति भगवान्(सदाशिव) को नमस्कार है।"

इस एक ही श्लोक में भगवान् सदाशिव की सभी विशेषताओं को बतला दिया गया है जिनका विस्तृत वर्णन रामचरितमानस में किया गया है। इन सभी विशेषताओं से युक्त तो केवल ब्रह्म ही हो सकता है।

अरण्यकाण्ड(2/30) में सुतीक्ष्णजी ने राम की स्तुति करते हुए उन्हें विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव से अभिन्न या एकरूप बताया है। यहाँ पर राम के तात्त्विक स्वरूप को ध्यान में रखकर प्रार्थना की गयी है।

---

[1] वर्त्तमान में उपलब्ध बह्माण्ड पुराण की प्रतियों में अध्यात्मरामायण उपलब्ध नहीं होता।

युद्धकाण्ड (4/1-4) में महादेवजी पार्वती से कहते हैं कि सेतुबन्ध के आरम्भ होनेपर भगवान् राम ने रामेश्वर महादेव की स्थापना कर उनका पूजन करते हुए लोकहित के लिये इस प्रकार कहा। जो पुरुष रामेश्वर शिव का दर्शन कर सेतुबन्ध को प्रणाम करेगा वह मेरी कृपा से ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जायगा। यदि कोई पुरुष सेतुबन्ध में स्नानकर रामेश्वर महादेव के दर्शन करे और फिर संकल्पपूर्वक काशी जाकर वहाँ से गंगाजल लावे तथा उससे रामेश्वर का अभिषेक कर उस जल के पात्र को समुद्र में डाल दे तो वह निःसन्देह ब्रह्म को (अर्थात् मोक्ष को) प्राप्त कर लेता है।

सेतुमारभमाणस्तु तत्र रामेश्वरं शिवम्।
संस्थाप्य पूजयित्वाह रामो लोकहिताय च॥
प्रणमेत्सेतुबन्धं यो दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम्।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते मदनुग्रहात्॥
सेतुबन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं हरम्।
सङ्कल्पनियतो भूत्वा गत्वा वाराणासीं नरः॥
आनीय गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च।
समुद्रे क्षिप्ततद्भारो ब्रह्म प्राप्नोत्यसंशयम्॥

(अध्यात्मरामायण, युद्धकाण्ड 4/1-4)

पुनः युद्धकाण्ड (14/5-6) में रावण को मारकर वापस लौटते समय रघुनाथजी ने सीताजी से कहा है-

"देखो, इस विशाल समुद्रपर यह सेतुबन्ध नाम से विख्यात तीर्थ दिखायी देता है, जो तीनों लोकों से पूजनीय है। यह अत्यन्त पवित्र है और दर्शनमात्र से ही सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाला है। यहाँ मैंने श्रीरामेश्वर महादेव की स्थापना की है।"

अध्यात्मरामायण के उत्तरकाण्ड (4/26-27) में उल्लेख है कि-

लोकानामुपदेशार्थं परमात्मा रघूत्तमः।
कोटिशः स्थापयामास शिवलिङ्गानि सवर्शः॥ (उ. का. 4/26-27)

अर्थात्- भगवान् राम ने लोगों को उपदेश देने के लिये जगह-जगह करोड़ों शिवलिंग स्थापित किये।

एक स्थल पर (माहात्म्य/50) यह भी बताया गया है कि पूर्वकाल में सहस्त्रार्जुन के वध की इच्छा से परशुरामजी धनुर्विद्या का अभ्यास करने के लिये महादेवजी के पास रहते थे। परशुराम, जो अद्वितीय धनुर्धर थे, उन्होंने भगवान् शिव से ही धनुर्वेद को सीखा था।

पुनः युद्धकाण्ड (16/35) में कहा गया है कि यह रामायण पूर्वकाल में महादेवजी ने पार्वती को सुनाया था। भगवान् शिव को सभी विद्याओं का आचार्य (अन्य ग्रन्थों में) स्वीकार किया गया।

इसका संकेत भी हमें उपरोक्त दोनों संदर्भों से प्राप्त होता है। पहले सन्दर्भ में धनुर्वेद के आचार्य एवं दूसरे में रामायण के आचार्य बताये गये हैं।

उपरोक्त संदर्भों में भगवान् शिव एवं उनके तीर्थ रामेश्वर एवं काशी की महत्ता झलकती है। यहाँ शिव की लिंगपूजा का भी स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। साथ ही भगवान् राम एवं शिव के घनिष्ठ संबंध पर भी प्रकाश पड़ता है। अर्थात् वे दोनों तत्त्वतः एक ही हैं।

अद्‌भुत रामायण के अन्तर्गत भी भगवान् शिव के बहुत ही कम संदर्भ मिलते हैं। दूसरे सर्ग (5, 6 तथा 22 वें श्लोक) में भगवान् विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव की तात्त्विक एकरूपता को बताया गया है।

पुनः (2/41, 42) में अम्बरीष को भगवान् विष्णु वर देते समय कह रहे हैं कि सुदर्शन-चक्र जिसे पहले हमने रुद्र के प्रभाव से प्राप्त किया है, वह तुम्हारी ऋषि के शाप, दुखः, शत्रु, रोग आदि से रक्षा करेगा। इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि भगवान् शिव ने ही भगवान् विष्णु को सुदर्शन चक्र प्रदान किया था तथा उस चक्र में उपरोक्त विशेषतायें थी। अनेक पुराणों (जैसे ब्रह्मपु. 109/2, लिंग पुरा. 1/65/16-17 तथा 1/अध्याय 98 तथा शिव पुराण कोटिरुद्र संहिता अध्याय 34-36) में ऐसी कथा आती है जिसमें भगवान् विष्णु ने शिवजी की उपासना से सुदर्शन चक्र को प्राप्त किया था। विस्तृत वर्णन के लिये 'शिव पुराण' तथा 'लिंग पुराण' से संबंधित अध्यायों को देखें।

उपसंहार

यद्यपि रामायण राम-भक्ति प्रतिपादक वैष्णव ग्रन्थ है, तथापि जहाँ-जहाँ भगवान् शिव का प्रसंग आया है वहाँ शिव को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। बा. रामायण, रामचरितमानस, वसिष्ठरामायण, अध्यात्मरामायण आदि में भगवान् शिव को प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परे, त्रिगुणातीत, निर्मल, ज्ञान-स्वरूप, जगत्स्रष्टा तथा संहारकर्त्ता, सबलोकों का आधार, परमगुरु, अजन्मा, अव्यक्त रूपधारी, आराध्य देव, वरदाता, आशुतोष, दयानिधि, देव-दानव-मनुष्य आदि सबके आराध्य, भावी या भाग्य को मिटा देनेवाले, शरणागत के दुःखों का नाश करनेवाले, मोक्षस्वरूप, विभु, ब्रह्म, वेदस्वरूप, सबके स्वामी, माया से रहित, भेदरहित, इच्छारहित, दिगम्बर, ओंकार के मूल, कैलासपति, महाकाल के भी काल, गंगाधारी, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकार के दुःखों को दूर करनेवाले, सच्चिदानन्दघन, मोह को हरनेवाले, समस्त जीवों के हृदय में निवास करनेवाले तथा कलि के मल को दूर करनेवाले माना गया है।

भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का विवेचन रामायण ग्रन्थों में मिलता है। लिंग-पूजा का उल्लेख भी मिलता है। रामेश्वर लिंग के अलावे भी भगवान् राम ने करोड़ों लिगों को भूतल पर स्थापित किया है-ऐसा अध्यात्मरामायण में कहा गया है। रामायणों में काशी को मोक्षपुरी कहा गया है। रामचरितमानस में अनेकों जगह यह कहा गया है कि बिना शिव की भक्ति एवं कृपा के भगवान् राम की भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। शिवद्रोही कल्पभर नरक में वास करता है तथा वह मेढक (दादुर) की योनि प्राप्त करता है। भगवान् शिव की उपासना से न केवल राम की भक्ति अपितु

किसी भी देव की भक्ति प्राप्त हो सकती है क्योंकि वे सर्वदेवमय हैं। मानस में कहा गया है कि बिना शिव–आराधना के अभीष्ट फल की प्राप्ति करोड़ों योग और जप के साधने से नहीं हो सकती।

मानस एवं अन्य सभी रामायणों में ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन किया गया है। निर्गुणरूप में ये तीनों एक ही हैं। निर्गुणरूप को योगवासिष्ठ में सदाशिव कहा गया है। परन्तु सगुण रूप में ये तीनों भिन्न हैं। रामायण ग्रन्थों में ब्रह्मा को विष्णु एवं शिव की अपेक्षा कम महत्त्व दिया गया है। जहाँतक भगवान् शिव एवं राम के संबंधों का सवाल है, मानस में तीन तरह के लौकिक संबंधों–स्वामी, सेवक एवं सखा–का कथन किया गया है। भगवान् शिव भगवान् राम के कभी स्वामी, तो कभी सेवकरूप में आते हैं तो कभी सखारूप में। वास्तव में तात्त्विक दृष्टि से इन दोनों में अनन्यता है परन्तु भगवान् शिव एवं राम की सगुण लीला में अन्तर है। भगवान् राम थोड़े समय के लिये धरती पर रहते हैं जबकि भगवान् शिव अविनाशीरूप से स्थित हैं। अत: राम की अपेक्षा शिव की सगुण लीला ज्यादा दिव्य लगती है।

अद्भुत रामायण में भगवान् विष्णु को भगवान् शिव से सुदर्शनचक्र की प्राप्ति का उल्लेख है। सगुण एवं निर्गुण दोनों में से सगुण उपासना को रामायणों में सरल साधन बताया गया है। निर्गुण उपासना की चर्चा योगवासिष्ठ में ज्यादा की गयी है जबकि मानस में भक्तिमार्ग की या सगुणोंपासना की। भगवान् शिव की उपासना से देव–दानव–मनुष्य सभी लाभ उठाते रहे हैं जबकि भगवान् विष्णु की उपासना (कुछ अपवादों को छोड़कर) सामान्यत: दानवों द्वारा नहीं की जाती क्योंकि भगवान् विष्णु को दानव अपना विरोधी मानते रहे हैं। अत: भगवान् शिव ही सबके उपास्य सिद्ध होते हैं। वे आशुतोष होने के कारण शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं तथा वे ऐसे भी वरदान दे डालते हैं जो अन्य किसी भी देव को देना सम्भव नहीं है। वे अपनी दया दिखाते समय कुछ भी विचार नहीं करते। वे अपना सब कुछ दे सकते हैं। इसीलिये मानस में तुलसीदास कहते हैं–

जरत सकल सुर बृंद विषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस।।

(किष्किन्धा काण्ड प्रथम सोरठा)

(यह लेख गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित श्रीमद्बाल्मीकीय रामायण सातवां संस्करण, रामचरितमानस 26वाँ संस्करण, अध्यात्मरामायण 18वाँ संस्करण तथा कल्याण का संक्षिप्त योगवासिष्ठ अंक दूसरा संस्करण वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा 1995 में प्रकाशित अद्भुत रामायण तथा मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स द्वारा 1981 में दो खण्डों में प्रकाशित योगवासिष्ठ: पर आधारित है।)

❋ ❋ ❋

महाभारत में शिवतत्त्व

महाभारत एवं रामायण हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के मूल ग्रन्थ माने जाते हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ जन-सामान्य में अत्यन्त प्रचलित हैं। रामायण की तुलना में महाभारत बहुन ही वृहद ग्रन्थ है। इसके लेखक वेदव्यासजी माने जाते हैं। इस ग्रन्थ को विद्वान् लोग पंचम वेद भी कहते हैं। ऐसा कहने का एक कारण यह है कि ऐसे हिन्दू पौराणिकतत्त्व जो महाभारत में नहीं हैं वे कहीं भी नहीं हैं। दूसरे शब्दों में महाभारत को एक तरह से हिन्दू धर्म, सभ्यता एवं संस्कृति का विश्वकोष कह सकते हैं। इसके अन्दर सभी प्रकार के पौराणिक आख्यान, दार्शनिक सिद्धान्त, धर्मशास्त्र के नियम तथा धार्मिक मान्यतायें मिलती हैं। अतः इस ग्रन्थ को ज्ञान का भंडार कहा जा सकता है।

इस ग्रन्थ के दो तरह के पाठ प्रचलित हैं। पहला पाठ दाक्षिणात्य तथा दूसरा उत्तर भारतीय कहा जाता है। प्रस्तुत लेख मूलतः उत्तर भारतीय पाठ, जिसे गीताप्रेस, गोरखपुर ने प्रकाशित किया है, पर आधारित है। इस प्रकाशन में बीच-बीच में दक्षिण-भारतीय पाठ के उपयोगी अंश भी दिये गये हैं। महाभारत में भगवान् शिव की महिमा संबंधी बहुत सी बातें विस्तार के साथ प्राप्त होती हैं। इस निबंध में हम मात्र उन बातों का सारांश ही प्रस्तुत कर पायेंगे। शिवमहिमा संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों को हम अलग से(मूलग्रन्थ से यथावत् लेकर) इसी पुस्तक में अन्यत्र प्रस्तुत करेंगे।

भगवान् शिव का स्वरूप

भारतीय दर्शन में परमतत्त्व जिसे एक, सबका कारण, निर्गुण, अनिर्वचनीय, अज्ञेय, अनादि तथा अनन्त कहा जाता है, उसे ब्रह्म कहते हैं। इस ब्रह्म के दो रूप हैं- निर्गुण एवं सगुण अथवा पर एवं अपर। निर्गुणरूप में ब्रह्म को अनिर्वचनीय, मन, वाणी तथा बुद्धि से परे, अनादि, अनन्त, एक तथा शुद्ध कहा जाता है। सगुणब्रह्म को जगत् का सृष्टि, पालन एवं संहारकर्त्ता, विश्वरूप, सबकी आत्मा, ईश्वर, परमात्मा, समस्त दिव्य गुणों से युक्त, मोक्षदाता, परमदयालु, सर्वाधार, अत्यन्त सूक्ष्म एवं अत्यन्त महान् आदि-आदि कहा जाता है। महाभारत में सैकड़ों स्थल पर भगवान् शिव को परमतत्त्व या ब्रह्म कहा गया है अथवा उन्हें ऐसी विशेषताओं से युक्त बताया गया है जो उन्हें ब्रह्म सिद्ध करती हैं।

इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन ने तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्नकर पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था। उस समय जब शिव उनके समक्ष असली रूप में प्रकट हुए तो अर्जुन ने उनकी स्तुति की। उसने अपनी स्तुति में शिव को जटाजूटधारी, सर्वदेवेश्वर, महादेव, नीलग्रीव, समस्त कारणों में सर्वश्रेष्ठ कारण, त्रिनेत्रधारी, सर्वव्यापी, सभी देवों के आश्रय, सभी से अपराजित रहनेवाले, विष्णुरूप, जगत्संहारक, त्रिशूलधारण करनेवाले, मंगलकारक, सृष्टिकर्त्ता, परमेश्वर, भूतगणों के स्वामी तथा प्रकृति-पुरुष से परे आदि कहा है।(महाभारत वनपर्व 39/74-79)

गणेशं जगतः शम्भुं लोककारणकारणम्।

प्रधानपुरुषातीतं परं सूक्ष्मतरं हरम्।। (महा. वनपर्व 39/79)

अर्थात्-आप भूतगणों के स्वामी, सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करनेवाले तथा जगत् के कारणों के भी कारण हैं। प्रकृति और पुरुष दोनों से परे अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूप तथा भक्तों के पापों को हरनेवाले हैं।

अर्जुन को दुबारा पाशुपतास्त्र की प्राप्ति स्वप्न में जयद्रथवध की पूर्वरात्रि को हुई थी। इस प्रसंग में भी भगवान् शिव को परमात्मा, मस्तक पर जटाजूट धारण करनेवाला, गौरवर्ण, मृगचर्मधारी, सहस्रनेत्रों से युक्त, अच्युत, सभी प्राणियों के रक्षक तथा सनातन ब्रह्मस्वरूप कहा गया है। (महा. द्रोणपर्व 80/38-43)

स्वप्न में ही श्रीकृष्ण एवं अर्जुन ने भगवान् शिव की स्तुति की और उसमें उन्हें जगत् का आदि कारण, लोकस्रष्टा, अजन्मा, ईश्वर, अविनाशी, योगों के परम आश्रय, चराचर जगत् की सृष्टि एवं संहार करनेवाले, वरदाता, रुद्र (दुःख दूर करनेवाले), पशुपति, त्रिनेत्रधारी, शान्तिस्वरूप, पिनाकधारी, त्रिशूलधारी, विश्वात्मा, विश्व के स्वामी, सहस्त्रों सिर, भुजा, नेत्र एवं पैरवाले तथा भक्तवत्सल आदि कहा। (महाभारत द्रोणपर्व 80/44-47, तथा 80/55-64)

अश्वत्थामा के आग्नेयास्त्र का जब अर्जुन एवं श्रीकृष्ण पर कोई असर नहीं हुआ तो वहाँपर सहसा प्रकट हुए व्यासजी से उसने इसका कारण पूछा। कारण बताने के प्रसंग में व्यासजी ने शिवजी को संपूर्ण विश्व का उत्पत्ति-स्थान, जगत् का पालक, संपूर्ण देवों द्वारा स्तुत्य, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, महान् से भी परम महान्, दुःख दूर करनेवाले, सारे क्लेशों को हरनेवाले, दिव्य धनुष धारण करनेवाले, पिनाक, वज्र, त्रिशूल, फरसा, गदा, तलवार, मुसल, परिध और दण्ड आदि धारण करनेवाले, नागों का यज्ञोपवीत पहननेवाले, मोक्ष के कारण, रुद्राक्षधारी, विश्वरूप, धर्म तथा स्तवन करने योग्य कहा है (महाभारत द्रोणपर्व 201/62-69)। वहीं पर आगे कही गया है-

....

अजमीशानमव्यक्तं कारणात्मानमच्युतम्। (महा. द्रोणपर्व 201/70-71)

अर्थात्-उन अजन्मा, ईशान अव्यक्त, कारणस्वरूप और अपनी महिमा से कभी च्युत न होनेवाले परमात्मा को (उनके पार्षदस्वरूप भूतगणों ने घेर रक्खा था)।

श्रीनारायण को हिमालय पर्वत पर तपस्या करने के फलस्वरूप रुद्रदेव के दर्शन हुए थे। उस समय वे शिव की स्तुति में उन्हें आदिदेव, विश्व की सृष्टि एवं रक्षा करनेवाले, प्रजापतियों के भी कारण, देवता, असुर, नाग, मानव आदि सभी प्राणियों के अखिल समुदायों के कर्त्ता, पंच महाभूत, काल, ब्रह्मा तथा सम्पूर्ण चराचर के कर्त्ता, कालस्वरूप तथा सबसे परे कहा है। (महाभारत द्रोणपर्व 201/72-74 आदि)

व्यासजी अर्जुन को भगवान् शिव की महिमा शतरुद्रिय स्तोत्र की व्याख्या के माध्यम से समझाते

हुए शिव को सर्वसमर्थ, सम्पूर्ण लोकों के स्वामी एवं शासक, वरदायक, ईश्वर, जगत् के कारण भूत, अव्यक्त प्रकृति, विश्वात्मा, कर्मों के फलदाता, विश्वनियन्ता, भूत, भविष्य एवं वर्तमान के कारण, यागेश्वर, सर्वस्वरूप, तीनों लोकों के एकमात्र स्रष्टा, शुद्धात्मा, सनातन, जन्म, मृत्यु तथा जरा आदि विकारों से परे तथा ज्ञानस्वरूप कहा है(द्रोणपर्व 202/9-18)।

शतरुद्रिय की व्याख्या में आगे व्यासजी ने शिव को शान्तस्वरूप, नीलकण्ठ, जटाजूटधारी, कालस्वरूप, भवसागर से पार उतारनेवाले, उत्तमतीर्थ, सर्वस्वरूप, सबके प्रिय, परशुरामरूप, बहुरूप, सहस्र सिर, नेत्र, बाहु और पैरवाले, वरदायक, भुवनेश्वर, त्रिनेत्रधारी, अविनाशी, धर्मस्वरूप, धर्म के ईश्वर, पिनाकधारी, परमधाम, परमपद, सनातन, विश्वात्मा तथा शुभाशुभ कर्मों के फलदाता, आदि कहा है।(द्रोणपर्व 202/27-144)

धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः।।
सर्वदेवैः स्तुतो देवः सैकधा बहुधा च सः।
शतधा सहस्रधा चैव भूयः शतसहस्रधा।। (द्रोणपर्व 202/105-106)

अर्थात्- वे ही धाता, विधाता, विश्वात्मा और विश्वरूपी कार्य के कर्त्ता हैं। वे शरीररहित होकर भी सम्पूर्ण देवताओं के शरीर धारण करते हैं। सम्पूर्ण देवता सदा उनकी स्तुति करते हैं। वे महादेवजी एक होकर भी अनेक हैं। सौ, हजार और लाखों रूपों में वे ही विराज रहे हैं।

त्रिपुरासुर से भयभीत देवता शिव की शरण में जाकर उस असुर को मारने के निमित्त स्तुति करते हैं। उस समय वे अपनी स्तुति में शिव को इस प्रकार कहते हुए नमस्कार करते हैं-

अर्हाय चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च।
दुर्वारणाय शुक्राय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे।।
ईशानायाप्रमेयाय नियन्त्रे चर्मवाससे।
तपोरताय पिङ्गाय व्रतिने कृत्तिवाससे।। (महा. कर्णपर्व 33/58-59)

अर्थात्- आप पूजनीय, शुद्ध तथा प्रलयकाल में सबका संहार करनेवाले हैं। आपको रोकना या पराजित करना सर्वथा कठिन है। आप शुक्लवर्ण, ब्रह्म, ब्रह्मचारी, ईशान, अप्रमेय, नियन्ता तथा व्याघ्रचर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले हैं। आप सदा तपस्या में तत्पर रहनेवाले, पिङ्गलवर्ण, व्रतधारी और कृत्तिवासा हैं। आपको नमस्कार है।

अश्वत्थामा ने पाण्डव शिविर में सोये पांचाल आदि वीरों का संहार करने के लिये भगवान् शिव से खड्ग प्राप्त किया था। वह खड्ग अश्वत्थामा ने शिवजी की स्तुति से प्राप्त किया था। उस स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव को वरदायक, नीलकण्ठ, अजन्मा, शुद्धात्मा, संहारकारी, विश्वरूप, अनेक रूपधारी, शमशानवासी, गणों के अधिपति, सर्वव्यापी तथा ब्रह्मा आदि की सृष्टि करनेवाले आदि-आदि

कहा है।(सौप्तिकपर्व 7/2-11)

शुक्रं ब्रह्मसृजं ब्रह्म ब्रह्मचारिणमेव च।
व्रतवन्तं तपोनिष्ठमनन्तं तपतां गतिम्।। (महा. सौप्तिकपर्व 7/7)

अर्थात्-आप शुद्धस्वरूप ब्रह्म हैं। आपने ही ब्रह्माजी की सृष्टि की है। आप ब्रह्मचारी, व्रतधारी तथा तपोनिष्ठ हैं, आपका कहीं अन्त नहीं है। आप तपस्वीजनों के आश्रय हैं।

दक्ष अपने यज्ञ के विध्वंस हो जानेपर भगवान् शिव की शरण लेता हुआ उन्हें प्रणाम करते हुए कहता है-

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।
महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगतः पतिम्।।[1] (महा. शान्तिपर्व 284/57)

अर्थात्-जो सम्पूर्ण जगत् के शासक, पालक, महान् आत्मा, नित्य, सनातन, अविकारी और आराध्यदेव हैं, उन महादेवजी की आज मैं शरण लेता हूँ।

तदनन्तर भगवान् शिव ने प्रकट होकर दक्ष को मनोवांछित वर दिया। वर-प्राप्ति के पश्चात् दक्ष ने भगवान् शिव की एक हजार आठ नामों से स्तुति की।[2] इस स्तुति में वे भगवान् शिव को देवदेवेश्वर, देव-दानव-पूजित, सूर्य, ब्रह्म तथा इन्द्रस्वरूप, अष्टमूर्तिरूप(जिसमें सभी देवों का निवास है), विष्णुरूप, कारण, कार्य, क्रिया और करणरूप, सत् और असत् पदार्थों की उत्पत्ति एवं प्रलय के हेतु, वरद, पाप एवं दुःख को दूर करनेवाले, पशुपति, सर्वस्वरूप, संपूर्ण भूतों की आत्मा, मन्त्रस्वरूप, अवस्था में सबसे ज्येष्ठ और गुणों में सबसे श्रेष्ठ, काल के नियन्ता, भीषण व्रत को धारण करनेवाले, ध्यानपरायण, रुद्राक्षधारी, परम शान्तरूप, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, परमेश्वर, सब कुछ देनेवाले, ब्रह्म, ॐकारस्वरूप, वेद एवं उपनिषद् जिनकी महिमा का गान करते हैं, गायत्रीरूप, शतरुद्रिय के नामों को धारण करनेवाले, ब्रह्मा, विष्णु एवं प्राचीन ऋषियों द्वारा जिनका माहात्म्य अज्ञात है, सबको माया से मोहनेवाले आदि-आदि कहा है(महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्षधर्मपर्व 284/69-180)। स्तुति के कुछ अंश देखें -

चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता तथैव च।
त्वामाहुर्ब्रह्मविदुषो ब्रह्म ब्रह्मविदां वर।।
मनसः परमा योनिः खं वायुर्ज्योतिषां निधिः।
ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः।।
आदिश्चान्तश्च देवानां गायत्र्योंकार एव च।
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पौराणा ऋषयो न ते।

---

[1] यह श्लोक यथावत् वायुपुराण(पूर्वार्द्ध 1/1) में भी पाया जाता है।

[2] यह स्तुति थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ ब्रह्मपुराण, 40/2-100 तथा वायु पुराण, 1/30/ 180-284 में भी पायी जाती है। यही स्तुति थोड़े परिवर्तन के साथ वामन पुराण, सरो-माहात्म्य 26/63-163 में वेन द्वारा की गयी है।

माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव।।
.... सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवाञ्छिवः।

अर्थात्–ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! आप ही चराचर जीवों की सृष्टि तथा संहार करनेवाले हैं। ब्रह्मज्ञानी पुरुष आपको ही ब्रह्म कहते हैं। वेदवादी विद्वान् आपको ही मन का परम कारण, आकाश, वायु, तेज की निधि, ऋक्, साम तथा ॐकार बताते हैं। आप देवताओं के आदि और अन्त हैं। गायत्री–मन्त्र और ॐकार भी आप ही हैं। शिव! आपके माहात्म्य को ठीक–ठीक जानने में ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि भी समर्थ नहीं हैं। भगवान् शिव सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं।(महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्षपर्व 284/118–119, 130, 160, 193)

दक्ष द्वारा की गयी भगवान् शिव की स्तुति को देखने से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव ही ब्रह्म, सर्वश्रेष्ठ, सर्वपूज्य, धर्म आदि पुरुषार्थों के साधक, परम दयालु, भक्तों को वर देने के लिये सदैव उत्सुक, आशुतोष, भक्तों की माँग से ज्यादा वर देनेवाले, सभी ऋषियों तथा देवों द्वारा अगम्य तथा सभी देवों की सृष्टि एवं प्रलय के हेतु हैं।

युधिष्ठिर भीष्म पितामह से भगवान् शंकर के माहात्म्य के बारे में पूछते हैं, वे कहते हैं–

बभ्रवे विश्वरूपाय महाभाग्यं च तत्त्वतः।
सुरासरगुरौ देवे शंकरेऽव्यक्तयोनये।। (महा. अनुशासनपर्व 14/2)

अर्थात्–जो विराट् विश्वरूपधारी हैं, अव्यक्त के भी कारण हैं, उन सुरासुर गुरु भगवान् शंकर के माहात्म्य का यथार्थरूप से वर्णन कीजिये। इस प्रश्न के उत्तर में भीष्मजी कहते हैं कि मैं महादेवजी के गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ। जो भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं, किन्तु(सबके आत्मा होने का कारण) सर्वत्र देखने में नहीं आते हैं, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के भी स्रष्टा तथा प्रभु हैं, ब्रह्मा आदि देवों से लेकर पिशाचतक जिनकी उपासना करते हैं, जो प्रकृति से भी परे और पुरुष से भी विलक्षण हैं, योगवेत्ता तत्त्वदर्शी ऋषि जिनका चिन्तन करते हैं, जो अविनाशी परम ब्रह्म एवं सदसत्स्वरूप हैं, जिन देवाधिदेव प्रजापति शिव ने अपने तेज से प्रकृति एवं पुरुष को क्षुब्ध करके ब्रह्माजी की सृष्टि की, उन्हीं देवदेव बुद्धिमान् महादेवजी के गुणों का वर्णन करने में गर्भ, जन्म, जरा और मृत्यु से युक्त कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है?......................मैं परात्पर श्रीकृष्ण के सिवा किसी दूसरे को नहीं देखता, जो देवाधिदेव महादेवजी के नामों की पूर्णरूप से व्याख्या कर सके।

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते।।
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते।।
प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः।

चिन्त्यते यो योगविद्‌भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
अक्षरं परमं ब्रह्म असच्च सदसच्च यः।।
प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षोभयित्वा स्वतेजसा।
ब्रह्माणमसृजत् तस्माद् देवदेवः प्रजापतिः।।
को हि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः।
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः।।
....................परतरं चैव नान्यं पश्यामि भारत।
व्याख्यातुं देवदेवस्य शक्तो नामान्यशेषतः।। (महा. अनु. प. 14/3-7, 15)

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को महादेवजी के माहात्म्य की कथा सुनायी। उस कथा में श्रीकृष्ण ने उपमन्यु द्वारा महादेवजी की प्राप्ति तथा उनकी स्तुति तथा स्वयं अपने द्वारा शिवजी के दर्शन पाने आदि का वर्णन किया। उपमन्यु इन्द्र को महादेवजी की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि "महादेवजी का पद स्थूल, सूक्ष्म, उपमारहित, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य, सगुण, निर्गुण तथा गुणों का नियामक है। इन्द्र! जो सम्पूर्ण विश्व के अधीश्वर, प्रकृति के भी नियामक, लोक (जगत् की सृष्टि) तथा सम्पूर्ण लोकों के संहार के भी कारण हैं, भूत, वर्तमान और भविष्य - ये तीनों काल जिनके स्वरूप हैं, जो सबके उत्पादक एवं कारण हैं, क्षर - अक्षर, अव्यक्त, विद्या - अविद्या, कृत - अकृत तथा धर्म और अधर्म जिनसे प्रकट हुए हैं, उन महादेवजी को ही मैं सबका परम कारण बताता हूँ।"

स्थूलं सूक्ष्ममनौपम्यमग्राह्यं गुणगोचरम्।
गुणहीनं गुणाध्यक्षं परं माहेश्वरं पदम्।।
विश्वेशं कारणगुरुं लोकालोकान्तकारणम्।
भूताभूतभविष्यच्च जनकं सर्वकारणम्।।
अक्षराक्षरमव्यक्तं विद्याविद्ये कृताकृते।
धर्माधर्मौ यतः शक्र तमहं कारणं ब्रुवे।। (महा. अनु. प. 14/224-226)

पुनः भगवान् शिव की अपनी स्तुति में उपमन्यु ने उन्हें सबका ईश्वर, संसारबन्धन का नाश करनेवाले, मायास्वरूप, चिन्त्य और अचिन्त्य रूपवाले, भक्तवत्सल, विश्व की उत्पत्ति के कारण आदि - आदि कहा है। उन्हें संपूर्ण प्राणियों का आदिकारण, अविनाशी, समस्त तत्त्वोंके विधान का ज्ञाता, प्रधान, परमपुरुष, दाहिने अंग से ब्रह्मा तथा बायें से विष्णु तथा प्रलय के लिये रुद्र को उत्पन्न करनेवाले कहा है। (महा. अनु. प. 14/316, 327, 346-348)

भगवान् श्रीकृष्ण ने पुत्र - प्राप्ति के निमित्त उपमन्यु से शैवी दीक्षा ले तपस्या की थी। उस तपस्या के फलस्वरूप भगवान् शिव प्रकट हुए। उस समय श्रीकृष्ण ने शिव की स्तुति में उन्हें सबके कारणभूत सनातन परमेश्वर, ब्रह्मादि के भी अधिपति, ब्रह्मा, रुद्र, अग्निस्वरूप, स्थावर - जंगम की

सृष्टि करनेवाले, सर्वात्मा, प्रभु, पुराण-पुरुष, मूर्तिमान परब्रह्म, परमगति आदि-आदि कहा है। (महा. अनु. प. 14/407-423)

उपमन्यु तण्डि ऋषि की कथा के प्रसंग में श्रीकृष्ण से कहते हैं कि उन्होंने भगवान् शिव के प्रति इस प्रकार भाव व्यक्त किया था-

यं पठन्ति सदा सांख्याश्चिन्तयन्ति च योगिनः।
परं प्रधानं पुरुषमधिष्ठातारमीश्वरम्।।
उत्पत्तौ च विनाशे च कारणं यं विदुर्बुधाः।
देवासुरमुनीनां च परं यस्मान्न विद्यते।।
अजं तमहमीशानमनादिनिधनं प्रभुम्।
अत्यन्तसुखिनं देवमनघं शरणं व्रजे।। (महा. अनु. प. 16/4-6)

अर्थात्-सांख्यशास्त्र के विद्वान् पर, प्रधान, पुरुष, अधिष्ठाता और ईश्वर कहकर सदा जिनका गुणगान करते हैं, योगीजन जिनके चिन्तन में लगे रहते हैं, विद्वान् पुरुष जिन्हें जगत् की उत्पत्ति और विनाश का कारण समझते हैं, देवताओं, असुरों और मुनियों में भी जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है, उन अजन्मा, अनादि, अनन्त, अनघ और अत्यन्त सुखी, प्रभावशाली ईश्वर महादेवजी की मैं शरण लेता हूँ।

वे आगे कहते हैं कि-इस भाव को व्यक्त करते ही तण्डि ने उन तपोनिधि, अविकारी, अनुपम, अचिन्त्य, शाश्वत, ध्रुव, निष्कल, सकल, निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म का दर्शन प्राप्त किया, जो योगियों के परमानन्द, अविनाशी एवं मोक्षरूप हैं। वे ही मनु, इन्द्र, अग्नि तथा ब्रह्मा आदि की भी गति हैं। मन और इन्द्रियों के द्वारा उनका ग्रहण नहीं हो सकता। वे अग्राह्य, अचल, शुद्ध, बुद्धि के द्वारा अनुभव करने योग्य तथा मनोमय हैं। उनका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है। वे अप्रमेय हैं। जिन्होंने अपने अन्तःकरण को पवित्र एवं वशीभूत नहीं किया है, उनके लिये वे सर्वथा दुर्लभ हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं। अज्ञानमय अन्धकार से अत्यन्त परे हैं।

एवं ब्रुवन्नेव तदा ददर्श तपसां निधिम्।
तमव्ययमनौपम्यमचिन्त्यं शाश्वतं ध्रुवम्।।
निष्कलं सकलं ब्रह्म निर्गुणं गुणगोचरम्।
योगिनां परमानन्दमक्षरं मोक्षसंज्ञितम्।।
मनोरिन्द्राग्निमरुतां विश्वस्य ब्रह्मणो गतिम्।
अग्राह्यमचलं शुद्धं बुद्धिग्राह्यं मनोमयम्।।
दुर्विज्ञेयमसंख्येयं दुष्प्रापमकृतात्मभिः।
योनिं विश्वस्य जगतस्तमसः परतः परम्।। (महा. अनु. प. 16/7-10)

तण्डि ऋषि भगवान् शिव की स्तुति में कहते हैं कि "ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव तथा महर्षि भी आपको यथार्थरूप से नहीं जानते हैं। ....काल, पुरुष और ब्रह्म - इन तीन नामों द्वारा आप ही प्रतिपादित होते हैं। .... आप ही स्वर्ग और मोक्ष हैं। ....ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द आदि आप ही हैं। ....आप ही प्रकृति से परे निश्चल एवं अविनाशी तत्त्व हैं। आप ही इन्द्रियाँ और उनके विषय हैं। आप ही विश्व और अविश्व - दोनों से परे विलक्षण भाव हैं तथा आप ही चिन्त्य और अचिन्त्य हैं। जो यह परम ब्रह्म है, जो वह परमपद है तथा जो सांख्यवेत्ताओं और योगियों की गति है, वह आप ही हैं।(महा. अनु. प. 16 / 16 - 17, 21 - 22, 24 - 25)

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थश्च प्रकृतिभ्यः परं ध्रुवम्।
विश्वाविश्वपरोभावश्चिन्त्याचिन्त्यस्त्वमेव हि।।
यच्चैतत् परमं ब्रह्म यच्च तत् परमं पदम्।
या गतिः सांख्ययोगानां स भवान् नात्र संशयः।। (महा. अनु. प. 16 / 24 - 25)

उपरोक्त स्तुति के उपरान्त तण्डि ऋषि ने भगवान् शिव की सहस्रनामों [1] द्वारा वंदना की। ये सहस्रनाम दक्ष प्रजापति के सहस्रनाम से भिन्न हैं। इस सहस्रनाम (महा. अनु. प. 17 / 31 - 153) में भी भगवान् शिव को सर्वश्रेष्ठ, वरस्वरूप (महा. अनु. प. 17 / 31), भगवान्, पापियों को पीड़ा देनेवाले (महा. अनु. प. 17 / 33), सर्वभूतात्मा, विश्वरूप (महा. अनु. प. 17 / 35), प्रणव आदि मंत्र स्वरूप (महा. अनु. प.17 / 39), दुःख हरण करनेवाले (महा. अनु. प. 17 / 42), कृष्ण अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशस्वरूप (महा. अनु. प. 17 / 45), अज, उर्ध्वलिंग (महा. अनु. प. 17 / 46), नित्य, अपनी मायारूपी पाश से बांधनेवाले (महा. अनु. प. 17 / 51), भगवान् विष्णु ने जिन्हें आराधना करके प्रसन्न किया था (महा. अनु. प. 17 / 56), संसारबंधन से छुड़ानेवाले (महा. अनु. प. 17 / 60), प्राणियों की तीन दशाओं - जन्म, स्थिति एवं विनाश के हेतुभूत, कर्म के समस्त बन्धनों को काटनेवाले (महा. अनु. प. 17 / 62), सर्वदा कृपा करनेवाले, मोक्षस्वरूप, सब कुछ देनेवाले (महा. अनु. प. 17 / 67), बलि को बांधनेवाले वामन रूपधारी (महा. अनु. प. 17 / 71), नियन्ता, ईश्वर, काल, विष्णुस्वरूप (महा. अनु. प. 17 / 75), ब्रह्मा (महा. अनु. प. 17 / 76), चतुर्मुख, महालिंगस्वरूप (महा. अनु. प. 17 / 77), भक्तपराधीन, जगत्स्रष्टा, पशुपति (महा. अनु. प. 17 / 79), अविनाशी परम ब्रह्म (महा. अनु. प. 17 / 80), वेदों का कर्त्ता (महा. अनु. प. 17 / 81), कल्याणकारी (महा. अनु. प. 17 / 83), सबके अन्तरात्मा (महा. अनु. प. 17 / 87), महामायावी (महा. अनु. प. 17 / 88), देवाधिपति (महा. अनु. प. 17 / 91), दया करके शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, सुगमता से प्राप्त होनेवाले (महा. अनु. प. 17 / 92), सबके आदि कारण, कालरूप (महा. अनु. प. 17 / 94),

---

[1] ये सहस्रनाम लिंगपुराण (पूर्वार्ध 65 / 54 - 168) में भी थोड़े परिवर्तन के साथ मिलते हैं। यह सहस्रनाम इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।

भस्मस्वरूप, कल्पवृक्षस्वरूप (महा. अनु. प. 17/95), श्रीकृष्णरूप से वंशी बजानेवाले, मायावी (महा. अनु. प. 17/100), देवताओं के भी ईश्वर (महा. अनु. प. 17/102), किसी के द्वारा पराजित न होनेवाले (महा. अनु. प. 17/103), समस्त भोगों एवं गुणों की प्राप्ति करानेवाले (महा. अनु. प. 17/106), सत् एवं असत्स्वरूप (महा. अनु. प. 17/108), बहुतसी विद्याओं के ज्ञाता (महा. अनु. प. 17/109), काम, क्रोधादि शत्रुओं को क्षीण कर देनेवाले (महा. अनु. प. 17/116), तारनेवाले (महा. अनु. प. 17/119), भक्तों को सब कुछ सहन करने की शक्ति देनेवाले, सर्वोत्तम मार्गस्वरूप (महा. अनु. प. 17/121), साकार-निराकारस्वरूप (महा. अनु. प. 17/24), संपूर्ण कलाओं से युक्त (महा. अनु. प. 17/130), सर्वदेवमय, सबके ज्ञानदाता (महा. अनु. प. 17/132), श्याम-गौर हरि-हर मूर्ति (महा. अनु. प. 17/133), अनन्त रूपवाले (महा. अनु. प. 17/135), ब्रह्मविद्या के स्वामी (महा. अनु. प. 17/137), वराहरूपधारी भगवान् (महा. अनु. प. 17/138), परमात्मा (महा. अनु. प. 17/139), सत्, असत्, साकार, निराकारस्वरूप, मोक्ष के साधनरूप (महा. अनु. प. 17/143), देवताओं एवं असुरों के जन्मदाता (महा. अनु. प. 17/144), देव एवं असुरों के गुरु (महा. अनु. प. 17/145), अचिन्त्य (महा. अनु. प. 17/147), ब्रह्म तथा भक्तों के लिये परम गतिस्वरूप (महा. अनु. प. 17/153) आदि-आदि कहा गया है। तण्डिकृत सहस्रनाम के कुछ श्लोकों को देखें-

अक्षरंपरमं ब्रह्म बलवच्छक्र एव च।
नीतिर्ह्यनीतिः शुद्धात्मा शुद्धो मान्यो गतागतः।।
सद्सद् व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्।।
देवासुरेश्वरो विश्वो देवासुरमहेश्वरः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्माऽऽत्मसम्भवः।।
व्रताधिपः परं ब्रह्म भक्तानां परमा गतिः।
विमुक्तो मुक्ततेजाश्च श्रीमाञ्श्रीवर्धनो जगत्।।

उपरोक्त श्लोकों में भगवान् शिव को अविनाशी ब्रह्म, सर्वोत्कृष्ट परमात्मा, शक्तिशाली, इन्द्र, न्यायस्वरूप, साम, दाम, दण्ड, भेद से रहित, शुद्धस्वरूप, परम पवित्र, सम्मान के योग्य, गमनागमनशील संसारस्वरूप, सत्स्वरूप, असत्स्वरूप, साकाररूप, निराकाररूप, पिता, माता, पितामह, स्वर्ग के साधनस्वरूप, प्रजा के कारण, मोक्ष के साधनरूप, देवताओं और असुरों के ईश्वर, विराट्-स्वरूप, देवताओं और असुरों के महान् ईश्वर, सर्वदेवमय, अचिन्त्यस्वरूप, देवताओं के अन्तरात्मा, स्वयंभू, व्रतों के अधिपति, सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्म, भक्तों के लिये परम गतिस्वरूप, नित्य मुक्त, शत्रुओं पर तेज छोड़नेवाले, योगैश्वर्य से सम्पन्न, भक्तों की सम्पत्ति को बढ़ानेवाले तथा जगत्स्वरूप कहा गया है। (महा. अनुशासनपर्व 17/80, 143, 147, 153)

भगवान् शिव पार्वती से पाशुपत-योग के प्रसंग में कहते हैं कि " पहले के मुमुक्षुओं द्वारा भी मैं अव्यक्त और अचिन्त्य ही रहा हूँ। मैंने ही सांख्य और योग की सृष्टि की है। समस्त चराचर जगत् को भी मैंने ही उत्पन्न किया है। मैं पूजनीय ईश्वर हूँ। मैं ही अविनाशी सनातन पुरुष हूँ। मैं प्रसन्न होकर अपने भक्तों को अमरत्व भी देता हूँ।"

अव्यक्तोऽहमचिन्त्योऽहं पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
सांख्ययोगौ मया सृष्टौ सर्वं चापि चराचरम्।।
अर्चनीयोऽहमीशोऽहमव्ययोऽहं सनातनः।
अहं प्रसन्नो भक्तानां ददाम्यमरतामपि।।

(महा. अनु. प. 145/ पाशुपत योग वर्णन पृ. 6019, गीता प्रेस, गोरखपुर)

एक स्थल पर भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से शिवजी की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि तीनों लोकों में महादेवजी से बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ देवता नहीं है; क्योंकि वे समस्त भूतों की उत्पत्ति के कारण हैं। वे ही रुद्र हैं, वे ही शिव हैं, वे ही अग्नि हैं, वे ही सर्वस्वरूप और सर्वविजयी हैं। उनके एक, दो, अनेक, सौ, हजार और लाखों रूप हैं। भगवान् महादेव ऐसे प्रभावशाली हैं, बल्कि इससे भी बढ़कर हैं। सैकड़ों वर्षों में भी उनके गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता।

नास्ति किंचित्परं भूतं महादेवाद् विशाम्पते।
इह त्रिष्वपि लोकेषु भूतानां प्रभवो हि सः।।
स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वः स सर्वजित्।

……………………………………………………

एकधा च द्विधा चैव बहुधा च स एव हि।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा।।
ईदृशः स महादेवो भूयश्च भगवानतः।
न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि।।

(महा. अनु. प. 160/6, 39, 43-44)

एक अन्य स्थल पर उपमन्युजी ने भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष भगवान् शिव के बारे में निम्नलिखित उद्गार व्यक्त किया है-

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे।।

अर्थात्-महादेवजी के समान कोई देवता नहीं है। महादेवजी के समान कोई गति नहीं है। दान में शिवजी की समानता करनेवाला कोई नहीं है तथा युद्ध में भी भगवान् शंकर के समान दूसरा कोई (योद्धा) नहीं है।(महा. अनु. प. 15/11)

शिवोपासना

भगवान् शिव को सभी प्रकार के सुख व भोग का दाता, मोक्ष एव कर्मफल का दाता तथा सभी कामनाओं को पूरा करनेवाला माना जाता है। वे शीघ्र प्रसन्न होने के कारण ही आशुतोष कहलाते हैं। उनकी इन सभी विशेषताओं को महाभारत में सैकड़ों स्थलों पर स्पष्टरूप से बताया गया है। इन्हीं विशेषताओं के कारण उनकी उपासना से सुर-असुर, देव, मानव, नाग, किन्नर, गन्धर्व आदि सभी प्रकार के लोगों ने उनसे मनोवांछित वर पाये हैं।

शतरुद्रिय स्तोत्र की व्याख्या के अन्तर्गत एक स्थल पर कहा गया है कि जो सब प्रकार की ग्रहबाधाओं से पीड़ित हैं और सम्पूर्ण पापों में डूबे हुए हैं, वे भी यदि शरण में आ जायँ तो शरणागतवत्सल भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें पाप-ताप से मुक्त कर देते हैं। वे ही प्रसन्न होने पर मनुष्यों को आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन और प्रचुरमात्रा में मनोवांछित पदार्थ देते हैं। वे ही ईश्वर होने के नाते लोक में मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों के फल देने में संलग्न रहते हैं। सम्पूर्ण कामनाओं के ईश्वर भी वे ही बताये जाते हैं।

सर्वैर्ग्रहैर्गृहीतान् वै सर्वपापसमान्वितान्।।
स मोचयति सुप्रीतः शरण्यः शरणागतान्।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान्।।
स ददाति मनुष्येभ्यः ....।
स चैव व्यापृतो लोके मनुष्याणां शुभाशुभे।
ऐश्वर्याच्चैव कामनामीश्वरश्च स उच्यते।। (महा. द्रोणप. 202/111-114)

तण्डि ऋषि भगवान् शिव के प्रति कह रहे हैं कि "विभो! जो जन्म-मरण से भयभीत हो संसार-बन्धन से मुक्त होने के लिये प्रयत्न करते हैं, उन यतियों को निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करनेवाले आप ही हैं। प्रभो! यदि आप स्वयं ही कृपा करके जीव का उद्धार करना न चाहें तो उसके बारंबार जन्म और मृत्यु होते रहते हैं। आप ही स्वर्ग एवं मोक्ष के द्वार हैं। आप ही उनकी प्राप्ति में बाधा[1] डालनेवाले हैं तथा आप ही दोनों वस्तुएँ प्रदान करते हैं। आप ही स्वर्ग एवं मोक्ष हैं।

जातीमरणभीरूणां यतीनां यततां विभो।।
निर्वाणद ....।
अनिच्छतस्तव विभो जन्ममृत्युरनेकतः।
द्वारं तु स्वर्गमोक्षाणामाक्षेप्ता त्वं ददासि च।।
त्वं वै स्वर्गश्च मोक्षश्च ....। (महा. अनु. प. 16/14-15, 20-21)

---

[1] यहाँ बाधा डालने का अर्थ कृपा न करना है। भगवान् की कृपा भक्तों, श्रद्धालुओं एवं उपासकों आदि के लिये ही सुरक्षित होती है। अन्य लोगों पर कृपा करना या न करना उनकी इच्छा पर है।

वे पुनः कहते हैं कि संसिद्धि (मुक्ति) की इच्छा रखनेवाले पुरुषों की जो परमगति है, वह ये ईश्वर (शिव) ही हैं (महा. अनु. प. 16/34)। ये ही मुक्त पुरुषों के अपवर्ग (मोक्ष) और आत्मज्ञानियों के कैवल्य हैं (महा. अनु. प. 16/36)। जिन्हें जान लेनेपर फिर जन्म और मरण का बन्धन नहीं रह जाता है तथा जिनका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर फिर दूसरे किसी उत्कृष्ट (उत्तम) ज्ञेय तत्त्व (जानने योग्य तत्त्व) का जानना शेष नहीं रहता है, जिन्हें प्राप्त कर लेने पर विद्वान् पुरुष बड़े से बड़े लाभ को भी उनसे अधिक नहीं मानता है, जिस सूक्ष्म परम पदार्थ को पाकर ज्ञानी मनुष्य ह्रास और नाश से रहित परमपद को प्राप्त कर लेता है, सत्त्व आदि तीन गुणों तथा चौबीस तत्त्वों को जाननेवाले सांख्यज्ञानविशारद सांख्ययोगी विद्वान् जिस सूक्ष्म तत्त्व को जानकर उस सूक्ष्म ज्ञानरूपी नौका के द्वारा संसारसमुद्र से पार होते और सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं, प्राणायामपरायण पुरुष वेदवेत्ताओं के जानने योग्य तथा वेदान्त में प्रतिष्ठित जिस नित्य तत्त्व का ध्यान एवं जप करते हैं और उसी में प्रवेश कर जाते हैं; वही ये महेश्वर हैं। ॐकाररूपी रथपर आरूढ़ होकर वे सिद्ध पुरुष इन्हीं में प्रवेश करते हैं। ये (शिव) ही देवयान के द्वाररूप सूर्य कहलाते हैं।

यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरणं चापि विद्यते।
यं विदित्वा परं वेद्यं वेदितव्यं न विद्यते।।
यं लब्ध्वा परमं लाभं नाधिकं मन्यते बुधः।
यां सूक्ष्मां परमां प्राप्तिं गच्छन्नव्ययमक्षयम्।।
यं सांख्या गुणतत्त्वज्ञाः सांख्यशास्त्रविशारदाः।
सूक्ष्मज्ञानतराः सूक्ष्मं ज्ञात्वा मुच्यन्ति बन्धनैः।।
यं च वेदविदो वेद्यं वेदान्ते च प्रतिष्ठितम्।
प्राणायामपरा नित्यं यं विशन्ति जपन्ति च।।
ओंकाररथमारुह्य ते विशन्ति महेश्वरम्।
अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते।। (महा. अनु. प. 16/40-44)

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि जो सम्पूर्ण भाव से अनुगत होकर महेश्वर की शरण लेते हैं, शरणागतवत्सल महादेवजी इस संसार से उनका उद्धार कर देते हैं। इसी प्रकार भगवान् की स्तुति द्वारा अन्य देवगण भी अपने संसारबन्धन का नाश करते हैं; क्योंकि महादेवजी की शरण लेने के सिवा ऐसी दूसरी कोई शक्ति या तप का बल नहीं है, जिससे मनुष्यों का संसारबन्धन से छुटकारा हो सके।

ये सर्वभावानुगताः प्रपद्यन्ते महेश्वरम्।
प्रपन्नवत्सलो देवः संसारात् तान् समुद्धरेत्।।
एवमन्ये विकुर्वन्ति देवाः संसारमोचनम्।
मनुष्याणामृते देवं नान्या शक्तिस्तपोबलम्।। (महा. अनु. प. 17/168-169)

उपमन्युजी का कथन है कि कुटिल कलिकाल को पाकर सभी पुरुषों को अपना मन भगवान् शंकर के चरणारविन्दों के चिन्तन में लगा देना चाहिये। शिव-भक्तिरूपी रसायन के पी लेनेपर संसाररूपी रोग का भय नहीं रह जाता है।

हरचरणनिरतमतिना भवितव्यमनार्जवं युगं प्राप्य।
संसारभयं न भवति हरभक्तिरसायनं पीत्वा।। (महा. अनु. प. 14/184)

दधीचि मुनि दक्ष के यज्ञमण्डप में घोषणा करते हुए कहते हैं कि "सज्जनों! जिसमें भगवान् शिव की पूजा नहीं होती है, वह न यज्ञ है और न धर्म।" अर्थात् भगवान् शिव ही यज्ञ एवं धर्म-कार्य के फलदाता अथवा ईश्वर हैं (महा. शा. प. 284/12)।

नायं यज्ञो न वा धर्मो यत्र रुद्रो न इज्यते। (महा. शा. प. 284/12)

एक स्थल पर भगवान् शिव भी पार्वती से कहते हैं जिनका चित्त एकाग्र नहीं है, वे ध्यानशून्य असाधु पुरुष मेरे स्वरूप को नहीं जानते (इसी कारण मेरी उपेक्षा करते हैं जैसा कि दक्ष ने किया)। यज्ञ में प्रस्तोतालोग मेरी ही स्तुति करते हैं। सामगान करनेवाले ब्राह्मण रथन्तर साम के रूप में मेरी ही महिमा का गान करते हैं। वेदवेत्ता विप्र मेरा ही यजन करते और ऋत्विज लोग यज्ञ में मुझे ही भाग अर्पित करते हैं (महा. शा. प. 284/25-26)।

.... ध्यानेन हीना न विदन्त्यसन्तः।
मामध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथन्तरं सामगाश्चोपगान्ति।
मां ब्राह्मणा ब्रह्मविदो यजन्ते ममाध्वर्यवः कल्पयन्ते च भागम्।।
(महा. शा. प. 284/25-26)

यज्ञ का विनाश करने के उपरान्त वीरभद्र ने दक्ष को सलाह देते हुए कहा था- "विप्रवर! तुम देवाधिदेव उमापति भगवान् शिव की शरण में जाओ। महादेवजी का क्रोध भी परम मंगलमय है और दूसरों से मिला हुआ वरदान भी मंगलकारी नहीं होता।"

शरणं गच्छ विप्रेन्द्र देवदेवमुमापतिम्।
वरं क्रोधोऽपि देवस्य वरदानं न चान्यतः।। (महा. शा. प. 284/55)

सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये राजर्षि मरुत्त शिवजी की नाममयी स्तुति करते हुए कहते हैं कि "अध्यात्मतत्त्व का विचार करनेवाले ज्ञानी पुरुष मोक्षतत्त्व में जिनकी स्थिति मानते हैं तथा तत्त्वमार्ग में परिनिष्ठित योगीजन अविनाशी कैवल्य पद को जिनका स्वरूप समझते हैं और आसक्तिशून्य समदर्शी महात्मा जिन्हें सर्वत्र समानरूप से स्थित समझते हैं, उन योनिरहित जगत्कारणभूत निर्गुण परमात्मा शिव की मैं शरण लेता हूँ।"

यस्य नित्यं विदुः स्थानं मोक्षमध्यात्मचिन्तकाः।
योगिनस्तत्त्वमार्गस्थाः कैवल्यं पदमक्षरम्।।

यं विदुः सङ्गनिर्मुक्ताः सामान्यं समदर्शिनः।
तं प्रपद्ये जगद्योनिमयोनिं निर्गुणात्मकम्।।

(महा. आश्वमेधिकपर्व, अध्याय 8 पृ. 6114, गीताप्रेस गोरखपुर)

उपरोक्त श्लोकों में भी भगवान् शिव को मोक्ष या कैवल्यस्वरूप बताया गया है। अर्थात् भगवान् शिव की प्राप्ति ही मोक्ष या कैवल्य की प्राप्ति है।

अन्यत्र कहा गया है कि जो कोई भी मनुष्य हो, उसे महात्मा शिव के अर्चा-विग्रह अथवा लिंग की पूजा करनी चाहिये। लिंग अथवा प्रतिमा की पूजा करनेवाला पुरुष बड़ी भारी सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है।

पूजयेद् विग्रहं यस्तु लिङ्गं चापि महात्मनः।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते।। (महा. द्रोणप. 202/140)

(1) शिवभक्ति की महिमा

उपरोक्त सभी उद्धरणों से स्पष्ट है कि व्यक्ति को अपने स्वार्थ एवं परमार्थ की पूर्ति के लिये भगवान् शिव की उपासना करनी चाहिये। भगवान् शिव की पूजा ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र सहित सभी देवता करते आये हैं(महा. अनु. प. 14/32, 232 आदि)। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने प्रत्येक युग में महेश्वर को सन्तुष्ट किया है(महा. अनु. प. 14/13)। भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र(महा. अनु. प. 14/77) तथा श्रीकृष्ण ने अनेक पुत्रों को शिव के वरदान (महा. अनु. प. 15/3) से प्राप्त किया था। हिरण्यकशिपु, मन्दार, विद्युत्प्रभ तथा शतमुख आदि राक्षस एवं दैत्यों ने उनसे वर पाया(महा. अनु. प. 14/73-86)। क्रतु, याज्ञवल्क्य, परासरपुत्र वेदव्यास, बालखिल्य ऋषिगण, अनसूया, विकर्ण, सावर्णि, इन्द्र, उपमन्यु, लवणासुर तथा परशुराम आदि ने भी शिवोपासना से मनोवांछित फल पाया(महा. अनु. प. अध्याय 14)।

व्यासजी को पुत्र की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/2-3), कपिल को सांख्य-शास्त्र की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/4-5), चारुशीर्ष को अनेक दीर्घजीवी जितेन्द्रिय पुत्रों की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/7-8), बाल्मीकि को ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्ति(महा. अनु. प. 18/8-10), परशुराम को दिव्यास्त्र एवं अमरता की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/11-15), विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/16), जैगीषव्य को योग की सभी सिद्धियों की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/37), गर्ग को चौंसठ कलाओं का ज्ञान आदि की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/38-39) तथा पराशर का पुत्ररूप में व्यास की प्राप्ति(महा. अनु. प. 18/40-45) भगवान् शिव की अर्चना से ही हुई थी। शिवोपासना से लाभप्राप्त अत्यल्प लोगों की ही सूची ऊपर दी गयी है। महाभारत में हजारों ऐसे चरित्रों का वर्णन है जिन्हें भगवान् शिव से वर प्राप्त हुए हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण से उपमन्युजी ने कहा था कि "जो पापकर्मी मनुष्य अपने अशुभ आचरणों

से कलुषित हो गये हैं, वे तमोगुणी या रजोगुणी वृत्ति के लोग भगवान् शिव की शरण नहीं लेते हैं। जिनका अन्तःकरण पवित्र है, वे ही द्विज महादेवजी की शरण लेते हैं। जो परमेश्वर शिव का भक्त है, वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी पवित्र अन्तःकरणवाले वनवासी मुनियों के समान है। भगवान् रुद्र संतुष्ट हो जायँ तो वे ब्रह्मपद, विष्णुपद, देवताओंसहित देवेन्द्रपद अथवा तीनों लोकों का आधिपत्य प्रदान कर सकते हैं।"

अशुभैः पापकर्माणो ये नराः कलुषीकृताः।
ईशानं न प्रपद्यन्ते तमोराजसवृत्तयः।।
ईश्वरं सम्प्रपद्यन्ते द्विजा भावितभावनाः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि यो भक्तः परमेश्वरे।।
सदृशोऽरण्यवासीनां मुनीनां भावितात्मनाम्।
ब्रह्मत्वं केशवत्वं वा शक्रत्वं वा सुरैः सह।।
त्रैलोक्यस्याधिपत्यं वा तुष्टो रुद्रः प्रयच्छति। (महा. अनु. प. 18/62-65)

श्रीकृष्ण से वे आगे कहते हैं कि "तात! जो मनुष्य मन से भी भगवान् शिव की शरण लेते हैं, वे सब पापों का नाश करके देवताओं के साथ निवास करते हैं। समस्त लक्षणों से हीन अथवा सब पापों से युक्त मनुष्य भी यदि अपने हृदय से भगवान् शिव का ध्यान करता है तो वह अपने सारे पापों को नष्ट कर देता है। केशव! कीट, पतंग, पक्षी तथा पशु भी यदि महादेवजी की शरण में आ जायँ तो उन्हें भी कहीं किसी का भय नहीं प्राप्त होता है। इसी प्रकार इस भूतलपर जो मानव महादेवजी के भक्त हैं, वे संसार के अधीन नहीं होते-यह मेरा निश्चित विचार है।"

मनासापि शिवं तात ये प्रपद्यन्ति मानवाः।।
विधूय सर्वपापानि देवैः सह वसन्ति ते।
सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः।।
सर्वं तुदति तत्पापं भावयञ्छिवमात्मना।
कीटपक्षिपतङ्गानां तिरश्चामपि केशव।।
महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित्।
एवमेव महादेवं भक्ता ये मानवा भुवि।।
न ते संसारवशगाा इति मे निश्चिता मतिः। (महा. अनु. प. 18/65, 67-70)

युधिष्ठिर को महादेवजी की महिमा बताते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि भगवान् शिव प्रसन्न होने पर अमरत्व भी दे सकते हैं। वे उपासक को इतनी शक्ति दे देते हैं, जिससे वह इन्द्र को भी नष्ट कर सकता है।

प्रसन्नो हि महादेवो दद्यादमरतामपि।

वीर्यं च गिरिशो दद्याद् येनेन्द्रमपि शातयेत्। (महा. सौप्तिकपर्व 17/7)

(2) लिंगार्चन – माहात्म्य

महाभारत में अनेक स्थलों पर लिंगपूजा का माहात्म्य बतलाया गया है। पाशुपत योग एवं लिंगपूजा के सन्दर्भ में भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि "नित्य मेरे ही चिन्तन में लगे रहनेवाले अपने तपस्वी भक्तों के लिये मैं ऐसा उपाय सोचता रहता हूँ, जिससे वे शीघ्र मुझे प्राप्त हो जायँ। तीनों लोकों में मैंने अपने स्वरूपभूत शिवलिंगों की स्थापना की है, जिनको नमस्कारमात्र करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं। होम, दान, अध्ययन और बहुत-सी दक्षिणावाले यज्ञ भी शिवलिंग को प्रणाम करने से मिले हुए पुण्य की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हो सकते। प्रिये! शिवलिंग की पूजा से मैं बहुत संतुष्ट होता हूँ।"

एवं नित्याभियुक्तानां मद्भक्तानां तपस्विनाम्।
उपायं चिन्तयाम्याशु येन मामुपयान्ति ते।।
स्थापितं त्रिषु लोकेषु शिवलिङ्गं मया मम।
नमस्कारेण वा तस्य मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।।
इष्टं दत्तमधीतं च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
शिवलिङ्ग प्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।
अर्चया शिवलिङ्गस्य परितुष्याम्यहं प्रिये।

(महा. अनु. प. अ. 145, पृष्ठ 6020, गीताप्रेस, गोरखपुर)

अश्वत्थामा ने अपने अग्नेयास्त्र को अर्जुन एवं श्रीकृष्ण पर विफल होते देखकर इसका कारण जानने के लिये व्यासजी से पूछा। इसका कारण बताते हुए व्यासजी कहते हैं कि तूने परम पुरुष भगवान् शंकर के उज्ज्वल विग्रह की स्थापना करके होम, जप और उपहारों द्वारा उनकी आराधना की थी। नर-नारायण (वर्तमान जन्म में अर्जुन एवं श्रीकृष्ण) ने शिवलिंग में तथा तूने प्रतिमा में प्रत्येक युग में महादेवजी की आराधना की है। जो भगवान् शंकर को सर्वस्वरूप जानकर शिवलिंग में उनकी पूजा करता है, उसमें सनातन आत्मयोग (आत्मा-परमात्मा के तत्त्व का ज्ञान) तथा शास्त्रयोग (स्वाध्यायजनित ज्ञान) प्रतिष्ठित होते हैं। जो भगवान् शिव के लिंग को सम्पूर्ण भूतों की उत्पत्ति का स्थान जानकर उसकी पूजा करता है, उसपर भगवान् शंकर अधिक प्रेम करते हैं (महा. द्रोण प. 201/90, 92-93, 96)।

सर्वभूतभवं ज्ञात्वा लिङ्गमर्चति यः प्रभोः।
तस्मिन्नभ्यधिकां प्रीतिं करोति वृषभध्वजः।। (महा. द्रो. प. 201/96)

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ इनके (शिवजी के) ऊर्ध्वलोकस्थित लिंग की पूजा करती हैं। उस लिंग की पूजा होनेपर कल्याणकारी भगवान् शिव

आनंदित होते हैं। सुखी, प्रसन्न तथा हर्षोल्लास से परिपूर्ण होते हैं(महा. द्रो. प. 202 / 125 - 126)।

अतः शिवजी की प्रसन्नता के लिये उनके लिंग की उपासना बेहतर है। इसी प्रकार एक अन्य सन्दर्भ में भी कहा गया है कि भगवान् शिव के लिंग की पूजा ब्रह्मा, विष्णु तथा सम्पूर्ण देवता सहित इन्द्र भी करते आये हैं(महा. अनु. प. 14 / 230 - 232)।

(3) पाशुपतयोग एवं शिवभक्त की महिमा

उमा के पूछने पर भगवान् शिव ने पाशुपतयोग की चर्चा इस प्रकार की है। वे कहते हैं कि मेरा नाम पशुपति है। अपने रोम-रोम में भस्म रमाये रहनेवाले जो मेरे भक्त मनुष्य हैं उन्हें पाशुपत जानना चाहिये। पूर्वकाल में मैंने रक्षा के लिये, मंगल के लिये, पवित्रता के लिये तथा पहचान के लिये अपने भक्तों को भस्म प्रदान किया था। उस भस्म से संपूर्ण अंगों को लिप्त करके ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले जटाधारी, मुण्डित अथवा नाना प्रकार की शिखाधारण करनेवाले, विकृत वेश, पिंगलवर्ण, नग्न देह और नाना वेश धारण किये मेरे निःस्पृह और परिग्रहशून्य भक्त मुझमें ही मन-बुद्धि लगाये, मिट्टी का पात्र हाथ में लिये सब ओर भिक्षा के लिये विचरते रहते हैं। समस्त लोक में विचरते हुए वे भक्तजन मेरे हर्ष की वृद्धि करते हैं। (महा. अनु. प. अ. 145 पृ. 6020)

सभी लोकों में मेरे परम उत्तम सूक्ष्म एवं दिव्य पाशुपत योगशास्त्र का विचार करते हुए वे विचरण करते हैं। इस तरह नित्य मेरे ही चिन्तन में संलग्न रहनेवाले अपने तपस्वी भक्तों के लिये तीनों लोकों में मैंने अपने स्वरूपभूत शिवलिंगों की स्थापना की है जिसकी उपासना से वे शीघ्र ही मुझे प्राप्त हो जाते हैं। (वही अ. 158 पृ. 6070)

इसके बाद नाना प्रकार के द्रव्यों से लिंग की पूजा का फल भगवान् शिव ने बतलाया है। वहाँ पर यह भी बतलाया गया है कि "जो केवल जल से भी मेरे शिवलिंग को नहलाता है, वह भी पुण्य का भागी होता है तथा अभीष्ट फल पा लेता है।"

केवलेनापि तोयेन स्नापयेद् यः शिवं मम।
स चापि लभते पुण्यं प्रियं च लभते नरः।। (महा. अनु. प. अ. 145 पृ. 6020)

भगवान् शिव आगे कहते हैं कि "जो नाना प्रकार के फूलों से मेरे लिंग की पूजा करता है, उसे सहस्र धेनुंदान का फल प्राप्त होता है। जो देशान्तर में जाकर शिवलिंग की पूजा करता है, उससे बढ़कर समस्त मनुष्यों में मेरा प्रिय करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। भाँति-भाँति के द्रव्यों द्वारा जो शिवलिंग की पूजा करता है, वह मनुष्यों में मेरे समान है। वह फिर इस संसार में जन्म नहीं लेता है। अतः भक्त पुरुष अर्चनाओं, नमस्कारों, उपहारों और स्तोत्रों द्वारा प्रतिदिन आलस्य छोड़कर शिवलिंगों के रूप में मेरी पूजा करें। पलाश और बेल के पत्ते, राजवृक्ष के फूलों की मालाएँ तथा आक के पवित्र फूल मुझे विशेष प्रिय हैं। मुझमें मन लगाये रहनेवाले मेरे भक्तों का दिया हुआ फल, फूल, साग अथवा जल भी मुझे विशेष प्रिय लगता है। मेरे संतुष्ट हो जाने पर लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है; इसलिये

भक्तजन सदा मेरी ही पूजा किया करते हैं। मेरे भक्त कभी नष्ट नहीं होते। उनके सारे पाप दूर हो जाते हैं तथा मेरे भक्त तीनों लोकों में विशेषरूप से पूजनीय हैं। जो मनुष्य मुझसे या मेरे भक्तों से द्वेष करते हैं, वे सौ यज्ञों का अनुष्ठान कर लें तो भी घोर नरक में पड़ते हैं" (महा. अनु. प. अ. 145 पृ. 6020-6021)।

पलाशबिल्वपत्राणि राजवृक्षस्रजस्तथा।
अर्कपुष्पाणि मेध्यानि मत्प्रियाणि विशेषतः।।
फलं वा यदि वा शाकं पुष्प वा यदि वा जलम्।
दत्तं सम्प्रीणयेद् देवि भक्तैर्मद्रतमानसैः।।
ममापि परितुष्टस्य नास्ति लोकेषु दुर्लभम्।
तस्मात् ते सततं भक्ता मामेवाभ्यर्चयन्युत।।
मद्भक्ता न विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः।
मद्भक्ताः सर्वलोकेषु पूजनीया विशेषतः।।
मदद्वेषिणश्च ये मर्त्या मद्भक्तद्वेषिणोऽपि वा।
यान्ति ते नरकं घोरमिष्ट्वा क्रतुशतैरपि।।

(4) शैवतीर्थ

भगवान् की उपासना में तीर्थों का भी बहुत अधिक महत्त्व बताया गया है। भीष्मजी के पूछने पर पुलस्त्यजी तीर्थयात्रा के महत्त्व को बतलाते हुए कहते हैं कि यह बड़ा पवित्र सत्कर्म है। यह यज्ञों से भी बढ़कर है। राजा अथवा समृद्धशाली लोग ही यज्ञों का अनुष्ठान कर सकते हैं। जिनके पास धन की कमी और सहायकों का अभाव है, जो अकेले और साधनशून्य हैं वे तीर्थयात्रारूपी सत्कर्म द्वारा यज्ञों के समान फल को प्राप्त कर सकते हैं।

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न तत् फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत्।।

अर्थात्-मनुष्य तीर्थयात्रा से जिस फल को पाता है, उसे प्रचुर दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंद्वारा यजन करके भी नहीं पा सकता।(महा. वनप. 82/19)

युधिष्ठिर के पूछने पर कि सर्वश्रेष्ठ तीर्थ कौन से हैं जहाँ जाने से परम शुद्धि हो जाती है, भीष्मजी कहते हैं कि जिसमें धैर्यरूप कुण्ड और सत्यरूप जल भरा हुआ है तथा जो अगाध, निर्मल एवं अत्यन्त शुद्ध है, उस मानस तीर्थ में सदा परमात्मा का आश्रय लेकर स्नान करना चाहिये। कामना और याचना का अभाव, सरलता, सत्य, मृदुता, अहिंसा, समस्त प्राणियों के प्रति क्रूरता का अभाव-दया, इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रह-ये ही इस मानस तीर्थ के सेवन से प्राप्त होनेवाली पवित्रता

के लक्षण हैं। जो ममता, अहंकार, राग-द्वेषादि द्वन्द्व और परिग्रह से रहित एवं भिक्षा से जीवन निर्वाह करते हैं, वे विशुद्ध अन्तःकरणवाले साधु पुरुष तीर्थस्वरूप हैं। किन्तु जिसकी बुद्धि में अहंकार का नाम भी नहीं है, वह तत्त्वज्ञानी पुरुष श्रेष्ठ तीर्थ कहलाता है। भगवान् शिव अथवा नारायण में जो भक्ति होती है, वह भी उत्तम तीर्थ मानी गयी है।(महा. अनु. प. 108/3-6)

भाव यह है कि सद्गुण, संत एवं भगवान् की भक्ति सर्वोत्तम तीर्थ माने गये हैं। आगे भीष्मजी कहते हैं कि-

नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।। (महा. अनु. प. 108/9)

अर्थात्-शरीर को केवल जल से भिगो लेना ही स्नान नहीं कहलाता है। सच्चा स्नान तो उसी ने किया है, जिसने मन-इन्द्रिय के संयमरूपी जल में गोता लगाया है। वही बाहर और भीतर से पवित्र माना गया है।

मानस तीर्थो का वर्णन करने के बाद भीष्मजी ने पृथ्वी पर स्थित पुण्यतीर्थ के महत्त्व को भी बतलाया है। वे कहते हैं कि जैसे शरीर के विभिन्न स्थान पवित्र बताये गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भाग भी पवित्र तीर्थ हैं और वहाँ का जल पुण्यदायक है। पृथ्वी के कुछ भाग साधु पुरुषों के निवास से तथा स्वयं पृथ्वी और जल के तेज से अत्यन्त पवित्र माने गये हैं, इस प्रकार पार्थिव और मानस अनेक पुण्यमय तीर्थ हैं। जो इन दोनों प्रकार के तीर्थों में स्नान करता है, वह शीघ्र ही परमात्माप्राप्तिरूप सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यास्तीर्थास्तथापरे।
उभयोरेव यः स्नायात् स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात्।। (महा. अनु. प. 108/19)

वे पुनः कहते हैं कि शरीरशुद्धि (जो मानस तीर्थ से प्राप्त होती है) और तीर्थशुद्धि से युक्त पुरुष ही पवित्र होकर परमात्मप्राप्तिरूप सिद्धि प्राप्त करता है। अतः दोनों प्रकार की शुद्धि ही उत्तम मानी गई है।

एवं शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः।
शुचिः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम्।। (महा. अनु. प. 108/21)

पार्थिव तीर्थ का फल किसे मिलता है इसकी चर्चा करते हुए एक स्थल पर कहा गया है कि "जिसके हाथ, पैर और मन काबू में हों तथा जो विद्या, तप और कीर्ति से सम्पन्न हो, वही तीर्थ का फल पाता है। जो दम्भ आदि दोषों से दूर, कर्तृत्व के अहंकार से शून्य, अल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो, वह सब पापों से विमुक्त हो तीर्थ के वास्तविक फल का भागी होता है। जिसमें क्रोध न हो, जो सत्यवादी और दृढ़तापूर्वक व्रत का पालन करनेवाला हो तथा जो सब प्राणियों के प्रति आत्मभाव रखता हो, वही तीर्थ के फल का भागी होता है" (महा. वनप. 82/9-12)।

कहने का भाव यह है कि मानस तीर्थ में स्नान करनेवाला ही पार्थिव तीर्थ के स्नान का पूरा फल प्राप्त करता है। पुलस्त्यजी भीष्म से कहते हैं कि सम्पूर्ण तीर्थों के दर्शन की इच्छा पूर्ण करने के लिये मनुष्य जहाँ जाना सम्भव न हो, उन अगम्य तीर्थों में मन से यात्रा करे अर्थात् मन से उन तीर्थों का चिन्तन करे। पुलस्त्यजी भीष्म से आगे कह रहे हैं कि "इसी प्रकार तुम भी विधिपूर्वक शौच-संतोषादि नियमों का पालन करते और पुण्य को बढ़ाते हुए उन तीर्थों की यात्रा करो। ....
.........जो ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन नहीं करता, जिसने अपने चित्त को वश में नहीं किया, जो अपवित्र आचार-विचारवाला और चोर है, जिसकी बुद्धि टेढ़ी है, ऐसा मनुष्य श्रद्धा न होने के कारण तीर्थों में स्नान नहीं करता (अर्थात् उसे तीर्थों का फल प्राप्त नहीं होता)।" (महा. वनपर्व 85/105-109)

महाभारत में अनेक पार्थिव शैवतीर्थों के माहात्म्य का उल्लेख है। उदाहरण के लिये महाकालतीर्थ, भद्रवटतीर्थ, सागर एवं सिंधु संगम पर स्थित शंकुकर्णेश्वरतीर्थ, दमीतीर्थ, रुद्रपदतीर्थ, देविकातीर्थ, कामतीर्थ, रुद्रकोटितीर्थ (जहाँ पूर्वकाल में भगवान् शिव ने एक करोड़ मुनियों को एक साथ उपासना के लिये एक करोड़ शिवलिंगों की सृष्टि की थी), सप्तसारस्वततीर्थ (जहाँ मंकणक महर्षि को सिद्धि प्राप्त हुई थी), स्थाणुवटतीर्थ, संनिहतीतीर्थ, सुवर्णतीर्थ (जहाँ पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने रुद्रदेव की प्रसन्नता के लिये उनकी आराधना की और उनसे अनेक देवदुर्लभ वर प्राप्त किये), वाराणसीतीर्थ, गृध्रवटतीर्थ तथा मुंजवटतीर्थ आदि का वर्णन प्राप्त होता है (महा. वनप. अ. 82 से 85)।

उपरोक्त तीर्थों में स्नान, दान, उपवास, भगवान् शिव की पूजा तथा निवास आदि से व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होकर भोग एवं मोक्ष का अधिकार प्राप्त कर लेता है तथा अपने मनोवांछित फल भी प्राप्त कर लेता है।

भगवान् शिव एवं विष्णु

जैसा हम देख चुके हैं कि भगवान् शिव ही परम तत्त्व हैं। परम तत्त्व होने के नाते सृष्टि की सभी वस्तुयें उन्हीं से पैदा हुई हैं। सभी देवगण, विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्रदेव की भी उत्पत्ति उन्हीं से हुई है। उनके दाहिने अंग से ब्रह्मा की, बायें अंग से विष्णु की तथा हृदय से रुद्रदेव की सृष्टि हुई है। अतः ये तीनों ही देवता भगवान् शिव के अंग हैं, वे सृष्टि के अन्य जीवों तथा पदार्थों की भाँति विशुद्ध मायारूप न होकर मूलतः परम तत्त्व ही होते हैं परन्तु कार्यभेद से वे अलग-अलग रूप धारण कर लेते हैं। वे माया के अधीन न होकर स्वेच्छा से माया को धारण कर सृष्टिप्रक्रिया में अपनी-अपनी भूमिका निभाते रहते हैं। महाभारत में भी भगवान् शिव एवं विष्णु की एकता का प्रतिपादन किया गया है। एकता के साथ-साथ भगवान् विष्णु एवं शिव के आपसी संबंधों तथा विष्णु की लोकप्रियता आदि के रहस्य का भी खुलासा किया गया है।

महाभारत में अनेक स्थलों पर कहा गया है कि भगवान् शिव ब्रह्मा, विष्णु तथा सम्पूर्ण देवताओं का शरीर धारण करते हैं (महा. अनु. प. 14/140 आदि)। वे एक होकर भी अनेक

रूप धारण करते हैं। वे शरीररहित होकर भी सम्पूर्ण देवताओं के शरीर धारण करते हैं(महा. द्रोणप. 202/105-106)।

ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राणां रुद्रादित्याश्विनामपि।
विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः।। (महा. अनु. प. 14/140)
धाता च स विधाता च विश्वात्मा विश्वकर्मकृत्।
सर्वासां देवतानां च धारयत्यवपुर्वपुः।। (महा. द्रोणप. 202/105-106)

भीष्म ने भगवान् श्रीकृष्ण के तात्त्विक-स्वरूप की स्तुति करते समय उन्हें रुद्र अथवा शिवस्वरूप माना है। निम्नलिखित उदाहरण देखिये-

शूलिने त्रिदशेशाय त्र्यम्बकाय महात्मने।
भस्मदिग्धाङ्गलिङ्गाय तस्मै रुद्रात्मने नमः।।
चन्द्रार्धकृतशीर्षाय व्यालयज्ञोपवीतिने।
पिनाकशूलहस्ताय तस्मा उग्रात्मने नमः।। (महा. शान्तिप. 47/81-82)

अर्थात्-जो त्रिशूल धारण करनेवाले और देवताओं के स्वामी हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जो महात्मा हैं तथा जिन्होंने अपने शरीर पर विभूति रमा रक्खी है, उन रुद्ररूप परमेश्वर को नमस्कार है। जिनके मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट और शरीर पर सर्प का यज्ञोपवीत शोभा दे रहा है, जो अपने हाथ में पिनाक और त्रिशूल धारण करते हैं, उन उग्ररूपधारी भगवान् शंकर को प्रणाम है।

इसी प्रकार अर्जुन ने भगवान् शिव के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करने के बाद जो स्तुति की है उसमें उसने उनको विष्णुरूप शिव तथा शिवस्वरूप विष्णु कहा है।

...............शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे।। (महा. वनप. 39/76)

अर्थात्-आप ही विष्णुरूप शिव तथा शिवस्वरूप विष्णु हैं, आपको नमस्कार है। एक अन्य स्थल पर भगवान् शिव की हरिहररूप में वंदना की गयी है। वहाँ कहा गया है कि "आप हरिहररूप होने के कारण आधे शरीर से साँवले और आधे से गोरे हैं। आधे शरीर में पीताम्बर धारण करते हैं और आधे में श्वेत वस्त्र पहनते हैं। आपको नमस्कार है।"

नमः श्यामाय गौराय अर्धपीतार्धपाण्डवे। (महा. अनु. प. 14/298)

उपरोक्त उदाहरणों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि दोनों देवों-हरि एवं हर में तात्त्विक दृष्टि से एकंता है।

अर्जुन को अपने प्रभाव का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि पाण्डुनन्दन! इन भगवान् रुद्र को नारायणस्वरूप ही जानना चाहिये। पार्थ! प्रत्येक युग में उन देवाधिदेव महेश्वर की पूजा करने से सर्वसमर्थ भगवान् नारायण की ही पूजा होती है।

नारायणात्मको ज्ञेयः पाण्डवेय युगे युगे।

तस्मिन् हि पूज्यमाने वै देवदेवे महेश्वरे।।
सम्पूजितो भवेत् पार्थ देवो नारायणः प्रभुः। (महा. शा. प. 341/22-23)

वे आगे कहते हैं कि कुन्तिनन्दन! रुद्र और नारायण दोनों एक ही स्वरूप हैं, जो दो स्वरूप धारण करके भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में स्थित हो संसार में यज्ञ आदि सब कर्मों में प्रवृत्त होते हैं।

रुद्रो नारायणश्चैव सत्त्वमेकं द्विधाकृतम्।
लोके चरति कौन्तेय व्यक्तिस्थं सर्वकर्मसु।। (महा. शा. प. 341/27)

किसी अन्य प्रसंग में श्रीहरि रुद्रदेव से कहते हैं कि "प्रभो! जो तुम्हें जानता है वह मुझे भी जानता है। जो तुम्हारा अनुगामी है, वह मेरा भी अनुगामी है। हम दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है।"

यस्त्वां वेत्ति स मां वेत्ति यस्त्वामनु स मामनु।
नावयोरन्तरं किंचिन्मा ....।। (महा. शा. प. 342/133)

उपरोक्त उद्धरणों में भी शिव एवं रुद्रदेव के बीच अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है। अब हम इन दोनों के आपसी संबंधों तथा विष्णुजी की लोकप्रियता के कारणों पर विचार करेंगे।

पुत्रप्राप्ति के वर के लिये श्रीकृष्ण ने भगवान् शिव को प्रसन्न करने हेतु कठोर तप किया। परिणामतः भगवान् शिव उनके समक्ष प्रकट हो इस प्रकार बोले- "तीनों लोकों में तुम्हारे समान दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है।"

त्वत्समो नास्ति मे कश्चित् त्रिषु लोकेषु वै प्रियः। (महा. अनु. प. 14/406)

एक अन्य स्थल पर भगवान् शिव कहते हैं कि "अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण ने सत्य, शौच, सरलता, त्याग, तपस्या, नियम, क्षमा, भक्ति, धैर्य, बुद्धि और वाणी के द्वारा मेरी यथोचित आराधना की है; अतः कृष्ण से बढ़कर दूसरा कोई मुझे परम प्रिय नहीं है।"

सत्यशौचार्जवत्यागैस्तपसा नियमेन च।
क्षान्त्या भक्त्या च धृत्या च बुद्ध्या च वचसा तथा।।
यथावदहमाराद्धः कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
तस्मादिष्टतमः कृष्णादन्यो मम न विद्यते।। (महा. सौप्तिकप. 7/62-63)

स्वयं भगवान् विष्णु या उनके अन्य अवतारों के शिव उपासना संबंधी कई सन्दर्भ महाभारत में पाये जाते हैं। भगवान् विष्णु ने सुदर्शनचक्र की प्राप्ति के लिये तथा कृष्ण ने पुत्रादि की प्राप्ति के लिये तथा नारायण ने ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति के लिये शिवोपासना की थी। इन लोगों ने शिवोपासना से अनेक दुर्लभ वरों की प्राप्ति की थी।

सुवर्णतीर्थ में भगवान् विष्णु ने रुद्रदेव की प्रसन्नता के लिये उनकी आराधना की थी। आराधना से संतुष्ट हो शिवजी ने विष्णु से कहा था "श्रीकृष्ण! तुम मुझे लोक में अत्यन्त प्रिय होओगे। संसार में सर्वत्र तुम्हारी ही प्रधानता होगी, इसमें संशय नहीं है।"

उक्तश्च त्रिपुरघ्नेन परितुष्टेन भारत।
अपि च त्वं प्रियतरो लोके कृष्ण भविष्यसि।।
त्वन्मुखं च जगत् सर्वं भविष्यति न संशयः। (महा. वनप. 84/20-21)

एक स्थल पर व्यासजी श्रीकृष्ण की महिमा बताते हुए कहते हैं कि ये श्रीकृष्ण भगवान् शंकर के भक्त हैं और उन्हीं से प्रकट हुए हैं (महा. द्रोणप. 201/95)। उन्होंने पहले (अपने नारायणावतार में) ही भगवान् शंकर से अनेक वरदान पा रखा है। नारायणावतार में भगवान् शिव ने उन्हें इस प्रकार वर दिया था– "तुम मेरे कृपा-प्रसाद से मनुष्यों, देवताओं तथा गन्धर्वों में भी असीम बल-पराक्रम से सम्पन्न होओगे। देवता, असुर, सर्प, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सुपर्ण, नाग तथा समस्त पशुयोनि के प्राणी भी तुम्हारा वेग नहीं सह सकेंगे। युद्धस्थल में कोई देवता भी तुम्हें जीत नहीं सकेगा। शस्त्र, वज्र, अग्नि, वायु, गीले-सूखे पदार्थ और स्थावर एवं जंगम के द्वारा भी कोई मेरी कृपा से किसी प्रकार तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकता।" (महा. द्रोणप. 201/80-83)

मत्प्रसादान्मनुष्येषु देवगन्धर्वयोनिषु।
अप्रमेयबलात्मा त्वं नारायण भविष्यसि।।
न च त्वां प्रसहिष्यन्ति देवासुरमहोरगाः।
न पिशाचा न गन्धर्वा न यक्षा न च राक्षसाः।।
न सुपर्णास्तथा नागा न च विश्वे वियोनिजाः।
न कश्चित् त्वां च देवोऽपि समरेषु विजेष्यति।।
न शस्त्रेण न वज्रेण नाग्निना व च वायुना।
न चार्देण न शुष्केण त्रसेन स्थावरेण च।।
कश्चित् तव रुजां कर्ता मत्प्रसादात् कथंचन। (महा. द्रोणप. 201/80-84)

वे आगे कहते हैं कि "तुम समरभूमि में पहुँचने पर मुझसे भी अधिक बलवान् हो जाओगे।"

अपि वै समरं गत्वा भविष्यसि ममाधिकः।। (महा. द्रोणप. 201/84)

महाभारत में इस प्रश्न का भी समाधान मिल जाता है कि भगवान् विष्णु जब तात्त्विकरूप से या आत्मरूप से भगवान् शिव से अभिन्न हैं (अर्थात् वे दोनों एक समान हैं) तथा उनके संकल्पमात्र से ही उनकी इच्छायें पूरी हो सकती हैं, तो वे भगवान् शिव की अर्चना क्यों करते हैं?

उपरोक्त प्रश्न का समाधान श्रीकृष्ण का अर्जुन को दिये एक वक्तव्य में प्राप्त होता है। वे वहाँ कहते हैं कि "पाण्डुकुमार! मैं सम्पूर्ण जगत् का आत्मा हूँ। इसलिये मैं पहले अपने आत्मारूप रुद्र की ही पूजा करता हूँ। यदि मैं वरदाता भगवान् शिव की पूजा न करूँ तो दूसरा कोई भी उन आत्मरूप शंकर का पूजन नहीं करेगा, ऐसी मेरी धारणा है। मेरे किये हुए कार्य को प्रमाण या आदर्श मानकर सब लोग उसका अनुसरण करते हैं। जिनकी पूजनीयता वेद-शास्त्रों द्वारा प्रमाणित है, उन्हीं देवताओं की

पूजा करनी चाहिये। ऐसा सोचकर ही मैं रुद्रदेव की पूजा करता हूँ। जो रुद्र को जानता है, वह मुझे जानता है। जो उनका अनुगामी है, वह मेरा भी अनुगामी है(अर्थात् रुद्र एवं नारायण दोनों का एक ही स्वरूप है)। पाण्डवों को आनंदित करनेवाले अर्जुन! मुझे दूसरा कोई वर नहीं दे सकता; यही सोचकर मैंने पुत्र-प्राप्ति के लिये स्वयं ही अपने आत्मस्वरूप पुराणपुरुष जगदीश्वर रुद्र की आराधना की थी। विष्णु अपने आत्मस्वरूप रुद्र के सिवा किसी दूसरे देवता को प्रणाम नहीं करते; इसलिये मैं रुद्र का भजन करता हूँ।”

अहमात्मा हि लोकानां विश्वेषां पाण्डुनन्दन।।
तस्मादात्मानमेवाग्रे रुद्रं सम्पूजयाम्यहम्।
यद्यहं नार्चयेयं वै ईशानं वरदं शिवम्।।
आत्मानं नार्चयेत् कश्चिदिति मे भावितात्मनः।
मया प्रमाणं हि कृतं लोकः समनुवर्तते।।
प्रमाणानि हि पूज्यानि ततस्तं पूजयाम्यहम्।
यस्तं वेत्ति स मां वेत्ति योऽनु तं स हि मामनु।।
न हि मे केनचिद् देयो वरः पाण्डवनन्दन।
इति संचिन्त्य मनसा पुराणं रुद्रमीश्वरम्।।
पुत्रार्थमाराधितवानहमात्मानमात्मना।
न हि विष्णुः प्रणमति कस्मैचिद् विबुधाय च।।
ऋते आत्मानमेवेति ततो रुद्रं भजाम्यहम्। (महा. शा. प. 341/23-26, 28-30)

उपसंहार

लगभग एकलाख श्लोकोंवाले विशालकाय ग्रन्थ महाभारत में शिवतत्त्व का बहुत ही विस्तार से अलग-अलग संदर्भों में विवेचन प्राप्त होता है। भगवान् शिव के प्रचलित तथा जो अन्य ग्रन्थों में सामान्यतः पाये जाते हैं वे सभी विशेषण हमें महाभारत में प्राप्त होते हैं। उन्हें यहाँ भी परब्रह्म के रूप में माना गया है। वे ही सगुणरूप धारणकर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवताओं तथा सम्पूर्ण चराचर की सृष्टि करते हैं। सगुणरूप में वे पाँच मुखवाले, गंगा एवं चन्द्रमा को धारण करनेवाले, जटा-जूटधारी, नागों की माला तथा व्याघ्रचर्मधारी, रुद्राक्ष एवं भस्मधारी, मुण्डमाला, त्रिशूल तथा पिनाकधारी, कैलासवासी, जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, वरदाता, दुःखों को दूर करनेवाले, विश्वरूप, मोक्ष एवं भोग प्रदान करनेवाले, असुरों का विनाश करनेवाले, नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले, सभी प्रकार की विद्याओं तथा कलाओं के स्वामी, अजन्मा, अविनाशी, गौरवर्ण, सहस्त्र नेत्रों, कानों तथा पैरों आदि से युक्त, दक्ष-यज्ञ विनाशक, त्रिपुरारि, कालस्वरूप, हरिहर एवं अर्धनारीश्वररूप, परमधाम, विश्वात्मा, शुद्धात्मा, मायाधीश तथा ईश्वर आदि हैं।

निर्गुणरूप में वे निराकार परम ब्रह्म, देश-कालातीत, अविकारी, अनुपम, ध्रुव, अप्रमेय, मन-वाणी तथा बुद्धि से परे, सच्चिदानन्दस्वरूप, माया से परे, अद्वैत, शुद्ध, स्वयंभू, सनातन, निष्कल, ॐकार तथा विशुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं।

भगवान् शिव सभी प्रकार के सुख, भोग, स्वर्ग, मोक्ष तथा कर्मफल के दाता तथा सभी कामनाओं को पूरा करनेवाले हैं। वे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं तथा प्रसन्न होनेपर वे भक्तों को त्रैलोक्य की सभी वस्तुएँ तथा अमरत्वतक प्रदान कर देते हैं। इनकी उपासना से सुर, असुर, देव, मानव, नाग, किन्नर, गन्धर्व आदि सभी कोटि के प्राणियों ने अपना मनोवांछित फल पाया है। उदाहरण के लिये विष्णु को चक्र सुदर्शन, श्रीकृष्ण को पुत्र, लवणासुर को अमोघ त्रिशूल, परशुराम को दिव्य अस्त्र-शस्त्र, कपिल को सांख्य-शास्त्र, व्यासजी को पुत्र, विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व, जैगीषव्य को योग की सिद्धियाँ, गर्ग को चौंसठ कलाओं का ज्ञान, बाल्मीकि को ब्रह्महत्या आदि से मुक्ति, अनसूया को पुत्र की प्राप्ति भगवान् शिव की उपासना से ही हुई।

भगवान् शिव की सगुणोंपासना में उनके विग्रह की अपेक्षा लिंग की पूजा को श्रेष्ठ बताया गया है। अश्वत्थामा का अग्नेयास्त्र अर्जुन एवं श्रीकृष्ण का कुछ भी बिगाड़ न सका तो इसके कारण को समझाते हुए व्यासजी कहते हैं कि कृष्ण एवं अर्जुन ने शिवलिंग की पूजा की है जबकि (अश्वत्थामा) तुमने उनके प्रतिमा की। लिंगपूजा से भगवान् शिव ज्यादा प्रसन्न होते हैं। इसी कारण से प्रतिमापूजक अश्वत्थामा का शस्त्र लिंगपूजक अर्जुन-श्रीकृष्ण का कुछ न बिगाड़ सका।

पाशुपतयोग की चर्चा में बताया गया है कि पाशुपतव्रतधारी को संपूर्ण अंगो में भस्म धारण कर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। उसे जटाधारण करना चाहिये अथवा मुण्डित केश होना चाहिये अथवा नाना प्रकार की शिखा धारण करना चाहिये। नग्नवेश धारणकर निःस्पृह और परिग्रहशून्य हो शिवजी में मन-बुद्धि लगाकर मिट्टी का पात्र लेकर भिक्षाटन करना चाहिये। तथा शिवलिंग की विधिवत् उपासना करनी चाहिये। शिवलिंग की विविध प्रकार की सामग्री से पूजा करने से प्राप्त फलों की भी चर्चा महाभारत में की गयी है। उदाहरण के लिये जो नाना प्रकार के फूलों से लिंगपूजा करता है उसे हजार गौवों के दान का फल मिलता है। भगवान् शिव को पलाश एवं बेल के पत्ते तथा आक के फूल विशेष प्रिय हैं।

महाभारत में तीर्थो की चर्चा करते हुए कहा गया है कि मानसतीर्थ सर्वश्रेष्ठ हैं। मानसतीर्थ शम-दमादि सद्गुणों को कहते हैं। पार्थिवतीर्थो के प्रसंग में कहा गया है कि जैसे शरीर के विभिन्न स्थान(अंग) पवित्र बतलाये गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भाग भी पवित्र तीर्थ हैं और वहाँ का जल पुण्यदायक है। पृथ्वी के कुछ भाग साधु-पुरुषों के निवास से तथा स्वयं पृथ्वी और जल के तेज से अत्यन्त पवित्र माने गये हैं। इस प्रकार पार्थिव और मानस अनेक पुण्यमय तीर्थ हैं। जो इन दोनों प्रकार के तीर्थो में स्नान करता है उसे शीघ्र ही ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। शैव-पार्थिव-तीर्थो में महाकाल, वाराणसी, सन्निहती, स्थाणुवट आदि का वर्णन महाभारत में पाया जाता है।

महाभारत में हम अन्य ग्रन्थों की भाँति विष्णु एवं शिव के एकात्म होने का उल्लेख पाते हैं।

ये दोनों ही देव तात्त्विक दृष्टि से एक हैं। फिर भी विष्णुजी या श्रीकृष्ण को शिव की उपासना करते हुए दिखाया गया है। भगवान् शिव को श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रिय हैं क्योंकि वे शिव के आत्मरूप हैं। वे शिव से ही उत्पन्न हुए हैं, और वे उन्हीं के भक्त हैं। अतः शिव की उपासना से श्रीकृष्ण की भी पूजा हो जाती है।

पुनः श्रीकृष्ण शिव-पूजा क्यों करते हैं इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि मैं अगर शिव की पूजा नहीं करूँ तो लोग मेरे व्यवहार को प्रमाण मानकर शिव की पूजा नहीं करेंगे। अतः लोक-आदर्श की स्थापना के लिये ही ऐसा करता हूँ।

लोक में भगवान् विष्णु की व्यापक प्रियता का भी रहस्य महाभारत में बताया गया है। भगवान् विष्णु को भगवान् शिव ने पूर्वकाल में ही अनेकों दुर्लभ वर दिये हैं जिनमें उनकी लोकप्रियता, युद्ध-अजेयता तथा संग्राम में शिव से भी अधिक बल सम्पन्नता शामिल हैं।

* * *

सत्संग की महिमा

देहधारियों का यह देह क्षणभंगुर है, इसमें मनुष्यशरीर मिलना बड़ा दुर्लभ है, उसमें भी भगवान् के प्रेमी भक्तों का दर्शन तो और भी दुर्लभ है। इस संसार में यदि क्षणभर के लिये भी सत्संग मिल जाय तो वह मनुष्यों के लिये निधि का काम देता है; क्योंकि उससे चारों पुरूषार्थ प्राप्त हो जाते हैं।

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।।
तत्रापिदुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्द्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम्।।
यस्मादवाप्यते सर्वं पुरुषार्थचतुष्टयम्। (पद्ममहापु. पातालखण्ड 84/23-25)

जो मनुष्य सदा गंगा आदि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करता है तथा जो केवल साधुपुरुषों का संग करता है, उनमें साधुसंग (सत्संग) करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ है।

जैसे सुवर्ण अग्नि के संपर्क में आनेपर मैल त्याग देता है, उसी प्रकार मनुष्य संतों के संग से पाप का परित्याग कर देता है।

गङ्गादिपुण्यतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा।
यः करोति सतां सङ्गं तयोः सत्सङ्गमो वरः।।(पद्ममहापु. पातालखण्ड 98/78)
यथा वहनिप्रसङ्गाच्च मलं त्यजति काञ्चनम्।
तथा सतां हि संसर्गात् पापं त्यजति मानवः। (पद्ममहापु. भूमिखण्ड 33/21)

पौराणिक साहित्य में भगवान् शिव

हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं दर्शन को समझने के लिये पौराणिक साहित्य का बहुत महत्त्व है। वेदों, उपनिषदों तथा महाकाव्यों (रामायण एवं महाभारत) के उपरान्त पुराणों के अध्ययन से हम अपनी आध्यात्मिक विरासत को गहराई से समझ सकते हैं।

शतपथ ब्राह्मण (14/2/4/10) तथा वृहदारण्यक उपनिषद् (2/4/10) में कहा गया है कि पुराण भी वेदों आदि की भाँति परमात्मा के निःश्वास से ही उत्पन्न हैं। वेदों के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् भाग में भगवान् शिव, विष्णु आदि के विभिन्न कथा-प्रसंग, जो पुराणों में वर्णित हैं, उनका उल्लेख या सूत्र पाया जाता है।

अथर्ववेद (11/7/24) में आया है कि यज्ञ से चारों वेदों के साथ पुराण उत्पन्न हुए। छान्दोग्य उपनिषद् (7/1/2) में भी पुराण का उल्लेख आया है। वहाँ पर पुराणों को पञ्चम वेद कहा गया है- **'इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।'** पद्मपुराण में कहा गया है कि 'जो ब्राह्मण अंगों एवं उपनिषदों सहित चारों वेदों का ज्ञान रखता है, उससे भी बड़ा विद्वान् वह है जो पुराणों का विशेष ज्ञाता हो।'

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः।। (पद्म.पु. सृष्टिखण्ड 2/50)

ब्रह्माण्डपुराण के प्रक्रियापाद में 'पुराण' शब्द की निरूक्ति इस प्रकार की गयी है-

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदान् द्विजाः।।
न चेत् पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः।।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।
यस्मात्पुरा ह्यभूच्चैतत् पुराणं तेन तत्स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (अध्याय-1/170-171, 173)

अर्थात्- "अङ्ग और उपनिषद् के सहित चारों वेदों का अध्ययन करके भी, यदि पुराण को नहीं जाना गया तो ब्राह्मण विचक्षण नहीं हो सकता; क्योंकि इतिहास-पुराण के द्वारा ही वेद की पुष्टि करनी चाहिये। यही नहीं, पुराण-ज्ञान से रहित अल्पज्ञ से वेद डरते हैं; क्योंकि ऐसे व्यक्ति के द्वारा ही वेद का अपमान हुआ करता है। अत्यन्त प्राचीन तथा वेद को स्पष्ट करनेवाला होने से ही इसका नाम 'पुराण' हुआ है। पुराण की इस व्युत्पत्ति को जो जानता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।"

प्रमुख पुराणों की संख्या प्राचीन काल से 18 मानी गयी है। इन अष्टादश पुराणों का नाम प्रायः प्रत्येक पुराण में उपलब्ध होता है। ये अठारह पुराण महापुराण के नाम से जाने जाते हैं। इनके अलावा

18 पुराण, 18 उपपुराण, तथा 18 अतिपुराणों का भी प्रचलन है। इस प्रकार पुराण साहित्य भी उपनिषदों की तरह काल-क्रम से काफी विस्तृत हो गया है। समय के साथ-साथ न केवल प्रमुख महापुराणों में परिवर्तन-परिवर्द्धन हुए अपतु नये-नये पुराणों की भी रचना हुई। यही कारण है कि नाना प्रकार के साम्प्रदायिक तत्त्व प्रमुख पुराणों में घुस गये और उन तत्त्वों के समर्थन में अलग से भी पुराण-उपपुराण रच दिये गये। अगर हम प्रमुख पुराणों(महापुराण) को गहराई से पढ़ें तथा उसके अन्तर्गत निहित विषम तत्त्वों को उस पुराण की समग्र विचाधारा से ताल-मेल बैठाकर देखें तो साम्प्रदायिक व मिलावटी बातें आसानी से पकड़ में आ सकती हैं।

पुराण के 5 लक्षण बताये गये हैं, अर्थात् पुराणों में 5 तरह की बातें होती है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मनवन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।[1] (वराहपु. 2/4)

अर्थात्-पुराणों में (1) मन्वन्तर विज्ञान, (2) सृष्टि विज्ञान (सर्ग), (3) प्रतिसृष्टि विज्ञान (प्रतिसर्ग), (4) वंश विज्ञान तथा वंश्यानुचरित विज्ञान पाये जाते हैं।

प्रमुख पुराणों के नामों के बारे में एकमत नहीं है। पुराणों की एक गणना(देवी भागवत, नारद तथा मत्स्यपुराण) के अनुसार-ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ तथा ब्रह्माण्ड-महापुराण की श्रेणी में हैं। जबकि कूर्म, पद्म, ब्रह्मवैवर्त, भागवत, मार्कण्डेय, लिंग, वराह तथा विष्णुपुराण के अनुसार वायुपुराण की जगह शिवपुराण को चौथा महापुराण मानना चाहिये। अर्थात् या तो शिवपुराण को या वायुपुराण को महापुराण की गिनती से बाहर करना पड़ेगा। इसी प्रकार स्कंदमहापुराण में शिव एवं वायु दोनों को ही महापुराणों में सम्मिलित किया गया है जबकि ब्रह्माण्डपुराण को नहीं किया गया। ज्यादातर ग्रन्थों में शिव तथा ब्रह्माण्डपुराण को ही महापुराण माना गया है। शिवपुराण को महापुराण मानने का एक और भी कारण है कि इसके अन्तर्गत वायुपुराण की सभी प्रमुख बातों का समावेश है। एक और बात ध्यान देने की है कि हम चाहे शिवपुराण को चाहे वायुपुराण को चौथा पुराण माने दोनों ही हालत में चौथे पुराण के प्रमुख देवता(तथा विषय) भगवान् शिव ही हैं।

मत्स्यपुराण(53/67-68) के अनुसार पुराणों का त्रिविध विभाजन-सात्त्विक, राजस तथा तामस किया गया है। सात्त्विक पुराणों में विष्णु, राजस पुराणों में ब्रह्मा तथा अग्नि तथा तामस पुराणों में शिव का माहात्म्य अधिकांशतः वर्णित है। इसी प्रकार की बात स्कंदपुराण के प्रभासखण्ड के (अध्याय 1) में भी कही गयी है पद्मपुराण में भी पुराणों का इसी तरह विभाजन किया गया है। इसके अनुसार मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द, अग्नि-ये छः पुराण तामस हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त,

---

[1] यही श्लोक मत्स्यमहापुराण (53/64) में भी पाया जाता है। पर वहाँ पर 'वंशानुचरितं' शब्द की जगह 'वंश्यानुचरितं' है।

मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्राह्म- ये छः राजस पुराण हैं तथा विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म तथा वराह-ये छः सात्त्विक पुराण माने गये हैं(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, 236/18-21)।

स्कन्दपुराण की दृष्टि में दस पुराणों में विशेष रूप से शिव की स्तुति है; चार में ब्रह्मा की और दो में देवी तथा हरि की है(स्कन्द, महापु. प्रभास खण्ड अ. 1)। यहाँ पर इन पुराणों का नाम नहीं दिया गया है कि किन में किस देव का विशेष वर्णन हुआ है। तमिल ग्रन्थों में पुराणों के पाँच वर्ग किये गये हैं जिनमें से शिव की महिमावाले-शिव, स्कन्द, लिंग, कूर्म, वामन, वराह, भविष्य, मत्स्य, मार्कण्डेय तथा ब्रह्माण्ड-ये दस पुराण हैं। विष्णु की महिमावाले-नारद, श्रीमद्भागवत, गरुड तथा विष्णु ये चार पुराण हैं। ब्रह्मा की महिमावाले-ब्रह्मवैवर्त और पद्मपुराण हैं। सूर्य की महिमावाला ब्रह्मवैवर्तपुराण तथा अग्नि की महिमावाला अग्निपुराण है।

पुराणों का उपरोक्त कोई भी वर्गीकरण तथ्यतः सही नहीं है तथा उनके पिछे साम्प्रदायिक भावनायें भी जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं।

पुराणों की कथाओं में एक बात बुद्धिवादी लोगों की दृष्टि में प्रायः खटकती है-वह यह कि पुराणों में जहाँ जिस देवता, तीर्थ या व्रत आदि का महत्त्व बतलाया गया है, वहाँ उसी को सर्वोपरि माना है। जहाँ जिस देवता को श्रेष्ठ माना गया है वहाँ अन्य सभी देवों द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। गहराई से न देखने पर ये बातें बेतुकी सी प्रतीत होती हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् का यह लीलाभिनय ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण भगवान् विभिन्न विचित्र लीलाव्यापार के लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकारसम्पन्न साधकों के कल्याण के लिये अनन्त विचित्र रूपों में नित्य प्रकट हैं। भगवान् के ये सभी रूप नित्य, पूर्णतम और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। अपनी-अपनी रुचि और निष्ठा के अनुसार जो जिस रूप और नाम को इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपों से समस्त रूपमय एकमात्र भगवान् को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि भगवान् के सभी रूप परिपूर्णतम हैं और उन समस्त रूपों में एक ही भगवान् लीला कर रहे हैं।

व्रतों के संबंध में भी यही बात है। अतएव श्रद्धा और निष्ठा की दृष्टि से साधक के कल्याणार्थ जहाँ जिसका वर्णन है, वहाँ उसको सर्वोपरि बताना युक्तियुक्त ही है। और परिपूर्णतम भगवत्सत्ता की दृष्टि से सत्य भी है। तीर्थों की बात यह है कि भगवान् के विभिन्न नाम-रूपों की उपासना करने वाले संतो, महात्माओं और भक्तों ने अपनी कल्याणमयी सत्साधना के प्रताप से विभिन्न रूपमय भगवान् को अपनी-अपनी रुची के अनुसार नाम-रूप में अपने ही साधन-स्थान में प्राप्त कर लिया और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की। एक ही भगवान् अपनी पूर्णतम स्वरूप-शक्ति के साथ अनन्त स्थानों में अनन्त नाम-रूपों में प्रतिष्ठित हुए। भगवान् के प्रतिष्ठास्थान ही तीर्थ हैं, जो श्रद्धा, निष्ठा और रुची के अनुसार सेवन करनेवाले को यथायोग्य फल देते हैं। यही तीर्थ-रहस्य है। उस दृष्टि से अनेक तीर्थों को सर्वोपरि बतलाना सर्वथा उचित है।

भगवान् शिव एवं विष्णु आदि देवरूप सब एक हैं, इसकी पुष्टि तो इसी से भलीभाँति हो जाती है कि शैव कहे जानेवाले पुराणों में भी विष्णु की और वैष्णव पुराणों में भी शिव की महिमा गायी गयी है और दोनों को एक या अभिन्न बताया गया है तथा उक्त पुराणविशेष के विशिष्ट प्रधान देव ने अपने ही श्रीमुख से अन्य पुराणों के प्रधान देवता को अपना ही स्वरूप बतलाया है।

कई बार पुराणों में परस्पर विरोधी या थोड़ी-थोड़ी भिन्नता के साथ कथाएँ मिलती हैं। इन भिन्नताओं का एक कारण समय के साथ ग्रन्थों में साम्प्रदायिक भावनाओं का जुड़ जाना है। अर्थात् बहुत सी कथाओं में मिलावट कर अपने सम्प्रदाय को पुष्ट करने अथवा दूसरे को हेय दिखाने का प्रयास किया जाना है। दूसरा कारण कथाओं का कल्प भेद है। 360 मानवीय वर्ष देवताओं के एक वर्ष के बराबर तथा 12000 देववर्ष का एक चतुर्युग (अर्थात् सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग इन सभी की सम्पूर्ण आयु) और 1000 चतुर्युग ब्रह्मा का एक दिन होता है। और यही एक कल्प का मान भी है। एक कल्प में 14 मनु बीत जाते हैं। अर्थात् 14 मनवन्तर बीत जाते है। कल्प के अन्त में नैमित्तिक या ब्राह्म प्रलय होता है। उपरोक्त गणना के मुताबिक 100 वर्ष की आयु ब्रह्मा को प्राप्त है। प्रत्येक कल्प में सृष्टिरचना की प्रक्रिया तथा सृष्टवस्तुओं के स्वरूप आदि लगभग मिलते जुलते हैं। फिर भी कभी-कभी कुछ बातों में काफी अन्तर होता है। वेद में भी प्रत्येक कल्प में होनेवाली सृष्टि की समानता का संकेत है-

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चाऽन्तरिक्षमथो स्वः।।

(ऋ.वे. 10/190/3 तथा तैत्तिरीय आरण्यक 10/1/14))

पुराणों के सृष्टितत्त्व को जाननेवाले लोग इसे सहज में ही समझ सकते हैं। उदाहरण के लिये वायुपुराण की कथाएँ श्वेतकल्प की, नारदपुराण की वृहत्कल्प की, अग्निपुराण की ईशानकल्प की, भविष्यपुराण की कथाएँ अघोरकल्प की, लिंगपुराण की अग्निकल्प की, भागवत की ब्राह्मकल्प की, वराहपुराण की मानव कल्प की, मत्स्यपुराण में सात कल्पों की, गरुडपुराण में तार्क्ष्यकल्प की कथाएँ हैं।[1]

आगे के अध्यायों में हम शिवतत्त्व एवं उससे संबंधित अनेक तथ्यों को विभिन्न पुराणों के संदर्भ में देखेंगे। समझने की सुविधा को देखते हुए हम आगे के अध्यायों को कई उपअध्यायों में बाँट कर शिवतत्त्व की विवेचना करेंगे। प्रत्येक अध्याय में पुराण विशेष या चन्द पुराणों के आधार पर विवेचना की जायगी।

---

[1] **क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।**
तत्तत्कल्पान्त वृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः।।
तानि तानि प्रणीतानि विद्वांस्तम न मुह्यति।

सभी महापुराणों तथा कई उपपुराणों के अध्ययन से यह बात स्पष्टरूप से उभर कर आती है कि भगवान् शिव ही परम तत्त्व अथवा ब्रह्म हैं जिनके निर्गुण एवं सगुण दो रूप हैं। निर्गुण रूप में भगवान् शिव को कूटस्थ, अचिन्त्य, चैतन्यस्वरूप, मन-वाणी से परे, अविनाशी, निरञ्जन, एक, ॐकारस्वरूप, नित्य, शुद्ध तथा निष्प्रपंच कहा गया है। सगुणरूप में उन्हें सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता, संहारकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप, जगत्स्वरूप, तीनों लोकों के अधीश्वर, पंचमुख, दस भुजावाले, त्रिनेत्र, चन्द्रमा, गंगा, गजचर्म, मृगचर्म, मुण्डमाला, त्रिशूल, तथा पिनाक आदि को धारण करनेवाले, वरदाता, आशुतोष, भोग-मोक्षदाता, अर्द्धनारीश्वर, नीलकंठ, त्रिपुर, जालंधर तथा अंधक आदि राक्षसों का वध करनेवाले, पशुपति, भूतपति, जगत्पति, कैलासवासी, सब पर दया करनेवाले, भक्तवत्सल, लिंगरूप, वृष पर सवारी करनेवाले तथा कर्पूर के समान गौर वर्णवाले इत्यादि विशेषणों व संज्ञायों से युक्त माना गया है।

इसी प्रकार भगवान् शिव की लिंगोपासना को पुराणों में ज्यादा महत्त्व दिया गया है। शिव के प्रमुख मन्त्रों में पंचाक्षर, ॐकार तथा महामृत्युञ्जय आदि की चर्चा की गयी है। पंचाक्षर मंत्र को सर्वश्रेष्ठ मन्त्र माना गया है तथा इसमें सभी लोगों-स्त्री हो या शूद्र, मलेच्छ हो या राक्षस, शुद्ध हो वा अशुद्ध-का समानरूप से अधिकार है। शैवतीर्थों में काशी को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसका उल्लेख लगभग सभी पुराणों में है।

एक और बात सभी पुराणों में कही गयी है। वह यह कि तीनों प्रमुख देवता (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) तत्त्वत: एक ही हैं। एक ही परमसत्ता, सदाशिव, सृष्टिव्यापार के लिये अपने को तीन रूपों में विभक्त कर लेती है। अत: प्रपंच के धरातल पर इन तीनों में भेद है परन्तु मूलत: वे सब एक ही हैं। ये तीनों देव प्रकृति के विभिन्न गुणों को स्वीकार कर पैदा हुए हैं अत: इनमें अलग-अलग गुणों की प्रधानता होती है। इसी कारण इनके कार्य भी अलग-अलग नियत किये गये हैं। भगवान् विष्णु का कार्य सृष्टि का पालन करना है अत: वे धरती पर बार-बार अवतार लेकर दुष्टों और राक्षसों का विनाश करते रहते हैं। चूँकि वे सत्त्वगुण से युक्त हैं अत: उन्हें संहार करने के लिये शिव की शक्ति का सहारा लेना पड़ता है क्योंकि वे ही संहार के देवता हैं। इसीलिये अनेक पुराणों में विष्णुजी को संहारक शस्त्रों (सुदर्शन चक्र आदि) की प्राप्ति शिवजी से दिखायी गयी है। तीनों ही देवता एक दूसरे की मदद से सृष्टिव्यापार चलाते रहते हैं। अन्त में अर्थात् महाप्रलय में परमशिव ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र सहित समस्त सृष्टि का नाश कर डालते हैं और अपनी अद्वैत निष्कल समाधि में लीन हो जाते हैं।

* * * * * * * *

जो पुरुष नियमपूर्वक व्रत का पालन करता हुआ प्रतिमास अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करता है तथा जो केवल मद्य और मांस का परित्याग करता है, उन दोनों को एक-सा ही फल मिलता है।

यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः।
वर्जयेन्मधु मांसं च सममेतद् युधिष्ठिर।। (महा. अनु. पर्व 115/8)

ब्रह्मपुराण में शिवतत्त्व

ब्रह्मपुराण पुराणों की सूची में पहले स्थान पर है। नारदपुराण (पूर्वख. 92/31) के अनुसार इसमें दस हजार तथा मत्स्यपुराण (53/12-13) के अनुसार तेरह हजार श्लोक हैं। परन्तु इसमें श्लोकों की वर्तमान संख्या 14000 के आस-पास तथा अध्यायों की 246 हैं। इस ग्रन्थ के कतिपय अध्याय महाभारत के शान्तिपर्व के कुछ अध्यायों से अक्षरशः अथवा थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ मेल खाते हैं। पद्मपुराण (उत्तरख. 236/20-21) के अनुसार इसे राजस पुराण माना जाता है। मत्स्य पुराण (53/67) के अनुसार राजस पुराणों में ब्रह्माजी के माहात्म्य का वर्णन प्रधान होता है। परन्तु इस ग्रन्थ में परम्परागत मान्यता से हटकर विष्णु के चरित्रों की चर्चा अन्य देवों से बढ़कर की गयी है। विष्णु की चर्चा विस्तार से होने के बावजूद भी प्रसंगवश जहाँ शिवजी की चर्चा की गयी है वहाँ उन्हें परब्रह्म परमात्मा स्वीकार किया गया है।

भगवान् शिव का स्वरूप

पार्वती की कठोर तपस्या से प्रभावित हो ब्रह्माजी प्रकट हो पार्वती से तप के कारण को जान उनसे कहते हैं कि "भगवान् शंकर ही सर्वश्रेष्ठ पति हैं। वे सम्पूर्ण लोकेश्वरों के भी ईश्वर हैं। हम सदा ही उनके अधीन रहनेवाले किंकर हैं। देवि! वे देवताओं के भी देवता, परमेश्वर और स्वयम्भू हैं। उनका स्वरूप बड़ा ही उदार है। उनकी समानता करनेवाला कहीं कोई भी नहीं है।"[1]

ब्रह्माजी पार्वतीस्वयंवर में शिशुरूपधारी भगवान् शिव को पहचानकर उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं- "भगवन्! आप अजन्मा एवं अजर देवता हैं, आप ही जगत् के स्रष्टा, सर्वव्यापक, परावर-स्वरूप, प्रकृति-पुरुष तथा ध्यान करनेयोग्य अविनाशी हैं। अमृत, परमात्मा, ईश्वर, महान् कारण, मेरे भी उत्पादक, प्रकृति के स्रष्टा, सबके रचयिता और प्रकृति से भी परे हैं।............देवेश्वर! आपके ही प्रसाद एवं आदेश से मैंने इन देवता आदि प्रजाओं की सृष्टि की है। ये देवगण आपकी माया से मोहित हो रहे हैं। आप इनपर कृपा कीजिये जिससे ये पहले-जैसे हो जायँ।"

अजस्त्वमजरो देवः स्रष्टा विभुः परापरम्।।
प्रधानं पुरुषो यस्त्वं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम्।
अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत्।।
ब्रह्मसृक् प्रकृतेः स्रष्टा सर्व्वकृत्प्रकृतेः परः।
...
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः।
देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमायया।।
..। (ब्रह्मपु. 36/39-41, 43)

---

[1] संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक, कल्याण, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 330 या ब्र. पु. 34/99-101 देखें।

आगे शिव-विवाह के उपरान्त देवों ने शिव की स्तुति की। स्तुति में वे कहते हैं- "पर्वत जिनका लिंगमय स्वरूप है, ... जिनका वेग पवन के समान है, ...अपराजित हैं, जो क्लेशों का नाश करके शुभ-सम्पति प्रदान करते हैं, ... वायु जिनका स्वरूप है और जो सैकड़ों रूप धारण करनेवाले हैं, ... योगियों के गुरु, सूर्य एवं चंद्रमा जिनके नेत्र हैं, ... श्मशान में क्रीड़ा करते और वर देते, ...देवेश्वर शिव..............., जो गृहस्थ होते हुए भी साधु हैं, नित्य जटा एवं ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले ...., भोगजनित ऐश्वर्य देते, मन को शान्त रखते, इन्द्रियों का दमन करते तथा प्रलय एवं सृष्टि के कर्त्ता हैं। ....रुद्र, वसु, आदित्य और अश्विनीकुमारों के रूप में वर्त्तमान भगवान् शंकर ....जो सबके पिता, सांख्य वर्णित पुरुष, विश्वेदेव, ...पशुपति, ... प्रधान, अप्रमेय, कार्य और कारण नाम से प्रतिपादित होते हैं, ... आप ही पुरुष एवं प्रकृति का संयोग कराते और आप ही प्रकृति में गुणों का आधान करानेवाले हैं। .... आप प्रकृति और पुरुष के प्रवर्तक, कार्य और कारण के विधायक तथा कर्मफलों की प्राप्ति करानेवाले हैं। .... आप काल के ज्ञाता, सबके नियन्ता .... प्रजावर्ग को जीविका प्रदान करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है।" (ब्रह्मपुराण 37/2-22)

यज्ञ का विध्वंस करते समय वीरभद्र द्वारा दी गयी सलाह पर दक्ष ने भगवान् शिव की मानसिकरूप से शरण ली। दक्ष के ध्यान एवं स्मरण से भगवान् शिव वहाँ प्रकट हो गये तथा उन्हें यथोचित वरदान दिया। वरदान पाकर दक्ष ने पृथ्वी पर घुटने टेककर भगवान् शिव की 1008 नामों द्वारा स्तुति की।[1] इस स्तुति में भगवान् शिव को देवेन्द्र, देव-दानवों द्वारा पूजित, सहस्राक्ष, त्र्यक्ष, सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, कान, मस्तक और मुखवाला, सबको व्याप्त करके स्थित, सनातन, गायत्री के उपासक जिसका गान करते हैं, सूर्य के भक्त जिनकी सूर्यरूप में उपासना करते हैं, देव-दानव-रक्षक, ब्रह्मा तथा इन्द्ररूप, जिसमें सम्पूर्ण देवता निवास करते हैं, जिसके शरीर में चन्द्रमा, अग्नि, वरुण, सूर्य, विष्णु, ब्रह्मा तथा बृहस्पति स्थित हैं, जो क्रिया, करण, कार्य, कर्त्ता, कारण, असत्, सदसत्, उत्पत्ति तथा प्रलय हैं, सृष्टिकर्त्ता, रुद्र, वरद, पशुपति, त्रिशूलधारी, विरूप होते हुए भी जो शिव हैं, सर्वस्वरूप, सर्वभूतों के अन्तरात्मा, होम एवं मन्त्ररूप, दसभुजावाले, कपालधारी, श्वेत-भस्मधारी, घोर, अघोर, शान्त, शुद्ध बुद्धिरूप, यज्ञों के अधिपति, शुद्ध, बुद्ध, सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय करनेवाले, धर्म-मोक्षादि देनेवाले, योग के अधिपति, चारों प्रकार के जीवरूप, ब्रह्मवादी जिन्हें ऋक्, साम तथा ॐकार कहते हैं, चारों वेदस्वरूप, उपनिषद् जिनके स्वरूप का अध्ययन करते हैं, गदा, बाण, धनुष आदि धारण करनेवाले, जो आदि, मध्य और अन्त, गायत्री और ॐकार भी हैं, त्रिसौपर्ण ऋचा और यजुर्वेद का शतरुद्रिय जिसका स्वरूप है, सब भूतों में संचालकरूप से जो स्थित है, ब्रह्म, सत्य, सम्पूर्ण

---

[1] यह स्तुति महाभारत के शान्तिपर्व (मोक्षधर्मपर्व 284/69-180) में वर्णित दक्षस्तुति से मिलती-जुलती है। कई श्लोक तो ज्यों के त्यों हैं, कुछ में थोड़ा-बहुत परिवर्तन है तथा कुछ श्लोक नवीन भी हैं।

भूतों की आत्मा, ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषियों द्वारा भी जो अगम्य है, सर्वस्वरूप, सम्पूर्ण भूतों के स्वामी, सबकी उत्पत्ति के कारण, सबकी अन्तरात्मा आदि संज्ञाओं एवं विशेषणों से युक्त स्वीकार किया गया है(ब्रह्मपु. 40/2-100)। इस स्तोत्र की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

गायन्ति त्वां गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमर्किणः।
देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः।।
त्वमेव देवदेवश भूतग्रामश्चतुर्विधः।
चराचस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च।।
त्वमेव ब्रह्मा विश्वेश अप्सु बह्म वदन्ति ते।
सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः।।
ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः।
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिवः।।
सर्वस्त्वं सर्वगो देवः सर्वभूतपतिर्भवः।
सर्वभूतान्तरात्मा च .... ।।(ब्रह्मपु. अध्याय 40/6, 42-44, 83, 97)

भावार्थ है- गायत्री के उपासक आपका(शिवका) ही गान करते हैं। सूर्य के भक्त आपकी ही सूर्यरूप में उपासना करते हैं। आप देवता तथा दानवों के रक्षक, ब्रह्मा तथा इन्द्र हैं। देव देवेश्वर! आप ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज, और उद्भिज- ये चार प्रकार के जीव हैं। चराचर जगत् की सृष्टि एवं संहार करनेवाले आप ही हैं। विश्वेश्वर! आप ही ब्रह्मा हैं। जल में स्थित जो ब्रह्म है, उसे आपका ही स्वरूप बताते हैं। आप ही सबकी परम योनि हैं। चन्द्रमा और ज्योति के भंडार भी आप ही हैं। ब्रह्मवादी महर्षि आपको ही ऋक्, साम तथा ॐकार कहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा प्राचीन ऋषि भी आपके माहात्म्य को यथार्थरूप से जानने में समर्थ नहीं हैं। आप सर्वस्वरूप, सर्वव्यापी देवता, सम्पूर्ण भूतों के स्वामी, सबकी उत्पत्ति के कारण तथा सम्पूर्ण भूतों के अन्तरात्मा हैं।

गौतम ऋषि ने गौतमी गंगा को धरती पर उतारने के लिये कैलास पर जाकर भगवान् शिव की स्तुति की, फलस्वरूप नर्मदा का धरती पर अवतरण हुआ। उन्होंने अपनी स्तुति में (पार्वती सहित) भगवान् शिव को पृथ्वी, जल आदि आठ विराट्स्वरूप(मूर्ति) धारण करनेवाला कहा है। पृथ्वी का रूप समस्त चराचर जगत् का भरण-पोषण करनेवाला' तथा सबका अभ्युदय कराने के लिये है। जल का रूप लोगों को सुख पहुँचाने तथा धर्म की सिद्धि करने का हेतु है। महेश्वर! आपने समय की व्यवस्था करने, सृष्टि, पालन एवं संहार करने, तथा प्रजा को सुख एवं उन्नति का अवसर देने के लिये सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि का रूप धारण किया है। आपने शक्ति का उपार्जन तथा अक्षरों का उच्चारण आदि करने के लिये वायुरूप धारण किया है। क्रिया, भेद या विभाजनहेतु ही आकाश का रूप धारण किया

है। धर्मसाधन के लिये चारों वेद, उनकी शाखाओं और शास्त्रों का विभाजन भी आपने किया है। यज्ञ, यजमान, यज्ञ के साधन आदि सब-कुछ आप ही हैं। आप ही परमार्थतत्त्व हैं। कर्त्ता, दाता, दान, सर्वज्ञ, साक्षी, परम पुरुष, सबका अन्तरात्मा तथा परमार्थस्वरूप सब कुछ आप ही हैं। वेद, शास्त्र और गुरु भी आपके तत्त्व का भली-भाँति उपदेश नहीं कर सके हैं। आप बुद्धि आदि की पहुँच के परे, अजन्मा, अप्रमेय, सत्य तथा शिव कहे जाते हैं। शिव अपनी प्रकृति के प्रति सचेत होने के कारण ही एक से अनेक हो विश्वरूप में प्रकट हो जाते हैं। शिवजी का प्रभाव अतर्क्य और अचिन्त्य है। भगवान् शिव की प्रिया शिवा देवी भी नित्य हैं। वे(शिवा) इस संसार की उत्पत्ति में स्वयं कारण हैं, तथा सर्वकारण महेश्वर के आश्रित हैं। शिवा समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न तथा विश्वविधाता शिव की विलक्षण शक्ति हैं। श्रुतियों को देखकर तथा सब प्रमाणों से भगवान् शिव की प्रभुता पर विश्वास कर लोग जो धर्मो का अनुष्ठान करते और फलस्वरूप जो उत्तम भोग भोगते हैं वे सब भगवान् सदाशिव की विभूतियाँ हैं। वैदिक तथा लौकिक कार्य, क्रिया, कारक और साधनों का जो सबसे उत्तम एवं प्रिय साध्य है, वह अनादि कर्त्ता शिव की प्राप्ति ही है। जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म, परप्रधान, सारभूत और उपासना के योग्य है, जिसका ध्यान तथा जिसकी प्राप्ति करके श्रेष्ठ योगी पुरुष मुक्त हो जाते हैं- वे भगवान् उमापति ही मोक्ष हैं। माता पार्वती! भगवान् शंकर जगत्‌कल्याण के लिये जैसे-जैसे अपार मायामय रूप धारण करते हैं, वैसे-ही-वैसे तुम भी उनके योग्य रूप धारण करती हो।[1]

एक स्थल पर इला और पुरूरवा भगवान् शिव की स्तुति में कहते हैं कि-संसार के त्रिविध ताप-रूपी दावानल से दग्ध होनेवाले देहधारी जिनका चिन्तन करने से तत्काल परम शान्ति को प्राप्त होते हैं, वे कल्याणकारी उमा-महेश्वर हमें शरण दें। जिनसे जगत् की उत्पत्ति होती है तथा प्रलयकाल में यह सब जिनके ही भीतर लय हो जाता है, वे संसार को शरण देनेवाले जगदात्मा उमा-महेश्वर हमें शरण दें।[2]

किसी प्रसंग में बृहस्पति भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें परम सूक्ष्म, ज्योतिर्मय, अनन्त, ओंकार मात्र से अभिव्यक्त, प्रकृति से परे, चित्स्वरूप, आनन्दमय और पूर्णरूप बतलाते हैं। भगवान् शिव ही पंचमहायज्ञों द्वारा उपास्य हैं। वे रुद्र, शिव और सोम आदि नामों से पुकारे जाते हैं। शिव की भक्ति से मूर्ख भी मोक्षमयस्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यज्ञ, ज्ञान, तप, ध्यान तथा बड़े-बड़े फल देनेवाले होम आदि कर्मो का सर्वोत्तम फल भगवान् सोमनाथ की भक्ति है। सभी प्रकार के सांसारिक भोगों, स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति भगवान् शिव की भक्ति से ही संभव है। भगवान् शिव स्थूल, सूक्ष्म, अनादि, नित्य, माता, पिता, असत् और सत्स्वरूप हैं-ऐसा श्रुतियों और पुराणों ने गाया है(बह्मपुराण, अध्याय 122/74-82)।

---

1. संक्षिप्त मार्कण्डेय एवं ब्रह्मपुराणांक पृ. 385-86 या ब्रह्मपुराण 75/4-24 देखें
2. संक्षिप्त मार्कण्डेय एवं ब्रह्मपुराणांक पृ. 413 या ब्रह्मपुराण 108/105-107 देखें

दण्डक वन के राक्षसों का संहार करके उसे भगवान् राम ने ऋषि-मुनियों के रहने योग्य बनाकर पाँच योजन आगे चलकर गौतमी गंगा के तटपर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर श्रीराम ने बड़े हर्ष के साथ महादेवजी की स्थापना की और यत्नपूर्वक षोडषोपचार से 36 कलाओंवाले महादेवजी की आवरण सहित पूजा करके उनकी स्तुति की। उस स्तुति में उन्हें पुराणपुरुष, असीम एवं अनन्त सत्ता, सर्वज्ञ, अविनाशी, लोकगुरु, दरिद्रता का विनाश करनेवाले, रोगों का अपहरण करनेवाले, अचिन्त्य रूपवाले, कल्याणमय, विश्व की उत्पत्ति के बीजभूत, जगत् का पालन करनेवाले, परमात्मा, संहारकारी, नित्य, क्षर-अक्षरस्वरूप, चिन्मय, अप्रमेय, त्रिलोचन, मनोवांछित फलों के दाता, महेश्वर, उमानाथ, तीन वेद जिनके नेत्र हैं, त्रिविध मूर्ति से रहित सदाशिव, सत्-असत् से पृथक्, परमात्मा, पापों का अपहरण करनेवाले, संपूर्ण विश्व के हित में लगे रहनेवाले, बहुत से रूप धारण करनेवाले, संसार के रक्षक, सत् और असत् के निर्माता, संपूर्ण विश्व से स्वामी, हव्य-कव्यरूप, यज्ञेश्वर, उत्तम गति प्रदान करनेवाले, भक्तों के अधीन रहनेवाले, गणेश तथा नन्दी के स्वामी, संसार के दुःख-शोक का नाश करनेवाले, स्तुति करने योग्य, शिर पर गंगा धारण करनेवाले, देवताओं में श्रेष्ठ और ब्रह्मा आदि ईश्वर, इन्द्रादि देवता तथा असुरों द्वारा पूज्य कहा गया है (123/195-205)। राम द्वारा की गयी स्तुति के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

नमामि शंभुं पुरुषं पुराणं, नमामि सर्वज्ञमपारभावम्।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षयं तं, नमामि शर्वं शिरसा नमामि।।
नमामि वेदत्रयलोचनं तं, नमामि मूर्तित्रयवर्जितं तम्।

....

यज्ञेश्वरं संप्रति हव्यकव्यं, तथा गतिं लोकसदाशिवो यः।
नमाम्यजादीशपुरन्दरादिसुरासुरैरर्चितपादपद्मम्।

(ब्रह्मपुराण 123/195, 200, 202 एवं 205)

भावार्थ यह है कि-मैं पुराणपुरुष शम्भु को नमस्कार करता हूँ। जिनकी असीम सत्ता का कहीं पार या अन्त नहीं है, उन सर्वज्ञ एवं अक्षय प्रभु शिव को मैं प्रणाम करता हूँ। तीन वेद जिनके तीन नेत्र हैं, उन त्रिलोचन को प्रणाम करता हूँ। त्रिविधमूर्ति से रहित सदाशिव को नमस्कार करता हूँ। हव्य-कव्य-स्वरूप यज्ञेश्वर को नमस्कार करता हूँ। सम्पूर्ण लोकों का सर्वदा कल्याण करनेवाले भगवान् शिव आराधना करने पर उत्तम गति एवं संपूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करते हैं। ब्रह्मा आदि ईश्वर, इन्द्र आदि देवता तथा असुर भी जिनके चरणकमलों की पूजा करते हैं उन भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

पुत्रतीर्थ के प्रसंग में कश्यप अपनी स्तुति में भगवान् शिव को लोकवन्दित परमेश्वर, सबको पवित्र करनेवाले, सर्पों का आभूषण धारण करनेवाले, धर्मस्वरूप वृषभ पर सवारी करनेवाले, तीन वेद

जिनके नेत्र हैं, गजचर्म धारण करनेवाले, अर्धचन्द्र से विभूषित, यज्ञेश्वर, मनोवांछित फलों के दाता, करुणाधाम, मंगलदाता, सबकी उत्पत्ति के हेतुभूत, परमात्मा, पालन करनेवाले, वासव, ब्रह्म-वन्दित, विश्वेश्वर, सिद्धेश्वर और पूर्ण परमेश्वर कहा है। आगे भगवान् शिव को अनादि, अपार, अजर, सच्चिदानन्दमय, लिंगस्वरूप, ज्योतिर्मय तथा अनामय कहा गया है।(ब्रह्मपु. अध्याय 124/94-99 आदि)

इन्द्रतीर्थ के प्रकरण में इन्द्र भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें अपनी माया से सम्पूर्ण चराचर जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार करनेवाला पर उनमें अनासक्त, एक, स्वतंत्र तथा अद्वैत चिदानन्दस्वरूप, पिनाकधारी, वेदान्त के रहस्यों को जाननेवाले सनकादि मुनियों द्वारा भी जिनका तत्त्व अगम्य है, अभीष्ट वस्तुओं के दाता, अन्धकासुर विनाशक तथा शिव-शक्तिमय अद्वैत रूपधारी कहा है(ब्रह्मपु. 129/68-81)। इन्द्रकृत शिवस्तुति के कुछ अंश देखिये-

स्वमायया यो ह्यखिलं चराचरं, सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन्।
न यस्य तत्त्वं सनकादयोऽपि, जानन्ति वेदान्तरहस्यविज्ञाः।
शिवशक्त्योस्तदाऽद्वैतं सुन्दरं नौमि विग्रहम्।। (ब्रह्मपुराण 129/68-69, 81)

भावार्थ है-जो अपनी माया से सम्पूर्ण चराचर जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं, किंतु उसमें आसक्त नहीं होते। वेदान्त के रहस्यों को भलीभाँति जाननेवाले सनकादि मुनि भी जिनके तत्त्व को ठीक-ठीक नहीं जानते। शिव और शक्ति के सुन्दर अद्वैत रूप को सर्वदा नमस्कार करते हैं।

आपस्तम्ब भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें काष्ठों में अग्नि तथा फूलों में सुगंध की तरह, संपूर्ण भूतों में आत्मारूप से छिपे रहनेवाले, लीलापूर्वक विश्व की रचना करनेवाले, तीनों लोकों के भरण-पोषण करनेवाले, विश्वरूप, सत्-असत् से परे, दरिद्रता तथा रोग दूर कर अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाले, ब्रह्मादि देवताओं को नियुक्त करनेवाले, संपूर्ण देवों को हवि प्रदान करनेवाले, जिनसे बढ़कर न कोई उत्तम, न ही सूक्ष्म और न ही महान् वस्तु है, जिनकी आज्ञा से यह विचित्र, अचिन्त्य और नाना प्रकार का महान् विश्व एक ही कार्य में संलग्न हो निरन्तर परिचालित रहता है, जिनमें ऐश्वर्य, सबका आधिपत्य, कर्तृत्व, दातृत्व, महत्त्व, प्रीति, यश और सौख्य-ये अनादि धर्म हैं, जो सदा शरण लेने योग्य, सबके पूजनीय, शरणागत के प्रिय, नित्य कल्याणमय तथा सर्वस्वरूप हैं-ऐसा कहा है(ब्रह्मपुराण 130/23-31)। उपरोक्त स्तुति के एकाध श्लोक देखिये।

काष्ठेषु वह्निः कुसुमेषु गन्धो, बीजेषु वृक्षादि दृषत्सु हेम।
भूतेषु सर्वेषु तथास्ति यो वै, तं सोमनाथं शरणं व्रजामि।।
येन त्रयीधर्ममवेक्ष्य पूर्वं, ब्रह्मादयस्तत्र समीहिताश्च।
एवं द्विधा येन कृतं शरीरं, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामि।। (ब्रह्मपु. 130/23, 26)

भावार्थ है-जो काष्ठों में अग्नि, फूलों में सुगन्ध, बीजों में वृक्ष आदि, पत्थरों में सुवर्ण तथा

सम्पूर्ण भूतों में आत्मारूप से छिपे रहते हैं, उन भगवान् सोमनाथ की मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने पहले तीनों वेदों में वर्णित धर्म का साक्षात्कार करके उसमें ब्रह्मादि देवताओं को नियुक्त किया और इस प्रकार जिन्होंने दो शरीर धारण किये, उन भगवान् सोमनाथ की मैं शरण लेता हूँ।

व्यासतीर्थ के प्रसंग में ब्रह्माजी नारदजी से कहते हैं कि सर्वस्वरूप शिव, जो व्यापक तथा सम्पूर्ण भावपदार्थों का रूप धारण करनेवाले हैं, समस्त प्राणियों पर कृपा करने के लिये व्यास तीर्थ में निवास करते हैं। (संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक पृ. 458 तथा ब्र. पु. 158/38)

ऊपर के उद्धरणों में भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की झलक मिलती है। निर्गुण-रूप में भगवान् शिव परात्पर ब्रह्म या दार्शनिकों के ब्रह्म हैं। सगुणरूप में वे त्रिनेत्रधारी, पंचानन, दस भुजावाले, सर्पों के आभूषण धारण करनेवाले, चन्द्रमा एवं गंगा को शिर पर धारण करनेवाले, गज या व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले, त्रिशूल, डमरू, पिनाक आदि को धारण करनेवाले, परम दयालु, कैलासवासी, जगत् के स्रष्टा, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता हैं। वे ही भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। ऊपर दिये गये उद्धरण ब्रह्माजी, देवगण, दक्ष प्रजापति, इन्द्र, भगवान् राम, देवगुरु बृहस्पति, ऋषि श्रेष्ठ गौतम एवं आपस्तंब, कश्यप, इला एवं पुरुरवा जैसे लोगों की स्तुतियों से लिये गये हैं। इन सब महानुभावों की दृष्टि में भगवान् शिव के तत्त्व का जैसा उद्गार इनकी स्तुतियों में प्रकट किया गया है उसका ही सार ऊपर दिया गया है। इन लोगों के अनुसार भगवान् शिव ही परमतत्त्व हैं जिनसे समस्त चराचर जगत् का विकास हुआ है तथा अन्त में उन्हीं में लीन हो जायगा।

भगवान् शिव की उपासना

भगवान् शिव को अर्थ, धर्म, काम, स्वर्ग, मोक्ष, भोग आदि प्रदान करनेवाला कहा गया है। निम्नलिखित संदर्भों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

'धर्मकामार्थमोक्षाय ....' अर्थात् जो (भगवान् शिव) धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप हैं (40/35), **'मूर्खोऽपि शंभो तव पादभक्त्या, समाप्नुयान्मुक्तिमयीं तनुं ते'** अर्थात् शिव के चरणों में भक्ति रखने से मूर्ख मनुष्य भी मोक्षमयस्वरूप को प्राप्त कर लेता है (122/78), **'नमामि दारिद्र्य विदारणं तं, नमामि रोगापहरं'** अर्थात् दरिद्रता को नष्ट करनेवाले तथा रोगों को दूर करनेवाले (शंकर) को नमस्कार (123/196), **'नमामि दातारमभीप्सितानां'**, **'नमामि देवं भवदुःखशोकविनाशनं'** अर्थात् इच्छित मनोरथ प्रदान करनेवाले तथा संसार के दुःख एवं शोक को नष्ट करनेवाले (123/199 तथा 204) और **'सांसरतापत्रयदावदग्धाः, शरीरिणो यौ परिचिन्तयन्तः। सद्यः परां निर्वृतिमाप्नुवन्ति ....'** अर्थात् संसार के त्रिविध तापरूपी दावाग्नि से दग्ध व्यक्ति जिस शिव-पार्वती का ध्यान कर तत्काल उससे मुक्त हो जाते हैं..........(108/105)।

अगस्त्यजी आपस्तम्ब को एक स्थल पर स्पष्ट कह रहे हैं कि यद्यपि तीनों (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) देवों में परस्पर भेद नहीं है तो भी आनंददाता शिव से ही सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

.... अतः तुम भगवान् शिव की साधना करो।

यद्यप्येषां न भेदोऽस्ति देवानां तु परस्परम्।
तथाऽपि सर्वसिद्धिः स्याच्छिवादेव सुखात्मनः।।
...।
तमेव साधयं हरं भक्त्या परमया मुने।। (ब्रह्मपु. 130/17-18)

ब्रह्माजी सिद्धतीर्थ के प्रसंग में कहते हैं कि इस संसार में श्रीहीन, विपदग्रस्त तथा अनेक क्लेशों को भोगनेवाले मनुष्यों के एकमात्र शिव ही शरण हैं, दूसरा कोई नहीं।

निःश्रीकाणां विपन्नानां नानाक्लेशजुषां नृणाम्।
शरणं शिव एवात्र संसारेऽन्यो न कश्चन।। (ब्रह्मपु. 143/5)

उनकी उपासना से अनेक देवता, असुर, मनुष्य आदि लोगों ने अपना-अपना अभीष्ट प्राप्त किया है। दुःख के समुद्र में डूबनेवाले अनाथ मनुष्यों के लिये भगवान् शिव शरणदाता हैं। उनकी भक्ति से ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो सिद्ध न हो सके (ब्र. पु. 129/50)।

भगीरथ ने गंगा लाने के लिये कपिल मुनि की सलाह के अनुसार कैलास पर जाकर भगवान् शिव की आराधना की, फलस्वरूप गंगा को धरती पर ला सके।

कैलासं तं नरश्रेष्ठ गत्वा स्तुहि महेश्वरम्।
तपः कुरु यथाशक्ति ततश्चेप्सितमाप्स्यसि।। (ब्रह्मपु. 78/54)

महर्षि गौतम के सखा ब्राह्मण श्वेत की शिवपूजा से मृत्यु भी पराजित हो गयी। कथा इस प्रकार है-श्वेत भगवान् शिव की पूजा तथा ध्यान में सदा व्यस्त रहते थे। एक बार शिव के भजन के दौरान ही उनकी आयु पूरी हो गयी। तब यमराज के दूत उन्हें लेने के लिये आये, पर ब्राह्मण देवता के घर में वे प्रवेश न कर सके। जब ब्राह्मण की मृत्यु का समय बीत गया तब चित्रक ने मृत्यु से पूछा कि अभीतक श्वेत क्यों नहीं आया? तुम्हारे दूत भी अभीतक नहीं लौटे। यह सुनकर मृत्यु को बड़ा क्रोध हुआ और वे स्वयं ही श्वेत के घर पधारे। उनके दूत भयभीत हो बाहर ही खड़े थे। मृत्यु ने अपना फंदा हाथ में लेकर स्वयं ही ब्राह्मण के घर में प्रवेश किया। ब्राह्मण भक्तिपूर्वक भगवान् शिव की पूजा में लीन थे, उन्हें न तो मृत्यु के आने का पता था और न यमदूतों का। श्वेत के समीप मृत्यु को खड़ा देख दण्डधारी भैरव ने उन्हें मार गिराया। मृत्यु को मरा देख चित्रगुप्त आदि के साथ सेना लेकर यमराज स्वयं उस स्थान पर पधारे। पर उन सबको शिवगणों ने मृत्यु के घाट पहुँचा दिया।

तदनन्तर देवताओं ने भगवान् शिव को स्तुति द्वारा प्रसन्न किया तथा यमराज आदि को पुनः जीवनदान दिलाया। उस अवसर पर भगवान् शिव कहते हैं कि जो मेरे भक्त हैं उनके स्वामी हम स्वयं ही हैं। मृत्यु का उनके ऊपर कोई अधिकार नहीं है। यमराज को तो कभी उनकी बाततक नहीं चलानी चाहिये। व्याघि-आधि के द्वारा उनका पराभव करना कदापि उचित नहीं है। जो मेरी शरण में आ जाते

हैं, वे तत्काल मुक्त हो जाते हैं।[1] (ब्र. पु. 94/39-41)

मद्भक्तानां वैष्णवानां गौतमीमनुसेवताम्।।
वयं तु स्वामिनो नित्यं न मृत्युः स्वाम्यमर्हति।
वार्ताऽप्येषां न कर्तव्या यमेन तु कदाचन।।
आधिव्याध्यादिभिर्जातु कार्यो नाभिभवः क्वचित्।
ये शिवं शरणं यातास्ते मुक्तास्तत्क्षणादपि।। (ब्र. पु. 94/39-41)

शुक्राचार्य ने भगवान् शिव को प्रसन्न कर मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की जिसका ज्ञान देवताओं को भी नहीं था। उन्हें शिवजी ने लौकिकी, वैदिकी एवं अन्यान्य विद्याएँ भी दी। बृहस्पति के पुत्र कच ने शुक्राचार्य से मृतसंजीवनी विद्या को प्राप्त किया फिर कच से बृहस्पति ने और बृहस्पति से पृथक-पृथक देवताओं ने।(ब्र. पु. 95/26-30)

भगवान् विष्णु ने चक्रतीर्थ पर शिव-आराधना से सुदर्शन चक्र को प्राप्त किया था इसीलिये इसे चक्रतीर्थ कहते हैं।

यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वाचक्रार्थं शंकरं प्रभुः।
पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम्।। (ब्रह्म पु. 109/2)

सिद्धेश्वर नामक लिंग की स्तुति-पूजा बृहस्पति ने इन्द्र के राज्य की स्थिरता के लिये किया था(ब्रह्मपु. अध्याय 122 श्लोक 65-67)। इन्द्र ने अपने शत्रु महाशनि से भी शिवोपासना द्वारा मुक्ति पायी थी(ब्र. पु. अध्याय 129)। महर्षि गौतम ने शिवोपासना से गौतमी गंगा(गोदावरी) को प्राप्त किया।[2] सिद्धेश्वर लिंग के प्रभाव से रावण अत्यन्त प्रबलता को प्राप्त किया(ब्र. पु. अध्याय 157/21 तथा अध्याय 143)। बुध की पत्नी इला को पुरुषत्व की प्राप्ति भी शिव-आराधना से हुई।[3] देवताओं की प्रार्थना पर शिव ने असुरों का संहार किया तथा कालकूट विष का पान किया था(ब्र. पु. अध्याय 112)। भगवान् राम ने शिव की स्तुति कर अपने कार्यों को सिद्ध किया(ब्र. पु अध्याय 123/193-211)। इस प्रकार अनेक लोगों को शिव-उपासना से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति हुई है।

भगवान् शिव की लिंगरूप में पूजा को ही इस पुराण में महत्त्व दिया गया है। इस पुराण में गोदावरी तटवर्ती अनेक शैवतीर्थों का भी वर्णन विस्तार के साथ है। इन तीर्थों पर ऋषि-मुनि, देव, मनुष्य आदि ने शिवलिंग स्थापित कर उपासना की है। इन तीर्थों में कुछ की चर्चा नीचे की जा रही है।

एकाम्रकक्षेत्र(वर्त्तमान भुवनेश्वर के आस-पास का क्षेत्र) सब पापों को हरनेवाला पवित्र एवं परम दुर्लभ है। एकाम्रक नाम से विख्यात क्षेत्र वाराणसी के समान कोटि शिवलिंगों से युक्त एवं शुभ

---

[1] संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक पृ. 403

[2] संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक पृ. 385-388 या ब्र. पु. अध्याय 75 देखें

[3] संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक पृ. 413 या ब्र. पु. अध्याय 108 देखें

है। उसमें आठ तीर्थ हैं।

लिङ्गकोटिसमायुक्तं वाराणसीसमं शुभम्।
एकाम्रकेति विख्यातं तीर्थाष्टकसमन्वितम्।। (ब्रह्मपु. 41/11)

उस क्षेत्र में भगवान् शंकर सब लोकों का हित करने के लिये निवास करते हैं।

आस्ते तत्र स्वयं देवः कृत्तिवासा वृषध्वजः।।
.... (ब्रह्मपु. 41/50)

भोग एवं मोक्ष के दाता शिव ने लोककल्याण के लिये इस पृथ्वी पर जितने तीर्थ, नदियाँ, सरोवर, कूप, सागर आदि हैं उन सबसे पृथक-पृथक जल की बूँदे संगृहीत करके उस क्षेत्र में बिन्दुसर नामक तीर्थ स्थापित किया। अगहन के कृष्णपक्ष की अष्टमी को जो वहाँ की यात्रा करता है तथा जो जितेन्द्रिय भाव से विषुवयोग में श्रद्धा के साथ विधिपूर्वक बिन्दुसरोवर में स्नान करके तिल और जल से नाम-गोत्र के उच्चारणपूर्वक देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों एवं पितरों का तर्पण करता है, वह अश्वमेध-यज्ञ का फल पाता है। अन्य शुभ तिथियों में जो दान आदि करते हैं वे अन्य तीर्थो से सौ-गुना फल पाते हैं।(ब्र. पु. 41/51-59)

एकाम्रक्षेत्रस्थ बिन्दुसर में स्नान के पश्चात् मौन एवं जितेन्द्रिय भाव से भगवान् शिव के मन्दिर में प्रवेश करके उनकी पूजा करें तथा तीन बार प्रदक्षिणा करें। घी, दूध आदि के द्वारा स्नान कराकर सुगन्धित चंदन एवं केसर लगायें। तदनन्तर नाना प्रकार के फूलों तथा बिल्वपत्र, आक और कमल आदि के द्वारा वैदिक एवं तान्त्रिक मन्त्रों से तथा नाममय मूलमंत्र से गन्ध, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, उपहार, स्तुति, दण्डवत्-प्रणाम, मनोहर गीत-वाद्य, नृत्य, जप, नमस्कार, जय शब्द तथा प्रदक्षिणा समर्पण करते हुए महादेवजी का पूजन करें। इस प्रकार पूजन करनेवाला सब पापों से मुक्त हो शिवलोक में जाता है।(ब्र. पु. 41/60-69)

जो उत्तम बुद्धिवाले पुरुष वहाँ हर समय महादेवजी का दर्शन करते हैं वे भी पापमुक्त हो शिवलोक जाते हैं। भगवान् शिव से चारों दिशाओं में ढाई-ढाई योजनतक का वह क्षेत्र भोग एवं मोक्ष देनेवाला है। उस उत्तम क्षेत्र में भास्करेश्वर नाम से प्रसिद्ध एक शिवलिंग है।

तस्मिन्क्षेत्रवरे लिङ्गं भास्करेश्वरसंज्ञितम् (ब्र. पु. 41/76)

जो लोग वहाँ कुण्ड में स्नान करके भगवान् सूर्य द्वारा पूजित महादेवजी का दर्शन करते हैं, वे सब पापों से मुक्त हो शिवलोक चले जाते हैं। भगवान् शिव का एकाम्रक क्षेत्र वाराणसी के समान शुभ है। जो वहाँ स्नान करता है, वह निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।(ब्र. पु. 41/76-77, 93)

अन्य तीर्थ अवन्तीपुरी में भगवान् शिव महाकाल नाम से प्रसिद्ध होकर रहते हैं। वे समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं। वहाँ एक शिवकुण्ड है, जो सब पापों का नाश करनेवाला है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण करें। फिर शिवालय में जाकर भगवान्

शिव की तीन बार प्रदक्षिणा करें। तत्पश्चात् स्नान, पुष्प, गन्ध, धूप और दीप आदि के द्वारा भक्तिपूर्वक महाकाल की विधिवत् पूजा करें। ऐसा करनेवाला एक हजार अश्वमेध-यज्ञों का फल पाता है। वह सब पापों से मुक्त हो समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाले विमानों द्वारा भगवान् शिव के परम धाम में जाता है।

तत्राऽऽस्ते भगवान्देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः।।
महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः।

……………………………………………………

संपूज्य विधिवद्भक्त्या महाकालं सकृच्छिवम्।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः।। (ब्रह्म पु. 43/65-70)

पुरुषोत्तमक्षेत्र में मार्कण्डेयजी ने भुवनेश्वर लिंग की स्थापना की और उसके उत्तर में एक सुन्दर सरोवर का भी निर्माण कराया जिसे मार्कण्डेयह्रद के नाम से जाना जाता है। मार्कण्डेयह्रद में जाकर मनुष्य उत्तराभिमुख हो तीन बार डुबकी लगाये और निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करे-

संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम्।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते।।
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च।
स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम्।। (ब्र. पु. 57/3-4)

भावार्थ है-"भग के नेत्रों का नाश करनेवाले त्रिपुरशत्रु भगवान् शिव! मैं संसार-सागर में निमग्न, पापग्रस्त एवं अचेतन हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है। समस्त पापों को दूर करनेवाले शान्तस्वरूप शिव को नमस्कार है। देवेश्वर! मैं यहाँ स्नान करता हूँ। मेरा सारा पातक नष्ट हो जाय।"

स्नान के पश्चात् देवताओं और ऋषियों का विधिपूर्वक तर्पण करें। फिर तिल और जल लेकर पितरों की भी तृप्ति करें। उसके बाद आचमन करके शिवमन्दिर में जायँ। उसके भीतर प्रवेश करके तीन बार देवता की परिक्रमा करें। तदनन्तर **'मार्कण्डेयेश्वराय नमः'** इस मूलमन्त्र से अथवा अघोरमन्त्र[1] से शंकरकी पूजा करके उन्हें प्रणाम करें और निम्नांकित मन्त्र पढ़कर उन्हें प्रसन्न करें-

त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण।
त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते।। (ब्र. पु. 57/8)

भावार्थ है-तीन नेत्रोंवाले शंकर! आपको नमस्कार है, चन्द्रमा को भूषणरूप में धारण

---

[1] "ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः।" इस मन्त्र को ही अघोर-मन्त्र कहा जाता है।

करनेवाले! आपको नमस्कार है। विकट नेत्रोंवाले शिवजी! आप मेरी रक्षा कीजिये। महादेव! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार मार्कण्डेयह्रद में स्नान करके भगवान् शंकर का दर्शन करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो शिवलोक में जाता है।[1]

रामेश्वर तीर्थ की महिमा के बारे में कहा गया है कि – समुद्र के तटपर रामेश्वर नाम से विख्यात भगवान् शिव विराजमान हैं, जो समस्त अभिलषित फलों के देनेवाले हैं। जो समुद्र में स्नान करके वहाँ श्रीरामेश्वर का दर्शन करते और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, स्तोत्र, गीत और मनोहर वाद्यों द्वारा उनकी पूजा करते हैं, वे महात्मा पुरुष राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञों का फल पाते और परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

आस्ते तत्र महादेवस्तीरे नदनदीपतेः।।
रामेश्वर इति ख्यातः सर्व्वकामफलप्रदः।

……………………………………………………………

राजसूयफलं सम्यग्वाजिमेधफलं तथा।
प्राप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां तथा।। (ब्रह्मपु. 28/56-59)

पुनः इस पुराण में श्वेततीर्थ तथा मृत्युतीर्थ का वर्णन किया गया है जहाँ स्नान – दान सब पापों का नाश करनेवाला, अन्तःकरण के मल को धो डालनेवाला और भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। श्वेततीर्थ से आगे शुक्रतीर्थ है। इसका दूसरा नाम मृत्यु – संजीवनी तीर्थ भी है। वह आयु और आरोग्य की वृद्धि करनेवाला है। वहाँ किया गया शुभकर्म अक्षय पुण्य देनेवाला है। उपरोक्त तीर्थों के अलावा गोदावरी तटवर्ती अनेक तीर्थों का वर्णन है। उदाहरण के लिये इलातीर्थ, चक्रतीर्थ, पिप्पलतीर्थ, नागतीर्थ, मातृतीर्थ, शेषतीर्थ, रामतीर्थ, लक्ष्मणतीर्थ, पुत्रतीर्थ, इन्द्रेश्वरतीर्थ, आपस्तम्बतीर्थ, किष्किन्धातीर्थ तथा व्यासतीर्थ इत्यादि।

तीर्थ का फल किसे प्राप्त होता है? इस प्रश्न के उत्तर में लोमहर्षणजी मुनियों से कहते हैं – जिसके हाथ, पैर और मन काबू में हों तथा जिसमें विद्या, तप और कीर्ति हो, वह मनुष्य तीर्थ के फल का भागी होता है। पुरुष का शुद्ध मन, शुद्ध वाणी, तथा वश में की हुई इन्द्रियाँ – ये शारीरिक तीर्थ हैं, जो स्वर्ग का मार्ग सूचित करती हैं। भीतर का दूषित चित्त तीर्थस्नान से शुद्ध नहीं होता। जिसका अन्तःकरण दूषित है, जो दम्भ में रुचि रखता है तथा जिसकी इन्द्रियाँ चंचल हैं, उसे तीर्थ, दान, व्रत और आश्रम भी पवित्र नहीं कर सकते। मनुष्य इन्द्रियों को अपने वश में करके जहाँ – जहाँ निवास करता है, वहीं – वहीं कुरूक्षेत्र, पुष्कर और प्रयाग आदि तीर्थ वास करने लगते हैं। अतः तीर्थसेवन के

---

[1] संक्षिप्त मार्कण्डेय – ब्रह्मपुराणांक पृ. 367 या ब्र. पु. 57/9-10 देखें।

पूर्ण फल का भागी होने के लिये इन्द्रियों के संयमपूर्वक तीर्थ का सेवन करना चाहिये।[1] (ब्र. पु. 25/2-6)

इस पुराण में कुछ अच्छे स्तोत्र भी दिये गये हैं जिनके पाठ से कई लौकिक फल प्राप्त होते हैं और अन्त में मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है। भगवान् शिव का विवाह हो जाने पर इन्द्रादि देवगणों ने उनकी स्तुति की। इस स्तुति का श्रवण या पाठ करनेवाला सम्पूर्ण लोकों में जाने की शक्ति प्राप्त करता तथा देवराज इन्द्र की भाँति देवताओं द्वारा पूजित होता है। स्तुति इस प्रकार है-

नमः पर्वत लिङ्गाय ....।
नमः पवनवेगाय विरूपायाजिताय च............।।

..

शिव सौम्यमुखो द्रष्टुं भव सौम्यो हि नः प्रभो।। (ब्रह्मपुराण 37/2-23)

यज्ञविध्वंस के पश्चात् दक्ष-प्रजापति द्वारा शिव की 1008 नामों द्वारा जो स्तुति की गयी है उसके पाठ से अमंगल का नाश हो दीर्घायु प्राप्त होती है। जैसे सम्पूर्ण देवताओं में भगवान् शिव श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सब स्तोत्रों में यह स्तोत्र। यश, स्वर्ग, देवों का ऐश्वर्य, धन, विजय और विद्याभिलाषी को यह स्तोत्र उपयोगी है। रोगी, दुःखी, दीन, भयग्रस्त, राज-काज में नियुक्त भयमुक्त होता है तथा शिवलोक में सुख पाकर गणों का स्वामी बनता है। यक्ष, पिशाच, नाग और विनायक विघ्न नहीं डालते। व्यक्ति सब पापों से मुक्त हो जाता है। मनुष्य चाहे वह वैश्य, स्त्री वा शूद्र कोई भी हो उसे रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। स्तोत्र इस प्रकार है-

नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽन्धकसूदन।
देवेन्द्र त्वं बलश्रेष्ठ देवदानवपूजित।।

...

प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम।
त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मतिः।। (ब्रह्मपुराण 40/2-100)

दण्डकारण्य से पाँच योजन आगे नर्मदा के तटपर रामजी ने भगवान् शिवकी पूजा-स्तुति की थी। इस स्तुति द्वारा भगवान् शिव प्रसन्न हो स्तोता के सारे कार्य सिद्ध कर देते हैं। इस रामतीर्थ पर रामजी द्वारा किया गया स्तोत्र इस प्रकार है-

नमामि शंभुं पुरुषं पुराणं, नमामि सर्वज्ञमपारभावम्।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षयं तं, नमामि शर्वं शिरसा नमामि।।

...

---

[1] मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक पृ. 316 भी देखें।

.... **संपूजितं सोममहं नमामि।।** (ब्र. पु. 123/195-206)

पुत्रतीर्थ के प्रसंग में भगवान् शिव कश्यप-दिति से कह रहे हैं कि जो दिति और गौतमी गंगा(नर्मदा) के संगम में स्नान करके अनादि, अपार, अजर, सच्चिदानंदमय, लिंगस्वरूप, ज्योतिर्मय तथा अनामय महादेव भगवान् सिद्धेश्वर का अनेक उपचारों से भक्तिपूर्वक पूजन करता है, चतुर्दशी और अष्टमी को कश्यपकृत स्तोत्र(ब्र. पु. 124/94-99)[1] द्वारा स्तुति करता है तथा यहाँ नर्मदातट पर ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण देता और भोजन कराता है, उसे अनेक पुत्र प्राप्त होते हैं। वह सम्पूर्ण अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त करके अन्त में शिवधाम को जाता है। जो इस स्तोत्र के द्वारा कहीं भी मेरी छः महीने स्तुति करता है, उसे पुत्र प्राप्त होता है। यदि उसकी स्त्री बन्ध्या हो, तो भी वह निःसन्देह पुत्रवती होती है।(ब्रह्मपुराण अ. 124/133-136)

उपरोक्त सभी स्तोत्रों को यहाँ स्थानाभाव से लिखना संभव नहीं है। इच्छुक पाठक उन्हें ऊपर दिये गये संदर्भों के माध्यम से आसानी से मूल ग्रन्थ में ढूँढ़ सकते हैं।

अन्त में एक बार हम फिर याद दिला दें कि इस पुराण में मुख्यतः शिवलिंग पूजा का ही प्राधान्य है। उपरोक्त जिन तीर्थों का वर्णन किया गया है वहाँ पर शिवलिंग की ही पूजा की चर्चा है। गोदावरी-सागर संगम पर ब्रह्माजी तथा हिमालय ने, पुरुषोत्तमक्षेत्र में मार्कण्डेयजी ने, राम ने रामेश्वर तथा दण्डकारण्य से पाँच योजन दूर नर्मदातटपर तथा वहीं पर लक्ष्मण आदि ने भी शिवलिंग की स्थापना की थी। इसी प्रकार लिंगस्थापन के अन्य अनेकों उदाहरण इस पुराण में पाये जाते हैं ।

त्रिदेवों की एकता तथा भगवान् शिव का माहात्म्य

व्यासतीर्थ के संदर्भ में एक प्रसंग आता है कि अंगिरसों ने अनेक स्थानों में जाकर तपस्या की, किंतु उन्हें कहीं भी सिद्धि नहीं मिली। इस प्रकार भटकते हुए सब अंगिरस अगस्त्यजी के पास गये और उनसे सिद्धि के बारे में पूछा। इसपर अगस्त्यजी ने उन्हें गोदावरी के तट पर किसी पावन आश्रम के भीतर ज्ञानद गुरु की पूजा का उपदेश दिया और कहा कि वे आपसबलोगों की सभी शंकाओं का निवारण करेंगे। तब अंगिरसों ने महर्षि अगस्त्य से पूछा-'ज्ञानद किसको कहते हैं?' ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदित्य, चन्द्रमा, अग्नि और वरुण-इनमें कौन ज्ञानद है? अगस्त्यजी उन्हें ज्ञानद का स्वरूप

---

[1] स्तोत्र इस प्रकार है-

पाहि शंकर देवेश पाहि लोक नमस्कृत। पाहि पावन वागीश पाहि पन्नगभूषण।।
पाहि धर्म वृषारूढ पाहि वेदत्रयेक्षण। पाहि गोधरलक्ष्मीश पाहि शर्व गजाम्बर।।
पाहि त्रिपुरहन्नाथ पाहि सोमार्धभूषण। पाहि यज्ञेश सोमेश पाह्यभीष्टप्रदायक।।
पाहि कारुण्यनिलय पाहि मङ्गलदायक। पाहि प्रभव सर्वस्य पाहि पालक वासव।।
पाहि भास्कर वित्तेश पाहि ब्रह्मनमस्कृत। पाहि विश्वेश सिद्धेश पाहि पूर्ण नमोऽस्तु ते।।
घोरसंसारकान्तारसंचारोद्विग्नचेतसाम्। शरीरिणां कृपासिन्धो त्वमेव शरणं शिव।।

(ब्र. पु. 124/94-99)

बताते हैं। वे कहते हैं- जो जल है, वही अग्नि है। जो अग्नि है, वही सूर्य कहलाता है। जो सूर्य है, वही विष्णु है और जो विष्णु है, वही सूर्य। जो ब्रह्मा हैं, वही रुद्र हैं। जो रुद्र हैं, वही सब कुछ हैं। इस प्रकार जिसको एक की सर्वरूपता का ज्ञान हो, उसी को ज्ञानद कहते हैं। देशिक (उपदेशक), प्रेरक, व्याख्याकार, उपाध्याय और शरीर का जनक आदि बहुत से गुरु हैं; किन्तु उनमें जो ज्ञानदाता गुरु है, वह सबसे बड़ा है। यहाँ उस ज्ञान की बात कही गयी है, जिससे भेद-बुद्धि का नाश हो। एकमात्र अद्वितीय शिव ही सब कुछ हैं। विद्वान् ब्राह्मण उन्हीं का इन्द्र, मित्र और अग्नि आदि अनेक नामों से वर्णन करते हैं। अनेक नाम और अनेक रूपों में जो भगवान् के तत्त्व का वर्णन किया जाता है, वह अज्ञानी जनों का उपकार करने के लिये है। (ब्रह्मपु. अध्याय 158/22-27)

ते तमूचुर्मुनिवरं ज्ञानदः कोऽभिधीयते।
ब्रह्मा विष्णुर्महेशो वा आदित्यो वाऽपि चन्द्रमाः।।
अग्निश्च वरुणः कः स्याज्ज्ञानदो मुनिसत्तम।
अगस्त्यः पुनरप्याह ज्ञानदः श्रूयतामयम्।।
या आपः सोऽग्निरित्युक्तो योऽग्निः सूर्यः स उच्यते।
यश्च सूर्यः स वै विष्णुर्यश्च विष्णुः स भास्करः।।
यश्च ब्रह्मा स वै रुद्रौ यो रुद्रः सर्वमेव तत्।
यस्य सर्वं तु तज्ज्ञानं ज्ञानदः सोऽत्र कीर्त्यते।।
देशिकप्रेरकव्यारव्याकृदुपाध्यायदेहदाः।
गुरवः सन्ति बहवस्तेषां ज्ञानप्रदो महान्।।
तदेव ज्ञानमत्रोक्तं येन भेदो विहन्यते।
एक एवाद्वयः शंभुरिन्द्रमित्राग्निनामभिः।
वदन्ति बहुधा विप्रा भ्रान्तोपकृतिहेतवे।। (ब्र. पु. 158/22-27)

प्रलयकाल में मार्कण्डेयजी को जब बालमुकुंद के दर्शन हुए तब उन्होंने बालरूपधारी भगवान् नारायण से उनकी माया तथा उनके स्वरूप को जानने का अनुरोध किया। तब भगवान् ने अपनी माया तथा स्वरूप का ज्ञान प्रदान करने के बाद मार्कण्डेयजी से वरदान माँगने को कहा। तब मार्कण्डेजी भगवान् से यह कहते हैं कि- "नाथ! अब मैं आपकी कृपा से यह चाहता हूँ कि संपूर्ण लोकों के हित, भिन्न-भिन्न भावनाओं की पूर्ति तथा शैव एवं वैष्णवों के विवाद-निवारण के लिये मैं इस परम उत्तम पवित्र पुरुषोत्तमतीर्थ में भगवान् शिव का बहुत बड़ा मंदिर बनवाऊँ और उसमें शंकरजी की प्रतिष्ठा करूँ। इससे संसार के लोग यह जान लेंगे कि विष्णु और शिव एकरूप ही हैं।" यह सुनकर भगवान् जगन्नाथ ने पुनः मार्कण्डेयजी से कहा- "ब्रह्मन्! तुम मेरी आज्ञा से शीघ्र ही एक मंदिर बनवाओ और उसमें नाना भावों की पूर्ति एवं आराधना के लिये परमकारणभूत भुवनेश्वर लिंग की स्थापना करो।

उनके प्रभाव से तुम्हारा भगवान् शिव के लोक में अक्षय निवास होगा। शिव की स्थापना करने पर मेरी ही स्थापना होती है। हम दोनों में तनिक भी अन्तर नहीं है। हम एक ही तत्त्व दो रूपों में व्यक्त हुए हैं। जो रुद्र हैं, वही विष्णु हैं; जो विष्णु हैं, वही महादेव हैं। वायु और आकाश की भाँति हम दोनों में कोई अन्तर नहीं है। जो अज्ञान से मोहित है, वह इस बात को नहीं जानता कि जो गरुडध्वज हैं, वही वृषभध्वज हैं।" (ब्र. पु. अध्याय 56/63-71)।

शिवे संस्थापिते विप्र मम संस्थापनं भवेत्।
नाऽऽवयोरन्तरं किंचिदेकभावौ द्विधा कृतौ।।
यो रुद्रः स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स महेश्वरः।
उभयोरन्तरं नास्ति पवनाकाशयोरिव।।
मोहितो नाभिजानाति य एव गरुडध्वजः।
वृषध्वजः स एवेति त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम्।। (ब्र. पु. अध्याय 56/69-71)

युद्ध में श्रीकृष्ण जब बाणासुर को मारने के लिये उद्यत होते हैं तब भगवान् शंकर कृष्णजी से कहते हैं कि मैंने बाणासुर को अभय दे रक्खा है अतः आपको मेरी बात असत्य नहीं करनी चाहिये। भगवान् शंकर के ऐसा कहने पर भगवान् कृष्ण शिवजी से कहते हैं- कि आपने जो अभयदान दिया है, वह मैंने भी दिया। आप अपने को मुझसे पृथक न देखें। जो मैं हूँ, वही आप हैं और वही यह देवता, असुर तथा मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् भी है। जिनका चित्त अविद्या से मोहित है, वे ही पुरुष भेददृष्टि रखनेवाले होते हैं।[1]

त्वया यदभयं दत्तं तद्दत्तमभयं मया।
मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शंकर।।
योऽहं स त्वं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्।
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः।। (ब्र. पु. 206/47-48)

जो परम तत्त्व है उसके अनेकों नाम हैं। कोई उन्हें सदाशिव तो कोई उन्हें महाविष्णु तो कोई उन्हें ब्रह्म तो कोई उन्हें महाशक्ति तो कोई उन्हें अव्यक्त कहते हैं। उसी एक तत्त्व से सभी चराचर जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार होता है। इस पुराण के प्रथम अध्याय (श्लोक 22-24) में कहा गया है कि "जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप से जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाले हैं, तथा जो भक्तों को संसार-सागर से तारनेवाले हैं, उन भगवान् को प्रणाम है। जो एक होकर भी अनेक रूप

---

[1] भगवान् शिव एवं कृष्ण का यह व्यवहार एवं वार्तालाप संसार की लीला में लोकोपकार, आदर्श स्थापन एवं लोक-शिक्षा के लिये है। वास्तव में इन दोनों देवों में कोई अन्तर नहीं है। भगवान् के विभिन्न रूपों के व्यवहारों के पीछे छिपे गूढ़ रहस्य एवं प्रयोजनों को समझने के लिये भगवद्कृपा एवं गंभीर चिन्तन, मनन एवं अध्ययन अपेक्षित है।

धारण करते हैं, स्थूल और सूक्ष्म सब जिनके ही स्वरूप हैं, जो व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) रूप तथा मोक्ष के हेतु हैं, उन भगवान् विष्णु को नमस्कार है।" इस प्रार्थना में परम तत्त्व को विष्णु संज्ञा से संबोधित किया गया है और बताया गया है कि वह विष्णु ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवरूप से प्रकट होता है। यहाँ विष्णु शब्द को दो अर्थों में प्रयोग किया गया है। एक अर्थ में विष्णु को परम तत्त्व के रूप में, दूसरे अर्थ में विष्णु को एक देवतारूप में जो जगत् का पालन करते हैं। इस प्रार्थना में तीनों देवताओं की तात्त्विक एकता को प्रकट किया गया है।

आपस्तम्ब तीर्थ के प्रसंग में एक कथा आती है। शिष्योंसहित मुनीश्वर आपस्तम्ब अगस्त्यजी से पूछते हैं- "मुनिवर! तीनों देवताओं में कौन पूज्य है? अनादि और अनन्त कौन है? तथा वेदों में किसका यशोगान किया गया है?" इन प्रश्नों के उत्तर में अगस्त्यजी कहते हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में शब्द प्रमाण बतलाया जाता है। उसमें भी वैदिक शब्द सबसे श्रेष्ठ प्रमाण है। वेद के द्वारा जिनका यशोगान होता है, वे परात्पर पुरुष परमात्मा हैं। जो मृत्यु के अधीन होता है, उसे अपर (क्षर पुरुष) जानना चाहिये और जो अमृत है, उसे पर (अक्षर पुरुष) कहते हैं। अमृत के भी दो स्वरूप हैं- मूर्त ओर अमूर्त। जो अमूर्त (निराकार) है, उसे परब्रह्म जानना चाहिये और मूर्त को अपर ब्रह्म कहते हैं। गुणों की व्यापकता के अनुसार मूर्त के भी तीन भेद हैं- ब्रह्मा, विष्णु और शिव। ये एक होते हुए भी तीन कहलाते हैं। इन तीनों देवताओं का भी वेद्यतत्त्व एक ही है। उसे ही परब्रह्म कहते हैं। गुण और कर्म के भेद से एक की ही अनेक रूपों में अभिव्यक्ति होती है। लोकों का उपकार केरने के लिये एक ही ब्रह्म के तीन रूप हो जाते हैं। जो इस परम तत्त्व को जानता है, वही विद्वान् है, दूसरा नहीं। जो इन तीनों में भेद बतलाता है, उसे लिंगभेदी कहते हैं। उसके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चेति एक एव त्रिधोच्यते।
त्रयाणामपि देवानां वेद्यमेकं परं हि तत्।।
लोकानामुपकारार्थमाकृतित्रितयं भवेत्।।
यस्तत्त्वं वेत्ति परमं स च विद्वान्न चेतरः।
तत्र यो भेदमाचष्टे लिङ्गभेदी स उच्यते।।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति यश्चैषां व्याहरेद्भिदाम्। (ब्र. पु. 130/10-13)

अगस्त्यजी आगे कहते हैं- तीनों देवताओं के रूप एक दूसरे से भिन्न और पृथक्-पृथक् हैं। सम्पूर्ण साकार रूपों में पृथक्-पृथक् वेद प्रमाण हैं। जो निराकार तत्त्व है, वह एक है। वह उन तीनों की अपेक्षा उत्कृष्ट माना गया है। (ब्र. पु. 130/13-14)

इस उत्तर को सुनकर आपस्तम्ब स्पष्टरूप से न समझ सके कि तीनों में से किस देव की पूजा की जाय। तब वे पुनः अगस्त्यजी से बोले- "इससे मैं किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सका। इसमें जो रहस्य की बात हो, उसे विचारकर बतलाइये।"

तब अगस्त्यजी कहते हैं– "यद्यपि इन देवताओं में परस्पर कोई भेद नहीं है, तथापि सुखस्वरूप शिव से ही सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। मुने! पराभक्ति के साथ भगवान् शिव की ही आराधना करो।"

यद्यप्येषां न भेदोऽस्ति देवानां तु परस्परम्।
तथापि सर्वसिद्धिः स्याच्छिवादेव सुखात्मनः।।
प्रपञ्चस्य निमित्तं यत्तज्ज्योतिश्च परं शिवः।
तमेव साधय हरं भक्त्या परमया मुने।। (ब्रह्मपु. 130/17-18)

अगस्त्यजी के कहने का अभिप्राय यह है कि यद्यपि देवों में परस्पर भेद नहीं है और सब एक हैं फिर भी निराकार तत्त्व के शिव-रूप की अर्चना करने से शीघ्र ही आसानी से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। क्योंकि भगवान् शिव करुणा के सागर एवं शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं और दुःखी जनों के एकमात्र शरण-स्थल हैं।

शंकरः सर्वभूतात्मा करुणावरुणालयः।।
सर्वेषां सर्वदाऽऽर्त्तानां शिव एव परा गतिः।। (ब्रह्मपु.109/37; तथा 111/79)

उपरोक्त कुछ उद्धरणों में भगवान् विष्णु एवं शिव की एवं कुछ में तीनों देवों की एकता का स्पष्टरूप से प्रतिपादन किया गया है। तत्त्वतः तीनों देवों में कोई भेद नहीं है फिर भी जगत्प्रक्रिया में तीनों की अलग-अलग भूमिका होती है। एक ही निर्गुण तत्त्व जगत् में अपने को तीन प्रकार के कार्यों के लिये तीन रूप धारण कर लेता है। इन तीनों रूपों में शिवरूप की विशेषता यह है कि उसकी उपासना से शीघ्र एवं आसानी से सिद्धि प्राप्त हो जाती है क्योंकि वे औढरदानी एवं आशुतोष हैं।

उपसंहार

भगवान् शिव को इस पुराण में परब्रह्म परमेश्वर स्वीकार किया गया है। यह स्वीकृति स्वयं ब्रह्माजी, भगवान् राम, इन्द्र सहित समस्त देवगण, दक्ष प्रजापति, महर्षि अगस्त्य, बृहस्पति, आपस्तम्ब एवं भगवान् श्रीकृष्ण इत्यादि जैसे लोगों की है। इन लोगों की स्तुतियाँ एवं पाये जानेवाले अन्य प्रकीर्ण सन्दर्भ इस तथ्य के प्रमाण हैं। भगवान् शिव ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप से जगत्चक्र की व्यवस्था करते हैं। वे भोग एवं मोक्ष के दाता तथा दीन-दुःखियों के शरण-स्थल हैं। वे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं। उनकी लिंगरूप में उपासना श्रेष्ठ बतायी गयी है। नाना प्रकार के शैव-तीर्थों यथा एकाम्रकक्षेत्र, अवन्तीपुरी, भुवनेश्वर, श्वेततीर्थ, शुक्रतीर्थ, इलातीर्थ, चक्रतीर्थ, पिप्पलतीर्थ, नागतीर्थ, मातृतीर्थ, शेषतीर्थ, रामतीर्थ, पुत्रतीर्थ, इन्द्रेश्वरतीर्थ, आपस्तंबतीर्थ, किष्किंधातीर्थ, व्यासतीर्थ आदि का भी वर्णन है। इनमें से अधिकांश तीर्थ नर्मदा के किनारे हैं। इन तीर्थों का संबंध किसी न किसी ऐसे व्यक्ति से है जिसने वहाँ या तो उपासना की है या सिद्धि प्राप्त की है।

उदाहरण के लिये चक्रेश्वर तीर्थ में भगवान् श्रीहरि ने शिवोपासना से सुदर्शन चक्र प्राप्त किया,

शुक्रतीर्थ में शुक्राचार्य ने मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की, इला तीर्थ में इला ने भगवान् शिव की उपासना से पुरुषत्व की प्राप्ति की, रामेश्वर एवं रामतीर्थ में भगवान् राम ने शिव की उपासना कर मनोवांछित फल प्राप्त किया, श्वेततीर्थ में राजा श्वेत ने मृत्यु को जीता, गौतम ने गोदावरी को प्राप्त किया जो गंगा की तरह पवित्र है तथा उसके किनारे-किनारे सर्वत्र तीर्थ हैं। भगवान् शिव की उपासना सभी लोग- ब्रह्मा, विष्णु, रामचन्द्र जैसे भगवानों, इन्द्रादि देवताओं, बृहस्पति एवं शुक्राचार्य जैसे गुरुओं, गौतम एवं अगस्त्य जैसे ऋषियों, भगीरथ जैसे राजाओं, श्वेत जैसे ब्राह्मणों, शेष जैसे नागों, मार्कण्डेय जैसें मुनियों, दक्ष जैसे प्रजापतियों और गरुड़ जैसे पक्षियों आदि ने की है।

इस पुराण में भी अन्य पुराणों की भाँति विष्णु एवं शिवजी अथवा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन हुआ है। एक ही मूलतत्त्व, 'सदाशिव', जो निर्गुण है, अपने को जगत् की लीला के संचालन के लिये तीन रूपों में प्रकट करता है। ये तीनों देव-रूप समान होते हुए भी उपासना की दृष्टि से शिव-रूप ज्यादा उपयुक्त है। क्योंकि भगवान् शिव की उपासना आसानी से शीघ्र सिद्धिप्रद है। इसका कारण यह है कि शिवरूप ज्यादा करुणामय, कल्याणमय एवं भक्तवत्सल है। जरा सी स्तुति या तपस्या से प्रसन्न हो जानेवाला रूप है। इस पुराण में कई उपयोगी स्तोत्र भी हैं जिनमें से दक्षप्रजापति द्वारा किया गया सहस्रनाम स्तोत्र ज्यादा उल्लेखनीय है।

(प्रस्तुत लेख हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 1976 में प्रकाशित 'ब्रह्मपुराणम्' तथा गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त 'मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक' के तीसरे संस्करण पर आधारित है।)

* * *

मद्य का निषेध

अदेयं वाप्यपेयं वा तथैवास्पृश्यमेव वा।
द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः।।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत्।
पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसंभाष्यो भवेद्द्विजः।

(पद्ममहापु. स्वर्गखण्ड 56/43-44)

द्विजातियों के लिये मदिरा किसी को देना, स्वयं उसे पीना, उसका स्पर्श करना तथा उसकी ओर देखना भी मना है-पाप है; उससे सदा दूर ही रहना चाहिये-यही सनातन मर्यादा है। इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके सर्वदा मद्य का त्याग करे। जो द्विज मद्य-पान करता है, वह द्विजोचित कर्मों से भ्रष्ट हो जाता है; उससे बात भी नहीं करनी चाहिये।

पद्ममहापुराण में शिवतत्त्व

यह पुराण परिमाण में स्कन्दपुराण को छोड़कर सबसे बड़ा है। इसमें 55000 श्लोक तथा 5 खण्ड हैं(पद्मपु. सृष्टिखं. 1/54-55)। परन्तु इस पुराण के स्वर्गखण्ड (1/23) के अनुसार इसमें ब्रह्मखण्ड तथा क्रियाखण्ड नामक दो अन्य खण्ड भी सम्मिलित हैं। अर्थात्(सृष्टि, भूमि, स्वर्ग, ब्रह्म, पाताल, उत्तर एवं क्रिया) कुल सात खण्डों से युक्त तथा 55000 श्लोकों वाला यह पुराण है। इसमें भगवान् विष्णु का माहात्म्य विशेषरूप से वर्णित होने के कारण ही यह वैष्णवों को अधिक प्रिय है। अवान्तरकालीन वैष्णव-सम्प्रदाय के ग्रन्थों ने इसका महत्त्व बहुत अधिक माना है। यह वैष्णव पुराणों में प्रमुखता की दृष्टि से दूसरे स्थान पर आता है।

वैष्णवपुराण होने के बावजूद भी इस ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर प्रसंगवश भगवान् शिव की महिमा का गुणगान किया गया है। महिमा का गुणगान करते हुए उन्हें परात्परब्रह्म, मोक्षदाता, सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता एवं हर्त्ता आदि माना गया है।

भगवान् शिव का स्वरूप

भगवान् शिव को दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में निमन्त्रण नहीं दिया था, इस कारण से सती अपने पिता की निंदा करती हुई कहती हैं कि-भगवान् शङ्कर ही सम्पूर्ण जगत् के स्वामी एवं सर्वश्रेष्ठ हैं। समस्त देवताओं को जो उत्तमोत्तम स्थान प्राप्त हुए हैं, वे सब महादेवजी के द्वारा ही दिये हुए हैं। भगवान् शिव में जितने गुण हैं उनका वर्णन करने में ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं। वे ही सबके धाता(धारण करनेवाले) एवं विधाता(नियामक) हैं। वे ही दिशाओं के पालक हैं। भगवान् रुद्र के प्रसाद से ही इन्द्र को स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त हुआ है। वे सर्वव्यापक और कल्याणरूप हैं।

तदयंजगतामीशः सर्वेषामुत्तमोत्तमः।
स्थानान्येतानि सर्वेषां दत्तान्येतेनधीमता।।
ये गुणास्तस्यदेवस्यवक्तुं जिह्वापिवेधसः।
नशक्ता रव्यापनेतस्यदेवस्य परमेष्ठिनः।।
एषधाताविधाता च एष पालयितादिशः।।
प्रसादेनचरुद्रस्यप्राप्तस्वर्गः पुरंदरः।
यदिरुद्रेस्तिदेवत्वंयदिसर्वगतः शिवः।। (प. पु. सृ. खं. 5/56-57, 59-60)

यज्ञ-विध्वंस के पश्चात् दक्ष भगवान् शिव के प्रति कहते हैं कि आप देवताओं के प्रभु और ईश्वर हैं। इस जगत् के अधीश्वर भी आप ही हैं।(पद्मपु. सृ. ख. 5/69-70)

पुष्कर में भगवान् राम ने लक्ष्मण एवं सीता सहित अजगंध महादेव का दर्शन किया। वहाँपर उन्होंने भगवान् शिव की स्तुति[1] करते हुए उन्हें जगत् का कारण, सुख-दुख-दाता, सृष्टि का संहार

---

[1] जो स्तुति राम ने की थी उसकी जानकारी के लिये इसी पुस्तक में अन्यत्र देखें।

कर्त्ता, ब्रह्मा, रुद्र तथा मरुद्गणों को वर देनेवाले कहा है।

कृत्स्नस्ययोऽस्यजगतः सचराचरस्य
कर्ताकृतस्यच पुनः सुखदुःखदश्च।
संहारहेतुरपियः पुनरन्तकाले–
तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि।। (पद्मपु. सृष्टिखण्ड अध्याय 33/152)

अर्थात्–जो चराचर प्राणियों सहित इस सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करनेवाले हैं, उत्पन्न हुए जगत् के सुख–दुःख में एकमात्र कारण हैं तथा अन्तकाल में जो पुनः इस विश्व के संहार में भी कारण बनते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशंकर की मैं शरण लेता हूँ।

रामजी ने रामेश्वर में भगवान् शंकर की स्थापना कर जो स्तुति की है उसमें भगवान् शिव को सबके ईश्वर, अचिन्त्यस्वरूपवाले, विश्वात्मा, सृष्टि करनेवाले, सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित तथा भक्तों पर सदा दया करनेवाले कहा है।

नमस्तेदेवदेवेशभक्तानामभयंकर.......महादेवायभीमायत्र्यम्बकाय
दिशाम्पते। ईशानायभगघ्नायनमो ....।।
नमोनमोस्तुदिव्यायप्रपन्नार्तिहरायच।
..।।(पद्मपु. सृष्टिखण्ड 38/137–145)

नारदजी हिमाचल से महादेवजी की विशेषताओं को बताते हुए कहते हैं कि वे अजन्मा हैं, भूत, भविष्य और वर्तमान जगत् की उत्पत्ति के कारण हैं। वे सबको शरण देनेवाले, सबके शासक, सनातन, कल्याणकारी और परमेश्वर हैं। यह ब्रह्माण्ड उन्हीं के संकल्प से उत्पन्न हुआ है। वे अचल एवं स्थिर हैं। वे बुढ़ापे तथा आधि–व्याधि से रहित हैं।(पद्मपु. सृष्टिखं. अध्याय 43/173, 178)

सनजातोमहादेवोभूतभव्यभवोद्भवः।
शरण्यः शाश्वतः शास्ताशंकरः परमेश्वरः।।
..
महादेवोचलः स्थाणुर्नजातो जनकोजरः।।

काम–दहन के उपरान्त रति भगवान् शंकर की स्तुति में उन्हें जगत्स्वरूप, कल्याणमय, सबको शरण देनेवाले, प्राकृत गुणों(रज, तम एवं सत्) से रहित, कर्मों को उत्पन्न करनेवाले, असीम लीलावाले, कालातीत तथा सृष्टिकर्त्ता आदि कहा है।(वही सृष्टिखं. अध्याय 43/252–261)

पार्वती सप्तऋषियों से शिव–महिमा का बखान करते हुए उन्हें अजन्मा, ईश्वर, अव्यक्त, ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा भी अगम्य कहा है। यह सारा जगत् उन्हीं से उत्पन्न होता है तथा उनका ऐश्वर्य आदि–अन्त से रहित है।(वही सृ. खं. अध्याय 43/336, 337 आदि)

अजमीशानमव्यक्तममेयमहिमोदम्।

……………………………………………
विदुस्तंनहरिब्रह्ममुखा अपिसुरेश्वराः।।
……………………………………………

शङ्कुकर्ण मुनि ने कपर्दीश्वर भगवान् शिव की जो स्तुति की है उसमें उनका स्वरूप बहुत ही स्पष्टरूप से सामने आ जाता है। वे कहते हैं–

'भगवन्! आप जटा–जूट धारण करने के कारण कपर्दी कहलाते हैं; आप परात्पर, सबके रक्षक, एक–अद्बितीय, पुराण–पुरुष, योगेश्वर, ईश्वर, आदित्य और अग्निरूप तथा कपिलवर्ण के वृषभ नन्दीश्वर पर आरूढ़ हैं; मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप सबके हृदय में स्थित सारभूत ब्रह्म हैं, हिरण्यमय पुरुष हैं, योगी हैं तथा सबके आदि और अन्त हैं। आप 'रु'–दुःख को दूर करनेवाले हैं, अतः आपको रुद्र कहते हैं; आप आकाश में व्यापकरूप से स्थित, महामुनि, ब्रह्मस्वरूप एवं परम पवित्र हैं; मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप सहस्त्रों चरण, नेत्र तथा मस्तकों से युक्त हैं, आपके सहस्त्रों रूप हैं, आप अंधकार से परे और वेदों की भी पहुँच से बाहर हैं, कल्याणोत्पादक होने से आपको 'शम्भू' कहते हैं, आप हिरण्यगर्भ आदि देवताओं के स्वामी तथा तीन नेत्रों से सुशोभित हैं; मैं आपको प्रणाम करता हूँ। जिनमें इस जगत् की उत्पत्ति और लय होते हैं, जिन शिवस्वरूप परमात्मा ने इस समस्त दृश्य–प्रपञ्च को व्याप्त कर रखा है तथा जो वेदों की सीमा से परे हैं, उन भगवान् शङ्कर को प्रणाम करके मैं सदा के लिये उनकी शरण में आ पड़ा हूँ। जो लिङ्गरहित (किसी की पहचान में न आनेवाले), आलोकशून्य(स्वयंप्रकाश), स्वयंप्रभु, चेतना के स्वामी, एकरूप तथा ब्रह्माजी से भी उत्कृष्ट परमेश्वर हैं; जिनके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं तथा जो वेद से भी परे हैं, उन्हीं भगवान् कपर्दीश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ। ……………जहाँ नाम आदि विशेषणों की कल्पना नहीं है, जिनका स्वरूप इन चर्म–चक्षुओं का विषय नहीं होता तथा जो स्वयम्भू–कारणहीन तथा वेद से परे हैं, उन्हीं आप भगवान् शिव की मैं शरण में हूँ ……………जो देह से रहित, ब्रह्म(व्यापक), विज्ञानमय, भेदशून्य, और एक–अद्बितीय है; तथापि वेदवाद में आसक्त मनुष्य जिसमें अनेकता देखते हैं, उस आपके वेदातीत स्वरूप को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। जिससे प्रकृति की उत्पत्ति हुई है, स्वयं पुराण–पुरुष आप जिसे तेज के रूप में धारण करते हैं, जिसे देवगण सदा नमस्कार करते हैं तथा जो आपकी ज्योति में सन्निहित है, उस आपके स्वरूपभूत बृहत् काल को मैं नमस्कार करता हूँ।'

कपर्दिनंत्वांपरतःपरस्ताद्गोप्तारमेकंपुरुषंपुराणम्।
व्रजामियोगेश्वरमीप्सितारमादित्यमग्निंकपिलाधिरूढम्।।
त्वांब्रह्मसारंहृदिसंनिविष्टंहिरण्मयंयोगिनमादिमन्तम्।
व्रजामिरुद्रंशरणंदिविष्ठंमहामुनिंब्रह्ममयंपवित्रम्।।
सहस्त्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तंसहस्त्ररूपंतमसः परस्तात्।

तंब्रह्मपारंप्रणमामिशम्भुंहिरण्यगर्भादिपतिं त्रिनेत्रम्।।
यत्रप्रसूतिर्जगतोविनाशोयेनावृतंसर्वमिदंशिवेन।
तंब्रह्मपारंभगवन्तमीशंप्रणम्यनित्यंशरणंप्रपद्ये।।
अलिङ्गमालोकविहीनरूपंस्वयंप्रभुंचित्पतिमेकरूपम्।
तंब्रह्मपारंपरमेश्वरंत्वांनमस्करिष्येनयतोऽन्यदस्ति।।

……………………………………………………

नयत्रनामादिविशेषक्लृप्तिर्नसंदृशेतिष्ठतियत्स्वरूपम्।
तंब्रह्मपारंप्रणतोऽस्मिनित्यंस्वयम्भुवंत्वांशरणंप्रपद्ये।।
यद्वेदवादाभिरताविदेहंसब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम्।
पश्यन्त्यनेकंभवतःस्वरूपंतंब्रह्मपारंप्रणतोऽस्मिनित्यम्।।
यतःप्रधानंपुरुषः पुराणोबिभर्तितेजःप्रणमन्तिदेवाः।
नमामितंज्योतिषिसंनिविष्टंकालंबृहन्तंभवतः स्वरूपम्।।

(पद्मपु. स्वर्गखण्ड 35/35-43)

भगवान् के नाम-कीर्तन के महत्त्व से प्रभावित होकर नारदजी ब्रह्माजी से पूछते हैं कि-सुव्रत! भगवान् के कीर्तन करनेयोग्य कौन-कौन से नाम हैं? उन सबको विशेष रूप से बताइये।

इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्माजी कहते हैं कि बेटा! मैं केवल वेदों का वक्ता हूँ, वेदातीत परमात्मा का ज्ञाता नहीं, अतः देवर्षे! तुम वहाँ जाओ, जहाँ भगवान् विश्वनाथ रहते हैं। मुनिश्रेष्ठ! वे तुमसे सम्पूर्ण तत्त्व का वर्णन करेंगे। महादेवजी अन्तर्यामी, देवताओं के स्वामी और सम्पूर्ण भक्तों के आराध्यदेव हैं। पाँच मुखों से सुशोभित भगवान् उमानाथ सब दुःखों का विनाश करनेवाले हैं। सम्पूर्ण विश्व के ईश्वरं विश्वनाथ सदा भक्तों पर दया करनेवाले हैं। (पद्मपु.उत्तरखण्ड अध्याय 71/42-44)

उपरोक्त उद्धरण में भगवान् शिव को ब्रह्मा से श्रेष्ठ बताया गया है। क्योंकि जो तत्त्व या ज्ञान ब्रह्माजी की समझ से परे है वह शिवजी की पहुँच में है। हनुमान्जी ने एक स्थल पर भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें अमितआत्मा, महान्देव, योगधारण करनेवाले, योगियों के गुरु, योगियों के ज्ञान का विषय, याज्ञिकों के स्वामी, वेद एवं देवों के स्वामी, ध्यानगम्य, पशुपति, अष्टमूर्तिस्वरूप तथा सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि को नेत्ररूप में धारण करनेवाले आदि कहा है (पद्मपु. पाता. ख. 114/279-285)।

महर्षि गौतम के आश्रम में ऋषियों एवं देवताओं ने भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें देवदेव, शुद्ध ज्योतिस्वरूप, अचिन्त्यस्वरूप, देवों के ईश, वेदगुह्य, शुद्धस्वरूप, आदिदेव, सर्पों के यज्ञोपवीत को धारण करनेवाले, देवताओं के आनंद को बढ़ानेवाले, विश्वंभर, अष्टमूर्तिस्वरूप, ज्ञानगम्य एवं शाश्वत आदि कहा है (पद्मपु. पा. ख. 114/371-373)।

मार्कण्डेयजी[1] को मृत्युदेव जब लेने के लिये पहुँचे तब उस समय भगवान् शिव ने अपने चरण प्रहार से उन्हें दूर भगा दिया। उस समय मार्कण्डेयजी भगवान् शिव की स्तुति करते हैं। उस स्तुति में भगवान् शिव को ब्रह्मा एवं विष्णु का उपास्य, स्वर्ग, भोग एवं मोक्ष देनेवाला, सम्पूर्ण पापराशि का नाशक, सब भूतों के स्वामी, अप्रमेय एवं उपमारहित, ब्रह्मा-विष्णुरूप, संसार का प्रलय करनेवाला, कालाग्नि-स्वरूप, काल के नाशक, जगद्गुरु, देवताओं के भी आराध्य, जगत् के स्वामी, देवताओं पर शासन करनेवाला, अनन्त, अविकारी, शान्त, परमानन्द-स्वरूप, नित्य, कैवल्य (मोक्ष) पद की प्राप्ति के कारण, सृष्टि का पालन तथा संहारकर्त्ता बताया गया है। (उत्तरखण्ड-236/75-90, संक्षिप्त पद्मपु., गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 915-916)

संन्यासियों के नियमों की चर्चा करते हुए यह बताया गया है कि-सदा ध्यान में स्थित रहनेवाले पुरुष के सारे पातक नष्ट हो जाते हैं। इसलिये महेश्वर का चिन्तन करते हुए सदा उन्हीं के ध्यान में संलग्न रहना चाहिये। जो परम ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म, सबका आश्रय, अक्षर, अव्यय, अन्तरात्मा तथा परब्रह्म हैं, उन्हीं को भगवान् महेश्वर समझना चाहिये। ये महादेवजी केवल परम शिवरूप हैं। ये ही अक्षर, अद्वैत एवं सनातन परमपद हैं। वे देव स्वप्रकाश-स्वरूप हैं, ज्ञान उनकी संज्ञा है, वे ही आत्मयोगरूप तत्त्व हैं, उनमें सबकी महिमा-प्रतिष्ठा होती है, इसलिये उन्हें महादेव कहा गया है।

ध्याननिष्ठस्यसततंनश्यतेसर्वपातकम्।
तस्मान्महेश्वरंध्यात्वातस्यध्यानपरोभवेत्।।
यद्ब्रह्मणः परंज्योतिः प्रविष्टाक्षरमव्ययम्।
योऽन्तरात्मापरंब्रह्मसविज्ञेयोमहेश्वरः।।
एषदेवोमहादेवः केवलः परमंशिवः।
तदेवाक्षरमद्वैतंतदानित्यंपरंपदम्।।
तस्मिन्महीयतेदेवेस्वधाम्निज्ञानसंज्ञिते।
आत्मयोगात्परे तत्त्वे महादेवस्ततःस्मृतः।।

(प. पु. स्वर्गखण्ड-60/33-36)

आगे बताया गया है कि जो महादेवजी के सिवा दूसरे किसी देवता को नहीं देखता, अपने आत्मस्वरूप उन महादेवजी का ही अनुसरण करता है, वह परमपद को प्राप्त होता है। एकमात्र परब्रह्म ही जानने योग्य अविनाशी तत्त्व हैं, वे ही देवाधिदेव महादेवजी हैं। इस बात को जान लेनेपर मनुष्य कभी बन्धन में नहीं पड़ता। इसलिये संन्यासी अपने मन को वश में करके नियमपूर्वक साधन में लगा रहे तथा शान्तभाव से महादेवजी के शरणागत होकर ज्ञानयोग में तत्पर रहे।

---

[1] मार्कण्डेयजी के अमरत्व एवं स्तोत्र संबंधी विस्तृत जानकारी इसी पुस्तक में अन्यत्र मिलेगी।

एकमेवपरंब्रह्मविज्ञेयंतत्त्वमव्ययम्।
सदेवस्तुमहादेवोनैतद्विज्ञायबध्यते।।
तस्माद्यतेतनियतंयतिः संयतमानसः।
ज्ञानयोगरतःशान्तोमहादेवपरायणः।। (पद्मपु. स्वर्गख. 60/39-40)

भगवान् शिव को अर्द्धनारीश्वर भी कहते हैं। अर्थात् उनके आधे अंग में उमा विराजती हैं। शिव और शक्ति दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं तथा शिव का ज्ञान तथा समस्त सृष्टि की उत्पत्ति, पालन एवं संहार भी उन्हीं शिवा के माध्यम से होता है। (पद्मपु. सृष्टिखं. 62/99-100)

एक बार महर्षि गौतम के आश्रम में अन्य देवों, असुरों तथा मुनियों के साथ भगवान् शिव को संध्या-वंदन, न्यास तथा जपादि करते देख विष्णुजी उनसे कहते हैं कि आपको सभी लोग नमस्कार करते हैं, सभी लोग आपकी पूजा करते हैं तथा सभी लोग आपके निमित्त ही यज्ञ में आहुति डालते हैं। ऐसी स्थिति में आप किसका जप करते हैं? जब सभी लोग आपकी हाथ जोड़कर उपासना करते हैं तो फिर आप किसे हाथ जोड़ते हैं? हे महेश्वर! नमस्कारादि पुण्यकर्मो का फल देनेवाले आप ही हैं तो आप से बढ़कर अन्य कौन है? जो आपके द्वारा भी वन्द्य है तथा आप से बढ़कर शुभ कर्मो का फलदाता है। उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि हमारे लिये न तो अन्य कोई ध्यान का विषय है, न नमस्कार का, न उपासना का और न ही जप का। किन्तु नास्तिक जनों को इन शुभकर्मो में प्रेरित करने के लिये तथा पापाचार में रत लोगों के द्वारा अनुकरण करने के लिये ही मैं संध्या, जप, नमस्कार तथा ध्यानादि क्रियाएँ करता हूँ। अर्थात् लोकोपकार हेतु ही मेरी ये क्रियाएँ हैं।

अथ विष्णुर्महातेजामहेशमिदमब्रवीत्।
सर्वैर्नमस्यतेयस्तुसर्वैरेवसमच्र्यते।।
हूयतेसर्वयज्ञेषुसभवान्किंजपिष्यति।
रचितांजलयः सर्वेत्वामेवैकमुपासते।।
सभवान्देवदेवेशकस्मैवारचितांजलिः।
नमस्कारादिपुण्यानांफलदस्त्वंमहेश्वर।।
तवकः फलदोवंद्यः कोवात्वत्तोधिकोवद।
शंकर उवाच। ध्यायेनकिंचिद्गोविंदननमस्येहकिंचन।
नोपास्येकंचनहरेनजपिष्येहकिंचन।
किंतुनास्तिकजंतूनांप्रवृत्त्यर्थमिदंमया।।
दर्शनीयंहरेतेस्युरन्यथापापकारिणः।
तस्माल्लोकोपकारार्थमिदंसर्वंकृतंमया।।

(प. महापु. पाता. ख. 114/244-249)

उपरोक्त उद्धरण में नास्तिक शब्द आया है। उन्हें प्रेरित करने के लिये शिवजी का उपरोक्त आचरण था। भारतीय दर्शन में नास्तिक शब्द का अर्थ अधार्मिक नहीं है। जो वेदों की प्रामाणिकता पर विश्वास न रखते हों उन्हें नास्तिक कहा जाता है। सामान्य प्रचलन में नास्तिक उसे कहा जाता है जो ईश्वर, आत्मा तथा परलोक आदि में विश्वास न करता हो। भारतीय परम्परा में नास्तिक भी आत्मा, परलोक तथा पुनर्जन्म आदि में विश्वास कर सकता है। यहाँ पर इसी प्रकार के नास्तिक को प्रेरित करने के लिये शिवजी का अभिप्राय प्रतीत होता है।

उपरोक्त उद्धरण से यह फलित होता है कि भगवान् शिव ही सर्वश्रेष्ठ या सर्वोच्च देव हैं जिनकी सभी उपासना करते हैं। वे ही यज्ञादि सभी प्रकार के शुभकर्मों के फलदाता हैं। दूसरी बात यह फलित होती है कि ईश्वरकोटि के पुरुष भी कुछ भी कर्त्तव्य न होनेपर भी शुभकर्मों का संपादन लोकशिक्षा तथा प्रमाण प्रस्तुत करने के लिये करते रहते हैं। महापुरुषों के आदर्श व्यवहार ही सामान्यजनों के लिये प्रमाण होते हैं जिनसे वे प्रेरणा ग्रहण करते रहते हैं। गीता(3/21-23) में भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुन से कुछ उसी प्रकार की बातें कहते हैं जैसा कि शिवजी ने भगवान् विष्णु से कहा था।

शिवोपासना

इस पुराण में भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की चर्चा की गयी है। निर्गुण शिव की प्राप्ति के लिये उनके स्वरूप का चिन्तन करते हुए ध्यान करना चाहिये। अर्थात् ज्ञान एवं ध्यान-योग का आश्रय लेकर निर्गुण शिव का साक्षात्कार हो सकता है। इसके लिये मन को वश में करके नियमपूर्वक ध्यान की साधना में लगे रहना चाहिये। शान्त-भाव से महादेवजी के शरणागत होकर ज्ञान-योग की चेष्टा करनी चाहिये। ज्ञान-योग में भगवान् शिव के तात्त्विक स्वरूप का चिन्तन-ध्यान करते हुए उनके स्वरूप का सतत अनुभव करने का प्रयास करना चाहिये।

भगवान् राम के द्वारा शिवार्चन संबंधी प्रश्न पूछने पर भगवान् शिव कहते हैं कि वही जिह्वा उत्तम है जो शिव का गुणगान करती है, वह चित्त उत्तम है जो शिव को अर्पित है, वही हाथ प्रशंसनीय है जो उनकी पूजा करता है तथा उसी देह का जन्म लेना सफल है जो शिव के नाम का कीर्तन करने से पुलकित होता है।

साजिह्वायाशिवंगायेत्तच्चित्तंयत्तदर्प्पितम्।।
तावेवकेवलौश्लाघ्यौयौतत्पूजाकरौकरौ।
सुजन्मदेहमत्यर्थंतदेवाशेषजन्मसु।।
यदेवोत्पुलकोभासिहरनामानुकीर्तनात्। (पद्ममहापु. पा. ख. 104/28-30)

एक स्थल पर कहा गया है कि जो एक दिन भी भक्तिपूर्वक भगवान् शिव की पूजा कर लेता

है, वह भी शिवलोक को प्राप्त होता है; फिर जो अनेकों बार उनकी अर्चना कर चुका है, उसके लिये तो कहना ही क्या है।

अप्येकदिवसंभक्त्याय: पूजयतिशंकरम्।।
सोपियातिशिवस्थानं किं पुनर्बहुशोर्चयन्। (पद्ममहापु. भूमिख. 69/30-31)

जो मनुष्य अपने घर में भगवान् शिव की सुन्दर प्रतिमा स्थापित करता है, वह एक करोड़ कल्पोंतक देवलोक में निवास करता है।

हरस्यप्रतिमांयश्चकृत्वादेवगृहे नर:।
सुलिंगांवासुरूपांवाकल्पकोटिंवसेद्दिवि।। (पद्ममहापु. सृ. ख. 59/51-52)

इसी प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार शिवलिंग के लिये मन्दिर बनवाकर व्यक्ति शिव-सायुज्य प्राप्त कर लेता है(पद्ममहापु. सृ. ख. 59/49)।

भगवान् शिव के सगुण-साकाररूप की उपासना के अन्तर्गत मूर्तिपूजा, नाम-जप, तीर्थ-सेवन, भस्म एवं रुद्राक्ष-धारण आदि बातें आती हैं। मूर्तिपूजा के अन्तर्गत भगवान् शिव के लिंग या मूर्ति की पूजा की जाती है। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं शिव को पंचानन कहा गया है। अत: पाँच मुखोंवाली मूर्ति का पूजन या उन मुखों में से केवल सौम्य या रौद्र(रूप जैसी आवश्यकता हो) मुखवाले भगवान् शिव की मूर्ति की उपासना की जा सकती है।

मूर्ति की अपेक्षा लिंग[1] की पूजा ज्यादा फलदायी मानी जाती है। यही कारण है कि मूर्ति की अपेक्षा लिंगों की स्थापना-युक्त तीर्थों या मन्दिरों की संख्या ज्यादा है। भगवान् राम ने पुष्कर एवं रामेश्वर में लिंगरूप भगवान् शिव की उपासना की थी। इसी प्रकार मार्कण्डेयजी भी दक्षिण समुद्र के तटपर जाकर अपने ही नाम से एक शिवलिंग स्थापित किया था जिसकी पूजा से उन्हें अमरत्व मिला।(उत्तरख. अ. 237, संक्षिप्त पद्मपु., गीताप्रेस पृ. 914)

कहा गया है कि उन्नति की इच्छा रखनेवाले पुरुषों को स्वयंभू शिवलिंगों की पूजा करनी चाहिये। जो विद्वान् एक बार भी शिवलिंग की परिक्रमा करता है, वह सौ दिव्य वर्षोतक स्वर्गलोक का सुख भोगता है। इसी प्रकार क्रमश: स्वयंभूलिंग को नमस्कार करके मनुष्य विश्ववन्द्य होकर स्वर्गलोक को जाता है, इसलिये प्रतिदिन उन्हें प्रणाम करना चाहिये।

देवानांशंभुलिंगानामर्चांकृत्वाविधानत:।।
अनुक्रमेणस्वर्गादौलोकानांसपतिर्भवेत्।
लोकानांचहितार्थायदेवास्तिष्ठतिसंमुखा:।।

---

[1] शिवलिंग का उल्लेख पद्मपुराण में अनेक स्थलों पर है। जैसे उत्तरखण्ड अ. 236-37(संक्षिप्त पद्मपु. गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित), स्वर्गखण्ड अ. 35 इत्यादि।

सकृत्प्रदक्षिणांकृत्वाशंभुलिंगेषुपंडितः।
दिव्यंवर्षशतंपूर्णंस्वर्गमेतिनरोत्तमः।।
एवमेवक्रमेणैवनमस्कारैः स्वयंभुवः।
लोकवंद्योव्रजेत्स्वर्गंतस्मान्नित्यंसमाचरेत्।। (प. महापु. सृ. ख. 59/84-87)

मूर्तिपूजा-चाहे वह लिंग हो या प्रतिमा-के लिये तीनों समय स्नान, पूजा तथा स्तोत्रपाठ करना चाहिये। भगवान् राम, मार्कण्डेयजी तथा शङ्कुकर्ण मुनि आदि लोगों ने स्तुतियों द्वारा ही भगवान् शिव को प्रसन्न किया है।

(1) रुद्राक्ष की महिमा

रुद्राक्ष की महिमा बताते हुए कहा गया है कि इसे धारण करनेवाला पुरुष सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है। रुद्राक्ष के धारण से मनुष्य स्वर्गसुख एवं मोक्ष को प्राप्त करता है। रुद्राक्ष का फल तीर्थों में महान् तीर्थ के समान है। (प. पु. सृ. ख. 59/112-113, 116)

भगवान् शिव की पूजा में रुद्राक्ष का काफी महत्त्व है। शिव-मन्त्रों का जप रुद्राक्ष की माला के सहारे करना चाहिये। रुद्राक्षधारण करके ही शिवोपासना करनी चाहिये। कहा गया है कि ब्रह्म-ग्रन्थि से युक्त मंगलमयी रुद्राक्ष की माला लेकर जो जप-दान-स्तोत्र, मन्त्र और देवताओं का पूजन तथा दूसरा कोई पुण्य कर्म करता है, वह सब अक्षय हो जाता है तथा उसके पापों का क्षय हो जाता है। चाहे वैदिक, पौराणिक या आगम के मन्त्र हों, वे सब रुद्राक्षमाला से जपने पर इच्छित फल प्रदान करते हैं।

गृहीत्वाचाक्षमालांचब्रह्मग्रन्थियुतां शिवाम्।।
यज्जप्तंचकृतंदानंस्तोत्रंमंत्रंसुरार्चनम्।
सर्वंचाक्षयतामेतिपापंचक्षयमाव्रजेत्।।
यावच्चावैदिकं मंत्रंपौराणंचागमोद्भवम्।
सर्वंरुद्राक्षमालामीप्सितेष्टार्थदायकम्।। (प. पु. सृ. ख. 59/117-118, 127)

माला के लक्षण तथा जप के तरीके पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि जिस रुद्राक्ष में योनि का चिन्ह न हो, जिसमें कीड़ों ने छेद कर दिया हो, जिसका लिङ्गचिन्ह मिट गया हो तथा जिसमें दो बीज एक साथ सटे हुए हों, ऐसे रुद्राक्ष के दाने को माला में नहीं लेना चाहिये। जो माला अपने हाथ से गूँथी हुई और ढीली-ढाली हो, जिसके दाने एक-दूसरे से सटे हुए हों अथवा शूद्र आदि नीच मनुष्यों ने जिसे गूँथा हो-ऐसी माला अशुद्ध होती है। जो सर्प के समान आकारवाली (एक ओर से बड़ी और क्रमशः छोटी), सुमेरु से युक्त तथा सटी हुई ग्रन्थि के कारण शुद्ध है, वही माला उत्तम मानी गयी है। ऐसी ही माला पर जप करना चाहिये। (वही सृ. ख.-59/120-122)

जप की विधि बताते हुए कहा गया है कि उपर्युक्त लक्षणोंवाली शुद्ध रुद्राक्ष की माला

(दाहिने) हाथ में लेकर मध्यमा अङ्गुलि से लगे हुए दानों को क्रमश: अँगूठे से सरकाते हुए जप करना चाहिये। मेरु के पास पहुँचनेपर माला को हाथ से बार-बार घुमा लेना चाहिये-मेरु का उल्लङ्घन करना ठीक नहीं है। वैदिक, पौराणिक तथा आगमोक्त जितने भी मन्त्र हैं, सब रुद्राक्षमालापर जप करने से अभीष्ट फल के उत्पादक और मोक्षदायक होते हैं। आगे रुद्राक्ष की महिमा बताते हुए कहा गया है कि इसके धारण करने से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है, स्वर्ग एवं मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।(वही-सृ. ख. 59/122-127)

इस पुराण में एक से लेकर चौदह मुखोंतक के रुद्राक्षों के देवता, उनके धारण का फल तथा उनके धारण की विधि का भी विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। विस्तृत जानकारी के लिए पाठक पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड के अध्याय 59 (श्लोक 138-210) को देखें।

(2) शिवभक्ति तथा नाम-महिमा

कलियुग में भक्ति की बहुत महिमा गायी गयी है। ज्ञान आदि की साधना न तो सबके लिये सुलभ है और न ही इस युग में उपयुक्त। भक्ति की महिमा बताते हुए कहा गया है कि यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, धारणा और योग शिवभक्ति की हजारवीं कला के भी बराबर नहीं हैं। भक्तियुक्त चाण्डाल ही क्यों न हो, वह देवताओं द्वारा भी पूजित होता है। भक्तिहीन होकर चारों वेदों के पढ़ने से क्या लाभ?

यमनियमयज्ञदानैर्वेदाभ्यासावधारणोद्योगात्।
त्वद्भक्तेः सर्वमिदंनार्हतिकलासहस्रांशेन।। (पद्मपु. स्व. ख. 20/39)
भक्तिहीनैश्चतुर्वेदैः पठितैः किं प्रयोजनम्।।
श्वपचो भक्तियुक्तस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते। (प. पु. उत्तरखण्ड-132/98-99)

नारदजी अम्बरीष को भक्ति की महिमा बताते हुए कहते हैं कि-जो भाव से हीन है, जिसके हृदय में उत्तम भाव एवं भगवान् की भक्ति नहीं है, वह अच्छे देश और काल में जा-जाकर जीवन-भर पवित्र गंगा-जल से नहाता और दान देता रहे तो भी कभी शुद्ध नहीं हो सकता।

पुण्येनगांगेनजलेनकालेदेशेपियः स्नानपरोपिभूप।
आजन्मतोभावहतोपिदातानशुद्धिमेतीतिमतंममैतत्।।
गंगादितीर्थेषुवसंतिजीवादेवालयेपक्षिगणाश्चनित्यम्।
विनाशमायांतिकृतोपवासाभावोज्झितानैवगतिंलभंते।। (प. पु. पाता. ख. 87/30-31)

अन्यत्र शिवभक्ति की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि भगवान् शिव के भक्तों पर मृत्यु, ब्रह्मा, यमराज, यमदूत तथा दूसरे किसी का प्रभुत्व नहीं होता(सिवा भगवान् शिव के)। शिव-भक्तों पर कहीं से भी विपत्ति नहीं आती। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता क्रुद्ध हो जायँ, तो भी वे उन्हें मारने की शक्ति नहीं रखते।(उत्तर ख. अ. -237, संक्षिप्त पद्मपुराण, गीताप्रेस, पृ. 915)

भक्ति के प्रमुख नौ अंगों में नाम-स्मरण या जप की बहुत ही महिमा बखानी गयी है। राजा ययाति को मातलि (इन्द्र के सारथी) शिवनाम की महिमा बताते हुए कह रहे हैं कि जो लोग भगवान् शंकर को नमस्कार करते हैं, उन्हें शिवलोक की प्राप्ति होती है। जो-संपर्क, कौतुक या लोभ से-अर्थात् प्रसंगवश भी शिव का स्मरण या नाम-कीर्तन अथवा उन्हें नमस्कार कर लेता है, उसका विनाश नहीं होता तथा उसे अनुपम सुख की प्राप्ति होती है। फिर जो निरन्तर उनके भजन में ही लगे रहते हैं, उनके विषय में तो कहना ही क्या है।

येकुर्वंतिनमस्कारमीश्वरायक्वचित्क्वचित्।।
संपर्कात्कौतुकाल्लोभात्तद्विमानंलभंतिते।
नामसंकीर्तनाद्वापिप्रसंगेनशिवस्ययः।।
कुर्याद्वापिनमस्कारंनतस्यविलयोभवेत्।
प्रसंगेनापियेकुर्युः शंकरस्मरणंनराः।।
तैर्लभ्यंत्वतुलं सौख्यं किं पुनस्तत्परायणैः।।

(पद्मपु. भूमिख. - 71/14-16, 17-18)

भाव यह है कि भगवान् शिव का नाम किसी भी कारण से और किसी भी प्रकार से-दुःखी होकर, सुखी होकर, मानपूर्वक, अपमानपूर्वक, आलसपूर्वक या सजगतापूर्वक-उच्चारण करने पर व्यक्ति का कल्याण होता है।[1]

नाम-कीर्तन की महिमा को बतलाते हुए कहा गया है कि "नाम-कीर्तन में परिश्रम तो थोड़ा होता है, किन्तु फल भारी-से-भारी प्राप्त होता है-यह देखकर जो लोग इसकी महिमा के विषय में तर्क उपस्थित करते हैं, वे अनेकों बार नरक में पड़ते हैं।" पुनः कहा है- "अहो! संसार के लोग भाग्यदोष ये अत्यन्त वञ्चित हो रहे हैं, क्योंकि वे नामोच्चारणमात्र से मुक्ति देनेवाले भगवान् का भजन नहीं करते।"

अत्रयेविवदन्तेवैआयासलघुदर्शनात्।।
फलानांगौरवाच्चापितेयान्तिनरकंबहु। (पद्मपु. स्वर्गख. 50/26-27)
अहोलोकाअतितरांदैवदोषेणवञ्चिताः।
नामोच्चारणमात्रेणमुक्तिदंनभजन्तिवै।। (पद्मपु. स्वर्गख. 50/32)

एक स्थल पर महादेवजी पार्वती से कह रहे हैं कि जो मेरे और तुम्हारे नाम का व्यतिक्रम-पूर्वक (अर्थात् गौरीशंकर आदि) जप किया करता है, वह जैसे आग रूई की ढेरी को जला डालती है उसी प्रकार अपनी पाप-राशि को भस्म करके उससे मुक्त हो जाता है। 'जय' अथवा 'श्री'-शब्दपूर्वक जो मेरा या तुम्हारा नाम है, उसका जप करने से मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। दिन,

---

[1] शिवनाम की महिमा की विस्तृत जानकारी के लिये इसी पुस्तक में अन्यत्र देखें।

रात और सन्ध्या – सभी समय नाम – स्मरण करना चाहिये। पवित्र हो या अपवित्र, सब समय, निरन्तर भगवन्नाम का स्मरण करने से वह क्षणभर में भव – बन्धन से छुटकारा पा जाता है।

मन्नामचैवत्वन्नामयोजपित्वाव्यतिक्रमात्।
सोपिपापात्प्रमुच्येततूलराशेरिवानलः।।
जयाद्येतत्त्वयावाप्यथ वाश्रीशब्दपूर्वकम्।
तच्चमेमंगलंनामजपन्यायात्प्रमुच्यते।।
अशुचिर्वाशुचिर्वापिसर्वकालेषुसर्वदा।
नामसंस्मरणादेवसंसारान्मुच्यतेक्षणात्।। (पद्मपु. पा. ख. 80/5, 6, 8)

कलियुग में यज्ञ, व्रत, तप और दान – कोई भी कर्म सब अंगों से पूर्ण नहीं उतरता, केवल नाम- स्मरण या कीर्तन ही विघ्न – बाधाओं से रहित है।

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि लौकिक धर्म, मित्र, भाई – बन्धु, हाथ – पैरों का चलाना, देशान्तर में जाना, शरीर से क्लेश उठाना तथा तीर्थ के लिये यत्न करना आदि कोई भी परमपद की प्राप्ति में सहायता नहीं कर सकते; केवल परमात्मा में मन लगाकर उनका नामजप करने से ही उस पद की प्राप्ति होती है।(पातालख. 95, संक्षिप्त पद्मपु., गीताप्रेस, पृ. 601)

वसिष्ठजी राजा दिलीप को तीर्थों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मानस – तीर्थ सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है। इसमें स्नान करने से मनुष्य परमगति को प्राप्त होता है। मानस तीर्थों की सूची में सत्य, क्षमा, सन्तोष, मन्त्र – जप, अहिंसा आदि के साथ – साथ शिवस्मरण को भी रखा गया है। मन की शुद्धि सब तीर्थों से उत्तम तीर्थ है और मन की शुद्धि शिव – स्मरण से प्राप्त होती है।

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थमहिंसा तीर्थमेव च।
आत्मतीर्थं ध्यानतीर्थं पुनस्तीर्थं शिवस्मृतिः।।

...

(उत्तरख. 237/12 – 17 संक्षिप्त पद्मपुराण, गीताप्रेस, पृ. 917)

श्रीराम द्वारा शिव के नाम का माहात्म्य पूछे जाने पर ब्राह्मण रूपधारी शिव कहते हैं कि शिव के एक – एक नामों के माहात्म्य की विस्तार से चर्चा करने में तो मैं असमर्थ हूँ फिर भी संक्षेप में मैं कहता हूँ। इसके बाद उन्होंने रामजी को कथाओं के माध्यम से नाम की महिमा को बताया। एक कथा[1] में कहा गया है कि कोई पापी व्यक्ति मरते समय अपने जीवनभर के अभ्यस्त शब्दों प्रहर(मारो), आहर(पकड़कर ले आओ) आदि शब्दों का उच्चारण किया जिसके फलस्वरूप उसे शिवलोक मिला(ठीक उसी प्रकार से जैसे अजामिल मरते समय अपने पुत्र नारायण का नाम लेकर अनजान में भगवान् का नाम लेकर मुक्त हो गया। 'प्रहर' और 'आहर' शब्दों में 'हर' भगवान् शिव का नाम होने

---

[1] इस तरह की कथा स्कंदमहापुराण(माहेश्वरखण्ड/केदारखण्ड/अध्याय 5/64 – 86) में भी आती है।

से अनजान में उसने भगवान् शिव का नाम लिया फलस्वरूप वह मुक्त हो गया)। उसके मर जानेपर जब उसे लेने मृत्यु आयी तो उसे देखकर शिवजी ने कहा कि इसने मरणकाल में मेरा नाम लिया है। मुझे लक्ष्य करके अथवा और किसी वस्तु के अभिप्राय से जो मेरा नाम एकाध अक्षर जोड़कर अथवा घटाकर भी कहता है, तो उसे मैं सचमुच में अपना लोक प्रदान करता हूँ। इसने मरते समय 'प्रहर' शब्द का उच्चारण किया है। केवल 'हर' शब्द ही परमपद का देनेवाला है। फिर इसने तो 'प्र' शब्द अधिक कहा है। यमराज से मेरा आदेश कह दो कि जो 'शिव' नाम के जपनेवाले हैं, उन्हें तुम नमस्कार किया करो। जो लोग शिव को नमस्कार करते हैं, उन्हें तुम नमस्कार किया करो। जो लोग शिव को नमस्कार करते हैं, उनकी पूजा करते हैं, उनके नाम-गुण का कीर्तन करते हैं, उनकी उपासना करते हैं अथवा दास्यभाव से उनकी भक्ति करते हैं, श्रुति में वर्णित पंचाक्षर मन्त्र **'नमः शिवाय'** का जप करते हैं तथा **'शतरुद्रिय'** का अनुष्ठान करते हैं, उनपर मेरा ही शासन है- इसमें तनिक भी विचार न करना।

मृत्युंसमालोक्यशिवोबभाषेमन्नामएषांमरणेसमास्ते।।
मच्चेतसामन्यधियांचनामहीनाक्षरंवाधिकवर्णयुक्तम्।
ममैवलोकंप्रददामिसत्यंह्यनेननामप्रहरेतिभाषितम्।।
प्रशब्दमात्रंत्वधिकंहरेतिपदप्रदंवैपदमीरयंति।
आरादमूंस्त्वंजपतोनमस्वमदीयवाक्यंचयमंवदस्व।।
नतिंयतिंकीर्तिमुपास्तिमाश्रितादास्यंचकैंकर्य्यमथश्रुतिंवदाः।
पंचाक्षरोक्तिंशतरुद्रियोक्तिंशिवस्यकुर्वंतिनतेविचार्याः।।

(पद्मपु. पा. ख. 111/41-44)

उपरोक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि भगवान् शिव का नाम चाहे जानबूझकर अथवा अनजान में लिया जाय, पूरा या अधूरेरूप में लिया जाय, वह अवश्य ही फलदायी होगा।

(3) लिंगार्चन तथा भस्म माहात्म्य

राम के अश्वमेध यज्ञ के पूरा हो जानेपर विद्वान् वैदिक ब्राह्मण के वेश में भगवान् शिव अयोध्या पहुँचे। उन्हें वैदिक विद्वान् जानकर उनसे लिंगार्चन, उसका माहात्म्य, शिवनाम-महिमा तथा अन्य शिव से संबंधित बातें श्रीराम ने पूछी (प. पु. पा. ख. 104/23-26)। भगवान् शिव उनके उत्तर अनेक कथाओं के माध्यम से समझाते हैं। इस पुराण में उनके उत्तर करीब-करीब छोटे-बड़े 13 अध्यायों में वर्णित हैं।

भगवान् शिव शिवार्चन के सन्दर्भ में राम को बताते हैं कि शिवप्रतिमाओं की पूजा की अपेक्षा लिंग की पूजा ज्यादा लाभकारी है। चल या अचल, किसी भी प्रकार का लिंगार्चन उत्तम होता है। लिंग की पूजा, स्थापना तथा उसको धारण करने के लिये उसका सोने का निर्मित होना सर्वोत्तम है। इसके

अभाव में लकड़ी, मिट्टी आदि किसी भी पदार्थ का निर्मित हो सकता है। ब्राह्मण को इसे मस्तकपर धारण करना चाहिये। मुनियों को कान में धारण करना चाहिये। लिंग का धारण राक्षसों के लिये भी उत्तम है। अधमवृत्तिवालों को भी सदा लिंगधारण किये रहना चाहिये। ऐसा करने से पापी भी यमलोक नहीं जाते। (प. पु. पा. ख. 105 / 106 – 136)

इस पुराण के पातालखण्ड के 114 वें अध्याय (श्लोक 286 – 347) में विस्तार से हनुमान्‌जी ने लिंगार्चन विधि का वर्णन किया है। लिंगार्चन से पहले भस्म लगायें। वहाँ भस्म लगाने की विधि भी बतायी गयी है। लिंगाभिषेक शतरुद्रि के मन्त्रों से करें। शिव – पूजा में पंचाक्षर आदि मन्त्रों का भी प्रयोग किया जाता है। पंचोपचार, षोडषोपचार या 32 उपचारों से शिवलिंग की पूजा करें। अन्त में प्रदक्षिणा करें। तदनन्तर गीत, वाद्य तथा पुराणपाठपूर्वक उत्सव करें। आरती, पुष्पांजलि तथा क्षमायापन से पूजा समाप्त करें। पूजा के इन सभी चरणों तथा सुबह एवं शाम की पूजा की विशद चर्चा इस अध्याय में की गयी है। इस प्रकार हनुमान्‌जी के प्रसंग के द्वारा भगवान् शिव लिंगार्चन संबंधी अन्य कई बातें भगवान् राम को बताते हैं।

यह सब सुनकर राम ब्राह्मणरूपधारी शिव से पूछते हैं कि चित्रगुप्त द्वारा पापों के कारण नरक जाना लिखा होनेपर भी कैसे शिव की पूजा से व्यक्ति के पापों का नाश हो जाता है? भगवान् शिव उत्तर देते हैं कि भगवान् शिव के नाम का स्मरण सैकड़ों जन्मों के अर्जित पापों का नाश कर देता है।

पापंनाशयतेकृत्स्नमपिजन्मशतार्जितम्।।
भर्त्सनात्सर्वपापानांस्मरणाच्चमहेशितुः। (पद्मपु. पा. ख. 105 / 138 – 139)

नाम – स्मरण के अलावा पापों को मिटाने का दूसरा उपाय शिवजी बताते हैं कि उसके लिये भस्म को धारण करना चाहिये। विभिन्न अंगों में यथाविधि भस्मधारण करने से तत् – तत् अंगों द्वारा किए पाप नष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिये ललाट में धारण करने से ललाट में लिखे पाप, मुख में धारण करने पर कान से ऊपर के अंगों द्वारा किए पाप, कंठ में धारण करने से कंठ द्वारा (भोग) किए गये पाप, बाहु में धारण से बाहु से किए पाप तथा छाती में धारण से मानसिक पाप नष्ट हो जाते हैं। (वही पा. ख. 105 / 139 – 143)

भस्म को त्रिपुण्ड्र के रूप में धारण करना चाहिये। त्रिपुण्ड्र धारण का अर्थ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को धारण करना अथवा तीनों प्रकार की अग्नियों को धारण करना है। शुद्ध अभिमन्त्रित भस्म को शिर, दोनों बाहु एवं कोष्ठ आदि 15 स्थानों में धारण करना चाहिये। सारे शरीर में भस्मधारण, भस्म पर शयन, आसन तथा भस्मस्नान से पापों से मुक्ति मिल जाती है।

भस्माशनाभस्मशय्याभस्मोद् धूलितविग्रहाः।।
भस्मस्नानाः सदापापैर्मुच्यंतेनात्रसंशयः। (वही पा. ख. 105 / 146 – 147)

'त्र्यायुषं' आदि मन्त्रों के द्वारा भस्मधारण करके व्यक्ति भूतों आदि के आवेश तथा सर्पादि

के विष से बचाव तथा अन्य प्रकार की सुरक्षा प्राप्त करता है। भस्म-माहात्म्य को बतानेवाली एक कथा के अन्तर्गत देवताओं ने दुर्वासा से शतरुद्रिय मन्त्रों से अभिमन्त्रित भस्म को प्राप्त किया था जिसके प्रभाव से सभी देवता क्षणमात्र में पापरहित हो गये थे। (पद्मपु. पा. ख. 105/176-180)

इस पुराण में भस्मस्नान-माहात्म्य तथा उससे संबंधित कुछ कथाएँ भी दी गयीं हैं। इसमें भस्मनिर्माणविधि तथा भस्मग्रहण एवं धारण की विधि तथा माहात्म्य का भी वर्णन किया गया है। (प. पु. पा. ख. अ. 106-108)

भस्मस्नान के लिये भस्म को सात बार प्रणव से अभिमन्त्रित कर **'ईशान'** मन्त्र से शिरप्रदेश, **'तत्पुरुष'** से मुख, **'अघोर'** से उरूप्रदेश, **'वामदेव'** से गुह्यप्रदेश, **'सद्योजात'** से पैरों तथा प्रणव से बाकी सभी अंगों को भस्म से उद्धूलित करना चाहिये। ईशान एवं तत्पुरुष आदि मन्त्र 'उपनिषदों में शिव तत्त्व........' शीर्षक वाले अध्याय में आ चुके हैं। पाठक वहाँ देख सकते हैं। पैरों से शिरतक भस्म लपेटने के बाद आचमन तथा धुले श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिये। इसके उपरान्त पुनः आचमन करना चाहिये। तदनन्तर भस्म को प्रणव मन्त्र से गीला करते हुए त्रिनेत्र तथा त्रिगुण के प्रतीक त्रिपुण्ड्र को धारण करना चाहिये। ललाट एवं बाहु में **'नमः शिवाय'** कहते हुए, **'अघोराय नमः'** कहते हुए प्रकोष्ठों में, **'भीमाय नमः'** कहते हुए शिर के पिछले हिस्सों में, **'नीलकण्ठाय नमः'** कहते हुए शिर में त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये तथा **'सर्वात्मने नमः'** कहकर हाथ के भस्म को अपने ऊपर छिड़क लेना चाहिये। इसके बाद हाथ धोकर अन्य कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये।(प. पु. पा. ख. 108/57-64)

शिवलिगार्चन की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि ब्रह्मादि भी लिंगार्चन करते हैं। इससे सभी पाप एवं उपद्रवों का शमन होता है तथा भुक्ति एवं मुक्ति प्राप्त होती है। अतः शिव की पूजा करनी चाहिये। पूजा में कभी भी व्यतिक्रम नहीं होना चाहिये, चाहे प्राण भले ही चले जायँ। शिवपूजा के बिना ही जो पापी व्यक्ति भोजन करता है वह पापरूप अन्न को खाता है। जो शिवरूपी मंगल नाम का उच्चारण करता है उसके करोड़ों महापातक शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जो शिव की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करते हैं उन्हें संपूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा का फल प्राप्त हो जाता है। तीन बार प्रदक्षिणा तथा पंचाग(अथवा पाँच बार) प्रणाम कर पुनः प्रदक्षिणा करता है उसके पातक नष्ट हो जाते हैं।

शिवलिंगार्चनंनामब्रह्मादिभिरनुष्ठितम्।
समस्त पापशमनंसर्वोपद्रवनाशनम्।।
भुक्तिमुक्तिप्रदंतस्माच्छिवपूजांसमाचर।
नातिक्रामेद्यदिमुनेशिवलिंगार्चनंशुभम्।।
वरंप्राणपरित्यागोनैवपूजाव्यतिक्रमः।
अपूजयित्वाचेशानंयोहिभुंक्तेनराधमः।।

पापानामन्नरूपाणांतस्यभोजनमुच्यते।
शिवेतिमंगलम्नामयस्यवाचिप्रवर्तते।
भस्मीभवंतितस्याशुमहापातककोटयः।।
शिवंप्रदक्षिणीकृत्ययोनमस्यतिमानवः।
भूमेःप्रदक्षिणंकृत्वायत्तत्पुण्यमवाप्नुयात्।।
प्रदक्षिणत्रयंकृत्वानमस्कारंचपंचधा।
पुनःप्रदक्षिणंकृत्वानत्वामुच्येतपातकैः।। (पद्मपु. पा. ख. 109/72-73, 75-80)

जिन पत्र-पुष्पों से शिव की पूजा की जानी चाहिये उनमें से कुछ के नाम इस पुराण में इस प्रकार गिनाये गये हैं-श्रीफल, शतपत्र, सौगन्धिक कमल, कदंब, जवा कुसुम, पुन्नाग, करवीर, पाटला, तुलसी-दल, अपराजिता, अपामार्ग आदि। बिल्व-पत्र, धतूर, द्रोण, शिरीष, दुर्वांकुर आदि फूलों को चढ़ानें से एक दूसरे के समान फल प्राप्त होता है। इन सबके अलावा अन्य फूलों से भी प्रातःकाल शिव की पूजा करनी चाहिये। कर्णिकार और दूर्वा से भी शिवार्चन हो सकता है। मुकुल, चंपक, जलज, कुशपुष्प, रजत एवं स्वर्णपुष्प आदि का भी पूजा में उपयोग किया जा सकता है। इस पुराण में नाना प्रकार के जल से भी पूजा करने का विधान है। सुवर्णादि के पुष्प बासी नहीं माने जाते। पूजा में मूल, फल एवं शाकादि को धोकर प्रयोग करना चाहिये। गंगाजल बासी नहीं होता। इसी प्रकार सागर, महानदी का जल तथा केदारादि तीर्थों का जल भी बासी नहीं होता। उपरोक्त साधनों से शिव-पूजा करनी चाहिये। (प. पु. पा. ख. 109/86-97)

भगवान् शिव की पूजा में जवा, कुन्द, सिरस, जूही, मालती और केवड़े के फूल प्रयोग नहीं करने चाहिये।

जपाकुंदशिरीषैश्चयूथिकामालतीभवैः।।
केतकीभवपुष्पैश्चनैवार्च्यः शंकरस्तथा। (प. महापु. उ. ख. 92/25-26)

शिव-पूजा में निषिद्ध पुष्पों की सूची में कुछ ऐसे भी पुष्प हैं जो शिव-पूजा में प्रयुक्त होनेवाले पुष्पों की सूची में भी आते हैं। ऐसी स्थिति में क्या निर्णय करें? यहाँ पर निर्णय यह निकाला जा सकता है कि जो पुष्प विहित एवं निषिद्ध दोनों कोटि में आते हैं वे कम से कम कार्तिक मास में न चढ़ाये जायँ क्योंकि निषिद्ध फूलों की सूची कार्तिक मास में की जानेवाली पूजा के प्रसंग में दी गयी है।

नामजप के माहात्म्य को हमने ऊपर देखा है, पर नामजप का फल तभी मिलता है जबकि उसे 10 नामापराधों (प. पु. ब्रह्मख. 25/15-18) से बचकर किया जाय। नामापराधों में सत्पुरुषों की निन्दा, शिव एवं विष्णु के गुणों एवं नामों में भेद-बुद्धि, गुरुनिन्दा, श्रुति एवं शास्त्रों की निन्दा, भगवान् के नाम में अर्थवाद की कल्पना करना, नाम के बलपर अपराध करना, धर्म, व्रत, दान, होम आदि शुभ-कर्मों के समान ही नाम-स्मरण को भी एक शुभकर्म मानना, नाम-विमुख एवं अश्रद्धालु लोगों

के सुनते नाम का उपदेश करना, नाम-माहात्म्य सुनकर भी उससे प्रेम नहीं करना और अहंता, ममता को ही परमपुरुषार्थ मानकर उन्हीं में रत रहना और नाम-परायण नहीं होना-ये शामिल हैं। इन को ही परमपुरुषार्थ मानकर उन्हीं में रत रहना और नाम-परायण नहीं होना-ये शामिल हैं। इन नाम-जप संबंधी दोषों का पद्मपुराण, नारदपुराण, आनन्दरामायण, हरिभक्तिविलास आदि ग्रन्थों में विस्तार से निरूपण हुआ है। यदि प्रमादवश इन दसो में से कोईसा अपराध हो जाय तो उससे शुद्ध होने का उपाय भी पुनः नाम-कीर्तन ही है। भूल के लिए पश्चात्ताप करते हुए नाम-कीर्तन से नामापराध छूट जाता है। पद्मपुराण में ही कहा गया है कि-

नामापराधयुक्तानांनामान्येवहरन्त्यघम्।
अविश्रांतिप्रयुक्तानितान्येवार्थकराणियत्।। (प. पु. ब्रह्मखण्ड 25/23)

(4) तीर्थ प्रकरण

मानसतीर्थ के अतिरिक्त भगवान् शिव के स्थल-तीर्थ भी कई हैं, जहाँ से व्यक्ति को कैवल्य मुक्ति प्राप्त हो सकती है। उन सबमें काशी या वाराणसी प्रमुख है। पार्वती द्वारा यह पूछे जाने पर कि मनुष्य किस प्रकार शीघ्र आपका दर्शन प्राप्त कर सकते हैं, भगवान् शिव निम्नलिखित उत्तर देते हैं- देवि! यह वाराणसी सम्पूर्ण गोपनीय स्थानों में श्रेष्ठ तथा मुझे अत्यन्त प्रिय है। वाराणसी में प्रवेश करते ही हजारों जन्मों के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं। चारों वर्णो, स्त्री, मलेच्छ, चाण्डाल आदि मनुष्य, पाप-योनि में उत्पन्न जीव, कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी आदि जितने जीव हैं, वे सब समयानुसार अविमुक्तक्षेत्र (काशी) में मरने पर मेरे अनुग्रह से परमगति को प्राप्त होते हैं। जो मरणपर्यन्त रहने का नियम लेकर अविमुक्तक्षेत्र में निवास करते हैं, उन्हें अन्त में मैं परमज्ञान एवं परमपद प्रदान करता हूँ। यदि पापी और अधार्मिक मनुष्य भी वाराणसी में चला जाय तो वह अपने समूचे कुल को पवित्र कर देता है। जो मेरे भक्तजन वाराणसीपुरी में निवास करते हैं, वे एक ही जन्म में परम मोक्ष को पा जाते हैं। अविमुक्तक्षेत्र में देहावसान होने पर साक्षात् मैं स्वयं ही जीव को तारक ब्रह्म का उपदेश करता हूँ। वरणा और असी नदियों के बीच में वाराणसीपुरी स्थित है तथा उस पुरी में ही नित्य-विमुक्त तत्त्व की स्थिति है। वाराणसी से उत्तम दूसरा कोई स्थान न हुआ है और न होगा। ....जो महापातकी हैं तथा जो उनसे भी बढ़कर पापाचारी हैं, वे सभी वाराणसीपुरी में जाने से परमगति को प्राप्त होते हैं। इसलिये मुमुक्षु पुरुष को मृत्युपर्यन्त नियमपूर्वक वाराणसी में निवास करना चाहिये। वहाँ मुझसे ज्ञान पाकर वह मुक्त हो जाता हैं। (पद्मपु. स्व. ख. 33/15-54)

यत्रसाक्षान्महादेवोदेहान्तेस्वयमीश्वरः।
व्याचष्टेतारकंब्रह्मतत्रैवह्यविमुक्तये।।
वरणायास्तथाचास्यामध्ये वाराणसीपुरी।
तत्रैवसंस्थितंतत्त्वंनित्यमेवंविमुक्तकम्।।
वाराणस्याः परंस्थानंनभूतंनभविष्यति।
यत्रनारायणोदेवोमहादेवोदिवीश्वरः।।

महापातकिनोदेवियेतेभ्यःपापकृत्तमाः।
वाराणसींसमासाद्यतेयान्तिपरमांगतिम्।।
तस्मान्मुमुक्षुर्नियतोवसेद्वैमरणान्तकम्।
वाराणस्यांमहादेवाज्ज्ञानंलब्ध्वाविमुच्यते।।

(पद्मपु. स्वर्गख. 33/47, 50, 51, 53-54)

भगवान् शिव आगे कहते हैं कि जिसका चित्त पाप से दूषित होगा उसके सामने वाराणसी-निवास में नाना प्रकार के विघ्न उपस्थित होंगे। अत: मन, वाणी और शरीर के द्वारा कभी पाप नहीं करना चाहिये। अर्थात् वाराणसी-निवास के दौरान पापों से बचना चाहिये।

किंतुविघ्नाभविष्यंतिपापोपहतचेतसः।
ततोनैवाचरेत्पापंकायेनमनसा गिरा।। (प. महापु. स्व. ख. 33/55)

काशी की महिमा बताते हुए नारदजी युधिष्ठिर से कहते हैं कि जिस प्रकार ईश्वरों में महादेवजी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार समस्त तीर्थ-स्थानों में काशीपुरी उत्तम है। जो लोग सदा इस पुरी का स्मरण और नामोच्चारण करते हैं, उनका इस जन्म और पूर्वजन्म का भी सारा पातक तत्काल नष्ट हो जाता है। इसीलिये योगी हो या पापी-प्रत्येक मनुष्य को पूर्ण प्रयत्न करके वाराणसीपुरी में निवास करना चाहिये।

यथेश्वराणांगिरिशः स्थानानामेतदुत्तमम्।।
येस्मरंतिसदाकालंवदंतिचपुरीमिमाम्।
तेषांविनश्यतिक्षिप्रमिहामुत्रच पातकम्।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनवाराणस्यांवसेन्नरः।
योगीवाप्यथवायोगीपापीवापुण्यकृत्तमः।।

(पद्मपु. स्वर्गख. अध्याय-33/58, 61, 64)

पद्मपुराण में यह भी कहा गया है कि काशी में मरने के अनन्तर सालोक्य आदि चारों प्रकार की मुक्तियाँ क्रमशः प्राप्त होती हैं।

काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात् प्राप्नोति सत्तमः।
ततः सरूपतां याति ततः सान्निध्यमश्नुते।
ततो ब्रह्मैकतां याति न परावर्तते पुनः।।

(कल्याण, शिवांक, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 413)

इनमें सालोक्य मुक्ति का तात्पर्य शिवलोक में निवास करना, सारूप्य का शिव के समान रूप प्राप्त करना, सानिध्य का शिव के समीप रहना और सायुज्य का अर्थ शिव में मिल जाना है। सालोक्यादि मुक्ति का भी क्षेत्र-भेद से तारतम्य है, जैसे-काशीक्षेत्र में सालोक्य-मुक्ति, वाराणसीक्षेत्र में सारूप्य-मुक्ति, अविमुक्तक्षेत्र में सान्निध्य-मुक्ति और अन्तर्गृहक्षेत्र में सायुज्य-मुक्ति होती है। इसी को पद्मपुराण में बतलाते हुए कहा गया है-

चतुर्धा भिद्यते क्षेत्रे सर्वत्र भगवाञ्छिवः।
व्याचष्टे तारकं वाक्यं ब्रह्मात्मैक्यप्रबोधकम्।।
काश्यां मृतस्तु सालोक्यं साक्षात् प्राप्नोति सत्तमः।
वाराणस्यां मृतो जन्तुः साक्षात्सारूप्यमश्नुते।।
अविमुक्ते विपन्नस्तु, साक्षात्सान्निध्यमाप्नुयात्।
सलोकताञ्च सारूप्यं सान्निध्यं वापि सत्तमः।
कल्पं कल्पमवाप्नोति ततो ब्रह्मात्मको भवेत्।।

(कल्याण, शिवांक पृ. 413 - 414)

काशी के अलावा दूसरा महत्त्वपूर्ण तीर्थ रामेश्वर है। रावणविजय के उपरान्त वापस लौटते समय भगवान् राम ने सेतु को तोड़ने के बाद वेलावन (वर्तमान रामेश्वरक्षेत्र) में पहुँचकर श्रीरामेश्वर के नाम से देवाधिदेव महादेवजी की स्थापना तथा उनका विधिवत् पूजन किया।

वहाँ पर भगवान् शिव रामजी से कह रहे हैं कि जबतक यह संसार, यह पृथ्वी और यह आपका सेतु कायम रहेगा, तबतक मैं भी यहाँ स्थिरतापूर्वक निवास करूँगा। वे श्रीराम से पुनः कहते हैं कि आपके बनाये हुए मेरे इस स्थान पर समुद्र के समीप आकर जो मनुष्य मेरा दर्शन करेंगे, वे यदि महापापी होंगे तो भी उनके सारे पाप नष्ट हो जायँगे। ब्रह्महत्या आदि जो कोई भी घोर पाप हैं, वे मेरे दर्शन-मात्र से नष्ट हो जायँगे - इसमें अन्यथा विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

इह त्वया कृते स्थाने मदीये रघुनन्दन।
आगत्य मानवा राम पश्येयुरिह सागरे।।
महापातकयुक्ता ये तेषां पापं विनङ्क्ष्यति।
ब्रह्मवध्यादि पापानि दुष्टानि यानि कानिचित्।।
दर्शनादेव नश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा।

(सृष्टिख. 35 / 152 - 154, संक्षिप्त पद्मपु., गीताप्रेस पृ. 127)

अन्य महत्त्वपूर्ण तीर्थ मथुरा की चर्चा करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण व्यासजी से कह रहे हैं कि - यद्यपि काशी आदि अनेकों मोक्षदायिनी पुरियाँ विद्यमान हैं, तथापि उन सबमें मथुरापुरी ही धन्य है; क्योंकि यह अपने क्षेत्र में जन्म, उपनयन, मृत्यु और दाह - संस्कार - इन चारों ही कारणों से मनुष्य को मोक्ष प्रदान करती है। जब तप आदि साधनों के द्वारा मनुष्यों के अन्तःकरण शुद्ध एवं शुभसंकल्प से युक्त हो जाते हैं और वे निरन्तर ध्यानरूपी धन का संग्रह करने लगते हैं, तभी उन्हें मथुरा की प्राप्ति होती है। जो मथुरापुरी का निरन्तर चिन्तन करते हैं, वे निर्धन होनेपर भी धन्य हैं; क्योंकि मथुरा में भगवान् भूतेश्वर का निवास है, जो पापियों को भी मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् भूतेश्वर मुझको सदा ही प्रिय हैं क्योंकि; वे मेरी प्रसन्नता के लिये कभी भी मथुरापुरी को नहीं छोड़ते।

जो भगवान् भूतेश्वर को नमस्कार, उनका पूजन अथवा स्मरण नहीं करता, वह मनुष्य दुराचारी है तथा उस पापी को किसी तरह मेरी (कृष्णजी की) भक्ति नहीं प्राप्त होती। (पद्मपु. पातालख. अध्याय 73)

काश्यादयोयद्यपिसंतिपुर्यस्तासांतुमध्येमथुरैवधन्या।
यज्जन्ममौंजीव्रतमृत्युदाहैर्नृणांचतुर्द्धाविदधातिमुक्तिम्।।
यदाविशुद्धास्तपआदिनाजना: शुभाशयाध्यानधनानिरंतरम्।
तदैवपश्यंतिममोत्तमांपुरींनचान्यथाकल्पशतैर्द्विजोत्तमा:।।
अधनाअपितेधन्यामथुरांयेस्मरंतिते।
यत्रभूतेश्वरोदेवोमोक्षद: पापिनामपि।।
ममप्रियतमोनित्यंदेवोभूतेश्वर पर:।
य: कदापिममप्रीत्यैनसंत्यजतितांपुरीम्।।
भूतेश्वरंयोननमेन्नपूजयेन्नवास्मरेद्दुश्चरितोमनुष्य:।
न कथंमयिभक्तिंसलभतेपापपुरुष:। (प. पु. पाता. ख. 73/44, 45, 48-51)

इस प्रकार हम देखते हैं कि मथुरा की महत्ता भी भगवान् शिव के ही कारण है तथा वैष्णवों को भी कृष्णभक्ति की प्राप्ति भगवान् शिव की अर्चना से ही हो सकती है। उपरोक्त तीर्थों के अतिरिक्त भी अनेक शैव तीर्थों जैसे उज्जैन तथा कुरूक्षेत्र आदि का वर्णन हम पद्मपुराण में पाते हैं।

वसिष्ठजी दिलीप से तीर्थसेवन के फल की चर्चा करते हुए कहते हैं कि वास्तव में तीर्थसेवन का फल उसे ही मिलता है जिसके हाथ, पैर और मन अच्छी तरह अपने वश में हों; जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् हो तथा जिसने दान लेना छोड़ दिया हो। जो संतोषी, नियमपरायण, पवित्र, अहंकार-शून्य और उपवास (व्रत) करनेवाला हो; जो अपने आहार और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर चुका हो; जो सब दोषों से मुक्त हो तथा जिसमें क्रोध का अभाव हो। जो सत्यवादी, दृढ़प्रतिज्ञ तथा सम्पूर्ण भूतों के प्रति अपने-जैसा भाव रखनेवाला हो, उसी को तीर्थ का पूरा फल मिलता है। (पद्मपु. स्वर्गख. अध्याय 11/9-12)

इस पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि भगवान् शिव के क्षेत्र में मरे हुए किसी भी स्थावर एवं जंगम को तथा एक दिन भी भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनेवाले को शिवलोक की प्राप्ति होती है। अत: जो अनेकों बार उनकी अर्चना कर चुका है, उसके लिये तो कहना ही क्या है।

रुद्राक्षेत्रेमृतानांचजंगमस्थावरात्मनाम्।
अप्येकदिवसंभक्त्याय:पूजयतिशंकरम्।।
सोपियातिशिवस्थानंकिंपुनर्बहुशोर्चयन्। (पद्मपु. भूमिख. 69/30-31)

भगवान शिव एवं विष्णु

पद्मपुराण के अन्तर्गत भगवान् शिव एवं विष्णु में अन्तर देखने की काफी निन्दा की गयी है।

इनमें अन्तर देखना नामापराध तो है ही, इससे घोर पाप भी लगता है तथा उसे नरक में जाना पड़ता है। इसी प्रकार जो उनमें भेद नहीं देखते उन्हें पुण्य की प्राप्ति होती है।

येऽसमानंप्रपश्यन्तिहरिंवैदेवतान्तरम्।।
तेयान्तिनरकान्घोरान्नतांस्तुगणयेद्धरिः। (पद्मपु. स्वर्गख. अध्याय 50/22-23)

अर्थात्- जो 'हरि' और 'हर' को समान भाव से नहीं देखते, श्रीहरि को दूसरा देवता समझते हैं, वे घोर नरक में पड़ते हैं, उन्हें श्रीहरि अपने भक्तों में नहीं गिनते। वहीं पर यह भी कहा गया है कि-

येमहाविष्णुमव्यक्तंदेवंवापिमहेश्वरम्।।
एकीभावेनपश्यन्तिनतेषांपुनरुद्भवः। (पद्मपु. स्वर्गख. अध्याय 50/20-21)

भाव यह है कि जो इन अव्यक्त विष्णु तथा भगवान् महेश्वर को एक भाव से देखते हैं, उनका पुनः इस संसार में जन्म नहीं होता। पुनः

तस्मादनादिनिधनंविष्णुमात्मानमव्ययम्।।
हरंचैकंप्रपश्यध्वंपूज्यध्वंतथैवहि।

(पद्मपु. स्वर्गख. अध्याय 50/21-22)

अर्थात्- सूतजी कहते हैं- अतः महर्षियों! आप आदि-अन्त से रहित अविनाशी परमात्मा विष्णु तथा शिवजी को एक भाव से देखें तथा एक समझकर ही उनका पूजन करें।

ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव में जो भेद नहीं देखता उसकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि-

शिवेविष्णौनवाभेदोनचब्रह्ममहेशयोः।
तेषांपादरजः पूतंवहाम्यघविनाशनम्।। (पद्मपु. पातालख. अध्याय 10/69)

भावार्थ यह है कि जिनकी दृष्टि में शिवजी एवं विष्णुजी में तथा ब्रह्माजी एवं शिवजी में भेद नहीं है, उनके चरणों की पवित्र धूलि मैं अपने शीश चढ़ाता हूँ, क्योंकि वह समस्त पापों का विनाश करनेवाली है।

अन्यत्र कहा गया है कि विष्णु एवं शिव में तथा शिव और शक्ति में भेद-दृष्टि रखनेवाले को घोर पाप लगता है।(पद्मपु. पातालख. अध्याय 33/38)

अन्यत्र यह कहा गया है कि जो वैष्णव पुरुष शिव की निन्दा करता है, वह विष्णुलोक में नहीं जाता; उसे महान् नरक में गिरना पड़ता है।

वैष्णवः पुरुषोवैश्य शिवनिंदां करोतियः।।
नविंदेद्वैष्णवंलोकंसयातिनरकंमहत्। (पद्मपु. स्व. ख. 31/151-152)

पद्मपुराण में न केवल, विष्णु एवं शिव की अपितु ब्रह्मा के साथ भी उन दोनों की एकता दिखवायी गयी है। अर्थात् त्रिदेवों की एकता का प्रतिपादन हुआ है। उदाहरण के लिये मातलि राजा ययाति से कहते हैं कि श्रीशिव और श्रीविष्णु के लोक एक से ही हैं, उन दोनों में कोई अन्तर नहीं

है; क्योंकि उन दोनों महापरुषों – श्रीशिव एवं विष्णु, का स्वरूप भी एक ही है। श्रीविष्णुरूपधारी शिव और श्रीशिवरूपधारी विष्णु को नमस्कार है। श्रीशिव के हृदय में विष्णु और श्रीविष्णु के हृदय में भगवान् शिव विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता एकरूप ही हैं। इन तीनों स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है, केवल गुणों[1] का भेद बतलाया गया है।

शैवंचवैष्णवंलोकमेकरूपंनरोत्तम।।
द्वयोश्चाप्यन्तरंनास्तिएकरूपंमहात्मनोः।
शिवायविष्णुरूपायविष्णवे शिवरूपिणे।।
शिवस्यहृदयं विष्णुर्विष्णोश्चहृदयं शिवः।
एकमूर्तिस्त्रयोदेवाब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।।
त्रयाणामन्तरंनास्तिगुणभेदाःप्रकीर्तिताः।

(पद्मपु. भूमिख. अध्याय 71/19 – 22)

भगवान् राम वीरमणि (शिव का भक्त), हनुमान् आदि तथा शिवजी से कह रहे हैं कि मेरे हृदय में शिवजी और शिवजी के हृदय में मैं रहता हूँ। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। जो मूर्ख हैं, जिनकी बुद्धि दूषित है, वे ही भेददृष्टि रखते हैं। हम दोनों एकरूप हैं। जो हमलोगों में भेदबुद्धि करते हैं, वे मनुष्य हजार कल्पोंतक कुम्भीपाक में पकाये जाते हैं। महादेवजी! जो सदा आपके भक्त रहे हैं, वे धर्मात्मा पुरुष मेरे भी भक्त हैं, तथा जो मेरे भक्त हैं वे भी बड़ी भक्ति से आपके चरणों में मस्तक झुकाते हैं।

ममास्तिहृदयेशर्वोभवतोहृदयेत्वहम्।
आवयोरन्तरंनास्तिमूढाः पश्यन्तिदुर्धियः।।
येभेदंविदधत्यद्धाआवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषुपच्यन्तेनराःकल्पसहस्रकम्।।
येत्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ताधर्मसंयुताः।
मद्भक्ताअपिभूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः।।

(पातालख. अध्याय 46/20 – 22 संक्षिप्त पद्मपुराण, गीताप्रेस पृ. 498)

किसी प्रसंग में श्रीकृष्ण व्यासजी से कह रहे हैं कि मेरे विषय में लोगों की भिन्न – भिन्न धारणाएँ हैं। कोई मुझे 'प्रकृति' कहते हैं, कोई पुरुष। कोई ईश्वर मानते हैं, कोई धर्म।

---

[1] गुण के अन्तर का अर्थ है उनके साकार विग्रह एवं सृष्टि – प्रक्रिया में उनकी भूमिका में अन्तर। तत्त्वतः एक होते हुए भी लौकिक दृष्टि से उनमें भेद है। आमतौर पर लोग लौकिक भेद से भ्रमित होकर उनके तात्त्विक अभेद को भुला देते हैं। ऐसा करना अपराध बताया गया है। अपने इष्ट को बरकरार रखते हुए अन्य देवों को उन्हीं की शक्ति की इतर अभिव्यक्ति मानी जा सकती है। यह बात जगह – जगह अनेक पुराणों में पायी जाती है।

किन्हीं-किन्हीं के मत में मैं सर्वथा भयरहित मोक्षस्वरूप हूँ। कोई भाव (सत्तास्वरूप) मानते हैं और कोई-कोई कल्याणमय सदाशिव बतलाते हैं। इसी प्रकार दूसरे लोग मुझे वेदान्तप्रतिपादित अद्वितीय सनातन ब्रह्म मानते हैं। किन्तु वास्तव में जो सत्तास्वरूप और निर्विकार है, सत्-चित् और आनन्द ही जिसका विग्रह है तथा वेदों में जिसका रहस्य छिपा हुआ है, वही मेरा पारमार्थिक (तात्त्विक) रूप है।

मामेकेप्रकृतिंप्राहुः पुरुषंचतथेश्वरम्।।
धर्ममेकेधनंचैकेमोक्षमेकेऽकुतोभयम्।
शून्यमेकेभावमेकेशिवमेकेसदाशिवम्।।
अपरेवेदशिरसिस्थितमेकंसनातनम्।
सद्भावंविक्रियाहीनंसच्चिदानंदविग्रहम्।। (प. पु. पातालख. 73/15-17)

उपरोक्त वर्णन ये यही सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण एवं सदाशिव में तात्त्विक एकता है। अन्यत्र श्रीकृष्ण कहते हैं कि सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु तथा शक्ति के उपासक भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। जैसे वर्षा का जल सब ओर से समुद्र में ही जाता है, उसी प्रकार इन पाँचों के उपासक मेरे ही पास आते हैं। मैं एक ही हूँ, तथापि लीला के अनुसार भिन्न-भिन्न नाम धारण करके पाँच रूपों में प्रकट हुआ हूँ। ठीक उसी तरह, जैसे कोई देवदत्त नामक एक ही व्यक्ति पुत्र-पिता आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है।

शैवाःसौराश्चगाणेशावैष्णवाःशक्तिपूजकाः।
मामेवप्राप्नुवन्तीहवर्षाभःसागरंयथा।।
एकोऽहंपञ्चधाजातःक्रीडयन्नामभिःकिल।
देवदत्तोयथाकश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः।। (पद्मपु. उत्तरख. 88/43-44)

यहाँ पर सभी पाँच देवों की तात्त्विक एकता का वर्णन किया गया है। तात्त्विक एकता का अभिप्राय यह है कि भिन्न-भिन्न दीखनेवाले रूप मूलतः एकही तत्त्व की अलग-अलग नाम-रूपात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। उस मूलतत्त्व का एक ही नाम नहीं है। उसके अनेकों नाम हैं-जैसे ब्रह्म, सदाशिव, महाविष्णु आदि-आदि। लोगों को समझने में तब कठिनाई होती है जब मूलतत्त्व या परमतत्त्व तथा उसके विभिन्न सगुण-साकार नाम-रूपात्मक अभिव्यक्तियों को भी एकसमान नामों से पुकारा जाता है। उदाहरण के लिये विष्णु, राम, कृष्ण, शिव आदि नाम मूलतत्त्व के भी हैं तथा उस तत्त्व के साकार नाम-रूपात्मक देव-विग्रहों के भी। हम परमतत्त्व के नाम विष्णु को विष्णुदेव से, शिव नाम को केवल संहारकर्त्ता शिव (रुद्र) से तथा राम नाम को राम नामधारी विष्णु अवतार से जबतक अन्तर नहीं करेंगे तबतक भ्रम बना रहेगा। यहाँ नामों की अनेकार्थकता के कारण भ्रम हो जाता है फलस्वरूप एक ही नामवाला एक दृष्टि से श्रेष्ठ और दूसरी दृष्टि से निम्न हो जाता है।

शिवपुराण की वायवीय संहिता में स्पष्टरूप से कहा गया है कि परमतत्त्वरूप सदाशिव[1] त्रिदेवों से भिन्न हैं। सदाशिव से ही जगत् के कारणरूप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र (शिव) उत्पन्न हुए। ये तीनों सृष्टि, स्थिति तथा लय के कार्य में महेश्वर द्वारा नियुक्त हैं। इन त्रिदेवों में परस्पर कोई तात्त्विक भेद नहीं है, तीनों एक ही हैं तथा तीनों का कार्य मिलकर होता है। जो इन तीनों में भेद समझता है, एक को बड़ा और दूसरे को छोटा कहता है, वह शिवपुराण के अनुसार राक्षस अथवा पिशाच होता है।

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः।।
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते।।
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशय।।

(शिवपुराण, कल्याण शिवांक, पृ. 66)

भावार्थ यह है कि ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरे से उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरे को धारण करते हैं, एक दूसरे के द्वारा वृद्धिगत होते हैं और एक दूसरे के अनुकुल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्मा की प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णु की और कहीं महादेव की। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरे की अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा गया है मानो वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है, वे अगले जन्म में राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

भीष्मजी को पुलस्त्यजी कहते हैं कि एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, पालन और संहार करने के कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम धारण करते हैं।

सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद्ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।।
ससंज्ञांयातिभगवानेकएवजनार्दनः। (पद्मपु. सृष्टिख. 2/116, 114)

पुनः पद्मपु. पातालख. (अध्याय 22/28-29) में भी यही कहा गया है कि ब्रह्मा एवं रुद्र आदि एकही तत्त्व महाविष्णु की अभिव्यक्तियाँ हैं।

भगवान् विष्णु एवं शिव के संबंधों पर प्रकाश डालनेवाले पद्मपुराण के एक दो संदर्भों की चर्चा आवश्यक प्रतीत हो रही है।

तुलसी के महत्त्व को बतलाते हुए महादेवजी कार्तिकेयजी से कहते हैं कि “जैसे भगवान्

---

[1] महाविष्णु सदाशिव के समान ही त्रिदेवान्तर्गत विष्णु से उच्च हैं और वही वैष्णवों के इष्ट हैं। उन्हीं के अवतार श्रीराम और श्रीकृष्ण हुए हैं। यद्यपि त्रिदेवान्तर्गत विष्णु आदि के भी कल्पभेद से राम, कृष्णादि के रूप में अवतार हुए हैं और हो सकते हैं।

श्रीविष्णु को लक्ष्मी और मैं दोनों प्रिय हैं, उसी प्रकार यह तुलसीदेवी भी परमप्रिय हैं। हम तीन के सिवा कोई चौथा ऐसा नहीं जान पड़ता जो भगवान् विष्णु को इतना प्रिय हो।" (पद्म· पु. सृष्टि ख. 60/108) यहाँ पर निहितार्थ यह है कि भगवान् विष्णु को शिवजी अत्यन्त प्रिय हैं।

पद्मपुराण के पातालखण्ड की एक कथा[1] में शिवजी एवं विष्णुजी के अलौकिक प्रेम को उभारा गया है। इस कथा के कुछ अंशों का उल्लेख करना प्रासांगिक होगा। एक बार गौतम ऋषि के आश्रम में भगवान् विष्णु, शिवजी, नारदजी एवं हनुमान्जी किसी सिलसिले में इकट्ठे हो गये थे। भोजनोपरान्त हनुमान्जी का गायन प्रारंभ हुआ। उनके गायन में अपने तन-मन की सुधि खोकर शिवजी धीरे-धीरे एक चरण हनुमान् की अञ्जली में रख दूसरे चरण को उनके कन्धे, मुख, कण्ठ, वक्ष:स्थल, हृदय के मध्यभाग, उदरदेश तथा नाभि-मण्डल से स्पर्श कराते हुए मौज से लेट गये। यह लीला देखकर विष्णुजी कहने लगे- आज हनुमान् के समान सुकृति विश्व में कोई नहीं है। जो चरण देवताओं को भी दुर्लभ हैं तथा वेदों के द्वारा अगम्य हैं, जिन्हें योगीजन चिरकालतक विविध प्रकार के साधन करके, करोड़ों वर्ष की तपस्या से भी प्राप्त नहीं कर सकते उन चरणों को अपने समस्त अंगों पर धारण करने का अनुपम सौभाग्य आज हनुमान् को अनायास ही प्राप्त हो रहा है। मैंने भी हजार वर्षतक प्रतिदिन सहस्र पद्मों से आपका भक्तिभावपूर्वक अर्चन किया, परन्तु यह सौभाग्य आपने मुझे प्रदान नहीं किया।

मयावर्षसहस्रंतुसहस्राब्दंतथान्वहम्।।
भक्त्यासम्पूजितोऽपीशपादोनोदर्शितस्त्वया ।
लोकेवादोहिसुमहान् शम्भुर्नारायणप्रियः।।
हरिःप्रियस्तथाशम्भोर्नतादृग्भाग्यमस्तिमे। (पद्मपु. पातालख. 114/189-191)

लोक में यह वार्ता प्रसिद्ध है कि नारायण शंकर के परम प्रीतिभाजन हैं, परन्तु आज हनुमान् को देखकर मुझे इस बातपर सन्देह सा होने लगा है और हनुमान् के प्रति ईर्ष्या सी हो रही है।

भगवान् विष्णु के इन वचनों को सुनकर शंकरजी मन-ही-मन मुस्कराने लगे और बोले-नारायण! यह आप क्या कह रहे हैं? आपसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय हो सकता है क्या? औरों की तो बात ही क्या, पार्वती भी मुझे आपके समान प्रिय नहीं हैं-

नत्वयासदृशोमह्यंप्रियोऽस्तिभगवन्हरे।।
पार्वतीवात्वयातुल्यानचान्योविद्यतेमम। (पद्मपु. पातालख. 114/191-192)

इतने में ही माता पार्वती भी वहाँ आ पहुँचीं और वे भी गोष्ठी में सम्मिलित हो गयीं।

---

[1] यह कथा 'नारदीयमहापुराण' के पूर्वखण्ड, अध्याय 79 में भी पायी जाती है। इस कथा के पद्मपुराणोक्त जो श्लोक नीचे दिये गये हैं वे किंचिन्मात्र परिवर्तन के साथ यथावत् नारदीयमहापुराण में भी पाये जाते हैं। वहाँपर भी श्लोकों के भावार्थ समान हैं।

बातों-ही-बातों में उन्होंने शंकरजी की मुण्डमाला, पन्नगभूषण (नागों का आभूषण), दिगम्बरपन, भस्मलेपन और वृषभारोहण आदि को लेकर परिहास किया। तब भगवान् विष्णु से नहीं रहा गया। वे शंकरजी की अवज्ञा को नहीं सह सके और बोल उठे- 'देवि! आप जगत्पति शंकर के प्रति यह क्या कह रही हैं? मुझसे आपके ये शब्द सहे नहीं जाते। जहाँ शिवनिन्दा होती हो वहाँ हम प्राण धारण नहीं कर सकते, यह हमारा व्रत है।' यह कहकर वे उन सबके सम्मुख ही नख के द्वारा अपना शिरश्छेदन करने को उद्यत हो गये। शंकरजी ने बड़ी कठिनता से उन्हें इस कार्य से रोका।

किमर्थंनिन्दसेदेविदेवदेवंजगत्पतिम्।

……………………………………………………………

यत्रेशनिन्दनंभद्रेतत्रनोमरणंव्रतम्।
इत्युक्त्वाथनखाभ्यांहिहरिश्छेत्तुंशिरोगतः।।
महेशस्तुकरंगृह्यप्राहमासाहसंकृथाः।

……………………………………………………

(पद्मपु. पातालख. 114/272-274)

उपरोक्त कथांश से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् विष्णु एवं भगवान् शिव दोनों का एक दूसरे के प्रति अलौकिक प्रेम है। दूसरी बात यह कि भगवान् विष्णु ने एक हजार वर्षतक शिवजी की उपासना की थी। इस उपासना के परिणामस्वरूप उन्हें सुदर्शन-चक्र की प्राप्ति हुई थी। सुदर्शन-चक्र की प्राप्ति संबंधी विस्तृत कथा अनेक पुराणों जैसे शिवपु. (को. रु. सं. अ. 34-36); ब्रह्मपु. (अध्याय 109/1-57); वामन पुराण (अध्याय 56), सूर्यपु. (अध्याय 41) तथा लिंगपु. (पु. पू. अ. 98) आदि में पायी जाती है। तीसरी बात यह कि शिव की निन्दा, चाहे वह मखौल में ही क्यों न हो. उसे नहीं सुनना चाहिये-ऐसा भगवान् विष्णु के आचरण से सबक मिलता है।

पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड) के अन्तर्गत भगवान् राम द्वारा अजगन्ध महादेव की पूजा[1] तथा रामेश्वरस्थापना[2] के प्रसंगों से भी यही सिद्ध होता है कि भगवान् शिव एवं विष्णुअवतार राम में अनन्य प्रेम है। ऊपर भगवान् राम एवं शिव की अनन्यता संबंधी कथन पहले ही कर चुके हैं।

उपसंहार

इस पुराण में भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की चर्चा की गयी है। निर्गुणरूप में उन्हें परब्रह्म, वेदों से परे, ब्रह्मा, विष्णु आदि से भी अगम, अनन्त, अविकारी, शान्त, परमानन्दस्वरूप, नित्य, कैवल्य का हेतु, उपमारहित अप्रमेय तथा ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवों के आराध्य कहा गया है। सगुणरूप में उन्हें त्रिनेत्रयुक्त, पाँच मुख तथा दस भुजाओंवाला, शीश पर चन्द्रमा धारण करनेवाला, सर्पों के आभूषण धारण करनेवाला, नीलकंठी, त्रिशूल-धारी, जगत् का सृष्टिकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के भी उत्पत्तिकर्त्ता, आदि-आदि विशेषताओं से युक्त माना गया है। उन्हें देव, दानव और मनुष्य

---

1. एवं 2.- इन प्रसंगों की जानकारी इसी पुस्तक में अन्यत्र मिलेगी।

आदि सभी का गुरु, देवाधिदेव, महादेव, दयालु, सब दुःखों को दूर करनेवाला, भोग, मोक्ष एवं स्वर्ग को देनेवाला, सुख-दुःख को देनेवाला तथा ईश्वर कहा गया है।

भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की उपासना हो सकती है। निर्गुण शिव की प्राप्ति के लिये ज्ञान-ध्यान का सहारा लेना पड़ता है। सगुणोपासना में लिंगपूजन या मूर्तिपूजन दोनों हो सकता है। मूर्ति की अपेक्षा लिंगपूजा ज्यादा फलदायी है। शिवपूजा के लिये त्रिकाल स्नान, स्तोत्र-पाठ, शिव-मन्त्रों का जप(रुद्राक्ष माला के सहारे), भस्म तथा रुद्राक्षधारण करना चाहिये। रुद्राक्षधारण की बहुत ही महिमा बतलायी गयी है।

कलियुग में भगवान् शिव की भक्ति की महिमा बताते हुए कहा गया है कि 'शिव' नाम का जप करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं तथा परमपद की प्राप्ति होती है। जप करने के लिये देश-काल या व्यक्ति आदि किसी की भी सीमा नहीं है। हर समय उनका नाम जपा जा सकता है। पुनः यह आवश्यक है कि नामजप करते समय नामापराधों से बचा जाय। अगर नामापराध हो जाय तो उसे दूर करने लिये प्रायश्चित्तपूर्वक नामजप ही साधन है।

मथुरा, काशी तथा रामेश्वर आदि मोक्ष देनेवाले तीर्थों की महिमा बताते हुए कहा गया है कि तीर्थ के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को संतोषी, नियम-परायण, अहंकार-शून्य, सत्यवादी, सभी भूतों के प्रति अपने जैसा भाव रखनेवाला होना चाहिये।

पद्मपुराण में विष्णु एवं शिवजी में अन्तर करने की काफी निन्दा की गयी है तथा तीनों देवों की एकता पर बल दिया गया है। तीनों देवता तत्त्वतः एक हैं, एक ही तत्त्व अपने को सृष्टि-प्रक्रिया में तीन रूपों- ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र, में प्रकट करता है। तीनों देवों में केवल गुण, क्रिया, नाम तथा रूप का भेद है तत्त्व का नहीं। जैसे देवदत्त नामक व्यक्ति की क्रिया कभी पिता जैसी कभी पुत्र जैसी कभी अध्यापक जैसी होनेपर भी देवदत्त नामक तत्त्व एक ही रहता है इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र तीन तरह की क्रियाएँ करनेवाला तत्त्व एक ही है। उस एक तत्त्व के नाम अनेक हैं जैसे सदाशिव, ब्रह्म, महाविष्णु आदि। जो इन तीनों देवों में एकता को देखता है वह भवसागर को पार कर जाता है। इसके विपरीत समझनेवाला घोर नरक में पड़ता है।

इस पुराण में यह भी कहा गया है कि शिव की निन्दा मखौल में भी नहीं सुननी चाहिये। निन्दा सुननेवाला महान् नरक में जाता है। पुनः यह बताया गया है कि भगवान् शिव एवं विष्णु में एक दूसरे के लिए अनन्य प्रेम है। एक के हृदय में दूसरा विद्यमान रहता है। रामजी, विष्णुजी तथा श्रीकृष्णजी- इन तीनों को भगवान् शिव का प्रेमी बताया गया है।

पद्मपुराण के अन्तर्गत शिवगीता का उपदेश भगवान् राम को दिया गया है। जब सीता के वियोग में श्रीराम दण्डकारण्य में भटक रहे थे उसी समय भगवान् शिव ने रामजी को शिवगीता का उपदेश किया था। आजकल प्राप्य पद्मपुराण की प्रतियों में शिवगीता नहीं पायी जाती। परन्तु प्राचीन प्रतियों में यह अवश्य रही होगी क्योंकि नारद-पुराण(पू. ख. 93/25) में पद्मपुराण की विषयसूची

के अन्तर्गत शिवगीता का उल्लेख है। शिवगीता की वर्तमान प्रतियों में यह लिखा गया है कि यह पद्मपुराण के अन्तर्गत निहित है। अगर हम इसे पद्मपुराण का हिस्सा मान लेते हैं तो उसमें हमें भगवान् शिव से संबंधित उपरोक्त सभी बातों की विस्तृत जानकारी मिल जाती है। ऊपर शिवसंबंधी जो बातें हमने बतायी हैं उन सबके अतिरिक्त भी बहुत सारी बातों की विस्तृत जानकारी शिवगीता में दी गयी है। शिवगीता के बारे में विस्तार से इसी पुस्तक में अन्यत्र चर्चा की गयी है।

(प्रस्तुत निबंध नाग पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा 1984 में 4 खंडों में प्रकाशित 'श्रीपद्ममहापुराणम्' तथा गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित **'संक्षिप्त पद्मपुराण'** की प्रतियों पर आधारित है।)

* * *

सत्य का महत्त्व

सत्य अगाध जल से भरा हुआ तीर्थ है, जो उस शुद्ध सत्यमयतीर्थ में स्नान करता है, वह सब पापों से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त होता है। एक हजार अश्वमेध-यज्ञ और सत्यभाषण-ये दोनों यदि तराजू पर रखे जायँ तो एक हजार अश्वमेध-यज्ञों से सत्य का ही पलड़ा भारी रहेगा। सत्य ही उत्तम तप है, सत्य ही उत्कृष्ट शास्त्रज्ञान है। अत्यन्त कठिन होनेपर भी सत्य का पालन करना अपने हाथ में है। सत्य सम्पूर्ण जगत् के लिये आभूषणरूप है। जिस सत्य का उच्चारण करके म्लेच्छ भी स्वर्ग में पहुँच जाता है, उसका परित्याग कैसे किया जा सकता है।

अगाधसलिले शुद्धे सत्यतीर्थे क्षमाह्रदे।
स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम्॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥
स्वाधीनं च सुदुर्लभं च जगतः साधारणं भूषणं,
यन्म्लेच्छोऽप्यभिधाय गच्छति दिवं तत्त्यज्यते वा कथम्॥

(सृष्टिखण्ड 18/402-404, संक्षिप्त पद्मपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर)

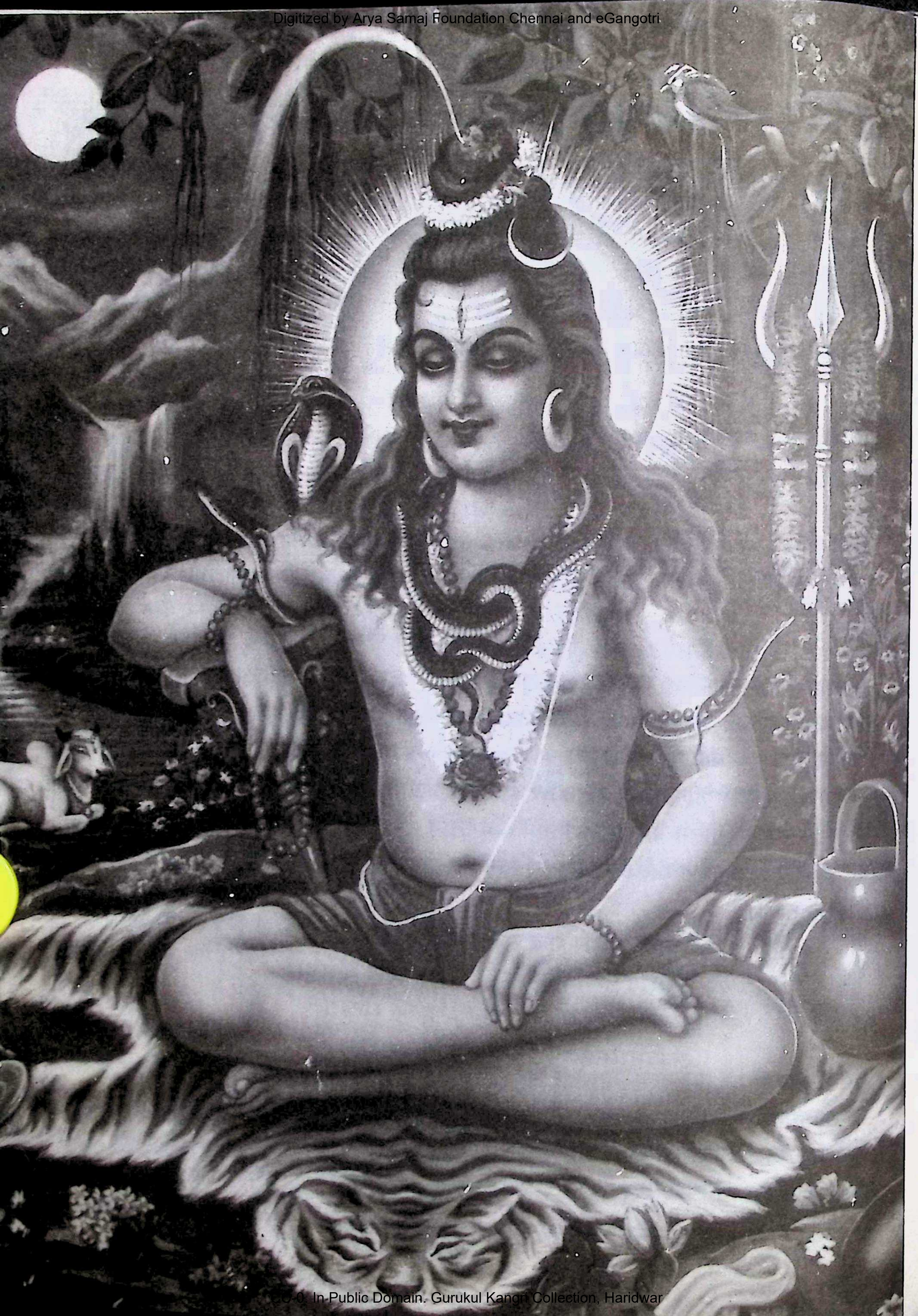

शिवमहापुराण में शिवतत्त्व एवं उसकी उपासना

शैव पुराणों में शिवमहापुराण का वही स्थान है जो वैष्णव पुराणों में श्रीमद्भागवत महापुराण का है। इस पुराण में प्रचलित सभी शैवमान्यताओं का न्यूनाधिक विस्तार के साथ विवेचन हुआ है। अन्य शैवपुराणों में, स्कन्द पुराण को छोड़कर, यह सबसे बड़ा है। इसमें 24000 श्लोक तथा सात संहिताएँ– विद्येश्वर, रुद्र, शतरुद्र, कोटिरुद्र, उमा, कैलास और वायवीय हैं (शिवपु. विद्ये. 2/59–61)। इस सात संहिताओंवाले शिवपुराण के अतिरिक्त एक और शिवपुराण, जिसमें छः संहिताएँ (विद्येश्वर, कैलास, वायवीय, सनत्कुमार, धर्म और ज्ञान) हैं, भी काफी पहले प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत निबंध में मुख्यतः सात संहिताओंवाला (बाद के शिवपुराण का) संस्करण काम में लिया गया है। इस पुराण में कई कल्पों की कथाओं का संकलन है।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण के प्रमुख देवता भगवान् शिव हैं। उन्हीं को परात्पर ब्रह्म स्वीकार किया गया है। उन्हीं से समस्त सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है तथा अन्त में उन्हीं में लय हो जाता है। वे निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों में हैं। सृष्टिप्रक्रिया के लिये वे सगुण हो जाते हैं, अद्वैत एकाकी से द्वैतरूप धारण कर लेते हैं। उनके ब्रह्म होने का उल्लेख प्रायः प्रत्येक संहिताओं में है। निम्नलिखित पंक्तियों में हम शिवतत्त्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

(1) भगवान् शिव ब्रह्म के रूप में

वर्तमान कल्प के प्रारंभ में छः कुलों के महर्षि परस्पर परम तत्त्व संबंधी वाद–विवाद करते हुए किसी नतीजे पर न पहुँचने पर वे ब्रह्माजी के पास जाकर बोले कि प्रभो! हम यह जानना चाहते हैं कि सम्पूर्ण तत्त्वों से परे परात्पर पुराणपुरुष कौन है? तब ब्रह्माजी कहते हैं– जहाँ से मनसहित वाणी उन्हें न पाकर लौट आती है तथा जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदि से युक्त यह सम्पूर्ण जगत् समस्त भूतों एवं इन्द्रियों के साथ पहले प्रकट हुआ है, वे ही ये देव, महादेव सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। ये ही सबसे उत्कृष्ट हैं।

यतोवाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह।।
यस्मात्सर्वमिदंब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रपूर्वकम्।
सहभूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं संप्रसूयते ।।
एषदेवोमहादेवः सर्वज्ञोजगदीश्वरः।
..।। (शि. पु. विद्ये. सं. 3/10–12)

जो रजोगुण का आश्रय ले संसार की सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुण से सम्पन्न हो सातों भुवनों का धारण–पोषण करते हैं, तमोगुण से युक्त हो सबका संहार करते हैं तथा त्रिगुणमयी माया को लाँघकर अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्दस्वरूप, अनन्त बोधमय, निर्मल एवं पूर्ण ब्रह्म को शिव कहते हैं। वे ही सृष्टिकाल में ब्रह्मा, पालन के समय विष्णु और संहारकाल में रुद्र नाम धारण करते हैं। ....।

यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्रष्टा रजः संश्रयः
संहर्त्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादि संज्ञास्पदं
नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि।। (शि. पु. उमासंहिता 1/1)

ऋषियों ने एक बार ब्रह्माजी से परमपुरुष के विषय में इस प्रकार पूछा– "कौन ऐसा पुरुष है, जो सम्पूर्ण जीवों से पुरातन, अन्तर्यामी, उत्कृष्ट, विशुद्ध परिपूर्ण एवं सनातन परमेश्वर है? कौन अपने अद्‌भुत क्रियाकलाप द्वारा सबसे प्रथम संसार की सृष्टि करता है?"

इसके उत्तर में ब्रह्माजी मुनियों से कहते हैं– जिन्हें न पाकर मनसहित वाणी लौट आती है, जिनके आनंदमय स्वरूप का अनुभव करनेवाला पुरुष कभी किसी से नहीं डरता, जिनसे सम्पूर्ण भूतों और इन्द्रियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्रपूर्वक यह समस्त जगत् पहले प्रकट होता है, जो कारणों के भी स्रष्टा और विचारक परम कारण हैं, जिनके सिवा और किसी से कभी भी जगत् की उत्पत्ति नहीं होती वे रुद्र हैं(शि. पु. वाय. सं. पूर्व. ख. 3/1-3)। ये स्वयं ही सबके आदि हैं, किंतु इनका न आदि है न अन्त। ये स्वभाव से ही निर्मल, स्वतंत्र, परिपूर्ण, स्वेच्छाधीन तथा चराचररूप हैं। (वही 3/15-16)

इन परमात्मा से परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इनसे अत्यन्त सूक्ष्म और इनसे अधिक महान् भी कुछ नहीं है। इनसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है। इनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख और कान हैं। ये लोकों में सबको व्याप्त करके स्थित हैं। ये संपूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जाननेवाले हैं, परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित हैं। सबके स्वामी, शासक, शरणदाता और सुहृद हैं। ये नेत्रों के बिना भी देखते हैं और कान के बिना भी सुनते हैं। ये सबको जानते हैं, किंतु इनको पूर्णरूप से जाननेवाला कोई नहीं है। इन्हें परम पुरुष कहते हैं। ये अणु से भी अत्यन्त अणु और महान् से भी महान् हैं। ये अविनाशी महेश्वर इस जीव की हृदय-गुफा में निवास करते हैं।

अस्मान्नास्ति परं किंचिदपरं परमात्मनः।
नाणीयोऽस्ति न च ज्याय स्तेन पूर्णमिदं जगत्।।
सर्वतः पाणि पादोऽयं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।
सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रिय विवर्जितः।
सर्वस्य प्रभुरीशानः सर्वस्य शरणं सुहृत्।।
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि श्रृणोति यः।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम्।।
अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः।

गुहायां निहितश्चापि जन्तोरस्य महेश्वरः।।

(शि. पु. वाय. सं. पू. ख. 6/19, 21-24)[1]

वायुदेव महेश्वर की महत्ता को बताते हुए ऋषियों से कह रहे हैं कि वे ही परमेश्वर तीनों कालों से परे, निष्कल, सर्वज्ञ, त्रिगुणाधीश्वर एवं साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हीं का रूप है। वे सबकी उत्पत्ति का कारण होकर भी स्वयं अजन्मा हैं, स्तुति के योग्य हैं, प्रजाओं के पालक, देवताओं के भी देवता और सम्पूर्ण जगत् के लिये पूजनीय हैं। अपने हृदय में विराजमान उन परमेश्वर की हम उपासना करते हैं। जो काल आदि से परे, जिनसे यह समस्त प्रपंच प्रकट होता है, जो धर्म के पालक, पाप के नाशक भोगों के स्वामी तथा सम्पूर्ण विश्व के धाम हैं, जो ईश्वरों के भी परम महेश्वर, देवताओं के भी परम देवता तथा पतियों के भी परमपति हैं, उन भुवनेश्वरों के भी ईश्वर महादेव को हम संबसे परे जानते हैं।

परस्त्रिकालादकलः स एव परमेश्वरः।
सर्ववित् त्रिगुणाधीशो ब्रह्म साक्षात् परात्परः।।
तं विश्वरूपमभवं भवमीड्यं प्रजापतिम्।
देवदेवं जगत्पूज्यं स्वचित्तस्थमुपास्महे।।
कालादिभिः परो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्तते।
धर्मावहं पापनुदं भोगेशंविश्वधाम च।।
तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेश्वरेश्वरम्।। (शि. पु वा. सं. पू. ख 6/55-58)

उपमन्यु श्रीकृष्ण को शिव के बारे में बताते हुए कहते हैं कि-महर्षिगण उन परमेश्वर शिव के निर्विकल्प परम भाव को न जानने के कारण उन एक का ही अनेक रूपों में वर्णन करते हैं-कोई उस परमतत्त्व को अपर ब्रह्मरूप कहते हैं, कोई परब्रह्मरूप बताते हैं और कोई आदि-अन्त से रहित उत्कृष्ट महादेवस्वरूप कहते हैं। कोई-कोई शिव को प्रधान, पुरुष, व्यक्त और कालरूप कहते हैं। प्रकृति का ही नाम प्रधान है। जीवात्मा को क्षेत्रज्ञ(पुरुष) कहते हैं। तेईस तत्त्वों को मनीषी पुरुषों ने व्यक्त कहा है और जो कार्य-प्रपंच के परिणाम का एकमात्र कारण है, उसका नाम काल है। भगवान् शिव इन सबके ईश्वर, पालक, धारणकर्त्ता, प्रवर्तक, निवर्तक तथा आविर्भाव और तिरोभाव के एकमात्र हेतु हैं। वे स्वप्रकाश एवं अजन्मा हैं। इसीलिये उन महेश्वर को प्रधान, पुरुष, व्यक्त और कालरूप कहा गया है(वायवीय संहिता उत्तरखण्ड अध्याय 5/2-3, 18-21)।

भगवान् विष्णु एक स्थल पर ब्रह्माजी से कहते है कि "विधातः! तुम मेरा वचन सुनो। यह तुम्हारे भ्रम का निवारण करनेवाला है। मेरा वचन ही वेद-शास्त्र आदि का वास्तविक सिद्धान्त है। शिव

---

[1] इन मन्त्रों की श्वेताश्वतरोपनिषद् के (4/16, 17, 19 एवं 20) मन्त्रों से तुलना करें।

ही सबके कर्त्ता-भर्त्ता (पालक) और हर्त्ता (संहारक) हैं। वे ही परात्पर हैं। परब्रह्म, परेश, निर्गुण, नित्य, अनिर्देश्य, निर्विकार, अद्वितीय, अच्युत, अनन्त, सबका अन्त करनेवाले, स्वामी और सर्वव्यापी परमात्मा एवं परमेश्वर हैं। सृष्टि, पालन और संहार के कर्त्ता, तीनों गुणों को आश्रय देनेवाले, व्यापक, ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम से प्रसिद्ध, रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुण से परे, माया से ही भेदयुक्त, प्रतीत होनेवाले, निरीह, मायारहित, माया के स्वामी या प्रेरक, चतुर, सगुण, स्वतन्त्र आत्मानन्दस्वरूप, निर्विकल्प, आत्माराम, निर्द्वन्द्व, भक्तपरवश, सुन्दर विग्रह से सुशोभित योगी, नित्य योगपरायण, योगमार्गदर्शक, गर्वहारी, लोकेश्वर और सदा दीनवत्सल हैं।"

तत्त्वसिद्धांतमाख्यातं शृणु सद्बुद्धिमावह।
यथार्थं निगमाख्यातं निर्णीय भवकारकम्।।
शिवस्सर्वस्वकर्ता हि भर्ता हर्ता परात्परः।
परब्रह्म परेशश्च निर्गुणो नित्य एव च।।
अनिर्देश्यो निर्विकारी परमात्माऽद्वयोऽच्युतः।
अनंतोंतकरः स्वामी व्यापकः परमेश्वरः।।
सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्ता त्रिगुणभाग्विभुः।
ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यो रजस्सत्त्वतमः परः।।
मायाभिन्नो निरीहश्च मायो मायाविशारदः।
सगुणोपि स्वतंत्रश्च निजानंदो विकल्पकः।।
आत्मारामो हि निर्द्वन्द्वो भक्ताधीनस्सुविग्रहः।
योगी योगरतो नित्यं योगमार्गप्रदर्शकः।।
गर्वापहारी लोकेशस्सर्वदा दीनवत्सलः। (शिव पु. रुद्र सं. सती ख. 10/34-40)

नारदजी से भगवान् विष्णु(उनके मोहभंग के उपरान्त) कहते हैं कि भगवान् शंकर ही परब्रह्म परमात्मा हैं। उन्हीं का सच्चिदानन्दरूप से बोध होता है। वे निर्गुण और निर्विकार हैं। सत्त्व, रज और तम- इन तीनों गुणों से परे हैं। वे ही अपनी माया को लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश-इन तीन रूपों में प्रकट होते हैं। निर्गुण और सगुण भी वे ही हैं। निर्गुण अवस्था में उन्हीं का नाम शिव है। वे ही परमात्मा, महेश्वर, परब्रह्म, अविनाशी, अनन्त और महादेव आदि नामों से पुकारे जाते हैं। उन्हीं की सेवा से ब्रह्माजी जगत् के स्रष्टा हुए हैं और मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ। वे स्वयं ही रुद्ररूप से सदा सबका संहार करते हैं। वे शिवस्वरूप से सबके साक्षी हैं, माया से भिन्न और निर्गुण हैं। स्वतंत्र होने के कारण वे अपनी इच्छा के अनुसार चलते हैं।

परं ब्रह्म परात्मा स सच्चिदानन्दबोधनः।
निर्गुणो निर्विकारो च रजस्सत्वतमः पर।।

स एवमादाय मायां स्वां त्रिधा भवति रूपतः।
ब्रह्मविष्णुमहेशात्मानिर्गुणोऽनिर्गुणोऽपि सः।।
निर्गुणत्वे शिवाह्वो हि परमात्मा महेश्वरः।
परं ब्रह्माव्ययोऽनंतो महादेवेति गीयते।।
तत्सेवया विधिस्स्रष्टा पालको जगतामहम्।
स्वयं सर्वस्य संहारी रुद्ररूपेण सर्वदा।।
साक्षी शिवस्वरूपेण मायाभिन्नस्स निर्गुणः स्वेच्छाचारी संविहारी।

(रुद्रसं. सृष्टिखण्ड 4/31-35)

(2) भगवान् शिव के निष्कल एवं सकलरूप

विद्येश्वरसंहिता (अध्याय 6-9) एवं रुद्रसंहिता (अध्याय 7-9) में एक कथा आती है जिसमें ब्रह्मा एवं विष्णु अपने आप को बड़ा सिद्ध करने के प्रयास में झगड़ पड़ते हैं। उन दोनों के विवाद-स्थल पर भगवान् शिव एक आदि-अन्तरहित भीषण अग्नि-स्तंभ के रूप में प्रकट हो जाते हैं। हुए। उस स्तंभ का आदि-अन्त न पाकर दोनों उनकी प्रार्थना करने लगे। तदनन्तर मात्र ओम्-ओम् की ध्वनि उस स्तंभ से सुनाई दी। पुनः प्रार्थना करने पर उमादेवी के साथ भगवान् शिव प्रकट हो गये। उस समय उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र थे। भालदेश में चन्द्रमा का मुकुट था। सिरपर जटा धारण किये गौरवर्ण, विशालनेत्र, शिव ने अपने सभी अंगो में विभूति लगा रखी थी। उनके दस भुजाएँ थीं। कण्ठ में नील चिन्ह था। मस्तक भस्ममय त्रिपुण्ड्र से अंकित था। इस रूप की पुनः स्तुति के उपरान्त प्रसन्न हो भगवान् शिव ने उन दोनों से कहा-मैं सृष्टि, पालन और संहार का कर्त्ता हूँ, सगुण और निर्गुण हूँ तथा सच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार परब्रह्म परमात्मा हूँ। सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों अथवा कार्यों के भेद से मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण कर तीन रूपों मे विभक्त हुआ हूँ। वास्तव में मैं सदा निष्कल(निर्गुण) हूँ।

प्रलयस्थितिसर्गाणांकर्ताहंसगुणोऽअगुणः।
परब्रह्म निर्विकारीसच्चिदानंदलक्षणः।।
त्रियाभिन्नो ह्यहंविष्णोब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोहं सदाहरे।। (शि. पु. रुद्रसं. सृष्टिखण्ड 9/27-28)

भगवान् शिव ब्रह्मा एवं विष्णु से कहते हैं कि मेरे दो रूप हैं-'सकल' और 'निष्कल'। दूसरे किसी के ऐसे रूप नहीं हैं। पहले मैं स्तंभरूप से प्रकट हुआ, फिर अपने साक्षात्रूप से। 'ब्रह्मभाव' मेरा निष्कल रूप है और 'महेश्वरभाव' सकल रूप। ये दोनों मेरे ही सिद्धरूप हैं। कलायुक्त एवं अकल मेरे ही स्वरूप हैं। मैं सबसे बृहत् और जगत् की वृद्धि करनेवाला होने के कारण ब्रह्म कहलाता हूँ। सर्वत्र समरूप से स्थित और व्यापक होने से मैं ही सबका आत्मा हूँ। सर्ग से लेकर अनुग्रहतक(आत्मा या

ईश्वर से भिन्न) जो जगत्-संबंधी कृत्य हैं, वे सदा मेरे ही हैं, मेरे अतिरिक्त दूसरे किसी के नहीं हैं; क्योंकि मैं ही सबका ईश्वर हूँ। पहले मेरी ब्रह्मरूपता का बोध कराने के लिये 'निष्कल' लिंग प्रकट हुआ था। फिर अज्ञात ईश्वरत्व का साक्षात्कार कराने के निमित्त मैं 'सकल' (सगुण या साकार) रूप में प्रकट हो गया। अतः मुझमें जो ईशत्व है, उसे ही सकलरूप जानना चाहिये। पुनः ब्रह्मा-विष्णु के पूछने पर भगवान् शिव ने अपने सकलरूप का वर्णन किया (विद्ये. सं. अ. 9)। उन दोनों ने पूछा-प्रभो सृष्टि आदि पाँच कृत्यों (जो सकलरूप के होते हैं) के क्या लक्षण हैं?

उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि 'सृष्टि', 'पालन', 'संहार', तिरोभाव और अनुग्रह -- ये पाँच मेरे जगत्संबंधी कार्य हैं, जो नित्यसिद्ध हैं। संसार की रचना का जो आरंभ है, उसीको सर्ग या 'सृष्टि' कहते हैं। मुझसे पालित होकर सृष्टि का सुस्थिररूप से रहना उसकी 'स्थिति' है। उसका विनाश ही 'संहार' है। प्राणों के उत्क्रमण को 'तिरोभाव' कहते हैं। इन सबसे छुटकारा मिल जाना ही मेरा 'अनुग्रह' है। सृष्टि आदि जो चार कृत्य हैं, वे संसार का विस्तार करनेवाले हैं। पाँचवा कृत्य अनुग्रह मोक्ष का हेतु है। वह सदा मुझमें ही अचल भाव से स्थिर रहता है।

मेरे भक्तजन इन पाँचों कृत्यों को पाँचों भूतों में देखते हैं। सृष्टि भूतल में, स्थिति जल में, संहार अग्नि में, तिरोभाव वायु में और अनुग्रह आकाश में स्थित है। इन पाँच कृत्यों का भारवहन करने के लिये ही मेरे पाँच मुख हैं जो ईशान, तत्पुरुष, अघोर आदि हैं। तुम दोनों ने तपस्या करके मुझसे सृष्टि एवं स्थिति दो कृत्य प्राप्त किये। इसी प्रकार मेरी विभूतिस्वरूप 'रुद्र' और 'महेश्वर' ने दो अन्य कृत्य-संहार एवं तिरोभाव मुझसे प्राप्त किये हैं। परन्तु अनुग्रह नामक कृत्य दूसरा कोई नहीं पा सकता। रुद्र और महेश्वर रूप, वेष, कृत्य, वाहन, आसन और आयुध आदि में मेरे समान ही हैं। पूर्वकाल में मैंने अपने स्वरूपभूत मन्त्र ओंकार का उपदेश किया है। ओंकार मेरे मुख से सबसे पहले प्रकट हुआ जो मेरे स्वरूप का बोध करानेवाला है। ओंकार वाचक है और मैं वाच्य हूँ। यह ॐकार निष्कलरूप का वाचक है। (शि. पु. विद्ये. सं. अध्याय 10)

संक्षेप में कहा जाय तो भगवान् शिव का निर्गुण निराकाररूप, जिसका वाचक प्रणव या ॐकार है या शिवलिंग है, निष्कलरूप कहलाता है। इसी निष्कलरूप से जब सृष्टि आदि पंचकृत्यों का प्रादुर्भाव होता है, जिसका वाचक पंचमुखी शिव की प्रतिमा है, सकलरूप कहलाता है।

(3) निष्कल शिव से सृष्टि-विकास की प्रक्रिया

सृष्टि और प्रलय का क्रम अनादिरूप से चल रहा है। निर्गुण शिव से ही सृष्टि की प्रक्रिया शुरू होती है तथा उसी में समाप्त भी होती है। वह सृष्टि के आदि तथा अन्त में अकेला ही होता है। सृष्टि के अभाव में अर्थात् प्रलयोपरान्त जब 'यह', 'वह', 'ऐसा', 'जो', इत्यादि रूप से निर्दिष्ट होनेवाला भावाभावात्मक जगत् नहीं था, उस समय एकमात्र वह 'सत्' ही शेष था, जो मन का विषय नहीं है। वाणी की भी वहाँतक कभी पहुँच नहीं होती। श्रुति भी उसकी सत्तामात्र का ही निरूपण कर पाती है,

उसका कोई विशेष विवरण देने में असमर्थ हो जाती है। वह सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनंत, परमानन्दमय, परमज्योतिःस्वरूप, अप्रेमय, आधाररहित, निर्विकार, निराकार, निर्गुण, अनादि, अनन्त, निर्विकल्प, सबका एकमात्र कारण, संकोच–विकास से शून्य तथा चिन्मय आदि है। (शिव पु. रु. सं. सृ. ख. 6/7–13)

उस परब्रह्म ने कुछ काल के बाद (सृष्टि का समय आनेपर) द्वितीय की इच्छा प्रकट की– उसके भीतर एक से अनेक होने का संकल्प उदय हुआ। तब उस निराकार परमात्मा ने अपनी लीलाशक्ति से अपने लिये मूर्ति (आकार) की कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्यो से सम्पन्न, सर्वज्ञानमयी, शुभस्वरूपा, सर्वव्यापिनी, सर्वरूपा, रार्वकारिणी, सर्वाद्या, सबकी एकमात्र वन्दनीया और सब कुछ देनेवाली थी। उस शुद्धस्वरूपिणी ईश्वर–मूर्ति की कल्पना करके वह परब्रह्म अन्तर्हित हो गया। जो मूर्तिरहित परम ब्रह्म है, उसी की मूर्ति (चिन्मय आकार) भगवान् सदाशिव हैं। विद्वान् उन्हीं को ईश्वर कहते हैं।

अमूर्ते यत्पराख्यं वै तस्य मूर्तिस्सदाशिवः।
अर्वाचीनाः पराचीना ईश्वरं तं जगुर्बुधाः।। (शि. पु. रुद्रसं. सृष्टिख. अध्याय 6/18)

उस समय एकाकी रहकर स्वेच्छानुसार विहार करनेवाले उन सदाशिव ने अपने विग्रह से स्वयं ही एक स्वरूपभूता शक्ति की सृष्टि की, जो उनके अपने श्रीअंग से कभी अलग होनेवाली नहीं थी। उस पराशक्ति को प्रधान, प्रकृति, माया, बुद्धितत्त्व की जननी तथा विकाररहित बताया गया है। वह शक्ति अम्बिका कही गयी है। उसी को सर्वेश्वरी, त्रिदेवजननी, नित्या और मूलकारण भी कहते हैं। उस शक्ति के आठ भुजाएँ हैं। वह नाना प्रकार के अस्त्र धारण करती है। एकाकिनी होनेपर भी वह माया संयोगवशात् अनेक हो जाती है। सदाशिव को परमपुरुष, ईश्वर, शिव, शम्भु और महेश्वर कहते हैं। वे अपने मस्तकपर आकाशगंगा को और भालदेशपर चन्द्रमा को धारण करते हैं। उनके पाँच मुख तथा प्रत्येक में तीन–तीन नेत्र हैं, वे गौरवर्ण, त्रिशूलधारी तथा दस भुजाओं से युक्त हैं। वे सारे अंगों में भस्म रमाये रहते हैं। (शिव पु. रुद्रसं. सृ. ख. अ. 6)

शक्ति के साथ ही शिव ने शिवलोक नामक क्षेत्र (जिसे काशी कहते हैं) का निर्माण किया। उसे अविमुक्त एवं आनंदवन भी कहते हैं। उस वन में रमण करते हुए शिवा और शिव के मन में किसी दूसरे पुरुष की सृष्टि की इच्छा हुई, जिसपर सृष्टि–संचालन का भार सौपकर वे दोनों केवल काशी में रहकर निर्वाण धारण करें। वही पुरुष उनके अनुग्रह से सदा सबकी सृष्टि, पालन एवं अन्त में संहार करे। ऐसा निश्चय करके शक्तिसहित शिव ने अपने बाम भाग से एक सत्त्वगुण सम्पन्न सुन्दर पुरुष को प्रकट किया। उसका नाम विष्णु रखा। उन्होंने उन्हें श्वासमार्ग से वेदों का ज्ञान कराया। भगवान् शिव के आदेश से विष्णुजी ने घोर तप किया। उसके बाद यथासमय नारायणदेव से सभी 24 तत्त्व प्रकट हुए। उस समय एकाकार हुए चौबीस तत्त्वों को ग्रहण करके वे परम पुरुष नारायण शिवेच्छा से ब्रह्मरूप जल में सो गये। (रुद्रसंहिता सृष्टिख. अध्याय 6)

जब नारायणदेव जल में शयन करने लगे, उस समय उनकी नाभि से शिवेच्छा से एक उत्तम

कमल उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् साम्ब सदाशिव ने ब्रह्मा को अपने दाहिने अंग से उत्पन्न कर अपनी माया से मोहित कर उन्हें नारायण के नाभिकमल में डाल दिया और वहाँ से ब्रह्मा को प्रकट किया। कालान्तर में ब्रह्मा एवं विष्णु में(शिवमाया से मोहित होने के कारण) विवाद छिड़ गया। उसी समय उन दोनों के बीच एक अग्निमय लिंग प्रकट हुआ। उस लिंग से भगवान् शिव के सकल एवं निष्फल रूपों का ज्ञान उन दोनों को हुआ(रुद्र संहिता सृ. ख. अध्याय 7)।

तदनन्तर दोनों लोगों ने भगवान् शिव की स्तुति की फलस्वरूप भगवान् शिव उन दोनों से बोले- तुम दोनों मेरी स्वरूपभूता प्रकृति से प्रकट हुए हो। ब्रह्मा मेरे दाहिने पार्श्व से तथा विष्णु वाम पार्श्व से प्रकट हुए हैं। इतना कहने के बाद शिव ने ब्रह्मा को जगत् की सृष्टि करने का आदेश दिया तथा विष्णु को उसका पालन करने का। पुनः महेश्वर ने उन दोनों से कहा कि तुम दोनों ने मेरे अवतार के निमित्त जो स्तुति की है, तुम्हारी उस प्रार्थना को मैं अवश्य सच्ची करूँगा। मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप ब्रह्माजी से इस लोक में प्रकट होगा, जो नाम से रुद्र कहलायेगा। मेरे अंश से प्रकट हुए रुद्र की सामर्थ्य मुझ से कम नहीं होगी। जो मैं हूँ, वही यह रुद्र है(तात्त्विक दृष्टि से)। पूजा की विधि-विधान की दृष्टि से भी मुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं है। जैसे ज्योति का जल आदि के साथ संपर्क होनेपर भी उसमें स्पर्शदोष नहीं लगता, उसी प्रकार मुझ निर्गुण परमात्मा को भी किसी के संयोग से बन्धन नहीं प्राप्त होता। यह मेरा शिवरूप है। जब रुद्र प्रकट होंगे तब वे भी शिव के तुल्य होंगे। उनमें और शिव में परायेपन का भेद नहीं करना चाहिये। वास्तव में एक ही रूप सब जगत् में व्यवहार निर्वाह के लिये दो रूपों में विभक्त हो गया है। (रुद्रसंहिता सृ. ख. अध्याय 9)

भगवान् शिव आगे कहते हैं कि मैं स्वयं ब्रह्माजी की भृकुटि से प्रकट होऊँगा। ब्रह्माजी सृष्टि, विष्णु पालन तथा रुद्र संहार का कार्य करेंगे। भगवान् विष्णु को शिवजी कहते हैं कि तुम मेरी आज्ञा पाकर जगत् में सबलोगों के लिये मुक्तिदाता बनो। मेरा दर्शन होनेपर जो फल प्राप्त होगा, वही तुम्हारा दर्शन होनेपर भी होगा। श्रीहरि मेरे बायें अंग से, ब्रह्मा दाहिने अंग से प्रकट हुए हैं तथा प्रलयकारी रुद्र मेरे हृदय से पैदा होंगे।

मुक्तिदोऽत्र भवानद्य भव लोके मदाज्ञया।
मद्दर्शनेफलं यद्वत्तदेव तवदर्शने।।
वामांगजो मम हरिर्दक्षिणांगोद्भवो विधिः।।
महाप्रलयकृद्रुद्रोविश्वात्मां हृदयोद्भवः।। (रु. सं. सृष्टि ख. 9/54 एवं 56-57)

(4) शिव त्रिदेवान्तर्गत रुद्र से पृथक हैं

भगवान् शिव विष्णुजी से पुनः कहते हैं कि मैं ही सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रज आदि त्रिविध गुणोंद्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रनाम से प्रसिद्ध हो तीन रूपों में पृथक-पृथक प्रकट होता हूँ। साक्षात् शिव गुणों से भिन्न हैं। वे प्रकृति और पुरुष से भी परे हैं- अद्वितीय, नित्य, अनन्त, पूर्ण एवं निरञ्जन परब्रह्म परमात्मा हैं। तीनों लोकों का पालन करनेवाले श्रीहरि भीतर तमोगुण और बाहर

सत्त्वगुण धारण करते हैं, त्रिलोकी का संहार करनेवाले रुद्रदेव भीतर सत्त्वगुण और बाहर तमोगुण धारण करते हैं तथा त्रिभुवन की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी बाहर और भीतर से भी रजोगुणी ही हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र – इन तीन देवताओं में गुण हैं, परन्तु शिव गुणातीत माने गये हैं।

त्रिधा भिन्नोह्यहं विष्णोब्रह्मविष्णुभवारव्यया ।।
सर्गरक्षालयकरस्त्रिगुणैरजआदिभिः ।
गुणभिन्नश्शिवस्साक्षात्प्रकृते पुरुषात्परः।।
परं ब्रह्माद्वयो नित्योऽनन्तः पूर्णो निंरजनः।
अंतस्तमोबहिस्सत्त्वस्त्रिजगत्पालको हरिः।।
अंतस्सत्त्वस्तमोबाह्यस्त्रिजगल्लयकृद्धरः।।
अंतर्बहीरजाश्चैवत्रिजगत्सृष्टिकृद्विधिः।
एवं गुणास्त्रिदेवेषु गुणभिन्नः शिवः स्मृतः।। (शि. पु. रुद्र सं. सृष्टि ख. 9/57-61)

(5) श्रीहरि के कर्त्तव्य का निर्धारण

अग्निमय लिंग से प्रकट हो भगवान् शिव ने विष्णु की तपस्या से प्रसन्न हो उन्हें कई तरह के वरदान दे उनके कर्त्तव्य का निर्धारण किया। वे विष्णुजी से बोले – विष्णु तुम मेरी आज्ञा से ब्रह्माजी का प्रसन्नतापूर्वक पालन करो। अब तुम मेरी दूसरी आज्ञा सुनो। उसका पालन करने से तुम सदा समस्त लोकों में माननीय और पूजनीय बने रहोगे। ब्रह्माजी के द्वारा रचे गये लोक में जब कोई दुःख या संकट पैदा हो, तब तुम उन सम्पूर्ण दुःखों का नाश करने के लिये सदा तत्पर रहना। तुम नाना प्रकार के अवतार धारण करके लोक में अपनी उत्तम कीर्ति का विस्तार करो और सबके उद्धार के लिये तत्पर रहो। तुम रुद्र के ध्येय हो और रुद्र तुम्हारे ध्येय हैं। तुममें और रुद्र में कोई भी अन्तर नहीं है।

रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा।
युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किंचन।। (शि. पु. रु. सं. सृ. ख. अ. 10/6)

भगवान् शिव आगे कहते हैं – तुम इस लोक में मनुष्यों के लिये विशेषतः भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले और भक्तों के ध्येय तथा पूज्य होकर प्राणियों का निग्रह और अनुग्रह करो। सबके अध्यक्ष होकर सभी को भोग और मोक्ष प्रदान करना तथा सर्वदा समस्त कामनाओं का साधक एवं सर्वश्रेष्ठ बने रहना। जो तुम्हारी शरण में आ गया, वह निश्चय ही मेरी शरण में आ गया।

लोकेऽस्मिन्मुक्तिदो न्त्रॄणाम् भुक्तिदश्च विशेषतः।
ध्येयः पूज्यश्च भक्तानां निग्रहानुग्रहौ कुरु ।।
सर्वाध्यक्षश्च सर्वेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायकः।
भव त्वं सर्वथाश्रेष्ठस्सर्वकामप्रसाधकः।।
त्वां यस्समाश्रितो नूनंमामेव स समाश्रितः। (शि. पु. रु. सं. सृ. ख. अ. 10/10, 12, 14)

(6) रुद्र के ब्रह्माजी के मुख से प्रकट होने का रहस्य

एक बार ऋषियों ने वायुदेवता से पूछा कि जिन महादेवजी ने पूर्वकाल में ब्रह्मा और विष्णु को अपने शरीर से प्रकट किया था, जो प्रभु सदा ही उन दोनों के योग-क्षेम का निर्वाह करनेवाले हैं, वे आदिदेव भगवान् रुद्र ब्रह्मा के पुत्र कैसे हो गये? वायुदेव उत्तर में कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र क्रमशः चराचर जगत् की सृष्टि, पालन और संहार के हेतु हैं और साक्षात् महेश्वर से प्रकट हुए हैं। कल्पान्तर में परमेश्वर शिव के प्रसाद से रुद्रदेव ने ब्रह्मा और नारायण की सृष्टि की थी। इसी तरह दूसरे कल्प में जगन्मय ब्रह्मा ने रुद्र तथा विष्णु को उत्पन्न किया था। फिर कल्पान्तर में भगवान् विष्णु ने भी रुद्र तथा ब्रह्मा की सृष्टि की थी। इस तरह पुनः ब्रह्मा ने नारायण की और रुद्रदेव ने ब्रह्मा की सृष्टि की। इस प्रकार विभिन्न कल्पों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर परस्पर उत्पन्न होते और एक दूसरे का हित चाहते हैं। उन-उन कल्पों के वृतान्त को लेकर महर्षिगण उनके प्रभाव का वर्णन किया करते हैं।[1]

लब्ध्वा सर्वात्मना तस्य प्रसादात्परमेष्ठिनः।
ब्रह्मनारायणौ पूर्वं रुद्रः कल्पान्तरेऽसृजत्।।
कल्पान्तरे पुनर्ब्रह्मा रुद्रविष्णूजगन्मयः।
विष्णुश्च भगवान्रुद्रं ब्रह्माणमसृजत्पुनः।।
नारायणं पुनर्ब्रह्मा ब्रह्माणम सृजत्पुनः।
एवं कल्पेषु कल्पेषु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।।
परस्परेण जायंते परस्परहितैषिणः।
तत्तत्कल्पान्तवृत्तान्तमधिकृत्य महर्षिभिः।।
प्रभावः कथ्यते तेषां परस्परसमुद्भवात्। (शि. पु. वायवीयसं. पूर्वख. 13/17-21)

(7) शिवतत्त्व एवं जगत्प्रपंच

शिव-शक्ति का संयोग ही परमात्मा है। शिव की जो पराशक्ति है, उससे चित् शक्ति प्रकट होती है। चित् शक्ति से आनंदशक्ति का प्रादुर्भाव होता है, आनंदशक्ति से इच्छाशक्ति का उद्भव हुआ है, इच्छाशक्ति से ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्ति से क्रियाशक्ति प्रकट हुई है। इन्हीं से निवृत्ति आदि कलाएँ उत्पन्न हुई हैं। चित्शक्ति से नाद और आनंदशक्ति से बिन्दु का प्राकट्य होता है। इच्छाशक्ति से मकार प्रकट हुआ, ज्ञानशक्ति से उकार और क्रियाशक्ति से अकार की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार प्रणव की उत्पत्ति बतायी गयी है। इस प्रणव से पाँच स्वर एवं 33 व्यंजन का प्रादुर्भाव हुआ। जगत्प्रपंच के प्रारंभ में ॐकार की ही उत्पत्ति होती है इसीलिये उसकी उत्पत्ति पहले बतायी गयी है।

अब ईशानादि पंचब्रह्म की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है। शिव से ईशान, ईशान से तत्पुरुष,

---

[1] विभिन्न कल्पों में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र एक दूसरे से पैदा होते हैं। इसके बारे में विस्तृत जानकारी के लिये देखें-लिंगपुराण, पूर्वार्द्ध, अध्याय 37 तथा 20 आदि।

तत्पुरुष से अघोर, अघोर से वामदेव और वामदेव से सद्योजात का प्राकट्य हुआ है। ईशान से शान्त्यतीताकला, तत्पुरुष से शान्तिकला, अघोर से विद्याकला, वामदेव से प्रतिष्ठाकला और सद्योजात से निवृत्तिकला की उत्पत्ति हुई है। ईशान से चित्‌-शक्ति द्वारा मिथुनपंचक की उत्पत्ति होती है। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टि इन पाँच कृत्यों का हेतु होने के कारण उसे पंचक कहते हैं। आकाशादि के क्रम से इन पाँचों मिथुनों की उत्पत्ति हुई। इनमें पहला मिथुन आकाश, दूसरा वायु, तीसरा अग्नि, चौथा जल और पाँचवा मिथुन पृथ्वी है। पाँचभूतों का यह विस्तार ही प्रपंच कहलाता है। सर्वसमष्टि का जो आत्मा है, उसी का नाम 'विराट्' है और पृथ्वी से लेकर क्रमशः शिवतत्त्वतक जो तत्त्वों का समुदाय है, वही 'ब्रह्माण्ड' है। वह क्रमशः तत्त्वसमूह में लीन होता हुआ अन्ततोगत्वा सबके जीवनभूत चैतन्यमय परमेश्वर में लय को प्राप्त होता है और सृष्टिकाल में फिर शक्तिद्वारा शिव से निकलकर स्थूल प्रपंच के रूप में प्रलयकालपर्यन्त स्थित रहता है (कैलाससंहिता अध्याय 16)।

अपनी इच्छा से संसार की सृष्टि के लिये उद्यत हुए महेश्वर का जो प्रथम परिस्पन्द है, उसे 'शिवतत्त्व' कहते हैं। यही इच्छाशक्ति-तत्त्व है, क्योंकि सम्पूर्ण कृत्यों में इसी का अनुवर्तन होता है। ज्ञान और क्रिया-इन दो शक्तियों में जब ज्ञान का आधिक्य हो, तब उसे सदाशिवतत्त्व समझना चाहिये, जब क्रियाशक्ति का उद्रेक हो तब उसे महेश्वरतत्त्व समझना चाहिये तथा जब ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियाँ समान हों तब वहाँ विशुद्ध विद्यात्मकशिवतत्त्व समझना चाहिये। समस्त भाव-पदार्थ परमेश्वर के अंगभूत ही हैं; तथापि उनमें जो भेद बुद्धि होती है, उसका नाम माया-तत्त्व है। जब शिव अपने परम ऐश्वर्यशाली रूप को माया से निगृहीत करके सम्पूर्ण पदार्थों को ग्रहण करने लगता है, तब उसका नाम 'पुरुष' होता है। यही पुरुष माया से मोहित होकर संसारी पशु या जीव कहलाता है। शिवतत्त्व के ज्ञान से शून्य होने के कारण उसकी बुद्धि नाना कर्मों में आसक्त हो मूढ़ता को प्राप्त हो जाती है। वह जगत्‌ को शिव से अभिन्न नहीं जानता। (कैलाससंहिता अध्याय 16)

शिव की पाँच शक्तियाँ हैं-सर्वकर्तृत्वरूपा, सर्वतत्त्वरूपा[1], पूर्णत्वरूपा, नित्यत्वरूपा और व्यापकत्वरूपा। इसी प्रकार सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतंत्रता, नित्य अलुप्त शक्ति से संयुक्त होना और अपने भीतर अनन्त शक्तियों को धारण करना-महेश्वर के ये छः मानसिक ऐश्वर्य हैं (विद्ये. सं. 18/12)। जीव की पाँच कलाएँ हैं-कला, विद्या, राग, काल और नियति। इन्हें कालपंचक कहते हैं। जो यहाँ पाँच तत्त्वों के रूप में प्रकट होती है, उसका नाम 'कला' है। जो कुछ-कुछ कर्तृत्व में हेतु बनती है और कुछ तत्त्व का साधन होती है, उस कला का नाम 'विद्या' है। जो विषयों में आसक्ति पैदा करनेवाली है, उस कला का नाम 'राग' है। जो भाव पदार्थों और प्रकाशों का भासनात्मकरूप से क्रमशः अवच्छेदक होकर सम्पूर्ण भूतों का आदि कहलाता है, वही 'काल' है। यह मेरा कर्त्तव्य है और यह नहीं है-इस प्रकार नियन्त्रण करनेवाली जो विभु की शक्ति है उसका नाम

---

[1] कहीं-कहीं सर्वज्ञत्वस्वरूपा लिखा है।

'नियति' है। उसके आक्षेप से जीव का पतन होता है। ये पाँचों ही जीव के स्वरूप को आच्छादित करनेवाले आवरण हैं इसलिये 'पंचकंचुक' कहे गये हैं। इनके निवारण के लिये अंतरंग साधन की आवश्यकता है।(शि. पु. कैलाससंहिता अध्याय 16)

उपमन्यु श्रीकृष्ण से भगवान् शिव की पंचमूर्तियों, ईशानादि ब्रह्ममूर्तियों तथा पृथ्वी एवं शर्व आदि अष्टमूर्तियों का परिचय देते हुए कहते हैं कि परमात्मा शिव की मूर्तियों से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेशान तथा सदाशिव–ये उन परमेश्वर की पाँच मूर्तियाँ हैं जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व विस्तार को प्राप्त हुआ है। इनके सिवा और भी उनके पाँच शरीर हैं। जिन्हें पंचब्रह्म कहते हैं दस जगत् में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो उन मूर्तियों से व्याप्त न हो। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात–ये महादेवजी की विख्यात पाँच ब्रह्ममूर्तियाँ हैं। इनमें जो ईशान नामक उनकी आदि श्रेष्ठतम मूर्ति है, वह प्रकृति के साक्षात् भोक्ता क्षेत्रज्ञ(जीव) को व्याप्त करके स्थित है। तत्पुरुष नामक मूर्ति गुणों के आश्रयरूप भोग्य अव्यक्त(प्रकृति) में अधिष्ठित है। अघोरमूर्ति धर्म आदि आठ अंगों से युक्त बुद्धितत्त्व को अपना अधिष्ठान बनाती है। वामदेवमूर्ति अहंकार की अधिष्ठात्री, ज़बकि सद्योजातमूर्ति मन की अधिष्ठात्री है।

शिव की ईशान नामक मूर्ति को श्रवणेन्द्रिय, वाणी, शब्द और व्यापक आकाशतत्त्व की स्वामिनी मानते हैं। तत्पुरुष नामक विग्रह को त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायुतत्त्व का स्वामी माना जाता है। अघोरमूर्ति को नेत्र, पैर, रूप और अग्नितत्त्व की अधिष्ठात्री बताते हैं। वामदेव नामक मूर्ति को रसना, पायु, रस और जलतत्त्व की स्वामिनी समझते हैं तथा सद्योजात मूर्ति को घ्राणेन्द्रिय, उपस्थ, गन्ध और पृथ्वी–तत्त्व की अधिष्ठात्री कहते हैं(शि. पु. वायवी. सं. उ. ख. अध्याय 3)।

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव–ये शिव की जो आठ मूर्तियाँ हैं तत्स्वरूप ही यह जगत् है। महेश्वर की इन आठ मूर्तियों से क्रमश: भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित हैं। उनकी पृथ्वीमयी मूर्ति चराचर जगत् को धारण करती है। उसके अधिष्ठाता का नाम शर्व है। उनकी जलमयी मूर्ति समस्त जगत् के लिये जीवनदायिनी है। शिव की तेजोमयी मूर्ति विश्व के बाहर–भीतर व्याप्त होकर स्थित है। शिव वायुरूप से स्वयं गतिशील होते हैं और इस जगत् को गतिशील बनाते हैं। साथ ही वे इसका भरण–पोषण भी करते हैं। भगवान् भीम की आकाशरूपिणी मूर्ति सब को अवकाश देनेवाली, सर्वव्यापिनी तथा भूतसमुदाय की भेदिका है। सम्पूर्ण नेत्रों में निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण आत्माओं की अधिष्ठात्री शिवमूर्ति को 'पशुपति' मूर्ति समझना चाहिये। वह पशुओं के पाशों का उच्छेद करनेवाली है। महेश्वर की 'ईशान' नामक मूर्ति सूर्य नाम धारण करके सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करती हुई आकाश में विचरण करती है। जिनकी किरणों में अमृत भरा है और जो सम्पूर्ण विश्व को उस अमृत से आप्यायित करते हैं, वे चन्द्रदेव भगवान् शिव के महादेव नामक विग्रह हैं। यह जो आठवीं मूर्ति है वह परमात्मा शिव का साक्षात् स्वरूप है।(शि. पु. वायवी. सं. उ. ख. अध्याय 3)

(8) भगवान् शिव की विभूतियाँ

यह जगत् शिव और शिवा के शासन में है, इसलिये वे दोनों इसके ईश्वर या विश्वेश्वर कहे गये हैं। जैसे शिव हैं वैसी शिवा, तथा जैसी शिवा देवी हैं, वैसे ही शिव हैं। जिस तरह चन्द्रमा और उनकी चाँदनी में कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार शिव और शिवा में कोई अन्तर न समझे। शक्ति और शक्तिमान् को सदा एक दूसरे की अपेक्षा होती है। न तो शिव के बिना शक्ति रह सकती और न शक्ति के बिना शिव।

एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता ।
न शिवेन विना शक्तिर्न शक्त्या च विना शिवः ।। (शि. पु. वाय. सं. उ. ख. 4/12)

शिव-शक्ति के इस अद्वैत को व्यक्त करने हेतु ही महेश्वर ने अर्द्धनारीश्वर का रूप धारण किया हुआ है। शिव की इच्छा से पराशक्ति शिव-तत्त्व के साथ एकता को प्राप्त होती है। तबसे कल्प के आदि में उसी प्रकार सृष्टि का प्रादुर्भाव होता है जैसे तिल से तेल का। तदनन्तर शक्तिमान् से शक्ति में क्रियामयी शक्ति प्रकट होती है। उसके विक्षुब्ध होनेपर आदिकाल में पहले नाद की उत्पत्ति हुई। फिर नाद से बिन्दु का प्राकट्य हुआ और बिन्दु से सदाशिव देव का । उन सदाशिव से महेश्वर प्रकट हुए और महेश्वर से शुद्ध विद्या। वह वाणी की ईश्वरी है। इस प्रकार महेश्वर से वागीश्वरी नामक शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, जो वर्णो(अक्षरों) के रूप में विस्तार को प्राप्त होती है और मातृका कहलाती है। तदनन्तर अनन्त के समावेश से माया ने काल, नियति, कला और विद्या की सृष्टि की। कला से राग तथा पुरुष पैदा हुए। फिर माया से ही त्रिगुणात्मिका अव्यक्त प्रकृति हुई। उस त्रिगुणात्मक अव्यक्त से तीनों गुण पृथक्-पृथक् प्रकट हुए। उनके नाम हैं-सत्व, रज और तम; इनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। गुणों में क्षोभ होनेपर उनसे गुणेश नामक तीन मूर्तियाँ(ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र) प्रकट हुईं। साथ ही 'महत्' आदि तत्त्वों का क्रमशः प्रादुर्भाव हुआ। उन्हीं से शिव की आज्ञा के अनुसार असंख्य अण्ड-पिण्ड प्रकट होते हैं जो अनन्त आदि विद्येश्वर चक्रवर्तियों से अधिष्ठित हैं। (शिव पु. वाय. सं. उ. ख. अ. 4)

सम्पूर्ण स्थावर-जंगमरूप जगत् शक्तिमय है। यह पराशक्ति परमात्मा शिव की कला कही गयी है। यह पराशक्ति ईश्वरेच्छा के अनुसार चलकर चराचर जगत् की सृष्टि करती है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा- अपनी इन तीन शक्तियोंद्वारा शक्तिमान् ईश्वर सदा सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित होते हैं। यह इस प्रकार हो और यह इस प्रकार न हो- इस तरह कार्यो का नियमन करनेवाली महेश्वर ही इच्छाशक्ति नित्य है। उनकी जो ज्ञानशक्ति है, वह बुद्धिरूप होकर कार्य, करण, कारण और प्रयोजन का ठीक-ठीक निश्चय करती है; तथा शिवकी जो क्रियाशक्ति है, वह संकल्परूपिणी होकर उनकी इच्छा और निश्चय के अनुसार कार्यरूप सम्पूर्ण जगत् की क्षणभर में कल्पना कर देती है। इस प्रकार तीनों शक्तियों से जगत् का उत्थान होता है। जैसे माता-पिता के बिना पुत्र का जन्म नहीं होता, उसी प्रकार भव और भवानी के बिना इस चराचर जगत् की उत्पत्ति नहीं होती। यह जगत् शिव

एवं शिवा की विभूति है। शिव महेश्वर हैं तो शिवा माया, शिव पुरुष हैं तो शिवा प्रकृति, शिव रुद्र हैं तो शिवा रुद्राणी, शिव विष्णु हैं तो शिवा लक्ष्मी, शिव जब ब्रह्मा कहलाते हैं तो शिवा ब्रह्माणी, शिव महेन्द्र हैं तो शिवा शची इत्यादि। इस प्रकार भगवान् शंकर ही संसार के सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियाँ। अतः सभी स्त्री-पुरुष उन्हीं की विभूतियाँ हैं। न केवल सभी स्त्री-पुरुष शिव-शिवा की विभूतियाँ है अपितु समस्त जड़-चेतन के पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग रूप भी हैं। शिवा समस्त शब्दजाल का रूप धारण करती हैं और शिव सम्पूर्ण अर्थका। जिस-जिस पदार्थ की जो-जो शक्ति कही गयी है, वह-वह शक्ति देवी शिवा हैं और वह-वह पदार्थ साक्षात् महेश्वर हैं। जो सबसे परे है, जो पवित्र है, जो पुण्यमय है तथा जो मंगलरूप है, उस-उस वस्तु को उन्हीं दोनों शिव-पार्वती के तेज से विस्तार को प्राप्त हुई बताया जाता है। जैसे जलते हुए दीपक की शिखा समूचे घर को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वती का ही यह तेज व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाश दे रहा है। ये दोनों शिवा और शिव सर्वरूप हैं। (वाय. सं. उ. ख. अ. 4)

यहाँ जिस विभूति का वर्णन किया गया है, वह प्राकृत है, इसलिये अपरा मानी गयी है। इससे भिन्न जो अप्राकृतिक एवं परा विभूति है वह गुह्य है। परमेश्वर की यह अप्राकृतिक परा विभूति वह है, जहाँ से मन और इन्द्रियोंसहित वाणी लौट आती है। परमेश्वर की वही विभूति यहाँ परम धाम है, वही यहाँ परमगति है और वही यहाँ पराकाष्ठा है।

यतो वाचो निवर्तन्ते मनसा चेन्द्रियैः सह।
अप्राकृती परा चैषा विभूतिः पारमेश्वरी।।
सैवेह परमं धाम सैवेह परमा गतिः।
सैवेह परमा काष्ठा विभूतिः परमेष्ठिनः।। (शि. पु. वा. सं. उ. ख. 4/76-77)

शिवा और शिव की परा विभूति संसाररूपी विषधर सर्प के डसने से मृत्यु के अधीन हुए मानवों के लिये संजीवनी ओषधि है। इसे जाननेवाला पुरुष किसी से भयभीत नहीं होता। जो इस परा और अपरा विभूति को ठीक-ठीक जान लेता है, वह अपरा विभूति को लाँघकर परा विभूति का अनुभव करने लगता है।

(9) शिव, विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा

निर्गुण परमात्मा से सर्वप्रथम जो सगुणरूप प्रकट हुआ, उसी का नाम शिव है। शिव से पुरुषसहित प्रकृति उत्पन्न हुई। उन दोनों ने मूलस्थान में स्थित जल के भीतर तप किया। वह स्थान पंचक्रोशी काशी के नाम से विख्यात है, जो शिव को अत्यन्त प्रिय है। यह जल सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त था। उस जल का आश्रय ले योगमाया से युक्त श्रीहरि वहाँ सोये। नार अर्थात् जल को अयन(निवासस्थान) बनाने के कारण फिर 'नारायण' नाम से प्रसिद्ध हुए और प्रकृति 'नारायणी' कहलायी। नारायण के

नाभिकमल से जिनकी उत्पत्ति हुई, वे ब्रह्मा कहलाते हैं। ब्रह्मा ने तपस्या के द्वारा जिनका साक्षात्कार किया, उन्हें विष्णु कहा गया। ब्रह्मा और विष्णु के विवाद को शान्त करने के लिये निर्गुण शिव ने जो रूप प्रकट किया, उसका नाम 'महादेव' है। उस समय उन्होंने कहा – 'मैं शम्भु ब्रह्माजी के ललाट से प्रकट होऊँगा।' इस कथन के अनुसार समस्त लोकों पर अनुग्रह करने के लिये जो ब्रह्माजी के ललाट से प्रकट हुए, उनका नाम रुद्र हुआ। (शिव पु. कोटि रु. स. अ. 42)

इस प्रकार रूपरहित परमात्मा सबके चिन्तन का विषय बनने के लिये साकाररूप में प्रकट हुए। वे ही साक्षात् भक्तवत्सल शिव हैं। तीन गुणों से भिन्न शिव में तथा गुणों के धाम रुद्र में उसी तरह वास्तविक भेद नहीं है, जैसे सुवर्ण और उसके आभूषण में। दोनों के रूप और कर्म समान हैं तथा दोनों समानरूप से भक्तों को उत्तम गति प्रदान करनेवाले हैं। रुद्र सर्वथा शिवरूप ही हैं। वे भक्तों के कार्य की सिद्धि के निमित्त विष्णु और ब्रह्मा की सहायता करने के लिये प्रकट हुए हैं। अन्य जो-जो देवता जिस क्रम से प्रकट हुए हैं उसी क्रम से लय को प्राप्त होते हैं। परन्तु रुद्रदेव उस तरह लीन नहीं होते। उनका साक्षात् शिव में ही लय होता है। ये प्राकृत प्राणी रुद्र में मिलकर ही लय को प्राप्त होते हैं। सब लोग रुद्र का भजन करते हैं, किन्तु रुद्र किसी का भजन नहीं करते हैं। वे भक्तवत्सल होने के कारण कभी-कभी अपने-आप भक्तजनों का चिन्तन कर लेते हैं[1]।

सर्वे रुद्रं भजन्त्येव रुद्रः कश्चिद्भजेन्न हि।
स्वात्मना भक्तवात्सल्याद्भजत्येव कदाचन।। (शि. पु. को. रु. सं. 42/15)

---

[1] कभी-कभी लोक-आदर्श की स्थापना हेतु अथवा पूर्वकाल में दिये हुए अपने किसी वरदान के प्रभाव से भी दूसरों का भजन रुद्रदेव कर लिया करते हैं। उदाहरण के लिये भगवान् विष्णु को गोलोक में गोपेश के पदपर स्थापित करने के बाद उन्हें अपना भी पूज्य होने का वरदान दिया।

गोपेश पदपर श्रीहरि का अभिषेक कर उन्हें अपना सारा ऐश्वर्य प्रदान कर दिया। तदनन्तर शम्भु ने श्रीहरि का स्तवन कर लोककर्त्ता ब्रह्मा से इस प्रकार बोले – "लोकेश आज से मेरी आज्ञा के अनुसार ये विष्णु हरि स्वयं मेरे वन्दनीय हो गये। इस बात को सभी सुन रहे हैं। तात! तुम सम्पूर्ण देवता आदि के साथ इन श्रीहरि को प्रणाम करो और ये वेद मेरी आज्ञा से मेरी ही तरह इन श्रीहरि का वर्णन करें।"

अतः प्रभृति लोकेश मन्निदेशादयं हरिः।
मम वंद्यः स्वयं विष्णुर्जातस्सर्वश्शृणोति हि।।
सर्वैर्देवादिभिस्तात प्रणम त्वममुं हरिम्।
वर्णयंतु हरिं वेदा ममैते मामिवाज्ञया।। (शि. पु. रु. सं. सं. ख. 25/15-16)

पद्मपुराण में भगवान् शिव को संध्या-वंदन तथा जपादि करते देख विष्णुजी आश्चर्य से पूछते हैं कि सभी लोग आपकी पूजा करते हैं, आपका जप करते हैं तथा आपकी उपासना करते हैं। ऐसी स्थिति मे आप उपासना या जप क्यों करते हैं? उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि हमारे लिये न तो अन्य कोई ध्यान का विषय है, न नमस्कार, उपासना और जप का। किन्तु नास्तिकों तथा पापाचार में लगे लोगों को इन शुभ कर्मो में प्रेरित करने के लिये ही जप-ध्यादि कर्म करता हूँ। मेरी सारी क्रियायें लोकोपकार के हेतु ही हैं। (पद्ममहापुराण पातालखण्ड 114/244-249)

जो दूसरे देवता का भजन करते हैं, वे उसी में लीन होते हैं; इसलिये वे दीर्घकाल के बाद रुद्र में लीन होने का अवसर पाते हैं। परन्तु जो कोई रुद्र के भक्त हैं, वे तत्काल शिव हो जाते हैं।

सृष्टि के पूर्व, मध्य तथा अन्त में भी शिव रहते हैं और जब सब कुछ शून्यता में परिणत हो जाता है उस समय भी शिव की सत्ता रहती है। अतः शिव को चतुर्गुण कहा गया है। वे ही शक्तिमान् होने के कारण 'सगुण' जाने जाते हैं। इस प्रकार वे सगुण-निर्गुण के भेद से दो प्रकार के हैं। वे ही संपूर्ण विद्याओं के ईश्वर हैं। दूसरों के लिये काल का मान है, परन्तु कालस्वरूप रुद्र के लिये काल की कोई गणना नहीं है। शिव का कोई उत्पादक, पालक और संहारक नहीं है। ये स्वयं सबके हेतु हैं। एक होकर भी अनेकता को प्राप्त हो सकते हैं और अनेक होकर भी एकता को।

न तस्योत्पादकः कश्चिद्भर्ता हर्ता न तस्य हि।
स्वयं सर्वस्य हेतुस्ते कार्यभूताच्युतादयः।।
स्वयं च कारणं कार्यं स्वस्य नैव कदाचन।
एकोव्यनेकतां यातोप्यनेकोप्येकतां व्रजेत।। (शि. पु. को. रु. स. 42/27-28)

(10) भगवान् शिव की प्रणव-रूपता

भगवान् शिव के प्रणव-स्वरूप का वर्णन जैसा शिवपुराण में स्पष्ट तथा विस्तृतरूप से प्राप्त होता है वैसा अन्य किसी ग्रन्थ में शायद ही मिलता है। एक समय भगवान् शंकर कैलास पर्वत पर भगवती पार्वती से दीक्षाविधि के क्रम से प्रणवादि महामन्त्रों की चर्चा कर रहे थे। उस समय पार्वती ने शिवजी से प्रणव के स्वरूप को जानना चाहा। तब भगवान् शिव उत्तर में पार्वती से कहने लगे-

"प्रणवार्थ का परिज्ञान ही मेरे स्वरूप का ज्ञान है। प्रणवस्वरूप मन्त्र सब विद्याओं का बीज है, यह वटबीज की तरह अति सूक्ष्म तथा महान् अर्थवाला है। यह वेदों का आदि तथा सार है एवं मेरा स्वरूप है। तीन गुण से अतीत, सर्वज्ञ, सर्वस्त्रष्टा, सर्वप्रभु, सर्वगत, शिवस्वरूप मैं ही ॐकार में स्थित हूँ। तीन गुणों के न्यूनाधिक योग से जगत् में जो कुछ वस्तु है, वह समष्टि और व्यष्टिरूप से प्रणवार्थ ही है। यह प्रणव सर्वार्थ का साधक है और अक्षर ब्रह्म है। इसी प्रणव से मैं(शिवजी) सर्वप्रथम जगत् का निर्माण करता हूँ। जो शिव है वही प्रणव है, जो प्रणव है वही शिव है; क्योंकि वाच्य और वाचक में कोई भेद नहीं होता। इसीलिये ब्रह्मर्षिलोग मुझे एकाक्षर ॐकाररूप ब्रह्म कहते हैं। मुमुक्षु को चाहिये कि वह प्रणव को ही सर्वकारण, निर्विकार, निर्गुण शिवस्वरूप समझे।" (शिवपु. कै. सं. 3/1-9)

शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः।
वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यंतं विद्यते यतः।।
तस्मादेकाक्षरं देवं मां च ब्रह्मर्षयोविदुः।
वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना विपश्चितः।।
अतस्तदेव जानीयात्प्रणवं सर्वकारणम्।

निर्विकारी मुमुक्षुर्मां निर्गुणं परमेश्वरम्।। (शि. पु. कैलास सं. 3/7-9)

वामदेवजी के पूछने पर स्कंदजी उन्हें प्रणव की उत्पत्ति के बारे में बताते हुए कहते हैं- शिव और शक्ति का योग ही परमात्मा है। परमात्मा की पराशक्ति से चिच्छक्ति उत्पन्न होती है और चैतन्यशक्ति से आनंदशक्ति, उससे इच्छाशक्ति, इच्छाशक्ति से ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्ति से क्रियाशक्ति उत्पन्न हुई। इन्हीं शक्तियों से क्रमशः जगत् की उत्पत्ति हुई है। चिद्‌शक्ति से नाद और आनंदशक्ति से बिन्दु उत्पन्न हुए; इच्छाशक्ति से मकार, ज्ञानशक्ति से उकार और क्रियाशक्ति से अकार-स्वर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार प्रणव की सृष्टि हुई और इस प्रणव से पंचब्रह्म की, तत्पश्चात् कलादि क्रम से आकाशादि की उत्पत्ति हुई है। (शिवपु. कैला. सं. 16/54-57)

चिदानन्दसमुत्पन्नौ नादबिन्दू प्रकीर्त्तितौ।
इच्छाशक्तेर्मकारस्तु ज्ञानशक्तेस्तु पंचमः।।
स्वरः क्रियाशक्तिजातो ह्यकारस्तु मुनीश्वर।
इत्युक्ता प्रणवोत्पत्तिः ....।। (शि. पु. कै. सं. 16/56-57)

जिस प्रकार परमात्मा की पंचशक्तियों से कार्तिकेय ने प्रणव के अकारादि पंचवर्णों की उत्पत्ति बतलायी है, उसी प्रकार स्वयं भगवान् शंकर ने भी अपने पंचमुख से प्रणव की उत्पत्ति बतायी है। भगवान् शंकर ब्रह्मा-विष्णु से कहते हैं- ॐकार मेरे मुख से उत्पन्न होने के कारण मेरे ही स्वरूप का बोधक है; यह वाच्य है मैं वाचक हूँ; यह मन्त्र मेरा आत्मा है, इसका स्मरण करने से मेरा ही स्मरण होता है। मेरे उत्तर के मुख[1] से अकार, पश्चिम के मुख[2] से उकार, दक्षिण के मुख[3] से मकार, पूर्व के मुख से[4] बिन्दु और मध्यमुख[5] से नाद उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार पाँचों मुखों से निर्गत हुए इन सबसे 'ॐ' यह एकाक्षर बना है। सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक जगत्, स्त्री-पुरुषादि भूतसमुदाय एवं चारों वेद-सभी इसी मन्त्र से व्याप्त हैं और यह शिव-शक्ति का बोधक है।(विद्येश्वरसंहिता 10/16-20)

इसी प्रसंग में भगवान् शंकर ने प्रणव-मन्त्र से पंचाक्षर मन्त्र **'नमः शिवाय'** की भी उत्पत्ति बतायी है।

अस्मात्पञ्चाक्षरंजज्ञेबोधकंसकलस्यतत्।
अकारादिक्रमेणैवनकारादि यथा क्रमम्।। (शिव पु. विद्येश्वरसंहिता 10/21)

अर्थात्-इसी प्रणव से पंचाक्षर मन्त्र का उद्‌भव हुआ जो मेरे सकल(सगुण) रूप का बोधक है। अकार से नकार, उकार से मकार, मकार से शि, बिन्दु से वा और नाद से यकार उत्पन्न हुआ है।

प्रणव के दो भेद बताये गये हैं-स्थूल और सूक्ष्म। एक अक्षररूप जो **'ओम्'** है, उसे सूक्ष्म प्रणव जानना चाहिये और **'नमः शिवाय'** इस पाँच अक्षरवाले मन्त्र को स्थूल प्रणव। सूक्ष्म प्रणव भी ह्रस्व और दीर्घ दो भेदोंवाला कहा जाता है। अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और

---

1. वामदेव, 2. सद्योजात, 3. अघोर, 4. तत्पुरुष और 5. ईशान

कला– इनसे युक्त जो प्रणव है, उसे 'दीर्घ प्रणव' कहते हैं। वह योगियों के हृदय में स्थित होता है। मकारपर्यन्त जो ओम् है, वह अ उ म्– इन तीन तत्त्वों से युक्त है। इसी को 'ह्रस्व प्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनों की एकता है। वह त्रितत्त्वरूप है ऐसा समझना चाहिये। (विद्येश्वर संहिता अध्याय 17/8–9, 12–15)

एक स्थल पर कहा गया है कि प्रणव परमात्मा शिव का वाचक है। शिव, रुद्र आदि नामों में प्रणव ही सबसे उत्कृष्ट माना गया है। प्रणववाच्य शम्भु के चिन्तन और जप से जो सिद्धि प्राप्त होती है, वही परा सिद्धि है।

प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवो हि परस्स्मृतः।।
शंभोप्रणववाच्यस्य भवनात्तज्जपादपि।
या सिद्धिस्सा परा प्राप्या भवत्येव न संशयः।।

(शि. पु. वा. सं. उ. ख. 6/23–24)

शास्त्रों के पारंगत विद्वान् वाच्य और वाचक की एकता स्वीकार करते हुए महादेवजी को प्रणवरूप कहते हैं। वेद के विद्वानों ने (माण्डूक्य उपनिषद् में) प्रणव की चार मात्राएँ बताया है– अकार, उकार, मकार और नाद। अकार को ऋग्वेद कहते हैं। उकार यजुर्वेदरूप कहा गया है, मकार सामवेद और नाद अथर्ववेद की श्रुति है। अकार महाबीज है, वह रजोगुण तथा सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा है। उकार प्रकृतिरूपा योनि है, वह सत्त्वगुण तथा पालनकर्त्ता श्रीहरि है। मकार जीवात्मा एवं बीज है, वह तमोगुण तथा संहारकर्त्ता रुद्र है। नाद परम पुरुष परमेश्वर है, वह निर्गुण एवं निष्क्रिय शिव है। इस प्रकार प्रणव अपनी तीन मात्राओं के द्वारा ही तीन रूपों में इस जगत् का प्रतिपादन करके अपनी अर्द्धमात्रा (नाद) के द्वारा शिवस्वरूप का बोध कराता है।[1] (शि. पु. वा. सं. उ. ख. 6/25–30)

शिवोपासना

देवताओं के पूछनेपर भगवान् विष्णु ने सबके लिये शिवपूजन की ही श्रेष्ठता को बतलाकर यह कहा है कि "एक मुहूर्त या एक क्षण भी जो शिव का पूजन नहीं किया जाता, वही हानि है, वही महान् छिद्र है, वही अंधापन है और वही मूर्खता है। जो भगवान् शिव की भक्ति में तत्पर हैं, जो मन से उन्हीं को प्रणाम और उन्हीं का चिन्तन करते हैं, वे कभी दुःख के भागी नहीं होते।"

सा हानिस्तन्महाछिद्रं सान्धता सा च मुग्धता।
यन्मुहूर्तं क्षणं वापि शिवंनैव समर्चयेत्।।

---

[1] माण्डूक्य उपनिषद् के निम्नलिखित मन्त्र से तुलना करें–

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं
प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।। (माण्डू. उ. 7)

भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः।
भवसंस्मरणा ये च न ते दुःखस्यभाजनाः।। (शिवपु. रु. सं. सृ. ख. 12/20-21)

जो भवन, स्त्री, पुत्र, पौत्र, आरोग्य, धन-सम्पति, सुन्दर शरीर, अलौकिक प्रतिष्ठा, स्वर्गीय सुख, अन्त में मोक्षरूपी फल अथवा परमेश्वर शिव की भक्ति चाहते हैं, वे पूर्वजन्मों के महान् पुण्य से भगवान् शिव की पूजा-अर्चा में प्रवृत्त होते हैं। (शि. पु. रु. सं. सृ. ख. 12/22-24)

अन्यत्र विष्णुजी नारद के मोहभंग होनेपर उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि "जो शरीर, मन और वाणीद्वारा भगवान् शंकर की उपासना करते हैं, उन्हें पंडित या ज्ञानी जानना चाहिये। वे जीवनमुक्त कहलाते हैं। सम्पूर्ण वेदों का अवलोकन करके पूर्ववर्ती विद्वानों ने यही निश्चय किया है कि भगवान् शिव की पूजा ही उत्कृष्ट साधन तथा जन्म-मरणरूपी संसारबंधन के नाश का उपाय है।"

कायेन मनसा वाचा यश्शंकरमुपैति भो।
स पण्डित्त इति ज्ञेयस्स जीवन्मुक्त उच्यते।।
विलोक्य वेदानखिलाञ्छिवस्यैवार्चनम्परम्।
संसारनाशनोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितम्। (शि. पु. रु. सं. सृ. ख. 4/44 तथा 63)

जो सदा भगवान् शिव का ध्यान करते हैं, जिनकी वाणी शिव के गुणों की स्तुति करती है और जिनके दोनों कान उनकी कथा सुनते हैं, इस जीव-जगत् में उन्हीं का जन्म लेना सफल है। वे निश्चय ही संसारसागर से पार हो जाते हैं।

ये जन्मभाजःखलुजीवलोकेयेवैसदाध्यायन्तिविश्वनाथम्।
वाणीगुणान्स्तौतिकथांशृणोतिश्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति।।

(शि. पु. माहा. 7/49)

भगवान् शिव के पूजन से सभी देवताओं का पूजन हो जाता है इसलिये भगवान् शिव की पूजा सभी को करनी चाहिये। इसी बात को समझाने के लिये कहा गया है-

अथवा च शिवः पूज्यो मूलमेकं विशिष्यते।
मूले सिक्ते तथा शाखास्तृप्तास्सत्यखिलास्सुराः।।
शाखासु च सुतृप्तासु मूलं तृप्तं न कर्हिचित्।
एवं सर्वेषुतृप्तेषु सुरेषु मुनिसत्तमाः।।
सर्वथा शिवतृप्तिर्नो विज्ञेया सूक्ष्म बुद्धिभिः।
शिवे च पूजिते देवाः पूजितास्सर्व एव हि।।
तस्माच्च पूजयेद्देवं शंकरं लोकशंकरम्।
सर्वकामफलावाप्त्यै सर्वभूतहितेरतः।। (शि. पु. रु. सं. सृ. ख. अ. 12/ 83-86)

भावार्थ है-अथवा एक शिवजी का ही पूजन कर लेना चाहिये, कारण कि यही सबके मूल

हैं। मूल के सींचने से सब शाखायें सींच जाती हैं; ऐसे ही एक शिव के पूजन से सभी देवता पूजित हो जाते हैं। शाखाओं के सींचने से मूल कभी तृप्त नहीं होता। हे मुनिश्रेष्ठों इसी प्रकार सब देवताओं के तृप्त होने से शिवजी सर्वथा तृप्त नहीं होते, यह सूक्ष्मबुद्धिवाले जानते हैं। और शिव के पूजन से सभी देवता पूजित हो जाते हैं। अत: जो सम्पूर्ण मनोवांछित फलों को पाना चाहता है, वह अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये समस्त प्राणियों के हित में तत्पर रहकर लोककल्याणकारी भगवान् शंकर का पूजन करे।

भगवान् शिव की उपासना से देव, असुर, मानव, गंधर्व आदि सभी ने अपना मनोवांछित फल पाया है। उदाहरण के लिये ब्रह्मा को सृष्टिकार्य का(रुद्रसं. सृष्टिख. अ. 9), विष्णु को सृष्टिरक्षा एवं भोग-मोक्ष-दान का अधिकार(रुद्रसं. सृष्टिख. अ. 9 तथा 10), सुदर्शनचक्र की प्राप्ति(कोटिरु. सं. अ. 34-36) तथा गोलोक में गोपेश पद की प्राप्ति(रु. संहिता स. ख. अ. 25), यज्ञदत्त कुमार को कुबेरपद की प्राप्ति(रुद्रसं. सृष्टिख. अ. 17-19), संध्या का अरुन्धती हो वसिष्ठ के साथ विवाह करना(रुद्रसं. सतीख. अ. 6-7), दधीच की अवध्यता तथा वज्रतुल्य हड्डी की प्राप्ति(रु. सं. स. ख. अ. 38), हिरण्याक्ष को अन्धक नामक पुत्र की प्राप्ति(रु. स. यु. ख. अ. 42) अन्धकासुर को गणाध्यक्ष पद की प्राप्ति(रु. सं. यु. ख. अ. 47-49), शुक्राचार्य को मृतसंजीवनी विद्या की प्राप्ति(रु. सं. यु. ख. अ. 50), वाणासुर का गणनायक होना(रु. सं. यु. ख. अ. 51-56), शिलाद को नन्दी जैसे पुत्र की प्राप्ति तथा नन्दी का अजर, अमर एवं गणनायक होना(शतरु. सं. अ. 6-7), विश्वानर को गृहपति जैसे पुत्र की प्राप्ति तथा गृहपति को दिक्पालपद की प्राप्ति(शतरु. सं. अ. 13-15), आहुक और आहुका का नल एवं दमयन्ती के रूप में जन्म लेना(श. रु. सं. अ. 28), उपमन्यु को ब्रह्मविद्या तथा अक्षय कुल-गोत्र की प्राप्ति(श. रु. स. अ. 32), अर्जुन को पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति(श. रु. स. अ. 40-41), चन्द्रमा का क्षयरोगजनित दु:ख से निजात पाना(को. रु. सं. अ. 14), गौतम को गौतमी गंगा की प्राप्ति(को. रु. सं. अ. 25-26), रावण को अतुल बल की प्राप्ति(को. रु. सं. अ. 27-28), भगवान् राम का रावणपर विजयप्राप्ति का वरदान पाना(को. रु. सं. अ. 31), घुश्मा के मरे हुए पुत्र का जीवित हो उठना(को. रु. सं. अ. 32-33), भील व्याध का गुह बनकर भगवान् राम की मित्रता प्राप्त करना(को. रु. सं. अ. 40), भगवान् कृष्ण को पुत्र आदि की प्राप्ति (उमासं. अ. 3) का वर पाना-यह सब शिव की उपासना से ही संभव हुआ है।[1]

(1) पशु, पाश और पशुपति

मनुष्य को प्राप्त होनेवाले सभी प्रकार के दु:खों की जड़ अज्ञान है। अत: अज्ञान-जनित दु:ख

---

[1] शिवपुराण(कोटिरुद्रसंहिता अध्याय-37/6-54) में अनेक शिवभक्तों की सूची दी गयी है जैसे(ऊपर के लोगों को छोड़कर) दुर्वासा, विश्वामित्र, कणाद, बृहस्पति, वैशंपायन, पराशर, याज्ञवल्क्य, जैमिनी, गर्ग, विरोचन, शेष, वासुकि, तक्षक, गरुड़, ध्रुव, भरत, तार्क्ष्य, इक्ष्वाकु, मांधाता, सगर, मुचुकुन्द, हरिश्चन्द्र, दिलीप, रघु, अज, दशरथ तथा उनकी पत्नियाँ तथा रामादि उनके सभी पुत्र, जरासंध, निमि, जनक तथा नल आदि।

ज्ञान द्वारा ही दूर हो सकता है। वस्तु के विवेक का नाम ज्ञान है। वस्तु के तीन भेद माने गये हैं-जड़(प्रकृति), चेतन(जीव) और उन दोनों का नियन्ता(परमेश्वर)। इन तीनों को क्रम से पाश, पशु तथा पशुपति कहते हैं। तत्त्वज्ञ पुरुष प्रायः इन्हीं तीन तत्त्वों को क्षर, अक्षर तथा उन दोनों से अतीत कहते हैं। अक्षर ही पशु कहा गया है। क्षर तत्त्व का नाम ही पाश है तथा क्षर और अक्षर दोनों से परे जो परमतत्त्व है, उसी को पति या पशुपति कहते हैं। प्रकृति को क्षर, पुरुष को अक्षर तथा दोनों को प्रेरित करनेवाले को परमेश्वर (जो इन दोनों से परे है) कहते हैं। माया का ही नाम प्रकृति है। पुरुष उस माया से आवृत है। मल और कर्म के द्वारा प्रकृति का पुरुष के साथ सम्बन्ध होता है। माया महेश्वर की शक्ति है। चित्स्वरूप जीव उस माया से आवृत है। चेतन जीव को अच्छादित करनेवाला अज्ञानमय पाश ही मल कहलाता है। उससे शुद्ध हो जाने पर जीव स्वतः शिवरूप हो जाता है। (शिव पु. वा. सं. पू. ख. अ. 5)

भोग के लिये किया गया कर्म ही जीव के मायिक आवरण का कारण है। मल का नाश होने से वह आवरण दूर हो जाता है। कर्मफल का जो उपभोग करता है उसी का नाम पुरुष(जीव) है। कर्म दो प्रकार के हैं-पुण्यकर्म और पापकर्म, जिनके सुख एवं दुःख फल होते हैं। कर्म अनादि है और फल भोग लेने पर उनका अन्त हो जाता है। यद्यपि जड़ कर्म का चेतन आत्मा से कुछ संबंध नहीं है, तथापि अज्ञानवश जीव ने उसे अपने आप में मान रखा है। अतिशय भक्तिभाव से उपलब्ध हुए महेश्वर के कृपाप्रसाद से मल(अज्ञान) का नाश होता है। कला, विद्या, राग, काल और नियति ये पाँचों ही जीव के स्वरूप को आच्छादित करनेवाले आवरण हैं। विद्या पुरुष की ज्ञानशक्ति को और कला उसकी क्रियाशक्ति को अभिव्यक्त करनेवाली है। राग भोग्य वस्तु के लिये क्रिया में प्रवृत करनेवाला होता है। काल उसमें अवच्छेदक होता है और नियति उसे नियन्त्रण में रखनेवाली है। (वाय. सं. पू. ख. अ. 5)

पुरुष का जो शरीर है, इससे बढ़कर अशुद्ध, पराधीन, दुःखमय और अस्थिर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। शरीर ही सब विपत्तियों का मूल है। उससे युक्त हुआ पुरुष अपने कर्म के अनुसार सुखी, दुःखी और मूढ़ होता है। जैसे पानी से सींचा हुआ खेत अंकुर उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अज्ञान से आप्लावित हुआ कर्म नूतन शरीर को जन्म देता है।

यच्छरीरमिदं प्रोक्तं पुरुषस्य ततः परम्।
अशुद्धमवशं दुःखमध्रुवं न च विद्यते।।
विपदां बीजभूतेन पुरुषस्तेन संयुतः।
सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा।।
अद्भिराप्लावितं क्षेत्रं जनयत्यंकुरं यथा।
अज्ञानात्प्लावितं कर्म देहं जनयते तथा।। (शि. पु. वा. सं. पू. ख. 5/51-53)

इस प्रकार आवागमन का चक्र चलता रहता है। ब्रह्माजी से लेकर स्थावर प्राणियोंतक सभी

जीव पशु कहे गये हैं। यह जीव पाशों में बँधता है और सुख-दुःख भोगता है, इसलिये 'पशु' कहलाता है। यह ईश्वर की लीला का साधन-भूत है, ऐसा ज्ञानी महात्मा कहते हैं।

(2) बन्धन एवं मोक्ष

जो प्रकृति आदि आठ बन्धनों से बँधा हुआ है, वह जीव बद्ध कहलाता है और जो इनसे छूटा हुआ है, वह मुक्त कहलाता है। प्रकृति आदि को वश में कर लेना मोक्ष कहलाता है। प्रकृति, बुद्धि(महत्तत्त्व), त्रिगुणात्मक अहंकार और पंचतन्मात्राएँ-इन्हें ही अष्ट-बन्धन कहते हैं। इन्हीं आठ तत्त्वों से देह की उत्पत्ति हुई है। देह से कर्म उत्पन्न होता है और फिर कर्म से नूतन देह की उत्पत्ति। इस प्रकार बारंबार जन्म और कर्म होते रहते हैं। शरीर को स्थूल, सूक्ष्म और कारण के भेद से तीन प्रकार का जानना चाहिये। जीव को उसके प्रारब्ध-कर्मानुसार सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। अतः कर्मपाश से बँधा हुआ जीव अपने त्रिविध शरीर से होनेवाले शुभाशुभ कर्मोंद्वारा सदा चक्र की भाँति बारंबार घुमाया जाता है। इस चक्र से निवृत्ति के लिये चक्रकर्त्ता(शिव) का अनुग्रह प्राप्त करना चाहिये। शिवकृपा से कर्म आदि बंधन वश में हो जाते हैं। कर्म से लेकर प्रकृतिपर्यन्त सब कुछ वश में हो जानेपर जीव मुक्त हो स्वात्मारामरूप से विराजता है।(विद्ये. सं. अ. 18)

मुक्ति चार प्रकार की कही गयी है-सारूप्या(सार्ष्ठि), सालोक्या, सांनिध्या(सामीप्य) तथा सायुज्या। कैवल्या नामक जो पाँचवीं मुक्ति है, वह मनुष्यों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है जो केवल भगवान् शिव(अन्य देवता नहीं) ही प्रदान कर सकते हैं। (को. रु. सं. अ. 41)

परमेश्वर शिव की कृपा से जब कर्मजनित शरीर अपने वश में हो जाता है, तब भगवान् शिव के लोक में निवास का सौभाग्य प्राप्त होता है। इसी को सालोक्य-मुक्ति कहते हैं। जब तन्मात्राएँ वश में हो जाती हैं तब जीव जगदम्बासहित शिव का सामीप्य प्राप्त कर लेता है। यह सामीप्य मुक्ति है, बुद्धि प्रकृति का कार्य है। उसका वश में हो जाना सार्ष्ठि मुक्ति कहलाता है। इसमें शिवस्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। उस समय उसके आयुध आदि और क्रिया आदि सब कुछ भगवान् शिव के समान हो जाते हैं। पुनः भगवान् का महान् अनुग्रह प्राप्त होनेपर जब प्रकृति भी वश में हो जाती है तब भगवान् शिव का मानसिक ऐश्वर्य स्वतः प्राप्त हो जाता है। सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त शक्ति आदि शिव के षड ऐश्वर्यों को प्राप्त कर मुक्त पुरुष आत्मा में ही विराजमान होता है। इसे सायुज्यमुक्ति कहते हैं।(विद्येश्वरसं. अध्याय 18)

(3) शिवधर्म के प्रकार एवं उनके पाद तथा अधिकारी

परमात्मा शिव ने पाँच प्रकार का शिवधर्म बताया है- तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान। लिंगपूजन आदि को 'कर्म' कहते हैं। चान्द्रायण आदि व्रत का नाम 'तप' है। वाचिक, उपांशु और मानस- तीन प्रकार का जो शिवमन्त्र का अभ्यास(आवृत्ति) है, उसी को 'जप' कहते हैं। शिव का चिन्तन ही 'ध्यान' कहलाता है तथा शिवसंबंधी आगमों में जिस ज्ञान का उपदेश किया गया है, उसी

को यहाँ 'ज्ञान' शब्द से कहा गया है। (वाय. सं. उ. ख. अ. 7/36-38)

भगवान् शिव स्वयं अपने मुख से कहते हैं कि- "मेरा जो सनातन धर्म है, वह चार चरणों से युक्त है। उन चरणों के नाम हैं-ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग। पशु, पाश और पति का ज्ञान ही ज्ञान कहलाता है। गुरु के अधीन जो विधिपूर्वक षडध्वशोधन का कार्य होता है, उसे क्रिया कहते हैं। मेरे द्वारा विहित वर्णाश्रमप्रयुक्त जो मेरे पूजन आदि धर्म हैं, उनके आचरण का नाम चर्या है। मेरे बतलाये हुए मार्ग से ही मुझ में सुस्थिरभाव से चित्त लगानेवाले साधक के द्वारा जो अन्तःकरण की अन्य वृत्तियों का निरोध किया जाता है उसी को योग कहते हैं। चित्त को निर्मल बनाना अश्वमेध यज्ञों के समूह से भी श्रेष्ठ है; क्योंकि वह मुक्ति देनेवाला है" (वा. स. उ. ख. अ. 10/30-34)।

जिसने यम और नियम के द्वारा इन्द्रियसमुदायपर विजय प्राप्त कर लिया है, उस विरक्त पुरुष के लिये ही योग को सुलभ बताया गया है। वैराग्य से ज्ञान होता है और ज्ञान से योग। सब प्राणियों पर दया, अहिंसा, सत्य, चोरी से दूर रहना, ईश्वर और परलोक में विश्वास रखना, भगवान् शिव में श्रद्धा, इन्द्रियों को संयम में रखना, वेद-शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, ईश्वर-चिन्तन करना तथा उसके प्रति अनुराग रखना और सदा ज्ञानशील होना ब्राह्मण के लिये नितान्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण ज्ञानयोग की सिद्धि के लिये सदा इस प्रकार उपर्युक्त धर्मों का पालन करता है, वह शीघ्र ही विज्ञान को पाकर योग को भी सिद्ध कर लेता है (वही 10/35-40)

फल की कामना से प्रेरित होकर कर्म करने से ही मनुष्य बन्धन में पड़ता है, केवल कर्म करने मात्र से ही नहीं; अतः कर्म के फल को त्याग देना चाहिये। पहले कर्ममय यज्ञद्वारा बाहर शिव की पूजा करके फिर ज्ञानयोग में तत्पर हो साधक योग का अभ्यास करे। जो भक्त नित्ययुक्त एवं एकाग्रचित्त हो ज्ञानयोग में तत्पर रहता है, वह योगी होकर शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। जो वर्णाश्रमी पुरुष मन से विरक्त नहीं हैं, वे शिव का आश्रय ले ज्ञान, चर्या और क्रिया-इन तीन में ही प्रवृत्त होने के अधिकारी हैं। (वाय. स. उ. ख. 10/42-46)

जिसकी दूसरी वृत्तियों का निरोध हो गया है, ऐसे चित्त की भगवान् शिव में जो निश्चल वृत्ति है, उसी को संक्षेप में 'योग' कहा गया है। यह योग पाँच प्रकार का है- मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग एवं महायोग। मन्त्रजप के अभ्यासवश मन्त्र के वाच्यार्थ में स्थित हुई विच्छेपरहित जो मन की वृत्ति है, उसका नाम 'मन्त्रयोग' है। मन की वही वृत्ति जब प्राणायाम को प्रधानता दे तो उसका नाम 'स्पर्शयोग' होता है। वही स्पर्शयोग जब मन्त्र के स्पर्श से रहित हो तो 'भावयोग' कहलाता है। जिससे सम्पूर्ण विश्व के रूपमात्र का अवयव विलीन हो जाता है, उसे 'अभावयोग' कहा गया है; क्योंकि उस समय सद्वस्तु का भी भान नहीं होता। जिससे एकमात्र उपाधिशून्य शिव-स्वभाव का चिन्तन किया जाता है और मन की वृत्ति शिवमयी हो जाती है, उसे 'महायोग' कहते हैं। सभी प्रकार के योग आठ अंगो-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-से युक्त

होते हैं। (वा. सं. उ. ख. अ. 37/6-11, 14)

(4) योग और ध्यान का महत्त्व

भगवान् शिव का बारंबार चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। जैसे थोड़ा-सा योगाभ्यास पाप का नाश कर देता है, उसी तरह क्षणमात्र भी ध्यान करनेवाले पुरुष के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक, विक्षेपरहित चित्त से परमेश्वर का चिन्तन ध्यान कहलाता है। बिना ध्यान के ज्ञान नहीं होता और जिसने अन्य योगांगों का साधन नहीं किया है, उसका ध्यान सिद्ध नहीं होता। जिसे ध्यान और ज्ञान दोनों प्राप्त हैं, वह भवसागर को पार कर लेता है। समस्त उपाधियों से रहित, निर्मल ज्ञान और एकाग्रतापूर्ण ध्यान- ये योगाभ्यास से युक्त योगी को ही सिद्ध होते हैं। (संक्षिप्त शिवपु. गीताप्रेस, पृ. 704)

जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हैं, उन्हीं की बुद्धि ज्ञान और ध्यान में लगती है। जिनकी बुद्धि पाप से दूषित है, उसके लिये ज्ञान और ध्यान की बात भी अत्यन्त दुर्लभ है। जैसे प्रज्वलित हुई आग सूखी और गीली लकड़ी को भी जला देती है, उसी प्रकार ध्यानाग्नि शुभ और अशुभ कर्म को भी क्षणभर में दग्ध कर देती है। जैसे बहुत छोटा दीपक भी महान् अन्धकार का नाश कर देता है, इसी प्रकार थोड़ा सा योगाभ्यास भी महान् पाप का विनाश कर डालता है। श्रद्धापूर्वक क्षणभर भी परमेश्वर का ध्यान करनेवाले पुरुष को जो महान् श्रेय प्राप्त होता है, उसका कहीं अन्त नहीं है।

यथावह्निर्महादीप्तः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत्।
तथा शुभाशुभं कर्म ध्यानाग्निर्दहते क्षणात्।।
अत्यल्पोऽपि यथा दीपः सुमहन्नाशयेत्तमः।
योगाभ्यासस्तथाल्पोऽपि महापापं विनाशयेत्।।
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम्।
यद्भवेत्सुमहच्छ्रेयस्तस्यान्तो नैव विद्यते ।। (शि. पु. वाय. सं. उ. ख. 39/25-27)

ध्यान के समान कोई तीर्थ, तप या यज्ञ नहीं है, इसलिये अवश्य ध्यान करना चाहिये।

नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः।
नास्ति ध्यानसमो यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत्।। (शि. पु. वा. सं. उ. ख. 39/28)

अपने आत्मा और परमात्मा का बोध प्राप्त करने के कारण योगीजन केवल जल से भरे हुए तीर्थो और पत्थर एवं मिट्टी की बनी हुई देवमूर्तियों का आश्रय नहीं लेते (वे आत्मतीर्थ में अवगाहन करते और आत्मदेव के ही भजन में लगे रहते हैं)। जैसे अयोगी पुरुषों को मिट्टी एवं काठ आदि की बनी हुई स्थूल मूर्तियों का प्रत्यक्ष होता है, उसी तरह योगियों को ईश्वर के सूक्ष्म स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान्पाषाणमृन्मयान्।
योगिनो न प्रपद्यंते स्वात्मप्रत्ययकारणात्।।

योगिनां च वपुः सूक्ष्मं भवेत्प्रत्यक्षमैश्वरम्।
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम्।। (शि. पु. वा. सं. उ. ख. 39 / 29 - 30)

भगवान् शिव का पूजन दो प्रकार का है- बाह्य और आभ्यन्तर। इसी तरह मन, वाणी और शरीर-इन त्रिविध साधनों के भेद से भगवान् का भजन तीन प्रकार का माना गया है। तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान-ये शिवभजन के पाँच स्वरूप हैं; अतः साधुपुरुष उसे पाँच प्रकार का भी कहते हैं। मूर्ति आदि में जो भगवान् का पूजन होता है, जिसे दूसरे लोग जान लेते हैं, वह 'बाह्य' पूजन या भजन कहा गया है तथा वही भजन-पूजन जब मन के द्वारा होने से केवल अपने ही अनुभव का विषय होता है, तब वह 'आभ्यन्तर' कहलाता है। (संक्षिप्त शिवपु. पु. पृ. 632)

शिवपूजा में लगा हुआ चित्त, शिवनाम के जप-कीर्तन में लगी वाणी, त्रिपुण्ड्र आदि शास्त्रोक्त बताये हुए चिन्हों से अंकित निरन्तर शिव की सेवा-पूजा में लगा हुआ शरीर क्रमशः मानसिक, वाचिक और शारीरिक- त्रिविध-साधन से किया हुआ भजन कहलाता है।

शिवपूजा को ही 'कर्म' जानना चाहिये। बाहर जो यज्ञादि किये जाते हैं, उन्हें 'कर्म' नहीं कहा गया है। शिव के निमित्त शरीर को सुखाना ही 'तप' है, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि का केवल अनुष्ठान नहीं। पंचाक्षर-मन्त्र की आवृत्ति, प्रणव का अभ्यास तथा रुद्राध्याय आदि का बारंबार पाठ ही यहाँ 'जप' कहा गया है, वेदाध्ययन आदि नहीं। शिव के स्वरूप का चिन्तन-स्मरण ही ध्यान है। आत्मा आदि के लिये की हुई समाधि नहीं। शैवागमों के अर्थ को भलीभाँति जानना ही 'ज्ञान' है, दूसरी किसी वस्तु के अर्थ को समझना नहीं। महादेवजी कहते हैं कि-

मदर्चा कर्म विज्ञेयं बाह्ये यागादिनोच्यते।
मदर्थे देहसंशोषस्तपः कृच्छ्रादि नो मतम्।।
जपः पंचाक्षराभ्यासः प्रणवाभ्यास एव च।
रुद्राध्यायादिकाभ्यासो न वेदाध्ययनादिकम्।।
ध्यानम्मद्रूपचिंताद्यं नात्माद्यर्थसमाधयः।
ममागमार्थविज्ञानं ज्ञानं नान्यार्थवेदनम्।। (शि. पु. वा. सं. उ. 10 / 52 - 54)

पूर्ववासनावश बाह्य अथवा आभ्यन्तर जिस पूजन में मन का अनुराग हो, उसी में दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिये। बाह्य पूजन से आभ्यन्तर पूजन सौ गुना अधिक श्रेष्ठ है। बाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही प्रकार का भजन भाव(अनुराग) पूर्वक होना चाहिये। पूजन में जो भाव या प्रेम होता है उसी को भगवान् ग्रहण करते हैं। जिन्होंने अपने चित्त को शिवजी को अर्पित कर दिया है वे ही शिवधर्म के अधिकारी हैं। उनके आठ लक्षण शिवजी द्वारा बताये गये हैं- "मेरे भक्तजनों के प्रति स्नेह, मेरी पूजा का अनुमोदन, स्वयं की भी मेरे पूजन में प्रवृत्ति, मेरे लिये ही शारीरिक चेष्टाओं का होना, मेरी कथा सुनने में भक्तिभाव, कथा सुनते समय स्वर, नेत्र और अंगो में विकार का होना, बारंबार मेरी स्मृति और

सदा मेरे आश्रित रहकर ही जीवन-निर्वाह करना। ये आठ प्रकार के चिन्ह यदि किसी म्लेच्छ में भी हो तो वह मुनि है, वह संन्यासी है और वही पंडित है। जो मेरा भक्त नहीं है, वह चारों वेदों का विद्वान् हो तो भी मुझे प्रिय नहीं है। परन्तु जो मेरा भक्त है, वह चाण्डाल हो तो भी प्रिय है। उसे उपहार देना चाहिये, उससे प्रसाद ग्रहण करना चाहिये तथा वह मेरे समान ही पूजनीय है।"

अष्टधा लक्षणं प्राहुर्मम धर्माधिकारिणाम्।।
मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानु मोदनम्।
स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे चांगचेष्टितम्।।
मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्रांगविक्रियाः।
मामनुस्मरणं नित्यं यश्चमामुपजीवति।।
एवमष्टविधं चिन्हं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते।
स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान्स यतिस्स च पंडितः।।
न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तो श्वपचोऽपि यः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्।।

(शि. पु .वा. सं. उ. ख. 10/67-71)

(5) शिवलिंग पूजा

उपरोक्त सभी धर्मो में कहींपर ज्ञान को कहींपर योग को और कहींपर जप को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। शिवपद की प्राप्ति ही साध्य है। उनकी भक्ति ही साधन है। उस भक्ति के साधन अनेक प्रकार के हैं, जिनका साक्षात् महेश्वर ने ही प्रतिपादन किया है। उनमें से सारभूत साधन को ब्रह्माजी बताते हुए कहते हैं- कान से भगवान् के नाम-गुण और लीलाओं का श्रवण, वाणी द्वारा उनका कीर्तन तथा मन के द्वारा उनका मनन- इन तीनों को महान् साधन कहा गया है। तात्पर्य यह है कि महेश्वर का श्रवण, कीर्तन और मनन करना चाहिये।

श्रोत्रेणश्रवणंतस्यवचसाकीर्तनं तथा।।
मनसामननंतस्यमहासाधनमुच्यते। (शि. पु. वि. सं. 3/21-22)

लोग प्रत्यक्ष वस्तु को आँख से देखकर उसमें प्रवृत्त होते हैं। परन्तु जिस वस्तु का कहीं भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, उसे श्रवणेन्द्रिय द्वारा जान-सुनकर मनुष्य उसकी प्राप्ति के लिये चेष्टा करता है। अतः पहला साधन श्रवण है। उसके द्वारा गुरु के मुख से तत्त्व को सुनकर श्रेष्ठ बुद्धिवाला विद्वान् पुरुष अन्य साधन- कीर्तन एवं मनन की सिद्धि करे। क्रमशः मननपर्यन्त इस साधन की अच्छी तरह साधना कर लेनेपर उसके द्वारा सालोक्य आदि के क्रम से धीरे-धीरे भगवान् शिव का संयोग प्राप्त होता है। भगवान् शंकर की पूजा, उनके नामों के जप तथा उनके गुण, रूप, विलास और नामों का युक्तिपरायण चित्त के द्वारा जो निरन्तर चिन्तन होता है, उसी को मनन कहा गया है। और यह महेश्वर

की कृपादृष्टि से उपलब्ध होता है। उसे समस्त साधनों में प्रमुख कहा गया है। (संक्षि. शिवपु. पु. पृ. 17-18)

जो लोग श्रवण, कीर्तन और मनन- इन तीनों साधनों के अनुष्ठान में समर्थ न हों, वे भगवान् शंकर के लिंग एवं मूर्ति की स्थापना करके नित्य उसकी पूजा करें तो संसार-सागर से पार हो सकते हैं। शिवलिंग शिव के निराकार स्वरूप का प्रतीक है इसी प्रकार साकार विग्रह या मूर्ति उनके साकार स्वरूप का प्रतीक होता है। यही कारण है कि सब लोग लिंग और मूर्ति दोनों में ही सदा भगवान् शिव की पूजा करते हैं। अन्य देवता साक्षात् ब्रह्म नहीं हैं इसलिये कहीं भी उनके लिये निराकार लिंग नहीं उपलब्ध होता(विद्ये. सं. 5/13-14)। एक शिवलिंग की स्थापना करनेवाला उपासक शिव की समानता प्राप्त कर लेता है तथा दूसरा लिंग स्थापित करनेपर शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। प्रधानतया शिवलिंग की ही स्थापना करनी चाहिये। मूर्ति की स्थापना उसकी अपेक्षा गौण कर्म है।(वि. सं. अ. 9/45-46)

भगवान् शिव एक स्थलपर कहते हैं कि पूजा करनेवालों के लिये मेरी मूर्ति तथा लिंग दोनों समान हैं, फिर भी मूर्ति की अपेक्षा लिंग का स्थान ऊँचा है। मुमुक्षु पुरुषों को मूर्ति से भी श्रेष्ठ समझकर लिंग का ही पूजन करना चाहिये। लिंग का ॐकार मन्त्र से और मूर्ति का पंचाक्षर मंत्र से पूजन करना चाहिये। शिवलिंग की स्वयं ही स्थापना करके अथवा दूसरों से भी स्थापना करवाकर उत्तम द्रव्यमय उपचारों से पूजा करनी चाहिये।(वि. सं. अ. 10/37-39)

(6) शिवलिंग की स्थापना और पूजनविधि

लिंग में प्रतिष्ठित भगवान् शिव उपासकों को भोग एवं मोक्ष देनेवाले हैं। शिवलिंग की वेदी या अर्घा महादेवी का स्वरूप है और लिंग साक्षात् महेश्वर का। लिंग और लिंगी में कोई भेद नहीं है। लिंग निर्गुण शिव का प्रतीक या चिन्ह है। लय का अधिष्ठान होने के कारण भगवान् शिव को लिंग कहा गया है; क्योंकि उन्हीं में संपूर्ण जगत् का लय होता है। जो शिवलिंग के समीप कोई(शुभ) कार्य करता है उसके पुण्यफल का वर्णन नहीं किया जा सकता।

लिंगवेदिर्महादेवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः।
लयनाल्लिंगमित्युक्तं तत्रैव निखिलं जगत्।।
यस्तु लिंगसमीपे तु कार्य किंचित्करोति च।
तस्य पुण्यफलं वक्तुं न शक्नोमि महामुने।। (शि. पु. रु. सं. सृ. ख. 10/38, 40)

अनुकूल एवं शुभ समय में किसी पवित्र तीर्थ में नदी आदि के तटपर अपनी रुचि के अनुसार ऐसी जगह शिवलिंग की स्थापना करनी चाहिये, जहाँ नित्य पूजन हो सके। पार्थिव द्रव्य से, जलमय द्रव्य से अथवा तैजस पदार्थ से अपनी रुचि के अनुसार कल्पोक्त लक्षणों से युक्त शिवलिंग का निर्माण करके उसकी पूजा करने से उपासक को उस पूजन का पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। यदि चल

प्रतिष्ठा करनी हो तो इसके लिये छोटा सा शिवलिंग या विग्रह श्रेष्ठ माना जाता है और यदि अचल प्रतिष्ठा करनी हो तो स्थूल शिवलिंग अथवा विग्रह अच्छा माना जाता है। (शिव पु. विद्ये. सं. अ. 11/2-5)

उत्तम लक्षणों से युक्त शिवलिंग की पीठसहित स्थापना करनी चाहिये। शिवलिंग का पीठ मण्डलाकार(गोलाकार), चौकोर, त्रिकोण अथवा खाट के पाये की तरह ऊपर-नीचे मोटा तथा बीच में पतला होना चाहिये। पहले मिट्टी, प्रस्तर अथवा लोहे आदि से लिंग का निर्माण करना चाहिये। जिस द्रव्य से लिंग का निर्माण हो उसी से उसका पीठ भी बनाना चाहिये। किन्तु बाणलिंग के लिये यह नियम नहीं है। लिंग की लम्बाई निर्माणकर्त्ता के बारह अंगुल से कम नहीं होनी चाहिये। ऐसा ही शिवलिंग उत्तम माना जाता है। चर लिंग की लम्बाई कम से कम कर्त्ता के एक अंगुल के बराबर होनी चाहिये। (वि. सं. अ. 11/5-9)

पहले शिल्प-शास्त्र के अनुसार एक विमान या देवालय बनवाये, जो देवगणों की मूर्तियों से अलंकृत हो। उसका गर्भगृह बहुत ही सुन्दर, सुदृढ़ और दर्पण के समान स्वच्छ हो। उसे नौ प्रकार के रत्नों से विभूषित किया गया हो। उसमें पूर्व और पश्चिम दिशा में दो मुख्य द्वार हों। जहाँ शिवलिंग की स्थापना करनी हो उस स्थान के गर्त में नीलम, लाल वैदूर्य, श्याम, मरकत, मोती, मूँगा, गोमेद और हीरा-इन नौ रत्नों को तथा अन्य महत्त्वपूर्ण द्रव्यों को वैदिक मन्त्रों के साथ छोड़े। सद्योजात आदि पाँच वैदिक मन्त्रों द्वारा शिवलिंग का पाँच स्थानों में क्रमशः पूजन करके अग्नि में हविष्य की अनेक आहुतियाँ दे और परिवारसहित पूजा करके गुरुस्वरूप आचार्य, भाई-बन्धु तथा याचकों को संतुष्ट करे। स्थावर-जंगम सभी जीवों को यथासंभव संतुष्ट करके एक गड्ढे में सुवर्ण तथा नौ प्रकार के रत्न भरकर सद्योजातादि मन्त्रों[1] का उच्चारण करके महादेवजी का ध्यान करे। तत्पश्चात् नादघोष से युक्त महामन्त्र ओंकार(ॐ) का उच्चारण करके उक्त गड्ढे में शिवलिंग की स्थापना करके उसे पीठ से संयुक्त करे। इस प्रकार पीठयुक्त लिंग की स्थापना करके उसे दीर्घकालतक टिके रहनेवाले मसाले से जोड़कर स्थिर करे। इसी प्रकार वहाँ सुन्दर मूर्ति की भी स्थापना करनी चाहिये। सारांश यह है कि भूमि-संस्कार आदि की सारी विधि जैसी लिंगप्रतिष्ठा के समय कही गयी है वैसी ही मूर्ति प्रतिष्ठा के लिये समझनी चाहिये। लिंग की प्रतिष्ठा के लिये प्रणवमन्त्र के उच्चारण का विधान है परन्तु मूर्ति की प्रतिष्ठा पंचाक्षर-मन्त्र से करनी चाहिये। जहाँ लिंग की प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ भी उत्सव के लिये तथा बाहर सवारी निकालने के लिये मूर्ति को रखना आवश्यक है। मूर्ति को बाहर से भी लिया जा सकता है। उसे गुरुजनों से ग्रहण करे। प्रायः मूर्ति वही लेने योग्य है, जो साधु पुरुषोंद्वारा पूजित हो। (विद्ये. सं. अ. 11/10-19)

इस तरह महालिंग की स्थापना करके विविध उपचारों द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार उसकी

---

[1] सद्योजातादि पाँच मन्त्रों का उल्लेख 'उपनिषदों में शिवतत्त्व' वाले अध्याय में हो चुका है। पाठक इन मन्त्रों को वहाँ देख लें।

नित्य पूजा करनी चाहिये। तथा मन्दिर के पास ध्वजारोपण आदि करना चाहिये। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, पाद्यांग आचमन, अभ्यंगपूर्वक स्नान, वस्त्र एवं यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल-समर्पण, नीराजन, नमस्कार और विसर्जन-ये सोलह उपचार हैं। इन उपचारों से चर लिंग की पूजा करें।[1] अथवा अर्घ्य से लेकर नैवेद्यतक विधिवत् पूजन करे। अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण- ये सब यथाशक्ति नित्य करें। अथवा किसी मनुष्य के द्वारा, ऋषियों द्वारा एवं देवताओं द्वारा स्थापित शिवलिंग में या स्वयंभूलिंग या अपने द्वारा स्थापित नूतन शिवलिंग में भी उपचार-समर्पण-पूर्वक जैसे-तैसे पूजन करने से या पूजनसामग्री देने से भी मनुष्य पूजा का फल प्राप्त कर लेता है। क्रमशः परिक्रमा और नमस्कार करने से भी लिंगपूजा का फल प्राप्त हो जाता है। यदि नियमपूर्वक शिवलिंग का दर्शनमात्र कर लिया जाय तो वह भी कल्याणप्रद होता है(वि. सं. अ. 11/23-32)।

(7) पार्थिवलिंग का निर्माण एवं उसकी पूजाविधि

सत्ययुग में रत्न का लिंग, त्रेता में सुवर्ण का लिंग, द्वापर में पारे का और कलियुग में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है। जैसे सब देवताओं में महेश्वर ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हैं इसी प्रकार सब लिंगों में पार्थिवलिंग श्रेष्ठ है।

कृतेरत्नमयंलिंगंत्रेतायांहेमसंभवम्।
द्वापरेपारदंश्रेष्ठंपार्थिवंतुकलौयुगे।।
यथासर्वेषुदेवेषुज्येष्ठः श्रेष्ठोमहेश्वरः।
एवं सर्वेषुलिंगेषुपार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते।। (शि. पु. वि. सं. 19/7, 9)

आह्निकसूत्रों में बतायी हुई विधि के अनुसार विधिपूर्वक स्नान और संध्योपासना करके पहले ब्रह्मयज्ञ करे। तत्पश्चात् देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों और पितरों का तर्पण करे। इस प्रकार नित्यकर्म को पूर्ण करके शिवस्मरणपूर्वक भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करे। फिर भक्तिभाव से पार्थिवलिंग की वेदोक्त विधि से भलीभाँति पूजा करे। नदी या तालाब के किनारे, पर्वतपर, वन में, शिवालय में अथवा और किसी पवित्र स्थान में पार्थिव-पूजा करने का विधान है। शुद्ध स्थान से निकाली हुई मिट्टी को लाकर सावधानी के साथ शिवलिंग का निर्माण करे। ब्राह्मण के लिये श्वेत, क्षत्रिय के लिये लाल, वैश्य के लिये पीली और शूद्र के लिये काली मिट्टी से शिवलिंग बनाने का विधान है अथवा जहाँ जो मिट्टी मिल जाय, उसी से शिवलिंग बनाये। मिट्टी की शुद्धि करके जल से सानकर पिण्डी बना ले और वेदोक्त मार्ग से धीरे-धीरे सुन्दर पार्थिवलिंग की रचना करे तत्पश्चात् उसकी पूजा करे।[2] (शि. पु. वि. सं. 20/1-9)

कलियुग में लोगों के लिये शिवलिंग-पूजन जैसा श्रेष्ठ साधन दूसरा कोई नहीं है। बिना पार्थिवलिंग की पूजा किये अगर दूसरे देवताओं की पूजा की जाती है तो वह पूजा तथा उससे

---

[1] षोडषोपचार से पूजा की विस्तृत विधि इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है।
[2] पार्थिव-पूजन की विधि इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है।

संबंधित दम एवं दानादि वृथा हो जाते हैं।

अकृत्वापार्थिवंलिंगंयोन्यदेवंप्रपूजयेत्।
वृथाभवतिसापूजादमदानादिकंवृथा।। (शि. पु. वि. सं. 21/4)

विभिन्न प्रकार की कामनाओं की पूर्ति हेतु भिन्न-भिन्न संख्या में पार्थिवलिंगपूजन का विधान बताया गया है। उदाहरण के लिये धनार्थी को पाँच सौ, पुत्रार्थी को डेढ़ हजार तथा मोक्षार्थी को एक करोड़ लिंगों की पूजा करनी चाहिये। (शि. पु. वि. सं. 21/8-9)

लिंग तीन प्रकार के कहे गये हैं- उत्तम, मध्यम और अधम। जो चार अंगुल ऊँचा और देखने में सुन्दर तथा वेदीयुक्त हो वह उत्तम, उससे आधे प्रमाण का मध्यम तथा उससे आधा अधम कहा गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम संकर-कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकार के अनुसार वैदिक अथवा तान्त्रिक मंत्र से सदा आदरपूर्वक शिवलिंग की पूजा करे। शिवलिंगपूजन में अधिकार स्त्रियों तथा अन्य सभी लोगों का है। (शि. पु. वि. सं. 21/28-30, 39-40)

ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यः शूद्रोवाप्रतिलोमजः।
पूजयेत्सततंलिंगंतत्तन्मन्त्रेणसादरम्।।
किंबहूक्तेनमुनयः स्त्रीणामपितथान्यतः।
अधिकारोऽस्तिसर्वेषांशिवलिंगार्चनेद्विजाः।। (शि. पु. वि. सं. 21/39-40)

द्विजों के लिये वैदिक पद्धति से ही पूजन करना श्रेष्ठ है। विधिपूर्वक भगवान् शंकर का नैवेद्यान्त पूजन करने के बाद उनकी अष्टमूर्तियों का भी वहीं पूजन करे। पृथ्वी, जल, वायु आदि अष्टमूर्तियों के साथ-साथ शर्व, भव, रुद्र उग्र, भीम, ईश्वर, महादेव तथा पशुपति- इन नामों की भी अर्चना करे। तदनन्तर चन्दन, अक्षत और बिल्वपत्र लेकर वहाँ ईशान आदि के क्रम से भगवान् शिव के परिवार का भी भक्तिभाव से पूजन करे। ईशान, नन्दी, चण्ड, महाकाल, भृंगी, वृष, स्कन्द, कपर्दीश्वर, सोम तथा शुक्र-ये दस शिव के परिवार हैं, जो क्रमशः ईशानादि दसों दिशाओं में पूजनीय हैं। तत्पश्चात् भगवान् शिव के समक्ष वीरभद्र का और पीछे कीर्तिमुख का पूजन करके विधिपूर्वक ग्यारह रुद्रों की पूजा करे। इसके बाद पंचाक्षर-मन्त्र का जप करके शतरुद्रिय स्तोत्र का, नाना प्रकार की स्तुतियों का तथा शिवपंचाग का पाठ करे। तत्पश्चात् परिक्रमा और नमस्कार करके शिवलिंग का विसर्जन करे। (शि. पु. वि. सं. अ. 21/45-52)

जहाँ शिवलिंग स्थापित हो, उससे पूर्व दिशा का आश्रय लेकर न तो बैठना और न ही खड़े होना चाहिये क्योंकि वह दिशा भगवान् के आगे या सामने पड़ती है। शिवलिंग से उत्तर दिशा में भी न बैठे; क्योंकि उधर शिवजी का वामांग है, जिसमें उमा देवी विराजमान हैं। पूजक को शिवलिंग से पश्चिम दिशा में भी नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि वह आराध्यदेव का पृष्ठ भाग है। अतः दक्षिण दिशा ही ग्राह्य है। उसी का आश्रय लेना चाहिये। तात्पर्य यह है कि शिवलिंग से दक्षिण दिशा में उत्तराभिमुख

होकर बैठे और पूजा करे। विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह भस्म का त्रिपुण्ड्र लगाकर, रुद्राक्ष की माला लेकर तथा बिल्वपत्र संग्रह करके ही भगवान् शंकर की पूजा करे, इनके बिना नहीं। शिवपूजन आरंभ करते समय यदि भस्म न मिले तो मिट्टी से ही ललाट में त्रिपुण्ड्र अवश्य कर लेना चाहिये। (शि. पु. वि. सं. अ. 21/54-56)

विनाभस्मत्रिपुण्ड्रेणविनारुद्राक्षमालया।
बिल्वपत्रंविनानैवपूजयेच्छंकरंबुधः।।
भस्माप्राप्तौमुनिश्रेष्ठाःप्रवृत्तेशिवपूजने।
तस्मान्मृदापिकर्तव्यंललाटेचत्रिपुण्ड्रकम्।। (शि. पु. वि. सं. 21/55-56)

लिंगपूजा विभिन्न फलों को प्राप्त करानेवाली है। फलों को ध्यान में रखकर लिंगपूजा में विभिन्न पुष्पों, अन्नों और धाराओं का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये लक्ष्मीप्राप्ति के लिये कमल, बिल्वपत्र, शतपत्र तथा शंखपुष्प से शिव की पूजा करे। तुलसी से की गयी शिवपूजा भोग और मोक्ष दोनों देनेवाली है। इसी प्रकार चावल चढ़ाने से लक्ष्मी तथा जौ से स्वर्गीय सुख की वृद्धि होती है। ज्वर की शान्ति के लिये जल की धारा तथा वंश के विस्तार के लिये घी की धारा चढ़ानी चाहिये। विभिन्न प्रकार की धाराओं से अभिषेक करते समय शतरुद्रिय, रुद्रमन्त्र, पुरुषसूक्त, छः ऋचावाले रुद्रसूक्त, महामृत्युञ्जय, गायत्री अथवा शिव के शास्त्रोक्त नामों के आदि में प्रणव और अन्त में 'नमः' पद जोड़ कर बने हुए मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये। (शि. पु. रुद्रसं. सृ. ख. अ. 14)

(8) भगवान् शिव की भक्ति

इस पुराण में भगवान् शिव की प्राप्ति के अनेक साधनों यथा ज्ञान, ध्यान, योग, भक्ति आदि का वर्णन किया गया है। परन्तु भक्ति की महत्ता को अन्य सभी साधनों से अधिक सराहा गया है। उपमन्यु भगवान् कृष्ण से कहते हैं कि जिसके पास बहुत थोड़ा धन है, वह मानव भी भक्तिभाव से प्रेरित होकर भगवान् शिव का पूजन कर सकता है किन्तु महान् वैभवशाली भी यदि भक्तिहीन है तो उसे शिव का पूजन नहीं करना चाहिये। शिव के प्रति भक्तिहीन पुरुष यदि सर्वस्व भी दे डाले तो उससे वह शिवाराधना के फल का भागी नहीं होता; क्योंकि आराधना में भक्ति ही कारण है। शिव के प्रति भक्ति को छोड़कर कोई अत्यन्त उग्र तपस्याओं और सम्पूर्ण महायज्ञों से भी दिव्य शिव के धाम को नहीं जा सकता। अतः सर्वत्र शिव के आराधन में भक्ति का ही महत्त्व है।

भक्त्या प्रचोदितः कुर्यादल्पवित्तोऽपि मानवः।
महाविभवसारोऽपि न कुर्याद्भक्तिवर्जितः।।
सर्वस्वमपि यो दद्याच्छिवे भक्तिविवर्जितः।
न तेन फलभाक् स स्याद्भक्तिरेवात्र कारणम्।।
न तत्तपोभिरत्युग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः।

गच्छेच्छिवपुरं दिव्यं मुक्त्वा भक्तिं शिवात्मिकाम्।।

(शि. पु. वा. सं. उ. ख. 25/51-53)

भक्ति और श्रद्धा को कभी-कभी पर्यायवाची मान लिया जाता है। कारण यह है कि भक्ति का मूल श्रद्धा है। इस श्रद्धा का महत्त्व सर्वत्र बताया गया है। महादेवजी स्वमुख से कहते हैं कि "यदि साधक के मन में श्रद्धा-भक्ति न हो तो पूजनकर्म, तपस्या, जप, आसन आदि, ज्ञान तथा अन्य साधन से भी मैं उसके वशीभूत नहीं होता हूँ। यदि मनुष्यों की मुझमें श्रद्धा हो तो जिस किसी भी हेतु से मैं उनके वश में हो जाता हूँ। फिर तो वह मेरा दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं मेरे साथ सम्भाषण भी कर सकता है। जो मेरी शरण ले मेरा भक्त बन जाता है, वह स्वयं ही अपनी आत्मा का उद्धार कर लेता है(वा. सं. उ. ख. अ. 10)।"

न कर्मणा न तपसा न जपैर्नासनादिभिः।
न ज्ञानेन न चान्येन वश्योऽहं श्रद्धया विना।।
श्रद्धा मय्यस्ति चेत्पुंसां येन केनापि हेतुना।
वश्यः स्पृश्यश्च दृश्यश्च पूज्यस्संभाष्य एव च।।
आश्रित्य मम भक्तश्चेत्स्वात्मनात्मानमुद्धरेत्।

(शि. पु. वा. सं. उ. ख. 10/15-16, 25)

सर्वव्यापी, माया से परे तथा सम्पूर्ण द्वन्द्वों से रहित परमात्मा शिव की प्राप्ति शिव-ज्ञान के उदय से अथवा शिव के भजन आदि से होती है। संसार में ज्ञान की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, परन्तु भगवान् का भजन अत्यन्त सुकर माना गया है। इसलिये संतशिरोमणि पुरुष मुक्ति के लिये भी शिव का भजन ही करते हैं। भगवान् शिव भजन के अधीन हैं। भगवान् शिव की भक्ति ज्ञान की जननी मानी गयी है जो सदा भोग और मोक्ष देनेवाली है। वह महापुरुषों के कृपाप्रसाद से सुलभ होती है। उत्तम प्रेम का अंकुर ही उसका लक्षण है।

ज्ञानं तु दुष्करं लोके भजनं सुकरं मतम्।
तस्माच्छिवं च भजत मुक्त्यर्थमपि सत्तमाः।।
शिवो हि भजनाधीनो ज्ञानात्मा मोक्षदः परः।

……………………………………………………………

ज्ञानमाता शंभुभक्तिर्मुक्तिभुक्तिप्रदा सदा।
सुलभा यत्प्रसादाद्धि सत्प्रेमांकुर लक्षणा।। (शि. पु. को. रु. सं. 41/17-19)

भगवान् शिव दक्ष से कहते हैं कि-यद्यपि मैं सबका ईश्वर और स्वतंत्र हूँ, तो भी सदा ही भक्तों के अधीन रहता हूँ। चार प्रकार के पुरुष मेरा भजन करते हैं। उन चारों में पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। उनमें पहला आर्त, दूसरा जिज्ञासु, तीसरा अर्थार्थी और चौथा ज्ञानी है। पहले के

तीन तो सामान्य श्रेणी के भक्त हैं। किंतु चौथा का अपना विशेष महत्त्व है। उन सबमें चौथा ज्ञानी ही मुझे अधिक प्रिय है। वह मेरा रूप माना गया है। ज्ञान के द्वारा विद्वान् लोग मुझे जानते हैं। जिनकी बुद्धि मन्द है, वे ही ज्ञान के बिना मुझे पाने का प्रयत्न करते हैं। कर्म के अधीन हुए मूढ़ मानव मुझे वेद, यज्ञ, दान और तपस्या द्वारा भी नहीं पा सकते (रु. सं. स. ख. अध्याय 43 / 3 - 8)।

कहने का अभिप्राय है कि ज्ञान के बिना शिवतत्त्वतक नहीं पहुँचा जा सकता। पर सीधे-सीधे ज्ञान की प्राप्ति अत्यधिक कठिन है, उसे योग या ध्यान तथा भक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। पुनः योग और ध्यान के सभी अधिकारी नहीं है, अर्थात् योग-ध्यान भी सामान्य लोगों से सिद्ध होनेवाला नहीं है। अतः भक्ति का ही आश्रय लेना सुगमतम रास्ता है जिससे ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

सती भगवान् शिव से परमतत्त्व के बारे में जानना चाहती हैं तथा उनसे उस कर्म का अनुष्ठान भी जानना चाहती हैं जिससे विषयी जीव परमपद को प्राप्त कर ले। उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि "सुनो; मैं उस परमतत्त्व का वर्णन करता हूँ, जिससे वासनाबद्ध जीव तत्काल मुक्त हो सकता है। तुम विज्ञान को परमतत्त्व जानो। विज्ञान दुर्लभ है। इस त्रिलोकी में उसका ज्ञाता कोई विरला ही होता है। वह जो और जैसा भी है, सदा मेरा स्वरूप ही है। उस विज्ञान की माता है मेरी भक्ति, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाली है। वह मेरी कृपा से सुलभ होती है। भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं है। भक्त और ज्ञानी दोनों को ही सदा सुख प्राप्त होता है। जो भक्ति का विरोधी है, उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। देवि! मैं सदा भक्त के अधीन रहता हूँ और भक्ति के प्रभाव से जातिहीन नीच मनुष्यों के घरों में भी चला जाता हूँ, इसमें संशय नहीं हैं।" (शि. पु. रु. सं. स. ख. 23 / 8 - 9, 13 - 17)

परतत्त्वं विजानीहि विज्ञानं परमेश्वरी।
तन्माता मम भक्तिश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
सुलभा मत्प्रसादाद्धि नवधा सा प्रकीर्तिता।।
भक्तौज्ञाने न भेदो हि तत्कर्तुस्सर्वदा सुखम्।
विज्ञानं न भवत्येव सति भक्तिविरोधिनः।।
भक्त्याहीनस्सदाहं वै तत्प्रभावाद्गृहेष्वपि।
नीचानां जातिहीनानां यामि देवि न संशयः।।

(शि. पु. रु. सं. स. ख. 23 / 13, 15 - 17)

"सती! भक्ति दो प्रकार की होती है- सगुणा और निर्गुणा। जो वैधी (शास्त्रविधि से प्रेरित) और स्वाभाविकी (हृदय के सहज अनुराग से प्रेरित) भक्ति होती है, वह श्रेष्ठ है तथा इससे भिन्न जो कामनामूलक भक्ति होती है, वह निम्नकोटि की मानी गयी है। पूर्वोक्त सगुणा और निर्गुणा-ये दोनों प्रकार की भक्तियाँ नैष्ठिकी और अनैष्ठिकी के भेद से दो प्रकार की हो जाती हैं। नैष्ठिकी भक्ति

छः प्रकार की और अनैष्ठिकी एक प्रकार की कही गयी है। विद्वान् पुरुष विहिता और अविहिता आदि भेद से उसे अनेक प्रकार की मानते हैं। इन द्विविध भक्तियों के अनेक भेद-प्रभेद हैं।" (वही 23/18-20)

"मुनियों ने सगुणा और निर्गुणा दोनों भक्तियों के नौ अंग-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन, (सदा मेरा) वंदन, सख्य और आत्मसमर्पण-माने हैं। शिवे! भक्ति के उपांग भी बहुत से बताये गये हैं।

श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा।
दास्य तथार्चनं देवि वन्दनं मम सर्वदा।।
सख्यमात्मार्पणं चेति नवाङ्गानि विदुर्बुधाः।
उपांगानि शिवे तस्या बहूनि कथितानि वै।। (शि. पु. रु. सं. स. ख. 23/22-23)

"जो स्थिर आसन से बैठकर तन-मन आदि से मेरी कथा-कीर्तन आदि का नित्य सम्मान करता हुआ प्रसन्नतापूर्वक अपने कानों से उसके रस का पान करता है, उसके इस साधन को 'श्रवण' कहते हैं। जो हृदयाकाश के द्वारा मेरे दिव्य जन्म-कर्मो का चिन्तन करता हुआ प्रेम से वाणीद्वारा उनका उच्चस्वर से उच्चारण करता है, उसके इस भजन-साधन को 'कीर्तन' कहते हैं। मुझ नित्य महेश्वर को सदा और सर्वत्र व्यापक जानकर जो संसार में निरन्तर निर्भय रहता है, उसको 'स्मरण' कहा गया है। अरुणोदय से लेकर हर समय सेव्य की अनुकूलता का ध्यान रखते हुए हृदय और इन्द्रियों से जो निरन्तर सेवा की जाती है, वही 'सेवन' नामक भक्ति है। अपने को प्रभु का किंकर समझकर हृदयामृत के भोग से स्वामी का सदा प्रिय सम्पादन करना 'दास्य' कहा गया है। अपने धन-वैभव के अनुसार शास्त्रीय विधि से मुझ परमात्मा को सदा पाद्य आदि सोलह उपचारों का जो समर्पण करना है, उसे 'अर्चन' कहते हैं। मन से ध्यान और वाणी से वन्दनात्मक मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक आठों अंगों से भूतल का स्पर्श करते हुए जो इष्टदेव को नमस्कार किया जाता है, उसे 'वन्दन' कहते हैं। ईश्वर मंगल या अमंगल जो कुछ भी करता है, वह सब मेरे मंगल के लिये ही है। ऐसा दृढ़ विश्वास रखना 'सख्य' भक्ति का लक्षण है। देह आदि जो कुछ भी अपनी कही जानेवाली वस्तु है, वह सब भगवान् की प्रसन्नता के लिये उन्हीं को समर्पित करके अपने निर्वाह के लिये कुछ भी बचाकर न रखना अथवा निर्वाह की चिन्ता से भी रहित हो जाना 'आत्मसमर्पण' कहलाता है।" (शि. पु. रु. स. स. ख. 23/21-33)

भगवान् शिव कहते हैं कि ये मेरी भक्ति के नौ अंग हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। इनसे ज्ञान का प्राकट्य होता है तथा ये सब साधन मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी भक्ति के बहुतसे उपांग भी कहे गये हैं, जैसे बिल्व आदि का सेवन आदि। इनको विचार से समझ लेना चाहिये। भक्ति ज्ञान एवं वैराग्य की जननी है। मुक्ति भक्ति की दासी है तथा सब साधनों से ऊपर विराजमान है।

तीनों लोकों और चारों युगों में भक्ति के समान दूसरा कोई सुखदायक मार्ग नहीं है। कलियुग में तो यह विशेष सुखद, सुविधाजनक तथा प्रत्यक्ष फल देनेवाली है।

इत्थं सांगोपांगभक्तिर्मम सर्वोत्तमा प्रिये।
ज्ञानवैराग्यजननी मुक्तिदासी विराजते।।
त्रैलोक्ये भक्तिसदृशः पन्था नास्ति सुखावहः।
चतुर्युगेषु देवेशि कलौ तु सुविशेषतः।।
कलौ प्रत्यक्षफलदा भक्तिस्सर्वयुगेष्वपि। (शि. पु. रु. सं. स. ख. 23/36, 38, 40)

संसार में जो भक्तिमान् पुरुष हैं, उनकी मैं सदा सहायता करता हूँ, उनके सारे विघ्नों को दूर हटाता हूँ। भक्त का जो शत्रु होता है, वह मेरे लिये दण्डनीय है– इसमें संशय नहीं है।

यो भक्तिमान्पुमाँल्लोके सदाहं तत्सहायकृत्।
विघ्नहर्ता रिपुस्तस्य दण्ड्यो नात्र च संशय।। (शि. पु. रु. सं. स. ख. 23/41)

(९) शिव–नामजप

नवधा भक्ति में 'कीर्तन' एवं 'वन्दन', शिवधर्म के चार पादों में 'योग' तथा शिवधर्म के पाँच भेदों में 'जप' के अन्तर्गत भगवान् शिव के नाम–जप का बड़ा ही महत्त्व है। सच तो यह है कि नाम–जप अपने आप में भगवद्प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन है जो अन्य साधनों से स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। गीता में भी सभी यज्ञों में जपयज्ञ को श्रेष्ठ माना गया है। इसी प्रकार योगों में भी जप–योग का महत्त्व सर्वत्र स्वीकार किया जाता है।

नारद के मोहभंग हो जानेपर भगवान् विष्णु नारदजी से कहते हैं कि "'शिव' इस नामरूपी दावानल से बड़े–बड़े पातकों के असंख्य पर्वत अनायास भस्म हो जाते हैं– यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। जो भगवान् शिव के नामरूपी नौका का आश्रय लेते हैं, वे संसार–सागर से पार हो जाते हैं। संसार के मूलभूत उनके सारे पाप निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। महामुने! संसार के मूलभूत जो पातकरूपी वृक्ष हैं, उनका शिवनामरूपी कुठार से निश्चय ही नाश हो जाता है।"

शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः।
भस्मीभवन्त्यनायासात्सत्यं सत्यं न संशयः।।
शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ते।
संसारमूलपापानि तस्य नश्यन्त्यसंशयम्।।
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने।
शिवनामकुठारेण विनाशोजायते ध्रुवम्।। (शि. पु. रु. सं. सृ. ख. 4/45, 51–52)

जो लोग पापरूपी दावानल से पीड़ित हैं, उन्हें शिवनामरूपी अमृत का पान करना चाहिये। पापदावाग्नि से दग्ध होनेवाले प्राणियों को उसके बिना शान्ति नहीं मिल सकती। यही कारण है कि

नारदजी को भगवान् विष्णु ने शिवशत्नाम जपने की सलाह दी थी।

शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः।
पापदावाग्नितप्तानां शांतिस्तेन विना न हि।।
शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुतः।
संसारदवमध्येपि न शोचंति न संशयः।। (शि. पु. रु. सं. स. ख. 4/53-54)

सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि- "जिनके मुख में भगवान् शिव का नाम है, जो अपने मुख से सदाशिव और शिव इत्यादि नामों का उच्चारण करते रहते हैं, पाप उनका उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे खदिर-वृक्ष के अंगार को छूने का साहस कोई भी प्राणी नहीं कर सकते। 'शिव' इस नामरूपी दावानल से महान् पातकरूपी पर्वत अनायास ही भस्म हो जाता है-यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है। पापमूलक जो नाना प्रकार के दुःख हैं, वे एकमात्र शिवनाम से ही नष्ट होनेवाले हैं। दूसरे साधनों से सम्पूर्ण यत्न करनेपर भी पूर्णतया नष्ट नहीं होते हैं। जो मनुष्य इस भूतल पर सदा भगवान् शिव के नामों के जप में ही लगा हुआ है, वह वेदों का ज्ञाता है, वह पुण्यात्मा है, वह धन्यवाद का पात्र तथा विद्वान् माना गया है। मुने! जिनका शिवनाम-जप में विश्वास है, उनके द्वारा आचरित नाना प्रकार के धर्म तत्काल फल देने के लिये उत्सुक हो जाते हैं। महर्षे! भगवान् शिव के नाम से जितने पाप नष्ट होते हैं, उतने पाप मनुष्य इस भूतल पर कर नहीं सकते।"

मुखेयस्यशिवनामसदाशिवशिवेतिच।
पापानिनस्पृशंत्येवखदिरांगारंकयथा।। (शि. पु. विद्ये. सं. 23/6)
शिवेतिनामदावाग्नेर्महापातक पर्वताः।
भस्मीभवंत्यनायासात्सत्यंसत्यंनसंशयः।।
पापमूलानिदुःखानिविविधान्यपि शौनक।
शिवनामैकनश्यानिनान्यनश्यानिसर्वथा।।
सवैदिकः सपुण्यात्मासधन्यस्सबुधोमतः।
शिवनामजपासक्तो योनित्यंभुविमानव।।
भवन्तिविविधाधर्मास्तेषांसद्यः फलोन्मुखाः।
येषांभवतिविश्वासःशिवनामजपेमुने।।
पातकानिविनश्यन्तियावन्तिशिवनामतः।
भुवितावन्तिपापानिक्रियन्तेननरैर्मुने।। (शि. पु. वि. सं. 23/23-27)

सूतजी आगे कहते हैं कि "जो शिवनामरूपी नौकापर आरूढ़ हो संसाररूपी समुद्र को पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसार के मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। महामुने! संसार के मूलभूत पातकरूपी पादपों का शिवनामरूपी कुठार से निश्चय ही नाश हो जाता है। जो पापरूपी

दावानल से पीड़ित हैं, उन्हें शिव-नामरूपी अमृत का पान करना चाहिये। पापों के दावानल से दग्ध होनेवाले लोगों को उस शिव-नामामृत के बिना शान्ति नहीं मिल सकती। जो शिवनामरूपी सुधा की वृष्टिजनित धारा में गोते लगा रहे हैं, वे संसाररूपी दावानल के बीच में खड़े होनेपर भी कदापि शोक के भागी नहीं होते। जिन महात्माओं के मन में शिवनाम के प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगों की सर्वथा मुक्ति होती है" (शि. पु. वि. सं. 23/29-33)।

शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ये।
संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम्।।
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने।
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्।।
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः।
पापदावाग्नितप्तानां शान्तिस्तेन विना न हि।।
शिवेति नामपीयूषवर्षाधारापरिप्लुताः।
संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन।।
शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम्।
तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा।।

सूतजी पुनः कहते हैं कि "मुनीश्वर! जिसने अनेक जन्मोंतक तपस्या की है, उसी की शिवनाम के प्रति भक्ति होती है, जो समस्त पापों का नाश करनेवाली है। जिसके मन में भगवान् शिव के नाम के प्रति कभी खण्डित न होनेवाली असाधारण भक्ति प्रकट हुई है, उसी के लिये मोक्ष सुलभ है-यह मेरा मत है। जो अनेक पाप करके भी भगवान् शिव के नाम-जप में आदरपूर्वक लग गया है, वह समस्त पापों से मुक्त हो ही जाता है-इसमें संशय नहीं है। जैसे वन में दावानल से दग्ध हुए वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिवनामरूपी दावानल से दग्ध होकर उस समयतक के सारे पाप भस्म हो जाते हैं।"

अनेकजन्मभिर्येनतपस्तप्तं मुनिश्वर।
शिवनाम्निभवेद्भक्तिः सर्वपापापहारिणी।।
यस्यासाधारणंशंभुनाम्निभक्तिररवंडिता।
तस्यैवमोक्षः सुलभोनान्यस्येतिमतिर्मम।।
कृत्वाप्यनेकपापानिशिवनामजपादरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तोभवत्येवनसंशयः।।
भवंतिभस्मसाद्वृक्षादवदग्धायथावने।
तथातावंतिदग्धानिपापानिशिवनामतः।। (शि. पु. विद्ये. सं. 23/34-37)

"सम्पूर्ण वेदों का अवलोकन करके पूर्ववर्ती महर्षियों ने यही निश्चित किया है कि भगवान् शिव के नाम का जप संसार-सागर को पार करने के लिये सर्वोत्तम उपाय है।"

विलोक्यवेदानखिलाञ्छिवनामजपः परम्।
संसारतारणोपायइतिपूर्वैर्विनिश्चितः।। (शि. पु. विद्ये सं. 23/40)

जिससे 'शिव' यह दो अक्षरोंवाला नाम कभी बातचीत के प्रसंग से एकबार भी उच्चारित हो जाय तो वह नाम उस व्यक्ति के सम्पूर्ण पापराशि का शीघ्र नाश कर देता है।

शिवेति द्व्यक्षरं यस्य नृणां नाम गिरेरितम्।
सकृत्प्रसंगात्सकलमघमाशु विहंति तत्।। (शि. पु. रु. सं. स. ख. 29/47)

अधिक कहने से क्या लाभ, शिवनाम के सर्वपापहारी माहात्म्य का एक ही श्लोक में वर्णन किया जाता है। भगवान् शंकर के एक नाम में भी पापहरण की जितनी शक्ति है, उतना पातक मनुष्य कभी कर ही नहीं सकता।

पापानांहरणेशम्भोर्नामः शक्तिर्हि पावनी।
शक्नोतिपातकंतावत्कर्तुंनापिनरः क्वचित्।। (शि. पु. विद्ये. स. 23/42)

जैसा पहले ही बताया जा चुका है कि ॐकार या प्रणव साक्षात् भगवान् शिव के निर्गुणस्वरूप का वाचक है। इस ओंकार से पंचाक्षर मन्त्र की उत्पत्ति हुई जो भगवान् शिव के सगुणरूप का द्योतक है। इस पंचाक्षर मन्त्र से मातृका वर्ण प्रकट हुए, जो पाँच भेद वाले हैं।[1] उसी से शिरोमन्त्र सहित त्रिपदा गायत्री का प्राकट्य हुआ है। उस गायत्री से सम्पूर्ण वेद और उन वेदों से करोड़ों मन्त्र निकले हैं। उन मन्त्रों से भिन्न-भिन्न कार्यों की सिद्धि होती है; परन्तु इस प्रणव एवं पंचाक्षर मन्त्र के जप से सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि होती है। इससे भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं। (संक्षिप्त शि. पु. विद्ये. सं. अ. 10 पृ. 23)

(10) प्रणवोपासना

ॐकार को प्रणव संज्ञा देने के बारे में कई तरह के कारण दिये गये हैं। **'प्र'** नाम है प्रकृति से उत्पन्न संसाररूपी महासागर का। प्रणव इससे पार करने के लिये दूसरी (नव) नाव है। इसलिये इस ॐकार को प्रणव कहते हैं। ॐकार अपने जप करनेवाले साधकों से कहता है- **'प्र-प्रपंच, न-नहीं है, वः-तुम लोगों के लिये।'** अतः इस भाव को लेकर भी ज्ञानी पुरुष-'ओम्' को 'प्रणव' नाम से जानते हैं। इसका दूसरा भाव यों है- **'प्र- प्रकर्षेण, न-नयेत्, वः-युष्मान् मोक्षम् इति वा प्रणवः।** अर्थात् यह तुम सब उपासकों को बलपूर्वक मोक्षतक पहुँचा देगा।' इस अभिप्राय से भी इसे ऋषि- मुनि 'प्रणव' कहते हैं। अपना जप करनेवाले योगियों तथा अपने मन्त्र की पूजा करनेवाले

---

[1] अ इ उ ऋ लृ-ये पाँच मूलभूत हैं तथा व्यञ्जन भी पाँच-पाँच वर्णों से युक्त पाँच वर्गोंवाले हैं।

उपासक के समस्त कर्मों का नाश करके यह दिव्य नूतन ज्ञान देता है; इसलिये भी इसका नाम प्रणव[1] है। उन मायारहित महेश्वर को ही नव अर्थात् नूतन कहते हैं। वे परमात्मा प्रकृष्टरूप से नव अर्थात् शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये 'प्रणव' कहलाते हैं। प्रणव साधक को नव अर्थात् नवीन(शिवस्वरूप) कर देता है। इसलिये भी विद्वान् पुरुष उसे प्रणव नाम से जानते हैं। अथवा प्रकृष्टरूप से नव - दिव्य परमात्मज्ञान प्रकट करता है, इसलिये वह प्रणव है।

प्रोहिप्रकृतिजातस्यसंसारस्यमहोदधेः।
नवंनावान्तरमितिप्रणववैविदुर्बुधाः।।
प्रःप्रपञ्चोननास्तिवो युष्माकंप्रणवंविदुः।
प्रकर्षेणनयेद्यस्मान्मोक्षंवःप्रणवंविदुः।।
स्वजापकानांयोगिनांस्वमन्त्रपूजकस्यच।
सर्वकर्मक्षयंकृत्वा दिव्यज्ञानंतुनूतनम्।।
तमेवमायारहितंनूतनंपरिचक्षते।
प्रकर्षेणमहात्मानंनवंशुद्धस्वरूपकम्।।
नूतनंवैकरोतीतिप्रणवंतंविदुर्बुधाः। (शि. पु. विद्ये. सं. 17/4-8)

भगवान् शिव पार्वती से एक स्थलपर कहते हैं कि-ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियों का यह प्रणव ही प्राण है, इससे इसको 'प्रणव' कहते हैं।

ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु।
प्राणः प्रणव एवायं तस्मात्प्रणव ईरितः।। (शि. पु. कै. सं. 3/14)

प्राणीमात्र श्वास-प्रश्वास में हंस-मन्त्र का उच्चारण करते हैं। इस मन्त्र में भी सदा प्रणव का ही जाप होता है, इस बात को कार्तिकेयजी वामदेव के प्रति कहते हैं-

प्रतिलोमात्मके हंसे वक्ष्यामि प्रणवोद्भवम्।
तवस्नेहाद्वामदेव सावधानतया श‍ृणु।।
व्यञ्जनस्य सकारस्य हकारस्य च वर्ज्जनात्।
ओमित्येव भवेत्स्थूलो वाचकः परमात्मनः।। (शि. पु. कै. सं. 16/37-38)

अर्थात्-हे वामदेव! हंस-मन्त्र के प्रतिलोम(उलटा) 'सोऽहं' मन्त्र से प्रणव की प्राप्ति के विषय में मैं तुमसे कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। व्यंजन 'स' कार और 'ह' कार के वर्जन(लोपहोने) से 'ॐ' इस प्रकार परमात्मा का वाचक स्थूल अक्षर होता है।

इस प्रणव-मन्त्र को 'तारक' मन्त्र भी कहा जाता है क्योंकि इससे प्राणी भवसागर से तर जाते हैं। भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं-

---

[1] प्र (कर्मक्षयपूर्वक) नव (नूतन ज्ञान देनेवाला)

एनमेव हि देवेशि सर्वमन्त्रशिरोमणिम्।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे।। (शि. पु. कै. सं. 3/10)

अर्थात्– हे देवि! सर्वमन्त्रों के शिरोमणि इस ओंकार को ही मैं काशी में प्राण त्याग करनेवाले जीवों को मुक्ति हेतु देता हूँ।

कार्तिकेयजी भी वामदेवजी से कहते हैं–

एनमेव महामन्त्रं जीवानां च तनुत्यजाम्।
काश्यां संश्राव्य मरणे दत्ते मुक्तिं परां शिवः।। (शि. पु. कै. सं. 13/62)

अर्थात्– शिवजी काशी में शरीर त्याग करनेवाले को मरते समय इसी महामन्त्र का उपदेश देकर मुक्त करते हैं।

प्रणव सूक्ष्म एवं स्थूल के भेद से दो प्रकार का होता है। एकाक्षर 'ॐकार' सूक्ष्म एवं 'नमः शिवाय' स्थूल प्रणव कहलाता है। सूक्ष्म प्रणव भी ह्रस्व एवं दीर्घ के भेद से दो प्रकार का होता है। प्रवृत्त पुरुषों को ह्रस्व एवं निवृत्त पुरुषों को दीर्घ प्रणव[1] का जप करना चाहिये। यों तो सूक्ष्म प्रणव–जप के असली अधिकारी वे हैं जिनमें दृढ़ वैराग्य हो, या शम–दमादि धर्म में निरत, वेदान्तज्ञान के पारगामी, मात्सर्यरहित तथा यत्नशील उपासक हों।

अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढम्।।
शमादिधर्मनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः।
अत्राधिकारी स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः।। (शि. पु. कै. सं. 3/35, 66)

प्रणव के स्थान के बारे में कहा गया है–

आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम्।
विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात्।।
स्थानान्येतानि देवेशि शान्त्यतीतं परात्परम्। (शि. पु. कै. सं. 3/34-35)

अर्थात्– आधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धि, आज्ञाचक्र, शक्ति और शान्ति– ये कला क्रम से प्रणव के स्थान हैं, भगवान् शिव कहते हैं हे देवि! शान्ति से जो अतीत है उसको 'परात्पर' कहते हैं।

(11) सूक्ष्म प्रणव का जप

भगवान् शिव पार्वती को प्रणव जप की विधि बताते हुए कहते हैं कि पहले उपासक स्वच्छ, शोकरहित, उज्ज्वल, अष्ट दलकमल के समान मकरन्दयुक्त, कर्णिका से शोभायमान हृदय कमल के मध्यमें आधार–शक्ति से आरंभ करके त्रितत्त्वमय उत्तम पद का ध्यान करके दहरव्योम की भावना करे। 'ॐ' इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण कर साम्बशिव का दहराकाश के बीच में उत्कण्ठा से चिन्तन

---

[1] दीर्घ प्रणव उसे कहते हैं जिसमें अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला संयुक्त हों। यह योगियों के हृदय में स्थित होता है। अ उ म् को ह्रस्व प्रणव कहते हैं। (संक्षिप्त शि. पु. वि. सं. अ. 16 पृ. 47)

करे(कै. सं. 3/67-69)।

इसके उपरान्त ऋषि, छन्द और देवता आदि के उच्चारण के साथ अंगन्यास, करन्यास तथा हृदयन्यास आदि करके ध्यान, जप और अन्त में नमस्कार करना चाहिये। ऋषि, देवता, छन्द तथा हृदयादिन्यास की विधि कैलास संहिता के छठे अध्याय में दी गयी है। हम यहाँ पर संक्षेप में उसका वर्णन कर रहे हैं। विधि की पूर्णता एवं सरलता के लिये हम कुछ ऐसी बातें भी कहेंगे जो उस संहिता में नहीं हैं ताकि पाठक उसका पूरा लाभ उठा सकें।[1]

जप विधि

ॐअस्य श्रीप्रणवमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, परमात्मा सदाशिवो देवता, अं बीजम्, उं शक्तिः, मं कीलकम्, मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः।(शि. पु. कै. सं. 6/61-62)

अङ्गन्यास

शिरसि, ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे, गायत्रीच्छन्दसे नमः। हृदि, परमात्मने देवतायै नमः। गुह्ये, अं बीजाय नमः। पादयोः, उं शक्तये नमः। नाभौ, मं कीलकाय नमः। सर्वाङ्गे, मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः।

करन्यास

अं अंगुष्ठाभ्यां नमः। उं तर्जनीभ्यां नमः। मं मध्यमाभ्यां नमः। अं अनामिकाभ्यां नमः। उं कनिष्ठकाभ्यां नमः। मं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास

अं ब्रह्मणे हृदयाय नमः। उं विष्णवे शिरसे स्वाहा। मं रुद्राय शिखायै वषट्। अं ब्रह्मणे कवचाय हुम्। उं विष्णवे नेत्रत्रयाय वौषट्। मं रुद्राय अस्त्राय फट्। (शि. पु. कै. सं. 6/65-68)

ध्यान

ॐकार निगमैकवेद्यमनिशं वेदान्ततत्त्वास्पदं
चोत्पत्तिस्थितिनाशहेतुममलं विश्वस्य विश्वात्मकम्।
विश्वत्राणपरायणं श्रुतिशतैः सम्प्रोच्यमानं प्रभुं
सत्यं ज्ञानमनन्तमूर्तिममलं शुद्धात्मकं तं भजे।।

नमस्कार

ॐकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः।।

वेद(मन्त्रों) के आदि में तथा दोनों काल के संध्या-वन्दन में ॐकार का प्रयोग करना चाहिये।

---

[1] जप की विधि कल्याण के 'शिवांक' पृ. 337 से ली गयी है।

प्रणव का नौ करोड़ जप करने से पुरुष शुद्ध हो जाता है। फिर नौ करोड़ जप करने से वह पृथ्वी-तत्त्व पर विजय पा लेता है। इसी प्रकांर नौ-नौ करोड़ के जप से क्रमशः जल, अग्नि, वायु एवं आकाश-तत्त्व का जय होता है। पश्चात् नौ-नौ करोड़ से क्रमशः पंचतन्मात्राओं तथा अहंकार-तत्त्व का जय होता है। नित्य सहस्त्र मन्त्र जपने से पुरुष शुद्ध रहता है फिर इससे अधिक जप आत्मज्ञान की सिद्धि के लिये होता है। इस प्रकार 108 करोड़ जप[1] करने से पुरुष प्रबुद्ध होकर शुद्ध योग को प्राप्त होता है और शुद्ध योग से जीवन्मुक्त हो जाता है (विद्ये. सं. 17/18-25)। प्रणव ही समस्त अभीष्ट वस्तुओं को देनेवाला प्रथम लिंग है। इसे सूक्ष्म प्रणवरूप समझना चाहिये। सूक्ष्म लिंग निष्कल होता है और स्थूल लिंग सकल। पंचाक्षर मंत्र को स्थूल लिंग कहते हैं। अब हम स्थूल प्रणव की साधना के बारे में विचार करेंगे।

(12) पंचाक्षरमंत्र की साधना

पंचाक्षर मन्त्र में ॐकार को जोड़कर ही प्रयोग करना चाहिये। ॐकार से मिलकर यह षडक्षर मन्त्र बन जाता है। इस षडक्षर मन्त्र में छहों अंगोसहित सम्पूर्ण वेद और शास्त्र विद्यमान हैं, अतः उसके समान दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। सात करोड़ महामन्त्रों और अनेकानेक उपमन्त्रों से यह मन्त्र उसी प्रकार भिन्न है, जैसे वृत्ति से सूत्र। जितने शिवज्ञान हैं और जो-जो विद्यास्थान हैं, वे सब इस षडक्षर मंत्ररूपी सूत्र के संक्षिप्त भाष्य हैं।

जिनके हृदय में **'ॐ नमः शिवाय'** यह षडक्षर-मन्त्र प्रतिष्ठित है, उसे दूसरे बहुसंख्यक मन्त्रों और अनेक शास्त्रों से क्या प्रयोजन? आदि में **'नमः'** पद से युक्त **'शिवाय'**- ये तीन अक्षर जिसकी जिह्वा के अग्रभाग में विद्यमान हैं, उसका जीवन सफल हो गया। पंचाक्षर मन्त्र के जप में लगा हुआ पुरुष यदि पण्डित, मूर्ख, अन्त्यज अथवा अधम भी हो तो वह पापपंजर से मुक्त हो जाता है।

नमस्कारादिसंयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम्।
जिह्वाग्रेवर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम्।।
अंत्यजो वाधमो वापिमुर्खो वा पंडितोऽपि वा।
पंचाक्षर जपे निष्ठोमुच्यते पापपंजरात्।। (वा. सं. उ. ख. 12/36-37)

(13) पंचाक्षर मन्त्र का जप

'नमः शिवाय' यह पंचाक्षरी विद्या पहले-पहल भगवान् शिव के मुख से निकली है; इसलिये यह उनके स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाली है। इसका एक देवी के रूप में ध्यान करना चाहिये। अब ध्यान, ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति आदि का वर्णन किया जाता है।

---

[1] जपकाल में मकारान्त प्रणव का उच्चारण मन की शुद्धि करनेवाला होता है। समाधि में मानसिक जप का विधान है। तथा अन्य समय में उपांशु जप ही करना चाहिये। नाद और बिन्दु से युक्त ओंकार के उच्चारण को 'समान प्रणव' कहते हैं और इसका उच्चारण या जप योगीलोग हृदय में करते हैं।

ध्यान

तप्तचामीकरप्रख्या पीनोन्नतपयोधरा।।
चतुर्भुजा त्रिनयना बालेंदुकृतशेखरा।
पद्मोत्पलकरा सौम्या वरदाभयपाणिका।।
सर्वलक्षणसंपन्ना सर्वाभरणभूषिता।
सितपद्मासनासीना नीलकुंचितमूर्द्धजा।।
अस्याः पञ्चविधा वर्णाः प्रस्फुरद्रश्मिमंडलाः।
पीतः कृष्णस्तथा धूम्रः स्वर्णाभो रक्त एव च।।
पृथक्प्रयोज्या यद्येते बिंदुनादविभूषिताः।
अर्द्धचन्द्रनिभो बिंदुर्नादो दीपशिखाकृतिः।। (वा. स. उ. ख. 13/40-44)

भावार्थ है-इस देवी की अंगकान्ति तपाये हुए सोने के समान है। इसके पीन पयोधर ऊपर को उठे हुए हैं। यह चार भुजाओं और तीन नेत्रों से सुशोभित है। इसके मस्तकपर बालचन्द्रमा का मुकुट है। दो हाथों में पद्म और उत्पल हैं। अन्य दो हाथों में वरद और अभय की मुद्रा है। मुखाकृति सौम्य है। यह समस्त शुभ लक्षणों से सम्पन्न तथा सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित है। श्वेत कमल के आसन पर विराजमान है। इसके काले-काले घुँघराले केश बड़ी शोभा पा रहे हैं। इसके अंगों में पाँच प्रकार के वर्ण हैं, जिनकी रश्मियाँ प्रकाशित हो रही हैं। वे वर्ण हैं-पीत, कृष्ण, धूम्र, स्वर्णिम तथा रक्त। इन वर्णों का यदि पृथक-पृथक प्रयोग हो तो इन्हें विन्दु और नाद से विभूषित करना चाहिये। विन्दु की आकृति अर्द्धचन्द्र के समान है और नाद की आकृति दीपशिखा के समान।

जपविधि

'ॐ अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरी मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, शिवो देवता, मं बीजम्, यं शक्तिः, वां कीलकं, सदाशिवकृपाप्रसादोपलब्धिपूर्वकमखिलपुरुषार्थसिद्धये जपे विनियोगः। शिवपुराण (वाय. सं. उ. ख. अ. 13/45-46) के वर्णन के अनुसार यही विनियोग वाक्य है। मन्त्र- महार्णव आदि में जो विनियोग दिया गया है, उसमें **'ॐ' बीजम्, 'नमः' शक्तिः, 'शिवाय' इति कीलकम्** इतना अन्तर है।

अंगन्यास (हृदय एवं कर आदि का न्यास)

शिवपुराण (वाय. सं. उ. ख. अ. 13/51-53) के आधार पर अंगन्यास-वाक्य का प्रयोग यों समझना चाहिये-

ॐ ॐ हृदयाय नमः, ॐ नं शिरसे स्वाहा, ॐ मं शिखायै वषट्, ॐ शिं कवचाय

हुम्, ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ यं अस्त्राय फट् इति हृदयादिषडंगन्यासः। इसी तरह करन्यास का प्रयोग है- **ॐ ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः, ॐ नं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ शिं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ वां कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ यं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।**

विनियोग में जो ऋषि आदि का उल्लेख शिवपुराण (वाय. सं. उ. ख. अध्याय 13) में हुआ है, उसका न्यास इस प्रकार समझना चाहिये-**ॐ वामदेवर्षये नमः शिरसि, पंक्तिश्छन्दसे नमः मुखे, शिवदेवतायै नमः हृदये, मं बीजाय नमः गुह्ये, यं शक्तये नमः पादयोः, वां कीलकाय नमः नाभौ, विनियोगाय नमः सर्वांगे।**

भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि-पंचाक्षर मंत्र के गौतम, अत्रि, विश्वामित्र,अंगिरा, और भरद्वाज-ये नकारादि वर्णों के क्रमशः ऋषि माने गये हैं। गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती और विराट्-ये क्रमशः पाँचों अक्षरों के छन्द हैं। इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और स्कन्द-ये क्रमशः उन अक्षरों के देवता हैं। मेरे पूर्व आदि चारों दिशाओं के तथा ऊपर के पाँचों मुख इन नकारादि अक्षरों के क्रमशः स्थान हैं। पंचाक्षर-मंत्र का पहला अक्षर उदात्त है। दूसरा और चौथा भी उदात्त ही है। पाँचवाँ स्वरित है और तीसरा अक्षर अनुदात्त माना गया है। (वाय. सं. उ. ख. 13/47-50)

इस मन्त्र का अनुष्ठानपूर्वक जप भी किया जाता है। अनुष्ठान की विधि इस प्रकार है। गुरु के मुख से पंचाक्षर का उपदेश पाकर जहाँ सुखपूर्वक निवास किया जा सके वहाँ महीने के शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से आरंभ करके कृष्णपक्ष की चतुर्दशीतक निरन्तर जप करता रहे। जप के आरंभ के लिये माघ और भादों के महीने सर्वोत्तम हैं। जापक इस दौरान एक बार परिमित भोजन करे, मौन रहे, इन्द्रियों को वश में रखे, अपने स्वामी एवं माता-पिता की नित्य सेवा करे। भगवान् शिव का निरन्तर चिन्तन करते हुए पंचाक्षर-मंत्र का पाँच लाख जप करे। जपकाल में इस प्रकार ध्यान करे-

कल्याणदाता शिव कमल के आसनपर विराजमान हैं। उनका मस्तक श्रीगंगाजी तथा चन्द्रमा की कला से सुशोभित है। उनकी बायीं जाँघपर आदिशक्ति उमा बैठी हैं। वहाँ खड़े हुए बड़े-बड़े गण भगवान् शिव की शोभा बढ़ा रहे हैं। महादेवजी अपने चार हाथों में मृगमुद्रा, टङ्क तथा वर एवं अभय की मुद्राएँ धारण किये हुए हैं।

पद्मासनस्थंशिवदंगंगाचंद्रकलान्वितम्।।
वामोरुस्थितशक्त्याचविराजंतंमहागणैः।
मृगटंकधरंदेवंवरदाभयपाणिकम्।। (विद्ये. सं. 17/38-39)

इस प्रकार भगवान् सदाशिव का बारम्बार स्मरण करते हुए हृदय अथवा सूर्यमण्डल में पहले उनकी मानसिक पूजा करके फिर पूर्वाभिमुख हो पंचाक्षरी विद्या का जप करे। उन दिनों साधक शुद्ध कर्म ही करे(और दुष्कर्म से बचा रहे)। जप की समाप्ति के दिन कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी को प्रातःकाल नित्यकर्म करके शुद्ध हृदय से पंचाक्षर-मन्त्र का बारह सहस्र जप करे। तत्पश्चात् पाँच सपत्नीक

ब्राह्मणों(जो श्रेष्ठ एवं शिवभक्त हों) का वरण करे। इनके अतिरिक्त एक श्रेष्ठ आचार्य-प्रवर का भी वरण करे। तत्पश्चात् पूजन-सामग्री एकत्रकर विधिपूर्वक शिवपूजा सम्पन्न करके हवन आरंभ करे। (संक्षिप्त शिवपुराण, पृ. 49)

अपने गृह्यसूत्र के अनुसार सुखान्त कर्म करके अर्थात् परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, मृद्-उद्धरण और अभ्युक्षण-इन पंच भूसंस्कारों के पश्चात् वेदी पर स्वाभिमुख अग्नि को स्थापित करके कुशकण्डिका के अनन्तर प्रज्वलित अग्नि में आज्यभागान्त आहुति देकर प्रस्तुत होम का कार्य आरंभ करे। कपिला गाय के घी से ग्यारह, एक सौ एक अथवा एक हजार एक आहुतियाँ स्वयं दे अथवा शिवभक्त ब्राह्मणों से एक सौ आठ आहुतियाँ दिलाये। इसके बाद आचार्य, गुरु तथा वरण किये ब्राह्मणों का चरणोदक ग्रहण करे तथा उन्हें दान-मान से संतुष्ट करे। तदनन्तर दिक्पालादि को बलि देकर ब्राह्मणों को भोजन कराये। पुन: शिव से प्रार्थना करके अपना जप समाप्त करे। इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य उस मन्त्र को सिद्ध कर लेता है। पुन: पाँच लाख जप करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। तदनन्तर पुन: पाँच लाख जप करने पर अतल से लेकर सत्यलोक तक चौदह भुवनों पर क्रमश: अधिकार प्राप्त हो जाता है।(संक्षिप्त शि. पु. वि. सं. पृ. 49-50)

(14) जप संबंधी आवश्यक निर्देश

साधक को चाहिये कि शुद्ध देश में स्नान करके सुन्दर आसन बाँधकर अपने हृदय में साम्ब शिव और अपने गुरु का चिन्तन करते हुए उत्तर या पूर्व की ओर मुँह किये मौनभाव से बैठे, चित्त को एकाग्र करे तथा दहन-प्लावन आदि के द्वारा पाँचों तत्त्वों का शोधन करके मन्त्र का न्यास आदि करे। इसके बाद सकलीकरण की क्रिया सम्पन्न करके प्राण और अपान नियमन करते हुए शिव-शिवा का ध्यान करे और ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति आदि तथा मंत्र के वाच्यार्थ परमेश्वर का स्मरण करके पंचाक्षरी का जप करे। (शि. पु. वाय. सं. उ. ख. 14/20-23)

मानस जप उत्तम, उपांशु मध्यम तथा वाचिक निम्नकोटि का माना गया है। ऊँचे-नीचे स्वर से स्पष्ट और अस्पष्ट पदों एवं अक्षरों के साथ मन्त्र का वाणी द्वारा उच्चारण 'वाचिक' जप कहलाता है। जिस जप में मात्र जिह्वा हिलती है तथा ऐसे स्वर से अक्षरों का उच्चारण होता है कि वह दूसरों को सुनायी नहीं पड़ता, उसे 'उपांशु' कहते हैं। जिस जप में अक्षर-पङ्क्ति का एक वर्ण से दूसरे वर्ण का, एक पद से दूसरे पद का तथा शब्द और अर्थ का मन के द्वारा बारंबार चिन्तन मात्र होता है, वह 'मानस' जप कहलाता है। ये तीनों प्रकार के जप अगर्भ जप कहलाते हैं। इस प्रकार के अगर्भ जप के आदि और अन्त में प्राणायाम कर लेना श्रेष्ठ बताया गया है। अगर्भ जप से श्रेष्ठ 'सगर्भ' जप होता है। जो जप प्राणयामपूर्वक होता है, उसे सगर्भ कहते हैं। सगर्भ जप में अगर समर्थ हो तो प्राणयाम करते समय मन्त्र को चालीस बार स्मरण करके अन्यथा अपनी शक्ति के अनुसार मन्त्र का मानसिक जप करे। अगर्भ जप में पाँच, तीन अथवा एक बार अगर्भ या सगर्भ प्राणायाम करे। सगर्भ की अपेक्षा

ध्यानपूर्वक जप सहस्रगुना फल देनेवाला कहा जाता है। इन पाँच प्रकार के जपों में से कोई एक जप अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिये। (वाय. सं. उ. ख. अ. 14/24, 26-28, 30-39)

जप की गणना माला से करनी अच्छी होती है। सबसे उत्तम रुद्राक्ष की माला होती है। तीस दानोंवाली रुद्राक्षमाला धन देनेवाली, सत्ताईस दानोंवाली पुष्टिदायिनी तथा पन्द्रह दानोंवाली माला अभिचार कर्म के लिये उपयोगी होती है। जपकर्म में अँगूठे को मोक्षदायक और तर्जनी को शत्रुनाशक, मध्यमा धनदायक और अनामिका शन्तिदायक होती है। एक सौ आठ दानों की माला उत्तमोत्तम मानी जाती है। जप करते समय किसी को माला न दीखे। दूसरी अँगुलियों के साथ अंगूठे द्वारा जप करना चाहिये, क्योंकि अंगूठे के बिना किया हुआ जप निष्फल होता है। (वही अ. 14/37-43)

जप को देवालय या शिवालय में करने से अन्य जगहों की तुलना में ज्यादा फल मिलता है। सूर्य, अग्नि, गुरू, देवता, ब्राह्मण तथा अन्य श्रेष्ठ पुरुषों के समीप उनकी ओर पीठ करके जप नहीं करना चाहिये। सिरपर पगड़ी रखकर, कुर्ता पहनकर, नंगा होकर, बाल खोलकर, गले में कपड़ा लपेटकर, अशुद्ध हाथ लेकर, संपूर्ण शरीर से अशुद्ध रहकर तथा विलापपूर्वक कभी जप नहीं करना चाहिये। जप करते समय क्रोध, मद, छींकना, थूकना, जँभाई लेना, तथा कुत्तों और नीच पुरुषों की ओर देखना वर्जित है। यदि कभी वैसा हो जाय तो आचमन करे अथवा शिव-शिवा का स्मरण करे अथवा प्राणायाम कर ले।(वायवीय सं. उ. ख. अ. 14/45, 47-50)

बिना आसन के बैठकर, सोकर, चलते-चलते अथवा खड़ा होकर जप न करे। गली में या सड़कपर, अपवित्र स्थान में तथा अँधेरे में भी जप न करे। दोनों पाँव फैलाकर, कुक्कुट आसन से बैठकर, सवारी या खाट पर चढ़कर अथवा चिंता से व्याकुल होकर जप न करे। यदि शक्ति हो तो इन सब नियमों का पालन करते हुए जप करे और अशक्त पुरुष यथाशक्ति जप करे। संक्षेप में सदाचारी मनुष्य शुद्धभाव से जप और ध्यान करके कल्याण का भागी होता है। (वही अ. 14/51-54)

(15) पंचाक्षर मन्त्र की विशेषता

सदाचार से हीन, पतित और अन्त्यज का उद्धार करने के लिये कलियुग में पंचाक्षर-मन्त्र से बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। चलते-फिरते, खड़े होते अथवा स्वेच्छानुसार कर्म करते हुए अपवित्र या पवित्र पुरुष के जप करनेपर भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता। किसी भी अवस्था में पड़ा हुआ मनुष्य यदि भगवान् शिव में भक्तिभाव रखता है, तो उसके लिये यह मन्त्र निःसन्देह सिद्ध होगा ही, किन्तु दूसरे किसी के लिये यह सिद्ध नहीं हो सकता।

सदाचार विहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च।
पंचाक्षरात्परं नास्ति परित्रांण कलौ युगे।।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयन्न चनिष्फलः।।

अनाचारवतां पुंसामविशुद्धषडध्वनाभ्।
अनादिष्टोऽपि गुरूणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः।।
अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्य च।
निर्मर्यादस्य नीचस्य मंत्रोऽयं न च निष्फलः।।
सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमः परम्।
सिध्यत्येव न संदेहो नापरस्यतु कस्यचित्।। (शि. पु. वाय. सं. उ. ख. 14/62-66)

इस मन्त्र के लिये लग्न, तिथि, नक्षत्र, वार और योग आदि का अधिक विचार अपेक्षित नहीं है। यह मन्त्र कभी सुप्त नहीं होता, सदा जाग्रत ही रहता है। यह महामन्त्र कभी किसी का शत्रु नहीं होता। जो भगवान् शिव, मन्त्र तथा गुरु में अतिशय श्रद्धा रखनेवाला है, उसको मिला हुआ मंत्र किसी गुरु के द्वारा साधित हो या असाधित, सिद्ध होकर ही रहता है, इसमें संशय नहीं है। (वही 14/67-70)

असाधितस्साधितो वा सिध्यत्येव न संशयः।
श्रद्धातिशययुक्तस्य मयि मंत्रे तथा गुरौ।। (शि. पु. वाय. सं. उ. ख. 14/70)

इसलिये अधिकार की दृष्टि से विघ्नयुक्त होनेवाले दूसरे मन्त्रों को त्यागकर विद्वान् पुरुष साक्षात् परमा विद्या पंचाक्षरी का आश्रय ले। दूसरे मन्त्रों के सिद्ध हो जानेपर यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता। परन्तु इस महामंत्र के सिद्ध होनेपर वे दूसरे मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाते हैं। शिवजी पार्वती से कहते हैं कि "महेश्वरी! जैसे अन्य देवताओं के प्राप्त होनेपर भी मैं नहीं प्राप्त होता; परन्तु मेरे प्राप्त होनेपर वे सब देवता प्राप्त हो जाते हैं, यही न्याय इन सब मन्त्रों के लिये भी है। सब मन्त्रों के जो दोष हैं, वे इस मन्त्र में संभव नहीं हैं; क्योंकि यह मन्त्र जाति आदि की अपेक्ष न रखकर प्रवृत्त होता है। तथापि छोटे-छोटे तुच्छ फलों के लिये सहसा इस मन्त्र का विनियोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र महान् फल देनेवाला है।"

मन्त्रान्तरेषु सिद्धेषु मंत्र एष न सिध्यति।
सिद्धे त्वस्मिन्महामंत्रे ते च सिद्धा भवंत्युत।।
यथा देवेष्वलब्धोऽस्मि लब्धेष्वपि महेश्वरि।
मयि लब्धे तु ते लब्धा मंत्रेष्वेषु समो विधिः।।
ये दोषास्सर्वमंत्राणानं तेऽस्मिन्संभवंत्यपि।
अस्य मंत्रस्य जात्यादीननपेक्ष्य प्रवर्तनात्।।
तथापि नैव क्षुद्रेषु फलेषु प्रति योगिषु।
सहसा विनियुंजीत तस्मादेष महाफलः।। (वाय. सं. उ. ख. 14/72-75)

जो कोई बड़ा पाप भी कर चुका हो पर यदि वह पंचाक्षर मन्त्र से शिव की पूजा भक्तिभाव से

करे तो वह उस पाप से छूट जाता है। केवल जल और वायु पर निर्भर रहनेवाले कठोर व्रतों का पालन करने पर भी लोगों को शिवलोक की प्राप्ति नहीं होती। परन्तु जो भक्तिभाव से पंचाक्षर-मन्त्र द्वारा एक बार भी शिव का पूजन कर लेता है, वह भी शिवमन्त्र के गौरव से शिवधाम को चला जाता है।

कृत्वापि सुमहत्पापं भक्त्या पंचाक्षरेण तु।
पूजयेद्यदि देवेशं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते।।
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च ये चान्ये व्रतकर्शिताः।
तेषामेतैर्व्रतैर्नास्ति शिवलोक समागमः।।
भक्त्या पंचाक्षरेणैव यः शिवं सकृदर्चयेत्।
सोपि गच्छेच्छिवस्थानं शिवमन्त्रस्य गौरवात्।। (शि. पु. वा. सं. उ 26/4-6)

(16) भस्म एवं त्रिपुण्ड्र का महत्त्व

यह पहले ही बताया जा चुका है कि भस्म एवं त्रिपुण्ड्र लगाकर ही शिव की पूजा करनी चाहिये। अगर भस्म न मिले तो मिट्टी का ही त्रिपुण्ड्र लगा लेना चाहिये। भस्म-त्रिपुण्ड्र की महिमा बताते हुए कहा गया है कि उद्धूलन(शरीर में भस्म लगाना) और त्रिपुण्ड्र जो श्रद्धा से नहीं करते हैं वे करोड़ों जन्म में भी संसार-सागर से मुक्त नहीं होते न ही उन्हें सौ करोड़ कल्पों में शिव-ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है। जो श्वेत भस्म से तीनों सन्ध्याओं में त्रिपुण्ड्र लगाता है वह सब पापों से मुक्त हो शिव के साथ आंनद का भोग करता है। जिसने भस्म से स्नान नहीं किया हो वह षडक्षर का जप न करे, भस्म का त्रिपुण्ड्र लगाकर ही उसका विधिपूर्वक जप करे। बहुत कहने से क्या है, विद्वानों को सदा भस्म धारण करनी चाहिये, सदा लिगार्चन कर 'षडक्षर मन्त्र' का जप करना चाहिये।

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रंचश्रद्धयानाचरन्तिये।
तेषांनास्तिविनिर्मुक्तिस्संसाराज्जन्मकोटिभिः।।
....।
तेषांनास्तिशिवज्ञानंकल्पकोटिशतैरपि।।
सितेनभस्मनाकुर्य्यात्त्रिसन्ध्यंयस्त्रिपुण्ड्रकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेनसहमोदते।।
अकृत्वाभस्मनास्नानंनजपेद्वैषडक्षरम्।
त्रिपुण्ड्रंचरचित्वातुविधिनाभस्मनाजपेत्।
बहुनात्रकिमुक्तेनधार्यंभस्मसदाबुधैः।।
लिंगार्चनंसदाकार्यंजप्योमंत्रःषडक्षरः। (शि. पु. विद्ये. सं. 24/14-15, 20, 22, 27)

रुद्राग्नि का जो सबसे उत्तम वीर्य(बल) है, वही भस्म कहा गया है। अतः जो सभी समयों में भस्म लगाये रहते हैं, उन्हें वीर्यवान् माना गया है। भस्म में निष्ठा रखनेवाले पुरुष के सारे दोष उस भस्माग्नि

के संयोग से जलकर नष्ट हो जाते हैं। जिसके सारे अंगो में भस्म लगा हुआ है, जो भस्म से प्रकाशमान है, जिसने भस्ममय त्रिपुण्ड्र लगा रखा है तथा जो भस्म से स्नान करता है, उसे भस्मनिष्ठ माना गया है। भूत, प्रेत, पिशाच तथा अत्यन्त दु:सह रोग भी भस्मनिष्ठ से दूर भागते हैं। वह शरीर को भासित करता है तथा पापों का भक्षण करता है इस कारण उसका नाम 'भस्म' है। भूति(ऐश्वर्य) कारक होने से उसे 'भूति' या 'विभूति' भी कहते हैं। विभूति रक्षा करनेवाली है, अत: उसका एक नाम 'रक्षा' भी है। रुद्राग्नि संबंधी भस्म शिवभक्तों के लिये बड़ा भारी अस्त्र है।(शि. पु. वाय. सं. पू. ख. अ. 33/91-97)

विभूति(भस्म) तीन प्रकार की बतायी गयी है-लोकाग्निजनित, वेदाग्निजनति तथा शिवाग्निजनित। लोकाग्निजनित(लौकिक) भस्म को द्रव्यों यथा पात्र, वस्त्र या पर्युसित वस्तुओं की शुद्धि के लिये प्रयोग किया जाता है। वेदाग्निजनित(होम-कर्मजनित) जो भस्म है, उसको उन-उन वैदिक कर्मों के अन्त में धारण करना चाहिये। मन्त्र और क्रिया से जनित जो होमकर्म है, वह अग्नि में भस्म का रूप धारण करता है। उस भस्म को धारण करने से वह कर्म आत्मा में आरोपित हो जाता है। (संक्षिप्त शि. पु. वि. सं. अ. 18 पृ. 55)

अघोर मन्त्र[1] को पढ़कर बेल की लकड़ी को जलाये। इस मंत्र से अभिमंत्रित अग्नि को शिवाग्नि कहा गया है। उसके द्वारा जले हुए काष्ठ का जो भस्म है, वह शिवाग्निजनति है। कपिला गाय के गोबर अथवा गायमात्र के गोबर को तथा शमी, पीपल, पलाश, बड़, अमलतास और बेर-इनकी लकड़ियों को शिवाग्नि से जलाये। फिर उस भस्म को छानकर नये घड़े या अन्य स्वच्छ पात्र में भरकर रख दे और उसका यथासमय प्रयोग करे। किसी अयोग्य या अपवित्र के हाथ में भस्म न दे। भस्म की न तो उपेक्षा करे और न उसे लाँघे ही। अग्निहोत्र या अन्य पूजा से भस्म का संग्रह शिव के विसर्जन से पहले ही कर लेना चाहिये क्योंकि विसर्जन के बाद उसपर चण्ड का अधिकार हो जाता है। (वि. सं. अ. 18/62-65 आदि)

शिव की पूजा से पहले अपने अंगो में भस्म को मलें फिर ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करें। पूजाकाल में सजल भस्म का प्रयोग होता है। यज्ञ या अग्निहोत्र से प्रकट हुआ भस्म भी त्रिपुण्ड्र के काम आ सकता है। जाबालोपनिषद् में आये हुए 'अग्नि:'[2] इत्यादि सात मंत्रोंद्वारा जलमिश्रित भस्म से धूलन(विभिन्न अंगों में मर्दन या लेपन) करना चाहिये। महर्षि जाबालि ने सभी वर्णों और आश्रमों के लिये मंत्र से या बिना मंत्र के भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाने की आवश्यकता बतायी है। समस्त अंगों में सजल भस्म मलना अथवा विभिन्न अंगों में तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना-इन कर्मों को मोक्षार्थी प्रमाद से कभी न छोड़े। (संक्षिप्त शि. पु. वि. सं. अ. 23 पृ. 68)

---

[1] अघोर मन्त्र इस प्रकार है-

"ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।"

[2] ये मंत्र इसी पुस्तक में 'उपनिषदों में शिवतत्त्व' वाले अध्याय में दिये गये हैं।

ललाट आदि सभी निर्दिष्ट स्थानों में भस्म से तीन तिरछी रेखाएँ बनायी जाती हैं, उन्हीं को विद्वानों ने त्रिपुण्ड्र कहा है। भौहों के मध्यभाग से लेकर जहाँतक भौहों का अन्त है, उतना बड़ा त्रिपुण्ड्र ललाट में धारण करना चाहिये। मध्यमा और अनामिका अंगुली से दो रेखाएँ करके बीच में अंगूठे के द्वारा उल्टी दिशा से की गयी तीसरी रेखा मिलकर त्रिपुण्ड्र कहलाती है। अथवा बीच की तीन अंगुलियों से भस्म लेकर ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करे। त्रिपुण्ड्र भोग-मोक्ष कारक है। (शि. पु. वि. स. 24/84-87)

बत्तीस, सोलह, आठ अथवा पाँच स्थानों में त्रिपुण्ड्र का न्यास करे। मस्तक, ललाट, दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, मुख, कण्ठ, दोनों हाथों, दोनों कोहनी, दोनों कलाई, हृदय, दोनों पार्श्वभाग, नाभि, दोनों अण्डकोष, दोनों ऊरु, दोनों गुल्फ, दोनों घुटने, दोनों पिंण्डली और दोनों पैर-ये बत्तीस स्थान हैं। अगर इन बत्तीस जगहों पर संभव न हो तो सोलह स्थानों में ही त्रिपुण्ड्र धारण करे। मस्तक, ललाट, कण्ठ, दोनों कन्धों, दोनों भुजाओं, दोनों कोहनियों तथा दोनों कलाईयों, हृदय, नाभि, दोनों पसलियों तथा पृष्ठ भाग में त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये। अथवा मस्तक, केश, दोनों कान, मुख, दोनों भुजा, हृदय, नाभि, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों पैर और पृष्ठ भाग-इन सोलह स्थानों में त्रिपुण्ड्र लगाये। अगर ऐसा भी संभव न हो तो गुह्य स्थान, ललाट, दोनों कान, दोनों कन्धे, हृदय और नाभि-इन आठ स्थानों में त्रिपुण्ड्र लगाये। अथवा मस्तक, दोनों भुजाएँ, हृदय और नाभि-इन पाँच स्थानों को भस्मवेत्ता पुरुषों ने भस्म धारण करने योग्य बताया है। यथासंभव देश, काल आदि की अपेक्षा रखते हुए भस्म को अभिमंत्रित करना और जल में मिलाना आदि कार्य करे। यदि उद्धूलन में असमर्थ हो तो त्रिपुण्ड्र आदि लगाये। (संक्षिप्तशि. पु. वि. सं. अ. 24 पृ. 69-70)

शिव का स्मरण करते हुए **'नमः शिवाय'** कहकर ललाट में, **'ईशाभ्यां नमः'** कहकर दोनों पार्श्व भागों में **'बीजाभ्यां नमः'** बोलकर दोनों कलाइयों में, **'पितृभ्यां नमः'** कहकर नीचे के अंग में **'उमेशाभ्यां नमः'** कहकर ऊपर के अंग में तथा **'भीमाय नमः'** कहकर पीठ में और शिर के पिछले भाग में त्रिपुण्ड्र लगाये। (विद्ये. सं. 24/114-116)

(17) रुद्राक्ष महिमा

शिव-पूजन में रुद्राक्षधारण करना अनिवार्य है। यह शिव को बहुत ही प्रिय है। इसे परमपावन समझना चाहिये। रुद्राक्ष के दर्शन से, स्पर्श से तथा उसपर जप करने से वह समस्त पापों का अपहरण करनेवाला माना गया है।

शिवप्रियतमोज्ञेयोरुद्राक्षःपरपावनः।
दर्शनात्स्पर्शनाज्जाप्यात्सर्वपापहरः स्मृतः।। (शि. पु. वि. सं. 25/2)

मनुष्य के वर्णों की भाँति रुद्राक्ष भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के भेद से चार प्रकार के होते हैं। उन ब्राह्मण आदि जातिवाले रुद्राक्षों के वर्ण क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण जानने

चाहिये। मनुष्यों को अपने वर्णानुसार ही रुद्राक्ष की जाति को धारण करना चाहिये। भोग और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले चारों वर्णों के लोगों और विशेषतः शिवभक्तों को शिव-पार्वती की प्रसन्नता के लिये रुद्राक्ष के फलों को अवश्य धारण करना चाहिये। (शि. पु. वि. सं. 2 /11-13)

वर्णैस्तुतत्फलंधार्यंभुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः।
शिवभक्तैर्विशेषेणशिवयोः प्रीतयेसदा।। (शि. पु. वि. सं. 25/13)

आँवले के फल के बराबर जो रुद्राक्ष हो, वह श्रेष्ठ बताया गया है। जो बेर के बराबर हो उसे मध्यम और जो चने के बराबर हो उसे निम्नकोटि का कहा गया है। परन्तु माला बनाने की दृष्टि से रुद्राक्ष जैसे-जैसे छोटा होता है वैसे ही वैसे अधिक फल देनेवाला होता है। पापों का नाश करने के लिये रुद्राक्ष-धारण आवश्यक बताया गया है तथा इसका धारण अभीष्ट मनोरथों का साधक भी है। भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि रुद्राक्ष की माला जितनी अन्य कोई माला फलदायिनी नहीं है।

समान आकार-प्रकारवाले, चिकने, मजबूत, स्थूल, कण्टकयुक्त(उभरे हुए छोटे-छोटे दानों वाले) और सुन्दर रुद्राक्ष सदैव भोग-मोक्ष देनेवाले हैं। जिसे कीड़ों ने दूषित कर दिया हो, जो टूटा-फूटा हो, जिसमें उभरे हुए दाने न हों, जो व्रणयुक्त हो तथा जो पूरा-पूरा गोल न हो, इन पाँच प्रकार के रुद्राक्षों को त्याग देना चाहिये। जिस रुद्राक्ष में अपने आप ही डोरा पिरोने के योग्य छिद्र हो गया हो, उसी को उत्तम तथा जिसमें प्रयत्न से छेद किया गया हो, वह मध्यम श्रेणी का होता है। (शि. पु. वि. सं. 25/21-23)

रुद्राक्षधारी पुरुष अपने खान-पान में मदिरा, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, लिसोड़ा तथा विड्वराह आदि को त्याग दे। चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लोगों को रुद्राक्षधारण का भगवान् शिव ने विधान किया है। यहाँतक कि स्त्रियों को भी इसे धारण करने का अधिकार(शिवजी से) प्राप्त है।

मद्यंमांसंतुलशुनंपलाण्डुंशिग्रुमेवच।
श्लेषमांतकंविड्वराहंभक्षणेवर्जयेत्ततः।।
सर्वाश्रमाणांवर्णानांस्त्रीशूद्रणांशिवाज्ञया।
धार्याः सदैव रुद्राक्षा ....।। (शि. पु. वि. सं. 25/43, 47)

रुद्राक्ष भगवान् शिव का मंगलमय लिंग-विग्रह है। रुद्राक्ष एक मुख से लेकर चौदह मुखवाले होते हैं। एक मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् शिव का रूप है तथा वह भोग-मोक्ष देनेवाला है। अन्य मुखों वाले रुद्राक्षों का भी महान् फल है। इन रुद्राक्षों के धारण करने के मन्त्र क्रमशः इस प्रकार है।(1) ॐ ह्रीं नमः, (2) ॐ नमः, (3) ॐ क्लीं नमः, (4) ॐ ह्रीं नमः, (5) ॐ ह्रीं नमः, (6) ॐ ह्रीं हुं नमः, (7) ॐ हुं नमः, (8) ॐ हुं नमः, (9) ॐ ह्रीं हुं नमः, (10) ॐ ह्रीं नमः, (11) ॐ ह्रीं हुं नमः, (12) ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः, (13) ॐ ह्रीं नमः और(14) ॐ नमः।

रुद्राक्ष की माला धारण करनेवाले पुरुष को देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा

जो अन्य द्रोहकारी राक्षस आदि हैं वे सबकेसब दूर भाग जाते हैं। रुद्राक्षमाला धारण करने से कृत्रिम अभिचार आदि से भी सुरक्षा प्राप्त हो जाती है।(वि. सं. अ. 25/81-82, 84-85)

भगवान् शिव को संतुष्ट करनेवाले व्रत*

ऋषियों ने एक बार सूतजी से पूछा कि "किस व्रत से संतुष्ट होकर भगवान् शिव उत्तम सुख प्रदान करते हैं? जिस व्रत के अनुष्ठान से भक्तजनों को भोग और मोक्ष की प्राप्ति हो सके, उसका आप विशेषरूप से वर्णन कीजिये।" (शि. पु. को. रु. सं. 38/3-4)

सूतजी ने कहा- महर्षियों! तुमने जो कुछ पूछा है, वही बात किसी समय ब्रह्मा, विष्णु तथा पार्वतीजी ने भगवान् शिव से पूछी थी। इसके उत्तर में शिवजी ने जो कुछ कहा, वह मैं तुमलोगों को बता रहा हूँ। (वही 38/6-8)

भगवान् शिव बोले- "मेरे बहुत-से व्रत हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। उनमें मुख्य दस व्रत हैं, जिन्हें जाबालश्रुतिके विद्वान् 'दश शैवव्रत' कहते हैं। द्विजों को सदा यत्नपूर्वक इन व्रतों का पालन करना चाहिये। प्रत्येक अष्टमी को केवल रात में ही भोजन करे। विशेषतः कृष्णपक्ष की अष्टमी को भोजन का सर्वथा त्याग कर दे। शुक्लपक्ष की एकादशी को भी भोजन छोड़ दे। किंतु कृष्णपक्ष की एकादशी को रात में मेरा पूजन करने के पश्चात् भोजन किया जा सकता है। शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को रात में भोजन करना चाहिये; परंतु कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को शिवव्रतधारी पुरुषों के लिये भोजन का सर्वथा निषेध है। दोनों पक्षों में प्रत्येक सोमवार को प्रयत्नपूर्वक केवल रात में ही भोजन करना चाहिये। शिव के व्रत में तत्पर रहनेवाले लोगों के लिये यह अनिवार्य नियम है। इन सभी व्रतों में व्रत की पूर्ति के लिये अपनी शक्ति के अनुसार शिवभक्त ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। द्विजों को इन सब व्रतों का नियमपूर्वक पालन करना चाहिये। जो द्विज इनका त्याग करते हैं, वे चोर होते हैं। मुक्तिमार्ग में प्रवीण पुरुष को मोक्ष की प्राप्ति करानेवाले चार व्रतों का नियमपूर्वक पालन करना चाहिये। वे चार व्रत इस प्रकार हैं- भगवान् शिव की पूजा, रुद्रमन्त्रों का जप, शिवमन्दिर में उपवास तथा काशी में मरण। ये मोक्ष के सनातन मार्ग हैं। सोमवार की अष्टमी और कृष्णपक्ष की चतुर्दशी- इन दो तिथियों को उपवासपूर्वक व्रत रखा जाय तो वह भगवान् शिव को संतुष्ट करनेवाला होता है, इसमें अन्यथा विचार करने की आवश्यकता नहीं है।" (कोटिरु. सं. अ. 38/9-19)

"इन चारों में भी शिवरात्रि का व्रत ही सबसे अधिक बलवान् है। इसलिये भोग और मोक्षरूपी फल की इच्छा रखनेवाले लोगों को मुख्यतः उसी का पालन करना चाहिये। इस व्रत को छोड़कर दूसरा कोई मनुष्यों के लिये हितकारक व्रत नहीं है। यह व्रत सबके लिये धर्म का उत्तम साधन है। निष्काम अथवा सकाम भाव रखनेवाले सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, स्त्रियों, बालकों, दासों, दासियों तथा देवता आदि सभी देहधारियों के लिये यह श्रेष्ठ व्रत हितकारक बताया गया है।" (वही अ. 38/20-23)

---

* इस शीर्षक की विषय-वस्तु मुख्यतः संक्षिप्त शिवपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर से ली गयी है।

माघमास[1] के कृष्णपक्ष में शिवरात्रि तिथि का विशेष माहात्म्य बताया गया है। जिस दिन आधी रात के समयतक वह तिथि विद्यमान हो, उसी दिन उसे व्रत के लिये ग्रहण करना चाहिये। शिवरात्रि करोड़ों हत्याओं के पाप का नाश करनेवाली है। उस दिन सबेरे से लेकर जो कार्य करना आवश्यक है, उसे बताया जा रहा है। बुद्धिमान् पुरुष सबेरे उठकर बड़े आनन्द के साथ स्नान आदि नित्य कर्म करे। आलस्य को पास न आने दे। फिर शिवालय में जाकर शिवलिंग का विधिवत् पूजन करके शिव को नमस्कार करने के पश्चात् उत्तम रीति से इस प्रकार संकल्प करे–

संकल्प

देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।
कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव।।
तव प्रभावाद्देवेश निर्विघ्नेन भवेदिति।
कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि।। (शि. पु. को. रु. सं. 38/28-29)

अर्थात्–'देवदेव! महादेव! नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। देव! मैं आपके शिवरात्रि-व्रत का अनुष्ठान करना चाहता हूँ। देवेश्वर! आपके प्रभाव से यह व्रत बिना किसी विघ्न-बाधा पूर्ण हो और काम आदि शत्रु मुझे पीड़ा न दें।'

ऐसा संकल्प करके पूजन-सामग्री का संग्रह करे और उत्तम स्थान में जो (शास्त्रप्रसिद्ध) शिवलिंग हो, उसके पास रात में जाकर स्वयं उत्तम विधि-विधान का सम्पादन करे; फिर शिव के दक्षिण व पश्चिम भाग में सुन्दर स्थानपर उनके निकट ही पूजा के लिये संचित सामग्री को रखे। तदनन्तर श्रेष्ठ पुरुष वहाँ फिर स्नान करे। स्नान के बाद सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र धारण करके तीन बार आचमन करने के पश्चात् पूजन आरंभ करे। जिस मन्त्र के लिये जो द्रव्य नियत हो, उस मन्त्र को पढ़कर उसी द्रव्य के द्वारा पूजा करनी चाहियें। बिना मन्त्र के महादेवजी की पूजा नहीं करनी चाहिये। गीत, वाद्य, नृत्य आदि के साथ भक्तिभाव से सम्पन्न हो रात्रि के प्रथम पहर में पूजन करके विद्वान् पुरुष मन्त्र का जप करे। यदि मन्त्रज्ञ पुरुष उस समय श्रेष्ठ पार्थिवलिंग का निर्माण करे तो नित्यकर्म करने के पश्चात् पार्थिवलिंग का ही पूजन करे। पहले पार्थिव बनाकर पीछे उसकी विधिवत् स्थापना करे। फिर पूजन के पश्चात् नाना प्रकार के स्तोत्रों द्वारा भगवान् वृषभध्वज को संतुष्ट करे। बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि उस समय शिवरात्रि-व्रत के माहात्म्य का पाठ करे। श्रेष्ठ भक्त अपने व्रत की पूर्ति के लिये उस माहात्म्य को श्रद्धापूर्वक सुने। रात्रि के चारों पहरों में चार पार्थिवलिंगों का निर्माण करके आवाहन से लेकर विसर्जनतक क्रमशः उनकी पूजा करे और बड़े उत्सव के साथ प्रसन्नतापूर्वक जागरण करे। प्रातःकाल स्नान करके पुनः वहाँ पार्थिव-शिव का स्थापन और पूजन करे। इस तरह व्रत को पूरा करके हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर बारंबार नमस्कारपूर्वक भगवान् शम्भु से इस प्रकार प्रार्थना करे।

प्रार्थना एवं विसर्जन

नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया।

---

[1] जहाँ कृष्णपक्ष से मास का आरम्भ मानते हैं, उनके अनुसार यहाँ माघ का अर्थ फाल्गुन समझना चाहिये।

विसृज्यते मया स्वामिन् व्रतं जातमनुत्तमम्।।
व्रतेनानेन देवेश यथाशक्तिकृतेन च।
संतुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि।। (शि. पु. को. रु. सं. 38/42-43)

अर्थात्- 'महादेव! आपकी आज्ञा से मैंने जो व्रत ग्रहण किया था, स्वामिन्! वह परम उत्तम व्रत पूर्ण हो गया। अतः अब उसका विसर्जन करता हूँ। देवेश्वर शर्व! यथाशक्ति किये गये इस व्रत से आप आज मुझपर कृपा करके संतुष्ट हों।'

तत्पश्चात् शिवको पुष्पांजलि समर्पित करके विधिपूर्वक दान दे। फिर शिव को नमस्कार करके व्रतसम्बन्धी नियम का विसर्जन कर दे। अपनी शक्ति के अनुसार शिवभक्त ब्राह्मणों, विशेषतः संन्यासियों को भोजन कराकर पूर्णतया संतुष्ट करके स्वयं भी भोजन करे।

शिवरात्रि को प्रत्येक प्रहर में श्रेष्ठ शिवभक्तों को जिस प्रकार विशेष पूजा करनी चाहिये, उसे बताया जा रहा है। प्रथम प्रहर में पार्थिवलिंग की स्थापना करके अनेक सुन्दर उपचारोंद्वारा उत्तम भक्तिभाव से पूजा करे। पहले गन्ध, पुष्प आदि पाँच द्रव्यों द्वारा महादेवजी की पूजा करनी चाहिये। उस-उस द्रव्य से सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्र का उच्चारण करके पृथक्-पृथक् वह द्रव्य समर्पित करे। इस प्रकार द्रव्य समर्पण के पश्चात् भगवान् शिव को जलधारा अर्पित करे। विद्वान् पुरुष चढ़े हुए द्रव्यों को जलधारा से ही उतारे। जलधारा के साथ-साथ एक सौ आठ मन्त्र का जप करके वहाँ निर्गुण-सगुणरूप शिव का पूजन करे। गुरु से प्राप्त हुए मन्त्रद्वारा भगवान् शिव की पूजा करे। अन्यथा नाममन्त्र द्वारा सदाशिव का पूजन करना चाहिये। विचित्र चन्दन, अखण्ड चावल और काले तिलों से परमात्मा शिव की पूजा करनी चाहिये। कमल और कनेर के फूल चढ़ाने चाहिये। आठ नाम मन्त्रों द्वारा शंकरजी को पुष्प समर्पित करे। वे आठ नाम इस प्रकार हैं- भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम और ईशान। इनके आरंभ में श्री और अन्त में चतुर्थी विभक्ति जोड़कर **'श्रीभावाय नमः'** इत्यादि नाममन्त्रोंद्वारा शिव का पूजन करे। पुष्प-समर्पण के पश्चात् धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। पहले प्रहर में विद्वान् पुरुष नैवेद्य के लिये पकवान बनवा ले। फिर श्रीफलयुक्त विशेषार्घ्य देकर ताम्बूल समर्पित करे। तदनन्तर नमस्कार और ध्यान करके गुरु के दिये हुए मन्त्र का जप करे। गुरुदत्त मन्त्र न हो तो पंचाक्षर (**नमः शिवाय**) मन्त्र के जप से भगवान् शंकर को संतुष्ट करे, धेनुमुद्रा[1] दिखाकर उत्तम जल से तर्पण करे। पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार अथवा पाँच ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प

---

[1] धेनु मुद्रा का लक्षण इस प्रकार है-

वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलिकास्तथा। संयोज्य तर्जनीं दक्षां मध्यमानामयोस्तथा।।
दक्षमध्यमयोर्वामां तर्जनीं च नियोजयेत्। वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत्।।
दक्षयानामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत्। विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता।।

'बाये हाथ की अँगुलियों के बीच में दाहिने हाथ की अँगुलियों को संयुक्त करके दाहिनी तर्जनी को मध्यमा में लगाये। दाहिने हाथ की मध्यमा में बायें हाथ की तर्जनी को मिलावे। फिर बायें हाथ की अनामिका से दाहिने हाथ की कनिष्ठिका और दाहिने हाथ की अनामिका के साथ बायें हाथ की कनिष्ठिका को संयुक्त करे। फिर इन सबका मुख नीचे की ओर करे। यही धेनुमुद्रा कही गयी है।'

करे। फिर जबतक पहला प्रहर पूरा न हो जाय, तबतक महान् उत्सव करता रहे।

दूसरा प्रहर आरम्भ होनेपर पुन: पूजन के लिये संकल्प करे। अथवा एक ही समय चारों प्रहरों के लिये संकल्प करके पहले प्रहर की भाँति पूजा करता रहे। पहले पूर्वोक्त द्रव्यों से पूजनं करके फिर जलधारा समर्पित करे। प्रथम प्रहर की अपेक्षा दुगुने मन्त्रों का जप करके शिव की पूजा करे। पूर्वोक्त तिल, जौ तथा कमल-पुष्पों से शिव की अर्चना करे। विशेषत: बिल्वपत्रों से परमेश्वर शिव का पूजन करना चाहिये। दूसरे प्रहर में बिजौरा नीबू के साथ अर्घ्य देकर खीर का नैवेद्य निवेदन करे। इसमें पहले की अपेक्षा मन्त्रों की दुगनी आवृत्ति करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणों को भोजन कराने का संकल्प करे। शेष सब बातें पहले की ही भाँति तबतक करता रहे, जब तक दूसरा प्रहर पूरा न हो जाय। तीसरे पहर के आनेपर पूजन तो पहले के समान ही करे; किंतु जौं के स्थान में गेहूँ का उपयोग करे और आक के फूल चढ़ाये। उसके बाद नाना प्रकार के धूप एवं दीप देकर पूए का नैवेद्य भोग लगाये। उसके साथ भाँति-भाँति के शाक भी अर्पित करे। इस प्रकार पूजन करके कपूर से आरती उतारे। अनार के फल के साथ अर्घ्य दे और दूसरे प्रहर की अपेक्षा दुगुना मन्त्र-जप करे। तदनन्तर दक्षिणासहित ब्राह्मण-भोजन का संकल्प करे और तीसरे प्रहर के पूरे होनेतक पूर्ववत् उत्सव करता रहे। चौथा पहर आने पर तीसरे प्रहर की पूजा का विर्सजन कर दे। पुन: आवाहन आदि करके विधिवत् पूजा करे। उड़द, कँगनी, मूँग, सप्तधान्य, शङ्खीपुष्प तथा बिल्वपत्रों से परमेश्वर शंकर का पूजन करे। उस प्रहर में भाँति-भाँति की मिठाइयों का नैवेद्य लगाये अथवा उड़द के बड़े आदि बनाकर उनके द्वारा सदाशिव को संतुष्ट करे। केले के फल के साथ अथवा अन्य विविध फलों के साथ शिव को अर्घ्य दे। तीसरे प्रहर की अपेक्षा दूना मन्त्र-जप करे और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन का संकल्प करे। गीत, वाद्य तथा नृत्य से शिव की आराधनापूर्वक समय बिताये। भक्तजनों को तबतक महान् उत्सव करते रहना चाहिये, जबतक अरुणोदय न हो जाय। अरुणोदय होनेपर पुन: स्नान करके भाँति-भाँति के पूजनोपचारों और उपहारों द्वारा शिव की अर्चना करे। तत्पश्चात् अपना अभिषेक कराये, नाना प्रकार के दान दे और प्रहर की संख्या के अनुसार ब्राह्मणों तथा संन्यासियों को अनेक प्रकार के भोज्यपदार्थों का भोजन कराये। फिर शंकर को नमस्कार करके पुष्पांजलि दे और बुद्धिमान् पुरुष स्तुति करके निम्नाङ्कित मन्त्रों से प्रार्थना करे-

तावकस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा यथा योग्यं तथा कुरु।।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृपानिधित्वाज्ज्ञात्वैव भूतनाथ प्रसीद मे।।
अनेनैवोपवासेन यज्जातं फलमेव च।
तेनैव प्रीयतां देवः शंकरः सुखदायकः।।

कुले मम महादेव भजनं तेऽस्तु सर्वदा।
माभूत्तस्य कुले जन्म यत्र त्वं नहि देवता।। (शि. पु. को. रु. सं. 38/78-81)

अर्थात्- 'सुखदायक कृपानिधान शिव! मैं आपका हूँ। मेरे प्राण आप में ही लगे हैं और मेरा चित्त सदा आपका ही चिन्तन करता है। यह जानकर आप जैसा उचित समझें, वैसा करें। भूतनाथ! मैंने जानकर या अनजान में जो जप और पूजन आदि किया है, उसे समझकर दयासागर होने के नाते आप मुझपर प्रसन्न हों। उस उपवासव्रत से जो फल हुआ हो, उसीसे सुखदायक भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों। महादेव! मेरे कुल में सदा आपका भजन होता रहे। जहाँ के आप इष्टदेवता न हों, उस कुल में मेरा कभी जन्म न हो।'

इस प्रकार प्रार्थना करने के पश्चात् भगवान् शिव को पुष्पांजलि समर्पित करके ब्राह्मणों से तिलक और आशीर्वाद ग्रहण करे। तदनन्तर शम्भु का विसर्जन करे। जिसने इस प्रकार व्रत किया हो, उसके फल का वर्णन नहीं किया जा सकता। भगवान् शिव कहते हैं कि "मेरे पास कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे शिवरात्रि-व्रत करनेवाले के लिये मैं दे न डालूँ। जिसके द्वारा अनायास ही इस व्रत का पालन हो गया, उसके लिये भी अवश्य ही मुक्ति का बीज बो दिया गया। मनुष्यों को प्रतिमास भक्तिपूर्वक शिवरात्रि-व्रत करना चाहिये। तत्पश्चात् इसका उद्यापन करके मनुष्य साङ्गोपाङ्ग फल लाभ करता है। इस व्रत का पालन करने से मैं (शिव) निश्चय ही उपासक के समस्त दुःखों का नाश कर देता हूँ और उसे भोग-मोक्ष आदि सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फल प्रदान करता हूँ।" (शि. पु. को. रु. सं. अ. 38/83-86)

(18) शिवरात्रि-व्रत के उद्यापन की विधि*

तदनन्तर सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि अब तुम लोग शिवरात्रि के उद्यापन की विधि सुनो, जिसका अनुष्ठान करने से वह व्रत अवश्य ही पूर्ण फल देनेवाला होता है। लगातार चौदह वर्षोंतक शिवरात्रि के शुभव्रत का पालन करना चाहिये। त्रयोदशी को एक समय भोजन करके चतुर्दशी को पूरा उपवास करना चाहिये। शिवरात्रि के दिन नित्यकर्म सम्पन्न करके शिवालय में जाकर विधिपूर्वक शिव का पूजन करे। तत्पश्चात् वहाँ यत्नपूर्वक एक दिव्य मण्डल बनवाये, जो तीनों लोकों में गौरीतिलक नाम से प्रसिद्ध है। उसके मध्यभाग में दिव्य लिंगतोभद्र मण्डल की रचना करे अथवा मण्डपके भीतर सर्वतोभद्र मण्डल का निर्माण करे। वहाँ प्राजापत्य नामक कलशों की स्थापना करनी चाहिये। वे शुभ कलश वस्त्र, फल और दक्षिणा के साथ होने चाहिये। उन सबको मण्डप के पार्श्वभाग में यत्नपूर्वक स्थापित करे। मण्डप के मध्य भाग में एक सोने का अथवा दूसरी धातु ताँबे आदि का बना हुआ क्लश स्थापित करे। व्रती पुरुष उस कलशपर पार्वतीसहित शिव की सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर रखे। वह प्रतिमा एक पल (तोले) अथवा आधे पल सोने की होनी चाहिये या जैसी अपनी शक्ति हो, उसके

---

* इस शीर्षक की विषय-वस्तु मूलतः संक्षिप्त शिवपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर से ली गयी है।

अनुसार प्रतिमा बनवा ले। वामभाग में पार्वती की और दक्षिणभाग में शिव की प्रतिमा स्थापित करके रात्रि में उनका पूजन करे। आलस्य छोड़कर पूजन का काम करना चाहिये। उस कार्य में चार ऋत्विजों के साथ एक पवित्र आचार्य का वरण करे और उन सबकी आज्ञा लेकर भक्तिपूर्वक शिव की पूजा करे। रात को प्रत्येक प्रहर में पृथक्-पृथक् पूजा करते हुए जागरण करे। व्रती पुरुष भगवत्सम्बन्धी कीर्तन, गीत एवं नृत्य आदि के द्वारा सारी रात बिताये। इस प्रकार विधिवत् पूजनपूर्वक भगवान् शिव को संतुष्ट करके प्रातःकाल पुनः पूजन करने के पश्चात् सविधि होम करे। फिर यथाशक्ति प्राजापत्य विधान करे। फिर ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराये और यथाशक्ति दान दे।

इसके बाद वस्त्र, अंलकार तथा आभूषणों द्वारा पत्नीसहित ऋत्विजों को अलंकृत करके उन्हें विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् दान दे। फिर आवश्यक सामग्रियों से युक्त बछड़ेसहित गौ का आचार्य को यह कहकर विधिपूर्वक दान दे कि इस दान से भगवान् शिव मुझपर प्रसन्न हों। तत्पश्चात् कलशसहित उस मूर्ति को वस्त्र के साथ वृषभ की पीठपर रखकर सम्पूर्ण अंलकारों सहित उसे आचार्य को अर्पित कर दे। इसके बाद हाथ जोड़ मस्तक झुका बड़े प्रेम से गद्गद वाणी में महाप्रभु महेश्वरदेव से प्रार्थना करे।

प्रार्थना

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
व्रतेनानेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि।।
मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत्कृतं शिव।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शंकर।।
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शंकर।। (शि. पु. को. रु. सं. 39/19-21)

अर्थात्- 'देवदेव! महादेव! शरणगतवत्सल! देवेश्वर! इस व्रत से संतुष्ट हो आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। शिव-शंकर! मैने भक्तिभाव से इस व्रत का पालन किया है। इसमें जो कमी रह गयी हो, वह आपके प्रसाद से पूरी हो जाय। शंकर! मैंने अनजान में या जान-बूझकर जो जप-पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपा से सफल हो।'

अन्त में परमात्मा शिव को पुष्पांजलि अर्पण करके फिर नमस्कार एवं प्रार्थना करे। जिसने इस प्रकार व्रत पूरा कर लिया, उसके व्रत में कोई न्यूनता नहीं रहती। उससे वह मनोवाञ्छित्त सिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है।(शि. पु. को. रु. सं. अ. 39)

(19) बिल्व का माहात्म्य

लिंगार्चन में अथवा शिव-पूजा में भस्म, रुद्राक्ष एवं बिल्वपत्र इन तीनों का समान महत्त्व है। भस्म एवं रुद्राक्ष की महिमा हम देख चुके हैं। अब हम बिल्व की महिमा का उल्लेख करेंगे।

बिल्ववृक्ष महादेव का ही रूप है। तीनों लोकों में जितने पुण्य-तीर्थ प्रसिद्ध हैं, वे सभी बिल्व

के मूलभाग में निवास करते हैं। जो बिल्व के मूल में लिंगस्वरूप महादेवजी का पूजन करता है, वह निश्चय ही शिवपद को प्राप्त होता है।

पुण्यतीर्थानियावंतिलोकेषुप्रथितान्यपि।
तानिसर्वाणितीर्थानिबिल्वमूलेवसंतिहि।।
बिल्वमूलेमहादेवंलिंगरूपिणमव्ययम्।
यः पूजयतिपुण्यात्मासशिवंप्राप्नुयाद्ध्रुवम।। (शि. पु. वि. सं. 22/23-24)

जो मनुष्य गन्ध, पुष्प आदि से बिल्व के मूलभाग का पूजन करता है, वह शिवलोक को पाता है और इस लोक में भी उसकी सुख-संतति बढ़ती है। जो बिल्वजड़ के समीप आदरपूर्वक दीपावली जलाकर रखता है, वह तत्त्वज्ञान से सम्पन्न हो महेश्वर में मिल जाता है। बिल्ववृक्ष के नीचे शिवभक्त को भोजन कराने तथा दान देने का बड़ा फल बताया गया है (विद्येश्वरसंहिता 22/27-28, 30)। पुनः बिना बिल्वपत्र के भगवान् शिव की पूजा नहीं करनी चाहिये अन्यथा उसके अभाव में पूजा अधूरी रह जाती है।

(20) शिवनैवेद्य का माहात्म्य[1]

शिवनैवेद्य को देख लेनेमात्र से सारे पाप दूर भाग जाते हैं, उसको खा लेनेपर तो करोड़ों पुण्य अपने भीतर आ जाते हैं। आये हुए शिव-नैवेद्य को सिर झुकाकर प्रसन्नता के साथ ग्रहण करे और यत्न करके शिवस्मरणपूर्वक उसका भक्षण करे। (शि. पु. विद्ये. सं. 22/4-7)

जो मनुष्य शिवलिंग को विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नान के जल का तीन बार आचमन करता है, उसके कायिक, वाचिक और मानसिक-तीनों प्रकार के पाप यहाँ शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

स्नापयित्वाविधानेनयोलिंगस्नपनोदकम्।
त्रिः पिबेत्त्रिविधंपापंतस्येहाशुविनश्यति।। (वि. सं. 22/18)

कभी-कभी यह आक्षेप किया जाता है कि शिवनैवेद्य को ग्रहण नहीं करना चाहिये। परन्तु यह आक्षेप शिवपुराणानुसार निराधार है। इस विषय पर विस्तृत चर्चा इसी पुस्तक में अलग से की गयी है। पाठक वहाँपर देख लें। यहाँ सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि जहाँ चण्ड का अधिकार है वहाँ का नैवेद्य अग्राह्य है। वाणलिंग (नर्मदेश्वर), लोह-निर्मित (अर्थात् स्वर्णादि-धातुमय) लिंग, सिद्धलिंग, स्वयंभू लिंग इत्यादि तथा शिव की प्रतिमाओं में चण्ड का अधिकार नहीं होता।

(21) मोक्ष-दायक पुण्यक्षेत्र

भगवान् शिव ने भूतलपर विभिन्न स्थानों में वहाँ-वहाँ के निवासियों को कृपापूर्वक मोक्ष देने के लिये शिवक्षेत्र का निर्माण किया है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिन्हें देवताओं तथा ऋषियों ने अपना

---

[1] शिव नैवेद्य की ग्राह्यता एवं अग्राह्यता संबंधी विवादों का निर्णय इसी पुस्तक के लेख 'श्रीशिव निर्माल्यादिनिर्णय' में दिया गया है।

वासस्थान बनाकर अनुगृहीत किया है। इसीलिये उनमें तीर्थत्व प्रकट हो गया है तथा अन्य बहुतसे तीर्थ ऐसे हैं, जो लोकों की रक्षा के लिये स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं। (शि. पु. वि. सं. 12 / 3 – 4)

जहाँ – जहाँ जब – जब भक्तों ने भक्तिपूर्वक भगवान् शिव का स्मरण किया, तहाँ – तहाँ तब – तब अवतार ले कार्य करके वे स्थित हो गये। लोकों का उपकार करने के लिये उन्होंने स्वयं अपने स्वरूपभूत लिंग की कल्पना की। जिन स्थलों पर वे स्थित हो गये वे स्थल ही तीर्थ में परिणत हो गये। और वहाँपर उनके कल्पित स्वरूपभूत लिंग पूजे जाने लगे। (शि. पु. कोटिरु. सं. 1 / 16 – 17)

तीर्थ और क्षेत्र में जानेपर मनुष्य को सदा स्नान, दान और जप आदि करना चाहिये; अन्यथा वह रोग, दरिद्रता तथा मूकता आदि दोषों का भागी होता है। पुण्यक्षेत्र में पापकर्म किया जाय तो वह और भी दृढ़ हो जाता है। अतः पुण्यक्षेत्र में निवास करते समय सूक्ष्म – से – सूक्ष्म अथवा थोड़ा – सा भी पाप न करें। (शि. पु. वि. सं. 12 / 5 – 7)

क्षेत्रेपापस्यकरणंदृढंभवतिभूसुराः।
पुण्यक्षेत्रे निवासेहिपापमण्वपिनाचरेत्।। (शि. पु. वि. सं. 12 / 7)

सदाचार, उत्तम वृत्ति तथा सद्भावना के साथ मन में दयाभाव रखते हुए विद्वान् पुरुष को तीर्थ में निवास करना चाहिये। अन्यथा उसका फल नहीं मिलता। पुण्यक्षेत्र में किया हुआ थोड़ा – सा पुण्य तथा छोटा – सा किया हुआ पाप भी महान् हो जता है। यदि पुण्यक्षेत्र या तीर्थ में रहकर जीवन बिताने का निश्चय हो तो उस पुण्यसंकल्प से उसका पहले का सारा पाप तत्काल नष्ट हो जायगा। तीर्थवासजनित पुण्य कायिक, वाचिक और मानसिक सारे पापों का नाश कर देता है। तीर्थ में किया हुआ मानसिक पाप वज्रलेप हो जाता है। वह कई कल्पोंतक पीछा नहीं छोड़ता है।

पुण्यक्षेत्रेकृतंपुण्यंबहुधात्रृद्धिमृच्छति।
पुण्यक्षेत्रेकृतंपापंमहदण्वपिजायते।।
तत्कालंजीवनार्थश्चेत्पुण्येनक्षयमेष्यति।
पुण्यमैश्वर्यदंप्राहुः कायिकंवाचिकंतथा।।
मानसंचतथापापंतादृशंनाशयेद्द्विजाः।
मानसंवज्रलेपंतुकल्पकल्पानुगंतथा।। (शि. पु. विद्ये. सं. 12 / 36 – 38)

अतः सुख चाहनेवाले पुरुष को पाप से बचकर ही तीर्थ में निवास करना चाहिये। अन्य पुराणों की भाँति इस पुराण में भी अनेक शैवतीर्थों के लिंगो का वर्णन किया गया है जो भोग – मोक्षप्रद हैं। उदाहरण के लिये काशी के अविमुक्त, कृतिवासेश्वर, तिलभाण्डेश्वर, दशाश्वमेध आदि लिंग और गंगा – सागर आदि के संगमेश्वर, भूतेश्वर, नारीश्वर, वटुकेश्वर, पूरेश्वर, सिद्धनाथेश्वर, श्रृंगेश्वर, वैद्यनाथ, जप्येश्वर, गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश, कामेश, विमलेश्वर; प्रयाग के ब्रह्मेश्वर, सोमेश्वर, भरद्वाज, शूलटंकेश्वर, माधवेश तथा अयोध्या के नागेश आदि।

इनके अतिरिक्त ज्योतिर्लिंगों तथा उपलिंगों का भी वर्णन किया गया है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों का विस्तार से वर्णन इसी पुस्तक में अन्यत्र किया गया है। पाठक उसे वहीं पर देख लें। बारह ज्योतिर्लिंगों के नैवेद्य ग्रहण करने से व्यक्ति के पाप उसी क्षण जलकर भस्म हो जाते हैं।

ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः।
तत्कर्तुः सर्व्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात्।। (शि. पु. को. रु. सं. 1/28)

उपलिंगों के बारे में कहा गया है कि सोमनाथ का उपलिंग अन्तकेश्वर है जो मही नदी और समुद्र के संगमपर स्थित है। मल्लिकार्जन का उपलिंग रुद्रेश्वर भृगुकक्ष में स्थित है। महाकाल संबंधी उपलिंग दुग्धेश्वर(दूधनाथ) नर्मदा के तटपर है। ओंकारेश्वर का उपलिंग कर्दमेश्वर बिन्दुसरोवर के तटपर स्थित है। केदारनाथ का उपलिंग भूतेश्वर यमुनातटपर स्थित है। भीमशंकर का उपलिंग भीमेश्वर भी सह्य पर्वतपर है। नागेश्वर का उपलिंग भूतेश्वर मल्लिका सरस्वती के तटपर स्थित है। रामेश्वर का उपलिंग गुप्तेश्वर तथा घुश्मेश्वर का उपलिंग व्याघ्रेश्वर कहा गया है। ये सभी उपलिंग भी पापों को नष्ट करने तथा मनोवांछित फल देनेवाले हैं। (शि. पु. को. रु. सं. 1/35 - 42)

(22) शिव पूजा के विविध प्रकार

भगवान् शिव की पूजा अनेकों प्रकार से की जाती है। व्यक्ति अपनी योग्यता, सामर्थ्य, रुचि तथा उद्देश्य के अनुसार अलग- अलग तरीके से पूजा करता है। सामान्यपूजा की विधि इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है। विशेष प्रकार की पूजा जैसे अन्तर्याग (मानसिक पूजा) की सामान्य तथा विशेष पूजाविधि, काम्यकर्म के प्रसंग में शक्ति- सहित पंचमुख महादेव की पूजाविधि(आवरणपूजा सहित), ऐहिकफल देनेवाले काम्य कर्मो- संबंधी पूजा- विधि और शान्ति- पुष्टि आदि विविध काम्य कर्मो में विभिन्न हवनीय पदार्थो के उपयोग का विधान तथा पारलौकिकफल देनेवाले कर्म, इत्यादि का विस्तृत वर्णन इस पुराण में किया गया है। इच्छुक पाठक इस पुराण की वायवीयसंहिता के उत्तरखण्ड के अध्याय 21 से 25 तथा अध्याय 28 - 36 देखें। इस पुस्तक में इन सभी का समावेश करना संभव नहीं है। फिर भी पंचावरण पूजा की स्तुति का वर्णन इस पुस्तक में अन्यत्र किया गया है।

(23) कुछ महत्त्वपूर्ण स्तोत्र तथा मंत्र

सगुण- साकार की पूजा में स्तोत्रों का बड़ा महत्त्व है। भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न होनेवाले देवता हैं। वे तो मात्र स्तोत्र से भी प्रसन्न हो सकते हैं। इस पुराण में कई अच्छे स्तोत्र एवं मन्त्र हैं। उदाहरण के लिये महामृत्युंजय मंत्र(रु. सं. सतीख. अ. 38), मृत्युंजय मंत्र (रु. सं. युद्धखण्ड अ. 49), अष्टोत्तर शतनाम् (रु. सं. युद्धखण्ड अ. 49), अष्टमूर्त्यष्टक स्तोत्र (रु. स. यु. ख. अ. 50), शिवसहस्त्रनाम (कोटिरु. स. अ 35), अर्धनारीश्वर स्तोत्र, शिव के पंचावरणों में स्थित सभी देवताओं की स्तुति- परक स्तोत्र (वाय. सं. उ. ख. अ. 31) आदि। ये मन्त्र तथा स्तोत्र न केवल अपमृत्यु के विनाशक हैं अपितु इनसे भोग- मोक्ष तथा अन्य सभी लौकिक एवं पारलौकिक कामनायें पूरी होती हैं।

इस पुस्तक में महामृत्युञ्जय, मृत्युञ्जय तथा शिवसहस्रनाम(शिव पुराणोक्त तथा अन्य प्रकार के) अष्टोत्तर शत्नाम आदि कई स्तोत्र यथास्थान दिये गये हैं। पाठक उन्हें वहाँ देख लें।

त्रिदेवों की एकता तथा शिवनिन्दा का फल

भगवान् शिव परम ब्रह्म हैं, वे गुणातीत और प्रकृति से परे हैं, पर उनकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली त्रिविध मूर्ति ही ब्रह्मा, विष्णु और हर नाम धारण करती है। ब्रह्मलोक में निवास करनेवाले ब्रह्मा, क्षीर-सागर में रहनेवाले विष्णु तथा कैलासवासी हर-ये सब शिव की ही विभूतियाँ हैं। वास्तव में तीनों मूर्तियाँ तत्त्वतः एक ही हैं।(शि. पु. रु. सं. पा. खं. अध्याय 33/38-40)

निर्गुणः परमात्मा च परेशः प्रकृतेः परः॥
यस्य च त्रिविधा मूर्तिर्विधातुस्सृष्टिकर्मणि।
सृष्टिस्थित्यन्तजननी ब्रह्मविष्णुहराभिधा॥
ब्रह्मा च ब्रह्मलोकस्थो विष्णु क्षीरोदवास कृत्।
हरः कैलासनिलयः सर्वाः शिवविभूतयः॥

दक्षयज्ञविध्वंस के समय वीरभद्र विष्णुजी से कहते हैं कि "हरे! जैसे शिव हैं, वैसे आप हैं। जैसे आप हैं, वैसे शिव हैं। ऐसा वेद कहते हैं और वेदों का यह कथन शिव की आज्ञा के अनुसार ही है।"

यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः।
इति वेदावर्णयन्ति शिवशासनतो हरे॥ (रु. सं. स. ख. 36/66)

भगवान् विष्णु शिवतत्त्व का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "शिव निर्गुण ब्रह्मरूप से एक हैं। वे ही सगुण ब्रह्म हैं और हम ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र-तीनों शिव के अंश हैं। जैसे एक ही शरीर के भिन्न-भिन्न अवयव मस्तक, ग्रीवा आदि नाम धारण करते हैं तथापि उस शरीर से वे भिन्न नहीं हैं, उसी प्रकार हम तीनों अंश परमेश्वर शिव के ही अंग हैं।"(शि. पु. रु. सं. स. ख. 19/72-74)

सती के साथ विवाह करने के प्रसंग में एक बार कैलासपर विष्णु एवं ब्रह्मादि देवताओं ने जाकर भगवान् शिव की स्तुति की। स्तुति के उपरान्त बातचीत के दौरान ब्रह्माजी रुद्रदेव से कहते हैं कि "वास्तव में हम तीनों एक ही हैं, कार्य के भेद से भिन्न-भिन्न देह धारण करके स्थित हैं। यदि कार्यभेद न सिद्ध हो, तब तो हमारे रूपभेद का कोई प्रयोजन ही नहीं है। देव! एक ही परमात्मा महेश्वर तीन स्वरूपों में अभिव्यक्त हुए हैं। इस रूपभेद में उनकी अपनी माया ही कारण है।"(रु. सं. सती ख. अ. 16/14-15)

एकस्वरूपा हि वयं भिन्नाः कार्यस्यभेदतः।
कार्यभेदो न सिद्धश्चेद्रूपभेदोऽप्रयोजनः॥
एक एव त्रिधा भिन्नः परमात्मा महेश्वरः।
मायास्वाकारणादेव स्वतंत्रो लीलया प्रभुः॥

सृष्टि के आदि में ब्रह्मा एवं विष्णु के समक्ष भगवान् शिव अपने स्वरूप को समझाते हुए

विष्णुजी से कह रहे हैं कि "मैं, तुम, ब्रह्मा तथा जो रुद्र प्रकट होंगे, वे सब-के-सब एकरूप हैं। इनमें भेद नहीं है। भेद माननेपर अवश्य ही बंधन होगा। तथापि मेरा शिवरूप ही सनातन है। यही सदा सब रूपों का मूलभूत कहा गया है। यह सत्य, ज्ञान एवं अनंत ब्रह्म है।" (रु. स. सृ. ख. 9/38-40)

वे आगे श्रीहरि से कहते हैं कि "मेरा दर्शन होनेपर जो फल प्राप्त होता है, वही तुम्हारा दर्शन होने पर होगा। मेरे हृदय में विष्णु हैं और विष्णु के हृदय में मैं हूँ। जो इन दोनों में अन्तर नहीं समझता, वही मुझे विशेष प्रिय है।"

मद्दर्शनेफलं यद्वत्तदेव तवदर्शने।।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्चहृदयेह्यहम्।।
उभयोरन्तरं यो वै न जानातिमनोमम। (रु. सं. सृ. ख. 9/54-56)

दक्ष के प्रति भगवान् शिव कहते हैं कि "अपनी त्रिगुणात्मिका माया को स्वीकार करके मैं ही जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करता हुआ उन क्रियाओं के अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करता हूँ। मैं, ब्रह्मा और विष्णु तीनों स्वरूपतः एक ही हैं तथा हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं-ऐसा समझकर जो हम तीनों देवताओं में भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है। जो नराधम हम तीनों देवताओं में भेदबुद्धि रखता है, वह निश्चय ही जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तबतक नरक में निवास करता है। यदि कोई विष्णुभक्त होकर मेरी निन्दा करेगा और मेरा भक्त होकर विष्णु की निन्दा करेगा तो उन्हें निश्चय ही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

आत्ममायां समाविश्य सोहं गुणमयीं मुने।
सृजन्रक्षन्हरन्विश्वं दधे संज्ञाः क्रियोचिताः।।
सर्वभूतात्मनामेकभावनां यो न पश्यति।
त्रिसुराणां भिदां दक्ष स शान्तिमधिगच्छति।।
यः करोति त्रिदेवेषु भेदबुद्धिं नराधमः।
नरके स वसेन्नूनं यावदाचन्द्रतारकम्।।
हरिभक्तो हि मां निन्देत्तथा शैवोभवेद्यदि।
तयोः शापा भवेयुस्ते तत्त्वप्राप्तिर्भवेन्न हि।। (रु. सं. स. ख. 43/13, 16-17, 21)

वहीं पर भगवान् शिव यह भी कहते हैं कि विधाता की भक्ति के बिना विष्णु की और विष्णु की भक्ति के बिना मेरी भक्ति प्राप्त नहीं होती।

विधिभक्तिं विना नैव भक्तिर्भवति वैष्णवी।
विष्णुभक्तिं विना मे न भक्तिः क्वापि प्रजायते।। (रु. सं. स. ख. 43/19)

छः संहिताओंवाले शिवपुराण में एक स्थलपर कहा गया है कि "ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरे से उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरे को धारण करते हैं, एक दूसरे के द्वारा वृद्धिगत होते हैं और एक दूसरे के अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्मा की प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णु की और

कहीं महादेव की। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरे की अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा है मानों वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है, वे अगले जन्म में राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।"

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते पस्परमनुव्रताः।।
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यञ्चातिरिच्यते।।
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः।। (कल्याण, शिवांक, पृ. 66)

उपरोक्त सभी उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि एक ही परमतत्त्व भगवान् शिव ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तीन रूपों में (सृष्टि–कार्य हेतु) प्रकट होते हैं। अर्थात् तीनों देव तत्त्वतः एक ही हैं।

तीनों देवों में तात्त्विक एकता होने के कारण किसी भी देवता की न तो निन्दा करनी चाहिये और न ही सुननी चाहिये। जटिल ब्राह्मण द्वारा शिव की निन्दा किये जानेपर पार्वती कहती हैं कि जो व्यक्ति तत्त्व को न जानने के कारण शिव की निन्दा करता है, उसके जन्मभर का सारा संचित पुण्य भस्म हो जाता है। शिवद्रोही को देखकर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये, शिवद्रोही का दर्शन हो जानेपर प्रायश्चित्त करना चाहिये। (रु. स. पा. ख. 28/25, 27)

शिवनिन्दां करोतीह तत्त्वमज्ञाय यः पुमान्।
आजन्मसंचितं पुण्यं भस्मीभवति तस्य तत्।।
शिवविद्वेषिणं दृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत्।
शिवविद्वेषिणं दृष्ट्वा प्रायश्चितं समाचरेत्।।

पार्वती पुनः कहती हैं कि जो शिवनिन्दा करता है, केवल उसी को पाप नहीं लगता, जो उस निन्दा को सुनता है, वह भी पाप का भागी होता है।

न केवलं भवेत् पापं निन्दां कर्तुः शिवस्य हि।
यो वै शृणोति तन्निन्दांपापभाक् स भवेदिह।। (रु. सं. पा. ख. 28/37)

दक्ष द्वारा शिव की निन्दा सुनकर सती कहती हैं कि "जो महादेवजी की निन्दा करता है अथवा जो उनकी होती हुई निन्दा को सुनता है, वे दोनों तबतक नरक में पड़े रहते है, जबतक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं।

यो निन्दति महादेवं निन्द्यमानं शृणोति वा।
तावुभौ नरकं यातौ यावच्चन्द्रदिवाकरौ।। (रु. सं. स. ख. 29/38)

उपसंहार

वर्त्तमान सात संहिताओंवाले शिवपुराण में प्रचलित सभी शैव मान्यताओं का न्यूनाधिक विस्तार के साथ विवेचन हुआ है। इस पुराण के प्रमुख देवता भगवान् शिव को परात्पर ब्रह्म स्वीकार किया गया है। उन्हीं से समस्त सृष्टि का प्रादुर्भाव एवं तिरोभाव होता है। वे निर्गुण (निष्कल) एवं सगुण (सकल) दोनों हैं। सृष्टिप्रक्रिया के लिये वे ही सगुण हो जाते, अद्वैत तथा एकाकी से द्वैतरूप धारणकर लेते तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि अनेक नामों से जाने जाते। 'सृष्टि', 'पालन', 'संहार', तिरोभाव और अनुग्रह-ये पाँच महेश्वर शिव के नित्यसिद्ध जगत्-संबंधी कार्य हैं। ब्रह्मा में सृष्टि, विष्णु में पालन तथा रुद्र और महेश्वर में संहार एवं तिरोभाव नामक कृत्य पाया जाता है परन्तु पाँचवा कृत्य अनुग्रह शिव में ही पाया जाता है।

निर्गुण एकाकी शिव में एक से अनेक होने का संकल्प उदय हुआ, फलस्वरूप अपनी लीलाशक्ति से उन्होंने अपने लिये आकार की कल्पना की। इस चिन्मय आकार को ही भगवान् सदाशिव कहते हैं। इन सदाशिव ने अपने विग्रह से एक स्वरूपभूता शक्ति की सृष्टि की। सदाशिव गौरवर्ण, पंचमुखी, पन्द्रह नेत्रों तथा दस भुजाओंवाले, आकाशगंगा तथा चन्द्रमा को अपने शिर पर धारण करनेवाले, भस्मधारी तथा त्रिशूलधारी इत्यादि हैं। इसी प्रकार शक्ति आठ भुजाओं से युक्त नाना आयुधों को धारण करनेवाली है। उन दोनों के मन में किसी ऐसे पुरुष की सृष्टि की इच्छा हुई जिसपर सृष्टिसंचालन का भार सौंपकर वे स्वयं काशी में रहकर निर्वाण धारण कर सकें। वह पुरुष उनके अनुग्रह से सदा सबकी सृष्टि, पालन एवं अन्त में संहार करे। उस इच्छा के फलस्वरूप सर्वप्रथम उन्होंने नारायणदेव को अपने बायें अंग से तथा कालान्तर में ब्रह्मा को दाहिने अंग से तथा हृदय से रुद्र को प्रकट किया। सदाशिव ने विष्णुदेव को भोग एवं मोक्ष का अधिकार देकर सृष्टि-व्यवस्था का भार उनपर सौंप दिया।

शिवोपासना की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि देव, असुर, मानव आदि सभी कोटि के लोगों ने शिवोपासना से अपना अभीष्ट प्राप्त किया। उदाहरण के लिये ब्रह्मा को सृष्टिकार्य, विष्णु को सृष्टिरक्षा, भोग-मोक्षदान का अधिकार तथा सुदर्शनचक्र, शुक्राचार्य को मृतसंजीवनी विद्या, अर्जुन को पाशुपत अस्त्र, रावण को अतुल बल, कृष्ण को पुत्रप्राप्ति तथा गुह को भगवान् राम की मित्रता की प्राप्ति शिवोपासना द्वारा हुई।

तीन प्रकार की वस्तुएँ पायी जाती हैं- जड़ (प्रकृति), चेतन (जीव) तथा इन दोनों का नियन्ता (परमेश्वर)। इन तीनों को क्रमशः पाश, पशु एवं पशुपति कहते हैं। ब्रह्माजी से लेकर स्थावर प्राणियोंतक सभी जीव पशु कहे गये हैं। यह जीव पाशों में बँधता है और सुख-दुःख भोगता है, इसलिये इसे 'पशु' कहते हैं। यह जीव ईश्वर की लीला का सारभूत है। जो जीव प्रकृति आदि आठ बन्धनों से बँधा है उसे बद्ध और जो इनसे छूटा है उसे मुक्तजीव कहते हैं। इन आठ तत्त्वों से देह की उत्पत्ति हुई है। देह से कर्म उत्पन्न होता है और फिर कर्म से नूतन देह की उत्पत्ति। इस प्रकार

जन्म और कर्म का चक्र चलता रहता है। इस चक्र से निवृत्ति के लिये चक्रकर्त्ता का अनुग्रह प्राप्त करने के अनेक उपाय हैं जैसे शिवधर्मों का पालन, भक्ति आदि।

तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान–ये पाँच शिवधर्म बताये गये हैं। शिव के निमित्त शरीर को सुखाना 'तप' है, शिवपूजा को 'कर्म', पंचाक्षर मंत्र की आवृत्ति, प्रणव का अभ्यास तथा रुद्राध्याय आदि का बारम्बार पाठ 'जप', भगवान् शिव का चिन्तन–स्मरण 'ध्यान' तथा शैवागमों के अर्थ को भलीभाँति जानना ही 'ज्ञान' कहलाता है।

भगवान् शिव अपने सनातनधर्म को बताते हुए कहते हैं कि वह चार चरणों से युक्त है– ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग। पाश, पशु तथा पति के ज्ञान का नाम 'ज्ञान', गुरु के अधीन जो विधिपूर्वक षडध्वशोधन का कार्य होता है उसे 'क्रिया', विहित वर्णाश्रम–धर्मानुकूल शिवपूजन आदि धर्माचारण का नाम 'चर्या' और भगवान् शिव द्वारा बताये मार्ग से उनमें स्थिरभाव से चित्त लगाने के लिये अन्तःकारण की वृत्तियों के निरोध का नाम 'योग' कहलाता है। शिवोपासना में योग, ध्यान तथा ज्ञान को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। परन्तु सभी लोग इनके अधिकारी नहीं हैं। इनके अनधिकारियों के लिये शिवलिंगपूजा या नामजप उत्तम साधन है।

लिंग की पूजा स्थापितलिंग में अथवा पार्थिवलिंग में करनी चाहिये। लिंगस्थापन तथा पार्थिव–लिंग–पूजा की विधि का विस्तार से वर्णन इस पुराण में किया गया है। शिवपूजा में भस्म, त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्ष तथा बिल्व के महत्त्व को बताते हुए उनकी अनिवार्यता का विधान भी किया गया है।

भगवान् शिव भक्तिरूपी साधन से शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। भक्ति में मुख्यतः भाव की ही प्रधानता है। ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। परन्तु ज्ञान की प्राप्ति भक्ति से होती है, जो भक्ति का विरोधी है उसे ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। भक्ति और ज्ञान में मूलतः कोई अन्तर नहीं है। सगुणा एवं निर्गुणा दोनों प्रकार की भक्ति के– श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन, सतत वंदन, सख्य और आत्मसमर्पण–ये नौ अंग माने गये हैं। भक्ति सब साधनों से श्रेष्ठ है तथा मुक्ति भक्ति की दासी है। तीनों लोकों और चारों युगों में, विशेषतः कलियुग में, यह विशेष सुखद, सुविधाजनक तथा प्रत्यक्ष फल देनेवाली है।

नामजप मुक्ति–भुक्ति प्राप्त करने का एक अन्य सुगम साधन है। वैसे तो भगवान् शिव के किसी भी नाम या मंत्र का जप किया जा सकता है परन्तु 'प्रणव' का जप उन सबसे श्रेष्ठ माना गया है। शिव, रुद्र आदि नामों में प्रणव ही सबसे श्रेष्ठ नाम माना गया है। प्रणव भगवान् शिव का ही वाचक है और यह स्वयं शिवरूप है। प्रणव दो प्रकार का होता है– सूक्ष्म एवं स्थूल। सूक्ष्मप्रणव एकाक्षर '**ॐकार**' कहलाता है जो 'निष्कलशिव' का वाचक है। स्थूल प्रणव '**नमः शिवाय**' कहलाता है जो '**सकलशिव**' का वाचक है। प्रणवोपासना या उसका जप ऋषि, छन्द, देवता के उच्चारण के साथ अंगन्यास, करन्यास आदि संपन्न करके करना चाहिये।

ॐकार की उपासना के केवल निवृत्त एवं विरक्त पुरुष ही अधिकारी हैं जबकि '**ॐ नमः शिवाय**' मंत्र के सभी अधिकारी हैं। यह पंचाक्षर मंत्र (वा षडाक्षर मंत्र) देश, काल, गुरु, व्यक्ति, आदि किसी की भी अपेक्षा नहीं रखता। हर देश, हर काल, हर अवस्था में गुरु से प्राप्त हो या न हो, इसे हर व्यक्ति जप सकता है। यह कभी निष्फल नहीं होता। इस पुराण में 'प्रणव' एवं 'पंचाक्षर' दोनों मन्त्रों के जपने की विधि का विस्तार से विवेचन है किया गया।

भगवान् शिव ने भूतलपर विभिन्न स्थानों में वहाँ-वहाँ के लोगों को मोक्ष प्रदान करने के लिये शिवक्षेत्र का निर्माण किया है। कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिसे देवता या ऋषियों ने अपना वासस्थान बनाकर अनुगृहीत किया है जिससे वहाँ तीर्थत्व प्रकट हो गया है। इस पुराण में द्वादश ज्योतिर्लिंगों तथा उनके उपलिंगों सहित अनेक शैवतीर्थों का वर्णन है जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले है बशर्ते उन तीर्थों के सेवन के दौरान हम किसी भी प्रकार के पाप न करें।

इस पुराण में शिव को संतुष्ट करनेवाले व्रतों जैसे सोमवार, शिवरात्रि तथा महाशिवरात्रि आदि के माहात्म्य का वर्णन विधिसहित किया गया है। इसमें शिव की सकामपूजा का भी वर्णन किया गया है। शिवसंबंधी कुछ उपयोगी स्तोत्र तथा मंत्र जैसे शिवसहस्रनाम, शिवअष्टोत्तर शत्नाम तथा महामृत्युंजय मंत्र आदि भी इस पुराण में पाये जाते हैं।

त्रिदेवों की एकतापर बल देते हुए बताया गया है कि तीनों देव वस्तुतः एक ही तत्त्व के कार्य-भेद से भिन्न-भिन्न नाममात्र है भिन्न-भिन्न सत्तायें नहीं। तत्त्वतः वे सब एक ही हैं। जो इनमें भेद करता है उसे तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता तथा वह अगले जन्म में राक्षस या पिशाच होता है। इसी प्रकार शिवनिन्दा करने एवं सुननेवाला नरकगामी होता है। अतः शिवनिन्दा से बचना चाहिये।

(यह लेख गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त शिवपुराण 23वाँ संस्करण तथा वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा 1994 में दो खण्डों में पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र की टीका सहित प्रकाशित श्रीशिवमहापुराणं की प्रतियों पर आधारित है।)

* * *

मदिरा पीनेवाले में बहुत से दोष हैं। वे केवल नरक में जाते हैं, इस विषय में कोई विचार करने की बात नहीं है।

एवं बहुविधा दोषाः पानपे सन्ति शोभने।
केवलं नरकं यान्ति नास्ति तत्र विचारणा।।

(महाभारत, अनुशासनपर्व, गीताप्रेस, अध्याय 145 दक्षिणात्यपाठ अ. 11 पृ. 5987)

वायुमहापुराण में शिवतत्त्व

विभिन्न पुराणों में निर्दिष्ट महापुराणोंके की सूची में कहीं वायुपुराण को तो कहीं शिवपुराण को रक्खा गया है। अर्थात् कुछ पुराणों की सूची में शिवपुराण का और कुछ में वायुपुराण का नाम नहीं मिलता। कूर्म, पद्म, ब्रह्मवैवर्त, भागवत, मार्कण्डेय, लिंग, वराह तथा विष्णुपुराण शिवपुराण को तथा देवी भागवत, नारद तथा मत्स्यपुराण, वायुपुराण को अठारह महापुराणों के अन्तगर्त रखते हैं। कुछ विद्वान् वायुपुराण को स्वतंत्र पुराण न मानकर शिवपुराण का ही अंश मानते हैं।[1] परन्तु ऐसा मानना उचित नहीं है क्योंकि शिवपुराण की वायवीय संहिता में मात्र चार हजार श्लोक हैं जबकि वायुपुराण में परम्परा से 12000 श्लोक माने जाते हैं। तथा 'वायवीय संहिता' अपने आप में महापुराण के पाँचों लक्षणों - सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मनवन्तर तथा वंशानुचरित - से युक्त नहीं है, जबकि वायुपुराण में कम या ज्यादा मात्रा में ये पाँचों लक्षण मौजूद हैं। अतः अधिकांश विद्वान् वायुपुराण को भी महापुराण मानते हैं। उनके अनुसार महापुराणों की संख्या जरूरी नहीं है कि वे 18 ही हों। कुछ लोग (वायु एवं हरिवंश को लेकर) 20 पुराणों को महापुराण मानते हैं।

यह एक शैवपुराण है जिसका प्रवचन वायुदेव ने किया है। इस पुराण के (1/32/63) अनुसार इसमें 12000 श्लोक हैं (जबकि वर्तमान में उपलब्ध श्लोकों की संख्या मात्र 10991 है)। इसमें श्वेतकल्प की कथाएँ हैं। उपलब्ध वायुपुराण में दो भाग एवं तीन पाद तथा कुल 111 अध्याय हैं। परन्तु ग्रन्थ की अंतरंग परीक्षा से स्पष्ट पता चलता है कि अन्त के आठ अध्याय (104 - 111) वैष्णवमत की पुष्टि के लिये पीछे से जोड़े गये हैं। इस पुराण का मौलिकरूप उत्तरार्द्ध का 41 वाँ अध्यायतक ही है क्योंकि इसके अन्त में पुराण के अवतरण की गुरु परम्परा प्रामाणिकरूप से निबद्ध की गयी है (41/58 - 66) तथा आगे के श्लोकों में पुराण - श्रवण की फलश्रुति और महेश्वर की स्तुति की गयी है जो वायुपुराण के शैवतत्त्व प्रतिपादक होने का संकेत है। पुनः (2/42) अध्याय फलश्रुति के बाद आता है तथा इसमें शंकराचार्य का अध्यासवाद, वसुगुप्त की स्पन्दकारिका के वचन, कश्मीर शैवमत का त्रिक - सिद्धान्त तथा राधा - कृष्ण सम्प्रदाय (जिसका उल्लेख प्राचीन पुराणों भागवत तथा विष्णु में नहीं है) तथा व्यास का संशय (जो 18 पुराण बनाने के बाद पैदा हुआ था) जो भागवत पुराण के स्कंध 1/4/26 - 31 आदि में पाया जाता है, का उल्लेख है।

उपरोक्त बातें पुराण के इस अध्याय को प्रक्षिप्त सिद्ध करती हैं। पुनः गयामाहात्म्य (2/अध्याय 43 - 50) स्पष्टरूप से प्रक्षिप्त लगता है क्योंकि इन अध्यायों का वायुदेव से नाममात्र का ही संबंध प्रतीत होता है, इन अध्यायों के श्रोता - वक्ता क्रमशः नारद एवं सनत्कुमार हैं। पुनः ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में पुराणस्थ विषयों की अनुक्रमणी में भी गयामाहात्म्य नहीं पाया जाता। तथा गयामाहात्म्य के अधिकांश श्लोक महाभारत (वनप./अध्याय 84 - 95), नारदपुराण (उत्तरभाग,

---

[1] शिवपुराण की वायवीय संहिता को ही कुछ लोग वायुपुराण मानते हैं।

अध्याय 44 - 47), गरुड़पुराण (अध्याय 82 - 86) तथा अग्निपुराण (अध्याय 114 - 116) आदि में पाये जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गयामाहात्म्य कोई स्वतंत्र पुस्तक रही होगी जिसमें उपरोक्त ग्रन्थों से श्लोक लिये गये थे। बाद में उसे और प्रामाणिक बनाने के लिये इस पुराण में जोड़ दिये गये होंगे। अधिकांश विद्वान् गयामाहात्म्य को पूर्णरूप से प्रक्षिप्त (मिलावट) मानते हैं।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण के प्रमुख देवता भगवान् शिव हैं। उन्हें ही परम तत्त्व, परम ब्रह्म या सर्वोच्च सत्ता माना गया है। उन्हीं से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवताओं सहित समस्त सृष्टि पैदा होती है, उन्हीं में स्थित रहती है और अन्त में उन्हीं में लय को प्राप्त हो जाती है। वे सगुण एवं निर्गुण तथा अज्ञेय तत्त्व हैं।

इस पुराण के प्रथम श्लोक (मंगलाचरण के बादवाला) में ही भगवान् शिव को ईशान, शाश्वत, ध्रुव, अव्यय, महादेव तथा समस्त जगत् का स्वामी कहा गया है।

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतम् ध्रुवमव्ययम्।
महादेवं महात्मानं सर्वस्य जगतः पतिम्।। (वायुपुराण / पूर्वार्ध / अध्याय 1/1)[1]

एक स्थल पर भगवान् शिव को देवदेवेश, विश्वरूप तथा लोकवन्दित कहा गया है (1/23/90)। एक बार ब्रह्मा एवं विष्णु के बीच इस प्रश्न को लेकर विवाद छिड़ गया कि उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? वे दोनों एक दूसरे को जीतने का प्रयास करने लगे। इसी बीच उन दोनों ने एक अद्भुत पुरुष को प्रकट होते देखा। उसे देखकर ब्रह्मा विष्णु से पूछते हैं कि यह कौन है जो दस भुजाओं, त्रिशूल, अनेक आँखों तथा सभी दिशाओं में मुख से युक्त है?

उत्तर में भगवान् विष्णु कहते हैं कि वे अनादि भगवान् ईश हैं जो सबका अन्त (विनाश) करनेवाले हैं। हम दोनों को उनकी स्तुति करनी चाहिये। वे पुराण-पुरुष, माया के ईश्वर, वरदाता, शाश्वत तथा विश्व के कारण हैं। वे आत्माओं की आत्मा हैं। सृष्टि के हेतु होने की वजह से वे प्रधान, अव्यक्त ज्योति, प्रकृति तथा दुःखों से ग्रस्त यतियों द्वारा ध्येय हैं (1/24/63-65)। उनसे महान् और सूक्ष्म (गुह्य) कुछ भी नहीं है। वे आध्यात्मिक पुरुषों के परमधाम हैं जो आनंद के घर हैं। वे निष्कल (निर्गुण) होने के कारण सूक्ष्म हैं। वे सकल (सगुण) भी हैं (1/24/69-70)।
वे माया तथा उसकी गति के ज्ञाता हैं तथा गहन और अगम्य हैं (1/24/71)। शिव को प्रणवरूप में जगद्गुरु कहा गया है (1/24/87)।

विष्णु की बातों से प्रभावित हो ब्रह्माज़ी विष्णु के साथ ही भगवान् शिव की स्तुति करते हैं। वे दोनों अपनी स्तुति में शिव को अनन्त तेज से युक्त, त्रिशूलधारी, अपने वीर्य से विष्णु को पैदा

---

[1] यह श्लोक यथावत् महाभारत (शान्तिपर्व 284/57) में पाया जाता है।

करनेवाले, श्रेष्ठ, अपूर्व, हव्य, पूज्य, भूतों के जन्मदाता, योग एवं सांख्य के स्वामी, पुराणों, युगों एवं चतुर्विध सृष्टि के स्वामी, विश्व एवं ब्रह्मादि के स्वामी, विद्याओं, मन्त्रों तथा व्रतों के स्वामी, पशुपति, प्रजापतियों, सिद्धों, गरुड़ों, सर्पों तथा पक्षियों के स्वामी, लक्ष्मीपति, भूत, वर्तमान एवं भविष्य के स्वामी, वरदाता, वरेण्य, सर्वव्यापी, वन्द्य, मोक्ष तथा नरक के स्वामी, निर्गुण तत्त्व, ईश, ऋत, सत्य, भूतपति, विश्वरूप, सर्वत्र हाथ तथा पैरंवाले, अप्रतिम, मृत्युघ्न, श्वेतवर्ण, कपालहस्त, जटाधारी, दिगम्बर, बहुरूप, अप्रमेय, पिनाकधारी, रुद्राक्षधारी, शान्त, शितिकण्ठ, प्रलयकर्त्ता, प्रणवरूप, आनंददाता, कामारि, त्रिपुरारि, नर-नारीरूप, नाग का यज्ञोपवीत धारण करनेवाला, वरद, यज्ञ एवं वेदस्वरूप, ईश, ब्रह्मा, लोकों के कर्त्ता, आदिसर्ग, प्रकृति से परे, योगियों को भोगों से निवृत्त करनेवाले, शरणार्थी को पाप से मुक्तकर दिव्य आनन्द प्राप्त करानेवाले तथा परमात्मा आदि-आदि कहा है।(वायुपुराण 1/24/90-164)

नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्मादिप्रभवे नमः।।
विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः।
नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः।।
वरदाय वरेण्याय नमः सर्वगताय च।
नमो भूताय भव्याय भवाय महते तथा।।
नमो वन्द्याय मोक्षाय जनाय नरकाय च।।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतोऽक्षिमुखाय च।
सर्वतः पाणिपादाय रुद्रायाप्रमिताय च।।
प्रणवप्रणवेशाय भक्तानां शर्मदाय च।
भवानीशो नादिमान् धामराशिर्ब्रह्मा लोकानान्त्वं कर्त्ता त्वादिसर्गः।
साङ्ख्याः प्रकृतिभ्यः परमं त्वां विदित्वा क्षीणध्यानास्ते न मृत्युं विशन्ति।।
योगेन त्वान्ध्यानिनो नित्ययुक्ताः ज्ञात्वा भोगान् सन्त्यजन्ते पुनस्तान्।
ये ऽन्ये मर्त्त्यास्त्वां प्रपन्ना विशुद्धास्ते कर्मभिर्दिव्यभोगान् भजन्ते।।

(वायुपुराण 1/24/102-103, 112-113, 119, 133, 162-163)

अर्थात्-विश्व तथा ब्रह्मा आदि के स्वामी को नमस्कार है। विद्याओं, व्रतों तथा मन्त्रों के अधिपति को नमस्कार है। वरदाता, वरेण्य(वरण करने योग्य), सर्वव्यापी तथा भूत, वर्तमान एवं भविष्य के स्वामी को नमस्कार है। वन्दना के योग्य तथा मोक्ष, नरक तथा लोगों के स्वामी को नमस्कार है। विश्व एवं विश्वरूपधारी रुद्र, जिसकी अनन्त आँखें, मुख, हाथ एवं पैर सर्वत्र फैले हुए हैं; को नमस्कार है। प्रणव के स्वामी, जो भक्तों को आनन्द प्रदान करते हैं, उनको नमस्कार है। आप अनादि के स्वामी, ब्रह्मा, जगत् के कर्त्ता तथा प्रथम सृष्टि हैं। सांख्य के जानकार आपको प्रकृति से

परे मानते हैं। जब (इस प्रकार का) उनका ध्यान पूरा हो जाता है तो वे मृत्यु से परे हो जाते हैं। जो योगी ध्यान के द्वारा सतत आप से जुड़ा होता है, वह भोगों से मुक्ति पा जाता है। अन्य मरणधर्मा लोग जो आपकी शरण ग्रहण करते हैं वे शुद्ध होकर दिव्य भोगों को भोगते हैं।

इस पुराण में दक्ष-यज्ञ के विध्वंस की कथा कुछ भिन्न है। अन्य पुराणों में यह बताया गया है कि सती के पिता दक्ष ने यज्ञ में न तो उन्हें और न उनके पति को निमन्त्रित किया था। सती बिना बुलाये उस यज्ञ में शामिल हुई तथा वहाँ अपने पति का भाग न देखकर दक्ष से विवाद कर अपने शरीर को छोड़ दिया। तदनन्तर शिव ने वीरभद्र को प्रकट कर उस यज्ञ का विनाश करवाया।

परन्तु इस पुराण के अनुसार एक बार दक्ष ने सती को छोड़ अपनी सभी पुत्रियों को उनके' पतियों सहित आमन्त्रित किया। ऐसा ज्ञात होने पर सती बिना बुलाये ही पिता के घर जाकर उनके व्यवहार की आलोचना की। तब दक्ष ने कहा कि तुम्हारे पति से मेरा वैर है तथा तुम्हारा पति हमारी अन्य पुत्रियों के पति से कम गुणवान् है, इस कारण से तुम्हें नहीं बुलाया। इसपर सती ने क्रोध कर अपने शरीर को योगाग्नि से भस्म कर दिया। जब शिव को यह सब पता लगा तो वे दक्ष को श्राप देते हैं कि वह चाक्षुष मनवन्तर में धरती पर जन्म लेगा। दक्ष ने भी उन्हें श्राप दिया कि ब्राह्मण यज्ञ में अन्य देवों के साथ तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे तथा युग के अन्त होनेतक तुम धरतीपर ही बने रहोगे। (वायुपुराण 1/30/57-67)

इस प्रकार श्राप प्राप्त करने के बाद दक्ष ने तत्काल अपना स्वायम्भुव मनवन्तर का शरीर त्याग दिया और पुनः मानव शरीर को प्राप्त कर चाक्षुष मनवन्तर में जन्म लिया। तदनन्तर वैवश्वत मनवन्तर के आने पर सती ने पार्वती के रूप में मेना के घर जन्म लिया तथा शिव से उनका संबंध हुआ। एक समय गंगा द्वार के निकट दक्ष ने यज्ञ का आयोजन किया जिसमें उसने शिव-पार्वती को छोड़कर अन्य सभी देवों को निमन्त्रित किया था। यह सब देखकर दधीचि ने क्रुद्ध होकर दक्ष से कहा कि तुमने शिव को क्यों नहीं निमन्त्रित किया? शिव के निमन्त्रण से सभी देवताओं का निमन्त्रण हो जाता है। शिव से बढ़कर अन्य कोई भी देवता नहीं है।

सर्वे निमन्त्रिता देवा येन ईशो निमन्त्रितः।
यथाहं शङ्करादूर्द्ध्वं नान्यं पश्यामि दैवतम्। (वायुपु. 1/30/106)

अन्त में उन्होंने दक्ष-यज्ञ के पूरा न होने का श्राप दे दिया। पार्वती को जब यह पता लगा कि यज्ञ में शिव को निमन्त्रित नहीं किया गया है तो वे शिव से बोलीं कि आप सभी देवों में श्रेष्ठ हैं। फिर भी आपको नहीं बुलाया गया इससे मुझे बड़ा दुःख है। मैं तपस्या या किसी भी उपाय से आपको यज्ञ में भाग दिलवाऊँगी। इस बात को सुनकर शिव ने देवी से कहा कि इन्द्रादि देवों के मोहित हो जाने के कारण तीनों लोक मोहित हो गया है (इसी कारण मुझे निमन्त्रण नहीं दिया गया है)। सभी लोग यज्ञों में मेरी ही स्तुति करते हैं, रथन्तर साम द्वारा मेरा ही गायन करते हैं। ब्रह्मसत्र में ब्राह्मण मेरी ही पूजा

करते तथा अध्वर्यु मेरा भाग देते हैं।

मामध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथन्तरे साम गायन्ति गेयम्।
मां ब्राह्मणा ब्रह्मसत्रे यजन्ते माध्वर्य्यवःकल्पयन्ते च भागम्।। (वायुपु. 1/30/119)

इस उत्तर से पार्वती को सन्तोष नहीं हुआ तब भगवान् शंकर ने वीरभद्र को प्रकट कर दक्ष का यज्ञ भंग करवाया। दक्ष-यज्ञ को भंग करने के बाद वीरभद्र भयभीत दक्ष को सलाह देते हैं कि वे भगवान् शिव की शरण ग्रहण करें क्योंकि उनका क्रोध भी अन्य देवों के वरदान से अच्छा है। तब उन्होंने भगवान् शिव की शरण ग्रहण कर उनसे वरदान पाकर यज्ञ के फल को प्राप्त किया। तदनन्तर उनकी 1008 नामों से स्तुति की।

दक्ष ने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को देवदेवेश, देवताओं में श्रेष्ठ, देव तथा दानवों द्वारा पूजित, तीन आँखोंवाला, सर्वत्र हाथ, पैर, आँख, शिर एवं मुखवाला, गायत्री तथा उपासकों द्वारा पूजित, देव-दानव के रक्षक, ब्रह्मा, इन्द्र, आदित्य, विष्णु, बृहस्पति, क्रिया, कार्य, कारण, कर्त्ता तथा करण, असत, सत्-असत्, विश्व के जनक और प्रलयकर्त्ता, वरदाता, पशुपति, त्रिशूलधारी, नीलकण्ठ, स्तुत्य अथवा स्तुति किये जानेवाले, सर्वभूतान्तरात्मा, पूज्य अथवा पूज्यमान, स्थिर, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, दसभुज, कपालहस्त, चिताभस्मप्रिय, शिव, शान्त, शुद्ध, बुद्ध, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षदाता, सांख्य-योग के अधिपति, ईशान, चराचर के स्रष्टा एवं हर्त्ता, ब्रह्मविदों एवं वेदज्ञों में श्रेष्ठ, सत्त्वगुण के स्रोत, ऋक्-साममंत्र, ओंकार, चारों वर्णों द्वारा पूज्य, प्रतिज्ञाओं में सत्य, आदि, मध्य और अन्त, गायत्री और ओंकार, ब्रह्म, यजुः मन्त्रों में शतरुद्रिय, पवित्रों में पवित्र, शुभों के शुभ, सृष्टिरूप, काली तथा काल- रूप, कालघ्न, रुद्राक्षमालाधारी, तारक, सर्व भूतों का तारक, धाता या स्रष्टा, विधाता (भाग्य-लेखक), रक्षक, धारक, ब्रह्म, सत्य, आत्मा, भूत-भव्य, भू, भुवः, स्वः, सबके प्रारंभ, महेश्वर, शान्त, अधर्म को नष्ट करनेवाले, धर्मकर्त्ता, धर्मस्रष्टा, दुर्विद (कठिनता से जाने जाने योग्य), व्याधिहर, पितामह जिसके हृदय हैं, न तो ब्रह्मा, न तो विष्णु और न ही प्राचीन ऋषियों द्वारा ज्ञेय, भक्तानुकम्पी, सर्वगो, सर्वभूतपति, सर्वभूतान्तरात्मा तथा सर्वस्वकर्त्ता आदि-आदि कहा है (वायुपु. 1/30/180-284)। स्तुति के कुछ अंश देखें-

आदित्यमथ विष्णुश्च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम्।
क्रिया कार्य्यं कारणश्च कर्त्ता करणमेव च।।
असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाव्ययम्।
नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च।।
धर्मार्थकाममोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च।।
चराचरस्य ब्रह्मा त्वं प्रतिहर्त्ता त्वमेव च।
त्वमेव ब्रह्मविदुषामपि ब्रह्मविदां वरः।।

ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः।।
सुपर्णश्च तथा ब्रह्म यजुषां शतरुद्रियम्।
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्।।
तरणस्तारकश्चैव सर्वभूतसुतारणः।
धाता विधाता सत्वानां निधाता धारणो धरः।।
तपो ब्रह्म च सत्यञ्च ब्रह्मचर्यमथार्जवम्।
भूतात्मा भूतकृद्भूतो भूतभव्यभवोद्भवः।।
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिव।।
सर्वस्त्वं सर्वगो देव सर्वभूतपतिर्भवान्।
सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः।।

(वायुपु. 1/30/186-187, 218, 227-228, 243, 254-255, 268, 281)

अर्थात्- आप आदित्य(सूर्य), विष्णु, ब्रह्मा और बृहस्पति हो। आप ही क्रिया, कार्य, करण, कर्त्ता एवं कारण हो। आप ही असत्, सदासत्, सृष्टि और प्रलय के स्रोत हो। आप भव, शर्व, रुद्र और वरदाता को नमस्कार है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाले को नमस्कार है। आप चर-अचर के स्रष्टा ब्रह्मा हो तथा उन्हें नष्ट करनेवाले भी हो। आप वेदज्ञों तथा ब्रह्मज्ञों दोनों में ही श्रेष्ठतम हो। वेद के ज्ञाता तुम्हें ऋक् और साम के मन्त्र तथा ओंकार कहते हैं। आप सुपर्ण ब्रह्म हो, यजुर्मन्त्रों में शतरुद्रिय हो। आप पवित्रों में परम पवित्र तथा शुभों में परम शुभ हो। आप तरण(नाव), तारक तथा सभी भूतो के सुतारण, धाता(स्रष्टा), विधाता(भाग्यलेखक) और जीवों के धारक एवं रक्षक हो। आप तप, ब्रह्म, सत्य, ब्रह्मचर्य, आर्जव, भूतों की आत्मा, सभी जीवों के कर्त्ता, तथा भूत, वर्तमान तथा भविष्य के स्रोत हो। हे शिव! आपके माहात्म्य को यथा-तथ्यरूप से न तो ब्रह्मा, न विष्णु और न ही प्राचीन(अथवा पुराणों के) ऋषि जान सकते हैं। हे प्रभु आप ही सभी कुछ हैं, आप सर्वत्र व्यापक हैं, आप सभी भूतों के स्वामी तथा उनकी अन्तरात्मा हैं। इसीलिये आपको निमन्त्रित नहीं किया गया है।

सागर-मन्थन से निकले विष के बारे में ब्रह्माजी देव-दानवों से कहते हैं कि शिव के सिवा इसकी ज्वाला को न तो मैं, न विष्णु और न ही कोई अन्य प्रमुख देवता ही झेल सकता है(वायुपु. 1/54/63)। तदनन्तर विषपान के लिये ब्रह्माजी ने शिव को स्तुति द्वारा प्रसन्न किया। वे अपनी स्तुति में शिवजी को पिनाक एवं वज्र धारण करनेवाले, त्रैलोक्य के स्वामी, त्रिनेत्र, भूतपति, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, सांख्य-योग के देव, काल एवं काम के शत्रु, देवदेव, सुरेश, वरदाता, जटाधारी, बुद्ध, शुद्ध, वन्द्य, मुक्त, केवल, त्रिलोक के विधाता, रज, तम एवं सत्त्व के धारक, अव्यक्त-योनि, नित्य, अनित्य, नित्यानित्य, व्यक्त, अव्यक्त, व्यक्ताव्यक्त, चिन्त्य, अचिन्त्य, चिन्त्याचिन्त्य, भक्तार्तिनाशक, नर, नारायण तथा यजुः एवं सामवेदस्वरूप आदि कहा है।(वायुपु. 1/54/65-77)

ब्रह्मणे चैव रुद्राय विष्णवे चैव ते नमः।
साङ्ख्याय चैव योगाय भूतग्रामाय वै नमः।।
नित्यायानित्यरूपाय नित्यानित्याय वै नमः।
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः।।
चिन्त्याय चैवाचिन्त्याय चिन्त्याचिन्त्याय वै नमः।
भक्तानामार्तिनाशाय नरनारायणाय च।।
बुद्धाय च एव शुद्धाय मुक्ताय केवलाय च। (वायुमहापु.1/54/67, 73-74, 70)

अर्थात्- आप ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु हैं, आपको नमस्कार है। आप सांख्य-योग(के ईश्वर) तथा भूत समुदाय हो, आपको नमस्कार है। नित्य, अनित्य, तथा नित्यानित्यस्वरूप(भगवान्) को नमस्कार है; व्यक्त, अव्यक्त, तथा व्यक्ताव्यक्तस्वरूप(देव) को नमस्कार है। चिन्त्य, अचिन्त्य तथा चिन्त्याचिन्त्य(देव) को नमस्कार है। तुम भक्तों के दुःख को दूर करनेवाले तथा नर-नारायण(भगवान् विष्णु के अवतार रूप दो ऋषि) हो, (आप)शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और केवल(अद्वैत-तत्त्व) हो।

सागरमन्थन से उत्पन्न विष का पान करने के बाद शिवजी के प्रति देव-दैत्य, नाग, राक्षस आदि श्रद्धा से हाथ जोड़कर अन्य बातों के अलावा इस प्रकार उद्गार व्यक्त कहते हैं-

त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव मृत्युर्वरदस्त्वमेव।
त्वमेव सूर्यो रजनीकरश्च त्वमेव भूमिः सलिलं त्वमेव।।
त्वमेव यज्ञो नियमस्त्वमेव त्वमेव भूतं भविता त्वमेव।
त्वमेव चादिर्निधनं त्वमेव स्थूलश्च सूक्ष्मः पुरुषस्त्वमेव।।
त्वमेव सूक्ष्मस्य परस्य सूक्ष्मस्त्वमेव वह्निः पवनस्त्वमेव।
त्वमेव सर्वस्य चराचरस्य लोकस्य कर्त्ता प्रलये च गोप्ता।।

अर्थात्-तुम ही विष्णु, ब्रह्मा और मृत्यु(के देवता यम) हो। तुम ही वरदाता हो, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और जल हो। तुम ही यज्ञ, (व्रत आदि के)नियम, भूत और भविष्य हो। तुम ही(विश्व के) आदि और अन्त हो, तुम ही स्थूल और सूक्ष्म पुरुष हो। तुम सूक्ष्माति सूक्ष्म, अग्नि और वायु हो। तुम ही समस्त चराचर जगत् के स्रष्टा, रक्षक और प्रलयकर्त्ता हो।(वायुपु. 1/54/98-100)

गुण, क्रिया और शक्ति में सर्वश्रेष्ठ(देव) कौन हैं? इस प्रश्न के उत्तर में सूतजी ऋषियों को भगवान् विष्णु द्वारा देवों, ऋषियों तथा गन्धर्वो आदि को सुनाये गये प्रसंग की चर्चा करते हैं। विष्णुजी ऋषियों आदि से कहते हैं कि उनकी उपलब्धियों(जैसे अनेक असुरों पर विजय पाना तथा बलि को बाँधना आदि) का कारण भगवान्(शिव) हैं जो सभी जीवों की सृष्टि करते हैं, जो कालरूप एवं काल को पैदा करनेवाले हैं तथा जो अपनी माया से ब्रह्मा सहित जगत् की उत्पत्ति करते हैं(वायुपु. 1/55/9-10)।

भगवान् विष्णु आगे कहते हैं कि जब तीनों लोक अन्धकार में डूबा था, उस समय मैं जल में लेटा हुआ था। इतने में मेरे पास ब्रह्मा का आगमन हुआ तथा परस्पर श्रेष्ठता को लेकर हम दोनों में विवाद छिड़ गया। हमदोनों एक दूसरे पर हावी होना चाहते थे। तभी उत्तर दिशा में हमलोगों को एक अग्निज्वाला दीखी, जो उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। जब हम उसके पास पहुँचे तो वह ज्वाला पृथ्वी से स्वर्ग तक लम्बी हो गयी थी। उस ज्वाला के भीतर एक बहुत ही चमकीला एक प्रदेश (12 अंगुल) के परिमाण का अव्यक्तलिंग दीखा जो कभी प्रकट हो जाता और कभी लुप्त हो जाता था। वह लिंग न तो सोने का, न चाँदी का और न ही पत्थर का बना जान पड़ता था। उस ज्वाला का हम दोनों में से कोई भी आदि और अन्त न पा सका। उस समय हमलोग उस महान् आत्मा की माया से मोहित हो चेतना खो बैठे थे। तदनन्तर हम दोनों ने उनकी स्तुति की।

ब्रह्मा एवं विष्णु ने उस समय अपनी स्तुति में शिवजी को लोकों एवं देवों के स्वामी, भूतपति, जगत् को धारण करनेवाले, परमेष्ठी (श्रेष्ठ देव), परम ब्रह्म, अक्षर, परमपद, वामदेव, रुद्र, स्कन्द, प्रभु, शिव, यज्ञ, वषट्कार, ओंकार, स्वाहा, जप्यमन्त्र, व्रत, वेद, लोक, सर्वदेवमय, सभी भूतों के कर्त्ता, काल, मृत्यु, यम, तीनों लोकों को धारण तथा उनकी रचना करनेवाले, लोकों की सृष्टि के अव्यक्त स्रोत, उमा, सीता, गायत्री तथा लक्ष्मी को पैदा करनेवाले, सर्वगुणसम्पन्न, भस्मधारी, पिनाक, चक्र एवं बाण को धारण करनेवाले तथा नीलकण्ठ आदि-आदि कहा है (वायुपु. 1/55/30-50)।

परमेष्ठी परं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम्।
श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कन्दः शिवः प्रभुः।।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परं पदम्।
त्वं कर्त्ता सर्वभूतानां कालः मृत्युर्यमोऽन्तकः।
त्वं धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो। (वायु पु. 1/55/32-33, 37)

अर्थात्- तुम परमेष्ठी (सर्वश्रेष्ठ देव), परमब्रह्म, अक्षर, तथा परमपद हो। तुम श्रेष्ठ वामदेव तथा प्रभु रुद्र, स्कन्द एवं शिव हो। तुम ही यज्ञ, वषट्कार एवं परमपद ओंकार हो। तुम सभी प्राणियों के कर्त्ता हो। तुम काल, मृत्यु और अन्त करनेवाले (मारनेवाले) यम हो। तुम तीनों लोकों की सर्जना तथा धारण करनेवाले हो।

ब्रह्मा एवं विष्णु की उपरोक्त स्तुति से प्रसन्न हो भगवान् शिव प्रकट हो गये तथा उनसे बोले कि तुमलोग मेरे शरीर से उत्पन्न देव हो। ब्रह्मा मेरे दक्षिण बाहु तथा विष्णु बाम बाहु हैं। मैं तुमलोगों को अभिप्सित वर दूँगा। तदनन्तर उन दोनों ने शिवजी की भक्ति का वर माँगा और शिवजी उस वरदान को देने के बाद यह कहकर कि तुम दोनों नाना प्रकार की सृष्टि-रचना करो, अन्तर्धान हो गये (वायुपु. 1/55/57-61)। विष्णुजी ऋषियों एवं देवों आदि से आगे कहते हैं कि सभी कुछ उन्हीं की रचना है, हम तो नाममात्र ही के कारण कहलाते हैं। शिव का यह रूप अव्यक्त तथा अज्ञेय है।

बुद्धिमान् ही इसे जान सकते हैं। ऐसा कहकर विष्णुजी ने महादेवजी को नमस्कार किया(वायुपु. 1/55/62-64)।

एवमेष मयोक्तो वः प्रभावस्तस्य योगिनः।
तेन सर्वमिदं सृष्टं हेतुमात्रा व्यन्त्विह।।
एतद्धि रूपमज्ञातमव्यक्तं शिवसंज्ञितम्।
अचिन्त्यं तददृश्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।
तस्मै देवाधिपत्याय नमस्कारं प्रयुङ्क्त ह।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।

अर्थात्- इस प्रकार उस योगी(महेश्वर) के प्रभाव का वर्णन किया गया। यह सब उसके द्वारा ही रचा गया है, हम तो मात्र इसके नाम के ही हेतु हैं। यह रूप जिसकी शिव संज्ञा है, अज्ञात एवं अव्यक्त है। यह अचिन्त्य एवं अदृश्य है। ज्ञानचक्षुवाले ही इसे देख सकते हैं। जिसकी कृपा से ज्ञानचक्षुओं द्वारा सूक्ष्म एवं अचिन्त्य(विषयों) को भी देखा जा सकता है, उस देवाधिपति को नमस्कार करो।(वायुपु. 1/55/62-64)

शुक्राचार्य भगवान् शिव से संजीवनी विद्या तथा अनेक वरदान प्राप्त करने के बाद भगवान् शिव की स्तुति करते हैं। वे अपनी स्तुति में भगवान् शिव को शितिकण्ठ, जगत्पति, जगत् का लोप करनेवाले, जटाधारी, देवदेव, सूर्य को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, सहस्र आँखों, बाहु, चरण एवं शिरवाले, बहुरूप, विश्वरूप, श्वेतवर्णवाले, पुरुष, पिनाकी, ईश्वर, त्र्यम्बक, मृत्यु, सांख्य, योग, ध्यानी, अन्तर्हित, शर्व, मानवीय, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, केवल, नित्य, शाश्वत, त्रिशूली, क्षमा, सत्य, तप, वरेण्य, लोकों के ईश्वर, अनामय, श्रेष्ठ, ईशान, कृतिवासा, पशुपति, भूतपति, प्रणव, ऋक्, यजु, साम, स्वधा, सुधा, वषट्कार, स्रष्टा, धात्रा(धारण या पालन करनेवाला), अन्तात्मा(संहार करनेवाला), होत्रा, हर्त्ता, काल, भूत, वर्तमान एवं भविष्य, मन्त्र, औषधि, यज्ञ, सत्य, त्याग, शम, अहिंसा, योगात्मा, सर्वभूतात्मा, अव्यक्त, महत्, तत्त्वात्मा, नित्य, सूक्ष्म, चेतन, विभु तथा नित्यात्मा आदि संज्ञाओं एवं विशेषणों से विभूषित करते हैं(वायुपु. 2/35/162-203)। स्तुति के कुछ अंश देखें-

पशूनां पतये चैव भूतानां पतये नमः।
प्रणवे ऋग्यजुःसाम्ने स्वधायै च सुधाय च।।
वषट्कारतमायैव तुभ्यमन्तात्मने नमः।
स्रष्ट्रे धात्रे तथा होत्रे हर्त्त्रे च क्षपणाय च।। (वायुपु. 2/35/193-194)

अर्थात्-पशुपति एवं भूतपति को नमस्कार है। प्रणव, ऋक्, यजु और सामवेद, स्वधा और सुधा(स्वरूप शिव) को नमस्कार है। अन्तरात्मा तथा वषट्काररूप(शिव) को नमस्कार है। स्रष्टा, धारणकर्त्ता और हर्त्ता(नष्टकर्त्ता), होतृ तथा क्षय करनेवाले को नमस्कार है।

एक स्थल पर पुनः कहा गया है कि महीदेवजी का महात्म्य देवों को भी कठिनता से समझ में आता है। भगवान् शिव विष्णु के साथ जगत् को धारण करते और नष्ट करते हैं। वे ऋक्, साम तथा यजुर्वेदस्वरूप हैं। वे निश्चितरूप से बाहर और भीतर (सब ओर से) ओत-प्रोत हैं। सूतजी ब्राह्मणों से कहते हैं कि वे ही एकमात्र भगवान् और स्वामी हैं, उनका कभी अभाव नहीं होता तथा वे सबका नाश (समाप्त) करनेवाले हैं। (वायुपु. 2/39/327, 346-347)

महादेवस्य माहात्म्यं दुर्विज्ञेयं सुरैरपि।
विष्णुना सह संयुक्तं करोति विकरोति च।
स रुद्रो यः साममयस्तथैव च यजुर्मयः।।
स एष ओतः प्रोतश्च बहिरन्तश्च निश्चयात्।
एको हि भगवान्नाथ अभावी श्रान्त कृद्द्विजाः।।

भगवान् शिव के अन्तर्गत ज्ञानं, वैराग्र, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, सृष्टि करने की शक्ति, आत्म-संबोध तथा अधिष्ठातृत्व (शासनकरने का गुण) - ये दस गुण सदैव विद्यमान रहते हैं। सभी देवताओं ऋषियों तथा असुरों के तेज से भी अधिक तेजसम्पन्न भगवान् शिव हैं। इसीलिये उन्हें महादेव कहा जाता है। ऐश्वर्य में वे देवों से, बल में असुरों से, ज्ञान में मुनियों से और योग में सभी भूतों से बढ़कर हैं।

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः।
स्त्रष्टृत्वमात्मसम्बोधस्त्वधिष्ठातृत्वमेव च।
अथ यानि दशैतानि नित्यन्तिष्ठन्ति शङ्करे।।
सर्वान् देवान् ऋषींश्चैव समेतानसुरैः सह।
अत्येति तेजसा देवो महादेवस्ततः स्मृतः।।
अत्येति देवानैश्वर्याद्बलेन च महासुरान्।
ज्ञानेन च मुनीन् सर्वान् योगाद्भूतानि सर्वशः।। (वायुपु 1/10/60-62)

शिवोपासना

हम ऊपर देख चुके हैं कि भगवान् शिव ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। वे सर्वदेवमय हैं इसलिये उनकी पूजा से सभी देवों की पूजा हो जाती है तथा उनके सन्तुष्ट हो जानेपर सभी देव सन्तुष्ट हो जाते हैं। दधीचि ने दक्ष को कहा था कि शिव के निमन्त्रित होनेपर सभी देव निमन्त्रित हो जाते हैं (वायुपु. 1/30/106)। इस कथन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शिव की पूजा से सभी की पूजा हो जाती है। एक स्थल पर स्पष्टरूप से कहा गया है कि रुद्रदेव ही सभी कामनाओं का फल प्रदान करते हैं। जिस प्रकार हवा के वेग से पका हुआ फल डंठल से टूटकर अलग हो जाता है उसी प्रकार रुद्रदेव को नमस्कार करने से पाप भी मनुष्य से अलग हो जाते हैं अर्थात् उनका विनाश हो जाता है। रुद्र

को नमस्कार करने से सभी धार्मिक क्रियाओं का फल निश्चितरूप से प्राप्त होता है, परन्तु अन्य देवों के नमस्कार से वैसा फल प्राप्त नहीं होता (और न ही फलप्राप्ति की निश्चितता है)।

सर्वकाम फलोरुद्रः।
यथा वृतान्त् फलं पक्वं पवनेन समीरितम्।
नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति।।
यथा रुद्रनमस्कारः सर्वधर्मफलो ध्रुवः।
अन्यदेवनमस्कारो न तत् फलमवाप्नुयात्।। (वायुपु. 1/20/30-31)

कलियुग के प्रसंग में बातचीत करते हुए भगवान् शिव देवों तथा ऋषियों से कहते हैं कि ब्रह्मा कृत युग में पूजे जाते, त्रेता में यज्ञ की प्रधानता होती, द्वापर में विष्णु तथा चारों युगों में मैं पूजा जाता हूँ। हे ओजस्वी देवश्रेष्ठ आपको कलि के आगमन से भयभीत नहीं होना चाहिये। क्योंकि मैं जगत् के कल्याण तथा देवताओं तथा लोगों को अभय (अथवा सुरक्षा) प्रदान करने के लिये (कलियुग में) अवतार लूँगा और पूजा जाऊँगा। वे आगे कहते हैं कि काल के भय से प्रत्येक मनवन्तर में मैं देवता, ऋषि, पितृ तथा दानवों आदि द्वारा पूजा जाता हूँ।

ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ उच्यते।
द्वापरे पूज्यते विष्णुरहम्पूज्यश्चतुर्ष्वपि।।
तस्मात् कलियुगं प्राप्य लोकानां हितकारणात्।
अभयार्थञ्च देवानामुभयोर्लोकयोरपि।।
तदा भव्यश्च पूज्यश्च भविष्यामि सुरोत्तमाः।
तस्माद्भयं न कार्यं च कलिं प्राप्य महौजसः।।
अतो मन्वन्तरे चैव देवर्षिपितृदानवैः।
पूज्यते भगवानीशो भयात् कालस्य तस्य वै।। (वायुपु. 1/32/21, 24-25, 35)

भगवान् शिव पुनः कहते हैं कि कलियुग में द्विज को प्रयत्नपूर्वक तप करना चाहिये। महादेव की शरण लेनेवाले को अत्यधिक पुण्यफल प्राप्त होता है। इसी कारण से दारुण कलिकाल के आनेपर स्वर्ग को त्यागकर धरती पर अवतीर्ण हो ऋषि एवं देवतालोग तप करना चाहते हैं। वे लोग (अवतरित हो) धर्म-कार्य में लगे रहते हैं। कलियुग में (भगवान् शिव का) अवतार भी बार-बार होता रहता है।[1]

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कलौ कुर्यात्तपो द्विजः।
प्रपन्नस्य महादेवं तस्य पुण्यफलं महत्।
तस्माद्देवा दिवं गत्वा अवतीर्य च भूतले।।

---

[1] कलियुग में भगवान् शिव के होनेवाले अवतारों में आदि शंकरचार्य का नाम सर्वविदित है। (देखिये- 'वैदिक देवता', लेखक गया चरण त्रिपाठी, पृ. 558, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1987)

ऋषयश्चैव देवाश्च कलिम्प्राप्य सुदारुणम्।
तप इच्छन्ति भूयिष्ठं कर्त्तुं धर्मपरायणाः।
अवतारान् कलिं प्राप्य करोति च पुनः पुनः।। (वायुपु. 1/32/36-37)

एक अन्य स्थल पर शिव की उपास्यता के बारे में इस प्रकार कहा गया है-

य एष शिवनाम्ना हि तद्वः कात्स्न्र्येन कीर्तितम्।
स एष सर्वत्र गतः सर्वस्थानेषु पूज्यते।।
भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले।
अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः।।
तथा तपसि विज्ञेय एष एव महाद्युतिः।
अनेकधा विभक्ताङ्गो महायोगी महेश्वरः।
सर्वलोकेषु लोकेश इज्यते बहुधा प्रभुः।। (वायुपु. 1/49/169-171)

अर्थात्-जिनकी कीर्ति का वर्णन किया गया है उन्हें शिव नाम से पुकारा जाता है। वे सर्वत्र व्यापक हैं तथा वे सर्वत्र पूजे जाते हैं। वे निःसन्देहरूप से पृथ्वी, रसातल, आकाश, वायु, अग्नि, समुद्र तथा स्वर्ग में पूजे जाते हैं। उस महाद्युतिमान(शिव) को तप से जाना जाता है। महायोगी महेश्वर ने अपने को अनेक रूपों में बाँट रखा है। सभी लोकों में वे लोकेश(भगवान् शिव) नाना रूप से पूजे जाते हैं।

दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने के बाद वीरभद्र उससे कहते हैं कि "हे राजेन्द्र तुम उमापति भगवान् शिव की शरण में(अपने कल्याण के लिये) जाओ। उनका क्रोध भी अन्य देवताओं के वरदान से श्रेष्ठ है।"

शरणं गच्छ राजेन्द्र देवं ते त्वमुमापतिम्।
वरं क्रोधोऽपि रुद्रस्य वरदानं न देवतः।। (वायुपु. 1/30/165)

इस पुराण में भगवान् शिव को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का दाता(**धर्मार्थकाममोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च,** वायुपु. 1/30/218), सर्वभूतों का तारक(**तरणस्तारकश्चैव सर्वभूतसुतारणः,** वायुपु. 1/30/254), अधर्म को नष्ट करनेवाले(वायुपु. 1/30/259), चारों वर्णों द्वारा पूज्य(**ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराश्च ये........,** वायुपु. 1/30/231), सब कुछ प्रदान करनेवाले(वायुपु. 1/30/221), सूक्ष्म एवं अचिन्त्य वस्तुओं का ज्ञान प्रदान करनेवाले(**येन सूक्ष्ममचिन्त्यञ्च पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः,** वायुपु. 1/55/64), भक्तों के दुःखों का नाश करनेवाले (**भक्तनामार्तिनाशाय ....,** वायुपु. 1/54/74), परमपद(वायुपु. 1/55/32, 33), दुःखी यतियों के ध्येय(**इति दुःखार्त्तैर्मृग्यते यतिभिः शिवः,** वायुपु. 1/24/65), आध्यात्मिक लोगों के आनंद के परमधाम(**महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम्,** वायुपु. 1/24/69), व्याधिहर(वायुपु.

1/30/263), सत्त्व गुण के स्रोत (वायुपु. 1/30/228), वर देनेवाले, मोक्ष एवं नरक के स्वामी (............**नमो वन्द्याय मोक्षाय जनाय करकाय च,** वायुपु. 1/24/113), भक्तों को आनंद प्रदान करनेवाले (वायुपु. 1/24/133), योगियों को भोगों से निवृत्त करनेवाले तथा शरणागतों को पाप से मुक्त कर दिव्य भोग प्रदान करनेवाले (वायुपु. 1/24/163), व्रतों एवं मन्त्रों के स्वामी (**नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः**, वायुपु. 1/24/103), गायत्री अथवा अन्य (प्रकार के) उपासकों द्वारा गेय अथवा उपासित (वायुपु. 1/30/183), सांख्य एवं योग के अधिपति (...........**योगाधिपतये नमः**, वायुपु. 1/30/219 तथा 1/54/67 आदि) तथा भक्तानुकम्पी (वायुपु. 1/30/270)–जैसे अनेक विशेषणों से युक्त बताया गया है। इन विशेषणों तथा ऊपर के सदर्भों पर अगर ध्यान से विचार करें तो हमें भगवान् शिव की उपासना करने का सुझाव प्राप्त होता है।

भगवान् शिव की पूजा से अनेक देवता तथा ऋषि आदि लोगों ने नाना प्रकार की शक्तियाँ तथा सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। उदाहरण के लिये ब्रह्मा एवं विष्णु ने नाना प्रकार की सृष्टिरचना का (वायुपु. 1/55/61) तथा शुक्राचार्य को मृतसंजीवनी विद्या आदि का (वायुपु. 2/35/156-160) वरदान पाना। भगवान् शिव भोग एवं मोक्ष के दाता, पाप मिटानेवाले, दुःख-शोक, आधि-व्याधि दूर करनेवाले तथा अज्ञान को दूर करनेवाले भक्तानुकम्पी देव हैं इसलिये उनकी उपासना सभी वर्णों, आश्रमों तथा सभी प्रकार के प्राणियों (जैसे देव, दानव, मानव, असुर, नाग, गन्धर्व आदि) द्वारा की जानी चाहिये।

लिंगपूजा

इस पुराण में लिंगपूजा का संकेत स्पष्टरूप से प्राप्त होता है। एक बार ब्रह्मा एवं विष्णु के बीच यह विवाद उठा कि उनमें से कौन श्रेष्ठ है। इस विवाद के दौरान भगवान् शिव एक अग्निस्तंभ (जो लिंगाकार था) के रूप में प्रकट हुए थे। उस समय उस अग्निस्तंभ के मध्य 12 अंगुल का एक तेजोमय लिंग कभी दीखता और कभी अदृश्य हो जाता था। जब उन दोनों द्वारा उस अग्निस्तंभ (रूप लिंग) के ओर-छोर का पता न लग सका तब उन दोनों ने उस अग्निस्तंभ, जिसमें वह छोटा लिंग भी स्थित था, की स्तुति कर भगवान् शिव को सन्तुष्टकर वरदान प्राप्त किया। (वायुपु. पूर्वार्ध अध्याय 55)

उपरोक्त कथा (जिसका पहले भी उल्लेख हो चुका है) में लिंगपूजा के बीज का स्पष्टरूप से संकेत है। अन्य पुराणों में इस कथा के साथ ही लिंगपूजा करने के महत्त्व को बताया गया है (उदाहरण के लिये देखिये शिवपुराण, विद्ये. संहि. अध्याय 8-9)।

पाशुपत योग

इस पुराण के पूर्वार्ध के 10 वें अध्याय में शिव को परम योगी के रूप में चित्रित किया गया है

और उनके द्वारा प्रतिपादित माहेश्वर या पाशुपतयोग के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इस योग को आदित्य, वसु, साध्य, अश्विन, मरुत्, भृगुगणों तथा स्वर्गवासी, जिनमें यम और इन्द्र प्रमुख हैं, धारण करते हैं। इसी प्रकार पितृगण, काल, मृत्यु तथा अन्य लोग भी इस योग का अनुसरण करते हैं(1/10/66-67)। इस योग को धारण करने से महेश्वर का ज्ञान प्राप्त होता है।

महेश्वर के ये शाश्वत धर्म(अर्थात् पाशुपतयोग के अंग) क्रमशः इस प्रकार हैं: प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा तथा स्मरण। इन पाँचों अंगों में से प्रथम चार अंग पतंजलि के अष्टांगयोग के अंगों के समान ही हैं। पातंजल-योग की 'समाधि' के स्थान पर यहाँ स्मरण जोड़ दिया गया है।

इस पुराण के पाँच अध्यायों(पूर्वार्ध अध्याय 11-15) में योग का विशद वर्णन प्राप्त होता है। 11 वें अध्याय में प्राणायाम के चार लक्ष्य शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद का वर्णन(1/11/4-9), आसन, प्राणायाम तथा धारणा के विस्तृत वर्णन तथा इनसे उत्पन्न सिद्धियों का उल्लेख(1/11/12-30) मिलता है। योगाभ्यास के लिये वर्जित स्थानों का वर्णन(1/11/31-34), योग साधन के खतरे तथा प्राणायाम के गलत अभ्यास से उत्पन्न कष्टों(1/11/35-37) तथा उनके उपचार(1/11/38-58), योग में प्रगति के चिन्ह(1/11/60-61) आदि का वर्णन मिलता है।

बारहवें अध्याय में योगसाधन के मार्ग में आनेवाले व्यवधानों(उपसर्गों) तथा उन्हें दूर करने के उपायों का वर्णन है। 13 वें अध्याय में अष्ट सिद्धियों का वर्णन है(जिसकी चर्चा अन्य ग्रन्थों में भी है) परन्तु इनका सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म में वर्गीकरण अन्य ग्रन्थों के वर्णनों से हटकर है। सावद्य में पाँच तत्त्व, निरवद्य में पाँच तत्त्व तथा ज्ञान-इन्द्रियाँ तथा सूक्ष्म में इन दोनों के साथ-साथ मन, अहंकार तथा बुद्धि भी आती हैं(1/13/5-8)।

अगले अध्याय में मुख्यतः आत्मा के पुनर्जन्म तथा भ्रूणविज्ञान संबंधी बातें बतायी गयी हैं। नरक में प्राप्त होनेवाली यातनाओं के वर्णन भी किये गये हैं। 15वें अध्याय में पाशुपत-योग के प्रतिदिन संपादन की विधि बतायी गयी है।

प्राणायाम की महत्ता को बताते हुए कहा गया है कि सभी प्रकार के तप, व्रत और नियम तथा सभी प्रकार के यज्ञों के फल के बराबर प्राणायाम का फल होता है।

तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये।
सर्व यज्ञफलञ्चैव प्राणायामश्च तत्समः।। (वायुपु. 1/10/86)

आगे कहा गया है कि शारीरिक दोषों को प्राणायाम से, पापों को धारणा से, विषयों को प्रत्याहार से तथा अदैवीय गुणों को ध्यान से हटाना(जलाना) चाहिये।

प्राणायामैर्दहद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।। (वायुपु. 1/10/88)

विभिन्न ग्रंथों में पाशुपतयोग का वर्णन भिन्न-भिन्न प्राप्त होता है। 'पाशुपतयोग' का अर्थ

पाशुपति से योग करानेवाला मार्ग लिया जाय तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि पाशुपतयोग के विभिन्न रूप क्यों मिलते हैं। उदाहरण के लिये महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय 45 पृ. 6020, गीताप्रेस, गोरखपुर में पाशुपतयोग के अन्तर्गत मुख्यतः लिंगपूजा का उपदेश है। लिंगपूजा(अथवा भक्तियोग) भी पशुपति के ज्ञान का एक साधन है। इस पुराण में पशुपति को योगसाधना से प्राप्त करानेवाले मार्ग को पाशुपतयोग कहा गया है।

शिवोपासना संबंधी अन्य बातें

शिवोपासना का चरम लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना है। यह मुक्ति अनेक प्रकार की होती है। सबसे पहली मुक्ति सालोक्य कहलाती है। इसमें साधक को शिवलोक की प्राप्ति होती है। शिवलोक किसे प्राप्त होता है? इसे बताते हुए इस पुराण में कहा गया है कि जो लोग लज्जायुक्त, शौर्ययुक्त, अलोलुप, मध्यआहार करनेवाले(अर्थात् उचित आहार करनेवाले), आत्मा में ही रमण करनेवाले, इन्द्रियों को जीतनेवाले, द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त करनेवाले, महान् उत्साहपूर्ण, सौम्य, मात्सर्य से रहित, सभी प्राणियों के प्रति प्रेमयुक्त व्यवहार करनेवाले, (संसारिक)व्यापार से शून्य, आकुलता से रहित, मन, वाणी एवं कर्म से विशुद्ध अन्तरात्मावाले तथा अनन्यरूप से भगवान् शिव की शरण लेनेवाले ही शिवधाम को जाते हैं।

ह्रीमन्तः सूर्जिता दान्ताः शौर्ययुक्ता ह्यलोलुपाः।।
मध्याहाराश्च मात्राश्चः ह्यात्मारामा जितेन्द्रियाः।
जितद्वन्द्वा महोत्साहाः सौम्या विगतमत्सराः।।
भावस्थाः सर्व्वभूतानामव्यापारा अनाकुलाः।
कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना।
अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम्।।
तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम्। (वायुपु. 2/39/311-314)

वाराणसीतीर्थ के बारे में कहा गया है कि सिद्धों के इस पवित्र स्थल को अपने निवास के लिये भगवान् शिव ने चुना(वायुपु. 2/30/35)। वे इस क्षेत्र को छोड़कर कहीं नहीं जाते, इसलिये इसे अविमुक्तक्षेत्र कहते हैं। यहाँ पर शिव देवताओं द्वारा तीन युगों में पूजे जाते हैं। कलियुग में वे(शिव) अपनी पुरी सहित यहाँ से अन्तर्धान हो जाते हैं(वायुपु. 2/30/57-60)।

अन्त में इस पुराण में कई अच्छे स्तोत्र हैं जिनके द्वारा स्तुति कर व्यक्ति अपनी इच्छा को पूर्ण कर पापों से मुक्त हो सकते हैं। उदाहरण के लिये ब्रह्मा-विष्णु द्वारा की गयी स्तुति(1/55/30-50) तथा दक्ष-प्रजापति द्वारा की गयी एक हजार आठ नामों द्वारा स्तुति(1/30/180-284), जिसका ब्रह्मा ने निर्माण किया था। इस स्तुति की महत्ता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार सभी देवों में श्रेष्ठ भगवान् शिव हैं उसी प्रकार ब्रह्मा द्वारा निर्मित यह(सहस्रनाम) स्तोत्र भी सभी स्तोत्रों

में श्रेष्ठ है।

यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो योगवान् हरः।
तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां ब्रह्मनिर्मितः।। (वायुपु. 1/30/305)

इस स्तोत्र के पाठ से व्यक्ति सभी कुछ, भोग एवं मोक्ष, प्राप्त कर सकता है।

पुनः इस पुराण में रुद्रगायत्री के बारे में कहा गया है कि इसके जप से ब्रह्माजी ने महादेवत्त्व, दिव्ययोग, ऐश्वर्य तथा ज्ञान एवं वैराग्यरूपी संपत्ति को प्राप्त किया था (वायु पु. 1/23/11-13)। अतः रुद्रगायत्री के प्रभाव से ब्रह्माजी की भाँति सभी लोग, योग, ऐश्वर्य, ज्ञान एवं वैराग्य को प्राप्त कर सकते हैं।

त्रिदेवों की एकता एवं उनके संबंध

सृष्टि-प्रक्रिया माया या प्रकृति के सहारे सम्पन्न होती है। परम तत्त्व शिव या ब्रह्म ही प्रकृति का आश्रय ले सगुण होकर सृष्टि-व्यापार को चलाते हैं। प्रकृति या माया में तीन गुण-रज, तम तथा सत्त्व होते हैं। इन्हीं गुणों की आपसी क्रिया-प्रतिक्रिया से संसार की सभी वस्तुओं-चराचर-की सृष्टि होती है। सृष्टि के प्रारंभ में या प्रलय के उपरान्त ये तीनों गुण साम्यावस्था में होते हैं। जब परम तत्त्व की प्रेरणा से इन गुणों में क्षोभ उत्पन्न होता है तब सृष्टि-प्रक्रिया प्रारंभ होती है तथा सर्वप्रथम त्रिदेवों की उत्पत्ति होती है।

इस पुराण में भी (अन्य पुराणों की भाँति) यह बताया गया है कि रजोगुण ब्रह्मा, तमोगुण अग्नि (रुद्र) और सत्त्वगुण विष्णु के रूप में प्रकट हुआ। रजोगुण के प्रकाशक ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता हैं। तमोगुण के प्रकाशक अग्नि कालरूप हैं तथा सत्त्वगुण के प्रकाशक विष्णु उदासीन हैं। ये ही तीनों देव और ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। ये तीनों परस्पर आश्रित तथा अनुव्रत (विश्वसनीय सहायक) हैं। वे एक साथ क्रियाशील होते तथा एक दूसरे को धारण करते, सदैव एक दूसरे के साहचर्य में रहते तथा एक दूसरे को जीवन्त बनाते हैं। उनमें कभी भी एक क्षण के लिये न वियोग होता और न ही वे एक दूसरे का कभी त्याग करते हैं। ईश्वर ही सर्वोच्च देव है। .... ब्रह्मा रजोगुण की प्रधानता से सृष्टि का कार्य करते हैं............ वे अपना कार्य महेश्वर की अध्यक्षता में करते हैं तथा वे (महेश्वर) सब तरफ से ब्रह्मा को प्रेरित करते हैं। वे (अव्यक्त ईश) ब्रह्मा होकर चतुर्मुख बन जाते हैं, काल बनकर संहारकर्त्ता तथा पुरुष (विष्णु) बनकर सहस्रशीर्षवाले हो जाते हैं। स्वयंभू प्रभु की ये तीन अवस्थायें (अथवा विशेषतायें) हैं।

रजो ब्रह्मा तमो ह्यग्निः सत्त्वं विष्णुरजायत।
रजः प्रकाशको ब्रह्मा स्रष्टृत्वेन व्यवस्थितः।।
तमःप्रकाशकोऽग्निस्तु कालत्वेन व्यवस्थितः।
सत्त्व प्रकाशको विष्णुरौदासीन्ये व्यवस्थितः।।
एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयोऽग्नयः।
परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः।।

परस्परेण वर्त्तन्ते धारयन्ति परस्परम्।
अन्योन्यमिथुना ह्येते ह्यन्योन्यमुपजीविनः।
क्षणं वियोगो न ह्येषान्न त्यजन्ति परस्परम्।।
ईश्वरो हि परो देवो ....।
ब्रह्मा तु रजसोद्रिक्तः सर्गायेह प्रवर्त्तते।
अधिष्ठितोऽसौ हि महेश्वरेण प्रवर्त्तते चोद्यमानः समन्तात्।
चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकोऽभवत्।
सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः।। (वायुपु. 1/5/14-19, 26)

इस प्रभु को ही आत्मा, ऋषि, भगवान्, सर्वज्ञ, सर्व, नारायण, हिरण्यगर्भ, अज, प्रजापति, महादेव, ईश्वर, विभु, यज्ञ, कवि, योगेश्वर, आदित्य, अग्नि, विष्णु इत्यादि कहा जाता है। (वायुपु. 1/5/30-42)

किसी समय ब्रह्माजी महेश्वर से पूछते हैं कि "हे सर्वव्यापी महादेव आपके (सद्योजातादि अवतारों के) शरीर लोगों द्वारा पूज्य हैं। आप कृपया यह बतायें कि किस युग में ब्राह्मण लोग आपको देख पायेंगें? किस तत्त्व के योग से अथवा ध्यानयोग से ब्राह्मण लोग आपको देख पायेंगें?"

उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि ध्यान के अतिरिक्त मैं न तो तप से, न योग से, न दान के फल से, न तीर्थफल से, न दक्षिणायुक्त यज्ञ से, न वेदाध्ययन से और न भक्ति से मनुष्यों द्वारा देखा जा सकता हूँ। तीनों लोक के स्वामी भगवान् नारायण इस जगत् में वाराह नाम से प्रसिद्ध होंगे। वाराहकल्प में जब वे काल का रूप धारण करेंगे तो वे उस समय लोगों को सुलभ होंगे। ब्रह्मा को शिवजी कहते हैं कि आप चतुर्मुख होंगे और आपकी ब्रह्मलोक में पूजा होगी। जब आप नारायण को जल में सोये हुए देखेंगे तो उस समय आप दोनों मेरी माया से भ्रमित हो बिना एक दूसरे को पहचाने ही रात्रि के समय लड़ने लगेंगे। तदनन्तर एक दूसरे के पेट में समस्त चराचर जगत् को देखकर आप लोग आश्चर्यचकित हो जायँगे। उस समय ध्यान के द्वारा तुम्हें सत्य का ज्ञान प्राप्त होगा। तब पाद्मकल्प में तुम (ब्रह्मा) एवं विष्णु दोनों ही प्रसिद्ध होवोगे।

भगवान् शिव उपरोक्त बातें भविष्य के सन्दर्भ में कह रहे हैं। वाराहकल्प में भगवान् विष्णु का विग्रह उपासना के लिये सबको उपलब्ध होगा (उस समय शिवजी का विग्रह उपलब्ध नहीं होगा क्योंकि उनका अवतार उस कल्प में नहीं होगा)। पाद्मकल्प में विष्णु एवं ब्रह्मा पूजे जायँगे। भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मा के बीच परस्पर श्रेष्ठता को लेकर होनेवाले विवाद की भविष्यवाणी के अनुसार घटनेवाली घटना का समय जब उपस्थित हुआ उस समय ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों ही एक दूसरे के पेट में जाकर समस्त ब्रह्माण्ड को देखकर बिना उसका अन्त पाये ही लौट आये तो उसी समय भगवान् शिव प्रकट होते हैं। उस समय वे दोनों उनकी स्तुति करते हैं। तदनन्तर ब्रह्मा भगवान् शिव से उन्हीं

के समान पुत्र की याचना करते हैं(फलस्वरूप कालान्तर में रुद्ररूप में भगवान् शिव ब्रह्मा से प्रकट होते हैं) और विष्णु अविचल शिव-भक्ति की। तब भगवान् शिव विष्णुजी से बोले कि मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ(और तुम्हें निम्नलिखित वरदान देता हूँ)।

हे शाश्वत देव विष्णु! व्यक्त, अव्यक्त, स्थावर, जंगम, यह जो कुछ भी परिदृश्यमान जगत् है वह सारा का सारा रुद्र-नारायणात्मक माना जायगा। मैं अग्नि हूँ तो आप सोम हैं, मैं दिन हूँ तो आप रात्रि हैं, मैं सत्य हूँ तो आप ऋत(सत्य-संकल्प) हैं; आप यज्ञ हैं तो मैं उसका फल हूँ, आप ज्ञान हैं तो मै ज्ञेय हूँ, आपको जप से सन्तुष्टकर आपकी प्रीति से भक्तजन मेरे अन्दर प्रवेश करते हैं। युग के अन्त होनेपर हम दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई भी गति(अच्छी) नहीं होगी। आप प्रकृति हैं तो मैं पुरुष हूँ; आप मेरे आधे शरीर हैं तो मैं आपका आधा शरीर हूँ; आपका श्रीवत्सलांछन वाम पार्श्व में हूँ और मेरे श्यामल दक्षिणार्ध आप हैं; इसी से मुझे लोग 'नीललोहित' कहते हैं। आप मेरे हृदय में हैं और मैं आपके हृदय में स्थित हूँ। आप समस्त कार्यों के कर्त्ता हैं और मैं उनका अधिष्ठातृ देव हूँ।

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च जङ्गमं स्थवरश्च यत्।
विश्वरूपमिदं सर्व्वं रुद्रनारायणात्मकम्।।
अहमग्निर्भवान् सोमो भवान् रात्रिरहं दिनम्।
भवानृतमहं सत्यं भवान् क्रतुरहं फलम्।।
भवान् ज्ञानमहं ज्ञेयं यज्जपित्वा सदा जनाः।
मां विशन्ति त्वयि प्रीते जनाः सुकृतकारिणः।
आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये।।
आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम्।
भवानर्द्धशरीरं मे त्वहन्तव यथैव च।।
वामपार्श्वमहम्मह्यं श्यामं श्रीवत्सलक्षणम्।
त्वश्च वामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः।।
त्वश्च मे हृदयं विष्णो तव चाहं हृदि स्थितः।
भवान् सर्व्वस्य कार्यस्य कर्त्ताहमधिदैवतम्।। (वायुपु. 1/25/20-25)

ऊपर के वर्णन से निम्नलिखित बातों का रहस्य समझ में आता है। पहला यह कि भगवान् शिव अवतार लेकर(रुद्ररूप में) किस प्रकार ब्रह्मा के पुत्र बने। दूसरी बात यह कि शिव एवं विष्णु दोनों देवों में अत्यन्त प्रीति है। तीसरी बात यह कि इन दोनों में तादात्म्य या अविभाज्य संबंध है। अर्थात् ये दोनों देव एक ही तत्त्व के दो पहलू हैं। अगली बात यह कि शिव की कृपा से ही विष्णु शिव के अविभाज्य अंग बने। अन्तिम बात यह कि भगवान् शिव ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों के ही पूज्य हैं तथा अलग-अलग कल्पों में भगवान् शिव के विधान से अलग-अलग देवों की प्रधानता होती है।

उपरोक्त घटना का वर्णन ऋषियों के इस प्रश्न, कि "विष्णु रुद्र से क्यों प्रेम रखते हैं? वे श्रेष्ठ देव होते हुए भी क्यों सदैव शिव को नमस्कार करते हैं? तथा भगवान् शिव जैसा महान् देव ब्रह्मा के पुत्र कैसे बने?", के उत्तर में सूतजी ने किया था।

किसी प्रसंग में ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि प्रजापति, विष्णु तथा महान् आत्मा भव में क्या अन्तर है? तथा उनमें से कौन श्रेष्ठ है? किससे कौन उत्पन्न होता है? कौन किसमें प्रतिष्ठित होता है? उनमें से कौन सबसे ज्येष्ठ, कौन मध्य तथा कौन सबसे कनिष्ठ है? इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण कौन है? ....इत्यादि।(वायुपु. 2/5/81-84)

सूतजी उत्तर देते हैं कि स्वयंभू परमात्मा जो समय-समय पर जन्म लेता रहता है उसे राजस तामस एवं सात्त्विक कहा जाता है। इन तीनों शरीरों में अन्तर करना संभव नहीं है क्योंकि वे गुणों की वृद्धि तथा अनुग्रह एवं निग्रह रूपी दो बन्धनों पर निर्भर करते हैं। इनमें से रजोगुणी शरीर सभी प्रजाओं की सृष्टि करता है, सात्त्विक सागर में शयन करते हुए अनुग्रह करता और तामसिक(शरीर) प्रजा को यथासमय निगल लेता है। जब रजोगुण के उद्रेक से ब्रह्मा का उद्भव होता है, तब सात्त्विक शरीर, जिसे पुरुष कहते हैं, विलीन हो जाता है। तमस की अधिकता से जब वह(अव्यक्त स्वयंभू तत्त्व) काल का रूप धारण करता है, तो रजस् शरीर, जिसे ब्रह्मा कहते हैं लुप्त हो जाता है। सत्त्व के उद्रेक से जब वह पुरुषरूप धारण करता है, तो काल का अस्तित्त्व नहीं रहता। स्वयंभू प्रभु के रूप, नाम और कर्म तीनों लोकों के अनुग्रह एवं निग्रह के पश्चात् क्रमशः लुप्त हो जाते हैं।

राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव ताः स्मृताः।
तन्वः स्वयम्भुवः प्रोक्ताः काले काले भवन्ति याः।।
एतासामन्तरं वक्तुं नैव शक्यं द्विजोत्तमाः।
गुणवृद्धि निबन्धत्वाद्द्विधानुग्रहबन्धतः।।
एका तु कुरुते तासां राजसी सर्वतः प्रजाः।
एका चैवार्णवस्था तु सानुगृह्णाति सात्त्विकी।
एका सा क्षिपते काले तामसी ग्रसते प्रजाः।।
रजसा तु समुद्रिक्तो ब्रह्मा सम्भवते यदा।
पुरुषारव्या तदा तस्य सात्त्विकी विनिवर्त्तते।।
यदा भवति कालात्मा उद्रेकात्तमसस्तु सः।
ब्रह्मारव्या सा तदा त्वस्य राजसी विनिवर्त्तते।।
सत्त्वोद्रेकात्तु पुरुषो यदा भवति स प्रभुः।
कालारव्या सा तदा तस्य पुनर्न भवतीति वै।।
क्रमात्तस्य निवर्त्तन्ते रूपं नाम च कर्म च।
त्रैलोक्ये वर्त्तमानस्य सर्वानुग्रहनिग्रहैः।। (वायुपु. 2/5/86-87, 89-93)

विभिन्न गुणों का आश्रय लेकर एक ही तत्त्व सृष्टिव्यापार को चलाने के लिये तीन रूपों में प्रकट होता है। स्वयंभू काल अपने तीन रूपों(शरीरों) से तीन प्रकार की क्रियाएँ करता है। यह प्रजा की सृष्टि तथा पालन करता है और अन्त में संहार करता है। वेद, धर्म, शास्त्र तथा प्राचीन सांख्य-योग में पारंगत ऋषियों ने एक ही तत्त्व को स्वीकार किया है जिसमें एकता के साथ-साथ अनेकता भी है। एकता एवं अनेकता के प्रश्न पर लोगों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। अलग-अलग दृष्टिकोंण रखनेवाले यह कहा करते हैं कि "अमुक बड़ा है अमुक नहीं।" कुछ लोग कहते हैं कि ब्रह्मा विश्व के कारण हैं, कुछ लोग कहते हैं कि शिव सबसे बड़े हैं तो कुछ कहते हैं कि विष्णु सर्वश्रेष्ठ है। अज्ञानता, वासना, आसक्ति आदि से दूषित बुद्धि के कारण लोग इस प्रकार सोचते हैं। यथार्थ तो यह है कि देश, काल, कारण और कार्य की दृष्टि से ये देवता विभिन्न कार्य करते हुए माने जाते हैं(जबकि तत्त्वतः उनमें कोई भेद नहीं है)। जो व्यक्ति इनमें से किसी की भी निन्दा करता है वह सबकी निन्दा करता है। जो इनमें से किसी की भी प्रशंसा करता है वह सभी की प्रशंसा करता है। जो केवल एक पुरुष को ही इन सब रूपों में देखता है उसे ब्रह्मवादी कहा जाता है। जो सत्य को जानता है उसे देवताओं के प्रति द्वेष की भावना कभी नहीं रखनी चाहिये। ईश्वर के सभी ऐश्वर्यो(रूपों) को जानना असंभव है। (वायुपु. 2/5/104-111)

एकः स्वयम्भुवः कालस्त्रिभिस्त्रीन् वै करोति सः।
सृजते चानुगृह्णाति प्रजाः संहरते तथा।।
एका तनुः स्मृता वेदे धर्मशास्त्रे पुरातने।
साङ्ख्ययोगपरे वीरैः पृथक्त्वैकत्वदर्शिभिः।।
अभिजातप्रभावज्ञैर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
एकत्वे च पृथक्त्वे च तासु भिन्नाः प्रजास्त्विह।
इदं परमिदं नेति ब्रुवतो भिन्नदर्शनाः।।
ब्रह्माणं कारणं केचित् केचित् प्राहुः प्रजापतिम्।
केचिच्छिवं परत्वेन प्राहुर्विष्णुं तथाऽपरे।
अविज्ञानेन संसक्ताः सक्ता रत्यादिचेतसा।।
तत्त्वं कालश्च देशश्च कार्याण्यावेक्ष्य तत्त्वतः।
कारणश्च स्मृता ह्येता नानार्थेष्विह देवताः।।
एकं निन्दति यस्तेषां सर्वानेव स निन्दति।
एकं प्रशंसमानस्तु सर्वानेव प्रशंसति।
एकं यो वेत्ति पुरुषं तमाहुर्ब्रह्मवादिनम्।।
अद्वेषस्तु सदा कार्यो देवतासु विजानता।
न शक्यमीश्वरं ज्ञातुमैश्वर्येण व्यवस्थितम्।। (वायुपु. 2/5/104, 106-111)

स्वयंभू आत्मा एक ही है, वही तीन होकर(अथवा रूप धारणकर) प्रजा को मोह में डालती है। विभिन्न दृष्टिकोण से लोग इसमें भेद देखते हैं, जिज्ञासापूर्वक उसकी परीक्षा करते और कहते कि यह(अमुकरूप) सबसे बड़ा है, यह ऐसा नहीं है। वास्तव में भ्रान्तचित्त के कारण ही लोग यह सब करते हैं। ये तीनों देव यथार्थ में अभिन्न रहते हैं। अतः उनमें अलगाव या एकता कहाँ है? उनकी विविधता या संख्या कहाँ है? वे कहाँ से आते और जाते हैं? गुणों से संयुक्त होने के कारण वे तीन कालों में सृष्टि, पालन तथा संहार का भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं, इसलिये परम तत्त्व तो एक ही है। ब्राह्मण लोग उस एक तत्त्व को रुद्र, ब्रह्मा, नारायण आदि नाना रूपों में पुकारते हैं। प्रजापति और विष्णु का शरीर प्रत्येक मनवन्तर एवं कल्प में बार-बार पैदा होता रहता है। ईश्वर यद्यपि एक है परन्तु वह अपनी शक्ति से अनेक हो जाता है।

एकात्मा स त्रिधा भूत्वा संमोहयति यः प्रजाः।
एतेषाञ्च त्रयाणान्तु विचरन्त्यन्तरं जनाः।।
जिज्ञासन्तः परीक्षन्तः सक्ता रूपाविचेतसः।
इदं परमिदं नेति वदन्ति भिन्नदर्शिनः।।
तस्माद्देवास्त्रयो हयेते नैरन्तर्ये व्यवस्थिताः।
तस्मात् पृथक्त्वमेकत्वसङ्ख्या सङ्ख्यागतागतम्।
एकत्वं वा बहुत्वं वा तेषु को ज्ञातुमर्हति।।
यस्मात् सृष्ट्वानुगृहणीते ग्रसते चैव ते प्रजाः।
गुणात्मकत्वात्त्रैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते।।
रुद्रं ब्रह्माणमिन्द्रञ्च लोकपालान् ऋषीन् दनून्।
देवं तमेकं बहुधा प्राहुर्नारायणं द्विजाः।।
प्राजापत्या तनुर्या च तनुर्या चैव वैष्णवी।
मन्वन्तरे च कल्पे च आवर्त्तन्ते पुनः पुनः।।
एकस्तु प्रभुशक्त्या वै बहुधा भवतीश्वरः।
भूत्वा यस्माच्च बहुधा भवत्येकः पुनस्तु सः।।

(वायुपु. 2/5/112-113, 116-119, 139)

ये तीनों देव सर्वत्र व्यापक हैं। परम तत्त्व(शिव) एकीकृतरूप में रहता है परन्तु गुणों के माध्यम से उसके शरीरों में भेद हो जाता है और इससे लोगों को भ्रम हो जाता है। इन तीनों में से जिस किसी की भी कोई उपासना करता है वह तीनों की करता है।

एकत्वेन पृथक्त्वेन स्वयम्भूर्व्यवतिष्ठते।।
गुणमात्रात्मिकाभिस्तु तनुभिर्मोहयन् प्रजाः।
तेष्वेकं यजते यस्तु स तदा यजते त्रयम्।। (वायुपु. 2/5/114-115)

उपसंहार

18 महापुराणों की सूची में कुछ लोग वायुपुराण को न रखकर उसकी जगह शिवपुराण को रखते हैं। यद्यपि दोनों ही पुराणों के प्रमुख देवता शिवजी हैं फिर भी शिवपुराण की उपेक्षा कर वायुपुराण को महापुराण की गिनती में रखना उचित नहीं है। और न ही इसे शिवपुराण का भाग मानना उचित है। हाँ शिव एवं वायु दोनों ही पुराणों को महापुराण की गिनती में रखा जा सकता है। इस पुराण में गया माहात्म्य जैसे कई प्रक्षिप्त प्रकरण भी पाये जाते हैं।

इस पुराण में भगवान् शिव को परमतत्त्व या ब्रह्म मानकर उसके सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की चर्चा की गयी है। सगुण शिव के प्रचलित जितने भी विशेषण हैं वे सब यहाँ मिलते हैं। भगवान् शिव को सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करते हुए ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र की उत्पत्ति का स्रोत माना गया है। भगवान् शिव को अव्यक्त, निराकार, निर्गुण, अव्यय, अज्ञेय, ओंकारस्वरूप, शाश्वत, ईश्वर, जगत् के कारण, दु:खों से ग्रस्त लोगों तथा यतियों के ध्येय, वरदाता, पशुपत्ति, बन्धन, मोक्ष एवं नरक के स्वामी, अप्रतिम, पाँच मुख तथा दस भुजाओंवाला, त्रिनेत्र, चन्द्रमा, गंगा, मृगचर्म, नागों का यज्ञोपवीत आदि को धारण करनेवाला, प्रणवस्वरूप, बहुरूप, आनंददाता, सभी लोकों के कर्त्ता, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता, शरणार्थी को पापों से छुड़ाकर दिव्य आनंद प्रदान करनेवाला, परमात्मा, तारक, सबकी आत्मा, विश्वरूप, चारों वेदस्वरूप, यज्ञ, नीलकण्ठ, शुद्ध, बुद्ध, शान्त तथा केवल(अद्वैत) आदि-आदि कहा गया है।

इस पुराण में दो स्थलों पर परस्पर श्रेष्ठता को लेकर ब्रह्मा एवं विष्णु में विवाद उठा तथा दोनों ही बार भगवान् शिव ने अलग-अलग रूपों में(एक बार तो सगुण-सकाररूप में तथा दूसरी बार अग्नि स्तंभ या लिंग के रूप में) प्रकट हो उन दोनों के बीच अपनी श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए उन्हें वरदान दिया। इस पुराण में दक्ष-यज्ञ भंग की कथा में भी अन्तर है। यहाँपर यह बताया गया है कि एक बार सती बिना बुलाये अपने पिता के घर चली गयी। दक्ष ने अपनी सभी लड़कियों एवं दामादों को बुलाया था पर सती एवं शिव को नहीं। वहाँ जानेपर सती ने अपने को न बुलाने का कारण पूछा तो जवाब में उन्हें शिवनिन्दा सुननी पड़ी। फलस्वरूप उन्होंने योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर दिया। इसके बाद यह सब कथा जानकर शिव ने दक्ष को मनुष्य योनि में जन्म लेने का श्राप दिया। शंकर को दक्ष ने यज्ञ से बहिष्कृत करने के साथ-साथ धरती के बने रहनेतक उन्हें धरती पर ही रहने का श्राप दिया। कालान्तर में दक्ष एवं सती दोनों ने ही अलग-अलग मनवन्तरों में जन्म लिया। जब दक्ष ने यज्ञ किया तो उसमें महेश्वर को नहीं बुलाया। तब पार्वती के द्वारा इसका कारण पूछने तथा प्रेरित करने पर उन्होंने दक्ष के यज्ञ को वीरभद्र से नष्ट करवाया।

गुण, क्रिया और शक्ति में सर्वश्रेष्ठ कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में विष्णुजी द्वारा देवों-दानवों आदि को सुनायी गयी कथा को सूतजी ने ऋषियों को सुनाया। उस कथा में विष्णुजी ने कहा कि हमारे और ब्रह्मा के बीच परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद छिड़ गया था तो हम दोनों के बीच एक प्रकाश

स्तंभ खड़ा हो गया जिसके अन्दर एक लिंग भी था। उस स्तंभ का हम दोनों ने आदि - अन्त न पाकर महेश्वर की स्तुति कर उन्हें सन्तुष्ट कर वरदान पाया। विष्णुजी कहते हैं कि हमारी सभी सिद्धियों, शक्तियों तथा ऐश्वर्य का आधार तो भगवान् शिव ही हैं। वे ही सब कुछ करनेवाले हैं हम तो केवल नाममात्र के करनेवाले या कर्त्ता हैं।

भगवान् शिव ही भोग - मोक्ष के दाता, अधर्म एवं पाप के नाशक, वरदाता, स्वर्ग - नरक के स्वामी, यज्ञादि कर्मों के फलदाता तथा भाग्यविधाता हैं, अतः उनकी उपासना से जो फल मिलता है वह अन्य देवों की उपासना से नहीं मिलता क्योंकि वे सर्वदेवमय हैं। एक स्थल पर कहा गया है कि कृतयुग में ब्रह्मा की पूजा, त्रेता में यज्ञ की प्रधानता, द्वापर में विष्णु की तथा चारों युगों में भगवान् शिव की पूजा एवं महानता रहती है। भगवान् शिव की पूजा देव - दानव, मानव आदि सभी कोटि के जीव तथा सभी लोकों के निवासी प्रत्येक युग में करते रहे हैं। भगवान् शिव का क्रोध भी अन्य देवों के वरदान से श्रेष्ठ बताया गया है।

इस पुराण में लिंगपूजा तथा पाशुपतयोग की भी चर्चा की गयी है। पाशुपतयोग का बड़े ही विस्तार से वर्णन किया गया है। इस योग के प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा तथा स्मरण ये पाँच अंग हैं। उसके साधन में होनेवाले विघ्नों, प्राप्त होनेवाली सिद्धियों तथा इस योग के सम्पादन की दैनिक विधि बतायी गयी है। इस योग की चर्चा में बताया गया है कि शारीरिक दोषों को प्राणायाम से, पापों का धारणा से, लोलुपता को प्रत्याहार से तथा अदैवीय गुणों को ध्यान से हटाना चाहिये।

अन्त में इस पुराण में त्रिदेवों की एकता तथा परस्पर निर्भरता आदि का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। त्रिदेवों की एकता के सन्दर्भ में बताया गया है कि एक ही परम तत्त्व (शिव) तीनों गुणों का आश्रय ले सृष्टिव्यापार को चलाने के लिये अलग - अलग समय में अथवा एक ही समय में तीन प्रमुख रूपों में प्रकट हो जाता है। इनमें से किसी भी रूप की निन्दा करने से सभी रूपों की निन्दा तथा उपासना करने पर सभी रूपों की उपासना हो जाती है। मूर्ख लोग आसक्ति आदि से मोहित होने के कारण इस रहस्य को नहीं समझ पाते। परम तत्त्व के शिव, रुद्र, नारायण, ब्रह्म, सर्व आदि अनेक नाम दिये गये हैं। सृष्टि में ब्रह्मा एवं विष्णुरूप का आर्विभाव बार - बार हुआ करता है परन्तु परमतत्त्व अविनाशी शिव का नहीं।

पुनः इस पुराण में यह भी बताया गया है कि भगवान् शिव ब्रह्मा को अपने दिये गये वरदान के ही कारण पुत्र बनकर उनके ललाट से प्रकट हुए। तथा उनके वरदान के कारण ही विष्णु एवं ब्रह्माजी की अलग - अलग कल्पों, युगों अथवा लोकों में पूजा तथा महत्ता होती है।

(प्रस्तुत निबंध नाग पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा 1983 में प्रकाशित 'वायुमहापुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)

* * *

श्रीमद्भागवत में शिवतत्त्व

श्रीमद्भागवत महापुराण भगवान् श्रीविष्णु की महिमा का व्याख्यान करनेवाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुराण है। यह वैष्णवों के नित्यपाठ का एक विशेष ग्रन्थ है। वैष्णव पुराणों में यह सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। इसमें 18000 श्लोक तथा ब्राह्मकल्प की कथाएँ हैं। भागवत में ही लिखा गया है कि भगवान् के प्यारे भक्त वैष्णव इससे(भागवत से) बड़ा प्रेम करते हैं(**'श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं'** 12/13/18)। इसके बावजूद भी भागवत में जहाँ भगवान् शिव का प्रसंग आया है वहाँ भगवान् शिव की महिमा को ही मण्डित किया गया है। प्रस्तुत लेख में हम शिवतत्त्व की विवेचना भागवत के आधार पर करेंगे।

भगवान् शिव परब्रह्म के रूप में

दक्ष के यज्ञ-विध्वंस के पश्चात् समस्त देवों तथा प्रजापतियों आदि को साथ लेकर कैलास पहुँच कर ब्रह्माजी भगवान् शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि-देव! मैं जानता हूँ आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं; क्योंकि विश्व की योनि शक्ति(प्रकृति) और उसके बीज शिव(पुरुष) से परे जो एकरस परब्रह्म है, वह आप ही हैं। भगवन्! आप मकड़ी के समान ही अपने स्वरूपभूत शिव-शक्ति के रूप में क्रीड़ा करते हुए लीला से ही संसार की रचना, पालन और संहार करते रहते हैं। आप शुभ कर्म करनेवालों को स्वर्गलोक अथवा मोक्षपद प्रदान करते हैं तथा पापकर्म करनेवालों को घोर नरक में डालते हैं।

जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः।
शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम्।।
त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः सरूपयोः।
विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा।। (4/6/42-43)
त्वं कर्मणां मङ्गलमङ्गलानां कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा।
अमङ्गलानां च तमिस्रम..।। (4/6/45)

ब्रह्माजी की उपरोक्त स्तुति में स्पष्टरूप से भगवान् शिव को ब्रह्म स्वीकार किया गया है। गङ्गावतरण के प्रसंग में गङ्गा के प्रश्न के उत्तर में भगीरथ कहते हैं कि समस्त प्राणियों के आत्मा रुद्रदेव तुम्हारा वेग धारण कर लेंगे। क्योंकि जैसे साड़ी सूतों में ओत-प्रोत है, वैसे ही यह सारा विश्व भगवान् रुद्र में ही ओत-प्रोत है।

धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम्।
यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु।। (भागवत् 9/9/7)

यहाँ पर भगवान् शिव के विश्वव्यापी या सर्वेश्वररूप का उल्लेख है। वे ही समस्त विश्व तथा प्राणियों के आत्मा हैं। सूतजी मार्कण्डेय मुनि के प्रसंग में शौनकजी से कहते हैं कि भगवान् शङ्कर

समस्त विद्याओं के प्रवर्तक और सारे प्राणियों के हृदय में विराजमान अन्तर्यामी प्रभु हैं। जगत् के जितने भी संत हैं, उनके एकमात्र आश्रय और आदर्श भी वही हैं(भाग. 12/10/8)।

इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान् स सतां गतिः।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम्।। (भागवत 12/10/8)

नारायण – निर्मित योगमाया – वैभव का अनुभव करने के बाद उससे मुक्ति हेतु जब मार्कण्डेयजी शरणागत भाव में तन्मय थे उसी समय उनके हृदय में भगवान् शंकर के सगुण – साकाररूप के दर्शन होने लगे। उनके दर्शन से विस्मित होकर जब मार्कण्डेयजी ने आँखें खोलीं, तब देखा कि तीनों लोकों के एकमात्र गुरु भगवान् शङ्कर श्रीपार्वतीजी तथा अपने गणों के साथ पधारे हुए हैं। उन्होंने उनके चरणों में माथा टेककर प्रणाम किया। तदनन्तर कहा कि "मैं आपके त्रिगुणातीत सदाशिवस्वरूप को सत्त्वगुण से युक्त शान्तस्वरूप को नमस्कार करता हूँ। मैं आपके रजोगुणयुक्त सर्वप्रवर्तकस्वरूप एवं तमोगुण युक्त अघोर(शान्त) स्वरूप को नमस्कार करता हूँ।"

नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयाऽऽगतम्।
रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः।।
नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च।
रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे।। (भागवत 12/10/14, 17)

उपरोक्त उद्धरणों में भगवान् शिव को सभी विद्याओं के स्वामी तथा जगत्गुरु की उपाधि दी गयी है। तथा उनके राजसिक, सात्त्विक एवं तामसिक तीन रूपों(जो क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप हैं) की कल्पना की गयी है। उपरोक्त सभी विशेषतायें ब्रह्म में ही हो सकती हैं।

मार्कण्डेयजी पुनः भगवान् शिव के प्रति कहते हैं – भगवन्! आप त्रिगुणस्वरूप होनेपर भी उनके परे उनकी आत्मा के रूप में स्थित हैं। आप ही ज्ञान के मूल, केवल, अद्बितीय ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने।
केवलायाद्बितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये।। (भागवत 12/10/32)

दक्षयज्ञ – विध्वंस के पश्चात् ब्रह्माजी ऋत्विजों सहित अन्य लोगों से कह रहे हैं कि भगवान् रुद्र परम स्वतंत्र हैं, उनके तत्त्व और शक्ति – सामर्थ्य को न तो कोई ऋषि – मुनि, देवता और यज्ञस्वरूप देवराज इन्द्र ही जानते हैं और न स्वयं मैं ही जानता हूँ; फिर दूसरों की तो बात ही क्या है? ऐसी अवस्था में उन्हें शान्त करने का उपाय कौन कर सकता है।

नाहं यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम्।
विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत्।।
(भागवत 4/6/7)

आगे जब देवता भगवान् शंकर को मनाने के लिये कैलास गये तो वहाँ का जो वर्णन किया गया है वह इस प्रकार है- वहाँ सनन्दनादि शान्तिमय महासिद्ध पुरुष तथा कुबेरजी जिस अत्यन्त शान्त मूर्तिवाले(भगवान् शंकर) की उपासना कर रहे थे, जो(श्रीमहादेवजी) सारे जगत् के अधीश्वर होते हुए विश्वबन्धु होने के कारण विद्या, तपस्या और योग के मार्ग पर आरूढ़ होकर जगद्वात्सल्य से जगत् का कल्याण करते रहते हैं उन परमानन्द समाधि नें मग्न, योगकक्षा में आरूढ़ और समस्त मनुष्यों के आदिमनु परब्रह्म श्रीशंकर को समस्त लोकपालसहित महर्षि मण्डली ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।(भागवत 4/6/34-35, 39)

तं ब्रह्मनिर्वाण समाधिमाश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम्।
सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः।। (भागवत 4/6/39)

उपरोक्त संदर्भो में भगवान् शिव को सनन्दनादि के उपास्य तथा लोककल्याण में रत होने के कारण विद्या, तपस्या तथा योग का अभ्यासी बताया गया है। साथ ही उन्हें अधीश्वर(परब्रह्म) भी बताया गया है। यहाँ भगवान् के सगुण रूप की भी चर्चा है।

समुद्र-मन्थन के समय सबसे पहले हलाहल नामक विष निकला जिसके चारों ओर उड़ने से सुर-असुर सभी व्याकुल हो गये तथा उस असह्य विष से बचने का कोई उपाय न देखकर भयभीत होकर वे सभी(अर्थात् सुर एवं असुर) अपने-अपने नायकों को साथ लेकर भगवान् शिव की शरण में पहुँचे तथा वहाँ पहुँचकर भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उनसे अपने भय को दूर करने की याचना करने लगे। वहाँ पर जो स्तुति सुर एवं असुर नायकों द्वारा की गयी है वह भगवान् शिव की उन विशेषताओं से युक्त है जो परब्रह्म की होती हैं।

उस स्तुति में भगवान् शिव को ऋषि-मुनियों का आराध्य, तीनों लोकों के अभ्युदय एवं मोक्ष के लिये तपस्या रत, देवताओं के भी आराध्य, महादेव, बन्धन एवं मोक्षकारक, जगद्गुरु, शरणागतों की पीड़ा नष्ट करनेवाला, अपनी गुणमयी शक्ति से जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के लिये अनन्त, एकरस होनेपर भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि नाम धारण करनेवाला, स्वयं प्रकाश, परमरहस्यमय ब्रह्मतत्त्व, चराचर जगत् को जीवन देनेवाला, ईश्वर, सर्वसमर्थ, स्वयं सृष्टिरूप में प्रतीत होनेवाला, वेदों को प्रकट करनेवाला, समस्त ज्ञान के मूलस्रोत, जगत् के आदि कारण महत्तत्त्व एवं त्रिविध अहंकार, प्राणियों की वृद्धि और ह्रास करनेवाला, धर्मस्वरूप, प्रणवरूप, सर्वदेवस्वरूप, समस्त शास्त्रकर्त्ता तथा विष्णु एवं इन्द्रादि द्वारा भी अगम्य गुणातीत ब्रह्म आदि-आदि बताया गया है(भागवत 8/7/20-35)। स्तुति के कुछ अंशों को देखें-

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो।
धत्से यदा स्वदृग् भूमन्ब्रह्मविष्णु शिवाभिधाम्।। (भागवत 8/7/23)

प्रभो! अपनी गुणमयी शक्ति से इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के लिये आप

अनन्त, एकरस होनेपर भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि नाम धारण कर लेते हैं।

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः।
नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः (भागवत 8/7/24)
न ते गिरित्राखिललोकपालविरिञ्चिवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम्।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद् ब्रह्म निरस्तभेदम्।।(भागवत 8/7/31)
एतत् परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर।
मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः।। (भागवत 8/7/35)

भावार्थ यह है कि–

आप ही परमब्रह्म हैं, सदसत्कारण हैं, गूढ़ तत्त्व हैं, सारी शक्तियों से विराजमान हैं, जगत् की आत्मा हैं और जगत् के ईश्वर हैं।

हे समस्त लोक रक्षक! आपके परमार्थ ज्योति को, जो गुणातीत है, भेदरहित है और परब्रह्म स्वरूपी है, ब्रह्माजी, महाविष्णु, देवेन्द्र आदि भी नहीं समझ सकते।

परन्तु इतना तो देखते हैं कि आपसे बढ़कर और कोई नहीं है। जगत् के कल्याण के लिये आप अमूर्त होते हुए भी मूर्तिमान बन जाते हैं।

उपरोक्त स्तुति में भगवान् शिव के दोनों रूपों– निर्गुण एवं सगुण की चर्चा की गयी है। निर्गुणरूप को कोई भी नहीं जानता। सगुणरूप में वे ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारण करते हैं। सगुणरूप में उन्हें सद्योजात, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव एवं ईशान नामक पाँच मुखों से युक्त तथा त्रिनेत्रधारी बताया गया है। उनसे ही सभी प्रकार के मन्त्रों की रचना हुई है(8/7/29)। उनके निर्गुण स्वरूप को त्रिगुणातीत कहा गया है। उन्हें वेदादि शास्त्रों का प्रवर्तक, जगत् का कारण, जगदात्मा, प्राण– इन्द्रिय– द्रव्य– गुणादि– रूपी सर्वपदार्थस्वरूपी, कालस्वरूपी, यज्ञस्वरूपी, सत्य एवं ऋतस्वरूपी तथा धर्मस्वरूपी कहा गया है। उनमें ही वह अक्षर वस्तु है जिसका वेद वर्णन करते हैं, अर्थात् वे ओंकारस्वरूप हैं(8/7/25)।

सती अपने पिता की भर्त्सना एवं शिव की महिमा का बखान करते हुए कह रही हैं कि "प्रवृत्ति (यज्ञ– यागादि) और निवृत्ति(शम– दमादि) रूप दोनों ही प्रकार के कर्म ठीक हैं। वेद में उनके अलग– अलग रागी और विरागी दो प्रकार के अधिकारी बताये गये हैं। परस्पर विरोधी होने के कारण उक्त प्रकार के कर्मों का एक साथ एक ही पुरुष के द्वारा आचरण नहीं किया जा सकता। भगवान् शङ्कर तो परब्रह्म परमात्मा हैं, उन्हें इन दोनों में से किसी भी प्रकार का कर्म करने की आवश्कता नहीं है।"(4/4/20)

इस उद्धरण में भी भगवान् शिव को ब्रह्म बताते हुए उन्हें प्रवृत्ति एवं निवृत्तिपरक समस्त कर्मों से परे माना गया है। भावार्थ यह है कि भगवान् शिव के कर्मो या आचरणों के मूल्यांकन में न तो

प्रवृत्तिपरक और न ही निवृत्तिपरक मानदण्डों को लागू किया जा सकता है, उनका कर्म या व्यवहार विलक्षण होता है।

त्रिदेवों की तात्त्विक एकता

जब दक्ष प्रजापति ने शिवद्वेष के कारण यज्ञ में शिवजी के लिये हविर्भाग न देते हुए सब देवताओं को बुलाया उस समय अन्यान्य सब देवता तो आये परन्तु ब्रह्माजी और भगवान् नारायण वहाँ नहीं गये।

उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसम्भवः ।
नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमयितुः ।। (भागवत 4/6/3)

इससे स्पष्ट है कि जहाँ शंकरजी का तिरस्कार होता है वहाँ नारायण भी नहीं जाते। यह सिर्फ अनुमान की बात नहीं है, अपितु इसे भगवान् हरि ने स्वयं स्पष्ट किया है, क्योंकि उस यज्ञ के वीरभद्र तथा उसके अन्य भटों द्वारा नाश होने के बाद भगवान् श्रीरुद्र के प्रसन्न किये जाने पर जब यज्ञ का पुनः सन्धान हुआ तब श्रीनारायण ने स्वयं आकर अति स्पष्ट शब्दों में कहा है कि–

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः।।
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्।।
तस्मिन् ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि।
ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ।।
त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ।। (भागवत 4/7/50-52, 54)

अर्थात्–मैं, ब्रह्मा और शिव जगत् के कारण हैं, परे हैं, आत्मा हैं, ईश्वर हैं, उपद्रष्टा हैं, स्वयंप्रकाश हैं और भेदरहित हैं।

त्रिगुणात्मक माया को लेकर जब-जब मैं जगत् को बनाता,पालता और संहार करता हूँ तब-तब मैं उसी काम के अनुरूप नाम को धारण करता हूँ।

ऐसे केवल, अद्वितीय परमात्मा में अज्ञानी ही ब्रह्मा, रुद्रादि को भेददृष्टि से देखते हैं। हम ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर–तीनों स्वरूपतः एक ही हैं और हम ही सम्पूर्ण जीवों की आत्मा हैं, अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है ।

मार्कण्डेयजी को भगवान् शंकर भी यही कहते हैं कि मैं, श्रीहरि और ब्रह्मा –हम तीनों ही वरदाताओं के स्वामी हैं, ... हम लोगों से ही मरणशील मनुष्य भी अमृतत्त्व की प्राप्ति कर लेता है (12/10/19)।

हलाहलपान करने से पूर्व पार्वती से भगवान् शिव कह रहे हैं कि जो दूसरे प्राणियों की रक्षा के लिये कृपा करता है, उसपर सर्वात्मा श्रीहरि प्रसन्न होते हैं और जब श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं, तब चराचर जगत् के साथ मैं भी प्रसन्न हो जाता हूँ।(भाग. 8/7/40)

उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि तीनों ही देव(ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) तात्त्विक रूप से सर्वात्मा हैं फलस्वरूप उनमें कोई भेद नहीं है। भेद केवल क्रिया या कामों को लेकर है। भगवान् शिव हों चाहे श्रीहरि हों चाहे ब्रह्मदेव हों, आत्मरूप या तात्त्विकरूप से ठीक उसी प्रकार से मूलतः एक हैं जैसे अलग-अलग नाम-रूपों से भिन्न-भिन्न भूमिका निभाने के बावजूद भी अभिनेता मूलतः एक ही होता है। जैसे देवदत्त नामक व्यक्ति पिता, पुत्र, साहब, शिष्य, गुरु आदि की भूमिका निभानेवाला एक ही है उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की भूमिका निभानेवाला तत्त्व एक ही है जिसे दार्शनिकों की भाषा में ब्रह्म कहा जाता है। उसी ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण दो रूप होते हैं। सगुणरूप माया द्वारा पैदा होता है। चूँकि माया तात्त्विक रूप से असत् होती है, इसकी केवल प्रतिभासिक सत्ता है, जो माया से मोहित लोगों के लिये ही अस्तित्व रखती है; इसीलिये कहा जाता है कि तीनों देवों में तात्त्विक एकता है। आध्यात्म मार्ग पर चलनेवाला इस रहस्य को भलीभाँति जानता है इसीलिये वह अपने इष्ट को ही परमतत्त्व समझता है चाहे उसका इष्ट जो भी हो-ब्रह्मा, विष्णु या शिव।

भुक्ति-मुक्ति-दाता भगवान् शिव

भागवत के दशम स्कन्ध में एक जगह परीक्षित् शुकदेवजी से पूछते हैं कि भगवन्! भगवान् शिव ने समस्त भोगों का परित्याग कर रक्खा है; परन्तु देखा यह जाता है कि जो देवता, असुर अथवा मनुष्य उनकी उपासना करते हैं, वे प्रायः धनी और भोग-सम्पन्न हो जाते हैं और भगवान् विष्णु लक्ष्मीपति हैं, परन्तु उनकी उपासना करनेवाले प्रायः धनी और भोग सम्पन्न नहीं होते। दोनों प्रभु त्याग और भोग की दृष्टि से एक दूसरे से विरुद्ध स्वभाववाले हैं, परन्तु उनके उपासकों को उनके स्वरूप के विपरीत फल मिलता है। मुझे इस विषय में बड़ा सन्देह है कि त्यागी की उपासना से भोग और लक्ष्मीपति की उपासना से त्याग कैसे मिलता है? (10/88/1-2)

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम्।
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम्।।
एतद् वेदितुमिच्छामः सन्देहोऽत्र महान् हि नः।
विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः।।

भगवान् श्रीकृष्ण उपरोक्त प्रश्न का उत्तर युधिष्ठिर को देते हुए कहते हैं कि-जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूँ। जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसके सगे-संबंधी उसको दुःखी छोड़ देते हैं। फिर वह धन के लिये उद्योग करने लगता है, तब मैं उसका वह प्रयत्न भी निष्फल कर देता हूँ। इस प्रकार बार-बार असफल होने के कारण जब धन कमाने से

उसका मन विरक्त हो जाता है, उसे दुःख समझकर वह उधर से अपना मुँह मोड़ लेता है और मेरे प्रेमी भक्तों का आश्रय लेकर उनसे मेल-जोल करता है, तब मैं उसपर अपनी अहैतुक कृपा की वर्षा करता हूँ। मेरी कृपा से उसे परम सूक्ष्म अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार मेरी प्रसन्नता, मेरी आराधना बहुत कठिन है। इसी से साधारण लोग मुझे छोड़कर मेरे ही दूसरे रूप अन्यान्य देवताओं की आराधना करते हैं। दूसरे देवता आशुतोष हैं। वे झटपट पिघल पड़ते हैं और अपने भक्तों को साम्राज्य-लक्ष्मी दे देते हैं। उसे पाकर वे उच्छृङ्खल, प्रमादी और उन्मत्त हो उठते हैं और अपने वरदाता देवताओं को भी भूल जाते हैं तथा उनका तिरस्कार कर बैठते हैं। (10/88/8-11)

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम्।।
स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद् धनेहया।
मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम्।।
तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम्।
अतो मां सुदुराराध्यं हित्वान्यान् भजते जनः।।
ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः।
मत्ताः प्रमत्ता वरदान् विस्मरन्त्यवजानते।।

इसी के क्रम में आगे बताया गया है कि भगवान् शिव के वरदान देने में शीघ्रता करने के कारण वे कई बार संकट में पड़ गये। वृकासुर, रावण एवं बाणासुर का उदाहरण देकर इसे समझाया गया है (वृकासुर ने भगवान् शंकर को ही भस्म करने के लिये उनके वरदान का प्रयोग करना चाहा, रावण के कैलास उठाने तथा बाणासुर के नगर की रक्षा का भार लेने से वे संकट में पड़ गये)।

आगे बताया गया है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों शाप एवं वरदान देने मे समर्थ हैं परन्तु इनमें महादेवजी शीघ्र ही प्रसन्न वा रुष्ट होकर वरदान अथवा शाप दे सकते हैं। परन्तु विष्णु भगवान् वैसे नहीं हैं अर्थात् शीघ्र रुष्ट या प्रसन्न होनेवाले नहीं हैं (वही 10/88/12)।

शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः।।

नारदजी से वृकासुर पूछता है कि तीनों देवताओं में झटपट प्रसन्न होनेवाला कौन है? नारदजी उत्तर देते हैं कि तुम भगवान शङ्कर की आराधना करो। वे थोड़े ही गुणों से शीघ्र से शीघ्र प्रसन्न और थोड़े ही अपराध से तुरंत क्रोध कर बैठते हैं। रावण और बाणासुर ने केवल बंदीजनों के समान शङ्करजी की कुछ स्तुतियाँ की थी इसी से वे उनपर प्रसन्न हो उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य दे दिया था। (वही 10/88/14-16)

उपरोक्त वर्णनों से एक बात स्पष्ट है कि भगवान् विष्णु की भक्ति कठिन है क्योंकि वे बड़ी

देर में प्रसन्न होते हैं। दूसरी बात यह है कि भगवान् शिव भोगों को शीघ्रता से प्रदान कर देते हैं क्योंकि वे शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। रही बात मोक्ष की तो इसे भगवान् शिव एवं विष्णु दोनों ही दे सकते हैं। परन्तु भगवान् विष्णु भोग नहीं प्रदान करते केवल मोक्ष ही देते हैं। भगवान् शिव मोक्षदाता है इसके लिये निम्न संदर्भ देखिये –

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः।
तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रसन्नार्तिहरं गुरुम्।।

भावार्थ यह है कि सारे जगत् को बाँधने और मुक्त करने में एकमात्र आप (शिवजी) ही समर्थ हैं। इसलिये विवेकी पुरुष आपकी ही आराधना करते हैं। क्योंकि आप शरणागत की पीड़ा नष्ट करनेवाले एवं जगद्‌गुरु हैं। (भागवत 8/7/22)

पुनः **यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो**
गृणन्त्यविद्यापटलं बिभीत्सवः।
निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं
पिशाचचर्यामचरद्‌गतिः सताम्।। (भागवत 3/14/26)

भावार्थ यह है कि विवेकी पुरुष अविद्या के आवरण को हटाने (अर्थात् मोक्षप्राप्ति) की इच्छा से उनके निर्मल चरित्र का गान किया करते हैं, उनसे बढ़कर तो क्या, उनके समान भी कोई नहीं है और उनतक केवल सत्पुरुषों की ही पहुँच है। यह सब होनेपर भी वे स्वयं पिशाचों का सा आचरण[1] करते हैं। (वही 3/14/26)

सती दक्ष के यज्ञस्थल पर पहुँच कर शिव का भाग न देख दक्ष को संबोधित कर शिव की महत्ता का बखान करते हुए कह रही हैं–परमानन्दरूपी रस के आस्वादनार्थ महात्माओं के मनरूपी भ्रमर जिनके चरण कमलों की सेवा में रहा करते हैं और जिनके चरणारविन्द सकाम पुरुषों को उनके अभीष्ट भोग भी देते हैं, उन विश्वबन्धु भगवान् शिव से आप वैर करते हैं?

यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः।
लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्वबन्धवे।।
(भागवत 4/4/15)

यहाँ पर भगवान् शिव को भोग एवं मोक्षदाता दोनों ही स्वीकार किया गया है। भगवान् शिव को आशुतोष या शीघ्र प्रसन्न होनेवाला कहा गया है। इसके अनेक सन्दर्भ भागवत में हैं। उदाहरण के लिये – 10/88/14 – 16; 10/88/11; 4/6/5; इत्यादि। भगवान् शिव के परम कल्याणकारी एवं दयालु होने के भी अनेक सन्दर्भ भागवत में हैं। उदाहरण के लिये – 4/6/35; 3/14/34;

---

[1] उनके इस प्रकार के आचरण के पीछे गूढ़ दार्शनिक रहस्य छिपे हुए हैं। इनके संकेत आगे के श्लोकों तथा अन्य स्थलों जैसे (भागवत 4/4/12-16) आदि में दिये गये हैं।

8/7/35, 40 आदि।

ब्रह्माजी ने समस्त देवता एवं ऋषि-मुनि सहित कैलास पहुँच कर भगवान् शिव को प्रणाम कर दक्ष के अधूरे यज्ञ को पूर्ण करवाने तथा उनको पुनर्जीवित करने की विनती की। इस प्रार्थना के उत्तर में शिवजी ने अपने 'आशुतोष' नाम को सार्थक करते हुए बड़े ही सुन्दर वचन कहे-

नाघं प्रजेश वालानां वर्णये नानुचिन्तये।
देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया।। (भागवत 4/7/2)

"हे प्रजापते! भगवान् की माया से मोहित हुए दक्ष-सरीखे नासमझों के अपराध की न तो मैं चर्चा करता हूँ और न स्मरण ही। मैंने तो केवल सावधान करने के लिये ही उन्हें थोड़ा-सा दण्ड दे दिया।"

समुद्र-मन्थन से निकले विष से समस्त प्रजा पर जो संकट आया था उसे देखकर देवाधिदेव आशुतोष भगवान् शङ्कर के हृदय में कृपावश बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने अपनी अर्धाङ्गिनी भगवती को अपना निश्चित कर्त्तव्य कह सुनाया।

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे।
एतावान्हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम्।। (भागवत 8/7/38)

"ये बेचारे किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करना चाहते हैं। इस समय मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर दूँ। जिनके पास शक्ति-सामर्थ्य है, उनके जीवन की सफलता इसी में है कि वे दीन-दुखियों की रक्षा करें।"

विदुरजी मैत्रेयजी से कह रहे हैं कि यद्यपि भगवान् शङ्कर आत्माराम हैं, उन्हें अपने लिये न कुछ करना है, न पाना, तो भी इस लोकसृष्टि की रक्षा के लिये वे अपनी घोररूपा शक्ति (शिवा) के साथ सर्वत्र विचरते रहते हैं।

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे।
शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान् भवः।। (भागवत 4/24/18)

एक स्थल पर शिवजी की स्तुति करते हुए कहा गया है कि जीवन-मुक्त आत्माराम पुरुष अपने हृदय में आपके (शिवजी के) युगल चरणों का ध्यान करते रहते हैं। आप स्वयं भी निरन्तर ज्ञान एवं तपस्या में लीन रहते हैं। इसका कारण लोककल्याण ही है। उन्हें सती के साथ रहते देखकर जो उन्हें आसक्त एवं श्मशानवासी होने के कारण उग्र अथवा निष्ठुर बतलाते हैं-वे मूर्ख आपकी लीलाओं का रहस्य भला क्या जानें। (भागवत 8/7/33)

ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रिद्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम्।
कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः।।

जगत्पति महादेवजी सारे संसार के सुहृद हैं, स्नेहवश सबका कल्याण करते हैं, वे लोकहित

के लिये ही उपासना, चित्त की एकाग्रता और समाधि आदि साधनों का आचरण करते रहते हैं।

विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम्।
चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम्।। (भागवत 4/6/35)

उपरोक्त सभी उदाहरण भगवान् शिव की उदारता, दयालुता, कल्याणकारी प्रवृत्ति को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं।

शिवोपासना

भागवत में भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की चर्चा हुई है। निर्गुणरूप की भक्ति ज्ञानी एवं योगी लोगों के लिये बतायी गयी है। निर्गुण भक्ति में ध्यान आदि को महत्त्व दिया गया है।

सगुण शिव को पंचमुखी माना गया है। उनकी उपासना स्तुतियों तथा जल आदि से भी करने पर वे शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। वृकासुर को भगवान् शिव कह रहे हैं कि मैं तो अपने शरणागत भक्तों से केवल जल चढ़ाने से ही सन्तुष्ट हो जाया करता हूँ..........।

.............प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यताम्........।। (भागवत 10/88/20)

स्तुतियोंमात्र से शिवजी के प्रसन्न होने का उल्लेख भी 10/88/15 में हुआ हैं, वहाँ कहा गया है कि रावण एवं बाणासुर स्तुतियों से ही भगवान् शिव को प्रसन्न कर लिये थे।

भगवान् शिव के नाम की भी बड़ी महिमा भागवत में बतलायी गयी है। दक्ष की यज्ञशाला में भगवान् शिव का हिस्सा न देखकर सती दक्ष की आलोचना करते हुए तथा भगवान् शिव की महिमा बताते हुए कह रही हैं-

यद् द्वयक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत्।
पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं
भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः।। (भागवत 4/4/14)

अर्थात्- "जिनका 'शिव' यह दो अक्षरों का नाम प्रसङ्गवश एक बार भी मुख से निकल जाने पर मनुष्य के समस्त पापों को तत्काल नष्ट कर देता है और जिनकी आज्ञा का कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता, अहो! उन्हीं पवित्रकीर्ति मङ्गलमय भगवान् शङ्कर से आप द्वेष करते हैं। अवश्य ही आप अमङ्गलरूप हैं।"

पुनः तपस्वियों के चिन्ह के रूप में भस्म, दण्ड, जटा, अजिन और रुद्राक्षमाला आदि को बतलाया गया है। अर्थात् तपस्वियों को ये वस्तुयें धारण करनी चाहिये। श्रीमद्भागवत(4/6/36, 38; 12/8-9 आदि) में तपस्वियों के उपरोक्त चिन्हों का संकेत प्राप्त होता है।

कई विद्वानों ने भगवान् शिव एवं विष्णु के अनुयायियों में निवृत्ति एवं प्रवृत्ति मार्ग का संबंध ढूँढ़ा है। शिव के अनुयायी निवृत्तिमार्गी, अर्थात् वैदिक कर्मकाण्ड को कम महत्त्व देनेवाले, मोक्षमार्ग

के अनुयायी, त्याग, तपस्या, भक्ति, योग और ध्यान आदि को ही मोक्ष के यथार्थ मार्ग माननेवाले हैं।

जबकि विष्णु के अनुयायी प्रवृत्तिमार्गी अर्थात् वैदिक कर्मकाण्ड में पूरी आस्था रखनेवाले मोक्ष की बजाय स्वर्गादि ऐहिक एवं पारलौकिक सुख की खोज करनेवाले तथा योग एवं तपस्या को कम महत्त्व देनेवाले हैं।

अपने उपरोक्त मत के प्रमाण में दक्षप्रजापति की कहानी का उल्लेख विद्वानों ने किया है। श्रीमद्भागवत (4/2/18-35) में दक्ष प्रजापति और उनके समर्थक महर्षि भृगु तथा शिव के गणेश्वर नन्दी के पारस्परिक शाप-प्रतिशाप में उपरोक्त विचार की झलक मिलती है।

किसी देवसभा में आने पर शिव से सत्कार न पाकर दक्ष शिव को खरी-खोटी सुनाते हैं और यज्ञ में भाग न पा सकने का शाप देते हैं (**सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः**, भागवत-4/2/18)। इसपर नन्दीश्वर शाप देते हैं कि दक्ष अपने शरीर को ही सब कुछ (अन्तिम सत्य) समझकर तत्त्वज्ञान से सदा विमुख रहेगा। यह कपट-धर्ममय गृहस्थाश्रम में रहकर तुच्छ, ऐहिक विषय-भोगों की कामना से वैदिक-कर्मकाण्ड में सदा लीन रहेगा। इसकी बुद्धि सदा अज्ञान से आवृत्त रहेगी और यह अविद्या (कर्मकाण्डादि) को ही विद्या (मोक्षप्राप्ति का उपाय) समझेगा। इसलिये वह तथा उसके अनुयायी सदा जन्म-मरण के चक्र में फँसे रहेंगे। वेदों की ऊपर से बहुत सुन्दर (पुष्पवती) दीखनेवाली वाणी (कर्मकाण्ड) में फँसकर ये अपने को भूल जायँगे और ये यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण भी केवल पेट पालने के लिये वेदों का अध्ययन करके इधर-उधर घूमकर यज्ञ कराते हुए भक्ष्य-अभक्ष्य वस्तुएँ खायेंगे। (भागवत 4/2/21-26)

कर्मकाण्ड की इस प्रकार निन्दा किए जाने पर मर्हिष भृगु शिव के भक्तों को शाप देते हैं कि वे पाखण्डी हो जायँ, शरीर में भस्म, जटा तथा अस्थियाँ धारण किये रहें, अपवित्र और अशुद्धरूप में सर्वत्र विचरण करें और मदिरा आदि का पान करें। यज्ञ और ब्राह्मण संसार को धारण करनेवाले सेतु हैं। कर्मकाण्ड वह मार्ग है जिसपर हमारे सारे पूर्वज चलते आये हैं और जिसके संस्थापक स्वतः भगवान् विष्णु हैं। अतः उनकी निन्दा करने से तुम पाखण्डी और मार्ग-भ्रष्ट हो जाओ (भागवत 4/2/30-32)।

उपरोक्त उद्धरणों से शिव एवं विष्णु के अनुयायियों का निवृत्ति एवं प्रवृत्ति मार्ग से सम्बन्ध सूचित होता है। इस सम्बन्ध के अनेक स्पष्ट उल्लेख आगे भी प्राप्त होते हैं, विशेषतः सती द्वारा की गयी अपने पिता की भर्त्सना में।

वे कहती हैं - "पिताजी! हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है। आत्मज्ञानी महात्माजन ही उसका सेवन कर सकते हैं। वैसा ऐश्वर्य आपके पास नहीं है। आपका वैभव यज्ञशालातक ही सीमित है। अन्न से तृप्त होकर अपना पेट पालने वाले धूममार्गी कर्मचारी (अध्वर्य) ही उसकी स्तुति करते हैं। वे हमारे ऐश्वर्य (ब्रह्मज्ञान) की प्रशंसा कभी नहीं कर सकते।" (भागवत 4/4/21)

"जो महामुनि निरन्तर अपने स्वरूप में ही रमण करते हैं, उनकी बुद्धि सर्वथा वेद के

विधिनिषेधमय वाक्यों का अनुसरण नहीं करती। जिस प्रकार देवता और मनुष्यों की गति में भेद रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी की स्थिति भी एक सी नहीं होती। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह अपने ही धर्ममार्ग में स्थित रहते हुए भी दूसरे के मार्ग की निन्दा न करे। प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दोनों ही प्रकार के कर्म ठीक हैं। वेद में उनके अलग-अलग रागी और विरागी दो प्रकार के अधिकारी बताये गये हैं। परस्पर विरोधी होने के कारण उक्त दोनों प्रकार के कर्मों का एक साथ एक ही पुरुष के द्वारा आचरण नहीं किया जा सकता" (भागवत 4/4/19-20)। उपरोक्त के अतिरिक्त भागवत के 4/4/13, 15; 4/6/35, 39, 41 तथा 4/7/4, 27, 30 आदि श्लोक भी इस संबंध में अवलोकनीय हैं।

उपरोक्त सभी संदर्भो को ध्यान से देखें तो पता चलता है कि वैदिक कर्मकाण्डों से पृथक तथा अंशतः विरोधी ध्यान-योग-तपस्या को महत्त्व देनेवाले मुनि, ज्ञानी, तपस्वी आदि लोगों के उपास्य भगवान् शिव थे। और उन लोगों ने वैदिक कर्मकाण्डों की जगह इन्द्रियसंयम, चित्त की एकाग्रता, चरित्र शुद्धि आदि को ज्यादा महत्त्व दिया था क्योंकि वे जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष मानते थे न कि स्वर्गादि भोग। मोक्ष की प्राप्ति वैदिक कर्मकाण्डों से नहीं हो सकती।

इस सन्दर्भ में भगवान् कृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता में दिये गये निम्न उपदेश का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है-

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।

…………………………………………………………

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

…………………………………………………………

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।। (श्रीमद्भगवद्गीता 2/42-46)

भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ अर्जुन से कहते हैं कि- "हे अर्जुन! जो भोगों में तन्मय हो रहे हैं, जो कर्मफल के प्रशंसक वेद-वाक्यों में ही प्रीति रखते हैं, जिनकी बुद्धि में स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है (और जो स्वर्ग से बढ़कर) दूसरी (कोई वस्तु ही) नहीं है-ऐसा कहनेवाले हैं-वे अविवेकीजन इस प्रकार की जिस पुष्पित यानी दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहा करते हैं (जोकि) जन्मरूप कर्म-फल देनेवाली (एवं) भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये नाना प्रकार की बहुत सी क्रियाओं को वर्णन करनेवाली है, उस वाणी द्वारा जिनका चित्त हर लिया गया है, जो भोग और ऐश्वर्य में अत्यन्त आसक्त हैं उन पुरूषों की परमात्मा में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती।"

"हे अर्जुन! वेद (उपर्युक्त प्रकार से) तीनों गुणों के कार्यरूप समस्त भोगों एवं उनके साधनों का प्रतिपादन करनेवाले हैं, (इसलिये तू) उन भोगों एवं उनके साधनों में आसक्तिहीन, हर्ष-शोकादि

द्वन्द्वों से रहित नित्यवस्तु परमात्मा में स्थित, ...स्वाधीन अन्तःकरणवाला हो। क्योंकि सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जानेपर छोटे जलाशय में(मनुष्य) का जितना प्रयोजन रहता है, (ब्रह्म को) तत्त्व से जाननेवाले, ब्राह्मण का समस्त वेदों में उतना(ही प्रयोजन रह जाता है)।"

जो उपदेश श्रीकृष्ण अर्जुन को दे रहे हैं उसी से मिलता-जुलता उपदेश सती दक्ष को दे रही हैं। वे वैदिक यज्ञ एवं कर्मकाण्डों से तत्त्वज्ञान को ज्यादा महत्त्व दे रही हैं।

उपसंहार

भागवत महापुराण में भगवान् शिव को परब्रह्म स्वीकार किया गया है जो ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र रूप में प्रकट हो संसार की सृष्टि, संचालन एवं संहार का कार्य करते हैं। सगुण-साकार रूप में भगवान् शिव को सद्योजात आदि पाँच मुखों से युक्त त्रिनेत्रधारी कहा गया है। भगवान् शिव ही सभी के कर्मों के फल का दाता, स्वर्ग, भोग एवं मोक्ष के दाता हैं। वे अत्यन्त शीघ्रता से प्रसन्न होनेवाले देव हैं। उनकी उपासना भी बहुत आसान है। वे स्तुति, नामस्मरण अथवा भाव-भक्ति-पूर्वक जल चढ़ाने पर भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव के नाम की बहुत ही महिमा है। उनके नाम का एक बार स्मरण करलेनेमात्र से ही समस्त पाप दूर हो जाते हैं।

तात्त्विकरूप से भगवान् शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा एक होने पर भी सगुण-साकार रूप से तीनों के गुण, कर्म एवं स्वभाव भिन्न हैं। भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं फलस्वरूप उनकी भक्ति सरल है जबकि भगवान् विष्णु की भक्ति बहुत कठिन है। भगवान् विष्णु मोक्ष देनेवाले है पर भोगों को छीननेवाले कहे गये हैं। जबकि भगवान् शिव को भोग एवं मोक्ष दोनों को देनेवाला कहा गया है। पुनः भगवान् शिव की भक्ति बहुत सरल भी है-मात्र जल चढ़ानें या स्तुति करने पर भी वे प्रसन्न होजाते हैं।

(प्रस्तुत लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा दो खण्डों में प्रकाशित 'श्रीमद्भागवत्-महापुराण' के बारहवें संस्करण पर आधारित है।)

* * *

नास्ति निन्दासमं पापं नास्ति मोहसमासवः।
नास्ति रागसमः पाशो नास्ति सङ्गसमं विषम्।।

(नार. महापु. पूर्वखण्ड 7/41-42)

निन्दा के समान न तो कोई पाप है और न ही मोह के समान आसव। न राग के समान कोई बन्धन(पाश) है और न ही कुसंग के समान विष।

नारद महापुराण में शिवतत्त्व–विवेचन

नारद महापुराण को कोई–कोई बृहन्नारदीय पुराण[1] भी कहते हैं। इस पुराण के विवेचन का प्रमुख विषय भगवान् श्रीकृष्ण हैं, क्योंकि उपक्रम एवं उपसंहार दोनों में उन्हीं का संकीर्तन हुआ है। अतः इस पुराण की गणना प्रमुख वैष्णव पुराणों में की जाती है। वैष्णव पुराण होने के बावजूद भी इसमें अनेक प्रसंगों में भगवान् शिव की महिमा का विस्तार से वर्णन किया गया है। वर्तमान नारद महापुराण का संबंध बृहत्कल्प की कथाओं एवं आख्यानों से है। मत्स्य पुराण तथा स्वयं इस पुराण(अ. 1/96/1–2) के अनुसार इसमें 25000 श्लोक हैं। परन्तु वर्तमान में 22000 श्लोक ही उपलब्ध हैं।

भगवान् शिव परब्रह्म के रूप में

इस पुराण में भी भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन हुआ है। धरतीपर गंगा को लाने के भगीरथ के प्रयास के दौरान भगवान् विष्णु उनसे भगवान् शिव की महत्ता को बतलाते हुए उनकी उपासना का उपदेश करते हैं। भगवान् शिव को वे(विष्णु) शरणागत–वत्सल, अनादि, अनन्त, सम्पूर्ण कामनाओं तथा फलों के दाता बतलाते हैं(संक्षिप्त नारद–विष्णुपुराणांक पृ. 69)। उपदेश को स्वीकारकर भगीरथ ने भगवान् शिव की स्तुति की। स्तुति में वे भगवान् शिव को संसार की सृष्टि, पालन एवं संहार का एकमात्र कारण, प्रमाणों(प्रत्यक्षादि) से परे, जगत्स्वरूप होते हुए भी नित्य, अजन्मा, अनन्त, अव्यय, सम्पूर्ण भूत जिनके रूप हैं, निर्गुण, परमात्मा, योगीश्वर, पशुपति, त्रिशूल एवं पिनाक धारण करनेवाले, परमज्योतिस्वरूप, स्वप्रकाश, समस्त जगत के कारणभूत परमात्मा, जटा–जूटधारी, योगियों के ध्येय, सबके अन्तरात्मा, रूपहीन, परात्पर, विभु, परब्रह्म एवं शब्दब्रह्म जिनके स्वरूप हैं, सत्–असत् तथा जड़–चेतन सबका जिनसे प्रादुर्भाव हुआ है तथा स्वतंत्र ईश्वर बतलाते हैं(नारदी. म. पु. पू. ख. अध्याय–16/73, 78–96)। स्तुति के कुछ अंश देखें।

प्रमाणागोचरं देवमीशानं प्रणवात्मकम्।।
जगद्रूपमजं नित्यं सर्गस्थित्यंतकारणम्।
आदिमध्यान्तरहितमनन्तमजमव्ययम्।
अनेकरूपरूपाय निर्गुणाय परात्मने।।
मृत्युंजयं महादेवं परात्परतरं विभुम्।।
परं शब्दब्रह्मरूपं तं वन्देऽखिलकारणम्।

(नारदीयमहापुराण पू. ख. 16/78–80, 85, 91–92)

अर्थात्–जो(प्रत्यक्षादि) प्रमाणों द्वारा अगम्य, देवताओं का स्वामी, प्रणवस्वरूप, संसार के रूप में अभिव्यक्त, अजन्मा, नित्य, सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का कारण, आदि, मध्य तथा अन्त से रहित,

---

[1] यद्यपि इस नाम से एक औपपुराण भी पाया जाता है, जिसके बारे में हम आगे चर्चा करेंगे।

अनन्त, अव्यय, अनेक रूप धारण करनेवाला, निर्गुण, परमात्मा, मृत्युंजय, महादेव, परात्पर, सर्वव्यापी, शब्दब्रह्मस्वरूप तथा अखिल जगत्का कारण है उस भगवान् शिव को नमस्कार है।

उपरोक्त स्तुति में भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की चर्चा है। भगवान् शिव को सगुणरूप में पाँच मुख तथा दस भुजाओंवाला, त्रिनेत्रयुक्त, अर्धचन्द्र का मुकुट धारण करनेवाला, सर्पो के यज्ञोपवीत धारण करनेवाला, उज्ज्वल कान्तिवाला, गज-चर्म पहने हुए, त्रिशूल एवं पिनाक आदि को धारण करनेवाला माना गया है। भगीरथ को भगवान् शिव ने इसी रूप में दर्शन दिया था। (वही 16/98-99)

सूतजी ऋषियों से कह रहे हैं कि "जहाँ से वाणी निवृत्त हो जाती है और जहाँतक मन पहुँच नहीं पाता, वही रूपरहित सच्चिदानन्दघन परमात्मा का स्वरूप जानना चाहिये। ....जो निर्गुण तथा अज्ञानान्धकार से परे हैं...........जो अजन्मा परमात्मा आदि, मध्य और अन्त में भी एक एवं अविनाशी होते हुए भी नाना रूपों में प्रकाशित हो रहे हैं..........जिन निरञ्जन परमात्मा से यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें यह स्थित है और जिनमें ही इसका लय होता है, वही सत्य तथा अद्वैतज्ञान है। इन्हीं को शिवोपासक शिव कहते हैं..........नाना प्रकार के रूप एवं क्रियाओं के चरम आश्रय, उन अद्वितीय ब्रह्म की मैं वन्दना करता हूँ।(नारदी. म. पु. उ. ख. अध्याय-82/52-57)

शिवं शैवा वदन्त्येनं..........ब्रह्माद्वितीयं तद्वन्दे नानारूपक्रियास्पदम्।।

(नारद म. पु. उत्तर ख. 82/56-57)

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी व्रत के दिन भगवान् शिव की सौ नामों से की जानेवाली स्तुति में उन्हें स्त्रष्टा(ना. महापु. पू. ख. 122/52), देवताओं के ईश(122/52), व्योमरूप एवं पशुपति(122/55), परमेष्ठी, वेदगुह्य(122/56), जगदाधार(122/57), कल्याणस्वरूप, परमात्मा(122/58), अविनाशी, भक्तिप्रिय(122/59), महादेव, सबका संहार करनेवाले, तीनों वेदों के आश्रय(122/60), परमार्थ, विश्वरूप, विश्वनाथ, विश्वमय(122/61), सबका कल्याण करनेवाले, रूपहीन तथा नाना रूपवाले, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म(122/62), कारणों के भी कारण, मृत्युंजय तथा स्वयंभूस्वरूप(122/66) आदि कहा गया है।

हनुमान्जी ने एक स्थलपर भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें अमितआत्मा, योग धारण करनेवाले, योगियों के गुरु, योग के द्वारा ज्ञेय, देवताओं तथा ज्ञानियों के स्वामी, वेदों के स्वामी, ध्यानगम्य, पशुपति, अष्टमूर्तिस्वरूप, त्रिनेत्र तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि को नेत्ररूप में धारण करनेवाले कहा है।(ना. महापु. पू. ख. 79/231-233)

इसी अध्याय में आगे स्तुति करते हुए कहा गया है कि वे वेदों द्वारा जानने योग्य, शुद्ध प्रकाशस्वरूप, अचिन्त्यरूप, ब्रह्मादि के ईश, सृष्टि एवं संहार कर्त्ता, विष्णु के प्रिय, दुःखों को हरनेवाले, अखिल विश्व के ईश्वर, चराचर में व्यापक, भक्तवत्सल, यज्ञ के स्वामी, आदिदेव, सर्पो का यज्ञोपवीत

धारण करनेवाले, त्रिमूर्तिस्वरूप, कालस्वरूप एवं काल के स्वामी, अशुभ का नाश करनेवाले, जगन्नाथ, भुक्ति – मुक्ति प्रदान करनेवाले, जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, वाणी से परे तथा सर्वमूर्ति हैं। उनके आदि, मध्य एवं अन्त को कोई नहीं जानता। (ना. महापु. पू. ख. 79 / 322 – 328)

ॐ वेदवेद्याय देवाय तस्मै शुद्धप्रभाचिन्त्यरूपाय कस्मै।
ब्रह्माद्यधीशाय सृष्ट्यादिकर्त्रे विष्णुप्रियायार्तिहंत्रेंऽतकर्त्रे।।
नमस्तेऽखिलाधीश्वरायांबराय नमस्ते चरस्थावर व्यापकाय।
नमो वेदगुह्याय भक्तप्रियाय...।।
..।
जगज्जाड्यविध्वंसनो भुक्तिमुक्तिप्रदः स्तात्प्रसन्नः सदा शुद्धकीर्तिः।।
यतः संप्रसूतं जगज्जातमीशात्स्थितं येन रक्षवता भावितं च।
लयं यास्यते यत्र वाचां विदूरे स वै नः प्रसन्नोऽस्तु कालत्रयात्मा।।
यदादिं च मध्यं तथांतं न केऽपि विजानन्ति विज्ञा अपि स्वानुमानाः।
स वै सर्वमूर्तिः ....।

एक अन्य स्थल पर सनत्कुमारजी नारदजी को दिव्य माहेश्वर स्तोत्र सुनाते हैं। उस स्तोत्र में भगवान् शिव को पृथ्वी, जल आदि अष्टमूर्तिस्वरूप, सभी भूतों में स्थित, श्रुतियों को पैदा करनेवाले, अतिन्द्रिय, शाश्वत, विश्वरूप, संसार – दुःख को हरनेवाले, तर्कमार्ग से अगम्य, तप का फल देनेवाले, सर्वज्ञ, आदि, मध्य एवं अन्त से रहित, भय को दूर करनेवाले, योगियों द्वारा ध्येय, निर्गुण, विश्वात्मा, शुद्ध, पूर्ण, अपने भक्तों को भुक्ति – मुक्ति प्रदान करनेवाले, त्रिमूर्ति (ब्रह्मा – विष्णु – रुद्र – स्वरूप), विश्वेश्वर तथा त्रिनेत्र आदि कहा गया है। (ना. महापु. पू. ख. 91 / 219 – 229)

सर्वभूतान्तरस्थाय शंकराय नमो नमः।।
अतींद्रियाय महसे शाश्वताय नमोनमः।।
भवाय भवसंभूतदुःखहन्त्रे नमोनमः।।
तर्कमार्गातिदूराय तपसां फलदायिने।
चतुर्वर्गवदान्याय सर्वज्ञाय नमोनमः।।
आदिमध्यांतशून्याय निरस्ताशेषभीतये।
योगिध्येयायमहते निर्गुणाय नमोनमः।।
शुद्धाय शुद्धभावाय शुद्धानामंतरात्मने।
पुरांतकाय पूर्णाय पुण्यनाम्ने नमोनमः।।
भक्ताय निजभक्तानां भुक्तिमुक्ति प्रदायिने।
..............................विश्वेषांपतये नमः।।

(नारदीमहापु. पू. ख. 91 / 19 – 23, 26 – 27)

पुण्डरीकपुर के माहात्म्य की चर्चा के समय व्यासजी के शिष्य जैमिनि मुनि के कथा-प्रसंग में भगवान् शिव का परब्रह्म-स्वरूप स्पष्टरूप से उभर कर आया है। वहाँपर जैमिनि भगवान् शिव की स्तुति बहुत ही विस्तार से करते हुए दिखाये जाते हैं। वे भगवान् शिव को जगत्पति, सम्पूर्ण जगत् के कर्त्ता, भर्त्ता एवं संहर्त्ता, पाँचों भूतों के स्वामी, काल के नियन्ता, आत्मा के अधीश्वर, विश्वस्वरूप, चराचर-जगत् के स्वामी, ईश्वर, स्वयं कभी भी पराजित न होनेवाले, जिनसे यजुः ऋक् एवं साम वेद प्रकट हुए, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्वस्वरूप, देवताओं के नियन्ता, छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े, अव्यक्त, अचिन्त्य, एक, आकाशस्वरूप, अजन्मा, पुराणपुरुष तथा यज्ञ-यूपमय, वेदान्तियों एवं ज्ञानियों के ध्येय तथा सृष्टि के आरंभ में ब्रह्मादि के कर्त्ता बताते हैं। उन्हें देवताओं का नेता, मंगलस्वरूप, आत्मा के अधिपति, समस्त कामनाओं को पूरा करनेवाला, क्लेश में पड़े भक्तों को अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाला, भस्मधारी, अविनाशी परमप्रभु, समस्त पापों को हर लेनेवाला तथा संसार-बंधन का नाश करनेवाला भी कहा गया है।(नारदी. म. पु. उ. ख. 73/33-107)

जैमिनि की स्तुति के कुछ अंश को देखें-

विश्वकर्त्रे महेशाय विश्वभर्त्रे पिनाकिने।
विश्वहर्त्रेऽग्निनेत्राय विश्वरूपाय वै नमः।।
यक्षेशेष्टं नमामीशमक्षरं परमं प्रभुम्।।
सकृत्प्रणतसंसारमहासागरतारकम्।
धातारं जगतामीशं दातारं सर्वसंपदाम्।
सर्वज्ञं सर्वगं सर्वं कविं वंदे तमीश्वरम्।
हरं सुरनियंतारं हरंतमहमानतः।
यदाज्ञया जगत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः।।
ईश्वरं तमहं देवं यस्य लिंगमहर्निशम्।
यजंते सह भार्याभिरिंद्रज्येष्ठा मरुद्गणाः।।
स्मृतिमात्रेण संसारविनाशकराणि ते।
भस्मांगरागाय नमः परस्मै यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित्।।
अनंतमव्यक्तमचिंत्यमेकं ....।
अजं पुराणं प्रणमामि यूपमणोरणीयान्महतो महीयान्।।

(ना. म. पु. उ. ख. 73/41, 48, 50-51, 53, 55, 57, 89, 103, 106)

अर्थात्-विश्व के कर्त्ता, भर्त्ता एवं हर्त्ता तथा विश्वरूप भगवान् शिव को नमस्कार। कुबेर के इष्ट, अक्षर तथा परमप्रभु, भगवान् शिव को नमस्कार। एक बार प्रणाम कर लेनेपर भी जो संसार-सागर से तारनेवाले हैं, उन्हें प्रणाम। जगत् को धारण करनेवाले तथा उसके स्वामी तथा सभी

संपदाओं के दाता को नमस्कार। सर्वज्ञ, सर्वत्र गति करनेवाले, मनीषी तथा सर्वरूप ईश्वर को नमस्कार। पापों का हरण करनेवाले तथा देवताओं के नियन्त्रक को मेरा प्रणाम। जिसकी आज्ञा से भगवान् विष्णु समस्त जगत् में व्यापक हो स्थित हैं, उन्हें प्रणाम। मेरे ईश्वर, जिसके लिंग की अहर्निश उपासना श्रेष्ठ मरुद्गण एवं इन्द्रादि करते हैं, तुम्हें नमस्कार। भस्म से विभूषित तथा जिनसे परे कोई भी दूसरा नहीं है, जो अनंत, अव्यक्त, अचिन्त्य, अद्वैत, अजन्मा, पुराणपुरुष, सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा महान् से महान् है, उसे मेरा प्रणाम।

सर्वप्रथम भगवान् शिव जैमिनि मुनि के समक्ष जिस रूप में प्रकट हुए थे वह उनका अर्द्धनारीश्वररूप था। बाद में वे पार्वती एवं सभी गणों के साथ अपने स्वाभाविकरूप में प्रकट हुए थे। जैमिनि के प्रसंग में भी भगवान् शिव के दोनों रूपों, निराकार एवं साकार, की चर्चा की गयी है। भगवान् शिव को परब्रह्म तथा अपर ब्रह्म दोनों ही स्वीकार किया गया है। परब्रह्मरूप में वे निर्गुण निराकार, मन बुद्धि से परे, अचिन्त्य, अक्षर, देश - कालातीत हैं। अपरब्रह्मरूप से वे सम्पूर्ण जगत् के कर्त्ता, धर्त्ता एवं हर्ता हैं, वे देवताओं के अधिपति, जगत्स्वरूप, भुक्ति तथा मुक्ति देनेवाले, दयालु, कल्याणमय तथा अन्य विशेषताओं से युक्त हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप हैं। वे सगुण - साकार रूप से भक्तों को दर्शन दे उनकी अभिलाषाएँ पूरी करते हैं।

पशुपति, पशु एवं पाश

इस पुराण के पूर्वखण्ड के तीसरे पाद के प्रारंभ में सनत्कुमारजी नारदजी से शैव - तन्त्र की चर्चा करते हैं। शैव - महातन्त्र के शैवागम, शैव - दर्शन एवं पाशुपत - दर्शन आदि अनेक नाम हैं। शैवमहातन्त्र में तीन पदार्थ और चार पादों का वर्णन है। पशुपति, पशु एवं पाश तीन पदार्थ हैं। भोग, मोक्ष, क्रिया एवं चर्या - ये चार पाद (साधन) कहे गये हैं। एकमात्र शिवस्वरूप परमात्मा ही पशुपति हैं तथा जीवों को पशु कहा गया है। जबतक स्वरूप के अज्ञान को सूचित करनेवाले मोह आदि से संबंध बना रहता है, तबतक सब जीवों की 'पशु' संज्ञा मानी गयी है। इन पशुओं के जो पाश अर्थात् बन्धन हैं, वे पाँच प्रकार के माने गये हैं जिन्हें मलज, कर्मज, मायेय (मायाजन्य), तिरोधानशक्तिज और बिन्दुज कहते हैं[1]। (नारदी. म. पु. पू. ख. अध्याय - 63 / 13 - 22)

जो आत्मा की स्वाभाविक ज्ञान तथा क्रिया - शक्ति को ढक ले, वह 'मल' (अर्थात् अज्ञान) कहलाता है। यह मल आत्मस्वरूप का केवल आच्छादन ही नहीं करता, किन्तु जीवात्मा को बलपूर्वक दुष्कर्मों में प्रवृत्त करनेवाला पाश भी यही है। प्रत्येक वस्तु में जो सामर्थ्य है, उसे 'शिव - शक्ति' कहते हैं, जैसे अग्नि में दाहक - शक्ति। यह शक्ति जैसे पदार्थ में रहती है, वैसा ही भला, बुरा स्वरूप धारण कर लेती है, अतः पाश में रहती हुई यह शक्ति जब आत्मा के स्वरूप को ढक लेती है, तब यह

---

[1] आधुनिक शैवदर्शन में नारद पुराण के पाँच पाशों की जगह चार प्रकार के पाश - मल, रोध, कर्म तथा माया का उल्लेख है। रोधशक्ति या तिरोधानशक्ति एक ही वस्तु है।

'रोध-शक्ति' या 'तिरोधान-पाश' कहलाती है। इस अवस्था में जीव शरीर को आत्मा मानकर शरीर के पोषण में लगा रहता है, आत्मा के उद्धार का प्रयत्न नहीं करता। फल की इच्छा से किये हुए 'धर्माधर्म' रूप कर्मों को ही 'कर्मपाश' कहते हैं। यह 'कर्म' प्रवाहरूप से नित्य है। बीजाङ्कुर-न्याय से इसकी स्थिति अनादि मानी गयी है। जिस शक्ति में प्रलय के समय सब कुछ लीन हो जाता है तथा सृष्टि के समय जिसमें से सब कुछ उत्पन्न होता है, वह 'माया पाश' है। 'बिन्दु' मायास्वरूप है, वह 'शिवतत्त्व' नाम से भी जानने योग्य है। यद्यपि शिवपदप्राप्तिरूप परम मोक्ष की अपेक्षा से वह भी पाश ही है, तथापि विद्येश्वरादि पद की प्राप्ति में परम हेतु होने के कारण बिन्दु-शक्ति को 'अपरा मुक्ति' कहा गया है। अतः उसे आधुनिक शैवदर्शन में 'पाश' नाम नहीं दिया गया है।(नारद म. पु. पूर्वखण्ड-तृतीय पाद अध्याय-63, संक्षिप्त नारद-विष्णु पुराणांक, पृ. 341 तथा पृ. 344 की पाद टिप्पणी देखें)

आगे बताया गया है कि वास्तव में विचित्र शक्तियों से युक्त एक ही शिव नामक तत्त्व विराजमान है। वह शक्तियुक्त होने से 'शाक्त' कहलाता है। प्रभु शिव जड़-चेतनपर(अनुग्रह करने के लिये) विविध रूप धारण करके अनादि मल से आबद्ध जीवोंपर कृपा करते हैं। सबपर दया करनेवाले शिव सम्पूर्ण जीवों को भोग और मोक्ष तथा जड़वर्ग को अपने व्यापार में लगने की शक्ति-सामर्थ्य देते हैं। भगवान् शिव के समान रूप का हो जाना ही मोक्ष है, यही चेतन जीवोंपर ईश्वर का अनुग्रह है। कर्म अनादि होने के कारण वे सदा वर्तमान रहते हैं; अतः उनका भोग किये बिना भी भगवत्कृपा से मोक्ष हो जाता है। इसीलिये भगवान् शिव को अनुग्राहक(कृपा करनेवाला) कहा गया है। अविनाशी प्रभु जीवों के भोग के लिये सूक्ष्म करणोंद्वारा अनायास ही जगत् की उत्पत्ति करते हैं।(नारद म. पु. पूर्वखण्ड-तृतीय पाद, अध्याय-63/37-42)

तत्त्वं वस्तुत एकं तु शिवाख्यं चित्रशक्तिकम्।।
शक्तं यां वृत्तिभेदात्तु विहिताः खलु कल्पनाः।
चिज्जडानुग्रहार्थाय कृत्वा रूपाणि वै प्रभुः।।
अनादिमलरुद्धानां कुरुतेऽनुग्रहं चिताम्।
मुक्तिं भुक्तिं च विश्वेषां स्वव्यापारे समर्थताम्।।
विधत्ते जडवर्गस्य सर्वानुग्राहकः शिवः।
शिवसामान्यरूपो हि मोक्षस्तु चिदनुग्रहः।।
सोऽनादित्वात्कर्मणो हि तत्तद्भोगं विना भवेत।
तेनानुग्राहकः शम्भुस्तद्भुक्त्यै प्रभुरव्ययः।।
कुरुते सूक्ष्मकरणभुवनोत्पत्तिमंजसा।

विद्या के स्वामी भगवान् शिव जीव के कर्मों को देखकर अपनी शक्तियों से माया को क्षोभ

में डालते और जीवों के भोग के लिये माया के द्वारा ही शरीर एवं इन्द्रियों की सृष्टि करते हैं। चराचर भूतों में चौरासी लाख योनियाँ हैं। उन सब में भ्रमण करता हुआ जीव कभी कर्मवश मनुष्य – शरीर प्राप्त कर लेता है, जो सबसे उत्तम और सम्पूर्ण पुरुषार्थों का साधक है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन – यह सम्पूर्ण पशु आदि जीवों के लिये सामान्य कहा गया है। जो मूर्ख इन्हीं चार बातों में फँसा हुआ है, वह आत्महत्यारा है। अपने बन्धन का उच्छेद करना मनुष्यों का विशेष धर्म है।(नारदी. म. पु. पूर्वखण्ड – तृतीय पाद, अध्याय – 63 / 45 – 46, 93 – 94, 105 – 106)

पाशबन्धन का विच्छेद दीक्षा से ही होता है, अतः बन्धन का विच्छेद करने के लिये मन्त्रदीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। दीक्षा एवं ज्ञान – शक्ति से अपने बन्धन का नाश करके शुद्ध आत्मा नाम से स्थित हुआ पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है। जो अपनी शक्तिस्वरूपा दृष्टि से भगवान् शिव का ध्यान एवं दर्शन करता है और शिवमन्त्रों से उनकी आराधना में तत्पर रहता है, वह अपना और दूसरों का भी हितकारी है। (ना. महापु. पू. ख. 63 / 107 – 109)

शास्त्रोक्त रीति से मन्त्रदीक्षा का आचरण करना चाहिये। दीक्षा लेकर अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुरूप सदाचार में तत्पर रहकर नित्य – नैमित्तिक कर्मो का अनुष्ठान करना चाहिये। जो मनुष्य दीक्षा ग्रहण करके नित्य एवं नैमित्तिक कर्मो का पालन नहीं करता, उसे कुछ कालतक पिशाचयोनि में रहना पड़ता है। नित्य – नैमित्तिक आचार का पालन करनेवाले मनुष्य को उसकी दीक्षा में त्रुटि न आने के कारण तत्काल मोक्ष प्राप्त होता है। दीक्षा के द्वारा गुरु के स्वरूप में स्थित होकर भगवान् शिव सबपर अनुग्रह करते हैं। जो लोक – परलोक के स्वार्थ में आसक्त होकर कृत्रिम (दिखावटी) गुरुभक्ति का प्रदर्शन करता है, वह सब कुछ करनेपर भी विफलता को ही प्राप्त होता है और उसे पग – पगपर प्रायश्चित्त का भागी होना पड़ता है। जो मन, वाणी और क्रिया द्वारा गुरुभक्ति में तत्पर है, उसे प्रायश्चित नहीं प्राप्त होता और पग – पगपर सिद्धि लाभ होता है। यदि शिष्य गुरुभक्ति से सम्पन्न और सर्वस्व समर्पण करनेवाला हो तो उसके प्रति मिथ्या मन्त्र का प्रयोग करनेवाला गुरु प्रायश्चित्त का भागी होता है।(नारदी. म. पु. पूर्वखण्ड – तृतीय पाद, अध्याय – 63 / 112 – 124)

शिवोपासना एवं शिवनाम महिमा

नारद पुराण में अनेक स्थलोंपर भगवान् शिव को भोग एवं मोक्षदाता कहा गया है। पूर्वखण्ड, अध्याय – 16 (श्लोक 71 – 73) में भगवान् विष्णु भगीरथ से कह रहे हैं कि भगवान् शिव सभी कामनाओं तथा फलों के दाता हैं, वे तुम्हारी मनोकामना को पूरा करेंगे। उन्हें शरणागतवत्सल, सुखदाता, असमर्थों को सामर्थ्य देनेवाला कहा गया है। इसीलिये सब लोगों के कल्याण करनेवाले महादेवजी की उपासना करनी चाहिये।

उत्तर खण्ड के अध्याय-73 में जैमिनि मुनि भी भगवान् शिव को लोक-कल्याणकारी, समस्त कामनाओं की वर्षा करनेवाले, क्लेश में पड़े हुए भक्तों को अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाले, सांसारिक क्लेशों से उत्पन्न भय को सदा के लिये उच्छेद करनेवाले, भक्तों पर कृपा की वर्षा करनेवाले, समस्त सम्पत्तियों के दाता, समस्त पापों को हरनेवाले तथा विद्यादाता कहा है। जैमिनि मुनि वहाँ पर यह भी कह रहे हैं- "अनादिकाल से मुक्ति की इच्छा रखनेवाले जीवों! तुम सब लोग यहाँ(पुण्डरीकपुर) आओ और अपने हृदयकमल में भगवान् शिव का चिन्तन करो; क्योंकि जिन्होंने वेदान्त-शास्त्र के विज्ञान द्वारा उसके अर्थभूत परमात्मा को पूर्ण निश्चयपूर्वक जान लिया है, वे ज्ञानीजन मोक्ष के लिये सदा उन्हीं का ध्यान करते हैं। जो उत्तम पुत्र की इच्छा रखनेवाले हैं, वे मनुष्य भी.............भगवान् शिव की आराधना करें............बहुत कहने से क्या लाभ? इन भगवान् शिव की शरण में जाने से समस्त कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। पूर्वकाल में इन्हीं की शरण लेकर महर्षि अगस्त्य दिन-रात में वृद्धावस्था से युवा हो गये थे.................।"

आगच्छतानादि मुमुक्षवो ये युयं शिवं चिंतयतांतरेऽब्जे।
ध्यायंति मुक्त्यर्थममुं हि नित्यं वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः।।
सुपुत्रकामा अपि ये मनुष्या युवानमेनं गिरिशं यजंताम्।
अलं किमुक्तैर्बहुभिः समीहितं समस्तमस्याश्रयणेन सिध्यति।
पुरैनमाश्रित्य हि कुंभसंभवो दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि।।

(ना. म. पु. उ. ख. 73/117, 120-121)

महादेवजी को भक्तों के वश में रहनेवाला तथा शीघ्र वर देनेवाला कहा गया है। इस पुराण में बताया गया है कि कलियुग के प्रभाव से बचने के लिये भगवान् शिव के नामों का जप करना चाहिये। तथा यह भी कहा गया है कि निष्ठापूर्वक श्रीहरि अथवा भगवान् शिव का स्मरण करने से सभी प्रकार के कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

शिव शंकर रुद्रेश नीलकण्ठ त्रिलोचन।
इति जल्पंति ये वापि कलिस्तान्नापि बाधते।।
महादेव विरूपाक्ष गंगाधर मृडाव्यय।
इत्थं वदंति ये विप्र ते कृतार्था न संशयः।।
हरिस्मरण निष्ठानां शिवनामरतात्मनाम्।
सत्यं समस्त कर्माणि यांति संपूर्णतां द्विज।।

(ना. महापु. पू. ख. 41/101-102, 112)

अर्थात्-जो शिव, शंकर, रुद्र, ईश, नीलकण्ठ तथा त्रिलोचन का जप करते हैं उन्हें कलि बाधा नहीं पहुँचाता। इसी प्रकार जो विप्र महादेव, विरूपाक्ष, गंगाधर, मृड एवं अव्यय(आदि भगवान्

शिव के नामों) का उच्चारण अथवा जप करते हैं उनके सभी प्रयोजन पूरे हो जाते हैं। निष्ठापूर्वक शिवजी अथवा श्रीहरि का स्मरण द्विजों के सभी कार्यों को सिद्ध कर देता है-यह सत्य है।

भगवान् शिव के नामों की महिमा का गुणगान इस पुराण में काफी किया गया है। अन्य पुराणों की भाँति यहाँ भी कहा गया है कि भगवान् शिव का स्मरण तथा उनके नामों के कीर्तन से भव-बन्धन को पार किया जा सकता है। जैमिनि मुनि कह रहे हैं कि "जो स्मरणमात्र से संसार-बन्धन का नाश करनेवाले हैं, आपके (भगवान् शिव के) उन दिव्य नामों का हम सैकड़ों वर्षोंतक कीर्तन करते रहें। ....अजन्मा जीव! तू शान्तभाव से चेत जा, क्या तुझे यह ज्ञात नहीं है कि इन भगवान् शिव की तृप्ति से ही यह सम्पूर्ण जगत् तृप्त होता है। इसलिये इनके नामामृत का पान कर ....।" (नारदी. म. पु. उत्तर खण्ड अध्याय-73)

स्मृतिमात्रेण संसारविनाशकराणि ते।
नामानि खलु दिव्यानि प्रब्रवाम शरदः शतम्।।
चेतयाजन! शान्तस्त्वं नेदं वेदाखिलं जगत्।
अस्य तृप्त्याखिलं शंभोर्गौरो न तृषितः पिब।। (ना. म. पु. उ. ख. 73/89, 97)

इस पुराण में भगवान् शिव से संबंधित मन्त्रों के जप की विधि विस्तार से दी गयी है। इन मन्त्रों से शिव की आराधना व्यक्ति को भोग एवं मोक्ष प्रदान करती है।

अथ वक्ष्ये महेशस्य मन्त्रं सर्वार्थसाधकम्।
यं समाराध्य मनुजो भुक्तिं मुक्तिं च विंदति।। (ना. महापु. पू. ख. 91/1)

पहले पंचाक्षर (या षडाक्षर) मन्त्र के बारे में चर्चा की गयी है। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द पंक्ति तथा देवता भगवान् शिव बताये गये हैं। इस मन्त्र के अंगन्यास एवं करन्यास आदि के बारे में भी बताया गया है (जिसकी विस्तृत चर्चा इसी पुस्तक में अन्यत्र की गयी है)। न्यासोपरान्त ध्यान का मन्त्र बताया गया है। यह मन्त्र प्रचलित मन्त्र **'ध्यायेन्नित्यं महेशं0'** के श्लोकों में थोड़ा परिवर्तन करके बनाया गया है (देखें ना. महापु. पू. ख. 91/13-16)। ध्यान के उपरान्त मन्त्र का पाँच लाख (अथवा निश्चित संख्या में) जप करे तथा उसका दशांश खीर से हवन करे। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और साधक को अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। वहीं पर (अध्याय 91 में) बड़े ही विस्तार के साथ शिवमन्त्रों के जप की विधि तथा उनके फलों की चर्चा है। यहाँ उन सबका विस्तार संभव नहीं है।

भगवान् के नाम का जप करनेवाला भवसागर से पार हो जाता है। परन्तु जप के उचित फल के लिये उसे शास्त्रों में बताये नाम-जप संबंधी दस अपराधों से बचना चाहिये। इन अपराधों के होते रहने से नाम-जप अपना प्रभाव खो बैठता है। नामापराध ये हैं-गुरु की अवज्ञा, साधुओं की निन्दा, भगवान् के विभिन्न नामों (जैसे हरि, हर, शिव, कृष्ण, राम आदि) में भेद करना, वेद की निन्दा,

भगवन्नाम के बलपर पापाचरण, भगवान् के नाम में अर्थवाद-बुद्धि, नामग्रहण में पाखण्डी, आलसी एवं नास्तिक को भी भगवान् के नाम का उपदेश, नाम का विस्मरण और नाम में अनादर। नारद महापुराण में कहा गया है कि-

गुरोरवज्ञां साधूनां निन्दां भेदं हरे हरौ।
वेदनिन्दां हरेर्नामबलात् पापसमीहनम्।।
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषण्डं नामसंग्रहे।
अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्।।
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च।
संत्यजेद् दूरतो वत्स दोषानेतान् सुदारुणान्।। (ना. माहपु. पू. ख. 82/22-24)

भगवान् शिव की लिंगरूप में पूजा का अत्यधिक फल बताया गया है। लिंगपूजा पार्थिवलिंग के रूप में भी होती है। जैमिनि मुनि ने पुण्डरीकपुर में पार्थिव पूजा द्वारा ही भगवान् शिव को प्राप्त किया था। लिंग की षोडशोपचार द्वारा पूजा करनी चाहिये। भस्म, त्रिपुण्ड्र, रूद्राक्ष आदि का प्रयोग करनेवाले की शिव-पूजा को उत्तम कोटि की कही जाती है। पूजा में पंचाक्षर मन्त्र का जप एवं हवन भी करना चाहिये। शिवपूजा संबंधी उपरोक्त बातों का संकेत इस पुराण में पूर्वभाग के पाँचवें अध्याय (श्लोक 68-70, 73) में प्राप्त होता है।

भगवान् शिव एवं उनके लिंग की पूजा की महत्ता को अनेक स्थलों (जैसे पू. ख. 6/50-51 आदि) पर दर्शाया गया है। पूर्वखण्ड के अध्याय-13 में कहा गया है कि जो कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि और सोमवार के दिन भगवान् शंकर को दूध से नहलाता है, वह शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। अष्टमी अथवा सोमवार को भक्तिपूर्वक नारियल के जल से भगवान् शिव को स्नान कराकर मनुष्य शिवसायुज्य का अनुभव करता है। शुक्लपक्ष की चतुर्दशी अथवा अष्टमी को घृत और मधुके द्वारा भगवान् शिव को स्नान कराकर मनुष्य उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। तिल के तेल से भगवान् शिव को स्नान कराकर मनुष्य अपनी सात पीढ़ियों के साथ उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जो शिव को भक्तिपूर्वक गन्ने के रस से स्नान कराता है, वह सात पीढ़ियों के साथ एक कल्पतक भगवान् शिव के लोक में निवास करता है (फिर वह शिव का सायुज्य प्राप्त कर लेता है)।

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां सोमवारे च भूपते।
शिवं संस्नाप्य दुग्धेन शिवसायुज्यमाप्नुयात्।।
नालिकेरोदकेनापि शिवं संस्नाप्य भक्तितः।
अष्टम्यामिन्दुवारे वा शिवसायुज्यमश्नुते।।
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वापि भूपते।
घृतेन मधुना स्नाप्य शिवं तत्साम्यतां व्रजेत्।।

तिलतैलेन संस्नाप्य विष्णुं वा शिवमेव च।
स याति तत्तत्सारूप्यं पितृभिः सह सप्तभिः।।
शिवमिक्षुरसेनापि यः स्नापयति भक्तितः।
शिवलोके वसेत्कल्पं स सप्तपुरुषैः सह।। (न. म. पु. पू. ख. 13/52-56)

आगे अध्याय 13 में ही कहा गया है कि कार्तिक अथवा अषाढ़ की पूर्णिमा को जो मानव भगवान् शिव की प्रसन्नता के लिये वृषोत्सर्ग-कर्म करता है, वह सात जन्मों के पापों से मुक्त हो रूद्र का स्वरूप प्राप्त कर लेता है। जो भैंसे को शिवलिंग से चिन्हित करके छोड़ता है, उसे कभी यमयातना (नरक) नहीं प्राप्त होती। (नारदी. म. पु. पू. ख. 13/92-95)

इस पुराण में त्रयोदशी संबंधी व्रतों की चर्चा की गयी है। कुछ त्रयोदशी व्रतों का संबंध भगवान् शिव से है जिनमें से कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी मुख्य है। इस दिन एक समय भोजन करके व्रत रखना चाहिये। प्रदोषकाल में पुनः स्नान करके मौन और एकाग्रचित्त हो बत्तीस दीपकों की पङ्क्ति से भगवान् शिव को आलोकित करे। घी से दीपकों को जलाये और गन्धादि से भगवान् शिव की पूजा करे। फिर नाना प्रकार के फलों और नैवेद्यों द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करे। तदनन्तर भगवान् शिव की सौ नामों से स्तुति करे (इन सौ नामों के लिये कृपया ना. महापु. पू. ख. अध्याय 122/श्लोक 51-66 देखें) तथा उनकी परिक्रमा करे। इस प्रकार से व्रत करनेवाला भगवान् शिव के प्रसाद से इहलोक के सम्पूर्ण भोग भोगकर अन्त में शिवधाम प्राप्त कर लेता है।

एवं कृत्वा व्रतं विप्र महादेवप्रसादतः।
भुक्त्वेह भोगानखिलानंते शिवपदं लभेत्।। (ना. महापु. पू. ख. 122/68)

वर्षभर के चतुर्दशी व्रतों का भी विवेचन इस पुराण में किया गया है। शिव से संबंधित कुछ प्रमुख चतुर्दशी व्रतों की यहाँ अति संक्षिप्त चर्चा की जा रही है। वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को ॐकारेश्वर की यात्रा करनी चाहिये। उनका दर्शन पापों का नाश करनेवाला है। उनका पूजन, ध्यान तथा जप आदि मनुष्यों के लिये ज्ञान और मोक्ष देनेवाला बताया गया है (ना. महापु. पू. ख. 123/14-15)।

इस तिथि को पापनाशक 'लिंगव्रत' करना चाहिये। आटे का शिवलिंग बनाकर उसे पंचामृत से स्नान करावे। फिर उसपर कुंकुम का लेप करे और वस्त्राभूषण, धूप-दीप तथा नैवेद्य के द्वारा उसकी पूजा करे। जो इस प्रकार सब मनोरथों की सिद्धि प्रदान करनेवाले पिष्टमय शिवलिंग का पूजन करता है, वह महादेवजी की कृपा से भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

एवं यः पूजयेत्पैष्टं लिंगं सर्वार्थसिद्धिदम्।।
भुक्तिं मुक्तिं सलभते महादेवप्रसादतः। (वही पू. ख. 123/117-118)

फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को 'शिवरात्रि-व्रत' किया जाता है। उसमें दिन-रात निर्जल उपवास करके एकाग्रचित्त हो गन्ध आदि उपचारों से तथा जल, बिल्वपत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, स्तोत्रपाठ और

जप आदि से किसी स्वयंभू आदि लिंग की अथवा पार्थिवलिंग की पूजा करनी चाहिये। फिर दूसरे दिन उन्हीं उपचारों से पुनः पूजन करके ब्राह्मणों को मिष्ठान्न भोजन करावे और दक्षिणा देकर विदा करे। इस व्रत को करनेवाला देवताओं द्वारा सम्मानित हो दिव्यभोग प्राप्त करता है। (वही पू. ख. 123/69-73)

जो पूजारहित (अर्थात् जिसकी नियमित पूजा न होती हो) शिवलिंग का पत्र, पुष्प, फल अथवा जल से पूजन करता है, वह विमान पर बैठकर भगवान् शिव के समीप जाता है। जो भक्ष्य-भोज्य और फलों द्वारा निर्जन स्थान में स्थित शिवलिंग का पूजन करता है, वह पुनरावृत्तिरहित शिवसायुज्य को प्राप्त करता है। जो भगवान् शंकर के समीप अखण्ड दीप की व्यवस्था करता है, उसको एक-एक क्षण में अश्वमेध यज्ञ का फल सुलभ होता है। जो विधिपूर्वक भगवान् शंकर की दक्षिण एवं वाम परिक्रमा[1] करता है, वह मनुष्य उनकी कृपा से स्वर्ग से नीचे नहीं आता (नारदी. म. पु. पू. ख. 13/121-126, 134, 135, 140)। ऊपर बताया जा चुका है कि भगवान् शिव के तृप्त हो जाने पर सभी तृप्त हो जाते हैं। पूर्वभाग के 75 वें अध्याय (श्लोक 31) में बताया गया है कि स्फटिकमय शिवलिंग के समीप, हनुमान्जी के लिये किया हुआ दीपदान नाना प्रकार के भोगों और लक्ष्मी की प्राप्ति का हेतु कहा गया है।

इस पुराण में शिवलिंग के दान के महत्त्व को बताते हुए कहा गया है कि करोड़ों ब्रह्माण्ड के दान का जो फल प्राप्त होता है वह एक शिवलिंग के दान से प्राप्त होता है।

ब्रह्माण्ड कोटिदानेन यत्फलं लभते नरः।।
तत्फलं समवाप्नोति लिङ्गदानान्न संशयः। (ना. म. पु. पू. ख. 13/103-104)

उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि शिवलिंग की पूजा स्वयं करना तथा दूसरों द्वारा उसकी पूजा करने हेतु उसका दान करना सबसे अधिक पुण्यप्रद वस्तु है।

इस पुराण में लिंगार्चन की विधि भी विस्तार से बतायी गयी है। लिंगार्चन करने के लिये पहले अपने शरीर में भस्म धारण करनी चाहिये। दिन की पूजा जल एवं पुष्पादि से करनी चाहिये। सायं काल में पूजा करने से पहले शिर से पैरतक स्नानकर सूखे हुए धुले वस्त्र पहन लेना चाहिये। तदनन्तर भस्मधारण द्वारा आग्नेय स्नान करना चाहिये। प्रणव अथवा पंचाक्षर के 8 बार जप द्वारा भस्म को अभिमंत्रित कर हाथ में कुश लेकर **'ईशानः सर्वविद्यानाम्.'** कहकर शिरपर भस्म गिरावे, **'तत्पुरुषाय विद्महे.'** से मुखपर, **'अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्य.'** कहकर वक्षपर, **'वामदेवाय नमः.'** कहकर गुह्य स्थान पर, **'सद्योजातं प्रपद्यामि.'** कहकर पैरपर तथा प्रणव का उच्चारणकर सभी अंगों पर भस्म गिरावे। भस्म-स्नान के उपरोक्त पाँचों मन्त्र 'उपनिषदों में शिवतत्त्व' वाले अध्याय में आ चुके हैं।

---

[1] दक्षिण एवं वाम परिक्रमा का अर्थ है सोमसूत्र तक जाकर वापस लौटकर पुनः सोमसूत्र के दूसरी ओर को जाना। शिवजी की आधी परिक्रमा का विधान है। इसमें सोमसूत्र को लांघना नहीं चाहिये। सोमसूत्र का अर्थ है वह नाली जिसे शिवलिंग पर गिरे जल आदि को निकलने हेतु बनायी गयी हो।

शूद्रादि अन्य वर्णों को गुरु द्वारा उपदिष्ट तरीके से भस्मन्यास करना चाहिये अथवा भगवान् शिव के नामों यथा शिव, शंकर, स्थाणु आदि द्वारा अपने अंगो पर तथा 'नमः शिवाय' द्वारा सभी अंगों पर भस्म लगाना चाहिये। इसके पश्चात् हाथ धोकर कुश अथवा दूर्वा के माध्यम से आचमनकर संध्योपासन एवं जप करके मंदिर में जाना चाहिये। वहाँ पद्मासन या स्वस्तिकासन पर बैठकर शिव का प्राणायाम - पूर्वक ध्यान एंव मन्त्र जप करे। तदनन्तर शिवपूजा का संकल्प लेकर आवाहन आदि करे। शतरुद्रिय मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक अभिषेक अथवा स्नान कराकर उनका जप करे। इस प्रकार षोडशोपचार से उनकी पूजा करे।

पीठहीनलिंग के दर्शन से पाप लगता है अत: पीठयुक्तलिंग की ही पूजा करें। पूजा के पश्चात् स्तोत्र का पाठ करें, प्रदक्षिणा एंव नमस्कार करें। इसके उपरान्त वाद्यादि साधनों से युक्त हो भजन, नृत्य, पुराण का पाठ, नीराजन (आरती), पुष्पांजलि तथा क्षमा याचना करें। पंचोपचार, षोडशोपचार और बत्तीस उपचारों द्वारा भी शिवपूजा हो सकती है। लिंगपूजा की उपरोक्त विधि का वर्णन हनुमान्जी ने किया है (नार. महापु. पू. ख. 79/236-296)। ऊपर भस्मलेपन संबंधी जिन (पंचब्रह्म संज्ञक) मन्त्रों का संक्षिप्त उल्लेख हुआ है वे सब इसी पुस्तक में अन्यत्र लिखे गये हैं। इसी प्रकार रुद्राभिषेक के लिये जिस शतरुद्रिय का उल्लेख हुआ है वह भी इसी पुस्तक में अन्यत्र प्राप्य है।

इस पुराण में अविमुक्तक्षेत्र काशी की महिमा बड़े विस्तार से बतायी गयी है। इसके कई अध्यायों में इसकी विशेषता को समझाया गया है। पूर्वभाग के 13 वें अध्याय (श्लोक 139) में कहा गया है कि "जो काशी में भगवान् शिव के लिंग का पूजन करके प्रणाम करता है, उसके लिये कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता, उसका फिर संसार में जन्म नहीं होता।" इसी प्रकार पू. ख. छठे अध्याय (श्लोक 51-52) में कहा गया है कि "काशीपुरी का विश्वेश्वरलिंग ज्योतिर्लिंग कहलाता है। मनुष्य उसका दर्शन करके परम ज्योति को प्राप्त होता है। जिसने त्रिभुवन को पवित्र करनेवाली काशीपुरी की परिक्रमा कर ली, उसके द्वारा समुद्र, पर्वत तथा सात द्वीपोंसहित पृथ्वी की परिक्रमा हो गयी।"

काशीविश्वेश्वरं लिंङ्गंज्योतिर्लिगं तदुच्यते।
तं दृष्ट्वा परमं ज्योतिराप्नोति मनुजोत्तमः।।
काशीप्रदक्षिणा येन कृता त्रैलोक्यपावनी।
सप्तद्वीपा साब्धिशैला भूः परिक्रमितामुना।। (ना. म. पु. पू. ख. 6/51-52)

उत्तर भाग (के अध्याय 48-51) में काशी एवं वहाँ के लिंगों की महिमा का वर्णन किया गया है। काशी के बारे में कहा गया है कि - "वाराणसी रम्य ही नहीं, त्रिलोकी का सार हैं। वह सेवन किये जानेपर मनुष्यों को सद्गति प्रदान करती है। अनेक पापाचारी भी यहाँ आकर पापमुक्त होकर देववत्त प्रकाशित होने लगते हैं।"

वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या नृणां सुगतिदा किल सेव्यमाना।

अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि पापक्षये विरजसः सुमनः प्रकाशाः।।

(ना. महापु. उ. ख. 48/13)

उ. ख. के 48 वें अध्याय में आगे कहा गया है कि "यह (क्षेत्र) सब प्राणियों को मोक्ष देनेवाला है। महापातकी मनुष्य भी जब भगवान् शिव की नगरी काशीपुरी में आता है, तब ....बन्धनों से मुक्त हो जाता है। ....इस क्षेत्र को भगवान् शिव ने कभी विमुक्त (परित्याग) नहीं किया है और न भविष्य में करेंगे। इसीलिये इसे अविमुक्त कहते हैं। ....प्रयाग आदि तीर्थ से भी काशी का माहात्म्य अधिक है क्योंकि वहाँ सबको अनायास ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। (संक्षिप्त नारद - विष्णुपुराणांक पृ. 551-552)" कुरुक्षेत्र, पुष्कर और हरिद्वार में भी वह सद्गति सुलभ नहीं है जो काशीवासी को प्राप्त होती है। (उ. ख. 48/36 आदि)

सहस्त्रों जन्मोंतक योग-साधन करके योगी जिस पद को पाता है, वही मोक्षरूप पद काशी में मृत्यु होनेमात्र से मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य सदा भगवान् शिव की भक्ति में तत्पर रहनेवाले और उनके अनन्य भक्त हैं, उन्हीं के चिन्तन में जिनका चित्त रमा है और भगवान् शिव में ही जिनके प्राण बसते हैं वे निःसंदेह जीवनमुक्त हैं। (उ. ख. 48/43, 55-56)

अविमुक्तक्षेत्र में मृत्यु के समय साक्षात् भगवान् शिव कर्मप्रेरित जीवों के कान में मन्त्रोपदेश देते हैं। अतः भगवान् शिव की कृपाशक्ति से अनुगृहीत हो सभी जीव वहाँ परमगति को प्राप्त होते हैं। जो अविमुक्तक्षेत्र में महादेवजी की पूजा-स्तुति करते हैं, वे सब पापों से मुक्त एवं अजर-अमर होकर स्वर्ग में निवास करते हैं। जो मुक्तात्मा पुरुष एकाग्रचित्त हो इन्द्रिय-समुदाय को संयम में रखकर ध्यान लगाये हुए शतरुद्री का जप करते हैं और अविमुक्त-क्षेत्र में सदा निवास करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं। (उत्तर ख. अ. 48/58-59, 64, 78-79, 81-82)

काशी में अनेक शिवलिंग स्थित हैं। उनमें से कुछ लिंगों की चर्चा तथा उनका माहात्म्य इस पुराण में वर्णित है जिनमें से विश्वेश्वर, संगमेश्वर, अविमुक्तेश्वर, व्यासेश्वर, कामेश्वर, कृतिवासेश्वर आदि प्रमुख हैं। काशी में स्वयं ब्रह्माजी ने तथा ब्रह्माजी से लेकर भगवान् विष्णु ने दूसरा शिवलिंग स्थापित किया जो क्रमशः वागीश्वर एवं हिरण्यगर्भ के नाम से जाने जाते हैं। एक दूसरा लिंग भी ब्रह्माजी ने स्वर्गलोकेश्वर नाम से स्थापित किया। इन नाना प्रकार के लिंगों की महिमा का वर्णन हमें इस पुराण में मिलता है। (ना. म. पु. उ. ख. अ. 49-50)

आगे कहा गया है कि अविमुक्तक्षेत्र में जो भी कर्म किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। कोई भी पापी अविमुक्तक्षेत्र में जाकर पापरहित हो जाने के कारण कभी नरक में नहीं पड़ते। परन्तु अविमुक्तक्षेत्र में किया हुआ पाप वज्रतुल्य हो जाता है। इसीलिये काशीसेवन के दौरान कोई पाप नहीं करना चाहिये।

अविमुक्ते कृतं यत्तु तदेवाक्षयतां व्रजेत।

अविमुक्तगतः कश्चिन्नरकं नैति किल्बिषी।।
अविमुक्तकृतं यत्तु पापं वज्रं भवेच्छुभे। (ना. महापु. उ. ख. 51/2-3)

इस पुराण में काशी के अतिरिक्त भगवान् शिव के अनेक क्षेत्रों एवं लिंगों की महिमा का वर्णन पाया जाता है। जिनमें पुण्डरीकपुर, महाकालवन (अवन्ति), रामेश्वर आदि प्रमुख हैं। पुण्डरीकपुर में स्नान करने से व्यक्ति मुक्त हो जाता है (उत्तर भाग अध्याय - 73/149)। महाकालवन में शिवलिंगों की कोई नियत संख्या नहीं है। जहाँ कहीं भी विद्यमान शिवलिंग का पूजन करके मनुष्य भगवान् शंकर का प्रिय होता है। शिप्रा नदी में स्नान करके भगवान् शिव की पूजा करनेवाला सम्पूर्ण कामनाओं को पा लेता है (उत्तर भाग अध्याय - 78/34-35, 37)। सेतु तीर्थ, जहाँ भगवान् रामेश्वर विराजमान हैं, उसका दर्शनमात्र मनुष्यों को अमरत्व प्रदान करता है। जो मनुष्य अपने मन को वश में करके श्रीरामेश्वर का पूजन करता है, वह समस्त ऐश्वर्य का भागी होता है तथा संसारसागर से मुक्त हो जाता है। (उत्तर भाग अध्याय - 76/3-5)

इस पुराण में भगवान् शिवसंबंधी कई अच्छे स्तोत्र दिये गये हैं जिनके पाठ से सभी पापों का नाश हो जाता है, मनोकामनायें पूरी होती हैं तथा अन्त में शिव का सांनिध्य प्राप्त होता है। इन स्तोत्रों में दिव्य माहेश्वरस्तोत्र (ना. महापु. पू. ख. 91/219-229) तथा जैमिनि का वेदपादस्तोत्र (ना. महापु. पू. ख. 73/29-141) उल्लेखनीय हैं। जिज्ञासु पाठक मूल ग्रन्थ में इन संदर्भों को देखें।

इस पुराण में उत्तम भागवत या भगवद्भक्त के लक्षणों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि जो भगवान् शिव से प्रेम रखनेवाले, शिवचिन्तन में ही आसक्त रहनेवाले तथा शिव के चरणों की पूजा में तत्पर एवं त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं, वे श्रेष्ठ भक्त हैं। पुनः जो शिव की प्रसन्नता के लिये अग्निहोत्र में तत्पर, पंचाक्षर मन्त्र के जप में संलग्न तथा शिव के ध्यान में अनुरक्त रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं।

शिवप्रियाः शिवासक्ताः शिवपादार्च्चने रताः।
त्रिपुण्ड्रधारिणो ये च ते वै भागवतोत्तमाः।।
शिवाग्निकार्यनिरताः पञ्चाक्षरजपे रताः।
शिवध्यानरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः।। (नारदी. म. पु. पूर्वख. 5/68, 73)

भगवान् शिव एवं विष्णु

अन्य सभी ग्रन्थों की तरह इस पुराण में भी भगवान् शिव एवं विष्णु को एक दूसरे से अभिन्न माना गया है। दोनों ही तत्त्वतः एक हैं। एक ही तत्त्व सृष्टिप्रक्रिया में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारण करता है। उस एक तत्त्व को ही अनेक नामों सदाशिव, महाविष्णु तथा परात्पर ब्रह्म आदि से जाना जाता है। इस पुराण के पूर्वभाग के अध्याय 6 में कहा गया है कि "शिवलिंग साक्षात् श्रीहररूप है और श्रीहरि साक्षात् शिवलिंगरूप हैं। इन दोनों में थोड़ा भी अन्तर नहीं है। जो इनमें भेद करता है, उसकी

बुद्धि खोटी है। अज्ञान के समुद्र में डूबे हुए पापी मनुष्य ही आदि–अन्तरहित भगवान् विष्णु एवं शिव में भेद–भाव करते हैं। ....भगवान् रुद्र ही विष्णुरूप से सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं। वे ही ब्रह्माजी के रूप से संसार की सृष्टि करते हैं तथा अन्त में हररूप से वे ही तीनों लोकों का संहार करते हैं। जो मनुष्य भगवान् विष्णु, शिव एवं ब्रह्माजी में भेदबुद्धि करता है, वह अत्यन्त भयंकर नरक में जाता है। जो भगवान् शिव, विष्णु एवं ब्रह्माजी को एक रूप से देखता है, वह परमानन्द को प्राप्त होता है। यह शास्त्रों का सिद्धान्त है। जो अनादि, सर्वज्ञ, जगत् के आदिस्रष्टा तथा सर्वत्र व्यापक हैं, वे भगवान् विष्णु ही शिवलिंगरूप से काशी में विद्यमान हैं। ....धातु, मिट्टी, लकड़ी, पत्थर अथवा चित्र आदि से निर्मित जो भगवान् शिव अथवा विष्णु की निर्मल प्रतिमाएँ हैं, उन सबमें भगवान् विष्णु विद्यमान हैं।"

हरिरूपधरं लिङ्गं लिङ्गरूपधरो हरिः।
ईषदप्यन्तरं नास्ति भेदकृच्चानयोः कुधीः।।
अनादिनिधने देवे हरिशंकरसंज्ञिते।
अज्ञानसागरे मग्ना भेदं कुर्वन्ति पापिनः।।
यो देवोजगतामीशः कारणानां च कारणम्।
युगान्ते निगदन्त्येतद्रुद्ररूपधरो हरिः।।
रुद्रो वै विष्णुरूपेण पालयत्यखिलंजगत्।
ब्रह्मरूपेण सृजति प्रान्ते ह्येतत्त्रयं हरः।।
हरिशंकरयोर्मध्ये ब्रह्मणश्चापि यो नरः।
भेदं करोति सोऽभ्येति नरकं भृशदारुणम्।।
हरं हरिं विधातारं यः पश्यत्येकरूपिणम्।
स याति परमानन्दं शास्त्राणामेष निश्चयः।।
योऽसावनादिः सर्वज्ञो जगतामादिकृद्विभुः।
नित्यं संनिहितस्तत्र लिङ्गरूपी जनार्दनः।।
धातुमृद्दारुपाषाणलेख्याद्या मूर्तयोऽमलाः।
शिवस्य वाच्युतस्यापि तासु संनिहितो हरिः। (नारदी. महापु. पू. ख. 6/44–50, 53)

मार्कण्डेयजी को विष्णु भगवान् ने श्रेष्ठ भागवतों या भगवद्भक्तों के कई लक्षण बताये हैं। जिनमें से एक यह है कि "जो भगवान् विष्णु तथा परमात्मा शिव के नाम लेते तथा रुद्राक्ष की माला से विभूषित होते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो बहुत दक्षिणावाले यज्ञों द्वारा महादेवजी अथवा भगवान् विष्णु का उत्तम भक्ति से यजन करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। परमेश्वर शिव तथा परमात्मा विष्णु में जो समबुद्धि से प्रवृत्त होते हैं, वे श्रेष्ठ भक्त माने गये है।"

व्याहरन्ति च नामानि हरेः शम्भोर्महात्मनः।

रुद्राक्षालङ्कृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः।।
ये यजन्ति महादेवं क्रतुभिर्बहुदक्षिणैः।
हरिं वा परया भक्त्या ते वै भागवतोत्तमाः।।
शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि।
समबुद्ध्या प्रवर्त्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः।।

(ना. म. पु. पूर्वखण्ड अध्याय 5/69, 70, 72)

नारद पुराण की 'भागवत' संबंधी उपरोक्त परिभाषा परम्परागत परिभाषा से भिन्न है क्योंकि लोकपरम्परा में वैष्णवों को ही भागवत कहा जाता है। परन्तु नारद पुराण के अनुसार भगवान् के जो भक्त हैं, वे वैष्णव हैं; क्योंकि **'वेवेष्टीति विष्णुः'** इस व्युत्पत्ति से शुद्ध ब्रह्म ही मुख्यतया विष्णुपदार्थ है। अतः विष्णुमन्त्रनिष्ठ जैसे वैष्णव है, वैसे ही शिवमन्त्रादिनिष्ठ भी वैष्णव ही है, क्योंकि विष्णु और शिव में वस्तुतः अभेद है। अतः शैव एवं वैष्णव दोनों ही भागवत हैं।

पूर्वभाग (के 16वें अध्याय श्लोक 71) में भगवान् विष्णु भगीरथ से कह रहे हैं कि "भगवान् शिव मेरे दूसरे स्वरूप हैं। तुम यथाशक्ति स्तुति–पाठ करके उनका स्तवन करो। वे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ तत्काल सिद्ध कर देंगे।" इसी प्रकार पूर्वखण्ड के 81 वें अध्याय में कहा गया है कि श्रीकृष्ण ही ब्रह्मा हैं, वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु और वे ही देवराज इन्द्र हैं। वे ही सब रूपों में हैं तथा सब नाम उन्हीं के हैं। वे ही स्वयं प्रकाशमान अविनाशी परमात्मा हैं।

स ब्रह्मा स शिवो विप्र स हरिः सैव देवराट्।
स सर्वरूपः सर्वाख्यः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।। (नारदी. म. पु. पूर्वख. 81/107)

भगवन्नाम स्मरण से संबंधित दोषों, जिन्हें नामापराध कहा गया है, की चर्चा करते हुए भी यह कहा गया है कि भगवान् शिव एवं भगवान् विष्णु में भेद करना नामापराध है।

गुरोरवज्ञां साधूनां निन्दां भेदं हरे हरौ।
वेद निन्दां हरेर्नामबलात्पापसमीहनम्।।
....। (नारदी. म. पु. पूर्वख. 82/22–24)

अर्थात्– "गुरु की अवहेलना, साधु–महात्माओं की निन्दा, भगवान् शिव एवं विष्णु में भेद करना, वेदनिन्दा, भगवन्नाम के बलपर पापाचार करना, भगवन्नाम की महिमा को अर्थवाद समझना, नाम लेने में पाखण्ड फैलाना, आलसी और नास्तिक को भगवन्नाम का उपदेश देना, भगवन्नाम को भूलना अथवा नाम में आदरबुद्धि न होना ये (दस) बड़े भयानक दोष हैं। वत्स! इन दोषों को दूर से ही त्याग देना चाहिये।"

एक अन्य जगह पर कहा है कि "श्रीशिव ही श्रीहरि हैं और साक्षात् श्रीहरि ही शिव हैं, इनमें परस्पर भेद देखनेवाला खल है और वह करोड़ों नरकों में जाता है। इसलिये श्रीविष्णु की अथवा भगवान्

शंकर की समबुद्धि से पूजा करनी चाहिये। जो भेदबुद्धि रखता है, उसे दोनों लोकों में दुःख उठाना पड़ता है।”

शिव एव हरिः साक्षाद्धरिरेव शिवः स्वयम्।
द्वयोरन्तरदृग्याति नरकान्कोटिशः खलः।।
तस्माद्विष्णुं शिवं वापि समंबुद्ध्वा समर्चय।
भेदकृद्दुःखमाप्नोति इह लोके परत्र च।। (ना. म. पु. पूर्वख.15/158-159)

भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए एक स्थल पर कहा गया है कि विष्णु ही महादेवरूप में तथा शिव ही जनार्दनरूप में अवस्थित हैं।

हरिरूपी महादेवः शिवरूपी जनार्दनः।
इति लोकस्य नेता यस्तं नमामि जगद्गुरुम्।। (ना. महापु. पू. खं. 11/30)

उपरोक्त उद्धरणों के अतिरिक्त अन्य जगहों पर भी शिव-विष्णु एकता का सूत्र इस पुराण में मिलता है जैसे पू. ख. 2/28, पू. ख. 3/56 तथा पू. ख. 13/1 आदि।

यद्यपि भगवान् शिव एवं विष्णु में तात्त्विक अभिन्नता है तथापि सगुणलीला के दौरान व्यावहारिक स्तर पर उनमें एक तरह का सतही भेद होता है। इसी कारण से सामान्य लोग तथा कभी-कभी विद्वान् लोग भी भ्रमित होकर उनमें से एक को प्रमुख तथा दूसरे को गौण मानने लगते हैं। ऐसी स्थिति से बचना चाहिये क्योंकि इससे व्यक्ति को लोक एवं परलोक दोनों में नुकसान उठाना पड़ता है।

व्यावहारिक स्तर पर इन दोनों देवों के पारस्परिक संबंधों को बतानेवाली एक रोचक कथा का वर्णन इस पुराण में किया गया है। यह कथा, पद्मपुराण (पाताल खण्ड अध्याय 114) में भी पायी जाती है। एक बार किसी प्रसंग में महर्षि गौतम के आश्रमपर भगवान् विष्णु, शिवजी, नारदजी एवं हनुमान्जी आदि अनेक देवगण इकट्ठे हुए थे। उस गोष्ठी में हनुमान्जी का गायन प्रारंभ हुआ। उनके गायन से मुग्ध हो अपने तन-मन की सुधि खोकर भगवान् शिव ने धीरे-धीरे अपना एक चरण (पैर) फैलाते हुए हनुमान्जी के अंजली में रख दिया और दूसरे चरण को उनके कन्धे, मुख, कण्ठ, वक्षस्थल, हृदय के मध्य भाग तथा नाभि-मण्डल से स्पर्श कराते हुए आनंद से लेट गये। भगवान् शिव की इस लीला को देखकर उनसे विष्णुजी कहने लगे- “आज हनुमान् के समान सुकृति विश्व में कोई नहीं है। जो चरण देवताओं को भी दुर्लभ हैं तथा वेदों द्वारा अगम्य हैं, जिन्हें योगीजन चिरकालतक विविध प्रकार के साधन करके, करोड़ों वर्ष की तपस्या से भी प्राप्त नहीं कर सकते, उन चरणों को अपने समस्त अंगों पर धारण करने का अनुपम सौभाग्य आज हनुमान् को अनायास ही प्राप्त हो रहा है। मैंने भी हजार करोड़ वर्षतक प्रतिदिन सहस्र कमलों से आपका भक्ति-पूर्वक अर्चन किया था, परन्तु यह सौभाग्य आपने (शिवजी ने) मुझे प्रदान नहीं किया।”

अथ विष्णुर्महेशानमिदं वचनमुक्तवान्।

हनूमता समोनास्ति कृत्स्नब्रह्माण्डमण्डले।।
श्रुतिदेवाद्यगम्यं हि पदं तव कपिस्थितम्।
सर्वोपनिषदव्यक्तं त्वत्पदं कपिसर्वयुक्।।
यमादिसाधनैर्योगैर्न क्षणं ते पदं स्थिरम्।
महायोगिहृदंभोजे परं स्वस्थं हनूमति।।
वर्षकोटिसहस्रं तु सहस्रब्दैरथान्वहम्।
भक्त्या संपूजितोऽपीश पादो नो दर्शितस्त्वया।। (ना. महापु. पू. ख. 79/136-139)

भगवान् विष्णु आगे कहते हैं कि लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि नारायण शंकर के परम प्रीतिभाजन हैं, परन्तु आज हनुमान् को देखकर मुझे इस बातपर सन्देह सा होने लगा है और हनुमान् के प्रति ईर्ष्या-सी हो रही है।

लोके वादो हि सुमहाञ्छंभुर्नारायणप्रियः।
हरिप्रियस्तथा शंभुर्न तादृग्भाग्यमस्मि मे।। (ना. महापु. पू. ख. 79/140)

भगवान् विष्णु के इन वचनों को सुनकर शंकरजी मुस्कराते हुए बोले-यह आप क्या कह रहे हैं? आपसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय हो सकता है? औरों की तो बात ही क्या, पार्वती भी मुझे आपके समान प्रिय नहीं हैं।

तत् श्रुत्वा वचनं शंभुर्विष्णोः प्राह मुदान्वितः।
नत्वया सदृशो मह्यं प्रियोऽन्योऽस्ति हरे क्वचित्।।
पार्वती वा त्वया तुल्या वर्तते नैव भिद्यते। (ना. महापु. पू. ख. 79/141-142)

कथा में आगे बताया गया है कि आश्रम में जब सायंकाल हो चला तो सभी देवता आदि (जिनमें भगवान् शिव भी सम्मिलित थे) लोगों ने संध्या-वन्दन तथा जपादि कर्म सम्पन्न किया। भगवान् शिव को ये सब कर्म करते हुए देखकर विष्णुजी उनसे पूछते हैं कि - सभी लोग आपकी अर्चना-वंदना करते हैं, आपको नमस्कार करते हैं तथा यज्ञों में आपका यजन करते हैं। सभी लोग हाथ जोड़कर एकमात्र आपकी उपासना करते हैं। ऐसी स्थिति में आप किसका जप करते हैं तथा आप किसे हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं। जब सभी के द्वारा किए गये नमस्कारों का फल देनेवाले आप ही हैं तो आप से बढ़कर कौन पूज्य एवं नमस्कारों का फल देनेवाला है? विष्णुजी की ये बातें सुनकर शंकरजी ने कहा कि-हे गोविन्द मेरे लिये न कोई ध्यान का और न ही नमस्कार का विषय है। किन्तु इस कार्य (संध्यादि) में नास्तिकों[1] को प्रवृत्त करने के लिये तथा पापकर्मियों को अनुकरण करने के लिये

---

[1] भारतीय दर्शन में नास्तिक का अर्थ है जो वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार न करे। अतः नास्तिक भी आत्मा, पुनर्जन्म तथा परलोक आदि में विश्वास रख सकता है। यहाँ पर इसी प्रकार के नास्तिक को प्रेरित करने का अभिप्राय है।

अर्थात् लोकोपकार के लिये ही मैंने यह सब कार्य किया है।

कृत संध्यास्तडागे तु महेशाद्याश्च कृत्स्नशः।
अथोत्तरमुरवः शंभुर्न्यास कृत्वा जजाप ह।।
अथ विष्णुर्महातेजा महेशमिदमब्रवीत्।
सर्वैर्नमस्यते यस्तु सर्वैरेव समर्च्यते।।
हूयते सर्वयज्ञेषु स भवान् किं जपिष्यति।
रचितांजलयः सर्वे त्वामेवैकमुपासिते।।
स भवान् देवदेवेशः कस्मै विरचितांजलिः।
नमस्कारादिपुण्यानां फलदस्त्वं महेश्वर।।
तव कः फलदो वंद्यः को वा त्वत्तोऽधिको वद।
तत् श्रुत्वा शंकरः प्राह देवदेवं जनार्दनम्।।
ध्याये न किंचिद्गोविंद नमस्ये ह न किंचन्।
किंतु नास्तिकजंतूनां प्रवृत्त्यर्थमिदं मया।।
दर्शनीयं हरे चैतदन्यथा पापकारिणः।
तस्माल्लोकोपकारार्थमिदं सर्वं कृतं मया।। (ना. महापु. पू. ख. 79/195-201)

सभीलोग जब संध्या-वंदन के उपरान्त एकत्रित हुए तो पुनः गायन एवं आमोद-प्रमोद का कार्यक्रम चला। उसी दौरान पार्वती देवी ने भगवान् शिव की मुण्डमाला, नागों के आभूषण, दिगम्बरपन, भस्मलेपन तथा वृषभारोहण आदि का परिहास किया। तब भगवान् विष्णु से नहीं रहा गया। वे शंकरजी की अवज्ञा को नहीं सह सके और बोल उठे- "देवि! आप जगत्पति शंकर के प्रति यह क्या कह रही हैं? मुझसे आपके ये शब्द सहे नहीं जाते। जहाँ शिव-निन्दा होती हो वहाँ हम प्राणधारण नहीं कर सकते, यह हमारा व्रत है।" यह कहकर वे उन सबके सामने ही नख के द्वारा अपना शिरश्छेदन करने को उद्यत हो गये। शंकरजी ने उनके हाथ को पकड़कर बड़ी कठिनता से उन्हें इस कार्य से रोका।

किमर्थं निंदसे देवि देवदेवं जगत्पतिम्।
...।।
यत्रेशनिंदनं भद्रे तत्र नो मरणंव्रतम्।
इत्युक्त्वाथ नरवाभ्यां हि हरिश्छेत्तुं शिरो गतः।।
महेशस्तत्करं गृहय प्राह मा साहसं कृथाः। (ना. महापु. पू. ख. 79/223-225)

उपरोक्त कथांश से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् विष्णु एवं शिव में परस्पर अनन्य प्रेम है। दूसरी बात यह कि भगवान् विष्णु ने हजार करोड़ वर्षतक नित्य एक हजार कमलों से शिव-पूजा की थी, परिणामस्वरूप उन्हें सुदर्शनचक्र की प्राप्ति हुई थी। चक्रप्राप्ति की कथा अन्य पुराणों जैसे

शिव(को. रु. सं. अ. 34), ब्रह्म(अ. 109), वामन(अ. 56), सूर्य(अ. 41) तथा लिंग(पू. अ. 98) आदि में विस्तार से मिलती है। तीसरी बात यह है कि भगवान् शिव(अथवा कोई भी महान् पुरुष) प्रयोजन न रहनेपर भी शुभ कर्मों का संपादन लोगों के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करने अथवा प्रेरणा प्रदान करने के लिये करते रहते हैं। अन्तिम बात यह है कि शिवजी की निन्दा किसी भी संदर्भ में नहीं सुननी चाहिये। भगवान् विष्णु के उपरोक्त आचरण का उद्देश्य ऐसी ही शिक्षा देना है।

उपसंहार

भगवान् शिव के पर एवं अपर, निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की चर्चा इस पुराण में की गयी है। परब्रह्मरूप में वे निर्गुण, निराकार, मन - बुद्धि से परे, अचिन्त्य, अक्षर, देश - कालातीत हैं। अपरब्रह्मरूप से वे सम्पूर्ण जगत् के कर्त्ता, धर्त्ता एवं हर्त्ता हैं, वे देवताओं के अधिपति, जगत्स्वरूप, भुक्ति - मुक्ति देनेवाले, दयालु, कल्याणमय तथा अन्य विशेषताओं से युक्त हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप हैं। वे सगुण - साकाररूप से भक्तों को दर्शन दे उनकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं।

इस पुराण के पूर्वखण्ड के तीसरे पाद में शैव - दर्शनानुसार पशुपति, पशु एवं पाश का विस्तृत वर्णन किया गया है। जबतक जीव को अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान, जो अज्ञान के कारण ढका होता है, नहीं होता तबतक वह पशु कहलाता है। पशुओं के जो बन्धन हैं(जिनके कारण स्वरूप का ज्ञान नहीं होता), उन्हें पाँच प्रकार - मलज, कर्मज, मायेय, तिरोधान शक्तिज और विन्दुज - के नाने गये हैं। इन सभी बन्धनों का विस्तार से ऊपर वर्णन किया जा चुका है। एकमात्र शिव - स्वरूप परमात्मा को पशुपति कहा गया है। भगवान् शिव जड़ - चेतन पर अनुग्रह करने के लिये विविधरूप धारण करते हैं। सबपर दया करनेवाले शिव सम्पूर्ण जीवों को मोक्ष - भोग प्रदान करते हैं। पाशों में आबद्ध जीव को गुरु से दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। गुरु - भक्ति तथा सदाचार के पालन से दीक्षित व्यक्ति पाशमुक्त हो जाता है।

भगवान् शिव भोग - मोक्ष प्रदानकरनेवाले हैं, उनके नाम का स्मरण करनेमात्र से व्यक्ति भवसागर से पार हो जाता है। भगवान् शिव की लिंगरूप में पूजा की महत्ता को अनेक स्थलों पर बताया गया है। पार्थिवलिंगपूजा हो चाहे स्थापितलिंग की पूजा - हो दोनों के महान् फल हैं। शिवपूजा में भस्म, त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्ष, पंचाक्षर मंत्र तथा रुद्राष्टाध्ययी का प्रयोग उत्तमकोटि की पूजा कहलाती है। विभिन्न तिथियों तथा अवसरों पर भिन्न - भिन्न प्रकार के द्रव्यों से शिवपूजा के फलों का भी वर्णन इस पुराण में पाया जाता है।

इसी प्रकार काशी, पुण्डरीकपुर, अवन्ति तथा रामेश्वर आदि स्थलों पर स्थापित अनेक लिंगों की पूजा का महान् फल बताया गया है। काशी की महिमा में बताया गया है कि वहाँ मरनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के कान में भगवान् शिव मन्त्रोपदेश देते हैं जिनसे वह मुक्त हो जाता है। काशी में जिस प्रकार शुभ कर्म किया हुआ अनन्तफल देनेवाला होता है उसी प्रकार किया हुआ पाप भी वज्रलेप हो जाता

है। अत: काशीसेवन के समय पापों से बचना चाहिये।

उत्तम भक्तों अथवा भागवत के लक्षणों को बताते हुए कहा गया है कि जो भगवान् शिव से प्रेम रखनेवाले, शिवचिन्तन में ही आसक्त रहनेवाले तथा शिव के चरणों की पूजा में तत्पर एवं त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं वे श्रेष्ठ भक्त हैं। पुन: जो शिव की प्रसन्नता के लिये अग्निहोत्र में तत्पर, पंचाक्षर मन्त्र के जप एवं शिव के ध्यान में अनुरक्त रहते हैं वे उत्तम भागवत हैं।

भागवत की उपरोक्त परिभाषा परम्परा से हटकर है क्योंकि सामान्यत: यह माना जाता है कि जो वैष्णव तथा विष्णुपूजक हैं, वही भागवत हैं। इस गैरपरम्परागत परिभाषा का कारण यह है कि इस पुराण में भगवान् शिव एवं विष्णु में तादात्म्य माना गया है। अर्थात् जो भगवान् शिव हैं वही भगवान् विष्णु हैं एवं जो भगवान् विष्णु हैं वही भगवान् शिव हैं। दोनों में तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। निर्गुणरूप से दोनों एक ही हैं परन्तु दोनों की सगुण-साकार लीलाओं में भेद प्रतीत होता है। यह भेद माया की वजह से होता है। जो बुद्धिमान् व्यक्ति है वह इस भेद के पीछे अभेद का दर्शन करते हुए दोनों के प्रति श्रद्धा दिखाता हुआ अपने इष्ट की अनन्यभाव से भक्ति करता है। भगवान् के नाम-जप (चाहे वे भगवान् के किसी रूप का हो) से संबंधित नामापराधों की चर्चा भी की गयी है। ये नामापराध-दस हैं जिनमें से भगवान् शिव एवं विष्णु में भेदबुद्धि रखना भी एक अपराध है। इन अपराधों से बचकर किया हुआ नामजप ही हितकारी होता है।

इस पुराण में भगवान् शिव एवं विष्णु की तात्त्विक अभिन्नता के प्रतिपादन के साथ-साथ इन दोनों में परस्पर अनन्य प्रेम है-इसका भी प्रतिपादन किया गया है। भगवान् शिव की निंदा किसी भी स्थिति में नहीं सुननी चाहिये तथा महान् पुरुषों को भी लोकआदर्श की स्थापना हेतु आवश्यकता न रहने पर भी सद्कर्म करते रहना चाहिये। इस तरह की शिक्षा भी इस पुराण में दी गयी हैं

(प्रस्तुत लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणांक' तथा नाग पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा 1984 में प्रकाशित 'श्रीनारदीयमहापुराणम्' पर आधारित है।)

* * *

जिस प्रकार मक्खी को चन्दन की सुगन्ध प्रिय नहीं लगती, उसी प्रकार पापियों को पुण्यकर्म भी कभी अच्छे नहीं लगते।

पापेभ्य पुण्य कर्माणि न रोचन्ते कदापि च।।
न रोचते मक्षिकाभ्यः सुगन्धि चन्दनं यथा।

(पद्म महापु. क्रियाखण्ड 17/215-216)

अग्नि[1], मार्कण्डेय एवं भविष्य पुराणों में भगवान् शिव

अग्नि पुराण में अग्निदेव ने महर्षि वसिष्ठ से ईशान-कल्प की कथा का वर्णन किया है। नारद पुराण (पूर्वखण्ड, अध्याय 99) के अनुसार इस पुराण में पन्द्रह हजार श्लोक हैं। वेंकटेश्वर प्रेस से छपे अग्नि पुराण में 383 अध्याय हैं जबकि अन्य प्रतियों में 382 हैं। क्योंकि वेंकटेश्वर प्रेसवाली प्रति में 135 वाँ अध्याय (संग्रामविजयविद्या) अन्य प्रतियों से अतिरिक्त है। इस पुराण में नाना प्रकार की विद्याओं का उल्लेख है। परम्परा से इस पुराण को अग्नि-देव की महत्ता प्रतिपादन करनेवाला माना जाता है। पर यथार्थ में ऐसा नहीं है। अग्नि आदि देवों की तुलना में भगवान् विष्णु का इसमें ज्यादा गुणगान किया गया है। ऐसा होनेपर भी इसमें जहाँ कहीं प्रसंग आया है वहाँ भगवान् शिव को सर्वोच्च स्थान दिया गया है।

मार्कण्डेय पुराण में महामुनि मार्कण्डेय तथा ब्राह्मणकुमार क्रौष्टुकि और जैमिनि के साथ संवाद है, इसलिये इस पुराण को मार्कण्डेय पुराण कहते हैं। नारद पुराण (पू. ख. 98/2) के अनुसार इसमें नौ हजार श्लोक हैं। इस पुराण में मुख्यत: भगवान् शिव के अर्द्धांग शिवा की महिमा का विशेष वर्णन है। यद्यपि इस पुराण में भगवान् शिव से संबंधित किसी मुख्य प्रसंग का उल्लेख नहीं है तथापि देवी की महिमा भगवान् शिव की महिमा से पृथक नहीं है। शिव एवं शिवा दोनों अभिन्न हैं। शिव की समस्त क्रियाओं का आधार शिवा ही हैं। इस पुराण में ब्रह्मा एवं विष्णु से संबंधित प्रसंगों का भी अभाव है फलस्वरूप इस पुराण में उनकी गरिमा के बारे में भी कोई चर्चा नहीं है। अत: इस पुराण में भगवान् शिव की महिमा का परोक्षरूप से ही (देवी की महिमा के माध्यम से) वर्णन किया गया है।

भविष्य पुराण के वर्तमान में पाँच प्रकार के पाठ मिलते हैं। नारद पुराणानुसार (पू. ख. 100/5) इसमें अघोरकल्प का वृत्तान्त है। इसमें 14000 श्लोक हैं जो पाँच पर्वों में बँटे हैं। तीसरे पर्व में भगवान् शिव की महिमा का वर्णन है। इस पुराण में तीनों देवों की समता एवं एकता का भी प्रतिपादन किया गया है। परन्तु नारद पुराणोक्त तीसरे पर्व की बातें वर्तमान में लेखक को उपलब्ध भविष्य पुराण[2] की प्रतियों में नहीं मिलती। भविष्य पुराण में भी भगवान् शिव से संबंधित प्रसंग लगभग नगण्य हैं। यही कारण है कि उसमें भगवान् शिव के गौरव की गाथा विस्तार से नहीं पायी जाती। मात्र कहीं-कहीं संकेत भर प्राप्त होता है।

भगवान् शिव का स्वरूप

अग्नि पुराण में भगवान् शिव को एक स्थल पर ज्ञानस्वरूप, परमब्रह्म एवं परम बुद्धिमान् कहा

---

[1] यहाँ जिस 'अग्नि पुराण' की प्रति का प्रयोग किया गया है वह गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के अन्तर्गत 1957 में 5, क्लाइव रोड कलकत्ता से प्रकाशित है।

[2] गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'संक्षिप्त भविष्यपुराण' तथा नाग पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा 1984 में तीन खण्डों में प्रकाशित 'श्रीभविष्यमहापुराणम्'।

गया है। ब्रह्मादि देवता उनकी शक्ति से पैदा हुए हैं तथा वे उन्हीं की अभिव्यक्तियाँ हैं (अग्नि पु. 304/2-3)। उनको परम कारण माना गया है (अ. पु. 88/6)। उन्हें दाता, भोक्ता एवं विश्वरूप भी माना गया है। जीव को भी तत्त्वतः शिव से अभिन्न माना गया है (अ. पु. 74/81-82)। किसी प्रसंग में वसिष्ठजी भगवान् शिव को ब्रह्म, आकाश, अग्नि, जीव, अव्यक्त, अहं, इन्द्रिय, सर्वात्मरूप, शास्त्र-पुराणरूप, बुद्धिरूप, रज एवं सत् से परे, त्रिगुणरूप, वेदों से परे आदि कहते हुए उनकी लिंगरूप में पूजा करते हैं (अ. पु. 217/2-10)।

पशुपति के 'अस्त्र-मन्त्र' का वर्णन करते हुए भगवान् शिव को पन्द्रह नेत्रोंवाले, नाना रूपधारी, श्मशान-प्रिय, सभी प्रकार की पूर्णता प्रदान करनेवाले, भक्त-वत्सल, अनन्त शिर, बाहु और पैरवाले, पूर्ण, रोगहारी, पापहारी, सूर्य, चन्द्र और अग्नि को नेत्र रूप में धारण करनेवाले, भगवान् विष्णु के कवच, त्रिशूल, पाश, धनुष आदि अस्त्रों को धारण करनेवाले माना गया है (अ. पु. 322/1)। उन्हें श्वेतवर्णवाला, चन्द्रशेखर एवं सर्वव्यापी कहा गया है (अ. पु. 74/50-51)।

अघोर के 'अस्त्र-मन्त्र' के वर्णनवाले अध्याय में भगवान् शिव को सभी मन्त्रों एवं जीवों का अधिपति माना गया है। उन्हें ब्रह्मा तथा सभी विद्याओं का भी अधिपति बताया गया है। उन्हें दयास्वरूप, ब्रह्म, पापनाशक, वर देनेवाला, परमेश्वर, सभी भूतों का स्वामी, शाश्वत एवं सर्वज्ञ आदि कहा गया है (अ. पु. 323/18-21)।

मन्त्रा ईशानमुरव्याश्च धर्मकामादिदायकाः।
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्।
ब्रह्मणश्चाधिपतिर्ब्रह्म शिवो मेऽस्तु सदाशिवः।।[1] (अग्नि पु. 323/18)

'रुद्र-शान्ति' के मन्त्रों में शिवजी को परम रहस्यमय, अमर, मृत्यु के स्वामी, प्रकाश-स्वरूप, आकाश की तरह व्यापक, मृत्युञ्जय, परम दयालु, योगेश्वर, सुखकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र से परे तथा सब कुछ प्रदान करनेवाला कहा गया है (अ. पु. 324/9-13)।

उपरोक्त संदर्भों में भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की चर्चा है। निर्गुणरूप में वे परब्रह्म, परमेश्वर, ज्ञानस्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु एव रुद्र से परे हैं जबकि सगुण रूप में वे पंचमुखी, पन्द्रह नेत्रों तथा दस भुजावाले, भक्तवत्सल, अनन्त शिर, बाहु एवं पैरवाले, विश्वरूप, विषपान करनेवाले (अ. पु. 3/8-9), ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, जगत् आदि सभी के परमकारण, पशुपति, भोग-मोक्षकारी, रोग-शोकहारी, त्रिशूल, पाश, धनुष आदि अस्त्रों को धारण करनेवाले, सर्वव्यापी, चन्द्रचूड़, सर्वज्ञ तथा मृत्युञ्जय आदि हैं।

भविष्य पुराण में एक स्थल पर प्रसंग आता है कि कणाद के शिष्यों से पराजित हो पाणिनि

---

[1] इस श्लोक की अन्तिम दो पंक्तियाँ ईशानमन्त्र अथवा महानारायण उपनिषद् के श्लोक (17/5) के ही संक्षिप्त संस्करण हैं।

ने केदारक्षेत्र में भगवान् शिव से वर पाने के लिये कठोर तपस्या की। तपस्या के फलस्वरूप शिव के प्रकट होनेपर वे भगवान् शिव की स्तुति में कहते हैं–

नमो रुद्राय महते सर्वेशाय हितैषिणे।
नन्दीसंस्थाय देवाय विद्याभयकराय च।।
पापान्तकाय भर्गाय नमोऽनन्ताय वेधसे।
नमो मायाहरेशाय नमस्ते लोकशंकर।। (भ. पु. प्रतिसर्गपर्व 2/31/7–8)

यहाँ भगवान् शिव को सबका ईश अर्थात् सबके स्वामी, कल्याणकारी, विद्या एवं अभय प्रदान करनेवाले, पाप का नाश करनेवाले, प्रकाश–स्वरूप, माया का हरण करनेवाले एवं लोकों का स्वामी कहा गया है।

महाभारत के अठारहवें दिन के युद्ध में पाण्डवों के विजय के उपरान्त काल की भावी गति को जानकर पाण्डवों के शिबिर की रक्षा के लिये श्रीकृष्ण ने भगवान् शिव से प्रार्थना की थी। वे अपनी प्रार्थना में शिव को सभी प्राणियों के स्वामी, संसार का पालन तथा संहार–कर्त्ता एवं पापों को हरनेवाला कहा है।

नमः शांतायरुद्राय भूतेशाय कपर्दिने।
कालकर्त्रे जगद्भर्त्रे पापहर्त्रे नमोनमः।। (भ. पु. प्रतिसर्ग प. 2/36/7)

उमा–महेश्वर व्रत के प्रसंग में कहा गया है कि–

उमामहेश्वरौ देवौ सर्वलोकपितामहौ।
व्रतेनानेन सुप्रीतौ भवेतां मम सर्वदा।। (भविष्य पु. उत्तरपर्व 23/21)

यहाँ पर उमा–महेश्वर को सभी लोकों का पितामह कहा गया है। पितामह का तात्पर्य है जो ब्रह्मादि का भी जनक हो। क्योंकि ब्रह्माजी सभी लोकों के स्रष्टा या पिता कहे जाते हैं। भावार्थ है कि भगवान् शिव से ही ब्रह्मादि की सृष्टि हुई है।

भविष्य पुराण में भी एक स्थल पर ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता के प्रश्न पर होनेवाले विवाद का अति संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है। वहाँ कहा गया है कि उन दोनों के समक्ष अनंत योजन विस्तार का ज्योतिर्लिंग प्रकट हुआ जिसके आदि एवं अन्त का पता उन दोनों से नहीं चला। तब वे दोनों अत्यन्त लज्जित हो भगवान् शिव की स्तुति करने लगे जिसके परिणाम–स्वरूप शिव के दर्शन हुए। इस प्रसंग में भगवान् शिव की श्रेष्ठता को दर्शाने का प्रयास किया गया है।(भ. पु. प्र. प. 4/14/18–21)

एक अन्य स्थल पर भगवान् शिव को सभी देवों तथा ब्रह्माण्ड का ईश्वर या स्वामी बताया गया है।

ब्रह्माण्डे ये स्थिता देवास्तेषां स्वामी महेश्वरः।

ब्रह्माणेशः शिव साक्षाद्रुद्रः कालाग्निसन्निभः। (भ. पु. प्र. प. 4/14/63, 53)

माहेश्वरव्रत के वर्णन में भगवान् शिव को सर्वात्मा, अनन्तधर्मों को धारण करनेवाले, ज्ञानरूप, सद्योजात, पिनाक धारण करनेवाले, महादेव, पशुपति, परमानंद, अर्द्धचन्द्र को धारण करनेवाले, त्र्यम्बक तथा महेश्वर आदि कहा गया है।(भ. पु. उ. प. 97/5-17)

त्र्यंबकाय नमस्तुभ्यं महेश्वरमतः परम्।
नमः पशुपते नाथ नमस्ते शंभवे नमः।।
नमस्ते परमानंद नमः सोमार्द्धधारिणे। (भ. पु. उ. प. 97/15-17)

शैवमत में शिव एवं शिवा या ब्रह्म एवं माया एक दूसरे से अभिन्न माने जाते हैं। निर्गुण शिव अपनी शक्ति(शिवा या माया) का आश्रय लेकर ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारण कर सृष्टि-प्रक्रिया का संचालन करते हैं। इसीलिये मार्कण्डेय पुराण में देवी की स्तुति में ब्रह्माजी एक स्थलपर कहते हैं कि "मुझको, भगवान् शंकर को तथा भगवान् विष्णु को भी तुमने ही शरीर धारण कराया है।"

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।[1]

(मार्क. पु. देवीमाहात्म्य, प्रथम अध्याय/84, संक्षिप्त मार्कण्डेय एवं ब्रह्मपुराणांक, गीताप्रेस गोरखपुर)

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर देवता लोग देवी की स्तुति में कहते हैं कि आप ही सबकी आश्रय हैं। यह समस्त जगत् आपका अंशभूत है, क्योंकि आप सबकी आदिभूत अव्यक्ता परा प्रकृति हैं।

सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या।।[2]

(मार्क. पु. देवीमाहात्म्य, चतुर्थ अध्याय/7, संक्षिप्त मार्कण्डेय एवं ब्रह्मपुराणांक, गीताप्रेस गोरखपुर)

इस पुराण में देवी के माहात्म्य को लेकर अनेकों उद्धरण एवं प्रसंग हैं जिसका उल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं है। देवीमाहात्म्य को प्रकारान्तर से भगवान् शिव का ही माहात्म्य समझा जाना चाहिये क्योंकि दोनों में अभेदत्व है।

शिवोपासना

भगवान् शिव की लिंग में सर्वत्र पूजा की जानी चाहिये क्योंकि बिना लिंगपूजा के कोई भी शिव-पूजा पूर्ण नहीं होती(अ. पु. 54/7)। लिंगपूजा के सन्दर्भ में कहा गया है कि भगवान् शिव लोगों पर अनुग्रह करने के लिये लिंग में निवास करते हैं। वे सद्‌गुणों, कामनाओं, भोगों एवं मोक्ष को देनेवाले हैं। उनकी पूजा पंचाक्षर मन्त्र से करनी चाहिये। जो लिंगार्चन नहीं करता है वह सद्‌गुण आदि से रहित है। लिंगार्चन से ही भोग एवं मोक्ष प्राप्त हो सकता है। अतः व्यक्ति को जीवनपर्यन्त लिंगार्चन

---

[1] 78/65; मार्कण्डेयमहापुराणम्, अनुवादक एवं संपादक डॉ धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, साहित्य भण्डार, शिक्षा साहित्य प्रकाशक, सुभाष बाजार मेरठ, 1983 ।

[2] 81/7, मार्कण्डेयमहापुराणम् ।

करना चाहिये। बिना उसकी पूजा के भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिये। जीवन भले ही समाप्त हो जाय परन्तु शिवपूजा न छूटे (अ. पु. 327/10-12)।

लिंगार्चनाद् भुक्तिमुक्तिर्यावज्जीवमतो यजेत्।
वरं प्राणपरित्यागो भुंजीतापूज्यनैव तम्।। (अग्नि पु. 327/12)

आगे कहा गया है कि रुद्रदेव की उपासना से व्यक्ति स्वयं रुद्रस्वरूप को प्राप्त कर लेता है (अ. पु. 327/13)। जो व्यक्ति तीनों काल (संध्या) में पार्थिवलिंग की बिल्वपत्रों से पूजा करता है वह अपने एक सौ ग्यारह पीढ़ियों को तार देता है और वह स्वर्ग प्राप्त करता है (अ. पु. 327/15)।

त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेल्लिंगं कृत्वा बिल्वेन पार्थिवम्।
शतैकादशिकं यावत् कुलमुद्धृत्य नाकभाक्।। (अग्नि पु. 327/15)

लिंग-स्थापन तथा मंदिर-निर्माण को काफी पुण्यप्रद बताया गया है। यज्ञ, दान, तप, स्वध्याय तथा तीर्थ-सेवन आदि से करोड़ों गुना फल व्यक्ति को लिंग की स्थापना से प्राप्त होता है (अ. पु. 327/14)।

सर्वयज्ञतपोदाने तीर्थे वेदेषु यत्फलम्।
तत्फलं कोटिगुणितं स्थाप्य लिंगं लभेन्नरः।। (अग्नि पु. 327/14)

अपनी क्षमता के अनुरूप छोटा या बड़ा मन्दिर बनवाना चाहिये। छोटे या बड़े दोनों प्रकार के मंदिर-निर्माण का फल एक जैसा ही होता है। मंदिर-निर्माण करनेवाला अपनी 21 पीढ़ियों का उद्धार कर देता है और ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। ईट, पत्थर, लकड़ी या मिट्टी से मंदिर-निर्माण का फल कई गुना होता है। मंदिर-निर्माण का इतना अधिक फल है कि आठ ईटों से मंदिर बनानेवाला भी स्वर्ग को प्राप्त करता है। यहाँतक कि खेल-खेल में रेत या मिट्टी से मंदिर बनानेवाला भी स्वर्ग को प्राप्त करता है (अ. पु. 327/16, 18, 19)।

अग्नि पुराण में भी पंचाक्षर मंत्र (**नमः शिवाय**) की अधिक महिमा बतायी गयी है। इसके जप से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। वेदों ने भी इस पंचाक्षर मंत्र की महिमा का गान किया है। षडाक्षर मंत्र सभी लोगों के लिये उपयोगी है। पंचाक्षर मंत्र के आगे ॐकार जोड़ देने से षडाक्षर मंत्र बन जाता है। यह मंत्र साक्षात् शिवस्वरूप है। **'नमः शिवाय'** ईशानादि (भगवान् शिव के पाँचो मुखों) का क्रम से वाचक है। अर्थात् इस मंत्र के पाँचो अक्षर भगवान् शिव के पाँचों मुखों को व्यक्त करते हैं। षडाक्षर मंत्र को जपनेवाले सभी मंत्रों के जप के फल को प्राप्त कर लेते हैं। **'ॐ नमः शिवाय'** सभी मंत्रों में श्रेष्ठ है। अतः इस मंत्र से भगवान् शिव की उपासना करनी चाहिये। (अ. पु. 327/7-10)

रुद्राक्षमाला से इस मन्त्र का जप मोक्षदायक होता है। मन्त्र का जप अँगूठे एवं अनामिका के सहारे करना चाहिये। जप करते समय सुमेरु का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। सुमेरुपर पहुँचने पर माला को उल्टी कर जप करना चाहिये। जप करते समय माला हाथ से छूट कर गिरनी नहीं चाहिये। गलती

से गिर जानेपर मन्त्र का दो सौ बार जप(प्रायश्चित्तस्वरूप) करना चाहिये(अ. पु. 327/3-5)।

शिवपूजा में घंटे बजाने के महत्त्व को समझाते हुए कहा गया है कि घंटे की ध्वनि में सभी प्रकार के वाद्ययन्त्रों की ध्वनि निहित होती है। इसलिये इसके बजाने से धन-सम्पत्ति की अर्थात् भोगों की प्राप्ति होती है। लिंग एवं वह स्थान जहाँ लिंग स्थापित है, उसकी सफाई बाल्मीकि की मिट्टी, गाय के गोबर एवं मूत्र तथा राख से करनी चाहिये(अ. पु. 327/6-7)। आँवले के आकारवाले रुद्राक्ष को धारण करना सर्वोत्तम होता है। इसलिये इसे धारण करना चाहिये(अ. पु. 327/3)।

अग्नि पुराण में लिंग-मूर्तियों के निर्माण और प्रतिष्ठापन के लिये विस्तृत निर्देश एवं आदेश दिये गये हैं(अ. पु. अ. 53), और उसमें अनेक प्रकार की लिंग-मूर्तियों का भी उल्लेख किया गया है। कुछ लिंग-मूर्तियाँ छोटी-छोटी होती हैं जिनकी उपासना प्रायः घरों में होती है, और उन्हें आसानी से इधर-उधर ले जाया जा सकता है। मंदिरों में वृहदाकार अचल मूर्तियों का प्रतिष्ठापन किया जाता है। ये दोनों ही प्रकार की मूर्तियाँ किंचित् शंक्वाकार और खूब गोलाइ लिये होनी चाहिये। वे पकी मिट्टी, कच्ची मिट्टी, लकड़ी, पत्थर, स्फटिक, लोहे, ताँबे, पीतल, चाँदी, सोने अथवा रत्नों की बनायी जा सकती हैं(अ. पु. अध्याय 54)।

इन विभिन्न प्रकार के लिंगों की विशेषताओं(अथवा फलों) को भी बताया गया है। लिंग-मूर्तियों के निर्माण के संबंध में निर्देश देते समय 'मुखलिंगों' की भी चर्चा की गयी है। इन मूर्तियों में लिंगपर शिव की पूरी या आंशिक आकृति खुदी हो सकती है। ये आकृतियाँ एकमुखी, चारमुखी या तीनमुखी हो सकती हैं(अ. पु. 54/41-48)।

अग्नि पुराण में शिवार्चनविधि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसी प्रकार मन्दिर-निर्माण, लिंग-प्रतिष्ठा या पुनः प्रतिष्ठा आदि संबंधी विस्तृत विवरण इस पुराण में हम पाते हैं। शिवसंबंधी विविध मन्त्रों का भी इसमें उल्लेख है। रुद्रशान्ति एवं पशुपति-शान्ति संबंधी मन्त्र भी दिये गये हैं। रुद्रशान्ति के द्वारा ग्रहदोष, बिमारी तथा जादू-टोना दूर होता है तथा अन्य मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है(अ. पु./अध्याय 324 देखें)।

लिंग-स्थापना के बारे में कहा गया है कि यह माघ से प्रारंभ करके पाँच महीनेतक किया जा सकता है पर चैत्र मास और बृहस्पति एवं शुक्र के उदय के प्रथम तीन करणों को छोड़ करके। यह स्थापना मुख्यतः शुक्लपक्ष में करनी चाहिये या कृष्णपक्ष में पंचमी, चतुर्थी, नवमी, अष्टमी और चतुर्दशी तिथि को छोड़कर। बाकी सभी दिन पवित्र हैं केवल उन दिनों को छोड़कर जो क्रूर ग्रहों के दिन हैं। शतभिषा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अनुराधा, उत्तरा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी और श्रावण नक्षत्र शुभ हैं। जिस दिन स्थापना करनी हो उस दिन कुंभ, सिंह, वृश्चिक, तुला, कन्या, वृष और धनु लग्न हो(अ पु. 92/2-15)। इस पुराण में मुहूर्त तथा मण्डप आदि के निर्माण से लेकर प्राण-प्रतिष्ठातक की विधि भी दी हुई है(अ. पु. अध्याय 95-97 देखें)।

इस पुराण में शैवतीर्थ वाराणसी की महिमा बताते हुए कहा गया है कि यहाँ निवास करनेवाले को भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होता है(अ. पु. 112/1)। शिवजी इस क्षेत्र को कभी भी त्यागते नहीं, इसलिये इसे अविमुक्तक्षेत्र भी कहते हैं। भजन, तप, दान आदि जो कर्म यहाँ किये जाते हैं उनका अक्षय फल होता है(अ. पु. 112/2)। स्नान, जप, तर्पण, देवपूजा, दान या निवास जो कुछ भी वाराणसी में किया जाय उससे मोक्ष एवं भोग की प्राप्ति होती है(अ. पु. 112/7)।

वाराणसी परं तीर्थं गौर्य्यै प्राह महेश्वरः।
भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं वसतां गृणतां हरिम्।।
गौरीक्षेत्रं न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतम्।
जप्तं तप्तं हुतं दत्तं अविमुक्ते किलाक्षयम्।। (अग्निपु. 112/1-2)

महाशिवरात्रिव्रत के बारे में बताया गया है कि यह व्रत भोग एवं मोक्ष देनेवाला है। माघ-फाल्गुन मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को यह व्रत किया जाता है। उस दिन उपवास, रात्रिजागरण तथा शिवपूजन करना चाहिये। क्योंकि भगवान् शिव भोग-मोक्षदाता, नरकसमुद्र से पार लगानेवाले, शान्ति, राज्य, सन्तति, सौभाग्य, स्वास्थ, ज्ञान, भौतिक समृद्धि एवं स्वर्ग आदि प्रदान करनेवाले हैं(अ. पु. 193/1-6)।

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु।
माघ फाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी।।
कामयुक्ता तु सोपोष्या कुर्वन् जागरणं व्रती।
आवाहयाम्यहं शम्भु भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
नरकार्णवकोत्तारनावं शिव! नमोऽस्तु ते।
नमः शिवाय शान्ताय प्रजाराज्यादिदायिने।। (अग्निपु. 193/1-4)

भविष्य पुराण में माहेश्वरव्रत की चर्चा की गयी है। इसके अन्तर्गत बताया गया है कि मार्गशीर्ष महीने के शुक्लपक्ष की त्रयोदशी को एक समय भोजन कर चतुर्दशी को निराहार रहकर महेश्वर की विधि-पूर्वक पूजा करनी चाहिये। पूजा की संक्षिप्त विधि भी इस पुराण में दी गयी है। इस व्रत के करने से हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। ब्रह्म-हत्यादि पापों से छुटकारा, दीर्घायु, आरोग्य, गणाधिपति का पद, करोड़ों कल्पतक का स्वर्ग और अन्त में भगवान् शिव का पद प्राप्त होता है। इस व्रत के फल का वर्णन न तो बृहस्पति और ब्रह्मा आदि और न तो सिद्धगण ही कर सकते है।(भवि. पु. उत्त. प. अध्याय 97)

इस पुराण में सभी प्रकार के अनिष्टों के शमन तथा सर्वशांति प्रदान करनेवाले रुद्राभिषेक अथवा रुद्र-स्नान की विधि भी संक्षिप्तरूप में बतायी गयी है। विधिपूर्वक रुद्र-स्नान के द्वारा व्यक्ति को सुख एवं संतान की प्राप्ति होती है। (भ. पु. उ. प. अध्याय 124)

मार्कण्डेयजी दक्ष द्वारा शिवनिन्दा के कारण सती के शरीर–त्याग के प्रसंग की चर्चा करते हुए ऋषियों से कहते हैं कि जहाँ शम्भु की अवज्ञा हो, वहाँ विद्वानों को नहीं रुकना चाहिये। अर्थात् शिव–निन्दा से घोर पाप होता है तथा उस निन्दा को श्रवण करने से भी पाप होता है।

शम्भोरवज्ञा यत्रास्ते स्थातव्यं नैव सूरिभिः। (मार्क. महापु. 49/13)

त्रिदेवों की एकता

इन पुराणों में तीनों प्रमुख देवों की तात्त्विक एकता का भी प्रतिपादन हुआ है। अग्नि पुराण में विष्णु के कृष्णावतार की चर्चा के दौरान बाणासुर का प्रसंग आता है। वहाँपर बाणासुर के गर्व का भंजन हो जाने के बाद विष्णु(कृष्ण) भगवान् शिव से कहते हैं कि "(आपने बाणासुर को अभय प्रदान किया है तो मैं भी उसे अभय प्रदान करता हूँ) क्योंकि जो आप द्वारा अभय प्राप्त है वह मेरे द्वारा भी अभय प्राप्त है। हम दोनों में किञ्चित् भी भेद नहीं है, और यदि कोई व्यक्ति हम दोनों में भेद करता है तो वह नरकगामी होता है" (अ. पु. 12/51–52)। इस उद्धरण में विष्णु एवं शिव के अभेद होने का वर्णन है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, भगवान् शिव की शक्ति से ही ब्रह्मादि देवता पैदा हुए हैं क्योंकि वे परमब्रह्म एवं विज्ञानस्वरूप हैं। तीनों देव उनकी(शिवकी) ही अभिव्यक्तियाँ हैं(अ. पु. 304/2–3)। इस सन्दर्भ में तीनों देवों को शिव की ही विभिन्न अभिव्यक्तियाँ मानी गयी हैं। अर्थात् तीनों देव तात्त्विक दृष्टि से एक ही हैं।

इसी प्रकार यमगीता के अन्तर्गत कहा गया है कि एक ही तत्त्व को कोई हरि, कोई शिव और कोई ब्रह्मा कहते हैं(अ. पु. 382/17–19)। उस तत्त्व को शैवलोग सदाशिव और वैष्णव लोग महाविष्णु कहते हैं। वह तत्त्व निर्गुण–निराकार होता है, लेकिन जब सगुणरूप धारण करता है तो वह नाना प्रकार से पुकारा जाने लगता है।

मार्कण्डेय पुराण में मार्कण्डेयजी क्रौष्टुकि से कहते हैं कि जब परमेश्वर की योगदृष्टि से प्रकृति(की साम्यावस्था) में क्षोभ होता है.................. तब ब्रह्माजी प्रकट होते हैं। ....यद्यपि ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति के स्थान और निर्गुण हैं, तथापि रजोगुण का उपभोग करते हुए सृष्टि में प्रवृत्त होते हैं और ब्रह्मा के कर्त्तव्य का पालन करते हैं। फिर परमेश्वर सत्त्वगुण के उत्कर्ष से युक्त हो श्रीविष्णु का स्वरूप धारणकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते हैं। फिर तमोगुण की अधिकता से युक्त हो रुद्ररूप धारण करके सम्पूर्ण जगत् का संहार करते ....। इस प्रकार सृष्टि, पालन और संहार–इन तीनों कालों में तीन गुणों से युक्त होकर भी वे परमेश्वर वास्तव में निर्गुण ही हैं। ....एक ही परमेश्वर भिन्न–भिन्न कार्यों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नाम धारण करते हैं। .... ये ही तीन देवता हैं.............। ये परस्पर एक दूसरे के आश्रित और एक दूसरे से मिले रहते हैं। इनमें एक क्षण का भी वियोग नहीं होता। ये एक दूसरे का कभी त्याग नहीं करते।[1]

---

1. संक्षिप्त मार्कण्डेय–ब्रह्मपुराणांक, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 141 तथा मा. महापु. 43/11–21

उत्पन्नः स जगद्योनिरगुणोऽपि रजोगुणम्।
भुञ्जन् प्रवर्तते सर्गे ब्रह्मत्वं समुपाश्रितः।।
ब्रह्मत्वे स प्रजाः सृष्ट्वा ततः सत्त्वातिरेकवान्।
विष्णुत्वमेत्य धर्मेण कुरुते परिपालनम्।
ततस्तमोगुणोद्रिक्तो रुद्रत्वे चाखिलं जगत्।
उपसंहृत्य वै शेते त्रैलोक्यं त्रिगुणोऽगुणः।।
यथा प्राग्व्यापकः क्षेत्री पालको लावकस्तथा।
तथा स संज्ञामायाति ब्रह्मविष्णुहरात्मिकाम्।
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् रुद्रत्वे संहरत्यपि।
विष्णुत्वे चाप्युदासीनस्त्रिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः।।
रजो ब्रह्मा तमो रुद्रो विष्णुः सत्त्वं जगत्पतिः।
एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः।।
अन्योन्यमिथुना ह्येते ह्यन्योन्याश्रयिणस्तथा।
क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम्।। (मा. महापु. 43/15-21)

अर्थात्- वह जगत्योनि निर्गुण होते हुए भी रजोगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मा के रूप में परिणत हो जाता है और सृष्टि-कार्य में प्रवृत्त हो जाता है। वह ब्रह्मा के रूप में प्रजा की सृष्टि करके सतोगुण की अधिकता होने के कारण विष्णु का रूप धारण करके न्याय(धर्म) के अनुसार प्रजापालन करता है। तदनन्तर तमोगुण का उद्रेक होनेपर(वह ब्रह्म) रुद्ररूप धारण करके समस्त विश्व का संहार करके सो जाता है। इस प्रकार वह निर्गुण होते हुए भी तीनों कालों में तीन गुणों का अवलम्बन करता है। सर्वव्यापक और सबका उत्पत्तिकर्त्ता वह सर्वव्यापी ईश्वर इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामों से पुकारा जाता है। वह ब्रह्माभाव से समस्त लोकों की उत्पत्ति करता है। एवं रुद्रभाव से संहार करता है तथा विष्णुभाव से उदासीनतापूर्वक पालन करता है। स्वयम्भू की ये तीन अवस्थायें हैं। ब्रह्मा रजोगुणमय हैं, रुद्र तमोगुणमय हैं और जगत्पति विष्णु सत्त्वगुणमय हैं। ये तीन देवता हैं और तीन ही गुण हैं। ये(निपुणता से) एक दूसरे का आश्रय लेकर स्थित रहते हैं, इनका क्षणभर के लिये भी वियोग नहीं होता और न ये एक दूसरे का त्याग करते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर ॐकार की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि ॐकार अक्षर परब्रह्मस्वरूप है(**इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम्**-मार्क. पु. 42/14, संक्षिप्त मार्क.-ब्रह्म पु.)[1]। यह तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव एवं ऋक्, साम और यजुर्वेद है।

---

[1] मार्कण्डेयमहापुराणम्(41/14)

ओमित्येतत् त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः।
विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च।।[1] (संक्षिप्त मार्क.- ब्रह्मपु. 42/8)

भविष्य पुराण में 'फलत्याग चतुर्दशीव्रत महात्म्य' के प्रसंग में-

"यथा भेदं न पश्यामि शिवविष्णवर्कपद्मजाम्।
तथा ममास्तु विश्वात्मा शङ्करः शंकरः सदा।।" (भ. पु. उ. प. 98/18)

-ऐसा उच्चारण करने को कहा गया है। इस श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिव, विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य में कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् इन सबमें अभेद है।

उपरोक्त उद्धरण में ॐकार के अन्तर्गत तीनों देवों की प्रतिष्ठा की बात कही गयी है अर्थात् एक ब्रह्म (जिसका वाचक ॐकार है) के अन्तर्गत ही तीनों की स्थिति है। वही निर्गुण शब्दब्रह्म सगुण होकर ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारण कर लेता है। ऐसा रूप धारण करने के बावजूद भी तीनों में विभेद या अलगाव नहीं है, पूर्ण एक्य है।

उपसंहार

अग्निपुराण में नाना प्रकार की विद्याएँ हैं, अतः उसमें किसी देवविशेष को केन्द्र करके उसकी महिमा का गान नहीं किया गया है। हाँलाकि उसमें अपेक्षाकृत भगवान् विष्णु के बारे में ज्यादा कुछ कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुराण शिव या विष्णु आदि देवों संबंधी प्रचलित मान्यता को स्वीकार करके लिखा गया है। इस कारण इसमें देवों की विशेषता या प्रभुत्व को सीधे-सीधे नहीं बताया गया है। उनका महत्त्व परोक्षरूप से प्रकट किया गया है। इसमें नाना प्रकार की विद्याओं पर ही बल दिया गया है।

इस पुराण में सभी प्रमुख देवों की पूजा, मूर्तिस्थापना तथा मन्दिर-निर्माण आदि बातों का विस्तृत उल्लेख किया गया है। इस पुराण में यदा-कदा जो शिवजी से संबंधित बातें पायी जाती हैं उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। जो थोड़े से संदर्भ हमें शिव-माहात्म्यसंबंधी प्राप्त होते हैं उनमें भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की झलक प्राप्त होती है। निर्गुणरूप में वे परब्रह्म, परात्पर, अव्यक्त, गुणातीत, ज्ञानस्वरूप हैं। सगुण रूप में वे सर्वात्मरूप, विश्वरूप, पंचमुखी, 15 नेत्र वाले, दसभुजावाले, भक्तवत्सल, अनन्त शिर, बाहु एवं पैरवाले, विषपान करनेवाले, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं जगत् आदि सभी के परम कारण, पशुपति, भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले, रोग-शोक-हारी, त्रिशूल, पाश, धनुष आदि शस्त्रों को धारण करनेवाले, सर्वव्यापी, चन्दशेखर तथा मृत्यंजय आदि हैं।

भविष्य पुराण के पाँच प्रकार के पाठों में से जो वर्तमान लेखक को प्राप्त है उसमें भगवान्

---

[1] मार्कण्डेयमहापुराणम् (41/8-9)

शिवसंबंधी कथाएँ या सन्दर्भ अत्यल्प हैं। उन संदर्भों में भगवान् शिव को सबका स्वामी, कल्याणकारी, विद्या एवं अभय प्रदान करनेवाला, पाप एवं माया का नाश करनेवाला, प्रकाशस्वरूप एवं लोकों का स्वामी कहा गया है। उन्हें ब्रह्मादि का जनक भी बताया गया है।

मार्कण्डेय पुराण मुख्यतः देवी के माहात्म्य को बतलानेवाला ग्रन्थ है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु या भगवान् शिव के संदर्भ नगण्य से हैं। शैवदर्शन में शिव एवं शक्ति अथवा ब्रह्म एवं माया को अभिन्न माना गया है। अतः देवी की महिमा शिव की ही महिमा मानी जानी चाहिये। क्योंकि शिव शक्ति के माध्यम से ही जगत्संबंधी सभी प्रकार के व्यापार का संचालन करते हैं। शक्ति अपने आप में स्वतंत्र न होकर शिवेच्छा से ही क्रियाशील हो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र या समग्र सृष्टि की रचना करती है। मार्कण्डेय पुराण में शक्ति या देवी की महिमा को बताते हुए उसे सभी ऐश्वर्यों से युक्त, सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाली तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र को प्रकट करनेवाली कहा गया है। देवी की महिमा वस्तुतः प्रकारान्तर से महादेव की ही महिमा है।

लिंगार्चन के बिना कोई भी शिवसंबंधी पूजा पूर्ण नहीं होती, ऐसा अग्नि पुराण में कहा गया है। भगवान् शिव लोगों पर अनुग्रह करने के लिये लिंग में निवास करते हैं। लिंगार्चन से भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होता है। जो तीनों संध्याओं में प्रतिदिन पार्थिवलिंग की पूजा बिल्वपत्रों से करता है वह अपने कुल की एक सौ ग्यारह पीढ़ियों को तार देता है। लिंग–स्थापन तथा मन्दिर–निर्माण को बड़ा ही पुण्यप्रद बताया गया है। यहाँतक कहा गया है कि आठ ईंटों का मन्दिर या खेल–खेल में रेत या मिट्टी के मन्दिर बनानेवाला भी क्रमशः स्वर्ग एवं भोगों को प्राप्त कर लेता है।

पंचाक्षर मन्त्र को अग्नि पुराण में भी महामन्त्र बताया गया है। इसको जपनेवाला सभी मन्त्रों के जप का फल प्राप्त कर लेता है। यह मन्त्र साक्षात् शिवस्वरूप है। इस मन्त्र के पाँचो अक्षर शिव के पाँचों मुखों के द्योतक हैं। **'ॐ नमः शिवाय'** इस षडक्षर मन्त्र से शिव की पूजा करनी चाहिये। शिव–पूजा में घंटे बजाने के महत्त्व को बताते हुए कहा गया है कि इसकी ध्वनि में सभी प्रकार के वाद्ययन्त्रों की ध्वनि मिली होती है। इसलिये शिव–पूजा के समय इसे बजाने से धन–संपत्ति या भोगों की प्राप्ति होती है।

लिंग–स्थापन के मुहूर्तों का भी वर्णन अग्नि पुराण में विस्तार से है। वाराणसीतीर्थ की महिमा को बताते हुए इस पुराण में कहा गया है कि यह भोग–मोक्ष प्रदान करनेवाला है। स्नान, जप, तप, दान, निवास जो कुछ भी वाराणसी में किया जाय उसका फल अक्षय भोग एवं मोक्ष होता है। महाशिवरात्रि व्रत के बारे में भी कहा गया है कि यह भोग एवं मोक्ष देनेवाला है। इस दिन उपवास, शिवपूजा एवं रात्रि–जागरण किया जाना चाहिये।

अन्त में इन पुराणों में त्रिदेवों की एकता का भी प्रतिपादन किया गया है। इन देवों में भेद करनेवाला नरकगामी होता है। एक स्थल पर यह भी बताया गया है कि जहाँ भगवान् शिव की निन्दा होती हो वहाँ व्यक्ति को नहीं रुकना चाहिये। अर्थात् उसे नहीं सुनना चाहिये।

* * *

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भगवान् शिव

यह मुख्यत: वैष्णव पुराण है जिसमें मूलत: श्रीकृष्ण-भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। इस पुराण में श्रीकृष्ण को ब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है परन्तु भगवान् शिव को कृष्ण के समान तथा उनसे अभिन्न भी बताया गया है। अर्थात् तात्त्विक रूप से दोनों में कोई भेद नहीं है (ब्रह्मवैवर्त पुराण-प्रकृतिखण्ड-अध्याय-54 देखें)। इस पुराण के वैष्णवपरक होने पर भी इसमें प्रसंगानुसार भगवान् शिव के तात्त्विक स्वरूप, ऐश्वर्य, माहात्म्य आदि का बड़ा ही स्पष्ट एवं विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। प्रस्तुत लेख में भगवान् शिव के (ऐश्वर्य एवं महात्म्य आदि से संबंधित) कुछ प्रसंगों की चर्चा की जायगी। इस पुराण में रथन्तर कल्प की कथाएँ वर्णित हैं जो अन्य कल्पों की कथाओं से कुछ भिन्नता रखती हैं। इसमें चार खण्ड (क्रमश: ब्रह्म खण्ड, प्रकृति खण्ड, गणपति खण्ड और श्रीकृष्णजन्म खण्ड तथा 18000 श्लोक हैं। (नारदीय महापुराण पू. ख. 101/4-5 तथा ब्रह्मवैवर्त पु. श्रीकृष्णज. ख. अ. 130)

भगवान् शिव का स्वरूप

भगवान् शिव को भक्तों पर अनुग्रह करनेवाला, तपोरूप, तपस्या के बीज तथा तप का फल देनेवाला कहा गया है। वे न केवल तप का फल प्रदान करनेवाले हैं अपितु वे स्वयं ही तप के फल हैं। अर्थात् तप का परम लक्ष्य भगवान् शिव की प्राप्ति है। उन्हें मृत्युञ्जय, सर्वसंहारक एवं काल कहा गया है[1]। ब्रह्मखण्ड (के अध्याय-14/35) में भगवान् शिव को कल्याणरूप, कल्याणदाता, कल्याण प्राप्ति के कारण, ज्ञानानन्दस्वरूप, परमेश्वर एवं मृत्युञ्जय कहा गया है।

शिवं शिवस्वरूपं च शिवदं शिवकारणम्।
ज्ञानानन्दं महात्मानं परं मृत्युंजयं वरम्।। (14/35)

श्रीकृष्णजी राधा से किसी प्रसंग में भगवान् शिव के स्वरूप की चर्चा करते हुए कहते हैं कि शुद्धस्फटिक के समान उनका उज्ज्वल वर्ण है, पाँच मुख हैं तथा तीन नेत्र हैं। उनके हाथों में त्रिशूल एवं पट्टिश अस्त्र हैं। वे बाघाम्बर धारण किये हुए हैं। श्वेत कमल के बीज की माला से स्वयं ही अपनेआपका-अपने मन्त्रों का जप करतें हैं। उनके प्रसन्न मुख पर मन्द हास्य की छटा छायी रहती है। वे परात्पर शिव मस्तक पर अर्धचन्द्र का मुकुट तथा सुनहरे रंग की जटाओं का भार धारण करते हैं। उनका स्वरूप शान्त है। वे तीनों लोकों के स्वामी और भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले हैं। वे अपने आप को परमेश्वर मानकर समस्त सम्पदाओं के दाता होकर कल्पवृक्ष के समान सबकी सारी मनोवांछित वस्तुएँ देते हैं। जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, उसे वही वर देकर वे वरों के ईश्वर हो गये हैं।

शुद्धस्फटिकसंकाशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।

---

1. ब्रह्मखण्ड अध्याय-12/13-14

त्रिशूलपट्टिशकरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम्।।
जपन्तं स्वात्मनाऽऽत्मानं श्वेताब्जबीजमालया।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं चन्द्रचूडं परात्परम्।।
स्वर्णाकारं जटाभारं दधतं शिरसा मुदा।
शान्तं कान्तं त्रिजगतां भक्तानुग्रहकारकम्।।
अथ स्वमीश्वरं मत्वा प्रदाता सर्वसंपदाम्।
ददाति सर्वं सर्वेभ्यो वाञ्छितं कल्पपादपः।।
यो यं वाञ्छति तं तस्मै वरं दत्त्वा वरेश्वरः।

(ब्रह्मवै. पु. श्रीकृष्णजन्मखण्ड 36/20-24)

राधाजी एक स्थल पर भगवान् कृष्ण से कहतीं हैं कि भगवान् शंकर समस्त ज्ञानों के अधीश्वर, समस्त तत्त्वों के वेत्ता, मृत्युविजेता, कालों के काल एवं आपके समान हैं।

सर्वज्ञानाधिदेवश्च शंकरः सर्वतत्त्ववित्।
मृत्युंजयः कालकालो भगवांस्त्वत्समो महान्।।

(ब्रह्मवै. पु. श्रीकृष्णजन्मखण्ड 36/71)

किसी प्रसंग में श्रीकृष्णजी राधा के प्रश्नों का उत्तर देते समय कहते हैं कि ब्रह्मा का पतन होने पर शिव का एक क्षण होता है। उनकी आयु का प्रमाण मैं भी नहीं जानता हूँ, फिर श्रुति क्या जानेगी? मेरे द्वारा मेरी माया समस्त ब्रह्माण्ड समूह को सदा आच्छन्न किये रहती है, किन्तु वह शिव से निरन्तर काँपती रहती है, उन्हें मोहित करने में समर्थ नहीं होती है।

ब्रह्मणः पतनेनापि शूलपाणेः क्षणो भवेत्।
तस्याऽऽयुषः प्रमाणं च नाहं जानामि का श्रुतिः।।
ब्रह्माण्डनिकरं छन्नं मया मन्मायया सदा।
सा कम्पति हरं शश्वन्न च तं मोहितुं क्षमा।।

(ब्रह्मवै. पु. श्रीकृष्णजन्मखण्ड 36/106 तथा 109)

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि भगवान् शिव कृष्णजी जैसे लोगों की माया तथा ज्ञान से परे हैं। अतः वे वेदों से भी परे हैं। उनका ज्ञान किसी को भी नहीं है।

(1) भगवान् शिव ब्रह्मरूप में

एक बार हिमालय में स्थित अक्षयवट के नीचे भगवान् शिव जब पधारे थे तो उस समय हिमालय ने उनकी प्रार्थना करते हुए उन्हें सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु तथा सबका संहार करनेवाला, अनन्त, गुणातीत ईश्वर, सनातन ज्योतिःस्वरूप, प्रकृति एवं उसके ईश्वर, मृत्युञ्जय, काल के भी काल, वेदकर्त्ता, मन्त्र, जप और तप के फलदाता कहा है। वे भक्तों के लिये नानारूप धारण करनेवाले

हैं। वे जिन रूपों में जिनकी प्रीति हैं उसके लिये वे ही रूप धारण कर लेते हैं।

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः।
त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः।।
त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः।
प्रकृतिः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः।।
मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः।
वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदाङ्गपारगः।।
...।
मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः।।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड 38/65, 66, 70, 71)

नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे।
येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपं बिभर्षि च।। (श्रीकृष्णजन्मखण्ड 38/67)

असित मुनि भगवान् शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं– मृत्यु के लिये भी मृत्युरूप होकर जन्म–मृत्युमय संसार का खण्डन करनेवाले देवता! आपको नमस्कार है। मृत्यु के ईश्वर! मृत्यु के बीज! मृत्युञ्जय! आपको मेरा प्रणाम। ....ब्रह्मस्वरूप! ब्रह्मज्ञ! ब्रह्मचिन्तनपरायण! आपको नमस्कार है। ....

मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन।
मृत्योरीशं मृत्युबीज मृत्युञ्जय नमोऽस्तु ते।।
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावनतत्पर। (श्रीकृ. ज. ख. 30/44, 47)

हिमालय अपनी पुत्री के कन्यादान के उपरान्त भगवान् शिव की इस प्रकार स्तुति कर रहे हैं– "आप दक्षयज्ञ का विध्वंस करनेवाले तथा शरणागतों को नरक के समुद्र से उबारनेवाले हैं, सबके आत्मस्वरूप हैं और आपका श्रीविग्रह परमानन्दमय है; ....आप गुणों के सागर होते हुए भी गुणातीत हैं; गुणों से युक्त, गुणों के स्वामी और गुणों के आदिकारण हैं; ....आप योग के आश्रय, योगरूप, योग के ज्ञाता, योग के कारण, योगीश्वर तथा योगियों के आदि कारण और गुरु हैं। ....आप कालस्वरूप, काल के स्वामी, कालानुसार फल देनेवाले, काल के एकमात्र आदिकारण तथा काल के नाशक एवं पोषक हैं, ... आप ही कल्याणमय तथा कल्याणस्वरूप प्राण हैं; सबके परम आश्रय शिव! मुझपर कृपा करें।"

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न नरकार्णवतारक।
सर्वात्मरूप सर्वेश परमानन्दविग्रह।।
गुणार्णव गुणातीत गुणयुक्त गुणेश्वर।

गुणबीज.......................।।
योगाधार योगरूप योगज्ञ योगकारण।
योगीश योगिनां बीज प्रसीद योगिनां गुरो।।
..............................।
कालस्वरूप कालेश काले च फलदायक।
कालबीजैक कालघ्न प्रसीद कालपालक।।
शिवस्वरूप शिवद......................।
शिवभूत शिवप्राण प्रसीद परमाश्रय।। (श्रीकृष्ण ज. ख. 44/63-69)

ब्रह्मखण्ड अध्याय 19 में बाणासुर अपने स्तोत्र में भगवान् शिव को देवताओं के सारतत्त्व-स्वरूप, समस्त देवताओं के स्वामी, योगियों के ईश्वर, ज्ञानरूप, सनातन, तपस्या के फलदाता, भोग एवं मोक्ष के कारण, नरक समुद्र से पार उतारनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, करूणासागर, वेदों से परे, देश-कालादि से भी परे तथा मन-वाणी आदि से परे स्वीकार करता है[1]। (ब्रह्मवै. पु. ब्रह्म. 19/56-64)

वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम्।।
अपरिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसोः परम्।
(ब्रह्मवै. पु. ब्रह्मखण्ड 19/63-64)

श्रीकृष्णजन्मखण्ड अध्याय 38 में दूत हिमालय से कह रहे हैं कि अक्षवट के नीचे महादेवजी अपने गणों के साथ पधारे हैं। "महादेवजी सिद्धिस्वरूप, सिद्धों के स्वामी, योगीन्द्रों के भी गुरु, ...सनातन ब्रह्मज्योति, परमात्मास्वरूप, सगुण तथा निर्गुण हैं। उन्होंने भक्तों के ध्यान के लिये निर्मल महेश्वररूप धारण किया है।"

सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्।
मृत्युञ्जयं कालकालं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।।
परमात्मस्वरूपं च सगुणं निर्गुणं विभुम्।
भक्तध्यानार्थममलं दधानं देहमीश्वरम्।। (38/30-31)

एक स्थल पर भगवान् शिव के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है- "वे योगस्वरूप, योगेश्वर, योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु, स्वतन्त्र, गुणातीत तथा सनातन ब्रह्मज्योति हैं। वे गुणों के भेद से अनन्त भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं, तथापि वे रूपरहित हैं। भवसागर में डूबे हुए प्राणियों का उद्धार करनेवाले हैं तथा जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार के कारण हैं। वे सर्वाधार, सर्वबीज, सर्वेश्वर, सबके जीवन तथा सबके साक्षी हैं। उनमें किसी प्रकार की इच्छा या चेष्टा नहीं है। वे

---

[1] पूरा स्तोत्र इस पुस्तक के द्वितीय भाग में दिया जायगा।

परमानन्दस्वरूप, अविनाशी, आदि, अन्त और मध्य से रहित, सबके आदिकारण तथा सर्वरूप हैं।"

योगस्वरूपं योगेशं योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुम्।
स्वेच्छामयं गुणातीतं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।।
गुणभेदाद्रूपभेदं धत्तेऽनन्तमरूपकम्।
तारणं तं भवस्थानां सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।।
सर्वाधारं सर्वबीजं सर्वेशं सर्वजीवनम्।
साक्षिरूपं निरीहं च परमानन्दमक्षरम्।।
आद्यन्तमध्यरहितं सर्वाद्यं सर्वरूपकम्। (ब्रह्मवै. पु. श्रीकृष्णजन्मखण्ड 44/36-39)

उपरोक्त उद्धरणों पर विचार करने से भगवान् शिव परब्रह्म सिद्ध होते हैं जिनके सगुण एवं निर्गुण दो पक्ष हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र आदि देवगण उनके सगुण रूप हैं जो सृष्टि के समस्त क्रिया-कलापों को संचालित करते हैं। भक्तों को वे भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले तथा नरक समुद्र से पार लगानेवाले हैं। भक्तों की रुचि के अनुसार वे नाना रूप धारण कर लेते हैं ताकि वे मनोनुकूल ढंग से उनकी उपासना कर सकें। निर्गुण रूप में वे मन, बुद्धि तथा वेदों से परे, गुणातीत, सनातन ब्रह्मज्योति, आदि कारण तथा ज्ञानानन्दस्वरूप हैं।

(2) तत्त्वज्ञान, मोक्षादि एवं हरिभक्तिदाता शिव

ब्रह्मखण्ड के 12वें अध्याय में शान्तस्वरूप शिव को तत्त्वज्ञान, मोक्ष तथा हरिभक्ति प्रदान करनेवाला कहा गया है। वहाँ यह बताया गया है कि गन्धर्वराज वरदान में हरि की भक्ति तथा परमवैष्णवपुत्र माँगते हैं जिसे भगवान् शिव प्रसन्नतापूर्वक प्रदान करते हैं। फलस्वरूप नारदजी, ब्रह्माजी के शाप के कारण, पृथ्वी पर गन्धर्वराज के यहाँ उपबर्हण नाम से पैदा होते हैं।

तत्त्वज्ञानप्रदं शान्तं मुक्तिदं हरिभक्तिदम्।
दृष्ट्वा ननाम सहसा गन्धर्वोदण्डवद् भुवि।।

....

स ययाचे हरेर्भक्तिं पुत्रं परमवैष्णवम्।।
(12/18-19)

श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 36वें अध्याय में श्रीकृष्ण राधा के प्रश्नों के उत्तर देते समय प्रसंगवश यह कहते हैं- "शंकर से बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है। वे मेरी भक्ति, दास्यभाव, मुक्ति, समस्त सम्पत्ति तथा सम्पूर्ण सिद्धि को भी देने में समर्थ हैं; अतः शंकर से बढ़कर कोई दाता नहीं।" (श्लोक 113-114)

मम भक्तिं च दास्यं च मुक्तिं च सर्वसंपदः।
सर्वसिद्धिं दातुमीशो न दाता शंकरात्परः।।
(36/114)

भगवान् शिव को तपोरूप, तपस्या के बीज तथा तपस्या के फल देनेवाले और उन्हें स्वयं तपस्या का फल भी बताया गया है। शरणागत भक्तों को वे सभी सम्पत्तियाँ प्रदान करते हैं।

तपोरूपं तपोबीजं तपस्याफलदं फलम्।
शरणागतभक्ताय दातारं सर्वसंपदाम्।। (ब्रह्मवै. पु. ब्रह्मखण्ड 12/14)

बाणासुर भगवान् शिव की स्तुति करते हुए कहता है- जो ज्ञानानन्दस्वरूप, ज्ञानरूप, ज्ञानबीज, सनातन देवता, तपस्या के फलदाता तथा सम्पूर्ण सम्पदाओं को देनेवाले हैं; जो तपःस्वरूप, तपस्या के बीज, तपोधनों के श्रेष्ठ धन, वर, वरणीय, वरदाक तथा श्रेष्ठ सिद्धगणों द्वारा स्तवन करने योग्य हैं; जो भोग और मोक्ष के कारण, नरक समुद्र से पार उतारनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, प्रसन्नमुख तथा करुणासागर हैं, उन भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।

ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानबीजं सनातनम्।
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसंपदाम्।।
तपोरूपं तपोबीजं तपोधनधनं वरम्।
वरं वरेण्यं वरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः।।
कारणं भुक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम्।
आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम्।। (ब्रह्मवै. पु. ब्रह्मखण्ड 19/57-59)

जो मनुष्य 'शिव' शब्द का उच्चारण करके प्राणों का परित्याग करता है, वह कोटि जन्मों के उपार्जित पाप से मुक्त हो मोक्ष प्राप्त कर लेता है। 'शिव' के उच्चारण से मोक्ष या कल्याण की प्राप्ति होती है, इसीलिये महादेवजी को शिव कहा गया है।

शिवेति मन्त्रमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः।
शिवं कल्याणवचनं कल्याणं मुक्तिवाचिकम्।।
यतस्तत् प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्तितः। (ब्रह्म. वै. पु. ब्रह्मखण्ड-अध्याय 6/49-51)

हिमालय अपनी स्तुति (जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है) में भगवान् शिव को सभी प्रकार के मन्त्र, जप और तप का फलदाता (श्रीकृष्णज. ख. 38/71) कहते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि भक्तों के ध्यान एवं पूजा के लिये भगवान् शिव नाना रूप धारण करनेवाले हैं; वे ही ब्रह्मा एवं विष्णुरूप हैं (वही 38/67)। इस स्तुति पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि किसी भी देवता के मन्त्रजप एवं ध्यान का फल देनेवाले भगवान् शिव हैं क्योंकि वे सर्वदेवमय हैं।

श्रीकृष्णजी राधा से एक स्थल पर कहते हैं कि भगवान् शंकर वृकासुर को "सम्पूर्ण ऐश्वर्य, समस्त सिद्धि, भोग, मोक्ष तथा श्रीहरि का पद- यह सब कुछ देना चाहते थे ....।"

सर्वैश्वर्यं सर्वसिद्धिं भुक्तिं मुक्तिं हरेः पदम्।
दैत्यः किंचिन्न गृहणाति प्रेरितः शूलपाणिना।।

(ब्रह्मवै. पु. श्रीकृष्णजन्मखण्ड 36/28)

उपरोक्त उद्धरण से यह फलित होता है कि भगवान् शिव भोग, मोक्ष, श्रीहरि का पद तथा सभी सिद्धियाँ आदि देने में समर्थ हैं।

(3) योगियों एवं ज्ञानियों के गुरु – भगवान् शिव

ब्रह्मखण्ड अध्याय 24 के अन्तर्गत किसी प्रसंग में ब्रह्माजी नारद को बतला रहे हैं कि "भगवान् शंकर तुम्हारे पूर्वजन्म के गुरु हैं और हमारे भी पुरातन गुरु हैं। अतः तुम उन्हीं ज्ञानियों के गुरु कल्याणदाता शान्तस्वरूप शिव के पास जाओ। वहीं उन पुरातन गुरु से भगवन्मन्त्र का ज्ञान प्राप्त करके नारायण की कथा-वार्ता सुनो..........।"

महेश्वरस्तव गुरुः प्राक्तनो नः पुरातनः।
गच्छ वत्सशिवं शान्तं शिवदं ज्ञानिनांगुरुम्।।
तत्र एव भगवन्मन्त्रं ज्ञानं लब्ध्वा पुरातनात्।
नारायणकथां ....।। (24/45-46)

श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 36वें अध्याय में राधा से भगवान् कृष्ण शिव के बारे में बताते हुए कह रहे हैं कि "योगीलोग उनका ध्यान करते हैं। वे योगीन्द्रों के गुरु के भी गुरु हैं तथा ज्ञानानन्दस्वरूप हैं।"

ध्यायन्ति योगिनो यं स योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः।
ज्ञानानन्दस्वरूपोऽयं ....।। (36/16)

ब्रह्मखण्ड अध्याय 19 में बाणासुर भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें योगियों के गुरु का गुरु बताता है(**'योगीश्वरं योगबीजं योगिनां च गुरोर्गुरुम्।।'** 19/56)।

श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 30 वें अध्याय में असित भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें जगद्गुरु तथा योगीन्द्रों के गुरु के गुरु बताते हैं(**'जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय.........योगिन्द्र गुरूणां गुरवे नमः।।'** 30/43)।

श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 38 वें अध्याय में हिमालय भगवान् शिव को विद्वानों का गुरु, वेदकर्त्ता तथा वेद-वेदाङ्गों के पारंगत विद्वान् कहते हैं। जो वेदकर्त्ता एवं वेदों का विद्वान् होगा वही विद्वानों का गुरु होगा।

.........वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदाङ्गपारगः।।
विदुषां...............................विदुषां गुरुः।

(श्रीकृष्णज. ख. 38/70-71)

उपरोक्त खण्ड के 44वें अध्याय में हिमालय भगवान् शिव को 'योगियों के गुरु' (**योगिनां गुरो**-44/65) संबोधित कर स्तुति कर रहे हैं।

उपरोक्त सभी उद्धरणों से स्पष्ट है कि भगवान् शिव न केवल ब्रह्माजी, नारद एवं योगियों के

गुरु हैं अपितु वे जगद्गुरु हैं। क्योंकि गुरु-शिष्य परम्परा से अगर हम पीछे की ओर लौटें तो पता चलेगा कि सभी के आदि गुरु भगवान् शिव ही हैं।

परब्रह्म परमात्मा ही सबका आदि गुरु होता है - ब्रह्मवैवर्तपुराण की यह मान्यता योगदर्शन से भी प्रमाणित होती है। पातंजल-योग-दर्शन में ईश्वर (ब्रह्म) की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि- **"पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"** (योगसूत्र/समाधिपाद/26)। भावार्थ यह है कि ईश्वर पूर्व उत्पन्न हुए ब्रह्मादिकों का भी गुरु है; क्योंकि वह काल से परिच्छिन्न नहीं है, अर्थात् वह कालातीत है। अगले सूत्र (27) में कहा गया है कि उस ईश्वर का वाचक ॐ या प्रणव है (**तस्य वाचकः प्रणवः**)। दूसरे शब्दों में भगवान् शिव जो ॐकारस्वरूप हैं, वे ही सबके गुरु या आदिगुरु हैं।

कार्तवीर्य (सहस्त्रबाहु) अर्जुन द्वारा अपने पिता जमदग्नि के वध के बाद परशुराम ने सभी क्षत्रियों को पृथ्वी से 21 बार समाप्त करने की प्रतिज्ञा की थी। फलस्वरूप ब्रह्माजी के परामर्श से परशुरामजी शिवजी के पास ऐसी विद्याएँ सीखने गये जिनसे उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो सके। शिवलोक में जाकर भगवान् शिव से उन्होंने अनेकों विद्याएँ सीखी। गणपतिखण्ड के 30वें अध्याय में बताया गया है कि "शंकरजी ने परशुराम को परम दुर्लभ मन्त्र और 'त्रैलोक्यविजय' नामक परम अद्भुत कवच प्रदान किया। फिर स्तोत्र, पूजाविधान, पुरश्चरणपूर्वक मन्त्रसिद्धि का अनुष्ठान, नियम का ठीक-ठीक क्रम, सिद्धिस्थान और काल की संख्या आदि बतायी। उसी समय उन्हें सम्पूर्ण वेद-वेदांग भी पढ़ा दिये। तत्पश्चात् शिवजी ने परशुराम को नागपाश, पाशुपतास्त्र, ब्रह्मास्त्र, अग्नेयास्त्र, नारायणास्त्र, वायव्यास्त्र, वारूणास्त्र, गान्धर्वास्त्र, गारुड़ास्त्र, जृम्भणास्त्र, गदा, शक्ति, परशु, अमोघ उत्तम त्रिशूल, विधिपूर्वक नाना प्रकार के शास्त्रास्त्रों के मन्त्र, शस्त्रास्त्रों के संहार और संधान, अक्षय धनुष, आत्मरक्षा का उपाय, संग्राम में विजय पाने का क्रम, अनेक प्रकार के मायायुद्ध, मन्त्रपूर्वक हुंकार, अपनी सेना की रक्षा तथा शत्रुसेना के विनाश का ढंग, युद्धसंकट के समय नाना प्रकार के अनुपम उपाय, संसार को मोहित करनेवाली तथा बुढ़ापा और मृत्यु का हरण करनेवाली विद्या भी सीखायी.............।" (ब्र. वै. पु. गणपति ख. 30/24-31)

उपरोक्त वर्णन से यह ज्ञात होता है कि भगवान् शिव न केवल योग, अध्यात्म एवं तत्त्वज्ञान के गुरु हैं अपितु वे युद्धविद्या, तन्त्र-मन्त्र आदि सभी विद्याओं के भी गुरु हैं। उपरोक्त उद्धरणों के अतिरिक्त भी इस पुराण में भगवान् शिव के गुरु होने का उल्लेख अनेक स्थलों पर है। जैसे ज्ञानियों के गुरु (श्रीकृष्णज. ख. 43/18) तथा योगीन्द्रों के गुरु के गुरु (श्रीकृष्णज. ख. 44/36) आदि)

4. भगवान् शिव के विलक्षणस्वरूप का रहस्य

श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 36वें अध्याय में राधा ने कृष्णजी से भगवान् शिव के विलक्षण स्वरूप के बारे में प्रश्न किया था जिसके उत्तर में भगवान् कृष्ण कह रहे हैं कि "उन ब्रह्मस्वरूप शिव के तीन नेत्र सत्त्व, रज तथा तम नामक तीन गुणरूप हैं; इसका कारण सुनो। भगवान् शिव सात्त्विक अंशवाली दृष्टि

से देखते हुए सात्त्विक जनों की, राजस दृष्टि से राजसिक लोगों की तथा तामस दृष्टि से तमोगुणी लोगों की रक्षा करते हैं।.....तामस नेत्र से प्रलयकाल में संवर्तक अग्नि का आविर्भाव होता है।" (36/88-90)

चक्षूंषि गुणरूपाणि तस्य ब्रह्मस्वरूपिणः।
सत्त्वं रजस्तम इति तस्य हेतुं निशामय।।
सत्त्वांशेन दृशा शंभुः पश्यन्पाति च सात्त्विकान्।
राजसेन राजसिकांस्तामसेन च तामसान्।।
चक्षुषस्तामसात्पश्चाल्ललाटस्थाद्धरस्य च।
संहारकाले संहर्तुरग्निराविर्भवेत्क्रुधा।।

यद्यपि शिव स्वात्माराम हैं तथापि सती (भक्त) के प्रति प्रेमभाव के कारण ही उनकी हड्डियों की माला और उनके चिता की भस्म धारण करते हैं। (श्रीकृष्णज. ख. 36/92-93)

विभूतिगात्रः स विभुः सतीसंस्कार भस्मना।
धत्ते तस्या अस्थिमालां प्रेमभावेन भस्म च।।
स्वात्मारामो यद्यपि ईशः ....।।

"वे योगस्थ होने के कारण दिगम्बर हैं। उन नित्य परमेश्वर में इच्छा का सर्वथा अभाव है। योगी को केशों का संस्कार करने तथा शरीर को वेशभूषा से विभूषित करने की इच्छा नहीं होती। उसका चन्दन और कीचड़ में तथा मिट्टी एवं मणि में समभाव होता है (इसीलिये वे जटाधारी तथा भस्मधारी कहलाते हैं)।" (श्रीकृष्णज. ख. 36/98-99)

....

न चेच्छा केशसंस्कारे स्वाङ्गवेषे च योगिनः।
समता चन्दने पङ्के लोष्टे रत्ने मणीश्वरे।। (36/99)

"गरुड़ से द्वेष रखनेवाले सर्प भगवान् शंकर की शरण में गये। उन्हीं शरणागतों को वे कृपापूर्वक अपने शरीर में धारण करते हैं। उनका वृषभरूप वाहन तो मैं स्वयं (भगवान् कृष्ण) हूँ। दूसरा कोई भी उनका भार वहन करने में समर्थ नहीं है। ....धतूर, बिल्वपत्र, बिल्वकाष्ठ का अनुलेपन तथा व्याघ्रचर्म योगियों को अभीष्ट हैं, इसलिये उनमें उनकी प्रीति रहती है। दिव्यलोक...... और जनसमुदाय में उनका मन नहीं लगता इसलिये वे एकान्त श्मशान में रहकर .... ध्यान किया करते हैं। ब्रह्मा से लेकर कीटपर्यन्त प्रत्येक प्राणी को भगवान् शिव समान समझते हैं (क्योंकि सभी कुछ उन्हीं की सृष्टि है)। ....वे योग द्वारा भ्रूभङ्ग की लीलामात्र से ब्रह्माण्ड-समुदाय की सृष्टि एवं संहार करने में समर्थ हैं। शंकर से बढ़कर दूसरा कोई योगी नहीं है जो अपने दिव्यज्ञान से नष्ट हुए मृत्यु और काल आदि की पुनः सृष्टि करने में समर्थ है। उन शंकर से बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है.... तथा शंकर से बढ़कर कोई दानी और भक्त भी नहीं है।" (श्रीकृष्णज. ख. 36/100-101, 103-104, 112-115)

गरुडद्वेषिणो नागाः शंकरं शरणं ययुः।
बिभर्ति कृप्या स्वाङ्गे तानेव शरणागतान्।।
वाहनं वृषरूपोऽहमन्यस्तं वोढुमक्षमः।
त्रिपुरस्य वधे पूर्वं मत्कलांशसमुद्भवः।। (वही 36/100-101)
धत्तूरे तत्सदा प्रीतिर्बिल्वपत्रानुलेपने।
गन्धहीने सुगन्धे च योगीष्टे व्याघ्रचर्मणि।।
दिव्यलोके दिव्यतल्पे जनतायां न तन्मनः।
श्मशानेऽतीव रहसि ध्यायते ....।। (वही 36/103-104)
स्रष्टुं शक्तो हि नष्टुं च भ्रूभङ्गलीलयाऽपि यः।
ब्रह्माण्डनिकरं योगान्न योगी शंकरात्परः।।
दिव्यज्ञानेन यःस्रष्टुं नष्टुं भ्रूभङ्गलीलया।
मृत्युं कालादिकं शक्तो न ज्ञानी शंकरात्परः।। (वही 36/112-113)
मम भक्तिं च दास्यं च मुक्तिं च सर्वसंपदः।
सर्वसिद्धिं दातुमीशो न दाता शंकरात्परः।।
....।
....................न भक्तः शंकरात्परः।। (वही 36/114-115)

शिवोपासना तथा शिवनाम की महिमा

देवता की उपासना सकाम एवं निष्काम दोनों भाव से की जाती है। सकाम का अर्थ है किसी सांसारिक इच्छा, जैसे धन, विजय, विद्या, पुत्रादि, की प्राप्ति हेतु उपासना करना। निष्काम का अर्थ है मोक्ष, भगवान् की प्रसन्नता, चित्त की पवित्रता आदि के लिये उपासना करना।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में भगवान् शिव की दोनों प्रकार की उपासना संबंधी बातें मिलती हैं। सनातन धर्म में प्रत्येक व्यक्ति के दो प्रकार के कर्म – नित्य एवं नैमित्तिक – बताये गये हैं। नित्यकर्म वे धार्मिक कृत्य हैं जिन्हें रोज करना पड़ता है जैसे संध्या, गायत्रीजप आदि। नैमित्तिक वे धार्मिक कृत्य हैं जिन्हें व्यक्ति को विशेष अवसरों यथा – त्योहारों, व्रतों, शादी आदि अन्य समाजिक अवसरों पर करना पड़ता है।

श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 26वें अध्याय में एकादशी व्रत के सन्दर्भ में नारदजी द्वारा पूछे जाने पर श्रीनारायण कहते हैं कि "गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव एवं पार्वती – इन सबकी आराधना किये बिना यदि व्रती पुरुष नित्य एवं नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान करता है तो उसका सारा कर्म निष्फल हो जाता है।"

गणेश्वरं दिनकरं बह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
....।।
नाऽऽराध्य देवषट्कं च यदि कर्म समाचरेत्।
नित्यं नैमित्तिकं चापि तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।।

(ब्रह्मवै. पु. श्रीकृष्णज. ख. 26 / 50 - 51)

यहाँ ध्यान देने की बात है कि इनमें पाँच देवता एक ही परिवार के हैं। शिव और पार्वती दो होते हुए भी एक ही हैं क्योंकि भगवान् शिव अर्धनारीश्वर हैं। पुनः सूर्य एवं अग्नि भगवान् शिव के नेत्र माने गये हैं। या शिव की अष्टमूर्तियों में सूर्य एवं अग्नि आते हैं। अर्थात् वे दोनों शिव के ही रूप हैं। गणेशजी शिवजी के पुत्र ही हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि शिवपरिवार[1] की पूजा के बिना कोई भी नित्य-नैमित्तिक कर्म फलदायी नहीं होता।

भगवान् शिव को नाम-जप, तप, स्तोत्र, मन्त्र एवं कवच आदि के जप तथा लिंगपूजा द्वारा प्रसन्न किया जा सकता है। इस पुराण में कई स्तोत्र-कवच[2] आदि दिये गये हैं जिनका प्रयोग कर व्यक्ति भुक्ति एवं मुक्ति प्राप्त कर सकता है। क्योंकि भगवान् शिव भुक्ति एवं मुक्तिदाता हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मखण्ड के 6ठें अध्याय में शिवलिंग के स्थापन और पूजन का महान् फल बतलाते हुए कहते हैं "जो 'महादेव', 'महादेव' और 'महादेव' का उच्चारण करता है, उसके पीछे मैं उस नाम-श्रवण के लोभ से अत्यन्त भयभीत की भाँति (अर्थात् चुपके-चुपके) जाता हूँ। जो मनुष्य 'शिव' शब्द का उच्चारण करके प्राणों का परित्याग करता है, वह कोटि जन्मों के उपार्जित पाप से मुक्त हो मोक्ष प्राप्त कर लेता है। 'शिव' शब्द कल्याण का वाचक है और 'कल्याण' शब्द मुक्ति का। शिव के उच्चारण से मोक्ष या कल्याण की प्राप्ति होती है, इसीलिये महादेवजी को शिव कहा गया है।"

महादेव महादेव महादेवेति वादिनः।।
पश्चाद्यामि महात्रस्तो नामश्रवणलोभतः।
शिवेति मन्त्रमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः।
शिवं कल्याणवचनं कल्याणं मुक्तिवाचिकम्।।
यतस्तत् प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्तितः। (ब्रह्मखण्ड 6 / 48 - 51)

---

[1] इस पुराण के गणपतिखण्ड अध्याय 8 - 9 में बताया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण (विष्णुजी) ही प्रत्येक कल्प में गणेश के रूप में जन्म लेते हैं। दूसरे शब्दों में विष्णुजी भी गणेश से अभिन्न होने के कारण शिव-परिवार के अंग माने जा सकते हैं।

[2] 'कल्याण' के संक्षिप्त 'ब्रह्मवैवर्तपुराणांक' के अन्त में कुछ स्तोत्र एवं कवच दिये गये हैं। इच्छुक पाठक वहाँ देखें।

वहीं पर भगवान् श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि "धन और भाई-बन्धुओं का वियोग होनेपर जो शोक-सागर में डूब गया हो, वह मनुष्य शिव शब्द का उच्चारण करके सर्वथा कल्याण का भागी होता है। 'शि' पापनाशक अर्थ में है और 'व' मोक्षदायक अर्थ में। महादेवजी मनुष्यों के पापहन्ता और मोक्षदाता हैं। इसलिये उन्हें शिव कहा गया है। जिसकी वाणी में शिव-यह मंगलमय नाम विद्यमान है, उसके करोड़ों जन्मों का पाप निश्चय ही नष्ट हो जाता है।"

विच्छेदे धनबन्धूनां निमग्नः शोकसागरे।।
शिवेति शब्दमुच्चार्य्य लभेत् सर्वशिवं नरः।
पापघ्ने वर्तते शिश्च वश्च मुक्तिप्रदे तथा।।
पापघ्नो मोक्षदो न्‍त्र्णां शिवस्तेन प्रकीर्त्तितः।
शिवेति च शिवंनाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते।।
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति निश्चितम्। (ब्रह्मवै. पु. ब्रह्मखण्ड 6/51-54)

शिवलिंग पूजा का फल बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो शिवलिंग का निर्माण कर एकबार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्वर्ग में निवास करता है। शिवलिंग के अर्चन से मनुष्य को प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जिस स्थान पर शिवलिंग का पूजन होता है वह लोक-दृष्टि में तीर्थ न होने पर भी वास्तव में तीर्थ ही है। उस स्थान पर मरा हुआ पुरुष चाहे पापी ही क्यों न हो, शिवलोक को जाता है।

कृत्वा लिंगं सकृत्पूज्य वसेत् कल्पायुतं दिवि।
प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्रवान्धनवांस्तथा।।
ज्ञानवान् मुक्तिवान् साधुः शिवलिंगार्चनाद्भवेत्।
शिवलिंगार्चनस्थानमतीर्थं तीर्थमेव तत्।। (ब्रह्मखण्ड 6/46-47)

श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 75वें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण नन्दजी को शिवलिंगपूजन की महत्ता बतांते हुए कहते हैं कि "मिट्टी, राख, गोबर-इसके पिण्ड से या बालू से भी शिवलिंग का निर्माण करके एक बार उसकी पूजा कर लेनेवाला पुरुष सौ कल्पोंतक स्वर्ग में निवास करता है। सहस्त्र शिवलिंगों के पूजन से मनुष्य को मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है और जिसने एक लाख शिवलिंगों की पूजा कर ली है, वह निश्चय ही शिवत्व को प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण शिवलिंग की पूजा करता है, वह जीवन्मुक्त होता है और जो शिवपूजा से रहित है, वह ब्राह्मण नरकगामी होता है।"

मृद्भस्मगोशकृत्पिण्डैस्तथा बालुकयाऽपि वा।।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पशतं दिवि।
सहस्त्रपूजना सोऽपि लभते वाञ्छितं फलम्।।
लक्षं च पूज ाद्यस्तु शिवत्वं लभते ध्रुवम्।

जीवन्मुक्तो भवेद्विप्रो लिङ्गमभ्यर्चयेत्तु यः।।
शिवपूजा विहीनश्च ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्। (ब्रह्मवै. पु. श्रीकृष्णज. ख. 75/83-86)

नन्दजी को समझाते हुए भगवान् कृष्ण 85वें अध्याय (श्लोक 53/56) में भी इसी प्रकार की बात कहते हैं।

ब्रह्मखण्ड के 12वें अध्याय में गन्धर्वराज का प्रसंग आया है। वहाँ बताया गया है कि वे वसिष्ठजी से शिवकवच, स्तोत्र तथा द्वादशाक्षर मन्त्रका उपदेश लेकर पुष्कर तीर्थ में भगवान् शिव की प्रसन्नता के लिये तप करने लगे। तप के फलस्वरूप भगवान् शिव के प्रत्यक्ष होनेपर उन्होंने भगवान् श्रीहरि की भक्ति तथा परम वैष्णव पुत्र की प्राप्ति का वर माँगा। उस वर के फलस्वरूप गन्धर्वराज को उपबर्हण[1] नामक पुत्र प्राप्त हुआ तथा उन्हें हरिभक्ति की प्राप्ति हुई।

पूर्वकाल में वसिष्ठजी ने गन्धर्वराज को भगवान् शिव के जिस द्वादशाक्षर मन्त्र, स्तोत्र और कवच आदि का उपदेश दिया था उसका वर्णन इसी पुस्तक में अन्यत्र किया गया है। इन सबके जप-पाठ से पुत्रहीन को पुत्र, रोगी की रोगमुक्ति, कैदी को कैद से मुक्ति, धन, विद्या आदि सभी प्रकार के लौकिक सुखों तथा अन्त में शिवलोक की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार गणपतिखण्ड के 27-46 अध्यायों में परशुरामजी से संबंधित कथाएँ हैं। कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा अपने पिता के मारे जाने पर परशुरामजी ने पृथ्वी को 21 बार क्षत्रियशून्य करने तथा अपने पिता के शत्रु कार्तवीर्य को मारने की प्रतिज्ञा की थी। उनकी प्रतिज्ञा को सुनकर ब्रह्मजी ने उन्हें सलाह दी कि "तुम शिवलोक में जाओ और शंकरजी की शरण ग्रहण करो; क्योंकि भूतल पर बहुत से नरेश शंकर के भक्त हैं। जब वे शक्तिस्वरूपा पार्वती और शंकर के दिव्य कवच को धारण करके खड़े होंगे, तब महेश की आज्ञा के बिना उन्हें मारने में कोई भी समर्थ न होगा" (गण. ख. अध्याय 28/75-76)।

तदनन्तर परशुरामजी ने शिवलोक जाकर स्तोत्रों द्वारा शिव को प्रसन्नकर उनसे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का साधन एवं वर प्राप्त किया। कार्तवीर्य से युद्ध करते समय जब परशुराम ने शिवजी के त्रिशूल को भी निष्फल पाया तो आकाशवाणी सुनकर युद्ध से विरत हो गये। आकाशवाणी से उन्हें पता चला कि कार्तवीर्य (मत्स्यराज) के गले में सर्वांग की रक्षा करनेवाला शिवजी का दिव्य कवच बँधा है, जिसे पूर्वकाल में दुर्वासा ने दिया था। उसके रहते उन्हें कोई भी नहीं मार सकता। आकाशवाणी सुनकर परशुराम ने शृंगधारी संन्यासी का वेष धारण करके राजा से कवच को माँग लिया। कवच लेने के उपरान्त परशुराम ने मत्स्यराज को धराशायी कर दिया (गण. ख. अध्याय 35)।

मत्स्यराज ने शिवजी के जिस कवच को धारण किया था उसे 'ब्रह्माण्ड विजय' नामक कवच

---

[1] नारदजी अपने पिता ब्रह्मा के शापवश उपबर्हण नामक गन्धर्व के रूप में पैदा हुए थे। इनकी विस्तृत कथा के लिये ब्रह्मवैवर्तपुराण के ब्रह्मखण्ड के अध्याय 15-18 को देखें।

कहते हैं जो सर्वांग की रक्षा करता है। इस कवच का वर्णन भी इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। इसके सिद्ध कर लेने पर व्यक्ति जीवनमुक्त, सर्वज्ञ, सम्पूर्ण सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। (गण. ख. अ. 35)

भगवान् शिव की उपासना भोग एवं मोक्ष तथा लौकिक एवं पारलौकिक सभी सुखों को प्रदान करनेवाली है। अन्यान्य देवताओं के उपासकों के लिये भी भगवान् शिव की भक्ति इसलिये अपेक्षित है कि इससे वे अपने देवता के प्रति भक्ति-भाव को प्राप्त कर सकते हैं। उपरोक्त (गन्धर्वराज) के उद्धरण में गन्धर्वराज ने भगवान् शिव से भगवान् हरि की भक्ति की याचना की थी। भगवान् शिव शीघ्र ही प्रसन्न हो जाने वाले ईश्वर हैं अत: उनकी प्रसन्नता को शीघ्र प्राप्त कर हम किसी भी देवता की भक्ति का वरदान पा सकते हैं। वास्तव में भगवान् शिव के प्रसन्न होजानेमात्र से ही सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अत: विद्वान् भक्तों के लिये भगवान् शिव के प्रसन्न होने के बाद अन्य किसी देव की आवश्कता ही नहीं होती। परन्तु सरल, भावुक या पूर्वजन्म या पारिवारिक संस्कार के कारण, या गुरु- उपदेश के कारण व्यक्ति की रुचि किसी अन्य देव में हो सकती है। ऐसी स्थिति में भगवान् शिव की प्रसन्नता के बाद अन्य देवताओं की भक्ति या तो स्वत: प्राप्त हो जाती है अथवा उसे माँगी जा सकती है।

भगवान् शिव एवं कृष्ण

प्रकृतिखण्ड के अध्याय 54 में भगवान् शिव के मृत्युञ्जय होने के कारणों को समझाया गया है। वहाँ कहा गया है कि "ब्रह्माजी की आयु पूर्ण होने पर ब्रह्माण्डसमूह जल में डूब जाता है। वेदमाता सावित्री, वेद और धर्म आदि सब-के-सब तिरोहित हो जाते हैं। मृत्यु का भी विनाश हो जाता है। परन्तु देवी प्रकृति और भगवान् शिव का नाश नहीं होता। विश्व के वैष्णवगण भगवान् नारायण में लीन हो जाते हैं। संहारकारी कालाग्निरुद्र समस्त रुद्रगणों के साथ मृत्युञ्जय महादेव में लीन हो जाते हैं। उनके साथ ही तमोगुण का भी लय हो जाता है। तदनन्तर प्रकृति की एक पलक गिरती है। साथ ही नारायण, शिव तथा महाविष्णु की भी पलक गिरती है। ...." (प्रकृ. ख. 54/79-83)

"नारायण एवं शिव दोनों शुद्ध-सत्त्वस्वरूपी हैं। वे अपने बहुत से पार्षदगणों का अपने में विलय करके निर्गुण श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं।" (प्रकृ. ख. 54/93)

नारायणश्च शम्भुश्च संहृत्य स्वगणान् बहून्।
शुद्धसत्वस्वरूपीचकृष्णे लीनश्च निर्गुणे।। (प्रकृ. ख. 54/93)

आगे सुयज्ञ सुतपा से पूछते हैं- "ब्रह्माजी की आयु पूर्ण होनेपर समस्त लोकों के संहारकारी कालाग्निरुद्र, तमोगुण तथा सत्त्वगुण यदि मृत्युञ्जय शिव में विलीन होते हैं तथा यदि उस प्राकृत लय की बेला में शिव निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्ण में लीन होते हैं तो आपके गुरु भगवान् शिवका नाम श्रुति में मृत्युञ्जय क्यों रक्खा गया?" (प्रकृ. ख. 54/102-103)

सुतपा उत्तर देते हैं- "ब्रह्माजी की आयु पूर्ण होनेपर ब्रह्मा आदि समस्त लोकों का संहार

करनेवाली मृत्युकन्या जलबिम्ब की भाँति नष्ट हो जाती है। ऐसी कितनी ही मृत्युकन्याओं और करोड़ो ब्रह्माओं का लय हो जानेपर यथासमय भगवान् शिव सत्त्वरूपधारी निर्गुण श्रीकृष्ण में लीन होते हैं। मेरे गुरु भगवान् शिव ने मृत्युकन्यापर सदा ही विजय पायी है। परन्तु मृत्यु ने कभी शिव को पराजित नहीं किया है..........। अतः भगवान् शिव का मृत्युञ्जय नाम उचित ही है। शम्भु, नारायण और प्रकृति - इन तीनों नित्य तत्त्वों का परमात्मा श्रीकृष्ण में लय होना लीलामात्र है, वास्तवीक नहीं है। स्वयं निर्गुण परमपुरुष परमात्मा ही काल के अनुसार सगुण होते हैं। वे स्वयं ही माया से नारायण, शिव एवं प्रकृति के रूप में प्रकट होते हैं; अतः सदा उनके समान ही हैं। जैसे अग्नि और उसकी चिनगारियों में भेद नहीं है, वैसे ही नारायण, शिव तथा श्रीकृष्ण में कोई अन्तर नहीं है। ब्रह्माजी के द्वारा प्रत्येक कल्प में जिन - जिन रुद्र, आदित्य आदि की सृष्टि हुई है, वे सब मृत्युकन्या से पराजित होने के कारण नश्वर हैं। परंतु शिव की सृष्टि ब्रह्माजी ने नहीं की है। शिव सत्य, नित्य एवं सनातन हैं।" (प्रकृ. ख. 54 / 105 - 111)

शम्भुर्नारायणस्यैव प्रकृतेश्च नराधिप।
नित्यानां लीनता नित्येतन्मायान तु वास्तवी।।
स्वयं पुमान् निर्गुणश्च कालेनसगुणः स्वयम्।
स्वयंनारायणः शम्भुर्माययाप्रकृतिः स्वयम्।।
तदंशस्तत्समः शश्वद् यथावह्नेः स्फुलिङ्गवत्।
ये ये च ब्रह्मणासृष्टारुद्रादित्यादयस्तथा।।
कल्पेकल्पेजितास्तेते नश्वरामृत्युकन्यया।
नशिवोब्रह्मणासृष्टः सत्यो नित्यः सनातनः।।

(ब्रह्मवै. पु. प्रकृ. ख. 54 / 108 - 111)

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्गुणब्रह्म - जो अनेक नामों, यथा सदाशिव, महाविष्णु, श्रीकृष्ण, नारायण आदि, से जाना जाता है - ही सगुणरूप में शिव, विष्णु, प्रकृति आदि रूपों में व्यक्त होकर प्रत्येक कल्पों में नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं। अतः तात्त्विक दृष्टि से नारायण, कृष्ण, शिव सभी एक ही हैं और वे सब अग्नि की चिनगारी की भाँति निर्गुण ब्रह्मरूपी अग्नि से अभिन्न हैं। पुनः भगवान् शिव प्रलयंकारी देव होने के नाते समस्त सृष्टि एवं देवों को अपने में लीन करने के बाद ही अपने को निर्गुण रूप में लीन करेंगे। इस प्रकार वे कालों के काल एवं प्रलयंकारी होने के कारण मृत्युञ्जय कहलाते हैं क्योंकि उनका कोई भी नाश या प्रलय नहीं कर सकता। वे स्वेच्छा से ही सगुणरूप त्याग कर निर्गुणरूप धारण कर लेते हैं। सगुण से निर्गुण होना या निर्गुण से सगुण होना मात्र लीला है वास्तवीक नहीं। दूसरे शब्दों में निर्गुण एवं सगुण का भेद यथार्थ नहीं है मात्र प्रातिभासिक है। जैसे रस्सी में साँप के भ्रम की अवस्था में रस्सी के वास्तवीक स्वरूप में जो परिवर्तन दीखता है (अर्थात्

साँप का रूप दीखना) वह प्रातिभासिक सत्य या रूप कहलाता है। इसी प्रकार माया या प्रकृति का आश्रय ग्रहण कर निर्गुण ब्रह्म सगुणरूप धारण करता है।

दूसरी बात जो उपरोक्त उद्धरणों से सिद्ध होती है कि भगवान् शिव एवं नारायण दोनों ही शुद्ध सत्त्वरूप हैं। आम प्रचलित धारणाओं, कि भगवान् शिव तामसिक हैं और नारायण सात्त्विक, का स्पष्ट खण्डन उपरोक्त उद्धरण में किया गया है। एक अन्य स्थल पर(गोलोकवासी) कृष्ण(कैलासवासी) शिवजी से कहते हैं कि "नित्य शरीर का विनाश नहीं होता, परन्तु प्राकृत शरीर सदा नश्वर होता है। भगवन्! हम दोनों के शरीर नित्य हैं(क्योंकि शुद्ध सत्त्व से निर्मित शरीर चिन्मय, दिव्य एवं विनाशरहित होता है और हमलोगों का शरीर शुद्ध सत्त्व से निर्मित है)। हमारे अंशभूत जो अन्य जीव हैं, उनके शरीर त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण प्राकृत कहलाते हैं। प्राकृत शरीर सदा ही विनाशशील है। (एकादश)रुद्रादि तुम्हारे अंश हैं और विष्णुरूपधारी मेरे अंश।"

नित्यं विनाशरहितं नश्वरं प्राकृतं सदा।
अहं त्वं चापि भगवान्नाऽऽवयोर्नित्यविग्रहः।।
आवयोरंशभूता ये प्राकृता नष्टविग्रहाः।
रुद्रादयस्त्वदंशाश्च मदंशा विष्णुरूपिणः।। (ब्रह्मवै. पु. श्रीकृष्णज. ख. 43/65-66)

इस उद्धरण से भी स्पष्ट होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण एवं शिवजी के स्वरूप या विग्रह समानरूप से(शुद्ध सत्त्व-तत्त्व से निर्मित होने के कारण) नित्य(एवं पवित्र) हैं।

श्रीकृष्णजन्मखण्ड अध्याय 41 में वसिष्ठजी कह रहे हैं कि "ईश्वर स्वयं सृष्टि-कार्य का सम्पादन करने के लिये तीन रूप धारण करते हैं तथा सृष्टिकर्त्ता 'ब्रह्मा' पालनकर्त्ता 'विष्णु' एवं संहारकर्त्ता 'शिव' नाम से प्रसिद्ध होते हैं; जो 'ब्रह्मा-रूप' से ब्रह्मलोक में, 'विष्णु-रूप' से क्षीरसागर में तथा 'शिव-रूप' से कैलास में वास करते हैं; वे परब्रह्म परमेश्वर ही 'श्रीकृष्ण' कहे गये हैं। ब्रह्मा आदि सभी रूप उनकी विभूतियाँ हैं।"

य ईशस्त्रिविधां मूर्तिं विधत्ते सृष्टिकर्मणि।
सृष्टिस्थित्यन्तजननीं ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्।।
ब्रह्मा च ब्रह्मलोकस्थो विष्णुः क्षीरोदवासकृत्।
शिवः कैलासवासी च सर्वाः कृष्णविभूतयः।। (श्रीकृ. ज. ख. 41/64-65)

श्रीकृष्णजन्मखण्ड अध्याय 36 में श्रीकृष्ण राधा से शिवतत्त्व के बारे में कह रहे हैं कि- "स्वयं शिव मेरे अंश हैं, जगत् के संहारक हैं और मेरे समान ही तेज, ज्ञान तथा गुण से परिपूर्ण हैं। योगी लोग उनका ध्यान करते हैं।"

स्वयं शिवो मदंशश्च संहर्ता जगतां च यः।
तेजसा मत्समः पूर्णो ज्ञानेन च गुणेन च।।
ध्यायन्ति योगिनो यं स योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः। (वही 36/15-16)

वे पुनः कहते हैं "................ तदन्तर मैं अपने प्रिय भगवान् शंकर को वृषरूप से पीठ पर वहन करने लगा; क्योंकि तीनों लोकों में शिव से बढ़कर प्रियतम मेरे लिये दूसरा कोई नहीं है। ब्रह्मा मेरे मनस्वरूप, महेश्वर मेरे ज्ञानस्वरूप और मूल प्रकृति ईश्वरी भगवती दुर्गा मेरी बुद्धिरूपा हैं।"

ततोऽहं वृषरूपेण वहामि तेन तं प्रियम्।
मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः।। (श्रीकृष्णजन्मखण्ड 36/57)
मनःस्वरूपो ब्रह्मा मे ज्ञानरूपो महेश्वरः।
बुद्धिर्भगवती दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी।। (वही 36/58)

उपरोक्त उद्धरणों में भगवान् शिव को जब श्रीकृष्ण अपना अंश बता रहे हैं तो वहाँ वे अपने निर्गुणरूप के सन्दर्भ में कथन कर रहे हैं। क्योंकि सगुण साकार कृष्ण की उत्पत्ति के पहले से ही भगवान् शिव विराजमान थे। अभिप्राय यह है कि निर्गुण श्रीकृष्ण अर्थात् ब्रह्म से ही सगुण शिव एवं श्रीकृष्ण की उत्पति हुई है। फलस्वरूप दोनों ही समानरूप से तेज, ज्ञान तथा गुण से सम्पन्न हैं। जहाँतक भगवान् शिव तथा श्रीकृष्ण के सम्बंधों का सवाल है वे दोनों एक दूसरे से घनिष्ठ प्रेम रखते हैं। उपरोक्त उद्धरण में कृष्ण वृषरूप धारणकर भगवान् शिव के वाहन का कार्य करते हैं क्योंकि वे उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं तथा उनके भार को अन्य कोई नहीं उठा सकता।

वाहनं वृषरूपोऽहमन्यस्तं वोढुमक्षमः। (श्रीकृष्णज. खं. 36/101)

भगवान् कृष्ण राधा से आगे कहते हैं कि- "शंकर परमात्मा हैं। शिव मेरे लिये प्राणों से भी बढ़कर हैं। उन त्रिलोचन में मेरा मन सदा लगा रहता है। भगवान् भव से बढ़कर मेरा प्रिय और कोई नहीं है। राधे! मैं गोलोक और बैकुण्ठ में नहीं रहता। तुम्हारे वक्ष में भी वास नहीं करता। मैं तो सदाशिव के प्रेमपाश में बँधकर उन्हीं के हृदय में(अर्थात् उनके अत्यन्त समीप) निरन्तर निवास करता हूँ।"

शंकरः परमात्मा मे प्राणेभ्योऽपि परः शिवः।
त्र्यम्बके मन्मनः शश्वन्न प्रियो मे भवात्परः।।
न संवसामि गोलोके वैकुण्ठे तव वक्षसि।
सदा शिवस्य हृदये निबद्धः प्रेमपाशतः।। (श्रीकृष्णजन्मखण्ड 36/108, 110)

ब्रह्मखण्ड के अध्याय 6 के अन्तर्गत भी भगवान् श्रीकृष्ण भगवान् शिव से कहते हैं कि "तुमसे बढ़कर प्रिय मेरे लिये दूसरा नहीं है। तुम मेरी आत्मा से बढ़कर हो।"

---

1. लिंग पुराण(पूर्वार्द्ध/72/173-174) में यह वर्णन है कि पूर्वकाल में विष्णु भगवान् ने शिवजी से उनका वाहन बनने का वरदान माँगा था। उसी वर के फलस्वरूप वे उनके वाहन बने।

जनार्दनोऽपिभगवान्नमस्कृत्यमहेश्वरम्। कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्राह साम्बन्त्रियम्बकम्।।
वाहनत्वन्तवेशान! नित्यमीहे प्रसीद मे। त्वयि भक्तिश्चदेवेश! देवदेव नमोस्तुते।।
(लिंग पु. 1/72/173-174)

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः। (ब्रह्मखण्ड 6/31)

शिवपूजा की महिमा के प्रसंग में श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 75वें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि "मेरे लिये शंकर से बढ़कर दूसरा प्रिय नहीं है। 'महादेव, महादेव, महादेव' – इस प्रकार बोलनेवाले पुरुष के पीछे – पीछे मैं नामश्रवण के लोभ से फिरता रहता हूँ। शिव नाम सुनकर मुझे बड़ी तृप्ति होती है, ...शंकर मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली आद्या नारायणी शक्ति है, जिसके द्वारा मैं सृष्टि करता हूँ, जिससे ब्रह्मा आदि देवता उत्पन्न होते हैं, ...जिससे सृष्टि चलती है और जिसके बिना संसार का अस्तित्व ही नहीं रह सकता; वह शक्ति मैंने शिव को अर्पित की है।"

..............................नास्ति मे शंकरात्प्रियः।
महादेव महादेव महादेवेतिवादिनः।।
पश्चाद् यामि च संतृप्तो नामश्रवणलोभतः।
.....................शिवः प्राणाधिकश्च मे।
आद्या नारायणी शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।।
करोमि च यया सृष्टिं यया ब्रह्मादिदेवताः।
..............................यया सृष्टिः प्रजायते।।
यया विना जगन्नास्ति मया दत्ता शिवाय सा। (श्रीकृष्णजन्मखण्ड 75/91-95)

उपरोक्त उद्धरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं। पहली बात यह कि भगवान् शिव एवं कृष्ण में अत्यन्त प्रेम है। तथा दूसरी बात यह है कि भगवान् कृष्ण की नारायणी शक्ति और भगवान् शिव की आद्या शक्ति दोनों एक ही हैं। क्योंकि जिस प्रकार निर्गुण कृष्ण और निर्गुण शिव में कोई भेद नहीं है, उसी प्रकार आद्या शक्ति उमा एवं नारायणी शक्ति में भी भेद नहीं हैं। 75वें अध्याय का उपरोक्त उद्धरण सगुण श्रीकृष्ण का नन्द बाबा को दिये उपदेश का एक अंश है जो शिवलिंग पूजा की महिमा के सन्दर्भ में कहा गया है। यहाँ पर जब सगुण कृष्ण अपनी नारायणी शक्ति को भगवान् शिव को सौंपने की बात करते हैं तो वहाँ पर उनका कथन उनके निर्गुणरूप के सन्दर्भ में है। क्योंकि वर्तमान जन्म में उन्होंने स्वयं भगवान् शिव की उपासना की है तथा उनसे वर प्राप्त किये हैं जिनका उल्लेख महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों में है, जिनमें से कुछ का उल्लेख इसी पुस्तक में विस्तार से किया गया है। इस पुराण में भी (श्रीकृष्णज. खं अध्याय-75/86-87) इस बात का संकेत है कि उन्होंने शिव-पूजा की थी। वहाँ कहा गया है कि "जो मनुष्य मेरे द्वारा पूजित प्रियतम शिव की निन्दा करते हैं, ... वे नरक की यातना भोगते हैं।"

मत्पूजितं प्रियतमं शिवं निन्दन्ति ये नराः।।
पच्यन्ते निरये तावद्यावद्वै ब्रह्मणः शतम्। (श्रीकृष्णजन्मखण्ड 75/86-87)

काशीमाहात्म्य

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भगवान् विष्णु का वचन है कि "जब मैंने लोकरक्षा के निमित्त सदाशिव का स्मरण किया तो वे प्रादेशमात्र लिंगरूप धारण कर मेरे हृदय से बाहर निकल आये और बढ़ते-बढ़ते पाँच कोस के हो गये। वे छत्राकार परंज्योति के रूप में आकाश में छा गये, उसी परंज्योति को वेदों में 'काशी' कहा गया है। वह कभी छत्राकार दीख पड़ती है, कभी दण्डाकार, कभी लिंगाकार, कभी पिण्डाकार और कभी त्रिकोण के आकार की नजर आती हैं[1]।"

काशीमाहात्म्य के सन्दर्भ में ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा गया है कि-

जितेन्द्रियाः पापविवर्जिताश्च, शान्ता महान्तो मधुसूदनाश्रयाः।
अन्येषु तीर्थेष्वपि मुक्तिभाजो, भवन्ति काश्यामपि को विशेषः।।*

अर्थात्- 'जितेन्द्रिय, पापरहित, शान्त तथा भगवान् के भक्त महात्मा पुरुष तो अन्य तीर्थों में भी मुक्ति-लाभ कर सकते हैं, काशी में ही कौन सी विशेषता है? -ऐसा प्रश्न उठाकर समाधान किया गया है-

विशेषं शृणु वक्ष्यामि काश्याः कथयतो मम।
क्व तानि साधनान्यत्र स्वल्पान्यपि महामते।।
भवन्ति काशी माहात्म्यात् सिद्धान्येव न संशयः।
अन्यत्र साधुसुकृतैः कृतैर्मुच्येत वा न वा।।
अत्र साधनवैकल्ये काशी पूर्णं प्रकल्पयेत्।

इसका तात्पर्य यह है कि साधन-सम्पति से युक्त अधिकारियों की मुक्ति काशी से अतिरिक्त स्थानों में भी हो जाती है, परन्तु काशी में तो सभी की मुक्ति होती है, यही उसकी विशेषता है।*

शिवनिन्दा का फल

नामापराधों की चर्चा करते हुए पद्मपुराण तथा नारदपुराण आदि ग्रन्थों में कहा गया है कि भगवान् शिव की अथवा विष्णु की निन्दा करनेवाले को अत्यधिक पाप का भागी बनना पड़ता है। जिस पुराण की हम चर्चा कर रहे हैं उसमें भगवान् शिव की निंदा करने को बड़ा ही भयंकर पाप बताया गया है। ब्रह्मखण्ड के छठें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुख से भगवान् शिव से कह रहे हैं कि तुमसे(भगवान् शिव से) बढ़कर कोई भी मेरा प्रिय नहीं है तथा "जो पापिष्ठ, अज्ञानी और चेतनाहीन मनुष्य तम्हारी निन्दा करते हैं, वे तबतक कालसूत्र नरक में पकाये जाते हैं, जबतक चन्द्रमा और सूर्य की सत्ता रहती है।"

---

[1] काशी-केदार माहात्म्य; कल्याण, शिवांक, पृ. 615; गीताप्रेस गोरखपुर।

* काशीमरणान्मुक्तिः, कल्याण, शिवांक, पृ. 412; गीताप्रेस गोरखपुर।

ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतनाः।।
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ। (ब्रह्मखण्ड 6/31-32)

श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 40वें अध्याय में एक प्रसंग है। हिमालय अपनी पत्नी सहित जब शिवभक्ति में लीन होने लगे तो यह सब देखकर देवताओं की चिन्ता बढ़ने लगी(40/111)। ....वे आपस में कहने लगे-यदि हिमालय अनन्य भक्ति से भारत में भगवान् शिव को कन्यादान करेंगे तो निश्चय ही निर्वाण-मोक्ष को प्राप्त होंगे(40/112-113)। ....हिमालय यदि पृथ्वी छोड़कर चला जायगा तो इसका नाम रत्नगर्भा अवश्य ही मिथ्या हो जायगा(40/114)। यह सब सोचकर देवताओं ने आपस में सलाह कर गुरु बृहस्पति को हिमालय के घर जाने के लिये निवेदन करने गये। वे बोले गुरुदेव! आप हिमालय के यहाँ जाकर उनके समक्ष भगवान् शिव की निन्दा कीजिये .... ताकि हिमवान् अनिच्छा से अपनी पुत्री शिव को प्रदान करें। ऐसा करने से कन्यादान का फल कम हो जायगा। कालान्तर में गिरिराज भले ही मुक्त हो जायँ, परंतु इस समय तो इन्हें पृथ्वी पर रहना ही चाहिये(40/127-130)। ...."

देवताओं के वचन सुनकर गुरु बृहस्पति ने दोनों हाथ कानों में लगा लिये और देवताओं को फटकारते हुए कहा(40/131)- "जो पापी शिव ....की निन्दा करते हैं, वे चन्द्रमा और सूर्य के रहनेतक कालसूत्र नरक में पकाये जाते हैं(40/133-135)। ....निश्चय ही शिव की निन्दा करनेवाले देवता नरक में पड़ेंगे। ब्रह्माजी की आज्ञा से दक्ष प्रजापति ने शूलपाणि शंकर को अपनी पुत्री दी। उसी के पुण्य से शिव की निन्दा करने पर भी उन्हें पाप नहीं लगा; अपितु ऐश्वर्य की प्राप्तिं हुई। उन्होंने अनिच्छा से ही भगवान् शंकर को कन्यादान किया था इसीलिये उन्हें चौथाई पुण्य की प्राप्ति हुई। अतएव वे सारूप्य मोक्ष को न पाकर तुच्छ सृष्टि का ही अधिकार प्राप्त कर सके ....(40/146-148)। ब्रह्माजी पुनः देवताओं से उपरोक्त खण्ड के 41 वें अध्याय में कह रहे हैं कि " मैं शिव की निन्दा करने में समर्थ नहीं हूँ। यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है। शिव की निन्दा सम्पति का नाश करनेवाली और विपत्ति का बीज है।" (41/6)

नाहं कर्तुं क्षमो वत्साः शिवनिन्दां सुदुष्कराम्।
संपद्विनाशरूपां च विपदो बीजरूपिणीम्।। (ब्रह्मवै. पु. श्रीकृष्णज. ख. 41/6)

श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 75वें अध्याय में भगवान् कृष्ण भगवान् शिव तथा शिवलिंग की पूजा के महत्त्व को समझाते हुए कहते हैं कि शिवलिंग की पूजा से मुक्ति और शिवलिंग और शिवपूजा न करने से नरक की प्राप्ति होती है। वे पुनः कहते हैं कि "जो मनुष्य मेरेद्वारा पूजित प्रियतम शिव की निन्दा करते हैं, वे सौ ब्रह्माओं की आयुपर्यन्त नरक की यातना भोगते हैं।" (वही 75/86-87)

उपरोक्त उद्धरणों में शिवनिन्दा को नरक का हेतु तथा शिवपूजा को मोक्ष की प्राप्ति का हेतु बताया गया है। अन्तिम उद्धरण में इस बात का संकेत मिलता है कि भगवान् श्रीकृष्ण के भी पूज्य भगवान् शिव

हैं। अन्य ग्रन्थों में श्रीकृष्णजी द्वारा उपमन्यु से दीक्षा ग्रहण कर शिवपूजा करने का उल्लेख है।

उपसंहार

ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णभक्त वैष्णवों का एक प्रमुख पुराण है। इस पुराण में भी अन्य वैष्णव पुराणों की भाँति प्रसंगवश भगवान् शिव की महिमा का गान हुआ है। इस पुराण में शिव को भी ब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है। उन्हें सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता, अनन्त, गुणातीत ईश्वर, प्रकृति के ईश्वर, मृत्युञ्जय, वेदकर्त्ता, मन्त्र, जप और तप के फलदाता, भक्तों की रूचि के अनुसार नाना रूप धारण करनेवाला सबके आत्मस्वरूप, परमानन्दमय विग्रहवाला, कल्याणस्वरूप, ज्ञानरूप, भोग एवं मोक्षदाता, शीघ्र प्रसन्न होनेवाला, करुणासागर तथा वेद, मन-वाणी, देश-काल से परे कहा गया है।

उन्हें तत्त्वज्ञान, मोक्षादि के अलावा हरिभक्ति या कृष्णभक्ति प्रदान करनेवाला भी कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्ण राधाजी से कहते हैं कि भगवान् शिव से बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है। वे मेरी भक्ति, दास्यभाव, मुक्ति, समस्त सम्पत्ति तथा सम्पूर्ण सिद्धि को देने में समर्थ हैं। अतः शंकर से बढ़कर कोई दाता नहीं है। उन्हें योगियों एवं ज्ञानियों के गुरु का गुरु भी कहा गया है। अर्थात् वे सबके गुरु हैं। वे न केवल योग, अध्यात्म, एवं तत्त्वज्ञान के गुरु हैं अपितु वे युद्धविद्या, तन्त्र, मन्त्र आदि सभी विद्याओं के गुरु हैं।

भगवान् शिव का स्वरूप बड़ा ही विलक्षण है-वे जटाधारी, भस्मधारी, सर्पधारी, वृषधारी, श्मशानवासी, त्रिनेत्रधारी इत्यादि हैं। उनके इन विलक्षण स्वरूप पर भगवान् कृष्ण प्रकाश ड़ालते हुए राधा को बता रहे हैं कि तपस्वी, योगी, दयालु, शरणागत की रक्षा करनेवाले, भक्त एवं प्रेमी आदि गुणों से युक्त होने के कारण ही उन्होंने अपना विलक्षण रूप धारण कर रखा है।

भगवान् शिव को भगवान् श्रीकृष्ण से अभिन्न बताया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण को भगवान् शिव राधा से भी ज्यादा प्रिय हैं। भगवान् शिव के नाम की महिमा बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो महादेव शब्द का उच्चारण करते हैं उनके पीछे-पीछे मैं उस नाम के श्रवण के लोभ से जाता हूँ। जो मनुष्य 'शिव' शब्द का उच्चारण करके प्राणों को त्यागता है उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। 'शिव' शब्द के उच्चारण से मोक्ष या कल्याण की प्राप्ति होती है इसीलिये महादेवजी को शिव कहा गया है। नारदपुराण, जो कि एक वैष्णव पुराण है, के पूर्व भाग के चतुर्थ पाद (अध्याय 101/3) में ब्रह्मवैवर्तपुराण के सन्दर्भ में कहा गया है कि यह पुराण भगवान् विष्णु एवं शिव दोनों में अभेद सिद्धि के लिये ही उपदिष्ट है।

इस पुराण में शिवलिंगपूजा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मिट्टी, राख, गोबर या रेत से शिवलिंग का निर्माण करके उसकी पूजा करनेवाला सौ कल्पोंतक स्वर्ग में निवास करता है। जो ब्राह्मण शिवलिंग की पूजा करता है, वह जीवन मुक्त हो जाता है और जो

शिवपूजा से रहित है वह नरकगामी होता है।

इस पुराण में कई (शिवसंबंधी) उपयोगी स्तोत्र आदि हैं। जिनमें से 'ब्रह्माण्ड विजय' कवच, 'संसार-पावन' कवच और बाणासुर द्वारा प्रयुक्त शिवस्तोत्र प्रसिद्ध हैं। जिस प्रकार शिव-आराधना का अमित फल है उसी प्रकार शिवनिन्दा का भी बड़ा भयंकर फल बताया गया है। जो शिवजी की निन्दा करता है वह कल्पोंतक नरकयातना भोगता है। श्रीकृष्ण ने बताया है कि शिवजी तो हमारे भी पूज्य हैं अतः उनकी निन्दा करनेवाला घोर नरक में सौ ब्रह्माओं की आयुपर्यन्त यातना भोगता रहता है। इस पुराण में भी अन्य पुराणों की भाँति काशी के माहात्म्य को बताते हुए कहा गया है कि वहाँपर मरनेवालों को भगवान् शंकर की कृपा से सभी को मुक्ति प्राप्त होती है।

(प्रस्तुत निबंध कल्याण के 'संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क' तथा 3 खंडो में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा क्रमशः1981, 84 तथा 85 में प्रकाशित 'ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)

* * *

स्नान का महत्त्व

सनातनधर्म में स्नान को मात्र शरीर की बाहरी सफाई का ही साधन नहीं माना गया है, अपितु इसे एक धार्मिक कृत्य भी माना गया है। पद्ममहापुराण में कहा गया है कि-

प्राणिनां जीवनं वारि प्राणा वारिणि संस्थिताः।।
नित्यं स्नानेन पूयन्ते येऽपि पातकिनो नराः।
प्रातः स्नानं हरेद् वैश्य बाह्याभ्यन्तरजं मलम्।।
प्रातः स्नानेन निष्पापो नरो न निरयं व्रजेत।
स्नानं विना तु यो भुङ्क्ते मलाशी स सदा नरः।।
अस्नायी यो नरः तस्य विमुखा पितृदेवताः।
स्नानहीनो नरः पापः स्नानहीनोनरोशुचिः।।
अस्नायी नरकं भुंक्ते पुनस्कीटादिषु जायते।

(पद्ममहापु. स्वर्गखण्ड 31/53-57)

भावार्थ यह है कि जल ही व्यक्ति का जीवन एवं प्राण है। पातकी व्यक्ति भी नित्य स्नान द्वारा पवित्र हो जाता है। प्रातः-स्नान से बाहरी एवं भीतरी मल दूर हो जाते हैं। प्रातःस्नान से व्यक्ति निष्पाप हो जाने से नरक को नहीं प्राप्त होता। बिना स्नान के भोजन नहीं करना चाहिये। जो बिना स्नान के ही भोजन करता है, वह सदा अपवित्र रहता है। स्नान नहीं करनेवालों से उनके पितृगण रुष्ट हो जाते हैं। उन्हें पापी एवं अपवित्र माना गया है। वे नरक भोगने के बाद कीटादि योनियों में जन्म लेते हैं।

लिंग पुराण में शिवतत्त्व तथा उसकी उपासना

यह शैवमत का एक महत्त्वपूर्ण पुराण है। शिव पुराण की भाँति इसमें भी शिवतत्त्व की महिमा का विवेचन विस्तार के साथ हुआ है। परन्तु शिव पुराण की तरह इसका जन साधारण में उतना प्रचार नहीं हुआ। कारण यह है कि शिव पुराण प्राय: कथात्मक है और श्रोता एवं पाठक गण उसे अपेक्षाकृत आसानी से शीघ्र हृदयंगम कर लेते हैं जबकि लिंगपुराण में शैव-सिद्धान्तों का विवेचन शुष्क दार्शनिक रीति से किया गया है तथा उसके अन्दर कथाएँ ज्यादा नहीं हैं। नारद पुराण के अनुसार भगवान् शंकर ने अग्निलिंग में स्थित होकर अग्निकल्प की कथा का आश्रय ले धर्म आदि की सिद्धि के लिये ब्रह्माजी को जिस लिंग पुराण का उपदेश दिया था, उसका व्यासदेव ने दो भागों में बाँटकर (पूर्व एवं उत्तरभाग) प्रवचन किया है। अनेक प्रकार के उपारव्यानों से युक्त यह लिंग पुराण एकादश सहस्त्र श्लोकों से युक्त और भगवान् शिव की महिमा का सूचक है। यह सब पुराणों में श्रेष्ठ तथा त्रिलोकी का सारभूत है।

यच्च लिंगाभिधे तिष्ठन् वह्निलिंगे हरोऽभ्यधात्।
मह्यं धर्मादिसिद्ध्यर्थं अग्निकल्पकथाश्रयम्।।
तदेवव्यासदेवेन भागद्वयसमाचितम्।
पुराणं लिंगमुदितं बह्वारव्यानविचित्रितम्।।
तदेकादशसाहस्त्रं हरमाहात्म्यसूचकम्।
परं सर्वपुराणानां सारभूतं जगत्त्रये।। (नारद पु. पूर्वभाग 102/2-4)

कुछ विद्वानों ने यह प्रश्न उठाया है कि क्या ब्रह्मा को सुनाया गया लिंग पुराण और व्यासजी का लिंग पुराण, जो हमें उपलब्ध है, दोनों एक ही हैं या भिन्न-भिन्न। इस प्रकार का प्रश्न उठाने का आधार यह है कि (1) वर्तमान में पाया जानेवाला लिंग पुराण 11000 श्लोकोंवाला न होकर 9185 श्लोकोंवाला है तथा (2) वर्तमान लिंग पुराण(1/2/1) के अनुसार इसकी कथा ईशानकल्प(न कि अग्नि कल्प) की है। इस समस्या का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि अग्नि एवं ईशान कल्पों को पर्याय मान लिये जायँ। ईशान अर्थात् भगवान् शिव का रूप अग्नि भी है। अत: इन्हें पर्याय मानने में कोई दार्शनिक कठिनाई प्रतीत नहीं होती। हम वर्तमान लिंग पुराण को ब्रह्मावाला ही मान कर चलेंगे।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण के प्रमुख देव भगवान् शिव हैं। उन्हें ही ब्रह्माण्ड की सर्वोच्च सत्ता, परम तत्त्व, ब्रह्म तथा परमेश्वर कहा गया है। प्रथम अध्याय में सूतजी भगवान् शंकर की वन्दना करते हुए कहते हैं कि जिसका तन शब्दब्रह्म है, जो साक्षात् शब्दब्रह्म का प्रकाशक है, जिसके अवयव अव्यक्त लक्षणोंवाले वर्ण हैं जो नाना रूपों में व्यक्त होते हैं, जो 'अ', 'उ' और 'म' वर्णों से बने हैं, जो स्थूल एवं सूक्ष्म हैं, जो परात्पर हैं, जो ओंकारस्वरूप हैं, जिसका मुख ऋग्वेद, जिह्वा सामवेद, ग्रीवा यजुर्वेद

और हृदय अथर्ववेद है, जो प्रधान एवं पुरुष से परे है, जो जन्म और मृत्यु से रहित है, जब वह तमोगुण से युक्त होता तो कालरुद्र, रजोगुण से ब्रह्मा, तथा सतोगुण से युक्त होने पर सर्वव्यापी विष्णु कहलाता, जब वह गुणों से रहित है तो महेश्वर कहलाता, जो प्रधान को आवृत्त कर सात रूपों में[1], फिर 16 रूपों में [2] और अन्त में 26 रूपों में [3] व्यक्त होता, जो सृष्टि, पालन एवं संहाररूपी लीला के लिये लिंगरूप धारण करता है, उसे न्यायपूर्वक प्रणाम कर लिंग पुराण का शुभारंभ करता हूँ।

शब्द ब्रह्मतनुं साक्षाच्छब्दब्रह्मप्रकाशकम्।
वर्णावयवमव्यक्तलक्षणं बहुधा स्थितम्।।
अकारोकारमकारं स्थूलं सूक्ष्मं परात्परम्।
ओङ्काररूपमृग्वक्त्रं समजिह्वासमन्वितम्।।
यजुर्वेदमहाग्रीवमथर्वहृदयं विभुम्।
प्रधानपुरुषातीतं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्।।
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्वेनसर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वेमहेश्वरम्।।
प्रधानावयवं व्याप्य सप्तधाऽष्ठितं क्रमात्।
पुनः षोडशधा चैव षड्विंशकमजोद्भवम्।।
सर्गप्रतिष्ठासंहारलीलार्थं लिंगरूपिणम्।
प्रणम्य च यथान्यायं वक्ष्येलिङ्गोद्भवं शुभम्।।
(लिंग पुराण पूर्वभाग / अध्याय 1/श्लोक 19 - 24)

इन 6 श्लोकों में ही भगवान् शिव की सभी विशेषताओं का समावेश कर दिया गया है। फिर भी शिव के स्वरूप का विस्तृत वर्णन इस पुराण में अनेक स्थलों पर मिलता है। अव्यक्त तत्त्व, जो रूप, रस, गंध, शब्द, और स्पर्श आदि से रहित, गुणरहित(निर्गुण), ध्रुव एवं अक्षय है, उसे शिव कहा जाता है।

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शादिवर्जितम्।
अगुणं ध्रुवमक्षय्यम् अलिङ्गं शिवलक्षणम्।। (लिंग पु. 1/3/2 - 3)

वे सभी जीवों के आदिकर्त्ता, रक्षक या पालक तथा संहारक हैं। इस कारण से महेश्वर ब्रह्मा के भी अधिपति हैं। वे शिव, सदाशिव, भव, विष्णु एवं ब्रह्मा के नाम से जाने जाते हैं क्योंकि वे ही सबकुछ हैं(लि. पु. 1/3/37 - 38)। शिव की प्रेरणा से प्रधान द्वारा उत्पन्न असंख्य ब्रह्माण्ड अस्तित्व

1-बुद्धि, अंहकार और पाँच तन्मात्रायें। 2-पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच महाभूत तथा मन। 3-ऊपर(1 और 2 में वर्णित) के 23 पदार्थ, प्रधान, जीव तथा पुरुष। जब इन 26 तत्त्वों में महेश्वर को जोड़ दिया जाय तो वे 27वें तत्त्व हो जाते हैं। वास्तव में महेश्वर ही इन 26 रूपों में व्यक्त हो रहा है।

रखते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र विराजमान् हैं। पुनः अनेक कल्प भी सृष्टि में बीत चुके तथा भविष्य में होंगे। प्रत्येक कल्प में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र परिवर्तित होते रहते हैं। परन्तु भगवान् शिव अनेक न होकर एक ही हैं।

असंख्याताश्च संक्षेपात् प्रधानादन्वधिष्ठितात्।
असंख्याताश्च कल्पाख्या ह्यसंख्याताः पितामहाः।।
हरयश्चाप्यसंख्यातास्त्वेक एव महेश्वरः।
प्रधानादिप्रवृत्तानि लीलया प्राकृतानि तु।। (लिंग पु. 1/4/54-55)

अर्थात्-प्रधान के माध्यम से रची गयी इस प्रकार की असंख्य सृष्टियाँ हैं। कल्प एवं उनके ब्रह्मा एवं विष्णु भी असंख्य हैं। परन्तु महेश्वर एक ही हैं। प्रधान से उत्पन्न प्रकृति की क्रियायें उनकी (शिव की) लीलाएँ हैं।

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि शम्भु निष्कल (निर्गुण) आत्मा हैं जो स्वेच्छा से शरीर धारण करते हैं। सभी भूतों को वे दयापूर्वक सुख प्रदान करते हैं इसीलिये उनका नाम शंकर है। वे सर्वव्यापी आत्मा हैं। जो लोग संसार के भय से (आवागमन के भय से) योग की शरण ले संसार की क्रियाओं तथा भोगों से उपराम और विरक्त हो चुके हैं, उनपर वे कृपा करते हैं।

निष्कलस्यात्मनः शम्भोः स्वेच्छाधृतशरीरिणः।
शं रुद्रः सर्वभूतानांकरोतिघृणयायतः।।
शङ्करश्चाऽप्रयत्नेन तदात्मा योगविद्यया।
वैराग्यस्थं विरक्तस्य विमुक्तिर्यच्छमुच्यते।। (लिंग पु. 6/21-22)

विश्वरूप कल्प में ब्रह्माजी ने पुत्र की कामना से ईशान देव (शिव का एक रूप) की स्तुति की थी। इस स्तुति में वे शिवजी को अन्य कई विशेषणों के अलावा सभी प्रकार की विद्याओं के स्वामी, परमेश्वर, ब्रह्मा के भी अधिपति, ब्रह्म, ओंकारमूर्ति, देवों के स्वामी, जगत्कारण, वरदाता, सर्वभूतेश्वर आदि विशेषणों से भी युक्त माना है (लिंग पु. 1/16/6-15)।

भगवान् शिव ब्रह्माजी से कहते हैं कि मेरे द्वारा प्रसूत प्रकृति तुम्हारा स्रोत है, वही विष्णु आदि देवों की स्वामिनि है। वह अजन्मा है तथा कई नामों-गौरी, माया, विद्या, प्रधान, प्रकृति, कृष्णा, हैमवती आदि-से पुकारी जाती है। यही विश्व में प्रजा की सृष्टि करती है। मैं अजन्मा और सर्वव्यापी हूँ। तुम उसे गायत्री समझो (लिंग पु. 1/16/32-35)। भगवान् शिव एवं उनकी माया दोनों अभिन्नरूप से स्थित हैं।

शिवलिंग की उत्पत्ति संबंधी प्रश्न किये जाने पर सूतजी ऋषियों को ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर हुई लड़ाई का उल्लेख करते हैं। जब वे दोनों अपने को बड़ा सिद्ध करने के प्रयास में लड़ रहे थे तभी दोनों के समक्ष पृथ्वी एवं आकाश को व्याप्त करते हुए एक अग्निमय स्तंभ (लिंग)

प्रकट हुआ। शिवमाया से मोहित होने के कारण वे दोनों उस लिंग के ओर-छोर का पता! न लगा सके। तब उन दोनों ने लिंगरूप भगवान् को प्रणाम किया। तदनन्तर उस अग्नि स्तंभ से ओंकार की तेज ध्वनी निकली। विष्णुजी ने 'अ' वर्ण को स्तंभ के दाहिनी तरफ, वर्ण 'उ' को बाँयी तरफ तथा 'म' को उसके मध्य में देखा। स्तंभ के ऊपर से ओंकार का नाद गूँज रहा था। फिर सूतजी ने ओंकाररूप ब्रह्म का वर्णन करते हुए उससे वर्णों की उत्पत्ति का भी विवेचन किया। वे शब्द-ब्रह्म ही भगवान् शिव हैं।(लिंग पु. 1/17/3, 5, 33-38, 43-65, 80 आदि)

अग्निमय लिंग को देखकर भगवान् विष्णु ने जो स्तुति की उसमें उन्होंने शिवजी को वरदाता, लिंगरूप, सर्वव्यापी, अनन्त, अनामय, शाश्वत, वरिष्ठ, योगी, रक्षक, भक्षक, सतत सृष्टि करनेवाला, मृत्यु, भस्मधारी, गौरवर्ण, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि के कारण, आसानी से भवसागर तारनेवाला, पिनाकधारी, नागों का कंकण धारण करनेवाला, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, रजोगुण से रहित, प्रधान, चतुर्व्युह, सृष्टि एवं प्रलय के हेतु, मुक्तिस्वरूप, मुक्तिदाता, आत्मा, विष्णु, ओंकारस्वरूप, आदिदेव, सर्व, अजन्मा, प्रजापति, महादेव, सत्य, ब्रह्मा, देवेश्वर, सर्वज्ञ, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानगम्य, नीलकंठ, ईश्वर, अर्द्धनारीश्वर, यशप्रदाता, शान्तिदाता तथा रामेश्वर आदि-आदि कहा है(लिंग पु. 1/18/4-6, 10-11, 13-16, 18-19, 21-31, 34 और 37)।

विष्णु की स्तुति(लिंग पु. 1/18/1-38) सुनकर भगवान् शिव कहते हैं कि तुम दोनों(ब्रह्मा एवं विष्णु) पूर्वकाल में मेरे अंगों से पैदा हुए हो। ब्रह्मा दाहिने तथा तुम मेरे बायें अंग से प्रकट हुए थे(लिंग पु. 1/19/2-3)। अपनी भक्ति का वरदान देने के बाद पुनः विष्णुजी से वे कहते हैं कि तुम सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के कारण हो। तुम इस चराचर जगत् की रक्षा करो।

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्त्ता त्वं धरणीपते!।
वत्स! वत्स! हरे! विष्णो! पालयैतच्चराचरम्।। (लिंग पु. 1/19/11)

भगवान् शिव के उपरोक्त कथन को तथ्यात्मक नहीं मानना चाहिये बल्कि उसे वरदानात्मक माना जाना चाहिये। क्योंकि यह कथन अव्यभिचारी भक्ति का वरदान देने के बाद व्यक्त किया गया है। अर्थात् इस कथन का अर्थ यह है कि भगवान् विष्णु को कल्पविशेष वा सृष्टिविशेष में सृजन, पालन एवं संहार का अधिकार दिया गया है। तथा उनके पालन के अधिकार को लागू करने का आदेश भी दिया गया है।

शिवमाया से मोहित होने के कारण(1/20/17-18) एक बार पुनः ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद शुरू हो गया। दोनों एक दूसरे के उदर में प्रवेश कर अनन्त सृष्टियों को देखकर वापस आ गये और आपस में श्रेष्ठता के प्रश्न को लेकर लड़ने की स्थिति में आ गये। उसी समय उन्हें भगवान् शिव के दर्शन हुए। उन्हें देखकर ब्रह्मा विस्मित हो विष्णुजी से उनका परिचय पूछते हैं। परिचय देते हुए विष्णु उन्हें सर्वश्रेष्ठ एवं महान् देव, वरदाता तथा जगद्गुरु आदि बताते हुए

उनकी स्तुति की सलाह देते हैं(लिंग पु. 1/20/95-97)।

तदनन्तर वे दोनों भगवान् शिव की स्तुति करते हैं। यह स्तुति वायुपुराण की स्तुति (1/24/90-164) से काफी कुछ मिलती है। इस स्तुति में शिव को कई प्रचलित विशेषणों के अलावा सांख्य एवं योग के अधिपति, वेदों तथा स्मृतियों के स्वामी, पुराणपुरुष, विद्या एवं व्रतों के स्वामी, मन्त्रों के स्रोत तथा स्वामी, पशुपति, लक्ष्मीपति, भूत, वर्तमान एवं भविष्य के स्वरूप, तपरूप, अणु एवं महत् रूपवाले, मोक्ष, बन्धन, नरक एवं स्वर्गरूप, गुणातीत, पुष्टिदाता, बुढ़ापारहित(जरासिद्ध), विश्वरूप, सर्वत्र हाथ-पैरवाला, अप्रतिम, शुद्ध, बुद्ध, दृश्य एवं अदृश्य, लिंगरूपधारी, अपरिमित, सर्वस्वरूप, दुर्गम, तर्क्य एवं अतर्क्य, प्रणव तथा प्रणव के स्वामी, सर्वभूतात्मा, नर-नारीरूप, अप्रमेय, रक्षक, प्रदीप्त एवं निर्गुण, कामनाओं को पूरा करनेवाला, प्रकृति से परे, मृत्युरहित, शरणागत को दिव्य भोग प्रदान करनेवाले इत्यादि विशेषणों से भी विभूषित किया गया है(लिं. पु. 1/21/2-87)। स्तुति के अन्त में कहा गया है कि वे असंख्य गुणों से युक्त हैं, उनकी गिनती नहीं हो सकती। भगवान् शिव के दर्शन से उन दोनों की माया समाप्त हो गयी और वे दोनों समझ गये कि भगवान् शिव से ही उन दोनों की उत्पत्ति हुई है(लिं. पु. 1/22/6)। पुनः शिव ने विष्णु को अपने चरणों की भक्ति, सृष्टि करने तथा अधिदेव होने का वरदान दिया(लिं. पु. 1/22/11-12)।

ब्रह्माजी की सलाह से देवदारु वन के ऋषियों ने भगवान् शिव की लिंगरूप में उपासना की। उपासना के फलस्वरूप शिव के प्रकट होने पर उन्होंने उनकी स्तुति की। इस स्तुति में वे भगवान् शिव को विश्व का कारण, भूतपति, अनन्त बल-वीर्यसम्पन्न, अव्यय, गंगाधारी, त्रिनेत्र, त्रिशूलधारी, परमात्मा, संहारकर्त्ता, वेदों के प्रधान देवता, भूत, वर्तमान तथा भविष्य के सभी चराचरों का स्रष्टा आदि कहा है(लिं. पु. 1/31/37-43)। जब वे ऋषि भगवान् के मौलिक स्वरूप को देखते हैं तो पुनः उनकी स्तुति करते हैं(लिं. पु. 1/32/1-16)। इस स्तुति में अबतक जिन विशेषणों की चर्चा हम कर चुके हैं उन्हीं में से कुछ का प्रयोग हुआ है। एकाध नये विशेषणों का भी प्रयोग हुआ है जिनकी चर्चा महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

ब्रह्मा के पुत्र तण्डि ने भगवान् शिव की 1008 नामों[1] से स्तुति(लिं. पु. 1/65/54-168) कर गणाध्यक्ष का पद प्राप्त किया था। इस सहस्रनाम में शिव को अनेक गुणों से युक्त बताया गया है। ये नाम उनके गुणों के आधार पर ही रखे गये हैं। उदाहरण के लिये हम कुछ श्लोकों को लें-

---

[1] यद्यपि ये नाम एक हजार आठ से कम हैं। परन्तु अगर हम(1/65/61, 75 और 87) इन तीनों श्लोकों के अन्तर्गत आये 'मतः' शब्द को व्यक्तिवाचक नाम मान लें तो संख्या पूरी हो सकती है। पुनः बहुत से नाम एक समान हैं(अर्थात् एक ही नाम बार-बार आया है), अतः उन्हें जबतक हम अलग-अलग ढंग से नहीं समझेंगे या व्याख्या करेंगे तबतक नामों की संख्या पूरी नहीं होगी। लिंग पुराण की 'शिवतोषिनी' टीका में समान नामों की अलग-अलग व्याख्या की गयी है।

लोककर्त्ता पशुपतिर्महाकर्त्ता ह्यधोक्षजः।
अक्षरं परमं ब्रह्म बलवांश्छुक्र एव च।।
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पिता माता पितामहः।
स्वर्गद्वारं मोक्षद्वारं प्रजाद्वारं त्रिविष्टपः।।
देवासुरेश्वरो विष्णुर्देवासुरमहेश्वरः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्मा स्वयं भवः।।
व्रताधिपः परं ब्रह्म मुक्तानां परमा गतिः।
विमुक्तो मुक्तकेशश्च श्रीमाञ्छ्रीवर्धनोजगत्।।

(लिं पु. 1/65/101, 158, 162 तथा 168)

अर्थात् - इन श्लोकों में भगवान् शिव को लोकों का कर्त्ता, पशुपति, महान् कर्त्ता, अधोक्षज (अर्थात् जो विष्णु है या उनके तुल्य है), अक्षर (अविनाशी), परम (महान्), ब्रह्म, बलवान्, शुक्र, सदसद्, व्यक्त (दृश्य), अव्यक्त (अदृश्य), पितृ (पिता), मातृ (माता), पितामह (दादा), स्वर्गद्वार, मोक्षद्वार, प्रजाद्वार (जो भक्तों के प्रवेश का द्वार है), त्रिविष्टप (स्वर्ग), देवासुरेश्वर (देव एवं असुरों के स्वामी), विष्णु, देवासुर महेश्वर (देव एवं असुरों के महान् ईश्वर), सर्वदेवमय (सभी देवताओं से अभिन्न), स्वयंभू (अपने आप ही जो पैदा हुआ हो), व्रताधिप (व्रतों का स्वामी), परम (सर्वोच्च सत्ता), ब्रह्म, मुक्तानां परमा गति (मुक्त पुरुषों का सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य), विमुक्त, मुक्तकेश (जिसके बाल खुले हुए हों), श्रीमान् (ऐश्वर्यमान्), श्रीवर्धन (जो संपत्ति एवं ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है) तथा जगत् (विश्व) कहा गया है।

सृष्टि - प्रक्रिया को समझाते हुए सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि भगवान् शिव प्रकृति एवं पुरुष से परे परमात्मा हैं। उसी परमात्मा से परम कारण 'अव्यक्त', जिसे विचारक लोग प्रधान या प्रकृति कहते हैं, पैदा हुआ। यह प्रधान ही जगत् की उत्पत्ति का स्रोत है। यह महान् शाश्वत ब्रह्म है, यह सभी जीवों का भौतिक शरीर है, यह सभी भूतों का विग्रह है तथा ईश्वर की आज्ञा से ही (क्रिया के लिये) प्रेरित होता है। प्रारंभ में प्रधान ब्रह्म के रूप में ही स्थित होता है। इसका न आदि है और न ही अन्त। यह अजन्मा और सूक्ष्म है जो तीन गुणों से युक्त है। यह विश्व की सृष्टि का स्रोत होने के साथ ही शाश्वत भी है। (प्रारंभ में) यह न तो व्यक्त था और न ही ज्ञेय था।

महेश्वरो महादेवः प्रकृतेः पुरुषस्यच।
परत्वे संस्थितो देवः परमात्मा मुनीश्वराः!।।
अव्यक्तं चेश्वरात्तस्मादभवत्कारणं परम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः।।
जगद्योनिं महाभूतं परं ब्रह्म सनातनम्।
विग्रहः सर्वभूतानामीश्वराज्ञाप्रचोदितम्।।

अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम्।
अप्रकाशमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत।। (लिंग पु. 1/70/2-3, 5-6)

यहाँ पर प्रकृति एवं महेश्वर के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। प्रकृति 'अव्यक्तावस्था' में ब्रह्म से अभिन्न होती है। यह प्रकृति उसी ब्रह्म की प्रेरणा से सृष्टि-प्रक्रिया का विस्तार करती है। स्वयंभू महेश्वर शिव की तीन अवस्थायें हैं-ब्रह्मा के रूप में वे चतुर्मुख हैं, काल के रूप में वे संहारक हैं तथा पुरुष(विष्णु) रूप में सहस्त्र शीर्षोंवाले हैं। वे ब्रह्मा होकर सृष्टि करते, काल के रूप में संहार करते तथा पुरुष के रूप में वे उदासीन होते हैं।

चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चाऽन्तकः स्मृतः।
सहस्त्रमूर्धा पुरुषस्तिस्त्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः।।
ब्रह्मत्वेसृजतेलोकान्कालत्वेसङ्क्षिपत्यपि।
पुरुषत्वेह्युदासीनः .... (लिंग पु. 1/70/90-91)

भगवान् शिव विभिन्न नाम, रूप, आकृति तथा क्रियाओंवाली वस्तुओं की सृष्टि तथा संहार लीलावश करते रहते हैं।

नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया।
महेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च।। (लिंग पु. 1/70/94)

चूँकि महादेव नाना रूप धारण करते हैं तथा नाना गुणों से युक्त हैं इसलिये उन्हें अनेक नामों से पुकारा जाता है। उन्हें त्रिगुण, चतुर्व्युह, ऋषि, शिव, ओंकार, आदिदेव, अज, महादेव, सर्वव्यापक, ईश्वर, यज्ञ, केवल, स्वयंभू, कर्म, अग्नि, आदित्य आदि कहा जाता है (लिंग पु. 1/70/95-104)।

किसी प्रसंग में भगवान् विष्णु महादेवजी को महेश्वर, परमात्मा, नारायण, ब्रह्मा, ब्रह्म, अव्यक्त, अनन्त तथा शाश्वत आदि कहकर प्रणाम करते हैं।

महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने।
नारायणाय शर्वाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे।।
शाश्वताय ह्यनन्ताय अव्यक्ताय च ते नमः। (लिंग पु. 1/71/96-97)

त्रिपुरासुर के विनाश के लिये देवगण शिव की स्तुति करते हुए उन्हें सर्वात्मा, दुःख हरनेवाला, सर्वोच्चलक्ष्य, आदि, अन्त, अनन्त, अक्षय, जगद्गुरु, स्त्रष्टा, कर्त्ता, हर्त्ता, प्रकृति, पुरुष, वरदाता, अभिव्यक्तियों से परे, मोक्ष के लिये योगियों द्वारा पूजित, परम ब्रह्म, सत्, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, महानतम से भी महान् तथा सभी वस्तुओं का स्त्रोत आदि कहते हैं (लिंग पु. 1/71/100-114)।

त्रिपुरदाह के पश्चात् ब्रह्माजी विष्णु आदि देवताओं के साथ भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें परमेश्वर, जगत्पति, आनंददाता, शाश्वत, पंचमुख, मुक्तिदाता, धवल वर्ण, वरदाता, ज्येष्ठ, त्रिदेव, वषट्कार, चतुर्थमात्रात्मक, ओंकार, सगुण, निर्गुण, पिनाकी, सर्वज्ञ, शरण्य, योगप्रदाता, ध्येय,

योगियों के ध्यान का निर्विकल्प विषय, अनन्त शिर, बाहु और पैरवाला, अनन्त रूपवाला, संहारक एवं शिवरूप, स्थूल एवं सूक्ष्म, वेदों द्वारा ज्ञेय, वेदों द्वारा स्तुत्य, आदि-अन्तहीन, अवाच्य, लिंगी, अलिंगी फिर भी लिंगरूप, निर्गुण एवं निराकार, देवों द्वारा अदृश्य, दिव्य रूपवाला तथापि लिंग में प्रकट होनेवाला कहा है (लिंग पु. 1/72/122-166)।

स्तुति के बाद ब्रह्मा ने शिव की भक्ति का तथा विष्णुजी ने शिवका सतत वाहन बनने[1], उनकी भक्ति, उन्हें वहन (ढोने) करने की शक्ति, सर्वज्ञता एवं सर्वव्यापकता का वरदान पाया।

जनार्दनोऽपिभगवान्नमस्कृत्यमहेश्वरम्।
कृताञ्जलिपुटोभूत्वाप्राह साम्बन्त्रियम्बकम्।।
वाहनत्वन्तवेशान! नित्यमीहे प्रसीद मे।
त्वयि भक्तिश्चदेवेश! देवदेव नमोऽस्तुते।।
सामर्थ्यञ्च सदामह्यंभवन्तंवोढुमीश्वरम्।
सर्वज्ञ त्वञ्च वरद! सर्वग त्वञ्च शंकरः!।।
त्योः श्रुत्वामहादेवो विज्ञप्तिम्परमेश्वरः।
सारथ्ये वाहनत्वे च कल्पयामास वै भवः।। (लिंग पु. 1/72/173-176)

हिरण्यकशिपु के वध के बाद भी जब नृसिंह का क्रोध शान्त न हुआ तो उन्हें शान्त करने के लिये देवगण शिव से प्रार्थना-स्तुति करते हैं। उन्होंने अपनी स्तुति में उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, संहारक, पुरुष, सत्-असत् के भेद से रिक्त, काल, तारक, परमात्मा, ईश्वर, परमेष्ठी, ब्रह्म तथा विश्व के अधिपति आदि कहा है (लिंग पु. 1/95/35-58)।

शरभावतार ले भगवान् शिव ने जब नृसिंह को निस्तेज कर दिया तब नृसिंह ने भगवान् शिव की 108 नामों से स्तुति की, और भगवान् शिव को प्रसन्न कर वे अपने धाम चले गये अथवा शिव में ही विलीन हो गये (लिंग पु. 1/96/76-94)।[2]

शिव के उपरोक्त विशेषणों में से कुछ चुने गये विशेषणों पर ही नृसिंह द्वारा की गयी स्तुति आधारित है। स्तुति के कुछ अंशों को देखें-

---

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण में (श्रीकृष्णजन्मखण्ड 36/57 तथा 101) श्रीकृष्ण राधा को बतला रहे हैं कि मैं स्वयं वृषरूप धारण कर भगवान् शिव को वहन करता हूँ।

ततोऽहं वृषरूपेण वहामि तेन तं प्रियम्।
मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः।।
वाहनं वृषरूपोऽहमन्यस्तं वोढुमक्षमः।
त्रिपुरस्य वधे पूर्वं मत्कलांशसमुद्भवः।।

(ब्रह्म. वै. पु./श्रीकृष्णज. ख. 36/57 तथा 101)

2. लिंग पुराण (1/96/112) में कहा गया है कि विष्णु (नृसिंह) शिव में लीन हो गये।

परात्पराय विश्वाय नमस्ते विश्वमूर्त्तये।
नमो विष्णुकलत्राय विष्णुक्षेत्राय भानवे।।
योगीश्वराय नित्याय सत्याय परमेष्ठिने।
सर्वात्मने नमस्तुभ्यं नमः सर्वेश्वराय ते।।

अर्थात् - परात्पर को नमस्कार है। विश्व, विश्वमूर्ति, विष्णु कलत्र एवं विष्णु - क्षेत्र (जिसका अर्थ है - विष्णु जिसकी पत्नी हो। चूँकि विष्णु को प्रकृति माना गया है[1], इसलिये शिव को उसका पति कहा गया है) तथा भानु को नमस्कार है। योगीश्वर को, नित्य, सत्य, परमेष्ठिन (सर्वश्रेष्ठ देव), सर्वात्मा तथा सर्वेश्वर को नमस्कार है (लिंग पु. 1/96/81, 92)।

जालंधर को मारने के लिये शिवजी ने सुदर्शन चक्र को जल में अपने पैर के अँगूठे से लीलापूर्वक पैदा किया था (लि. पु. 1/97/16 तथा 1/98/15)। असुरों के ज्यादा तेज सम्पन्न हो जाने पर उनको सामान्य चक्र आदि से मारना सम्भव न था। फलस्वरूप सुर्दशन चक्र की प्राप्ति हेतु भगवान् विष्णु ने 1000 नामों से स्तुति करते हुए एक - एक नाम पर एक - एक कमल का फूल शिव को अर्पित किया। एक फूल के कम हो जानेपर उन्होंने कमल सदृश्य अपने नेत्र को अर्पित कर सहस्रनाम को पूरा किया। तदनन्तर शिवजी ने प्रसन्न हो उन्हें सुदर्शन चक्र, भक्ति तथा देव - दानवों आदि द्वारा पूज्य होने का वरदान दिया (लिंग पु. 1/98/182 - 186)।

प्राह च एवं महादेवः परमात्मानमच्युतम्।।
मयि भक्तश्च वन्द्यश्च पूज्यश्चैव सुरासुरैः।।
भविष्यसिनसन्देहोमत्प्रसादात्सुरोत्तम।। (लिंग पु. 1/98/182 - 183)

विष्णु द्वारा जिस सहस्रनाम (लिंग पु. 1/98/27 - 158) से शिवजी की स्तुति की गयी है वह शिव के अनेक विशेषणों पर आधारित है, जिनमें से अनेकों को हमने उपरोक्त स्तुतियों में देखा है। यहाँ पर हम कुछ श्लोकों को देखें -

भक्तिगम्यः परंब्रह्ममृगवाणार्पणोऽनघः।
अद्रिराजालयः कान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।

---

[1] लिंग पु. 1/96/40 आदि में स्पष्टरूप से विष्णु को प्रकृति तथा रुद्र को पुरुष बताया गया है। इसी प्रकार वायु पुराण में भगवान् शिव विष्णुजी से कहते हैं कि आप प्रकृति हैं तो मैं पुरुष हूँ; आप मेरे आधे शरीर हैं तो मैं आपका आधा शरीर हूँ; आपका श्रीवत्सलांछन वाम पार्श्व मैं हूँ और मेरे श्यामल दक्षिणार्द्ध आप हैं इसी से मुझे लोग नीललोहित कहते हैं।

आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम्। भवानर्द्धशरीरं मे त्वहन्तव यथैव च।।
वामपार्श्वमहम्महृयं श्यामं श्रीवत्सलक्षणम्। त्वञ्च वामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः।।
(वायुमहापुराणम् 1/25/23 - 24)

विष्णुर्ग्रहपतिः कृष्णः समर्थोऽनर्थ नाशनः।
अधर्मशत्रुरक्षय्यः पुरुहूतः पुरष्टुतः।।
वेधा धाता विधाता च अत्ता हर्त्ता चतुर्मुखः।
कैलासशिखरावासीः सर्वावासी सतां गतिः।।
एकज्योतिर्निरातङ्कोनरोनारायणप्रियः।।
निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यग्रो व्यग्रनाशनः।

अर्थात् - भगवान् शिव भक्तिगम्य, परम ब्रह्म, मृगवाणार्पण{ (यज्ञरूप)मृग पर बाण छोड़नेवाले}, अनघ(पापरहित), अद्रिराजालय(पर्वतराज पर डेरा करने या रहनेवाले), कान्त(कान्ति या तेजयुक्त), परमात्मा, जगद्गुरु, विष्णु, ग्रहपति(ग्रहों के स्वामी), कृष्ण, समर्थ, अनर्थनाशन(अनर्थ को दूर करनेवाला), अर्धमशत्रु, अक्षय, पुरुहूत(जिसका बार-बार आवाहन होता है), पुरष्टुतः(जिसकी बार-बार स्तुति की जाती हो), वेधस्(स्रष्टा), धातृ(धारण करनेवाला), विधातृ, अत्तृ(निगल जानेवाला), हर्त्ता, चतुर्मुख, कैलासशिखरावासी(कैलास शिखर पर निवास करनेवाले), सर्वावासी(सर्वत्र वसनेवाले), सतांगति(सज्जनों का लक्ष्य), एक ज्योति(एकमात्र प्रकाश), निरांतक(आंतकरहित), नर-नारायणप्रिय, निर्लेप, निष्प्रपंचात्मा, निर्व्यग्र(व्यग्रता से रहित) तथा व्यग्रनाशन(व्यग्रता को दूर करनेवाला) हैं(लिंग पु. 1/98/61-62, 97, 136, 155-156)।

शिव एवं शक्ति की अभिन्नता तथा उनके एक दूसरे का पूरक होने का तथ्य समझाते हुए कहा गया है कि परमात्मा को शिव एवं शिवा दोनों कहते हैं। ये दोनों पुरुष एवं स्त्रीरूप उस परमात्मा के हैं जिन्हें महादेव कहा जाता है। शिव को ईश्वर, पुरुष, यज्ञ, ब्रह्मा आदि और उमा को माया, प्रकृति, दक्षिणा, सावित्री आदि कहते हैं(लिंग पु. 2/11/3-5, 7)। पुरुषवाचक सभी वस्तुएँ शिव की तथा स्त्रीवाचक वस्तुएँ शिवा की अभिव्यक्तियाँ हैं(लिंग पु. 2/11/19)।

पुंलिङ्गशब्दवाच्यायेतेचरुद्राः प्रकीर्त्तिताः।
स्त्रीलिङ्गशब्दवाच्यायासर्वागौर्य्याविभूतयः।। (लिंग पु. 2/11/19)

उमा को विश्व की देवी तथा शिव को सबका देव कहा गया है। जिस किसी में भी शक्ति है वह महादेव का ही अंग है(लिंग पु. 2/11/21)। जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं उसी प्रकार शिव से जीव प्रकट होते हैं। शिव का दो प्रकार का अस्तित्व है-शक्तिरूप तथा शक्तिमानरूप। जीव का शरीर देवीरूप जबकि जीव स्वयं शिव का रूप है। सभी शरीरधारी शिव के अंश हैं(लिंग पु. 2/11/23-24)। शब्द उमारूप तो स्रोता शिवरूप तथा उमा पदार्थरूप तो शिव उसकी आत्मारूप हैं(लिंग पु. 2/11/25-26)। शिवा सभी प्रकार के कल्पितरूप को व्यक्त करती हैं तो शिव सभी प्रकार की कल्पना करनेवाले को व्यक्त करते हैं। वे विश्व का आत्मा तथा महेश्वर हैं(लिंग पु. 2/11/29)।

शिव पंचब्रह्मरूप(तत्पुरुष, अघोर आदि) हैं तथा वे ही सभी लोकों के एकमात्र संहर्त्ता, रक्षक तथा निर्माता हैं। वे ही जगत् के उपादान एवं निमित्त कारण हैं। शिव का प्रथम रूप ईशान कहलाता

है। वह प्रकृति का भोक्ता कहलाता है। अर्थात् भोक्तापन को ईशान व्यक्त करता है। दूसरा रूप तत्पुरुष कहलाता है जो प्रकृति को व्यक्त करता है। शिव का तीसरा भौतिकरूप अघोर कहलाता है जो बुद्धितत्त्व को व्यक्त करता है। वामदेव चौथा भौतिकरूप है जो अहंकार के रूप में सर्वत्र व्याप्त है। पाँचवा रूप सद्योजात है जो सभी प्राणियों में मनरूप से विराजमान रहता है। इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर जगत् पंचब्रह्मरूप ही है। अर्थात् भगवान् शिव के इन पाँचों रूपों से ही सम्पूर्ण सृष्टि की प्रक्रिया चलती है। शिव के आनंद की अभिव्यक्ति इन पाँच रूपों में होती है(लिंग पु. 2/14/3-10 तथा 31)।

शिव को सत्, असत् तथा उनके स्वामी, अस्ति और नास्ति, क्षर-अक्षररूप, तथा क्षर-अक्षर से परे, व्यक्त एवं अव्यक्त, समष्टि, व्यष्टि एवं उनके कारण, परम ब्रह्म, विद्या तथा अविद्या आदि कहा गया है(लिंग पु. 2/15/3-18)। शिव का सर्वोत्तम रूप 'भ्रान्ति', 'विद्या' एवं 'परम' है। नानाविध वस्तुओं की प्रतीति का नाम 'भ्रान्ति' है। आत्मा के रूप में सब कुछ देखना 'विद्या' तथा(वस्तुओं के बारे में) संदेह एवं विकल्परहित होना 'परम' कहलाता है। भगवान् के इन तीनों रूपों से अलग कुछ भी नहीं है। कुछ लोग शिव को 'व्यक्त', 'अव्यक्त' एवं 'ज्ञ' कहते हैं। 'व्यक्त' का अर्थ प्रकृति के 23 विकार, 'अव्यक्त' का अर्थ अव्यक्त प्रकृति है। जो गुणों को भोगता है वह पुरुष 'ज्ञ' कहलाता है। इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो शिव से भिन्न हो। अर्थात् समस्त चराचर जगत् शिव की ही अभिव्यक्ति है(लिंग पु. 2/15/20-26)।

जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार हेतु, भगवान् शिव की तीन अवस्थाओं को भव, विष्णु तथा विरंचि कहते हैं। शरीरधारी उनकी श्रद्धापूर्वक अथवा भक्तिपूर्वक आराधना कर मुक्त हो जाते हैं।

तिस्रोऽवस्था जगत्सृष्टिस्थितिसंहारहेतवः।
भवविष्णुविरिञ्चाख्यमवस्थात्रयमीशितुः।।
आराध्य भक्त्या मुक्तिञ्च प्राप्नुवन्तिशरीरिणः। (लिंग पु. 2/16/19-20)

विद्वानों ने शिव के निम्नलिखित चार रूप बताये हैं-कर्तृ, क्रिया, कार्य और करण। चार अन्य रूप जो शिव से संबंध रखते हैं, इस प्रकार हैं-प्रमातृ, प्रमाण, प्रमेय तथा प्रमिति(लिंग पु. 2/16/20-22)। माया, अविद्या, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, तथा क्रिया-ये पाँचों(निश्चित रूप से) शिव से उसी प्रकार प्रकट होती हैं जिस प्रकार सूर्य से किरणें(लिंग पु. 2/16/30)।

देवताओं द्वारा शिव के स्वरूप संबंधी प्रश्न पूछे जाने पर स्वयं भगवान् शिव कहते हैं कि मैं ही पुराणपुरुष, शाश्वत, अशाश्वत, ब्रह्म तथा ब्रह्मा के अधिपति, प्रकृति, पुरुष, सर्वव्यापी, सत्य, गुरु, ज्येष्ठ, ईश, यज्ञवेदी, चारों वेद, स्वयंभू, अमर्त्य, मर्त्य, अजन्मा, ब्रह्मा, विष्णु और महेश, सर्वज्ञ, परमेश्वर तथा सर्वात्मा आदि हूँ(लिंग पु. 2/17/10-22)। भगवान् शिव के कुछ कथनों को देखें-

ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्माविष्णुर्महेश्वर।

बुद्धिश्चाहमहङ्कारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणिच।। (लिंग पु. 2/17/19)

अर्थात्-मैं ज्योति एवं अंधकार हूँ। मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हूँ। मैं ही बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा तथा इन्द्रियाँ हूँ।

एक स्थल पर देवगणों ने शिव को ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, भूत, वर्तमान एवं भविष्य की वस्तुओं को बनानेवाला, विश्वरूप, सत्यस्वरूप, ब्रह्म, देवेश, शान्ति, पुष्टि, तुष्टि, विश्व एवं अविश्वरूप, कृत, अकृत, ओंकार, प्रणव, महान्, परम ब्रह्म, अद्वैत, परमेश्वर, मन-वाणी की पहुँच से परे, विश्व स्रष्टा, सबसे बड़े ईश, सूक्ष्म, अपरिवर्तनीय, सबके हृदय में छुपा रहनेवाला, ऋत, सत्यस्वरूप ब्रह्म, पुरुष, तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवों का स्रष्टा आदि कहा है (लिंग पु. 2/18/1-42)।

उपरोक्त उद्धरणों तथा सन्दर्भों में भगवान् शिव की जिन-जिन विशेषताओं तथा उनपर आधारित नामों का उल्लेख है उस आधार पर भगवान् शिव सृष्टि के परम तत्त्व, जिसे दार्शनिक परमब्रह्म कहते हैं, सिद्ध होते हैं। उन्हीं से समस्त चराचर जगत् तथा उनकी व्यवस्था करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा इन्द्रादि प्रमुख देवगण पैदा होते और सृष्टिकार्य की समाप्ति पर अथवा महाप्रलय की स्थिति में वे उन्हीं में लय को प्राप्त हो जाते हैं। वे निर्गुण एवं सगुण दोनों हैं। निर्गुणरूप में वे ॐकारस्वरूप, देवताओं तथा ऋषियों-सबके द्वारा अगम्य, मन, वाणी और बुद्धि से परे, अव्यक्त, शुद्ध, अद्वैत, स्वयंभू एवं नित्य तत्त्व हैं। सगुणरूप धारण कर वे समस्त चराचर जगत् के स्रष्टा, पालक, तथा संहारक बनते हैं। इस चराचर जगत् की प्रत्येक वस्तु में उन्हीं की अभिव्यक्ति है। अर्थात् माया या प्रकृति का आश्रय ले वे अणु से लेकर ब्रह्माण्डतक की वस्तुओं का रूप धारण करते हैं। वे ही सबकुछ बन जाते हैं, उनके सिवा इस जगत् में कुछ भी अस्तित्व नहीं रखता।

माया महेश्वर की शक्ति है और वह उन्हीं की इच्छा से सृष्टिकार्य का संपादन करती है। माया एवं महेश्वर आपस में अवियोज्य हैं, उन्हें केवल कल्पना में अलग किया जा सकता है। जब महेश्वर स्वयं अपना सगुणरूप (अलग से) प्रकट करते हैं तो वे अनेक प्रकार के विशेषणों या गुणों से युक्त हो जाते हैं जैसे-पंचमुखी, दस भुजावाले, नीलकण्ठ, गंगाधारी, मृगचर्म, डमरू, त्रिशूल, जटा, पिनाक आदि को धारण करनेवाले, त्रिपुरारि, कामारि, आशुतोष, भक्तवत्सल, श्वेत वर्ण, कैलासवासी, अर्द्धनारीश्वर, नागों के आभूषण धारण करनेवाले, कालकूट का पान करनेवाले, भोग-मोक्ष, स्वर्ग-नरक आदि का स्वामी, वरदाता, सभी विद्याओं तथा देवों के ईश्वर आदि-आदि।

शिवोपासना

चूँकि भगवान् शिव सर्वश्रेष्ठ, सर्वदेवमय, सर्वोच्च, आशुतोष एवं परम दयालु हैं, इसलिये इनकी उपासना या भक्ति करनी चाहिये। वे निर्गुण एवं सगुण दोनों हैं, इसीलिये इनकी उपासना इन दोनों ही रूपों में होती है। उपासना के रूपों पर विचार करने से पहले हम शिवभक्ति की महिमा पर विचार करेंगे।

(1) शिवभक्ति का महात्म्य

शिवोपासना से अर्थ, धर्म तथा काम की प्राप्ति होती है (लिंग पु. 2/21/79)। जो व्यक्ति शिव की उपासना एकबार भी कर लेता है वह पुरुष मानो सदैव यज्ञ, दान एवं वायुभक्षण कर जीवनयापन करनेवाला तप करता है। अर्थात् उसे सतत किये जानेवाले तप, दान एवं यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है। जो लोग महादेव की एकबार, दो अथवा तीनबार नित्य पूजा करते हैं वे स्वयं रुद्र-स्वरूप हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

> **सदा यजति यज्ञेन सदा दानंप्रयच्छति।**
> **सदा च वायुभक्षश्च सकृद्योऽभ्यर्चयेत्शिवम्।।**
> **एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा।**
> **येऽर्चयन्ति महादेवं ते रुद्रा नाऽत्र संशयः।।** (लिंग पु. 2/21/80-81)

सूतजी एक स्थल पर ऋषियों से कह रहे हैं कि जो लोग भगवान् शिव के भक्त हैं वे सौभाग्यशाली हैं क्योंकि वे सुखों को भोगने के पश्चात् मुक्त हो जायँगे। लोगों का मन घर, पत्नी तथा बच्चों में आसक्त रहता है ठीक उसीप्रकार जिसप्रकार से मुनियों का मन आदिपुरुष में। परन्तु अगर अकस्मात् एकबार भी मन प्रभु की ओर मुड़ जाय तो उसके लिये शिवधाम दूर नहीं है।

> **ये भक्तादेवदेवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः।**
> **भाग्यवन्तोविमुच्यन्ते भुक्त्वा भोगानिहैवते।।**
> **पुत्रेषु दारेषु गृहेषु नृणां भक्तं यथा चित्तमथादिदेवे।**
> **सकृत्प्रसङ्गाद्यतितापसानां तेषां न दूरः परमेशलोकः।।** (लिंग पु. 1/78/25-26)

सूतजी कहते हैं कि हे ब्राह्मणों अगर सत्पुरुषों के संपर्क में आकर एकबार भी प्रसंगवश कोई शिव की पूजा कर लेता है तो वह रुद्रलोक को प्राप्त करता है। निर्दयी मनुष्य जिस प्रकार दुःखी होते हैं, उसी प्रकार शिवभक्ति विहीन भी (दुःखी होते हैं)।

> **प्रसङ्गाद्वापि यो मर्त्यः सतां सकृदहो द्विजाः!।**
> **रुद्रलोकमवाप्नोति समभ्यर्च्य महेश्वरम्।।**
> **भवन्ति दुःखिताः सर्वे निर्दयामुनिसत्तमाः।**
> **भक्तिहीनानराः सर्वे भवे परमकारणे।।** (लिंग पु. 1/78/23-24)

निष्कल परमात्मा शिव स्वेच्छा से (भक्तों के लिये) शरीर धारण करते हैं। वे सभी जीवों पर कृपा कर सुख प्रदान करते हैं। इसीलिये उन्हें शंकर कहा जाता है। संसारभय से भयभीत जो लोग योग का आश्रय लेते हैं वे भी शिव की दया से विरक्ति एवं वैराग्य को प्राप्त करते हैं (लिंग पु. 1/6/21-22)। धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य उनकी कृपा का परिणाम है। जो शंकर का आश्रय

ग्रहण करते हैं, वे आसानी से मुक्त हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति यदि पापों में लिप्त रहा हो तो भी नरक नहीं जाता। शंकर का आश्रय ग्रहण करने से आवागमन से मुक्ति तथा शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है।

धर्मो ज्ञानश्च वैराग्यमैश्वरर्यं शंड्करादिह।
स एव शङ्करः साक्षात् पिनाकीनीललोहितः।।
ये शङ्कराश्रिताः सर्वे मुच्यन्ते ते न संशयः।
न गच्छन्त्येवनरकंपापिष्ठाअपिदारुणम्।।
अश्रिताः शङ्करं तस्मात् प्राप्नुवन्ति च शाश्वतम्। (लिंग पु. 1/6/25-27)

वहीं पर आगे कहा गया है कि जो शंकर की शरण ग्रहण नहीं करते वे करोड़ों नरकों में पकाये जाते हैं।

कोटयो नरकाणान्तु पच्यन्ते तासुपापिनः।
अनाश्रिताः शिवंरुद्रंशङ्करंनीललोहितम्।। (लिंग पु. 1/6/28)

भगवान् शिव की दया का वर्णन हजारों वर्षों में पूरा नहीं हो सकता। उनकी दया या कृपा से धर्म, ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य तथा मोक्ष सब-कुछ प्राप्त हो सकता है। इसके बारे में कोई संशय नहीं होना चाहिये।

तस्य प्रसादाद्धर्मश्च ऐश्वर्यं ज्ञानमेव च।
वैराग्यमपवर्गश्च नाऽत्र कार्य्या विचारणा।। (लिंग पु. 1/9/66)

ब्रह्माजी ब्रह्मणों से कहते हैं कि जिसके अन्दर (शिव) भक्ति है वह तत्काल मुक्त हो जाता है। जो रुद्र-भक्ति से युक्त है उसे त्याग, शुभ व्रत, यज्ञ, दान, शास्त्र, तथा वेद आदि से क्या प्रयोजन? (अर्थात् रुद्रभक्तों के लिये ये चीजें ज्यादा महत्त्व की नहीं हैं क्योंकि रुद्रभक्ति पैदा करने के लिये ही इनका उपयोग होता है। जब भक्ति प्राप्त हो जाती है तो ये चीजें निरर्थक हो जाती हैं। जबतक भक्ति प्राप्त नहीं हो जाती तभीतक इनका महत्त्व है।)

सद्योऽपि लभते मुक्तिं भक्तियुक्तो दृढ़व्रताः।।
त्यागेन वा किं विधिनाप्यनेन भक्तस्य रुद्रस्य शुभैर्व्रतैश्च।
यज्ञैश्च दानैर्विविधैश्च होमैर्लब्धैश्च शास्त्रैर्विविधैश्च वेदैः।।
(लिंग पु. 1/29/81-82)

ब्रह्माजी देवदारू वन में ऋषियों से कह रहे हैं कि तुम्हें भगवान् शिव की भक्तिपूर्वक उपासना करनी चाहिये क्योंकि वे ही सभी प्रकार के भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

तस्मान् मृत्युञ्जयश्चैव भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजाः!।
मुक्तिदं भुक्तिदश्चैव सर्वेषामपि शङ्करम्।। (लिंग पु. 1/30/28)

भगवान् विष्णु सभी देवों से कहते हैं कि सभी प्राणियों को मार एवं जलाकर और अन्यायपूर्वक

भोगों को भोगने के बाद भी अगर वह महादेवजी की पूजा करने लगता है तो वह निश्चित रूप से पापरहित है (क्योंकि शिवपूजन से उसके सभी पाप समाप्त हो जाते हैं)। उनके (शिव के) एक अंश की पूजामात्र से देवों ने अमरत्व, ब्रह्मा ने ब्रह्मत्व तथा मैंने विष्णु के पद को पाया है। बिना उनकी पूजा के भला कौन इस संसार में पूर्णता को प्राप्त किया है? (अर्थात् किसी ने भी नहीं।)

हत्वा दग्धवा च भूतानि भुक्त्वा चाऽन्यायतोऽपि वा।
यजेद्यदि महादेवमपापो नाऽत्रसंशयः।।
तस्यांऽशमेकं सम्पूज्य देवा देवत्वमागताः।
ब्रह्माब्रह्मत्वमापन्नो ह्यहं विष्णुत्वमेव च।।
तम पूज्य जगत्यस्मिन् कः पुमान् सिद्धिमिच्छति। (लिंग पु. 1/71/47, 53-54)

आगे पुनः कहा गया है कि महान् पाप करने के बाद भी रुद्र की उपासना करने से लोग सभी पापों से ठीक उसी प्रकार छूट जाते हैं जैसे कमल के पत्ते से जल। उनकी उपासना से सांसारिक भोगों की भी अवश्यमेव प्राप्ति होती है।

कृत्वाऽपि सुमहत्पापं रुद्रमभ्यर्चयन्ति ये।।
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैः पद्मपत्रमिवाऽम्भसा।
पूजयाभोगसम्पत्तिरवश्यञ्जायते द्विजाः।। (लिंग पु. 1/71/69-70)

एक क्षण के लिये भी शिव का विस्मरण एक हानि है, महान् छिद्र है, एक मोह एवं मूकता है। जो शिवभक्ति परायण हैं, जो उन्हें हृदय से प्रणाम करते हैं तथा उन्हें स्मरण रखते हैं, उन्हें कोई दुःख नहीं होता।

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सा च मूकता।।
यत्क्षणं वा मुहूर्तम्वा शिवमेकं न चिन्तयेत्।
भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः।।
भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्यभाजनम्। (लिंग पु. 1/73/22-24)

सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि भगवान् शिव की एकबार भी श्रद्धा से पूजा कर ली जाय तो रुद्रलोक की प्राप्ति तथा रुद्रों के सानिध्य में आनंद लेने का मौका मिलता है।

श्रद्धया सकृदेवापि समभ्यर्च्य महेश्वरम्।
रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्द्धं प्रमोदते।। (लिंग पु. 1/79/9)

एक स्थल पर कहा गया है कि भगवान् शिव की कृपा से एक क्षण में ही मुक्ति हो जाती है, यह भगवान् की प्रतिज्ञा है। परमेष्ठी की कृपा से निःसन्देहरूप से, गर्भस्थ हो चाहे पैदा हुआ हो, लड़का हो या जवान हो या बूढ़ा, सभी लोग मुक्त हो जाते हैं। उनकी कृपा से प्रत्येक जीव - अण्डज, पिण्डज, स्वेदज एवं स्थावर - मुक्त हो जाते हैं।

प्रसादेन क्षणान्मुक्तिः प्रतिज्ञैषा न संशयः।
गर्भस्थो जायमानो वा बालो वा तरुणोऽपि वा।।
वृद्धोवामुच्यतेजन्तुः प्रसादात्परमेष्ठिनः।
अण्डजश्चोद्भिजोवापिस्वेदजोवापिमुच्यते।। (लिंग पु. 1/87/16-17)

अगर कोई व्यक्ति मृत्यु के क्षण एक बार भी भगवान् शिव का स्मरण कर लेता है तो वह शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। अतः जो बार-बार उनका स्मरण करता है वह क्यों नहीं शिवसायुज्य को प्राप्त करेगा?

यः स्मरेन्मनसा रुद्रं प्राणान्तेसकृदेव वा।।
स याति शिवसायुज्यंकिं पुनर्बहुशःस्मरन्। (लिंग पु. 1/93/17-18)

उपमन्यु को उसकी माता उपदेश दे रही है कि जो लोग शिवभक्ति से रहित हैं उन्हें स्वर्ग, राज्य, मोक्ष तथा दूध-घी जैसी सांसारिक भोग की वस्तुएँ भी नहीं प्राप्त होतीं। इस संसार में सभी कुछ(मोक्ष एवं भोग की सामग्री) भगवान् शिव की कृपा से ही उपलब्ध होता है अन्य देवोंकी कृपा से नहीं। जो लोग अन्य देवों की उपासना करते हैं वे दुःखी, भ्रमित एवं आर्त्त होते हैं।[1]

भवप्रसादजं सर्वं नान्यदेव प्रसादजम्।
अन्यदेवेषु निरता दुःखार्त्ता विभ्रमन्ति च।। (लिंग पु. 1/107/14)

उमापति की महिमा बताते हुए कहा गया है कि शिव की कृपा अथवा आज्ञा से ही भगवान् विष्णु जीवित एवं मृत व्यक्तियों को सैकड़ों यातनाओं से निजात दिलाकर संसार का पालन करते हैं। उनकी प्रेरणा से ही असुरों का विनाशकर देवों की रक्षा करते हैं ....।

जीवतांव्याधिभिःपीडांमृतानांयातनाशतैः।
विश्वम्भरः सदाकालंलोकैसर्वैरलङ्घ्यया।।
देवान्पात्यसुरान् हन्तित्रैलोक्यमखिलं स्थितः।
.... (लिंग पु. 2/10/29-30)

एक स्थल पर भक्तों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि विष्णुभक्त अन्य प्रकार के हजारों भक्तों से बढ़कर(श्रेष्ठ) है तथा शिव का भक्त हजारों विष्णुभक्तों से बढ़कर है। रुद्रभक्तों से बढ़कर दुनियाँ में कोई नहीं है।

---

[1] अन्य देवता भी परात्पर भगवान् शिव के ही रूप हैं- इस तथ्य को न जानकर जो(अज्ञानतापूर्वक) अन्य देवों की उपासना करता है वह भ्रमित एवं दुःखी रहता है। वह भ्रमित इसलिये रहता है कि उसे यथार्थ तत्त्व का ज्ञान नहीं होता तथा दुःखी इसलिये रहता है कि ऐसे एकांगी देवता से उसके सभी मनोरथ(जैसे मोक्षादि) पूरे नहीं होते। जो भगवान् शिव की सर्वदेवमयता को जानकर अन्य देवों की उपासना करता है, वह प्रकारान्तर से भगवान् शिव की पूजा होने से, वह भ्रमित एवं दुःखी नहीं होता।

अन्य भक्तसहस्त्रेभ्योविष्णुभक्तो विशिष्यते।
विष्णुभक्तसहस्त्रेभ्योरुद्रभक्तो विशिष्यते।
रुद्रभक्तात्परतरो नास्तिलोके न संशयः।।[1] (लिंग पु. 2/4/20)

भगवान् शिव की उपासना से ब्रह्मा को दिव्ययोग, ज्ञान, प्रतिष्ठा, विरक्ति आदि की प्राप्ति (लिंग पु. 1/13/14-15), विष्णु को शिवभक्ति तथा पालन करने की शक्ति की प्राप्ति (लिंग पु. 1/19/11 आदि), दधीचि की (अवध्यता आदि का वरदान मिलने से) विष्णु पर विजय की प्राप्ति (लिंग पु. 1/30/35), श्वेत की मृत्यु पर विजय की प्राप्ति (लिंग पु. 1/30/29), विष्णु को सुदर्शन चक्र की प्राप्ति (लिंग पु. 1/65/16-17 तथा 1/अध्याय 98), पराशर को अपने मृत पिता एवं भाईयों के दर्शन की प्राप्ति (लिंग पु. 1/64/75-92), यम को श्राप से प्राप्त अपने चर्मरोग से मुक्ति की प्राप्ति (लिंग पु. 1/65/9-11), ब्रह्म-पुत्र तण्डि को गणेश्वर पद की प्राप्ति (लिंग पु. 1/65/46-51), कृष्ण को पुत्र की प्राप्ति (लिंग पु. 1/69/67, 72-77 तथा 1/108/4, 6, 9), विष्णु को अन्य बातों के अलावा भगवान् शिव का वाहन बनने के वरदान की प्राप्ति (लिंग पु. 1/72/173-175) तथा शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या की प्राप्ति (लिंग पु. 1/35/16) हुई। शिवोपासना से लाभान्वित प्रमुख पुरुषों में से कुछ की गणना उपरोक्त संदर्भों में है। यथार्थ में लाभान्वित शिवभक्तों की संख्या असंख्य है।

(2) लिंगार्चन का महत्त्व

भगवान् शिव की सगुणोंपासना दो रूपों में होती है-लिंगरूप में तथा मूर्तिरूप में। पहले हम लिंगपूजा की चर्चा करेंगे। आमतौर पर शिव की पूजा का अर्थ शिवलिंगपूजा लिया जाता है क्योंकि लिंगपूजा का ही अधिक व्यापक प्रचार एवं प्रसार है।

एकबार ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया था। उसी समय उन दोनों के समक्ष एक अग्नि स्तंभ प्रकट हुआ जिसके आदि-अन्त का पता वे दोनों न लगा सके। तब दोनों ने उस अग्निमय लिंग की (अर्थात् भगवान् शिव की) स्तुति की और भगवान् शिव से वरदान पाया। तभी से विश्व में लिंगपूजा का प्रचलन हुआ। लिंग की वेदी शिवा हैं तथा लिंग स्वयं भगवान् शिव का रूप है। इसे लिंग इसलिये कहा जाता है कि (अन्त में) सभी कुछ इसमें लीन (लय) हो जाता है।

तदाप्रभृति लोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता।
लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।।

---

[1] यहाँ पर रुद्र भक्त का अर्थ परात्पर शिव का भक्त है न कि संहारकारी रुद्र देवता का भक्त, जबकि विष्णु भक्त का अर्थ पालन करनेवाले देवता विष्णु का भक्त है (न कि परात्पर विष्णु का)। अगर हम इस तरह इस श्लोक का अर्थ करें तो यहाँ पर साम्प्रदायिकता का आक्षेप नहीं हो सकता।

लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः। (लिंग पु. 1/19/15-16)

किसी प्रसंग में एकबार ब्रह्माजी भगवान् शिव से प्रश्न करते हैं कि सभी देवता एवं गण लोग विष्णु के ही रूप हैं (अर्थात् भगवान् विष्णु सर्वदेवमय हैं), वे देवों के देव हैं फिर भी वे आपके लिंगार्चन में क्यों रत रहते हैं? तथा वे सदैव आपकी भक्ति में क्यों लीन रहते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि विधिपूर्वक लिंग की पूजा करने से ही तुम (ब्रह्मा), विष्णु तथा इन्द्रादि प्रमुख देवता तथा ऋषियों ने अपना - अपना पद प्राप्त किया है, इसलिये वे अब भी लिंगार्चन करते रहते हैं। बिना लिंगार्चन के निष्ठा नहीं प्राप्त होती, इसलिये नित्य श्रद्धापूर्वक विष्णु हमारी पूजा करते हैं।

भवान्नारायणश्चैव शक्रः साक्षात्सुरोत्तमः।।
मुनयश्च सदा लिङ्गं सम्पूज्य विधिपूर्वकम्।
स्वं स्वं पदं विभो! प्राप्तास्तस्मात् सम्पूजयन्ति ते।।
लिङ्गार्चनं विना निष्ठाना स्तितस्माज्जनार्दनः।
आत्मनोयजतेनित्यंश्रद्धयाभगवान्प्रभुः।। (लिंग पु. 1/24/146-148)

लिंगार्चन के महत्त्व को जान कर ही ब्रह्माजी देवदारू वन के ऋषियों को विधिपूर्वक लिंगनिर्माण कर उसकी यथाविधि पूजा - अर्चना का निर्देश देते हैं। निर्देश देते समय वे कहते हैं कि ऐसा करने से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी (लिंग पु. 1/31/19)।

त्रिपुरासुर के विनाश के बाद ब्रह्माजी देवताओं से कहते हैं कि जबतक देवगण शिव की पूजा लिंगरूप में करते हैं तबतक उनमें स्थिरता बनी रहती है। प्रमुख देवों द्वारा शिव की भक्ति श्रद्धापूर्वक की जानी चाहिये। समस्त विश्व लिंग पर ही आधारित है। सभी वस्तुएँ भी लिंगरूप हैं। इसलिये जो आत्मा की पूर्णता को चाहते हैं उन्हें लिंगार्चन करना चाहिये। लिंगार्चन से ही देवता, दैत्य, दानव, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, पिशिताशन, पितृ, ऋषि, पिशाच, किन्नर, तथा अन्य लोगों ने सिद्धि पायी है।

तस्मात् सदापूजनीयोलिङ्गमूर्तिःसदाशिवः।
यावत्पूजासुरेशानांतावदेव स्थितिर्यतः।।
पूजनीयः शिवो नित्यं श्रद्धया देवपुङ्गवैः।
सर्वलिङ्गमयो लोकःसर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्।।
तस्मात्सम्पूजयेल्लिङ्गंयइच्छेत् सिद्धिमात्मनः।
सर्वे लिङ्गार्चनादेवदेवादैत्याश्चदानवाः।।
यक्षाविद्याधराः सिद्धाराक्षसाः पिशिताशनाः।
पितरोमुनयश्चापिपिशाचाः किन्नरादयः।।
अर्चयित्वालिङ्गमूर्तिं संसिद्धानात्र संशयः।
तस्माल्लिङ्गंयजेन्नित्यं येनकेनापिवासुराः।। (लिंग पु. 1/73/5-9)

उमादेवी वेदी या पीठ के रूप में तथा भगवान् शिव लिंगरूप में होते हैं। उनकी प्रयत्नपूर्वक

स्थापना करके देवता एवं असुर लोग पूजा करते हैं। अगर लोग लिंग को छोड़कर किसी अन्य देवता की उपासना करने लगें तो वे अपने राजासहित रौरव नरक में जायँगे।[1] ब्रह्मा आदि देवगण, समृद्धिशाली राजागण, प्रजा तथा ऋषिगण–सभी लिंग की पूजा करते हैं। हजारों पापों के करने तथा सैकड़ों ब्राह्मणों की हत्या करने के बाद भी अगर कोई पूरी भक्ति के साथ शिव की शरण लेता है तो वह निःसन्देहरूप से मुक्त हो जाता है। सभी लोक लिंग से भरे पड़े हैं, वे सभी लिंग पर आश्रित हैं, इसलिये शाश्वत पद की प्राप्ति के लिये लिंगार्चन करना चाहिये।

पीठाकृतिरुमा देवी लिङ्गरूपश्च शङ्करः।
प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नेनपूजयन्ति सुरासुराः।।
शिवलिङ्गं समुत्सृज्य यजन्ते चान्य देवताः।
स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत्।।
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे राजानश्च महर्द्धिकाः।
मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिङ्गं यजन्ति च।।
कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा विप्रशतं तथा।
भावात्समाश्रितो रुद्रंमुच्यतेनात्रसंशयः।।
सर्वेलिङ्गमया लोकाः सर्वे लिङ्गे प्रतिष्ठिता।
तस्मादभ्यर्चयेल्लिङ्गं यदीच्छेच्छाश्वतं पदम्।।

(लिंग पु. 2/11/31, 35, 37, 39-40)

एक स्थल पर कहा गया है कि अग्निहोत्र, वेदों का उच्चारण तथा प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ लिंगार्चन की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं।

अग्निहोत्रश्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
शिवलिङ्गार्चनस्यैते कलांशेनापि नो समाः।। (लिंग पु. 2/21/79)

विधिपूर्वक लिंग की स्थापना करनेवाला स्वयं परमेश्वररूप हो जाता है। इस प्रकार स्थापना करने से देव, रुद्र, ऋषि तथा अप्सरा सभी स्थापित एवं पूजित होते हैं। यथार्थ में त्रैलोक्य के सभी चराचर जीवों की उसके द्वारा पूजा हो जाती है।

य एवं स्थापयेल्लिङ्गं स एव परमेश्वरः।

---

[1] इस श्लोक को कई लोग साम्प्रदायिक मानते हैं जो बाद में जोड़ दिया गया है। जैसा हम आगे देखेंगे, शिवलिंग में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता निहित होते हैं तथा शिवलिंग की पूजा से सभी की पूजा सम्पन्न हो जाती है। अतः यहाँ भाव यह हो सकता है कि लिंगस्थ सभी देवों को छोड़कर अन्य देवों की पूजा करनेवाले को नरक की प्राप्ति होती है। लिंगस्थ देवों के अलावा कौन से देवता शेष रह जाते हैं? ऐसे देवता जो हिन्दुओं के नहीं हैं, अथवा काल्पनिक देव हैं, अथवा अन्य निकृष्ट भूत-प्रेतादि जो कालान्तर में स्थानीय देवता के रूप में पूजे जाने लगे हों।

तेनदेवगणा रुद्रा ऋषयोऽप्सरसस्तथा।।
स्थापिताः पूजिताश्चैव त्रैलोक्यं सचराचरम्। (लिंग पु. 2/47/49-50)

दूसरे शब्दों में लिंगार्चन के पश्चात् किसी भी देव की पूजा शेष नहीं रह जाती अतः लिंगार्चन अवश्य करना चाहिये। इससे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-सभी की प्राप्ति हो जाती है(लिंग पु. 2/47/5)। ब्रह्मा लिंग के मूल में, विष्णु मध्य में तथा रुद्र ऊपर स्थित होते हैं(लिंग पु. 2/47/11) और पीठ में देवी स्थित होती हैं।

विष्णु इन्द्रनील का, इन्द्र पद्मराग का, विश्रवा का पुत्र सोने का, विश्वेदेव चाँदी का, वसुगण चुम्बक का, वायु पीतल का, अश्विनबंधु पार्थिव का, वरुण स्फटिक का, आदित्यगण ताँबे का, सोम मोती का, अनन्त आदि नाग मूँगे का, दैत्य एवं राक्षस लोहे का, गुह्यक लोग तीन धातुओं का, गणलोग सभी धातुओं का, चामुण्डा तथा अन्य देवियाँ रेत का, नैर्ऋति लकड़ी का, यम मरकत मणि(पन्ना) का, नीलरुद्र तथा अन्य भस्म का, लक्ष्मी बिल्ववृक्ष का, गुह गाय के गोबर का, मुनिलोग कुशा का, वामदेव आदि पुष्प का, मनोमनी गंध का, सरस्वती रत्नों का तथा दुर्गा सोने का लिंग पूजती हैं। इसी प्रकार अन्य लोग भी अपने-अपने अधिकार के अनुसार नाना प्रकार के लिंग पूजते हैं(लिंग पु. 1/74/2-11)। आगे कहा गया है कि लिंगार्चन से ही समस्त चराचर जगत् स्थित है(लिंग पु. 1/74/12)।

ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सभी लिंगपर प्रतिष्ठित हैं। इसलिये सभी कुछ त्यागकर लिंग की स्थापना करनी चाहिये। इसकी पूजा करने से सबकी पूजा हो जाती है।

ब्रह्मादिस्थावरान्तश्चसर्वंलिङ्गेप्रतिष्ठितम्।।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेल्लिङ्गमव्ययम्।
यत्नेनस्थापितंसर्वं पूजितं पूजयेद्यदि।। (लिंग पु. 2/46/20-21)

(3) लिंगार्चन विधि

इस पुराण में लिंगनिर्माण तथा उसके स्थापन की विधि का वर्णन विस्तार से है। स्थानाभाव से उनकी चर्चा यहाँ संभव नहीं है। इसमें नाना प्रकार के लिंगों की भी चर्चा है। वस्तु के भेद से छः प्रकार के लिंग होते हैं। प्रथम शैलज(पाषाण से बना), जो चार प्रकार का होता है, दूसरा रत्नमय(रत्नों से बना) जो 7 प्रकार का होता है, तीसरा धातुनिर्मित जो आठ प्रकार का होता है, चौथा काष्ठ(लकड़ी) निर्मित जो 16 प्रकार का होता है, पाँचवा मिट्टी से निर्मित जो दो प्रकार का होता है तथा छठा क्षणिकलिंग जो 7 प्रकार का होता है। रत्नमयलिंग सौभाग्य, प्रस्तरनिर्मित सिद्धि, धातुनिर्मित धन, काष्ठनिर्मित भौतिक सुख तथा मृत्तिकानिर्मित सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करते हैं। पत्थरनिर्मित लिंग को उत्तम तथा धातुनिर्मित लिंग को मध्यम कहा गया है। लिंग के मूल में ब्रह्मा,

मध्य में विष्णु तथा अग्रभाग में ॐकारस्वरूप शिव स्थित होते हैं। वेदी त्रिगुणात्मिका देवी होती हैं। जो वेदी सहित लिंग की पूजा करता है वह देवी की भी पूजा करता है। किसी भी प्रकार के लिंग को भक्ति के साथ स्थापित करने से अच्छा फल प्राप्त होता है। (लिंग पु. 1/74/13-22)

मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः।
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः।
लिङ्गवेदी महादेवी त्रिगुणात्रिमयाम्बिका।।
तया च पूजयेद्यस्तु देवी देवश्च पूजितौ।
शैलजं रत्नजं वापि धातुजं वापि दारुजम्।।
मृण्मयं क्षणिकं वाऽपि भक्त्या स्थाप्यं फलं शुभम्। (लिंग पु.1/74/19-22)

कुन्द के फूल या गाय के दूध की भाँति श्वेतलिंग की स्कन्द एवं उमा के साथ विधिपूर्वक स्थापना व्यक्ति को रुद्रस्वरूप बना देती है। अतः इस प्रकार के लिंग की स्थापना का बहुत ही महत्त्व है (लिंग पु. 1/74/27-28)।

लिंगार्चन से पहले अभिषेक करना चाहिये। यह अभिषेक तीन प्रकार का होता है। सबसे पहले शुद्ध छाने हुए जल से, फिर भस्म से तथा मन्त्र से। स्नानकर स्वयं शुद्ध हो अभिषेक करना चाहिये। अगर किसी व्यक्ति का भाव शुद्ध नहीं है तो वह जलस्नान तथा भस्मलेपन से भी शुद्ध नहीं हो सकता। शुद्ध भाववाले को ही अभिषेक करना चाहिये। मंत्राभिषेक के बाद लिंगपूजा करनी चाहिये।

इसके उपरान्त पूजास्थल पर बैठकर तीन प्राणायाम कर भगवान् शंकर का ध्यान करना चाहिये। ध्यान करते समय यह धारणा करे कि उनके पाँच मुख तथा दस भुजायें हैं तथा वे स्फटिक की तरह चमकीले हैं। नाना प्रकार के आभूषणों तथा रंगीन वस्त्रों से विभूषित हैं। तत्पश्चात् दहन, प्लावन आदि तान्त्रिक क्रियाओं आदि के माध्यम से अपने आपको शिवरूप में कल्पित कर पूजा आरंभ करे। अपने शरीर को शुद्ध करके मूल मन्त्र[1] का न्यास करे। सर्वत्र पाँच ब्रह्मों (सद्योजातादि) को ॐकार के साथ क्रम से स्थिर करे। इसी प्रकार अन्यान्य क्रियाओं को करते हुए पाद्य, अर्घ्य आदि षोडशोपचार से पूजा सम्पन्न करे। इस पुराण में अलग-अलग स्थलों पर लिंगार्चन की विधि विस्तार से बतायी गयी है।

अन्त में कहा गया है कि जो निम्नलिखित मन्त्रों से एक बार भी लिंगार्चन करता है वह मुक्त हो जाता है। अभिषेक संबंधी मन्त्र इस प्रकार हैं-पवमान, वामसूक्त (जो **'अस्य वामस्य'** से प्रारंभ होता है), रुद्र (रुद्राध्याय अथवा शतरुद्रिय) मंत्र, नीलरुद्र (अथर्ववेदसंहिता का रुद्र मन्त्र), श्रीसूक्त (ऋग्वेद का), रात्रिसूक्त (ऋग्वेद का), चमका होतार, अथर्वशिरस्, शान्ति, भरुण्ड, आरुण, वारुण, ज्येष्ठ, वेदव्रत, रथन्तर, पुरुषसूक्त, त्वरितरुद्र (जो **'यो रुद्रो'** से प्रारंभ होता है तथा तैत्तिरीय संहिता 5/5/9/3 से लिया गया है), कपि, कपर्दि, सामं आवो राजानम्, बृहच्चंद्र, विष्णु, विरूपाक्ष मन्त्र,

---

[1] 'ॐ नमः शिवाय' का न्यास करे।

स्कन्द (ऋग्वेद के 100 मंत्रों का समूह), पंचब्रह्म, पंचाक्षर मंत्र अथवा मात्र प्रणव से। उपरोक्त मंत्र अथवा मन्त्रों द्वारा शिव का अभिषेक करने के बाद षोडश उपचार से पूजा करनी चाहिये (लिंग पु. 1/27/40-48)।

जो लोग भगवान् शिव की लिंगरूप में निम्नलिखित तरीके से नित्य पूजा करते हैं, वे जन्ममरण से मुक्त हो जाते हैं - गंध, माला, धूप, दीप, स्नान, होम, बलि, प्रार्थना, मन्त्रोच्चार तथा भेंट निवेदन करना (लिंग पु. 2/47/12)।

एक स्थल पर रेत या धूल के शिवलिंग की उपासना का प्रकरण आया है। पराशर ने धूल एकत्र कर लिंग बनाया तथा उसकी शिवसूक्त, त्र्यम्बकसूक्त, त्वरितरुद्र, शिवसंकल्प, नीलरूद्र, रुद्र, वामीय, पवमान, पंचब्रह्म, होतृसूक्त, लिंगसूक्त तथा अथर्वशिरस् मंत्रों से उसकी उपासना की तथा अष्टांग अर्घ्य निवेदन किया। तदनन्तर उन्होंने शिव का दर्शन पाया। इस प्रकरण से यही शिक्षा मिलती है कि हमें भी इन मंत्रों से लिंगार्चन करना चाहिये।

सूतजी शिवपूजा के सन्दर्भ में कहते हैं कि विश्वास के बलपर शिव को प्रसन्न कर देखा एवं उनसे वार्तालाप किया जा सकता है। जो लोग भक्तिहीन हैं वे भी अगर प्रसंगवश शिव की पूजा कर लेते हैं तो उन्हें भी उनकी भावना के अनुसार फल प्राप्त होता है (लिंग पु. 1/79/4)। जो व्यक्ति अभक्ष्य भक्षी है वह शिव की पूजा करने पर यक्ष बनता है। अत: पूजक को भक्ष्याभक्ष पर विचार अवश्य करना चाहिये (लिंग पु. 1/79/6)। शिव की गायत्री द्वारा पूजा करने पर प्रजापति का तथा प्रणव द्वारा करने पर विष्णु का अथवा ब्रह्मा का लोक प्राप्त होता है। (लिंग पु. 1/79/8)

लिंग को शुद्ध जल से स्नान कराना चाहिये। उसके बाद वेदी में भगवान् शिव का भक्तिपूर्वक आवाहन करना चाहिये, तदनन्तर पाद्य, आचमन तथा अर्घ्य निवेदन करना चाहिये। इसके बाद शुद्ध जल, घी तथा दूध से स्नान कराना चाहिये। फिर क्रमश: दही एवं शुद्ध जल से। इसके बाद चन्दन, लाल फूल, बिल्वपत्र, लाल एवं नीले कमल, नन्द्यावर्त फूल, मल्लिका, चम्पक जाति के पुष्प, बकुल, करवीर, शमी और वृहत् के फूल, उन्मत्त, अगस्त, अपामार्ग के फूल तथा सुन्दर आभूषणों से पूजा करनी चाहिये। पुन: पाँच प्रकार के धूप तथा दूध की खीर का नैवेद्य अर्पण करे। अन्य प्रकार के भी नैवेद्य भेंट करे। इसके बाद परिक्रमा तथा नमस्कार करे। फिर स्तुति और पूजा कर भक्तिपूर्वक ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव एवं सद्योजात आदि मन्त्रों का जप करे (लिंग पु. 1/79/10-23)।

उपरोक्त प्रकार की पूजा एक बार भी सम्पन्न करनेवाले को शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। अकस्मात् इस प्रकार की शिव-पूजा होती हुई देखनेवाला भी सभी पापों से मुक्त हो जाता है। मंदिर में शिवपूजा के निमित्त दीपदान करनेवाला भी शिवलोक में पूजा जाता है। पूजा के समय आवाहन, सांनिध्य तथा स्थापन तथा पूजन रुद्र गायत्री से, आसन प्रणव से, स्नान सद्योजात आदि पाँच मन्त्रों से करना चाहिये। प्रणव के द्वारा दाहिनी तरफ ब्रह्मा की तथा उत्तर दिशा में गायत्री के द्वारा विष्णु की

पूजा सद्योजातादि पाँच मन्त्रों में ॐकार जोड़कर पाँच आहुतियाँ देने के बाद करे। इस प्रकार पूजा करने से शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है (लिंग पु. 1/79/32-37)।

उषाकाल में शिवलिंग के दर्शन से सर्वोच्च लक्ष्य की सिद्धि होती है। दोपहर में दर्शन करने से यज्ञ का फल तथा सायंकाल में दर्शन से सभी प्रकार के यज्ञ का फल प्राप्तकर मुक्ति हो जाती है; साथ ही शरीरिक, मानसिक तथा वाचिक सभी प्रकार के बड़े पापों से तथा अन्य छोटे-छोटे पापों से भी मुक्ति मिल जाती है। संक्रान्तिकाल में लिंग के दर्शन आदि से व्यक्ति महीने भर के पापों से छूट जाता है तथा शिवधाम को जाता है। उत्तरायण एवं दक्षिणायन की संक्रान्ति तथा विषुव योग (जिस समय दिन एवं रात बराबर होते हैं) में शिवलिंग का दर्शन भी पापों से छुड़ाकर उत्तम लक्ष्यों की प्राप्ति कराता है। शुद्धआत्मा शिवलिंग की सव्य अथवा अपसव्यरूप से (अर्थात् दक्षिणावर्त या वामावर्त) तीन बार परिक्रमा कर पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

यः प्रातर्देवदेवेशं शिवं लिङ्गस्वरूपिणम्।
पश्येत्सयाति सर्वस्मादधिकां गतिमेव च।।
मध्याह्ने च महादेवं दृष्ट्वा यज्ञफलं लभेत्।
सायाह्ने सर्वयज्ञानां फलं प्राप्य विमुच्यते।।
मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च महत्तरैः।
तथोपपातकैश्चैव पापैश्चैवानुपातकैः।।
सङ्क्रमे देवमीशानंदृष्ट्वा लिङ्गाकृतिंप्रभुम्।
मासेनयत्कृतंपापंत्यक्त्वायातिशिवंपदम्।।
अयने चार्द्धमासेन दक्षिणे चोत्तरायणे।
विषुवे चैव सम्पूज्य प्रयाति परमाङ्गतिम्।।
प्रदक्षिणत्रयं कुर्य्याद् यः प्रासादं समन्ततः।
सव्यापसव्यन्यायेन मृदुगत्या शुचिर्नरः।।
पदे पदेऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात्। (लिंग पु. 1/77/60-66)

(4) शिवप्रतिमास्थापन एवं मन्दिरनिर्माण

भगवान् शिव की पूजा लिंग एवं मूर्ति दोनों में होती है। लिंगपूजा भगवान् शिव के निर्गुण, सर्वव्यापी एवं सर्वदेवमयरूप की उपासना है। मूर्ति के रूप में उपासना करने के लिये भगवान् शिव की नाना प्रकार की मूर्तियाँ बनायी जाती हैं। इन भिन्न-भिन्न मूर्तियों की स्थापना के फल भी भिन्न-भिन्न बताये गये हैं। भगवान् शिव की प्रतिमा को उत्तम आसन पर बैठाकर उमा एवं स्कंद के साथ स्थापित करने पर उपासक की मनोकामना पूर्ण होती है। शास्त्रविधि के अनुसार भगवान् शिव की ऐसी प्रतिमा, जिसमें वे एक पैर, चार भुजायें, तीन आँखें तथा त्रिशूल धारण किये हुए हैं तथा जो

समस्त चराचर की सृष्टि करने के बाद इस रूप में स्थित हैं, की स्थापना करने से शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। शिव की ऐसी प्रतिमा जिसमें उनके तीन पैर, सात बाजू, चार सींग और दो शिर हैं, की स्थापना से व्यक्ति विष्णुलोक में पूजित होता है। इसी प्रकार साँढ़पर उमा के साथ सवार शिव, जिनके सिरपर चन्द्रमा भी हो, की प्रतिमा स्थापित करने पर हजार अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त कर व्यक्ति मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार से अन्य प्रकार की मूर्तियों की स्थापना के फल इस पुराण में बताये गये हैं(लिंग पुराण - पूर्वभाग - अध्याय - 76)।

शिवमूर्तियों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार गंधादि से पूजा कर **'ॐ नमो नीलकंठाय'** इस अष्टाक्षर मन्त्र के एक बार के जप से ही व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है तथा शिवलोक में पूजित होता है(लिंग पुराण - पूर्वभाग - अध्याय 1/76/44-46)।

शिवमन्दिर एवं शिव की मूर्ति बनाने की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि अगर खेल-खेल में भी मिट्टी अथवा पत्थर व रेत से भगवान् शिव की मूर्ति और मन्दिर बनाकर उनकी पूजा करें तो शिवसायुज्य की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये धर्म, काम तथा अर्थ की सिद्धि के लिये भक्तिपूर्वक शिवालय में पूजा करे तथा उसका निर्माण भी करें।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्या भक्तैः शिवालयम्।
कर्तव्यं सर्वयत्नेनधर्मकामार्थसिद्धये।। (लिंग पु. 1/77/6)

इस पुराण में नाना प्रकार के शिवालयों, जैसे- केशर, नागर, द्राविड़, कैलास, मन्दर, मेरु, निषध, हिम शैल, नीलाद्रिशिखर, महेन्द्र शैल आदि, के निर्माण का फल बताया गया है। इन भिन्न-भिन्न शैली में निर्मित शिवालयों को बनानेवाला या तो रुद्रलोक जाता, मुक्त हो जाता अथवा शिवसायुज्य को प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो लोग रत्नजटित एवं सुवर्णमय मंदिर का निर्माण विधिपूर्वक करते हैं उनको विशेष फल मिलता है, जिसका वर्णन युगों में भी नहीं हो सकता ।

मन्दिर बनाने से ज्यादा फल मन्दिर के मरम्मत से प्राप्त होता है। इसलिये जो लोग मंदिर नहीं बनवा सकते उन्हें पुराने मंदिरों में हुई टूट-फूट की मरम्मत करानी चाहिये। जीर्ण, गिरे हुए अथवा खंडित शिवालय में नाना प्रकार के मरम्मत करानेवाले को मंदिरनिर्माता से ज्यादा पुण्य प्राप्त होता है।

जीर्णं वा पतितं वापि खण्डितं स्फुटितंतथा।।
पूर्ववत्कारयेद्यस्तु द्वाराद्यैः सुशुभं द्विजाः!।
प्रासादं मण्डपं वापिप्राकारंगोपुरंतुवा।।
कर्त्तुरप्यधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः। (लिंग पु. 1/77/24-26)

पुनः यह बताया गया है कि जो व्यक्ति अपनी रोजी-रोटी चलाने हेतु भी मंदिर में सेवा-कार्य करता है वह भी अपने परिवारसहित स्वर्ग को चला जाता है। अगर कोई व्यक्ति अपनी कामना-सिद्धि के लिये शिवालय में एक बार भी सेवाकार्य करता है तो उसे आनंद की प्राप्ति होती है। जो भक्ति

अथवा श्रद्धा से लकड़ी एवं ईटों आदि से शिवालय बनवाता है वह शिवलोक में सम्मानित होता है। अतः शिव की प्रसन्नता, धर्म, काम, अर्थ और मुक्ति की प्राप्ति के लिये प्रयत्नपूर्वक शिवालय का निर्माण करना चाहिये।

वृत्त्यर्थं वा प्रकुर्वीत नरः कर्म्म शिवालये।।
यः सयातिनसन्देहः स्वर्गलोकंसबान्धवः।
यश्चात्मभोगसिद्ध्यर्थमपिरुद्रालये सकृत्।।
कर्म्म कुर्य्याद् यदि सुखं लब्ध्वा चापि प्रमोदते।
तस्मादायतनं भक्त्या यः कुर्य्यान्मुनिसत्तमाः।।
काष्ठेष्टकादिभिर्मर्त्यः शिवलोके महीयते।
प्रसादार्थं महेशस्य प्रासादो मुनि पुङ्गवाः।।
कर्त्तव्यः सर्वयत्नेन धर्मकामार्थमुक्तये। (लिंग पु. 1/77/26-30)

अगर कोई व्यक्ति शिवालय बनवाने में असमर्थ है तो उसे शिवालय में झाड़ू-पोछा आदि कार्य द्वारा सेवा करनी चाहिये। ऐसा करने से उसकी मनोकामना पूरी होती है और एक महीने के अन्दर ही उसे एक हजार चान्द्रायणव्रत का फल प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार सुगंधित एवं छाने हुए शुद्ध जल एवं गाय के गोबर के मिश्रण से आलेपन करने से एक वर्ष के चान्द्रायण व्रत का फल प्राप्त हो जाता है।

अशक्तश्चेन्मुनिश्रेष्ठाः! प्रासादं कर्त्तमुत्तमम्।।
सम्मार्जनादिभिर्वापि सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
सम्मार्जनं तु यः कुर्य्यान्मार्जन्या मृदु सूक्ष्मया।।
चान्द्रायणसहस्रस्य फलं मासेन लभ्यते।
यः कुर्य्याद्वस्त्रपूतेन गन्धगोमयवारिणा।।
आलेपनं यथान्यायं वर्षचान्द्रायणं लभेत्। (लिंग पु. 1/77/30-33)

स्थापित शिवलिंग के आस-पास का क्षेत्र शिवक्षेत्र कहलाता है। बाणलिंग तथा स्वयंभू लिंग के चारों तरफ एक मील का क्षेत्र, आर्ष(साधुओं द्वारा स्थापित लिंग) के चारों ओर आधा मील का क्षेत्र, तथा मानुष(मनुष्यों द्वारा स्थापित) लिंग के चारों तरफ का चौथाई मील का क्षेत्र शिवक्षेत्र कहलाता है। इस क्षेत्र में प्राण त्यागने से शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है(लिंग पु. 1/77/33-37)।

शिवक्षेत्र के दर्शन से सौ गुना पुण्य क्षेत्र में प्रवेश करने से, प्रवेश से सौ गुना पुण्य स्पर्श एवं परिक्रमा से तथा इससे सौ गुना पुण्य जल द्वारा स्नान कराने से प्राप्त होता है। देवता को दूध से स्नान कराना जल से सौ गुना अच्छा है, जबकि दही से स्नान कराना हजार गुना तथा शहद से लाख गुना अच्छा है। घी से स्नान कराना अनन्त गुना तथा शर्करा से स्नान कराना इससे भी सौ गुना पुण्यदायक

है। (वही 1/77/48 - 51)

शिवक्षेत्र में स्थित सभी नदियाँ, कुएँ, तालाब तथा झीलें शिवतीर्थ कहलाती हैं। इन तीर्थों में भक्तिपूर्वक प्रातःकाल स्नान करनेवाला अश्वमेघ यज्ञ का फल पाता तथा रुद्रलोक को जाता है। दोपहर में स्नान करनेवाला गंगास्नान का फल पाता तथा सूर्यास्त के बाद स्नान करनेवाला शिवलोक को जाता है। शिवक्षेत्र में त्रिकाल स्नान करनेवाला शिवसायुज्य को प्राप्त करता है।(लिंग पु. 1/77/52 - 58)

जो भक्तिपूर्वक (शिवालय के) गर्भगृह की चारों तरफ से सफाई कर लीपता है तथा चारों ओर सुगन्धित पुष्प फैलाकर चन्दन, कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य निवेदित करता तथा चार प्रकार के धूप से उसे सुवासित कर ईश्वर की प्रार्थना करता है वह शिवलोक को जाता है।

यस्तु गर्भग्रहं भक्त्या सकृदालिप्य सर्वतः।
चन्दनाद्यैः सकर्पूरैर्गन्धद्रव्यैः समन्ततः।।
विकीर्य्य गन्धकुसुमैर्धूपैर्धूप्य चतुर्विधैः।
प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकं स गच्छति।। (लिंग पु. 1/77/101-102)

शिवक्षेत्र की सफाई तथा लीपने का कार्य वस्त्र से छाने हुए शुद्ध जल से करना चाहिये अन्यथा सिद्धि प्राप्त नहीं होती। नदी से (अथवा अन्य कहीं से) प्राप्त जल में झाग नहीं होना चाहिये। इसे कपड़े से छान देने पर शुद्ध हो जाता है। सभी प्रकार के देवकार्य शुद्ध एवं छाने हुए जल से ही संपादन करने चाहिये क्योंकि जल में सूक्ष्म कीटाणु होते हैं। इस कारण से वहाँ हिंसा की संभावना होती है। देवकार्य में हिंसा से बचना चाहिये। परन्तु देवकार्य के लिये पुष्प आदि तोड़ने से हुई हिंसा (पुष्पहिंसा) क्षम्य होती है(लिंग पु. 1/78/1-4, 14))।

(5) शिव संबंधी पंचाक्षर मन्त्र

इस पुराण में भगवान् शिव ब्रह्माजी से कह रहे हैं कि इस संसार में ज्ञान के तथा योग के अनेक मार्ग हैं, परन्तु बिना पंचाक्षर मन्त्र के मोक्ष को पाना संभव नहीं है।

योगमार्गाअनेकाश्चज्ञानमार्गास्त्वनेकशः।
न निर्वृतिमुपायान्तिविनापञ्चाक्षरींक्वचित्।। (लिंग पु. 1/24/136)

सभी प्रकार के शिवव्रतों की समाप्ति पंचाक्षर मन्त्र के जप से ही करनी चाहिये अन्य तरीके से नहीं।

जपादेव न सन्देहोव्रतानांवै विशेषतः।
समाप्तिर्नान्यथा तस्माज्जपेत्पञ्चाक्षरींशुभाम्।। (लिंग पु. 1/85/2)

इस पुराण के पूर्वभाग के 85 वें अध्याय में विस्तार से पंचाक्षर मंत्र के बारे में चर्चा की गयी है। यहाँ हम संक्षेप में ही इसकी चर्चा करेंगे। यह मन्त्र शिव की ही अभिव्यक्ति है। प्रलय के समय सभी वेद - शास्त्र पंचाक्षर मंत्र में स्थित होते हैं। शिव की शक्ति से उनका विनाश नहीं होता, वे सुरक्षित बने

रहते हैं(लिंग पुराण 1/85/9)। यह मंत्र शिव के पाँचों मुखों से निकले एक-एक अक्षरों के मेल से बना है। सृष्टि के आदि में यह मन्त्र शिव से ब्रह्मा को प्राप्त हुआ(लिंग पु. 1/85/14-16)। इस मन्त्र को वेदों का सार तथा मुक्तिदाता कहा गया है(लिंग पु. 1/85/29)। यह तीनों गुणों से परे वेदस्वरूप है, यह सर्वकर्मा साक्षात् सर्वज्ञ शिव है(लिंग पु. 1/85/32)। एकाक्षर ॐकार में सर्वव्यापी शिव विराजमान होते हैं। पंचाक्षर उनका शरीर है। इस तरह षडक्षर मन्त्र(**ॐ नमः शिवाय**) में शिव वाच्य-वाचक भाव से स्थित होते हैं अर्थात् मंत्र वाचक तथा शिव वाच्य हैं(लिंग पु. 1/85/32-34)।

पंचाक्षर(अथवा किसी अन्य) मन्त्र के जप से पहले मंत्र के ऋषि, छन्द, बीज, शक्ति तथा आत्मा के उच्चारण के बाद अंग, कर एवं देह न्यास करना चाहिये। तदनन्तर मूल मंत्र का जप करना चाहिये। इस पुराण में पंचाक्षरमन्त्र के ऋषि, छन्द, न्यासादि का विस्तृत वर्णन किया गया है। संक्षेप में इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छंद पंक्ति तथा देवता शिव हैं। 'न' आदि अक्षर बीज हैं जो पाँच तत्त्वों के रूप में हैं। इस मन्त्र का आत्मा प्रणव तथा शक्ति देवी हैं।

वामदेवोनामऋषिःपङ्क्तिश्छन्दउदाहृतः।।
देवता शिव एवाऽहं मन्त्रस्याऽस्यवरानने।
नकारादीनिबीजानिपञ्चभूतात्मकानिच।।
आत्मानंप्रणवंविद्धिसर्वव्यापिनमव्ययम्।
शक्तिस्त्वमेव देवेशि! सर्वदेवनमस्कृते।। (लिंग पु. 1/85/41-43)

इस मन्त्र के ओंकार का स्वर उदात्त, ऋषि ब्रह्मा, शरीर श्वेत, छन्द(देवी) गायत्री, देवता परमात्मा है। इस मन्त्र(पंचाक्षर) का प्रथम(न), द्वितीय(मः) और चतुर्थ(वा) अक्षर उदात्त, पाँचवा(य) स्वरित(न उच्च न निम्न) तथा तीसरा(शि) अक्षर निषाद(निषध) है। 'न' कार पीत वर्ण का तथा पूर्वमुख से उत्पन्न है। इन्द्र इसका देवता, गायत्री छन्द और गौतम ऋषि हैं। 'मः' कृष्ण वर्ण का, दक्षिणमुख से उत्पन्न, अनुष्टुप छन्द, अत्रि ऋषि तथा रुद्र इसके देवता हैं। 'शि' धूम्र वर्ण का, पश्चिममुख से उत्पन्न, विश्वामित्र ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द तथा विष्णु इसके देवता हैं। अक्षर 'वा' सुवर्ण के वर्ण का, उत्तरमुख से उत्पन्न, ब्रह्मा इसके देवता, वृहती छन्द तथा अंगिरा ऋषि हैं। अक्षर 'य' रक्त वर्ण का, ऊपरवाले मुख से उत्पन्न, छन्द विराट, भरद्वाज ऋषि तथा स्कन्द इसके देवता हैं(लिंग पु. 1/85/46-53)।

इसके अनन्तर इस पुराण में विस्तार के साथ उत्पत्ति, स्थिति तथा संहृतिरूप तीन प्रकार के न्यासों की चर्चा है। विस्तार से बचने के लिये इनकी चर्चा यहाँ नहीं की जायगी। पंचाक्षर मंत्र के जप से पहले मंत्र के ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, आत्मा और गुरु का उच्चारण करने के बाद अंगन्यास, देहन्यास तथा करन्यास करना चाहिये। तदनन्तर मूलमंत्र का यथाविधि जप करना चाहिये।

किसी सुयोग्य गुरु से मंत्र को प्राप्त करने के उपरान्त ही जपना चाहिये। निम्नलिखित प्रकार के मन्त्र निष्प्रभावी होते हैं-आज्ञाहीन(अर्थात् ऐसा मन्त्र जो बिना आज्ञा के प्राप्त किया गया है),

क्रियाहीन(अर्थात् जिसमें न्यासादि क्रियाएँ न की जायँ), श्रद्धाहीन, अमानस(जिस जप में पूरी तरह से एकाग्रता न हो), आज्ञप्तम्(अर्थात् जिसका निषेध हो), दक्षिणाहीन(अर्थात् आज्ञा सिद्ध तो है पर वह दक्षिणा से हीन है) और सदाजप्त(अर्थात् जिसका अंधाधुंध हरसमय जप किया ज़ाय)। अतः प्रभावी होने के लिये मन्त्र को आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध, श्रद्धासिद्ध, सुमानस और दक्षिणासिद्ध होना चाहिये(लिंग पु. 1/85/83-85)।

जप पूर्व या उत्तर दिशा में बैठकर प्राणायाम करने के बाद शुरू करना चाहिये। घर में, गऊशाला में, नदी के किनारे, शिव के आगे, समुद्र के किनारे, पहाड़ पर, मन्दिर में तथा पवित्र कुटि में किया हुआ जप उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है। शिव(मूर्ति अथवा लिंग) के, सूर्य के, गुरु के, दीपक के, गाय के अथवा जल के सामने जप करना अच्छा होता है। इसी प्रकार अँगुली से, रेखा से, पुत्रजीव की माला से, शंख एवं मणि की माला से, मूंगे की माला से, स्फटिक की माला से, मुक्ता की माला से, कमल के बीज की माला से, सुवर्ण की माला से, कुश ग्रन्थि की माला से तथा रुद्राक्ष की माला से गिनती किया हुआ जप उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है(लिंग पु. 1/85/106-111)।

अँगूठे से किया हुआ जप मोक्षदायक होता है। जपयज्ञ सभी प्रकार के यज्ञों से बढ़कर है। बिना अँगूठे की मदद से किया गया कोई भी जप-कर्म फलदायक नहीं होता। अतः अँगूठे से ही जप करना चाहिये।

अङ्गुष्ठ मोक्षदं.....................................। (लिंग पु. 1/85/114)
शृणुष्व सर्वयज्ञेभ्यो जपयज्ञो विशिष्यते।। (लिंग पु. 1/85/116)

आगे जपयोग की विशेषता बताते हुए कहा गया है कि-

हिंसया ते प्रवर्त्तन्ते जपयज्ञो न हिंसया।
यावन्तः कर्मयज्ञाः स्युःप्रदानानि तपांसि च।।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। (लिंग पु. 1/85/117-118)

अर्थात्-सभी प्रकार के यज्ञों, दानों तथा तपों को जपयज्ञ की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं माना गया है। अन्य प्रकार के यज्ञों में हिंसा होती है पर जपयज्ञ में किसी भी प्रकार की हिंसा नहीं होती।

वाचिक, उपांशु तथा मानसिक-तीन प्रकार के जप होते हैं। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। वाचिक से उपांशु सौ गुना तथा उपांशु से मानसिक सौ गुना श्रेष्ठ होता है(लिंग पु. 1/85/119)। अतः यथासंभव मानसिकरूप से जप करना चाहिये। लगातार जप से देवता के प्रसन्न हो जाने पर भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त हो जाता है। जप करनेवाले को यक्ष, राक्षस, पिशाच तथा ग्रह परेशान नहीं करते। पंचाक्षर के जप से पिछले जन्मों के पापों का भी नाश हो जाता है तथा आनंद, सिद्धि तथा मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यहाँतक कि मृत्यु को भी जप के द्वारा जीता जा सकता है(लिंग पु. 1/85/123-127)।

पुनः कहा गया है कि सदाचार के बिना सभी प्रकार की जप आदि क्रियायें निष्फल होती हैं।

अत: जप विधि आदि को सीखने के बाद सदाचार के नियमों का पालन करना चाहिये (लिंग पु. 1/85/127-128)। इस पुराण में, जप करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये, उसका विस्तार से वर्णन किया गया है। जैसे पगड़ी के साथ, नग्न अवस्था में, खुले बालों के साथ, अशुद्ध अवस्था में अथवा अशुद्ध हाथ से जप नहीं करना चाहिये। बातचीत करते हुए भी जप नहीं करना चाहिये। क्रोध, मद, क्षुधा, तन्द्रा, थूकना, जँभाई लेना, कुत्ते तथा नीच व्यक्तियों की ओर देखना, निद्रा तथा प्रलाप-जप के दौरान वर्जित हैं। अगर कभी ऐसा हो जाय तो उसे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ग्रह तथा नक्षत्रों के दर्शन कर लेना चाहिये ताकि शुद्धि हो सके। अगर क्रोधादि हो जाय तो आचमन एवं प्राणायाम के बाद जप जारी किया जाना चाहिये। टाँगें फैलाकर या मुर्गे के आसन में बैठकर, लेटकर या बिना आसन पर बैठे जप नहीं करना चाहिये। गली में, शूद्रों[1] की उपस्थिति में, चारपायी पर तथा खून बिखरे फर्श पर जप नहीं करना चाहिये (लिंग पु. 1/85/156-161)।

मन्त्र जप करते समय अर्थ का चिन्तन भी करें। जप करने के लिये रेशम के कपड़े, व्याघ्रचर्म, सूती कपड़े आदि, लकड़ी के तख्त या ताड़पत्र पर आसन ग्रहण करना चाहिये। तीनों संध्यायों में गुरु की पूजा की जानी चाहिये (लिंग पु. 1/85/162-163)। गुरु के प्रसन्न या संतुष्ट हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देवगण तथा ऋषिगण प्रसन्न हो आशिर्वाद देते हैं। गुरु संतुष्ट होकर अपने मन्त्र के द्वारा पापों को जला देते हैं।

गुरुस्तुष्टो दहत्येवं पापं तन्मन्त्रतेजसा।
ब्रह्मा हरिस्तथा रुद्रो देवाश्च मुनयस्तथा।।
कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशयः। (लिंग पु. 1/85/173-174)

इस पुराण में मन्त्र लेनेवाले को गुरु के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, इसका विस्तार से वर्णन किया गया है जिसकी चर्चा यहाँ संभव नहीं है। अन्त में इतना कहना अवश्यक है कि मन्त्र की सिद्धि गुरुकृपा से ही संभव है।

11 बार पंचाक्षर मन्त्र के जप द्वारा निम्नलिखित क्रियाएँ करनी चाहिये- प्रोक्षण, अभिषेक, अघमर्षण, सन्ध्या तथा दोनों समय का स्नान।

प्रोक्षणश्चाऽभिषेकश्च अघमर्षणमेव च।।
स्नाने च सन्ध्ययोश्चैव कुर्यादेकादशेनवै। (लिंग पु. 1/85/186-187)

(6) पशु, पाश एवं पशुपति

ब्रह्मा से लेकर स्थावरपर्यन्त सभी प्राणी पशु कहलाते हैं तथा वे भव-चक्र में घूमते रहते हैं। इन पशुओं के स्वामी शिव को पशुपति कहा जाता है। वे अनादि, अव्यय एवं सर्वव्यापी पुरुष पशुओं को अपनी माया से बाँधते हैं तथा उन्हें मुक्त भी करते हैं। पशुपति के अतिरिक्त सभी माया-पाश

---

[1] यहाँ 'शूद्र' का अर्थ नीच पुरुष है। अर्थात् जो सदाचार से हीन एवं नास्तिक है।

से बँधे हुए हैं अतः उनके सिवा कोई भी मोचक नहीं हो सकता। प्रकृति के चौबीस तत्त्व ही पशुपति के पाश हैं जिनसे वे पशुओं को बाँधते हैं। प्रकृति के चौबीस तत्त्व जो पाश का निर्माण करते हैं, वे निम्न हैं- महत्, अहंकार, पाँच (रूप, रस, गंध, शब्द तथा स्पर्श) तन्मात्राएँ, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन, पाँच (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश) स्थूल तत्त्व तथा प्रधान या अव्यक्त (प्रकृति)। जीव पच्चीसवाँ तत्त्व है जो प्रकृति के इन चौबीस तत्त्वों द्वारा बाँधा जाता है। पशुपति की उपासना अन्तर्मन से उत्पन्न दस इन्द्रियों से मुक्त कर देती है। तदनन्तर तन्मात्राओं के बंधन से मुक्त करती हैं। पशुपति उन्हीं को बाँधते हैं जो इन्द्रिय-गोचर वस्तुओं के सुख के बंधन से बँधे हैं।

प्रकृति के तीन गुणों - रज, तम एवं सत् से ब्रह्मा से लेकर तिनकेतक की वस्तुएँ बँधी हुई हैं। पशुओं को भगवान् शिव पंचक्लेशों के माध्यम से बाँधते तथा उपासित होने पर मुक्त करते हैं। द्विपद जीवों के लिये ये पाँच क्लेश, जो बन्धनरूप हैं, निम्न हैं - अविद्या, अस्मिता (अहंकार), राग, द्वेष और अभिनिवेश (सांसारिक सुखोपभोग की नैसर्गिक लिप्सा फलस्वरूप जीने की तृष्णा अथवा मरने का भय)।[1] योगपरायण व्यक्ति अविद्या को तमस्, अस्मिता को मोह, राग को महामोह, द्वेष को तामिस्र, अभिनिवेश और मिथ्या ज्ञान को अन्धतामिस्र कहते हैं (लिंग पु. 2/9/28-33)।

तमस् और मोह आठ - आठ प्रकार के होते हैं। महामोह दस प्रकार का तथा तामिस्र और अन्ध तामिस्र अठारह - अठारह प्रकार के होते हैं।[2] अविद्या (तमस) आदि के भेद इस प्रकार हैं -

तमस् (अविद्या) - प्रधान, महत्तत्त्व, अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ - इन आठ अनात्म प्रकृतियों में आत्मा की भ्रान्तिरूप अविद्या-संज्ञक तम आठ विषयवाला होने से आठ प्रकार का है।

मोह (अस्मिता) - गौण फलरूप अणिमा - महिमा आदि आठ ऐश्वर्यों (सिद्धियों) में जो परम पुरुषार्थ भ्रान्तिरूप ज्ञान है, वह अस्मिता-संज्ञक मोह कहलाता है। यह भी अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशितृत्व तथा यत्रकामावसायित्व - इन ऐश्वर्यों के आठ भेद होने के कारण यह भी आठ प्रकार का है।

महामोह (राग) - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसंज्ञक लौकिक और दिव्य विषयों में जो अनुराग है, वह रागसंज्ञक महामोह कहा जाता है। यह भी दस विषयवाला होने से दस प्रकार का है।

तामिस्र (द्वेष) - उपर्युक्त आठ ऐश्वर्यों और दस विषयों के भोगार्थ प्रवृत्त होनेपर किसी प्रतिबन्धक से इन विषयों के भोगलाभ में विघ्न पड़ने से जो प्रतिबन्धकविषयक द्वेष होता है, वह तामिस्र कहलाता है। वह तामिस्र आठ ऐश्वर्यों और दिव्य एवं अदिव्य दस विषयों के प्रतिबन्धक होने से अठारह प्रकार का है।

---

[1] पतंजलि के योग - दर्शन में भी ये ही पाँच क्लेश बताये गये हैं (योगसूत्र 2/3)।

[2] सांख्य कारिका में भी इसी प्रकार का वर्णन है (सा. का. 48)। हम यहाँपर इन भेदों का खुलासा सांख्यकारिका के ही आधार पर करेंगे क्योंकि इनका लिंग पुराण में खुलासा नहीं किया गया है, क्योंकि वहाँ यह मानकर चला गया है कि पाठक इन सबसे पहले से ही परिचित हैं।

अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) – आठ प्रकार के ऐश्वर्य और दस प्रकार के विषय-भोगों के उपस्थित होनेपर भी जो चित्त में भय रहता है कि यह सब प्रलयकाल में (अथवा मृत्यु होनेपर) नष्ट हो जायँगे, यह अभिनिवेश अन्धतामिस्र कहलाता है। अभिनिवेशरूप अन्धतामिस्र भी उपर्युक्त अठारह के नाश का भयरूप होने से अठारह प्रकार का है।

भगवान् शिव का अविद्या से संबंध अतीत एवं अनागत का नहीं हो सकता। अर्थात् भगवान् शिव न तो कभी अविद्या के प्रभाव में थे और न कभी होवेंगे। सामान्य जीव अनादि काल से अविद्या के प्रभाव में रहता है और भविष्य में मुक्त हो जानेपर अविद्या से उसका कोई संबंध नहीं रह जाता। इसी प्रकार शिव का द्वेष से कोई संबंध नहीं हो सकता क्योंकि वे सर्वव्यापी अथवा सर्वस्व हैं। अभिनिवेश (मृत्यु का भय) से भी उनका कोई संबंध नहीं हो सकता क्योंकि वे माया से परे हैं तथा वे ही सबके परम धाम हैं। तीनों कालों में शिव का माया से कोई संबंध नहीं हो सकता क्योंकि वे अविद्या से परे हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि शिव पर कभी भी तीनों काल में अविद्या हावी नहीं हो सकती। क्रिया करने के बाद भी शिव माया से निर्लिप्त रहते हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप होने की वजह से शिव क्षणभंगुर सुख-दुःख से प्रभावित नहीं होते, वे नियति और भाग्य से भी अप्रभावित रहते हैं। इसी प्रकार शिव में राग और अस्मिता का भी अभाव होता है।

भगवान् शिव परम शुभ एवं परम गुरु हैं। वे नित्य शुद्ध एवं बुद्ध हैं। उनका इस जगत् में कोई प्रयोजन नहीं है। उनकी सभी प्रकार की क्रियाओं का प्रयोजन मात्र पशुओं पर अनुग्रह करना है ताकि वे पाशों से मुक्त हो सकें।

आत्मप्रयोजनाभावे परानुग्रह एव हि।
प्रयोजनं समस्तानां कार्य्याणां परमेश्वरः।। (लिंग पु. 2/9/49)

प्रकृति या माया के पाशों से मुक्त होने के लिये अनेक उपाय सुझाये गये हैं। भगवान् शिव या पशुपति के अनुग्रह से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। भगवान् शिव का अनुग्रह पाने का प्रयास करना ही पशुत्व से मुक्ति प्राप्त करने का रास्ता है। उनका अनुग्रह पाने के लिये ही सभी प्रकार की पूजा, तप, योग, ज्ञान आदि का सेवन किया जाता है।

(7) पाशमुक्ति के उपाय

पाश-मुक्ति के अनेक उपायों में भक्ति, ज्ञान, पाशुपतव्रत तथा पाशुपत-योग प्रमुख हैं। पाशबद्ध जीवों को मुक्ति प्राप्त करने का सबसे सुगम एवं प्रभावशाली साधन भक्ति है। ये चारों साधन एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं परन्तु इनमें किसी खास पहलू पर ज्यादा बल दिया जाता है। उदाहरण के लिये भक्ति में विश्वास, भावना एवं प्रेमपर तो ज्ञानमें आत्म-संयम बुद्धि और विवेकपर तथा पाशुपत योग में ध्यानपर। ये साधन अलग-अलग तरह के भक्तों के लिये बनाये गये हैं।

जो भगवान् शिव के भक्त हैं वे अवश्य ही मुक्त हो जाते हैं। ज्ञान, वेदों के उपदेश, देवताओं

के निमित्त दान, ध्यान, व्रत, तप, तथा वेदाध्ययन आदि भगवान् शिव की भक्ति बढ़ाने के साधन हैं। हजारों चान्द्रायणव्रत, सैकड़ों प्राजापत्यव्रत तथा नाना प्रकार के व्रत आदि धार्मिक क्रियाओं के फलस्वरूप शिवभक्ति पैदा होती है। जिनमें शिवभक्ति का अभाव है वह कर्मों के चक्कर में घूमता रहता है। भक्त अपनी भक्ति के बलपर मुक्त हो जाता है(लिंग पु. 1/10/32-35)।

पार्वती द्वारा पूछे जाने पर कि आप किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं? तथा किस प्रकार पूजे जाते हैं? तप, अध्ययन अथवा योग द्वारा? भगवान् शिव कहते हैं कि मैं केवल श्रद्धा द्वारा ही वश में होता हूँ। श्रद्धा सबसे महान् एवं सूक्ष्मतम सद्गुण है। लिंग में मेरी श्रद्धापूर्वक उपासना करनी चाहिये। मेरी पंचमुखी मूर्ति का ध्यान कर पंचाक्षर मंत्र द्वारा लिंग में मेरी पूजा करनी चाहिये। मैं भक्ति के द्वारा स्थूल रूप में भी दिरवाई पड़ सकता हूँ। श्रद्धा ही पूर्ण ज्ञान, यज्ञ, तप, स्र्वग एवं मुक्ति है। मैं सदैव श्रद्धाद्वारा ही देरवा जाता हूँ।

114630

श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा ज्ञानं हुतंतपः।।
श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च दृश्योऽहं श्रद्धया सदा।। (लिंग पु. 1/10/52-53)

भगवान् शिव में श्रद्धा रखना तथा उनकी सेवा करना ही भक्ति है। भक्ति द्वारा आराधित होनेपर शिवजी पशुओं के बन्धन तत्काल ही खोल देते हैं। वाणी, मन और शरीर से भगवान् की सेवा करना भक्ति कहलाती है। भगवान् शिव के गुणों एवं लीलाओं का चिन्तन करना मानसिक सेवा का रूप है। जैसे भगवान् शिव सत्यस्वरूप, सर्वव्यापी तथा सर्वनियन्ता हैं, वे नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं, सब कुछ उसी की लीला का परिणाम है। इन सब बातों का दिल की गहराईयों से श्रद्धा के साथ चिन्तन करना चाहिये।

प्रणव, पंचाक्षर अथवा अन्य मन्त्रों का जप, शिवलीला तथा उनके गुणों को वाणी द्वारा दूसरे तक पहुँचाना, नाना प्रकार के स्तोत्र आदि का पाठ-वाचिक सेवा कहलाती है। प्राणायाम, लिंगार्चन, मन्दिरनिर्माण, मन्दिर में झाड़ू-पोछा, सफाई आदि की सेवा शारीरिक सेवा अथवा भक्ति कहलाती है।

भगवान् शिव के अन्य नामों में प्रणव को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। अतः प्रणव के जप को इस पुराण में काफी महत्त्व दिया गया है।

प्रणवोवाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः।
शिवरुद्रादिशब्दानां प्रणवोऽपि परः स्मृतः।। (लिंग पु. 2/9/50)

अर्थात्-परमात्मा शिव का वाचक प्रणव है। इसे शिव, रुद्र आदि शब्दों से श्रेष्ठ समझना चाहिये। प्रणव के जप द्वारा परम शिव को पाया जा सकता है। कहा गया है कि ओंकार को दीप बना अन्तर में शिव के धाम को खोजना चाहिये, शास्त्रों में इसके लिये भटकना व्यर्थ है(लिंग पु. 2/9/55)।

(8) पाशुपतवत

इस व्रत के अनेक रूप हैं। 'पाशुपतव्रत' शब्द अनेक अर्थो में प्रयुक्त होता है। कभी यह व्रत विशेष प्रकार की लिंगपूजा को तो कभी ज्ञानसहित ध्यान एवं योग को तो कभी विशेष प्रकार से

प्राणायाम आदि के साथ ॐकार का जप, भस्म सेवन एवं लिंगपूजा को सूचित करता है। वास्तव में यह शब्द किसी भी ऐसे व्रत या साधन को सूचित करता हैं जिससे पाशों से मुक्ति मिलती हो। हम यहाँ पर कुछ ऐसे ही व्रतों की रूपरेखा, जो लिंग पुराण में निहित है, को प्रस्तुत करेंगे।

विरक्त एवं प्रबुद्ध लोगों के लिये जप से ज्यादा महत्त्व ध्यानयज्ञ का है। आत्मा की प्राप्ति आश्रमधर्म, वेद, यज्ञ, सांख्य, व्रत, तप तथा दान से नहीं होती अपितु ज्ञान से होती है, इसीलिये पाशुपतव्रत को धारण करना चाहिये। पाशुपत व्रतधारी सदैव भस्मशायी होता है। पंचार्थज्ञान से सम्पन्न तथा शिवतत्त्व में समाहित चित्तवाला योग(ध्यान) को धारणकर मुक्त हो जाता है(लिं. पु. 1/86/46-50)। सभी-कुछ शिव से ही उत्पन्न होता, उन्हीं में स्थिर होता तथा उन्हीं में लीन हो जाता है, उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इस रहस्य को मन, वाणी और शरीर द्वारा अनुभव करना तथा सत् एवं असत् दोनों को आत्मा में ही देखना चाहिये। सब-कुछ आत्मा में देखनेपर मन को दूसरे विषयों में भटकने से रोका जा सकता है और ध्यानद्वारा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ध्यान के लिये हृदयचक्र में मन को एकाग्र करने के लिये कहा गया है(लिंग पु. 1/86/60-64)।

स्पष्ट एवं पूर्ण ज्ञान गुरु के सम्पर्क से प्राप्त होता है। यह ज्ञान, राग, द्वेष, असत्य, क्रोध, काम तथा तृष्णा आदि से रहित तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला होता है। अज्ञान के मल से आवृत्त व्यक्ति करोड़ों जन्म में तबतक मुक्त नहीं होता जबतक कि उसका मल नष्ट नहीं हो जाता। बिना पूर्ण ज्ञान के पाप और पुण्यों का नाश नहीं होता और जबतक इनका नाश नहीं होता तबतक आवागमन का चक्र चलता रहता है। इसीलिये मुक्ति के लिये ज्ञान का अभ्यास करना चाहिये।

पूर्ण ज्ञान गुरु के सम्पर्क से न कि शब्दों से प्राप्त होता है। चतुर्व्युह[1] के अनुभव तथा गहन चिन्तन के उपरान्त ध्यान का अभ्यास करना चाहिये। ज्ञान धर्म या सद्गुणों से उत्पन्न होता है तथा इस ज्ञान से वैराग्य और वैराग्य से परम ज्ञान पैदा होता है जो वस्तुओं के अर्थ को प्रकाशित करता है। अर्थात् गुरु का सम्पर्क एवं धर्म के पालन से व्यक्ति ज्ञान एवं वैराग्य से सम्पन्न हो ध्यान के योग्य बन जाता है तथा ध्यान से परम ज्ञान(परमात्मा का ज्ञान) प्राप्तकर मुक्त हो जाता है।(लिंग पु. 1/86/115)

इस पुराण में आगे ध्यान करने की विधि तथा ध्यानी के आचरण करने योग्य बातें बतायी गयीं हैं। वैसे तो ध्यान गुरु की बतायी गयी विधि से करना चाहिये, फिर भी ध्यान की विधि की रूपरेखा इस पुराण में बतायी गयी है। प्रारंभ में शुद्ध सोने की चमक अथवा धूम्ररहित दहकते हुए कोयले के अंगार जैसे रूप का ब्रह्म रन्ध्र में ध्यान करना चाहिये। प्रारंभ में सविषयक ध्यान तथा बाद में निर्विषयक ध्यान करना चाहिये। ध्यान के छः प्रकार क्रमशः दो, चार, छह, दस, बारह तथा सोलह इकाइयोंवाले समय(मात्रा) से युक्त हैं। ध्यानी ध्यान के विषय पर मन को केन्द्रित करने के बाद किसी अन्य वस्तु के बारे में चेतन नहीं होता और

---

[1] चतुर्व्युह का अर्थ परमात्मा की चार अवस्थाएँ हैं- तैजस, विश्व, प्रज्ञा और तुरीय। सृष्टि की प्रक्रिया परमात्मा के इन चारों स्तरों से सम्बंधित है। इस तथ्य को हृदयंगम करना चतुर्व्युह का अनुभव करना कहलाता है।

न ही वह अपने आपको किसी अन्य वस्तुओं से जोड़ता है। वह न तो कुछ सुनता है, न सूँघता है, न स्पर्श और स्वाद का अनुभव करता है। वह अपने आप में लीन हो जाता है। आगे बताया गया है कि किस-किस वस्तु का कैसे-कैसे और कहाँ ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार ध्यान करते-करते ध्यानी परम शिव का ज्ञान प्राप्तकर मुक्त हो जाता है। पाशुपतव्रत का यह ध्यान एवं ज्ञान का मार्ग इस पुराण के पूर्वभाग के ८6 वें अध्याय में बताया गया है। यहाँपर उसकी विस्तार से चर्चा संभव नहीं है।

पाशुपत व्रत का दूसरा रूप यह है। पाँच प्रणव मन्त्र से पाँच तत्त्वों का प्राणायाम द्वारा शोधन करे। पहले पाँच प्रणव के साथ पाँच प्राणयाम, फिर चार प्रणव के साथ चार प्राणयाम, फिर तीन प्रणव के साथ तीन और फिर दो प्रणव के साथ दो प्राणायाम करे। उसके बाद ॐकार का उच्चारण कर प्राण एवं अपान को निरुद्ध करे। अपने सभी अंगों में ज्ञान एवं प्रणवरूपी अमृत को भरे तथा तीन गुणों, अहंकार और तन्मात्राओं का शोधन करे। तदनन्तर तत्त्वों, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का शोधन करे। फिर **'अग्निर्भस्मेति'**, **'वायुर्भस्मेति'**, इत्यादि पाँचो तत्त्वों से सम्बंधित मन्त्र बोलकर सर्वांग में तीनों संध्याओं के समय भस्म को लगाये। ऐसा करने से व्यक्ति को सभी तत्त्वों का ज्ञान हो जायगा। इस प्रकार इस पाशुपतव्रत को करने के बाद शिव की लिंगरूप में पूजा करे। ऐसा करने से वह व्यक्ति एक साल में ही पशुत्व से मुक्ति पा लेता है। शिव की आन्तरिक एवं बाह्य पूजा के साथ-साथ उपरोक्त पाशुपतव्रत को करते रहना चाहिये(लिंग पु. 1/73/10-21)।

पाशुपतव्रत का तीसरा रूप वह है जो लिंगपूजा से संबन्धित है। इस व्रत को बारह साल या बारह महीने अथवा बारह दिनतक करने से पशुत्व से मुक्ति हो सकती है। इस व्रत को द्वादश लिंग भी कहा जाता है। इस व्रत के अन्तर्गत बारह महीनों में विभिन्न रत्नों से निर्मित लिंग की सुवर्ण आदि धातुओं से निर्मित कमलों के द्वारा पूजा की जाती है। इस पूजा में बिल्वपत्र का भी विशेष महत्त्व बताया गया है। लिंगपूजा में इसे अवश्य प्रयोग करें(लिंग पु. 1/81/4-48)।

पाशुपतव्रत का एक अन्य रूप यह है कि व्रती पहले तीनों वेदों के मन्त्रों के प्रयोग द्वारा अग्नि का स्थापन करे। फिर व्रत(उपवास) धारणकर स्नानद्वारा शुद्ध हो सफेद वस्त्र,जनेऊ और सफेद माला धारण करे। तदनन्तर सफेद आलेपन का प्रयोग करे। रजोगुण से रहित होकर हवन करे। इसके बाद शुद्धि संबंधी मन्त्रों का उच्चारण करे। तदनन्तर घी, समिधा और चरु द्वारा क्रमशः हवन करे। उसके बाद रुद्राग्नि को बुझा उसमें से भस्म ग्रहण करे। **'अग्निः'** आदि मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक भस्म को अपने अंगों में धारण करे। भस्मधारण कर व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है। भस्मधारी को 'री' 'तू' आदि अभद्र शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। अर्थात् उसकी भाषा नम्र होनी चाहिये। इस प्रकार का पाशुपतव्रत करनेवाला भी मुक्त हो जाता है(लिंग पु. 2/18/45-59)।

(9) पाशुपत योग

इस पुराण में योग की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है- सभी पदार्थों का जीव द्वारा ज्ञान प्राप्त करना योग है। यह परिभाषा 'पतंजलि' की परिभाषा से भिन्न है। चित्त की एकाग्रता ही योग का लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति मूलतः शिव की कृपा से होती है (लिंग पु. 1/8/3)। कृपा की अनुभुति केवल व्यक्ति को ही होती है। ब्रह्मा आदि किसी अन्य के द्वारा यह कृपा आयातित नहीं होती। व्यक्ति के अन्दर स्वतः ही धीरे-धीरे कृपा का उदय होता है। योग उस क्षेत्र की ओर निर्देश करता है जहाँ भगवान् स्वयं उपस्थित होते हैं। उस क्षेत्र की प्राप्ति का कारण ज्ञान है और ज्ञान शिव की कृपा से होता है (लिंग पु. 1/8/5)। उनकी कृपाप्राप्ति के लिये ही योग का आश्रय लिया जाता है।

इस योग के आठ अंग इस प्रकार हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि। ये आठों अंग पतंजलि ने भी अपने योग-दर्शन में बताये हैं। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, स्तेय एवं अपरिग्रह- ये पाँच यम बताये गये हैं जो नियमों के आधार हैं। लगभग पतंजलि के योगदर्शन के समान ही इन यमों की व्याख्या की गयी है। परन्तु नियमों की संख्या पतंजलि से भिन्न है। ये दस हैं- शौच, इज्या, तप, दान, स्वाध्याय, उपस्थनिग्रह, व्रत, उपवास, मौन तथा स्नान। कुछ लोगों के अनुसार अनीहा, शौच, तुष्टि, तप, जप (शिव मन्त्रों का), ध्यान (शिव का) तथा आसन।

शौच बाह्य एवं आन्तरिक दो प्रकार का होता है। दोनों प्रकार के शौच आवश्यक हैं। बाह्य स्नान के बाद आन्तरीक शुद्धि करनी चाहिये। बगैर आन्तरीक शुद्धि के वह अशुद्ध ही रहता है। आन्तरीक शुद्धि के लिये विराग, भक्ति तथा ज्ञान आवश्यक है। चान्द्रायण आदि व्रतों का विधिपूर्वक पालन तप कहलाता है। ओंकार आदि का त्रिविध (वाचिक, उपांशु एवं मानस) जप स्वाध्याय कहलाता है।

प्राणायाम दो प्रकार का होता है- सगर्भ एवं अगर्भ। जप के साथ होनेवाला प्राणायाम सगर्भ तथा बिना जप के होनेवाला अगर्भ कहलाता है। प्राणायाम के चार लक्ष्य हैं- शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद। शान्ति का अर्थ जन्मजात तथा अर्जित सभी प्रकार के पापों का दमन है। वाणी पर पूर्ण संयम रखना प्रशान्ति है। सर्वदा तथा सर्वत्र प्रकाशित होना दीप्ति है। मन की स्पष्टता प्रसाद कहलाता है। यह चार प्रकार का होता है-ज्ञानेन्द्रियों, बुद्धि और शारीरिक प्राणों की स्पष्टता (5 आंगिक प्राण एवं 5 क्रियाशील प्राण)।

प्राणयाम के द्वारा बुद्धि के दोष जल जाते हैं। प्रत्याहार एवं धारणा के द्वारा सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। भौतिक वस्तुओं पर इस प्रकार का ध्यान करने से कि ये विषतुल्य हैं, व्यक्ति अदैवीय गुणों को नष्ट कर देता है। समाधि के द्वारा बुद्धि की शक्ति को बढ़ाना चाहिये। योगसाधन के लिये उपयुक्त स्थान कौन से हैं? इसे कहाँ करना चाहिये कहाँ नहीं इन सबकी चर्चा इस पुराण के पूर्वभाग के आठवें अध्याय में विस्तार से की गयी है। हमने यहाँपर पतंजलि योग से अन्तर रखनेवाले तत्त्वों का ही संक्षिप्त

वर्णन किया है। बाकी सभी योगांगो का वर्णन पतंजलि के समान ही हैं। इसके अगले अध्याय अर्थात् नौवें में योगमार्ग में आनेवाले विघ्नों का तथा रास्ते में प्राप्त होनेवाली बाधारूप सिद्धियों का वर्णन है।

योगमार्ग की आलस्य, व्याधि, प्रसाद, संशय, अस्थिर मन, अश्रद्धा, भ्रान्ति, दुःख, दौर्मनस्य तथा विषयों में प्रवृत्ति-ये दस बाधाएँ हैं। इनके अतिरिक्त सिद्धिरूप बाधाएँ इस प्रकार हैं-प्रतिभा, श्रवण, वार्त्ता, दर्शना, आस्वाद, और वेदना (लिंग पु. 9/1-3, 14-16)। पातंजलयोगदर्शन में भी योगमार्ग की बाधाओं का वर्णन लगभग इसी प्रकार का है। उसमें 10 की बजाय नौ बाधाएँ बतायी गयीं हैं। उन्हीं नौ में ये दस बाधायें समाहित हो जाती हैं। इसी प्रकार योग-दर्शन में आठ प्रकार की सिद्धियों का वर्णन है जबकि यहाँ 6 प्रकार की सिद्धियों (जिनके कई-कई भेद हैं) का वर्णन है। सिद्धियों का वर्णन यहाँ बड़े विस्तार से है जो पतंजलि के योग से विशिष्ट है।

उपरोक्त अष्टांग पाशुपत योग के अतिरिक्त भी अन्य प्रकार के योगों की संक्षिप्त चर्चा हम इस पुराण में पाते हैं। पार्वती के यह पूछे जानेपर कि कितने प्रकार के योग हैं? भगवान् शिव कहते हैं कि ये पाँच प्रकार के होते हैं-मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग तथा महायोग।

ध्यान के साथ मन्त्र के जप का अभ्यास मन्त्रयोग कहलाता है। इसमें 'रेचक' के द्वारा नाड़ियों की शुद्धि की जाती है। इसमें प्राणपर विजय भी पूरी तरह से करना होता है। कुंभक का अभ्यास जो तीनों प्रकार की धारणाओं को प्रकाशित करता है तथा जो विश्व, प्राज्ञ और तैजस को शुद्ध करता है उसे स्पर्शयोग कहते हैं। जब मन्त्र एवं स्पर्शयोग को त्यागकर साधक केवल भगवान् शिव का आश्रय ग्रहण कर लेता है और मन में उड़नेवाले समस्त बाह्य और अंतरंग भावों का संहार करके चित्त को पूर्णरूप से शुद्ध कर लेता है, तब वह भाव-योग कहा जाता है। अभावयोग में इस सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् का सर्वथा शून्य, निराभास तथा भेदाभेद से रहित रूप से चिन्तन किया जाता है। इसके द्वारा संसार के विभिन्न पदार्थ दृष्टि से विलीन हो जाते हैं और साधक निर्वाण का पथिक बन जाता है। ऐसा ध्यान जिसमें रूप से शून्य, केवल, शुद्ध, स्वच्छन्द, अनिर्देश्य, सदा आलोकित रहनेवाला, सर्वत्र स्वयंवेद्य तत्त्व भासित होता है उसे महायोग कहते हैं। जब नित्य प्रकाशमान् शिवस्वरूप आत्मा अपने शुद्ध विकल्पहीनरूप में भासित होने लगती है तो उसे महायोग कहते है (लिंग पु. 2/55/9-17)।

पाँचों प्रकार के उपरोक्त योग अणिमा आदि सिद्धियों को प्रदान करने के साथ पूर्ण ज्ञान को भी जाग्रत करते हैं। पूर्ण ज्ञान के जाग्रत हो जानेपर मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है।

(10) शिवसंबंधी स्तोत्र

इस पुराण में शिवसंबंधी अनेकों उपयोगी स्तोत्र हैं जिनमें से दो सहस्रनाम स्तोत्र भी हैं। सहस्रनामों के अतिरिक्त अन्य जो स्तोत्र हैं उनकी भी बड़ी महिमा बतायी गयी है। जिज्ञासु पाठकों के लिये हम उनमें से कुछ के सन्दर्भ यहाँ प्रस्तुत करेंगे। वे इसके सहारे मूल ग्रन्थ में उन्हें आसानी

से ढूँढ़ सकेंगे।

जब ब्रह्मा एवं विष्णु के समक्ष अग्निमयलिंग प्रकट हुआ था तो उस समय विष्णु ने जो स्तुति की थी वह लिंग पुराण (1/18/1-39) में पायी जाती है। इसके जप और पाठ से व्यक्ति पापमुक्त हो ब्रह्मलोक को जाता है। एक बार पुनः ब्रह्मा एवं विष्णु के बीच श्रेष्ठता के प्रश्न को लेकर विवाद हुआ था उस समय विष्णु भगवान् एवं ब्रह्मा ने वहाँ प्रकट हुए शिव की स्तुति की थी। उसका सन्दर्भ है - लिं. पु. (1/21/2-88)। इसके पाठ से दस हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। शिव की परास्तुति (लिं. पु. 1/32/1-16) के पाठ से शिव के गणों का अध्यक्ष बना जा सकता है। नृसिंह द्वारा भगवान् शिव की 108 नामों द्वारा की स्तुति (लिं. पु. 1/96/76-94) के पाठ अथवा श्रवण से रुद्रत्व को प्राप्त किया जा सकता है। इन्द्रादि देवगण द्वारा की शिव की स्तुति (लिं. पु. 1/104/7-28) के पाठ से उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। ब्रह्माजी के पुत्र तण्डि द्वारा प्रस्तुत शिव सहस्रनाम (लिं. पु. 1/65/54-168), जो मूलरूप से ब्रह्माजी द्वारा रचित था, के पाठ से एक हजार अश्वमेध यज्ञ का फल तथा गणेश्वर का पद प्राप्त होता है। इस सहस्रनाम को त्रिकाल (मंदिर अथवा पवित्र स्थल में) पढ़ने तथा शिव की पूजा करने से सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है। एक बात यहाँ ध्यान रखने योग्य है कि इस सहस्रनाम स्तोत्र में एक हजार से कम नाम बैठते हैं परन्तु अगर हम 'मतः' (जो 61, 75, 87 वें श्लोक में आते हैं) आदि को व्यक्तिवाचक नाम मान लें तो संख्या पूरी हो सकती है। दूसरी बात यह है कि इसमें बहुत से नामों जैसे नीलः (श्लोक 105, 116), विष्णु (श्लोक 126, 162), जटी (श्लोक 55, 81), बलः (श्लोक 99, 122), धाता (श्लोक 126, 141), गुहावासी (श्लोक 131, 138) आदि की पुनरावृत्ति है। 'शिवतोषिनी', जो लिंग पुराण की टीका है, समान नामों की अलग-अलग ढंग से व्याख्या करने का सुझाव देती है। महाभारत के अनुशासनपर्व (अध्याय 17, श्लोक 31-153) में वर्णित सहस्रनाम तथा इस सहस्रनाम में मामूली अन्तर है। दूसरे शब्दों में इनमें काफी समानता है। इस पुस्तक में महाभारतवाला सहस्रनाम अन्यत्र दिया गया है। पाठक उसे वहाँ देख लें।

इसी पुराण में एक और सहस्रनाम भी दिया गया है जो भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र की प्राप्ति के लिये प्रयोग किया था (लिंग पु. 1/98/27-159)। भगवान् विष्णु एक हजार नामों को क्रमशः बोलते जाते तथा एक-एक कमल का फूल शिवजी को चढ़ाते जाते थे। अन्त में शिवजी ने परीक्षा के बहाने एक फूल कम कर दिया। विष्णु ने, जिनके नेत्र कमल के समान थे, उस कमल के बदले अपनी आँख को भेंट कर दिया। इसपर शिवजी ने प्रसन्न हो उन्हें अपनी भक्ति, देव एवं असुरों द्वारा पूज्य होने का वरदान तथा सुदर्शन चक्र प्रदान किया। इन हजार नामों के जप तथा इस सहस्रनाम द्वारा घी आदि द्वारा अभिषेक करने पर अश्वमेध यज्ञों का फल पाकर व्यक्ति सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। यह सहस्रनाम शिवपुराण में वर्णित (शि. पु. कोटिरुद्रसंहिता अध्याय 35/2-132)

सहस्रनाम का ही थोड़ा परिवर्तित रूप है।[1] शिवपुराणवाला सहस्रनाम भी इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।

इस सहस्रनाम के सन्दर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि इसमें कुल नामों की सख्या एकहजार न होकर 1116 है। 'शिवतोषिनी' कई नामों को नाम न मानकर अन्य नामों का विशेषण मानती है (इस प्रकार नामों की सख्या घटकर एक हजार हो जाती है)। उदाहरण के लिये 'भवाय शिवाय नमः' में 'भवाय' को 'शिवाय' का विशेषण मान लेने पर उसे शिव के नामों में परिगणित नहीं किया जा सकता।

(11) प्रमुख शैवतीर्थ

इस पुराण में कई शैवतीर्थों का वर्णन मिलता है। दधीचि एवं क्षुव के विवाद का अन्तिम निर्णय (अर्थात् क्षुव की पराजय एवं दधीचि की महानता की स्वीकृति) जिस स्थल पर हुआ था, वह स्थान स्थाणवीश्वर नाम से जाना जाता है। यह स्थल वर्त्तमान कुरुक्षेत्र शहर का ही अंग है। वहाँ जाकर व्यक्ति शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है (लिंग पु. 1/36/77)। रुद्रावतार, नरावतार, श्रीपर्वत, गोकर्ण, वाराणसी, अविमुक्तक्षेत्र, केदार, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, प्रभास, पुष्कर, अवन्ति तथा अमरेश्वर आदि तीर्थों में मरने पर शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है (लिंग पु. 1/77/37-45)। पंचनद में जाकर स्नान कर जो जप्येश्वर महादेव की पूजा करता है, वह भी शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है (लिंग पु. 1/43/48)।

वाराणसी के अविमुक्तक्षेत्र को सबसे बड़ा तीर्थ स्वीकार करते हुए कहा गया है कि मृत्यु के आसन्न (निकट) होनेपर व्यक्ति को अविमुक्तक्षेत्र में जाकर प्राणों का विसर्जन करना चाहिये। ऐसा करने से उसे मुक्ति मिल जायगी। श्रीपर्वत पर भी शरीर छोड़ने से शिव-सायुज्य की प्राप्ति होती है (लिंग पु. 1/91/73-76)। अविमुक्त को प्रयाग से भी श्रेष्ठ बताया गया है (लिंग पु. 1/92/48)। इस क्षेत्र में बहुत से योगी एवं पुण्य आत्माएँ प्रच्छन्न वेश में शिव की उपासना करते रहते हैं (लिंग पु. 1/92/62)। यहाँपर अनेक सिद्धों, देवों तथा योगियों ने शिवलिंग स्थापित कर रक्खा है। जबसे संसार की सृष्टि हुई है, यह स्थान शिव द्वारा कभी त्यागा नहीं गया है। इसीलिये इसे अविमुक्त कहते हैं (लिंग पु. 1/92/104)। अविमुक्तेश्वरलिंग के दर्शन से तत्काल ही पापों का नाश हो जाता है तथा जीव को बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। पवित्र पर्वों के अवसर पर केदार, महालय, मध्यमेश्वर, पशुपतेश्वर, शंकुकर्णेश्वर, गोकर्ण, द्रुमचन्द्रेश्वर, भद्रेश्वर, स्थानेश्वर, कालेश्वर, ओंकार, अमरेश, महाकाल आदि धरती के 68 पवित्र तीर्थ वाराणसी में चले आते हैं (लिंग पु. 1/92/134-139)।

'अवि' शब्द वेदों में पापों के लिये प्रयुक्त होता है। अतः जहाँपर पाप नहीं हों उसे अविमुक्त कहेंगे। इस क्षेत्र को अविमुक्त कहने का यही रहस्य है (लिंग पु. 1/92/143)।

---

[1] इस सहस्रनाम से मिलता-जुलता सहस्रनाम सूर्य पुराण (41/12-140) में भी पाया जाता है।

अविशब्देन पापस्तु वेदोक्तः कथ्यते द्विजैः।
तेन मुक्तं मया जुष्टमविमुक्तमतोच्यते।।

वाराणसी के अविमुक्तेश्वर की महिमा के प्रसंग में निम्नलिखित घटना का उल्लेख प्रासांगिक होगा। ब्राह्मणों के शाप से जब भगवान् विष्णु का क्षीर-सागर सूख गया अथवा अपेय हो गया तो शाप के प्रायश्चित्त तथा क्षीरसमुद्र को पुनः पूर्व अवस्था में लाने के लिये भगवान् विष्णु ने वाराणसी जाकर शिवजी का दुग्ध से भक्तिपूर्वक अभिषेक किया। ब्रह्मा एवं ऋषियों के साथ भगवान् विष्णु ने ज्योंही दुग्ध को शिवजी पर डाला, वह दूध उनके संपर्क में आते ही अमृतमय हो गया जिससे क्षीर सागर पुनः भर गया। तदनन्तर विष्णुजी ने पुनः उसे अपना निवास स्थान बना लिया।

अविमुक्तेश्वरं प्राप्य वाराणस्यांजनार्दनः।
क्षीरेण चाऽभिषिच्येशं देवदवंत्रियम्बकम्।।
श्रद्धया परया युक्तो देहाश्लेषामृतेन वै।
निषिक्तेन स्वयं देवः क्षीरेण मधुसूदनः।।
सेचयित्वाऽथ भगवान् ब्रह्मणा मुनिभिः समम्।
क्षीरोदं पूर्ववच्चक्रे निवासं चाऽऽत्मनः प्रभुः।। (लिंग पु. 1/29/30-32)

वाराणसी में मरनेवाले पापी इसी जन्म में मुक्त हो जाते हैं। अन्यत्र किआ हुया पाप वाराणसी में समाप्त हो जाता है परन्तु यहाँपर किया गया पाप पापी को पिशाच बना देता है और उसे नरक ले जाता है।

पापिनां यत्र मुक्तिः स्यान्मृतानामेकजन्मना।
अन्यत्र तु कृतं पापं वाराणस्यां व्यपोहति।।
वाराणस्यांकृतंपापंपैशाच्यनरकावहम्। (लिंग पु. 1/103/75-76)

उस नरक को भोगने के बाद वह मुक्त हो जाता है। वाराणसी में स्थापित अन्यान्य लिंगों जैसे व्याघ्रेश्वर, शैलेश्वर, संगमेश्वर, शुक्रेश्वर आदि का भी वर्णन इस पुराण में किया गया है। इसमें रामेश्वर, मल्लिकार्जुन, रुचिकेश्वर आदि तीर्थों का भी संक्षिप्त उल्लेख है।

(12) शिवोपासना संबंधी कुछ अन्य बातें

शिवोपासना संबंधी कुछ बातें जिनका उल्लेख ऊपर नहीं हो सका है उनका यहाँपर संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

अघोर मन्त्र[1] की महिमा के बारे में कहा गया है कि इसे एक लाख बार जपने से ब्रह्महत्या के पाप, पचास हजार जप से वाचिक पाप, पच्चीस हजार जप से मानसिक पाप दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य प्रकार के पापों से मुक्ति के लिये इस मन्त्र की भिन्न-भिन्न संख्या का जप किया

---

[1] अघोर मन्त्र इस प्रकार है- "ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः"

जाता है। इन संख्याओं तथा उसके साथ अन्य किये जानेवाले कर्मों का उल्लेख भी इस पुराण में विस्तार के साथ मिलता है (लिंग पु. 1/15/7-32)। अघोर मन्त्र की सिद्धिसंबंधी निर्देश तथा उसका प्रयोग बिमारी वगैरह में किस प्रकार किया जाय, इनका भी उल्लेख इसमें (लिंग पु. उत्तरार्द्ध अध्याय 49 और 50) किया गया है। इस मन्त्र को सिद्ध करनेवाले व्यक्ति द्वारा ब्राह्मण, गौ एवं स्त्री को नहीं सताया जाना चाहिये।

तस्मादघोरसिद्ध्यर्थं ब्राह्मणान्नैवबाधयेत्।।
स्त्रीणामपि विशेषेण गवामपिन कारयेत्। (लिंग पु. 2/50/8-9)

मृत्यु से बचने के लिये रुद्राध्याय के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए एक लाख घी की आहुति उचित क्रम से देवें। होम के लिये तिल, घी, कमल, घीमिश्रित दूर्वा, गाय का दूध, शहद तथा चरु जिसमें घी अथवा दूधमात्र हो, का प्रयोग करें (लिंग पु. 2/53/2-4)।

त्र्यम्बक (मृत्युंजय) मन्त्र[1] सर्वश्रेष्ठ वैदिक मन्त्र है, इसलिये इसके द्वारा शिव की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से अग्निष्टोम यज्ञ से आठ गुना फल प्राप्त होता है (लिंग पु. 2/54/17-18)। शिव जैसा दयालु कोई नहीं है; उनकी पूजा एवं प्रसन्नता दोनों ही सरल है। उनका यह त्र्यम्बक मन्त्र भी उसी प्रकार का है। अतः सब कुछ छोड़कर इस मन्त्र का जप करें। ऐसा करने से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। इसके द्वारा मृत्युपर भी नियन्त्रण पाया जा सकता है (लिंग पु. 2/54/31-34)।

त्रियम्बकसमोनास्तिदेवोवाघृणयान्वितः।
प्रसादशीलःप्रीतश्चतथामन्त्रोऽपिसुव्रताः!।।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य त्रियम्बकमुमापतिम्।
त्रियम्बकेन मन्त्रेणपूजयेत्सुसमाहितः।।
सर्वावस्थांगतोवाऽपिमुक्तोऽयंसर्वपातकैः। (लिंग पु. 2/54/32-34)

इस पुराण के पूर्वार्द्ध के 83 वें और 84 वें अध्याय में शिवसंबंधी व्रतों की चर्चा है। इन व्रतों में हर महीने में की जानेवाली महेश्वर की विशेष पूजाओं का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त उमा-महेश्वर-व्रत तथा महामेरुव्रत की विशेष चर्चा की गयी है। ये सभी व्रत पापनाशक, रुद्रलोक की प्राप्ति करानेवाले तथा मनोवांछित फल देनेवाले हैं। सभी प्रकार के व्रतों के मुख्य अंग हैं-क्षमा, सत्य, दान, शौच तथा इन्द्रियनिग्रह-इनके साथ पूजा करना।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्व व्रतेष्वयं धर्म्मः सामान्योरुद्रपूजनम्।। (लिंग पु. 1/84/22)

पुनः सभी व्रतों का समापन पंचाक्षर मन्त्र के जप से करना चाहिये।

जपादेव न सन्देहोव्रतानांवे विशेषतः।

---

[1] मृत्युंजय मन्त्र की जपविधि इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है।

समाप्तिर्नान्यथा तस्माज्जपेत्पञ्चाक्षरींशुभाम्।। (लिंग पु. 1/85/2)

इस पुराण में शिव के नाना प्रकार के भक्तों – जैसे दिगम्बर रहनेवाले, श्मशान सेवी तथा यज्ञ, व्रत और भगवान् की लीलाओं का ध्यान करनेवाले – की चर्चा तथा महत्ता का वर्णन किया गया है। साथ में भस्म का भी माहात्म्य बतलाया गया है। शिव के सभी प्रकार के भक्तों में समभाव रखना चाहिये। उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

भगवान् शिव देवदारु वन के ऋषियों को उपदेश दे रहे हैं कि मेरे परायण (भक्त) साधु जो ब्रह्म की चर्चा करते हैं, पर बच्चों या पागलों की तरह व्यवहार करते हैं, उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। वे भक्त जो विभूति अथवा भस्म को धारण करते तथा भस्मसेवन कर अपने पापों को धोते, जो ध्यानरत रहते तथा शास्त्रविहित कर्म करते, जो इन्द्रियनिग्रही हैं, जो ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं तथा जो शरीर, मन एवं वाणी पर संयम रखकर उपासना करते हैं, वे रुद्रलोक को चले जाते हैं। (लिंग पु. 1/33/5-8)

उपरोक्त प्रकार के भक्तों की न तो निन्दा करनी चाहिये और न ही उन्हें अप्रिय वचन बोलना चाहिये। जो मूर्ख ऐसे भक्तों की निन्दा करता है वह स्वयं भगवान् की निन्दा करता है। और जो उनकी पूजा करता है वह शंकर की ही पूजा करता है।

न हसेन्नाऽप्रियं ब्रूयादमुत्रेहहितार्थवान्।
यस्तान्निन्दति मूढात्मा महादेवं स निन्दति।।
यस्त्वेतान् पूजयेन्नित्यं स पूजयति शङ्करम्। (लिंग पु. 1/33/10-11)

निन्दा इसलिये भी नहीं करनी चाहिये कि विश्व के कल्याणार्थ भगवान् शिव स्वयं प्रत्येक युग में सर्वांग में भस्म लगाकर महान् योगियों की तरह लीला करते हैं। अतः उस वेश का सम्मान करने तथा इस खतरे से बचने के लिये कि कहीं वे स्वयं रुद्रदेव ही तो नहीं हैं, हमें ऐसे भक्तों या योगियों का निरादर नहीं करना चाहिये। देवदारु वन के ऋषि इसी कारण से धोखा खा गये थे।

नग्न साधुओं की आलोचना को ध्यान में रखकर भगवान् शिव कहते हैं कि देवता तथा ऋषि सभी नग्न ही पैदा होते हैं तथा अन्य लोग भी नग्न ही पैदा होते हैं। व्यक्ति सिल्क के कपड़े को धारण करने के बाद भी नग्न ही है अगर उसने अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण में नहीं रक्खा है। अगर किसी व्यक्ति की इन्द्रियाँ संयम में हैं तो वह अच्छी तरह से ढका है क्योंकि नग्नता का कारण वस्त्र नहीं है। क्षमा, धृति, अहिंसा, वैराग्य, मान एवं अपमान में सम रहना – ये शरीर के उत्तम आवरण हैं (न कि वस्त्र)।

नग्ना एव हि जायन्ते देवता मुनयस्तथा।
ये चान्येमानवा लोकेसर्वेजायन्त्यवाससः।।
इन्द्रियैरजितैर्नग्नो दुकूलेनाऽपि सम्वृतः।

तैरेव संवृतैर्गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्।।
क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यश्चैव सर्वशः।
तुल्यौ मानावमानौ च तदावरणमुत्तमम्।। (लिंग पु. 1/34/13-15)

आगे दो प्रकार के भक्तों (उत्तरपथ तथा दक्षिणपथवाले) की चर्चा करते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि जो लोग यज्ञ तथा व्रत करते, भगवान् की लीलाओं का भक्ति-भाव से ध्यान करते वे उत्तरपथ से जाकर अमरत्व को प्राप्त करते हैं। परन्तु जो श्मशान में रहते तथा दक्षिणपथ का अनुसरण करते वे अणिमा, गरिमा आदि अष्ट सिद्धियों को प्राप्त करते हैं तथा (अन्त में) अमरत्व को भी (लिंग पु. 1/34/19-21)।

शिवभक्तों की महिमा बताते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि सभी प्रकार के भस्मधारी शिवभक्तों, चाहे वे जटाधारी हों या मुण्डित या नग्न, की शिव के समान ही मन, वाणी तथा कर्म से पूजा करनी चाहिये (लिंग पु. 1/34/30-31)।

शिवभक्तों की महिमा को बताते हुए एक स्थल पर मार्कण्डेयजी कह रहे हैं कि अन्य प्रकार के हजारों भक्तों से बढ़कर विष्णु का भक्त है इसी प्रकार रुद्र का भक्त हजारों विष्णु भक्तों से बढ़कर है तथा रुद्रभक्तों से बढ़कर कोई नहीं है।[1] इसीलिये सभी प्रकार से वैष्णव एवं रुद्र भक्तों की पूजा करनी चाहिये ताकि अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति हो सके। अर्थात् शिव या विष्णु के भक्तों की पूजा से अर्थादि चारों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है।

अन्य भक्तसहस्रेभ्योविष्णुभक्तोविशिष्यते।
विष्णुभक्तसहस्रेभ्योरुद्रभक्तो विशिष्यते।
रुद्र भक्तात्परतरो नास्तिलोके न संशयः।।
तस्मात्तु वैष्णवश्चापि रुद्रभक्तमथापि वा।
पूजयेत्सर्वयत्नेन धर्मकामार्थ मुक्तये।। (लिंग पु. 2/4/20-21)

भगवान् शिव भस्म-माहात्म्य की चर्चा करते हुए कहते हैं कि चूँकि मैं अग्निरूप हूँ इसलिये भस्म अग्नि के साथ मेरा भी वीर्य (सार अंश) है। इसी कारण मैं इसे धारण करता हूँ। भस्म का

---

[1] यहाँ रुद्र का अर्थ परम ब्रह्म निष्कल सदाशिव है जिनसे-ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवों की उत्पत्ति होती है। अतः उपरोक्त कथन को साम्प्रदायिक अथवा विष्णुनिन्दापरक नहीं समझना चाहिये। यहाँपर विष्णु का तात्पर्य अनेक ब्रह्माण्डों में स्थित अनेक विष्णु देवों से है। ये देवतारूप विष्णु निष्कल शिव से पृथक देव हैं। परन्तु अगर हम विष्णु का अर्थ महाविष्णु जो परम ब्रह्म, निर्गुण तथा सबकी उत्पत्ति का आधार है लगायें तो उस अवस्था में शिव एवं विष्णु में कोई भेद नहीं रह जाता, एक ही तत्त्व के विष्णु एवं शिव दो भिन्न-भिन्न नाममात्र होंगे। तात्त्विक दृष्टि से उनमें अभिन्नता हो जायगी। ऐसी हालत में विष्णु का भक्त शिव का तथा शिव का भक्त विष्णु का भक्त कहा जायगा। अतः उपरोक्त श्लोकों की सार्थकता तभी है जब हम विष्णु का अर्थ सृष्टि-विशेष का पालक देवता लगायें और रुद्र का अर्थ (अनेकों रुद्र में से कोई एक नहीं अपितु) निष्कल सदाशिव लगायें।

अर्थ 'भासित होना' या 'प्रकाशित होना' है। दूसरा अर्थ 'जो पहुँचाने का कारण हो' तथा तीसरा अर्थ 'भक्षण करना' है। अत: भस्म (ज्ञान को) प्रकाशित करता है, (शिवतक) पहुँचाने का कारण है तथा पापों का भक्षक है। (लिंग पु. 1/34/4-5)

भस्म के प्रयोग से व्यक्ति को अनेक प्रकार के अशुभों से सुरक्षा मिलती है। भस्म के प्रयोग से जिसकी आत्मा पवित्र हो चुकी है, जिसने क्रोध एवं इन्द्रियों को जीत लिया है, वह कभी भी संसार में नहीं लौटता तथा वह मेरे लोक को प्राप्त होता है। (लिंग पु. 1/34/9-10)

भस्म की महिमा बताते हुए भगवान् शिव आगे कहते हैं कि जो भस्मस्नान करता हैं तथा शिव का मानसिक चिन्तन करता है, उसके पाप भस्म हो जाते हैं। जो यत्नपूर्वक पवित्र भस्म से प्रतिदिन तीन बार स्नान करता है, वह गणपति के पद को प्राप्त कर लेता है (लिंग पु. 1/34/16-18)।

एक अन्य स्थलपर भस्म के बारे में कहा गया है कि अग्निहोत्र या हवनकुण्ड से भस्म को **'अग्नि.'**[1] आदि मन्त्रों को पढ़ते हुए लेकर अंगो में लेप करनेवाला सभी प्रकार के महापातकों से छूट जाता है। अग्नि का वीर्य भस्म है अत: भस्मधारी भी वीर्यवान् हो जाता है। भस्मस्नान करनेवाला ब्राह्मण, जो इन्द्रियों को जीत चुका है, पापों से मुक्त हो शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को सभी प्रकार से भस्म के द्वारा अपने शरीर को पवित्र कर लेना चाहिये तथा उसे 'री' या 'तु' जैसे अपशब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। अर्थात् उसे वाणी में संयम बरतना चाहिये। ऐसा करने से वह पापों से मुक्त हो जाता है। भगवान् शिव कहते हैं कि ऐसा भक्त हमारे पुत्र गणेश के तुल्य हो जाता है। आगे कहा गया है कि जो गृहस्थ वैदिक ज्ञान से शून्य तथा त्रिपुण्ड्र से रहित है वह नरक को जाता है। सभी प्रकार के पवित्र कार्यों में त्रिपुण्ड्र का अवश्य प्रयोग करना चाहिये (लिंग पु. 2/18/55-63)।

इन्द्रदेव शिलाद (नन्दी के पिता) को कलियुग के बारे में बताते हुए कहते हैं कि इस युग में ब्राह्मण भी वेद एवं धार्मिक कर्मो की निन्दा करेंगे। इस युग में नीललोहित महादेव शंकर धर्म की प्रतिष्ठा के लिये विचित्र अथवा अद्भूत रूप में प्रकट होते हैं। विप्र लोग जिस किसी भी प्रकार से उनकी शरण लेतें हैं वे कलि के दोषों से रहित हो परमपद को प्राप्त करते हैं।

निन्दन्ति वेदविद्याश्चद्विजाः कर्माणि वै कलौ।
कलौ देवोमहादेवः शङ्करोनीललोहितः।।
प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः।
ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनापि शङ्करम्।।
कलिदोषान् विनिर्जित्य प्रयान्ति परमं पदम्। (लिंग पु. 1/40/20-22)

वहीं पर आगे कहा गया है कि कलि में एक दिन के धर्माचरण से जो फल प्राप्त होता है

---

[1] भस्म लेने एव लगाने आदि के 'अग्नि.' आदि मन्त्र इसी पुस्तक में अन्यत्र लिखे गये हैं।

वह द्वापर में एक माह तथा त्रेता में एक साल के धर्माचरण से प्राप्त होता है।

त्रेतायांवार्षिकोधर्मोद्वापरेमासिकः स्मृतः।
यथा क्लेशंचरन् प्राज्ञस्तदह्नाप्राप्नुतेकलौ। (लिंग पु. 1/40/47)

अगर हम उपरोक्त दोनों कथनों पर विचार करें तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि हमें (इस कलि में) भगवान् शिव की शीघ्र ही उपासना शुरू कर देनी चाहिये (क्योंकि कलि में व्यक्ति अल्पआयुवाले होते हैं। (लिं पु. 1/40/45)

त्रिदेवों का आपसी संबंध

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम तीनों देवों की तात्त्विक एकता तथा लीलावश प्रकट होनेवाले उनके व्यावहारिक रूपों के आपसी संबंधों की चर्चा करेंगे। परम तत्त्व भगवान् सदाशिव जो अद्वैत नित्य एवं शुद्ध है, सृष्टि रचना की इच्छा होनेपर (माया या प्रकृति का स्वेच्छा से आश्रय लेकर) अपने को तीन देवों के रूप में प्रकट करते हैं। इन तीनों रूपों में एक सृष्टिकर्त्ता, दूसरा पालककर्त्ता तथा तीसरा संहारकर्त्ता है। पहला रजोगुण प्रधान, दूसरा सतोगुण तथा तीसरा तमोगुण प्रधान होता है। इस तथ्य का इस पुराण में अनेक जगहों पर उल्लेख है जैसे-1/1/22; 1/3/6; 1/3/10; 1/3/37-38; 1/6/30; 1/19/12; 1/31/9; 1/70/90-91; 2/16/19।

तमसाकालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम्।
सत्वेन सर्वगं विष्णुं निर्गुणत्वेमहेश्वरम्।। (लिंग पु. 1/6/30)
त्रिधा भिन्नोह्यहंविष्णो! ब्रह्मविष्णुभवाख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः।। (लिंग पु. 1/19/12)
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्वं विष्णुः प्रकाशकम्।
मूर्त्तिरेका स्थिता चाऽस्य मूर्त्तयः परिकीर्त्तिताः।। (लिंग पु. 1/31/9)
तिस्रोऽवस्था जगत्सृष्टिस्थितिसंहारहेतवः।
भवविष्णुविरिञ्चिाख्यमवस्थात्रयमीशितुः।। (लिंग पु. 2/16/19)

अर्थात्- जब वह तमस से युक्त होता है तो कालरुद्र, रजसयुक्त होता है तो ब्रह्मा, सत्त्वयुक्त होनेपर सर्वव्यापी विष्णु तथा निर्गुण होनेपर महेश्वर कहा जाता है।

भगवान् शिव विष्णु से कहते हैं कि- हे विष्णु! मैं निष्कल परमेश्वर सृष्टि, रक्षा तथा लय के हेतु ब्रह्मा, विष्णु और भव (रुद्र) नामवाले इन तीनों रूपों में अपने को विभक्त करता हूँ।

तमस अग्नि (रुद्र), रजस् ब्रह्मा तथा सत्त्व विष्णु है। यद्यपि मूल में स्थित सत्ता एक ही है तथापि ये तीनों उसके भिन्न-भिन्न रूप कहे जाते हैं।

ईश (भगवान् शिव) की तीन अवस्थायें जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार के हेतु हैं। ये तीनों अवस्थायें भव (रुद्र), विष्णु तथा ब्रह्मा कही जाती हैं।

उपरोक्त संदर्भों से स्पष्ट है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तीनों तात्त्विकरूप से एक ही हैं। अन्तर केवल गुणों के आधिक्य का है। ये गुण केवल जगत् के लीला-व्यापार में ही अन्तर डालते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से ये तीनों देव एक ही हैं।

अन्य संदर्भ, जहाँ भगवान् शिव को ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र अथवा उनका जनक कहा गया है, इस प्रकार हैं-1/71/96-97; 2/18/1; 2/18/41-42; 2/19/41; 1/96/108; इत्यादि।

महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने।।
नारायणाय शर्वाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे।
शाश्वताय ह्यनन्ताय अव्यक्ताय च ते नमः।। (लिंग पु. 1/71/96-97)
ब्रह्मविष्ण्वीन्द्रचन्द्रादि वयञ्चप्रमुखाःसुराः।
सुरासुराःसम्प्रसूतास्त्वत्तःसर्वेमहेश्वरः।। (लिंग पु. 1/96/108)
स एव भगवान्रुद्रो ब्रह्मविष्णु महेश्वराः। (लिंग पु. 2/18/1)
एकं तमाहुर्वै रुद्रं शाश्वतं परमेश्वरम्।
परात्परतरं वापि परात्परतरं ध्रुवम्।।
ब्रह्मणो जनकं विष्णोर्वह्नेर्वायोः सदाशिवम्। (लिंग पु. 2/18/41-42)
नमः शिवाय देवाय ईश्वराय कपर्दिने।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणेसूर्य्यमूर्त्तये। (लिंग पु. 2/19/41)

अर्थात्- (भगवान् विष्णु शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि) परमात्मा, नारायण, शर्व(रुद्र), ब्रह्मा तथा ब्रह्मरूप महेश्वर आपको प्रणाम है। शाश्वत, अनन्त तथा अव्यक्तरूप देव आपको नमस्कार है।

(देवगण भगवान् शिव के प्रति कहते हैं) कि हे महेश्वर! हम ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सोम आदि प्रमुख देव और अन्य सभी देव एवं असुर तुमसे ही पैदा हुए हैं।

(देवगण कहते हैं कि) भगवान् रुद्र ही स्वयं ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर हैं। उस एक को ही रुद्र, शाश्वत परमेश्वर, परात्पर, ध्रुव एवं परात्परतर(सर्वश्रेष्ठ सत्ता) कहा जाता है। वही सदाशिव ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि(रुद्र) और वायु आदि का जनक है।

(ऋषि लोग शिव की स्तुति में कहते हैं कि) भगवान् शिव, जो ईश्वर, कपर्दि, रुद्र तथा विष्णु हैं, को नमस्कार है। तुम सूर्यमूर्तिधारी ब्रह्म को नमस्कार है।

ऊपर के ये सब सन्दर्भ भी तीनों देवों के घनिष्ठ संबंध तथा उनकी अनन्यता को सिद्ध करते हैं। यही कारण है कि निष्कल शिव की लिंगरूप में जो पूजा की जाती है उसमें लिंग के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु तथा ऊपरी भाग में शिव की स्थिति स्वीकार की जाती है।

मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः।।
रुद्रोपरि महादेवः प्रणवाख्यः सदाशिवः। (लिंग पु. 1/74/19-20)

अर्थात्-लिंग के मूल में ब्रह्मा, तीनों लोकों के स्वामी विष्णु मध्य में तथा ऊपर महादेव रुद्र सदाशिव स्थित हैं जिन्हें प्रणव कहा जाता है।

जब ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ था तब उनके समक्ष शिवजी अग्निमयलिंग के रूप में प्रकट हुए थे। उसी प्रसंग में भगवान् शिव ब्रह्मा से कहते है कि तुम दोनों पहले मेरे दाहिनें एवं वाम भाग से क्रमशः पैदा हुए हो(लिंग पु. 1/19/2-3)। इसी प्रकार अन्य प्रसगों में भी इस बात का उल्लेख है(जैसे 1/102/44 इत्यादि)। इन सब सन्दर्भों से भी यही स्पष्ट होता है कि एकमात्र तत्त्व शिव ही ब्रह्मा एवं विष्णु के रूप में प्रकट होता है।

कुछ सन्दर्भो में विष्णु को प्रकृति कहा गया है। प्रकृति एवं पुरुष, महेश्वर एवं माया दोनों में अद्वैत अथवा अभेद संबंध है। माया महेश्वर की शक्ति है और वह महेश्वर के अस्तित्व में ही ओत-प्रोत है। इसी रहस्य को अर्द्धनारी के रूप में शिव को चित्रित कर दर्शाया गया है। विष्णु को प्रकृति एवं शिव को पुरुष माननेवाले सन्दर्भ हैं- 1/96/40 तथा 1/103/39-40 इत्यादि। नृसिंह की मृत्यु के पश्चात् वीरभद्रजी कहते हैं कि वे(नृसिंहरूप विष्णु) शिव में लीन हो गये।

यथा जले जलं क्षिप्तं क्षीरं क्षीरे घृतं घृते।।
एकएव तदा विष्णुः शिवलीनो न चान्यथा। (लिंग पु. 1/96/111-112)

अर्थात्- (वीरभद्र देवताओं से कहते हैं कि) जैसे जल जल में, दूध दूध में, घी घी में मिल कर एक हो जाते हैं उसी प्रकार विष्णु भी शिव में मिल(कर एकाकार हो) गये।

इन सब सन्दर्भों, कि शिव पुरुष एवं विष्णु प्रकृति हैं तथा विष्णु शिव में लीन हो जाते हैं, से भी विष्णु एवं शिव की एकता सिद्ध होती है।

एक अन्य सन्दर्भ में भगवान् विष्णु के प्रकृति होने के कारण ही पार्वती का भाई बताया गया है। क्योंकि विष्णु की तरह पार्वती भी प्रकृति की अपर अभिव्यक्ति हैं। भाई होने का एक और भी कारण बताया गया है कि शिव के बाम भाग से विष्णु का जन्म हुआ है तथा (सृष्टि के आदि में विष्णु के पैदा होने के बाद) भवानी का भी। ब्रह्माजी के कहने से ही शिवजी ने अपने को स्त्री एवं पुरुष दो रूपों में विभक्त कर लिया था। जिस स्त्री को बाम भाग से प्रकट किया था वह स्त्री श्रद्धा थी। वही दक्ष के घर जन्म लेकर सती तथा हिमालय के यहाँ जन्म लेकर पार्वती कहलायी। पार्वती को छोटी बहन मानकर विष्णु ने उसे शिव को दिया था। इस कथा के लिये देखें-लिंग पु. पूर्वभाग अध्याय 99-103। इस कथा में अन्य बातों के अलावा विष्णु को प्रकृति स्वीकार किया गया है। इसी कारण उन्हें शिव से अभिन्न मानना चाहिये।

सृष्टि में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं तथा इन ब्रह्माण्डों में अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश विद्यमान हैं। इसी प्रकार अनेक कल्पों में भी पैदा होनेवाले ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र भिन्न-भिन्न होते

हैं। इस प्रकार अनेकों ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र अस्तित्व में आते-जाते रहते हैं। परन्तु सदाशिव एक ही रहता है जिसकी प्रेरणा से अनेक ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रों का जन्म होता रहता है। इन्हीं ब्रह्माओं आदि के सन्दर्भ में कहा गया है कि अलग-अलग कल्पों में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र एक दूसरे से पैदा होते रहते हैं। किसी कल्प विशेष में विष्णु ने अपने नाभी कमल से ब्रह्मा को पैदा किया, किसी अन्य कल्प में ब्रह्मा ने विष्णु को, किसी अन्य कल्प में ब्रह्मा ने रुद्र को तो कभी रुद्र ने ब्रह्मा को पैदा किया(लिंग पु. 1/41/15-18 आदि)।

पुनः लिं. पु.(1/37/9) में कहा गया है कि ब्रह्माजी उमा और महेश्वर से पैदा हुए हैं। इसी अध्याय में आगे बताया गया है कि ब्रह्मा ने शिव से वरदान पाकर विष्णु को अपने भौहों के मध्य से पैदा किया(1/37/33-35)। इसी प्रकार इससे पहले पद्म कल्प में ब्रह्मा विष्णु के नाभीकमल से पैदा हुए थे(1/103/44 तथा 1/अध्याय 20)। इसी प्रकार सृष्टिकार्य के लिये शिवजी ब्रह्मा के ललाट से पैदा हुए थे(1/96/42 आदि)। अनेक प्रकार से ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र एक दूसरे से अलग-अलग कल्पों में अलग-अलग प्रयोजनों या कारणों से पैदा होते रहते हैं। परन्तु सभी के पीछे महेश्वर का अनुग्रह ही होता है जो अपनी माया से लीलावश अनेकों ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रों की सर्जना करते हैं जिसका उद्देश्य सृष्टिव्यापार का नियमन करना होता है।

भगवान् शिव के भक्त ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों ही हैं। परन्तु कभी-कभी शिवमाया से मोहित हो जाने के कारण ये दोनों शिव की महिमा के प्रति बेखबर हो जाते हैं। ऐसे-ऐसे अवसरों पर भगवान् शिव प्रकट हो उनके मोह को भंग करते रहे हैं। जैसा ऊपर हमने देखा है कि उन दोनों में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर होनेवाले विवाद को निपटाने के लिये तथा ज्ञानप्रदान करने के लिये शिवजी स्वयं प्रकट होते रहे हैं। अनेक अवसरों पर देवताओं की समस्याओं(त्रिपुरासुर आदि) के हल के लिये भी ब्रह्मा-विष्णु के अनुरोध पर उन्होंने अपनी कृपा या दयालुता दिखलायी है। इस पुराण में बताया गया है कि विष्णु एवं ब्रह्मा ने, जब कभी वरदान माँगने का अवसर आया है, अविचल भक्ति का ही वरदान शिव से माँगा है(1/19/6-7; 1/22/10-11 आदि)। सुदर्शन चक्र की प्राप्ति के निमित्त विष्णुने जो तपस्या की थी उसके परिणामस्वरूप उन्हें न केवल सुदर्शन चक्र मिला अपितु उन्हें भक्ति तथा देव एवं असुरों द्वारा पूज्य होने का भी वरदान मिला।

प्राह चैवं महादेवः परमात्मानमच्युतम्।।
मयि भक्तश्च वन्द्यश्च पूज्यश्चैव सुरासुरैः।
भविष्यसिनसन्देहोमत्प्रसादात्सुरोत्तम।। (लिंग पु. 1/98/182-183)

अर्थात्-महादेवजी भगवान् विष्णु से इस प्रकार बोल-हे देवश्रेष्ठ मेरी कृपा से तुम सदैव मेरे भक्त बने रहोगे और तुम देवता एवं असुर दोनों द्वारा वन्द्य तथा पूज्य होगे, इसमें कोई सदेह नहीं होना चाहिये।

जब भगवान् विष्णु अम्बरीष को वर देने के लिये प्रस्तुत होते हैं तो अम्बरीष(उन्हें आदर्श

भक्त मानते हुए) कहते हैं कि जिस प्रकार आप परमात्मा देवाधिदेव शिव के भक्त हैं उसी प्रकार मुझे भी आप अपना मन, वाणी और कर्म से भक्त बनने का वरदान दीजिये।

वासुदेवपरोनित्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः।।
यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः।
तथा भवाम्यहं विष्णो! तव देव! जनार्दन।। (लिंग पु. 2/5/39-40)

भगवान् शिव विष्णु को इतने प्रिय हैं कि उन्होंने उनका वाहन बनने का भी वरदान माँगा था तथा शिवजी ने उन्हें वाहन बनने का वरदान भी दिया था जिसके परिणामस्वरूप वे वृषरूप में उनको वहन करने लगे (लिंग पु. 1/72/173-175)।

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि (1) भगवान् विष्णु शिव के अनन्य एवं आदर्श भक्त हैं तथा (2) उनका लोक एवं परलोक में तथा देव, असुर तथा मानव आदि सबके द्वारा पूजा जाना भगवान् शिव के वरदान का ही प्रभाव है। इस तरह विष्णुजी की लोकप्रियता का रहस्य समझ में आ जाता है।

उपसंहार

शिव पुराण की भाँति लिंग पुराण भी शैवमत की विस्तार से विवेचना करनेवाला पुराण है, जो ईशान कल्प की कथाओं से संबंधित 9185 श्लोकों में प्राप्य है।

इस पुराण के प्रमुख देवता भगवान् शिव को परम ब्रह्म या तत्त्व कहा गया है जिसके निष्कल एवं सकल (निर्गुण एवं सगुण) दो रूप हैं। निष्कल रूप में वे नित्य, शुद्ध, अद्वैत या केवल, मन, वाणी तथा बुद्धि से परे, ॐकारस्वरूप तथा अव्यय आदि हैं। वे ही सृष्टिकार्य के लिये सगुण बनकर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि रूपों को धारण करते हैं। वे मायापति हैं, माया या प्रकृति को स्वेच्छापूर्वक धारण कर अपने आप को नाना रूपों में प्रकट करते हैं। समस्त चराचर जगत्-चाहे वर्त्तमान का हो चाहे भूत या भविष्य का हो-उन्हीं का रूप है। उनके सिवा कुछ भी अपने आप में अस्तित्व नहीं रखता। सभी-कुछ शिव के ही कारण है। उन्हें ही शब्दब्रह्म, अव्यक्त, प्रकृति, पुरुष, सभी जीवों का आदिकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वरदाता, भोग, मोक्ष, तथा ऐश्वर्यदाता, भक्तवत्सल, दयालु, सर्वनियन्ता, सर्वज्ञ, ज्ञानस्वरूप, पंचमुखी, दस भुजाओंवाला, अर्द्धनारीश्वर, चन्द्रमा, जटा, मृगचर्म, नागहार तथा मुण्डमाला आदि धारण करनेवाला, पिनाक, त्रिशूल, फरसा आदि शस्त्रों को धारण करनेवाला, त्रिपुर, अंधक तथा जालंधर आदि असुरों का वध करनेवाला, योगियों के आदर्श एवं ध्येय, कैलासवासी, त्रिनेत्रधारी, संहारकर्त्ता, सर्वभूतात्मा तथा नीलकण्ठ आदि कहा जाता है।

माया महेश्वर की शक्ति है, वह उन्हीं की इच्छा से सृष्टिकार्य का संपादन करती है। माया एवं महेश्वर एक दूसरे से अवियोज्य हैं।

शिवोपासना से अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। अगर एकबार भी व्यक्ति का मन भगवान् शिव में लग जाय तो उसे रुद्रलोक की प्राप्ति में देर नहीं है। धर्म, ज्ञान, वैराग्य

एवं ऐश्वर्य शिवकृपा का ही फल होता है। शिवपूजा से सभी प्रकार के पातक नष्ट हो जाते हैं। रुद्र के भक्तों से श्रेष्ठ कोई नहीं है। शिव की भक्ति से विष्णु एवं ब्रह्मा को अपना-अपना पद मिला तथा विष्णु को सुदर्शन चक्र, सर्वपूज्यता एवं श्रेष्ठता का वरदान और(कृष्णावतार में) पुत्र की प्राप्ति हुई। दधीचि को अवध्यता का, श्वेत को मृत्युञ्जय होने का तथा ब्रह्मापुत्र तण्डि को गणेश्वर होने का वरदान भी रुद्रोपासना से मिला था।

शिव की पूजा मुख्यतः लिंगरूप में की जाती है। लिंगपूजा का प्रारंभ ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर होनेवाले विवाद की घटना के ठीक बाद से हुआ। लिंगार्चन से सभी देवों की पूजा हो जाती है क्योंकि लिंग की वेदी उमा का स्वरूप है और लिंग का निचला हिस्सा ब्रह्मा का मध्य का हिस्सा विष्णु का तथा अन्त का हिस्सा शिव का स्वरूप है। अतः लिंग में देवी सहित ये तीनों देव स्थित रहते हैं। अतः लिंगपूजन से सभी की पूजा हो जाती है। इस पुराण में लिंगनिर्माण, स्थापन तथा पूजन की विधि का विस्तार से विवेचन है। शिव की प्रतिमास्थापन तथा मन्दिरनिर्माण के फलों को भी विस्तार से बताया गया है। मंदिर बनानेवाला शिवसायुज्य को प्राप्त करता है।

मंदिर की मरम्मत करनेवाले या टूट-फूट को सुधारनेवाले को मंदिर-निर्माता से ज्यादा फल मिलता है। इसी प्रकार अर्थ के अभाववाले व्यक्ति को मंदिर की सफाई एवं झाड़ू-पोंछा, तथा लीपने जैसी सेवाएँ करने से भी हजारों अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। रोजी-रोटी मिलने के कारण भी अगर मंदिर में कोई सेवा करता है तो उसे महान् फल मिलता है।

पंचाक्षर मन्त्र के जपसंबंधी नियम इस पुराण में बताये गये हैं। इस मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता, स्वर, बीज तथा शक्ति आदि की चर्चा की गयी है। इस मन्त्र के जप द्वारा ही सभी प्रकार के व्रतों आदि की समाप्ति तथा पूजा सम्पन्न की जानी चाहिये। मन्त्र को किसी गुरु से प्राप्तकर यथासंभव रुद्राक्ष की माला से जप करे। जप के लिये उचित आसन तथा जप करते समय किन-किन नियमों का पालन करना चाहिये? इसका भी उल्लेख इस पुराण में किया गया है।

भगवान् शिव ही पशुपति हैं जो राग-द्वेषादि पंच क्लेशों के पाश से बद्ध जीवों को मुक्त करते हैं। पाशमुक्ति के अनेक उपायों जैसे भक्ति, ज्ञान, पाशुपत व्रत तथा पाशुपत योग आदि की यहाँ चर्चा की गयी है। कई प्रकार के पाशुपत व्रत तथा पाशुपत योगों की चर्चा भी की गयी है। अष्टांग पाशुपत योग(जो पतंजलि के योग जैसा है), मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग तथा महायोग की चर्चा भी हुई है। योगमार्ग में आनेवाले विघ्नों की भी विस्तृत चर्चा मिलती है। इस पुराण में कई उपयोगी स्तोत्रों जैसे दो प्रकार के सहस्रनाम स्तोत्र(तण्डिकृत तथा विष्णुकृत) आदि तथा महत्त्वपूर्ण तीर्थों का उल्लेख है। महत्त्वपूर्ण तीर्थों में काशी, श्रीशैल, केदार, रामेश्वर आदि हैं। काशी में मरनेवाले को एक ही जन्म में मुक्ति मिल जाती है। पहले वह नरक में जाकर पापों का फल भोगेगा, तदनन्तर उसकी मुक्ति हो जायगी, उसे दूसरा जन्म नहीं लेना होगा।

मृत्युंजय मंत्र के प्रयोग तथा मृत्यु से बचने के लिये रुद्राध्याय के प्रयोग आदि की विधि इस पुराण में बतायी गयी है। आगे भस्ममाहात्म्य तथा शिवभक्तों का माहात्म्य बताया गया है। भक्त की निन्दा भगवान् की निन्दा तथा पूजा भगवान् की पूजा मानी गयी है।

अन्त में तीनों देवों की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन करते हुए विष्णुजी को अनन्य शिवभक्त बताया गया है। उन्हीं के वर के प्रभाव से विष्णुजी तीनों लोकों में सबके द्वारा पूज्य बन गये। इस सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं तथा उन ब्रह्माण्डों में अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र हैं। प्रत्येक कल्प में होनेवाले ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सृष्टिलीला को चलाने के लिये ये तीनों देव अलग-अलग कल्पों में सदाशिव के वरदान के प्रभाव से एक दूसरे से पैदा होते रहते हैं तथा एक दूसरे की भक्ति करते रहते हैं।

(प्रस्तुत लेख गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के अन्तर्गत 5, क्लाइव रोड कलकत्ता-1 द्वारा 1960 में प्रकाशित 'लिंगपुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)

* * *

तृष्णा की अजरता

जीर्यंति जीर्यतः केशाः दंता जीर्यंति जीर्यतः।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते।। (नार. महापु. पूर्वखण्ड 35/21)

बुढ़ापे में केश एवं दाँत बूढ़े हो जाते हैं। समय के साथ आँख एवं कान भी जीर्ण हो जाते हैं। परन्तु समय के साथ तृष्णा जवान होती जाती है।

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी मता।
अधर्मबहुला चैव घोररूपानुबंधिनि।।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
यासौ प्राणांतिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।।
अनाद्यंता तु सा तृष्णा ह्यन्तर्देहगता नृणाम्।
विनाशयति संभूता लोहं लोहमलो यथा।।

(स्कन्दमहापुराणाम्-माहेश्वरखण्ड-कौमारिकाखण्ड 46/40-42)

तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठ और सदा उद्वेग में डालनेवाली मानी गयी है। इसके द्वारा बहुत से अधर्म होते हैं। तृष्णा का रूप भी बड़ा भयंकर है। वह सबके मन को बाँधनेवाली है। खोटी बुद्धिवाले पुरुषों के द्वारा बड़ी कठिनाई से जिसका त्याग हो पाता है, जो इस शरीर के वृद्ध होनेपर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राणांतकारी रोग के समान है, उस तृष्णा का त्याग करनेवाले को ही सुख मिलता है। तृष्णा का आदि और अन्त नहीं है। जैसे लोहे की मैल लोहे का नाश करती है, उसी प्रकार तृष्णा मनुष्यों के शरीर के भीतर रहकर उनका विनाश करती है।

वराह, गरुड एवं विष्णु पुराणों में शिवतत्त्व

वराह, गरुड एवं विष्णु - ये तीनों वैष्णव महापुराणों के अन्तर्गत आते हैं। वराह पुराण में मानव कल्प की, गरुड पुराण में तार्क्ष्य कल्प की तथा विष्णु पुराण में वराह कल्प[1] की कथाओं एवं प्रसंगों की चर्चा की गयी है। वराह पुराण एवं विष्णु पुराण दोनों के अधिकांश अंश आजकल प्राप्य नहीं हैं। वराह पुराण में(नारदीय पु. पू. ख. 103/2 एवं मत्स्य पुराण के अनुसार) 24000 श्लोक होने चाहिये, परन्तु वर्तमान में हमें मात्र 10700 श्लोक ही मिलते हैं। इसी प्रकार विष्णु पुराण में श्लोकों की संख्या 23000 मानी गयी है जबकि वर्तमान में प्राप्य विष्णु पुराण में मात्र 7000 श्लोक हैं। अगर हम विष्णुधर्मोत्तर पुराण को भी विष्णु पुराण का अंश मान लें(जैसा नारद महापुराण पूर्वभाग अध्याय 94 में कहा गया है) तो कुल श्लोक संख्या 16000 ही होती है। अर्थात् दोनों पुराणों को एक ही पुराण के उत्तर एवं पूर्व भाग मान लें तो भी 7000 श्लोकों की कमी है। यहाँपर केवल 7000 श्लोकवाले विष्णु पुराण के आधार पर ही शिवतत्त्व पर विचार किया जायगा क्योंकि बहुत से विद्वान् विष्णुधर्मोत्तर पुराण[2] को विष्णु पुराण का अंश नहीं मानते। नारद एवं मत्स्य पुराण के अनुसार गरुड पुराण में क्रमशः 19000 तथा 1800 श्लोक हैं। परन्तु वर्तमान में(लगभग) 8000 श्लोक ही प्राप्य हैं।

भगवान् शिव ब्रह्म के रूप में

वराह पुराण में दक्षयज्ञ - विध्वंस के पश्चात् देवगणों ने भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें आर्तजनों का दुःख दूर करनेवाले, समस्त देवों के ईश्वर, शुद्धस्वरूप, सबके स्रष्टा(सर्व), देवताओं पर अनुग्रह करने हेतु कालकूट का पान करनेवाले, विश्वेश्वर, विश्वमूर्ति, सभी गुणों से सम्पन्न, अपने श्रीविग्रह में सर्ग एवं अंगों सहित संपूर्ण वेद तथा विद्यायें आदि को धारण करनेवाले, देवदेव, महादेव, विश्वेश्वर तथा परमेश्वर आदि कहा है।(वरा. पु. 21/72-77)

तारकासुर पर विजय प्राप्त करने के लिये देवगण शिव - पुत्र कार्तिकेय को सेनापति बनाने की इच्छा से शिव के पास जाकर उन्हें प्रसन्न करने हेतु स्तुति करते हैं। अपनी स्तुति में वे शिव को विश्वपति, जगत्पति, अच्युत, पुरुषोत्तम, श्रेष्ठ देवताओं में भी परम श्रेष्ठ, प्रभु, आदिदेव, विभु, अनन्त नामवाले, अक्षय, पृथ्वी आदि पंच तत्त्वों के रूप में प्रतिष्ठित, अग्निस्वरूप, शेषनाग का यज्ञोपवीत पहननेवाले, देवेश्वर, मृत्युञ्जय, पुरुष, शक्ति गिरिजा को अर्द्धांग में धारण करनेवाले, जगदाधार,

---

[1] विष्णु पुराण में भगवान् शिव संबंधी बहुत ही कम सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, और जो मिलते भी हैं वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं। इसका प्रथम कारण यह हो सकता है कि इस पुराण के अधिकांश(लगभग 70%) भाग अप्राप्य हैं तथा दूसरा कारण यह हो सकता है कि भगवान् शिव के आदेश या वरदान के प्रभाव के कारण वराह कल्प में भगवान् विष्णु ही सभी लोकों को प्रकाशित करते हैं, अर्थात् उस कल्प के प्रमुख देव भगवान् विष्णु हैं। इस तथ्य को लिंग पुराण(पूर्वभाग/अध्याय 24/श्लोक 8-9) में व्यक्त किया गया है।

[2] इस पुस्तक में विष्णुधर्मोत्तर पुराण पर अलग से एक अध्याय लिखा गया है।

विशुद्ध ज्ञानघन, नारायण तथा ब्रह्मा जिसके रूप हैं, प्रधान देवता, विश्वम्भर आदि बतलाते हैं।(वरा. पु. अध्याय 25/17-28)

भगवान् रुद्र सम्पूर्ण ज्ञान के निधान हैं। समस्त देवता उनके अंगभूत हैं तथा वे विशुद्ध हैं। भगवान् शिव देवताओं से कहते हैं कि मैं आदि सनातन काल से सम्पूर्ण विद्याओं का अधीश्वर हूँ। (वरा. पु. 21/22, 81)

सर्वज्ञानमयो देवः सर्वदेवमयोऽमलः।।
अहं च सर्वविद्यानां पतिराद्यः सनातनः।।

एक अन्य स्थल पर भी देवगणों ने उन्हें देवताओं का अधिष्ठाता, वेदान्त द्वारा ज्ञेय, यज्ञमूर्ति सर्वसमर्थ प्रभु, विश्व के शासक तथा उत्पादक आदि कहा है(व. पु. अध्याय 33/16-25)। अन्यत्र भगवान् वराह रुद्रदेव को सर्वज्ञानी, सबकी सृष्टि के प्रवर्तक, परम प्रभु एवं सनातन पुरुष कहते हैं(वरा. पु. अध्याय 72/1)। भगवान् विष्णु ने किसी प्रसंग में रुद्रदेव को सनातन, सर्वज्ञ एवं देवों द्वारा पूज्य कहा है(वरा. पु. अध्याय 73/42)। भगवान् वराह एक अन्य स्थल पर शिव को पुराणपुरुष, शाश्वत देवता, यज्ञस्वरूप, अविनाशी, विश्वमय, अज एवं सनातन(वरा. पु. अ. 74/1-2) तथा अन्यत्र सबका मूल कारण, परम आश्रय, देवताओं के भी देवता, साम एवं ऋक्स्वरूप, बनाने, बिगाड़ने तथा बिगड़े हुए को पुनः बनानेवाले तथा मृत्यु के स्वामी आदि कहा है(वरा. पु. अ. 136/24-25)।

सर्वज्ञं सर्वकर्तारं भवं रुद्रं पुरातनम्।
.... परमेश्वरम्।। (वरा. पु. 72/1)

सर्वज्ञस्त्वन्न सन्देहो ज्ञानराशिः सनातनः।
देवानाञ्च परं पूज्यः ....।। (वरा. पु. 73/42)

रुद्रं पुराणपुरुषं शाश्वतं क्रतुमव्ययम्।।
विश्वरूपमजं शम्भुं त्रिणेत्रं शूलपाणिनम्। (वरा. पु. 74/1-2)

त्वं कर्त्ता च विकर्त्ता च विकाराकार एव च।।
त्वं वैशारव्यं वियोगं च त्वं योनिस्त्वं परायणम्।
त्वमुग्रदेवदेवादिस्त्वं साम त्वं तथा दिशः।। (वरा. पु. 136/24-25)

चन्द्रमा भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें सौम्यस्वरूप, उमापति, भक्तों पर कृपा करने के लिये सदैव आतुर रहनेवाले, पंचमुख, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, चन्द्रमा को ललाटपर धारण करनेवाले, पिनाकधारी, स्वाभाविकरूप से भक्तों को अभय प्रदान करनेवाले, दिव्यरूपधारी, देवेश्वर, त्रिशूल एवं डमरूधारी, गजचर्मधारी, प्रलय में भी अचल रहनेवाले, सर्प का यज्ञोपवीत तथा रुद्राक्षमाला धारण करनेवाले, स्वाभाविक रूप से भक्तों की इच्छा पूर्ण करनेवाले, सबके शासक, अद्भुतरूपधारी, सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, जटा से गंगा को प्रकट करनेवाले तथा मन एवं वाणी

से परे कहा है(वरा. पु. अ. 144/20-25)। स्तुति के कुछ अंश देखें-

अरूपमपि सर्वेशं भक्तेच्छोपात्तविग्रहम्।।
वह्निसोमार्कनयनं मनोवाचामगोचरम्। (वरा. पु. 144/24-25)

अर्थात्-जो रूपरहित तथा सबके शासक हैं तथा भक्तों की इच्छा पूर्ण करना जिनका स्वाभाविक गुण है; सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं, मन एवं वाणी की जिनके पास पहुँच नहीं है (उन भगवान् शंकर को प्रणाम करता हूँ)।

नन्दी भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें प्रकट होकर जगत् का धारण-पोषण करनेवाले, स्वाभाविक रूप से वर देनेवाले, प्रभु, संसार का संहार एवं पालन करनेवाले, भूत एवं भव्य, विभु, पशुपति, संसार के स्रष्टा, भक्तों के प्रिय तथा परमात्मा आदि कहा है(वरा. पु. अ. 213/43-49)। भगवान् शिव समस्त संसार के शासक हैं। देवता और दानव सभी उन्हें अपना गुरु मानते हैं।(वरा. पु. अ. 216/10)

वराह पुराण के एक स्थल पर बताया गया है कि शिव, शंकर, नारायण, विष्णु आदि नाम परब्रह्म के ही हैं(व. पु. 72/12-13)। अन्यत्र कहा गया है कि परम पुरुष को शिव भी कहा जाता है एवं विष्णु भी(व. पु. 25/4)।

नारायणः शिवो विष्णुः शङ्करः पुरुषोत्तमः।।
एतेषु नामभिर्ब्रह्म परं प्रोक्तं सनातनम्। (व. पु. 72/12-13)
पुरुषो विष्णुरित्युक्तः शिवो वा नामतः स्मृतः। (वराह पु. 25/4)

पुनः शिव को परम पुरुष माना गया है तथा उनका विष्णु से तादात्म्य किया गया है।

त्रिशूलपाणे पुरुषोत्तमाच्युत ....।।
त्वमादिदेवः पुरुषोत्तमो हरिर्भवो महेशस्त्रिपुरान्तको विभुः। (व. पु. 25/18-19)

भावार्थ यह है कि सर्वव्यापी भव, महेश एवं त्रिपुरारि- आप आदिदेव एवं पुरुषोत्तम हरि हैं।

गरुड पुराण में शिवरात्रि व्रत की समाप्ति पर की जानेवाली स्तुति में भगवान् शिव को जगत्पति एवं त्रैलोक्याधिपति विशेषण दिया गया है।

अविघ्नेन व्रतं................................।
क्षमस्व जगतां नाथ त्रैलोक्याधिपते हर।। (गरुड पु. पू. ख. 124/17)

शिवार्चनोपरान्त की जानेवाली स्तुति में भगवान् शिव को जगत्-स्वरूप, दाता एवं(जीवरूप में) भोक्ता स्वीकार किया गया है।

शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत्। (ग. पु. पू. ख./23/25)

आगे उन्हें माया, शुद्ध विद्या एवं ईश्वर कहा गया है-

माया च शुद्धविद्या च ईश्वरश्च सदाशिवः। (ग. पु. पू. ख. 23/31)

एक अन्य प्रसंग में भगवान् शिव को स्पष्टरूप से परब्रह्म स्वीकार किया गया है।

अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः।
सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्वेशो निर्मलोद्वयः।।
स्वयं ज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः।
निर्गुणः सच्चिदानन्दः तदंशाज्जीवसंज्ञकः।।[1] (ग. पु. 16/6-7)

भावार्थ है- भगवान् शिव परब्रह्मस्वरूप, निष्कल, सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, सर्वेश, निर्मल या शुद्ध, अद्वय(अर्थात् एक), स्वयंप्रकाश, अनादि-अनन्त, निर्विकार, परात्पर(विश्व से परे), निर्गुण एवं सच्चिदानन्द हैं। उनका अंश ही जीव कहलाता है।

उपरोक्त उद्धरणों में भगवान् शिव को ब्रह्म की सभी विशेषताओं से युक्त माना गया है। अर्थात् भगवान् शिव ही परब्रह्म हैं। जिन पुराणों की यहाँ चर्चा की जा रही है उनमें भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की स्पष्ट रूपरेखा मिलती है।

वराह पुराण के 21वें तथा 213वें अध्याय में भगवान् शिव के सगुण साकाररूप की झलक मिलती है। 21वें अध्याय में दक्षयज्ञ के विध्वंस के उपरान्त भगवान् शिव के सगुण-साकाररूप की स्तुति देवताओं ने की थी। इसी प्रकार 213वें अध्याय में नन्दी को भगवान् शिव के साकार विग्रह के दर्शन हुए थे। इन दोनों प्रसंगो में भगवान् शिव त्रिनेत्रधारी, सर्पोंके आभूषण से युक्त, हाथ में त्रिशूल आदि तथा माथे पर अर्धचन्द्र को धारण किये हुए, बाघाम्बर अथवा गजचर्म धारण किये हुए नन्दीश्वर आदि गणों से घिरे हुए प्रकट हुए थे। निर्गुण-निराकार शिव ही सृष्टि के संचालन हेतु सगुण-साकार विग्रह धारण करते हैं। विष्णु पुराण(1/7/13) में भगवान् शिव के अर्धनारीश्वर रूप का जिक्र है। इसी प्रकार शिरपर गंगा को धारण करने का भी उल्लेख विष्णु पुराण में मिलता है।

शिवोपासना

भगवान् शिव को समस्त विपत्तियों को दूर करनेवाला(वरा. पु. 21/72), भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला कहा गया है। वराह पुराण में भगवान् शिव को सबके द्वारा पूज्य कहा गया है(21/85)। भगवान् शिव को पशुपति तथा जीवों को पशु कहा गया है। पशुपति ही जीवों को मुक्त करनेवाले हैं(वरा. पु. 33/27-28 तथा 213/46)। एक स्थल पर कहा गया है कि कलियुग में वेदान्ती लोग रुद्र की शरण लेते हैं(वरा. पु. 71/58)।[2] उन्हें आवागमन से मुक्त करनेवाला(वरा. पु. 213/44), वरदाता तथा भक्तवत्सल(वरा. पु. 213/43, 48-49, 216/15 आदि) कहा गया है। रावण ने शिवभक्ति द्वारा ही तीनों लोकों के विजय का वरदान पाया था। (वरा. पु. 216/16)

---

[1] 'शैवमत' (लेखक डॉ. यदुवंशी, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना, 1955) के पृ. 255 से उद्धृत। ये श्लोक लेखक को उपलब्ध 'गरुड पुराण' की प्रति में नहीं मिलते।

[2] 'ये रुद्रमुपजीवन्ति कलौ वेदान्तिका नराः।' (वरा. पु. 71/58)

नन्दी की तपस्या से प्रसन्न हो भगवान् शिव उनसे पूछते हैं कि तुम क्या चाहते हो? – ईशत्व, अमरत्व, इन्द्र अथवा ब्रह्मादि का पद, अष्टसिद्धि, मुक्ति या कुछ और (वरा. पु. 213/52 – 53)। इस प्रसंग से स्पष्ट है कि भगवान् शिव समस्त ऐश्वर्य एवं मुक्ति आदि सबकुछ दे सकते हैं।

एक प्रसंग में भगवान् शिव देवताओं से कहते हैं कि वाग्मती और मणिवती के संगमपर अगर कोई शुद्ध ब्राह्मण एक दिन रुद्राध्याय का पाठ करता है तो वह वेदों का ज्ञाता हो जाता है तथा उसके परिवार के सभी लोग मुक्त हो जाते हैं (वरा. पु. 215/109 – 111)। पुनः भगवान् शिव अगस्त्य आदि ऋषियों को कह रहे हैं कि "ब्रह्मा सहित सभी देवता और दानव सदा सत्ययुग में मेरे स्तवन के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। भोग की इच्छा करनेवाला देवसमुदाय मेरी लिंगमूर्ति का यजन करता है" (वरा. पु. 72/9 – 10)

बह्मा देवासुराः स्तौति मां सदा तु कृत युगे।।
लिङ्गमूर्त्तिञ्च मां देवा यजन्ते भोगकाङ्क्षिणः। (व. पु. 72/9 – 10)

गरुड पुराण में सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि भगवान् शिव की अर्चना से भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम्। (ग. पु. पू. ख. 22/1)

एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि शिव की उपासना से धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष सभीकुछ प्राप्त होता है।

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि धर्मकामादिसाधनम्। (ग. पु. पू. ख. 23/1)

आगे कहा गया है कि शिवपूजक काल द्वारा शासित नहीं होता।

एवं शिवार्च्चकोध्यानी सर्वदा कालवर्जितः।। (ग. पु. पू. ख. 23/52)

गरुड़ पुराण में बड़े विस्तार के साथ शिवार्चन एवं शिवरात्रिव्रत की विधि का वर्णन किया गया है। शिवार्चन एवं शिवरात्रिव्रत के प्रभाव से व्यक्ति सभी प्रकार के लौकिक एवं पारलौकिक भोगों को प्राप्त कर सकता है, तथा अन्त में शिवसायुज्य अर्थात् चरम मुक्ति को भी प्राप्त कर सकता है।

वराह पुराण में शिव के कुछ व्रतों तथा तीर्थों जैसे वाराणसी आदि का वर्णन है। ऊपर हमने गोकर्ण (वाग्मती एवं मणिवती के संगम) की महिमा को बताया था। गरुड पुराण में काशी की महिमा का वर्णन है। काशीतीर्थ में मरनेवाले को मुक्ति प्राप्त होती है परन्तु जो लोग काशी में पाप करते हैं उनकी आलोचना की गयी है तथा कहा गया है कि अपने पापों का प्रायश्चित्त न करनेवाले पापियों की काशीक्षेत्र में कहीं भी, जिस किसी तरह, मृत्यु हो जानेपर उन्हें पाप के अनुसार यम – यातना, अर्थात् तीस हजार सालतक रुद्रपिशाचता, प्राप्त होती है, तत्पश्चात् शीघ्र अथवा देरी से उनकी मुक्ति होती है।

वाराणस्यां स्थितो यो वै पातकेषु रतः सदा।

योनिं प्रविश्य पैशाचीं वर्षाणामयुतत्रयम्।।
पुनरेव च तत्रैव ज्ञानमुत्पद्यते ततः।
मोक्षं गमिष्यते सोऽपि गुह्यमेतत् खगाधिप।

(गरुड पुराण, कल्याण के शिवांक पृ. 414 से उद्धृत)

ब्रह्माजी भगवान् शिव के चतुर्दशी व्रत की महिमा बताते हुए कहते हैं कि इस दिन जो उपवास(व्रत) रखकर भगवान् शिव की पूजा करता है तथा केवल गेहूँ से निर्मित भोज्यपदार्थ ग्रहण करता है उसपर भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं तथा वह मोक्ष को प्राप्त होता है।(वराह पु. 33/29-31)

गरुड पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि शिव एवं शक्ति के ज्ञान से ज्ञानी मुक्त होकर शिवस्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

शक्तिः शिवश्च तान् ज्ञात्वा मुक्तो ज्ञानी शिवो भवेत्। (ग. पु. पू. ख. 23/31)

वराह पुराण में बताया गया है कि 108 दानों की जपमाला उत्तम होती है। इसी प्रकार रुद्राक्ष की माला को सर्वोत्तम कहा गया है(वरा. पु. 128/80-81)। आगे बताया गया है कि गृहस्थ के घर में दो शिवलिंग, तीन शालग्राम की मूर्तियाँ, दो गोमतीचक्र, दो सूर्य की प्रतिमाएँ, तीन गणेश तथा तीन दुर्गा की प्रतिमाओं का पूजन करना निषिद्ध है।

गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामत्रयं तथा।।
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्यं सूर्यद्वयं तथा।
गणेशत्रितयं नार्च्यं शक्तित्रितयमेव च।। (वरा. पु. 186/40-41)

इसी प्रकार अग्नि से जली हुई तथा टूटी-फूटी प्रतिमा की पूजा नहीं करनी चाहिये।

गृहेऽग्निदग्धा भग्ना वा नैव पूज्या वसुन्धरे। (वरा. पु. 186/43)

त्रिदेवों की एकता

विवेच्य तीनों ही पुराणों में भगवान् शिव एवं विष्णु की तात्त्विक एकता का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है। कुछ जगहों पर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तीनों देवों की एकता का भी वर्णन है। विष्णु पुराण(1/2/2; 1/8/23; 1/9/56, 69; 1/22/28-29, 33; 2/4/56 तथा 5/33/47-49) में भगवान् शिव एवं विष्णु के तादात्म्य संबंध (या तात्त्विक एकता) का वर्णन किया गया है।

शिवजी अपने भक्त बाणासुर को अभय का वरदान देने के कारण कृष्ण से कहते हैं कि आप मेरे वरदान को मिथ्या न करें(अर्थात् युद्ध में उसे न मारें)। इसी प्रसंग में भगवान् श्रीकृष्ण शिवजी से कह रहे हैं कि आपने जो अभय दिया है वह सब मैंने भी दे दिया। "आप अपने को मुझसे सर्वथा अभिन्न देखें। जो मैं हूँ सो आप हैं..........। हे हर! जिन लोगों का चित्त अविद्या से मोहित है वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनों में भेद देखते और बतलाते हैं ....।"

मत्तोऽविभिन्नमात्मानं द्रष्टुमर्हसि शङ्कर।
योऽहं स त्वं ....।।
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर।। (वि. पु. 5/33/47-49)

पराशरजी मैत्रेयजी को कह रहे हैं कि "हे द्विजोत्तम! भगवान् विष्णु शंकर हैं और श्री लक्ष्मीजी गौरी हैं।"

शङ्करो भगवाञ्छौरिर्गौरी लक्ष्मीर्द्विजोत्तम। (वि. पु. 1/8/23)

आगे उल्लेख है कि "जिस अभूतपूर्व देव की ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप शक्तियाँ हैं वही भगवान् विष्णु का पद है।" वास्तव में वह केवल भगवान् विष्णु का ही नहीं अपितु शिवजी एवं ब्रह्माजी का भी परमपद है। वह पद ही निर्गुण एवं परात्पर पद है। अतः तात्त्विक रूप में तीनों देव एक ही हैं।

शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः।
भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परमं पदम्।। (विष्णु पु. 1/9/56)

इसी अध्याय में आगे कहा गया है कि- "आप निर्विशेष हैं तथापि आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही शंकर हैं तथा आप ही इन्द्र, अग्नि ....हैं।"

नमो नमोऽविशेषस्त्वं त्वं ब्रह्मा त्वं पिनाकधृक्। (वि. पु. 1/9/69)

गरुड पुराण(पू. ख. 4/11, तथा पू. ख. 23/32 आदि) में भी तीनों देवों की एकता का प्रतिपादन किया गया है। एक स्थल पर कहा गया है कि वही शिव हैं, वही विष्णु और ब्रह्मा हैं और मुक्ति प्राप्त कर लेने पर जीव भी ब्रह्म भाव को प्राप्त कर लेता है।

यः शिवः स हरिर्ब्रह्मा सोऽहं ब्रह्मास्मि मुक्तितः। (ग. पु. पू. ख. 23/32)

पुनः कहा गया है कि जगत्पति विष्णु स्वयं ब्रह्मा होकर जगत् की रचना करते हैं, निजस्वरूप से पालन तथा रुद्ररूप से संहार करते हैं।

ब्रह्मा भूत्वासृजद्विष्णुर्जगत्पाति हरिः स्वयम्।
रुद्र रूपो च कल्पांते जगत् संहरत्ते प्रभुः।। (ग. पु. पू. ख. 4/11)

वराह पुराण में भी अनेक स्थलों(यथा 9/7; 10/13-16; 25/18-19; 58/3-6; 70/26-28, 40-41, 47; 71/5-7; 72/2, 12-16) पर भगवान् शिव का अन्य दो देवताओं विष्णु एवं ब्रह्मा से तादात्म्य बतलाया गया है।

भगवान् शिव एवं विष्णु का एक-सा रूप है(**येयं मूर्तिर्भगवतः शंङ्करः स स्वयं हरिः**, व. पु. 9/7)। त्रेतायुग में विष्णु ने शिव का रूप धारण किया था(**त्रेतायां रुद्ररूपस्तु द्वापरे यज्ञ-मूर्त्तिमान्**, व. पु. 10/16)। शिव को परम पुरुष माना गया है और विष्णु से उनका तादात्म्य स्थापित

किया गया है।

त्रिशूलपाणे पुरुषोत्तमाच्युत ....।।
त्वमादिदेवः पुरुषोत्तमो हरिर्भवो महेशस्त्रिपुरान्तको विभुः। (वरा. पु. 25/18-19)

वराह पुराण में सौभाग्यव्रत के प्रसंग में श्रीशिव और श्रीविष्णु में भेद-बुद्धि रखना महान् दोष बतलाते हुए कहा गया है कि जो लक्ष्मी हैं, वह पार्वती ही हैं और जो श्रीहरि हैं, वे साक्षात् त्रिलोचन ही हैं, सब शास्त्रों एवं पुराणों में ऐसा प्रतिपादित है। इसके विपरीत जो कहता है, वह शास्त्र के विरुद्ध कहता है। ऐसी बात कहनेवाला मनुष्य रुद्र अर्थात् दुःख देनेवाला है और ऐसा शास्त्र शास्त्र नहीं, काव्य है-अनादरणीय है। भगवान् विष्णु, श्रीशिव और लक्ष्मी, गौरी कही जाती हैं। इनमें परस्पर भेद को समझनेवाला सज्जनों की दृष्टि में अधम कहा गया है। उसे नास्तिक समझो, वह सब धर्मों से बहिष्कृत है।

या श्रीः सा गिरिजा प्रोक्ता यो हरिः स त्रिलोचनः।।
एवं सर्वेषु शास्त्रेषु पुराणेषु च गद्यते।
एतस्मादन्यथा यस्तु ब्रूते शास्त्रं पृथक्तया।।
रुद्रो जनानां मर्त्यानां काव्यं शास्त्रं न तद्भवेत्।
विष्णुं रुद्रकृतं ब्रूयाच्छ्रीर्गौरीति निगद्यते।।
एतयोरन्तरं यच्च सोऽधमेत्युच्यते जनैः।
तं नास्तिकं विजानीयात्सर्वधर्मबहिष्कृतम्।। (व. पु. 58/3-6)

रुद्रगीता[1] में भगवान् शिव कहते हैं कि "जो लोग मुझे विष्णु एवं ब्रह्मा से भिन्न समझकर मेरा भजन करते हैं वे पापकर्मी हैं और वे नरकगामी हैं" (वरा. पु. 70/40-41)।

मां विष्णोर्व्यतिरिक्तं ये ब्रह्मणश्च द्विजोत्तम।।
भजन्ते पापकर्माणस्ते यान्ति नरकं नराः। (वरा. पु. 70/40-41)

वे पुनः ऋषियों से कहते हैं कि "जो लोग मुझे दूसरा नारायण या दूसरा ब्रह्मा समझते हैं, और जो ब्रह्मा को अपर रुद्र मानते हैं, वे यथार्थ को जाननेवाले हैं। क्योंकि गुण एवं बल से हम तीनों एक हैं। हममें भेद बुद्धि ही मोह है" (वरा. पु. 70/47)। रुद्रगीता के दूसरे अध्याय में पुनः भगवान् शिव ऋषियों से कह रहे हैं कि "हम तीनों में कोई भेद नहीं है तथा ज्ञानी पुरुष कोई भेद देखता भी नहीं है" (वरा. पु. 71/7)। वे कहते हैं कि "जो कुछ भी मुझे अर्पित किया जाता है वह तीनों देवों द्वारा ग्रहण किया जाता है" (वरा. पु. 71/6)। क्योंकि भगवान् शिव सर्वदेवमय हैं। रुद्रगीता में आगे कहा गया है कि "वह जो विष्णु है वही ब्रह्मा है और जो ब्रह्मा है वही महेश्वर है" (वरा. पु. 70/26)। जो व्यक्ति तीनों वेदों के ज्ञाता हैं उन्होंने कहा है कि रुद्र, विष्णु एवं ब्रह्मा में जो अन्तर करता है वह

---

[1] वराह पुराण के 70 एवं 71 वें अध्याय को रुद्रगीता भी कहा जाता है।

पापी है, दुष्ट है और वह अधोगति को प्राप्त होता है (वरा. पु. 70/27-28)।

यो विष्णुः स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मासौ महेश्वराः।।
वेदत्रये च यज्ञेऽस्मिन्पण्डितेप्येष निश्चयः।
यो भेदं कुरुतेऽस्माकं त्रयाणां द्विजसत्तम।।
स पापकारी दुष्टात्मा दुर्गतिं समवाप्नुयात्। (व. पु. 70/26-28)

एक स्थल पर कहा गया है कि नारायण, शिव, विष्णु, शंकर और पुरुषोत्तम - इनमें केवल नामों का ही भेद है। वस्तुतः इन सबको सनातन परब्रह्म परमात्मा कहते हैं। वैदिक कर्म से संबंध रखनेवाले पुरुषों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर - इन नामों का पृथक्-पृथक् उच्चारण होता है। वैदिक कर्म के अवसर पर ही शिव, विष्णु तथा वेदों का पार्थक्य है। वस्तुतः तीनों एक ही हैं। विद्वान् पुरुष को चाहिये कि इनमें भेद-भाव की कल्पना न करे। जो पक्षपात के कारण इसके विपरीत कल्पना करता है, वह पापी नरक में जाता है। (वरा. पु. 72/12-16)

उपसंहार

इस अध्याय में विवेचित सभी पुराण भगवान् शिव को परब्रह्म के रूप में स्वीकार करते हैं। भगवान् शिव सगुणरूप में त्रिनेत्रधारी, व्यालधारी, शशिशेखर, त्रिशूलधारी आदि अनेक विशेषताओं से युक्त हैं। उन्हें निष्कल, सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, शुद्ध, अद्वय, स्वप्रकाश, अनादि-अनन्त, निर्विकार, परात्पर, निर्गुण एवं सच्चिदानन्द कहा गया है। भगवान् शिव दयालु हैं, उनकी उपासना सरल है क्योंकि वे शीघ्र प्रसन्न हो जानेवाले हैं। उनके अनेक व्रतों एवं तीर्थों का भी उल्लेख इन पुराणों में मिलता है जिनमें से शिवरात्रिव्रत तथा काशीतीर्थ महत्त्वपूर्ण हैं। शिवोपासना में शतरुद्रिय के जप का भी महत्त्व बताया गया है। लिंगोपासना की भी चर्चा पायी जाती है। भगवान् शिव की पूजा से व्यक्ति को सभी प्रकार के लौकिक एवं परलौकिक भोग एवं ऐश्वर्य तथा मोक्ष (या शिवसायुज्य) प्राप्त हो सकता है। लिंगपूजन से भी भोग एवं मोक्ष प्राप्त होता है।

इन पुराणों में भगवान् शिव को तात्त्विक रूप से ब्रह्मा तथा विष्णु से अभिन्न माना जाता है। तीनों देवों में भेद केवल सृष्टि के सन्दर्भ में गुणों को लेकर है न कि तत्त्व को लेकर। माया ही एक (परम) तत्त्व में भेद डालकर अज्ञानियों को तीन रूपों में समझने के लिये बाध्य करती है। परन्तु ज्ञानियों को इन तीनों में कोई भेद प्रतीत नहीं होता। जो इन तीनों देवों में मोह के कारण भेद देखते हैं उनकी दुर्गति होती है तथा जो तीनों में अभेद का दर्शनकर वैदिक रीति से (इन तीनों में से) किसी की भी उपासना करता है वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

(यह लेख पुराणों के निम्नलिखित पाठों पर आधारित है - 'संक्षिप्त श्रीवराहपुराण' जो गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित है; 'वराहपुराणम्' जो मेहरचन्द लक्ष्मणदास, नई दिल्ली द्वारा 1984 में प्रकाशित है, 'गरुडपुराणम्' जो डॉ. रामशंकर भट्टाचार्य द्वारा संपादित तथा चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी द्वारा प्रकाशित है तथा 'श्रीश्रीविष्णुपुराण' (मूल श्लोक तथा हिन्दी अनुवाद सहित) जो गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित है।)

स्कन्द पुराण में भगवान् शिव

स्कन्द शैवों का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण पुराण है। इसमें भगवान् शिव संबंधी लगभग सभी कथाओं तथा शैव-मान्यताओं का वर्णन है। यह पुराण न केवल शैव-पुराणों में अपितु सभी अठारह पुराणों में सबसे बड़ा है। नारद पुराण में ब्रह्माजी मरीचि से कहते हैं कि "मैंने शतकोटि पुराण में जो शिव की महिमा का वर्णन किया है, उसके सारभूत अर्थ का व्यासजी ने स्कन्द पुराण में वर्णन किया है।"[1] स्कन्द पुराण दो रूपों-संहितात्मक एवं खण्डात्मक-में पाया जाता है। स्कंद पुराण (के संहितात्मक रूप) में 6 संहिताएँ-(1) सनत्कुमार, (2) सूत, (3) शांकरी, (4) वैष्णवी, (5) ब्राह्मी तथा (6) सौरी हैं। इन सभी संहिताओं की कुल श्लोक-सख्या लगभग एक लाख है। नारद पुराण में केवल खण्डात्मक स्कंद पुराण का उल्लेख है। इसमें माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, अवन्ति, नागर और प्रभास-ये सात खण्ड हैं। नारद पुराण के अनुसार इसमें लगभग 81000 श्लोक हैं। स्कंद पुराण के प्रभासखण्ड के प्रारंभ में भी स्कंद पुराण के श्लोकों की सख्या 81000 बतायी गयी है। मत्स्य पुराण (53/41-42), वामन पुराण और भागवत पुराण के अनुसार भी श्लोकों की कुल संख्या 81000 है पर अग्नि पुराण के अनुसार कुल श्लोक-संख्या 84000 है।

इस पुराण के खण्डात्मक रूप के चार अलग-अलग पाठ पाये जाते हैं। पहला वेंकटेश्वर प्रेस का (जिसमें 94313 श्लोक हैं), दूसरा बंगवासी प्रेस का, तीसरा नवलकिशोर प्रेस (लखनऊ) और चौथा गुरुमण्डल प्रेस का। इन चारों संस्करणों के विषयों में अन्तर है। उदाहरण के लिये चौरासी लिंगमाहात्म्य जो वेंकटेश्वर प्रेस के अवन्तिखण्ड के द्वितीय भाग तथा गुरुमण्डल प्रेस संस्करण के अवन्तिखण्ड के प्रथम भाग में पाया जाता है वह लखनऊ के नवल किशोर संस्करण में नहीं पाया जाता। गुरुमण्डल संस्करण के अवन्तिखण्ड के तीसरे भाग के करीब 110 अध्याय वेंकटेश्वर-संस्करण से काफी अन्तर रखते हैं। गुरुमण्डल संस्करण में रेवाखण्ड के अन्तर्गत सत्यनारायण माहात्म्य पाया जाता है जबकि वह वेंकटेश्वर प्रेस के संस्करण में नहीं पाया जाता।

संहितात्मक स्कंद पुराण की केवल सनत्कुमार, सूत एवं शंकर संहिताएँ ही उपलब्ध हैं। कहते हैं कि नेपाल में छहों संहितायें पायी जाती हैं। सूत संहिता पर तो आचार्यों के भाष्य भी हैं। इस संहितात्मक स्कन्द पुराण को कोई उप-पुराण कहते हैं तो कोई इसे महापुराण का ही अंग मानते हैं। जो कुछ भी हो इनकी संहिताएँ बड़े महत्त्व की हैं। इस पुराण में तत्पुरुष कल्प की कथाएँ तथा आख्यान हैं। इस अध्याय में मुख्यतः खण्डात्मक स्कंदपुराण के आधार पर शिवतत्त्व की चर्चा की जायगी। परन्तु यदा-कदा प्रसंगवश संहिताओं के भी उद्धरण दिये जा सकते हैं।

---

[1] नारद पुराण, पूर्वभाग, चतुर्थपाद 104/2

भगवान् शिव का स्वरूप

भगवान् शिव को ही निर्गुण एवं सगुण अथवा पर एवं अपर ब्रह्म स्वीकार किया गया है। इस पुराण में शिवतत्त्व के ब्रह्म होने की अनेक स्थलों पर चर्चा की गयी है। निम्नलिखित पंक्तियों में हम कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण उद्धरणों की चर्चा करेंगे जिनसे भगवान् शिव का ब्रह्मस्वरूप स्पष्टरूप से प्रकट हो सके।

पुराण के प्रारंभ में ही भगवान् शिव की प्रार्थना में यह कहा गया है कि "जिनकी आज्ञा से ब्रह्माजी इस जगत् की सृष्टि तथा विष्णु भगवान् पालन करते हैं और जो स्वयं ही कालरुद्र नाम धारण करके इस विश्व का संहार करते हैं, उन पिनाकधारी भगवान् शंकर को नमस्कार है।" सूत संहिता में भी कुछ इसी तरह की बात कही गयी है।

यस्याज्ञया जगत्स्रष्टा विरञ्चिः पालको हरिः।
संहर्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने।। (स्क.पु.माहेश्वरख. केदारखण्ड 1/1)*
प्रसादाद्देवदेवस्य ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः।।
विष्णुर्विष्णुपदं प्राप्तो रुद्रो रुद्रत्वमागतः। (सूत सं.[1] 2/2/14-15)

यहाँ पर भगवान् शिव को ब्रह्मा एवं विष्णु का स्वामी बताया गया है। दक्ष के यज्ञ-विध्वंस के पश्चात् सभी देवताओं के साथ ब्रह्माजी कैलास पहुँचकर भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें शान्तस्वरूप, सर्वव्यापक, परब्रह्मरूप, जटा-जूटधारण करनेवाले, ज्योतिर्मय, जगत् की सृष्टि करनेवाले, सबका भरण-पोषण करनेवाले, रुद्र, महान्, नीलकण्ठ, जगत्स्वरूप, जगत् के आदिकारण, जगत् को आनन्द की प्राप्ति करानेवाले, ओंकार व वषट्कार-स्वरूप, यज्ञस्वरूप तथा समस्त प्राणियों को शरण देनेवाले आदि-आदि कहा है(माहेश्वरख. केदारख.-5/16-19)।* ब्रह्माजी की इस स्तुति में भगवान् शिव के पर एवं अपरब्रह्म -दोनों होने की बात झलकती है।

दक्ष भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें सबको वर देनेवाले, सर्वश्रेष्ठ-देव, सनातन, देवताओं के पालक, ईश्वर, पापहारी, सम्पूर्ण विश्व के स्वामी, विश्वरूप, सनातन-ब्रह्म, स्वात्मरूप, भक्ति से प्राप्त होने योग्य, सर्वरूप तथा वरस्वरूप आदि कहा है।

नमामि देवं वरदं वरेण्यं नमामि देवं च सदा सनातनम्।
नमामि देवाधिपमीश्वरं हरं नमामि शम्भुं जगदेकबन्धुम्।।

---

[1] सूत संहिता में चार खण्ड हैं, जिनमें पहला शिवमाहात्म्यखण्ड, दूसरा ज्ञानयोगखण्ड, तीसरा मुक्तिखण्ड और चौथा यज्ञवैभवखण्ड है। उद्धरणों में कई बार इन खण्डों का नाम न देकर वहाँ पर 1, 2, 3 और 4 लिखा जाता है। यज्ञवैभवखण्ड में पूर्व एवं उत्तर दो भाग हैं। उत्तर भाग में 'ब्रह्मगीता' एवं 'सूतगीता'-दो गीताएँ हैं जिनमें क्रमशः 12 एवं 8 अध्याय हैं। इस लेख में जिस 'सूत संहिता' का सन्दर्भ दिया गया है वह श्रीबालमनोरमा प्रेस, माईलापोर (Mylapore), मद्रास द्वारा 1954 में तात्पर्यदीपिका सहित प्रकाशित है।

नमामि विश्वेश्वरविश्वरूपं सनातनं ब्रह्म निजात्मरूपम्।
नमामि सर्वं निजभावगम्यं वरं वरेण्यं वरदं नतोऽस्मि।।

(संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. 5/39-40 पृ. 15)

समुद्रमन्थन के पश्चात् राहु के शीश कट जानेपर चन्द्रमा राहु के डर से भगवान् शिव की शरण में पहुँचा। शिवजी ने उसे अभय प्रदान कर अपने शिरपर धारण कर लिया। चन्द्रमा को शरण देने के पश्चात् राहु भी आया और उनसे चन्द्रमा, जो उसका भक्ष्य था, को माँगने के लिये भगवान् शिव की स्तुति करने लगा। उस स्तुति में उसने भगवान् शिव को शान्त-स्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा, लिंगरूप-धारी, महादेव, जगत्पति, सम्पूर्ण भूतों का निवास-स्थान, दिव्य, प्रकाश-स्वरूप तथा सब भूतों का पालक कहा है (संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. अध्याय 13 पृ. 26)। यहाँपर भी शिव को सगुण एवं निर्गुण दोनों ही स्वीकार किया गया है।

प्रदोषव्रत करनेवाले व्यक्ति को भगवान् शिव की सौ नामों से स्तुति करनी चाहिये। पुराणगत इन सौ नामों की स्तुति में भगवान् शिव को जटा-जूटधारी, परमात्मा, देवताओं के स्वामी, वृषभध्वज, दिगम्बर, उमाकान्त, तपोमय, विष्णुरूप, व्यालप्रिय, पशुपति, त्रिपुर-नाशक, कामदेव का नाश करनेवाला, ज्ञानस्वरूप, सर्वात्मा, वेदों में छिपे गूढ़ तत्त्व, अविनाशी, जिनमें सम्पूर्ण जगत् की स्थिति है, सर्वव्यापी, व्योमरूप, गजासुर एवं अन्धकासुर का नाश करनेवाला, भक्ति-प्रिय, ज्ञाता एवं ज्ञान- स्वरूप, जिनके स्वरूप में कोई विकार नहीं होता, त्रिनेत्रधारी, वेद-वेदांग जिनके स्वरूप हैं, मोक्षस्वरूप, पालक, विश्वरूप, विश्वनाथ, कालस्वरूप, रूपहीन, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, श्मशानवासी, व्याघ्रचर्म धारण करनेवाला, ईश्वर, लिंगरूप, कारणों के अधिपति, प्रणव के अर्थभूत ब्रह्मरूप, मृत्युञ्जय, स्वयंभू, नीलकण्ठ तथा गौरीपति आदि-आदि कहा गया है (संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. 17/76-90 पृ. 35-36)।[1]

उपरोक्त स्तुति में भी भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन है। काम-दहन के उपरान्त सभी देवगण भगवान् शिव के पास तारकासुर से मुक्ति दिलाने के लिये निवेदन करने गये थे। उस समय देवगणों के साथ ब्रह्माजी स्तुति करते हुए भगवान् शिव को सम्पूर्ण जगत् का भरण-पोषण करनेवाला, जगत्स्वरूप, समस्त लोकों के पिता, माता और ईश्वर, जगत् का स्वामी एवं रक्षक आदि कहते हैं (स्क. पु. मा. के. अ. 22/7-9)।* ब्रह्मादि की प्रार्थना के उपरान्त भगवान् शिव अपना निर्णय सुनाकर अपने आत्म-स्वरूप का चिन्तन करते हुए समाधिस्थ हो गये। शिवजी के आत्मस्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि "जो परे से भी अत्यन्त परे, अपने आप में स्थित, मल आदि दोषों से रहित, निरञ्जन, मिथ्याज्ञान से रहित (निराभास) है, जहाँ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि अथवा नक्षत्र किसी का भी प्रकाश नहीं है, जो केवलसद्वस्तु, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतर वस्तुओं से भी परे है, जिसका कोई संकेत नहीं है, जो चिन्तन का दिषय नहीं, जो ज्ञानस्वरूप, शब्द या वाणी की पहुँच के परे, निर्गुण

---

[1] मूल श्लोकों को इसी पुस्तक में प्रदोषव्रतवाले अध्याय में देखें।

और निर्विकार है, सत्तामात्र ही जिसका स्वरूप है, जो ज्ञानगम्य होकर भी अगम्य है..............जो सबके ईश्वर और परब्रह्म परमात्मा (परमार्थ वस्तु) हैं।"

आत्मानमात्मना कृत्वा आत्मन्येवमचिन्तयत्।।
परात्परतरं स्वस्थं निर्मलं निरवग्रहम्।
निरञ्जनं निराभासं यन्मुह्यन्ति च सूरयः।।

...

अनिर्देश्यमचिन्त्यं च निर्विकारं निरामयम्।
ज्ञप्तिमात्रस्वरूपं च न्यासिनो यान्ति यत्र वै।।
शब्दातीतं निर्गुणं निर्विकारं सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं त्वगम्यम्।

...

तद्वस्तुभूतो भगवान् स ईश्वरः पिनाकपाणिर्भगवान् वृषध्वजः।।

(संक्षिप्त स्क. पु. मा. केदा. 22/32-37 पृ. 52)

शिव-विवाह के प्रसंग में नारदजी ने (भगवान् शिव के गोत्रादि पूछे जानेपर) भगवान् शिव की महिमा बताते हुए उन्हें नादमय, रूपहीन, बह्मादि देवता भी जिनके गोत्र-कुल का नाम नहीं जानते (अर्थात् जो उनके लिये भी अज्ञेय हैं)-ऐसा ऐश्वर्यवाला बताया है (स्क. पु. मा. के. अध्याय 26)*। लोमशजी शिव-महिमा बताते हुए कह रहे हैं कि वे एक, महान्, ज्योतिःस्वरूप, अजन्मा, परमेश्वर, कार्य-कारण से परे, व्यवधानशून्य, निर्गुण, निर्विकार, निर्बाध, निर्विकल्प, निरीह, निरञ्जन, नित्ययुक्त, निष्काम, निराधार, तथा सदैव नित्यमुक्त हैं।

एको महान् त्योतिरजः परेशः परवराणां परमो महात्मा।
निरन्तरो निर्गुणो निर्विकारो निराबाधो निर्विकल्पो निरीहः।।
निरञ्जनो नित्ययुक्तो निराशो निराधारो नित्यमुक्तः सदैव हि।।

(संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. 27/26-27 पृ. 60)

यमराज भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें पापों को जलानेवाले, देवों के पालक, प्रकाशस्वरूप, मृत्यु पर विजय पानेवाले, जटा-जूट-धारी, नीलकण्ठ, पाप-तापों का नाश करनेवाले, सर्वव्यापी, आकाश जिनका एक अवयव मात्र है, काल एवं काल के स्वामी कहा है। (संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. अ. 31 पृ. 65)

भगवान् शिव द्वारा काल के भस्म कर दिये जाने के बाद जब राजा श्वेत की समाधि खुली तो उन्होंने सामने खड़े भगवान् शिव की प्रार्थना की। प्रार्थना में वे शिवजी को सबके दुःखों को दूर करनेवाले, शान्तस्वरूप, स्वयंप्रकाश एवं स्वयम्भू, व्यवधानशून्य, सूक्ष्मस्वरूप, जगदीश्वर, सबके रक्षक, जगत् के माता-पिता, सुहृद, सखा, बन्धु, स्वजन, स्वामी तथा ईश्वर कहते हैं (स्क. पु. मा. के.

32/41-42)।* श्वेत के आग्रह पर भगवान् शिव ने काल को पुनः जीवित कर दिया। पुनर्जीवित होने के बाद काल ने भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें जगत्पति, लिंगरूप से तीनों लोक को व्याप्त करनेवाले, देवताओं और असुरों, सबको अपने में लीन करने के कारण लिंगस्वरूप कहलानेवाले, देवेश्वर, विश्वमंगल, कारणों के भी कारण, बुद्धिहीनों के पालक, ज्ञानियों के लिये ज्ञानात्मा, मनीषी पुरुषों के लिये परम मनीषी, विश्व के एकमात्र बन्धु, आदिदेव, पुराण-पुरुष, संत जिनके नामों एवं गुणों का कीर्तन करते हैं, तीनों लोकों की सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, सम्पूर्ण भूतों के स्वामी आदि कहा है(स्क. मा. के. अ. 32/60-67)।*

तारकासुर के वध के उपरान्त कार्तिकेयजी ने तारकासुर के वधजनित पाप को मिटाने हेतु कुमारेश्वर लिंग की स्थापना की। तदनन्तर उन्होंने भगवान् शिव की स्तुति की। स्तुति में भगवान् शिव को उन्होंने निरामय(रोग-शोक से रहित), कल्याण-स्वरूप, सबके भीतर मनरूप से निवास करनेवाले, सभी देवताओं द्वारा पूजित, सबकी उत्पत्ति के कारण, माया-रूपी गहन वन के आश्रय, जगत् का संहार करनेवाले, कालरूप, सबको शरण देनेवाले, निर्गुण ब्रह्म, भक्तों को मनोवांछित फल देनेवाले, कर्मों के फल देनेवाले, सबको धारण एवं पोषण करनेवाले, अनन्तरूपवाले, अपरिमेय, चराचरस्वरूप, सबको विचार देनेवाले, संपूर्ण भूतों के ईश्वर एवं महेश्वर, हृदय गुहा में निवास करनेवाले परमेश्वर, मुक्ति के अधीश्वर आदि-आदि कहा है।(स्क. पु. मा. कुमा. 34/40-47)*

एक समय ब्रह्मा एवं विष्णु के समक्ष एक अग्निमय स्तंभ प्रकट हुआ जिसका न आदि था न अन्त। भगवान् शिव के उस तेजोमय स्वरूप को देखकर ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की। वे अपनी स्तुति में उन्हें सम्पूर्ण लाकों की उत्पत्ति के एकमात्र हेतु, जिससे सब कुछ प्रकाशित होता है, जिससे बढ़कर कोई नहीं है और जो समस्त भुवनों में उत्कृष्ट हैं-ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार भगवान् विष्णु ने भी उनकी स्तुति की। विष्णुजी ने अपनी स्तुति में उन्हें तीनों लोक्रों के अधीश्वर, गंगाधर, जगन्नाथ, चन्द्रशेखर, असीम दयावन्त, सभी विद्याओं एवं एश्वर्यों को प्रदान करनेवाले, सर्वाधार, जिनकी कृपा के बिना उन्हें कोई नहीं जान सकता तथा जो अपने तुच्छ भक्त को अपनाकर अपने समान बना देते हैं-ऐसा कहा है। दोनों लोगों की स्तुति के उपरान्त उस तेजोमय स्तंभ से गौरवर्ण, नीलकण्ठ पुरुष-रूप से भगवान् शिव प्रकट हुए। उनके इस रूप में प्रकट होने के बाद पुनः दोनों जनों ने उनकी स्तुति की। उस स्तुति में वे उन्हें वरदाता, ईश्वर, देवताओं में सबसे श्रेष्ठ, योगियों के ध्येय, निरञ्जन एवं ब्रह्मस्वरूप आदि कहते हैं।(स्क. पु. मा. अरु. 2/2-9, 12-19, 27)*

मार्कण्डेयजी के पूछने पर नन्दीकेश्वरजी सृष्टि के बारे में बतलाते हुए कहते हैं कि पूर्वकाल में देवकल्प के आदि में विकल्प-शून्य भगवान् शिव ने स्वेच्छा से ही सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न किया। उत्पन्न हुए विश्व की सृष्टि-परम्परा चालू रखने तथा सर्वदा इसकी रक्षा करने के लिये भगवान् शिव ने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्मा और बाम भाग से विष्णु को प्रकट किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा को रजो-

गुण से और विष्णु को सत्त्वगुण से युक्त किया। फिर महादेवजी से प्रेरित होकर वे दोनों देवता सृष्टि एवं रक्षा के कार्य में संलग्न हो सम्पूर्ण जगत् पर शासन करने लगे(स्क. पु. माहे. ख. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तरभाग 8/8-12)।*

जो तेजोलिंग ब्रह्मा एवं विष्णु के समक्ष प्रकट हुआ था, तथा जिसका आदि तथा अन्त दोनों ने नहीं पाया था, पर ब्रह्माजी ने केतकी द्वारा झूठी गवाही पेश कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहा था, उस समय विष्णुजी ने शिव की जो स्तुति की थी उसमें उन्होंने शिवजी को पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, यजमान, आकाश. जल, आदि रूप धारण करनेवाले, कालस्वरूप, मृत्युञ्जय, अक्षय ऐश्वर्य सम्पन्न, जगत्-स्रष्टा एवं देहधारियों के रक्षक, भूतों का संहार करनेवाले, जगत् के बाहर एवं भीतर व्याप्त, वेद जिसके निःश्वास हैं, देवता, दानव, दैत्य, सिद्ध, विद्याधर, मनुष्य, पशु-पक्षी, पर्वत, वृक्ष सब कुछ आप ही हैं, स्वर्ग, अपवर्ग, ॐकार, यज्ञ आप ही हैं, ...परात्पर परमेश्वर, सबपर शासन करनेवाले, महेश्वर, ... आपके आदेश से मैं और ब्रह्मा पालन तथा सृष्टि में समर्थ होते हैं, आदि-अन्त रहित, सब देवताओं से श्रेष्ठ, जब आप अपनी भक्ति प्रदान करते हैं तब उससे मोक्ष प्राप्त होता है-ऐसा कहा है(स्क. पु. मा. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तर भाग 14/19-31)।*

विष्णु के पश्चात् ब्रह्माजी ने भी तेजोमय लिंग से प्रकट शिव की स्तुति की तथा उसमें उन्होंने शिवजी को ब्रह्मा, विष्णु आदि का कर्त्ता, पशुपति, जो पाश से लोगों को बाँधते तथा मुक्त करते हैं, ईश्वर, सर्वव्यापी, जालंधर, अन्धक आदि का दमन करनेवाले, कालकूट का पान कर जगत् की रक्षा करनेवाले, अर्द्धनारीश्वर, परशुराम को अस्त्र-शस्त्र प्रदान करनेवाले, शरभावतार के द्वारा नृसिंह का दमन करनेवाले, विष्णु को सुदर्शन चक्र प्रदान करनेवाले-ऐसा कहा है(स्क. पु. मा. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तर भाग 16/1-19)।*

महिषासुर के वध के उपरान्त पार्वती ने अरुणाचलेश्वर की प्रार्थना की थी। प्रार्थना से प्रसन्न हो भगवान् शिव ने उनके सम्मुख प्रकट हो इस प्रकार कहा था- मैं और तुम सदा एक दूसरे से अभिन्न हैं। मैं नारायण हूँ, तुम लक्ष्मी हो, मैं ब्रह्मा हूँ, तुम सरस्वती हो .... तुम प्रकृति हो मैं पुरुष हूँ............... मैं ईश्वर हूँ और तुम मेरी शक्ति हो। सृष्टि, पालन और संहार के कार्य में सदा अनुग्रह रखनेवाली ईश्वरी हो .... हमने स्वेच्छा से ही पृथक-पृथक शरीर धारण किया है(स्क. पु. मा. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तरभाग 21/11-18)।*

पाण्ड्य-नरेश वज्रांगद की सेवा से अरुणाचलेश्वर प्रसन्न होकर उनसे कहते हैं "............... आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और पुरुष-इन मेरी आठ मूर्तियों से व्याप्त होकर सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रकाशित होता है। मैं इन सब तत्त्वों से परे शिव हूँ, मुझसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मेरे स्वरूपभूत चिदानन्द समुद्र से उठी हुई कुछ लहरें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सम्पूर्ण देवताओं को आनंद से परिपूर्ण करती हैं। मैं समस्त संसार का स्वामी हूँ। गौरी देवी मेरी महाशक्ति माया हैं। इन्हीं

के द्वारा सम्पूर्ण विश्व सदा आच्छादित होता और विस्तार को प्राप्त होता है। इन महाशक्ति के द्वारा सदा सृष्टि-रक्षा और संहाररूप लीला विलासों से अत्यन्त विचित्ररूप में प्रस्तुत किये हुए इस जगत् को मैं स्वेच्छा से देखता रहता हूँ।" (स्क. पु. मा. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तरभाग 24/39-44)*

प्रदोषव्रत की पूजा, स्तुति एवं परिक्रमा के उपरान्त की जानेवाली शिवजी की प्रार्थना में उन्हें सनातन, देवताओं के अधीश्वर, सर्वदेवपूजित, सर्वगुणातीत, सबको वर देनेवाले, आधाररहित, अविनाशी, विश्वम्भर, संपूर्ण विश्व के लिये एकमात्र जानने योग्य वस्तु, नागराज वासुकि को आभूषण के रूप में धारण करनेवाले, अनन्त गुणों के आश्रय, अचिन्त्य, निरञ्जन, दयासिन्धु, भक्तों की पीड़ा दूर करनेवाले, संसार-सागर से पार उतारनेवाले तथा परमेश्वर आदि कहा जाता है (स्क. पु. ब्रह्म. ब्रह्मोत्तर 7/59-66)।* प्रार्थना के मूल श्लोकों के लिये इसी पुस्तक में प्रदोष व्रतवाला अध्याय देखें।

राजा नल-दमयन्ती के पौत्र चन्द्रांगद के यमुना में डूबकर नागलोक पहुँचने पर तक्षक उनसे कुछ प्रश्न पूछता है जिसके उत्तर में वे भगवान् शिव की महिमा का विवेचन करते हैं। वे भगवान् शिव को देवों के देव, महादेव, विधाता के भी विधाता, कारण के भी कारण, विश्वात्मा, सम्पूर्ण भूतों के साक्षी, सबकी आत्मा में स्थित रहनेवाले परमेश्वर, निरञ्जन, सम्पूर्ण संसार जिसकी इच्छा के अधीन है, ज्ञानी पुरुष जिन्हें एक, आदि और पुराण-पुरुष कहते हैं, गुणों के भेद से जिनमें भिन्नता की प्रतीति होती है, जिन्हें कोई क्षेत्रज्ञ, कोई तुरीय, कोई कूटस्थ कहते हैं, चैतन्यमय, अचिन्त्य तत्त्व, श्रुति जिसे नेति-नेति कहती है, आत्मज्ञानी पुरुषों के भी मन-वाणी से परे, जिनके प्रसाद से कालचक्र को लांघा जा सकता है, गंगा जिनके मस्तक पर विराजमान हैं, भगवती जिनके अर्द्धांग में निवास करती हैं, तक्षक एवं वासुकी नागराज जिनके कानों के कुण्डल हैं, वेद एवं उपनिषद् जिनके चरणों का गुणगान करते हैं, जिनका दिव्यस्वरूप योगियों के हृदय में प्रकाशित होता है, जिनकी सगुण मूर्ति सम्पूर्ण तत्त्वों का प्रकाश करनेवाली है तथा जो गुणमयी सृष्टि पर विजय पानेवाले हैं-ऐसा कहते हैं। (स्क. पु. ब्रह्म. ब्रह्मोत्तरखण्ड अध्याय 8/83-97)

शिवयोगी ऋषभ ने भद्रायु (एक संकटग्रस्त राजा) को शिव-कवच का उपदेश दिया था। उस कवच में भगवान् शिव को समस्त लोकों के एकमात्र कर्त्ता, भर्त्ता एवं संहरता, सब लोकों के एकमात्र गुरु एवं साक्षी, वेदों के गूढ़ तत्त्व, सबको वर देनेवाले, समस्त पापों एवं पीड़ाओं का नाश करनेवाले, सबको अभय देनेवाले, ...निर्गुण, उपमारहित, निराकार, निराभास, निरामय, निष्प्रपंच, निष्कलंक, निर्द्वन्द्व, निःसंग, निर्मल, नित्यरूप......... शुद्ध-बुद्ध, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दघन, अद्वितीय, प्रकाशमय ... .खट्वांग, खंग, ढाल, पाश, अंकुश, डमरू, शूल, धनुष-बाण, गदा, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर, मुसल, मुग्दर, पट्टिश, परशु, परिघ, भुशुण्डि, शतघ्नी और चक्र आदि आयुधों से युक्त, भयंकर हाथोंवाले, मृत्युञ्जय, त्र्यम्बक, विश्वरूप, वृषवाहन, विश्वतोमुख आदि कहा गया है।

.... सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकसंहर्त्रे सकललोकैक गुरवे सकललोकैकभर्त्रे

सकल लोकैकसाक्षिणे .... निष्कलङ्काय निर्गुणाय निष्कामाय निरुप्लवाय निरवद्याय निरन्तराय निष्कारणाय निरातङ्काय निष्प्रपंचाय .... निर्विकल्पाय निर्भेदाय .... निरञ्जनाय .... नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तस्वरूपाय .... मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विश्वरूप .... वृषभवाहन विश्वतोमुरव ....। (स्क. पु. ब्रह्म. खण्ड ब्रह्मोत्तरखण्ड अध्याय 12)[1]* सम्पूर्ण शिव-कवच इसी पुस्तक में अन्यत्र देखें।

भद्रायु के परीक्षा में सफल होने के बाद भगवान् शिव ने उन्हें दर्शन दिया। भद्रायु ने भगवान् शिव को देखकर उनकी स्तुति बड़े विस्तार से की। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को अविकारी, कारणरहित, कारणों का कारण, सच्चिदानन्दमय, प्रशान्तस्वरूप, साक्षी, जगत् के कर्त्ता, ... इन्द्रियों से परे, अविर्भाव एवं तिरोभाव की लीला से युक्त, मन की पहुँच से परे, परमात्मरूप, सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, त्रिमूर्तिरूप, ज्ञानानन्दघन, नित्य, निराभास, सत्यज्ञानमय, विशुद्ध अन्तरात्मा, समस्तकर्मो से मुक्त, पापराशि का विदारण करनेवाले, मृत्युञ्जय, अविनाशी, सूर्य, चन्द्र एवं अग्निमय नेत्रोंवाले, गंगाधर .... आदि-आदि कहा है (स्क. ब्रह्म. ब्रह्मोत्तर. अध्याय 14/48-61)।*

विश्वानर मुनि ने बालक रूपधारी भगवान् शिव की स्तुति में अभिलाष्टक स्तोत्र पढ़ा। इस स्तोत्र में उन्हें अद्वितीय ब्रह्म, रूपरहित अथवा एकरूप होकर भी नाना रूपों में प्रतीत होनेवाले, संपूर्ण विश्व में व्याप्त, बिना इन्द्रियों के सभी कर्मो के कर्त्ता, वेदों से परे, इन्द्रादि देवता तथा योगीश्वरों से भी अज्ञेय पर कृपाप्राप्त भक्तों द्वारा ज्ञेय कहा गया है (स्क. पु. काशीखण्ड-पूर्वार्ध अध्याय 10/126-133)।* अभिलाष्टक स्तोत्र का मूल पाठ इसी पुस्तक में अन्यत्र देखें।

चन्द्रमा के पुत्र बुध ने काशी में भगवान् शिव के प्रकट होनेपर उनकी स्तुति की। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को विश्वरूप, रूप से अतीत, निराकार, सबकी पीड़ाओं का नाश करनेवाले, सबके ज्ञाता, सर्वस्त्रष्टा, परमदयालु, भक्तिभाव से प्राप्य, तपस्याओं का फल देनेवाले, सर्वेश, ईश्वर आदि कहा है। (काशीखण्ड पूर्वार्ध-अध्याय 15/55-59)*

शुक्राचार्य ने भी काशी में भगवान् शिव के प्रकट होनेपर उनकी अष्टमूर्त्यात्मक स्तोत्र द्वारा स्तुति की। इस स्तुति में उन्हें शान्ति, क्षमा आदि गुणों से विभूषित, आत्मस्वरूप, अज्ञान का अपहरण करनेवाले, सबके अन्तरात्मा में निवास करनेवाले, परमात्मस्वरूप तथा विश्व के उत्पादक आदि कहा गया है (काशी पूर्वा. अध्याय 16/101-108)।* शुक्राचार्य का पूरा स्तोत्र इसी पुस्तक में अन्यत्र देखें।

शिव शर्मा को भगवत्पार्षद कैलास की स्थिति के बारे में बताते हुए उन्हें शिवजी की महिमा भी बताने लगे। वे उनसे कह रहे हैं कि लीलास्वरूप धारण करनेवाले उन भगवान् का यह सब

---

[1] इस कवच के भिन्न-भिन्न पाठ मिलते हैं, यद्यपि उनके भाव लगभग एक से ही हैं। उनमें अन्तर केवल कुछ शब्दों एवं उनके क्रम को लेकर है। कवच का जो अंश यहाँ दिया गया है वह वेंकटेश्वर प्रेस की प्रति से भिन्न है यद्यपि यहाँ सन्दर्भ वेंकटेश्वर प्रेस की प्रति का दिया गया है।

दृश्य-प्रपंच खेलमात्र है। .... यह समस्त जगत् उनकी आज्ञा का पालक है। श्रुतियों में साकार, निराकार, सर्वव्यापी, नित्य, सत्य एवं द्वैतरहित कहकर जिस परब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है, वे ही भगवान् शिव हैं। वे समस्त कारणों से परे एवं परात्पर हैं। वे परमानन्दमय, वेदों तथा मन-वाणी द्वारा अगम्य, ज्योतिःस्वरूप, अन्तर्यामी, अनिर्वचनीय, रूपरहित होकर भी माया से अनेक रूप धारण करनेवाले, अनन्त तथा सर्वज्ञ आदि हैं। भगवान् रुद्र के पर और अपर दो रूप हैं, जो सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हैं। वे निराकार होकर भी साकार हैं। भगवान् शिव ही भोग एवं मोक्ष के कारण हैं.......................।(स्क. पु. काशी. पू. अध्याय 23/23-38)*

तस्यदेवस्यरवेलोऽयंस्वलीलामूर्तिधारिणः।
सविश्वेशइतिरव्यातस्तस्याज्ञाकृदिदंजगत्।।
सर्वेषांशासकश्चासौतस्यशास्तानचापरः।
स्वयं सृजतिभूतानिस्वयंपातितथात्तिच।।
अमूर्तंयत्परंब्रह्मसमूर्तंश्रुतिचोदितम्।
सर्वव्यापिसदानित्यंसत्यद्वैतविवर्जितम्।।
सर्वेभ्यःकारणेभ्यश्चपरात्परतरपरम्।
आनंदंब्रह्मणोरूपंश्रुतयोयत्प्रचक्षते।।
संविदंतेनयंवेदाविष्णुर्वेदनवैविधिः।
यतोवाचोनिवर्तंतेह्यप्राप्यमनसासह।।

(स्क. महापु. का. पू. 23/24-25, 27-29)

भावार्थ यह है कि यह संपूर्ण विश्व भगवान् शिव का खेल है। वही लीलापूर्वक मूर्तरूप धारण करता है, वही विश्व का स्वामी है तथा उसकी आज्ञा से ही यह संसार रचित है। वही सबका शासक है पर उसपर किसी का शासन नहीं है, वह स्वयं ही सभी भूतों की रचना करता है तथा उनका पालन करता है। वही श्रुतिसम्मत निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म है। वह सर्वव्यापक, नित्य, सत्य एवं अद्वैत है। वह सभी का कारण, श्रेष्ठतम से भी श्रेष्ठ तथा श्रुतियों में वर्णित आनंदस्वरूप ब्रह्म है। जिसे वेद, ब्रह्मा तथा विष्णु कोई भी नहीं जानता तथा जिसे वाणी और मन विना प्राप्त (जाने हुए) किये ही लौट आते हैं। अर्थात् जो मन-वाणी से परे है।

एक स्थल पर सूर्यदेव ने भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें देवाधिदेव, जगत्पते, सर्वव्यापी, भवभयहारी, मनोवाँछित फल देनेवाले, त्रिलोचन, जीवों के अज्ञानमय बंधन का नाश करनेवाले, शितिकण्ठ, शूलपाणि, चन्द्रशेखर, नागेन्द्रभूषण, कामनाशन, पशुपते, त्रिपुरारे, ईश्वर, तीनों वेदस्वरूप, कालकूट के विष का दलन करनेवाले, काल के भी काल, सर्वव्यापी, स्वर्ग-अपवर्ग प्राप्त करानेवाले, अन्धकासुर के शत्रु, जटा-जूटधारी, ब्रह्मा-विष्णु द्वारा स्तुत्य, वेदों के द्वारा जानने योग्य परमात्मा,

विश्वरूप, परे, निराकार ब्रह्म, मोक्ष देनेवाले, मन एवं वाणी से परे तथा सर्वव्यापी परमेश्वर कहा है।(स्क. पु. काशी. पू. 49/46-53)*

अन्यत्र जैगीषव्य मुनि भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें शांत, सर्वज्ञ, शुभस्वरूप, परमानन्दप्राप्ति के हेतु, स्थावर-जंगमरूप, शेषनाग का भुजबंद धारण करनेवाले, आधे अंग में पार्वती को धारण करनेवाले, देहबंधन को दूर करनेवाले, दिगंबर, संपूर्ण जगत् के स्वामी, जरा एवं जन्म का कष्ट हर लेनेवाले, पाप का अपहरणकरनेवाले, वेदस्वरूप, भक्तों को संतोष देनेवाले, नामस्मरण करनेवाले को तीनों लोकों का ऐश्वर्य देनेवाले, अज्ञानबंधन को खोलनेवाले, पशुपति, कारण-कार्य से परे, जगत् की उत्पत्ति के हेतु, सम्पूर्ण भूतों का पालन करनेवाले, मृत्युंजय, यज्ञस्वरूप, सनातन, ईश्वर, सर्वरूप, सर्वज्ञ, क्षमाशील, सर्व-समर्थ, ओंकारस्वरूप, वषट्कार, भूः, भुवः तथा स्वः लोक एवं दृश्य एवं अदृश्य सर्वरूप, शब्द एवं अर्थरूप, कर्त्ता, धर्त्ता एवं संहर्त्ता आदि कहा है।(स्क. पु. काशीख. उत्तरार्द्ध अध्याय 63/32-66)* स्तुति के कुछ अंशों को देखें-

नमः शिवायशान्ताय सर्वज्ञायशुभात्मने।
जगदानंदकंदायपरमानंदहेतवे।।
अरूपायसरूपायनानारूपधराय च।
विरूपाक्षायविधये विधि विष्णुस्तुताय च।।
सर्वात्मनेनमस्तुभ्यं नमस्ते परमात्मात्मने।
त्रयीमयायतुष्टायभक्त तुष्टि प्रदाय च।।
नाममात्रस्मृतिकृतांत्रैलोक्यैश्वर्यपूरक।
पशुपाशविमोक्षायपशूनांपतयेनमः।।
नामोच्चारणमात्रेणमहापातकहारिणे।
त्वमोंकारोवषट्कारोभूर्भुवः स्वस्त्वमेवहि।।
एकएवभवानीशएकःकर्तात्वमेवहि।
पाताहर्ता त्वमेवैकोनानात्वंमूढ कल्पना।।

(स्क. महापु. का. ख. उ. 63/32-34, 45, 49-50, 60, 64-65)*

काशी के ओंकारेश्वर लिंग की स्तुति में ब्रह्माजी भगवान् शिव को अक्षरस्वरूप, ओंकाररूप, निराकार, तीनों वेदस्वरूप, नाद, बिन्दु एवं कलास्वरूप, लिंगरहित होकर भी लिंगरूप में प्रकट होनेवाले, आदि-अन्तरहित, भव (जगत् को उत्पन्न करनेवाले), रुद्र (दुःख दूर करनेवाले) और शर्व (संहारकारी), पशुओं (अज्ञानी जीव) का पालन करनेवाले, तारक, प्रणवरूप, माया से परे, नृत्य, वाद्य एवं गानस्वरूप, स्थूल एवं सूक्ष्म, दृश्य एवं अदृश्यरूप धारण करनेवाले, शब्दातीत, शब्दब्रह्म, परब्रह्म, वेदस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, योगियों एवं तपस्वियों को सिद्धि प्रदान करनेवाले, मन्त्ररूप तथा मन्त्रों के फलदाता,

सर्वकर्त्ता, सर्वभोक्ता और सर्वसंहारकारी, विष्णु एवं ब्रह्मा होकर जगत् का पालन एवं सृजन करनेवाले, वेदवाणी से अगोचर तथा परमगति आदि कहते हैं।(स्क. पु. काशी. उत्तरार्द्ध अध्याय 73/101-141)*

धर्मेश्वर लिंग की उपासना से प्रसन्न हो भगवान् शिव यमराज के सामने वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। उस समय यमराज ने शिवजी की स्तुति की। उस स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव को कारणों के कारण, निराकार, सर्वरूप, परमाणुस्वरूप, अगम्य, संसार-सागर से पार उतारनेवाले, सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर, गुणों से रहित फिर भी समस्त गुणों के आधार, काल और प्रकृति से परे, काल एवं प्रकृति-रूप, मोक्ष प्रदान करनेवाले, परमात्मा, जगत् के अन्तरात्मा, जगत्स्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु और शिव होकर विश्व की सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, भक्तों के कल्याणकारी, चन्द्रकला विभूषण, पिनाकपाणी तथा सर्पों के आभूषण धारण करनेवाले आदि-आदि कहा है।(स्क. पु. काशीख. उत्तरार्द्ध अध्याय 78/32-41)*

अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्य के प्रारंभ में महाकाल की वन्दना में कहा गया है "प्रजा की सृष्टि करनेवाले प्रजापति देव भी प्रबल संसार-भय से मुक्त होने के लिये जिन्हें नमस्कार करते हैं, जो सावधान चित्तवाले ध्यानपरायण महात्माओं के हृदय-मन्दिर में सुख-पूर्वक विराजमान होते हैं और चन्द्रमा की कला, सर्पों के कंकण तथा व्यक्त चिन्हवाले कपाल को धारण करते हैं, सम्पूर्ण लोकों के आदिदेव उन भगवान् महाकाल की जय हो।"

स्रष्टारोऽपि प्रजानां प्रबलभवभयाद्यं नमस्यन्ति देवा
यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनां च।
लोकानामादिदेवः स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा
विभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तलिङ्गं कपालम्।।

(संक्षिप्त स्क. पु. आवान्त्यखण्ड आवंत्यक्षेत्रमाहात्म्य अध्याय 1 पृ. 699)

ब्रह्माजी से पाशुपतव्रत की दीक्षा प्राप्तकर देवगणों ने भगवान् शिव की आराधनाकर उन्हें प्रसन्न किया। भगवान् शिव के प्रकट होनेपर उन्होंने उनकी स्तुति में उन्हें धर्मरूप वृषभ को वाहनरूप में प्रयोग करनेवाले, ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मा जिनके शरीर हैं, सब प्रकार के रोगों का अपहरण करनेवाले, पंचमुख, देव, दैत्य तथा यतियों के अधिपति, विश्वरूप, शान्त, ज्ञानस्वरूप, विश्वसंहारकारी, कुरूप-सुरूप तथा सैकड़ों रूप धारण करनेवाले तथा वर देनेवाले आदि कहा है।(संक्षिप्त स्क. पु. आवन्त्यखण्ड-अवन्तीक्षेत्रमाहात्म्य-पृ. 702)

मार्कण्डेयजी युधिष्ठिर से कहते हैं कि स्वायम्भुव मनवन्तर के आदि कल्प के सतयुग में नर्मदा के तटपर रहनेवाले देवताओं को कंकोल, कालिकेय और कालक नामवाले दानवों ने परास्त करके वहाँ से मार भगाया। वे देवता ब्रह्माजी के साथ महादेवजी की शरण में गये। तब सात पातालों को भेद कर

"ॐ भूर्भुवः स्वः" का उच्चारण करते हुए पर्वत से एक लिंग प्रकट हुआ। उस ॐकाररूपी लिंग ने ब्रह्माजी को मन्त्रोंपदेश किया। ब्रह्माजी ने उपदेश सुनकर उनकी स्तुति 101 नामों द्वारा की। उस स्तुति में भगवान् शिव को आकाश के तुल्य सर्वव्यापक, आकाश का भी संहार करनेवाले, जिनका न कहीं अन्त है, न कोई स्वामी है, अमृत एवं ध्रुवस्वरूप, भगवान्, कल्याण की उत्पत्ति के स्थान, सनातन, योगासन पर विराजमान, ॐकारस्वरूप, सबकी उत्पत्ति के कारण तथा सर्वेश्वर आदि कहा गया है।(संक्षिप्त स्क. पु. आव. रे. अध्याय 47 पृ. 784-785)

दीप्तिकेश्वर लिंग की देवताओं के स्वामी विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्यान्य देवताओं ने विभिन्न नामों से स्तुति की है। सैकड़ों नामोंवाली इस स्तुति में भगवान शिव को सदा रहनेवाला, पापहारी, सर्वसमर्थ, संसार के कारण, वैराग्य एवं मोक्ष के कारण, भगवान्, तपस्वी, समस्त प्राणियों को उत्पन्न एवं नष्ट करनेवाले, मतवाले वेश में अपनें स्वरूप को छिपाये रखनेवाले, सम्पूर्ण लोकों की प्रजा के पालक और स्वामी, ब्रह्मा एवं विष्णुस्वरूप, परमात्मा, पापरहित, सबकी उत्पत्ति के आदि कारण, सर्वज्ञ, अपने से भिन्न अन्य किसी ईश्वर से रहित, अजन्मा, सर्वव्यापक, परशुरामरूप, महानादस्वरूप, दुर्धर्ष प्रेतों में विचरनेवाले, अनेक रूपों में प्रकट, कर्म एवं काल के ज्ञाता, यज्ञस्वरूप, काल को भी दण्ड देनेवाले, अविनाशी शरीरवाले, संसार-बंधन से मुक्त करानेवाले, भस्म लगानेवाले, सबके ज्ञानदाता, अव्यक्त, यज्ञस्वरूप, अर्थ और अनर्थ की प्राप्ति में कारण, भक्तों के क्लेशों का अपहरण करनेवाले, ईश्वर, ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ, चतुर्मुख, चतुर्लिंग, परात्पर तथा बह्मा आदि देवताओं और महर्षियों को भी जिनका ज्ञान नहीं होता-ऐसा कहा गया है। पूर्वकाल में इन्द्र सहस्र नामों द्वारा दीप्तिकेश्वर आदि पाँचों लिंगों का स्तवन कर देवराज के पदपर प्रतिष्ठित हुए थे।(संक्षिप्त स्क. पु. आव. रेखावखण्ड पृ. 798-799)

त्रिशंकु को सशरीर स्वर्गलोक में भेजने की प्रतिज्ञा पूरी करने हेतु विश्वामित्र ने भगवान् शंकर का दर्शनकर स्तुति की तथा उनसे सृष्टिरचना की शक्ति का वरदान पाया तथा नूतन सृष्टि करके त्रिशंकु को सशरीर स्वर्गलोक भेजने में सफलता प्राप्त की। भगवान् शंकर की अपनी स्तुति में विश्वामित्र उन्हें अचिन्त्य, कृष्ण, जगन्नाथ, जगद्गुरु, अनन्त, अच्युत, अमर, अजेय, अव्यय, सुरेश्वर, सर्वव्यापक, सेंश्वर, सर्वपापनाशन, धाता, विधाता, देवेश, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, वषट्कार, यज्ञ और सर्वव्यापी कहते हैं।(संक्षिप्त स्क. पु. नागरखण्ड पृ. 828)

महादेवजी प्रभासक्षेत्र की महिमा के सन्दर्भ में पार्वती से कहते हैं कि- "मैं प्रभासक्षेत्र में रुद्राक्ष की माला धारण किये शान्त भाव से स्थित हूँ। मेरा आदि, मध्य और अन्त कहीं नहीं है। मैं कमल के आसन पर बैठा हुआ सबको वर देने के लिये उद्यत हूँ। हिम, कुन्द और चन्द्रमा के सदृश मेरा गौर वर्ण है। मेरे वाम भाग में विष्णु तथा दक्षिण भाग में ब्रह्माजी स्थित हैं। नेत्रों में अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य का निवास है। महादेवि! ऐसे स्वरूप से मैं प्रभास क्षेत्र में रहता हूँ।"

यह सुनकर पार्वती ने भगवान् शिव का स्तवन किया जिसमें उन्होंने शिवजी को ईश्वर, समस्त देवताओं के स्वामी, परमेश्वर, अनादि, संपूर्ण सृष्टि के विधाता, सर्वव्यापक, सब में स्थित, सृष्टिदाता तथा मोक्षदाता कहा है।(संक्षिप्त स्क. पु. प्रभासखण्ड पृ. 958)

प्रभासक्षेत्र में ब्रह्माजी से लिंग स्थापित कराकर चन्द्रमा ने भगवान् शिव की हजार वर्षोंतक आराधना की। विधिपूर्वक पूजा करने के बाद चन्द्रमा भगवान् शिव की स्तुति किया करते थे। स्तुति में वे भगवान् शिव को अनन्य देवता, शरणागतवत्सल, सांख्य के प्रधान एवं पुरुष, योगी जिनका परम प्रधान एवं परम पुरुष रूप से चिन्तन करते हैं, ज्ञेयस्वरूप, देवता, असुरों एवं मनुष्यों की सृष्टि तथा संहार का कारण, सर्वात्मा, अविनाशी, अनादि, अनन्त, नित्य, सनातन, ध्रुव, कलातीत एवं परब्रह्मस्वरूप, पवित्रतम, तीर्थात्मा, जिनसे सबकी उत्पत्ति होती है, जिनमें सबका लय होता है, जो सम्पूर्ण जगत् का पालन करता, अग्निष्टोम आदि यज्ञों द्वारा जिनका भजन होता हैं, तथा यज्ञात्मा कहा करते थे।(संक्षिप्त स्कन्दपु. प्रभासखण्ड पृ. 964-965)

राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने एक समय प्रभासक्षेत्र में आकर सहस्रों वर्षोंतक कठोर तपस्या की। वे शिवलिंग की स्थापना कर प्रतिदिन उसकी पूजा एवं स्तुति करते थे। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को सच्चिदानन्दस्वरूप, समस्त कारणों के भी कारण, संसार-सागर पार होने का सेतु, संपूर्ण योगशक्तियों से युक्त, संपूर्ण जगत् जिसके अधीन हो, अपनी आठ मूर्तियों द्वारा समस्त लोकों का पालन करनेवाले, शरणदाता तथा परमेश्वर आदि कहा है।(संक्षिप्त स्क. पु. प्रभासख. पृ. 1000)

न्यङ्कुमती के तटपर स्थित सोमनाथ महादेव की पूजा करके कुबेरजी ने शिवजी का स्तवन किया था। वे अपने स्तवन में शिवजी को अजन्मा, पुराण, विष्णु के भी वन्दनीय, चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्निसमान नेत्रवाले, सबके एकमात्र ईश्वर, विश्व के निवासस्थान, अनन्त शक्तिसम्पन्न, सहस्रों मूर्ति धारण करनेवाले, अक्षर, निर्गुण, अप्रमेय, ज्योतिर्मय, एक, जानने योग्य, अनिन्द्य, अन्तर्यामीरूप से सर्वत्र विराजमान, मनोवांछित फलों के दाता, आसक्तिरहित, धर्मासनपर स्थित, परा तथा अपरा प्रकृतियों में विराजमान, इन्द्रियातीत, तीनों गुणों से परे, विश्वपालक, वेदमय, संसारबंधन को काटनेवाले, नित्य मुक्तस्वरूप, परमपुरुष परमात्मा, देवों द्वारा अगम्य तथा अचिन्त्य महिमावाले आदि कहते हैं।(संक्षिप्त स्क. पु. प्रभासखण्ड पृ. 1030)

अविमुक्तक्षेत्र की उत्पत्ति के प्रसंग में भगवान् शिव पार्वती से कह रहे है कि "महाप्रलयकाल में समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे। सर्वत्र अंधकार छा रहा था। .... केवल वह सत्स्वरूप ब्रह्म ही शेष था, जिसका श्रुति **'एकमेवाद्वितीयम्'** कहकर वर्णन करती है। वह मन और वाणी का विषय नहीं है। उसका न कोई नाम है, न रूप। वह सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दस्वरूप एवं प्रकाशमय है। वहाँ किसी भी प्रमाण की पहुँच नहीं है। वह आधाररहित, निर्विकार एवं निराकार है। निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, एकमात्र कारण, निर्विकल्प, कर्मों के आरंभों से रहित, माया से परे और

उपद्रवशून्य है। जिस परमात्मा के लिये इस प्रकार विशेषण दिये जाते हैं, वह कल्पान्त में अकेला ही था। कल्प के आदि में उसके मन में यह संकल्प हुआ कि 'मैं एक से दो हो जाऊँ।' अतः यद्यपि वह निराकार है तो भी उसने अपनी लीलाशक्ति से साकाररूप धारण किया। परमेश्वर के संकल्प से प्रकट हुई वह द्वितीय मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणों से युक्त, सर्वज्ञानमयी, शुभ, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, सबकी साक्षी, सबको उत्पन्न करनेवाली और सबके लिये एकमात्र वन्दनीय थी। प्रिये! उस निराकार परब्रह्म की वह मूर्ति मैं ही हूँ। प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् मुझे ईश्वर कहते हैं। तदनन्तर साकाररूप में प्रकट होकर भी मैं अकेला ही स्वेच्छानुसार विहार करता रहा। फिर अपने शरीर से कभी अलग न होनेवाली तुम प्रकृति को मैंने अपने ही विग्रह से प्रकट किया। तुम्हीं प्रधान, प्रकृति और गुणवती माया हो। तुम्हें बुद्धितत्त्व की जननी तथा निर्विकार बताया जाता है। फिर एक ही समय मुझ कालस्वरूप आदिपुरुष ने तुम शक्ति के साथ उस काशीक्षेत्र को भी प्रकट किया" (स्क. पु. काशीखण्ड-पूर्वार्द्ध अध्याय 26/8-24)।*

चक्रतीर्थ (धर्मपुष्करिणी) के तटपर धर्मराज की तपस्या से भगवान् शंकर प्रकट हुए थे। भगवान् शंकर के प्रकट होनेपर उनकी स्तुति में धर्मराज ने उन्हें जगत् का स्वामी, ॐकारस्वरूप, ईश्वर, समस्त देवता जिनके स्वरूप हैं, आदि, मध्य एवं अन्तरहित, विश्वरूप, संपूर्ण जगत् के आधार, अनन्त, अजन्मा, अविनाशी, समस्त लोकों के स्वामी, पशुओं (जीवों) का पालन करनेवाले पशुपति, पापों का नाश करनेवाले, समस्त क्षेत्रों (शरीरों) के स्वामी, भगवान् तथा पंचानन आदि कहा है। (स्क. पु. ब्रह्मख. सेतूमाहात्म्य 3/55-60)*

भृगुतीर्थ में भगवान् शिव के दर्शनपाकर भृगुजी ने उनकी स्तुति 'करुणा हृदय' नामक स्तोत्र से की। इस स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव को सभी जीवों में आत्मारूप से विराजमान, समस्त भूतों के ईश्वर, कल्याण एवं ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सबके पाप हरण करनेवाले, तेजस्वरूप, पशुपति, अखिल विश्व के स्वामी, निर्दोष, नित्य, विज्ञानानन्दस्वरूप, तथा सदा सबका कल्याण करनेवाला कहा है। (संक्षिप्त स्क. पु. आवन्त्यखण्ड रेवाखण्ड पृ. 756-757)

सूत संहिता के अनुसार पूर्वकाल में विष्णु आदि सभी देवता जगत् के कारण-तत्त्व का विचार करते हुए संशय में पड़ गये। तब वे रुद्रलोक में गये। वहाँपर महादेवजी से उन लोगों ने पूछा- 'आप कौन हैं?' तब उन्होंने कहा- 'मैं काल, माया और कर्मपाशों में आबद्ध जीवों का (पशुओं का) पति पशुपति हूँ, सर्वज्ञ ईश्वर हूँ। समस्त प्रलयपर्यन्त रहनेवाले तत्त्वों का सारभूत सनातन तत्त्व मैं हूँ। ब्रह्मा से भी पूर्व मैं ही केवल एक ईश्वर रहा हूँ और आगे भी रहूँगा। मेरी मायाशक्ति से ही समस्त जड़-चेतन जगत् कल्पित हुआ भासता है, वह शक्ति भी मुझसे पृथक सत्ता नहीं रखती।' ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप-तीन देवों से अतिरिक्त आत्मस्वरूप, सदाशिव, परतत्त्व, निष्कल, सकल आदि रूप में वही एक परमेश्वर ही व्याप्त है। देवताओं के प्रश्न करनेपर आगे शिवजी ने बताया कि मुझको वेद-वाक्यों

से, आचार्य – गुरुओं से, ज्ञानदृष्टि से जो जीव भलीभाँति जान लेता है, वह द्वैत प्रपंच से सदा के लिये मुक्त हो जाता है –

मामेवं वेदवाक्येभ्यो जानात्याचार्यपूर्वकम्।
यः पशुः स विमुच्येत ज्ञानाद्वेदान्तवाक्यजात्।। (सूत संहिता 1/2/10)

सगुण – साकाररूप में शिव की अभिव्यक्ति यतियों, मन्त्रजापकों, तथा ज्ञानियों और योगियों के लिये ध्यान – पूजा के निमित्त ही होती है।

यतीनां मन्त्रिणां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा।
ध्यानपूजानिमित्तं हि तनुं गृह्णाति मायया।। (कल्याण, शिवोपासनांक पृ. 298)

ब्रह्मोत्तरखण्ड के प्रारंभ में ज्योतिमात्र जिनका स्वरूप है, निर्मल ज्ञान ही जिनका नेत्र है, जो लिंगस्वरूप ब्रह्म हैं – ऐसा कहकर उन परमशान्त कल्याणमय भगवान् शिव को नमस्कार किया गया है।

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञान चक्षुषे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये।। (स्क.पु. ब्राह्मखण्ड – ब्रह्मोत्तर खण्ड 1/1)*

उपरोक्त सभी उद्धरणों में भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण, पर एवं अपर, दोनों रूपों की चर्चा की गयी है। देव, असुर, मानव, ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी लोगों ने भगवान् शिव की स्तुति की है तथा उनके परात्पर तथा सगुण – साकार दोनों पहलुओं को समझकर उनकी महत्ता एवं गरिमा को इन स्तुतियों में व्यक्त किया है। इन उद्धरणों में भगवान् शिव को ही सर्वोच्च देव या ईश्वर कहा गया है।

भगवान् शिव की उपासना

ऊपर के अनेक उद्धरणों में भगवान् शिव के भोग एवं मोक्षदाता तथा पापहर्त्ता होने की बात कही गयी है। उन्हें परम दयालु, कल्याणकारी, वरदाता तथा एकमात्र जानने योग्य तत्त्व कहा गया है। इन सब विशेषताओं के होने के कारण भगवान् शिव ही एकमात्र उपासना के योग्य तत्त्व हैं। इनकी उपासना से व्यक्ति अपने सभी मनोवांछित फल प्राप्त कर सकता है। अनेकों (सुर, असुर, नाग, यक्ष और गंधर्व आदि) ने भगवान् शिव की उपासना से अभीष्ट वर प्राप्त किया है। जिनके वर से ब्रह्माजी सृष्टिकार्य, विष्णुजी जगत् के पालन का कार्य करते हैं (मा. केदार. 1/1 आदि)*, इन्द्र देवराज के पदपर सुशोभित होते हैं (आव. रेवाखण्ड पृ. 757 तथा 799) तथा यमराज धर्मराज होकर चराचर के धर्माधर्म का निर्णय करते हैं (काशी. उत्त. अध्याय 78)।* जिनकी कृपा से सूर्यदेव भगवान् शिव के नेत्र बनकर लोगों के उपास्य बने (काशी. पू. अ. 49)*, विश्वामित्र को सृष्टिरचना की शक्ति प्राप्त हुई (नागरखण्ड पृ. 827 – 828), शुक्राचार्य को मृतसंजीवनी विद्या तथा शुक्रलोक प्राप्त हुआ (काशी. पू. अ. 16)*, ध्रुव को ध्रुव स्थान, जिसे भगवान् विष्णु का परमपद भी कहते हैं, प्राप्त हुआ (प्रभासखण्ड पृ. 1000), विश्वानर मुनि को (नन्दीरूपधारी) शिव पुत्ररूप में मिले (काशी. पू. अ. 10 – 11)*, हरिकेश यक्ष को दण्डपाणिपद की प्राप्ति (का. पू. अध्याय 32)* तथा धर्मराज को भगवान् शिव के वाहन बनने

का सौभाग्य मिला (ब्रह्मखण्ड – सेतुमाहात्म्य पृ. 411) शिव की कृपा से ही अश्वत्थामा की सोते हुए पाण्डुपुत्रों एवं अन्य लोगों की हत्या के पाप से मुक्ति (ब्राह्मखण्ड – सेतुमाहात्म्य पृ. 427 – 430), रावण के वध से लगे पाप से राम को मुक्ति (ब्रह्मखण्ड – सेतुमाहात्म्य पृ. 441), गरुड़जी का भगवान् विष्णु का वाहन बनकर भूमंडल में पूजनीय हो जाना (काशीखण्ड पूर्वार्द्ध अ. 50)*, जैगीषव्य का मोक्ष के साधनभूत योगशास्त्र को प्राप्तकर प्रसिद्ध योगाचार्य बनना (काशीख. उत्तरार्द्ध अध्याय 63)*, विश्वकर्मा को शिल्पनिर्माण तथा अन्य कलाओं की प्राप्ति (काशीखंड उत्तरार्द्ध अ. 86)*, बाल्मीकि को कवित्व शक्ति की प्राप्ति (आवन्त्यखण्ड – अवन्तिक्षेत्रमाहात्म्य पृ. 709), अंधकासुर को गणपति का पद प्राप्त होना (आवन्त्यखण्ड – अवन्तिक्षेत्रमाहात्म्य पृ. 722), जमदग्नि को कामधेनु की प्राप्ति (आवन्त्यखण्ड – रेवाखण्ड पृ. 764), बाणासुर एवं मातंग ऋषि का भगवान् शिव का सामीप्यमुक्ति प्राप्त करना (आवन्त्यखण्ड – रेवाखण्ड पृ. 775 तथा 791), नारदजी को योग की सिद्धि, स्वर्ग, पाताल तथा मर्त्यलोक में अबाध भ्रमण की शक्ति, सात स्वर, तीन ग्राम और 21 मूर्छनाओं के साथ दिव्य नृत्य एवं संगीत कला का ज्ञान प्राप्त करना (आवन्त्यख. – रेवाखण्ड पृ 811), मार्कण्डेयजी को ज्ञान की प्राप्ति (आव. रेवाखण्ड पृ. 814), वत्स मुनि को चिरयौवन तथा लोकान्तरों का ज्ञान एवं आकाशगमन की शक्ति की प्राप्ति (नागरख. अध्याय 29 पृ. 845) तथा लोमश ऋषि का कल्पों की आयु पाना (माहेश्वर. कुमारिका. अध्याय 12)* संभव हुआ।

शुकदेवजी के विरक्त हो जानेपर उनकी माता चेटिका ने शिवजी के वर से मनोवांछित पुत्र पाया (नागरखण्ड पृ. 900), शिवजी के वर से चन्द्रमा ने अपनी यक्ष्मा की बिमारी से मुक्ति प्राप्त कर अपनी प्रभा को पुनः वापस पाया (प्रभासखण्ड अ. 22 पृ. 965), परशुराम ने मनोवांछित फल पाकर क्षत्रियों का विनाश किया (प्रभासखण्ड पृ. 998), रावण तीनों लोकों का स्वामी बना (प्रभासखण्ड पृ. 998), अगस्त्यजी ने परमसिद्धि प्राप्त की (प्रभासखण्ड पृ. 983), कुबेर ने दिक्पाल का पद प्राप्त किया (प्रभासखण्ड पृ. 1030 – 1031) तथा बृहस्पति को देवों के गुरु का पद प्राप्त हुआ। (काशीख. पू. अध्याय 17)।*

शिवाराधना से लाभान्वित होनेवालो की सूची का कोई अन्त नहीं है, ऊपर की सूची नगण्य- मात्र है। भगवान् शिव की आराधना के अनेकों तरीके हैं जैसे – तप, जप, ध्यान, लिंगपूजा, कवच, स्तोत्र तथा वन्दना आदि द्वारा भक्ति करना, तीर्थसेवन और प्रदोषादि व्रत करना। नीचे हम आराधना के इन पहलुओं पर स्कंदपुराणानुसार विचार करेंगे। परन्तु इनपर विचार करने से पहले शिवजी की उपासना के माहात्म्य पर थोड़ा प्रकाश डाला जायगा।

सूत संहिता के मुक्तिखण्ड में तपस्या करते हुए भगवान् विष्णु से शिवजी उनके तपस्या करने का कारण पूछते हैं। जवाब में विष्णुजी तीन प्रश्न पूछते हैं – (1) मुक्ति क्या है (2) मुक्ति का उपाय क्या है तथा (3) मोचक कौन है? तब भगवान् शिव ने सालोक्यादि चार मुक्तियों को समझाकर

पाँचवी कैवल्यमुक्ति को सर्वोपरि बतलाया। उसे केवल ब्रह्मस्वरूपा, सर्वदा सुखलक्षणा, हेयोपादेयशून्य, सभी भेदमूलक संबंधों से हीन, साक्षात् आत्मस्वरूप और स्वयंप्रकाशरूप बतलाया। शेष मुक्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश के सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्यादि- भेद से होनेवाली प्रवर मुक्ति हैं।

शिवजी ने मुक्ति का उपाय इस तरह बताया है-

आत्मनः परमा मुक्तिर्ज्ञानादेव न कर्मणा।
ज्ञानं वेदान्तवाक्यानां महातात्पर्यनिर्णयात्।। (सूत सं. 3/3/2)

अर्थात्- आत्मा की परममुक्ति (कैवल्यमुक्ति) ज्ञान से ही होती है, कर्म से नहीं। वेदान्तवाक्यों के महान् तात्पर्य- निर्णय को ज्ञान कहते हैं। (यद्यपि कर्म से भक्ति और भक्ति से ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसलिये यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि कैवल्य की प्राप्ति में कर्म या भक्ति की कोई भूमिका नहीं है।) यों तो सूत संहिता में बाहरी पूजा की अपेक्षा मानसिक पूजा को तथा यज्ञों में ज्ञानयज्ञ को श्रेष्ठ माना गया है। परन्तु सामान्य लोगों के लिये बाह्य पूजा तथा अन्य प्रकार के यज्ञ भी उपादेय हो सकते हैं क्योंकि उनके द्वारा कैवल्य के अलावा अन्य प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। तथा कालान्तर में ज्ञान की प्राप्ति भी हो सकती है।

मायापाश से मुक्त करानेवाले के विषय में देवी सरस्वती को भगवान् शंकर ने, सूत संहिता में, बतलाया है कि ब्रह्मादि से लेकर कीट- पर्यन्त आदि सभी जीवों को पशु कहा गया है। विद्वानों ने उनका पति, पशुपति, मुझे बताया है। मैं मायापाश से इन पशुओं को बाँधता हूँ और बन्धन छुड़ानेवाला मोचक भी हूँ। सभी का मै आत्मा हूँ, अतः मैं ही संसारमोचक हूँ। संसार के मोचक मुक्ति- प्रदाता वह गुरुमूर्ति मैं ही हूँ। वास्तव में सब कुछ शिव ही हैं और उन्हीं के प्रसाद से भुक्ति अथवा मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

शिवप्रसादेन हि भुक्तिरुत्तमा शिवप्रसादेन हि मुक्तिरुत्तमा।
शिवप्रसादेन विना न भुक्तयःशिवप्रसादेन विना न मुक्तयः।।
(सूत संहिता यज्ञवैभवखण्ड पूर्वभाग 14/59)

सूत संहिता में अन्यत्र, सत्यसन्ध के प्रति स्वयं भगवान् विष्णु ने कहा है-

नाहं संसारमग्नानां साक्षात् संसारमोचकः।
ब्रह्मादिदेवताश्चान्या नैव संसारमोचकाः।।
शिव एव हि जन्तूनां महासंसारवर्तिनाम्।
संसारमोचकः साक्षात्सर्वज्ञः साम्ब ईश्वरः।।
अहं ब्रह्मादिदेवाश्च प्रसादात्तस्य शूलिनः।
प्रणाड्यैव हि संसारमोचका नात्र संशयः।।
नामतश्चार्थतश्चापि महादेवो महेश्वरः।

तदन्ये केवलं देवा महादेवा न तेऽनघ।।
महादेवं विना यो मां भजते श्रद्धया सह।
नास्ति तस्य विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः।।

(सूत संहिता यज्ञवैभवखण्ड पू. भा. 25/39-40, 44, 51, 52)

भावार्थ है- " संसारमग्न जनों को मैं संसार से साक्षात् मुक्ति नहीं दे सकता। इसी प्रकार अन्य ब्रह्मादि देव भी साक्षात् संसारमोचक नहीं हैं। मैं और ब्रह्मादि अन्य देव त्रिशूलधारी के प्रसाद से प्रणाडी (शिवज्ञा-सम्पादन) के द्वारा संसारमोचक हो सकते हैं, इसमें संशय नहीं है। हे अनघ-निष्पाप! नाम से और अर्थ से महेश्वर ही महादेव हैं, और सब देव कहाते हैं महादेव नहीं। जो पुरुष महादेव को छोड़कर मेरा भजन श्रद्धा से करता है उसका कोटि जन्म होनेपर भी संसार से कदापि मोक्ष नहीं होगा, क्योंकि कैवल्यमुक्ति देनेवाले केवल महादेव ही हैं।"[1]

उपरोक्त उपदेश का अनुसरण कर सत्यसन्ध ने सबको छोड़कर शिव की शरण ली और मुक्त हो गया।

परित्यज्याखिलान्देवानाश्रितोऽभवदीश्वरम्।।
ईश्वरस्य प्रसादेन सत्यसन्धो महाद्विजः।
ज्ञानं वेदान्तजं लब्ध्वा विमुक्तो भवबन्धनात्।।

(सूत संहिता यज्ञवैभवखण्ड पू. भा. 25/55-56)

शौनकजी कहते हैं कि जो लोग भक्तिपूर्वक महादेवजी की आराधना करते हैं वे ही भक्त हैं, वे ही महात्मा हैं तथा वे ही कर्मयोगी और ज्ञानी हैं।[2]

भगवान् शिव की भक्ति के माहात्म्य की चर्चा करते हुए सूतजी कहते हैं कि बुद्धिमान् लोग सदा शिव की पूजा करें। अशक्त लोगों को विनम्रभाव से शिवपूजा को देखना चाहिये। अश्रद्धापूर्वक की गयी शिवपूजा भी मुक्ति प्रदान करती है। शिवपूजा का दर्शक भी मरणोपरान्त परमपद को प्राप्त कर लेता है।

---

[1] कुछ लोग इन श्लोकों को साम्प्रदायिक मान सकते हैं। परन्तु अगर हम यहाँपर मुक्ति का अर्थ सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य आदि, जिसे विष्णु आदि अन्य देव भी प्रदान कर सकते हैं, न लेकर कैवल्यमुक्ति लें, तो वह एकमात्र निर्गुण ब्रह्म शिव ही दे सकते हैं। क्योंकि कैवल्यावस्था निर्गुण अवस्था है और उसे निर्गुण तत्त्व ही प्रदान कर सकता है। अतः यहाँपर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता का अर्थ प्राकृतिक गुणों से युक्त देवता लें तो वे कैवल्य मुक्ति नहीं प्रदान कर सकते। हाँ यह बात अवश्य सत्य है कि सभी देवता तत्त्वतः निर्गुण हैं और उनमें एकत्व है। अतः सगुणरूपधारी देवों की उपासना से कैवल्य की प्राप्ति नहीं होगी। इसके लिये निर्गुण ब्रह्म शिव की, जिसका बाह्य एवं स्थूल प्रतीक लिंग एवं सूक्ष्म तथा आन्तरिक अथवा आत्मिक प्रतीक ॐकार है, उपासना करनी होगी।

[2] संक्षिप्त स्कन्द पुराण. पृ. 68

शिवपूजां सदा कुर्याद्बुद्धिमानिह मानवः।
अशक्तश्चेत्कृतां पूजां पश्येदभक्तिविनम्रधीः।।
अश्रद्धयापि यः कुर्याच्छिवपूजां विमुक्तिदाम्।
पश्येद्वा सोपि कालेन प्रयाति परमं पदम्।।

(श्रीस्क. महापु. ब्राह्मखण्ड ब्रह्मोत्तरखण्ड 4/3-4)*

सूतजी कहते हैं कि भगवान् शिव गुरु हैं, देवता हैं, शिव ही प्राणियों के बन्धु हैं, आत्मा और जीव हैं। शिव से भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं है।

शिवो गुरुः शिवो देवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम्।
शिव आत्मा शिवो जीवः शिवदन्यत्र किञ्चन।।

(स्क. पु. ब्राह्मखण्ड ब्रह्मोत्तरखण्डे 5/1)*

वहीं पर आगे कहा गया है कि सभी आगमों द्वारा यह निश्चित किया गया है कि सभी धर्मों को छोड़कर एकमात्र शिव के भजन से व्यक्ति सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

विहाय सकलान्धर्मान्सकलागम निश्चितान्।
शिवमेकं भजेद्यस्तुमुच्यते सर्वबन्धनात्।।

(स्क. पु. ब्राह्मखण्ड ब्रह्मोत्तरखण्ड 5/4)*

अत: वही जिह्वा सफल है, जो भगवान् शिव की स्तुति करती है। वही मन सार्थक है, जो शिव के ध्यान में संलग्न होता है। वे ही कान सफल हैं, जो उनकी कथा सुनने के लिये उत्सुक रहते हैं और वे ही दोनों हाथ सार्थक हैं, जो शिवजी की पूजा करते हैं। वे नेत्र धन्य हैं, जो महादेवजी की पूजा का दर्शन करते हैं। वह मस्तक धन्य है, जो शिव के सामने झुक जाता है। वे पैर धन्य हैं, जो भक्तिपूर्वक शिव के क्षेत्रों में सदा भ्रमण करते हैं। जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान् शिव के कार्यों में लगी रहती हैं, वह संसारसागर के पार हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शिव की भक्ति से युक्त मनुष्य चाण्डाल, पुल्कस, नारी, पुरुष अथवा नपुंसक कोई भी क्यों न हो तत्काल संसारबंधन से मुक्त हो जाता है।

सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम्।
तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ।।
ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे।
तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा।।
यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवकर्मसु।
स निस्तरति संसारं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।।

शिवभक्तियुतो मर्त्यश्चाण्डालः पुल्कसोऽपि च।
नारी नरो वा षण्ढो वा सद्यो मुच्येत संसृतेः।। (स्क. पु. ब्राह्म. ब्रह्मोत्तर 5/7-10)*

वहीं पर आगे कहा गया है कि जिन लोगों में थोड़ी सी भी भगवान् शिव की भक्ति है वे अन्य सभी देहधारियों से पूज्य हैं।

भक्तिलेशयुतः शम्भोः स वंद्यः सर्वदेहिनाम्।। (स्क. पु. ब्राह्म. ब्रह्मोत्तर 5/11)*

एक स्थान पर बृहस्पतिजी कहते हैं कि "शिव के चरणारविन्दों में नमस्कार करने के सिवा दूसरी किसी विचारधारा को मैं जीवों के लिये कल्याणकारी नहीं मानता ....। इस सम्पूर्ण विशाल जगत् में भगवान् शिव को सन्तुष्ट करना ही सब पापों का नाशक तथा परम गुणकारी है।"[1]

लोमशजी कहते हैं-सब पापों का नाश हो जानेपर भगवान् शिव में भावना होती है-उनके चिन्तन में मन लगता है। जिनकी बुद्धि पाप से दूषित है उनके लिये शिव की चर्चा भी दुर्लभ है, ...। भगवान् शिव का पूजन दुर्लभ है, ... शिवभक्ति अत्यन्त दुर्लभ है ....। भगवान् शिव की भक्ति करनेवाले महात्मा पुरूषों को त्रिलोकी में कुछ भी दुर्लभ, दुष्प्राय अथवा असाध्य नहीं है। .... भगवान् शंकर की आराधना ही संसार के मनुष्यों का प्रधान कर्त्तव्य है। जो भगवान् शिव को मस्तक झुकाता है वह उन्हें अवश्य प्राप्त करता है।

सर्वपापक्षये जाते शिवे भवति भावना।।
पापोपहतबुद्धिनां शिवे वार्तापि दुर्लभा।
.... दुर्लभं शिवपूजनम्।।
.... शिवे भक्तिः सुदुर्लभा।
.... न दुर्लभं न दुष्प्रापं न चासाध्यं महात्मनाम्।
शिवभक्तिकृतां पुंसां त्रिलोक्यामिति निश्चितम्।।
.... नृणां प्रधानं कर्तव्यमत्र शिवपूजनमेव भूप।
यस्यांतरायपदवीमुपयांति लोकाःसद्यो नरः शिवनतः शिवमेति सत्यम्।।
(स्क. पु. माहे. कु. 12/53-55, 59, 63)*

महीसागरतीर्थ की महिमा के प्रसंग में कहा गया है कि "भगवान् शिव से बढ़कर कोई देवता नहीं है। .... जो भगवान् शंकर को छोड़कर अन्य किसी भी वस्तु की उपासना करता है वह हाथ में रक्खे हुए अमृत को त्यागकर मृगतृष्णा की ओर दौड़ रहा है।"[2] भगवान् शिव को जानना ही आत्मज्ञान या कैवल्यप्राप्ति कहा जाता है। भगवान् शंकर ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के आधार हैं, अतः सब कुछ शिवस्वरूप है- यह बात विशेष रूप से जाननी चाहिये। वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद्,

---

[1] संक्षिप्त स्कंदपुराण. पृ. 569

[2] संक्षिप्त स्कंदपुराण. गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 100

आगम और देवता – सबके द्वारा भगवान् सदाशिव ही जानने योग्य हैं। मनुष्य निष्काम हो या सकाम, सबको सदाशिव की आराधना करनी चाहिये।(स्कं. पु. माहे. केदार. अध्याय 5/108 – 110)*

शंभुनाधिष्ठितं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।।
तस्मात्सर्वं शिवमयं ज्ञातव्यं सुविशेषतः।
वेदैः पुराणैः शास्त्रैश्च तथौपनिषदैरपि।।
आगमैर्विविधैः शंभुर्ज्ञातव्यो नात्र संशयः।
निष्कामैश्च सकामैश्च पूजनीयः सदा शिवः।।

(स्कं. पु. माहे. केदा. 5/108 – 110)*

महादेवजी थोड़ा सा बिल्वपत्र पाकर भी सदा सन्तुष्ट रहते हैं। फूल और जल अर्पण करने से भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव सदा सबके लिये कल्याणरूप हैं। ये पत्र, पुष्प और जल से ही संतुष्ट हो जाते हैं। इसीलिये सबको इनकी पूजा करनी चाहिये। शिवजी इस जगत् में मनुष्यों को सौभाग्य प्रदान करनेवाले हैं।

किञ्चिद्दलेन सन्तुष्टः पुष्पेणापि तथैव च।
तोयेनापि च सन्तुष्टो महादेवो निरन्तरम्।।
पत्रेण पुष्पेण तथा जलेन, प्रीतो भवत्येष सदाशिवो हि।
तस्माच्च सर्वैः परिपूजनीयः, शिवो महाभाग्यकरो नृणामिह।।

(स्कं. पु. माहे. केदा. 27/23 – 24)*

मार्कण्डेयजी किसी प्रसंग में कहते हैं कि जैसे ओषधि स्वभाव से ही रोगों का निवारण करनेवाली है, उसी प्रकार भगवान् शिव भी स्वभाव से ही घोर संसार – बंधन का नाश करनेवाले माने गये हैं। जैसे वैद्य के बिना रोगी क्लेश उठाते हैं, उसी प्रकार भगवान् शिव के बिना सम्पूर्ण जगत् दुःख उठाता है। अतः अनादि, सर्वज्ञ, परिपूर्ण परमशिव ही सबके त्राता हैं। उनके सिवा दूसरा कोई पुरुष इस संसार – समुद्र से रक्षा करनेवाला नहीं है। जो अपने हृदय में भगवान् शिव का चिन्तन करते हुए शिवज्ञान का अभ्यास करते हैं, उन्हें अवश्य ज्ञान प्राप्त होता है(आवन्त्यखण्ड – रेवाखण्ड)।[1]

सूतजी मुनियों से कहते हैं कि मरणधर्मा मनुष्यों के लिये इतना ही सबसे उत्तम एवं सनातन श्रेय है कि भगवान् महेश्वर की कथा में अकारण भक्तिभाव का उदय हो(भगवान् की कथा सुनना या कहना भी नवधा – भक्ति का एक अंग है)।

एतावदेव मर्त्यनां परं श्रेयः सनातनम्।
यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी।। (स्कं. पु. ब्राह्म. ब्रह्मो. 1/5)*

दक्ष पर प्रसन्न होने के बाद भगवान् शिव उन्हें उपदेश देते हुए कहते हैं कि "चार प्रकार के पुण्यात्मा जन मेरा सदा भजन करते हैं – आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इन सबमें ज्ञानी पुरुष मुझे

---

[1] संक्षिप्त स्कंदपुराण. गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 792

विशेष प्रिय हैं। जो ज्ञान के बिना ही मुझे पाने का यत्न करते हैं, वे अज्ञानी हैं। तुम केवल यज्ञादि कर्म के द्वारा संसार-सागर से पार जाना चाहते हो; परन्तु कर्म में आसक्त हुए मूढ़ पुरुष वेद, यज्ञ, दान और तपस्या से भी मुझे कभी नहीं प्राप्त कर सकते। अतएव तुम अन्तःकरण को एकाग्र करके ज्ञाननिष्ठ होकर कर्म करो। सुख और दुःख में ज्ञानी की भाँति समान भाव रखकर सदा प्रसन्न रहो।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः सदा।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च सुरसत्तम।।
तस्मान्मे ज्ञानिनः सर्वे प्रियाः स्युर्नात्र संशयः।
विना ज्ञानेन मां प्राप्तुं यतन्ते ते हि बालिशाः।।
केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तर्तुमिच्छसि।
न वेदैश्च न यज्ञैश्च न दानैस्तपसा क्वचित्।।
न शक्नुवन्ति मां प्राप्तुं मूढाः कर्म्मवशा नराः।
तस्माज्ज्ञानपरो भूत्वा कुरु कर्म समाहितः।।
सुखदुःखसमो भूत्वा सुखी भव निरन्तर।। (स्कं. पु. माहे. केदा. 5/39-43)*

(1) भगवान् शिव की भक्ति एवं लिंगोपासना

भगवान् शिव को केवल अनन्य भक्ति से जाना जा सकता है। भक्ति के बारे में सनत्कुमारजी व्यासजी को बता रहे हैं कि यह तीन प्रकार की होती है-मानसिक, वाचिक और कायिक। लौकिकी, वैदिकी और आध्यात्मिकी-ये तीन भेद और भी हैं। ध्यान, धारणा एवं बुद्धि के द्वारा जो भगवान् रुद्र के स्वरूपों का स्मरण किया जाता है, वह रुद्र के प्रति भक्तिभाव को बढ़ानेवाली मानसी भक्ति कहलाती है। स्तुति और कीर्तन आदि वाचिकी भक्ति के अन्तर्गत हैं। इन्द्रियों को रोककर संयम में रखनेवाले पुरुषोंद्वारा जो व्रत, उपवास और नियम आदि का पालन किया जाता है-ज्ञान और ध्यान में स्थित धर्मात्मा पुरुषों की वह भक्ति कायिक कही गयी है।(स्कं. पु. आवन्त्यख. आ. मा. 7/5-7)*

गोघृत, दुग्ध तथा दधि, चन्दन, कुंकुम, कुशोदक, गन्ध, विविध माल्य, अनेक प्रकार के धातु, गुग्गल, धूप, कालागुरु, सुगन्धित पदार्थ, सुवर्ण एवं रत्नों के आभूषण, विचित्र माला, वस्त्र, स्तोत्र, पताका, व्यजन, नृत्य, वाद्य, गीत, सब प्रकार के उपहार, भक्ष्य, भोज्य, अनुपान तथा अक्षतों के द्वारा जो पूजा की जाती है, वह लौकिकी भक्ति मानी गयी है। वेदमन्त्रों के द्वारा हविष्य की आहुति आदि के योग से जो यजनक्रिया की जाती है, वह वैदिकी भक्ति कहलाती है। आध्यात्मिकी शिवभक्ति दो प्रकार की है - एक सांख्या भक्ति और दूसरी यौगिकी भक्ति। संख्या से प्रधान(प्रकृति) आदि तत्त्व चौबीस हैं।[1] वे सभी अचेतन तथा चेतन के उपयोग में आने योग्य भोग्य हैं। इनसे भिन्न पुरुष पच्चीसवाँ तत्त्व है, वह चेतन एवं भोक्ता है। भगवान् रुद्र छब्बीसवें तत्त्व हैं। वे कर्त्ता, सर्वज्ञ, चेतन

---

[1] प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, शब्दतन्मात्रा, रूप, रस, स्पर्श एवं गन्ध तन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन और पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश)-ये चौबीस तत्त्व हैं।

और सबके स्वामी हैं। रुद्र के यर्थाथस्वरूप तथा तत्त्वों की तात्त्विक संख्या के स्वरूप का चिन्तन ही आध्यात्मिक सांख्या भक्ति बतायी गयी है। (स्क. पु. आवन्त्य. आ. मा. 7/8-12, 16-26)*

जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को संयम में रखकर सदा प्राणायाम-परायण होकर ध्यान करता है, अथवा जो हृदय में धारणा को स्थिर करके महेश्वर के सगुण या निर्गुणरूप का ध्यान करता है, वह भगवान् रुद्र की 'पराभक्ति' या यौगिकीभक्ति कहलाती है।(स्कं. पु. आव. आ. मा. 7/26-27)*

किसी प्रसंग में लोमशजी इन्द्रद्युम्न से कह रहे हैं कि "ज्ञानेन्द्रियों की बाह्य विषयों में होनेवाली प्रवृत्ति को रोककर उन सबका भगवान् सदाशिव में नित्य लय करना 'अन्तर्योग' कहलाता है। अन्तर्योग का साधन कठिन होने के कारण भगवान् शिव ने स्वयं ही बहिर्योग का इस प्रकार वर्णन किया है, पाँच भूतों के द्वारा भगवान् शिव का पूजन 'बहिर्योग' है, अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश[1]-ये सब भगवान् शिव की पूजा के उपकरण हैं, ऐसा समझकर भावना द्वारा इन्हें भगवान् शिव के चरणों में समर्पित करना, यह बहिर्योग-पूजा की पद्धति है। बहिर्योग विशिष्ट फल देनेवाला और अक्षय माना गया है। (माहेश्व. कुमारि. 12/50-52)*

एक स्थलपर ब्रह्माजी देवाताओं से कहते हैं कि "भगवान् शिव के दर्शन के लिये सदा तीन उपाय हैं-श्रद्धापूर्वक ज्ञान, तपस्या और योग। योगी महादेवजी के कलासहित और कलारहित दोनों स्वरूपों का दर्शन करते हैं। तपस्वी केवल कलायुक्तरूप का और ज्ञानी केवल निष्कलरूप का दर्शन पाते हैं। ज्ञान प्रकट होनेपर भी जिसकी श्रद्धा मन्द है, वह भगवान् का दर्शन नहीं पाता। पराभक्ति से युक्त योगी पुरुष उन परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।(स्कं. पु. आवन्त्यखण्ड अवन्तीक्षेत्रमाहा. 6/4-7)*

आगे देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा-आप हम सब लोगों को ऐसी दीक्षा दीजिये, जो भगवान् शिव को सन्तुष्ट करनेवाली हो। ऐसा निवेदन करने पर ब्रह्माजी ने सम्पूर्ण देवाताओं को व्रतों में श्रेष्ठ दिव्य पाशुपतव्रत का उपदेश किया। महापाशुपतव्रत का वर्णन शिवशाखा में जैसा किया गया है, शास्त्रों में उसकी जैसी विधि बतायी गयी है और जैसे आचार-व्यवहार की शिक्षा दी गयी है, उसके सहित वह शैवव्रत ब्रह्माजी ने देवताओं को बताया। वह व्रत पापों और दुःखों का नाश करनेवाला, पुष्टि और बल बढ़ानेवाला, सुयश बढ़ानेवाला तथा कलियुग के समस्त पापों से छुटकारा दिलानेवाला है। इस व्रत को धारण करनेवाले को भस्म-स्नान करते हुए एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय, शान्त एवं दान्त(दमनशील) भाव से रहना चाहिये। तथा कमण्डलु धारण करना, रुद्राक्ष पहनना तथा अशुभदर्शन, असत् आलाप और आसक्ति आदि से रहित होकर रहना चाहिये। (स्कं. पु. आवन्त्यखण्ड अवन्तीक्षेत्रमाहा. 6/21-24)*

भगवान् शिव ने कपालव्रत(पाशुपतव्रत) चर्या का स्वमुख से इस प्रकार वर्णन किया है-

---

[1] ये सब भगवान् की अष्टमूर्तियों में आते हैं। तथा तीर्थस्थानों में इनके नाम से लिंग भी स्थापित हैं। इन तीर्थों की चर्चा इसी पुस्तक में अन्यत्र की गयी है।

कपाल-पात्र (नारियल के खप्पर) में भोजन करें, हाथ में कपाल (नारियल का कमण्डलु) लिये रहें, सदा सन्तोषपूर्वक रहें और नियमपूर्वक भिक्षान्न का आहार करें। श्मशान (एकान्त) में निवास करें, समस्त प्राणियों के प्रति प्रसन्न रहें, प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सम रहें, सब अंगों में विभूति को लगाये रक्खें, विशेषतः ज्ञानवान् और जितेन्द्रिय हों, सब प्रकार की आसक्तियों को त्याग दें, मिट्टी, भस्म एवं जलमात्र का संग्रह करें, सदा योगयुक्त रहें, नित्य-निरन्तर जप करें। श्रेष्ठ आसन को जीतें, पवित्र तीर्थ में आश्रम बनाकर रहें, धीरे-धीरे इष्टदेव में चित्त एकाग्र करें। भगवान् शिव कहते हैं कि जैसे मैं सब देवताओं का पूजनीय हूँ उसी प्रकार यह महाव्रत संपूर्ण योगों से पूजनीय है। संसार के बन्धन से छुटकारा दिलाने के लिये यह कल्याणमय व्रत परम पवित्र है क्योंकि यह सम्पूर्ण धर्म के द्वारा मोक्ष का कारण है। (वही 6/89-93, 105)*

किसी प्रसंग में भगवान् विष्णु देवताओं के बीच कह रहे हैं कि कोई-कोई योगमार्ग से भगवान् शंकर की आराधना बताते हैं, परन्तु सदा शून्य (निराकार) की उपासना करनेवाले उन योगियों का मार्ग सर्वसाधारण के लिये दुःसाध्य है। इसलिये जो भोग एवं मोक्ष दोनों चाहता है, उसे लिंगमय स्वरूप की ही आराधना करनी चाहिये। लिंगमय स्वरूप में सम्पूर्ण चराचर जगत् लीन होता है, इसलिये वेद में उसे लिंग कहा गया है। (स्कंद. पु. माहे. कुमारिका. अध्याय 33/26-29)*

शिवलिंगपूजन के सन्दर्भ में लोमशजी कहते हैं- जो विष्णु हैं, उन्हें शिव जानना चाहिये और जो शिव हैं, वे विष्णु ही हैं। पीठिका (आधार अथवा अर्घा) भगवान् विष्णु का रूप है और उसपर स्थापित लिंग महेश्वर का स्वरूप है। अतः शिवलिंग का पूजन सबके लिये श्रेष्ठ है (माहे. केदा. खण्ड-8/20-21)।*

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेयो यः शिवो विष्णुरेव सः।।
पीठिका विष्णुरूपं स्याल्लिंगरूपी महेश्वरः।
तस्माल्लिंगार्चनं श्रेष्ठं सर्वेषामपि वै द्विजाः।।

ब्रह्माजी निरन्तर मणिमय, इन्द्र रत्नमय, चन्द्रमा मुक्तामय, सूर्य ताम्रमय, कुबेर चाँदी, वरुण लालरंग, यमराज नीले रंग .... वायु केसरिया रंग के शिवलिंगों की निरन्तर आराधना करते हैं। इस प्रकार इन्द्रादि समस्त लोकपाल शिवलिगोंपासक हैं। पातालवासी, गंधर्व और किन्नर भी शिवोपासना करते हैं। राक्षसों में बलि, नमुचि, हिरण्यकशिपु, वृषपर्वा आदि तथा शुक्राचार्य और उनके बहुत से शिष्य शिवोपासक हैं। इस तरह प्रायः सभी दैत्य-दानव और राक्षस सदा शिवाराधन में ही रत रहते हैं .... रावण तथा कुम्भकर्ण आदि श्रेष्ठ राक्षस सदा शिवपूजन में संलग्न रहे हैं। ये सर्वदा शिवलिंग का अर्चन करके उच्चकोटि की सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। (माहे. केदा. 8/22-32)।*

जो नित्य लिंगस्वरूप भगवान् शिव की पूजा करते हैं, वे स्त्री, शूद्र, अन्त्यज अथवा चाण्डाल ही क्यों न हो, सम्पूर्ण दुःखों का नाश करनेवाले शिव को अवश्य प्राप्त कर लेते हैं (माहे. केदा.

8/116)।* जो मन को वश में करके भगवान् शिव के ध्यान में तत्पर रहते हैं, उनका मायामय अज्ञान शीघ्र दूर हो जाता है, तथा माया का निवारण हो जाने से तीनों गुणों का लय हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य जब गुणातीत हो जाता है, तब वह मोक्ष का भागी होता है। अतः सम्पूर्ण देहधारियों के लिये शिव-लिंग का पूजन कल्याणकारी है। भगवान् शिव लिंगरूप में प्रकट होकर चराचर जगत् का उद्धार करते हैं (माहे. केदा. खण्ड 8/124-128)।* शिवलिंग पूजा की गरिमा को बताते हुए यज्ञमय कर्मकाण्डों को केवल स्वर्ग देनेवाला (न कि मोक्ष) बताया गया है। जबकि लिंगपूजन से व्यक्ति मोक्षतक को प्राप्त कर सकता है (माहे. केदा. खण्ड 8/119-123)।*

शिवपूजन की महिमा बताते हुए लोमशजी कहते हैं कि जो मनुष्य शिवमंदिर के आंगन में झाड़ू लगाते हैं, चँवर भेंट करते हैं या धूप निवेदन करते हैं, दीपदान करते हैं, नैवेद्य निवेदन करते हैं, टूटे हुए शिवमंदिर को पुनः बनवा देते हैं या नूतन मंदिर का निर्माण कराते हैं, शिवमंदिर की सफाई एवं सफेदी करते या करवाते हैं, चँदोवा भेंट करते हैं, और अधिक आवाज करनेवाला घण्टा बाँधते हैं वे सभी पुण्यात्मा हैं तथा नाना प्रकार के लौकिक एवं अलौकिक सुखों को प्राप्त करते हैं (माहे. केदा. खण्ड 5/49-60)।* पुनः कहा गया है कि धनवान् या निर्धन जो कोई भी एक, दो या तीन समय भगवान् शिव का (मंदिर में जाकर) दर्शन करता है, वह सुखी होता है तथा सभी दुःखों से छूट जाता है। जो धार्मिक व्यक्ति आस्थापूर्वक शिव की पूजा करता है वह महात्मा अपने लाखों कुलों को तार देता है और शिवलोक में भगवान् शिव का सांनिध्य प्राप्त कर लेता है (माहे. केदा. खण्ड 5/61-62)।*

एक जगह भगवान् शिव कार्तिकेयजी से कह रहे हैं कि "जो मेरे लिंग की स्थापना करता है और उसके लिये सुन्दर मन्दिर बनवाता है, वह कल्पभर मेरे लोक में निवास करता है। जो मेरे मंदिर में झाड़ू देता है और धूल आदि हटाकर शुद्ध करता है, वह सब रोगों से छूट जाता है। चूने आदि से मंदिर को पुतवाने पर शरीर दृढ़ होता है। पुष्प, दूध आदि, कुशा, तिल, जल, अक्षत और सरसों से भगवान् शंकर के मस्तक पर अर्घ्य देकर मनुष्य 10 हजार वर्षोंतक स्वर्ग में निवास करता है। दही तथा दूध से शिवलिंग को स्नान कराने पर मनुष्य का शरीर निरोग हो जाता है। जल और घी से स्नान कराने पर क्रमशः दसगुना फल प्राप्त होता है। उपर्युक्त वस्तुओं से मुझे स्नान कराकर भक्तिपूर्वक गोधूम-चूर्ण आदि के द्वारा उबटन लगावे, फिर कपिला गाय के पंचगव्य से और गंगा के जल से मुझे स्नान करावे और विधिपूर्वक मेरा पूजन करे। ऐसा करनेवाला परमधाम को प्राप्त होता है। कुशमिश्रित जल से, गन्धमिश्रित जल और उससे भी तीर्थजल श्रेष्ठ है। तांबे, चाँदी और सोने के कलशों से स्नान कराने पर क्रमशः सौ गुना फल होता है। इसी प्रकार चन्दन, अगर, केशर तथा कपूर अर्पण करने से उत्तरोत्तर अधिक फल की प्राप्ति होती है। .... गुग्गुल का धूप उत्तम माना गया है, उससे श्रेष्ठ अगरु है।" दीपदान, नैवेद्य, अखण्ड बिल्वपत्रों और भाँति-भाँति के पुष्पों से शिवलिंग की पूजा करने के फलों को भी शिवजी वहाँ बताया है। शिवजी को चँवर भेंट करने, मन्दिर

में गीत, वाद्य और नृत्य करने, शंख एवं घंटा दान करने, रथयात्रा का उत्सव करने, नमस्कार एवं प्रणाम करने, शास्त्र का पाठ करने आदि के फलों को भी उन्होंने ने बताया है। भक्तिपूर्वक स्तुति करने से मोह से मुक्ति, आरती घुमाने से पीड़ा से मुक्ति, शीतल चन्दन अर्पण से दुःखजनित संतापों से मुक्ति हो जाती है। शिवलिंग के समीप दान देने से उसका सौगुना फल प्राप्त होता है। शिवलिंग को प्रणाम करनेपर पन्द्रह, स्नान करानेपर बीस तथा विधिपूर्वक पूजा करने पर सौ अपराध शिवजी क्षमा कर देते हैं(माहेश्वर. कुमा. 34/12-35)।* यद्यपि उपरोक्त बातें भगवान् शिव ने कुमारेश्वर लिंग के माहात्म्य के संदर्भ में कही हैं परन्तु उपरोक्त बातें लिंगोपासना के संदर्भ में सर्वत्र लागू होती हैं।

एक अन्य स्थलपर भगवान् शिव कहते हैं कि ब्रह्मा आदि सब देवता, राजा, महर्षि, मनुष्य और मुनि-ये सभी लोग शिवलिंग का पूजन करते हैं। शिवलिंग की स्थापना करनेवाला मानव ब्रह्महत्या, बालहत्या तथा अन्य पातकों से मुक्त हो जाता है(प्रभा. खण्ड)।[1]

अन्यत्र भगवान् शिव कालभीति से कहते हैं कि जहाँ स्वंयम्भू-लिंग हो, वहाँ मैं नित्य निवास करता हूँ। स्वयम्भू-लिंग, रत्नमय-लिंग, धातुज-लिंग, प्रस्तरनिर्मित-लिंग तथा चन्दन आदि लेप-जनित-लिंग हैं। इनमें क्रमशः अन्तिम लिंग की अपेक्षा पूर्व-पूर्ववाले लिंग दस-गुना अधिक फल देनेवाले होते हैं। आकाश में तारकमय-लिंग, पाताल में हाटकेश्वर-लिंग तथा भूमण्डलपर स्वयम्भूलिंग-ये तीन शुभ होते हैं(माहे. कुमा. अध्याय 34/119-121)।[2]

कहा गया है कि तीनों लोकों में महादेवजी से बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है, इसलिये सब प्रकार के प्रयत्नों से सदा शिव की पूजा करनी चाहिये। पत्र, पुष्प, फल अथवा स्वच्छ जल तथा कनेर से भी भगवान् शिव की पूजा करके मनुष्य उन्हीं के समान हो जाता है। आक(मदार) का फूल कनेर से दसगुना तथा आक के फूल से दसगुना धतूरे का फल श्रेष्ठ है। नीलकमल एक हजार कचनार से भी श्रेष्ठ माना गया है। यह चराचर जगत् विभूति से प्रकट हुआ है। वह विभूति भगवान् शिव के श्रीअंगों में भली-भाँति लगती है, इसलिये उसे सदा धारण करना चाहिये(माहे. केदा. खण्ड 5/88-91)।*

शिवजी के आँगन में आरती के समय बजाने के लिये जो नगारा होता है उसकी आवाज से पापी पवित्र हो जाते हैं। पुराण-पाठ, कथा, इतिहास और संगीत आदि नाना प्रकार के आयोजन भगवान् शिव को प्रिय हैं; अतः इनकी व्यवस्था मंदिर में करनी चाहिये। (वही 5/101-102, 104)।*

भगवान् शिव के ऊपर सुशोभित दूसरोंद्वारा चढ़ायी हुई पूजा-सामग्री देखकर जो सन्तोष प्राप्त करता है, वह श्रेष्ठ लोकों में जाता है। जो कार्तिक मास में रात्रि को शिवजी के समीप दीपमाला समर्पित करता है उसे हजारों युगोंतक स्वर्गलोक प्राप्त होता है। नाना प्रकार के तेलों से की गयी दीपमाला के फलों को बताते हुए कहा गया है कि जो कपूर, अगर और धूप से भगवान् शिव की पूजा

---

[1] संक्षिप्त स्कंदपुराण.- पृ. 1018

[2] संक्षिप्त स्कंदपुराण.- पृ. 124-125

करते हैं और प्रतिदिन कपूर की आरती उतारते हैं वे सायुज्य-मुक्ति प्राप्त करते हैं। (स्क. पु. माहे. ख. के. ख. 13/41-48)*

आगे कहा गया है कि जो दान के समय, तपस्या में, तीर्थ में और पर्वकाल में आलस्य को छोड़कर रुद्राक्ष-धारणपूर्वक शिव की पूजा करते हैं, उनका पुण्य अक्षय होता है। रुद्राक्ष एक मुख से लेकर 16 मुखतक के होते हैं। उनमें से पंचमुख तथा एकमुख- ये दो प्रकार के रुद्राक्ष मनुष्यों द्वारा धारण करने योग्य एवं श्रेष्ठ समझने चाहिये। जो प्रतिदिन एकमुख रुद्राक्ष धारण करते हैं, उन्हें जीवनमुक्त जानना चाहिये। जो प्रतिदिन पंचमुख रुद्राक्ष धारण करता है, वह रुद्रलोक में जाता और उन्हीं के साथ आनंद का भागी होता है। जप, तप, क्रिया-योग, स्नान और देवपूजा आदि जो भी शुभ कर्म किया जाता है, वह रुद्राक्षधारण से अनन्त फल देनेवाला हो जाता है। (वही 13/50-53)*

जो मन्त्र-पूत विभूति से अपने ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे रुद्रलोक में रुद्र होंगे। कपिला गाय के गोबर को भूमिपर गिरने से पहले ही हाथपर ले ले और उसे सुखाकर विभूति के लिये संग्रह करे। विभूति सब पापों का नाश करनेवाली बतायी गयी है। पहले ललाट में प्रयत्नपूर्वक अँगूठे से एक रेखा बनानी चाहिये। फिर मध्यमा अँगुली को छोड़कर अनामिका और तर्जनी- इन दो अँगुलियों से दो रेखाएँ खींचे। इस प्रकार जिसके ललाट में तीन स्पष्ट रेखाएँ देखी जाती हैं, उस शिवभक्त को साक्षात् शिव के ही समान जानना चाहिये। वह दर्शनमात्र से समस्त पापों का नाश करनेवाला है। शिवभक्तों को जटा रखनी चाहिये। जटा की पाँच, सात या नौ लटें रखनी चाहिये। शैवशास्त्र के अनुसार जटा रखनेवाला अवश्य ही शिव को प्राप्त कर लेता है(स्क. माहे. केदा. 13/56-61)।*

एक स्थल पर यमराज अपने दूतों से कहते हैं "दूतगण! संसार में जो लोग विभूति के द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, मस्तकपर जटा और गले में रुद्राक्ष धारण करते हैं, ऐसे लोगों को तुम कभी मेरे लोक में नहीं लाना। जो भक्तिभाव से भगवान् शिव का पूजन करते हैं, वे साक्षात् रुद्र के ही स्वरूप हैं। जो मस्तक पर एक रुद्राक्ष धारण करते, ललाट में त्रिपुण्ड्र लगाते तथा जो साधु पुरुष पंचाक्षर मन्त्र(**नमः शिवाय**) का सदा जप करते हैं, वे सब तुम्हारे द्वारा पूजनीय हैं। जिस राष्ट्र, देश अथवा ग्राम में शिवभक्त नहीं देखा जाता, वह श्मशान से भी बढ़कर अशुभ है।" (माहे. केदा. 32/80-85)*

पवित्र बुद्धिवाले ज्ञानी पुरुषों को भी अनेक जन्मों के पश्चात् भगवान् शिव की भक्ति प्राप्त होती है। इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि वे सदैव भगवान् सदाशिव का सेवन, वन्दन एवं पूजन करें(माहे. केदा. 32/94-95)।*

शिवलिंग की पूजा एवं परिक्रमा विधिपूर्वक करनी चाहिये। इन्द्र ने प्रदोषव्रत का अनुष्ठान वृत्रासुर के ऊपर विजय पाने के लिये किया था परन्तु लिंगपूजा के उपरान्त होनेवाली परिक्रमा में उन्होंने गलती कर दी थी इसलिये उन्हें वृत्रासुर ने निगल लिया था। अतः परिक्रमा करते समय अथवा अन्य समय में भी शिवनिर्माल्य(पूजोपरान्त जो सामग्री लिंग पर होती है), अर्घा, शिवलिंग की छाया

तथा देवमन्दिर का लंघन नहीं करना चाहिये। लंघन करनेवाला शिव-गणों में प्रधान चण्ड के द्वारा दण्डनीय है। इसलिये सावधानीपूर्वक लिंग की परिक्रमा एवं नमस्कार करना चाहिये (माहे. केदा. 17/243-246)।*

लिंगपूजा में कनेर, मदार, भटकटइया, धतूर, शतपत्र, अमलतास, पुन्नाग (सँदेसरा), मौलसिरी, नागकेसर, नीलकमल, कदम्ब, आक तथा नाना प्रकार के कमल आदि पुष्प तीनों काल में (सुबह, दोपहर एवं शाम) सदा पवित्र जानने चाहिये। चमेली, बेला, सेवती, श्यामपुष्प, कुटज, कर्णिकार, कुसुम्भ, लाल कमल-ये पुष्प विशेषतः मध्याह्नकाल में शिवलिंगपूजन में श्रेष्ठ बताये गये हैं। कमल के फूल तीनों काल में पवित्र माने गये हैं। रात्रि में केवल कुमुद (मोगरा) के फूल विशेष पवित्र बताये गये हैं। चंपा भी तीनों काल में पवित्र है। इस प्रकार पूजा-भेद को जानकर शिवलिंग का पूजन करना चाहिये। विधिज्ञ पुरुषों को शिवालय में सदा शास्त्रीय विधि का पालन करना चाहिये। शिवलिंग एवं नन्दीकेश्वर के बीच में होकर अथवा अर्घान्तर की परिक्रमा नहीं करनी चाहिये। यदि कोई करता है तो पाप का भागी होता है (माहे. केदा. 17/252-259)।*

एक जगह सोमनाथ की पूजा के सन्दर्भ में बताया गया है कि नागकेशर, चम्पा, श्वेतकमल और धतूर के फूल शिव-पूजा के लिये उत्तम होते हैं। केतकी, अतिमुक्त (मरुआ), कुन्द, जूही, सिरस, शाल और जामुन के फूलों को शिव-पूजा में त्याग देना चाहिये। धतूर और कदम्ब के फूल रात में शिवजी के ऊपर नहीं चढ़ाने चाहिये। शेष जो फूल बताये गये हैं उनका उपयोग दिन को करना चाहिये। मल्लिका (बेला) का फूल दिन एवं रात दोनों में चढ़ाना चाहिये। जिसमें कीड़े और केश आदि पड़ गये हों, जो रात के तोड़े हुए होने से बासी हो गये हों, जो अपने आप टूटकर गिरे हों अथवा कुंचल गये हों-ऐसे फूलों को त्याग देना चाहिये। (संक्षिप्त स्कंदपु. प्रभासखण्ड अध्याय 22 पृ. 965)

वृत्रासुर द्वारा इन्द्र के निगल जाने के बाद देवताओं ने प्रतिदिन महारुद्र-विधान के अनुसार शिवलिंग पूजन किया। फलस्वरूप इन्द्र वृत्रासुर का पेट फाड़कर बाहर आ गये और उसपर विजय पायी। इस पुराण में शिवपूजा की विस्तृत विधि का उल्लेख माहेश्वरखण्ड-कुमारख. (अध्याय 41)* में किया गया है।

(2) शिवनाममहिमा एवं पंञ्चाक्षर मन्त्र

सगुण-साकार की पूजा, चाहे वह लिंगपूजा हो चाहे भगवान् शिव की मूर्ति की, में नामजप का बड़ा ही महत्त्व सभी शास्त्रों में बताया गया है। सूतजी कहते हैं कि समस्त पुण्यों, श्रेय के सम्पूर्ण साधनों और समस्त यज्ञों में जपयज्ञ सर्वोत्तम है।

सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः।। (स्कं. पु. ब्राह्म. ब्राह्मो. 1/7)*

जप तीन तरह का होता है-वाचिक, उपांशु तथा मानसिक। वाचिक जप में जोर-जोर से

बोलकर जप किया जाता है, उपांशु में मात्र होठ हिलते हैं जबकि मानसिक जप में जिह्वा एवं होठ का प्रयोग न कर केवल भावना द्वारा जप किया जाता है। इस पुराण में कहा गया है कि विधिपूर्वक किये हुए यज्ञ से जपयज्ञ दसगुना उत्तम है। उपांशु जप (सूक्ष्म स्वर से उच्चारण किया हुआ जप) उससे सौगुना फल देनेवाला है। उपांशु जप की अपेक्षा भी सहस्रगुना महत्त्व मानस – जप का माना गया है।

विधिक्रतोर्दशगुणो जपक्रतुरुदीरितः।।
उपांशुस्तच्छतगुणः सहस्रो मानसस्ततः।। (स्कं. पु. काशी. पूर्व. 36 / 48 – 49)*

लोमशजी शिवमहिमा का गुणगान करते हुए ऋषियों से कहते हैं कि "जो लोग 'शिव' इस दो अक्षर के नाम का उच्चारण करेंगे, उन्हें स्वर्ग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे – इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

शिवेति द्व्यक्षरं नाम व्याहरिष्यन्ति ये जनाः।
तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यन्ति न चान्यथा।।

(स्कं. पु. माहे. केदार. 1 / 14)*

"जो सदा कल्याण करनेवाले भगवान् शिव का भजन करते हैं, वे धन्य हैं। जो लोग सदा शिव की कृपा के विना भवसागर को पार करना चाहते हैं वे मूर्ख, पापी एवं भ्रमित हैं। जिन्होंने (दूसरों की रक्षा के लिये) विषभक्षण किया, दक्षयज्ञ का विनाश किया, काल को दग्ध कर डाला और राजा श्वेत को संकट से छुड़ाया, उन महादेवजी की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है।" (स्कं. पु. माहे. केदा. 1 / 16 – 18)*

ते धन्यास्ते महात्मानो ये भजंति सदा शिवम्।।
विना सदाशिवं यो हि संसारं तर्तुमिच्छति।
स मूढो हि महापापः शिवद्वेषी न संशयः।। (स्कं. पु. माहे. केदा. 1 / 16 – 17)*

शिवपूजन की महिमा के प्रसंग में लोमशजी कहते हैं कि 'शिव' यह दो अक्षरों का नाम महापातकों का भी नाश करनेवाला है। जिन मनुष्यों के मुख से 'शिव' नाम का जप होता रहता है, उन्होंने ही सम्पूर्ण जगत् को धारण किया है (स्कं. पु. माहे. केदार. 5 / 100)।*

शिवेति द्व्यक्षरं नाम महापापप्रणाशनम्।
येषां मुखोद्गतं न्त्र्णां तैरिदं धार्यते जगत्।।

प्रभासखण्ड में एक स्थलपर कहा गया है कि "सब लोक शिवमय हैं और सबकुछ शिव में ही प्रतिष्ठित है। इसलिये जो अपना कल्याण चाहे, भगवान् शिव के ही नामों का जप करे (संक्षिप्त स्कं. पु. पृ. 1018)।

जिनकी जिह्वा के अग्रभागपर सदा भगवान् शंकर का दो अक्षरोंवाला नाम (शिव) विराजमान रहता है वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव' इस अविनाशी

नाम का उच्चारण किया है, वे निश्चय ही मनुष्यरूप में रुद्र हैं; इसमें संशय नहीं है।

ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्तथैव च।।
द्व्यक्षरं नाम येषां च जिह्वाग्रे संस्थितं सदा।
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै।
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः।।

(स्कं. पु. माहे. केदा. 27/21-22)*

अनजान में भी अगर भगवान् शिव का नाम ले लिया जाय तो उसका महान् फल होता है। राजा इन्द्रसेन ने अनजान में (अन्य अक्षरों के साथ-साथ जैसे 'आहर', प्रहरस्व आदि) भगवान् हर का नाम लेने के कारण शिवलोक गया तथा वहाँपर 'चण्ड' नामक गण बना, यद्यपि इन्द्रसेन बड़ा ही पापी था। (स्कं. पु. माहे. के. 5/64-86)*[1]

अतः संसर्गवश, कौतुहलवश अथवा लोभ से भी भगवान् शंकर के प्रति किये हुए नमस्कार, स्तुति, पूजा तथा नामसंकीर्तन कभी विफल नहीं होते। (स्कं. पु. माहे. कुमा. 41/79)*

नमस्कारः स्तुतिः पूजा नामसंकीर्तनं तथा।
संपर्कात्कौतुकाल्लोभान्न तस्य विफलं भवेत्।।

भगवान् शिव के महामंत्रों में सबसे सरल एवं प्रमुख पंचाक्षर या षडक्षर मंत्र है। इसकी अनेक ग्रन्थों में बड़ी महिमा गायी गयी है। इस मन्त्र की महिमा के बारे में लोमशजी कहते हैं कि- "जिनके मुख से **'नमः शिवाय'** यह पंचाक्षर मन्त्र सदा उच्चारित होता रहता है, वे मनुष्य भगवान् शंकर के स्वरूप हैं।" (स्कं. पु. माहे. केदा. 5/96)*

कार्तिकेयजी नन्दी से कह रहे हैं कि जिसके मुख में सदा (**'नमः शिवाय'** इस) पंचाक्षर मन्त्र का जप होता रहता है, जिसका चित्त सदा भगवान् शिव के चिन्तन में संलग्न रहता है, जो सब प्राणियों के प्रति समभाव रखता है, दूसरों की निन्दा में जिसकी वाणी मूक रहती है तथा जो परायी स्त्रियों के प्रति अपने में नपुंसक भाव ही रखता है, ऐसे उपासक पर भगवान् शिव की विशेष कृपा होती है। (स्कं. पु. माहे. केदार. 31/106)*

सूतजी ऋषियों को समझाते हुए कह रहे हैं कि जैसे सब देवताओं में त्रिपुरारि भगवान् शंकर श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब मन्त्रों में शिव का षडक्षर मन्त्र श्रेष्ठ है। उसी को प्रणव से रहित होनेपर पंचाक्षर मन्त्र भी कहते हैं। वह जप करनेवाले पुरुषों को मोक्ष देनेवाला है। सिद्धि की इच्छा रखनेवाले सब श्रेष्ठ मुनि इस मन्त्र का सम्यग् रूप से सेवन करते हैं। शिवजी के शुभ पंचाक्षर मन्त्र में सर्वज्ञ, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् शिव सदा रमते रहते हैं। यह मन्त्रराज सम्पूर्ण उपनिषदों का आत्मा है। इसके जप से सब मुनियों ने निरामय परब्रह्म का साक्षात्कार किया है। **'नमः शिवाय'** मन्त्र में

---

1. इस तरह की कथा पदम् पुराण के पातालखण्ड के 111 वें अध्याय में भी आती है।

'नमः' पद के अर्थभूत नमस्कार के द्वारा जीवभाव परमात्मा शिव में मिलकर तद्रूप हो जाता है। अतः वह मन्त्र साक्षात् परब्रह्मस्वरूप है। संसार-बन्धन में बँधे हुए लोगों के हित की कामना से स्वयं भगवान् शिव ने **'ॐ नमः शिवाय'** इस आदिमन्त्र का प्रतिपादन किया है। जिसके हृदय में यह मन्त्र निवास करता है, उसके लिये बहुत से मन्त्र, तीर्थ, तप और यज्ञों की क्या आवश्यकता है? (स्क. पु. ब्रा. ब्रह्मो. 1/9-16)*

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः।
यस्योंनमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः।। (स्कं. पु. ब्राह्म. ब्रह्मो 1/16)*

देहधारी मनुष्य तभीतक दुःखों से भरे हुए इस भयंकर संसार में भटकते हैं, जबतक कि वे एक बार भी इस षडक्षर मन्त्र का उच्चारण नहीं करते। यह मन्त्र संपूर्ण ज्ञानों की निधि है यह मोक्षमार्ग को प्रकाशित करनेवाला दीपक, अविद्या के समुद्र को सोखनेवाला बड़वानल और महापातकों के जंगल को जला डालनेवाला दावानल है। यह मन्त्र सब कुछ देनेवाला माना गया है। इसे मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाले स्त्री-समुदाय, शूद्र और वर्णसंकर भी धारण कर सकते हैं। इस मन्त्र के लिये दीक्षा, होम, संस्कार, तर्पण, समय-शुद्धि तथा गुरुमुख से उपदेश आदि की आवश्यकता नहीं है। यह मन्त्र सदा पवित्र है। (स्क. पु. ब्रा. ब्रह्मो. 1/17-21)*

तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकांक्षिभिः।।
नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम्।
न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः।। (स्क. पु. ब्राह्म. ब्राह्मो. 1/20-21)*

'शिव' यह दो अक्षर का मन्त्र ही बड़े-बड़े पातकों का नाश करने में समर्थ है और उसमें **'नमः'** पद जोड़ दिया गया, तब तो वह मोक्ष देनेवाला हो जाता है। जो गुरु निर्मल, शान्त, साधु, स्वल्पभाषी, काम-क्रोध से रहित, सदाचारी और जितेन्द्रिय हों, उनके द्वारा दयापूर्वक दिया हुआ मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार काशी, प्रयाग, पुष्कर, केदार, सेतुबन्ध, गोकर्ण और नैमिषारण्य आदि पुण्यक्षेत्र मनुष्यों को शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। (स्क. पु. ब्रा. ब्रह्मो. अध्याय 1/22-27)*

महापातकविच्छित्त्यै शिव इत्यक्षरद्वयम्।
अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते।।
उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने।
सद्यो यथेप्सितां सिद्धिं ददातीनि किमदभुतम्।। (स्क. पु. ब्राह्म. ब्राह्मो. 1/22-23)*

जैगीषव्य मुनि भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उनकी अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त यह भी बताते हैं कि वे पशुओं के पाश को मुक्त करनेवाले हैं तथा उनके नाम का उच्चारण करनेमात्र से सभी महापातकों का विनाश हो जाता है।

पशुपाशविमोक्षाय पशुनांपतये नमः।
नामोच्चारणमात्रेण महापातकहारिणे।। (स्क. पु. काशीख. उत्त. 63/50)*

षडक्षर मन्त्र की महिमा में अन्यत्र कहा गया है कि जो श्रद्धापूर्वक भगवान् शिव के षडक्षर मन्त्र का जप करता है, उसका ब्रह्महत्याजनित पाप नष्ट हो जाता है। दस बार षडक्षर मन्त्र के जप से एक दिन का और बीस बार के जप से मनुष्य एक वर्ष का पाप धो डालता है। यह मन्त्र मनुष्यों का सब पाप और अमंगल हर लेता है। यह मन्त्र परम गोपनीय कहा गया है। किसी नास्तिक को इसका उपदेश नहीं करना चाहिये।(संक्षिप्त स्कं. पु. नागरखण्ड अध्याय 29 पृ. 844)

मन्त्र-जप में श्रद्धा-भक्ति का महत्त्व है। जैसे श्रद्धा-भक्ति से पूजा करनेपर अज्ञानी गुरु भी सिद्धिदायक हो जाता है उसी प्रकार श्रद्धा से जप किया हुआ मन्त्र अव्यवस्थित होनेपर भी फलदाता होता है। श्रद्धा से पूजा करनेपर देवता नीच पुरुष को भी फल देनेवाले होते हैं। अश्रद्धा से की हुई पूजा, दान, यज्ञ, तप और व्रत सभी निष्फल होते हैं, जैसे बाँझ वृक्ष का फूल व्यर्थ होता है। जो सर्वत्र संशययुक्त, श्रद्धाहीन और अत्यन्त चपल होता है, वह परमार्थ से भ्रष्ट होकर संसार-बन्धन से मुक्त नहीं हो पाता। मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, ओषधि तथा गुरु में जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी सिद्धि प्राप्त होती है। अतः पंचाक्षर या शिव-मन्त्र का जप तभी पूर्ण फलप्रद होगा जब वह श्रद्धा-भक्ति से जपा जाय।

श्रद्धैव सर्वधर्मस्य चातीव हितकारिणी।
श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः।।
श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी।
मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः।।

....

अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो व्रतम्।
सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं बन्ध्यतरोरिव।।

....

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी।। (स्कं. पु. ब्रा. ब्रह्मो. 17/3-8)*

(3) भगवान् शिव के स्तोत्र एवं कवच

स्कंद पुराण में अन्य ग्रन्थों की भाँति भगवान् शिवसंबंधी अनेक स्तोत्र एवं पाठ करने योग्य सामग्री पायी जाती है। इन सबमें पौराणिक शतरुद्रिय तथा(अमोघ) शिवकवच काफी प्रचलित हैं। भर्तृयज्ञ द्वारा शतरुद्रिय सुनकर शिव की आराधना से इन्द्रद्युम्न आदि भक्तों को शिवसारूप्य की प्राप्ति हुई थी। भगवान् शिव का उत्तम माहात्म्य 'शतरुद्रिय' के नाम से प्रसिद्ध है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल

उठकर इस शतरुद्रिय का पाठ करता है, उसपर प्रसन्न हो भगवान् शिव उसे सभी मनोवांछित वर प्रदान करते हैं। पृथ्वीपर इससे बढ़कर पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण वेदों का रहस्य है। भगवान् सूर्य ने भतृयज्ञ को इसका उपदेश दिया था। इसके पाठ से मन, वाणी और क्रिया द्वारा आचरित समस्त पापों का नाश हो जाता है। इसके जप से रोगी रोग से, वन्दी कारागार से और भयभीत भय से मुक्त हो जाता है। इन सौ नामों का उच्चारण करके जो विद्वान् उतने ही फूलों द्वारा भगवान् शिव की पूजा करता है और सौ बार प्रणाम करता है, वह सब पातकों से मुक्त हो जाता है। विशेषत: जो महीसागर- संगम-तीर्थ के पाँच लिंगों के समक्ष इस शतरुद्रिय का पाठ करेगा, वह पंचविषय-जनित दोषों से मुक्त हो जायगा। यह शतरुद्रिय इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया हुआ है। (यह स्कन्द पुराण के माहेश्वरखण्ड-कुमारिकाखण्ड के अध्याय 13/144-194 में वर्णित है)*

किसी शिवयोगी ने भद्रायु को शिवकवच का उपदेश किया था। यह कवच सब बाधाओं को शान्त करनेवाला तथा निर्भय बनानेवाला है। जिसकी आयु क्षीण हो गयी है, जो मरणासन्न है अथवा महान् रोग से मृत-प्राय हो रहा है, वह भी इस कवच के धारण करने से तत्काल सुखी होता है और दीर्घ आयु पाता है। इस कवच का वर्णन भी इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। यह कवच स्कन्द पुराण के ब्राह्मखण्ड के ब्रह्मोत्तर उपरखंड के 12 वें अध्याय (श्लोक 1-28)* में वर्णित है।

शतरुद्रिय एवं शिव कवच के अलावा अन्य कई उपयोगी स्तोत्र भी इस पुराण में पाये जाते हैं। तारकासुर के वध से उत्पन्न पाप एवं शोक(जिसका कारण तारकासुर जैसे शिवभक्त को मारना था) की निवृत्ति के लिये स्कन्दजी ने महीसागर-तटपर शिवलिंग की स्थापना कर भगवान् शिव की स्तोत्र द्वारा पूजा की। तदनन्तर अपने स्तवन को सुनकर शिवजी ने उन्हें वरदान दिया। जो लोग सायं और सबेरे भक्तिपूर्वक स्कंद द्वारा की गयी स्तुति से शिवजी का स्तवन करेंगे उनको कोई रोग, प्रियजनों से वियोग तथा दरिद्रता नहीं होगी तथा संसार में दुर्लभ भोगों का उपभोग करके वे शिवधाम को प्राप्त करेंगे। उन्हें भगवान् शिव दुर्लभ वर भी प्रदान करेंगे। (स्क. माहे. कुमा. 34/40-47)*

विश्वानर मुनि ने पुत्र के लिये भगवान् शिव की उपासना की थी। उपासना से प्रसन्न हो भगवान् शिव उनके समक्ष बालकरूप में प्रकट हो गये। उस बालकरूप शिव की स्तुति में मुनि ने अभिलाष्टक स्तोत्र पढ़ा। फलस्वरूप भगवान् शिव ने स्वयं पुत्ररूप में उनकी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हो गृहपति नाम धारण किया। इसी गृहपति ने कालांतर में शिव की आराधना से दिक्पाल के पद को प्राप्त किया। अभिलाष्टक स्तोत्र को अगर तीनों समय भगवान् शिव के समीप पढ़ा जाय तो यह सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाला होता है। उसका पाठ पुत्र, पौत्र, धन, सब प्रकार की शान्ति तथा संपूर्ण आपत्तियों का नाशक है। स्वर्ग, मोक्ष तथा संपत्ति प्रदान करनेवाला है। एक वर्षतक पाठ करने पर यह स्तोत्र पुत्र प्रदान करता है। यह स्तोत्र इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। यह स्तोत्र शिव पुराण में भी पाया जाता है। यह स्तोत्र स्कंद पुराण के काशीखण्ड-पूर्वार्द्ध के 10वें अध्याय(श्लोक

26-33)* में पाया जाता है।

बृहस्पतिजी ने एक बार काशी में शिवजी की मूर्ति स्थापित कर भारी तपस्या की। जब भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हो वर माँगने के लिये कहा तब बृहस्पतिजी ने उनकी स्तुति की। जिस स्तोत्र से उन्होंने शिवजी की स्तुति की, उसकी महिमा में भगवान् शिव कहते हैं कि तीन वर्षोंतक तीनों समय इस स्तोत्र का पाठ करने से जिस पुरुष के प्रति सरस्वती उदित हों, उसकी वाणी संस्कृत होगी। इसके पाठ से किसी की दुराचार में प्रवृत्ति नहीं होगी। इस स्तोत्र को जानने की रुचि रखनेवाले को स्कंद पुराण, काशीखण्ड(पूर्वार्द्ध) का अध्याय 17 (श्लोक 34-41)* देखना चाहिये।

पूर्वकाल में पंचगंगा तीर्थ में सूर्यदेव ने गभस्तीश्वर महालिंग एवं मंगला गौरी को उग्र तपस्या से संतुष्ट किया। फलस्वरूप शिवजी वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। उन्हें देखकर सूर्यदेव ने शिवजी का चौसठ नामों से युक्त अष्टक स्तोत्र से स्वागत किया। इस स्तोत्र की महिमा के बारे में शिवजी कहते हैं कि यह श्रेष्ठ, पुण्यमय तथा सब पातकों का नाशक है। जो काशी से दूर देश में रहता है, वह भी यदि प्रतिदिन तीनों समय इसका पाठ करता है तो वह श्रेष्ठ एवं शुद्ध चित्त होकर दुर्लभ काशी को प्राप्त होगा। यह स्तोत्र काशी में मोक्ष प्रदान करता है। अत: मोक्षाकांक्षी को प्रयत्नपूर्वक अनेक स्तोत्रों को छोड़कर इसका पाठ एवं जप करना चाहिये। इस स्तोत्र की जानकारी के लिये स्कन्द पुराण के काशीखण्ड-पूर्वार्द्ध के अध्याय 49 (श्लोक 46-53)* को देखें।

काशी में जैगीषव्य मुनि ने भगवान् शिव के दर्शन देनेपर उत्तम स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति की। इस स्तुति से योगसिद्धि में सहायता मिलती है, बड़े-बड़े पापों का नाश होता है तथा पुण्य की वृद्धि, भय की शान्ति और महाभक्ति की वृद्धि होती है। इसके जापक को कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती। इस स्तोत्र की जानकारी के लिये स्कन्द पुराण-काशीखण्ड-उत्तरार्द्ध-अध्याय 63 (श्लोक 32-66)* देखें।

एक बार ब्रह्माजी ने काशी में ओंकारेश्वर लिंग को सहस्र युग की तपस्या के बाद संतुष्ट कर उनकी स्तोत्र-विशेष से स्तुति की। उस स्तुति का जप करनेवाला सब पापों से मुक्त हो महान् पुण्य तथा श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह स्तोत्र भी स्कंद पुराण के काशीखण्ड-उत्तरार्द्ध (अध्याय 73/1-40)* में मिलता है। पुनः आवन्त्य खण्ड में किसी प्रंसग में ब्रह्माजी ने ॐकाररूप महेश्वर की स्तुति 101 नामों द्वारा की थी। इसके माहात्म्य के बारे में कहा गया है कि इस रुद्र-स्तोत्र के पाठ से इहलोक एवं परलोक में व्यक्ति समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। इसके पाठ से मनुष्य स्वर्ग में जाता है। यह स्तोत्र संक्षिप्त स्कन्द पुराण. के आवन्त्यखण्ड के रेवाखण्ड, अध्याय 47 (पृ. 784-785) में पाया जाता है।

(4) कुछ प्रसिद्ध शैव-व्रत

भगवान् शिव-संबंधी प्रचलित व्रतों में शिवरात्रि, प्रदोष और सोमवार ज्यादा प्रमुख हैं। हम यहाँ

इन्हीं व्रतों की चर्चा करेंगे। जो नित्य, आनंदमय, शान्त, निर्विकल्प, निरामय, अनादि, अनन्त, शिवतत्त्व को जानते हैं, वे परम पद को प्राप्त होते हैं। जो धीर पुरुष कामभोगों से विरक्त हो भगवान् शंकर की हेतुरहित पराभक्ति करते हैं, उनका भी मोक्ष हो जाता है, वे संसारबंधन में नहीं पड़ते। जो मायामय संसार में चिरकालतक सुखपूर्वक विहार करके देहावसान होनेपर मोक्ष चाहते हैं, उनके लिये यह धर्म बताया गया है कि वे भगवान् शिव की पूजा करें। यदि प्रदोष आदि के गुणों से युक्त सोमवार के दिन यह पूजा की जाय तो उसका विशेष माहात्म्य है। जो केवल सोमवार को भी भगवान् शंकर की पूजा करते हैं, उनके लिये इहलोक और परलोक में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। सोमवार को उपवास करके पवित्र हो इन्द्रियों को वश में रखते हुए वैदिक अथवा लौकिक मन्त्रों से विधिपूर्वक भगवान् शिव की पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, कन्या, सुहागिन स्त्री अथवा विधवा कोई भी क्यों न हो, भगवान् शिव की पूजा करके मनोवांछित वर पाता है। सोमवारव्रत के संदर्भ में सीमन्तिनी (जो राजा नल एवं दमयन्ती की पुत्रवधु थी) की कथा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस व्रत के प्रभाव से उसने अपने वैधव्य को पराजित कर सौभाग्य को प्राप्त किया। इस व्रत का उल्लेख स्कन्द पुराण के ब्राह्मखण्ड के ब्रह्मोत्तरखंड (के अध्याय 8-9)* में किया गया है।

त्रयोदशी तिथि में सांयकाल को प्रदोष कहा गया है। प्रदोष के समय महादेवजी कैलास पर्वत के रजत भवन में नृत्य करते हैं और देवता उनके गुणों का स्तवन करते हैं। अतः चारों पुरुषार्थों-अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले को प्रदोष में नियमपूर्वक भगवान् शिव की पूजा, उनके निमित्त होम, उनकी कथा और उनका गुणगान करना चाहिये। दरिद्रता के तिमिर से अन्धे और भवसागर में डूबे हुए संसारभय से भीरु मनुष्यों के लिये यह प्रदोषव्रत पार लगानेवाली नौका है। जो प्रदोषकाल में अनन्यचित्त होकर शिवजी के चरणों की पूजा करते हैं, वे इसी संसार में सदा बढ़नेवाले धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, सौभाग्य और सम्पत्ति के द्वारा सबसे बढ़कर होते हैं। प्रदोषव्रत की विधि आदि के बारे में जानकारी इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है। स्कन्द पुराण के ब्राह्मखण्ड के ब्रह्मोत्तरखण्ड के अध्याय 7* तथा माहेश्वरखण्ड के केदारखण्ड के अध्याय 17* में विस्तार से प्रदोषपूजाविधि दी गयी है। इस व्रत के प्रभाव से लाभान्वित होनेवाले द्विजकुमार एवं राजकुमार धर्मगुप्त की कथा का उल्लेख भी उक्त अध्यायों में है।

जिस प्रकार गणेशजी को चतुर्थी, नागराज को पंचमी, कार्तिकेय को षष्ठी, सूर्यदेव को सप्तमी दुर्गाजी को नवमी, ब्रह्माजी को दशमी, रुद्रदेव को एकादशी, भगवान् विष्णु को द्वादशी, कामदेव को त्रयोदशी प्रिय है उसी प्रकार भगवान् शंकर को अष्टमी एवं चतुर्दशी (विशेषरूप से) प्रिय है। कृष्णपक्ष में जो चतुर्दशी अर्धरात्रिव्यापिनी हो, उसमें सबको उपवास करना चाहिये। वह भगवान् शिव का सायुज्य प्रदान करनेवाली है। वह शिवरात्रि नाम से विख्यात है।

निशीथसंयुता या तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी।

उपोष्या सा तिथिः श्रेष्ठा शिवसायुज्यकारिणी।। (स्क. पु. माहे. केदा. 33/82)*

यह सब पापों का नाश करनेवाली है। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकाल में कोई विधवा ब्राह्मणी थी। उसके गर्भ से दुरात्मा चाण्डाल के संसर्ग से दुस्सह नामक घोर पापी पुत्र का जन्म हुआ। एक दिन वह अधर्मी-पापी मन में कोई बुरी वृत्ति लेकर किसी शिवालय में गया। उस दिन शिवरात्रि थी। वह रात में भगवान् शिव के पास उपवासपूर्वक रहा और वहाँ पास ही दैवात् होती हुई शैवशास्त्र की कथा सुनता रहा। वहाँ उसे लिंगस्वरूप भगवान् शिव का दर्शन भी हुआ। दुष्ट होते हुए भी उसने एक रात व्रत किया और शिवरात्रि में जागता रहा। उसी शुभकर्म के परिणाम से उसने पुण्ययोनि प्राप्त करके बहुत वर्षोंतक पुण्यात्माओं के लोक में सुख-भोग किया। तदनन्तर वह राजा चित्रांगद का पुत्र हुआ जो विचित्रवीर्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके अन्दर भक्तिभाव की वृद्धि उत्तरोत्तर होती गयी। फलस्वरूप शिवध्यान में निरन्तर संलग्न रहने के कारण उसकी सारी आयु व्रत में ही बीती। शिवरात्रि के उपवास से राजा को उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। वह ज्ञान विज्ञ पुरुषों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। राजा विचित्रवीर्य यह ज्ञान प्राप्त करके भगवान् शिव के अत्यन्त प्रिय भक्त हो गये। शिवरात्रिव्रत से उन्होंने सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर ली। उसी पुण्य के प्रभाव से उन्होंने शिवजी की लीला में योग देने के लिये शिवजी से ही दिव्य जन्म प्राप्त किया। दक्षकन्या सती से जब शिवजी का वियोग हुआ तब उनके जटा फटकारने के शब्द से उन्हीं के मस्तक से जो वीरभद्र नामक वीर उत्पन्न हुआ, वह राजा विचित्रवीर्य ही है। वही दक्ष-यज्ञ का विनाश करनेवाला हुआ। (स्क. पु. माहे. केदा. अध्याय 33)*

इसी प्रकार अन्य बहुत से मनुष्य शिवरात्रि-व्रत के प्रभाव से पूर्वकाल में सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। राजा भरत, मान्धाता, धुन्धुमार और हरिश्चन्द्र आदि नरेश भी इस शिवरात्रि व्रत का अनुष्ठान करके ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं(माहेश्वरखण्ड-केदारखण्ड अध्याय 33)।*

माघ(फाल्गुन) मास की शिवरात्रि को महाशिवरात्रि कहा जाता है। माघ(फाल्गुन) मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का उपवास अत्यन्त दुर्लभ है। उसमें भी शिवरात्रि में जागरण करना, शिवलिंग का दर्शन करना तथा उनका पूजन करना क्रमशः दुर्लभतर है। करोड़ों जन्मों में उत्पन्न हुई पुण्यराशि के प्रभाव से भगवान् शिव की बिल्वपत्र से पूजा करने का अवसर प्राप्त होता है। दस हजार वर्षोंतक जिसने गंगाजी में स्नान किया है, उसको जो फल मिलता है, वही फल बिल्वपत्र से भगवान् शिव की पूजा से उसको प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक युग में जो-जो पुण्य इस संसार में लुप्त हुए हैं, वे सभी फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी(शिवरात्रि) में पूर्णतः विद्यमान रहते हैं। लोक में ब्रह्मादि देवता और वसिष्ठ आदि मुनि इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इस दिन उपवास का फल सौ यज्ञों से ज्यादा तथा शिवलिंग की बिल्वपत्र से पूजा का अक्षय फल होता है। शिवरात्रि का उपवास, जागरण, भगवान् शिव के समीप वास तथा बिल्वपत्रों से उनकी पूजा मनुष्यों के लिये शिवलोक जाने की सीढ़ी

है(ब्राह्मखण्ड – ब्राह्मोत्तरखण्ड अध्याय 2)।*

एक बार ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि शिवरात्रि किस समय होती है, उसका विधान एवं माहात्म्य क्या है? सूतजी उत्तर में कहते हैं कि माघ (फाल्गुन) मास के कृष्णपक्ष में जो चतुर्दशी तिथि आती है, उसकी रात्रि ही शिवरात्रि है। उस समय सर्वव्यापी भगवान् शिव सम्पूर्ण शिवलिंगों में विशेषरूप से संक्रमण करते हैं। जो – जो कामना लेकर मनुष्य इस व्रत का अनुष्ठान करता है, उसे अवश्य प्राप्त कर लेता है। जो निष्काम भाव से इसका पालन करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है। तथा वर्षभर के किये हुए पापों से छुटकारा पा जाता है। इस लोक में जो – जो चल अथवा अचल शिवलिंग हैं, उन सबमें उस रात्रि को भगवान् शिव का संक्रमण होता है इसीलिये उसे शिवरात्रि कहा गया है। यह भगवान् शंकर को बहुत प्रिय है। (संक्षिप्त स्कं. महापु. पृ. 937 – 938)

सम्पूर्ण देवताओं ने एक समय सब लोकों पर अनुग्रह करने की इच्छा से भगवान् शंकर से प्रार्थना की– "भगवन् समस्त पापों से भरे हुए इस कलिकाल में कोई एक दिन ऐसा बताइये, जो वर्षभर के पापों की शुद्धि कर सके। जिस दिन आपकी पूजा करके मनुष्य सब पापों से शुद्ध हो सकें। जिससे उनका किया हुआ होम, दान आदि हम लोगों को प्राप्त हो सके, क्योंकि कलिकाल में अशुद्ध मनुष्यों द्वारा दी हुई कोई भी वस्तु हमें नहीं मिल पाती।" (संक्षिप्त स्कं. महापु. पृ. 938)

उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि माघ (फाल्गुन) मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को रात के समय मनुष्यों के वर्षभर के पाप को शुद्ध करने के लिये भूतल के समस्त चल एवं अचल शिवलिंगों में संक्रमण करूँगा। जो उस रात में निम्नाकिंत मन्त्रों द्वारा मेरी पूजा करेगा, वह पापरहित हो जायगा। **ॐ सद्योजाताय नमः। ॐ वामदेवाय नमः। ॐ अघोराय नमः। ॐ ईशानाय नमः। ॐ तत्पुरुषाय नमः।** इस प्रकार गन्ध, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप और नैवेद्य द्वारा इन पाँच मन्त्रों से मेरे पाँच मुखों का पूजन करके निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ते हुए मन – ही – मन मेरा ध्यान करे और अर्घ्य प्रदान करे।

अर्घ्य मन्त्रः – गौरीवल्लभ देवेश सर्पाढ्य शशिशेखर।
वर्षपापविशुद्ध्यर्थमर्घ्यो मे गृह्यतां ततः।।

(संक्षिप्त स्क. पु., नागरखण्ड, उत्तरार्ध, अ. 221 पृ. 938)

'पार्वती देवी के प्रियतम, सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी तथा सर्पों की माला से विभूषित भगवान् चन्द्रशेखर! आप वर्षभर के पापों की शुद्धि के लिये मेरा अर्घ्य ग्रहण करें।'

अर्घ्यदान के पश्चात् भोजन, वस्त्र आदि के द्वारा ब्राह्मण का पूजन करें। उसे दक्षिणा दें। मंदिर में बैठकर धार्मिक उपाख्यान, कथा और शिवमहिमा सुनें। जो इस प्रकार शिवरात्रिव्रत करेगा, उसके सब पापों की शुद्धि के लिये यह सर्वोत्तम प्रायश्चित का कार्य करेगा।

भगवान् शंकर के इस उत्तर को सुनकर नारदजी ने भूतल पर पधारकर सब ओर सब लोगों को शिवरात्रिव्रत की महिमा सुनायी। शिवि, नल, नहुष, मान्धाता, धुन्धुमार, सगर, युयुत्सु तथा अन्य

महापुरुषों ने भी शिवरात्रिव्रत का पालन कर मनोवांछित पदार्थों को पाया। स्त्रियों में सावित्री, लक्ष्मीदेवी, सीता, अरुन्धती, सरस्वती, पार्वती, मेना, इन्द्राणी, दृषद्वती, स्वधा, स्वाहा, रति, प्रीति, गायत्री तथा अन्य देवियों ने भी शिवरात्रिव्रत के माध्यम से अभीष्ट मनोरथों को पाया है। गंगाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है। महादेवजी के समान दूसरा देवता नहीं है तथा शिवरात्रिव्रत से बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है। यह बिल्कुल सत्य है।

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति देवो हरोपमः।
शिवरात्रेः परं नास्ति तपः सत्यं मयोदितम्।।

(संक्षिप्त स्क. पु. नाग. उत्त. 221/84-85 पृ. 938)

(5) तीर्थ-प्रकरण

स्कंद पुराण को तीर्थों का पिटारा कहा जाय तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें सैकड़ों शैवतीर्थों की चर्चा विस्तार के साथ मिलती है। भगवान् शिव धर्मराज से कहते हैं कि जिन पुण्यात्मा मनुष्यों का आन्तरिक पाप नष्ट हो गया है, उनके मन में श्रद्धा का उदय होता है।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
निरस्तमस्ति भो धर्म श्रद्धा मनसि वर्तते।।

(संक्षिप्त स्क. पु. माहेश्वर. केदा. 31/29 पृ. 65)

फिर पूर्वपुण्य के प्रभाव से उनके हृदय में उत्तम तीर्थों में जाने और संत-महात्माओं का दर्शन करने की प्रबल इच्छा जाग्रत होती है। सब तीर्थों का सेवन, यज्ञों का अनुष्ठान और नाना प्रकार के दान आदि कार्य अन्तःकरण की शुद्धि के लिये ही करने योग्य हैं।

इस पुराण में अनेक मुक्तिदायक तीर्थों का वर्णन कर मानसतीर्थ एवं काशीतीर्थ की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। अगस्त्यजी लोपामुद्रा से कहते हैं कि मुक्ति के अनेक स्थान हैं जैसे प्रयाग, श्रीशैल, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार(हरिद्वार), अवन्ती, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, अमरावती, सरस्वती और समुद्र का संगम, गंगासागरसंगम, काँचीपुरी, त्र्यम्बकतीर्थ, सप्तगोदावरीतट, कालंजरतीर्थ, प्रभासक्षेत्र, बदरिकाश्रम, महालय, ॐकारक्षेत्र(अमरकण्टक), पुरुषोत्तमक्षेत्र(जगन्नाथपुरी), गोकर्णतीर्थ, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर, रामेश्वर, धारातीर्थ और काशी आदि। सत्य, दया आदि जो मानसिक-तीर्थ हैं, वे भी मोक्ष देनेवाले हैं। गयाक्षेत्र भी पितरों के लिये मोक्षदायक बताया गया है। वहाँ श्राद्ध करने से मनुष्य अपने पितरों व पितामहों के ऋण से मुक्त होते हैं।

लोपामुद्रा के पूछने पर अगस्त्यजी मानस-तीर्थों का विस्तार से वर्णन कर उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते है। “सत्य, क्षमा, इन्द्रियों को वश में रखना, सब प्राणियों पर दया करना, सरलता, दान, दम(मन का संयम) तथा संतोष-ये सब मानस-तीर्थ हैं। ब्रह्मचर्य का पालन, प्रिय वचन बोलना, ज्ञान, धैर्य और तपस्या को भी मानस-तीर्थ कहा गया है। तीर्थों में भी सबसे बड़ा तीर्थ है अन्तःकरण

की आत्यन्तिक शुद्धि। जल में डुबकी मारने का नाम ही स्नान नहीं है, जिसने इन्द्रिय-संयमरूप स्नान किया है, वही स्नान है और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।"

"जो लोभी है, चुगलखोर है, निर्दय है, दम्भी है और विषयों में फँसा है, वह सारे तीर्थों में भली-भाँति स्नान कर लेनेपर भी पापी और मलिन ही है। शरीर का मैल उतारने से ही मनुष्य निर्मल नहीं होता; मन के मल को निकाल देनेपर ही भीतर से सुनिर्मल होता है। जल-जन्तु जल में ही पैदा होते हैं और जल में ही मरते हैं, परन्तु वे स्वर्ग में नहीं जाते; क्योंकि उनके मन का मैल नहीं धुलता। विषयों में अत्यन्त राग ही मन का मैल है और विषयों से वैराग्य को ही निर्मलता कहते हैं। चित्त अन्तर की वस्तु है, उसके दूषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नान से शुद्धि नहीं होती। शराब के घड़े को ऊपर से चाहे सौ बार जल से धोया जाय, वह अपवित्र ही रहता है; वैसे ही जबतक मन का भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन और स्वाध्याय-सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रियाँ संयम में हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं। ध्यान से विशुद्ध हुए, राग-द्वेषरूपी मल का नाश करनेवाले ज्ञान-जल में जो स्नान करता है, वही परमगति को प्राप्त करता है।"

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे।
येषु सम्यङ्न्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्।।
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च।।
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ।।
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थविशुद्धिर्मनसः परा।।
....
....
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च।।
ध्यानपूते ज्ञानजले राग द्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।। (स्क. पु. काशीखण्ड पूर्वार्ध 6/29-41)*

पृथ्वीपर स्थित जो तीर्थ हैं उनकी पवित्रता के हेतु को समझाते हुए अगस्त्यजी लोपामुद्रा से कहते हैं कि जैसे शरीर के कुछ अंग पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के कुछ भाग अत्यन्त पुण्यमय हैं। पृथ्वी के अद्भुत प्रभाव, जल के विलक्षण तेज तथा मुनियों के निवासस्थान होने से तीर्थ

पुण्य-स्वरूप माने जाते हैं। अतः जो प्रतिदिन भूमण्डल के तीर्थों और मानस तीर्थों में भी स्नान करता है, वह परमगति को प्राप्त होता है। जिसके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति सभी संयम में हैं, वह तीर्थ के पूर्ण फल का भागी होता है। जो प्रतिग्रह नहीं लेता और जिस किसी भी वस्तु से सन्तुष्ट रहता है तथा जिसमें अंहकार का सर्वथा अभाव है, वह तीर्थफल का भागी होता है। जो दम्भी नहीं है, नये-नये कार्यों का प्रारंभ नहीं करता, थोड़ा खाता है, इन्द्रियों को काबू में रखता है और सब प्रकार की आसक्तियों से दूर रहता है, वह तीर्थफल का भागी होता है। जो क्रोधी नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलनेवाला और दृढ़तापूर्वक व्रत का पालन करनेवाला है, जो सब प्राणियों के प्रति अपने ही समान बर्ताव करता है, वह तीर्थफल का भागी होता है।

प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्।
अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते।।
अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते।।
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढ़व्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते।। (काशीख. पूर्वा. 6/49-51)*

भगवान् शंकर स्कंदजी से कहते हैं कि "जो चंचल बुद्धि हैं, लोभी हैं और तथ्य की बात नहीं कहते हैं, जिनके मन में परिहास, परधन और परस्त्री की इच्छा है तथा जिनका कपटपूर्ण आग्रह है, जो दूषित वस्त्र पहनते हैं, जो अशान्त, अपवित्र और सत्कर्मों के त्यागी हैं, उन मलिन-चित्त मनुष्यों को तीर्थ में कोई फल नहीं मिलता।"

ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः।
परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटाग्रहाः।।
मलचैलावृताशान्ताशुचयस्त्यक्तसत्क्रियाः।
तेषां मलिनचित्तानां फलमत्र न जायते।। (स्कं. पु. वैष्ण. बदरि. 6/69-70)*

पुनः कहा गया है कि "श्रद्धाहीन, पापात्मा (तीर्थ में पापी की-पाप करनेवाले की शुद्धि होती है पर जिसका स्वभाव ही पापमय है, उस 'पापात्मा' की नहीं होती), नास्तिक, सन्देहशील और हेतुवादी (केवल तर्क का सहारा लेनेवाला)-इन पाँचो को तीर्थफल की प्राप्ति नहीं होती।"

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽछिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः।। (स्क. पु. काशीख. पूर्वा. 6/54)*

उग्रश्रवा मुनि कहते हैं कि "जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयम में हों तथा जिसकी सभी क्रियाएँ निर्विकार भाव से सम्पन्न होती हों, वही तीर्थ का पूरा फल प्राप्त करता है।"

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।

निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स तीर्थफलमश्नुते।। (स्क. माहे. कुमा. 2/6)*

तीर्थों में किस प्रकार रहना चाहिये, इसे बताते हुए कहा गया है कि "(इस क्षेत्र में वास करनेवाले) ममतारहित, अंहकाररहित, आसक्तिरहित, परिग्रह से शून्य, बन्धु-बान्धवों में स्नेह न रखनेवाले, मिट्टी, पत्थर और सोने में समान बुद्धि रखनेवाले, मन, वाणी और शरीर के द्वारा किये जानेवाले त्रिविध कर्मों से सदा सब प्राणियों को अभय देनेवाले, सांख्य और योग की विधि को जाननेवाले, धर्म के स्वरूप को समझनेवाले और संशय-सन्देह से रहित हों।"

निर्ममा निरहङ्कारा निःसङ्गा निष्परिग्रहाः।
बन्धुवर्गेण निःस्नेहाः समलोष्ठाश्मकाञ्चनाः।।
भूतानां कर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः।
सांख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः।।

(स्क. पु. अवन्तिख. आव. मा. 7/32-33)*

जो तीर्थ का सेवन करनेवाला, धीर, श्रद्धालु और एकाग्रचित्त है, वह पहले का पापाचारी हो, तो भी शुद्ध हो जाता है। फिर जो पुण्यकर्म करनेवाला है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। तीर्थसेवी मनुष्य कभी पशुयोनि में जन्म नहीं लेता। कुदेश में भी उसका जन्म नहीं होता और वह कभी दुःख का भागी नहीं होता। वह स्वर्ग भोगता है और मोक्ष का उपाय प्राप्त भी कर लेता है। (स्क. पु. काशी. पू. अ. 6/52-53)*

तीर्थयात्रा की इच्छा करनेवाला मनुष्य पहले अपने घर में उपवास करके श्रीगणेशजी का यथाशक्ति पूजन करे। तत्पश्चात् पितरों, ब्राह्मणों और साधुपुरुषों की भी शक्ति के अनुसार पूजा करके व्रत का पारण करे। फिर प्रसन्नतापूर्वक संयम-नियम का पालन करते हुए तीर्थ में जाय। वहाँ पहुँचकर पितरों का भलीभाँति पूजन करे। ऐसा करनेवाला तीर्थ के यथार्थ फल का भागी होता है। तीर्थ में ब्राह्मण के पूर्ण गोत्र और विद्या की परीक्षा नहीं करनी चाहिये। यदि वह अन्न की इच्छा रखनेवाला हो, तब उसे भोजन अवश्य कराना चाहिये। तीर्थो में सत्तू, चरु, खीर, पिण्याक (तिल के चूर्ण) और गुड़ से पिण्डदान करना चाहिये। तीर्थ में अर्घ्य और आवाहन के बिना श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध के योग्य समय हो अथवा न हो, तीर्थ में पहुँचने पर श्राद्ध और तर्पण अविलम्ब करना चाहिये। अन्य कार्य के प्रसंग से तीर्थ में जानेपर भी वहाँ अवश्य स्नान करे। ऐसा करने से वह स्नानजनित फल को पाता है, तीर्थयात्रासंबंधी फल को नहीं। (वही 6/56-61)

श्रद्धालु मनुष्यों को तीर्थ यथार्थ फल देनेवाला होता है। जो दूसरे के लिये तीर्थयात्रा करता है, वह तीर्थजनित पुण्य के सोलहवें अंश को पाता है। कुश का एक पुतला बनाकर उसे तीर्थ के जल में नहलावे। जिस पुरुष के उद्देश्य से उस पुतले को नहलाया जाता है, वह तीर्थ-स्नानजनित पुण्य के आठवें अंश को प्राप्त कर लेता है। तीर्थ में जाकर उपवास तथा सिर का मुण्डन कराना चाहिये,

क्योंकि मुण्डन कराने से सिर पर चढ़े हुए पाप दूर हो जाते हैं। जिस दिन तीर्थ में पहुँचना हो उसके पहले दिन उपवास करना चाहिये और तीर्थ में पहुँचने के दिन पितरों के लिये श्राद्ध एवं दान करना चाहिये। कांची, काशी, माया(कनखल से लक्ष्मणझूलातक), अयोध्या, मथुरा, द्वारका और अवन्ती-ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। (स्क. पु. का. पू. 6/62-68)*

काशी काञ्ची च मायारव्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि।
मथुरावन्तिका चैताः सप्त पुर्योऽत्र मोक्षदाः।। (स्क. पु. काशी. पूर्व. 6/68)*

श्रीशैल नामक पर्वत का सम्पूर्ण प्रदेश मोक्ष देनेवाला है। केदारतीर्थ का महत्त्व उससे भी अधिक है। श्रीशैल और केदार से भी उत्तम मोक्षदायक तीर्थ प्रयाग है तथा प्रयाग से भी बढ़कर अविमुक्तक्षेत्र है। अविमुक्तक्षेत्र(काशी) में जैसा मोक्ष प्राप्त होता है, वैसा कहीं नहीं। इस प्रकार सभी पार्थिव तीर्थों में काशी को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। (वही 6/69-70)*

तीर्थयात्रा के उद्देश्य के संदर्भ में कहा गया है कि तीर्थयात्रा के प्रसंग से महापुरुषों के दर्शन के लिये जाना ही यात्रा का प्रधान उद्देश्य है। जिस भूभाग में संत-महात्मा निवास करते हैं वही 'तीर्थ' कहलाता है। (स्क. पु. माहे. कुमा. 13/10)*

मुरव्या पुरुषयात्रा हि तीर्थयात्रानुषङ्गतः।
सद्भिः समाश्रितो भूमिभागस्तीर्थतयोच्यते।। (स्क. माहे. कुमा. 13/10)*

(6) भगवान् शिव के विभिन्न तीर्थ

भूमिपर मनुष्यों को लौकिक सुख, स्वर्गभोग तथा कैवल्य तीनों की प्राप्ति हो सकती है; इनमें से प्रथम दो वस्तुएँ(लौकिक सुख और स्वर्गभोग) पुण्य क्षीण होनेपर प्रायः नष्ट हो जाती हैं, परन्तु तृतीय वस्तु(मोक्ष) का नाश नहीं होता। उसकी सिद्धि बुद्धि एवं विज्ञान के द्वारा बतलायी गयी है। किन्तु समस्त देहधारियों को विशुद्ध ज्ञान दुर्लभ है; वही ज्ञान किसी-किसी क्षेत्र में शास्त्र आदि पढ़े बिना ही केवल शिव के पूजनमात्र से सिद्ध हो जाता है। अतः जिस स्थान के माहात्म्य से समस्त शरीरधारियों को नियमपूर्वक शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो जाय, उसका वर्णन स्कन्द पुराण में इस प्रकार है। (शिवप्रधान तीर्थों के सेवन से उस ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्य संसार-बन्धन से छुटकारा पा जाता है; अतः शैवतीर्थों का वर्णन किया जाता है।)

'वाराणसीक्षेत्र' पाँच कोसतक परम पावन बताया गया है, जहाँ 'अविमुक्त' नामक महादेवजी 'विशालाक्षी' देवी के द्वारा पूजित होते हैं। वहीं 'कपालमोचन' तीर्थ है और वहीं काल भैरव का भी निवास है। उस काशीपुरी में मरे हुए मनुष्यों को शिवस्वरूप की प्राप्ति होती है। गया और प्रयाग भी सब सिद्धियों को देनेवाले तीर्थ कहे गये हैं; वहाँ पिण्डदान करने से पितर बहुत सन्तुष्ट होते हैं। केदारतीर्थ में भगवान् शंकर इस समय भी महिषरूप धारण करके रहते है और मनुष्यों का सर्वथा कल्याण करते हैं। 'बदरिकाश्रम' तीर्थ मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करनेवाला है। वहाँ देवी

पार्वती के साथ महादेवजी नर – नारायण द्वारा पूजित होकर रहते हैं। 'नैमिषारण्य' क्षेत्र में त्रिपुरासुर का विनाश करनेवाले देवाधिदेव महादेवजी निवास करते हैं। 'अमरेश' तीर्थ भी सब पुरुषार्थों का साधक बताया गया है, वहाँ 'ओंकार' नामवाले महादेवजी और 'चण्डिका' नाम से प्रसिद्ध पार्वतीजी निवास करती हैं। 'पुष्कर' नामक महातीर्थ में 'रुजोगन्धि' शिव और 'पुरुहूता' देवी निवास करती हैं। 'आषाढ़ी' नाम का पवित्र तीर्थस्थान है, वहाँ 'आषाढ़ेश' महादेव तथा 'रति' नामवाली देवी निवास करती हैं। 'दण्डिमुण्डी' नाम से प्रसिद्ध जो तीर्थस्थान है, वहाँ 'मुण्डी' महादेव और 'दण्डिका' देवी का निवास हैं। 'लाकुलि' नामक विशुद्ध तीर्थ है, जहाँ 'लाकुलीश' महादेव और 'सर्वमङ्गला' देवी निवास करती हैं। 'भारभूति' नामक स्थान में 'भार' नामक शिव और 'भूति' नामवाली पार्वती रहती हैं। 'अरालकेश्वर' नामक स्थान है, जहाँ 'सूक्ष्म' नामवाले शिव तथा 'सूक्ष्मा' नामवाली गिरिराजकुमारी निवास करती हैं। 'कुरुक्षेत्र' नामक स्थान है, जहाँ 'स्थाणु' नामवाले महादेव और 'स्थाणुप्रिया' नामवाली महादेवी का निवास हैं। 'कनखल' नामक उत्तम तीर्थस्थान है, जहाँ भगवान् शिव 'उग्र' नाम से और गिरिराजनन्दिनी 'उमा' नामसे निवास करती हैं। 'तालक' नामवाले तीर्थ में 'स्वयम्भू' महादेव और 'स्वायम्भुवी' महादेवी रहती हैं। 'अट्टहास' नामक महातीर्थ है, जहाँ सूर्यदेव ने भगवान् शंकर की पूजा करके अपना मनोरथ पूर्ण किया था। 'कृत्तिवास' – क्षेत्र का निवास महादेवजी के लिये कैलास की अपेक्षा भी अधिक प्रिय है। 'श्रीशैल' पर भगवान् महेश्वर 'भ्रमराम्बिका' देवी के साथ 'मल्लिकार्जुन' नाम से निवास करते हैं। ब्रह्माजी ने सृष्टिकार्य की सिद्धि के लिये इनका पूजन किया था।(संक्षिप्त स्क. पु. माहे. अरु. मा. पृ. 192 – 193)

'सुवर्णमुखरी' नदी के तटपर भगवान् शंकर 'कालहस्ती' नाम से प्रसिद्ध हैं; उनके साथ 'भृङ्गमुखरालका' नामवाली अम्बिका देवी रहती हैं। भगवान् व्यास ने वहाँ अम्बासहित भगवान् शिव की आराधना की थी। 'काञ्चीपुरी' में एक आम के वृक्ष के नीचे 'कामाक्षी' देवी के साथ भगवान् शिव 'कामशासन' नाम से निवास करते हैं। 'व्याघ्रपुर' नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जहाँ तिल्लीवन के भीतर नृत्य करते हुए भगवान् 'नटराज' की महर्षि पतञ्जलि उपासना करते हैं। 'सेतुबन्ध' नामक तीर्थ है, जहाँ भगवान् रामचन्द्रजी ने समस्त पापों का नाश करनेवाले महादेवजी की 'रामेश्वर' नाम से स्थापना की है। 'गजप्रपा' नामक एक तीर्थस्थान है, जहाँ भगवान् 'वृषभध्वज' सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने के लिये अश्वत्थ वृक्ष के नीचे विराजमान हैं। 'वृद्धाचल' – क्षेत्र में 'मणिमुक्ता' नदी के तटपर महादेवजी सदा निवास करते हैं। 'मध्यार्चन' नामक उत्तम स्थान पर मनोवाञ्छित वर देनेवाले भगवान् शंकर गौरीदेवी के साथ नित्य निवास करते हैं। भगवान् 'सोमनाथ' जहाँ निवास करते हैं, उस 'सोमतीर्थ' का नाम प्रसिद्ध है। वहाँ शरीर त्याग करनेवाले पुरुषों को पुनः संसार – बन्धन की प्राप्ति नहीं होती। 'सिद्धवट' – क्षेत्र में सिद्धपुरुष उत्तम 'ज्योतिर्लिंग' की पूजा करते हैं। 'कमलालय' – क्षेत्र में 'बाल्मीकेश्वर' की पूजा करने से लक्ष्मीदेवी ने अद्भुत ज्ञान प्राप्त किया था।(संक्षिप्त स्क. पु. माहे.

अरु. मा. पृ. 193)

'द्रोणपुर' नामक तीर्थ में कलियुग की समाप्ति पर समुद्र के क्षुब्ध होनेपर भगवान् पार्वतीपति नौका पर आरूढ़ होते हैं। 'ब्रह्मपुर' – क्षेत्र में ब्रह्माजी ने पुष्करिणी के तटपर महादेवजी की स्थापना की थी। 'कोटिक' नामक क्षेत्र में भगवान् चन्द्रशेखर भलीभाँति ध्यान करनेवाले पुरुषों के करोड़ों पाप का संहार करते हैं। 'गोकर्ण' – क्षेत्र के समीप भगवान् शिव की आराधना की अभिलाषा रखनेवाले परशुरामजी स्वर्गलोक का सुख भी नहीं चाहते। 'त्रिपुरान्तक' – क्षेत्र में तीननेत्रोंवाले भगवान् शिव अपना दर्शन करनेवाले पुरुषों के नरकभय का निवारण करते हैं। 'कांलजर' – क्षेत्र है, जहाँ निवास करनेवाले भगवान् 'नीलकण्ठ' भक्तों के भंयकर संसाररोग का निवारण करते हैं। 'प्रियाल' वन प्रसिद्ध क्षेत्र है, जहाँ भगवान् अम्बिकापति ने दूध की इच्छा रखनेवाले उपमन्यु को दूध का समुद्र ही दे डाला था। 'प्रभास' – क्षेत्र में भगवान् 'चन्द्रार्धशेखर' ने श्रीकृष्ण और बलभद्र से पूजित होकर अक्षय फल प्रदान किया है। 'वेदारण्य' तीर्थ में प्रजापति दक्ष ने मोक्ष के लिये भगवान् शंकर की प्रार्थना की थी। 'हेमकूट' भगवान् 'त्रिलोचन' का स्थान है, जहाँ तपस्या करनेवाले पुरुषों का पुनर्जन्म नहीं होता। 'वेणुवन' नामक क्षेत्र सब पापों का नाश करनेवाला है, जहाँ वंशलता के गर्भ से मुक्तामणिमय भगवान् शिव प्रकट हुए। भगवान् शिव का 'जालन्धर' नामक स्थान में तपस्या करके जलन्धर ने शिवगणों का आधिपत्य प्राप्त किया है। 'ज्वालामुख' नामक स्थान में ज्वालामुखी देवी ने भगवान् 'कालरुद्र' का पूजन किया है। 'भद्रपट' नाम से प्रसिद्ध एक क्षेत्र में भक्तों ने सम्पत्ति के लिये भगवान् त्रिलोचन का पूजन किया है। 'गन्धमादन' – क्षेत्र में भगवान् मृत्युंजय की पूजा करके मनुष्य निश्चय ही सुख प्राप्त करता है। शिवजी के 'गोपर्वत' नामक स्थान में उपासना करके पाणिनि वैयाकरणों में अग्रगण्य हो गये। 'वीरकोष्ठ' नामक क्षेत्र में तपस्या करके महर्षि बाल्मीकि ने कवियों में प्रधानता प्राप्त कर ली। महातीर्थ में भगवान् शंकर ने ब्रह्मा आदि देवताओं को पढ़ाया है। 'मयूरपुर' (मायावरम्) नामक माहेश्वर – तीर्थ है, जहाँ तपस्या करके इन्द्र ने वज्र प्राप्त किया। वेगवती नदी के तटपर 'श्रीसुन्दर' नामक क्षेत्र है, जहाँ कलियुग में भी देवाधिदेव महादेवजी शोभा पाते हैं। भगवान् शंकर के 'कुम्भकोण' नामक स्थानपर माघ मास में साक्षात् गंगा भी अपने पाप की शान्ति के लिये निवास करती हैं। गोदावरी नदी के तटपर 'त्र्यम्बक' नामक स्थान है, जहाँ कार्तिकेयजी ने तारकासुर को मारनेवाली शक्ति प्राप्त की है। श्रीपाटल में 'व्याघ्रपुर' नामक स्थान है, जहाँ त्रिशङ्कु मुनि ने जाति – शुद्धि के लिये 'गंगाधर' शिव का पूजन किया था। 'कदम्बपुरी' नामक क्षेत्र में महादेवजी ने मार्कण्डेयजी के लिये त्रिशूल से कालपर आघात किया था। 'अविनाश' – क्षेत्र में भगवान् शिव पार्वतीदेवी के साथ सदा निवास करते हैं। 'रक्तकानन' नाम से प्रसिद्ध जो क्षेत्र है, उसमें भगवान् शिव ने मित्र और वरुण देवता को वरदान दिया था। पाताल में 'हाटकेश्वर' – क्षेत्र है, जहाँ विरोचनकुमार बलि अपने अभिलषित पद की प्राप्ति

के लिये महादेवजी की पूजा करते हैं। भगवान् के प्रिय निवास 'कैलास' में यक्षराज कुबेर भक्तिभाव से भगवान् त्रिलोचन की पूजा करते हैं। (संक्षिप्त स्क. पु. पृ. 193-194)

इस पुराण में उपरोक्त तीर्थों में से अनेक का विस्तार से वर्णन किया गया है। भगवान् शिव के प्रमुख अड़सठ (68) क्षेत्रों के नाम तथा उनके कीर्तन का महत्त्व भी बताया गया है। इन क्षेत्रों के नाम इसी पुस्तक में अन्यत्र दिये गये हैं। इस क्षेत्र में अरुणाचलक्षेत्र, रामेश्वरक्षेत्र, धर्मारण्यक्षेत्र, गोकर्णक्षेत्र, काशीक्षेत्र, अवन्तीक्षेत्र, रेवाक्षेत्र, नागरक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र तथा महीसागर संगमक्षेत्र में स्थित अनेक शैव तीर्थों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें सेतुबन्ध रामेश्वरक्षेत्र की यात्रा के महत्त्व के साथ-साथ उसका क्रम भी बताया गया है। इसी प्रकार काशीखण्ड में काशी की उत्पत्ति-कथा, उसका माहात्म्य तथा उसकी श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। काशी में स्थापित अनेक शिवलिंगों की कथा तथा महात्म्य का वर्णन भी किया गया है।

काशी के प्रमुख 28 लिगों के नाम इस प्रकार हैं- ॐकारलिंग, त्रिलोचन, महादेव, कृतिवासा, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, केदारेश्वर, धर्मेश्वर, वीरेश्वर, कामेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, मणिकर्णीश्वर, अविमुक्तेश्वर और विश्वेश्वर महालिंग। इन चौदह लिंगों के समुदाय को मुक्तिक्षेत्र कहा गया है। प्रत्येक मास की प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशीतक इन प्रधान-प्रधान लिंगों की यात्रा करनी चाहिये। शैलेश्वर, संगमेश्वर, स्वर्लीनेश्वर, मध्यमेश्वर, हिरण्यगर्भेश्वर, ईशानेश्वर, गोप्रेक्षेश्वर, वृषभध्वजेश्वर, उपशान्तेश्वर, ज्येष्ठेश्वर, निवासेश्वर, शुक्रेश्वर, व्याघ्रेश्वर और जम्बुकेश्वर- इन चौदह लिंगों की पूजा वैशारव कृष्ण प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशीतक करनी चाहिये। उपरोक्त लिंगों में से अनेक का विस्तार हम इस पुराण में पाते हैं। इस पुराण में काशीयात्रा के कर्म का भी वर्णन किया गया है। (संक्षिप्त स्क. पु. पृ. 671)

आवन्त्यक्षेत्र के माहात्म्य के साथ-साथ महाकाल की परिक्रमा तथा उसकी यात्रा, आवन्त्य-क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण तीर्थों एवं शिवलिंगों की चर्चा विस्तार से की गयी है। नर्मदा एवं वरांगना के संगम-क्षेत्र में भगवान् शिव के अठ्ठाईस स्वयंभूलिंग हैं। इन लिंगों के नाम भी उस पुराण में दिये गये हैं। नर्मदा के उत्तरी तटपर त्रिपुरी नामक तीर्थ है, उस तीर्थ में 108 स्वयंभूलिंग विद्यमान हैं। यहाँपर महादेवजी ने त्रिपुर को मार गिराया था। (संक्षिप्त स्क. पु. पृ. 754)

नागर-क्षेत्र में स्थित हाटेश्वर-क्षेत्र तथा उसके अन्दर स्थित अनेक लिंगों की कथाओं को विस्तार से दिया गया है। कहा गया है कि गर्मी और वर्षा ऋतु में भगवान् शिव हिमालय के केदार-क्षेत्र में रहते हैं, किंतु शीतकाल में हाटकेश्वर-क्षेत्र में चले आते हैं। (संक्षिप्त स्क. पु. पृ. 884)

प्रभासरवण्ड के अन्तर्गत प्रभास-तीर्थ की सीमा, क्षेत्रविभाग एवं महिमा आदि का वर्णन किया गया है। सोमनाथ की महिमा, यात्राविधि तथा पूजा आदि का भी वर्णन किया गया है। प्रभास-क्षेत्र में स्थित लिंगों-संबंधी कथाओं का भी विस्तार से वर्णन किया गया है।

स्कन्द पुराण में काशीक्षेत्र की काफी विस्तार से चर्चा की गयी है। अतः हम भी यहाँ उसकी थोड़ी विशेष चर्चा करेंगे। काशी की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि निर्गुण शिव ने शक्ति के प्राकट्य के साथ ही काशीक्षेत्र की सृष्टि की (स्क. पु. का. ख. पू. 26/24)।[*] अर्थात् यह क्षेत्र सृष्टि के प्रारंभ से ही है। प्रलयकाल में भी शिव-पार्वती इस क्षेत्र का कभी त्याग नहीं करते हैं इसलिये इसे 'अविमुक्तक्षेत्र' कहते हैं (वही 26/27)।[*] यह क्षेत्र शिव के आनंद का हेतु है इसलिये इसका नाम आनंदवन भी है (वहीं 26/34)।[*] काशीक्षेत्र महादेवजी के त्रिशूल की नोकपर स्थित है। यह न तो आकाश में स्थित है और न भूमि पर ही। किंतु मूढ़ मनुष्य इसे इस रूप में नहीं देख पाते (स्क. पु. का. ख. पू. 22/85)।[*] प्रलयकाल में काशीपुरी को अपने त्रिशूल के अग्रभागपर रखकर भगवान् शिव इसकी रक्षा करते हैं अतः काशी कलि एवं काल से वर्जित है (स्क. पु. काशी. पू. 30/110)।[*] प्रलय-काल में एकार्णव का जल जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे इस क्षेत्र को शिवजी ऊपर उठाते जाते हैं। (स्क. पु. का. ख. पू. 22/84)[*]

पाँच कोस लंबे एवं पाँच कोस चौड़े इस काशीक्षेत्र में केवल भगवान् शिव की आज्ञा चलती है, यमराज आदि दूसरों की नहीं। शिवजी ने स्वयं कहा है "इस क्षेत्र में निवास करनेवाले पापी जीवों का भी मैं ही शासक हूँ, दूसरा नहीं (स्क. पु. का. पू. 26/101, 103)।"[*] जैसे आकाश के एक देश में स्थित होनेपर भी सर्वगत सूर्यमण्डल सबको दिखायी देता है, उसी प्रकार विश्वनाथ केवल काशी में स्थित होकर भी सर्वव्यापी होने के कारण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

काशी में निवास करनेवाला तथा वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। वेदान्त द्वारा जानने योग्य परब्रह्म परमात्मा के निदिध्यासन, सांख्य और योग के बिना ही काशी में मरा हुआ मुक्त हो जाता है। काल से काशी में शरीर छोड़नेवाला भगवान् शिव द्वारा तारकमन्त्र का उपदेश पाकर अमर हो जाता है। भगवान् शिव की आज्ञा के बिना काशीवास संभव नहीं है (स्क. पु. का. पू. 30/10-14)।[*] काशीपुरी की महिमा में कहा गया है कि 'काशी' यह दो अक्षरों का नाम प्रतिदिन प्रातःकाल जपनेवाले को इहलोक एवं परलोक दोनों में विजय प्राप्त हो लोकातीत पद की प्राप्ति होती है (स्क. पु. का. उ. 85/61-62)।[*]

शरीर की शुद्धि जल से होती है, मन की शुद्धि सत्य से, जीवात्मा की शुद्धि विद्या और तप से और बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है। आम व्यक्तियों को ज्ञान होना असंभव सा है। अतः कहा गया है कि ज्ञान मनुष्यों को काशीसेवन से प्राप्त होता है। काशीसेवन से भगवान् शिव की करुणा का उदय होता है जो कर्मबन्धन का उन्मूलन करने में समर्थ होती है।[1] भगवान् शिव ने ब्रह्मा एवं विष्णु को विश्वेश्वर लिंग की महिमा बताते हुए कहा है कि यह लिंग परम ज्योति है, यही परात्पर ब्रह्म है और यही अत्यन्त सिद्धिदायक मेरा स्थावर रूप है। जो मुझ विश्वनाथ के लिंगमय विग्रह का दर्शन करके

मन ही मन प्रसन्न होता है वह मेरे गणों में शामिल हो जाता है। (स्क. पु. का. पू. उ. 98/6-8)*

मुक्ति की इच्छावाले को काशीवास, शिवलिंग का यत्नपूर्वक पूजन, दम(इन्द्रियसंयम), दान और दया-ये सदा करना चाहिये। यहाँ मन से भी कभी पाप नहीं करना चाहिये योंकि यहाँ का किया हुआ पाप और पुण्य अक्षय होता है। अन्यत्र किया हुआ पाप काशी में नष्ट होता है, काशी में किया हुआ पाप अन्तर्गृह में नष्ट होता है परन्तु अन्तर्गृह में किया हुआ पाप पैशाच्यनरक की प्राप्ति करानेवाला है। अन्तर्गृह में पाप करनेवाला पुरुष यदि काशी से बाहर चला जाता है, तो उसे पिशाचनरक की प्राप्ति होती है, क्योंकि काशी में किया पापकर्म करोड़ों कल्पों में भी शुद्ध नहीं होता। परन्तु यदि यहीं उसकी मृत्यु हो, तो उसे 30 हजार वर्षोंतक रुद्रपिशाच होकर रहना पड़ता है। उसके बाद फिर यहीं रहते हुए उसे उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होगी और उसी ज्ञान से उसे मोक्ष प्राप्त हो जायगा(स्क. पु. का. ख. उ. 64/65-72)।*

ब्रह्माजी काशीपुरी की महिमा बताते हुए कहते हैं कि "यहाँ सदा सत्ययुग रहता है, सदा महापर्व लगा रहता है। यहाँ ग्रहों के अस्त-उदयजनित दोष की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ सदा उत्तरायण है। काशी में देहत्याग करनेवालों का नियन्त्रण स्वयं भगवान् विश्वनाथ करते हैं। जिन्होंने वहाँ रहकर भी पाप किये हैं, उनको दण्ड देनेवाले कालभैरव हैं। वहाँ कभी किसी को पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि वहाँ पाप करनेवालों को दारुण रुद्रयातना भोगनी पड़ती है, जो नरक से भी अधिक दुःसह है" (काशीखण्ड पूर्वार्द्ध अध्याय 22/86-87, 93-94)।*

जो मनुष्य दुसरों की निन्दा और परस्त्री की अभिलाषा करते हैं, उन्हें काशी का सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि कहाँ काशी और कहाँ वह नरक। जो वहाँ सदा प्रतिग्रह लेकर धनसंग्रह करने की अभिलाषा रखते हैं अथवा कपटपूर्वक दूसरों का धन हड़प लेना चाहते हैं, ऐसे लोगों को भी काशी का सेवन नहीं करना चाहिये। काशी में रहनेवाले पुरुषों को दूसरों को पीड़ा देनेवाले कर्म सदा के लिये त्याग देने चाहिये। यदि वहाँ भी वही करना हो, तो दुष्टचित्तवाले पुरुषों का काशी में वास किस काम का है। जो दूसरों से द्रोह की बात सोचते, दूसरों से डाह रखते और सदा दूसरों को सताया करते हैं, उनके लिये काशीपुरी सिद्धिदायक नहीं। जो अर्थार्थी या कामार्थी हैं, उनको इस मुक्तिदायक काशीक्षेत्र में नहीं रहना चाहिये। जो शिवनिन्दा और वेदनिन्दा में लगे रहते हैं तथा वेदाचार के विपरीत आचरण

---

1. अद्भिर्गात्राणिशुध्यंतिमनः सत्येनशुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यांभूतात्माबुद्धिर्ज्ञानेनशुद्ध्यति।।
तच्चज्ञानंभवेत्पुंसांसम्यक्काशीनिषेवणात्।
काशीनिषेवणेनस्याद्विश्वेशकरुणोदयः।।
ततोमहोदयावाप्तिः कर्मनिर्मूलनक्षमा।
अतः काश्यांप्रयत्नेनस्नानंदानंतपोजपः।। (स्क. पु. का. ख. उ. 96/72-74)*

करते हैं उन्हें वाराणसी में नहीं रहना चाहिये।"

परापवादशीलेन परदाराभिलाषिणा।
तेन काशी न संसेव्या क्व काशी निरयः क्वसः।।
अभिलष्यन्ति ये नित्यं धनं चात्र प्रतिग्रहैः।
परस्वं कपटैर्वापि काशी सेव्या न तैर्नरैः।।
परपीडाकरं कर्म काश्यां नित्यं विवर्जयेत्।
तदेव चेत् किमत्र स्यात् काशीवासो दुरात्मनाम्।। (स्कं. पु. काशी. पू. 22/97-99)*
परद्रोहधियो ये च परेर्ष्याकारिणश्च ये।
परोपतापिनो ये वै तेषां काशी न सिद्धये।। (स्कं. पु. काशी. पू. 22/103)*
अर्थार्थिनस्तु ये विप्र ये च कामार्थिनो नराः।
अविमुक्तं न तैः सेव्यं मोक्षक्षेत्रमिदं यतः।।
शिवनिन्दापरा ये च वेदनिन्दापराश्च ये।
वेदाचार प्रतीपा ये सेव्या वाराणसी न तैः।। (स्कं. पु. काशी. पू. 22/101-102)*

ब्रह्माजी आगे कहते हैं कि "इस पृथ्वीपर ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। वह ज्ञान न तो चान्द्रायण आदि व्रतों से प्राप्त होता है और न उत्तम देश-काल में सत्पात्रों को विधि एवं श्रद्धापूर्वक दिये हुए तुलापुरुष आदि मुख्य-मुख्य दानों से ही मिलता है। अहिंसा-ब्रह्मचर्य आदि यमों, शौच-सन्तोषादि नियमों, पूजन आदि सत्कर्मों तथा शरीर को सुखानेवाली कठोर तपस्याओं से, भी उसकी प्राप्ति नहीं होती। गुरुओं द्वारा दिये हुए महामन्त्रों के जप से, स्वाध्याय से, शास्त्रोक्त विधि से अग्निहोत्र करने से, गुरुओं की सेवा से, श्राद्ध से, देवपूजन से तथा अनेकों तीर्थों की यात्रा करने से भी उस ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि योग के बिना ज्ञान नहीं होता। गुरु के उपदेश किये हुए मार्ग से निरन्तर अभ्यासपूर्वक तत्त्वार्थ का विचार करना ही योग है। उस योग में भी अनेक प्रकार के विघ्न आया करते हैं, अतः एक ही जन्म में प्रायः ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती; परन्तु इस काशीपुरी में जप, तप और योग के बिना भी एक ही जन्म में कल्याण(मुक्ति) की प्राप्ति हो जाती है" (काशी. पू. अध्याय 22/105-112)।* ऐसा इसलिये संभव होता है कि यहाँ व्यक्ति को भगवान् शिव की कृपा प्राप्त हो जाती है। स्वप्रयास से मुक्ति प्राप्त करने में अनेक जन्म लग सकते हैं परन्तु भगवान् शिव की अहेतुकी कृपा से एक जन्म में या तत्काल भी संभव है।

त्रिदेवों की एकता

अन्य प्रमुख ग्रन्थों की भाँति इस शैवपुराण में भी ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र-इन तीनों की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन हुआ है। यह प्रतिपादन अनेक स्थलों पर बड़े स्पष्टरूप से हुआ है।

शिवपूजा की महिमा के प्रसंग में **लोमशजी** कहते हैं कि 'हे शिव! और हे हरे! इस प्रकार

भगवान् विष्णु एवं शिव का नाम लेने से परमात्मा शिव ने बहुतेरे मनुष्यों की रक्षा की है।'

हरे हरेति वै नाम्ना शम्भोश्चक्रधरस्य च।
रक्षिता बहवो मर्त्याः शिवेन परमात्मना।। (स्कं. पु. माहे. केदा. 5/87)*

अभिप्राय यह है कि व्यक्ति चाहे शिव का नाम ले चाहे हरि का दोनों को भगवान् शिव समान फल देते हैं। अर्थात् भगवान् शिव एवं हरि- इन दोनों में एकता है, भिन्नता नहीं। क्योंकि भगवान् शिव ही हरिरूप धारण करते हैं।

शिवलिंगपूजन की महिमा के सन्दर्भ में कहा गया है कि जो विष्णु हैं, उन्हें शिव जानना चाहिये और जो शिव हैं, वे विष्णु ही हैं। पीठिका (आधार अथवा अर्घा)[1] भगवान् विष्णु का रूप है और उसपर स्थापित लिंग महेश्वर का रूप है।

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेयो यः शिवो विष्णुरेव सः।।
पीठिका विष्णुरूपं स्यल्लिंगरूपी महेश्वरः। (स्कं. पु. माहे. केदा. 8/20-21)*

आगे नन्दीजी देवताओं से कहते हैं कि देवाधिदेव महादेवजी साक्षात् विष्णुरूप हैं, अतः आप लोग भगवान् विष्णु से प्रार्थना करें (ताकि वे अवतार लेकर रावण से आपलोगों को मुक्ति दिला सकें)। (माहे. केदा. 8/85)*

देवदेवो महादेवो विष्णुरूपी महेश्वरः।
सर्वे यूयं प्रार्थयंतु विष्णुं सर्वगुहाशयम्

यहाँपर भी यही अभिप्राय है कि भगवान् शिव विष्णुरूप में देवताओं की मदद कर सकेंगे। क्योंकि शिवजी का विष्णुरूप (अर्थात् शिवजी की शक्ति) ही जगत् के पालन एवं देवताओं के कार्य के लिये बार-बार अवतार ग्रहण करता रहता है। एकस्थल पर ओंकार की व्याख्या करते समय बताया गया है कि अकार ब्रह्मा, उकार भगवान् विष्णु तथा मकार भगवान् महेश्वर का प्रतीक माना गया है। ये तीनों गुणमय स्वरूप बतलाये गये हैं। ॐकार के मस्तकपर जो अनुस्वाररूप अर्द्धमात्रा है, वह सर्वोत्कृष्ट भगवान् सदाशिव का प्रतीक है।

अकारः कथितो ब्रह्मा उकारो विष्णुरुच्यते।
मकारश्च स्मृतो रुद्रस्त्रयश्चैते गुणाः स्मृताः।।
अर्द्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः। (स्क. पु. माहे. कुमा. 5/68-69)*

---

[1] आमतौर पर अर्घा या पीठ देवी का रूप माना जाता है। परन्तु देवी को विष्णु का रूप भी माना गया है। कई पुराणों में भगवान् विष्णु को शिव के वामार्द्ध से उत्पन्न हुआ माना जाता है और ब्रह्मा को दक्षिणार्द्ध से। चूँकि शिवजी का वामार्द्ध पार्वती देवी हैं, इसलिये विष्णुजी को देवी का ही रूपान्तर माना जाता है। कुछ पुराणों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शक्ति ही विष्णुरूप में अवतरित हैं। ऐसे स्थलों पर शक्ति एवं विष्णु की एकता की ओर संकेत है। चूँकि शिव एवं शक्ति में अभेद है, इसलिये विष्णु एवं शिव में भी अभेद है।

यहाँपर ॐ के माध्यम से तीनों देवताओं की एकता को समझाया गया है। भगवान् शिव कार्तिकेयजी से स्वयं कह रहे हैं कि "जो मैं हूँ, वही भगवान् विष्णु को जानना चाहिये तथा जो भगवान् विष्णु हैं, वही मैं हूँ। जैसे दो दीपकों में प्रकाश की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता, उसी प्रकार हम दोनों में भी किंचिन्मात्र अन्तर नहीं है। जो भगवान् विष्णु से द्वेष करता है वह मुझसे भी द्वेष करता है, जो उनका अनुगमन करता है, वह मेरा भी अनुगामी है। जो ऐसा जानता है, वही मेरा वास्तविक भक्त है।"

यो ह्यहं स हरिर्ज्ञेयो यो हरिः सोऽहमित्युत।।
नावयोरन्तरं किञ्चिद्दीपयोरिव सुव्रत।
एनं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि योऽन्वेत्येनं स माऽनुगः।। (माहे. कुमा. 33/45-46)*

इस पुराण में एक बड़ा रोचक प्रसंग आया है जिसमें तीनों देवों की एकता को स्पष्टरूप से समझाया ग़या है। उस प्रसंग को हम यहाँ यथावत् प्रस्तुत कर रहे हैं।

"करन्धम ने महाकाल से पूछा–ब्रह्मन्! कोई भगवान् शिव की, कोई विष्णु की तथा कोई ब्रह्माजी की शरण लेने से सर्वोत्कृष्ट मोक्ष की प्राप्ति बतलाते हैं; किंतु आप किससे मुक्ति मानते हैं?

महाकाल ने कहा–नरश्रेष्ठ! इन तीनों देवताओं की महिमा अपार है। इस विषय में बड़े–बड़े योगीश्वरों का भी मन मोहित हो जाता है, फिर मेरी तो बात ही क्या है? कहते हैं प्राचीन काल में कभी नैमिषारण्यनिवासी मुनियों को भी यह सन्देह हुआ था कि इन तीनों देवताओं में कौन सबसे श्रेष्ठ है। तब वे ब्रह्मलोक में गये। उसी समय भगवान् ब्रह्मा ने इस श्लोक का पाठ किया–

अनन्ताय नमस्तस्मै यस्यान्तो नोपलभ्यते।
महेशाय च द्वावेतौ मयि स्तां सुमुखौ सदा।।

(संक्षिप्त स्कं. पु. माहे. खं. कुमा. 36/4 पृ. 130)

अर्थात्–'उन भगवान् अनन्त को नमस्कार है, जिनका कहीं अन्त नहीं मिलता तथा जो सबके महान् ईश्वर हैं, उन भगवान् शंकर को भी नमस्कार है। ये दोनों देवता सदा मुझपर प्रसन्न रहें।'

इस श्लोक के अनुसार भगवान् विष्णु और शंकर की श्रेष्ठता निश्चय करके वे सब मुनि क्षीरसागर को गये। वहाँ योगेश्वर भगवान् विष्णु ने इस श्लोक का पाठ किया–

ब्रह्माणं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम्।।
सदाशिवं च वन्दे तौ भवेतां मङ्गलाय मे। (स्कं. पु. माहे. खं. कुमा. 41/6-7)*

अर्थात्–'मैं सम्पूर्ण भूतों में व्यापक परब्रह्मस्वरूप भगवान् ब्रह्मा और सदाशिव को प्रणाम करता हूँ। वे दोनों मेरे लिये मङ्गलकारी हों।'

यह श्लोक सुनकर उन ब्रह्मर्षियों को बड़ा विस्मय हुआ । वे वहाँ से हटकर पुनः कैलास पर्वत पर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् शंकर गिरिराजनन्दिनी उमा से इस प्रकार कह रहे हैं–

एकादश्यां प्रनृत्यामि जागरे विष्णुसद्मनि।।

सदा तपस्याश्चरामि प्रीत्यर्थं हरिवेधसोः। (स्कं. पु. माहे. खं. कुमा. 41/8-9)*

अर्थात्- 'देवि! मैं भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी की प्रसन्नता के लिये भगवान् विष्णु के मन्दिर में एकादशी को जागरणपूर्वक नृत्य करता हूँ तथा उन्हीं दोनों की प्रसन्नता के लिये सदा तपस्या किया करता हूँ।'

यह सुनकर वे मुनि लोग वहाँ से भी खिसक आये और आपस में कहने लगे- जब ये तीनों देवता ही एक दूसरे का पार नहीं पाते, तब उनके द्वारा उत्पन्न किये हुए महर्षियों की सन्तान-परम्परा में जन्म लेनेवाले हमलोगों की क्या गणना है? जो इन तीनों में से किसी एक को उत्तम, मध्यम या अधम बतलाते हैं, वे झूठ बोलनेवाले और पापात्मा हैं। उन्हें निश्चय ही नरक में जाना पड़ता है। राजेन्द्र! नैमिषारण्यवासी तपस्वी मुनियों ने ऐसा ही निश्चय किया। यह सत्य ही है और मेरा भी यही स्पष्ट मत है। सहस्त्रों जप करनेवाले, सहस्त्रों वैष्णव तथा सहस्त्रों शैव ब्रह्मा, विष्णु और शिव का अनुगमन(आराधन) करके अपने को संसार-बन्धन से मुक्त कर चुके हैं। इसलिये जिसका हार्दिक अनुराग जिस देवता के प्रति स्पष्टरूप से प्रकट हो, वह उसी का भजन करे। इससे वह पापरहित हो सकता है, यही मेरा सर्वोत्तम मत है। भावार्थ यह है कि तीनों देवों में अभेदत्व है।

तस्माद्यस्य मनोरागो यस्मिन्देवे भवेत्स्फुटम् ।

स तं भजेद्विपापः स्यान्ममेदं मतमुत्तमम्।।" (स्कं. पु. मा. खं. कुमा. 41/14)*

एक अन्य स्थलपर ब्रह्माजी देवताओं से कह रहे हैं कि एक समय शिवभक्तों का भगवान् विष्णु के भक्तों के साथ एक दूसरे को जीतने की इच्छा से बड़ा विवाद हुआ। तब भगवान् शंकर ने अपने भक्तों के देखते-देखते एक परम अद्भुतरूप धारण किया। वह उनका हरि-हरस्वरूप था। वे आधे शरीर से शिव और आधे शरीर से विष्णु हो गये। एक ओर भगवान् विष्णु के चिन्ह और दूसरी ओर भगवान् शिव के चिन्ह प्रकट हुए। एक ओर गरुड़ और दूसरी ओर नन्दी उपस्थित थे। एक ओर मेघ के समान श्यामवर्ण था तो दूसरी ओर कर्पूर के समान गौरवर्ण। दोनों में एकता का स्पष्टीकरण हुआ। इस प्रकार उनकी भेदबुद्धि नष्ट हो गयी। सबने अपने-अपने मत का आग्रह छोड़कर मोक्षमार्ग(अभेदज्ञान) की शरण ली। मन्दराचल पर्वतपर वह हरिहर-मूर्ति आज भी विद्यमान है(संक्षिप्त स्कं. पु. ब्राह्म. चातुर्मास्य माहात्म्य)।[1]

एक अन्य प्रसंग में भगवान् के पार्षद ब्राह्मण शिवशर्मा से कह रहे हैं कि जैसे विष्णु हैं, वैसे शिव हैं। शिव और विष्णु में तनिक भी अन्तर नहीं है।

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः।

अन्तरं शिवविष्णोश्च मनागपि न विद्यते ।। (स्कं. पु. काशी खं. पूर्वा. 23/41)*

---

[1] संक्षिप्त स्कंदपुराण, पृ. 498

काशीमहिमा के सन्दर्भ में किसी प्रसंगवश स्कंदजी अगस्त्यजी से कहते हैं कि "प्राकृत प्रलय की अवस्था में ब्रह्मा, विष्णु और शिव बने रहते हैं। कालस्वरूप परमात्मा प्रकृतिस्थ पुरुष को लीलापूर्वक अपने से अभिन्न कर लेते हैं। वे परम पुरुष परमेश्वर ही महाविष्णु कहलाते हैं। उन्हीं को महादेव कहते हैं। वे ही आदि, मध्य और अन्त से रहित शिव हैं। वे ही लक्ष्मीपति तथा वे ही पार्वतीपति हैं[1]" यहाँ पर भी भगवान् शिव एवं विष्णु की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन हुआ है।

जैगीषव्य मुनि भगवान् शिव की स्तुति में कह रहे हैं कि एकमात्र आप ही ईश्वर हैं, आप ही कर्त्ता हैं तथा आप ही पालन एवं संहार करनेवाले हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भिन्न-भिन्न देवता हैं, यह भेद-भाव मूर्खों की कल्पनामात्र है" (काशीखण्ड उत्त. अध्याय 63/64-65)।* यहाँ पर भी तीनों देवों की तात्त्विक एकता को ही व्यक्त किया गया है।

गरुड़ को भगवान् शिव वरदान देते समय कह रहे हैं कि हम ही वह विष्णु हैं और वह विष्णु ही हम हैं, हम दोनों में तुम्हारी भेद-दृष्टि नहीं होनी चाहिये।

असावहं स वै विष्णुर्मास्तु ते भेददृक् च नौ। (काशीख. पू. 50/144)*

भगवान् शिव स्वयं एक स्थलपर भगवान् विष्णु से कह रहे हैं कि विष्णु! जैसे मैं हूँ वैसे ही तुम हो।

यथाहं त्वं तथा विष्णो। (काशीख. पू. 27/183)*

भगवान् शिव की (लिंगरूपधारी ॐकारेश्वररूप की) स्तुति में ब्रह्माजी कहते हैं कि "आप ही विष्णुरूप से शंख, चक्र और गदा धारण करके तीनों लोकों का पालन करते हैं। .... आप ही सृष्टिरचना के ज्ञाता ब्रह्मा होकर इस विश्व की सृष्टि करते हैं। .... आप्र ही कल्प के अन्त में कालग्निरुद्र होकर महाप्रलय आरंभ करते हैं" (स्कं. पु. का. ख. उ. 73/131-134)।* यहाँपर भावार्थ यह है कि एक ही परमतत्त्व शिव अपने को सृष्टिकार्य के लिये तीन रूपों-ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र में प्रकट करता है, अतः इन तीनों देवों में तात्त्विक एकरूपता है।

इसी प्रकार यमराज भी भगवान् शिव की स्तुति में कहते हैं कि "आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप होकर इस विश्व की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं" (स्कं. पु. का. ख. उ. 78/36)।*

भगवान् शिव ने काशी में मोक्षलक्ष्मीविलास नामक प्रासाद बन जानेपर विरजापीठ से चलकर अन्तर्गृह में प्रवेश किया। वहाँ पर भगवान् विष्णु शिवजी से बोले कि मैं आपके चरणों से दूर न होऊँ। मधुसुदन का यह वचन सुनकर महादेवजी बोले- "मुरारे! मोक्षलक्ष्मी के आश्र्रयभूत इस स्थानपर तुम सदा मेरे समीप रहो। भक्तियुक्त होकर भी जो पहले तुम्हारी आराधना किये बिना मेरी सेवा-पूजा करेगा, उसकी मनोकामना कदापि सिद्ध न होगी।" अर्थात् काशी के विश्वेश्वरलिंग के अन्तर्गृह में

---

[1] संक्षिप्त स्कन्द पुराण पृ. 607

पहले विष्णु की पूजा के बाद ही भगवान् शिव अपनी पूजा स्वीकार करते हैं। ऐसा विष्णु को दिये उनके वरदान के कारण है। (स्कं. पुराण, काशी. उत्तरार्ध 97/30-31)

इसी प्रकार ब्रह्माजी सनकादि को द्वारका में कह रहे हैं कि "पुत्रों ! जिसने महादेवजीं का पूजन किया है, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। यदि भगवान् शिव की पूजा नहीं की जाय तो श्रीहरि अपनी पूजा को ग्रहण नहीं करते। अत: सब प्रकार से यत्न करके भगवान् शंकर का पूजन करना चाहिये; जिससे सदा भगवान् विष्णु के लिये की हुई पूजा पूर्णता को प्राप्त हो।"

येनार्चितो महादेवस्तस्य तुष्यति केशवः।
अनर्चिते नीलकण्ठे न गृह्णात्यर्चनं हरिः।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यतां नीललोहितः।
येन सम्पूर्णतां याति कृष्णपूजा कृता सदा।।

(संक्षिप्त स्कं. पु. प्रभा. द्वार. मा.15/4-5 पृ 1063)

ब्रह्माजी का उपरोक्त कथन केवल द्वारका में भगवान् कृष्ण की पूजा के सन्दर्भ में न होकर एक सामान्य कथन है। इसके पीछे भाव यह है कि भगवान् शिव एवं विष्णु में वस्तुत: अभेदत्व है। इनमें भेद करना ठीक नहीं है। इसीलिये ऊपर के अन्तिम दोनों उद्धरण भगवान् शिव एवं विष्णु के बीच घनिष्ठता, प्रेम एवं अभेदत्व का संकेत करते हैं।[1]

अब हम तीनों देवों की अभिन्नता का अन्तिम उदाहरण देखें। महादेवजी पार्वती से कहते हैं कि "जो भक्तिपूर्वक ब्रह्माजी की पूजा करता है, वह निश्चय ही मेरा पूजन करता है। जो उनसे द्वेष करता है, वह मुझसे ही द्वेष करता है और जो उनका पुजारी है, वह मेरा ही पूजक है। ब्रह्माजी की पूजा करनेवाले पुरुषों के द्वारा मैं और भगवान् विष्णु दोनों ही पूजित होते हैं। विष्णु सत्त्वगुणी हैं, ब्रह्माजी रजोगुणी हैं और रुद्र तमोगुणी हैं। ब्रह्माजी वायु, रुद्रदेव अग्नि तथा भगवान् विष्णु जलरूप हैं। मैं सामवेद का आश्रय हूँ। ब्रह्माजी ऋग्वेद धारण करते हैं तथा भगवान् विष्णु यजुर्वेद के स्वरूप एवं अथर्ववेद की कला के आधार हैं। .... ब्रह्माजी नाभि में, विष्णु हृदय में तथा सब भूतों का आधारभूत मैं चक्र (मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्रतक) में स्थित हूँ। हम लोगों के रूप में शक्तिविशेष से साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही स्थित हैं। ॐकार परब्रह्म है और गायत्री उत्तम प्रकृति है। ....इस प्रकार जो द्वैतरहित परब्रह्म को जानता है, वह सब कुछ जानता है। जो भेददर्शी है, वह नहीं जानता। परब्रह्म

---

[1] वास्तव में एक की पूजा दूसरे की पूजा के बिना अपूर्ण है क्योंकि एक ही तत्त्व के वे दोनों अभिन्न अंग हैं। भगवान् विष्णु सगुण शिव के वामार्द्ध माने जाते हैं। अत: शिव की पूजा करते समय उनमें विष्णु की भावना तथा विष्णु की पूजा करते समय उनमें शिव की भावना रखनी चाहिये। ऐसी भावना से युक्त होनेपर ही पूजा की पूर्णता होती है। दूसरे शब्दों में शिव एवं विष्णु में अद्वैत भाव को रखकर उपासना करने से ही पूजा की सार्थकता है।

तो वास्तव में एकरूप ही है, तथापि कार्यरूप से यह पृथक-सा (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप से) प्रतीत होता है। जो उससे द्वेष करता है, वह ब्रह्मद्वेषी कहलाता है। मेरे दाहिने अंग में ब्रह्मा और बायें अंग में विष्णु विराजमान हैं, जो इन दोनों से द्वेष करता है, वह मेरा ही द्वेषी है। ऐसा जानकर मन में भेदभाव न रखते हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र की एकरूपता से ही पूजा करनी चाहिये।" (संक्षिप्त स्कं. पु. प्रभासखण्ड पृ. ९९१)

उपसंहार

इस पुराण में भगवान् शिव के परब्रह्म एवं अपर ब्रह्म (सगुण एवं निर्गुण) दोनों ही रूपों का विस्तार से वर्णन है। उन्हें कूटस्थ, अचिन्त्य तत्त्व, निर्गुण, चैतन्यस्वरूप, सम्पूर्ण भूतों के साक्षी, मनवाणी से परे, अविनाशी, सर्वगुणातीत, निरंजन, एक, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप, जगत् के कर्त्ता, धारण कर्त्ता एवं संहारकर्त्ता, परमेश्वर, ॐकारस्वरूप, तीनों लोकों के अधीश्वर, सभी विद्याओं एवं ऐश्वर्यों को प्रदान करनेवाले, जगत् के बाहर-भीतर व्याप्त, पशुपति जो पाशबद्ध लोगों को मुक्त करते हैं, जालंधर एवं अंधक आदि राक्षसों का वध करनेवाले, अर्द्धनारीश्वर, कालकूट का पान करनेवाले, पंचमुख, विष्णु को सुदर्शनचक्र प्रदान करनेवाले, रामेश्वर, यज्ञस्वरूप, पृथ्वी, जल आदि अष्टमूर्ति धारण करनेवाले, त्रिनेत्र, त्रिशूलधारी, सबपर दया करनेवाले, वरदाता, कर्मफलदाता, कल्याणस्वरूप, लिंगरूप, जटा-जूट धारण करनेवाले, शान्तस्वरूप, ज्ञानात्मा, सर्वव्यापी, नीलकण्ठ, दाहिने अंग से ब्रह्मा एवं बायें से विष्णु को प्रकट करनेवाले, मृत्युञ्जय, देवता, दानव, असुर, यक्ष, विद्याधर, मनुष्य आदि सभी द्वारा पूज्य, वासुकिनाग को आभूषण के रूप में धारण करनेवाले, नीलकण्ठ, चन्द्रमा को शिरपर धारण करनेवाले, राहु के मुण्डों की माला धारण करनेवाले, गजचर्म धारण करनेवाले, वृषभपर सवारी करनेवाले, कर्पूरगौरवर्णवाले इत्यादि संज्ञाओं एवं विशेषणों से युक्त माना गया है।

भगवान् शिव भोग एवं मोक्ष के दाता हैं अत: उनकी उपासना से अनेक सुर-असुर, नाग, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व एवं मनुष्य आदि ने अपने मनोवांछित वर प्राप्त किये हैं। उदाहरण के लिये ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यमराज, नारद, कुबेर, राम, परशुराम, विश्वामित्र, सूर्य, चन्द्रमा, गरुड़, रावण, बाणासुर, विश्वकर्मा, लोमश, अगस्त्य, बृहस्पति इत्यादि लोगों ने भगवान् शिव से इच्छित वरों की प्राप्ति की है।

सूत संहिता में विष्णु के मुक्तिसंबंधी तीन प्रश्नों के उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के सालोक्य, सामीप्य, सायुज्यादि भेद से होनेवाली चारों प्रकार की मुक्तियों से श्रेष्ठ पाँचवें प्रकार की कैवल्य मुक्ति है जिसकी प्राप्ति ज्ञान से होती है। यह मुक्ति केवल भगवान् शिव ही दे सकते हैं। अन्य देव पूर्वोक्त चारों प्रकार की मुक्ति दे सकते हैं पर कैवल्य मुक्ति को नहीं। सूत संहिता के ज्ञानवैभवखण्ड में भगवान् विष्णु सत्यसन्ध के प्रति स्वयं कह रहे हैं कि संसारी जनों को मैं संसार से साक्षात् मुक्ति नहीं दे सकता इसी प्रकार अन्य ब्रह्मादि देव भी नहीं दे सकते। मैं और ब्रह्मादि

भगवान् शिव की आज्ञा से ही संसारमोचक हो सकते हैं क्योंकि कैवल्य मुक्ति देनेवाले मात्र भगवान् शिव हैं।

भगवान् शिव की भक्ति मानसिक, वाचिक और कायिक या लौकिकी, वैदिकी और आध्यात्मिक किसी भी प्रकार से की जा सकती है। मानसिक और आध्यात्मिकी भक्ति में ध्यान, धारणा, योग और ज्ञान आदि का सहारा लिया जा सकता है। वाचिक में कीर्तन और स्तुति आदि का तथा कायिक में व्रत, उपवास एवं इन्द्रियसंयमों का सहारा लिया जाता है। लौकिकी भक्ति में षोडशोपचार आदि के द्वारा पूजा की जाती है जबकि वैदिकी में वेदमन्त्रों द्वारा। ज्ञान एवं योगमार्ग की भक्ति सर्वसाधारण लोगों के लिये असाध्य है अतः ऐसे लोगों के लिये शिवजी का पूजन सबसे सरल उपाय है जिससे भोग एवं मोक्ष दोनों ही प्राप्त हो जाता है। भगवान् शिव का मन्दिर बनवाना, उसमें झाड़ू-सफाई का प्रबन्ध करना तथा मंदिर एवं पूजासंबंधी अन्य सभी प्रकार की व्यवस्था कराना नाना प्रकार के पुण्यों को जन्म देती है जिससे कालान्तर में मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इस पुराण में नाना प्रकार के स्तोत्र, कवच, व्रत तथा तीर्थों का वर्णन उनके माहात्म्य एवं विधि के साथ किया गया है। इनमें से शिवरात्रिव्रत तथा काशीतीर्थ की महिमा विशेष रूप से गायी गयी है।

काशीवास या तीर्थवास के दौरान कोई भी पाप नहीं करना चाहिये अन्यथा उन्हें रुद्रपिशाच बनकर यातना भोगनी पड़ती है जो यमयातना से भी दुःसह है। यम-यातमा के पश्चात् तीर्थ के प्रभाव से उसे मुक्ति प्रप्त होती है। पूर्णरूप से तीर्थ का लाभ आस्थावान् तथा चरित्रवान् को ही मिल पाता है। इसी प्रकार शिवपूजन में रुद्राक्ष, भस्म एवं बिल्वपत्र के महत्त्व को भी दर्शाया गया है। अन्त में पंचाक्षरमंत्र की भी बड़ी प्रशंसा की गयी है। कहा गया है कि इस मन्त्र के लिये देश, काल, व्यक्ति, दीक्षा, शुद्धि, अशुद्धि तथा मार्जन आदि किसी की भी आवश्यकता नहीं है तथा इसके जप से व्यक्ति मोक्षतक पहुँच जाता है। यहाँतक कि अनजान में भी भगवान् शिव का लिया नाम महान् फल देनेवाला कहा गया है।

शिवनिन्दा करनेवाले तथा सुननेवाले दोनों की निन्दा इस पुराण में की गयी है। दोनों ही सूर्य, चन्द्रमा की स्थितितक नरक में पड़े रहते हैं। पुनः यह भी कहा गया है कि शिवनिन्दक को किसी भी तीर्थ का फल प्राप्त नहीं होता अतः किसी भी व्यक्ति को(चाहे वह भगवान् के जिस किसी भी रूप की उपासना करे) शिवनिन्दा से बचना चाहिये।

इस पुराण में अनेक स्थलपर त्रिदेवों(ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) की एकता को बतलाया गया है। भगवान् शिव ही गुणों को धारणकर सृष्टि व्यवस्था के लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का रूप धारण करते हैं। ये तीनों देव तत्त्वतः एक हैं इनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है क्योंकि एक ही तत्त्व ब्रह्म या सदाशिव ने तीनों रूपों को धारण किया हुआ है। यह उपासक की रुचिपर निर्भर करता है कि परब्रह्म के किस सगुण-साकाररूप की वह उपासना के लिये चुनता है। सृष्टि के आदि में निर्गुण ब्रह्म ने अपने को

शिवरूप में प्रकट किया, तत्पश्चात् उस रूप ने अपने दाहिने एवं बायें अंगों से क्रमशः ब्रह्मा एवं विष्णु को प्रकट किया और उन दोनों के द्वारा सृष्टि का व्यापार चल पड़ा। इसी प्रकार सृष्टि के अन्त में महाप्रलय के समय सभी वस्तुएँ ब्रह्माजी में लीन हो जाती हैं फिर ब्रह्माजी विष्णु में और अन्त में विष्णुजी भगवान् शिव में लीन हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में सृष्टि के अन्त में सदाशिव ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों को अपने में लीन कर लेते हैं। तत्पश्चात् वे स्वयं अपना सगुणरूप त्यागकर निर्गुणरूप को स्वीकार कर लेते हैं। फिर जब सृष्टि-प्रक्रिया शुरू करनी होती है तो पहले सदाशिव निर्गुण से सगुण हो ब्रह्मा एवं विष्णु की सृष्टि करते हैं जिनसे पुनः सृष्टि-व्यापार चल पड़ता है। अतः निष्कर्ष यह है कि शिव संहारकारी देव होने के कारण सृष्टि के विनाश होनेतक बने रहते हैं। फिर सृष्टि प्रारंभ करते समय भी वे ही सबसे पहले प्रकट होते हैं क्योंकि प्रकृति की साम्यावस्था में विक्षोभ के बगैर सृष्टि-प्रक्रिया शुरू नहीं हो सकती तथा किसी अवस्था में विक्षोभ लाने का अर्थ है उस अवस्था को नष्ट कर देना। नष्ट करना भगवान् शिव का कार्य है। अतः बने हुए को बिगाड़ना तथा बिगड़े हुए को बनाना दोनों ही संहारकार्य के अन्तर्गत आते हैं।

यही कारण है कि भगवान् शिव को मृत्युञ्जय, अजन्मा, अविनाशी आदि विशेषणों से विभूषित किया जाता है। भगवान् शिव सृष्टि के आदि में प्रकट होनेवाला पहला तत्त्व तथा सृष्टि के प्रलयोपरान्त रहनेवाला अन्तिम तत्त्व है जबकि ब्रह्मा तथा विष्णुजी सृष्टि के आदि में प्रकट होनेवाले दूसरे तत्त्व तथा प्रलय के बाद बने रहनेवाले अन्तिम तत्त्व से पहलेवाले तत्त्व हैं।

(प्रस्तुत निबंध 'कल्याण' के 'संक्षिप्त स्कंदपुराणांक' तृतीय संस्करण, जो गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित है, तथा 'श्रीस्कंदमहापुराणम्' जो नाग पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित है, पर आधारित है। सभी तारांकित उद्धरण 'श्रीस्कंदमहापुराणम्' के हैं। वेंकटेश्वर प्रेसवाला संस्करण ही नाग पब्लिशर्स ने पुनः मुद्रित किया है।)

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

मांसाहार न करने की प्रशंसा

मासि मास्यश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
न खादति च यो मासं सममेतन्मतं मम।

अर्थात्-जो सौ वर्षोंतक प्रतिमास अश्वमेध यज्ञ करता है और जो कभी मांस नहीं खाता है-इन दोनों का समान फल माना गया है। (महाभारत, अनुशासन पर्व 115/14)

वामन महापुराण[1] में शिवतत्त्व

विष्णु पुराण (III/6/21-24), लिंग पुराण (1/39/61-63), भागवत (XII/13/4-8), ब्रह्मवैवर्त पुराण (IV/133/11-21); नारद पुराण (I/105/21-28), वराह पुराण (112/74-77), इत्यादि में वामन पुराण को महापुराणों की गणना में शामिल किया गया है जबकि गरुड एवं बृहद्धर्म पुराणों में इसे महापुराण न मानकर उपपुराण माना गया है। चाहे इसे हम महापुराण स्वीकार करें या न करें, इससे हमारे विवेचन में कोई फर्क नहीं पड़ता। हाँ एक बात यहाँ बता देना आवश्यक है कि महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन सभी पुराणों में वामन पुराण को महापुराण ही माना गया है। नारद पुराण के अनुसार इस पुराण के पूर्व भाग एवं उत्तर भाग दोनों को मिलाकर दस हजार श्लोक होने चाहिये। उत्तर भाग में एक-एक हजार श्लोकोंवाली चार संहिताएँ- माहेश्वरी, भागवती, सौरी और गाणेश्वरी- हैं। परन्तु वर्त्तमान में उपलब्ध वामन पुराण के श्लोकों की संख्या लगभग छह हजार है। नारद पुराण में प्राप्त वामन पुराण की विषय-सूची को देखने से लगता है कि इस पुराण के उत्तर भाग की संहिताएँ आजकल उपलब्ध नहीं हैं।

वामन पुराण मुख्यत: वैष्णव पुराण है क्योंकि इस पुराण के उपक्रम एवं उपसंहार दोनों में भगवान् विष्णु की महिमा का कथन किया गया है। इतना ही नहीं, इस पुराण में वैष्णवतत्त्वों की संख्या शैवतत्त्वों से ज्यादा है-उदाहरण के लिये विष्णुपरक स्तोत्रों की संख्या सत्रह है जबकि शिवसंबंधी स्तोत्रों की संख्या मात्र ग्यारह है। इसी प्रकार बहुत से शैवतत्त्वों का अभाव हम बंगाली तथा दक्षिण भारतीय संस्करणों में पाते हैं। अत: विद्वानों की राय में यह वैष्णव पुराण है। परन्तु स्कन्द पुराण की शंकर संहिता के 'शिवरहस्यखण्ड' के अनुसार यह पुराण शिवमहिमा का वाचक है। नारद, मत्स्य और स्कन्द पुराणों के अनुसार इसमें कूर्म कल्प की कथाएँ हैं (नारद पु. पू. भा./105/1-2; मत्स्य पु. 53/44-45; स्कन्द पु. 7/1/2/63-64)।

भगवान् शिव का स्वरूप

अन्य पुराणों की तरह इस पुराण में भी भगवान् शिव को परमतत्त्व माना गया है। वही परम तत्त्व निर्गुणरूप को त्यागकर ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारणकर जगत् की सृष्टि, पालन एवं संहार करता है। इस पुराण में हम परमतत्त्व या परब्रह्म के दोनों रूपों का वर्णन मिला-जुला एक साथ ही पाते हैं। परमतत्त्व सदाशिव अपनी शक्ति (या माया) का आश्रय लेकर सगुण एवं साकाररूप धारण करता है। फलस्वरूप उस एक तत्त्व के अनेक दिव्य एवं अदिव्य रूपों का निर्माण होता है। निर्गुणरूप में शिव जगत् के परमकारण, अव्यक्त, अप्रमेय, मृत्युञ्जय, सच्चिदानन्दस्वरूप, ॐकारस्वरूप, गुणातीत, निरञ्जन आदि विशेषणों से युक्त हैं। सगुणरूप में भगवान् शिव जगत्स्वरूप, सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा),

---

[1] प्रस्तुत लेख, सर्वभारतीयकाशिराजन्यास, दुर्ग रामनगर वाराणसी द्वारा 1968 ई. में प्रकाशित 'श्रीवामनपुराणम्', जो आनंद स्वरूप गुप्त द्वारा संपादित है, पर आधारित है।

धर्त्ता एवं हर्त्ता (विष्णु एवं रुद्ररूप) आदि विशेषणों से युक्त हैं। यहाँपर हम इस पुराण से ऐसे उद्धरणों को प्रस्तुत करने जा रहे हैं जो शिवतत्त्व के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों को स्पष्ट करते हों तथा उसे परमतत्त्व या ब्रह्म सिद्ध करते हों।

भगवान् शिव एक स्थलपर लोकपति, धनाध्यक्ष, महेश्वर, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ तथा सबके आदि कहे गये हैं (वाम. पु. 2/16, 17)। मंकणक मुनि ने भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें चराचर से श्रेष्ठ, आदिदेव, सभी देवों के आधार तथा जिनके संरक्षण में भयरहित हो देवगण आनंदपूर्वक जीवन यापन करते हैं- ऐसा कहा है।

नान्यं देवादहं मन्ये शूलपाणेर्महात्मनः।
चराचरस्य जगतो वरस्त्वमसि शूलधृक्।।
त्वदाश्रयाश्च दृश्यन्ते सुरा ब्रह्मादयोऽनघ।
पूर्वस्त्वमसि देवानां कर्त्ता कारयिता महत्।।
त्वत्प्रसादात् सुराः सर्वे मोदन्ते ह्यकुतोभयाः। (वाम. पु., सरोमाहात्म्य 17/17-19)

भगवान् शिव सबके स्वामी, वरदाता तथा परम पवित्र हैं (वाम. पु., सरोमाहात्म्य 22/16)। ब्रह्माजी ने भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें अनन्त, वरदाता, पिनाकी, महादेव, स्थाणु, परमात्मा, भुवनों के स्वामी, तारक, ज्ञानदाता देव, पुरुषोत्तम, शान्तिस्वरूप, सम्पूर्ण विश्व के स्वामी, देवाताओं के नायक, शूलपाणी तथा विश्वभावन (विश्व का जन्मदाता) कहा है।

अनन्ताय नमस्तुभ्यं वरदाय पिनाकिने।
महादेवाय देवाय स्थाणवे परमात्मने।।
नमोऽस्तु भुवनेशाय तुभ्यं तारक सर्वदा।
ज्ञानानां दायको देवस्त्वमेकः पुरुषोत्तमः।।
..।
घोर शान्तिस्वरूपाय..............................।।
नमस्ते देव विश्वेश नमस्ते सुरनायक।
शूलपाणे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन।। (वाम. पु., स. मा. 23/5-8)

किसी प्रसंग में ब्रह्मजी ने भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें महादेव, भूत-भव्य, भवाश्रय, त्रैलोक्यपालिन, पवित्रदेह, सभी पापों को दूर करनेवाले, चराचरगुरु, परम गोपनीय तथा जो गुह्य पदार्थ हैं उनको प्रकाश में लानेवाले, वैद्यों द्वारा दूर न होनेवाले रोगों को भी दूर करनेवाले, शोकों से रहित, जिनका नाम जपनेवाला भव-सागर में नहीं पड़ता, नित्यनित्य, त्रैलोक्यपालक, अप्रमेय, पर, अपरिमेय, समस्त भूतों के प्रिय, योगेश्वर, सब पापों के क्षय करनेवाले, विश्वरूप तथा शेषनाग को हार के रूप में धारण करनेवाले इत्यादि कहा है।

नमस्तेऽस्तु महादेव भूतभव्य भवाश्रय।

नमस्ते स्तुतिनित्याय नमस्त्रैलोक्यपालिने।।
नमः पवित्रदेहाय सर्वकल्मषनाशिने।
चराचरगुरो गुह्यगुह्यानां च प्रकाशकृत्।।
....
त्वन्नामजापिनो देव न भवन्ति भवाश्रयाः।।
....
योगेश्वराय देवाय सर्वपापक्षयाय च।।
....
भूतसंसारदुर्गाय विश्वरूपाय ते नमः।।
....
फणीन्द्रवरहाराय भास्कराय नमो नमः।। (वाम. पु., सरोमाहात्म्य 28/11-18)

देवता एवं ऋषियों ने एक स्थलपर भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें परमात्मा, अनन्तयोनि, लोकसाक्षी, परमेष्ठि, भगवान्, क्षेत्रज्ञ, परावरज्ञ(गत और अनागत को जाननेवाला), ज्ञानज्ञेय, सर्वेश्वर, महाविरंचि, महाविभूति, महाक्षेत्रज्ञ, सर्वभूतावास, आदिदेव, महादेव, सदाशिव, ईशान, दुर्विज्ञेय, महाभूतेश्वर, परमेश्वर, महायोगेश्वर, त्र्यम्बक, परब्रह्म, परमज्योति, ॐकार, वषट्कार, परमकारण, सर्वगत, सर्वशक्तिमान्, सर्वदेव, अजन्मा, अग्निसोमात्मक, पवित्र, महामायाधर, कामहन, परमहंस, संहारकर्त्ता, सुर-सिद्ध द्वारा अर्चित, सर्वलोकवरप्रद, अनुग्रह करनेवाले, सर्वयज्ञमय, भक्तों पर दया करनेवाले, त्रिलोचन, जटाधर, नीलकण्ठ, चन्द्रार्द्धधर, उमाशरीरार्द्धधर, गजचर्मधर तथा भक्तवत्सल आदि कहा है।

नमस्ते परमात्मन् अनन्तयोने लोकसाक्षिन्
परमेष्ठिन् भगवन् सर्वज्ञ क्षेत्रज्ञ परावरज्ञ
ज्ञानज्ञेय सर्वेश्वर महाविरिञ्चि महाविभूते
महाक्षेत्रज्ञ महापुरुष सर्वभूतावास
मनोनिवास आदिदेव महादेव सदाशिव
ईशान दुर्विज्ञेय ....महाभूतेश्वर
परमेश्वर महायोगेश्वर त्र्यम्बक महायोगिन्
परब्रह्मन् परमज्योतिः ब्रह्मविदुत्तम ॐकार
वषट्कार .... परमकारण
सर्वगत सर्वदर्शिन् सर्वशक्ते सर्वदेव अज
....
पवित्र ....महामायाधर .... महेश्वर

.... सर्वलोकवरप्रद सर्वानुग्रहकर
.... सर्वयज्ञमय ....
त्रिलोचन जटाधर नीलकण्ठ चन्द्रार्धधर
उमाशरीरार्धहर गजचर्मधर ....।। (वाम. पु., सरोमाहात्म्य 23/36)

इस पुराण (स. मा. 26/62-162) में वेन ने स्थाणु (भगवान शिव) देव की स्तुति सहस्र नामों द्वारा की है। इस स्तुति में वह भगवान् शिव के सैकड़ों विशेषणों का प्रयोग करता है। ये विशेषण भगवान् शिव को अपर एवं परब्रह्म या परमतत्त्व सिद्ध करते हैं। अर्थात् इस स्तुति में भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की झलक मिलती है।

यहाँपर भगवान् शिव को ईशान, अजन्मा, चन्द्रमा को धारण करनेवाले, महादेव, जगत्पति, देवदैत्यपूजित, त्र्यक्ष, सभी दिशाओं में हाथ, पैर, कान तथा मुखवाला, समस्त जगत् को आवृत्त करनेवाला, ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, वरुण तथा सूर्यस्वरूप, कार्य, कारण, क्रिया, प्रभव एवं प्रलय, सत् एवं असत्स्वरूप, पशुपति, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षदाता, कैवल्यरूप, पापों का नाश करनेवाले, सब कुछ प्रदान करनेवाले, महासत्त्व (निरपेक्ष सत्), महाकाल, अखिल ब्रह्माण्ड के कर्त्ता, पालन एवं संहारकर्त्ता, ब्रह्म, ऋक्, यजुः एवं सामवेदस्वरूप, वेदों एवं उपनिषदों द्वारा स्तुत्य, आदि, अन्त, वेदों की गायत्री तथा प्रणव, भूतात्मा, जगन्नाथ, ब्रह्मा, गोविन्द और ऋषियों द्वारा अगम्य तथा भक्तवत्सल आदि कहा गया है। (वाम. पु., सरोमाहात्म्य 26/62-162)

वेनकृत सहस्रनाम के एकाध श्लोकों को देखें-

स्रष्टा चराचरस्यास्य पाता हन्ता तथैव च।
त्वामाहुर्ब्रह्म विद्वांसो ब्रह्म ब्रह्मविदां गतिम्।। (वाम. पु., स. मा. 26/107)
न ब्रह्मा न च गोविन्दः पौराणा ऋषयो न ते।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन शंकर।। (वाम. पु., स. मा. 26/146)

अर्थात्-ब्रह्मज्ञानी लोग आपको ही चराचर जगत् का सर्जक, पालक, संहारक, ब्रह्म तथा ब्रह्मवादियों की परमगति कहते हैं। हे शंकर! आपके माहात्म्य को यथातथ्य रूप से न तो ब्रह्मा, गोविन्द और न ही पुराणों के ज्ञाता ऋषिगण ही जान सकते हैं।

अंगिरस भगवान् शिव के विवाह का प्रस्ताव लेकर जब हिमवान् के पास जाते हैं तो उस समय वे शिव की विशेषता बताते हुए उन्हें सर्वात्मा, त्रिशूलधारी, त्रिनेत्रधारी, वृषवाहन, यज्ञभोक्ता, प्रभु, ईश्वर, शिव, हर, पशुपति आदि कहा है। (वाम. पु., स. मा. 26/34-36)

एक अन्य स्थलपर भगवान् शिव को त्रिशूलधारी, पिनाकी, मृगचर्मधारी, कालशत्रु तथा हार एवं कुण्डल के रूप में नागराजों को पहननेवाला कहा गया है। (वाम. पु. 27/31-32)

अंधकासुर से युद्ध के दौरान भगवान् शिव ने दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य को निगल लिया था। उस समय शम्भु के उदर में शुक्राचार्य ने शिव की स्तुति करते हुए उन्हें वरदाता, गुणों के धाम, लोकनाथ,

कालशत्रु, विश्वरूप, ईश्वर, श्मशानवासी, भस्मधारी तथा पशुपति आदि कहा है।(वाम. पु. 43/29-32)

अन्धकासुर ने, जो पिछले जन्म में राजा वेन था, शिव के त्रिशूलपर लटके-लटके सूख जाने तदनन्तर ज्ञान होनेपर, भगवान् शिव की स्तुति की। इस स्तुति में भगवान् शिव को उसने तीनों लोकों की रक्षा करनेवाला, दस भुजाओंवाला, शेषनाग का हार पहननेवाला, सर्वेश्वर, विश्वरूप, सुरासुरवन्दित, भूतों के स्वामी, त्रिदेवस्वरूप, त्रिवेदस्वरूप, अव्यय, वेदों के छः अंगो के ज्ञाता, कर्त्ता, धाता, मंगलमूर्ति, ओंकारस्वरूप, ईशान, ध्रुव, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वषट्कार, धर्म, सुरश्रेष्ठ, सूक्ष्म, व्यक्तरूप, अव्यक्तरूप, ईश्वर, स्थावर-जंगम सभी में व्याप्त, आदि, अन्त एवं मध्य, अनादि, अनन्त, सर्वव्यापी, पशुपति तथा जितक्रोध कहा है।(वाम. पु. 44/52-66)

अन्धाकासुर की स्तुति के कुछ अंशों को देखें-

त्वं कर्त्ता चैव धाता च त्वं जयस्त्वं महाजयः।
त्वं मङ्गल्यस्त्वमोंकारस्त्वमीशानो ध्रुवोऽव्ययः।।
त्वं ब्रह्मा सृष्टिकृन्नाथस्त्वं विष्णुस्त्वं महेश्वरः।
त्वमिन्द्रस्त्वं वषट्कारो धर्मस्त्वं च सुरोत्तमः।।
सूक्ष्मस्त्वं व्यक्तरूपस्त्वं त्वमव्यक्तस्त्वमीश्वरः।
त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम्।। (वाम. पु. 44/61-63)

अर्थात्-आप ही कर्त्ता, पालनकर्त्ता, जय तथा महाजय हैं। आप ही मंगलमूर्ति, ओंकार, सबके स्वामी, ध्रुव एवं अव्यय हैं। आप ही ब्रह्मा, सृष्टिकर्त्ता, विष्णु, महेश्वर, इन्द्र, वषट्कार, धर्म एवं सुरश्रेष्ठ हैं। आप ही सूक्ष्म, व्यक्त एवं अव्यक्तरूप तथा ईश्वर हैं। आप ही जगत् के समस्त स्थावर-जंगम में व्याप्त हैं।

उपरोक्त उद्धरणों को देखने से यह स्पष्ट है कि भगवान् शिव जगत् के मूलतत्त्व अथवा परमब्रह्म हैं। वे ही सगुणरूप धारणकर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि कहलाते हैं। रुद्ररूप में स्वयं भगवान् शिव अपने पूर्ण अंश में अवतरित हो सती तथा पार्वती से विवाहकर नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं। वे सदाशिव, जो निर्गुण हैं, सगुण रुद्ररूप धारण करनेपर त्रिनेत्रधारी, बाघाम्बरधारी, चन्द्रमा को मुकुट में धारण करनेवाले, जटाजूट धारण करनेवाले, दस भुजावाले, त्रिशूल एवं पिनाक धारण करनेवाले, शेषनाग को गले में हार के रूप में धारण करनेवाले तथा कैलासवासी कहलाते हैं।

शिवोपासना

भगवान् शिव की उपासना से भोग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। भगवान् शिव को एक स्थलपर धनाध्यक्ष(2/16-17), अन्य स्थलोंपर वरदाता(वाम. पु. स. मा. 22/16, 23/5 इत्यादि), कहींपर देवताओं की प्रसन्नता का कारण उनकी कृपा(स. मा. 17/19), कहींपर उन्हें तारक(स. मा. 23/6, 28/14), कहींपर ज्ञानदाता(स. मा. 23/6), कहींपर पापों को दूर करनेवाला(स. मा.

28/12, 16), और कहींपर उन्हें वैद्यों द्वारा ठीक न होनेवाले रोगों को भी दूर करनेवाला (स. मा. 28/13) कहा गया है। इन सभी उद्धरणों की चर्चा पहले भी हो चुकी है, अतः उनका पुनः उल्लेख करना अनावश्यक है। उपरोक्त सभी विशेषताओं से युक्त होने के कारण ही भगवान् शिव को भोग एवं मोक्षदाता कहा जाता है। पुनः उनको कल्याणस्वरूप तथा आशुतोष या शीघ्र प्रसन्न होनेवाला कहा जाता है। इन सब विशेषताओं के कारण ही शिवोपासना सुगम, श्रेष्ठतर एवं वरणीय है।

भगवान् शिव की उपासना से देव-दानव-मानव आदि सभी ने अपने मनोवांछित फल प्राप्त किये हैं। उदाहरण के लिये रावण (वाम. पु. स. मा. 25/15), तक्षक (स. मा. 25/3), विभीषण (स. मा. 25/20), खर, दूषण एवं त्रिशिरा (स. मा. 25/22-23), हारित, वापित, मृकंडु, आदित्य, चित्रांगद, रम्भा आदि (स. मा. 25/26-27, 31-33 आदि), इन्द्र, पराशर, व्यास, वायु, कार्तवीर्य, हनुमान्, मित्र, वरुण और विष्णु आदि (स. मा. 25/36-45) तथा ब्रह्मा (स. मा. 28/21)।

(1) लिंगपूजा का महत्त्व

ऊपर के (गद्यांस में) दिये गये उद्धरणों में जिन-जिन लोगों का उल्लेख है वे सभी लिंगोपासना द्वारा ही भगवान् शिव को प्रसन्न कर वरदान पाये हैं। इन उद्धरणों के अतिरिक्त भी ऐसे अनेक स्थल हैं जिनमें लिंगोपासना का उल्लेख है। भगवान् शिव की पूजा मुख्यतः लिंगपूजा ही है। 'सरोमाहात्म्य' खण्ड के 28 अध्यायों में अनेक शिवलिंगों की स्थापना का प्रसंग फैला हुआ है। ये शिवलिंग देव, दानव, मानव, राक्षस,. नाग, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा अप्सरा आदि द्वारा स्थापित तथा पूजित हैं। लिंगपूजा से ब्रह्माजी ने अपनी पुत्री के प्रति उत्पन्न वासना के पाप से मुक्ति पायी (वा. पु. स. मा. 28/21), विष्णु भगवान् को सुदर्शन चक्र की प्राप्ति हुई (स. मा. 25/43 तथा वाम. पु. 56/20-21) तथा शुक्राचार्य को संजीवनीविद्या प्राप्त हुई (वाम. पु. 36/43)।

दारुवन में लिंग के पतनोपरान्त ऋषियों तथा देवों की प्रार्थनापर भगवान् शिव प्रसन्न होकर लिंगोपासना की महिमा बताते हुए कहते हैं कि "जो लोग भक्ति की भावना का आश्रय ग्रहणकर मेरे लिंग का पूजन करेंगे उनको कभी भी कुछ दुर्लभ नहीं होगा। चेतनरूप से किये हुए पापों से भी लिंगपूजा द्वारा शुद्धि हो जाती है, इसमें किसी बात का संदेह नहीं है।"

ये लिङ्‌गं पूजयिष्यन्ति मामकं भक्तिमाश्रिताः।
न तेषां दुर्लभं किंचिद् भविष्यति कदाचन।।
सर्वेषामेव पापानां कृतानामपि जानता।
शुद्ध्यते लिङ्‌गपूजायां नात्र कार्या विचारणा।। (वाम. पु. सरोमा. 23/11-12)

वामन पुराण में दारुवन में लिंगपतन संबंधी दो तरह की कथाएँ हैं। दूसरी कथा का वर्णन छठे अध्याय में है। वहाँपर स्वयं भगवान् विष्णु ने देवताओं तथा चारों वर्णों के लोगों को लिंगपूजा का विधान किया है। (वाम. पु. 6/85-86)

ततश्चकार भगवांश्चातुर्वर्ण्यं हरार्चने। (वाम. पु. 6/86)

(2) शैवतीर्थ

इस पुराण में कुरूक्षेत्र एवं पृथुदक स्थित तीर्थों का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत आनेवाले सैकड़ों तीर्थों संबंधी कथाएँ तथा उनके माहात्म्य का वर्णन किया गया है। सरो माहात्म्य के 28 अध्यायों में कुरुक्षेत्र से संबंधित तीर्थों का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। उदाहरण के लिये ब्रह्मसर, सन्निहित, सरस्वती, स्थाणु, रामह्रद, कुरुजांगल तथा पृथुदक आदि।

स्थाणु तीर्थ की महिमा बताते हुए इसके इर्द-गिर्द स्थापित अनेक लिंगो की भी चर्चा की गयी है। स्थाणुवट तथा शिवलिंग, जो वहाँ आस-पास में स्थापित हैं, उनके दर्शनमात्र से मुक्ति प्राप्त हो जाती है (वाम. पु. स. मा. 22/7-8)। सन्निहित तीर्थ को पवित्रतम बताते हुए कहा गया है कि यहाँ स्थापित लिंग के दर्शनकर तीनों वर्णों के लोग मुक्त हो जाते हैं (स. मा. 24/2-3)। स्थाणु एवं सन्निहित तीर्थों के आस-पास करोड़ों की संख्या में शिवलिंग ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवों, अनेक दानवों एवं असुरों, नागों, किन्नर एवं अप्सराओं आदि द्वारा स्थापित किये गये हैं (स. मा. 25/48-50)। केदार तीर्थ की महत्ता का वर्णन 34 वें अध्याय में किया गया है (वाम. पु. 34/11-13)।

(3) शतरुद्रिय तथा शिवनाममहिमा

शिवोपासना में शतरुद्रिय की महिमा से सभी लोग परिचित हैं। इसके बिना रुद्राभिषेक आदि कर्म संभव नहीं है। यजुर्वेद में निहित यह रुद्राध्याय वैदिक काल से ही शिवमहिमा का द्योतक रहा है। भगवान् शिव की प्रसन्नता को प्राप्त करने के लिये इसका प्रयोग अनेक प्रकार से किया जाता है। शतरुद्रिय की महत्ता का उल्लेख इस पुराण में भी पाया जाता है।

उदाहरण के लिये वेन अपनी स्तुति में भगवान् शिव का यजुर्वेद के शतरुद्रिय से तादात्म्य करता है। अर्थात् शतरूद्रिय शिवस्वरूप का ही बोधक है (वाम. पु. स. मा. 26/121)। पुनः दक्षयज्ञविध्वंस के समय जब अनेक प्रमुख देवता डरकर भाग गये तब ऋषियों ने भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिये शतरुद्रिय का पाठ शुरू कर दिया (वाम. पु. 5/6)। विपत्ति के समय अथवा रुद्र के कोप से बचने के लिये अथवा उन्हें प्रसन्न करने के लिये उस समय ऋषियों के पास शतरुद्रिय के जप से बेहतर कोई अन्य उपाय नहीं दीख पड़ा। अतः इससे शतरुद्रिय की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।

भगवान् शिव के नाम की अनन्त महिमा है। अन्य पुराणों की भाँति इस पुराण में भी स्पष्टरूप से भगवान् के नाम-जप की महिमा का बखान किया गया है। कहा गया है कि शिव के नाम का जप करने से आदमी भवसागर से पार हो जाता है। ब्रह्माजी भगवान् शिव की स्तुति करते हुए एक स्थल पर कहते हैं कि-

त्वन्नामजापिनो देव न भवन्ति भवाश्रयाः।। (वाम. पु. स. मा. 28/14)

भावार्थ है कि "आपका नाम जपनेवाला संसार-चक्र से छूट जाता है।"

(4) वेनकृत शिवसहस्त्रनाम

यों तो भगवान् शिव के सभी नाम समानरूप से भवसागर को पार कर सकते हैं पर हजार नामों का समूह-विशेष (जिसे सहस्त्रनाम कहा जाता है) एक प्रमुख महत्त्व रखता है। भगवान् शिव के अनन्त नामों में से चुने हुए विशिष्ट नाम-समूहों से निर्मित अनेक प्रकार के सहस्त्रनाम हम अलग-अलग पुराणों वा ग्रन्थों में पाते हैं। इस पुराण में वेनकृत सहस्त्रनाम की महिमा बताते हुए कहा गया है कि जो कोई भी इसका पाठ करता है अथवा उसे श्रवण करता है उसके सभी पाप एवं अशुभ दूर हो जाते हैं तथा वह दीर्घायु प्राप्त करता है।

जिस तरह सब देवों में भगवान् शिव विशिष्ट हैं उसी प्रकार वेननिर्मित यह स्तोत्र भी अन्यों से श्रेष्ठ है।

यथा सर्वेषु देवेषु विशिष्टो भगवाञ्छिवः।।
तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां वेननिर्मितः। (वाम. पु. स. मा. 27/8-9)

इस स्तोत्र से पुरुष को यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, धन, मान आदि की प्राप्ति हो सकती है बशर्ते इसका पाठ भक्तिभाव से करे। विद्याप्राप्ति, राज-भय से मुक्ति, गणों की श्रेष्ठता, तेज, यश तथा शुद्धि के लिये, राक्षस तथा पिशाच, भूत आदि के विघ्न से मुक्ति के लिये समाहित चित्त से इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिये। संक्षेप में सभी पापों की मुक्ति तथा सर्वत्र सफलता के लिये इस स्तोत्र का मनोयोगपूर्वक पाठ करना चाहिये।

तथा स्तवमिमं श्रुत्वा मुच्यते सर्वपातकैः।। (वाम. पु. स. मा. 27/22)

अर्थात्-इस स्तव के सुनने से सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है।

वेनकृत यह सहस्त्रनाम (वा. पु. सरोमा. 26/62-162) महाभारत (शन्तिपर्व-मोक्षधर्मपर्व/284/69-180), ब्रह्म पु. (40/2-100) तथा वायु पु. (1/30/180-284) में वर्णित दक्ष प्रजापतिकृत सहस्त्रनाम से काफी साम्य रखता है।

भगवान् शिव एवं विष्णु

इस पुराण में भी भगवान् विष्णु एवं शिव की तात्त्विक एकता को स्पष्टरूप से अनेक स्थलों पर बताया गया है। एकता प्रतिपादित करनेवाले एकाध प्रसंगो की चर्चा यहाँ की जायगी।

अंधकासुर से युद्ध की तैयारी के लिये भगवान् शिव ने नंदी के माध्यम से अपने सभी गणाध्यक्षों को सेना समेत बुलवाया। नंदी के बुलाने पर रुद्रगण, स्कन्दगण, शाखगण, विशाखगण, प्रमथगण, शैवगण, पाशुपतगण, कालमुखगण, निराश्रयगण अथवा महापाशुपतगण इत्यादि करोड़ों की संख्या में उपस्थित हुए। महापाशुपत गणों को देखकर भगवान् शिव खड़े हो गये तथा उनके सेनापति का आलिंगन किया। अन्य गणाध्यक्षों से भिन्न महापाशुपतों के अध्यक्ष का विशेष सम्मान देखकर नंदी ने भगवान् शिव से इसका कारण पूछा। कारण बताते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि हर की पूजा तुममें

से उसी के द्वारा हो सकती है जिनमें भक्ति – भाव हो। जिनके हृदय में अंहकाररूपी अज्ञान है वे विष्णु के चरणों की (अथवा उनकी भक्ति की) निन्दा करते हैं। इसी अज्ञान की वजह से हमारे एवं विष्णु में तुम लोग भेद करते हो (जबकि महापाशुपत ऐसा नहीं करते)।

वास्तव में जो कुछ मैं हूँ वही भगवान् विष्णु हैं, और जो विष्णु हैं वही अव्यय तत्त्व मैं हूँ। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। एक ही मूर्ति दो रूपों में विभक्त होकर स्थित है।

योऽहं स भगवान् विष्णुर्विष्णुर्यः सोऽहमव्ययः।।
नावयोर्वै विशेषोऽस्ति एका मूर्तिर्द्विधा स्थिता। (वाम. पु. 41/27 – 28)

आगे भगवान् शिव कहते हैं कि महापाशुपतों के अलावा इस तथ्य का ज्ञान अन्य किसी गण को नहीं है। चूँकि तुम लोगों ने हमारी सदैव निन्दा की है (क्योंकि विष्णु की निन्दा मेरी ही निन्दा है), इसलिये तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो गया है। इसी कारण से महापशुपतों के अलावे अन्य गणाध्यक्षों का आलिंगन नहीं किया गया।

इस उत्तर को सुनने के पश्चात् गणों ने महेश्वर से पूछा कि आप किस प्रकार जनार्दन से एक रूप हैं? क्योंकि आप निर्मल, शुद्ध, शान्त, श्वेत एवं निरंजन हैं जबकि जनार्दन कृष्ण वर्ण के? (अर्थात् श्वेत और कृष्ण परस्पर विरुद्ध गुणों का कैसे मेल हो सकता है)। इस प्रश्न के उत्तर में वे कहते हैं कि कमलनेत्र जगन्नाथ जो मेरे में ओत – प्रोत हैं तथा तुम लोग जिनकी निन्दा करते हो, वे भी सर्वव्यापी भगवान् शर्व हैं जो गणों पर शासन करते हैं। उनके सदृश इस चराचर जगत् में कोई नहीं है। वे भगवान् श्वेत वर्ण, पीत वर्ण, रक्त वर्ण या कृष्ण वर्ण के हैं। उनसे परे कोई धर्म नहीं है। वे सभी द्वारा पूज्य भगवान् सदाशिव हैं जिनमें सत्त्व, रजस्, तमस् और उनके मिश्रित गुण विद्यमान हैं।

दूसरे शब्दों में जो सदाशिव परमतत्त्व है, वही अपने को विष्णु तथा रुद्र आदि रूपों में व्यक्त करता है। सदाशिव सत्त्व, रज, तम आदि गुणों के आधार हैं तथा इन गुणों के माध्यम से ही वे सृष्टि करते हैं।

भगवान् शिव रुद्रगणों को यह भी संकेत करते हैं कि जो मेरे और विष्णु में भेद करता है वह घोर नरक को जाता है। उपरोक्त उत्तर सुनने के पश्चात् गणों ने भगवान् शिव को हरिहररूप में देखा। इस रूप में विष्णु एवं रुद्र दोनों के आकार, आयुध एवं वाहन एक साथ दीखे। इसके उपरान्त गणों ने देखा कि रुद्रदेव ने इन्द्र का रूप धारण कर लिया। पुनः अगले क्षण सूर्य का, तदतन्तर विष्णु एवं ब्रह्मा का। इस प्रकार की लीला को देखकर शिवगणों ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सूर्य में एकता का बोध किया। एकता का बोध करते ही वे सभी गण पाप से मुक्त हो गये।

क्षणाद् भवति रुद्रेन्द्रः क्षणाच्छंभुः प्रभाकरः।।
क्षणार्द्धाच्छंकरो विष्णुः क्षणाच्छर्वः पितामहः।

ततस्तदद्भुततमं दृष्ट्वा शैवादयो गणाः।।
अजानन्त तदैक्येन ब्रह्मविष्ण्वीशभास्करान्।
यदाऽभिन्नममन्यन्त देवदेवं सदाशिवम्।।
तदा निर्धूतपापास्ते समजायन्त पार्षदाः। (वाम. पु. 41/51-54)

भगवान् शिव के हरिहररूप अथवा शिव एवं विष्णु की एकता के प्रसंग का अन्य उदाहरण हमें इस पुराण के अध्याय 36 में मिलता है। विस्तारभय से उनकी चर्चा यहाँ नहीं की जायगी।

वामन पुराण में शिवसंबंधी प्रचलित कथाओं का रूप

पुराणों में एक ही कथा के भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं। परन्तु आमतौर पर उन सभी रूपों में काफी समानता होती है। वामन पुराण में पायी जानेवाली शिवसंबंधी प्रचलित अनेक कथाओं के रूप में काफी अंतर पाया जाता है। अतः भगवान् शिव की विभिन्न कल्पों में की जानेवाली लीलाओं की विचित्रता की झलक प्राप्त करने के लिये ही हम यहाँ कुछ कथाओं का उल्लेख कर रहे हैं।

(1) दक्षयज्ञ और सती की कथा

वामन पुराणकी जिन कथाओं में अन्य पुराणों से पृथक्ता पायी जाती है उसमें सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करनेवाली कथा सती के देहत्याग की है। शिव पुराण, रामायण तथा अन्य पुराण-ग्रन्थों में हम यही पढ़ते आये हैं कि शिव-पत्नी सती निमन्त्रण न आनेपर भी अपने पिता दक्ष के यज्ञ में गयीं थीं और जब उन्होंने वहाँ शिव का भाग न देखा तो वह वहाँ उपस्थित सभी लोगों को अभिशाप देती हुई जलकर भस्म हो गयीं। भस्म होने का समाचार सुनकर शिवजी ने वीरभद्र को भेजा, जो दक्ष के यहाँ पहुँचकर उनके यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

पर वामन पुराण में यह कथानक दूसरे ही रूप में दिया गया है। इस कथा का वर्णन करते हुए चतुर्थ अध्याय में कहा गया है कि-

"गौतम नन्दिनी जया सती देवी के दर्शन करने मन्दराचल पर गयीं। उसे अकेली आया देखकर सती ने पूछा कि उसकी बहनें विजया, जयन्ती और अपराजिता क्यों नहीं आयीं? जया ने उत्तर दिया कि वे पिताजी के साथ नानाजी के यज्ञ में गयीं हैं। मैं भी वहीं जा रही थी, पर अपका दर्शन करने इधर चली आई। क्या आप वहाँ नहीं चल रही हैं? तथा क्या देव महेश्वर भी वहाँ नहीं जा रहे हैं? सभी ऋषिगण तथा ऋषिपत्नियाँ वहाँ गयीं हैं तथा सभी देवगण भी गये हैं। क्या नानाजी ने आपको आमन्त्रित नहीं किया है?"

अपने पति की इस प्रकार अवज्ञा होते देखकर, और वह भी अपने पिता के ही द्वारा, सती को इतना शोक और क्रोध हुआ कि उन्होंने उसी समय भूमिपर गिरकर प्राण छोड़ दिया। इसके पश्चात् जया का रुदन सुनकर भगवान् शंकर आये और इस प्रकार सती का निधन देखकर बड़े क्रोधित हुए। उन्होंने उसी समय गणों का एक बहुत बड़ा दल तैयार करके वीरभद्र की अधीनता में उसे दक्षयज्ञ में भेजा और घोर युद्ध करके उसे नष्ट करा दिया।

(2) काम – दहन की कथा

इसी प्रकार 'काम – दहन' की कथा में भी सर्वथा नयी बातें कही गयीं हैं। सामान्यरूप से इस कथा में कहा गया है कि जब तारकासुर ने देवताओं को पराजित कर दिया और उनको जब यह मालूम हुआ कि शंकर भगवान् के पुत्र के अतिरिक्त और कोई उसे नहीं मार सकेगा, तो इन्द्र ने कामदेव को शिवजी के पास भेजा जिससे वह उनके मन को चलायमान करके पार्वती के साथ विवाह करने को प्रेरित कर सके। पर जब वह शिवजीपर अपने बाण चलाने लगा तो उन्होंने क्रोधित होकर तीसरे नेत्र से उसे भस्म कर दिया।

पर वामन पुराण के छठे अध्याय में कहा गया है कि दक्षयज्ञविध्वंस के पश्चात् भगवान् शंकर को विचरते देख कामदेव ने उनपर 'उन्माद', 'संताप' तथा 'विजृम्भण' नामक बाणों को चलाया जिससे वे विक्षिप्त हो सती की याद में अत्यन्त व्यथित हो गये। अति दुःखित होनेपर उन्होंने उन तीनों बाणों को कुबेर के पुत्र पांचालिक को दे दिया। जब कामदेव पुनः उनपर प्रहार करने को प्रस्तुत हुआ तो वे देवदार के जंगलों में भाग खड़े हुए।[1] उस वन में ऋषियों की पत्नियाँ उनको देखकर मोहित हो उनके पीछे चलने लगीं। इसपर ऋषियों ने उनको शाप दिया कि तुम्हारा लिंग गिर जाय। जब वह लिंग गिरा तो आकाश से पातालतक व्याप्त हो गया। ब्रह्मा और विष्णु दोनों उस स्थानपर आये और क्रमशः ऊपर तथा नीचे की ओर जाकर उस लिंग का आदि – अन्त देखने का प्रयत्न करने लगे। पर जब कहीं उसका आदि – अन्त नहीं मिला तो दोनों मिलकर शिवजी की स्तुति करने लगे। उससे सन्तुष्ट होकर

---

[1] भगवान् शिव का इस प्रकार भागना उनकी लीला ही है अन्यथा वे उसे पहले ही बार में भस्म कर सकते थे जबकि उन्होंने तीसरी बार प्रहार करते वक्त जलाया। इस प्रकार की लीला के अनेक रहस्य हो सकते हैं। उदाहरण के लिये अगर कामदेव को वे पहली बार में ही जला डालते तो उसे ब्रह्मा द्वारा प्राप्त सबको मोहनेवाली मिली शक्ति(जिससे वे एक बार खुद अपनी कन्या के प्रति आसक्त हो गये थे, शिव पुराण, रु. स. स. ख. अ. 3) की गरिमा का पता नहीं चलता। अतः लोकशिक्षा के लिये कि कामदेव ब्रह्मा द्वारा प्राप्त मोहन आदि शक्तियों के कारण सभी देव – दानव आदि के लिये अजेय धनुर्धर है, जिनके पुष्पबाणों से बचना असंभव सा है, भगवान् शिव ने ऐसा व्यवहार किया। शिव पुराण(रुद्र संहिता / सती खण्ड / अध्याय 2) में कथा आती है कि ब्रह्माजी कामदेव की सृष्टिकर उसे आशीर्वाद दिया कि "तुम्हारे सम्मुख त्रिलोकी में कोई भी जीव या देवता न ठहर सकेगा। मैं और वासुदेव और शिवजी भी तुम्हारे वश होवेंगे और जीवों की तो बात ही क्या है।"

अहं वा वासुदेवो वा स्थाणुर्वा पुरुषोत्तमः।
भविष्यामस्तव वशे किमन्ये प्राणधारकाः।। (शि. पु. रु. सं. स. ख. 2 / 39)

इस वरदान की परीक्षा के लिये कामदेव ने अपने बाण अपने पिता ब्रह्मा तथा अपने भाई ऋषियों(मरीची आदि) तथा बहन संध्या आदि पर चलाये। (शि. पु. रू. सं. स. ख अध्याय 3)। फलस्वरूप सभी कामासक्त हो गये। संध्या(पुत्री) के प्रति आसक्त हुए ब्रह्मा को शिवजी ने फटकारा। अन्त में ब्रह्माजी ने कामदेव को श्राप दिया कि वह शिवजी के नेत्र से जल जायगा(शि. पु. रु. सं. स. ख. 3 / 64)।

अतः निष्कर्ष यह है कि भगवान् शिव ने ब्रह्मा के वरदान एवं श्राप दोनों को सत्य करने के लिये ही उपरोक्त व्यवहार किया होगा।

शिवजी ने कहा कि यदि सभी देवगण इस लिंग की अर्चना करेंगे तो मैं इसे पुनः ग्रहण कर लूँगा। इसपर भगवान् विष्णु ने चारों वर्णों द्वारा शिवलिंग की पूजा का विधान किया ।

इसके पश्चात् जब भगवान् शंकर चित्रवन में विचरण कर रहे थे तब कामदेव ने पुनः उनपर आक्रमण की तैयारी की। यह देखकर शिवजी ने उसे क्रोध की दृष्टि से सिर से पैरतक देखा, जिससे वह तुरन्त भस्म हो गया। दग्ध हो जाने के पश्चात् वह पाँच पौधों के रूप में परिणत हो गया जिनके नाम हैं–चम्पक, बकुल, पाटला, जातीपुष्प और मल्लिका। कामदेव ने जो बाण छोड़े थे वे फलों के सहस्रों प्रकार के वृक्ष हो गये।

(3) शिवलिंग पूजा

दारुवन की उपरोक्त कथा का एक दूसरा रूप भी हमें इस पुराण के 'सरोमाहात्म्य' के बाईसवें अध्याय में मिलता है।

एक बार उमा के साथ भगवान् शंकर आकाशमार्ग से जा रहे थे। उस समय देवी ने अनेक ऋषियों को घोर तप में लीन देखा। वे इससे बहुत दुःखित हुयीं और शंकरजी से कहने लगीं कि ये दारुवन के ऋषिगण आपका अनुग्रह प्राप्त करने के लिये बहुत क्लेश सहन कर रहे हैं, अब उनके ऊपर दया कीजिये। भगवान् ने हँसकर कहा–हे देवी! आप सात्त्विकरूप से धर्म की अत्यन्त गहन गति को नहीं जानतीं। ये सबलोग धर्म को नहीं जानते और न ये लोग काम का त्याग कर सके हैं। ये लोग क्रोध से भी मुक्त नहीं हैं तथा मूढ़बुद्धिवाले हैं।

यह सुनकर पार्वती को बड़ा कौतुहल हुआ और कहने लगीं कि आप जो कहते हैं उसे प्रत्यक्ष करके दिखलायें। इसपर शंकरजी पार्वती को आकाश में छोड़कर ही नग्न युवक के रूप में दारुवन में भिक्षाटन के लिये पहुँच गये। उन्हें देखकर वहाँ की ऋषिपत्नियाँ काम के वशीभूत हो गयीं। यह सब देखकर ऋषि लोग क्रोध से अभिभूत होकर लकड़ी–पत्थर से उनके लिंगपर प्रहार करने लगे। इस प्रकार उनके प्रहार से शिवजी का लिंग चराचर को क्षुब्ध करता हुआ गिर पड़ा और वे स्वयं अन्तर्धान हो गये।

इसके पश्चात् सब ऋषि डरकर ब्रह्माजी के पास गये। उन्होंने उनको क्रोध करने और कामनाओं से ग्रस्त रहने के लिये फटकारा। तब सब मिलकर शिवजी की शरण में गये, तो उन्होंने कहा कि उस लिंग की सदैव पूजा करते रहने से ही तुम्हारा उद्धार हो सकेगा। तभी से शिवलिंगपूजा बराबर प्रचलित रही है।

उपरोक्त लिंग–पतनसंबंधी कथा 'शिव' एवं 'स्कन्द' पुराण में भी दी गयी है। पर उसमें न तो कामदेव से डरकर भागने की बात कही गयी है और न उमा देवी को कौतुक दिखाने की बात कही गयी है। उसमें कहा गया है कि शिवजी भिक्षा मांगते हुए स्वाभाविकरूप से ही दारुवन पहुँच गये थे और वहाँ ऋषिपत्नियाँ अकस्मात् उनके पीछे चल पड़ीं।

लिंगपूजासंबंधी एक अन्य कथा भी 'शिव' आदि पुराणों में पायी जाती है। एक बार ब्रह्मा और विष्णु में इस बात का झगड़ा हुआ कि उन दोनों में कौन बड़ा है, तो उनके सामने दिव्य शिवलिंग उत्पन्न हो गया। उन दोनों में यह शर्त लगी कि जो कोई इस लिंग के अंतिम छोर का पता लगा लेगा वही बड़ा माना जायगा। विष्णु नीचे की तरफ तथा ब्रह्मा ऊपर की तरफ गये। वापस लौटनेपर ब्रह्मा ने केतकी के फूल से झूठी गवाही दिलवायी कि उन्होंने लिंग का अंतिम छोर देख लिया है। इसी अपराध में उनका पंचम सिर शिव द्वारा काट डाला गया। और विष्णु के सत्यपरायण (कि उन्होंने उस लिंग का पता नहीं पाया) होने के कारण उन्हें शिव द्वारा वरिष्ठ पद दिया गया। और तभी से लिंगपूजा शुरू हो गयी।

(4) श्रीहरि को सुदर्शन चक्र की प्राप्ति

भगवान् शिव की आराधना से भगवान् विष्णु द्वारा सुदर्शन चक्र की प्राप्ति की कथा का जो स्वरूप 'शिव' आदि पुराणों में पाया जाया है, उससे भिन्न हम वामन पुराण में पाते हैं। शिव पुराण के अनुसार शिव के सहस्र नामों के साथ-साथ विष्णुजी कमल का फूल लिंगपर चढ़ाते जाते थे। भगवान् शिव ने परीक्षा के लिये एक फूल को कम कर दिया। ढूढ़ने पर फूल नहीं मिलनेपर विष्णुजी ने अपने कमल के समान एक नेत्र को चढ़ा दिया। फलस्वरूप भगवान् शिव ने प्रसन्न हो उन्हें सुदर्शन चक्र दे दिया। चक्र देने के पश्चात् शिवजी अन्तर्धान हो गये।

वामन पुराण की कथा इस प्रकार है। यह कथा 56 वें अध्याय में आती है। बहुत समय पहले श्रीदाम नाम का एक बड़ा असुर था जो तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद भगवान् विष्णु का श्रीवत्स भी छीनना चाहता था। उस राक्षस के दुर्विचार को जानकर विष्णुजी भगवान् शिव के निकट कैलास पर गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपने अगूँठे पर एक हजार वर्षतक खड़े रहकर तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें महातेजस्वी अमोघ सुदर्शन चक्र दिया और उनसे कहा कि इससे आप सभी देव-शत्रुओं या राक्षसों का सफाया कर सकते हैं क्योंकि यह अमोघ है।

भगवान् शिव के वचन सुनकर विष्णुजी ने कहा कि मैं यह कैसे जानूँ की यह चक्र सर्वत्र अमोघ एवं अजेय है? अतः इसकी परीक्षा के लिये मैं इसे आपके ऊपर ही छोड़ता हूँ। वासुदेव के इस प्रकार के वचन सुनकर महादेवजी ने कहा कि आप बिना किसी हिचकिचाहट के मेरे ऊपर इस चक्र को छोड़ दीजिये। अतः चक्र की शक्ति की परीक्षा के लिये विष्णु ने चक्र को भगवान् शिव पर छोड़ दिया। चक्र ने शिवजी के शरीर के तीन टुकड़े कर दिये। यह सब देखकर विष्णुजी शर्मिन्दा होकर भगवान् शिव के चरणों में गिर पड़े।

भगवान् शिव ने पुनः प्रसन्न होकर उन्हें उठाया और कहा कि चक्र ने केवल मेरे शरीर के ही टुकड़े किये हैं। मेरा वास्तवीक स्वरूप चक्र नहीं काट सकता और न ही अग्नि उसे जला सकती है। हे केशव तुम्हारे चक्र से बने मेरे शरीर के टुकड़े पवित्र माने जायँगे और वे हिरण्याक्ष, सुवर्णाक्ष और

विरूपाक्ष के रूप में जाने जायँगे।

उपसंहार

इस पुराण में भी भगवान् शिव को परमब्रह्म अथवा परम तत्त्व या परम सत्य कहा गया है। वही परम तत्त्व जब निर्गुणरूप को छोड़कर सृष्टि करता है तो ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र कहलाता है। भगवान् शिव सबके स्वामी, परम पवित्र, परमात्मा, भुवनों के स्वामी, ज्ञानदाता, तारक, देवताओं के नायक, शूलपाणी, भूतभव्य, सभी पापों को दूर करनेवाले, चराचरगुरु, सभी प्रकार के रोगों को दूर करनेवाले, अप्रमेय, अपरिमेय, योगेश्वर, विश्वरूप, शेषनाग को हार के रूप में धारण करनेवाले, सर्वेश्वर, परब्रह्म, त्र्यम्बक, ॐकार, परम कारण, वषट्कार, सर्वयज्ञमय, महामायाधर, सृष्टि, पालन एवं संहारकर्त्ता, चन्द्रार्द्धधर, भक्तवत्सल, नीलकण्ठ, सुर-सिद्ध आदि सभी द्वारा अर्चित, आशुतोष, महायोगेश्वर, सत् एवं असत्रूप, पशुपति, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षदाता, वेदस्वरूप, गायत्रीरूप, अजन्मा तथा वेदों एवं उपनिषदों द्वारा स्तुत्य हैं।

भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की चर्चा इस पुराण में मिलती है। कुछ चुने हुए उपरोक्त विशेषणों में भगवान् शिव के दोनों रूपों की झलक मिलती है। जैसे-सगुणरूप में वे तीन नेत्रवाले, नीलकण्ठी तथा सर्पराज को हार के रूप में पहननेवाले महायोगी हैं।

भगवान् शिव की उपासना सभी प्रकार के लोग करते रहे हैं-चाहे वे देव हों चाहे दानव, राक्षस, मानव, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व या नाग हों। उदाहरण के लिये रावण, विभीषण, खर, दूषण, त्रिशिरा, तक्षक, हारित, वापित, मृकंडु, आदित्य, चित्रांगद, रम्भा, इन्द्र, पराशर; व्यास, वायु, कार्तवीर्य, हनुमान्, मित्र, वरुण, ब्रह्मा तथा विष्णु आदि। भगवान् शिव की पूजा मुख्यतः लिंगपूजा ही है।

लिंगपूजा का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि इससे भोग एवं मोक्ष, स्वर्ग एवं कैवल्य, विद्या तथा ज्ञान आदि सबकुछ प्राप्त हो सकता है। लिंगपूजा सभी वर्णो एवं आश्रमों के लिये विहित है।

इस पुराण में नाना शैवतीर्थो एवं वहाँ स्थापित लिंगों की पूजा आदि संबंधी कथाएँ एवं उनके फल का वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिये कुरूक्षेत्र एवं पृथुदक तीर्थ के आस-पास के सैकड़ों तीर्थो तथा वहाँ स्थापित लिंगों का वर्णन है। जैसे ब्रह्मसर, सन्निहित, स्थाणु, तथा पृथुदक आदि।

शिवोपासना में शतरुद्रिय के महत्त्व का भी संकेत इस पुराण में मिलता है। शिवनाम की महिमा बताते हुए कहा गया है कि इसके द्वारा व्यक्ति भवसागर से पार हो जाता है। इस पुराण में वेन द्वारा रचित शिव सहस्त्रनाम स्तोत्र पाया जाता है जिसके पाठ से पापों से मुक्ति, विद्या, तेज, यश की प्राप्ति तथा भूत, पिशाच, राक्षस, आदि के विघ्नों से बचाव होता है। यह सहस्त्रनाम स्तोत्र दक्ष प्रजापति द्वारा की गयी सहस्त्रनाम स्तुति, जिसका उल्लेख महाभारत, वायुपुराण तथा ब्रह्म पुराण में है, से काफी साम्य रखता है।

अन्य सभी पुराणों की भाँति इस पुराण में भी ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन है। यहाँ बताया गया है कि शिव एवं विष्णु में कोई भेद नहीं है, तथा जो इनमें भेद करता

है वह घोर नरक में जाता है।

अन्त में इस पुराण में कुछ प्रचलित शिवसंबंधी कथाओं का स्वरूप बड़ा ही विचित्र रूप से वर्णित है। उदाहरण के लिये दक्ष-यज्ञ एवं सती की कथा में बताया गया है कि सती ने दक्ष के यज्ञ में अपने पति के निमन्त्रण न मिलने के दुःख एवं क्रोध से कैलासपर ही प्राण त्याग दिया न कि दक्ष की यज्ञशाला में। इसी प्रकार दारुवन में लिंग के पतन होनेवाली कथा के दो रूप इसी पुराण में प्राप्त होते हैं जो अन्य पुराणों की कथाओं से भिन्न हैं। कामदहन की कथा को भी यहाँपर बड़ी भिन्नता के साथ चित्रित किया गया है। यहाँपर विष्णु द्वारा सुदर्शन चक्र की प्राप्ति की कथा भी शिव पुराण से भिन्न पायी जाती है।

* * *

श्रद्धा-भक्ति एवं भाव का महत्त्व

श्रद्धावाँल्लभते धर्म्मं श्रद्धावानर्थमाप्नुयात्।
श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान्मोक्षमाप्नुयात्।।
अश्वमेधसहस्रं वा कर्म्म वेदोदितं कृतम्।
तत्सर्वं निष्फलं बह्मन् यदि भक्तिविवर्जितम्।।
(नार. महापु. पूर्वखण्ड 4/6 तथा 11)

अश्रद्धयाहतं सर्वंकृतं यत्पारलौकिकम्। (पद्म पु. उत्तरखण्ड 126/25)
नास्ति श्रद्धासमं पुण्यं नास्ति श्रद्धासमं सुखम्।
नास्ति श्रद्धासमं तीर्थं संसारे प्राणिनां नृप।।
(पद्म महापु. मूमिखण्ड 39/124-125)

अर्थात्-श्रद्धावान् व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति हो सकती है। हजारों अश्वमेधयज्ञ या अन्य वेदोक्तकर्म कर लिये जायँ पर अगर वे भक्तिभाव से रहित हैं तो वे अवश्य ही निष्फल होंगे।

अश्रद्धापूर्वक परलोक के लिये किया गया सभी कुछ नष्ट हो जाता है। संसार में प्राणियों के लिये श्रद्धा के समान पुण्य, श्रद्धा के समान सुख और श्रद्धा के समान तीर्थ नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है-वह समस्त 'असत्' है- इस प्रकार कहा जाता है; इसलिये वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।। (श्रीमद्भगवद्गीता 17/28)

कूर्म पुराण[1] में शिवतत्त्व

नारदीय पुराण के पूर्वभाग(अध्याय 106) में कूर्म पुराण का जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार(क) कूर्म पुराण के पूर्व तथा उपरि-ये दो विभाग हैं।(ख) मूल कूर्म पुराण-ब्राह्मी, भागवती, सौरी एवं वैष्णवी-इन चार संहिताओं में विभक्त था। इसी बात को कूर्म पुराण ने भी स्वीकार किया है। परन्तु वर्तमान समय में केवल ब्राह्मी संहिता ही उपलब्ध है। यही कूर्म पुराण(ब्राह्मी संहिता) पूर्व तथा उपरि-दो भागों में विभक्त है। मत्स्य पुराण(53/22) तथा भागवत (10/13/8) के अनुसार मूल कूर्म पुराण में क्रमशः 18 एवं 17 हजार श्लोक होने चाहिये जबकि वर्तमान में मात्र छः हजार श्लोक उपलब्ध हैं। इसमें लक्ष्मी कल्प का वृत्तान्त है। यह एक शैवपुराण है। अर्थात् इस पुराण के प्रमुख देवता भगवान् शिव हैं। भगवान् विष्णु ने कूर्म-अवतार धारणकर विष्णुभक्त राजा इन्द्रद्युम्न को जो भक्ति, ज्ञान एवं मोक्ष का उपदेश दिया था, उसी उपदेश को पुनः भगवान् कूर्म ने समुद्रमन्थन के समय इन्द्रादि देवताओं तथा नारदादि ऋषियों के समक्ष दुहराया, वही कथा कूर्म पुराण के नाम से विख्यात है।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में कूर्म रूपधारी विष्णु भगवान् ने शिव को ही परम तत्त्व तथा मुख्य देवता प्रतिपादित किया है। शिवतत्त्व को परब्रह्म के रूप में वर्णितकर उनके माहात्म्य को भी इस पुराण में विस्तार से बताया गया है।

मुनियों द्वारा सृष्टि का नियामक कौन है? यह पूछे जानेपर कूर्म भगवान् कहते हैं कि "सर्वत्र(चारों ओर) मुखवाले महेश्वर(प्रकृति से)पर, अव्यक्त, चतुर्व्यूह[2], सनातन, अनन्त, अप्रमेय तथा(समस्त जगत् के) नियन्ता हैं। तत्त्वचिन्तक जिसे प्रधान और प्रकृति कहते हैं और जो सत्-असत्रूप हैं, वही अव्यक्त नित्य कारण है।"

महेश्वरः परोऽव्यक्तश्चतुर्व्यूहः सनातनः।
अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता विश्वतोमुखः।।
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः।। (कू. पु. पू. वि. 4/5-6)

भगवान् शिव एक ही हैं पर समस्त सृष्टि उन्हीं का रूप या अभिव्यक्ति होने के कारण वे अनेक रूप धारण करनेवाले कहलाते हैं। सृष्टिरूप व्यापार को चलाने के लिये वे ही तीनों गुणों(रज, सत् एवं तम) को धारणकर तीन प्रमुख देवों या अनेक देवों के रूप में विभक्त हो जाते हैं। ऋषियों के पूछने पर भगवान् कूर्म बतलाते हैं कि "एक होनेपर भी वे निर्गुण- निरंजन महादेव सृष्टि, पालन

---

[1] प्रस्तुत निबंध गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा 1977 में प्रकाशित कल्याण,'कूर्मपुराणांक' पर आधारित है।

[2] चतुर्व्यूह का अर्थ चार शक्तियों(शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा तथा निवृत्ति) वाला।

और संहाररूपी तीन गुणों के कारण तीन रूपों (ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र) में स्थित हैं। वे कभी एक, कभी दो, कभी तीन तथा कभी अनन्त रूप धारण कर लेते हैं। वे योगेश्वर अपनी लीला से अनेक आकार, क्रिया, रूप तथा नामवाले शरीरों का निर्माण करते हैं और फिर संहार कर डालते हैं।"

एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थितः।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः।
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः।।
योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च।
नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया।। (कू. पु. पू. वि. 4/53-54)

भक्तों के कल्याण के लिये ही वे संहार करते हैं। अपने को तीन रूपों में विभक्तकर तीनों कालों में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार वे विशेष रूप से सृष्टि, संहार और पालन का कार्य करते हैं। चूँकि वे स्वयं ही प्रजा की सृष्टि, पालन एवं पुनः संहार करते हैं, इसलिये तीनों काल में त्रिगुणात्मक होने से वे परमात्मा एक (अद्वैत) कहलाते हैं। आदि में उत्पन्न होने से वे आदिदेव तथा अजन्मा होने से अज कहलाते हैं। वे समस्त प्रजाओं का पालन करते हैं, इसलिये 'प्रजापति' इस नाम से जाने जाते हैं और देवताओं में सबसे बड़े देव हैं, इसलिये वे 'महादेव' कहलाते हैं। (कू. पु. पू. वि. 4/56-58)

बृहत् होने से ब्रह्मा तथा परम (श्रेष्ठ) होने के कारण परमेश्वर कहे जाते हैं। सबको अपने वश में रखनेवाले परंतु स्वयं किसी के वश में न रहने के कारण वे ईश्वर (रूप में) परिभाषित किये जाते हैं। उनकी सर्वत्र गति होने के कारण वे ऋषि और प्रलयकाल में सब कुछ हरण करने के कारण हरि कहलाते हैं। किसी के द्वारा उत्पन्न न होने तथा सर्वप्रथम होने के कारण 'स्वयम्भू' (इस नाम से) पुकारे जाते हैं। सभी मनुष्यों के वे अयन (आश्रय-स्थल) हैं, इसलिये नारायण कहे जाते हैं। संसार का संहार करने से हर तथा सर्वत्र व्यापक होने से विष्णु कहलाते हैं। (कू. पु. पू. वि. 4/59-61)

वे सब कुछ जानने के कारण भगवान् तथा रक्षाकार्य करने से ॐकार कहलाते हैं। सभी का विशिष्ट ज्ञान होने से सर्वज्ञ तथा सभी के आत्मस्वरूप होने के कारण वे सर्व कहे जाते हैं। वे मलशून्य हैं, इसलिये शिव और सर्वत्र व्याप्त होने से विभु तथा सभी प्रकार के कष्टों का निवारण करने से तारक कहलाते हैं (कू. पु. पू. वि. 4/62-63)। इस प्रकार भगवान् शिव के विभिन्न नामों के पीछे उनकी विविध विशेषतायें या गुण ही कारण हैं।

प्राकृत प्रलय एवं काल के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए बताया गया है कि प्राकृत प्रलय में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों का प्रकृति में लय हो जाता है। पुनः कालयोग से उनका आविर्भाव होता है। ब्रह्मा, जीव, वासुदेव तथा शंकर की काल के द्वारा सर्जना होती है, पुनः वही काल इनका संहार भी करता है। यह काल भगवान् है, अनन्त है, अजर, अमर और अनादि है। सर्वव्यापी, स्वतंत्र तथा सबका आत्मस्वरूप होने से यही महेश्वर कहलाता है। (कू. पु. पू. वि. 5/19-20)

ब्रह्मा, रुद्र तथा नारायण आदि बहुत से होते हैं पर भगवान् एक ही है जो ईश तथा काल आदि कहलाता है।

ब्रह्माणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादयः।
एको हि भगवानीशः कालः कविरिति श्रुतिः।। (कू. पु. पू. वि. 5/21)

लोकसृष्टि के कार्य में सफलता(विस्तार) न मिलनेपर ब्रह्माजी ने घोर तप किया। परन्तु उससे भी उन्हें जब कुछ हासिल न हुआ तो उन्होंने दुःख एवं क्रोध से भरकर अश्रुपात किया। फलस्वरूप उनके लालट से परमेश्वर महादेव प्रकट हुए। वे ही तेज की राशि सनातन भगवान् ईश हैं। जिन्हें विद्वान् लोग अपनी आत्मा में स्थित परमेश्वर के रूप में देखते हैं।(कू. पु. पू. वि. 7/24-26)

ऋषियों ने जब यह शंका प्रकट की कि रुद्रदेव किस प्रकार ब्रह्माजी के पुत्र बने जबकि वे (रूद्रदेव) स्वयं ब्रह्मादि देवों के स्रष्टा हैं? तो उत्तर में सूतजी बताते हैं कि एक बार ब्रह्मा एवं विष्णु में अपनी-अपनी श्रेष्ठता के प्रश्न को लेकर विवाद छिड़ गया[1]। अन्त में ब्रह्मा ने विष्णु के महत्त्व को स्वीकार कर तीसरे के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया। तब भगवान् विष्णु ने भगवान् शिव की महत्ता की ओर संकेत करते हुए ब्रह्मा को उनकी शरण लेने का सुझाव दिया। इसपर ब्रह्मा क्रुद्ध हो गये तथा विष्णु की बात को मानने से इन्कार कर दिया। तदनन्तर ब्रह्मा के ऊपर अनुग्रह करने के लिये ईश्वर हर वहाँ प्रकट हो गये। उनके तीन नेत्र, जटा तथा त्रिशूल थे। उन्होंने सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों तथा नक्षत्रों से गुथी हुई अद्भुत माला धारण कर रखी थी। ब्रह्मा माया से मोहित होने के कारण उस अद्भुत आकृति को न पहचान सकने के कारण उसका परिचय भगवान् विष्णु से पूछा। उत्तर में भगवान् विष्णु कहते हैं- "ये देव स्वयं प्रकाशित होनेवाले, सनातन, आदि और अन्त से रहित, अचिन्त्य, महान्, समस्त लोकों के ईश्वर महादेव हैं। ये शंकर, शम्भु, ईशान, सर्वात्मा, परमेश्वर, समस्त प्राणियों के एकमात्र स्वामी, योगी, महेश, विमल एवं शिवरूप हैं। ये ही धाता, विधाता, प्रधान, पुरुष और ईश्वर हैं। यतिजन(संन्यासी लोग) ब्रह्म की भावना से भावित होकर जिनका दर्शन करते हैं वे ही केवल, निष्कल, महादेव शिव काल बनकर सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, रक्षा और संहार करते हैं।"

अयं देवो महादेवः स्वयंज्योतिः सनातनः।
अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान्।।
शंकरः शम्भुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः।
भूतानामधिपो योगी महेशो विमलः शिवः।।
एष धाता विधाता च प्रधानपुरुषेश्वरः।
यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेन भाविताः।।

---

1. इस पुराण की कथा शिव तथा अन्य पुराणों में वर्णित कथा से भिन्न है। अन्य कथाओं में दोनों देवों के बीच में अग्निकार लिंग या स्तंभ प्रकट हुआ तदनन्तर भगवान् शिव प्रकट हुए।

सृजत्येष जगत् कृत्स्नं पाति संहरते तथा।
कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलः शिवः।। (कू. पु पू. वि. 9/57-60)

विष्णु से इस प्रकार शिव संबंधी ज्ञान प्राप्तकर ब्रह्माजी ने अथर्ववेद के मन्त्रों से उन देवेश्वर शिव की स्तुति कर उनकी शरण ली। तब भगवान् शिव प्रसन्न होकर ब्रह्मा को वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। वर में ब्रह्माजी ने उनसे उन्हीं के समान पुत्र अथवा उन्हीं को अपने पुत्ररूप में प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। भगवान् शिव ने उन्हें वरदान दे दिया और उसी वर के फलस्वरूप वे रुद्ररूप में ब्रह्मा के ललाट से प्रकट हुए।

भगवान् शंकर में दस अव्यय (शाश्वत) गुण - ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व, आत्मज्ञान तथा अधिष्ठातृत्व - सदा प्रतिष्ठित रहते हैं। पिनाक धारण करनेवाले शंकर ही साक्षात् परमेश्वर हैं।

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः।
स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च।।
अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे।
स एव शंकरः साक्षात् पिनाकी परमेश्वरः।। (कू. पु. पू. वि. 10/39-40)

ब्रह्माजी ने अपने ललाट से उत्पन्न भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें परमेश्वर, ब्रह्म, शान्ति के मूल हेतु, शूल एवं पिनाक धारण करनेवाले, तीन नेत्रोंवाले, त्रिमूर्तिस्वरूप, ब्रह्मा के उत्पत्तिकर्त्ता, ब्रह्मविद्या के अधिपति, वेदों के रहस्यरूप, काल के भी काल, योगियों के गुरु, दिगम्बर, मुण्ड (माला) एवं दण्ड धारण करनेवाले, अनादि, मलरहित, ज्ञानगम्य, तारक, तीर्थरूप, धर्माचरण द्वारा प्राप्य, निष्प्रपंच, निराभास, जगन्मय, जगत्स्रष्टा, पालनकर्त्ता तथा संहारकर्त्ता, ईश्वर, परब्रह्म, निष्कल, अक्षर, परम ज्योति, काल, प्रधान पुरुष, प्रकृति, अनन्त, पंचमहाभूत एवं अहंकाररूप, अग्निस्वरूप, नित्यानन्दस्वरूप एवं निराधार आदि संज्ञाओं एवं विशेषणों से विभूषित किया है। (कू. पु. पू. वि. 10/43-70)

ब्रह्माजी की स्तुति के कुछ अंशों को देखें -

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम्।
त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मयः।।
त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः।
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः।।
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः।
त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा।। (कू. पु. पू. वि. 10/53-55)

अर्थात् - जगन्मय! आपके द्वारा ही यह सम्पूर्ण (जगत्) रचा गया है, आप में ही यह सम्पूर्ण प्रतिष्ठित है और आप ही प्रधानादि समस्त विश्व का संहार करते हैं। आप ईश्वर, महादेव, परब्रह्म,

महेश्वा, परमेष्ठी, शिव, शान्त, पुरुष, निष्कल,तथा हर हैं। आप अक्षर, परम ज्योति हैं, आप काल तथा परमेश्वर हैं और आप ही प्रधान पुरुष, प्रकृति तथा अनन्त हैं। (कू. पु. पू. वि. 10/53-55)

इस स्तुति के उपरान्त ब्रह्माजी से भगवान् शिव ने कहा कि "जो आपने 'मेरा पुत्र बनें' इस प्रकार से मुझसे प्रार्थना की थी मैंने उसे(रुद्ररूप में उत्पन्न होकर) पूर्ण कर दिया। (अब आप)विविध प्रकार के जगत् की सृष्टि करें।" आगे भगवान् शिव अपने स्वरूपपर प्रकाश डालते हुए ब्रह्माजी से कहते हैं- "मैं ही निष्कल परमेश्वर सृष्टि, रक्षा एवं प्रलय इन तीनों गुणों से भावित होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-इन नामों से तीन रूपों में विभक्त हूँ। आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र हैं और सृष्टि की रचना के लिये मेरे ही दाहिने अंग से आप बनाये गये हैं। मेरे ही बायें अंग से पुरुषोत्तम विष्णु उत्पन्न हैं। उन्हीं देवों में आदिदेव शंभु के हृदयप्रदेश से मैं ही रुद्र-रूप में प्रादुर्भूत हूँ और उन्हीं की अपर(दूसरी) मूर्ति हूँ। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव(क्रमशः) सृष्टि, स्थिति तथा संहार के हेतु हैं। एक होते हुए भी वे शंकर अपनी इच्छा से अपने को(तीन रूपों में) विभक्तकर स्थित रहते हैं। इसी प्रकार अन्य भी जो रूप हैं, वे सब मेरी माया द्वारा ही निर्मित हैं। स्वरूपतः महादेव स्वच्छ, रूपरहित एवं अद्वितीय हैं। वे देव इन त्रिमूर्तियों(ब्रह्मा, विष्णु, महेश) से उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ शरीरवाले हैं। तीन नेत्रोंवाली वह माहेश्वरी मूर्ति योगियों को सदा शान्ति प्रदान करनेवाली है। पितामह! मुझे सनातन ऐश्वर्य, विज्ञान, तेज एवं योग से समन्वित उनकी वही परा मूर्ति समझो। वही मैं कालरूप होकर तमोगुण का आश्रय लेकर समस्त विश्व को ग्रस्त कर लेता हूँ , कोई दूसरा तम द्वारा मुझे अभिभूत नहीं कर सकता।"

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः।।
स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः।
ममैव दक्षिणादङ्गाद् वामाङ्गात् पुरुषोत्तमः।।
तस्य देवादिदेवस्य शम्भोर्हृदयदेशतः।
सम्बभूवाथ रुद्रोऽसावहं तस्यापरा तनुः।।
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः।
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शंकरः स्थितः।।
तथान्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि तु।
निरूपः केवलः स्वच्छो महादेवः स्वभावतः।।
एभ्यः परतरो देवस्त्रिमूर्तिः परमा तनुः।
माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा।।
तस्या एव परां मूर्तिं मामवेहि पितामह।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानतेजोयोगसमन्विताम्।।
सोऽहं ग्रसामि सकलमधिष्ठाय तमोगुणम्।

कालो भूत्वा न तमसा मामन्योऽभिभविष्यति।। (कूर्म पु. पूर्व वि. 10/75-82)

सम्पूर्ण जगत् को ईश या शिव की संतान और उनकी शक्ति को माया कहा गया है। मायावी पुरुषोत्तम ईश उस (माया) - के द्वारा ही इस (जगत्) को भ्रमित (मोहित) करते हैं। वही यह सर्वकारा, सनातनी मायात्मिका शक्ति महेश के विश्वरूपत्व को सदा प्रकाशित करती रहती है। शक्ति एक है और शिव भी एक हैं। शिव शक्तिमान् कहे जाते हैं। अन्य सभी शक्तियाँ तथा शक्तिमान् (इसी) 'शक्ति' से उत्पन्न हैं। शक्ति एवं शक्तिमान् में भेद किया जा सकता है, किन्तु तत्त्व का चिन्तन करनेवाले योगीजन (उनमें) परमार्थतः अभेद का ही दर्शन करते हैं। जितनी भी शक्तियाँ हैं वे गिरिजादेवी और जितने भी शक्तिमान् हैं वे शंकर हैं। ब्रह्मवादियों के द्वारा पुराण में इनके विषय में विशेष (रूप से) कहा जाता है। अर्थात् शिव-शक्ति में अभेद है तथा सम्पूर्ण जगत् शिव-शक्ति का रूप है।

एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिवः।
शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः।।
शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः।
अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः।।
शक्तयो गिरिजादेवी शक्तिमन्तोऽथ शंकरः।
विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः।। (कू. पु. पू. वि. 11/42-44)

एक अन्य स्थलपर भगवान् शिव कहते हैं कि मैं अपने को नारायण तथा सनातन जगन्माता गौरी आदि अनेक रूपों में विभक्तकर स्थित रहनेवाला देव ईश्वर हूँ। मेरे परम तत्त्व को न तो देवता आदि जानते हैं और न महर्षि। मैं ही निष्क्रिय, शान्त, अद्वितीय और परिग्रहशून्य हूँ। मुझे ही केशव, देव तथा अम्बिका देवी कहा जाता है। माहेश्वरी गौरी मेरी निरञ्जनशक्ति हैं। इन्हीं देवी के साथ अद्वितीय निष्कल तथा परमस्वरूप मैं इस सम्पूर्ण (विश्व) का साक्षात्कार करता हूँ। (कू. पु. पू. वि. अ. 15/152-154, 158, 160)

पुनः कहा गया है कि ये देव (महेश्वर) ही सभी प्राणियों में गूढ़रूप से प्रतिष्ठित हैं, अर्थात् सूक्ष्मरूप से व्याप्त हैं। वे मायी (माया के नियन्ता) रुद्र सकल (साकार) एवं निष्कल (निराकार) हैं। वे ही देवी (रूप) हैं, उनसे भिन्न (जगत् में और कुछ भी) नहीं है, ऐसा जानकर अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च।
स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति।।

(कू. पु. उ. वि. 37/161)

अन्धकासुर के वध से पहले भगवान् शिव की स्तुति में अन्तरिक्षचारी लोगों ने भगवान् शिव को अनन्त, महादेव, सनातन, कालमूर्ति, अग्निरूप, सभी प्राणियों में सदैव निवास करनेवाले, यज्ञ और

वषट्काररूप, धाता, अव्यय, हरि, ब्रह्मा, परमपद, प्रणवमूर्ति, योगात्मा, वेदत्रयीरूप, त्रिलोचन, देवताओं और सम्पूर्ण जगत् का स्वामी कहा है।(कू. पु. पू. वि. 15/181-183)

अन्धकासुर ने भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें पुरातन, पुण्यदायी, अनन्तस्वरूप, कालरूप, कवि, संयोग एवं वियोग के कारणरूप ईश्वरतत्त्व, हजारों पैर, आँख तथा सिरों से युक्त, अद्वितीय, विभाग-रहित, शुद्ध तत्त्वस्वरूप, सर्वात्मा, पुराणपुरुष, परमात्म-तत्त्व, आनंदस्वरूप, परम पवित्र ओंकार शब्द से वाच्य, अविनाशी, परब्रह्म, वेदवाक्यों द्वारा 'ईश्वर'-शब्द से सिद्ध, इन्द्र, वरुण, अग्नि, हंस, प्राण, मृत्यु, अन्त, यज्ञ, संसार के आदि, नारायण, तमोगुण से परे, परम परमात्मा, पंचपदान्तरस्वरूप, ब्राह्मी, वैष्णवी तथा शाक्त-इन तीनों शक्तियों से अतीत, निरंजन, त्रिमूर्तिरूप(ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप), अनन्त पदात्मक, आत्ममूर्ति, जगन्निवास, ललाट में नेत्र धारण करनेवाले, नागराजों की माला धारण करनेवाले, तीनों काल के प्रभाव से रहित तथा अम्बिकापति कहा है।(कू. पु. पू. वि. 15/188-200)

भगवान् शिव 'ईश्वर गीता' में कहते हैं कि अव्यक्त(तत्त्व) से काल, प्रधान तथा परम पुरुष पैदा हुए। उन(कालादि) से यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ, इसलिये यह जगत् ब्रह्ममय है। जिसके हाथ और पैर का प्रसार सर्वत्र है, जिसके नेत्र, मस्तक, मुख एवं कर्ण सर्वत्र वर्तमान हैं एवं जो समस्त(विश्व) को आवृतकर स्थित है वही ब्रह्म है। वह सभी का आधार, सदा आनंदस्वरूप, अव्यक्त और द्वैत से रहित(अद्वैत तत्त्व) है। वह सभी उपमानों से रहित (निरुपमेय), इन्द्रियों द्वारा प्रमाणों से ज्ञात न होने योग्य, निर्विकल्प, निराभास, सभी का आश्रय, परम अमृतस्वरूप, अभिन्न, भिन्नरूप से स्थित(प्रतीत), शाश्वत, ध्रुव, अव्यय, निर्गुण और परम व्योमरूप है। वह सभी प्राणियों का आत्मा है, वह बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला परम तत्त्व है। मैं वही सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानात्मा परमेश्वर हूँ। मुझ अव्यक्त स्वरूपवाले के द्वारा ही इस विश्व का विस्तार हुआ है। सभी प्राणी मुझमें ही अवस्थित हैं।(कू. पु. उ. वि. 3/1-7)

वे कहते हैं कि प्रधान और पुरुष-ये ही दो तत्त्व कहे गये हैं। काल को ही उन दोनों का परम संयोजक कहा गया है।(प्रधान, पुरुष और काल) ये तीनों तत्त्व अनादि तथा अन्तरहित अव्यक्त(परम तत्त्व) में स्थित हैं। वह(परम तत्त्व) तदात्मक(प्रधान आदि का प्रेरक होते हुए भी) तद्भिन्न(उनसे सर्वथा असंस्पृष्ठ) है, वह(परमतत्त्व) मेरा ही रूप है।(कू. पु. उ. वि. 3/8-9)

भगवान् शिव आगे कहते हैं कि सनातन काल अन्तःप्रविष्ट होकर इस सम्पूर्ण (विश्व) का नियमन करता है। इस काल को भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ तथा पुरुषोत्तम कहा जाता है। मनीषियों ने मन को सभी इन्द्रियों से उत्कृष्ट एवं मन से उत्कृष्ट अहंकार को, अहंकार से उत्कृष्ट महान् को(महत्तत्त्व) बतलाया है। महत् से उत्कृष्ट अव्यक्त, अव्यक्त से उत्कृष्ट पुरुष तथा पुरुष से उत्कृष्ट भगवान् प्राण हैं। यह संम्पूर्ण संसार उसी से है। प्राण से परतर व्योम है और व्योम से अतीत अग्नि ईश्वर है। मैं वही

सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हूँ। मुझसे उत्कृष्ट और कोई तत्त्व नहीं है। मुझे जान लेने से मुक्ति हो जाती है।(कू. पु. उ. वि. 3/17-20)

प्राणात् परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः।
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः।
नास्ति मत्तः परं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते।। (कू. पु. उ. वि. 3/20)

भगवान् शिव कहते हैं कि महेश्वर को छोड़कर इस संसार में सब कुछ अनित्य है। वही मैं मायावी तथा मायामय देव काल के संसर्ग से सम्पूर्ण(संसार) की सदा सृष्टि करता हूँ और(फिर) संहार करता हूँ। मेरे सांनिध्य में ही यह काल(तत्त्व) सम्पूर्ण जगत् की(सृष्टि) करता है। अर्थात् मैं ही उस काल को इस कार्य में नियोजित करता हूँ।

नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्।
ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम्।।
सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत्।
मायी मायामयो देवः कालेन सह सङ्गतः।।
मत्सन्निधावेष कालः करोति सकलं जगत्। (कू. पु. उ. वि. 3/21-23)

इस पुराण के उत्तर विभाग के पाँचवे अध्याय में मुनियों ने भगवान् शिव की बीस श्लोकों(22-41) में स्तुति करते हुए उपरोक्त उद्धरणों में आये हुए विशेषणों का प्रयोग किया है। अतः उन विशेषणों की यहाँ पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

मूल प्रकृति, प्रधान, पुरुष, महत्, अहंकार आदि विकारयुक्त तत्त्व-ये सब देवाधिदेव सनातन(शिव) के ही रूप हैं। यही सनातन पुरुष बन्धन है, यही बन्धन में डालनेवाला है। यही पाश और यही पशु है। यही सब कुछ जानता है, परंतु इसे जाननेवाला कोई नहीं है। इसे ही आदि पुराण-पुरुष कहा जाता है।[1] (कू. पु. उ. वि. 7/32)

भगवान् शिव मुनियों से कहते हैं कि- "मैं ही सभी विद्याओं का स्वामी, प्राणियों का परम ईश्वर, ओंकारमूर्ति प्रजापति भगवान् ब्रह्मा हूँ।"

ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः।
ओङ्कारमूर्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः।। (कू. पु. उ. वि. 8/9)

सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि ज्ञान, स्वंतत्रता, नित्य अलुप्तशक्ति तथा अनन्तशक्ति-ये विभु महेश्वर के छः अंग कहे गये हैं।

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य।। (कू. पु. उ. वि. 8/13)

---

[1] यहाँ बन्धन आदि को सनातनपुरुष में कल्पित मात्र बताकर अद्वैतभाव की प्रतिष्ठा की गयी है।

रुद्र की तीन मूर्तियाँ हैं, इन्होंने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है। तमोगुण के अधिष्ठाता को अग्नि(काल या रुद्र), रजोगुण के अधिष्ठाता को ब्रह्मा तथा सत्त्व गुण के अधिष्ठाता को विष्णु कहा गया है। इनकी एक दूसरी मूर्ति है जो दिगम्बरा, शाश्वत तथा शिवात्मिका कहलाती है। उसी में योग से युक्त परम ब्रह्म प्रतिष्ठित रहते हैं।

रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम्।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुरिति प्रभुः।।
मूर्तिरन्या स्मृता चास्य दिग्वासा वै शिवा ध्रुवा।
यत्र तिष्ठति तद् ब्रह्म योगेन तु समन्वितम्।। (कू. पु. उ. वि. 37/70-71)

भगवान् शिव की ब्रह्मस्वरूपता का वर्णन अनेक स्थानों (जैसे कू. पु. उ. वि. 29/23-24, 37-39; उ. वि. 31/51- 58; उ. वि. 34/62-73 तथा उ. वि. 35/29-32 इत्यादि) पर मिलता है। उनके सगुण स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्हें भस्म से सुशोभित, अर्धनारी-नररूपवाले, त्रिनेत्रधारी, चन्द्रमा को सिर पर धारण करनेवाले, जटा-जूटधारी, व्याघ्रचर्म एवं त्रिशूलधारी, सर्पराज का कंकण पहननेवाले, मुण्डमालाधारी तथा पिनाकधारी आदि कहा गया है। उनके सगुण रूप का वर्णन करनेवाले कुछ संदर्भ इस प्रकार हैं- कू. पु उ. वि. 31/32-34, उ. वि. 44/41-42 तथा उ. वि. 35/32 इत्यादि। कूर्म पुराण के उपरिभाग के प्रारंभ में ग्यारह अध्यायोंवाली "ईश्वर गीता" है जो ऋषियों के प्रति भगवान् शिव द्वारा कही गयी है। इसमें भगवान् शिव के तत्त्व का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। उस गीता में वर्णित शिव संबंधी विचारों के लिये इस पुस्तक के "शिवप्रोक्त गीताओं में शिवतत्त्व" नामक शीर्षकवाले लेख को पढ़ें।

शिवोपासना

भगवान् शिव की उपासना भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली है। अनेक लोगों ने उनकी उपासना से अपना-अपना मनोरथ सिद्ध किया है। उदाहरण के लिये बाणासुर को गणपति का पद प्राप्त होना (कू. पु. पू. वि. अध्याय 17), अरुण एवं गरुड़ को क्रमशः सूर्य का सारथी तथा विष्णु का वाहन बनना(कू. पु. पू. वि. अध्याय 17), पराशर को व्यास का पुत्ररूप में प्राप्त होना(कू. पु. पू. वि. अ. 18), जनक द्वारा शिवधनुष प्राप्त किया जाना(कू. पु. पू. वि. अ. 20), भगवान् कृष्ण को पुत्र के साथ अन्यान्य वरदानों की प्राप्ति(कू. पु. पू. वि. अ. 24), वसिष्ठ, सावर्णि और याज्ञवल्क्य को योग की प्राप्ति(कू. पु. पू. वि. अ. 24), व्यास को ज्ञान प्राप्ति, भृगु को शुक्र का पुत्ररूप में प्राप्त होना(कू. पु. पू. वि. अ. 24), राजा श्वेत को गणपति का पद मिलना(कू. पु. उ. वि. अ. 35), नन्दी का शिवतुल्य हो जाना तथा गणपति बनना तथा शिलाद को नन्दी का पुत्ररूप में प्राप्त होना(कू. पु. उ. वि. अ. 41) तथा भगवान् विष्णु को चक्र की प्राप्ति(कू. पु. उ. वि. अ. 42) इत्यादि भगवान् शिव की उपासना से ही संभव हुआ।

ब्रह्माजी द्वारा कहा गया है कि जो उस अद्वितीय सनातन रुद्र की अपनी आत्मा में श्रद्धायुक्त मन से आराधना करता है, वह परमपद अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

तमर्चयति यो रुद्रं स्वात्मन्येकं सनातनम्।
चेतसा भावयुक्तेन स याति परमं पदम्।। (कू. पु. पू. वि. 14/83)

(1) शिवभक्ति की श्रेष्ठता

जिस प्रकार भगवान् शिव को श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार उनकी भक्ति को भी श्रेष्ठ माना गया है। भगवान् शिव स्वयं अपने मुख से कहते हैं कि "मुझमें बुद्धि लगानेवाले जो मनुष्य सतत मेरी पूजा करते हैं, उन नित्य योगयुक्त पुरुषों के योग-क्षेम का मैं निर्वाह करता हूँ। जो दूसरे देवों के भक्त हैं, वे यदि मेरी भावना से युक्त होकर (दूसरे) देवताओं की पूजा करते हैं अर्थात् दूसरे देवों में मेरी ही भावना करते हैं तो वे भी (मुझमें) भावना करने के कारण मुक्त हो जाते हैं। अतएव समस्त अनीश्वर[1] देवताओं का परित्यागकर जो मुझ ईश का ही आश्रय ग्रहण करता है, वह परमपद को प्राप्त करता है।"

मद्बुद्धयो मां सततं पूजयन्तीह ये जनाः।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।
ये चान्यदेवताभक्ताः पूजयन्तीह देवताः।
मद्भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि भावतः।।
तस्मादनीश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवानशेषतः।
मामेव संश्रयेदीशं स याति परमं पदम्।। (कू. पु. उ. वि. 11/88, 90-91)

भगवान् शिव पुनः कहते हैं कि "जो सम्पूर्ण भोगों का परित्यागकर सर्वदा लिंग का पूजन करते रहते हैं, उन्हें मैं एक जन्म में ही परमेश्वर-पद (मोक्ष) प्रदान कर देता हूँ।"

येऽर्चयन्ति सदा लिङ्गं त्यक्त्वा भोगानशेषतः।
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमैश्वरम्।। (कू. पु. उ. वि. 11/93)

व्यासजी अर्जुन से चारों युगों के धर्मो का उपदेश करते समय कहते हैं कि "कृतयुग (सत्ययुग) में ब्रह्मा (प्रमुख) देवता होते हैं, इसी प्रकार त्रेता में भगवान् सूर्य, द्वापर में (प्रमुख) देवता विष्णु और कलियुग में महेश्वर रुद्र ही मुख्य देवता हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्य-ये सभी कलियुग में पूजित होते हैं, किन्तु पिनाकधारी भगवान् रुद्र चारों युगों में पूजे जाते हैं।"

ब्रह्माकृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः।

---

[1] कोई देवता पूजक की दृष्टि में अनीश्वर तबतक रहता है जबतक वह उसे शिव की विभूति नहीं समझता तथा उसे मात्र तुच्छ फल देनेवाला समझता है। परन्तु वह किसी भी देवता को शिव का ही रूप मानकर निष्काम भाव से पूजता है तो वह देवता अनीश्वर नहीं कहलाता। दूसरे शब्दों में अगर किसी देवता को तुच्छ फलका अधिष्ठाता मात्र माना जाय तो वह अनीश्वर है, परन्तु यदि उसमें परमेश्वर की भावना रखकर निष्कामभाव से पूजें तो वह अनीश्वर नहीं कहलायगा।

द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ रुद्रो महेश्वरः।।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्यः सर्व एव कलिष्वपि।
पूज्यते भगवान् रुद्रश्चतुर्ष्वपि पिनाकधृक्।। (कू. पु. पू. वि. 27 / 18-19)

व्यासजी आगे कलियुग के धर्मों का वर्णन करते हुए शिवपूजन की विशेष महिमा को स्वीकार करते हुए कहते हैं- "जिस प्रकार रुद्र को किया गया नमस्कार निश्चितरूप से सभी कामनाओं को पूर्ण करता है, अन्य देवों को किया गया नमस्कार वैसा फल नहीं देता। इस प्रकार के कलियुग में दोषों को दूर करने का एकमात्र उपाय है महादेव को नमस्कार, उनका ध्यान और शास्त्रानुसार दान-ऐसा वेदों का मत है।"

यथा रुद्रनमस्कारः सर्वकर्मफलो ध्रुवम्।
अन्यदेवनमस्कारान्न तत्फलमवाप्नुयात्।।
एवंविधे कलियुगे दोषाणामेकशोधनम्।
महादेवनमस्कारो ध्यानं दानमिति श्रुतिः।। (कू. पु. पू. वि. 28/39-40)

ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, वरुण तथा अन्य सभी देवता और महर्षिगण एक ही रुद्र (महेश्वर) के विभिन्न स्वरूप कहे गये हैं। मनुष्य इन स्वरूपों में से जिस भेद (स्वरूप) का अवलम्बन कर परमेश्वर की आराधना करते हैं, शिव (महेश्वर) उसी स्वरूप को ग्रहणकर फल प्रदान करते हैं। अतः इनमें से किसी भी भेद (स्वरूप) का अवलम्बन कर सनातन महादेव की आराधना करनेवाले को उस परम (शिव) पद की प्राप्ति होती है। निष्कर्ष यह है कि सर्वशक्तिसम्पन्न सनातन, देव, गिरिश महादेव की सगुण अथवा निर्गुण किसी भी रूप में आराधना अवश्य करनी चाहिये।

ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वे देवास्तथर्षयः।
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्तिताः।।
यं यं भेदं समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम्।
तत् तद् रूपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः।।
तस्मादेकतरं भेदं समाश्रित्यापि शाश्वतम्।
आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम्।।
किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातम्।
आराधयेद् वै गिरिशं सगुणं वाथ निर्गुणम्।। (कू. पु. उ. वि. 44/37-40)

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि महेश्वरतत्त्व ही सर्वस्व, परम ध्येय, है। इसलिये ब्रह्मा आदि प्रधान सभी देवों को छोड़कर आदि, मध्य तथा अन्त में रहनेवाले (शाश्वत तत्त्व) विरूपाक्ष (शंकर) की आराधना करनी चाहिये।

तस्मात् सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान्।

आराधयेद् विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम्।। (कू. पु. उ. वि. 44/43)

भगवान् शिव स्वयं एक अन्य स्थल पर कहते हैं कि संसार में रहनेवाले सभी जीवों को पशु कहा गया है, मैं देव उनका पति(स्वामी) हूँ, इसलिये विद्वानों द्वारा 'पशुपति' कहा जाता हूँ। मैं मायारूपी पाश के द्वारा अपनी लीला से इन पशुओं को बन्धन में डालता हूँ। वेदज्ञ लोग मुझे ही पशुओं को मुक्त करनेवाला मोचक कहते हैं। माया के पाश से आबद्ध जीवों को मुक्त करनेवाला मुझ भूतों के अधिपति अव्यय परमात्मा को छोड़कर अन्य कोई नहीं है।

आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्तिनः।
तेषां पतिरहं देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः।।
मायापाशेन बध्नामि पशूनेतान् स्वलीलया।
मामेव मोचकं प्राहुः पशूनां वेदवादिनः।।
मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम्।। (कू. पु. उ. वि. 7/18-20)

जो महादेव से भिन्न किसी दूसरे देव को नहीं जानता और इन्हीं को अपनी आत्मा मानता है, वह परमपद को प्राप्त होता है।

नान्यद् देवान्महादेवाद् व्यतिरिक्तं प्रपश्यति।
तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम्।। (कू. पु. उ. वि. 29/41)

(2) मोक्षसाधन

आत्मा का बन्धन करनेवाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश- इन क्लेश नामवाले पाँच अचल(दीर्घकालतक स्थायी सा रहनेवाला) तत्त्वों को पाश कहा जाता है। माया को इन पाशों का कारण कहा जाता है। इन्हीं की प्रेरणा से व्यक्ति कर्म करता है जो धर्ममूलक या अधर्ममूलक होते हैं। इन धर्माधर्मों के फल भोगने के लिये शरीर धारण करना पड़ता है। अतः इन पाशों से मुक्ति का नाम ही मोक्ष है। इन पाशों से मुक्ति भगवान् के दर्शन(या प्राप्ति) से हो सकती है।

भगवान् शिव कहते हैं कि कुछ लोग ध्यानद्वारा, कुछ दूसरे लोग ज्ञानद्वारा, कुछ भक्तियोग के द्वारा और कुछ कर्मयोग के द्वारा मेरा दर्शन करते हैं। जो ज्ञानद्वारा नित्य मेरी भक्ति करता है, वह सभी प्रकार के भक्तों में मुझे प्रियतर है। अन्य भी जो मेरी आराधना करने के अभिलाषी तीन(प्रकार के) भक्त हैं, वे भी मुझे ही प्राप्त करते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता।(कू. पु. उ. वि. 4/24-26)

(ज्ञानमार्गी)मोक्षार्थियों को अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वव्यापी एवं अव्यय(शिवरूप आत्मा) की उपासना, उसका श्रवण एवं मनन करना चाहिये। जिस समय मुमुक्षु अपने आत्मा में ही सभी भूतों को एवं सभी भूतों में अपने आत्मा को देखता है उस समय उसे ब्रह्म(शिव) की प्राप्ति होती है। जब वह पारमार्थिक रूप में केवल अद्वितीय आत्मा(शिव) का साक्षात्कार करता एवं संपूर्ण जगत् को मायामात्र

समझने लगता है, उस समय वह शान्त(मुक्त) हो जाता है।(कू. पु. उ. वि. 2/29-31)

कर्मों से उत्पन्न धर्म एवं अधर्म नामवाले पाशों से मुक्ति का उपाय कर्मयोग है। अर्थात् भगवान् शिव को अर्पित किये गये कर्म बन्धन नहीं करते। दूसरे शब्दों में भगवद् अर्पण बुद्धि से समस्त कर्मों को करनेवाला पाशों में नहीं बँधता, (धर्मयुक्त कार्य भी अगर सकाम है तो वह बंधन का कारण होता है) और वह मुक्त हो जाता है।(कू. पु. उ. वि. 7/28)

योग(ध्यान) दो प्रकार का होता है- अभावयोग एवं महायोग। जिसमें सभी आभासों से रहित शून्यमय स्वरूप का चिन्तन होता है एवं जिसके द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है उसे अभावयोग कहते हैं। जिसमें नित्यानंदस्वरूप निरञ्जन आत्मा एवं शिव में अभेद प्रतीति होती है उसे परमेश्वरस्वरूप महायोग कहा गया है(कू. पु. उ. वि. 11/5-7)। अष्टांग योग(जैसा पतंजलि के योगसूत्रों में है) के द्वारा व्यक्ति उपरोक्त योगों की प्राप्ति कर सकता है।

भक्ति की विशेषता को बतलाते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि "मैं न तो विविध प्रकार के तप से, न दान से और न यज्ञों से ही जानने योग्य हूँ। बिना उत्तम भक्ति के मनुष्य मुझे जान नहीं सकता।"

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्।। (कू. पु. उ. वि. 4/2)

आगे वे भक्त की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि मेरे भक्त का विनाश नहीं होता। जो उस (भक्त)-की निन्दा करता है, वह मूढ़ मेरी ही निन्दा करता है और जो उसकी पूजा करता है वह(समझो कि) मेरी ही पूजा करता है। मेरी आराधना के लिये जो नियमपूर्वक पत्र, पुष्प, फल तथा जल मुझे प्रदान करता है, वह मेरा प्रिय भक्त है, ऐसा समझना चाहिये। (कू. पु. उ. वि. 4/12-14)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात्।
यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः।। (कू. पु. उ. वि. 4/14)

(3) लिंगार्चन का महत्त्व

भगवान् शिव कहते हैं कि मुझमें मन लगानेवाला, मुझे नमस्कार करनेवाला एवं मेरी आराधना करनेवाला मत्परायण व्यक्ति मुझे प्राप्त कर लेता है। इस संसार में जो मनुष्य मुझमें चित्त लगाकर मेरा पूजन करते हैं उनके योग-क्षेम को मैं वहन करता हूँ। पुत्र, स्त्री, गृह आदि में आसक्ति का परित्यागकर, शोकरहित तथा अपरिग्रही होकर विरक्त पुरुष को मृत्युपर्यन्त(शिव) लिंग में परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये। जो सम्पूर्ण भोगों को त्यागकर सदा लिंग का पूजन करते रहते हैं उन्हें मैं एक जन्म में ही परम ऐश्वर्य प्रदान करता हूँ।(कू. पु. पू. वि. 11/93)

नियमपूर्वक भक्ति करनेवाले दूसरे लोग विधिपूर्वक अन्यत्र कहीं भी(शिवलिंग की) भावना करते हुए उस महेश्वर के लिंग की पूजा करते हैं। जल में, अग्नि में, आकाश में, सूर्य में, रत्नादि में अथवा अन्यत्र कहीं भी ईश्वरीय लिंग की भावना करके ईश की उपासना करनी चाहिये। यह सम्पूर्ण

जगत् लिंगमय है एवं यह लिंग में ही प्रतिष्ठित है। अतएव कहीं पर भी लिंगरूप में शाश्वत ईश की आराधना करनी चाहिये। ....क्रियाशीलों का (लिंग) अग्नि में, मनीषियों का जल, आकाश और सूर्य में, अज्ञानियों का काष्ठ आदि में और योगियों का लिंग हृदय में स्थित रहता है। (कू. पु. उ. वि. 11/95-98)

एक बार मार्कण्डेयजी भगवान् श्रीकृष्ण को मन्दिर में प्रतिष्ठित लिंग, जो भस्म से विभूषित था, की पूजा करते देख उनसे पूछते हैं कि "देव! कर्मों द्वारा आपकी ही पूजा की जाती है और योगियों के ध्येय भी आप ही हैं, फिर आप शुभ कर्मों के द्वारा किस देवता की आराधना कर रहे हैं, यह मुझे बतलायें।"

कः समाराध्यते देवो भवता कर्मभिः शुभैः।
ब्रूहि त्वं कर्मभिः पूज्यो योगिनां ध्येय एव च।। (कू. पु. पू. वि. 25/52)

उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- "आपने जो कुछ भी कहा, सब सत्य कहा है, इसमें संशय नहीं है तथापि मैं सनातनदेव ईशान (शंकर) की पूजा करता हूँ। विप्र! मुझे न तो कुछ करना है और न मुझे कुछ अप्राप्त है, फिर भी यह जानते हुए भी मैं परम शिव ईश की पूजा करता हूँ। माया से मोहित लोग उन देव (शंकर) का साक्षात्कार नहीं कर पाते, परन्तु मैं अपने मूल[1] का परिचय देते हुए उनकी पूजा करता हूँ। इस संसार में लिंगार्चन से अधिक कोई पुण्य और भय का नाश करनेवाला (कर्म) नहीं है। अतः इन लोकों (प्राणीमात्र) के कल्याण के लिये लिंग में शिव की पूजा करनी चाहिये।" (कू. पु. पू. वि. 25/55-58)

न च लिङ्गार्चनात् पुण्यं लोकेऽस्मिन् भीतिनाशनम्।
तथा लिङ्गे हितायैषां लोकानां पूजयेच्छिवम्।। (कू. पु. पू. वि. 25/58)

संसार से भयभीत लोगों को इन देव महादेव का सदा ध्यान, पूजन और वन्दन करना चाहिये तथा लिंग में महेश्वर को सदा प्रतिष्ठित समझना चाहिये।

एष देवो महादेवः सदा संसारभीरुभिः।
ध्येयः पूज्यश्च वन्द्यश्च ज्ञेयो लिङ्गे महेश्वरः।। (कू. पु. पू. वि. 25/61)

श्रीकृष्ण के इस प्रकार उत्तर देने पर मार्कण्डेयजी पुनः पूछते हैं कि आप यह बतलायें कि लिंग क्या है और लिंग में किसकी पूजा होती है? उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि "ज्योतिःस्वरूप, अक्षर, अव्यक्त आनन्द को लिंग[2] कहा गया है और वेद महेश्वर देव को अव्यय तथा लिंग धारण करनेवाला

---

[1] मेरे भी मूल (सर्वाधिष्ठान) महादेव शंकर ही हैं- यह सब बताने के लिये मैं लिंगस्वरूप भगवान् शंकर की पूजा करता हूँ।

[2] लिंग का अर्थ है कारण। यहाँ प्रसंगानुसार लिंग का अर्थ मूल कारण है। मूल कारण परमेश्वर शिव ही हैं। वे ज्योतिःस्वरूप, अक्षर एवं आनंदस्वरूप हैं, इसलिये यहाँ लिंग को ज्योतिःस्वरूप तथा आनंदरूप कहा गया है।

कहते हैं। प्राचीन काल में जब सर्वत्र जल–ही–जल एकार्णव हो गया और स्थावर– जंगम सब नष्ट हो गया, तब ब्रह्मा तथा मुझे (विष्णु को) प्रबोधित करने के लिये उसी एकार्णव में शिव का (ज्योतिर्लिंगमय रूप में) प्रादुर्भाव हुआ। उसी समय से लोकों के कल्याण की कामना से ब्रह्मा तथा मैं दोनों ही सदा महादेव (के लिंग) की पूजा करते हैं।" तभी से लिंगपूजा का प्रचलन प्रारंभ हुआ।

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम्।
वेदा महेश्वरं देवमाहुर्लिङ्गिनमव्ययम्।।
पुरा चैकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
प्रबोधार्थं ब्रह्मणो मे प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः।।
तस्मात् कालात् समारभ्य ब्रह्मा चाहं सदैव हि।
पूजयावो महादेवं लोकानां हितकाम्यया।। (कू. पु. पू. वि. 25/63–65)

(4) भगवद्प्राप्ति के अन्य साधन

ओंकार को भगवान् शिव का वाचक तथा मुक्ति का बीज माना गया है (कू. पु. उ. वि. 5/29), इसीलिये अन्हें ओंकारमूर्ति भी कहते हैं (कू. पु. उ. वि. 8/9)। जिस व्यक्ति को ज्ञान नहीं हुआ है, उस पुरुष को वैराग्य एवं प्रीतिपूर्वक जीवनपर्यन्त एकाग्र मन से ब्रह्म के शरीरस्वरूप प्रणव (ॐ कार) का जप करना चाहिये अथवा संयत चित्तवाले एकाकी द्विजों को मरणपर्यन्त शतरुद्रिय का जप करना चाहिये। ऐसा करने से वे परम पद को प्राप्त करते हैं (कू. पु. उ. वि. 11/99–100), क्योंकि भगवान् शिव के गोपनीय नाम शतरुद्रिय में हैं। उसका मन लगाकर, ब्रह्मचर्य धारणकर, संयमित आहार ग्रहणकर तथा भस्म लगाकर जप करने से परम पद प्राप्त किया जा सकता है। (कू. पु. पू. वि. 19/68–69)

जो पुरुष एकाग्र मन से मरणपर्यन्त वाराणसी में निवास करता है, उसे भी ईश्वर के अनुग्रह से परम पद प्राप्त होता है। वाराणसी में प्राण निकलते समय महेश्वर सभी प्राणियों को श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करते हैं जिससे वे बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। नीच एवं पापयोनिवाले प्राणी भी वाराणसी में निवास करने के कारण ईश्वर के अनुग्रह से तर जाते हैं, किन्तु पापाक्रान्त चित्तवाले मनुष्यों को वहाँ निवास करने में विघ्न होते हैं। अतएव मुक्ति के लिये निरन्तर धर्माचरण करना चाहिये। (कू. पु. उ. वि. 11/101–2, 104–105)

मोक्ष की अभिलाषावाले व्यक्ति को भस्म से धूसरित शरीरवाला होकर संयत–मन तथा शान्त होकर, ब्रह्मचर्यव्रत–परायण होते हुए वस्त्रादि की आसक्ति से रहित होकर पाशुपत–व्रत का पालन करना चाहिये (कू. पु. उ. वि. 37/140–141)। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, क्षमा, शौच, तप, दम, संतोष, सत्य तथा आस्तिकता– ये सभी पाशुपत–व्रत के विशेष अंग हैं। इनमें से एक अंग के भी न होने से यह

व्रत लुप्त हो जाता है। इसलिये इन आत्मगुणों से युक्त साधक ही मेरा पाशुपत-व्रत धारण कर सकता है।(कू. पु. उ. वि. 11/69-70)

भगवान् शिव की सगुणोपासना में आरुढ़ होने की इच्छा करनेवाले को पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, तीन नेत्रोंवाले, जटाधारी, चर्माम्बरधारी, पद्मासन में स्थित तथा स्वर्णिम आभावाले शंकररूप का ध्यान करना चाहिये (कू. पु. उ. वि. 44/41-42)। तदनन्तर रुद्रगायत्री[1], प्रणव, ईशान-मन्त्र[2], रुद्र तथा त्र्यम्बक मन्त्र[3] से एकाग्र-मन होकर पुष्प, पत्र, जल, तथा चन्दन आदि के द्वारा महेश्वर की आराधना करनी चाहिए और मन्त्र का उच्चारण कर मन्त्र के साथ **'नमः शिवाय'** को जोड़ना चाहिये। तदनन्तर ऋत एवं सत्यस्वरूप ईश्वर महादेव को नमस्कार करना चाहिये और **'यो ब्रह्माणं'**[4] इस मन्त्र के द्वारा अपने को ईश्वर के लिये समर्पित करे। द्विज को पाँच ब्रह्म (शिव के पाँच नामों)[5] का जप करते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये और आकाश के मध्य स्थित ईशानदेव शिव का ध्यान करना चाहिये (कू. पु. उ. वि. 18/97-100)।

भगवान् शिव कहते हैं कि जो नारायण हैं, वह मैं ईश्वर ही हूँ। नारायण नामवाली तथा शान्त अक्षर-संज्ञक मेरी यह मूर्ति सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है। श्रुति के अनुसार (जगत् की) स्थापना करनेवाली (रुद्र की) मोहनी शक्ति को ही नारायण कहते हैं (कू. पु. उ. वि. 44/26)। लोक में जो भेद-दृष्टिवाले लोग इसके विपरीत समझते हैं, वे मेरा दर्शन नहीं कर पाते, और बार-बार संसार में जन्म लेते हैं। जो इन अव्यक्त विष्णु अथवा मुझ देव महेश्वर को एकी भाव से देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये आदि और अन्त से रहित आत्मरूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और फिर वैसे ही पूजा भी करो। जो लोग विष्णु और मुझको अलग-अलग देवता के रूप में देखते हैं वे घोर नरक में जाते हैं, मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूँ। मूर्ख हो, पण्डित हो, ब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल हो, मेरे आश्रित रहनेवाले प्रत्येक को मैं मुक्त कर देता हूँ, किन्तु जो नारायण की निन्दा करनेवाले हैं उन्हें मैं मुक्त नहीं करता। इसलिये मेरे भक्त मुझमें प्रीति उत्पन्न करने के लिये महायोगी भगवान् विष्णु की पूजा एवं वन्दना किया करें।(कू. पु. उ. वि. 11/111-118)

---

[1] रुद्र गायत्री-ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

[2] ईशान मन्त्र-ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्।

[3] त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम् पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः।(यजु. 3/60)

[4] यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तम् ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।(श्वेताश्व. उ. 6/18)

[5] ईशानः[1] सर्वविद्यानाम् ईश्वरः[2] सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपतिः[3] ब्रह्मणोऽधिपतिः[4] ब्रह्मा[5] शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्।।

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम्।
मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम्।।
तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः।
अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय हि।। (कू. पु. उ. वि. 11/117-118)

एक अन्य स्थल पर भगवान् शिव ने विष्णु भगवान् से कहा है कि "हे विश्वात्मन्! बिना आपका आश्रय ग्रहण किये योगी मुझे प्राप्त नहीं कर सकते।"

त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपैष्यति। (कू. पु. पू. वि. 9/86)

रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र तथा महादेव-ये आठ रुद्र के नाम हैं। सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण तथा चन्द्र-ये (रुद्र की) आठ मूर्तियाँ हैं। जो इन आठ स्थानों (मूर्तिरूपों) में रुद्र का ध्यान करते हैं और उन्हें प्रणाम करते हैं, उन्हें अष्टमूर्तिरूप देव (भगवान् शिव अपना) परम पद देते हैं। (कू. पु. पू. वि. 10/26-27)

आराधना के लिये सबसे उत्तम तो परम देव शिव हैं जिनसे त्रिदेवों की उत्पत्ति हुई है। परन्तु अगर ऐसा किसी कारणवश संभव न हो तो हर अथवा विष्णु अथवा ब्रह्मा की आराधना करनी चाहिये। और अगर व्यक्ति इसमें भी असमर्थ है तो भक्तियुक्त होकर (कार्यब्रह्म की शक्ति) वायु, अग्नि तथा इन्द्रादि देवताओं की उसे पूजा करनी चाहिये। (कू. पु. उ. वि. 44/43, 46)

सांख्य-योग की चर्चा करते हुए बताया गया है कि केवल योग के द्वारा मुक्ति नहीं मिलती अपितु योगसहित सांख्य पुरुषों को मुक्ति प्रदान करनेवाला होता है। दूसरे शब्दों में अनासक्त भाव से कर्मनिष्ठा (कर्मयोग) और ज्ञाननिष्ठा (सांख्य) ही मोक्षकारक है। भस्म धारण कर, ज्ञाननिष्ठा परायण हो शान्त और नित्य शिवभक्ति में जो तत्पर हैं, वे लोग भवसागर से पार हो जाते हैं। (उ. वि. 37/128-139)

शिव के भक्तों के लिये शिवलिंग धारण करना श्रेष्ठ है। शैवों को यह भी चाहिये कि वे श्वेत भस्म से ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करें। ऊपर-नीचे भावपूर्वक त्रिपुण्ड्र के धारण करने से अनादि (होते हुए भी), जो प्राणियों का आदि है, कालात्मा है, उसका धारण करना हो जाता है। (कू. पु. पू. वि. 2/100-103)

योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्मासौ धृतो भवेत्।
उपर्यधो भावयोगात् त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात्।। (कू. पु. पू. वि. 2/103)

(5) शैवतीर्थों के माहात्म्य

तीर्थसेवन भी उपासना का एक महत्त्वपूर्ण अंग बताया गया है। परन्तु तीर्थ-सेवन संबंधी शास्त्रीय नियमों का पालन करने पर ही उसका पूरा फल मिलता है। जो अपने धर्मों [1] (वर्णाश्रम आदि) का परित्यागकर

---

[1] उदाहरण के लिये क्षमा, दम, दया, दान, अलोभ, त्याग, आर्जव, असूया, तीर्थानुसरण, सत्य, सन्तोष, आस्तिक्य, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह, देवद्विजपूजन, अहिंसा, प्रिय भाषण, अपैशुन्य और अकलह चारों वर्णों के सामान्य धर्म हैं।

तीर्थों का सेवन करता है, उसके लिये तीर्थ न इस लोक में फलदायी होते हैं न परलोक में।

यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च।। (कू. पु. उ. वि. 42/20)

प्रायश्चित्ती, पत्नी से रहित विधुर पुरुष तथा जिनके द्वारा पाप हो गया है ऐसे गृहस्थ एवं इसी प्रकार के जो अन्य लोग हैं, उन्हें (पश्चात्तापपूर्वक यथाशास्त्र) तीर्थों का सेवन करना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर यथोक्त गति (उत्तम गति) प्राप्त करता है। अथवा तीनों ऋणों से मुक्त होने के बाद पुत्रों के लिये जीविका-संबंधी वृत्ति की व्यवस्थाकर और अपनी पत्नी को उन्हें सौंपकर तीर्थ का सेवन करना चाहिये। (कू. पु. उ. वि. 42/21-23)

इस पुराण में नाना प्रकार के शैवतीर्थों का उसकी महिमा के साथ वर्णन हुआ है। रामेश्वर लिंग, वाराणसी के विश्वेश्वर लिंग, ओंकारेश्वर, कृत्तिवासेश्वर, कपर्दीश्वर, मध्यमेश्वर आदि लिंग, ब्रह्मतीर्थ, प्रभास, विजय, गोकर्ण, सप्त सरस्वती, रुद्र कोटि, कालांजर, महालय, केदार, कनखल, श्रीपर्वत, दारुवन, अमर कंटक, ऋषि, महेश्वर, इक्षुनदी संगम, काम, सिद्धेश्वर, शुक्ल, भृगु, गौतमेश्वर, मानस, पिंगलेश्वर, जप्येश्वर, पंचनद, कायावरोहण, महाकाल, गंगाद्वार, तथा भीमेश्वर इत्यादि तीर्थों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही नर्मदा नदी के माहात्म्य का भी वर्णन किया गया है। इन तीर्थों में स्नान, पूजा तथा उनके सेवन से मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं फलस्वरूप वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

एक बार देवी ने भगवान् शिव से पूछा कि पुरुष किस प्रकार शीघ्र ही आपका दर्शन कर सकता है? लोक में सांख्य-योग, ध्यान, वैदिक कर्मयोग और अन्य भी अनेक अधिक परिश्रमसाध्य उपाय बताये गये हैं। इस बारे में जो गूढ़ ज्ञान हो उसे आप हम सभी भक्तों के कल्याण के लिये बतलायें, जिससे देहधारियों को भगवान् का दर्शन हो सके।

उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि वाराणसीपुरी मेरा परम गुह्यतम क्षेत्र है। यह सभी प्राणियों को संसारसागर से पार उतारनेवाली है। यह मेरा अविमुक्त (काशीक्षेत्र) सभी स्थानों में श्रेष्ठ और सभी ज्ञानों में उत्तम ज्ञानरूप है।

उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च तत्।
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं मम।। (कू. पु. पू. वि. 29/24)

मेरा गुह्यस्वरूप यह क्षेत्र भूलोक से सम्बद्ध नहीं है, अपितु अन्तरिक्ष में अवस्थित है, अयोगियों को इसका दर्शन नहीं होता। जो योगी हैं वे ध्यान में इसका दर्शन करते हैं। यहाँ किया हुआ दान, जप, होम, यज्ञ, तप, कर्म, ध्यान, अध्ययन और ज्ञानार्जन-सब कुछ अक्षय हो जाता है। इस क्षेत्र में प्रविष्ट होनेवाले का हजारों जन्मान्तरों में किया हुआ पूर्वसंचित पाप नष्ट हो जाता है। इस क्षेत्र में कालवश मृत्यु को प्राप्त सभी प्रकार के प्राणी शिवस्वरूप को प्राप्त कर मेरे धाम को जाते हैं। यहाँ मरा हुआ प्राणी नरक नहीं जाता, कृपा से वे सभी परमगति प्राप्त करते हैं। तपस्या द्वारा पवित्र प्राणी के लिये भी जो

गति अन्यत्र मरने पर दुर्लभ है वह यहाँ मेरे अनुग्रह से प्राप्त हो जाती है। मेरी माया से विमोहित अज्ञानी लोग इस तत्त्व को नहीं समझते।

नैष्ठिकी दीक्षा ग्रहण कर जो अविमुक्तक्षेत्र में निवास करते हैं, उन्हें मैं श्रेष्ठ ज्ञान और अन्त में परम पद प्रदान करता हूँ। प्रयाग, नैमिषारण्य, श्रीशैल, केदार, भद्रकर्ण, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रुद्रकोटि, नर्मदा, आम्रातकेश्वर, शालिग्राम, कुब्जाम्र, कोकामुख, प्रभास, विजयेशान, गोकर्ण तथा भद्रकर्ण-ये सभी पवित्र तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात हैं, किंतु जिस प्रकार वाराणसी में मरे हुए व्यक्तियों को परम मोक्ष प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता।(कू. पु. पू. वि. 29/44-47)

दूसरे स्थान में योग, ज्ञान, संन्यास अथवा अन्य उपायों से हजारों जन्मों में वह परमपद मोक्ष प्राप्त होता है, किन्तु शंकर के जो भक्त वाराणसी में निवास करते हैं, वे एक जन्म में ही परम मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। जहाँ एक ही जन्म में योग, ज्ञान अथवा मुक्ति मिल जाती है उस अविमुक्तक्षेत्र में पहुँचकर फिर किसी दूसरे तपोवन में नहीं जाना चाहिये। यह अविमुक्तक्षेत्र ऐसा है, जहाँ साक्षात् महादेव देहान्त होने के समय तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं।

अन्यत्र योगज्ञानाभ्यां संन्यासादथवान्यतः।
प्राप्यते तत् परं स्थानं सहस्रेणैव जन्मना।।
ये भक्ता देवदेवेशे वाराणस्यां वसन्ति वै।
ते विन्दन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्मना।।
यत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना।
अविमुक्तं समासाद्य नान्यद् गच्छेत् तपोवनम्।।
यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तकम्।। (कू. पु. पू. वि. 29/53-55, 59)

वरुणा और असी (नदियों) के मध्य वाराणसीपुरी स्थित है। यहाँ महादेव से ज्ञान प्राप्तकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। किन्तु पाप से आक्रान्त चित्तवालों को विघ्न होते हैं। इसलिये शरीर, मन और वाणी से वहाँ पाप नहीं करना चाहिये।

किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसः।
ततो नैव चरेत् पापं कामेन मनसा गिरा।। (कू. पु. पू. वि. 29/67)

नर्मदा के माहात्म्य को मार्कण्डेयजी बताते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं कि "रुद्र की देह से निकली हुई नर्मदा सभी नदियों में श्रेष्ठ है। वह सभी चर-अचर प्राणियों को पार उतारनेवाली है। गंगा कनखल में तथा सरस्वती कुरुक्षेत्र में पवित्र कही गयी है, किन्तु ग्राम अथवा अरण्य में सर्वत्र ही नर्मदा को पवित्र कहा गया है। सरस्वती का जल तीन दिन, यमुना का जल सात दिन तथा गंगाजल तत्काल सेवन से, किन्तु नर्मदा का जल दर्शनमात्र से ही पवित्र कर देता है।"

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद् विनिःसृता।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च।।
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।।
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्।।[1] (कू. पु. उ. वि. 38/5, 7-8)

त्रिदेवों की एकता एवं शिवनिन्दा का फल

यों तो सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् शिव की ही शक्ति के विविध रूप हैं, उनकी विभूतियाँ हैं तथापि उन रूपों में त्रिदेव उत्कृष्टतमरूप या अभिव्यक्तियाँ हैं। ये तीनों प्रमुख देव ही सृष्टिकार्य को संचालित करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के रूप में निर्गुण-निराकार शिव ही क्रमशः सृष्टि, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं। ये तीनों देव तत्त्वतः एक हैं तथा अनन्त शक्तियों से युक्त हैं। इस पुराण में अनेक स्थल पर उनकी एकता का कथन किया गया है।

कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु ऋषियों से कहते हैं कि "परात्पर परमात्मा की रज, सत्त्व एवं तमोगुण के योग से क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर नामक तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं। ये तीनों विग्रह परस्पर एक दूसरे में अनुरक्त तथा एक दूसरे के उपजीवी (आश्रित) हैं। ये तीनों परमेश्वर हैं और लीलावश एक दूसरे को प्रणाम करते रहते हैं। हे ब्राह्मणो! रुद्र में ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा अक्षर (वैष्णवी) नामक तीन प्रकार की भावनाएँ सर्वदा विद्यमान रहती हैं। मुझमें प्रथम अक्षरभावना निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। भगवान् ब्रह्माजी की द्वितीय अक्षरभावना कही गयी है।"

तिस्रस्तु मूर्त्तयः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
रजःसत्त्वतमोयोगात् परस्य परमात्मनः।।
अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः।
अन्योन्यं प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः।।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना।
तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्तन्ते सततं द्विजाः।।
प्रवर्तते मय्यजस्रमाद्या चाक्षरभावना।
द्वितीया ब्रह्मणः प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना।। (कू. पु. पू. वि. 2/89-92)

विष्णुजी आगे कहते हैं कि "पारमार्थिक दृष्टि से मुझमें और महादेव में कोई भिन्नता नहीं है। वही अन्तर्यामी ईश्वर अपनी इच्छा से अपने को विभाजित कर (मेरे तथा महादेव के रूप में) स्थित है। देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों के साथ ही त्रैलोक्य की सृष्टि करने के लिये (इसी परम) पुरुष ने

---

[1] ये तीनों श्लोक लगभग इसी रूप में मत्स्य पुराण (186/8, 10-11) में भी पाये जाते हैं।

अपने परात्पर अव्यक्त स्वरूप द्वारा ब्रह्मत्व को स्वीकार किया अर्थात् वे ही अव्यक्त परमात्मा सृष्टि करने के लिये ब्रह्मा के रूप में व्यक्त हुए। अत: ब्रह्मा, महादेव एवं विश्वेश्वर भगवान् विष्णु (ये तीनों ही) पृथक्-पृथक् कार्य की दृष्टि से एक ही प्रभु की तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं।"

अहं चैव महादेवो न भिन्नौ परमार्थतः।
विभज्य स्वेच्छयात्मानं सोऽन्तर्यामीश्वरः स्थितः।।
त्रैलोक्यमखिलं स्रष्टुं सदेवासुरमानुषम्।
पुरुषः परतोऽव्यक्ताद् ब्रह्मत्वं समुपागमत्।।
तस्माद् ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः।
एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तनूः कार्यवशात् प्रभोः।। (कू. पु. पू. वि. 2/93-95)

किसी प्रसंग में भगवान् शिव ब्रह्माजी से कहते हैं कि मैं ही निष्कल परमेश्वर सृष्टि, रक्षा एवं प्रलय-इन तीन गुणों से भावित होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-इन नामों से तीन रूपों में विभक्त हूँ। एक होते हुए भी वे शंकर अपनी इच्छा से अपने को (तीन रूपों में) विभक्तकर स्थित रहते हैं। वे देव इन त्रिमूर्तियों से उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ शरीरवाले हैं।

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः।।
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः।
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शंकरः स्थितः।।
ऐभ्यः परतरो देवस्त्रिमूर्तिः परमा तनुः। (कू. पु. पू, वि, 10/75, 78, 80)

ब्रह्माजी दक्ष से कहते हैं कि शंकर की निन्दा करना छोड़ दो क्योंकि उनकी निन्दा करनेवाले की सारी क्रियाएँ दोषयुक्त ही होती हैं। जो आपके ये अव्यय तथा महायोगी विष्णु रक्षक हैं, वे भी देवताओं के देव भगवान् महादेव ही हैं, इसमें कोई संशय नहीं। जो अज्ञान से भगवान् विष्णु को शंकर से पृथक मानता है, वह मनुष्य नरक में जाता है। वेदमार्ग का अनुसरण करनेवाले लोग रुद्रदेव तथा नारायण को एकीभाव से देखते हैं। आगे कहा गया है कि जो विष्णु हैं वे ही साक्षात् रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही जनार्दन विष्णु हैं- इस प्रकार समझकर जो देव का पूजन करता है, वह परम-गति को प्राप्त होता है। इस प्रकार यहाँपर शिव एवं विष्णु की एकता बतलायी गयी है। (कू. पु. पू. वि. 14/85-89)

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः।
इति मत्वा यजेद् देवं स याति परमां गतिम्।। (कू. पु. पू. वि. 14/89)

उपरोक्त संदर्भो के अलावा त्रिदेवों की एकता संबंधी अन्य कई संदर्भ इस पुराण में पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये-उ. वि. 44/34; 44/37 इत्यादि। इसी प्रकार शिव एवं विष्णु की एकता

संबंधी संदर्भ इस प्रकार हैं– पू. वि. 9/77, 79; 15/152, 161–162; 24/81; उ. वि. 11/111, 113–115 इत्यादि।

भगवान् श्रीकृष्ण परलोक पधारने से पहले भृगु आदि महर्षियों से कहते हैं कि "नारायण के भक्तजन पर से परतर (अच्छे से अच्छा) स्थान को प्राप्त करते हैं, किन्तु जो महेश्वर से द्वेष रखते हैं, वे वहाँ नहीं जाते। जो पिनाक धारण करनेवाले शिव की निन्दा करते हैं, उनका ध्यान, होम, किया गया तप, ज्ञान तथा यज्ञादि सभी विधान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो ईशान (शंकर) देव की निन्दाकर नित्य अनन्य भाव से मेरा (कृष्ण का) आश्रय ग्रहण करता है, वह दस हजार वर्षोंतक नरक में रहता है। इसलिये द्विजों! मन, वाणी तथा कर्म से पशुपति तथा उनके भक्तों की निन्दा का प्रयत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये।"

परात् परतरं यान्ति नारायणपरायणाः।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम्।।
ध्यानं होमं तपस्तप्तं ज्ञानं यज्ञादिको विधिः।
तेषां विनश्यति क्षिप्रं ये निन्दन्ति पिनाकिनम्।।
यो माम् समाश्रयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः।
विनिन्द्य देवमीशानं स याति नरकायुतम्।।
तस्मात् सा परिहर्तव्या निन्दा पशुपतौ द्विजाः।
कर्मणा मनसा वाचा तद्भक्तेष्वपि यत्नतः।। (कू. पु. पू. वि. 26/13–16)

उपसंहार

अन्य शैव पुराणों की भाँति कूर्म पुराण के भी प्रमुख देवता भगवान् शिव हैं। भगवान् शिव को परम तत्त्व बताते हुए उन्हें एक, निर्गुण, निरञ्जन, सृष्टि का पालन तथा संहार कर्त्ता, अनन्तरूप धारण करनेवाला, ॐकारस्वरूप, सर्वव्यापी, अजर, अमर, स्वतंत्र, आत्मस्वरूप, त्रिनेत्रधारी, जटा एवं त्रिशूलधारी, परब्रह्मस्वरूप, सकल–निष्कलरूप, कालरूप, तारक, अक्षर, निष्प्रपंच, प्रधान, पुरुष, प्रकृति, मलरहित तथा पशुपति आदि कहा गया है। उनके बायें अंग से विष्णु, दाहिने से ब्रह्मा तथा हृदय से रुद्र प्रकट हुए हैं। भगवान् शिव में ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व, आत्मज्ञान तथा अधिष्ठातृत्व– ये दस अव्यय गुण सदा प्रतिष्ठित रहते हैं। इस प्रकार भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की झलक हमें इस पुराण में मिलती है।

शिव शक्तिमान कहे जाते हैं। शिव अपनी शक्ति से अलग नहीं हैं। समस्त जगत् की शक्तियाँ शक्ति की तथा शक्तिमान शिव के ही रूपान्तर हैं। शिव की शक्ति को माया भी कहते हैं। महेश्वर को छोड़कर सब कुछ अनित्य है। काल के संसर्ग से मायावी शिव संसार की सृष्टि करते हैं और फिर अन्त में संहार भी करते हैं। काल भी भगवान् शिव का ही रूप है।

शिव की उपासना से भगवान् राम, विष्णु, कृष्ण तथा नारायण, गरुड़, जनक, व्यास, भृगु, नन्दी, पराशर, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, बाणासुर आदि ने अपने-अपने मनोरथ हासिल किये। जिस प्रकार भगवान् शिव को श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार उनकी भक्ति को। उनकी भक्ति से व्यक्ति भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिव की भक्ति सुगम होने के साथ-साथ जीवन के चरम लक्ष्य को पहुँचानेवाली है। भगवान् शिव को कोई ज्ञान से, कोई योग-ध्यान से,कोई कर्म से और कोई भक्ति से प्राप्त करता है। सभी प्रकार के उपासकों में ज्ञानी श्रेष्ठ है पर ज्ञान बहुत ही दुर्लभ है। अतः भगवान् शिव भक्ति द्वारा ही आसानी से प्राप्य हैं। योगों में अष्टांग-योग को विस्तार से इस पुराण में समझाया गया है। सत्ययुग के प्रधान देवता ब्रह्मा, त्रेता के सूर्य, द्वापर के विष्णु तथा कलि के भगवान् शिव हैं। अतः कलि के दोषों को दूर करने का उपाय शिवाराधना ही है। चूँकि ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता शिव के ही रूप हैं इस कारण से अन्य रूपों के आलंबन द्वारा जो भक्ति की जाती है महादेव उसी रूप को धारणकर आराधना करनेवाले को फल प्रदान करते हैं। अर्थात् भिन्न-भिन्न देवों के उपासकों को जो फल प्राप्त होता है वह भगवान् शिव द्वारा ही दिया जाता है।

भगवान् शिव की शक्तियाँ ही विभिन्न देवों के रूप में व्यक्त होती हैं। इन सभी अभिव्यक्त शक्तियों में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तीन प्रमुख हैं जो सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, तथा शान्तरूप हैं और भोग तथा मोक्षरूप फल को देनेवाली हैं। सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य तथा सारूप्य नामक मुक्ति ये तीनों ही देव दे सकते हैं पर कैवल्य नामक मुक्ति भगवान् शिव के अनुग्रह से प्राप्त होती है। भगवान् शिव की कलियुग में ही नहीं अपितु चारों युगों में उपासना होती है पर अन्य देवों की युग विशेष में ही प्रधानता रहती है।

सभी जीव पशु हैं क्योंकि वे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश आदि बन्धनों या पाशों से बंधे हैं। इन पंच-क्लेशों की जड़ अज्ञान है। भगवान् शिव पशुपति हैं क्योंकि वे ही व्यक्ति को पाशों से बांधने और मुक्त करनेवाले हैं।

भगवान् शिव की भक्ति में सगुणोंपासना, विशेषतः लिंगपूजा, को इस पुराण में महत्त्व दिया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से मार्कण्डेयजी को लिंगपूजा के माहात्म्य को समझाया है।

अन्त में मुक्ति प्राप्ति के लिये तीर्थसेवन को भी एक रास्ता बताया गया है जो सबसे सरल है। अनेक तीर्थों के वर्णन हमें इस पुराण में प्राप्त होते हैं जिनमें से काशी को सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। काशीसेवन या काशी में मरने से व्यक्ति एक ही जन्म में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। परन्तु तीर्थ सेवन के लिये एक शर्त भी बतायी गयी है जिसके अभाव में तीर्थ के फल प्राप्त नहीं होते। वह शर्त यह है कि तीर्थ में मन, वाणी तथा कर्म से पाप न किया जाय तथा तीर्थ सेवन करनेवाला अपने धर्मों का पालन करते हुए ही तीर्थ सेवन करे। सामान्य धर्म जो सभी के लिये अनिवार्य है वे ये हैं-दम, क्षमा, दया, दान, अलोभ, त्याग, आर्जव, असूया, सत्य, सन्तोष, आस्तिक्य, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह,

अहिंसा, अपैशुन्य, अकलह आदि।

इस पुराण में भगवान् शिव को सर्वोच्च परमब्रह्म स्वीकार करते हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र की तात्त्विक एकता को स्वीकार किया गया है। ये तीनों देव एक ही ब्रह्म के कार्यों के भेद से प्रकट तीन मूर्तियाँ हैं। अथवा ये सब एक ही ब्रह्म की विभूतियाँ हैं। तीनों देवों की एकता के साथ-साथ विष्णु एवं रुद्र तथा रुद्र एवं श्रीकृष्ण की एकता के भी कई प्रसंग इस पुराण में प्राप्त होते हैं। भगवान् शिव कहते हैं कि विष्णु एवं शिव में भेद करनेवाला नरकगामी होता है। पुनः वे यह भी कहते हैं कि मेरी प्रसन्नता के लिये विष्णु की पूजा करनी चाहिये। अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण भी यह कहते हैं कि अगर कोई मेरा भक्त होकर शिव की निन्दा करता है तो वह हजारों वर्ष तक नरक में पड़ा रहता है।

* * *

अन्नदान का माहात्म्य

न पृच्छेद्गोत्रचरणं न च स्वाध्यायमेव च।
भिक्षुको ब्राह्मणोह्यत्रदद्यादन्नंप्रयाति च।।
अन्नदस्यशुभा वृक्षाः सर्वकामफलान्विताः।

(पद्म महापु. उत्तरखण्ड 26/14-15)

अन्नदान करते समय याचक से यह न पूछे कि वह किस गोत्र और किस शाखा का है, तथा उसने कितना अध्ययन किया है? अन्न का अभिलाषी कोई भी (ब्राह्मण अथवा शूद्र) क्यों न हो, उसे दिया हुआ अन्न-दान महान् फल देनेवाला होता है।

अन्नतोयसमंदानं संसारे नास्ति जैमिने।।
सर्वदानफलान्येवअन्नतोयप्रदानतः।
न च पात्रपरीक्षा च न कालनियमः क्वचित्।।
अन्नतोयप्रदानेषु निरुक्तस्तत्त्वदर्शिभिः।
अन्नतोयप्रदानानि कर्तव्यानि सदैव हि।। (पद्म महापु. क्रियाखण्ड 21/131-133)

व्यासजी जैमिनी से कहते हैं कि अन्न-जल के दान के समान इस संसार में अन्य कोई दान नहीं है। अन्न-जल के दान से सभी प्रकार के दानों का फल प्राप्त हो जाता है। इसके लिये न तो पात्र के परीक्षा की आवश्यकता है और न ही काल का कोई नियम है (अर्थात् सभी प्रकार के व्यक्ति, सदैव- चाहे सुबह हो, शाम हो, दिन हो या रात हो-इस दान के पात्र हैं।)। तत्त्वदर्शियों ने यह कहा है कि अन्न-जल का दान व्यक्ति का नित्य कर्त्तव्य है।

मत्स्य पुराण[1] में शिवतत्त्व

पद्म पुराण (उत्तरखण्ड 236/18) के अनुसार यह एक तामस पुराण अर्थात् शैव पुराण है। परन्तु इस पुराण में शिव से संबंधित कथाएँ तथा तथ्य विष्णुसंबंधी कथाओं एवं तथ्यों से कम हैं। पुनः यह ग्रन्थ विष्णुअवतार मत्स्य तथा मनु के बीच संवाद से जन्म लेता है। इस ग्रन्थ के अन्त में भी भगवान् विष्णु की महिमा गायी गयी है।अतः इस पुराण को वैष्णव पुराण माना जाना चाहिये।

नारद पुराण (पूर्वभाग, चतुर्थपाद, अ. 107) में दी गयी मत्स्य पुराण की विषयसूची के अनुरूप ही यह पुराण उपलब्ध होता है। नारद पुराण पूर्वभाग (107/2) तथा स्वयं मत्स्य पुराण (अध्याय 53/50) के अनुसार इसमें 14000 श्लोक होने चाहिये। इस पुराण में सात कल्पों की मिली-जुली कथा है (नारद पु. पू. ख. 107/1)। वर्तमान में उपलब्ध इस पुराण में 291 अध्याय हैं।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में भगवान् शिव को ही परमतत्त्व, परब्रह्म तथा परमसत् स्वीकार किया गया है। परमतत्त्व सदाशिव ही सगुणरूप धारणकर जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय का हेतु बनता है। सदाशिव विश्वरूप होने के साथ-साथ विश्व से परे भी हैं। अर्थात् वे निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों में विद्यमान हैं। यहाँ हम इस पुराण के उन सन्दर्भों को देखेंगे जिनसे शिव के सगुण एवं निर्गुणरूपों की झलक मिलती है।

भगवान् शिव की स्तुति करते हुए शुक्राचार्य उन्हें शितिकण्ठ, जटाजूटधारी, वर देनेवाले, परम पवित्र, बहुरूप, देवों के देव, विश्वबीज, सहस्रशिर एवं नेत्रवाले, दयालु, विश्वरूप, त्रिनेत्र, कपाल एवं पिनाक धारण करनेवाले, असुरों का विनाश करनेवाले, पशुपति, भूतपति, प्रणवरूप, ऋग्, यजुः और सामवेदरूप, वषट्कार, भूतभव्य के स्वामी, निर्गुणरूप तथा सर्वात्मा आदि कहा है। (म. पु. 47/126-165)

नमोऽस्तु तुभ्यं भगवन्! विश्वाय कृत्तिवाससे।
पशुनां पतये तुभ्यं भूतानांपतये नमः।।
प्रणवे ऋग्यजुःसाम्नेस्वाहायचस्वधाय च।
वषट्कारात्मने चैव तुभ्यं मन्त्रात्मनेनमः।। (म. पु. 47/154-155)

अर्थात्-विश्वरूप एवं गजचर्म को धारण करनेवाले भगवान् को नमस्कार। पशुपति एवं भूतपति को नमस्कार। प्रणवस्वरूप, ऋक्, यजुः एवं सामदेवस्वरूप, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार एवं मन्त्रात्मस्वरूप भगवान् शिव को नमस्कार।

एक अन्य स्थल पर भगवान् शिव को भूत-भव्य-ईश, शूलपाणी, अजन्मा, सहस्रों सूर्यों की भाँति तेजवान, चन्द्रमा को धारण करनेवाले, नीललोहित, वर देने के लिये उत्सुक, पशुपति,

---

[1] प्रस्तुत लेख, एच. एच. विल्सन द्वारा संपादित तथा 1983 में नाग पब्लिशर्स द्वारा दो खण्डों में प्रकाशित 'श्रीमत्स्य महापुराणम्' की प्रति पर आधारित है।

जटाजूटधारी, नित्य, सबके ईश, महादेव, त्रिनेत्र, शान्तस्वरूप, विश्वबीज, अचिन्त्य, सभी देवों के पूज्य, वृषध्वज, मुण्ड को धारण करनेवाले, अजेय, विश्वकी आत्मा, विश्व का रचयिता, विश्वव्यापक तथा भक्तवत्सल आदि कहा गया है। (म. पु. 132/18-29)

विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते।

……………………………………………………

भक्तानुकम्पिने नित्यं दिशते यन्मनोगतम्।। (म. पु. 132/28-29)

अर्थात्-विश्वात्मा, विश्व का सृजन करनेवाले, विश्व में व्यापक होकर स्थित रहनेवाले, भक्तों पर दया करनेवाले, नित्य तथा इच्छित वस्तु प्रदान करनेवाले (को नमस्कार है)।

अन्यत्र शिव को जगत्पति (म. पु. 154/96) तथा लोकनाथ (म. पु. 154/130) कहा गया है। नारदजी हिमाचल को पार्वती के भावी पति (शिव) के बारे में बतलाते हुए कहते हैं कि उसका पति अजन्मा है क्योंकि वह भूत एवं भविष्य सभी के उद्गम का स्रोत है, सबका शरणस्थल है तथा शाश्वत परमेश्वर है। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा मुनिगण जन्म, जरा तथा मृत्यु के अधीन हैं। वे सभी परमेश्वर शिव की क्रीड़ा के विषय हैं। उसी की इच्छा से ब्रह्मा भुवनपति हैं और विष्णु विभिन्न युगों में नाना शरीर धारण करते हैं। विष्णु के विभिन्न अवतार माया के माध्यम से होते हैं। ब्रह्मा से लेकर स्थावरतक जो कुछ भी संसार में है वह सब जन्म, मृत्यु तथा दुःख आदि परिवर्तनों के वशीभूत है। परन्तु महादेव अचल, स्थाणु, जन्म तथा जरा से रहित हैं तथा उन्हीं से सभी वस्तुएँ पैदा होती हैं। ऐसा महादेव जो जगन्नाथ तथा निरामय है, पार्वती का भावी पति होगा।

न स जातो महादेवो भूतभव्यभवोद्भवः।
शरण्यः शाश्वतः शास्ता शङ्करः परमेश्वरः।।
ब्रह्मविष्णविन्द्रमुनयो जन्ममृत्युजरार्द्दिताः।
तस्यैते परमेशस्य सर्वे क्रीडनका गिरे।।
आस्ते ब्रह्मा तदिच्छातः संभूतो भुवनप्रभुः।
विष्णुर्युगे युगे जातो नानाजातिर्महातनुः।।
मन्यसे मायया जातं विष्णुश्चापि युगे युगे।
ब्रह्मादिस्थावरान्तोऽयं संसारो यः प्रकीर्त्तितः।
स जन्ममृत्युदुःखार्त्तो ह्यवशः परिवर्त्तते।।
महादेवोऽचलः स्थाणुर्न जातो जनकोऽजरः।
भविष्यति पतिः सोऽस्या जगन्नाथो निरामयः।। (म. पु. 154/179-182, 183-184)

काम-दहन के पश्चात् रति ने भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें देवों द्वारा वन्दित, भक्तों पर कृपा करनेवाले, जगत् के कारण, माया से आवृत्त रहनेवाले, कालस्वरूप, परमज्ञान को प्रदान

करनेवाले, निर्गुणरूप, नाना भुवानों के निर्माता, विश्वस्रष्टा, अनेक सृष्टियों के रचयिता, भक्तों की इच्छा पूरा करनेवाले, अनन्त रूपवाले, चन्द्रमा को धारण करनेवाले, अनन्त प्रतिष्ठावाले, वृष पर सवारी करनेवाले, सभी दुःखों को दूर करनेवाले, सृष्टि के स्वामी, महान् आचार्य तथा भक्तों के भय को दूर करनेवाले कहा है(म. पु. 154/262-272)। स्तुति की एक पंक्ति को देखें-

त्वमेवमेको भुवनस्य नाथो दयालुरुन्मूलितभक्तभीतिः॥ (म. पु. 154/272)

अर्थात्-केवल तुम्हीं जगत् के नाथ हो; तुम दयालु तथा भक्तों के भय को दूर करनेवाले हो।

पार्वती की परीक्षा लेने सप्तर्षिगण जाते हैं। वहाँ जाकर वे लोग शिवतत्त्व की गलत ढंग से व्याख्या कर पार्वती को उसके निश्चय से विचलित करना चाहते हैं। उस समय पार्वती(शिवतत्त्व के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए) सप्तर्षियों से जवाबी प्रश्न के माध्यम से शिवतत्त्व के स्वरूपपर प्रकाश डालती हैं। वे कहती हैं कि "आप लोग प्रजापति के तुल्य हैं और सभी कुछ जाननेवाले हैं। पर इतना निश्चित है कि आप लोग शाश्वत ईश जो अजन्मा तथा जगत् के कारण हैं, अव्यक्त तथा अमित प्रतिष्ठावाले हैं उनको नहीं जानते। उन्हें ब्रह्मा एवं विष्णु आदि देव भी नहीं जानते, अतः उनके तत्त्व का निर्णय करना ही व्यर्थ है। जिनसे प्रलय तथा सभी भूतों का प्रादुर्भाव होता है, जिनकी महिमा सभी भूतों तथा ब्रह्माण्ड में प्रकट है उसे आप नहीं जानते। आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा जल किसकी मूर्ति हैं? किससे वे प्रकट होते हैं? सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि किसके नेत्र हैं? किसके लिंग की पूजा भक्तिपूर्वक देव एवं दानव करते हैं? जो ब्रह्मा, इन्द्र तथा महर्षियों द्वारा महादेव कहे जाते है क्या उनकी महिमा को आप सब नहीं जानते?" इत्यादि। (म. पु. 154/345-351)

**प्रजापतिसमाः सर्वे भवन्तः सर्वदर्शिनः॥
नूनं न वेत्थ तं देवं शाश्वतं जगतः प्रभुम्।
अजमीशानमव्यक्तममेयमहिमोदयम्॥
आस्तान्तद्धर्म्मसद्भावसम्बोधस्तावदद्भुतः।
विदुर्यन्न हरिब्रह्मप्रमुखाहि सुरेश्वराः॥
यतत्तस्य विभवात्स्वोत्थंभुवनेषु विजृम्भितम्।
प्रकटं सर्वभूतानां तदप्यत्र नवेत्थकिम्॥
कस्यैतद्गगनं मूर्त्तिः कस्याग्निःकस्यमारुतः।
कस्यभूः कस्य वरुणः कश्चन्द्रार्कविलोचनः॥
कस्यार्चयन्ति लोकेषु लिङ्गंभक्त्या सुरासुराः।
यं ब्रुवन्तीश्वरं देवा विधीन्द्राद्यामहर्षयः॥
प्रभावं प्रभवञ्चैव तेषामपि न वेत्थ किम्।** (म. पु. 154/345-351)

इस पुराण में नर्मदा माहात्म्य के अन्तर्गत दशाश्वमेध-यज्ञतीर्थ का वर्णन है। इसके माहात्म्य

के सन्दर्भ में कथा आयी है कि इस तीर्थ की पश्चिम दिशा में महर्षि भृगु ने देवताओं के एक हजार वर्ष तक कठोर तपस्या की। फलस्वरूप उनका शरीर बल्मीक से ढँक गया तथा उनपर चिड़ियों ने घोंसले बना लिये। इन सब कारणों से शिव-पार्वती प्रभावित हो उन्हें कृतार्थ करने के उद्देश्य से उनके पास गये। पार्वती ने शिवजी से कहा कि आप बड़े कठोर हैं, अभीतक आपने ऋषि के ऊपर कृपा नहीं की। इसपर शिवजी कहते हैं कि यह ऋषि क्रोध से पूर्ण है इसी कारण अभीतक कृपा नहीं हुई।

इस प्रकार कहकर शिवजी ने उनके क्रोध को पार्वती के सामने दिखाने के लिये नन्दी को आदेश दिया कि वे ऋषि को उठाकर पटक दें। नन्दी के ऐसा करते ही भृगु क्रोधाविष्ट होकर श्राप देने को उद्यत हुए। उसी क्षण भगवान् शिव उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान् शिव को देखकर उनकी उन्होंने स्तुति आरंभ कर दी। वे उनकी स्तुति में उन्हें भवातीत तथा भुवनपति कहते हैं जिनके गुणों का गान शेषनाग भी नहीं कर सकते; जो सत्त्व, रज एवं तमोगुण से क्रमशः आवृत्त हो जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करते हैं। वे भुवनेश्वर हैं तथा अन्य सभी देवों से श्रेष्ठ हैं। जिनकी भक्ति की बराबरी यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, योग तथा धारणा आदि नहीं कर सकते तथा जिनकी भक्ति से ही संसार से मुक्ति मिल सकती है। अपनी स्तुति में भृगु मद-मोह एवं पाश आदि से मुक्ति दिलाकर मोक्षतक पहुँचाने के लिये शिव से प्रार्थना करते हैं (म. पु. 193/36-46)। उनकी स्तुति के कुछ अंश देखें-

त्वद्गुणनिकरान् वक्तुं कः शक्तो भवति मानुषो नाम।
वासुकिरपि हि कदाचिद्वदनसहस्रं भवेद्यस्य।।
सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्त्योर्विनाशने देव।
त्वां मुक्त्वा भुवनपते! भुवनेश्वर नैव दैवतं किञ्चित्।। (म. पु. 193/37, 39)

अर्थात्-जिनके गुणों का गान सहस्र मुखोंवाले वासुकि भी नहीं कर सकते, जो सत्त्व, रज एवं तम स्वरूप हैं तथा जिनसे सृष्टि की उत्पत्ति, पालन एवं विनाश होता है; वे भुवनेश्वर हैं एवं अन्य सभी देवों से श्रेष्ठ भी हैं।

समुद्रमन्थन से जब कालकूट नामक विष प्रकट हो सभी देव-दानवों को जलाने लगा तब सभी देव-दानव उसे ग्रहण करने के लिये भगवान् शिव से निवेदन करने लगे। उन लोगों ने अपनी स्तुति में शिव को चारों ओर अनन्त आँखोंवाले, पिनाक, वज्र तथा त्रिशूल धारण करनेवाले, जटाजूटधारी, त्रैलोक्यनाथ, सुरों के शत्रु-हन्ता, सूर्य, चन्द्र एवं अग्निरूप नेत्रवाले, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारण करनेवाले, काम एवं काल का विनाश करनेवाले, देवों के देव, सुरश्रेष्ठ, शुद्ध ज्ञान प्रदान करनेवाले, कैवल्य-मुक्तिस्वरूप, तीनों लोकों के विधाता, वरुण, इन्द्र एवं अग्निरूप, ऋग्, यजुः और सामवेदरूप, पुरुष, ईश्वर, सत्त्व और रजसरूप, व्यक्त, अव्यक्त तथा व्यक्ताव्यक्तरूप, भक्तों के दुःख को दूर करनेवाले, नारायण के प्रिय तथा नानारूपधारी इत्यादि कहा है। (म. पु. 250/28-40)

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष! सर्वतोऽनन्तचक्षुषे।
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने।।

……

नमः सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे।
ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे।।
ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे।
साङ्ख्य योगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते।।

……

शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे।
लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे।।
ऋगयजुः सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च।

……

रजसेचैवसत्त्वाय नमस्ते स्तिमितात्मने।
अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने।।
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः।
भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च।। (म. पु. 250/28, 30-31, 34-37)

सुरासुरगण विषपान के लिये शिव को प्रेरित करने के लिये कहते हैं कि आप भक्तवत्सल, भुवनों के स्वामी, सर्वव्यापी, यज्ञ के अग्रभाग को ग्रहण करनेवाले, सौम्य एवं सोम् आदि हैं।

भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनादीश्वरो विभुः।
यज्ञाग्रभुक् सर्वहविः सौम्यः सोमः स्मरान्तकृत्।। (म. पु. 250/49)

उपरोक्त उद्धरण, जो इस पुराण में बिखरे नाना प्रसंगों से लिये गये हैं, भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की झलक देते हैं। निर्गुणरूप में वे प्रणवरूप, अव्यक्त, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों द्वारा भी अगम्य, जगत् के मूल कारण तथा भवातीत आदि हैं। सगुणरूप में वे नीलकण्ठ जटा-जूटधारी, वर देनेवाले, बहुरूप, देवों के देव, सहस्त्र नेत्र एवं शिरवाले, विश्वरूप, पशुपति, भूतपति, त्रिनेत्र, कपाल, पिनाक, वज्र एवं त्रिशूल धारण करनेवाले, सर्वात्मा, कामदेव एवं असुरों का विनाश करनेवाले, चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्नि को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, चन्द्रचूड़, सभी देवों में पूज्य, नित्य, सबके ईश, वृषवाहन, विश्वव्यापक, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप, कर्त्ता, धर्त्ता एवं हर्त्ता, अजेय, शाश्वत, अजन्मा, भक्तवत्सल, लोगों की मनोकामना पूरा करनेवाले, वर देने के लिये सदैव उत्सुक, अचल, परमेश्वर, जरा-मृत्युरहित, उमापति, परमज्ञान एवं कैवल्य प्रदान करनेवाले, कालस्वरूप, सभी दुःखों को दूर करनेवाले, आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा जल जिनकी मूर्तियाँ हैं, मोह-माया आदि पाशों से मुक्त

करनेवाले तथा नारायण के प्रिय आदि विशेषणों से युक्त हैं।

शिवोपासना

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं कि भगवान् शिव न केवल भोग एवं मोक्ष के दाता हैं अपितु वे भक्तवत्सल, शीघ्र प्रसन्न हो जानेवाले, वर देने के लिये सदैव उत्सुक रहनेवाले, सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाले तथा सभी प्रकार के दुःखों से निजात दिलानेवाले हैं। समुद्रमन्थन से काल–कूट हलाहल निकला तो उसकी ज्वाला से सभी देव एवं असुर जलने लगे और ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि किसी देव अथवा दानव के पास उसका समाधान नहीं था। तब भगवान् शिव ने ही कृपा करके उस विष से जगत् को मुक्ति दिलायी। जो कर्म किसी देव–दानव के वश में न था, उस कर्म को शिवजी ने कर दिखाया।

शिवोपासना से न केवल मानव अपितु देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर आदि सभी प्रकार के लोगों ने इच्छित फल प्राप्त किये हैं। उदाहरण के लिये शुक्राचार्य, जिन्हें मृत संजीवनी विद्या प्राप्त हुई (म. पु. अ. 47), व्यास (म. पु. अ. 185), बाणासुर (म. पु. अ. 188), भृगु (म. पु. अ. 193), देव एवं दानव (म. पु. अ. 250 आदि), जैगीषव्य (म. पु. अ. 180) तथा कुबेर (म. पु. अ. 189) आदि।

मत्स्य पुराण में एक स्थलपर कहा गया है कि "भगवान् शिव की प्रसन्नता या अप्रसन्नता दोनों ही सिद्धिदायक अथवा फलप्रद रहती है, ऐसा मनु आदि ऋषियों ने कहा है।"

एवं मन्वादयो देव! वदन्ति परमर्षयः।
रुष्टाद्वाचाथ तुष्टाद्वा सिद्धिस्तूभयतो भवेत्।। (म. पु. 180 / 87)

पार्वती द्वारा यह पूछे जानेपर कि यज्ञ एवं उसके मन्त्रों द्वारा ब्राह्मण लोग किसकी उपासना करते हैं? भगवान् शिव कहते हैं कि वे सभी मन्त्रों तथा यज्ञों द्वारा मेरी ही उपासना करते हैं। (म. पु. 183 / 42 – 43)

वे आगे कहते हैं कि जो लोग रुद्र की उपासना करते हैं उन्हें भवसागर से कोई डर नहीं होता।

न तेषांभयमस्तीतिभवंरुद्रं यजन्ति यत्। (म. पु. 183 / 44)

एकस्थल पर भृगुजी भगवान् शिव की स्तुति में कहते हैं कि यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, धारणा तथा योग– ये सब–के–सब आपकी भक्ति की हजारवीं कला के भी बराबर नहीं हैं। जो शठतापूर्वक भी आपको नमस्कार करता है उनपर भी आप कृपा करते हैं। केवल आपकी भक्ति ही भवसागर से पार कराकर मोक्षतक पहुँचानेवाली है।

यमनियमयज्ञदानवेदाभ्यासाश्च धारणा योगः।
त्वद्भक्तेः सर्वमिदं नार्हति हि कलासहस्रांशम्।।
शाठ्येन नमति यद्यपि ददासि त्वं भूतिमिच्छतो देव!।
भक्तिर्भवभेदकरी मोक्षाय विनिर्मिता नाथ।। (म. पु. 193 / 40, 42)

भगवान् शिव पार्वती से आगे बताते हैं कि रुद्रोपासना दो प्रकार की होती है–मंत्र के साथ तथा बिना मन्त्र के। इसी प्रकार योग भी दो प्रकार का होता है–सांख्य एवं योग। जो लोग मुझे सर्वव्यापक समझते हैं वे योगी कहलाते हैं और जो लोग मुझे सभी भूतों की आत्मा के रूप में देखते हैं और मुझे अपने से अलग नहीं देखते हैं वे सांख्य–योगी कहलाते हैं। ये(सांख्य–योगी) कभी नष्ट नहीं होते। योग निर्गुण एवं सगुण दो प्रकार का होता है। सगुणयोग का ज्ञान हो सकता है जबकि निर्गुणयोग समझ के परे होता है।(म. पु. 183/44-48)

अमन्त्रो मन्त्रकोदेवि! द्विविधोविधिरुच्यते।।
सांख्यं चैवाथ योगश्च द्विविधो योग उच्यते।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वंच मयि पश्यति।।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।
निर्गुणः सगुणोवापियोगश्च कथितोभुवि।।
सगुणश्चैव विज्ञेयो निर्गुणो मनसः परः। (म. पु. 183/44-48)

पार्वती द्वारा पुनः यह पूछे जानेपर कि योगी लोग आपके किस रूप को देखते हैं? भगवान् शिव उत्तर देते हैं कि मेरा वास्तविक स्वरूप तो अमूर्त है किन्तु जो व्यक्तरूप है वह ज्योतिरूप है। अतः योगी को उसी प्रकाश(ज्योति) की उपलब्धि का प्रयास करना चाहिये।(म. पु. 183/57-59)

अमूर्तंचैव मूर्त्तश्च ज्योतीरूपं हि तत् स्मृतम्।।
तस्योपलब्धिमन्विच्छन् यत्नः कार्यो विजानता। (म. पु. 183/58-59)

उपरोक्त सभी उद्धरणों पर दृष्टिपात करें तो निम्नलिखित बातें स्पष्ट हैं। प्रथम यह कि भगवान् शिव की उपासना किसी भी भाव(चाहे प्रसन्न करनेवाले भाव या किसी अन्य) से करनी चाहिये। दूसरी बात यह है कि निर्गुण की बजाय सगुणयोग को ही साधना चाहिये। सगुणयोग में प्रकाश या ज्योतिस्वरूप शिव के अनुभव का अभ्यास किया जाना चाहिये।

(1) शिवलिंग की उपासना

शिवोपासना में लिंगपूजा का विशेष महत्त्व बताया गया है। इस पुराण में अनेक ऐसे उद्धरण हैं जहाँ लिंगपूजा का उल्लेख मिलता है। वाराणसी एवं नर्मदाक्षेत्र के माहात्म्य के अध्यायों में अविमुक्तक्षेत्र(काशी) की महिमा के सन्दर्भ में कहा गया है कि जो व्यक्ति इस क्षेत्र में शिवलिंग की पूजा करता है उसका सौ करोड़ कल्पों में भी पुनः जन्म नहीं होता।

अविमुक्तं समासाद्य लिङ्गमर्चयते नरः।
कल्पकोटिशतैश्चापि नास्ति तस्य पुनर्भवः।। (म. पु. 185/55)

एक अन्य स्थलपर भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि अविमुक्तक्षेत्र हमें बहुत ही प्रिय है, इस कारण मैं यहाँ स्थित प्रत्येक लिंगों में विद्यमान रहता हूँ। (म. पु. 183/9)

नर्मदा-माहात्म्य के अन्तर्गत एक स्थलपर बताया गया है कि बाणासुर अपने सिरपर शिवलिंग रखकर शिव से प्रार्थना करते हुए कहता है कि आप चाहे तो मुझे मार डालिये पर मेरे इस लिंग को, जिसकी मैंने आजीवन भक्ति की है, नष्ट मत कीजिये। (म. पु. 188/56-60)

किस प्रकार का लिंग बनाना चाहिये? इस पुराण में इसका भी उल्लेख है। लिंग का परिमाण मन्दिर के परिमाण के अनुसार होना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्य को सुदर्शन स्वर्णलिंग बनाना चाहिये। लिंग की लम्बाई को चार भाग में बाँटना चाहिये। एक भाग के बराबर लिंग की मोटाई या व्यास बनाना चाहिये। अर्थात् ऊँचाई के चौथाई भाग के बराबर लिंग की मोटाई होनी चाहिये। लिंग की कुल लम्बाई का निचला तीसरा हिस्सा वर्गाकार बनाना चाहिये, बीच का तीसरा हिस्सा अष्टभुजाकार होना चाहिये और ऊपर का तीसरा हिस्सा, जिसकी पूजा होगी तथा जिसे नाभी कहते हैं, गोलाकर बनाना चाहिये। निचला वर्गाकार हिस्सा जमीन के भीतर होना चाहिये तथा मध्य भाग जल के भीतर रखना चाहिये। यह लिंग लकड़ी, पत्थर, मिट्टी या अन्य किसी भी रत्न का हो सकता है। (म. पु. अ. 263)

लिंग के मूल भाग में ब्रह्मा, मध्य भाग में विष्णु तथा ऊपरी भाग में शिव का स्थान होता है (म. पु. 263/16)। यहाँ उपरोक्त प्रकार के लिंग की उपासना का फल भी बताया गया है।

ऊपर के सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि लिंग की पूजा से भगवान् शिव को प्रसन्न किया जा सकता है। तथा लिंगपूजा से ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव तीनों की पूजा हो जाती है क्योंकि भगवान् शिव स्वयं सर्वदेवमय हैं।

(2) भगवान् शिव की मूर्तिपूजा

इस पुराण में न केवल शिवलिंग अपितु शिव की विभिन्न मूर्तियों के भी निर्माण की विधि तथा उनके मानदण्ड बताये गये हैं। शिव की प्रतिमा के जंघे मोटे तथा बाजू और कंधे तपाये हुए सोने की भाँति होना चाहिये। उनकी जटाएँ सूर्य की रश्मियों की भाँति होनी चाहिये। माथे पर चन्द्रमा अंकित होना चाहिये। उनकी आकृति सोलह वर्ष के मुकुटधारी युवा की भाँति होनी चाहिये। उनके हाथ हाथी के सूंड की भाँति, जंघे एवं एड़ी सुडौल एवं गोलाकार होना चाहिये। उनके बाल सीधे, आँखें चौड़ी एवं लम्बी तथा व्याघ्रचर्म को धारण किया हुआ शरीर बनाना चाहिये। इसी तरह अन्य प्रकार के निर्देश भी दिये गये हैं। (म. पु. अ. 259)

शिवजी की मूर्ति नृत्य करते हुए या बैठे हुए बनायी जा सकती है। दोनों प्रकार की मूर्तियों के बनाने संबंधी अलग-अलग निर्देश हैं। इसी प्रकार भैरवमूर्ति, अर्धनारीश्वरमूर्ति तथा हरिहरमूर्ति आदि संबंधी नियम बताये गये हैं। हरिहरमूर्ति की उपासना से पाप नष्ट हो जाते हैं। (म. पु. अ. 260)

उपरोक्त दोनों अध्यायों में न केवल मूर्तिनिर्माण अपितु उसमें होनेवाली न्यूनता का भी उल्लेख

है। अगर मूर्ति का शास्त्रोक्त ढंग से निर्माण न किया जाय तो उससे क्या नुकसान होता है उसे भी बताया गया है। उदाहरण के लिये अगर मूर्ति के किसी अंग को छोड़ दिया गया है या ठीक से नहीं बनाया गया है तो उससे पूजक को दरिद्रता आदि प्राप्त होती है। इसी प्रकार अधिक अंग बनानेवाले मूर्तिकार का नाश हो जाता है। दुर्बल मूर्ति बनाने पर धन का नाश तथा अकाल पड़ता है।

(3) शैवतीर्थ

इस पुराण में अनेक शैवतीर्थो का वर्णन किया गया है। हम यहाँपर कुछ तीर्थो का उल्लेख करेंगे। इस पुराण में काशीक्षेत्र (अविमुक्त अथवा वाराणसी) तथा नर्मदाक्षेत्र का माहात्म्य बड़े ही विस्तार के साथ दिया गया है। काशीक्षेत्र का वर्णन छः अध्यायों (180 - 185) में तथा नर्मदाक्षेत्र का नौ अध्यायों (186 - 194) में किया गया है।

काशीक्षेत्र की महिमा बताते हुए भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि इस क्षेत्र में निवास करके कुबेर (म. पु. 180 / 2 आदि) ने क्षेत्रपाल का पद तथा जैगीषव्य (180 / 58 - 59 इत्यादि) ने योगाचार्य का पद पाया। व्यास वेदों का विस्तार करनेवाले बने। इस क्षेत्र में ब्रह्मा, विष्णु, वायु, सूर्य, इन्द्रादि देव, देवर्षिगण तथा अन्य महात्मागण मेरी भक्ति करते हैं। अन्य सिद्धयोगी प्रछन्न वेश में रहकर हमारी उपासना करते हैं। इन सब लोगों ने इस क्षेत्र को महत्ता दी है क्योंकि यहाँ जो सिद्धि प्राप्त हो सकती है वह अन्यत्र संभव नहीं है।

रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि! क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुङ्गवः।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्द्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः।।
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः।
उपासन्ते महात्मानः सर्वे मामेवसुव्रते।।
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः।
अनन्यमनसोभूत्वा मामिहोपासतेसदा।। (म. पु. 180 / 65 - 67)

ब्रह्मा और अन्य देवगण तथा सिद्ध लोग, जो मोक्षकामी हैं, इस क्षेत्र को सबसे श्रेष्ठ समझते हैं। भगवान् शिव कहते हैं कि मैं काशी को कभी भी नहीं छोड़ता और न ही कभी छोड़ूँगा, इसलिये इसका नाम अविमुक्तक्षेत्र है। (म. पु. 180 / 53 - 54)

विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन।
महत् क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदंस्मृतम्।। (म. पु. 180 / 54)

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि अविमुक्तक्षेत्र में मरनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, मलेच्छ तथा कीट, पतंगे, चींटी, पशु और पक्षी आदि संकीर्ण जीव भी रुद्ररूप होकर मेरी सारूप्यता को प्राप्त कर लेते हैं।

ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः शूद्रा वै वर्णसङ्कराः।
कृमिम्लेच्छाश्चयेचान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः।।
कीटाः पिपीलिकाश्चैव येचान्ये मृगपक्षिणः।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्तेशृणु प्रिये!।।
चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः।
शिवे ममपुरे देवि! जायन्ते तत्र मानवाः।। (म. पु. 181/19-21)

अविमुक्तक्षेत्र के श्मशान के ऊपर भगवान् शिव का अदृश्य दिव्यधाम अवस्थित है। यह धाम भूलोक से भी जुड़ा हुआ है। यह शिवधाम आकाश में अवस्थित है। अयोगी लोगों को यह धाम अदृश्य रहता है, पर योगी, ब्रह्मचारी तथा वेदज्ञों के लिये यह दृश्य है। (म. पु. अ.182/6-7)

श्मशानसंस्थितं वेश्म दिव्यमन्तर्हितञ्च यत्।।
भूर्लोकेनैव संयुक्तमन्तरिक्षे शिवालयम्।
अयुक्तास्तु न पश्यन्ति युक्ताः पश्यन्तिचेतसा।। (म. पु. 182/6-7)

मणिकर्णिका (अविमुक्त का तीर्थविशेष) पर मरनेवाले के कान में स्वयं भगवान् शिव मन्त्र का उपदेश करते हैं जिससे वह मुक्त हो जाता है। (म. पु. 182/22-24)

अविमुक्त की तीर्थयात्रा से अधार्मिक, पापी और शठ आदि भी पापमुक्त हो जाते हैं। प्रलय हो जानेपर भी भगवान् शिव अविमुक्तक्षेत्र में अपने सैकड़ों गणों के साथ निवास करते हैं। (म. पु. 183/11-12)

पार्वती से शिवजी कहते हैं कि जिस प्रकार मेरे जैसा पुरुष और तुम्हारे जैसी स्त्री नहीं है उसी प्रकार अविमुक्ततीर्थ की भाँति कोई पवित्र तीर्थ नहीं है। यहाँ परमयोग, परमगति तथा परममोक्ष प्राप्त हो सकता है। इसके जैसा अन्य क्षेत्र नहीं है। सैकड़ों जन्म में योग की यदि उपलब्धि हो भी जाय तो मोक्ष की उपलब्धि में हजारों जन्म लग सकते हैं। पर मेरे भक्त अविमुक्तक्षेत्र में निःसन्देह एक ही जन्म में दुर्लभ योग और मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

मत्समः पुरुषो नास्ति त्वत्समा नास्तियोषिताम्।
अविमुक्तसमं क्षेत्रंनभूतंनभविष्यति।।
जन्मान्तरशतैर्देवि! योगोऽयं यदि लभ्यते।
मोक्षः शतसहस्रेण जन्मना लभ्यते न वा।।
अविमुक्तेन सन्देहो मद्भक्तः कृतनिश्चयः।
एकेन जन्मना सोऽपि योगं मोक्षं च विन्दति।। (म. पु. 183/35, 38-39)

अविमुक्तक्षेत्र के परिमाण को बताते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि यह क्षेत्र पूर्व एवं पश्चिम दिशा में दो योजन विस्तारवाला है। इसकी चौड़ाई आधा योजन है जो उत्तर और दक्षिण की तरफ है

और इसके किनारे गंगा बहती है। (म. पु. 183/61-62)

शिवजी पुनः कहते हैं कि इस क्षेत्र में मेरे, विष्णु तथा सूर्य किसी के भी भक्त अगर आकर मर जाते हैं तो वे मेरे में ही लीन हो जाते हैं। (म. पु. 183/102)

वे आगे कहते हैं कि इस क्षेत्र में निवास करनेवालों के काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, मत्सर, निद्रा, तन्द्रा तथा आलस्य आदि शत्रु हैं जो स्वयं इन्द्र द्वारा प्रेरित होते हैं।

कामः क्रोधंश्चलोभश्च दम्भस्तम्भोऽतिमत्सरः।।
निद्रा तन्द्रातथाऽऽलस्यपैशून्यमितितेदश।
अविमुक्तेस्थिताःविघ्नाः शक्रेणविहिताः स्वयम्।। (म. पु. 184/29-30)

देवता और ब्राह्मणों से द्वेष करनेवाले, ब्रह्महत्यारा, कृतघ्न, गुरुद्रोही, तीर्थ आदि को दूषित करनेवाले तथा अन्य प्रकार के पापों में सदा रहनेवाले को दण्डनायक यहाँ निवास नहीं करने देते। इसी प्रकार यहाँ जप, ध्यान और ज्ञान से हीन तथा दुःखी व्यक्ति भी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। (म. पु. 185/43-45, 64-65)

कामक्रोधेन लोभेन ग्रस्ता ये भुविमानवाः।
निष्क्रमन्तेनरा देवि! दण्डनायकमोहिताः।।
जपध्यानविहीनानां ज्ञानवर्जितचेतसाम्।
ततो दुःखहतानाञ्च गतिर्वाराणसी नृणाम्।। (म. पु. 185/64-65)

इस पुराण में काशी के विभिन्न तीर्थस्थलों का वर्णन किया गया है। इनमें प्रसिद्ध हैं- दशाश्वमेध, लोलार्क, केशव, बिन्दु माधव एवं मणिकर्णिका। इन सबमें मणिकर्णिका सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है।

तीर्थानां पञ्चकं सारं विश्वेशानन्दकानने।
दशाश्वमेधं लोलार्कः केशवो बिन्दुमाधवः।।
पञ्चमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका।
एभिस्तु तीर्थवर्यैश्च वर्ण्यते ह्यविमुक्तकम्।। (म. पु. 185/66-67)

इस पुराण में नर्मदा एवं उसके तटवर्ती क्षेत्रों में स्थित अनेक तीर्थों का वर्णन काफी विस्तार से मिलता है। नर्मदा की महिमा बताते हुए मार्कण्डेयजी युधिष्ठिर से कहते हैं कि गंगा को कनखल में तथा सरस्वती को कुरुक्षेत्र में पवित्र माना गया है परन्तु नर्मदा को सर्वत्र एक समान पवित्र माना गया है। सरस्वती का जल तीन दिन में, यमुना का जल सात दिन में तथा गंगा का तत्काल शुद्ध कर देता है परन्तु नर्मदा का जल मात्र दर्शन से ही पवित्र बना देता है। नर्मदा नदियों में श्रेष्ठ है और यह स्थावर एवं जंगम- सभी प्राणियों को तार देती है। इसके तटवर्ती स्थित सभी स्थावर-जंगम शिव को प्राप्त हो जाते हैं।

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।।
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्।।
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च।। (म. पु. 186/10-11, 8)

नर्मदा के तटवर्ती एवं समीपवर्ती अनेक तीर्थों जैसे ज्वालेश्वर, अमरकण्टक, कावेरी संगम, मन्त्रेश्वर, विश्रुत, अगारेश्वर, करज, कोटि, अगस्तेश्वर, इन्द्र, भीमेश्वर, सोम, नन्दी, कार्तिकेय, कपिला, ब्रह्म, भृगु तथा सिद्धार्थ आदि अनेक छोटे-बड़े तीर्थों का उल्लेख हम इस पुराण में पाते हैं।

(4) शैवव्रत

इस पुराण में शिवचतुर्दशी अथवा शिवरात्रि व्रत की विशेष महिमा बतायी गयी है। कहा गया है कि ब्रह्मा, बृहस्पति तथा इन्द्रादि कोई भी देवता इस व्रत के फल की महिमा का यथावत् वर्णन नहीं कर सकता। (म. पु. 95/35)

इस व्रत के करने से हजार अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है तथा सौ करोड़ कल्पोंतक शिव के गणों का अधिपति रहकर अन्त में व्यक्ति भगवान् शिव के पद को प्राप्त कर लेता है।

अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छिवचतुर्दशीम्।
सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः।।
……………………………………………………
गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटिशतान्युषित्वा पदमेति शम्भोः।।
(म. पु. 95/32, 34)

व्रत के दिन स्नान, जप तथा उमासहित भगवान् शिव का पुष्प, गन्धादि द्वारा पूजन तथा अन्त में नमस्कार करना चाहिये।

त्रिदेवों की एकता

इस पुराण में भी तीनों प्रमुख देवों की तात्त्विक एकता के सूत्र प्राप्त होते हैं। एक स्थल पर देवगणों ने ब्रह्मा की स्तुति में कहा है कि रुद्ररूप में वे ही जगत् का संहार करते हैं (154/7)। इसी प्रकार देवता एवं दानव भगवान् विष्णु की स्तुति में उन्हें रुद्ररूप कहते हैं।

रुद्ररूपाय शर्वाय नमः संहारकारिणे।
नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने।। (म. पु. 249/39)

पुनः देव-दानवगण भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें विष्णुरूप कहते हैं।

.................रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे।। (म. पु. 250/30)

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीनों ही देव आपस में एक दूसरे का रूप धारण कर लेते हैं। विस्तारभय से हम ऐसे अनेक उद्धरणों की उपेक्षा कर दे रहे हैं जिनसे यह पता चलता है कि शिव ब्रह्मा तथा विष्णुरूप, विष्णु शिव एवं ब्रह्मारूप तथा ब्रह्मा शिव एवं विष्णुरूप धारण करते हैं। उपरोक्त तीनों प्रकरण (अ. 154 तथा 249-250) में ही हमें वे सभी उद्धरण प्राप्त हो जायँगे जिन्हें हमने विस्तारभय से छोड़ दिया है।

अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि तीनों ही प्रमुख देवों में तात्त्विक एकता है। अन्तर केवल उनकी सृष्टि-प्रक्रिया में होनेवाली भूमिकाओं का है।

उपसंहार

पद्मपुराण तथा अन्य मान्यताओं के अनुसार यह एक शैवपुराण है जिसमें सात कल्पों की मिली-जुली कथा पायी जाती है। इस पुराण में भी भगवान् शिव को परमतत्त्व स्वीकार किया गया है, जिसके सगुण एवं निर्गुण दो रूप हैं। निर्गुणरूप में उन्हें प्रणवरूप, अव्यक्त, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों द्वारा अगम्य तथा भवातीत आदि कहा गया है। सगुणरूप में उन्हें जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के कारण, नीलकण्ठ, जटा-जूट, चन्द्रमा, त्रिशूल, पिनाक आदि धारण करनेवाले, वरदाता, देवों के देव, पशुपति, त्रिनेत्र, विश्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु, एवं रुद्ररूप, परम ज्ञान एवं कैवल्य प्रदान करनेवाले, उमापति, परमेश्वर, कालस्वरूप, शाश्वत, अजन्मा तथा भूतपति आदि-आदि कहा जाता है।

शिवोपासना भोग एवं मोक्ष दोनों प्रदान करनेवाली है। देव, दानव, मानव आदि सभी ने शिवोपासना से लाभ उठाया है। शुक्राचार्य, व्यास, बाणासुर, कुबेर, जैगीषव्य आदि ने शिवोपासना से दुर्लभ वर प्राप्त किये। भगवान् शिव की प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता दोनों को ही लाभदायक बताया गया है। शिवोपासना में लिंग एवं मूर्ति दोनों की उपासना की जाती है। लिंग के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु तथा अग्रभाग में रुद्र का निवास होता है। शिव की मूर्तियों में अर्धनारीश्वर तथा हरिहर मूर्ति की भी उपासना की जाती है। लिंग अनेक प्रकार की धातुओं, मिट्टी तथा पाषाण आदि से बनाये जा सकते हैं। इस पुराण में विभिन्न प्रकार की शिवप्रतिमायें तथा लिंगनिर्माण संबंधी महत्त्वपूर्ण निर्देश दिये गये हैं।

शैवतीर्थों में काशीक्षेत्र एवं नर्मदाक्षेत्र का बड़े ही विस्तार के साथ यहाँ वर्णन पाया जाता है। काशी में मरनेवाले सभी स्थावर-जंगम आदि को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। काशी में मरनेवाले के कान में भगवान् शिव स्वयं मन्त्रोपदेश करते हैं जिससे वह मुक्त हो जाता है। काशी में पापकर्मीलोगों को हटाने के लिये दण्डनायक की नियुक्ति की गयी है। इसी प्रकार काशी में निवास करनेवालों के लिये

इन्द्र की तरफ से भी काम, क्रोध, आलस्य, निद्रा आदि बाधायें प्रस्तुत की जाती हैं। इन बाधाओंपर विजय प्राप्त करके ही काशीवास संभव हो सकता है।

नर्मदाक्षेत्र के माहात्म्य को बतलाते हुए कहा गया है कि इसके तटवर्ती स्थित सभी स्थावर - जंगम शिव को प्राप्त हो जाते हैं। सरस्वती, यमुना एवं गंगा से भी अधिक पवित्र करनेवाली नर्मदा है क्योंकि इसके दर्शनमात्र से ही पाप दूर हो जाते हैं। नर्मदा के तटवर्ती अथवा समीप स्थित अनेक तीर्थों जैसे अमरकण्टक, कावेरीसंगम तथा ज्वालेश्वर आदि का भी वर्णन किया गया है।

शिवरात्रिव्रत की असीम महिमा है। इसे करनेवाले को हजार अश्वमेधयज्ञ का फल तथा अन्त में शिवपद की प्राप्ति होती है।

अन्त में हम इस पुराण में तीनों प्रमुख देवों की तात्त्विक एकता के भी सूत्र पाते हैं।

* * *

भावशुद्धिः परम शौचम्

भावशुद्धिः परं शौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु।।
अन्यथाऽऽलिङ्ग्यते कान्ताभावेन दुहिताऽन्यथा।
मनसा भिद्यते वृत्तिरभिन्नेष्वपि वस्तुषु।।
अन्यथैव सती पुत्रं चिन्तयेदन्यथा पतिम्।

(पद्ममहापु. भूमिखण्ड 66/86-88)

भावार्थ यह है कि भावना की शुद्धि ही सर्वश्रेष्ठ पवित्रता है तथा सभी कर्मो के पीछे निहित भावना का ही महत्त्व होता है। पत्नी एवं पुत्री - दोनों का ही आलिंगन किया जाता है किन्तु पत्नी के आलिंगन में दूसरा भाव होता है और पुत्री के आलिंगन में दूसरा। भिन्न - भिन्न वस्तुओं के प्रति मन की वृत्ति में भी भेद हो जाता है। नारी अपने पति का और भाव से चिन्तन करती है और पुत्र का और भाव से। यद्यपि यहाँ व्यवहार में समानता है परन्तु भावना में पृथ्वी आसमान का अन्तर है। अत: किसी आचरण की पवित्रता उसके पीछे निहित मानसिक भाव द्वारा निर्धारित होती है न कि वाह्याचरण से। इसीलिये गीता (3/7-8) में कहा गया है कि ऊपर से कर्मेन्द्रिय के संयममात्र से उसे त्यागी नहीं कहा जा सकता। त्यागी या संन्यासी वही कहलाता है जो मन से विषयों का चिन्तन नहीं करता यद्यपि वह बाहर से विषयों में वर्तता हुआ नजर आ सकता है।

ब्रह्माण्ड महापुराण में शिवतत्त्व

नारद महापुराण(पू. ख. चतुर्थपाद, अध्याय 109) के वर्णनानुसार ब्रह्माण्ड पुराण भविष्य कल्पों की कथा से युक्त बारह हजार श्लोकोंवाला है। इसके चार पाद हैं। पहला 'प्रक्रियापाद' दूसरा 'अनुषंगपाद' तीसरा 'उपोद्घातपाद' और चौथा 'उपसंहारपाद' है। पहले के दो पादों को पूर्व भाग कहा गया है। तृतीयपाद ही मध्यम भाग है और चतुर्थपाद उत्तर भाग माना गया है। चौथे पाद के बाद 'ललितोपाख्यान' परिशिष्ट के रूप में पाया जाता है।

इस पुराण को आमतौर पर शैवपुराण माना जाता है परन्तु इसमें देवी तथा विष्णु के माहात्म्य की विस्तृत चर्चा को देखते हुए ऐसा मानना न्यायसंगत नहीं लगता। इस पुराण के सभी अध्यायों के अनेकों श्लोक वायु पुराण में यथावत् या किंचित् परिवर्तन के साथ प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ ब्रह्माण्ड पुराण के पूर्वभाग के 'अनुषंगपाद' में वर्णित 25 वाँ एवं 26 वाँ अध्याय तथा मध्य भाग के 'उपोद्घातपाद' में वर्णित 71वाँ तथा 72वाँ अध्याय वायु पुराण के क्रमशः पूर्वार्द्ध के 'उपोद्घातपाद' के 54वें तथा 55वें तथा उत्तरार्द्ध के 'अनुषंगपाद' के 34वें तथा 35वें अध्याय शब्दों के नगण्य अन्तर के साथ सर्वथा समान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि 'वायु पुराण' से इसकी कई अंशों में समानता होने के कारण ही इसे शैवपुराण माना जाता है, क्योंकि 'वायु पुराण' स्पष्टरूप से शैवपुराण है।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में शिव को ही परमतत्त्व या ब्रह्म स्वीकार किया गया है। इसमें ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की ही चर्चा मिलती है। समुद्रमन्थन से निकले विष की ज्वाला के बारे में ब्रह्माजी देवताओं आदि से कहते हैं कि महादेवजी के सिवा न तो मैं, न तो विष्णु और न अन्य कोई प्रमुख देव इस विष की ज्वाला को सहन कर सकता है। अतः शिव को विषपान के लिये राजी करने हेतु ब्रह्मा ने ॐकारस्वरूप शिव को यादकर उनके चतुर्दिक प्रकाश का ध्यानकर उनकी स्तुति करना आरंभ किया।

उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को हाथ में पिनाक एवं वज्र धारण करनेवाले, त्रिलोचन, भूतपति, देवशत्रुहन्ता, सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, ब्रह्मा, रुद्र एवं विष्णु रूपवाले, सांख्य एवं योगस्वरूप, सभी भूतों की आत्मा, देवदेव, जटाधारी, कपालधारी, वर देनेवाले, शुद्ध, मुक्त, अनेक नेत्रोंवाले, रजस एवं सत्त्वरूप, अव्यक्तयोनि, नित्य, अनित्य व नित्यानित्य स्वरूपवाले, व्यक्त, अव्यक्त तथा व्यक्ताव्यक्त रूपवाले, चिन्त्य, अचिन्त्य व चिन्त्याचिन्त्य रूपवाले, जगत् के दुःखों को दूर करनेवाले, नारायण के प्रिय, बहुरूपधारी, ऋक्, यजुः और सामवेदस्वरूप तथा पुरुषेश्वर आदि कहा है(ब्रह्मा. पु. 1/2/25/64-77)। स्तुति के कुछ अंश देखें।

ब्रह्मणे चैव रुद्राय विष्णवे चैव ते नमः।
सांख्याय चैव योगाय भूतग्रामाय वै नमः।।
रजसे चैव सत्त्वाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये।
नित्याय चैवानित्याय नित्यानित्याय वै नमः।।
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः।
चिंत्याय चैवाचिंत्याय चिंत्याचिंत्याय वै नमः।।
जगतामार्त्तिनाशाय प्रियनारायणाय च।
..।।

(ब्रह्माण्ड पुराण पूर्वभाग/अनुषंगपाद/अध्याय 25/66, 71-73)

अर्थात्-ब्रह्मा, रुद्र एवं विष्णुरूपी शिव को नमस्कार है; सांख्य-योगस्वरूप शिव जो भूतों के आश्रय हैं, उनको नमस्कार है। सत्त्व एवं रजस्वरूप, जगत् के अव्यक्त कारण, नित्य, अनित्य एवं नित्यानित्यस्वरूप शिव को नमस्कार है। व्यक्त, अव्यक्त तथा व्यक्ताव्यक्त रूपवाले, चिन्त्य, अचिन्त्य एवं चिन्त्याचिन्त्य रूपवाले भगवान् शिव को नमस्कार है। जगत् के दुःखों का नाश करनेवाले नारायणप्रिय शिव को नमस्कार है।

शिव के विषपान के बाद आश्चर्यचकित हो सभी देव, असुर, एवं दैत्यगण हाथ जोड़कर कहते हैं अहो! कामदेव का नाश करनेवाले देवों के देव आपकी महानता अद्भुत है। तुम ही विष्णु एवं ब्रह्मा हो, तुम ही मृत्यु तथा वरदान हो। तुम ही सभी चराचर जगत् की सृष्टि, पालन तथा प्रलय करनेवाले हो। तुम ही सूर्य, चन्द्रमा तथा समस्त चराचर के स्वरूप हो। (ब्रह्मा. पु. 1/2/25/93-96)

अहो प्रभुत्वं तव देवदेव महाद्भुतं मन्मथदेहनाशन।
त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव मृत्युर्वरदस्त्वमेव।।
त्वमेव सूर्यो रजनीकरश्च व्यक्तिस्त्वमेवास्य चराचरस्य।
त्वमेव सर्वस्य चराचस्य धाता विधाता प्रलयस्त्वमेव। (ब्रह्मा.पु1/2/25/94-96)

विष्णु द्वारा बली को बाँधने के पश्चात् सिद्ध, ब्रह्मर्षि, नाग, गंधर्व तथा यक्ष आदि क्षीरसागर में भगवान् विष्णु के पास जाकर उनकी प्रशंसा करने लगे। वे कहने लगे कि आपने ही असुरों का पराभव कर देवों तथा तीनों लोकों का कल्याण किया है।

उनकी बातों को सुनकर भगवान् विष्णु कहने लगे कि हमारी असुरों पर विजय का जो कारण है उसे सुनो-

जो सभी भूतों का स्त्रष्टा है, जो कालस्वरूप एवं संहारकर्त्ता है, जिसने अपनी माया से इस विश्व के साथ मुझे एवं ब्रह्मा को बनाया है, उसी की कृपा से हमें सिद्धि प्राप्त हुई है (जिसके बल पर मैंने असुरों को जीता है)।

यः स्रष्टा सर्वभूतानां कालः कालकरः प्रभुः।
येनाहं ब्रह्मणा सार्द्धम् सृष्टा लोकाश्च मायया।।
तस्यैव च प्रसादेन आदौ सिद्धत्वमागतः। (ब्रह्मा. पु. 1/2/26/9-10)

इतना कहने के पश्चात् भगवान् विष्णु ने लिंगोत्पत्ति की कथा सुनायी। उन्होंने कहना शुरू किया। सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्मा एवं हमारे बीच परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद छिड़ गया और हम एक दूसरे को जीतने की इच्छा करने लगे। इसी बीच में हम लोगों ने देखा कि उत्तर दिशा में अग्नि की एक ज्वाला प्रकट हो गयी है। वह वृत्ताकार ज्वाला उत्तरोत्तर बढ़ती हुई पृथ्वी एवं अन्तरिक्षतक व्याप्त हो गयी। इस ज्वाला को देखकर हम दोनों विस्मित होकर उसकी ओर दौड़े। इस ज्वाला के मध्य हमलोगों ने बारह अंगुल का एक लिंग देखा जो अव्यक्त होते हुए भी विपुल प्रभा से युक्त था। वह लिंग न सोने का न चाँदी का और न ही पत्थर का बना था और वह कभी प्रकट होता और कभी अदृश्य हो जाता। इस भंयकर अग्नि शिखर को देखकर इसके आदि और अन्त का पता लगाने के लिये ब्रह्मा ऊपर और मैं नीचे की ओर गया। परन्तु एक हजार वर्ष लगाने के बाद भी उसके ओर-छोर का पता नहीं लगा। उस समय विमोहित होने के कारण हम लोगों की चेतना लुप्त हो गयी थी। तदनन्तर हम दोनों ने विश्व की सृष्टि एवं संहारकर्त्ता, जो सर्वत्र हैं, उनपर ध्यान लगाया और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की।

उन दोनों ने भगवान् शिव के लिंगरूप की स्तुति करते हुए उन्हें अव्यक्त, लोकों के स्वामी, भूतपति, सर्वव्यापी, सिद्धयोगी, परमेष्ठी (सर्वश्रेष्ठ देव), ब्रह्म, अक्षर (अविनाशी), परमपद, ज्येष्ठ, प्रभु, यज्ञस्वरूप, वषट्कार एवं ओंकारस्वरूप, भगवान्, सभी लोकों के संहर्त्ता, काल, तीनों लोकों की सृष्टि तथा पालन करनेवाले, देवेश, लक्ष्मी, उमा, गायत्री तथा सीता आदि के जनक, वज्र एवं पिनाक धारण करनवाले, भस्म विभूषित अंगवाले, त्रिशूल एवं नागों का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले आदि-आदि कहा है। (ब्रह्मा. पु. 1/2/26/32-54)

परमेष्ठी परं ब्रह्म त्वक्षरं परमं पदम्।
ज्येष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कंदः शिवः प्रभुः।।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परंतपः।
...।।
संहर्त्ता सर्वलोकानां कालो मृत्युमयोऽतकः।
त्वं धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो।।
त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः।
उमा सीता सिनीवाली कुहूर्गायत्र्य एव च।।
.. (ब्रह्मा. पु. 1/2/26/33-34, 39, 44)

अर्थात्- आप परमेष्ठी (सर्वोच्च देव), परमब्रह्म, अक्षर परमपद, सबके अग्रज (ज्येष्ठ), वामदेव,

रुद्र(दुष्टों को रुलानेवाले), स्कन्द और भगवान् शिव हैं। आप ही यज्ञ, वषट्कार, ओंकार हैं...........। आप ही सभी लोकों के संहारकर्त्ता एवं सबकी मृत्यु का कारण काल हैं। आप ही तीनों लोकों की रचना करनेवाले तथा उन्हें धारण करनेवाले हैं। हे देवेश! आप से ही उमा, सीता, सिनीवाली, कुहू तथा गायत्री उत्पन्न हुई हैं ....।

भगवान् विष्णु आगे कहते हैं– स्तुति को सुनने के बाद भगवान् शिव हमलोगों से बोले कि "तुम दोनों ही सनातन हो तथा पूर्वकाल में मेरे ही अंगों से उत्पन्न हो। लोकपितामह ब्रह्मा हमारे दाहिने हाथ तथा युद्ध में कहीं भी पराजित न होनेवाले विष्णु बायें हाथ हैं। तुम दोनों मुझसे अभिप्सित वर पा सकते हो।" तब हम दोनों ने उनके चरणों में प्रणामकर उनकी प्रीति एवं भक्ति का वर माँगा। तदनन्तर भगवान् शिव ने वर देने के पश्चात् हमें सृष्टिरचना का आदेश दिया।

उपरोक्त कथा के माध्यम से भगवान् विष्णु ऋषियों को परब्रह्म शिव की गरिमा बताते हैं तथा कहते हैं कि उन्हीं की कृपा और आदेश से हम सृष्टि की रचना एवं पालन करने में समर्थ हैं।

एक बार भगवान् शिव ऋषियों पर कृपा करने के लिये देवदारुवन में कापालिक वेश में गये थे। पर ऋषियों ने उन्हें पहचानना तो दूर रहा अपमानित कर उन्हें शाप दे डाला था। बाद में ऋषियों को ब्रह्माजी बतलाते हैं कि जिन्हें तुमने नहीं पहचाना वे महादेव ही सबसे बड़े देव हैं जिन्हें महेश्वर भी कहते हैं। वे ही देवों, ऋषियों और पितरों के स्वामी हैं, उनके परमपद को आसानी से प्राप्त नहीं किया जा सकता। वे स्वयं ही अपने तेज से सभी प्रजाओं की सृष्टि करते हैं। वे ही वक्षपर श्रीवत्स धारण किये हुए चक्रधारी(भगवान् विष्णु) हैं। रुद्रदेव की तीनों मूर्तियों को बुद्धिमान् लोग जानते हैं। उनकी तमोमयीमूर्ति अग्नि(अर्थात् रुद्र), रजोमयी ब्रह्मा तथा सत्त्वमयीमूर्ति विष्णु कहलाती है। उस अव्यय देवेश एवं प्रभु की आराधना आप लोग इन्द्रियों को जीतकर तथा क्रोधरहित होकर करें।(ब्रह्मा. पु. 1/2/27/47–54)

एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येकः स्वतेजसा।
एष चक्री च वक्षोजश्रीवत्सकृतलक्षणः।।
रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो विज्ञेयाश्चापि पंडितैः।
तमो हयग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकः।।
तस्माद्देवं देवदेवमीशानं प्रभुमव्ययम्।
आराधयत विप्रेन्द्रा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/50, 52, 54)

ब्रह्माजी की बतायी विधि से शिवलिंग स्थापितकर देवदारुवन के ऋषियों ने एक वर्षतक पूजा–स्तुति की। फलस्वरूप भगवान् शिव के दर्शन हुए। उनके दर्शनोपरान्त ऋषियों ने उनकी स्तुति की। स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव को अनन्त बल–वीर्य सम्पन्न, भूतपति, अव्यय, त्र्यंबक, परमात्मा, कालस्वरूप, वेदमंत्र के प्रधान देव तथा भूत, वर्तमान एवं भविष्य के सभी स्थावर– जंगम एवं दृश्यमान जगत् को उत्पन्न करनेवाले कहा है।(ब्रह्मा. पु. 1/2/27/67–70)

उन्हें उनलोगों ने पुनः नीलकण्ठ, चिताभस्म के अंगराग से युक्त, अरूपवान्, विश्वरूप, सभी प्राणियों की आत्मा, नित्य, ब्रह्मा, सांख्य के पुरुष, वेदों के ओंकाररूप तथा परमेश्वर आदि कहा है।(ब्रह्मा. पु.1/2/27/75-91)

त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः।
आत्मा च सर्वभूतानां सांख्यैः पुरुष उच्यते।।
ओंकारः सर्ववेदानां ....। (ब्रह्मा. पु.1/2/27/80, 82)

अर्थात्- आप सभी देवों में ब्रह्मा तथा रुद्रों में नीललोहित हैं। आप सभी भूतों की आत्मा हैं, आप ही सांख्य के पुरुष हैं। वैदिक मन्त्रों में आप ओंकार हैं ....।

परशुराम को उनके प्रपितामह और्व ने सलाह दी कि सभी लोकों तथा हम सब लोगों के हित के लिये महादेवजी को तपस्या द्वारा सन्तुष्ट करो। महादेवजी की प्राप्ति से अवश्य ही श्रेय की प्राप्ति होगी। भक्तवत्सल शंकर के प्रसन्न होनेपर तुम्हें सभी प्रकार के इच्छित शस्त्र प्राप्त हो जायँगे। तुम्हारी शस्त्रप्राप्ति तथा हित की इच्छा पूरा करना अन्य देवताओं के लिये कठिन है, इसलिये तुम शंकर की ही आराधना करो(ब्रह्मा. पु. 2/3/21/74-80)।

हिमालयपर परशुरामजी यम, नियम, प्राणायाम, धारणा, ध्यान तथा जप के माध्यम से शिव को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगे। वे भगवान् शिव के निम्न रूप का चिन्तन करते थे। जो अमेय आत्मा तथा सभी रूपों में स्थित ईश्वर हैं, जो निष्कल, निरंजन, परंज्योति तथा अचिन्त्य हैं, जिनका योगी लोग ध्यान करते हैं, जो नित्य शुद्ध, सदाशान्त, अतिन्द्रिय, अनुपमेय, आनंदमात्र, अचल तथा पूर्णरूप से चराचर में व्याप्त हैं।

आराधयदमेयात्मा सर्वभावस्थमीश्वरम्।
ततः स निष्कलं रूपमैश्वरं यन्निरंजनम्।।
परं ज्योतिरचिंत्यं यद्योगिध्येयमनुत्तमम्।
नित्यं शुद्धं सदा शांतमतींद्रियमनौपमम्।
आनंदमात्रमचलं व्याप्ताशेषचराचरम्।। (ब्रह्माण्ड पु. 2/3/22/79-80)

तप के फलस्वरूप भगवान् शिव के प्रकट होनेपर परशुराम उनकी स्तुति करते हैं। उन्होंने अपनी स्तुति में भयवान् शिव को देवदेव, आदिमूर्ति, शाश्वत, नीलकण्ठ, नीललोहित, भूतनाथ, भूतों के आश्रय, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, महादेव, अनेक रूप धारण करनेवाला(बहुरूप), जगत्पति तथा सर्वेश आदि कहा है(ब्रह्मा. पु. 2/3/24/25-30)।

तदनन्तर भगवान् शिव से 'परशु' तथा आशीर्वाद प्राप्त करके परशुराम ने पुनः शिवजी की स्तुति की। अपनी इस स्तुति में भगवान् शिव को उन्होंने देवदेवेश, परमेश्वर, जगन्नाथ, त्रिपुरारि, भक्तवत्सल, सर्वभूतेश, वृषभध्वज, करुणाकर, सभी लोकों के पालनहार, कैलासवासी, श्मशानवासी,

कालकूट का नाश करनेवाले, देववन्द्य, स्वयंभू, जगत् के कर्मों के साक्षी, परमात्मा, देह में भस्म लगानेवाले, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, जटाधारी, अंधकासुर का विनाश करनेवाले, त्रिपुर तथा दक्ष-यज्ञ का विनाश करनेवाले, योगियों के ध्येय, अचिन्त्य तेज से सम्पन्न, सभी आगमों के सारसिद्धान्तरूप, अमृत, ब्रह्म, विश्वरूप, आदि, मध्य एवं अंतहीन, नित्य, अव्यक्तमूर्ति, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, स्थूल एवं सूक्ष्म आत्मा, जगत् के कर्त्ता तथा धारणकर्त्ता, विश्वात्मा, सत्त्वविज्ञानरूप, तमोगुण के आश्रय से जगत् का संहार करनेवाले, अविकारी, नित्य, सदसदरूप, अज, सूक्ष्म, अनुपमेय, निर्मल योगियों तथा ब्रह्मादि द्वारा भी अज्ञेय, अज्ञान विघातक तथा भक्तवत्सल आदि-आदि कहा है(ब्रह्मा. पु. 2/3/25/5-31)। स्तुति के कुछ अंश देखें-

नमः शर्वाय शांताय ब्रह्मणे विश्वरूपिणे।
आदिमध्यांतहीनाय नित्यायाव्यक्तमूर्त्तये।।
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
नमोवेदांतवेद्याय विश्वविज्ञानरूपिणे।।
अविकारमजं नित्यं सूक्ष्मरूपमनौपमम्।
तव यत्तन्न जानंति योगिनोऽपि सदाऽमलाः।।
त्वामविज्ञाय दुर्ज्ञेयं सम्यग्ब्रह्मादयोऽपि हि। (ब्रह्मा. पु. 2/3/25/17-18, 25-26)

अर्थात्-शान्तस्वरूप, विश्वरूप तथा ब्रह्म शर्व को नमस्कार है। आदि, मध्य तथा अन्त से रहित, नित्य तथा अव्यक्तमूर्ति भगवान् शिव को नमस्कार है। जो व्यक्त, अव्यक्त, स्थूल तथा सूक्ष्म-स्वरूप तत्त्व है उसे नमस्कार है। वेदान्त द्वारा ज्ञेय तथा विश्व-विज्ञान-स्वरूप भगवान् शिव को नमस्कार है। आप अविकारी, अजन्मा, नित्य, सूक्ष्म तथा अनुपमेय हैं। आपको पूर्णरूप से न तो सदा निर्मल चित्त रखनेवाले योगीजन और न ही ब्रह्मा आदि ही जानते हैं।

ब्रह्मा के परामर्शानुसार शिव से कार्तवीर्य के वध की आज्ञा प्राप्त करने हेतु परशुराम शिवलोक जाते हैं। वहाँ जा कर उन्होंने त्रिनेत्र शान्त चन्द्रशेखर जो त्रिशूल एवं व्याघ्रचर्म से सुशोभित थे, विभूति से भूषित तथा नागों का यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे, जो आत्माराम, पूर्णकाम तथा करोड़ों सूर्य के समान आभा से युक्त थे तथा जिनके पाँच मुख तथा दस भुजायें थी, को देखा जो भक्तों के लिये दया की मूर्ति थे।(ब्रह्मा. पु. 2/3/32/18-20)

वहाँ जाकर वे भगवान् की स्तुति करते हैं। अपनी स्तुति में वे भगवान् शिव को ईशान, विभु, व्यापक, अव्यय, सभी लोकों में व्याप्त, सृष्टि, स्थिति एवं विनाशकर्त्ता, ब्रह्मा आदि का रूप धारण करनेवाले, अग्रज, दया के सागर, मन-वाणी से अगोचर, वेदों से परे, ज्ञान एवं बुद्धि द्वारा भी अज्ञेय, निराकार, इन्द्रादि देवगण, ऋषिगण, मनु एवं असुरगण द्वारा यथार्थरूप में अज्ञेय, परात्पर, जगत्स्वरूप तथा अपने अंश के अंशमात्र से सभी लोकों के चराचर की सृष्टि एवं प्रलय करनेवाले कहते हैं(ब्रह्मा.

पु. 2/3/32/25-32) स्तुति के कुछ अंश देखें-

नमस्ये शिवमीशानं विभुं व्यापकमव्ययम्।
...
यो विभुः सर्वलोकानाम् सृष्टिस्थितिविनाशकृत्।
ब्रह्मादिरूपधृग्ज्येष्ठस्तं त्वां वेद कृपार्णवम्।।
वेदा न शक्ता यं स्तोतुमवाङ्मनसगोचरम्।
ज्ञानबुद्ध्योरसाध्यं च निराकारं नमाम्यहम्।।
शक्रादयः सुरगणा ऋषयो मनवोऽसुराः।
न यं विदुर्यथातत्त्वं तं नमामि परात्परम्।।
यस्यांशांशेन सृज्यंते लोकाः सर्वे चराचराः।
लीयंते च पुनर्यस्मिंस्तं नमामि जगन्मयम्।।
यः कालरूपो जगदादिकर्त्ता पाता पृथग्रूपधरो जगन्मयः।
हर्त्ता पुना रुद्रवपुस्तथांते तं कालरूपं शरणं पपद्ये।।

(ब्रह्मा. पु. 2/3/32/25-29, 32)

अर्थात्-विभु, व्यापक, अव्यय तथा ईशान(सबके अधिपति) शिव को नमस्कार है। आप सभी लोकों के स्वामी, सृष्टि, स्थिति तथा विनाश के हेतु, ब्रह्मा आदि का रूप धारण करनेवाले सबके अग्रज तथा दया के समुद्र हैं-ऐसा आपको हम मानते हैं। जिसकी स्तुति करने में वेद भी असमर्थ हैं, जो मन-वाणी से अगोचर है, जिसे ज्ञान एवं बुद्धि द्वारा नहीं जाना जा सकता तथा जो निराकार है, उसे हम नमस्कार करते हैं। जिनका यथार्थ ज्ञान इन्द्र तथा दूसरे देवगण, ऋषि, मनु एवं असुरगण किसी को भी नहीं है उस परात्पर को मेरा नमस्कार है। जिसके सूक्ष्म अंश से चराचर से युक्त सभी लोकों का निर्माण होता है तथा वे सब जिसमें पुनः लीन हो जाते हैं, उस जगत्स्वरूप ईश्वर को नमस्कार है। जो कालरूप तथा सृष्टि का कर्त्ता है, जो पृथक रूप धारणकर जगत् का पालन करता है, जो विश्वरूप है तथा अन्त में जो रुद्ररूप धारण कर सृष्टि का अन्त करता है, उस कालरूप शिव की शरण ग्रहण करता हूँ।

संजीवनी विद्या एवं अन्य वरों की प्राप्ति के बाद शुक्राचार्य ने भगवान् शिव की स्तुति की है। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को शितिकण्ठ, देवताओं के अग्रज, जगत्पति, जटाधारी, वर देनेवाले, देवदेव, सहस्राक्ष, सहस्रबाहु, सहस्र पैरवाले, सहस्र सिरवाले, बहुरूप, विश्वरूप, श्वेतवर्णवाले, महादेव, पिनाकधारी, त्रिनेत्र, ईश्वर, मृत्यु, त्र्यम्बक, सांख्य एवं योग द्वारा ध्येय, बुद्ध, शुद्ध, मुक्त, केवल(अद्वैत), लोकों के ईश्वर, अनामय, पशुपति, भूतपति, ऋक्, यजुः तथा सामवेदस्वरूप, वषट्कार, मंत्रात्मा, स्रष्टा, धर्त्ता तथा हर्त्ता, भूत, वर्तमान एवं भविष्य के अधिपति, कर्मात्मा,

यज्ञात्मा, अव्यक्त तथा नित्य आदि- आदि कहा है। (ब्रह्मा. पु. 2/3/72/163-195)

उपरोक्त उद्धरणों पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव ही परमतत्त्व या ब्रह्म हैं जो सगुणरूप धारण करके जगत् का व्यापार चलाते हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र बनकर सृष्टि, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं। वे ही सभी वस्तुओं, देवों, दानवों, मानवों आदि के प्रभु, कर्मों के फलदाता तथा मुक्तिकर्त्ता हैं। निर्गुणरूप में उन्हें अव्यक्त, मन-वाणी से अगम्य, निराकार, ब्रह्म, परमतत्त्व, अपरिमेय, स्वयंभू, सनातन, अव्यय, शुद्ध, अद्वैत (केवल) तथा ओंकारस्वरूप कहा गया है। ऊपर की स्तुतियों में भगवान् शिव के विशेषणों की पुनरावृत्ति निरर्थक नहीं है। स्तुतियों में पाये जानेवाले प्रमुख विशेषण किसी स्तुतिकर्त्ता की स्थिति विशेष में उत्पन्न भावात्मक उद्‌गार मात्र नहीं हैं अन्यथा उनकी पुनरावृत्ति प्रत्येक स्तुति में (चाहे वह किसी एक व्यक्ति की हो चाहे अन्यों की हो) नहीं हो सकती। वास्तव में वे विशेषण लोकमान्य (या प्रचलित) एवं स्थायी विशेषण हैं। यही कारण है कि एक ही विशेषण को हमने बार-बार अलग-अलग स्तुतियों में दोहराया है। अतः यहाँ पर अथवा अन्य अध्यायों में की जानेवाली पुनरावृत्ति को अन्य दृष्टि से नहीं लेना चाहिये। यद्यपि ऐसा करने से लेख लम्बा तथा उबाऊ हो सकता है।

शिवोपासना

भगवान् शिव को इस पुराण में अनेक स्थलों पर वरदाता (1/2/25/68 एवं 94; 2/3/72/164 आदि), जगत् के दुःखों का विनाश करनेवाले (1/2/25/73 आदि), परम पद (1/2/26/33 आदि), जिनका दर्शन सभी प्रकार के अज्ञान एवं अधर्म को नष्ट करनेवाला (1/2/27/56 आदि), भक्तवत्सल (2/3/23/31; 2/3/25/6 इत्यादि), योगियों के ध्येय (2/3/25/14; 2/3/72/176 इत्यादि), देवों द्वारा वन्द्य (2/3/25/10 आदि), दया के सागर (2/3/32/26), पाप का दमन करनेवाले तथा शरण में आये हुए को अभय प्रदान करनेवाले (2/3/23/31 इत्यादि) कहा गया है।

परशुराम की परीक्षा लेने आये व्याधरूपी भगवान् शंकर के किसी प्रश्न के उत्तर में परशुराम कहते हैं कि-

> **तस्मात्सर्वेश्वरं सर्वशरण्यमभयप्रदम्।**
> **त्रिनेत्रं पापदमनं शंकरं भक्तवत्सलम्।।** (ब्रह्मा. पु. 2/3/23/31)

(तपस्या द्वारा मैं) सर्वेश्वर शिव जो शरण में आये हुए सभी को अभय प्रदान करनेवाले हैं, त्रिनेत्र, पापदमन करनेवाले तथा भक्तवत्सल हैं, (उन्हें प्रसन्न करूँगा)। परशुरामजी के उपरोक्त कथन से भगवान् शंकर अभय प्रदान करनेवाले, पाप का नाश करनेवाले तथा भक्तवत्सल सिद्ध होते हैं।

एक स्थल पर भगवान् शिव के प्रति कहा गया है कि "चाहे कोई पण्डित हो या मूर्ख वह

संसारचक्र में तबतक भ्रमण करता रहता है जबतक कि वह आपके चरणों में नहीं जाता, क्योंकि आप ही अज्ञान को दूर करनेवाले हैं। वही व्यक्ति चतुर, भाग्यशाली, मुनि तथा ज्ञानी है जिसकी बुद्धि आप के चरणकमलों में स्थिर हो गयी है।"

> **यावन्नोपैति चरणौ तवाज्ञानविघातिनः।**
> **तावद्भ्रमति संसारे पंडितोऽचेतनोऽपि वा।।**
> **स एव दक्षः स कृती स मुनिः स च पंडितः।**
> **भवतश्चरणांभोजे येन बुद्धिः स्थिरीकृता।।** (ब्रह्मा. पु. 2/3/25/27-28)

अगर हम ऊपर के उद्धरणों को गहराई से देखें तो यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति को अपने परम कल्याण के लिये भगवान् शिव की शरण लेनी चाहिये।

भगवान् शिव की भक्ति से ब्रह्मा एवं विष्णु को सृष्टि की रचना तथा पालन का सामर्थ्य(1/2/ अध्याय 25 एवं 26), परशुराम को परशु तथा अन्य शैवास्त्रों की प्राप्ति(2/3/अध्याय 23, 24 एवं 32) तथा शुक्राचार्य को मृतसंजीवनी विद्या तथा अन्य वरदानों की प्राप्ति(2/3/अध्याय 72) हुई थी। अनेकों सुर-असुर, मानव तथा अन्य योनिगत लोगों ने शिव की आराधना से मनोवांछित फल पाये हैं। परम दयालु होने के कारण ही भगवान् शिव ने देवों की प्रार्थना पर विषपान किया था। अतः ऐसे दयालु एवं शीघ्र प्रसन्न होनेवाले आशुतोष शिव की शरण में कौन नहीं जाना चाहेगा?

(1) लिंगार्चन

ब्रह्माण्ड पुराण में लिंगपूजा की उत्पत्ति संबंधी दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं। दोनों ही कथाएँ क्रमशः-1/2/26 तथा-1/2/27) में पायी जाती हैं।

पहली कथा में बताया गया है कि एक बार ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद छिड़ गया तथा दोनों ही एक दूसरे को जीतने का प्रयास करने लगे। इसी बीच में उन दोनों ने एक गोलाकार अग्नि की शिखा को प्रकट होते देखा। यह अग्निशिखा अत्यन्त प्रचण्ड तेज़ से युक्त थी। वे दोनों कौतुहल एवं भय से युक्त हो उस शिखा के पास जाकर उसे देखने लगे। उस समय उन्होंने अग्निशिखा के मध्य एक चमकते हुए लिंग को देखा जो न तो सोने का न चाँदी का और न ही किसी पत्थर का बना हुआ था। उस लिंग का प्रमाण बारह अंगुल था। उससे हजारों चिनगारियाँ निकल रही थीं। वह लिंग कभी प्रकट हो जाता और कभी अदृश्य हो जाता था। इस प्रकार इस कथा में भगवान् शिव का लिंगाकार रूप में प्रकट होना बताया गया है। इस ज्योतिर्मय लिंग के ओर-छोर का(ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा) पता न चलने पर उन लोगों ने उसकी स्तुति की। तदनन्तर भगवान् शिव प्रकट हो उन लोगों को वरदान दिया। तभी से लिंगपूजा की शुरूआत मानी जाती है(ब्रह्मा. पु. 1/2/अध्याय 26)।

दूसरी कथा में यह बताया गया है कि एक बार शिवजी देवदारुवन में तपस्यारत ऋषियों पर अनुग्रह करने हेतु भस्म लपेटकर दिगम्बर एवं विकृत वेश-भूषा बनाकर पधारे। उनके मुख भयानक,

नेत्र लाल तथा केश विकृत थे। वे कभी रोते, कभी हँसते, कभी नाचते तथा कभी विस्मित मुद्रा में होते। उन्हें देखकर उन ऋषियों की पत्नियाँ मोहित हो गयीं। वे आश्रमों में जाकर बार-बार भिक्षा माँगते थे। अपनी पत्नियों को मोहित देखकर ऋषियों ने क्रुद्ध होकर भगवान् शिव को श्राप दिया तथा उनके लिंग पर प्रहार कर उसे गिरा दिया।

इसके उपरान्त भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये तथा सभी ऋषिगण निस्तेज हो गये और समस्त सृष्टि में उत्पत्ति की सभी क्रियाएँ अवरुद्ध हो गयीं।

इसके पश्चात् ऋषिगणों ने ब्रह्माजी के पास जाकर शिव के उपरोक्त वृत्तान्त का वर्णन किया। तब ब्रह्माजी ने ध्यान द्वारा सम्पूर्ण रहस्य को जानकर ऋषियों को भगवान् शिव की महिमा बताते हुए उन्हें शिव के लिंग की पूजा करने का निर्देश दिया। तदनन्तर ऋषियों ने लिंग का निर्माण कर उसकी पूजा की तथा भगवान् शिव को प्रसन्न किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस पुराण में भी लिंगार्चन का विशेष महत्त्व बताया गया है।(ब्रह्मा. पु. 1/2/अध्याय-27)

(2) भस्ममाहात्म्य एवं पाशुपत अथवा कापालिक व्रत

शिव के उपासकों में भस्म का बड़ा ही महत्त्व माना गया है। इस पुराण में भस्म-माहात्म्य भगवान् शिव के मुख से ही कहलवाया गया है।

देवदारुवन के ऋषियों की लिंगपूजा से प्रसन्न होकर जब भगवान् शिव प्रकट हुए तो उस समय उन्होंने उन्हें भस्म के माहात्म्य को बतलाया। साथ में उन्होंने पाशुपत अथवा कापालिक व्रत को भी समझाया। वे भस्म की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि जो लोग भस्म को धारण करते हैं, उनके सभी पाप भस्म हो जाते हैं। जो भस्मधारी भक्त प्रियवादी तथा लोक के हित में रत रहते हैं, जो मेरे परायण एवं भिक्षा पर निर्भर रहकर विचरण करते रहते हैं, उनकी निन्दा करनेवाला महादेव की निन्दा करता है। जो लोग उनकी पूजा करते हैं वे शंकर की ही पूजा करते हैं। इस प्रकार के व्यवहार करनेवाले को मुझसे आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त होती है(ब्रह्मा. पु. 1/2/27/92-94)।

ये ही मे भस्मनिरता भस्मना दग्धकिल्बिषाः।
...
यस्तान्निन्दति मूढात्मा महादेवं स निंदति।
यस्त्वेतान्पूजयेन्नित्यं स पूजयति शङ्करम्।
एवं चरथ भद्रं वो मत्तः सिद्धिमवाप्स्यथ।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/92, 94)

अर्थात्-जो लोग भस्मधारण कर अपने पापों से मुक्त हो गये हैं.................. ऐसे लोगों की जो मूढ़ात्मा निन्दा करता है, वह महादेव की ही निन्दा करता है, और जो उनकी सदा पूजा करता है वह शंकर की ही पूजा करता है। इस प्रकार का व्यवहार करने से तुम्हें मुझसे (आध्यात्मिक) सिद्धि प्राप्त होगी।

पुनः ऋषियों ने उनसे पूछा कि प्रभो! आपकी नग्नता, भस्म-स्नान तथा सेव्यासेव्य में भेद न करने का क्या कारण है? अर्थात् आपके कापालिन् रूप का क्या रहस्य है। उत्तर में शिवजी कहते हैं कि वे अपने शरीर पर भस्म इसलिये मलते हैं कि वह एक ऐसा पदार्थ है जो अग्नि द्वारा पूर्णतया भस्म किया जा चुका है और अग्नि के सर्वपरिशोधक होने के कारण यह भी परिशुद्ध है। अतः भस्म के परम पवित्र होने के कारण जो उसे अपने शरीर पर लगाता है, उसके समस्त पाप कट जाते हैं। जो व्यक्ति भस्म में स्नान करता है, वह विशुद्धात्मा, जितक्रोध और जितेन्द्रिय होकर मेरे धाम को प्राप्त होता है। नग्न रहने के सम्बन्ध में भगवान् शिव ने कहा कि सब प्राणी नंगे ही पैदा होते हैं, अतः नग्नता में स्वतः कोई दोष नहीं है। इससे तो मनुष्य के आत्मसंयम की जाँच होती है और इसीसे व्यक्ति विशेष का आत्म-संयम प्रतिबिम्बित भी होता है। जिनमें आत्मसंयम नहीं है, वे ही वास्तव में नग्न हैं, चाहे वे कितने भी वस्त्र धारण क्यों न करें। जो आत्मसयंमी हैं, उनको बाहरी आवरणों से क्या वास्ता? इसी प्रकार श्मशान भूमि में विचरने से, व्यक्ति अपनी प्राकृतिक भावनाओं पर कितना नियंत्रण रख सकता है, इसकी जाँच होती है। जो इस प्रकार नियंत्रण रख सकते हैं और 'दक्षिण-पथ' के अनुसार श्मशान भूमि में निवास करते हैं, वे अपनी इच्छाशक्ति की उत्कृष्टता का प्रमाण देते हैं और इसी कारण उनको अमरत्व और ईशत्व प्राप्ति का अधिकारी माना गया है(ब्रह्मा. पु. 1/2/27/105-128)।

भगवान् शिव कहते हैं कि अग्नि मेरा रूप है और सम्पूर्ण वस्तुओं (जिनका अभी अस्तित्व है और जिनका अभी अस्तित्व नहीं है) का आश्रय अग्नि ही है। और अग्नि ही सभी स्थावर-जंगम को जला देती है। चूँकि अग्नि पवित्र है इसलिये भस्म भी पवित्र है क्योंकि भस्म को अग्नि का वीर्य (सार) कहा गया है। इसीलिये यह सभी पापों को भस्म करनेवाला होता है।

भस्मना मम वीर्येण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/109)

भावार्थ है कि भस्म जो मेरा (अग्निरूप शिव का) वीर्य है, सभी पापों से छुड़ा देता है।

भस्म को भस्म इसलिये कहते हैं कि यह वस्तुओं के शुभ को भासित (प्रकाशित) करता है, और उन्हें सुवासित करता है। यह सभी पापों को तत्क्षण ही भस्म कर देता है, इस कारण इसके गुण का गान किया जाता है।

भासयत्येव यद्भस्म शुभं वासयते च यत्।
तत्क्षणात्सर्वपापानां भस्मेति परिकीर्त्यते।।
भस्मस्नानविशुद्धात्मा जितक्रोधो जितेंद्रियः।
मत्समीपमुपागम्य न भूयो विनिवर्तते।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/110, 115)

अर्थात्-भस्मस्नान से शुद्ध आत्मा इद्रियों एवं क्रोध पर विजय प्राप्तकर मेरे समीप (अर्थात् शिवलोक) आ जाता है तथा उसका पुनः जन्म नहीं होता।

भस्मधारण से व्यक्ति की अशुभ तत्त्वों से सुरक्षा भी प्राप्त होती है अर्थात् सभी प्रकार के

अनिष्टों से बचाव होता है।

पाशुपत अथवा कपालव्रत के सन्दर्भ में भगवान् शिव कहते हैं कि-

नग्ना एव हि जायंते देवता मुनयस्तथा।
ये चान्ये मानवा लोके सर्वे जायंत्यवाससः।।
इंद्रियैरजितैर्नग्ना दुकूलेनापि संवृताः।
तैरेव संवृतो गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्।।
क्षमा धृतिरहिंसा च वैराग्यं चैव सर्वशः।
तुल्यौ मानापमानौ च तत्प्रावरणमुत्तमम्।। (ब्रह्मा. पु.1/2/27/118-120)

अर्थात्- देवता, मुनि तथा मनुष्य सभी लोग बिना वस्त्र के नग्न ही पैदा होते हैं। सिल्क के वस्त्र में लिपटा हुआ मनुष्य भी नग्न ही है, अगर उसने अपनी इन्द्रियों को नहीं जीता। इन्द्रियों को जीतनेवाला नग्न नहीं है क्योंकि नग्नता का कारण वस्त्र नहीं है। क्षमा, धृति, अहिंसा, चारों तरफ से विरक्त तथा मान और अपमान में सम रहना ही उत्तम आवरण हैं।

भस्ममाहात्म्य के बारे में आगे कहा गया है कि-

यद्यकार्यसहस्राणि कृत्वा स्नायति भस्मना।।
तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम्।
तस्माद्यत्नपरो भूत्वा त्रिकालमपि यः सदा।।
भस्मना कुरुते स्नानं गाणपत्यं स गच्छति। (ब्रह्मा. पु.1/2/27/121-123)

भावार्थ यह है कि हजारों कुकर्म करनेवाला व्यक्ति भी अगर भस्म से स्नान करता है तो उसके पाप उसी तरह भस्म हो जाते हैं जिस प्रकार अग्नि वन को जला देती है। इसलिये यत्नपूर्वक जो सदैव तीनों संध्या में भस्म से स्नान करता है वह गणों का स्वामी बन जाता है।

इस पुराण में पाशुपतव्रत या कापालिकव्रत के बारे में प्रत्यक्षतः कुछ नहीं कहा गया है। परोक्षरूप में इतना ही कहा गया है कि इस व्रत को धारण करनेवाला भस्म स्नान करता है, दिगम्बर रहता है, इन्द्रियों तथा मन को जीतने का अभ्यास करता है तथा भगवान् शिव के ध्यान में लीन रहकर लोकहित में भिक्षाटन करते हुए विचरण करते रहता है। पुनः जो लोग दक्षिण-पथ से (न कि उत्तरपथ से) कापालिक व्रत धारण करते हैं उन्हें श्मशान में निवास करना चाहिये तथा ऊपर दिये गये इन्द्रिय संयम आदि नियमों का पालन करते रहना चाहिये।

(3) शिवोपासना संबंधी कुछ अन्य बातें

इस पुराण में वाराणसी तीर्थ के बारे में बताया गया है कि इस तीर्थ को भगवान् शिव कभी नहीं त्यागते इसलिये इसे अविमुक्तक्षेत्र भी कहते हैं (ब्रह्मा. पु. 2/3/67/60-61)। इस पुरी को सिद्धक्षेत्र कहा गया है (ब्रह्मा. पु. 2/3/67/39)। यह पुरी तीन युगों में प्रत्यक्ष रहती है पर कलियुग

में इसके अन्तर्धान होने के उपरान्त यह नगर फिर से व्यक्तियों के द्वारा बसाया जाता है (ब्रह्मा. पु. 2/3/67/63-64)।

पुराणगत परिशिष्ट ललितोपाख्यान के अन्तर्गत किसी स्त्री को दिये गये उपदेश में शतरुद्रिय की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। वहाँ कहा गया है कि इसके पाठ से सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है। फिर वहीं पर उस स्त्री को शतरुद्रिय की दीक्षा प्राप्त करते हुए भी दिखाया गया है (ब्रह्मा. पु. 3/4/7/48-52)।

ध्यात्वा हृदि महेशानं शतरुद्रमनुं जपेत्।।
ब्रह्महा मुच्यते पापैरष्टोत्तर सहस्रतः।
पापैरन्यैश्च सकलैर्मुच्यते नात्र संशयः।। (ब्रह्मा. पु. 3/4/7/49-50)

अर्थात्-हृदय में भगवान् शिव का ध्यानकर 1008 बार शतरुद्रिय का पाठ करने से ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा हो जाता है, तथा अन्य सभी प्रकार के पापों से भी मुक्ति मिल जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है।

यहाँ पर एक प्रश्न उठता है कि क्या स्त्री भी शतरुद्रिय के मन्त्रों (जो कि वैदिक मन्त्र हैं) के जप की अधिकारिणी है? परम्परा से उसे अधिकारिणी नहीं माना जाता। परन्तु इस पुराण में स्त्री को शतरुद्रिय मन्त्रों के जप करने का उपदेश किया गया है। ऐसी स्थिति में हमारे पास दो विकल्प हैं-या तो हम स्त्री को भी वैदिक मन्त्रों (कम से कम शतरुद्रिय) के पाठ का अधिकारी माने अथवा जिस शतरुद्रिय का उपदेश इस पुराण में स्त्री को किया गया है वह वैदिक न होकर पौराणिक शतरुद्रिय (जिसका वर्णन स्कन्द पु. के माहेश्वरखण्ड के कुमारिकाखण्ड में है तथा उसे इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है) अथवा कोई अन्य शतरुद्रिय हो सकता है। परम्परा को देखते हुए दूसरे विकल्प को ही स्वीकार करना चाहिये।

भगवान् शिव एवं विष्णु

भगवान् शिव को नारायणप्रिय (ब्रह्मा. पु. 1/2/25/73) कहा गया है। भगवान् शिव नारायणप्रिय ही नहीं अपितु उनके आत्मस्वरूप हैं। अर्थात् भगवान् शिव स्वयं ही जगत्-व्यापार चलाने के लिए ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र का रूप धारण करते हैं। सगुण-साकाररूप में ये तीनों मूर्तियाँ तथा उनके कार्य-व्यवहार भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु तत्त्वतः ये तीनों एक ही हैं।

इस पुराण में अनेक स्थानों पर इस तथ्य को बताया गया है कि परमतत्त्व शिव ही गुणों का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु अथवा रुद्र का रूप धारण करते हैं। उदाहरण के लिये निम्न श्लोकों पर ध्यान दीजिये।

रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो विज्ञेयाश्चापि पंडितैः।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुः प्रकाशकः।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/52)

ब्रह्मणे चैव रुद्राय विष्णवे चैव ते नमः। (ब्रह्मा. पु. 1/2/25/66)
त्वमेवविष्णुश्चतुराननस्त्वं ....।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/25/94)
एष चक्री च वक्षोजश्रीवत्सकृतलक्षणः।। (ब्रह्मा. पु. 1/2/27/50)
ब्रह्मादिरूपधृक् ....।। (ब्रह्मा. पु. 2/3/32/26)

उपरोक्त श्लोकों के अर्थ इसी अध्याय में पहले ही बताये जा चुके हैं, इसलिये उनकी पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है। ये श्लोक स्पष्टरूप से प्रमाणित करते हैं कि प्रमुख देवों विष्णु तथा ब्रह्मा का शिव से एक स्तर पर तादात्म्य है, अर्थात् एक स्तरविशेष पर वे एक ही हैं।

भगवान् शिव की अर्द्धांगिनी उमादेवी हैं अर्थात् भगवान् शिव के आधे अंग में उमादेवी स्थित हैं। इसी बात को यूँ भी कहा जाता है कि पुरुष और प्रकृति, बह्म और माया अभिन्न रूप से स्थित हैं। ब्रह्म 'शिव' अपनी माया 'शक्ति' के आश्रय से ही सृष्टिप्रक्रिया में प्रवृत्त हो ब्रह्मा तथा विष्णु आदि का रूप धारण करते हैं। यही शिव–शक्ति से युक्त ब्रह्म (अर्थात् सगुण शिव) ही न केवल ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रादि का अपितु उमा, सीता और लक्ष्मी आदि का भी रूप धारण करता है (ब्रह्मा. पु. 1/2/26/44–45)।

उमा की तरह राधा भी कृष्ण की अर्द्धांगिनी हैं। राधा को भी कृष्ण से अभिन्न माना गया है। उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित संदर्भ देखिये। परशुराम द्वारा गणेश के एक दाँत को नष्ट कर देने के बाद शिवजी ने श्रीकृष्ण का स्मरण किया। तदनन्तर राधासहित कृष्ण वहाँ आ गये। इसी प्रसंग में शिवरूपा सनातनी राधा पार्वती से कहती हैं कि प्रकृति और पुरुष दोनों अन्योन्याश्रित विग्रह हैं। फिर भी (जगत्) प्रपंच में वे दोनों भिन्न–भिन्न प्रकाशित होते हैं। हे देवि! तुम्हारे और हमारे में कोई भेद नहीं है। तुम विष्णु और मैं शिवरूप हूँ। शिव के हृदय में तुम विष्णु होकर स्थित हो और विष्णु के हृदय में मेरा ही रूप शिव होकर स्थित है।

प्रकृतिः पुरुषश्चोभावन्योन्याश्रयविग्रहौ।
द्विधा भिन्नौ प्रकाशेते प्रपंचेऽस्मिन् यथा तथा।।
त्वं चाहमावयोर्देवि भेदो नैवास्ति कश्चन।
विष्णुस्त्वमहमेवास्मि शिवो द्विगुणतां गतः।।
शिवस्य हृदये विष्णुर्भवत्या रूपमास्थितः।
मम रूपं समास्थाय विष्णोश्च हृदये शिवः।। (ब्रह्मा. पु. 2/3/42/47–49)

उपरोक्त उद्धरण में उमा और राधा का तथा शिव एवं विष्णु का तादात्म्य दिखलाया गया है। अर्थात् वे सब व्यवहार में, जगत् प्रपंच में, भिन्न होते हुए भी त्तत्वतः एक ही हैं।

उपसंहार

ब्रह्माण्ड पुराण को आमतौर से शैव पुराण माना गया है, परन्तु इसमें विष्णु एवं देवी आदि के

माहात्म्य की विस्तृत चर्चा है। अतः इसे शैव पुराण कहना उचित नहीं प्रतीत होता।

इस पुराण में भी भगवान् शिव को परमतत्त्व या परमब्रह्म स्वीकार किया गया है। वही निर्गुण शिवतत्त्व सगुणरूप धारण कर ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रादि के रूप में व्यक्त होता है। निर्गुण शिव को परमब्रह्म, ॐकारस्वरूप, अचिन्त्य, मन, वाणी तथा बुद्धि से परे, नित्य, शुद्ध, केवल(अद्वैत), स्वयंभू निर्विकार एवं अव्यक्त कहा गया है। सगुण शिव को सैकड़ों विशेषणों से युक्त बताया गया है। जैसे उन्हें पंचानन, नीलकण्ठ, दस भुजाओंवाले, श्वेत वर्णवाले, जटाधारी, मृगचर्मधारी, पिनाक, त्रिशूल एवं वज्र आदि को धारण करनेवाले, चन्द्रशेखर, भस्मधारी, मुण्डमालाधारी, त्रिलोकीनाथ, पशुपति, भूतपति, ब्रह्मा, विष्णु, तथा रुद्र रूपवाले, सभी भूतों की आत्मा, देवों के देव, त्रिनेत्रधारी, नारायणप्रिय, जगत् के दुःखों को दूर करनेवाले, बहुरूपधारी, वेदो के प्रमुख देव, जगत्स्वरूप, अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्य को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, भक्तवत्सल, करुणासागर, मुक्तिदाता, देवता, असुर, मानव तथा योगियों आदि सभी द्वारा पूज्य, कालस्वरूप, सृष्टि के कर्त्ता, धर्त्ता एवं संहारकर्त्ता, कामारि, त्रिपुरहन्ता, अर्द्धनारीश्वर, माया द्वारा संसार को चलानेवाले, यज्ञस्वरूप, नागों का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, सांख्य के पुरुष, अजन्मा, विभु एवं व्यापक तथा प्राणियों की आत्मा आदि- आदि कहा गया है। उनके आदि एवं अन्त को देवता, ऋषि तथा मनुष्य कोई भी नहीं जानता।

भगवान् शिव को वरदाता, परमपद, योगियों के ध्येय, भक्तवत्सल, दुःखों का नाश करनेवाले, देववन्द्य, दया के सागर, पाप का दमन करनेवाले, शरण में आये हुए को अभय प्रदान करनेवाले तथा जिनका दर्शन अज्ञान एवं अधर्म को नष्ट करनेवाला है- ऐसा कहा गया है। उनकी भक्ति के बिना कोई भी भवसागर या जन्म- मरण के चक्र से छूट नहीं सकता इसीलिये शिवभक्ति सबके लिये अपेक्षित है। शिवोपासना से ब्रह्मा एवं विष्णु को क्रमशः सृष्टिरचना तथा पालन का, परशुराम को शैवास्त्रों तथा परशु की तथा शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या की प्राप्ति हुई है। इन सब वरदानों को अन्य कोई भी देव नहीं प्रदान कर सकता था।

इस पुराण में लिंगार्चन का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। लिंगार्चन की परम्परा संबंधी दो कथाएँ बतायी गयीं हैं। इनमें पहली कथा में ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा तथा दूसरी कथा में बड़े- बड़े ऋषियों द्वारा लिंगार्चन किया गया है। लिंगार्चन के अतिरिक्त भस्म के माहात्म्य को बताते हुए कहा गया है कि इसे धारण करने से व्यक्ति के सभी पाप छूट जाते हैं तथा इससे सभी प्रकार के अनिष्टों से बचाव भी होता है। इसी प्रकार शतरुद्रिय के जप से भी व्यक्ति पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। कापालिक व्रत में नग्न रहने तथा श्मशान में निवास करने के पीछे क्या तर्क हैं उनको भी बताया गया है।

अन्य पुराणों की भाँति इस पुराण में भी तीनों प्रमुख देवों की एकता का प्रतिपादन है। इसमें विष्णु एवं शिव की एकता पर विशेष बल दिया गया है।

(प्रस्तुत लेख आचार्य जगदीश शास्त्री द्वारा संपादित तथा मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली द्वारा 1973 में प्रकाशित 'ब्रह्माण्डपुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)

हरिवंश पुराण[1] में शिवतत्त्व

परम्परा से महापुराणों की संख्या अठारह मानी जाती है। परन्तु जब हम उनकी सूची को देखते हैं तो उसमें भेद पाया जाता है। आमतौर से महापुराणों की गिनती में या तो वायुपुराण को छोड़ दिया जाता है या शिवपुराण को। कुछ आधुनिक विद्वानों ने पुराण के लक्षणों को ध्यान में रखते हुए महापुराणों की संख्या बीस माना है। इन बीस में वायु और शिव के साथ-साथ हरिवंश को भी स्थान दिया है।

हरिवंश पुराण को कई बार पुराणों (अथवा उपपुराणों) की गिनती में ही सम्मिलित नहीं किया जाता क्योंकि इसे महाभारत का खिल भाग माना जाता है। खिल भाग होने के कारण इसे महाभारत का ही अंश माना जाता है। फलस्वरूप इसे पुराण की बजाय (महाभारत का) हरिवंशपर्व कहा जाता है। महाभारत आदिपर्व के अनुक्रमणिकावाले अध्याय में महाभारत को सौ पर्वोवाला ग्रंथ बताया गया है। उसके अन्तिम तीन पर्व हरिवंश ग्रंथ में ही सम्मिलित हैं। यह बात अनुक्रमणिकावाले अध्याय में स्पष्टरूप से कही गयी है।

हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्।
विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा।।
भविष्यं पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत्।
एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना।।

(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 2/82-83)

जैसे वेदविहित सोमयाग उपनिषदों के बिना साङ्ग सम्पन्न नहीं होता, वैसे ही महाभारत का परायण भी हरिवंश के बिना पूर्ण नहीं होता। किन्तु हरिवंश का परायण गीता आदि की तरह स्वतंत्र रूप से भी किया जाता है। जैसे आमलोगों को यह ध्यान नहीं रहता कि गीता महाभारत का ही अंश है उसी प्रकार हरिवंश के बारे में भी लोग यही समझते हैं कि यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। समाज में इसे अलग से पढ़ने-सुनने की परम्परा होने के कारण ही हमें हरिवंश पर अलग से अध्याय बनाना पड़ा है।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की बड़ी ही स्पष्टता से व्याख्या हुई है। भगवान् विष्णु, श्रीकृष्ण तथा ब्रह्माजी जैसे लोगों के द्वारा भगवान् शिव को परमतत्त्व, ब्रह्म, जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय का कारण कहलवाया गया है। चूँकि यह पुराण मुख्यतया हरिके वंश (श्रीकृष्ण के वंश) से संबंध रखता है इसलिये इसमें साधारणतया भगवान् शिव-संबंधी वे ही प्रसंग आते हैं जिनमें श्रीकृष्ण की कोई भूमिका हो। फलस्वरूप हम यहाँपर शिव-संबंधी ज्यादातर भगवान् श्रीकृष्ण के ही कथनों का उल्लेख कर सकेंगे जिन्हें उन्होंने अलग-अलग अवसरों पर व्यक्त किया है।

---

[1] प्रस्तुत निबंध गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'महाभारत-खिलभाग हरिवंश' (श्रीहरिवंश पुराण) पर आधारित है।

पारिजात वृक्ष को लाने के लिये श्रीकृष्ण का अमरावती पर आक्रमण करने के निश्चय को जानकर कश्यपजी ने[1] युद्ध की शान्ति के लिये भगवान् शंकर से प्रार्थना की। वे अपनी स्तुति में भगवान् शिव को विष्णुरूप से अवतार लेनेवाले, सबके ईश्वर, जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले, देवताओं के अधिपति, अभीष्ट मनोरथों को पूरा करनेवाले, सर्वस्वरूप, योगियों के चिन्मय धाम, पापहर्त्ता, सर्वव्यापी, सुदर्शन, अजेय, अथर्ववेद द्वारा प्रतिपादित, पंचकोशरूप पाँच मस्तकों से युक्त, जगत् के कारण, वीर, दानवों के बाधक, हविष्यस्वरूप, विश्वात्मा, शरणागतों के लिये सुख को प्रकाशित करनेवाले, स्तवन के योग्य, सहस्रनेत्र तथा जिन्हें पाने के लिये सैकड़ों मार्ग हैं(अथवा जो शतपथ विहित कर्मफल के दाता हैं), पापशून्य, कल्याणकारी, सम्पूर्ण भूतों के अधिपति, अकेले ही संपूर्ण विश्व का भार वहन करनेवाले, इन्द्रियों के नियन्ता, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करनेवाले, शीघ्र फल देनेवाले, रागादि दोषों को शान्त करनेवाले, त्रिशूलधारी, अनन्तवीर्य, सभी कर्मों एवं उनके फलों के साक्षी, हविष्यभोक्ता अग्निरूप, गुणों से परे(अर्थात् निर्गुण), विशुद्ध आत्मस्वरूप, दुराचारियों को मोह में डालनेवाले, प्रणवरूप, ओंकार की अर्द्धमात्रा, धनुर्वेद एवं अस्त्रविज्ञान के ज्ञाता, पशुपति, सबके एकमात्र मित्र, भूत एवं भविष्य जिनका रूप है, प्राणों के भी प्राण, एक होकर भी सम्पूर्ण विश्व में प्रविष्ट, विद्वान्, ब्रह्मवेत्ता होने के कारण छ: गुणों(ऐश्वर्य, ज्ञान, यश, श्री, वैराग्य और धर्म) से परिपूर्ण, अनेकरूपधारी, कामादि शत्रु के नाशक, अतीन्द्रिय विषयों का भी ज्ञान करानेवाले, अजन्मा, गजचर्म धारण करनेवाले, त्रिनेत्र, देवाधिदेव, विप्रों को धर्म का उपदेश देनेवाले, तीनों लोकों के ईश्वर, जटा-जूटधारी, ॐकार नामवाले, साधनशील पुरुषों के लिये अपरोक्ष, श्रद्धा के अनुरूप वृत्ति(ज्ञान वा भक्ति) प्रदान करनेवाले, सर्वज्ञता आदि छ: गुणों की पूर्त्ति करनेवाले, त्रिपुरारी, दक्षयज्ञविध्वंसक आदि-आदि कहा है(हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व, अध्याय 72/29-60)। स्तुति के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

उरुक्रमं विश्वकर्माणमीशं जगत्स्रष्टारं धर्मदृश्यं वरेशम्।
सं सर्वं त्वां धृतिमद्धाम दिव्यं विश्वेश्वरं भगवन्तं नमस्ये।।

अर्थात्-जो विष्णुरूप से वामन-अवतार के समय महान् पग को बढ़ाकर त्रिलोकी को नाप लेने में समर्थ हुए, यह सम्पूर्ण विश्व जिनका कर्म है, जो सबके ईश्वर हैं, जगत् की सृष्टि करनेवाले हैं, धर्म के द्वारा जिनका साक्षात्कार होता है, जो अभीष्ट मनोरथों के स्वामी तथा उनकी पूर्ति करनेवाले हैं, जो सर्वस्वरूप, सात्त्विकी धृतिवाले योगियों के जो ये चिन्मय धामस्वरूप हैं, उन दिव्यस्वरूप आप

---

1. कश्यपजी अदिति के पति तथा इन्द्र के पिता थे। अदिति ने विष्णुजी से अपने जैसा पुत्र पाने का वरदान भी पाया था। अर्थात् स्वयं विष्णु ने भी अदिति से उत्पन्न हो अवतार धारण किया था। कश्यप-अदिति के पुत्र होने के नाते इन्द्र और विष्णु दोनों भाई ठहरे-इन्द्र बड़े तथा विष्णु छोटे। अत: दोनों पुत्रों के युद्ध को रोकने के लिये ही कश्यपजी ने शिव से स्तुति की थी।

भगवान् विश्वेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 72/29)

अन्तर्बहिर्वृजिनानां निहन्ता स्वयं कर्ता भूतभावी विकुर्वन्।
धृतायुधः सुकृतिनामुत्तमौजाः प्रणुद्यान्मे वृजिनं देवदेवः।।

अर्थात्- जो बाहर- भीतर के पाप- तापों का नाश करनेवाले हैं तथा स्वयं ही जगत् के कर्त्ता हैं, पंच भूतों के आकार में अपने- आपको प्रकट करना जिनका स्वभाव है अर्थात् जो स्वयं ही जगत् का उपादान कारण बनते हैं और आयुध धारण करके क्रोधादि विकारों को प्रकट करते हैं, जिनका ओज(बल- पराक्रम) सबसे उत्तम है तथा जो देवताओं के भी देवता हैं, वे परमेश्वर शिव पुण्यात्मा पुरुषों का तथा मेरा भी पाप- ताप दूर करें।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 72/53)

गुणत्रैकाल्यं यस्य देवस्य नित्यं सत्त्वोद्रेको यस्य भावात् प्रसूतः।
गोप्ता गोप्तॄणां सन्नदो दुष्कृतीनामाद्यो विश्वस्य बाधमानस्य क्रुद्धः।।

अर्थात्- जिन परमात्मा के गुण भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में सदा बने रहते हैं अथवा जिनमें सृष्टि, पालन और संहार कालसंबंधी गुण प्रवाहरूप से नित्य बने रहते हैं; जिनमें सत्त्वगुण की अधिकता है अर्थात् जो विष्णुरूप से स्थित हैं, जिनके स्वरूप से प्रकट हुए श्रीकृष्ण, इन्द्र आदि रक्षकों के भी रक्षक हैं, जो काल रुद्र बनकर दुराचारियों को विनाश का कष्ट प्रदान करनेवाले हैं और विश्व के आदि कारण(एवं माता- पिता के समान पालक) होकर भी जो इस जगत् को पीड़ा देनेवाले लोगों पर कुपित हो उनका विनाश कर डालते हैं, वे परमात्मा मेरी रक्षा करें।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 72/57)

यल्लिङ्गाङ्कं त्र्यम्बकः सर्वमीशो भगलिङ्गाङ्कं यद्धयुमा सर्वधात्री।
नान्यत् तृतीयं जगतीहास्ति किंचिन्महादेवात् सर्वसर्वेश्वरोऽसौ।।

अर्थात्- संसार में लिंग(पुरुषत्वसूचक चिन्ह) से अंकित जो भी शरीर- समुदाय है, वह सब त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर का स्वरूप है और भग(स्त्रीत्वसूचक) चिन्ह से चिन्हित जो शरीर- समूह है, वह सब सर्वजननी भगवती उमा का प्रतीक है। इस जगत् में इन दो के सिवा तीसरी कोई वस्तु नहीं है। महादेवजी(और उमा) से भिन्न कुछ नहीं है; वे ही सर्वसर्वेश्वर हैं(वे हमारी रक्षा करें)।(हरि. पु, वि. प., अध्याय 72/60)

पारिजात के लिये इन्द्र से होनेवाले युद्ध के विरामकाल(रात्रि) में पारियात्र पर्वत पर श्रीकृष्ण ने गंगाजल और बिल्व पर रुद्रदेव का आवाहन किया। आवाहन करने पर पार्वती सहित महादेवजी प्रमथ गणों के साथ वहाँ आये और गंगाजल तथा बेल के ऊपर खड़े हो गये। तब श्रीकृष्ण ने उनका पारिजात के फूलों द्वारा पूजन कर स्तवन किया।

वे अपनी स्तुति में उन्हें जन्म- मरणरूप संसार का द्रावण(निवारण) करनेवाले, सभी देवों से श्रेष्ठ, पशुपति, जगदीश्वर, अव्यक्त, अविनाशी, परमेश्वर, जगत् के कारण, विश्वनिर्माता, देवातिदेव,

ब्रह्मादि देवेश्वरों के भी स्वामी, अप्रमेयस्वरूप, बारंबार लोकों को उत्पन्न करनेवाले, त्र्यम्बक (तीनों लोकों के आश्रय), अमित कीर्तिवाले, संहारकारी, सुख-शान्ति प्रदान करनेवाले, कल्याणकारी, सर्वनाथ, नीलकण्ठ तथा दिव्य चिन्मय विग्रहधारी आदि-आदि कहा है (हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/22-34)। स्तुति के कुछ अंशों को हम देखें -

यस्मादीशो महतामीश्वराणां भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च।
तस्माद्धि त्वामीश्वरं प्राहुरीशं संतो विद्वांसः सर्वशास्त्रार्थतज्ज्ञाः।।

अर्थात् - आप बड़े-बड़े ईश्वर-कोटि के पुरुषों के भी ईश्वर हैं। आप ही आदिपुरुष, प्रीतिदाता तथा प्राणदाता हैं; इसीलिये सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थतत्त्व को जाननेवाले विद्वान् साधुपुरुष आपको ईश्वर तथा ईश कहते हैं। (हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/24)

पूज्यो देवैः पूज्यसे नित्यदा वै शश्वच्छ्रेयःकाङ्क्षिभिर्वरदामेयवीर्य।
तस्माद् विख्यातो भगवान् देवदेवः सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी।।

अर्थात् - अमेय बल-पराक्रम से सम्पन्न वरदायक महेश्वर! सदा कल्याण-प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले देवता आप पूजनीय परमेश्वर की नित्य पूजा करते हैं; अतः आप 'भगवान् देवदेव' (देवताओं के भी देवता) के रूप में विख्यात हैं। सत्पुरुषों के इष्टदेव आप ही हैं। आप समस्त भूतों को अपने भीतर ही उत्पन्न करनेवाले हैं। (हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/27)

शर्वः शत्रूणां शासनादप्रमेयस्तथा भूयः शासनाच्चेश्वरेण।
सर्वव्यापित्वाच्छङ्करत्वाच्च सद्भिः शब्दस्येशानः श्रीकरार्काग्र्यतेजाः।।

अर्थात् - आप संहारकारी होने के कारण शर्व कहलाते हैं, समस्त शत्रुओं का शासन करने के कारण अप्रमेय शक्ति से सम्पन्न हैं; फिर ईश्वररूप से समस्त जगत् का शासन करने के कारण भी आप अप्रमेय हैं, सर्वव्यापी तथा सत्पुरुषों के लिये कल्याणकारी होने से भी आपको अप्रमेय कहा गया है, श्री (लक्ष्मी) की प्राप्ति करानेवाले परमेश्वर! आप सम्पूर्ण शब्दों के भी ईश्वर हैं अर्थात् समस्त शब्दों द्वारा आपका ही प्रतिपादन होता है। आपका उत्तम तेज सूर्य से भी बढ़कर है। (हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/29)

अहं ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनन्तः पुत्राः सर्वे ब्रह्मणश्चातिवीराः।
त्वत्तः सर्वे देवदेव प्रसूता एवं सर्वेशः कारणात्मा त्वमीड्यः।।

अर्थात - मैं, ब्रह्मा, कपिल, शेषनाग और आन्तरिक शत्रुओं पर विजय पाने के कारण अत्यन्त वीर (सनकादि) सभी ब्रह्मपुत्र-ये सब-के-सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार आप सबके ईश्वर और कारणरूप होने के कारण स्तुति के योग्य हैं। (हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/34)

यल्लिङ्गाङ्कं यच्च लोके भगाङ्कं सर्वं सोम त्वं स्थावरं जङ्गमं च।
प्राहुर्विप्रास्त्वां गुणिनं तत्त्वविज्ञास्तथा ध्येयामम्बिकां लोकधात्रीम्।।

अर्थात्–उमा सहित महेश्वर! संसार में सब कुछ लिंग और भग के चिन्ह से ही अंकित है, अतः यह समस्त चराचर जगत् आप दोनों का ही स्वरूप है। तत्त्वज्ञ ब्राह्मण आपको गुणवान् और ध्येयस्वरूपा लोकजननी अम्बिका को त्रिगुणरूपा कहते हैं।(हरि. पु., वि. प., अध्याय 74/32)

षट्पुर के असुरों को ब्रह्माजी शिव के बारे में बताते हुए शिव को संपूर्ण जगत् का कर्त्ता और संहर्त्ता कहा है। उमा सहित महेश्वरदेव आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं।(हरि. पु, वि. प., अध्याय 82/13–14)

दक्ष–यज्ञ–विध्वंस के समय विष्णु एवं भगवान् शिव परस्पर एक दूसरे के प्रहार से अप्रभावित रहे। तदनन्तर विष्णुजी अपनी भूल पहचान कर भगवान् शिव से बोले–'अनादि अनन्त देवता रुद्र मेरा अपराध क्षमा करें; क्योंकि मैं यह जान गया कि आप सम्पूर्ण भूतों और आगमों के आचार्य हैं। कर्म जड़ हैं, अतः वे आप चिन्मय परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर सकते'(अर्थात् भगवान् शिव द्वारा सगुण होकर लीला करनेवाले कर्म को देखकर लोग भ्रमित हो जाते हैं क्योंकि उन लौकिक कर्मों को देखकर कोई उनके परमतत्त्वरूप तक नहीं पहुँच पाते।) भगवान् शिव ही सर्वात्मा होने के कारण कर्मों के कर्त्ता और विकर्ता हैं। वे भूतों के शेष(अंग) नहीं शेषी(अंगी) हैं, इसलिये समस्त प्राणियों में उत्तम हैं।

अनादिनिधनो देवो क्षमतां हि भवान्मम।
सर्वभूतागमाचार्यमचलत्वाच्च कर्मणाम्।।
कर्मणां चैव कर्ता च विकर्ता चैव भारत।
अशेषत्वाच्च भूतानां सर्वभूतेषु चोत्तमः।।

(हरि. पु., भविष्यपर्व, अध्याय 32/49–50)

भगवान् कृष्ण रुक्मिणी से भगवान् शिवसम्बन्धी तपस्या की योजना बनाते समय शिव के गुणों का अनायास ही वर्णन कर उठते हैं। वहाँपर उन्होंने शिव को नीललोहित, प्राणियों के हित में तत्पर रहनेवाला, सबके उत्पादक, अविनाशी, अजन्मा, सर्वव्यापी, आदिदेव तथा विरूपाक्ष कहा है।(हरि. पु, भविष्य. पर्व., अध्याय 73/36–37)

भगवान् शिव से पुत्रप्राप्ति के लिये तपस्या करते हुए श्रीकृष्ण के पास भगवान् शिव के पहुँचने का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सर्वसमर्थ ईश्वर भगवान् शिव सिर पर जटा धारण किये भूतों एवं पिशाचों से घिरे हुए थे, धनुष–बाण और खड्ग से युक्त थे। उनके मस्तक पर अर्धचन्द्र शोभा दे रहा था। एक हाथ में कुश सहित कमण्डलु धारण किये, दूसरे हाथ में जलती मशाल लिये, तीसरे हाथ में विशाल डमरू धारण किये और चौथे हाथ में त्रिशूल लिये, गले में रुद्राक्ष की मालाएँ धारण किये, कुछ–कुछ पिंगल एवं ताम्रवर्ण के शरीरवाले, जटाओं से सुशोभित कल्याणकारी भगवान् चन्द्रशेखर श्वेत वृषभ से संयुक्त हो शोभा पा रहे थे। उनके मुख पर भस्मस्वरूप अंगराग लगा हुआ था। बड़े-बड़े सर्पों से उनकी जटाएँ बँधी हुई थीं। उनका मस्तक गंगाजी के जल से प्रक्षालित होता

था। नरमुण्डों की माला से सुशोभित वे सनातन शिव भगवान् कृष्ण के पास गये। जिन्हें सांख्यदर्शी विद्वान् श्रेष्ठ, महान् एवं पुरातन पुरुष कहते हैं, जिन महादेवजी के समस्त गुणों को ही एक श्रेणी के विद्वान् चौबीस तत्त्व कहते हैं, जिन्हें सम्पूर्ण भूतों का तत्त्वज्ञ कहा जाता है, जिन्हें शिवभक्त अप्रमेय, आधाररहित, नग्न, विश्वेश्वर, शान्तस्वरूप, आदि एवं सनातन शिव कहते हैं, जिनके ये पृथ्वी आदि तत्त्व मूर्ति हैं तथा पृथ्वी सहित जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान और प्रकृति जिनके आठ विग्रह हैं, वे महादेव आदिकर्त्ता, महाभर्त्ता तथा महायोगी श्रीकृष्ण के पास आये। (हरि. पु., भविष्यपर्व, अध्याय 85/10-22)

उपरोक्त वर्णन से भगवान् शिव के सगुण-साकार विग्रह का विस्तार से पता चलता है। साथ ही उनके निर्गुण होने का भी संकेत प्राप्त होता है।

आगे भगवान् शिव को लोकों की उत्पत्ति का कारण, सर्वव्यापी, प्रणवस्वरूप, जटाधारी एवं कृतकृत्य कहा गया है।

स सर्वलोकप्रभवो भवो विभुर्जटी च साक्षात् प्रणवात्मकः कृती।

(हरि. पु., भविष्यपर्व., अध्याय 86/18)

उपरोक्त रूपवाले पापहारी एवं ईश्वर भगवान् शिव को उपस्थित देखकर श्रीकृष्णजी ने उनकी स्तुति की जिसमें उन्होंने भगवान् शिव को नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, जगत्स्त्रष्टा, परोपकारी, विश्वरूप, अमूर्त, पिनाकधारी, कल्याणरूप, दुष्टों का दमन करनेवाले, शान्तस्वरूप, हरिहरस्वरूप, अघोर, घोर तथा घोराघोर प्रिय, सर्वबीज, परम पवित्र, अष्टमूर्तिधारी, पिनाक, शूल एवं खड्ग धारण करनेवाले, खट्वांग तथा गजचर्म धारण करनेवाले, देवों के देव, आकाशस्वरूप, हररूपधारी, भक्तों के प्रिय तथा उन्हें वर देनेवाले, विश्वरूप धारण करनेवाले, प्रधान देवता, संपूर्ण भूतों के अधिपति, अजन्मा, कैलासवासी, आदि देवता, जगत्स्वरूप, सुन्दर रूपवाले, नग्न, सबके आश्रय, सर्वात्मा, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सर्वभूतेश्वर तथा भक्तवत्सल आदि-आदि कहा है। (हरि. पु. भविष्यपर्व 87/13-38)

नमः सर्वात्मने तुभ्यं नमस्ते भूतिदायक।
नमस्ते वामदेवाय महादेवाय ते नमः।। (हरि. पु., भविष्यपर्व., अध्याय 87/35)

अर्थात्- आप सर्वात्मा को नमस्कार है। ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले रुद्रदेव! आपको नमस्कार है। आप वामदेव हैं, आपको नमस्कार है। आप महादेव हैं, आपको नमस्कार है।

ऊपर के चुने हुए उद्धरणों में वर्णित तत्त्वों से भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों पर प्रकाश पड़ता है। निर्गुणरूप में वे परमतत्त्व, ब्रह्म, अमूर्त, प्रणवस्वरूप, योगियों के ध्येय तथा आत्मस्वरूप आदि हैं। सगुणरूप में वे सर्वेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप, विश्वरूप, अनन्त, अनादि, अजन्मा, सृष्टि का कर्त्ता, पालन एवं संहारकर्त्ता, परमात्मा, देवताओं के अधिपति, यज्ञ एवं वेदस्वरूप, कर्मफलदाता, काम एवं त्रिपुर आदि राक्षसों के हन्ता, पाँच मुखवाले, जटाधारी, गंगा,

चन्द्रमा, त्रिशूल, गजचर्म आदि को धारण करनेवाले, नीलकण्ठ, सभी शास्त्रों एवं अस्त्रों के ज्ञाता, चराचर–गुरु, अनेक रूपधारी, दयालु, कल्याणकारी, भक्तवत्सल, वरदाता, सबके उपास्य, सुदर्शन, सुख देनेवाले, पापों का नाश करनेवाले, काम एवं रागादि दोषों को दूर करनेवाले, मुक्तिदाता, भक्तों को श्रद्धा के अनुरूप वृत्ति(ज्ञान अथवा भक्ति) प्रदान करनेवाले, अष्टमूर्तिरूप, माया या प्रकृति के स्वामी, उमापति, पशुपति तथा भूतपति आदि–आदि हैं।

ऊपर के उद्धरण ब्रह्मा, विष्णु, श्रीकृष्ण तथा कश्यप आदि के वचनों पर आधारित होने के कारण प्रामाणिक माने जाने चाहिये। उनके वचनों की सत्यता को स्वीकार कर लेने पर शिवजी परमतत्त्व या परमब्रह्म सिद्ध होते हैं।

शिवोपासना

भगवान् शिव सर्वोच्च देव अथवा ब्रह्म हैं अतः व्यक्ति को उनकी उपासना अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि सर्वोच्च देव की उपासना से सभी देवों की उपासना स्वतः ही हो जाती है। इस पुराण में एक स्थल पर भगवान् शिव ऋषियों को कृष्णतत्त्व का उपदेश करते समय कहते हैं कि "ब्राह्मणों! तुम सम्पूर्ण यत्न से मेरा चिन्तन करके फिर केशव का ज्ञान प्राप्त करो। इन उपास्यदेव श्रीहरि में सदा मैं ही उपास्य माना गया हूँ।"

ध्यात्वा मां सर्वयत्नेन ततो जानीत केशवम्।
उपास्योऽहं सदा विप्रा उपास्येऽस्मिन् हरौ स्मृतः।। (हरि. पु. भविष्यपर्व 89/14)

यहाँ भाव यह है कि कृष्ण आदि देवों की उपासना करनेवाले भी भगवान् शिव की परोक्षरूप से उपासना करते हैं। चूँकि भगवान् शिव सर्वदेवमय हैं, अर्थात् सभी देव उन्हीं के अपररूप हैं, इसलिये शिव की पूजा से सभी देव प्रसन्न हो जाते हैं। अतः शिव की परोक्षपूजा से प्रत्यक्षपूजा बेहतर है।

पुनः भगवान् शिव की ऐसी विशेषतायें हैं जिनसे उनकी भक्ति का आकर्षण अत्यधिक हो जाता है। जैसे उन्हें अत्यन्त उदार(विष्णुपर्व 74/25), वरदायक(विष्णुप. 74/27, भविष्यपर्व 87/29 आदि), कल्याणकारी(वि. प. 74/29, 72/36, 44; भवि. प. 87/15, 32), भक्तजनों को सुख–शान्ति प्रदान करनेवाले(वि. प. 74/30, 72/36), अभीष्ट मनोरथों के स्वामी(वि. प. 72/29), पापहर्त्ता(वि. प. 72/30), प्रीति एवं सुख प्रकाशित करनेवाले(वि. प. 72/34), शीघ्रफल देनेवाले(वि. प. 72/37), सबके एकमात्र मित्र एवं कामादि शत्रुओं के नाशक(वि. प. 72/41 और 43), यज्ञ करनेवाले को अभीष्ट फल देनेवाले(वि. प. 72 /45), संसार वृक्ष का उच्छेदन करनेवाले(वि. प. 72/46), बाहर–भीतर के पापों एवं तापों के नाशक(वि. प. 72/53), श्रद्धालुओं को उनकी श्रद्धा के अनुरूप वृत्ति(ज्ञान अथवा भक्ति) देनेवाले(वि. प. 72/52), प्राणियों के हित में तत्पर(भविष्यपर्व 73/ 36), लोकहितैषी(भ. प. 85/9), भक्तप्रिय तथा भक्तों को वर

देनेवाले (भ. प. 87/22 तथा 38), वरणीय देवता (भ. प. 87/29), ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले (भ. प. 87/35) तथा भक्तों से प्रेम करनेवाले (भ. प. 87/38) इत्यादि कहा गया है। कल्याण-प्राप्ति की इच्छावाले देवगण शिवजी की नित्य पूजा करते हैं (वि. प. 74/27)। जो व्यक्ति किसी तिरस्कार आदि से पीड़ित हो एकमात्र शिव को आश्रय जानकर उनकी शरण लेता है, उसे शिव से धैर्य, ऐश्वर्य आदि अनुग्रह की प्राप्ति होती है तथा उन्हीं से गुह्य वस्तुओं का उपदेश भी प्राप्त होता है। (वि. प. 72/59)

भगवान् शिव की भक्ति से देव, दानव एवं मानव आदि सभी ने इच्छित फल पाये हैं। उदाहरण के लिये बाणासुर ने गणपति का (हरि. पु. वि. प. अध्याय 126) तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने पुत्र आदि का (ह. पु. वि. प. 74 तथा भविष्य पर्व अध्याय 87-88)।

परिजात लाने के लिये अमरावती पर आक्रमण के दौरान श्रीकृष्ण ने पारियात्र पर्वत पर शिव की स्तुति की थी (वि. प. 74/22-34)। इस स्तुति को सुनकर भगवान् शिव कृष्णजी से कहते हैं कि तुम्हें अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति होगी। तुम परिजात को अवश्य ले जाओगे। पुनः उन्होंने कहा कि "मैंने जो तुमसे कहा था कि तुम अवध्य, अजेय तथा मुझसे भी बढ़कर शूरवीर होओगे, वह बात उसी रूप में सत्य होगी उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता।"

अवध्यस्त्वमजेयश्च मत्तः शूरतरस्तथा।
भवितासीत्यवोचं यत् तत् तथा न तदन्यथा।। (ह. पु. वि. प. 74/38)

इसके बाद भगवान् शिव कहते हैं कि विष्णो! जो भक्तिभाव से तुम्हारे द्वारा की हुई इस स्तुति के द्वारा मेरा स्तवन करेगा, वह समरभूमि में विजय तथा उत्तम सम्मान पाकर धर्म का भागी होगा। तुमने जो मेरी यहाँ (गंगाजल तथा बिल्व पर) स्थापना की है, उसके अनुसार मैं बिल्वोदकेश्वर नाम से विख्यात होऊँगा। यहाँ की हुई याचना मेरे द्वारा अवश्य सफल होगी। जो यहाँ उपवासपूर्वक रहकर मुझमें भक्तिभाव रखते हुए तीन रात उपवास करेगा, वह मनोवांछित लोकों में जायेगा। इस प्रदेश में अविन्ध्या नाम से प्रसिद्ध गंगा प्रवाहित होगी जो साक्षात् गंगा के समान फलवती होगी। (ह. पु. वि. प. 74/39-42)

भगवान् श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी की पुत्रप्राप्ति संबन्धी याचना पर कैलास जाकर तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न कर पुत्रप्राप्ति का वरदान पाया। मानव-शरीरधारी श्रीकृष्ण ने सिर पर जटा और शरीर में चीर वस्त्र धारण कर बारह वर्षों[1] तक तपस्या करने का विचार किया था। वे शाक खाकर रहते, जप करते तथा वेदाध्ययन में तत्पर रहते। उनके लिये गरुड़जी हवन के लिये समिधाएँ जुटाते, सुदर्शन चक्र फूल चुनता, पांचजन्य शंख सम्पूर्ण दिशाओं में उनकी रक्षा करता, नन्दक खंग कुश लाया करता,

---

[1] शिवपुराण में जाम्बवती द्वारा पुत्रप्राप्ति के लिये कृष्ण ने कुल एक वर्षतक ही तपस्या की थी (शि. पु. वा. सं. उ. ख., अ. 1) तथा महाभारत अनु. प. अ. 14 के अनुसार मात्र छः माह के लिये तपस्या की।

कौमोदकी गदा उनकी आवश्यक परिचर्या किया करती तथा शाङ्‌र्ग धनुष भृत्य के समान उनके सामने खड़ा रहता।(ह. पु. भविष्यपर्व 84/17-23)

तपस्या के दौरान पहले वे एक महीने में एक बार खाकर मन को संयम-नियम में रखते हुए तप करने लगे। फिर वे प्रत्येक दूसरे महीने पर एक बार अन्न ग्रहण करने लगे। इस तरह समय बढ़ाते हुए वे एक वर्ष में एक बार किसी एक ही अन्न का आहार करने लगे। इसी नियम से वह सारी तपस्या पूर्ण करके, जब बारहवाँ वर्ष पूर्ण होने में केवल एक मास की कमी रह गयी, तब वे अग्नि की स्थापना करके मन्त्रपाठपूर्वक हवन करने लगे। आरण्यक का पाठ और उत्तम प्रणव का जप करते हुए भगवान् शिव के ध्यान में मग्न हो गये।(ह. पु. भविष्यपर्व 84/25-28)

भगवान् शिव ने अपने गणों सहित श्रीकृष्ण को उक्त प्रकार से तपस्यारत देखा, तथा उन सबके साथ उनके सम्मुख प्रकट हो गये। शंकरजी को वहाँ उपस्थित देख श्रीकृष्णजी का चित्त हर्ष से खिल उठा और उन्होंने महादेवजी की स्तुति आरंभ कर दी। स्तुति की समाप्ति पर भगवान् शिव श्रीकृष्णजी का हाथ अपने हाथ में लेकर सभी देवताओं तथा मुनियों के सुनते हुए केशव से इस प्रकार बोले-जनार्दन! आप यह क्या कर रहे हैं? आपकी यह तपश्चर्या किसलिये हो रही है? प्रभो? आप की प्रार्थना क्या है? आप स्वयं नित्यस्वरूप भगवान् विष्णु हैं। जनार्दन! यदि आप की यह तपस्या पुत्र के लिये हो रही है तो मैंने पहले से ही आपको पुत्र दे रखा है। इतना कहने के बाद शिवजी ने कामदेव के दहन की कथा तथा उन्हें कृष्ण के पुत्ररूप में जन्म पाने के वरदान आदि की बातें बतायी।(ह. पु. भ. प. अध्याय 87 और 88/1-14)

यहाँपर सहज में ही एक प्रश्न उठता है कि भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं लोगों को वर देनेवाले तथा सर्वसमर्थ थे, फिर भी उन्होंने छोटी सी बात(पुत्रप्राप्ति) के लिये इतनी कठोर तपस्या की।

पुनः जिस पुत्र की प्राप्ति के लिये उन्होंने तपस्या की थी, वह उन्हें पहले से ही शिवजी द्वारा प्राप्त था। अतः यहाँपर श्रीकृष्ण की तपस्या के पीछे छिपे गूढ़ रहस्य का हमें स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। हरिवंश पुराण में भी तपस्या की रहस्यमयता संबन्धी प्रश्न उठाया गया है। वहाँपर कहा गया है कि "मानवरूपधारी जगदीश्वर श्रीहरि किस उद्‌देश्य से इच्छानुसार तपस्या करते थे, इसे हम नहीं जानते(सर्वसमर्थ ईश्वर के लिये पुत्र के उद्‌देश्य से तपस्या की कोई संगति नहीं है)। वास्तव में ईश्वर का संकल्प प्राणीमात्र के लिए दुर्ज्ञेय है-वे क्या सोचकर कौन-सा कार्य करते हैं, यह जानना सभी के लिये अत्यन्त कठिन है।"

किमुद्दिश्य जगन्नाथस्तपश्चरति मानवः।।
तं न विद्‌मो यथाकामं दुर्ज्ञेयेश्वरचिन्तना। (ह. पु. भविष्यपर्व 84/18-19)

उपरोक्त उदाहरण के अतिरिक्त भी हमें ग्रन्थों में अन्य उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँपर भगवान् शिव या पार्वतीतक को तपस्यारत दिखवाया गया है। उदाहरणस्वरूप पार्वती को लें। शिवपुराण(वायवीय

संहिता, पूर्वखण्ड, अध्याय 17-24) में पार्वती को काली से गोरी बनने के लिये ब्रह्माजी से सहायता-प्राप्ति हेतु तपस्या करते हुए दिखाया गया है। भगवान् शिव ने एक बार परिहास में पार्वती के काले रूप की निन्दा की। इस निन्दा से प्रभावित हो उमा देवी गोरी बनने के लिये भगवान् शिव से तपस्या करने की अनुमति माँगने लगी। तपस्या की बात को सुनकर पार्वती से शिव (लौकिकता का अनुसरण कर) बोले- कि यदि अपनी श्यामता को लेकर तम्हें इस तरह संताप हो रहा है तो इसके लिये तपस्या की क्या आवश्यकता है? तुम मेरी या अपनी इच्छा-मात्र से ही दूसरे वर्ण से युक्त हो जावोगी। इसपर देवी कहती हैं कि मैं आपसे अपने रंग का परिवर्तन नहीं चाहती। स्वयं भी इसे बदलने का संकल्प नहीं कर सकती। अब तो तपस्या द्वारा ब्रह्माजी की आराधना करके ही मैं गोरी होऊँगी।

कठोर तपस्या करते-करते जब बहुत समय बीत गया तब ब्रह्माजी देवी के पास गये और बोले देवि! इस तीव्र तपस्या के द्वारा आप यहाँ किस मनोरथ की सिद्धि चाहती हैं? तपस्या के सभी फलों की सिद्धि तो आपके ही अधीन है[1]। लगता है कि आपका यह सारा ही क्रिया-कलाप (तपस्यादि) आपका लीला-विलास है। इसके बाद देवी ने अपना मनोरथ बताया कि वे काली से गोरी बनना चाहती हैं। मनोरथ सुनने के पश्चात् पुनः ब्रह्माजी कहते हैं- देवि! इतने ही प्रयोजन के लिये आपने ऐसा कठोर तप क्यों किया? क्या इसके लिये आपकी इच्छामात्र ही पर्याप्त नहीं थी? अथवा यह आपकी लीला ही है। आपकी लीला भी लोकहित के लिये ही होती है। (शिवपु. वाय. सं. पू. अ. 25)

श्रीकृष्ण या माता पार्वती की तपस्या के पीछे क्या रहस्य हो सकता है? जैसा शिवपुराण में संकेत दिया गया है कि इसके पीछे लोक-कल्याण एवं लोकआदर्श की स्थापना महत्त्वपूर्ण कारण है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण स्वयं अपने मुख से कह रहे हैं कि-

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।। (गीता 3/22)

अर्थात्-हे अर्जुन! मुझे (इन) तीनों लोकों में न तो कुछ कर्त्तव्य है और न (कोई भी) प्राप्त करने योग्य (वस्तु) अप्राप्त है, (तो भी मैं) कर्म में बरतता (प्रवृत्त) होता हूँ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। (गीता 3/21)

अर्थात्- श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष (भी) वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है (अर्थात् जो कर्म का रास्ता दिखा जाता है वह प्रमाण बन जाता है), समस्त मनुष्य समुदाय उसी के अनुसार बरतने (आचरण करने) लग जाता है।

कृष्णजी के उपरोक्त वचनों को ध्यान में रखा जाय तो महान् देवों एवं देवियों के आचरण का

---

[1] शास्त्रों में देवी को सभी प्रकार की तपस्याओं की फलदात्री बताया गया है। उसी बात की याद ब्रह्माजी उमा को दिला रहे हैं।

कुछ-कुछ रहस्य समझा में आ जाता है। कृष्णजी द्वारा की गयी पुत्रप्राप्ति संबन्धी उपरोक्त तपस्या के पीछे एक लक्ष्य हो सकता है शिवपूजा के आर्दश को स्थापित करना। जिस तरह की कठोर तपस्या उन्होंने की तथा जितने लम्बे अरसेतक की, वह अपने आप में तपस्या का एक प्रामाणिक रूप है। बारह वर्ष की तपस्या का व्रत लेना कलियुग में एक आर्दश माना जा सकता है। पूजा की उन्होंने वैदिक रीति अपनायी, अतः शिव की आर्दश-पूजा का रूप वैदिक होना चाहिये न कि अन्य तामसिक या तान्त्रिक। वास्तव में पुत्र-प्राप्ति की इच्छा तो महज एक बहाना था, असली लक्ष्य तो लोक में भगवान् शिव एवं उनकी पूजा के महत्त्व तथा पूजा-संबंधी आदर्श(लोकहित के लिये) स्थापित करना था। अवतारी पुरुषों का प्रमुख लक्ष्य धर्म की स्थापना करना, दुष्टों का विनाश करना तथा साधुओं की रक्षा करना होता है, अतः श्रीकृष्णचन्द्र का भी लक्ष्य धर्म की स्थापना करना था। धर्म के आवश्यक तत्त्वों में तपस्या भी है जिसका आदर्श उन्होंने उपरोक्त तपस्या द्वारा निर्धारित किया है।

वाराणसी तीर्थ की महिमा सभी प्रमुख ग्रन्थों में पायी जाती है। इस पुराण में भी अविमुक्त-क्षेत्र के बारे में कहा गया है कि वहाँ भगवान् शिव तीन युगों में पार्वती के साथ निवास करते हैं, पर कलियुग में महादेवजी का वह नगर अदृश्य हो जाता है। उसके अदृश्य हो जानेपर वह वाराणसी नगरी फिर से बसती है।

यस्मिन् वसति वै देवः सर्वदेवनमस्कृतः।
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः॥
अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरं हि महात्मनः।
अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुरी सा वसते पुनः। (ह. पु. हरिवंशपर्व 29/67-68)

भगवान् शिव एवं श्रीकृष्ण

इस पुराण में भगवान् शिव एवं श्रीकृष्ण की तात्त्विक एकरूपता को बड़े ही सशक्त ढंग से उभारा गया है। हमें अनेक स्थलों पर इनकी एकता संबन्धी कथन प्राप्त होते हैं। इन स्थलों में से कुछ की चर्चा हम यहाँ करेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण शिवजी की स्तुति में उन्हें हरिहरस्वरूप(ह. पु. भविष्यपर्व 87/17), हरि रूपधारी(ह. पु. भविष्यपर्व 87/21) तथा कृष्णरूप में पार्थ के सारथि बनकर हाथ में चाबुक धारण करनेवाले(**अभिषु हस्ताय**) कहा है(ह. पु. भविष्यपर्व 87/25)। इसी प्रकार भगवान् शिव ने कृष्णजी को हररूपधारी हर(ह. पु. भविष्यपर्व 90/16) कहा है। एक अन्य स्थल पर(जिसका पहले भी उल्लेख हो चुका है) शिवजी कृष्ण-तत्त्व का उपदेश करते समय ऋषियों से कहते हैं कि मेरा चिन्तन करने के अनन्तर केशव का ज्ञान प्राप्त करो क्योंकि श्रीहरि के रूप में सदा मैं ही उपास्य माना गया हूँ(ह. पु. भविष्यपर्व 89/14)। कहने का अभिप्राय है कि भगवान् शिव ही हरि के रूप में

अवस्थित हैं।

श्रीकृष्ण का पुत्र-प्राप्ति के लिये कैलास जाने के प्रसंग में जन्मेजय वैशम्पायनजी से कहते हैं कि "कहा जाता है कि वे दोनों (शिवजी एवं श्रीकृष्णजी) महान् देवता एक ही हैं; किन्तु दो स्वरूपों में विभक्त हो गये हैं। उनका आत्मा (स्वरूप) एक ही है, तो भी कार्य-भेद से भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं। दोनों ही जगत् की उत्पत्ति के कारण हैं और दोनों ही सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले हैं। वे परस्पर समाविष्ट होकर जगत् के पालन-कर्म में स्थित रहते हैं।"

तौ हि देवौ महादेवावेकीभूतौ द्विधा कृतौ।
एकात्मानौ जगद्योनी सृष्टिसंहारकारकौ।।
परस्परसमावेशाज्जगतः पालने स्थितौ। (ह. पु. भवि. प. 73/5-6)

एक अन्य स्थल पर (ह. पु. भवि. प. 84/15) भगवान् कृष्ण को शिवस्वरूप विष्णु कहा गया है तथा शिव को विष्णुरूप से वामन अवतार लेनेवाले कहा है (ह. पु. वि. प. 72/29)। मार्कण्डेयजी ने हरि एवं हर की एकता को समझते हुए हरिहरात्मक स्तोत्र की रचना की है। उनके अनुसार विष्णुरूपधारी शिव और शिवरूपधारी विष्णु में कोई अन्तर नहीं है (ह. पु. वि. पर्व 125/29)। आदि, मध्य और अन्त से रहित जो यह अविनाशी अक्षर ब्रह्म है, उसका स्वरूप हरिहरात्मक है (ह. पु. वि. पर्व 125/30)।

शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे।
यथान्तरं न पश्यामि..........................।।
अनादिमध्यनिधनमेतदक्षरमव्ययम्।
तदेव ते प्रवक्ष्यामि रूपं हरिहरात्मकम्।। (ह. पु. वि. प. 125/29-30)

आगे कहा गया है कि जो विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही ब्रह्मा हैं; इनका मूलस्वरूप तो एक ही है, परन्तु ये कार्यभेद से रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा तीन देवता कहलाते हैं। ये सब-के-सब लोकस्रष्टा, वरदायक, जगन्नाथ, स्वयंभू, अर्धनारीश्वर तथा तीव्र व्रत का आश्रय लेनेवाले हैं।

यो विष्णुः स तु वै रुद्रो यो रुद्रः स पितामहः।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा रुद्रविष्णुपितामहाः।।
वरदा लोककर्तारो लोकनाथाः स्वयम्भुवः।
अर्धनारीश्वरास्ते तु व्रतं तीव्रं समास्थिताः।। (ह. पु. वि. पर्व 125/31-32)

जैसे जल में डाला हुआ जल जलरूप हो जाता है, उसी प्रकार रुद्रदेव में प्रविष्ट हुए भगवान् विष्णु रुद्रमय हो जाते हैं। जैसे अग्नि में प्रविष्ट हुई अग्नि अग्निरूप ही होती है, उसी प्रकार विष्णु में

प्रविष्ट हुए रुद्रदेव विष्णुरूप ही होते हैं। रुद्रदेव को अग्निरूप तथा विष्णु को सोमरूप जानें। इसीलिये यह चराचर जगत् अग्नीषोमात्मक कहलाता है।(ह. पु. वि. पर्व 125/33-35)

यह हरि और हर ही समस्त चराचर जगत् के कर्त्ता, संहारक, शुभकारक तथा प्रभावशाली महेश्वर हैं। रुद्र के परमदेव विष्णु हैं और विष्णु के परमदेव शिव हैं। एक ही परमेश्वर दो रूपों में व्यक्त होकर सदा समस्त जगत् में विचरते रहते हैं। भगवान् शंकर के बिना विष्णु नहीं हैं और विष्णु के बिना शिव नहीं हैं। अतः वे दोनों रुद्र और विष्णु पूर्वकाल से ही एकत्व को प्राप्त हैं।

कर्तारौ चापहर्तारौ स्थावरस्य चरस्य तु।
जगतः शुभकर्तारौ प्रभविष्णू महेश्वरौ।।
रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः।
एक एव द्विधाभूतो लोके चरति नित्यशः।।
न विना शंकरं विष्णुर्न विना केशवं शिवः।
तस्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा। (ह. पु. वि. पर्व 125/36, 41-42)

उपरोक्त सभी उद्धरणों में भगवान् शिव एवं विष्णु में तात्त्विक अभिन्नता बतायी गयी है। मूलरूप से वे एक ही ब्रह्म के रूप हैं तथा सृष्टि के कार्य संचालन हेतु अद्वैत ब्रह्म अपने को तीन प्रमुख देवों के रूप में बाँट रखा है।

मार्कण्डेयजी ने अपने हरिहरात्मक स्तोत्र में स्पष्टरूप से भगवान् शिव एव विष्णु की अभिन्नता का प्रतिपादन किया है। उनके इस स्तोत्र(ह. पु. वि. पर्व 125/29-62) के पाठ से व्यक्ति निरोगता एवं बल को पाकर स्वर्ग एवं लक्ष्मी को भोगता है। पुत्रहीन को पुत्र, कुमारी को श्रेष्ठ पति तथा गर्भवती को उत्तम पुत्र प्राप्त होता है। जहाँ इस स्तोत्र का पाठ होता है वहाँ राक्षस, पिशाच तथा विनायक आदि का भय नहीं रहता।(ह. पु. वि. पर्व 125/63-64)

उपसंहार

इस पुराण में भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों का बड़े ही विस्तार से विवेचन मिलता है। निर्गुणरूप में वे गुणातीत, प्रणवरूप, अव्यक्त, अविनाशी, अप्रमेयस्वरूप, परमतत्त्व आदि-आदि हैं। सगुणरूप में वे ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारण कर संसार की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं। वे देवताओं के अधिपति, परमेश्वर, जगत्स्वरूप, कल्याणकारी, शीघ्र फल देनेवाले, रागादि दोषों को शान्त करनेवाले, आत्मस्वरूप, सम्पूर्ण भूत, भविष्य एवं वर्तमान की वस्तुएँ जिनका स्वरूप हैं, धनुर्वेद एवं अस्त्र विज्ञान के ज्ञाता, पाँच मुखवाले, त्रिशूल, चन्द्रमा, गजचर्म, सर्प, मुण्डमाला तथा पिनाक आदि को धारण करने वाले, पशुपति, योगेश्वर, भोग-मोक्षदाता, यज्ञस्वरूप, त्र्यम्बक, नीलकण्ठ, अर्धनारीश्वर, चराचर जगत् के स्वामी, अनादि तथा अनन्त आदि-आदि हैं। उन्हें ॐकार की अर्धमात्रा, जटाधारी तथा कृतकृत्य भी कहा गया है। सुदर्शन,

रुद्राक्ष की माला धारण करनेवाले, पिंगल एवं ताम्र वर्णवाले तथा डमरू आदि से युक्त कहा गया है।

भगवान् शिव सर्वदेवमय हैं इसलिये इनकी उपासना से अन्य सभी देव प्रसन्न हो जाते हैं। कृष्ण आदि देवों की पूजा भगवान् शिव की ही परोक्ष पूजा है। प्रत्यक्ष पूजा परोक्ष पूजा से अच्छी होती है। भगवान् शिव उत्यन्त उदार, कल्याणकारी, वर देने के लिए सदैव तत्पर, भक्तों को सुख-शान्ति पहुँचानेवाले, मोक्षदाता, पापहर्त्ता, राग एवं कामादि को शान्त करनेवाले, शीघ्र फल देनेवाले, श्रद्धा के अनुरूप ही फल देनेवाले, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा भक्तों से प्रेम करनेवाले हैं। भगवान् शिव की इस प्रकार की अनेक विशेषतायें शिवभक्ति के आकर्षण को बढ़ा देती हैं। इनकी भक्ति से देव, असुर तथा मानव सभी लाभान्वित हुए हैं।

शिवभक्ति से बाणासुर ने गणेश्वर का पद तथा श्रीकृष्ण ने अजेयता तथा अवध्यता आदि का वर पाया। भगवान् श्रीकृष्ण ने पुत्र-प्राप्ति के बहाने बारह वर्षो की कठोर तपस्या का व्रत लेकर शिव-भक्ति का आदर्श लोक में स्थापित किया।

वाराणसी की महिमा बताते हुए कहा गया है कि यहाँपर भगवान् शंकर पार्वती सहित तीन युगों में वर्तमान रहते हैं पर कलियुग में उनका नगर(अविमुक्तक्षेत्र) अदृश्य हो जाता है।

इस पुराण में तीनों देवों(विशेषकर विष्णु एवं शिव) की एकता का प्रतिपादन सशक्त ढंग से हुआ है। यहाँ कहा गया है कि परमतत्त्व भगवान् शिव ही विष्णु तथा ब्रह्मा आदि रूपों में अपने को सृष्टि कार्य के लिये विभक्त करते हैं। अतः तात्त्विक दृष्टि से विष्णु एवं शिव आदि देवों में कोई अन्तर नहीं है, भेद केवल उनकी क्रियाओं में है।

इस पुराण में भगवान् शिव एवं उनके हरिहररूप संबंधी उपयोगी स्तोत्र भी हैं। इनमें से शिवजी का स्तोत्र भगवान् श्रीकृष्णकृत है जबकि हरिहरात्मक स्तोत्र मार्कण्डेयजीकृत है।

❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁ ❁

संसार में बहुतेरे लोग ऐसे हैं, जो दूसरों को उपदेश दिया करते हैं; किन्तु जो स्वयं आचरण करता हो, ऐसा मनुष्य करोड़ों में कोई एक ही देखा जाता है।

बुद्धिं परेषां दास्यन्ति लोके बहुविधा जनाः।
स्वयमाचरते सोऽपि नरः कोटिषु दृश्यते।

(पद्ममहापु. उत्तरखण्ड 132/35)

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में शिवतत्त्व

नारद पुराण (पूर्वभाग – चतुर्थपाद – अध्याय – 94) के अनुसार विष्णु पुराण का द्वितीय भाग विष्णुधर्मोत्तर पुराण कहलाता है। परन्तु बहुत से विद्वान् इसे एक स्वतंत्र उपपुराण के रूप में स्वीकार करते हैं। वर्तमान में उपलब्ध विष्णुधर्मोत्तर पुराण की श्लोकसंख्या लगभग 9000 है। नारद पुराण के अनुसार विष्णु पुराण की कुल श्लोकसंख्या 23000 है। विष्णु धर्मोत्तर एवं विष्णु पुराण दोनों की प्राप्त श्लोकसंख्या कुल 16000 है। अतः सात हजार श्लोकों की कमी है। ये 7000 श्लोक या तो पूर्व भाग के या उत्तर भाग के या दोनों भाग के हो सकते हैं। इस पुराण में कुल तीन खण्ड हैं। नारद पुराण के अनुसार इसमें वराह कल्प के वृत्तांत हैं।

इस पुराण में भगवान् शिव से संबन्धित कथाओं का संदर्भ बहुत ही कम आया है। और जो कुछ आया है उसका वर्णन इतने कम श्लोकों में किया गया है कि उनमें शिव के माहात्म्य को प्रकट होने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो सका है जबकि उन्हीं प्रसंगों की अन्य ग्रन्थों की विस्तृत चर्चा में शिव का स्वरूप एवं माहात्म्य खुलकर सामने आया है। उदाहरण के लिये इस पुराण की दक्ष के यज्ञविध्वंस की कथा लें अथवा अंधकासुरवध की, दोनों ही कथाओं का संक्षिप्त वर्णन शिवसंबंधी अनेक तथ्यों की उपेक्षा कर देता है। शिव की कथाओं का विस्तार से वर्णन न करने का एक कारण यह हो सकता है कि यह एक वैष्णव पुराण है जिसका लक्ष्य विष्णु संबंधी कथाओं या उनके माहात्म्य को बल देना है। इतना सब होते हुए भी कुछ प्रसंग ऐसे मिल ही जाते हैं जहाँ हमें भगवान् शिव की गरिमा का ज्ञान होता है।

भगवान् शिव का स्वरूप

पृथ्वीपर दुष्ट क्षत्रियों के उत्पात बढ़ जानेपर धरती के उद्धार हेतु बृहस्पति तथा इन्द्र के साथ ब्रह्माजी भगवान् शंकर के यहाँ निवेदन करने जाते हैं। रुद्रलोक में वे लोग त्रिनेत्रधारी का जिस रूप में दर्शन करते हैं उसके वर्णन में उन्हें जटा – जूटधारी, अग्निपुञ्ज के समान प्रकाशित, सूर्यप्रकाश के समान तीसरे नेत्र से युक्त, मस्तक पर चन्द्रमा धारण किये हुए, नागों का यज्ञोपवीत पहने, नागेश्वर का अंकुश बनाये हुए, नीलकंठ, विशालाक्ष, वर देनेवाले, सभी भूतों के जनक तथा नन्दी के अनुगत सहस्रों अनुचरों से घिरे हुए कहा गया है। भगवान् शिव को इस रूप में देख देवगण प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे (विष्णुधर्मोत्तर पु. प्रथम खण्ड 28 / 1 – 5)। स्तुति इन्द्र ने प्रारम्भ की। अपनी स्तुति में इन्द्र शिव को देवदेवेश, दुःख का विनाश करनेवाले, गंगा सहित जटाओं से सुशोभित, अमित विक्रमवाले, ब्रह्मचारी, सर्वदेवमय, धाता, सभी देवों द्वारा वरणीय, सभी भूतों की बुद्धि, सभी देवों के गुरु, सभी भूतों के ईश्वरों के ईश्वर, महायोगी आदि – आदि कहा है। उनके लिंगार्चन से सभी पापों का नाश हो जाता है। जो लोग उनका सतत स्मरण करते हैं वे परमगति को प्राप्त करते हैं। उनका वाहन चार पादों से युक्त धर्म है। उन्हीं की मूर्तियों से यह जगत् व्याप्त है। इस जगत् में उनके सिवा

कुछ भी आस्तित्व नहीं रखता (विष्णुध. पु. प्र. ख. 28/6-16)

नमोऽस्तुदेवदेवेश प्रणतार्तिविनाशन।
सर्वदेवमयो धाता सर्वदेवमयोऽपि च।
सर्वदेववरेण्यस्त्वं सर्वभूतविभावनः।।
सर्वामरगुरुर्देवः सर्वभूतेश्वरेश्वरः।
मूर्त्तयस्ते स्मृता देव याभिर्व्याप्तमिंद जगत्।।
त्वया विना जगत्यस्मिन्नान्यत्किञ्चन विद्यते।।

(वि. धर्मो. पु. प्रथमख. 28/6, 11-12, 15-16)

भावार्थ है - जो देवों के देव के स्वामी तथा दुःख का विनाश करनेवाले हैं, उनको नमस्कार है। जो सर्वदेवमय तथा धाता हैं, जो सभी देवों द्वारा वरणीय हैं, जो सभी प्राणियों की बुद्धि हैं, जो सभी देवों के गुरु हैं, जो सभी भूतों के स्वामियों के स्वामी हैं, जिनकी मूर्तियों (अष्ट मूर्तियों) से समस्त जगत् व्याप्त है तथा इस जगत् में उनके सिवा कुछ भी अस्तित्व नहीं रखता, उन्हें प्रणाम है।

एक स्थल पर परशुराम के मुख से भगवान् शिव को - पार्वती को अर्द्धांग में धारण करनेवाले, जटा एवं गंगा से सुशोभित, देवदेव, महादेव जिनसे श्रेष्ठ अन्य कोई देव नहीं, जिनकी पूजा भक्तलोग करते रहते, वर देनेवाले, परमेश्वर, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार करनेवाले तथा जिनकी सर्वत्र प्रतिष्ठा है - इन सब विशेषताओं से युक्त कहलवाया गया है (विष्णुधर्मो. पु. प्रथमख. 52/3-7)।

त्वत्तः परतरं देवं नाऽन्यं पश्यामि कञ्चन।
पूजयन्ति सदा लिंगं तव देवाः सवासवाः।।
जगतोऽस्य समुत्पत्तिस्थितिसंहारपालने।
त्वामेकं कारणं मन्ये त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।। (विष्णुधर्मो. पु. प्र. ख. 52/5, 7)

भावार्थ यह है - (परशुराम जी कह रहे हैं), आपसे (शिव से) श्रेष्ठतर किसी अन्य देवता को मैं नहीं देखता। आपके लिंग की सभी देवता पूजा किया करते हैं। इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के एकमात्र कारण आप ही माने जाते हैं तथा आप में ही सभी कुछ प्रतिष्ठित (अवस्थित) है।

इन्द्र की प्रार्थना पर देवताओं द्वारा अबध्य नरवध्यासुर को पाताल में जाकर मारने के लिये भगवान् शिव परशुराम को आदेश देते हैं। वे कहते हैं कि मेरे पास वैष्णव धनुष पड़ा है। इस दिव्य धनुष तथा अक्षय तरकस को लेकर युद्ध में जाओ। नरवध्यासुर को मारने के बाद इस बैष्णव धनुष तथा अक्षय तरकस को अगस्त्यजी के पास रख देना ताकि वे उसे दशरथ पुत्र राम को दे सकें। भगवान् शिव परशुराम से पुनः कहते हैं कि यह धनुष वैष्णव तेज से युक्त है। भगवान् शिव के इस प्रकार कहने पर परशुरामजी उनसे पूछते हैं कि आपके पास यह वैष्णव धनुष कहाँ से आया? उनके इस

प्रकार प्रश्न करने पर भगवान् शिव उस धनुष की कहानी सुनाते हैं। यहाँपर हम उस कहानी को न बता कर उसके उसी अंश का उल्लेख करेंगे जो शिव के स्वरूप पर प्रकाश डालता हो।

एक बार वैष्णवी माया से मोहित हो देवता तथा ऋषिलोग ब्रह्माजी के पास जाकर विष्णु एवं महादेव के अन्तर को जानना चाहा। अर्थात् इनमें से कौन श्रेष्ठ है। इनकी श्रेष्ठता को लेकर देवताओं तथा ऋषियों में युद्ध की नौबत आ गयी। भृगु माया से मोहित हो विष्णु को श्रेष्ठ ठहराने लगे। इसका फैसला करने के लिये ब्रह्माजी ने यह तय किया कि शिव के धनुष को विष्णु तथा विष्णु के धनुष को शिव चढ़ायें। इनमें से जो जिसको चढ़ा देगा वह श्रेष्ठ माना जायगा। भगवान् विष्णु ने मेरे हाथ से मेरा धनुष ले लिया परन्तु प्रयास करने पर भी वे उसे नहीं चढ़ा सके। तब मोह के भंग होनेपर मुझे महेश्वर जानकर तथा मेरे धनुष को विशिष्ट जानकर मेरी स्तुति करने लगे। अपनी स्तुति में विष्णुजी ने शिव को देवश्रेष्ठ, अप्रमेय, सर्वगुणसम्पन्न, देवगणों द्वारा अर्चित, जिनका उन्मेष ब्रह्मा का एक दिन है तथा निमेष रात्रि, आदि, मध्य एवं अंत से रहित, एक, ईश, पुराणपुरुष, संपूर्ण भूतों में स्थित, भूतनाथ, चिद्रूप आत्मा, देवों के देव, त्रिगुणरूप, पुरुष, जिसकी इच्छा से त्रिलोकी स्थित है तथा जिसकी इच्छा से इसका विनाश होता है कहा है। वहीं पर वे आगे कहते हैं कि वे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव तीन मूर्तियों का आश्रय लेकर उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयरूपी तीन कार्यों को करते हैं, वे कारणों के कारण, सभी देवों द्वारा पूज्य एवं सर्वेश्वर आदि हैं(विष्णुधर्मो. पु. प्र. ख. 67/17-29)। स्तुति के कुछ अंशों को देखें-

नमोऽस्तु ते देववराप्रमेय नमोऽस्तु ते सर्वगुणान्तराय।
नमोऽस्तु ते देवगणार्चिताय नमोऽस्तु ते सर्वगुणोत्तराय।।
आद्यं न मध्यं न तथैव चान्तं त्वमेक ईशः पुरुषः पुराणः।।
उत्पत्तिनाशौ परिपालनं च कालत्रये शङ्कर देवकार्यात्।।

भावार्थ है- अप्रमेय देवश्रेष्ठ को नमस्कार, सभी गुणों में व्याप्य को नमस्कार, देवगणों द्वारा अर्चित देव को नमस्कार, सभी गुणों से परे को नमस्कार। आदि, अन्त और मध्य से रहित पुराणपुरुष तुम एक ईश को नमस्कार। भगवान् शंकर के कार्य उत्पत्ति, विनाश, पालन एवं काल हैं(वि. ध. पु. प्र. ख. 67/ 17, 19, 27)।

अनेक स्थलों पर शिव के सगुण रूपों की झलक मिलती है। सभी पुराणों में शिव की स्वीकृत सभी विशेषताएँ मिलती हैं-जैसे मृगछाला, पिनाक, त्रिशूल तथा नागों के आभूषण धारण करनेवाले, भस्मधारी, श्मशानवासी, नीलकंठ, गंगा तथा जटा-जूटधारी इत्यादि। इस पुराण में भी ये सभी विशेषण शिव से जुड़े हुए हैं।

उपरोक्त वर्णनों से शिव का परमतत्त्व होना स्पष्ट हो जाता है। वे निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों

को धारण करते हैं। त्रिदेवों के रूप को धारणकर सृष्टि, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं।

शिवोपासना

भगवान् शिव को दुःख दूर करनेवाला(1/28/6), भक्तानुकम्पी(1/235/36), वरेण्य,(1/28/11) तथा वरदाता(1/28/4; 1/52/6 आदि) कहा गया है। उनके लिंग की उपासना से व्यक्ति पापों से छूट जाता है तथा उनके स्मरणमात्र से परमगति की प्राप्ति होती है।

तव लिङ्गार्चनरताः पूयन्ते सर्वकिल्बिषैः।।
स्मरन्ति ये त्वां सततं ते हि यान्ति परां गतिम्। (वि. ध. पु. 1/28/9-10)

भगवान् शिव को सर्वदेवमय बताया गया है(1/28/11)। उन्हें सभी देवताओं का गुरु भी बताया गया है(1/28/12)। उनके लिंग की पूजा देवगण सदा करते रहते हैं(1/52/5) तथा ऋषिगण उनका ध्यान, स्तुति तथा पूजन भक्तिपूर्वक करते रहते हैं(1/52/6)। रुद्र के जप से सभी पापों का नाश हो जाता है(2/125/45)।

उपरोक्त विशेषताओं से युक्त होने के कारण भगवान् शिव सबके उपास्य और पूज्य सिद्ध होते हैं। उनकी उपासना से दुःख दूर होते, पापों से मुक्ति मिलती, मोक्ष की प्राप्ति होती तथा मनचाहा वरदान मिलता है। चूँकि भगवान् शिव को सर्वदेवमय कहा गया है इसलिये उनके पूजन से सभी देवाताओं की पूजा सम्पन्न हो जाती है। देवताओं में वरणीय एवं उनके गुरु होने के नाते भी वे सबके पूज्य सिद्ध होते हैं।

भगवान् शिव की उपासना से भगीरथ गंगा को धरती पर ले आये(1/19/8-9 इत्यादि), परशुराम को दुष्ट राक्षसं एवं क्षत्रियों से निपटने के लिये दिव्य परशु एवं अन्य अस्त्र-शस्त्रों की प्राप्ति हुई(1/49/23-26 तथा 1/50/1-6), राजा श्वेत ने मृत्यु को जीत लिया(1/अध्याय 236/16-20) तथा दक्ष को भी(जो शिव का विरोधी था) भगवान् शिव से वर की प्राप्ति हुई थी (1/235/35)।

भगवान् शिव की सगुण पूजा मुख्यतः लिंगपूजा ही होती है। हम ऊपर देख चुके हैं कि उनका लिंग सभी देवों द्वारा पूजा जाता है। राजा श्वेत ने लिंगपूजा के बलपर ही मृत्यु को जीतकर गणेश्वर का पद पाया था(**श्वेते तु शरणं प्राप्ते लिङ्गस्य त्रिपुरान्तकः** .... 1/236/16-18)। एक स्थलपर कहा गया है कि लिंगपूजा से समस्त जगत् की पूजा हो जाती है। अर्थात् सभी देवों सहित चराचर की पूजा हो जाती है क्योंकि लिंग भी भगवान् शिव की भाँति सर्वदेवमय तथा सर्वस्वरूप है।

लिङ्गे हि पूजिते पूजा कृता तु जगतो भवेत्। (वि. धर्मो. पु. 3/74/2)

इस पुराण में कहा गया है कि रुद्र को नमस्कार करने से अथवा 'रुद्राध्याय' के पाठ से सभी प्रकार के उपद्रवों का शमन, महापातको का विनाश तथा शान्ति की प्राप्ति होती है।

नमस्ते रुद्र इत्येतत्सर्वोपद्रवनाशनम्।।

सर्वशान्तिकरं प्रोक्तं महापातकनाशनम्। (वि. ध. पु. 2/125/96-97)

इस पुराण में लिंगनिर्माण तथा शिव के चित्र बनाने संबन्धी भी दिशा निर्देश दिये गये हैं। महादेव के चित्रनिर्माणविधि में कहा गया है कि वृषपर आरूढ़ पंचमुखों से युक्त चित्र बनाना चाहिये। दक्षिणवाले मुख के अतिरिक्त सभी मुखों की बनावट सौम्य हो। दक्षिणमुख की बनावट विकट हो तथा उसमें मुण्डमाला हो। उत्तरमुख के अलावा सभी मुखों में तीन नेत्र हों। जटा के ऊपर चन्द्रकला हो। पाँचवा मुख जटा के ऊपर बनाना चाहिये। उन्हें वासुकी नाग का यज्ञोपवीत पहने, दस बाँहु, अक्षमाला, त्रिशूल, शरदण्ड, और कमल लिये हुए बनाना चाहिये। दाहिने हाथ में महासर्प तथा बाये में कमण्डलु बनाना चाहिये। इसी तरह हमें उनके वर्ण तथा पाँचों मुखों का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है जिसके अनुसार चित्र बनाना चाहिये (वि. धर्मो. पु. 3/44/14-20)। इसी प्रकार शिव की पंचमुखी मूर्त्तिनिर्माण संबंधी निर्देश भी विस्तार से प्राप्त होता है (वि. ध. पु. 3/अध्याय 48)

इस पुराण में कहा गया है कि रविवार को "सर्व, शर्व, शिव, स्थाणु, भूतानां निधिः तथा अव्यय" - इन नामों का क्रम से स्मरण करने से व्यक्ति पापों से छूट जाता है (3/124/6)। इसी प्रकार हर चौराहों पर शिव का नाम लेने से भी व्यक्ति पापों से छूट जाता है (3/125/22)। अष्टमी एवं चतुर्दशीव्रत की भी चर्चा इस पुराण में की गयी है। इन व्रतों में उपवास तथा लिंगपूजा प्रमुख बातें हैं। अष्टमीव्रत की शुरुआत शुक्ल पक्ष से करे। उस दिन कमल से लिंगपूजा करे तथा दोनों पक्ष की अष्टमी को व्रत करे। इस व्रत को करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा अन्त में शिव-सायुज्य की भी (3/173/1-7)।

चतुर्दशीव्रत की शुरुआत फाल्गुन के शुक्लपक्ष से करे। 12 महीनों के दोनों पक्षों में चतुर्दशी को उपवासपूर्वक व्रत रहकर शिव की पूजा करनेवाला सभी कामनाएँ पूर्णकर अपने कुल को भी तारते हुएं स्वयं शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है (3/188/1-5)।

त्रिदेवों की एकता

तीनों प्रमुख देव (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) मूलतः एक ही हैं, एक ही तत्त्व के त्रिविध रूप हैं। इस पुराण में इस बात को स्पष्ट करते हुए एक स्थल पर कहा गया है कि निर्गुण तत्त्व जिसके सर्वत्र हाथ, पैर, आँख, शिर एवं मुख हैं, जो परमेश्वर तथा अविनाशी है, जिसके शरीर में ही समस्त विश्व है, को कोई सदाशिव, कोई जगत्पति तो कोई वासुदेव तो कोई काल तो कोई पुरुष तथा कोई प्रणव कहता है। बिना भक्ति के बुद्धिमान लोग भी इस तथ्य को (अर्थात् परमतत्त्व के स्वरूप को) ग्रहण नहीं कर सकते (1/171/10-16)। इस उद्धरण में परोक्षरूप से यह बताया गया है कि एक ही तत्त्व के नाना नाम तथा रूप कल्पित किये गये हैं। सभी रूप और सभी नाम उस एक ही तत्त्व के हैं।

एक अन्य स्थल पर विष्णुजी सभी देवों के समक्ष कह रहे हैं कि- "जो मैं हूँ वही

परमेश्वर(शिव) हैं, जो मैं हूँ वही पितामह(ब्रह्माजी) हैं। भगवान् शिव इन तीनों मूर्तियों के आश्रय से तीन प्रकार के कार्य साधते हैं। उत्पत्ति, विनाश तथा पालन तथा तीनों काल भगवान् शंकर के कार्य हैं।

> **योऽहं स देवः परमेश्वरस्त्वं योऽहं स देवः प्रपितामहश्च।।**
> **आश्रित्य मूर्तित्रितयं मयेदं कर्मत्रयं शङ्कर साध्यते वै।**
> **उत्पत्तिनाशौ परिपालनं च कालत्रये शङ्कर देवकार्यात्।।**
> (वि. धर्मो. पु. 1/67/26-27)

उपसंहार

नारद पुराण के अनुसार यह पुराण विष्णु पुराण का उत्तर भाग है जिसमें वराह कल्प की कथाएँ हैं। इसके प्राप्य श्लोकों की संख्या लगभग 9000 है। इस पुराण में भगवान् शिवसम्बन्धी सन्दर्भो का बड़ा ही संक्षिप्त वर्णन आता है, इस कारण से शिव के गौरव का विस्तारपूर्वक वर्णन हम नहीं पाते। इस संक्षिप्त वर्णन का कारण इस पुराण का वैष्णव होना है जिसका लक्ष्य भगवान् विष्णु के चरित्र को उभारना है। ऐसा होनेपर भी जो उद्धरण हमें शिवसम्बन्धी प्राप्त होते हैं उनसे भगवान् शिव परमतत्त्व सिद्ध होते हैं। उनके निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की झलक मिलती है। निर्गुणरूप में उन्हें अविनाशी, अगम्य, बुद्धि से परे तथा ॐकारस्वरूप कहा गया है। सगुणरूप में सृष्टि, प्रलय तथा रक्षा का कार्य करने हेतु वे ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु तथा काल के रूप में विभक्त हो नाना रूप धारण करते हैं। वे समस्त प्राणियों के आत्मा, चराचर-जगत् के स्वामी, पाँच मुख तथा दस भुजाओंवाले, पार्वती को अर्द्धांग में धारण करनेवाले, धर्मरूपधारी वृषभ पर सवारी करनेवाले, जगत्स्वरूप, जटा, गंगा, चन्द्रमा, मृगचर्म, पिनाक, त्रिशूल, सर्पाभूषण आदि को धारण करनेवाले, भक्तवत्सल, वरदाता, योगियों द्वारा ध्येय, सुरासुर द्वारा पूज्य तथा सर्वेश्वर हैं।

भगवान् शिव की उपासना से स्वर्ग, मोक्ष अथवा परमगति तथा इच्छित वरदान प्राप्त होता है तथा पाप क्षय होकर व्यक्ति को अच्छे जन्म की प्राप्ति होती है। भगवान् शिव भक्तवत्सल तथा सर्वदेवमय हैं अतः उनकी उपासना करनी चाहिये। पुनः उनका वाहन धर्म है अतः धर्म पर जिसका शासन है उसकी भक्ति अवश्य करनी चाहिये।

भगवान शिव की सगुणपूजा मुख्यतः लिंग की पूजा है। उनके लिंग की पूजा सभी देवगण करते हैं। राजा श्वेत ने लिंगपूजा करके मृत्यु को भी पराजित कर दिया था। लिंग की पूजा करने से सभी देवों की पूजा हो जाती है(क्योंकि लिंग में सभी देव प्रतिष्ठित होते हैं)। शिव के व्रतों में अष्टमी तथा चतुर्दशी प्रमुख हैं जिनमें शिवलिंग की उपासना करने से व्यक्ति को स्वर्ग तथा शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। रविवार को तथा हर चौराहों पर शिव का नाम लेने से व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है।

(यह लेख नाग पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा 1985 में प्रकाशित 'श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)

❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋ ❋

बृहद्धर्म पुराण में शिवतत्त्व

उपपुराणों में इस पुराण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। धर्म संबन्धी तथ्यों का विस्तृत विवेचन होने से इसे बृहद्धर्म कहा गया है। इसमें चारों वर्णों, आश्रमों, तीर्थों तथा देवी-देवताओं के पूजन तथा माहात्म्य संबन्धी अनेक बातों का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह पुराण पूर्व, मध्य तथा उत्तर-तीन खण्डों में विभक्त है। पूर्व और मध्यखण्ड के अध्यायों की गिनती एक ही क्रम से की ई है जबकि उत्तरखण्ड के अध्यायों की गिनती स्वतंत्ररूप से की ई है। पूर्व और मध्यखण्ड में कुल अध्यायों की संख्या 60 है जिनमें से पूर्वखण्ड के 30 अध्याय हैं। उत्तरखण्ड में कुल 14 अध्याय ही हैं। इस पुराण में यद्यपि अन्य देवों की अपेक्षा भगवान् विष्णु की चर्चापर ज्यादा बल दिया गया है तथापि इसमें अन्य देवों-देवियों का भी उचित स्थान है। इस पुराण के कई पाठान्तर मिलते हैं।[1]

भगवान् शिव का स्वरूप

लक्ष्मी की पूजा से जब शिव प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हो वर देते हैं तो वे उस समय उनकी स्तुति में उन्हें शान्तस्वरूप, तीनों कारणों के हेतु(अथवा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के हेतु), परमेश्वर, आत्मा की गति, शशिधर, अमल, त्रिनयन, देवाधिदेव, त्रिगुणमय, सुख के समुद्र, कल्याणकारी, पार्वतीपति, साकार, रवि तथा शशीनेत्रवाले, स्वेच्छा से सृजन, हरण एवं पालन करनेवाले, भूतनाथ, सर्वेश, नील एवं श्वेत मुखवाले, नीलकण्ठ, गुरु तथा दुःख हरनेवाले कहती हैं(बृहद्धर्म पुराण/पूर्वखण्ड/10/71-78)।

ॐनमः शिवाय शान्ताय कारणत्रयहेतवे।
सृजसि हरसि पासि स्वेच्छया त्वं कथन्तद्। (बृहद्ध. पुराण/पूर्वखण्ड/ 10/71, 76)

अर्थात्-तीनों कारणों(अर्थात् जगत् के उपादान, निमित्त आदि कारण) अथवा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के हेतू तथा ॐकारस्वरूप शान्त शिव को नमस्कार है। शिव के बारे में ऐसा कहा जाता है कि वे स्वेच्छा से जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं।

एक स्थलपर कहा गया है कि भगवान् शिव स्वयं अपनी इच्छा से अवतार लेकर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तथा पालनकर्त्ता विष्णु बनते हैं।

एवं ससर्ज वै ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता सनातनः।
विष्णुः पालयते सर्व्वमवतीर्य्य निजेच्छया।। (बृहद्ध. पुराण/मध्यखण्ड/ 32/45)

दधीचि शिवा को प्रकृति तथा शिव को परमपुरुष कहते हैं(बृहद्ध. पुराण/म. ख./ 33/40)। किसी प्रसंग में नीलकुन्तल(सती की सखी) ने शिव को विश्वेश(जगत् के पति), सनातन, इन्द्रादि

---

[1] प्रस्तुत निबंध 'बृहद्धर्म पुराण' की चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, की प्रति, जिसका सम्पादन महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने किया है, तथा 1974 में प्रकाशित है, पर आधारित है।

लोकपालों द्वारा पूज्य तथा अलक्ष्य लिंगवाला(अर्थात् जिनकी पहचान गुप्त है) कहा है(बृहद्ध. पुराण/म. ख./ 34/21, 23-24)। नन्दी ने शिव की स्तुति में उन्हें त्रिलोचन, तीनों गुणों को धारण करनेवाले, योगियों के वरण योग्य, शुभ-अशुभ से ऊपर, विधि एवं हरि का रूप धारण करनेवाले, प्रधान(प्रकृति) के स्वामी, सनातन, पुरातन एवं महेश्वर कहा है(बृहद्ध. पुराण/म. ख. /34/40-48)। सती ने शिव को देवदेव, महेशान, लोकों के स्वामी, मनोकामना को पूरा करनेवाले, सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तथा पालनकर्त्ता विष्णु, त्रिगुणयुक्त, अव्यक्त, तमस का आश्रय लेकर व्यक्त होकर समस्त स्थावर-जंगम का संहार करनेवाले, देवदेवेश, वर देनेवाले तथा ईश्वर आदि कहा है।(बृहद्ध. पुराण/ म. ख./36/14-15)

त्वं सृष्टिकारको ब्रह्मा त्वं विष्णुः पालने रतः।
त्वं वै त्रिगुणमव्यक्तो व्यक्तं धरसि तामसः।।
हरः संहर मे विश्वं सर्व्वं स्थावरजङ्गमम्। (बृहद्ध. पुराण/ म. ख./ 36/15-16)

अर्थात्-तुम(शिव) सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा तथा पालन में रत रहनेवाले विष्णु हो। तुम त्रिगुणयुक्त अव्यक्त हो तथा तमस को धारणकर व्यक्त हो विश्व के समस्त स्थावर-जंगम का संहार करते हो।

किसी संदर्भ में सती ने शिव को महादेव, शान्त, बन्धु, कृपा करनेवाला, अद्वेषी, सभी भूतों की आत्मा, कूटस्थ तथा जगदीश्वर कहा है।

स मे भर्त्ता महादेवः शान्तो बन्धुः कृपाकरः।
अद्वेषी सर्वभूतात्मा कूटस्थो जगदीश्वरः ।। (बृहद्ध. पुराण/म. ख./37/58)

दक्ष अपने यज्ञ के विध्वंस हो जाने पर शिव की गरिमा से परिचित हो उनकी स्तृति करते हैं। और वे अपनी स्तुति में उन्हें देवदेवेश, सुरासुरपूजित, विश्वेश, भगवान्, आदि कर्त्ता, विश्व के आदि, विश्व के रक्षक, सर्वभूतात्मा, परम गति, अनन्त, पुरातन, सनातन, परमात्मा, क्षमाशील, आशुतोष, करुणासागर, शान्त, प्रजापति, विश्वेश्वर, विश्वबन्धु, केवलानुभवानन्दस्वरूप, परमेश्वर, विश्वरूप, काल, कालकर्त्ता, जटाधारी, कूटस्थ, केवल, परमानन्दविग्रह, पूर्ण, गौरांग, सद्बुद्धिदाता, सात्त्विक, भस्मविभूषित, जीवरूप, वेदो द्वारा अगम, वेदकर्त्ता, विष्णु, ब्रह्मा, शास्त्रकर्त्ता तथा समस्त स्थावर-जंगम को अपने उदर में समेटे रखनेवाला आदि-आदि कहा है(बृहद्ध. पुराण/म. ख./39/1-28)। स्तुति के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

त्वमात्मा सर्व्वभूतानां त्वं गतिः परमा ततः।
त्वं भवो भगवानादिस्त्वमनन्तो भवापहः।।
हरः सनातनो देवः परमात्मा परेक्षितः।।
क्षमाशीलश्चाशुतोषः सन्तोषश्च प्रतोषकः।

करुणासागरः शान्तः कमनीयः प्रजापतिः।।
त्वं विष्णुस्त्वञ्च वै ब्रह्मा राजसस्तामसो भवान्।।

अर्थात् – तुम (शिव) सभी भूतों की आत्मा तथा उनकी परमगति (अर्थात् अन्तिम लक्ष्य) हो। तुम इस संसार के नाशक तथा अनादि – अनन्त भगवान् हो। तुम दुखः को हरनेवाले, सनातन देव, परमात्मा तथा सबका ध्यान रखनेवाले हो। तुम क्षमाशील, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले (आशुतोष) संतोष की मूर्ति तथा आनन्द प्रदान करनेवाले हो। तुम करुणासागर, शान्त, कमनीय तथा प्रजापति हो। तुम विष्णु, ब्रह्मा, रजस् एवं तमस् हो (बृहद्ध. पुराण / म. ख. / 39 / 4 – 6, 24)।

भगीरथ की तपस्या से भयभीत हो देवगण भगवान् शिव के पास जाकर स्तुति करते हैं। वे लोग अपनी स्तुति में शिव को देवदेव, महादेव, चन्द्रमौली, महेश्वर, त्रिलोचन, पंचवक्त्र, नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, क्षिति, जल आदि अष्टमूर्तिरूप, विष्णुरूप तथा पशुपति आदि कहते हैं। (बृहद्ध. पुराण / मध्य खण्ड / 49 / 27 – 37)

शिव के स्वरूप संबंधी उपरोक्त उद्धरणों से शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपोंपर प्रकाश पड़ता है। निर्गुणरूप में वे ओंकार, अव्यक्त, परमात्मा, वेदो द्वारा अगम्य तथा परमगति हैं। सगुणरूप में वे ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के स्रष्टा, विश्वरूप, स्थावर – जंगम सबके स्रष्टा, पंचमुखी, त्रिनेत्र, शशी, बाघाम्बर, मुण्डमाला, पिनाक तथा त्रिशूल धारण करनेवाले, आशुतोष, आनंद प्रदान करनेवाले, करुणासागर, सर्वेश, सनातन तथा आदिपुरुष जैसे अनेक विशेषणों तथा संज्ञाओं से युक्त हैं।

शिवोपासना

भगवान् शिव को पूजनीयों में श्रेष्ठतम (**नास्ति शम्भुसमः पूज्यो**, पूर्वखण्ड / 2 / 34), आवागमन से छुटकारा दिलानेवाला, इष्टसाधक (**भवहरमिष्टसाधकम्**, मध्यखण्ड / 38 / 53), आशुतोष (मध्यखण्ड / 38 / 77, 39 / 6 आदि), परमगति (मध्यखण्ड / 39 / 4), क्षमाशील, करुणासागर (मध्यखण्ड / 39 / 6), विश्वबन्धु (मध्यखण्ड / 39 / 7), तथा उद्धारकर्त्ता (मध्यखण्ड / 39 / 44) आदि कहा गया है । संक्षेप में उन्हें भोग – मोक्ष का दाता तथा आशुतोष कहा गया है। भगवान् शिव की उपरोक्त विशेषतायें ही उनकी पूजा के आकर्षण हैं।

भगवान् शिव सुर, असुर, मानव, यक्ष तथा किन्नर आदि सभी द्वारा पूजे जाते हैं (**स्मरन्ति वै सुरनर किन्नरादयः।** मध्यखण्ड / 38 / 53)। लक्ष्मीजी शिवपूजन के प्रभाव से विष्णु की प्रिया बनीं, भगीरथ ने गंगा को धरतीपर लाने में सफलता प्राप्त की तथा दक्ष ने गणेश्वर का पद पाया। राम ने रामेश्वर की स्थापना की जिसके पूजन से लोग मुक्तिलाभ उठाते हैं। भगवान् शिव इतने दयालु एवं आशुतोष हैं कि उन्होंने अपने आजन्मनिन्दक दक्ष को स्तुतिमात्र से मुक्ति प्रदान कर दिया। इसी कारण से प्रयत्नपूर्वक महेश्वर का भजन करना चाहिये। घोर संसार से व्यक्तियों के एकमात्र उद्धारक शिवजी ही हैं।

पश्याम्यार्त्तदयालुत्वं हरस्याप्याशुतोषताम् ।
आजन्मनिन्दको दक्षः सकृत् स्तुत्वा विमुक्तिभाक् ।।
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेनभज देवं महेश्वरम् ।
घोरसंसारतः पाता शिव एको महेश्वरः ।। (बृहद्ध. पु./म. ख./39/42-43)

एक स्थलपर कहा गया है कि जहाँ शम्भु की पूजा नहीं होती उस(धार्मिक) कर्म या कृत्य की पूर्णता नहीं मानी जाती(न यत्र पूज्यते शम्भुस्तत्कर्म न समाप्यते। मध्यखण्ड/39/28)। आगे कहा गया है कि "श्रुति का प्रमाण है कि भवदु:ख की शान्ति के लिये भगवान् शिव के नाम से भिन्न कोगयी दवा नहीं है।"

भवव्याधिशान्त्यै भवन्नामभिन्नं
न भैषज्यमास्ते श्रुतिस्तत्प्रमाणम् ।। (बृहद्ध. पु./ मध्यखण्ड/39/31)

शिवनाम की महिमा को पुनः बताते हुए कहा गया है कि "शिव" यह दो अक्षरवाला नाम अमंगलों का नाशक तथा इसका स्मरण पाप के ढेर को नष्ट करनेवाला है। जिसका नाम ही तीनों लोकों का उपकार करनेवाला है तो साक्षात् उसके भजन की उपकारिता का क्या कहना।

शिवेति द्व्यक्षरं नाम यस्यामङ्गलनाशकम्।।
केवल स्मरणेनैव पापराशीन्निवारयेत्।
यस्य वै नाम्न एतादृक् त्रैलोक्ये ह्युपकारिता।।
किं तस्य साक्षाद्भजतामुपकारित्वमुच्यते।। (बुहद्ध. पु./ म. ख./37/59-60)

भगवान् शिव के नामों जैसे शिव, शंकर, पंचानन, महारुद्र, त्रिलोचन, हर, गयीशान, पार्वतीनाथ, गंगेश, गंगाधर, सतीपति, मृड, भीम, शम्भो, भूतपति आदि का पाठ करते हुए या उन्हें सुनते हुए जो मनुष्य शरीर को छोड़ देता है वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

शिव शङ्कर पञ्चास्य महारुद्र त्रिलोचन।।
हरेशानेश देवीश नीलकण्ठाब्जलोचन।
पार्वतीनाथ गङ्गेश गङ्गाधर सतीपते।।
मृड भीम गुरो नाथ शम्भो भूतपते पर।
एवं शृण्वन् पठन्मर्त्यो मृतः किं नहि साधयेत।। (बृहद्ध पु./ म. ख./56/67-69)

यदि सभी देवों की पूजा करके शिव की पूजा न की जाय तो वह पूजा एवं यज्ञ व्यर्थ होता है। शंभु की पूजा से अन्य सभी देव संतुष्ट हो जाते हैं।

सर्व्वदेवांस्तु संपूज्य न पूज्येते शिवो यदि ।
तदा वृथासमा पूजा प्रमाणं तत्र ते मखः ।।
....।

शिवौ संपूजयेद् यस्तु तेन तस्य कृतार्थता ।। (बृहद्ध. पु./ म. ख./39/53-54)

शिवलिंगपूजा की विधि बताते हुए कहा गया है कि देवीसहित (अर्घा या वेदीसहित) लिंग का निर्माण करना चाहिये। सोने आदि धातुओं अथवा मिट्टी का लिंग बनाया जा सकता है। यह लिंग अँगूठे के बराबर हो तथा वेदी सोमसूत्र से युक्त हो। अँगूठे के प्रमाण से लिंग बड़ा हो सकता है, किंतु इससे छोटा नहीं होना चाहिये। लिंगनिर्माण के लिये मिट्टी लेने से पहले स्नान कर लेना चाहिये। लिंगनिर्माण के लिये गंगा की मिट्टी खोदने से कोई पाप नहीं लगता। लिंगनिर्माणकर विविध उपचारों से उसकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये। (बृहद्ध. पु./मध्य खण्ड/57/33-40)

भगवान् शिव को बिल्वपत्र तथा गंगाजल परम प्रीतिकर हैं अतः शिवपूजन में इनका प्रयोग अति लाभदायक सिद्ध होता है। गंगातटपर की जानेवाली शिवपूजा का फल अवर्णनीय है।

बिल्वपत्रञ्च शम्भोर्हि परमप्रीतिदायकम्।।
केवलं गाङ्गतोयं वा शिवप्रीतिकरं परम्।
गंगा तटे शम्भुपूजां यश्चिकीर्षति चेतसा।।
वक्तुं तस्य फलं विप्र सहस्रास्यो जड़ायते।
बिल्वपत्रं गाङ्गतोयं यः प्रयच्छति शम्भवे।।
तयोरन्यतरद्वापि किं न दत्तं शिवाय तत्। (बृहद्ध. पु./म. ख./57/41-44)

भगवान् शिव लक्ष्मी को वर देते समय कहते हैं कि स्वर्ण, मुक्ता, प्रवाल आदि के फूल तथा अनान्य पुष्प, श्रीफलपत्र (बिल्वपत्र) की करोड़वी कला के बराबर भी नहीं हैं। जिस प्रकार मुझे अपने तीनों नेत्र तथा गंगाजल प्रिय हैं उसी प्रकार तीन दलों से युक्त बिल्वपत्र भी प्रिय है।

स्वर्णमुक्ताप्रवालादिपुष्पाण्यन्यानि च ध्रुवं।
श्रीफलच्छदने शस्यकलां नार्हन्ति कोटिकां।
यथा मे त्रीणि नेत्राणि यथा गङ्गाजलं मम।
तथा प्रियतमो लक्ष्मि त्रिपत्रः श्रीफलच्छदः।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./10/68-69)

इस पुराण का पूरा एक अध्याय (पूर्वखण्ड अध्याय 11) बिल्व की महिमा से भरा पड़ा है। यहाँपर हम उसका सारांश दे रहे हैं। बिल्व के कोमल पत्तों में देवताओं तथा तीर्थो का वास होता है जो पाप को हरनेवाले होते हैं। बिल्वपत्र के बायें पत्ते को ब्रह्मा, दायें को विष्णु तथा ऊपरवाले को शिव समझना चाहिये। इसे पैर से लाँघना नहीं चाहिये। लाँघने या पैर से स्पर्श करनेपर श्री एवं आयु का नाश होता है। बिल्ववृक्ष भी शिव को सदैव प्रिय है। निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर बिल्ववृक्ष को साष्टांग प्रणाम करना चाहिये।

ॐ नमो बिल्वतरवे सदा शङ्कररूपिणे।
सफलानि ममाङ्गानि कुरुष्व शिवहर्षद।। (बृहद्ध. पु./पूर्व खण्ड/11/14)

शिवपूजकों का बिल्ववृक्ष का स्पर्श पापनाश करनेवाला होता है। '**ॐ द्रुमाय श्रीफलाय नमो**' इस दशाक्षर मन्त्र से बिल्व की पूजाकर इसका जप करना चाहिये। तथा निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर भक्तिभाव से पूजा के लिये बिल्वपत्र तोड़ना चाहिये।

पुण्यवृक्ष महाभाग मालूर श्रीफल प्रभो।
महेशपूजनार्थाय त्वत्पत्राणि चिनोम्यहं।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./11/20)

अखण्डित बिल्वपत्र से शिव की पूजा करें। छः महीने के बाद ही बिल्वपत्र पर्युषित (बासी) माना जाता है-

षण्मासानन्तरं बिल्वपत्रं पर्य्युषितं भवेत् (बृहद्ध. पु./पू. ख./11/23)

जहाँपर बिल्ववृक्ष का वन है वहीं वाराणसी पुरी है (बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/11/24)। पाँच बिल्ववृक्ष जहाँपर होते हैं वहाँ शिव विराजमान रहते हैं। सात वृक्ष जहाँपर होते हैं वहाँपर दुर्गासहित शिव विराजते हैं। एक बिल्ववृक्ष होनेपर भी शिव-पार्वती वहाँ विराजते हैं। जहाँपर दस बिल्ववृक्ष होते हैं, वहाँ शम्भु अपने गणों के साथ विराजमान रहते हैं। बिल्ववृक्षतल सिद्धपीठ है (बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/11/30)। आँगन में इस वृक्ष को नहीं लगाना चाहिये। चैत्रादि चार मासों में भगवान् शंकर सदैव भ्रमण करते रहते हैं। इन दिनों नवीन बिल्वपत्र अर्पण करनेवाले को भुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त होती है (बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/11/38)। इन चार मासों में बिल्वपत्र चढ़ाने से एक लाख गाय के दान का फल प्राप्त होता है।

चैत्रादिचतुरो मासान् शम्भवे परमात्मने।
दत्तं स्याद्बिल्वपत्रेकं लक्षधेनुसमं सुराः।। (बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/11/32)

दोपहर में बिल्ववृक्ष की परिक्रमा से सुमेरु की परिक्रमा का फल प्राप्त हो जाता है (बृहद्ध. पु/पूर्वखण्ड/11/33)।

इस पुराण में शिवपूजा तथा उसके नैवेद्य संबंधी कई प्रचलित बातों को बताने के बाद कहा गया है कि अन्त में अष्ट मूर्तियों की पूजाकर क्षमा याचनाकर विसर्जन कर देना चाहिये। शिवलिंग की पूजा करने से सभी देवताओं की पूजा हो जाती है -

शिवलिङ्गेऽपि सर्वेषां देवानां पूजनं भवेत्। (बृहद्ध. पु./मध्यख./57/59)

क्योंकि शिव-शिवा सर्वदेवमय हैं (**सर्व देवमयं शम्भुं**-बृहद्ध. पु./मध्यखण्ड/57/72)। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री तथा अन्त्यज सभी को शिवपूजन का अधिकार है। अगर ये सभी लोग शिवपूजा[1] से विमुख हो अन्य देवों की पूजा करते हैं तो उनकी पूजा उसी प्रकार से विफल हो जाती है जिस प्रकार बिना मन्त्र के औषधि।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रः स्त्री चान्त्यजोऽपि च।

---

[1] यहाँ शिवपूजा का तात्पर्य परात्पर ब्रह्मरूप शिव की पूजा से है।

पराङ्मुखः शिवाच्चर्यायां योऽर्च्चयेद्देवतागणम्।।
विफलं तस्य तत्सर्वं यथौषधममन्त्रितम्। (बृहद्ध. पु./म. ख./57/62-63)

इस पुराण में शिवपूजन को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है इसमें यह कहा गया है कि बिना शिवपूजन के अन्नजलग्रहण करने की अपेक्षा मरजाना ठीक है। इतना ही नहीं बल्कि यह भी कहा गया है कि बिना शिवपूजन के अन्नजल को ग्रहण करनेवाला मनुष्यरूप में शूकर एवं कुत्ता है। उसका मुख भी नहीं देखना चाहिये।

वरं प्राणपरित्यागः शिरसो वापि कर्त्तनम्।।
न त्वसम्पूज्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम्।
शिवं नाभ्यच्चर्य यस्यास्ति रुचिर्भोजनकर्म्मणि।।
स एव शूकरः श्वा च मनुष्यरूपतां गतः।
.... मुखं तस्य न दृश्यते।।
(बृहद्ध. पु./म. ख./57/60-61, 66-67, 63 या 64)

शिव का नित्यपूजन इतना अनिवार्य बताया गया है कि सूतक तथा मृतक के अशौच की अवस्था में भी उसे नहीं छोड़ना चाहिये। केवल गुरु की मृत्युपर दशाहपर्यन्त पूजा को रोक देना चाहिये। अन्यथा अन्य सभी परिस्थितियों में शिव-पूजा जारी रखनी चाहिये।

सूतके मृतकेऽशौचे न त्यजेच्छिवपूजनम्।।
वर्जयित्वा दशाहन्तु महागुरुनिपातने। (बृहद्ध. पु./मध्य ख./57/67-68)

शिवपूजा के अन्त में प्रदक्षिणा और नमस्कार करना अवश्य याद रक्खें, परन्तु प्रदक्षिणा करते समय सोमसूत्र (अर्थात् लिंगपर गिराये जल को बाहर निकालनेवाली नाली) का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।[1]

अर्द्धचन्द्राकृतिः शम्भुप्रदक्षिणे नतिः स्मृता।
यत उत्तरतो गत्वा सोमसूत्रं न लङ्घयेत्।। (बृहद्ध. पु./ म. ख./57/73)

भगवान् शिव को भक्ति से प्राप्य बताया गया है (**देवदेव महेशान भक्तिलभ्य सनातन।** बृहद्ध. पु./म. ख./33/23)। लिंगपूजा भक्ति का एक प्रकार है। लिंगपूजा के अलावा शिव को प्रसन्न करने का उपाय पंचाक्षर मन्त्र जपना है। सती भी इसी मन्त्र का जप करती थीं (बृहद्ध पु./म. ख./33/23)। लक्ष्मीजी ने भी नारदजी से पंचाक्षर मन्त्र की दीक्षा लेकर शिव की उपासनाकर उन्हें प्रसन्न किया था। इस बात का संकेत हमें इस पुराण (बृहद्ध. पु./पू. ख./10/61) में मिलता है।

शिवरात्रिव्रत के प्रसंग में बताया गया है कि रात्रि के चारों प्रहर में शिव की पूजा करनी

---

[1] किन अवस्थाओं में इसका उल्लंघन हो सकता है-इसकी जानकारी के लिये इसी पुस्तक में शिवपूजा-संबंधी लेख पढ़ें।

चाहिये। शिव की प्रसन्नता के लिये ही इस व्रत को करना चाहिये। उस दिन उपवास रखकर रात्रि में जागरण करनेवाला व्यक्ति मानो अपने सभी धार्मिक कृत्यों का सम्पादन कर चुका है। इसके द्वारा व्यक्ति पापरहित हो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है(बृहद्ध पु./पू. ख./15/53-56)।

रामेश्वर, काशी एवं गंगातीर्थ की महिमा में बताया गया है कि इनके सेवन से पाप से छूटकर व्यक्ति कर्मों के अनुसार यातना भोगकर अन्त में मुक्त हो जाता है(बृहद्ध पु./पू. ख./16/7-8 इत्यादि)। गंगा के सन्दर्भ में बताया गया है कि सती ने अपने को दो रूपों में बाँटकर जन्म ग्रहण किया। उनका एक रूप गंगा तथा दूसरा रूप उमा का है। गंगा के रूप में वे शिव की जटाओं में तथा उमा के रूप में वे शिव के बामार्द्ध में विराजती हैं।

सती ते द्विविधा भूता गङ्गोमा च हिमालये।
एका धृता त्वया शीर्षे वामाङ्गेऽमूं धरिष्यसि।। (बृहद्ध. पु./म. ख./53/23)

इसी कारण से कहा जाता है कि जहाँ-जहाँ गंगा हैं वहाँ-वहाँ शिव भी विराजमान हैं।

यत्र यत्र ययौ गङ्गा तत्र तत्र महेश्वरः।। (बृहद्ध. पु./म. ख./52/6)

ऐसा लगता है कि शिव की पत्नी तथा शिव के सिरपर विराजमान होने के कारण ही गंगा को पवित्र माना गया है। क्योंकि जहाँ गंगा होगी उसे पृथ्वी का भाग न मानकर शिव का शिर माना जाना चाहिये।

तस्माद्गङ्गाश्रया देशा नैव पृथ्वी कदाचन।
विश्वात्मनो महेशस्य शिर एव हि ते मताः।। (बृहद्ध. पु./म. ख./54/16)

कहा गया है कि दक्षिणवाहिनी गंगा से सौ गुना पूर्ववाहिनी, उससे सौ गुना पश्चिमवाहिनी तथा उससे हजार गुना उत्तरवाहिनी गंगा का फल होता है।

दक्षिणायाः शतगुणा गङ्गा तु पूर्व्ववाहिनी।।
ततः शतगुणा प्रोक्ता गङ्गा पश्चिमवाहिनी।
तत्सहस्रगुणा प्रोक्ता गङ्गाचोत्तरवाहिनी।। (बृहद्ध. पु./म. ख./54/18-19)

गंगातीरपर मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये(**त्यक्तुं मूत्रपुरीषादि गंगातीरं विवर्जयेत्।** बृहद्ध. पु./म. ख./54/57)। गंगाजल में तीर्थों का आवाहन करना आवश्यक नहीं है(**आवाहनञ्च तीर्थानां नापेक्ष्यं जाह्नवीजले।** बृहद्ध. पु./म. ख./55/29)। गंगातीरपर दूसरों की निन्दा करनेवालेपर विष्णुजी क्रुद्ध होते हैं(बृहद्ध. पु./म. ख./55/39)। स्वयं भगवान् शंकर गंगातटपर आकर मरणासन्न व्यक्ति के कान में विमल ज्ञान का उपदेश करते हैं जिससे उसको परम दर्शन(आत्मज्ञान) वा ज्ञान प्राप्त होता है। अतः गंगा के पास मरनेपर अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

शिवः स्वयं समागत्य गङ्गायां हि मुमूर्षतः।
कर्णे जपति विमलं ज्ञानं परमदर्शनम्।।

अत एव न सन्देहो गंड्गामरणमोक्षणे। (बृहद्ध. पु./म. ख./56/76-77)

भगवान् शिव के सर्वदेवमय होने के कारण लिंगपूजन से सभी देवों की पूजा हो जाती है (**शिवलिङ्गेऽपि सर्वेषां देवानां पूजनं भवेत्।** बृहद्ध. पु./म. ख./57/59 तथा 31/38)[1] तथा उसमें किसी भी देवता का आवाहन एवं विसर्जन नहीं किया जाता। इसी प्रकार गंगा प्रवाह तथा शालिग्राम शिला में भी देवताओं के पूजन में आवाहन एवं विसर्जन नहीं किया जाता।

गङ्गाप्रवाहे शालग्रामशिलायाञ्च सुरार्च्चने।।
द्विजपुङ्गव नापेक्ष्ये आवाहनविसर्ज्जने। (बृहद्ध. पु./ म. ख./57/4-5)

जो लोग क्रूरकर्मा, पापी तथा दुष्ट हैं वे गंगासेवन करने के कारण पहले गंगा पिशाच होते हैं तथा यातना भोगने के बाद श्रीमान् के यहाँ जन्म लेकर पुनः गंगा का सेवनकर मुक्त होते हैं (बृहद्ध. पु./म. ख./55/63-64 आदि)। गंगा सभी को तारनेवाली होने के कारण श्रेष्ठ तीर्थ मानी जाती हैं (**नास्ति गंड्गासमं तीर्थं।** बृहद्ध. पु./पूर्वखण्ड/2/34)।

काशी की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि यहाँ गंगा उत्तरवाहिनी है तथा यह शिव के त्रिशूल पर टिकी हुई है। इसी कारण से इस नगरी का विशेष माहात्म्य है। मायापुरी को हरिहरात्मक कहा गया है क्योंकि वहाँपर ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों शिवलिंग का सेवन करते हैं (बृहद्ध. पु./म. ख./54/10-11)। सती के मृतशरीर के अंग जिस-जिस जगह गिरे वे देवी के सिद्ध पीठ कहलाये। उन-उन पीठों में भगवान् शिव भी पाषाणलिंगरूप में अवस्थित हैं (अतः वे पीठ भी शैवतीर्थ ही माने गये हैं)।

यत्र यत्र सती-देह-भागास्तत्र स्वयं मुने।
पाषाण-लिङ्ग-रूपेण ह्यधिष्ठाय व्यसेवत। (बृहद्ध. पु./म. ख./40/53-54)

इस पुराण में भागवत की परिभाषा आम मान्यताओं से हटकर दी ई है। आम मन्यता तो यह है कि जो विष्णु या उनके किसी अवतार के उपासक हैं, उन्हें भागवत कहा जाता है। भगवान् विष्णु अदिति को भागवत के लक्षण बताते हुए कहते हैं कि "जो रुद्राक्षमाला धारणकर रुद्र या विष्णु का पूजक है उसे भागवत जानना चाहिये। और ऐसा व्यक्ति मुझे नित्य ही धारण करता है। जो शिव, शंकर, रुद्र, नीलकण्ठ, त्रिलोचन आदि शब्दों का उच्चारण करता है अथवा वृषकेतु, भव, ईशान, श्रीकण्ठ, पार्वतीपति इत्यादि का उच्चारण करता है वह भी मुझे नित्य धारण करता है (अर्थात् वह भी भागवत है)।"[2]

---

[1] योनिः साक्षात् भगवती लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।
तयोस्तु पूजनेन स्यात् सर्वदेवतपूजनम्।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./31/38)

[2] भागवत की इस प्रकार की परिभाषा नारद महापुराण (पूर्वभाग 5/68-69, 72-73 आदि) तथा बृहन्नारदीय (उप) पुराण (5/53-55, 57-58) में भी दी ई है। विशेष जानकारी के लिये इन दोनों से संबंधित अध्याय देखें।

यश्च रुद्राक्षमालावान् रुद्रविष्णुप्रपूजकः।
स वै भागवतो ज्ञेयः स मां धरति नित्यशः।।
शिव शङ्कर रुद्रेश नीलकण्ठ त्रिलोचन।
इतीरयति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः।।
वृषकेतो भवेशान श्रीकण्ठ पार्व्वतीपते।
इतीरयति यो नित्यं स मां धरति नित्यशः।। (बृहद्ध. पु./म. ख./45/63, 70-71)

भगवान् शिव एंव विष्णु

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-ये तीनों ही प्रमुख देवता तात्त्विक दृष्टि से अभिन्न हैं। एक ही तत्त्व, ब्रह्मरूप सदाशिव, निज इच्छा से अपने को इन रूपों में प्रकट हो नानाविध सृष्टिव्यापार का संचालन करता है। वह ब्रह्मा होकर सृष्टि करता तथा विष्णु होकर पालन करता है।

एवं ससर्ज वै ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता सनातनः।
विष्णुः पालयते सर्व्वमवतीर्य्य निजेच्छया।। (बृहद्ध. पु./मध्यख./32/45)

भगवान् विष्णु की वन्दना करते हुए एक स्थलपर देवताओं ने उन्हें शिव एवं शिवरूप (कल्याणकारी) कहा है (**शिवाय शिवरूपाय ....च ते नमः।** बृहद्ध. पु./म. ख./40/68)। एक अन्य स्थलपर देवी विष्णु भगवान् के प्रति कह रही हैं कि शिव, ब्रह्मा तथा तुम एक दूसरे से भिन्न नहीं हो। ....आप सबकी अभिन्नता में भेद देखनेवाला घोर नरक को जाता है।

शिवो ब्रह्मा तथा त्वञ्च न भिन्ना वै कदाचन।

....

अभिन्नानाञ्च भेदार्थी नारकी परमो मतः। (बृहद्ध. पु./मध्यख./41/96-97)

भगवान् शिव तथा अन्य सभी प्रमुख देव मूलतः एक होते हुए भी गुण एवं कार्यों की भिन्नता से लोक में अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं। इन अलग-अलग रूपवाले (संसाररूपी रंगमंच के) अभिनेता देव जबतक लोककल्याण के लिये अपनी-अपनी भूमिका निभाते रहते हैं तबतक उनके दृश्य आपसी व्यवहार समय एवं आवश्यकता के अनुसार बदलते रहते हैं। कभी उन्हें एक दूसरे से लड़ना पड़ता है तो कभी एक दूसरे से प्रेम का व्यवहार भी करना पड़ता है। परन्तु उनका लड़ना या प्रेम करना या एक दूसरे की उपासना करना महज एक नाटक होता है जो लोककल्याण या लोकआदर्श की स्थापना के वास्ते होता है। उनका इस प्रकार का व्यवहार नाटक इसलिये होता है कि नाटक के पात्र तीनों देव एक ही तत्त्व की अभिव्यक्तियाँ हैं और वे तीनों इस बात को जानते भी हैं फिर भी वे अपना व्यवहार इस प्रकार प्रकट करते हैं मानो वे अलग-अलग हस्तियाँ हों।

उनके इस प्रकार व्यवहार करने के बावजूद भी एक उच्चतर धरातलपर इनमें न कोई मतभेद होता है और न एक दूसरे से प्रतिद्वन्दिता, अपितु आपस में प्रेमभाव होता है। यही कारण है कि विभिन्न

पुराणों में यह कहा जाता है कि भगवान् शिव को विष्णु तथा विष्णु को शिवजी अत्यन्त प्रिय हैं। इस पुराण में भी भगवान् शिव एवं विष्णु के आपसी प्रेम एवं तात्त्विक एकता को प्रदर्शित करनेवाली एक रोचक कथा का वर्णन है। यहाँपर हम उसे संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे। यह कथा पूर्वखण्ड के अध्याय 9 और 10 में आयी है।

एक बार विष्णुजी, स्वप्न में देखते हैं कि करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्तिवाले, त्रिशूल एवं डमरूधारी, स्वर्णभूषणों से भूषित, सुरेन्द्रवन्दित, अणिमादिसिद्धसेवित त्रिलोचन भगवान् शिव आनंदातिरेक से उन्मत्त होकर उनके सामने नाच रहे हैं। उन्हें देखकर भगवान् विष्णु हर्ष से गद्गद् हो शय्यापर उठकर बैठ गये और कुछ देर तक ध्यानस्थ बैठे रहे। उन्हें इस प्रकार बैठे देखकर श्रीलक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि भगवन्! आपके इस प्रकार उठ बैठने का क्या कारण है? भगवान् ने कुछ देरतक उनके इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया और आनंद में डूबे हुए चुपचाप बैठे रहे। अन्त में वे इस प्रकार बोले– हे देवि! मैंने अभी स्वप्न में भगवान् शिव का दर्शन किया है। उनकी छवि ऐसी अपूर्व आनंदमय एवं मनोहर थी कि देखते ही बनती थी। मालूम पड़ता है कि शंकरजी ने मुझे याद किया है। अहोभाग्य! चलो कैलास में चलकर हमलोग उनका दर्शन करें।

दोनों कैलास की ओर मुश्किल से आधी दूर गये होंगे कि देखते हैं भगवान् शंकर स्वयं गिरिजा के साथ उनकी ओर चले आ रहे हैं। अब भगवान् विष्णु के आनन्द का क्या ठिकाना? पास आते ही दोनों परस्पर बड़े प्रेम से मिले। मानो प्रेम और आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा। एक दूसरे को देखकर दोनों के नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे और शरीर पुलकायमान हो गया। दोनों ही एक दूसरे से लिपटे हुए कुछ देर मूकवत् खड़े रहे। प्रश्नोत्तर होनेपर मालूम हुआ कि शंकरजी को भी रात्रि में इसी प्रकार का स्वप्न हुआ कि मानो विष्णु भगवान् को वे उसी रूप में देख रहे हैं जिस रूप में वे अब उनके सामने खड़े हैं। दोनों के स्वप्न का वृत्तान्त अवगत होनेपर दोनों ही लगे एक दूसरे से अपने यहाँ लिवा ले जाने का आग्रह करने। दोनों के आग्रह में इतना अलौकिक प्रेम था कि यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कहाँ चला जाय?

इतने में नारदजी कहीं से आ निकले। बस फिर क्या था? लगे दोनों ही उनसे निर्णय कराने कि कहाँ चला जाय? बेचारे नारदजी तो स्वयं परेशान थे। उस अलौकिक मिलन को देखकर वे स्वयं अपनी सुध–बुध भूल गये और मस्त होकर लगे दोनों का गुणगान करने। अब निर्णय कौन करे? अन्त में यह तै हुआ कि भगवती उमा जो कह दें वही ठीक है। भगवती उमा पहले तो कुछ देर चुप रहीं। अन्त में वे दोनों को लक्ष्य करके बोलीं –

युवयोर्यादृशी प्रीतिर्दृश्यते ह्यनुपाधिका।
मन्ये तया प्रमाणेन न भिन्नवसती युवाम्।।
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।

मन्ये तया प्रमाणेन आत्मिकोऽ न्यस्तनुर्मिथः।।
या प्रीतिर्दर्शिता देवौ युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन भार्ये आवां पृथङ् न वाम्।।
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन द्वेष एकस्य स द्वयोः।।
यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन अपूजैकस्य च्च द्वयोः।।

{बृहद्धर्म पु./पूर्वा. 9/श्लोक 41 तथा उससे आगे(जो अन्य प्रतियों में है तथा जिसे पाद टिप्पणी में दिया गया है।)}

भावार्थ है-हे नाथ! हे नारायण! आपलोगों के निश्चल, अनन्य एवं अलौकिक प्रेम को देखकर तो यही समझ में आता है कि आपके निवासस्थान अलग-अलग नहीं हैं, जो कैलास है वही बैकुण्ठ है और जो बैकुण्ठ है वही कैलास है; केवल नाम में ही भेद है। यही नहीं, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी आत्मा भी एक ही है, केवल शरीर देखने में दो हैं। और तो और, मुझे तो अब यह भी स्पष्ट दीखने लगा कि आपकी भार्यायें भी एक ही हैं, दो नहीं । जो मैं हूँ वही श्रीलक्ष्मी हैं और जो लक्ष्मी हैं वही मैं हूँ। केवल इतना ही नहीं, मेरी तो अब यह दृढ़ धारणा हो ई है कि आप लोगों में से एक के प्रति जो द्वेष करता है वह मानो दूसरे के प्रति ही करता है, एक की जो पूजा करता है वह स्वाभाविक ही दूसरे की भी करता है और जो एक को अपूज्य मानता है वह दूसरे की भी पूजा नहीं करता।

उमा देवी आगे कहती हैं कि मैं तो यह समझती हूँ कि आप दोनों में जो भेद मानता है उसका चिरकालतक घोर पतन होता है। मैं देखती हूँ कि आप मुझे इस प्रसंग में अपना मध्यस्थ बनाकर मानो मेरी प्रवंचना कर रहे हैं, मुझे चक्कर में डाल रहे हैं, मुझे भुलावे में डाल रहे हैं(क्योंकि किसी भी तरफ का निर्णय लेने का अर्थ होगा इन दोनों महानुभावों में अन्तर करना)। अतः अब मेरी यह प्रार्थना है कि आपलोग दोनों ही अपने-अपने लोक को पधारिये। श्रीविष्णु यह समझें कि हम शिवरूप से बैकुण्ठ जा रहे हैं और महेश्वर यह मानें कि हम विष्णुरूप से कैलास जा रहे हैं।

इस उत्तर को सुनकर दोनों परम प्रसन्न हुए और भगवती उमा की प्रशंसा करते हुए दोनों प्रणामालिंगन के बाद हर्षित हो अपने-अपने लोक को चले गये।

(बृहद्ध. पु. अध्याय 9)

लौटकर जब श्रीविष्णु बैकुण्ठ पहुँचे तो लक्ष्मीजी उनसे पूछने लगीं कि-प्रभो! सबसे अधिक प्रिय आपको कौन हैं? इसपर भगवान् विष्णु बोले-

न मे प्रियतमाः सन्ति शिव एकः प्रियो मम।

अहेतुकः प्रियोऽसौ मे स्वकायः प्राणिनामिव।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./10/6)

अर्थात्–प्रिये! मेरे प्रियतम केवल श्रीशंकर हैं। देहधारियों को अपने देह की भाँति वे मुझे अकारण ही प्रिय हैं।

एक बार मैं और शंकरजी दोनों ही पृथ्वी पर घूमने निकले। मैं अपने प्रियतम की खोज में इस आशय से निकला कि मेरी ही तरह जो अपने प्रियतम की खोज में देश–देशान्तरों में भटक रहा होगा, वही मुझे अकारण प्रिय होगा। थोड़ी देर के बाद मेरी श्रीशंकरजी से भेंट हो गयी। ज्योंही हम लोगों की चार आँखें हुईं कि हम लोग पूर्वजन्मार्जित विद्या की भाँति एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो गये। वास्तव में मैं ही जनार्दन हूँ और मैं ही महादेव हूँ। अलग–अलग दो घड़ों में रक्खे हुए जल की भाँति मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है। शंकरजी के अतिरिक्त शिव की पूजा–अर्चना करनेवाला शिवभक्त भी मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसके विपरीत जो शिव की पूजा नहीं करते वे मुझे कदापि प्रिय नहीं हो सकते।

स एवाहं महादेवः स एवाहं जनार्दनः।
उभयोरन्तरं नास्ति घटस्थजलयोरिव।।
शिवादन्यःप्रियो मेऽस्ति भक्तो यः शिवपूजकः।
शिवस्यापूजको लक्ष्मि न कदापि प्रियो मम।। (बृहद्ध. पु./पूर्व ख./10/16-17)

विष्णुजी के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मीजी बड़ी दुःखी हुईं तथा अपने को शिवपूजक न मानकर आत्मग्लानि से भर गयीं। तब भगवान् ने उनको सान्त्वना देते हुए कहा कि मैंने तुम्हें शिवपूजा में प्रवृत्त करने के लिये ही ये सब बातें कही हैं। अब आज से तुम प्रतिदिन विधिपूर्वक शिव की पूजा प्रारंभ कर दो। ऐसा करने से तुम मुझे शंकर के समान ही प्रिय हो जाओगी।

तदनन्तर लक्ष्मीजी ने नारदजी से दीक्षा ग्रहणकर शिव–पूजा प्रारम्भ कर दी। वे संकल्पपूर्वक फूलों में सर्वश्रेष्ठ एक हजार कमलों से नित्य सुवर्णलिंग की त्रिकाल पूजा करने लगीं। इस प्रकार पूजा करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार अकस्मात पूजा के समय दो फूल घट गये, जिसके कारण लक्ष्मी को बहुत चिन्ता हुई। पूजा के समय उठकर अन्य कमल लाया भी नहीं जा सकता क्योंकि उठ जाने से पूजा खण्डित हो जाती है। कमल के अभाव में संकल्प भी पूरा नहीं हो सकता। इसी उधेड़–बुन में उनके मन में एक बात याद आयी, जो विष्णुजी ने कभी लक्ष्मी के प्रति कहा था। विष्णु की मान्यता से भिन्न शिव की मान्यता नहीं हो सकती क्योंकि वे दोनों अभिन्न हैं। उसे यादकर लक्ष्मी ने अपने दोनों पयोधर कमलों की जगह शिव को समर्पित करने का निश्चय कर लिया तथा अपने बामस्थ पयोधर को काटकर शिव को अर्पित कर दिया। जैसे ही उन्होंने दूसरा काटना चाहा भगवान् शिव प्रकट हो गये और उनके छिन्न अंग को पुनः यथावत् बनाकर उनपर प्रसन्न हो वरदान माँगने को कहा। उत्तर में लक्ष्मी ने केवल भक्ति का वर माँगा। परन्तु शिवजी ने कहा कि आप का छिन्न

अंग लोक में श्रीफल के रूप में पैदा होगा और यह वृक्ष तथा इसके फल तथा पत्ते मुझे सर्वाधिक प्रिय होंगे। इस प्रकार जबतक सूर्य और चाँद रहेंगे तबतक तुम्हारी कीर्ति इस वृक्ष के माध्यम से बनी रहेगी। यह वृक्ष तुम्हारी भक्ति का मूर्तिमान स्वरूप होगा। इसके त्रिदलयुक्त पत्ते हमें गंगाजल के सामन ही प्रिय होंगे (बृहद्ध. पु./पू. ख./10/65-69)। इस प्रकार लक्ष्मी शिव की प्रसन्नता को प्राप्तकर विष्णुजी की अति प्रिया बन्द गयीं।

उपरोक्त कथा से अन्य कई बातों के अलावा निम्न बातें भी स्पष्ट होती हैं। प्रथम तो यह कि न केवल तात्त्विक या मूलरूप से शिवजी एवं विष्णुजी में अभिन्नता है अपितु व्यवहार में भी उनमें इतना निष्काम, अहेतुकी प्रगाढ़ प्रेम एवं आपसी समझ है कि वे अपने को एक दूसरे से भिन्न समझते ही नहीं। दूसरी बात यह है कि इन दोनों के प्रेम को आदर्श माना जा सकता है। इनका प्रगाढ़ प्रेम इतना है कि दोनों एक दूसरे के बारे में स्वप्न देखते रहते हैं, एक दूसरे का निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। इसीलिये शास्त्रों में सर्वत्र यही कहा गया है कि विष्णु के हृदय में शिव का तथा शिव के हृदय में विष्णु का निवास है। भाव यह है कि निरन्तर वे दोनों एक दूसरे का चिन्तन एवं ध्यान करते रहते हैं। यह सब एक दूसरे के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की वजह से होता है। इन दोनों के परस्पर चिन्तन एवं ध्यान को लेखकों ने अलंकारिक रूप दे दिया है और कहते हैं कि सत्त्वगुणी विष्णु श्वेतवर्ण के थे एवं तमस प्रकृतिवाले रुद्रदेव नील अथवा श्यामवर्ण के, परन्तु एक दूसरे का ध्यान करने के कारण विष्णु की वृत्तियाँ शिवाकार और शिव की वृत्तियाँ वैष्णवाकार हो गयीं। अर्थात् विष्णु अपने को शिव एवं शिव अपने को विष्णुरूप समझने लगे। इस कारण से उनके रूप भी बदल गये। अर्थात् विष्णु नीले और शिव गौर वर्णवाले हो गये।

तीसरी बात यह है कि जो इन दोनों देवों में किसी एक की भी पूजा करता है वह दूसरे की भी पूजा करता है और जो एक की निन्दा करता है वह दूसरे की भी निन्दा करता है। शिव की निन्दा करनेवाले का कभी कल्याण नहीं हो सकता (**शिवशून्यः शिवद्वेषी निष्कल्याणः समार्थकाः**। बृहद्ध. पु./मध्य ख./37/62)। इसी प्रकार इन दोनों देवों में भेद या अन्तर करनेवाले का चिरकालतक घोर पतन होता है।

यादृशी दर्शिता प्रीतिर्युवाभ्यां नाथ केशव।
मन्ये तया प्रमाणेन भेदकृद्वां चिरं पतेत्।। (बृहद्ध. पु./पू. ख./9/42)

चौथी बात यह है कि शिवपूजकपर विष्णु भगवान् बहुत प्रसन्न रहते हैं जबकि शिवपूजारहित व्यक्तियों से वे नफरत करते हैं।

अगली बात यह कि बिल्ववृक्ष लक्ष्मी की शिव-भक्ति का साकार विग्रह है और इस कारण से यह वृक्ष शिव की आज्ञा से शिव के समान ही पूज्य है।

उपसंहार

इस प्रमुख उपपुराण का नामकरण धर्म संबंधी तथ्यों के विवेचन करने के कारण ही किया गया है। इसमें शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपोंपर प्रकाश डाला गया है। निर्गुणरूप में उन्हें ओंकार, अव्यक्त, परमात्मा, वेदों द्वारा अगम्य तथा परमगति आदि कहा गया है। सगुणरूप में उन्हें ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रादि सभी देवों के स्रष्टा, विश्वरूप, स्थावर-जंगम-सबके स्रष्टा, पंचमुखी, त्रिनेत्र, शशी, बाघाम्बर, मुण्डमाला, पिनाक तथा त्रिशूल आदि को धारण करनेवाला, आशुतोष, आनंद प्रदान करनेवाला, करुणासागर, मोक्ष प्रदान करनेवाला, सर्वेश्वर, सनातन, आदि पुरुष तथा पूजनीयों में श्रेष्ठ आदि-आदि कहा गया है।

चूँकि भगवान् शिव आवागमन से मुक्त करनेवाले, इष्टसाधक, परमगति तथा आशुतोष हैं, इसलिये उनकी उपासना करनी चाहिये। उनकी उपासना देव, दानव, मानव, यक्ष, किन्नर आदि सभी वर्ग के लोग करते रहे हैं। लक्ष्मी, भगीरथ, दक्ष तथा राम आदि जैसे लोगों ने उनकी उपासना से लाभ उठाया है। जहाँ शिव की पूजा नहीं होती उस धार्मिक कृत्य को पूर्ण नहीं माना जाता, इसलिये उसका फल भी नहीं मिलता। संसार-सागर से छूटने के लिये शिवनाम के सिवा और कोई दवा नहीं है। उनके नामजप से पापों के ढेर नष्ट हो जाते हैं। यदि सभी देवों की पूजा करके शिव की पूजा न की जाय तो वह पूजा एवं यज्ञ व्यर्थ हो जाता है।

नामजप के अलावा शिवपूजा का दूसरा प्रमुख रूप लिंगपूजा है। धातु, पाषाण अथवा मिट्टी का लिंग वेदी सहित बनाकर पूजनोपचार के साथ पूजना चाहिये। भगवान् शिव की पूजा में गंगाजल एवं बिल्वपत्र की विशेष महिमा है। भगवान् शिव को ये दोनों ही वस्तुएँ बहुत प्रिय हैं। बिल्व की इतनी महिमा बतायी ई है कि इसके वृक्ष को शिव का स्वरूप ही मानना चाहिये तथा उसकी पूजा करनी चाहिये। इसके त्रिदलयुक्त पत्ते में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव तीनों का वास माना गया है। यह छः महीनेतक बासी नहीं माना जाता। अर्थात् इसे एक बार तोड़कर छः मासतक चढ़ाने के लिये प्रयोग किया जा सकता है। बिल्ववृक्ष को आंगन में नहीं लगाना चाहिये। बिल्ववृक्ष का जहाँ वन है उसे वाराणसी जैसा पवित्र समझना चाहिये क्योंकि वहाँ शिवजी अपने गणों सहित विराजमान रहते हैं। शिवलिंग की पूजा से सभी देवों की पूजा सम्पन्न हो जाती है।

शिवरात्रि व्रत में उपवास, रात्रि के चारों प्रहर में शिवपूजा तथा जागरण से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। रामेश्वर, काशी तथा गंगा आदि तीर्थों की महिमा बताते हुए कहा गया है कि इनके सेवन से पापमुक्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। गंगा की पवित्रता इस कारण से है कि ये शिव की पत्नी हैं तथा उनके शिरपर सदैव विराजमान रहती हैं। जहाँ-जहाँ गंगा होती, वहाँ-वहाँ शिव भी होते हैं। गंगा के निकट मरणासन्न व्यक्ति के कान में स्वयं भगवान् शंकर विमल ज्ञान का उपदेश करते हैं। अतः गंगा के समीप शरीर छोड़नेवाले को मुक्ति अवश्य मिलती है। परन्तु अगर व्यक्ति पापी है तो

पहले वह गंगापिशाच की नारकीय यातना को भोगने के बाद श्रीमानों के यहाँ जन्म लेकर तथा गंगा का पुन: सेवनकर मुक्त हो जाता है।

उत्तर वाहिनी गंगा का सर्वाधिक महत्त्व है इसीलिये काशी का भी महत्त्व अधिक है क्योंकि वहाँ पर गंगा उत्तर वाहिनी हैं। गंगाजल तथा शालिग्राम शिला में शिवलिंग की भाँति ही देवताओं की पूजा करते समय उनका आवाहन तथा विसर्जन नहीं किया जाता क्योंकि इन तीनों में सभी देवता सदा ही विराजमान होते हैं। चूँकि भगवान् शिव (का लिंग) सर्वदेवमय हैं इसलिये इनकी पूजा हो जानेपर सभी देव सन्तुष्ट हो जाते, अर्थात् पूजित हो जाते हैं।

भगवान् शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा ये तीनों ही देवता मूलरूप से अभिन्न हैं। शिवजी अपनी स्वेच्छा से इन रूपों में प्रकट हो सृष्टिव्यापार का संचालन करते हैं। ये तीनों देव मूलरूप से एक होते हुए भी व्यावहारिक स्तरपर कार्यों की भिन्नता से लोक में अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं ठीक उसी प्रकार से जिस प्रकार एक ही अभिनेता अलग-अलग नाटकों में अपनी अलग-अलग भूमिका निभाने के कारण अलग-अलग नामों से जाना जाता है। भगवान् विष्णु एवं शिव में अत्यधिक प्रेम है जिस कारण दोनों एक दूसरे को निरन्तर याद करते रहते अथवा ध्यान करते रहते हैं। एक के हृदय में दूसरे का निवास है। विष्णु के यह कहनेपर कि शिव तथा शिव भक्तों से बढ़कर प्रिय मुझे कोई नहीं है, लक्ष्मी ने शिव की उपासनाकर उन्हें सन्तुष्ट किया जिसके फलस्वरूप उनके यश को बढ़ानेवाले श्रीफल की उत्पत्ति हुई तथा विष्णु की अत्यन्त प्रिया होने का सौभाग्य मिला।

भगवान् शिव तथा विष्णु में जो किसी एक की पूजा करता है, वह दूसरे की भी करता हैऔर जो एक की निन्दा करता है वह दूसरे की भी निन्दा करता है। इन देवों में भेद करना अथवा इनमें से किसी एक की निन्दा करना नरक को ले जानेवाला अथवा दुर्गति का कारण होता है।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दम की महत्ता

दम अर्थात् इन्द्रिय-संयम की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि-

दमेनहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
सांख्यं च योगश्चकुलंचजन्मतीर्थाभिषेकश्चनिरर्थकानि।।

(पद्मपु. सृष्टिखण्ड 19/318)

अर्थात्-दम से रहित व्यक्ति को छ: अंगो सहित वेद का अध्ययन भी पवित्र नहीं कर सकता। दम के अभाव में सांख्य, योग, कुल, गोत्र तथा तीर्थस्नान सभी निरर्थक हैं। अर्थात् उनके फल प्राप्त नहीं होते।

एकाम्र पुराण में शिवतत्त्व

यह पुराण काशी माहात्म्य, गया महात्म्य तथा नेपाल माहात्म्य इत्यादि जैसे ग्रन्थों की भाँति अपने नाम के अनुसार 'एकाम्रक्षेत्र' (वर्तमान भुवनेश्वर के आस-पास का क्षेत्र) के महत्त्व की चर्चा से परिपूर्ण है। इसे एक शैवउपपुराण माना जाता है। यह पुराण मूलतः उड़िया लिपि में होने के कारण (तथा जिसका आलोचनात्मक संस्करण देवनागरी लिपि में लगभग 13 वर्ष पूर्व ही प्रकाशित हुआ था) विद्वानों द्वारा पर्याप्त चर्चा का विषय नहीं बन सका है। यह उड़ीसा के प्राचीनतम ग्रन्थों में से एक है। एकाम्रक्षेत्र की महिमा ब्रह्मपुराण (अध्याय 41) में भी गायी गयी है। वहाँ इस क्षेत्र के नामकरण का कारण भी बताया गया है। जैसे नीलमत पुराण (एक कश्मीरी पुराण) कश्मीर की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा को बताता है, उसी प्रकार एकाम्र पुराण उड़ीसा के शैवस्थल एकाम्रक्षेत्र का वर्णन करता है। इसमें 70 अध्याय पाँच अंश एवं लगभग 6000 श्लोक हैं।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में भगवान् शिव को परमतत्त्व स्वीकार करते हुए उनके सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन किया गया है। उन्हें देवदेव एवं परमात्मा (1/29) कहा गया है। वे जटा तथा शशीकला से युक्त, त्रिलोचन, नागेन्द्र से सुशोभित भालवाले, चिताभस्म विभूषित (1/42-43), सदसादात्मक, पंचवक्त्र तथा व्याघ्रचर्मधारी हैं (1/53-54)। वे सृष्टि, स्थिति एवं संहार के कारण हैं तथा उनका दर्शन अद्भुत है जो पाप का नाश करनेवाले तथा शिवलोक प्रदान करनेवाले है। उन महादेव के माहात्म्य का ज्ञान किसी को भी नहीं है।

> **सर्गस्थित्यन्तसंहारभूतमद्भुतदर्शनम्।**
> **सर्वपापक्षयकरं शिवलोक-प्रदायकम्।।**
> **तस्य देवस्य माहात्म्यं न च कोऽपि प्रकाशितम्।** (एकाम्र पुराण 2/10-11)

भगवान् शिव की वन्दना देवता, मुनि आदि करते हैं; वे अतिकृपालु, पिनाकी, शूल, यष्टि आदि धारण करनेवाले, तीनों भुवन का मंगल करनेवाले, संसार के भय से मुक्त करनेवाले, पार्वती को आधे-अंग में धारण करनेवाले, स्फटिक के समान, बल से युक्त तरुण शरीरवाले तथा भूतपति हैं (एका. पु. 2/12)।

पार्वती शिव की वंदना करते हुए उन्हें अनादि, मध्य-अन्त से रहित, विभु, सर्ग, स्थिति एवं अन्तकर्त्ता, त्रिमूर्तिस्वरूप (अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र स्वरूप), सांख्य-योगस्वरूप, योगतत्त्वार्थ के ज्ञाता, अखिलमूर्ति, सर्वग, सर्वव्यापी, महेश्वर, सर्वज्ञानमय, सर्वात्मा, अव्यय कारण, विश्वेश्वर, जगत् का धाता, मूर्त एवं अमूर्त, स्थूल एवं सूक्ष्म से परे, शान्त, अनाख्येय, असंख्य, परमब्रह्म, सनातन, निर्गुण, सगुण, योगियों द्वारा ध्येय, वरेण्य, वर देनेवाले तथा भक्तवत्सल आदि कहा है। (एकाम्र पु. 2/38-43)।

जयत्वादि अनादिश्च मध्यान्तरहितो विभुः।
सर्गस्थित्यन्तकर्त्रे च त्रयीमूर्तिमते नमः।।
असंख्येयस्त्वनाख्येयः परं ब्रह्म सनातनः।
निर्गुणो गुणवांश्चासि योगिध्येय नमोऽस्तु ते।। (एकाम्र पु. 2/38, 42)

अर्थात्-सबके आदि, अनादि, मध्य एवं अन्त से रहित, विभु भगवान् शिव की जय हो। सृष्टि, स्थिति एवं अन्तकर्त्ता तथा त्रिमूर्तिस्वरूप शिव को नमस्कार। असंख्य, अनिर्वचनीय, परमब्रह्म, सनातन, निर्गुण, सगुण तथा योगियों के ध्येय भगवान् शिव को नमस्कार है।

भगवान् शिव को जगत्पति तथा देवदेव कहा गया है(3/33)। उन्हें एक, भूतात्मा, योगमूर्ति तथा योग-क्षेम का प्रवर्तक, सृष्टि का हेतु तथा निरञ्जन कहा गया है(3/37-38)। उन्हें शंख, कुन्द तथा चन्द्रमा के समान उज्जवल तथा शुद्ध स्फटिक की तरह निर्मल, परम, ईशान, दिगम्बर, नागों का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, अहिभूषण को धारण करनेवाले, विश्वमूर्ति, पिनाक, शूल, शक्ति तथा जटा आदि को धारण करनेवाले, त्रिलोचन, भूतात्मा, वन्द्य, विश्वाधार, ईश्वर, विभु, सहस्त्र शिर, मुख तथा आँखोंवाले तथा रुद्राक्षमालाधारी आदि कहा गया है(एका. पु. 3/50-58)।

ब्रह्माजी ने अपनी स्तुति में एक स्थलपर शिव को आदि, अनादि, जन्म, मृत्यु तथा जरारहित, विश्वयोनि, अयोनिज, कर्त्ता, भर्त्ता, हर्त्ता, अव्यय, अक्षय, अविभक्त, जगद्बीज, अनन्त, जगदाधार, ईश्वर, परमेष्ठिन, अपार, परमेश्वर, अप्रमेय, आदि-अन्तरहित, बहुरूप, स्वयंभू, द्वन्द्व एवं मोह को शान्त करनेवाले आदि कहा है(एका. पु. 3/62-68)।

एक अन्य स्थलपर वे अपनी स्तुति में शिव को आदिप्रकृति, अव्यक्त, अचिन्त्य, अनाश्रय, अनाधार, निरपेक्ष, ॐकार, वषट्कार, होता, अध्वर्यु, अप्रमेय, धर्म, काम, अर्थ एवं मोक्षदाता, लोकसाक्षी, हृदय में स्थित, विश्व को मुक्ति प्रदान करनेवाले, प्रभु, गंगाधर, वरेण्य, वरदाता, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवात्मक, भवभीतिहर, देवों के दुःखों के नाशक, भक्तवत्सल, पुराणपुरुष, ब्रह्म, बहुरूप, नीलकण्ठ, सनातन परंब्रह्म, हेयाहेय विनिर्मुक्त, निर्वाणरूप, निष्प्रपंच तथा आर्तो के शरण आदि कहा है। शिवजी की तृप्ति से सभी देवों की तृप्ति हो जाती है(एका. पु. 4/58-83)। स्तुति के कुछ अंशों को देखें-

अनाश्रय त्वनाधार निरपेक्ष गतज्वर।।
ॐकारस्त्वं वषट्कार.......................................।
धर्मार्थकामदानाय मुमुक्षोर्मोक्षदायिने।
सर्गस्थित्यन्तकर्त्रे च लोकसाक्षी हृदि स्थितः ।।
पुराणपुरुषं नित्यं त्वामाहुर्ब्रह्मवादिनः ।
नीलकण्ठं नमस्यामि नमः..................................।
......................................परं ब्रह्म सनातन।।

आर्त्तानां शरणं देव आश्रितानां च केवलम्।।
(एकाम्र पु. 4/60-61, 64, 76, 78, 83)

अर्थात्- आप(शिव) अनाश्रय, अनाधार, निरपेक्ष एवं ज्वररहित हैं। आप ही ओंकार एवं वषट्कार हैं........। आप धर्म, अर्थ और काम को प्रदान करनेवाले तथा मुमुक्षुओं को मोक्ष देनेवाले, सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय करनेवाले, लोकसाक्षी तथा हृदय में स्थित रहनेवाले हैं। आप को ब्रह्मवादी लोग पुराणपुरुष एवं नित्य कहते हैं। आप नीलकण्ठ को नमस्कार है ....सनातन परब्रह्म को नमस्कार है। हे देव आप आर्त जनों एवं निर्भर रहनेवालें के एकमात्र शरण हैं।

भगवान् शिव अशरण्यों के शरण, संसार के भय को हरनेवाले, सभी नामों एवं रूपों को धारण करनेवाले, अमृतदायी, परमब्रह्म, सच्चिदनन्दविग्रह तथा चित्स्वरूप आदि हैं।

नमः सर्वाय............... सर्वरूपधराय च।
भवोद्भवाय देवाय सर्वनाम्ने नमो नमः।।
नमस्त्रिगुणवाह्याय शिवायामृतदायिने।
परं ब्रह्म नमस्तेऽस्तु सच्चिदानन्दविग्रह।। (एकाम्र पु. 4/105, 107)

अर्थात्- सभी नाम एवं रूप को धारण करनेवाले तथा जगत् की उत्पत्ति के हेतु भगवान् शिव को नमस्कार है। त्रिगुण से परे, कल्याणकारी, अमृत प्रदान करनेवाले, परब्रह्म तथा सच्चिदानन्दविग्रह भगवान् शिव को नमस्कार है।

एक स्थलपर कहा गया है कि शंकर जी से श्रेष्ठ न कोई देवता है, न कोई गुरु और न कोई उनसे ज्यादा पवित्र है। ऐसे भगवान् शिव को नमस्कार है।

न शङ्करादस्त्यपरो हि देवो न शङ्करादस्त्यपरो गुरुर्नः।
न शङ्करादस्त्यपरं पवित्रं नमोऽस्तु तस्मै वृषभध्वजाय।। (एकाम्र पु. 5/26)

वहीं पर भगवान् शिव को सभी देवों का ईश, वर देनेवाले, विभु, चराचर का आधार, आदि प्रकृति, अचिन्त्य, शाश्वत, अनादि, पुराण-पुरुष, मुमुक्षुओं द्वारा सेवित, लोगों के बन्धनों को दूर करनेवाले, कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, देवादिदेव, परम एवं वन्द्य आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है(एकाम्र पु. 5/25, 27-29)। उन्हें निरञ्जन, निरामय, देवों द्वारा अज्ञेय तथा ज्ञानार्णव आदि भी कहा गया है(एकाम्र पु. 5/57-58)। उन्हें सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, सभी लोकों द्वारा नमस्कृत, सर्वेश्वर, दिव्य चैतन्य, शाश्वत, ध्रुव, अव्यय, निर्विकार, निराभास, शब्द-ब्रह्म तथा गुह्य आदि कहा गया है(एकाम्र पु. 11/25-27)।

सर्वज्ञं सर्वकर्त्तारं सर्वलोकनमस्कृतम्।
सर्वेश्वरम्..........................विभुम्।।
.........................शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।

निर्विकारं निराभासं........................।।
शब्दब्रह्मेति गुह्यं च यं प्राहुर्मुनयः सदा। (एका. पु. 11/25-27)

उन्हें परमज्योति, परमधाम, अमृत, शाश्वत, ध्रुव, ध्यानगम्य, परमब्रह्म तथा योगियों द्वारा दृश्य कहा गया है।

परं ज्योतिः परं धाम अमृतं शाश्वतं ध्रुवम्।
ध्यानगम्यं परं ब्रह्म यं वै पश्यन्ति योगिनः।। (एकाम्र पु. 12/74)

ब्रह्माजी एक अन्य स्थलपर भगवान् शिव के साकार विग्रह का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वे दूध, कुन्द के फूल अथवा शंख के समान वर्णवाले, शुद्ध स्फटिक की तरह निर्मल, भस्मविभूषित तथा व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं। आठों हाथों में क्रमशः पिनाक, त्रिशूल, परशु, डमरू, वर, अभय आदि को धारण किये हुए हैं। वासुकि नाग का यज्ञोपवीत, जटा में तक्षक तथा हाथ में कर्कोटक (नाग) को धारण किये हुए हैं। गंगा एवं चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किये रहते हैं। वे तीन नेत्रवाले तथा मणि आदि श्रेष्ठ दस नागों को अपने कटि आदि में धारण किये हुए रहते हैं (एकाम्र पु. 13/6-15)।

भगवान् शिव ब्रह्माजी से कहते हैं कि "मेरा माहात्म्य सुर एवं असुर सभी के लिये दुर्विज्ञेय है, सिद्ध तथा गन्धर्व आदि लोगों के लिये सैकड़ों करोड़ कल्प में भी मेरे माहात्म्य का ज्ञान नहीं हो सकता।"

माहात्म्यं मम भो ब्रह्मन्! दुर्विज्ञेयं सुरासुरैः।
अन्यैश्च सिद्धगन्धर्वैः कल्पकोटिशतैरपि।। (एकाम्र पु. 13/23)

ब्रह्माजी अन्यत्र भगवान् शिव की स्तुति में पूर्व के विशेषणों को दुहराते हुए भगवान् शिव को अक्षर, शाश्वत, तम से परे, ज्योतिर्मय, दिव्य, अनुपमेय, अनादि, ईश, वरेण्य, श्रेष्ठ, चराचरविश्व, विष्णु तथा ब्रह्मा को पैदा करनेवाले, त्रिगुणातीत, विष्णु तथा रुद्ररूप से जगत् का पालन एवं संहार करनेवाले, आदि देव तथा सबको वर देनेवाले कहा है (एकाम्र पु. 13/42-48)।

देवगण भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें परमानंद, सनातन, भूतभव्य, प्रभु, निष्कल, अप्रमेय, अक्षर, अव्यक्त, निर्गुण, भक्तवत्सल, अतीत-अनागत-ज्ञान के सिन्धु तथा योगियों के ध्येय आदि विशेषणों से विभूषित करते हैं (एका. पु. 18/52-57)।

भगवान् वासुदेव शिवजी की स्तुति में उन्हें परमेश्वर, त्रैलोक्यबीज, शाश्वत, निर्वाण के हेतु, संसारबन्धन से मुक्त करनेवाले, भूताधिपति, स्थिति, उद्भव एवं प्रलय के हेतु, नित्य, विकाररहित, शुद्ध, सुरात्मा, दुस्तर संसार-सागर से तारनेवाले, मोह-प्रपंच के रचनेवाले, भक्तिप्रिय, वर देनेवाले, जगन्मय, देव-असुर आदि को वर देनेवाले, विश्वात्मा, ब्रह्मा एवं अच्युत (भगवान् विष्णु) के ईश, सभी के द्वारा अर्चित, ब्रह्मा, विष्णु, तथा इन्द्र द्वारा सेवित, परमब्रह्म, मन्त्रों में श्रेष्ठ षडक्षर, दुःखों को हरनेवाले, भक्तों को अभय प्रदान करने वाले, योगियों के ध्येय, निर्मल, परम शान्त, शुभ ध्येय तथा

मनस्वरूप कहा है (एकाम्र पु. 18/60-80)।

भगवान् शिव को एक जगह स्पष्टरूप से वरेण्य, वर देनेवाले, सबके प्रपितामह तथा सनातन परब्रह्म कहा गया है।

वरेण्यो वरदः शम्भुः सर्वेषां प्रपितामहः।।
वेदान्ते गीयते यच्च परंब्रह्मं सनातनम्। (एकाम्र पु. 31/47-48)

हिरण्यकशिपु ने भगवान् शिव को जगद्गुरु, अव्यय, मोक्ष का कारण, अनादि, स्थूल एवं सूक्ष्म सभी रूपों को धारण करनेवाले, परमेश्वर, जगत्कर्त्ता, भक्तवत्सल, परमानन्द तथा सच्चिदानन्दविग्रह कहा है (एकाम्र पु. 32/77, 88-90)।

नमस्ते भगवान्! तुभ्यं नमस्ते भक्तवत्सल!।
नमस्ते परमानन्द! सच्चिदानन्दविग्रह!।। (एकाम्र पु. 32/90)

एक अन्य स्थलपर देवगणों ने भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उपरोक्त सभी विशेषणों को लगभग दुहराते हुए भगवान् शिव को जगत् के आदि, जगत् के आधार, अनादि, ईश्वर, जगत्कर्त्ता, जगत् के आनंद को बढ़ानेवाले, स्वर्ग एवं अपवर्ग प्रदाता, निःशेष, तत्त्वस्वरूप, निराभास, निरन्तर, निर्गुण, नित्य, सदसदात्मक, परात्पर, परमेष्ठी, परित्राता, पवित्र, परम, स्रष्टा, भूतपति, विधाता, संहर्त्ता, अनन्त, अनघ, अप्रमेय, अगोचर, नीलकण्ठ, ॐकार, प्रणव, यज्ञरूप, सर्वात्मा, असंख्येय, अपार, विज्ञानगुणसम्पन्न, ज्ञान-सागर, कूटस्थ, पंचब्रह्मस्वरूप (ईशान, तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात तथा वामदेव), सभी देवों से श्रेष्ठ एवं वरिष्ठ, माया-मोह करनेवाले, मंगल के धाम तथा स्मरणमात्र से पाप का नाश करनेवाले कहा है (एकाम्र पु. 33/17-46)।

निःशेषस्तत्त्वरूपस्त्वं निराभासो निरन्तरः।
निर्गुणो.................नित्यः सदसदात्मकः ।।
ॐकारः प्रणवो वेदा यज्ञरूपिंश्च ते नमः।
नमः सर्वात्मने तुभ्यं भूतभव्य भवत् प्रभो।।
कूटस्थवाच्यो यः साक्षात् पञ्चब्रह्म नमोऽस्तु ते। (एकाम्र पु. 33/19, 37, 39)

अर्थात्- आप निःशेष, तत्त्वस्वरूप, निराभास, निरन्तर, निर्गुण, नित्य एंव सदसदात्मक हैं। ॐकार, प्रणव, वेद एवं यज्ञरूप को नमस्कार। आप सर्वात्मा एवं भूतभव्य प्रभु को नमस्कार है। कूटस्थ और साक्षात् पंचब्रह्म-स्वरूप शिव को नमस्कार है।

ब्रह्माजी आठ श्लोकों में एक स्तुति अष्टक की रचनाकर भगवान् शिव की विशेषताओं को बताते हैं। इन विशेषताओं में वे ऊपर के ही सभी विशेषणों का प्रयोग थोड़ी भाषा की भिन्नता से करते हैं। इस प्रसिद्ध अष्टक में वे शिव को अशेष, जगत्पूज्य, लोकवरप्रद, अचिन्त्य, जगत् के धाम, पुरुषेश्वर, जन्म, मृत्यु तथा जरा से रहित, शब्द, रस, स्पर्श आदि से अतीत, निर्गुण, भूतात्मा, जगद्गुरु,

ब्रह्मा तथा इन्द्र द्वारा वन्द्य, योगेश्वरेश्वर, पंचानन, विभूतिभूषित, नागेन्द्रहार को धारण करनेवाले, ताप-त्रय से पीड़ित जनों के रक्षक, नृत्यविशारद, सर्वात्मा, सर्वगत, सर्वेश्वर, सर्वगुणाश्रय, विभु, भवबन्धमोचक, योगविद, पुरातन, इन्द्रादि द्वारा सतत अर्चित आदि कहा है।(एकाम्र पु. 39/29-39)

भगवान् शिव को प्रणव एवं परम ब्रह्म बताते हुए कहा गया है कि उन्हीं से वेद भी उत्पन्न हुए हैं। अकार स्वयं ब्रह्मा, उकार विष्णु तथा मकार साक्षात् परब्रह्म शिव कहा गया है।

प्रणवः परमं ब्रह्म वेदादौ समजायते।।
अकारश्च स्वयं ब्रह्मा उकारो विष्णुरुच्यते।
मकारस्तु अहं साक्षात् परं ब्रह्मोच्यते द्विजाः।। (एकाम्र पु. 47/91, 93)

जटेश्वर महादेव के सन्दर्भ में बताते हुए कहा गया है कि 'जटिल मुनि' की स्तुति से भगवान् शिव लिंग में प्रकट हो गये। तभी से वह लिंग जटिलेश्वर के रूप में प्रचलित हो गया। वहाँ पर वे भी अपनी स्तुति में शिव के उपरोक्त विशेषणों का ही प्रयोग करते हैं। वे शिव को जगन्नाथ, विधाता, स्वयंभू, भूतेश, अव्यय, ईश्वर, कर्म के कारण, संहर्त्ता, धाता, सभी कारणों के कारण, अविच्छिन्न, अविज्ञेय, स्थूल एवं सूक्ष्म, सर्वत्र गमन करनेवाले, सभी कुछ प्रदान करनेवाले, अतिन्द्रिय, परतर, यज्ञ, यज्ञकर्त्ता, हव्यवाहक, शक्तिमय, विश्वमुख एवं विश्वपाद, अनाख्येय, अशोच्य, भूतो के दुःखों को हरनेवाले, निष्कल, सकल, विश्वात्मा तथा प्रपन्नार्तिहर आदि कहते हैं(एकाम्र पु. 57/22-32)।

इस पुराण के प्रमुख वक्ता ब्रह्माजी हैं। अतः वे इस पुराण में अनेक स्थलों पर शिव के बारे में चर्चा करते हुए उनकी अनेकों विशेषताओं का उल्लेख करते हैं। चातुर्मास विधान नामक 59 वें अध्याय में वे शिव की उपरोक्त अनेकों विशेषताओं की पुनः चर्चा करते हैं। वहाँपर उन्होंने शिव को स्थूल, सूक्ष्म, परम, शान्त, निर्वाण प्रदान करनेवाले, सभी कार्यो का कारण, शब्द-स्पर्शातीत, निष्प्रपंच, निराभास, सूक्ष्म, अव्यक्त, निर्गुण, सत्त्व-ज्योति, निरञ्जन, पूर्ण, अक्षोभ्य, अनघ, अतिन्द्रिय, एक, निष्कल, शुद्ध, व्योमातीत, परात्पर, अनन्त, अपरिच्छेद, विश्वारम्भ, एकाम्रक्षेत्र में कोटि मूर्ति धारण करनेवाले, विभु तथा देव-दैत्यों आदि द्वारा अर्चित कहा है।(एकाम्र पु. 59/4-12)

किसी प्रसंग में भीम भगवान् शिव की पूजा के बाद स्तुति करते हैं। उस स्तुति में उन्होंने शिवजी को जगन्नाथ, वरदायक, देवदेव, जगत्पति, निराकार, निर्गुण, महाप्रभु, भूतों के सुखकारक, ब्रह्मा-विष्णु-स्वरूप, सर्वज्ञानस्वरूप, सर्वार्थसाधक, अनन्त रूपवाले तथा करोड़ों ब्रह्माण्ड को धारण करनेवाले कहा है(एकाम्र पु. 61/32-37)।

शिवोपासना

जीवन के चार पुरुषार्थो- अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष- की मान्यता हिन्दूधर्म एवं दर्शन में बहुप्रचलित है। भगवान् शिव को इन चारों पुरुषार्थों का दाता बताया गया है, अतः उनकी उपासना से ये चारों पुरुषार्थ व्यक्ति आसानी से प्राप्त कर सकता है।

इस पुराण में भगवान् शिव को पापों से मुक्ति दिलानेवाले(2/10; 14/32, 34, 45; 33/46; 44/45 इत्यादि), अति कृपालु(2/12 इत्यादि), भवभयहर(2/12; 4/35, 64, 66, 74, 104; 5/28; 14/36, 45; 18/63, 65; 20/47; 32/88; 33/20; 44/42, 45; 46/35, 43; 59/4, 65 इत्यादि), धर्म-अर्थदाता(4/64; 57/24 इत्यादि), तीनों लोकों(देवों तथा मनुष्यों आदि) के कल्याणकर्त्ता(2/12; 4/74; 18/73; 39/37; 46/30, 44; 57/28, 32 इत्यादि), दुखियों को शरण देनेवाले(4/83, 99 इत्यादि), भक्तवत्सल(2/43; 4/74; 18/57; 32/90; 46/29 इत्यादि), योग-क्षेम प्रवर्तक(3/37; 33/46; 61/36 इत्यादि), द्वन्द्व-मोह को शान्त करनेवाले(3/66 इत्यादि), स्वर्ग-अपवर्ग देने वाले (33/18 इत्यादि), जगत् के आनंद को बढ़ानेवाले(33/17; 61/33 इत्यादि), वरदाता(2/43; 4/72; 5/27; 13/54; 18/66, 68; 39/29; 61/32 इत्यादि), योगियों के ध्येय(18/77 इत्यादि) तथा वरण करने योग्य(2/43; 4/72; 5/27, 18/57 इत्यादि) कहा गया है। भगवान् शिव के इन गुणों के कारण उनकी उपासना का आकर्षण बढ़ जाता है।

पार्वतीजी कहती हैं कि जो लोग मुक्तिदायक भगवान् शिव के लिंग की सदा अर्चना करते हैं वे लोग शुद्ध एवं कृतकृत्य हैं तथा उनका देश पावन है। वहाँपर धर्म का निवास है, मनुष्य का वहाँ जन्म लेना सफल है। जहाँ की धरती लिंग से पूर्ण है वहाँ के पर्वत एवं पेड़-पौधे भी धन्य हैं।

ते देशाः पावनाः शुद्धास्तेजनाः कृतकृत्यकाः।
येऽर्च्चयन्ति सदा शम्भोर्लिङ्गं मुक्तिप्रदायकम्।।
तत्र धर्मः स्वयं साक्षात् सफलं जन्म वै नृणाम्।
गिरयश्च द्रुमा धन्या यत्र लिङ्गमयी रसा।। (एकाम्र पु. 3/6-7)

एक स्थलपर कहा गया है कि शिवजी की उपासना करनेवाले नरक में नहीं जाता।

अर्च्चयिष्ये विरूपाक्षं येन नो नरकं व्रजे। (एकाम्र पु. 9/53)

शंकर की आराधना नहीं करने से जीवन व्यर्थ हो जाता है। उनके प्रसन्न हो जानेपर भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त हो जाते हैं। उसी की जिह्वा सफल है जो शिव की स्तुति करती है। शंकर की पूजा करनेवाले का बाहु धारण करना सफल है। जिसका मन शिव को अर्पित है उसी का तप सुतप है। जो शिव का दर्शन करता है उसके नेत्र सफल हैं।

नूनं व्यर्थगतं जन्म अनाराधितशङ्करम्।
कृत्तिवासे प्रसन्ने च भुक्तिमुक्तिश्च जायते।।
तस्यैव सफलां जिह्वा यस्येयं शिवसंस्तुतिः।
श्लाघ्यं बाह्वोर्धारणं तु यौ तु शंङ्करपूजकौ।।
सुतप्तं तु तपस्तेन यस्येशानेऽर्पितं मनः।

शिवस्य दर्शनं याभ्यां सफले ते दृशौ मते।। (एकाम्र पु. 20/47-49)

शिवार्चन से बढ़कर मुक्ति के लिये अन्य कोई धर्म नहीं है और न ही उससे अधिक पुण्य इस धरतीपर है।

श्रीशङ्कराच्र्चनादन्यो धर्मो नास्ति विमुक्तये।।
न शङ्कराच्र्चनात्पुण्यमधिकं पृथवीतले। (एकाम्र पु. 31/67, 69)

आगे कहा गया है कि इस पृथ्वी पर शिवजी की प्रसन्नता के अतिरिक्त अन्य कुछ भी साध्य नहीं है।

नास्त्यसाध्यः पृथिव्यां च प्रसन्ने कृत्तिवाससि (एकाम्र. पु. 31/70)

एक अन्य स्थलपर कहा गया है कि जो भावपूर्वक अव्यय भगवान् शिव की पूजा नहीं करता उसका जन्म एवं परिश्रम व्यर्थ है। भुजा उठाकर यह सत्य कहा जा रहा है कि शिव से श्रेष्ठ न कोई देव है न होगा।

व्यर्था जन्म भवेत्तेषां वृथा तेषां परिश्रमः।
यो न पूजति भावेन कृत्तिवाससमव्ययम्।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भुजमुधृत्य कथ्यते।
कृत्तिवासात् परो देवो न भूतो न भविष्यति।। (एकाम्र पु. 42/66, 69)

जो शिव का भजन करते हैं उनका पराभव नहीं होता।

ये भजन्ति विरूपाक्षं न ते यान्ति पराभवम।। (एकाम्र पु. 56/11)

भगवान् शिव को (स्पष्ट रूप से) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाले कहा गया है।

धर्मार्थकाममोक्षांश्च प्रयच्छन्ति सदाशिवः। (एकाम्र पु. 59/65)

भगवान् शिव की उपरोक्त विशेषतायें तथा इस पुराण के सन्दर्भ इस बात को स्पष्टरूप से प्रमाणित करते हैं कि भोग एवं मोक्ष के लिये, पापों-तापों के विनाश के लिये तथा समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिये एकमात्र भगवान् शिव की शरण लेनी चाहिये। भगवान् शिव की अर्चना सभी-देव, दानव, मानव आदि-करते हैं। ब्रह्माजी सनत्कुमार से कहते हैं कि शिव की तुष्टि से हमें सर्वज्ञता तथा विष्णु को शक्ति प्राप्त हुई है।

सर्वज्ञतामहं प्राप्तः परितुष्टे च शङ्करे।।
विष्णुः शक्तित्वमालभते......................। (एकाम्र पु. 5/17-18)

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता, परशुराम, भीम तथा रामादि ने भगवान् शिव की उपासना से मनोवांछित फल पाये हैं। इन लोगों के लिंगपूजन आदि का वर्णन इस पुराण में प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये -

सर्वाच्र्चितस्वचरणाम्बुजयुग्मकाय..................।

ब्रह्मेन्द्रविष्णुचरणाम्बुज सेविताय...............।। (एकाम्र पु. 18/69)

अर्थात्–ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु आदि सभी के द्वारा भगवान् शिव के चरणों की सेवा होती है।

पुन :– **ब्रह्मा विष्णुसशक्राद्यैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः।**
अर्च्चितो भावशुद्धेन कृत्तिवासा जगद्गुरुः।। (एकाम्र पु. 56/18)

अर्थात्–जगदगुरु भगवान् शिव की शुद्ध भाव से अर्चना ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, मुनि तथा ब्रह्मवादी लोग करते हैं।

(1) शिवनाममहिमा

भक्ति साहित्य में भगवान् के नाम की विशेष महिमा गायी गयी है। इस पुराण में भी भगवान् शिव के नाम की महिमा बतायी गयी है। भगवान् शिव के नाम की महिमा के सन्दर्भ में बताया गया है कि उनका स्मरण करने से पापों के ढेर उसी प्रकार चूर–चूर हो जाते हैं जिस प्रकार पर्वत वज्र गिरने से हो जाता है। रुद्रदेव के नामोच्चारणमात्र से व्यक्ति के सभी प्रकार के अनिष्ट नष्ट हो जाते हैं।

स्मरणादेव रुद्रस्य पापसंघातपञ्जरम्।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा।।
नामोच्चारणमात्रेण रुद्रेति पुरुषस्य तु।
नश्यन्ति सकला दुष्टाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।। (एकाम्र पु. 5/44, 47)

जो लोग अपने कुकर्मों का स्मरणकर पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहे हैं उससे निष्कृति का श्रेष्ठ उपाय शिव का स्मरण(ब्रह्माजी द्वारा) बताया गया है।

यः स्मृत्वा तु निजं कर्म पश्चात्तापेन दह्यते।
तस्यैकां निष्कृतिं वक्ष्ये शिवसंस्मरणं परम्।। (एकाम्र पु. 6/64)

भगवान् शिव मंगल के धाम हैं तथा उनका स्मरणमात्र सभी प्रकार के पापों का नाश कर देता है।

श्रीमान् माङ्गल्यनिलय स्मृतमात्राघनाशन। (एकाम्र पु. 33/46)

इस पुराण में एक स्थलपर यहाँतक कहा गया है कि इस धरती पर जो मनुष्य भगवान् शिव के नाम का कीर्तन करता है उसके फलों को शेषनाग भी बताने में असमर्थ हैं। भगवान् शिव के कीर्तनमात्र से ऐसा मनुष्य भी मुक्ति को प्राप्त कर लेता है जिसने न तो कोई तीर्थ, न तो यज्ञ, न तो दान और न ही व्रत किया हो।

कृत्तिवासेति यो नाम कीर्त्तयेत् भुवि मानवः।
तस्य यत् तत् फलं वक्तुं शेषदेवो न शक्यते।।
विना तीर्थैर्विनायज्ञैर्विनादानैर्विना व्रतैः।
मुक्तिं प्रयान्ति मनुजाः कृत्तिवासेति कीर्त्तनात्।। (एकाम्र पु. 42/71-72)

संसार रूपी दुःख का (नाश करनेवाले) कुठार भगवान् शिव का भजन करो। वह (शिवभजन) संसारदुःख की औषधि है, उस अमृत का पान करो ताकि मुक्ति प्राप्त हो सके। जिह्वा से निरन्तर शिव, नीलकण्ठ, शंकर, हर, पार्वतीपति आदि का उच्चारण करते रहो। शिव एवं शम्भु का निरन्तर स्मरण करते रहो।

निरामयं तदमृतं पिव संसारभेषजम्।
भजस्व च विरूपाक्षं भवदुःखकुठारकम्।।
शिवेति नीलकण्ठेति शङ्करेति हरेति च।
पार्वतीप्राणनाथेति वद जिह्वे निरन्तरम्।।
शिवः शम्भुः शिवः शम्भुः शम्भुः शम्भुः शिवः शिवः।
इति व्याहरतो नित्यं..।। (एकाम्र पु. 44/41, 43-44)

एक स्थलपर प्रणव को परमब्रह्म बताते हुए उसे भगवान् शिव से अभिन्न माना गया है। वहींपर कहा गया है कि उसके उच्चारण से विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं।

प्रणवः परमं ब्रह्म वेदादौ समजायते।।
यदुच्चार्य पुमान् विप्राः परं ब्रह्माधिगच्छति। (एकाम्र पु. 47/91-92)

(2) एकाम्रकक्षेत्रस्थ शैवतीर्थ

यह पुराण मूलतः एकाम्रक्षेत्र तथा उस क्षेत्र में स्थित अनेक तीर्थों के माहात्म्य को बतलाने के लिये लिखा गया है। उड़ीसा की वर्तमान राजधानी भुवनेश्वर के आस-पास के क्षेत्र को एकाम्रक्षेत्र कहा गया है। ब्रह्म पुराण के अनुसार एकाम्रक नाम से विख्यात क्षेत्र वाराणासी के समान कोटिलिंगो से युक्त एवं शुभ है। उसमें आठ तीर्थ हैं। पूर्व कल्प में वहाँ एक आम का वृक्ष था। उसी के नाम से वह एकाम्रकक्षेत्र के रूप में विख्यात हुआ।

लिङ्गकोटिसमायुक्तं वाराणसीसमं शुभम्।
एकाम्रकेति विख्यातं तीर्थाष्टकसमन्वितम्।।
एकाम्रवृक्षस्तत्राऽऽसीत्पुरा कल्पे द्विजोत्तमाः।
नाम्ना तस्यैव तत्क्षेत्रम् एकाम्रकम् इति श्रुतम्।। (ब्रह्म पु. 41/11-12)

सगुणोंपासना में तीर्थ-यात्रा का बहुत महत्त्व बताया गया है। अतः अपने श्रेय एवं प्रेय की सिद्धि के लिये तीर्थो का सेवन करना चाहिये। एकाम्रकक्षेत्र में करोड़ों शिवलिंग स्थित हैं तथा वहाँ पर अनेकों तीर्थ अवस्थित हैं, जिनका सेवन भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले है। भगवान् शिव सनत्कुमारजी से कहते हैं कि एकाम्रकवन में मेरे लिंग के स्पर्श के प्रभाव से निश्चितरूप से मुक्ति प्राप्त होती है यह एक अटल सत्य है।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यमेकाम्रकवने मम।

लिङ्गस्पर्शप्रभावेन मुक्तिं प्राप्नोति निश्चितम्।। (एकाम्र पु. 2/97)

भूमिलोक जैसा धर्म स्वर्ग में नहीं देखा जाता क्योंकि यहाँपर करोड़ों शिवलिंगों के माध्यम से साक्षात् शिव स्वयं प्रकट हुए हैं(एकाम्र पु. 6/68-69)। ब्रह्माजी के यह पूछनेपर कि मुक्ति के लिये कौन सा स्थान विशेष फलदायक है? भगवान् शिव कहते हैं कि हेमकूट पर्वतस्थित लिंग चारों दिशाओं में अपने तेज से प्रज्वलित हो रहा है तथा उसके चारों ओर करोड़ों लिंग भूतलपर स्थित हैं, उस एकाम्रकवन प्रदेश में मैं विराजमान रहता हूँ। जो मुझे वहाँ स्थित देखता है, वह परमगति को प्राप्त करता है। उस लिंग के स्पर्शमात्र से महापातकी भी मुक्त हो जाते हैं।

....

एकाम्रकवनोद्देशे तस्मिन् सन्निहितो ह्यहम्।
यो मां पश्यति तत्रस्थं स याति परमां गतिम्।।
स्पृष्टमात्राद्भवेन्मुक्तिर्महापातकिनामपि।। (एकाम्र पु. 11/52-53)

एकाम्रकवन के लिंग महासिद्धिदायक हैं(एकाम्र पु. 12/8)। उन लिंगों के दर्शनमात्र से राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है।

राजसूयाश्वमेधाभ्यां या गतिः समुदाहृता।
सा गतिर्दृष्टिमात्रेण एकाम्रकवने शिवम्।। (एकाम्र पु. 12/11)

आगे कहा गया है कि- सभी शास्त्रों ने पुनः-पुनः विचार कर कहा है कि भगवान् शिव के इस लिंग(एकाम्रकवनस्थ) के समान न अन्य कोई हुआ है और न अन्य कोई भविष्य में होगा। पृथ्वीपर जितने भी तीर्थ और पुण्य क्षेत्र हैं वे सभी इस चिद्स्वरूप लिंग की सोलहवीं कला के भी बराबर नहीं हैं। इस लिंग को वेदान्त में परमब्रह्म कहा जाता है, इसकी पूजा (तथा दर्शन) वसु आदि द्वारा सदैव की जाती है।

कथ्यते सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
कृत्तिवासः समं लिङ्गं न भूतं न भविष्यति।।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्याम्यायतनानि च।
चिद्रूपस्यास्य लिङ्गस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
एतल्लिङ्गं परं ब्रह्म वेदान्ते परिकीर्त्त्यते।
दर्शनेनास्य पूजन्ति वासवादि दिवौकसः।। (एकाम्र पु. 12/15-17)

एकाम्रकवन में लिंगरूपी सदाशिव नित्य विराजते हैं(12/27)। इस क्षेत्र में एक करोड़ लिंग व्याप्त हैं(12/32)। इन लिंगों के नमस्कार, पूजन एवं प्रदक्षिणा से व्यक्ति तत्काल ही भगवान् शिव के प्रसाद से अपने सात जन्मों के किये मानस, वाचिक एवं कार्मिक पापों से छूट जाता है। और वह कृतकृत्य हो जाता है।

कृत्तिवासं नमस्कृत्य कृतकृत्यो भवेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं कर्मणा मनसा गिरा।।
तत्क्षणात् क्षालयेत् प्राज्ञः कृत्तिवासप्रसादतः।
प्रदक्षिणं नमस्कारं पूजनम् कृत्तिवाससः।। (एकाम्र पु. 12/36-37)

भगवान् शिव ब्रह्माजी से कहते हैं कि मेरे एकाम्रकवन में जो मरणधर्मा अपना शरीर छोड़ता है वह मेरे साथ कैलास में आनंद से रहता है। महापातकी भी मेरे लिंग के स्पर्शमात्र से परमगति को प्राप्त कर लेते हैं। जल, मूल एवं फल का आहार करनेवाले, पक्ष एवं मासतक का उपवास करनेवाले, सदा यम व संयम का पालन तथा एकान्त में निवास करनेवाले, दिव्य वर्षों की गणना से सैकड़ों वर्षतक हरिध्यानपरायण, पापरहित, वीतरागी योगी की गति तथा अनेक जन्मों में सिद्ध होनेवाले पद की प्राप्ति मेरे(लिंग के) दर्शन के क्षण ही हो जाती है।

ममैकाम्रवने मर्त्त्या ये त्यजन्ति कलेवरम्।
मया सह प्रमोदन्ते ते कैलासे नरोत्तमाः।।
महापातकसंयुक्ताः सर्वभूतनिषेधकाः।
मल्लिङ्गस्पर्शनादेव ते यान्ति परमां गतिम्।।
जलमूलफलाहारैः पक्षमासोपवासकैः।
यमसंयमसंयुक्तैरेकान्तनिरतैः सदा।।
हरिध्यानपरैर्युक्तैर्दिव्यवर्षशताधिकैः।
यां गतिं योगिनो यान्ति वीतरागा विकल्मषाः।।
अनेकजन्मसंसिद्ध्या दुर्लभं पदमाहितम्।
तत्क्षणात्तत्पदं यान्ति दर्शनान्मम सुव्रत!।। (एकाम्र पु. 14/12, 15-18)

भगवान् शिव पुनः कहते हैं कि मेरा यह उत्तम लिंग साक्षात् परमब्रह्म है जो सभी पापों का शमन करनेवाले तथा मोक्षरूपी फल को देनेवाले है। एकाम्रक्षेत्र में स्थित सभी लिंगों में त्रिभुवनेश्वर मुख्य है। यहाँपर दर्शनमात्र से ही महापातकों का नाश हो जाता है। इस क्षेत्र में स्थित मेरे लिंगों का जो श्रद्धापूर्वक स्तवन नहीं करते उन्हें मैं नरकों में गिराता हूँ। कृतयुग में व्यक्ति (लिंग के) दर्शनमात्र से मुक्त हो जाता है, त्रेता में स्पर्श, द्वापर में पूजा तथा कलि में शुश्रूषा से सिद्धि प्राप्त होती है।

साक्षाच्चैव परं ब्रह्म ममेदं लिङ्गमुत्तमम्।
सर्वपापप्रशमनं मोक्षैकफलदायकम्।।
सर्वेषां चैव लिङ्गानां मुख्यं त्रिभुवनेश्वरम्।
ममात्र दर्शनं यत्तु महापातकनाशनम्।।
एकाम्रे मम ये लिङ्गं श्रद्धया न स्तुवन्ति च।

तानहं पातयिष्यामि नरकेषु महीक्षयात्।।
कृते दर्शनमात्रेण मोक्षमिच्छन्ति मे नराः।
त्रेतायां स्पर्शनात् सिद्धिर्मुक्तिदोऽहं नृणां किल।।
द्वापरे पूजितो नृभ्यो दास्याम्यभिमतं फलम्।
प्रसादमधिगच्छामि कलौ शुश्रूषणाद्ध्रुवम्।।

(एकाम्र पु. 14/21, 30-31, 36-37)

एकाम्रक्षेत्र तथा काशी, सेतु, ॐकारेश्वर आदि ज्योतिर्लिंगों में भगवान् शिव सदा निवास करते हैं(14/28-29)। तथापि सभी लोकों से यहाँ(एकाम्रक्षेत्र में) लाख गुणा पुण्य प्राप्त होता है।

सर्वेषां चैव लोकानामत्र पुण्यं पितामह।
अन्यतः शतसाहस्त्र्यं गुणितं साधितं स्मृतम्।। (एकाम्र पु. 14/47)

ब्रह्माजी पार्वती से कहते हैं कि इस क्षेत्र में भगवान् शिव की अर्चना करनेवाले सुगति को प्राप्त कर देवताओं के साथ आनंद करते हैं। एक बार श्रीहरि ने देवताओं के साथ इस क्षेत्र में भगवान् शिव की पूजा की थी। यहाँपर मैं, श्रीहरि, सूर्यदेव आदि ने लिंग स्थापितकर पूजन किया था। श्रीहरि आदि देवों के पूजन संबंधी वृत्तान्त की चर्चा विस्तार से ब्रह्माजी ने इस पुराण के अठारहवें अध्याय में की है।

लिङ्गं च पूजयामास विष्णुः शत्रुनिसूदनः।
गन्धपुष्पैरलङ्कारैर्भक्त्या परमयाम्बिके!।। (एकाम्र पु. 18/47)

अर्थात्-शत्रुओं का नाश करनेवाले भगवान् विष्णु ने गंध, पुष्प एवं अलंकारों द्वारा भक्ति पूर्वक लिंग की पूजा की। फलस्वरूप भगवान् शिव प्रकट हो गये। तदनन्तर देवताओं तथा भगवान् विष्णु ने पृथक-पृथक स्तोत्रों का पाठ किया। विष्णुजी के स्त्रोत से भगवान् शिव प्रसन्न हो वर देने के लिये प्रस्तुत हुए । विष्णुजी ने वर में यह माँगा कि आप इस लिंग में सदा निवास करें तथा जो भक्तिपूर्वक इसकी उपासना करे उसे मनचाहा वर प्रदान करें। भगवान् शिव ने कहा कि तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित यह लिंग सिद्धेश्वर नाम से जगत् में प्रसिद्ध होगा तथा इसका आश्रय लेकर मुनि लोग सिद्धि को प्राप्त करते रहेंगे(18/84-85, 87-89, 94-95)। इस लिंग का नाश महाप्रलय होनेपर भी नहीं होता।

महाप्रलयकालेऽपि न नाशमधिगच्छति।। (एकाम्र पु. 18/103)

एकाम्रक्षेत्र में स्थित बिन्दुसरोवर के माहात्म्य को बतलाते हुए कहा गया है कि जो अपने शरीर को यहाँ छोड़ता है वह स्वर्ग को भी भेदकर अनामय ज्योतिर्लोक को जाता है तथा वहाँ से शिवलोक को जाकर शिवसायुज्य को प्राप्त करता है।

बिन्दुह्रदजले मर्त्या ये त्यजन्ति कलेवरम्।।

ते यान्ति त्रिदिवं भित्वा ज्योतिर्लोकमनामयम्।
ततः शिवपुरं गत्वा शिवसायुज्यमप्नुयुः।। (एकाम्र पु. 23/43-44)

जिस सनातन परब्रह्म का वेदान्त में गायन होता है, उसकी लिंग-मूर्ति एकाम्रकवन में स्थित है। उस श्रेष्ठ लिंग के नैवेद्य को सभी पापों के विनाश तथा भवसागर से मुक्ति प्राप्त करने के लिये देवगण ग्रहण करते हैं। उस लिंगराज का नैवेद्य महापापों का विनाश करनेवाले है। इसका सेवनकर सभी देवताओं ने अपने-अपने पद को प्राप्त किया है।

वेदान्ते गीयते यच्च परंब्रह्मं सनातनम्।
तदेव लिङ्गमूर्त्त्या च तिष्ठत्येकाम्रके वने।।
यस्य लिङ्गवरस्याङ्ग नैवेद्यं गृह्यते सुरैः।
सर्वपापविनाशाय विमुक्तयै भवसागरात्।।
नैवेद्यं लिङ्गराजस्य महापापविनाशनम्।
यद्भुक्त्वा ह्यमराः सर्वे स्वं स्वं पदमवाप्नुयुः।। (एकाम्र पु. 31/48, 50-51)

जगत् के कारण एकाम्रनाथ भगवान् शिव ने भक्तों पर दया करके स्वयं लिंगमूर्ति धारण किया है। काशी, सेतु, महेन्द्र आदि सभी पुण्य-क्षेत्रों को छोड़कर एकाम्र में निवास करते हैं(एकाम्र पु. 31/65-66)। एकाम्रकवन शिव का सनातन पुण्य धाम है जिसमें सर्वत्र शिवलिंग व्याप्त हैं(एकाम्र पु. 31/70-71)।

भुवनेश्वरलिंग भी लिंग न होकर साक्षात् परब्रह्म का स्वरूप है, इसका नैवेद्यग्रहण महान् यज्ञों के समान फल देनेवाले है(एकाम्र पु. 42/70)। हेमकूट की चोटीपर स्थित भगवान् शिव का भजन करनेवालें का कभी पराभव नहीं होता है। उसी का जीवन प्रशंसनीय है तथा सफल है जो एकाम्रकवन में स्थित हो शिव के भजन में रत है। जो समाहित होकर उसकी यात्रा एवं परिक्रमा करता है वह अपने महापापों को धो डालता है। इस क्षेत्र की तीन प्रदक्षिणा करने से एक ही दिन में तीन करोड़ जन्मों के पापों से छुटकारा हो जाता है। दाहिने या बायें किसी भी तरफ से की गयी प्रदक्षिणा का समान फल प्राप्त होता है ऐसा मनीषिगण कहते हैं।

..।
ये भजन्ति विरूपाक्षं न ते यान्ति पराभवम।।
श्लाघ्यं जन्म च तस्यैव सफलं तस्य जीवनम्।
यश्च एकाम्रके तस्मिन् कृत्तिवासोऽर्च्चने रतः।।
प्रदक्षिणं पर्यटनं यः करोति समाहितः।
यः करोति महापापं क्षालयेत् तत् न संशयः।।
अस्मिन् क्षेत्रवरे रम्ये यैः कृतं त्रिः प्रदक्षिणम्।

त्रिकोटिजन्मजात् पापाद् दिनेनैकेन मुच्यते।।
सव्यापसव्यं येनाद्रिं क्रियते च प्रदक्षिणम्।
तत् फलं समवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः।। (एकाम्र पु. 56/11-15)

एकाम्रक्षेत्र मे स्थित भीमेश्वर लिंग की पूजा सभी पापों का नाश कर मंगल प्रदान करती है(एकाम्र पु. 61/49)। अश्वमेध यज्ञ के दौरान भगवान् राम ने एकाम्रक्षेत्र में जाकर लिंगार्चन किया। फलस्वरूप भगवान् शिव प्रकट हो श्रीराम से कहते हैं कि सभी तीर्थों में श्रेष्ठ, सभी जीवों को पवित्र करनेवाले तथा त्रिलोक में विख्यात यह तीर्थ रामेश्वर कहा जायगा। इस तीर्थ में मैं साक्षात् निवास करूँगा तथा भक्तिमानों को सिद्धि प्रदान करूँगा।

सर्वतीर्थवरः श्रीमान् पावनं सर्वदेहिनाम्।
रामेश्वर इति ख्यातस्त्रिषु लोके भविष्यति।।
सदा सिद्धमिदं तीर्थं यत्र सन्निहितो ह्यहम्।
आदास्यामि स्वयं पूजां सदा भक्तिमतां नृणाम्।। (एकाम्र पु. 53/39-40)

(3) भगवान् शिवसंबंधी स्तोत्र

इस पुराण में भगवान् शिव से संबंधित कुछ प्रमुख स्तोत्रों का हवाले आया हैं जिनमें से (ब्रह्म-पुत्र)तुण्डि कृत शिव-सहस्रनाम प्रमुख है। इसमें इस स्तोत्र का पूरा पाठ न देकर मात्र इस स्तोत्र के आरंभ बिन्दु का ही संकेत किया गया है। परन्तु इस स्तोत्र की महिमा को बहुत ही विस्तार से समझाया गया है। यह स्तोत्र महाभारत में पाया जाता है जिसका पूरा पाठ इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है।

कहा गया है कि पुराणोक्त स्तुतियों, अथर्वशिरस् तथा शतरुद्रि से भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं(एकाम्र पु. 32-33) परन्तु तुण्डिकृत शिव-सहस्रनाम उनकी प्रसन्नता का विशेष साधन है। इस सहस्रनाम का पाठ ब्रह्म-लोक में होता था जिसे तुण्डि ने सुनकर उसे ग्रहण कर लिया तथा उसे पृथ्वीलोक पर उतारा। इसीलिये उसे तुण्डिकृत कहा जाता है(32/42-43)। शुक्राचार्य हिरण्यकशिपु को इस सहस्रनाम का उपदेश करते समय पहले इसके माहात्म्य को बताते हैं। वे कहते हैं कि यह पुण्यमय सहस्रनाम भगवान् शिव को सदा ही प्रीतिकर है। जिस प्रकार शिव को गौरी तथा पुत्र षण्मुख प्रिय हैं तथा जिस प्रकार अविमुक्तक्षेत्र प्रिय है उसी प्रकार उन्हें यह सहस्रनाम प्रिय है। जितना प्रिय यह सहस्रनाम है उतना प्रिय उन्हें न तो गंगा, न तो श्रीहरि और न ही योग है। वे अन्य सैकड़ों व्रतों से प्रसन्न न होकर इस सहस्रनाम से शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।

पुण्यं नाम सहस्रं हि शम्भोः प्रीतिकरं सदा।
....।।
यथा गौरी प्रिया शम्भोर्यथा पुत्रेषु षण्मुखः।

क्षेत्रं यथाऽविमुक्तं हि तथा नाम सहस्रकम्।।
न तथा च प्रिया गङ्गा न तथा च प्रियो हरिः।
न तथा च प्रियो योगो यथा नाम सहस्रकम्।।
अतीव प्रीतिदं नाम सहस्रं शङ्करस्य च।
तेनैव तुष्यते शम्भूर्नान्यैर्व्रतशतैरपि।। (एकाम्र पु. 32/44-47)

एकाम्रकक्षेत्र में इस सहस्रनाम से शिव-पूजन करने से मनुष्य अपने मनोरथों को पूरा कर लेता है(एका. पु. 32/49)।

ब्रह्माजी ने भगवान् शिव की स्तुति में एक अष्टक की रचना की है जिसका उल्लेख इस पुराण(39/33-40) में हुआ है। इसका शिव के निकट भक्तिपूर्वक पाठ करने से व्यक्ति के पाप सहसा नष्ट हो जाते हैं तथा उसे शिव-सायुज्य की प्राप्ति हो जाती है। यह स्तोत्र शोक का नाशक, विजयप्रद, सभी कार्यों में सफलता प्रदान करनेवाला है।

किसी समय इन्द्र सहित सभी देवों ने एकाम्रकक्षेत्र में सहस्रनाम के पाठ तथा अन्य कृत्यों से भगवान् शिव को प्रसन्न किया तथा उनकी स्तुति की। यह स्तुति इस पुराण में(33/17-46) मिलती है। इस स्तुति का भक्तिपूर्वक जितेन्द्रिय रहकर पाठ करने पर छःह महीने के अन्दर मनोकामनायें पूर्ण हो जाती हैं(एका. पु. 33/48)।

इस पुराण का चौथा अध्याय ब्रह्मगीता के नाम से जाना जाता है। इसमें कुल 118 श्लोक हैं। इसके वक्ता ब्रह्माजी तथा श्रोता देवी पार्वती हैं। इसमें भगवान् शिव की महिमा का कथन हुआ है। इस गीता के माहात्म्य को बतलाते हुए कहा गया है कि इसे समाहित होकर भक्तिपूर्वक पढ़ने वा सुनने से छःह माह के अन्दर सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसके नियमित पाठ से सभी प्रकार की लौकिक एवं पारलौकिक कामनायें पूरी हो जाती हैं। चतुर्दशी के दिन भगवान् शिव के समक्ष इसके पाठ से व्यक्ति को शिवसायुज्य की प्राप्ति हो जाती है(एका. पु. 4/118)।

(4) शिवोपासना संबंधी कुछ अन्य बातें

इस पुराण में भगवान् शिव की महिमा के प्रसंग में एक स्थलपर षडक्षर(**ॐ नमः शिवाय**) मन्त्र का उल्लेख हुआ है। वहाँपर(एका. पु. 18/71) उसे मन्त्रों में श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। भगवान् शिव के सगुण विग्रह का यह सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है। इसी प्रकार प्रणव(**ॐकार**) को भगवान् शिव के निर्गुणरूप का सर्वश्रेष्ठ मन्त्र माना गया है। इस मन्त्र का भी उल्लेख इस पुराण(47/91-92) में हुआ है। वहाँपर कहा गया है कि इसके उच्चारण से व्यक्ति परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

शिवरात्रिव्रत की महिमा बताते हुए कहा गया है कि इसे करके चाण्डाल भी भगवान् शिव को प्राप्त कर लेता है। इसे करने से सभी पाप समाप्त हो जाते हैं तथा सभी प्रकार के पुण्यों की वृद्धि हो जाती है।

शिवरात्रिव्रतं कृत्वा चाण्डालोऽपि व्रजेच्छिवम्।
सर्वपापघ्नमतुलं सर्वपुण्यविबर्द्धनम्।। (एकाम्र पु. 66/40)

इस दिन शिव की पूजा रात्रि के प्रत्येक प्रहर में दुग्ध, दधि, घृत तथा मधु द्वारा करनी चाहिये। पूजासमाप्ति पर महास्नान कराना चाहिये। दूधद्वारा तत्पुरुष-मुख को, दधिद्वारा अघोर-मुख को, घृतद्वारा सद्योजात तथा मधुद्वारा वामदेव-मुख को स्नान कराना चाहिये। इसके पश्चात् लिंग की पूजा करनी चाहिये। रात्रि के प्रत्येक प्रहर में 32 उपचारों द्वारा महेश्वर की पूजा करें तथा बिल्वपत्रों की वृष्टि करें। शिवरात्रि की पूजा का दर्शन भी पूजा के समान ही फलदायी होता है।(एकाम्र पु. 66/48)

जो लोग भगवान् विष्णु की उपासना करते हैं उनके लिये एक चेतावनी इस पुराण में दी गयी है। यहाँ कहा गया है कि अगर कलिकाल में कोई वैष्णवीवृत्ति का आश्रय लेकर भगवान् शिव की निन्दा करता है तो उसका विनाश हो जाता है तथा वह निश्चितरूप से नरक को जाता है(एकाम्र पु. 6/30-31)।

....।।

कलौ तु वैष्णवीभूत्वा शिवनिन्दा-परायणाः।
भविष्यन्ति नराः सत्यं नरकाय न संशयः।। (एकाम्र पु. 6/31)

भगवान् शिव एवं विष्णु

अन्य ग्रन्थों की भाँति इस पुराण में भी भगवान् शिव एवं विष्णु की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन हुआ है। भगवान् शिव सर्वशक्तिमान हैं तथा सभी की शक्ति हैं। इस कारण शिवा भी भगवान् शिव की शक्ति हैं। धारक-धार्य भाव से शिव एवं शिवा में अभेद है। ब्रह्माजी पार्वती से कहते हैं कि देवि! तुम विष्णु भाव[1] से युक्त हो और महेश्वर तुमसे भावित हैं(अतः शिव एवं विष्णु में अभेद है)। ज्ञान-बुद्धि से रहित मूढ़ लोग(शिव एवं विष्णु में या शिव एवं शक्ति में) भेद करते हैं। शिव एवं विष्णु में कोई भेद नहीं है-यह सनातन धर्म है। इस धर्म के पालन द्वारा व्यक्ति को मुक्ति प्राप्त हो जाती है। अर्थात् शिव-विष्णु के अभेद का ज्ञान, प्रकृति-पुरुष के अथवा शिव-शिवा के अभेद का ज्ञान मुक्ति को जन्म देता है।

यः शिवः सर्वशक्तिः स या शक्तिः स महेश्वरः।
धार्यधारकभावौ तावनन्तरगताविमौ।।
त्वं देवि! विष्णुभावेन त्वसौ देवो महेश्वरः।
मूढः भेदं प्रकुर्वन्ति ज्ञानबुद्धिबहिष्कृताः।।

---

[1] अन्य पुराणों (यथा लिंग) में भी प्रकृति या शिवा को विष्णुरूप स्वीकार किया गया है। इसका उल्लेख पहले के अध्यायों में किया जा चुका है। प्रकृति ही मूर्तिमान होकर विष्णुरूप में अवस्थित है। सृष्टि के प्रारंभ में ही ऐसा घटित हो गया था। इसीलिये विष्णु को मायापति भी कह दिया जाता है क्योंकि वे स्वयं ही मायारूप हैं।

न विष्णुशिवयोर्भेद एष धर्मः सनातनः।
परिपाल्य इमं धर्मं नरो मुक्तिमवाप्नुयात्।। (एकाम्र पु. 4/33-35)

ब्रह्माजी ने शिव की स्तुति करते हुए एक स्थलपर उन्हें 'ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक' कहा है(एका. पु. 4/72)। जिसका भाव यह है कि निर्गुण भगवान् सदाशिव ही ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव(रुद्र) रूपों में अपने को प्रकट करते हैं। एक ही सत्ता तीन भिन्न-भिन्न आकृतियों को धारण करती है। इस दृष्टि से तीनों देवों में तात्त्विक अभिन्नता है।

विद्वान् लोग शिव एवं विष्णु में भेद नहीं करते। वास्तव में एक ही शरीर दो रूपों में प्रकट हो रहा है। अर्द्धनारीश्वर का नारी भाग विष्णुदेव तथा पुरुष भाग स्वयं भगवान् शिव का द्योतक है। ब्रह्माजी पार्वती से कहते हैं कि हे देवि! इन दोनों में कोई भेद मत समझो, जो महेश्वर हैं वही विष्णु हैं। जो मूढ़ हैं वे ही भेद करते हैं, वे पापी तथा निर्लज्ज हैं।

न भेदश्चानयोरस्ति प्रवदन्ति विचक्षणाः।
तेन विष्णुः शिवश्चैव एकदेहो द्विधाकृतः।।
अर्द्धनारीश्वरो देवो या नारी स जनार्दनः।
न विदुर्देवि! भेदं वो यो विष्णुः स महेश्वरः।।
भेदं यः कुरुते मूढः स पापी निरपत्रपः। (एकाम्र पु. 5/23-25)

सूर्यदेव को भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों में से एक माना गया है। इस पुराण में एक स्थल पर(10/11) सूर्यदेव की विष्णु एवं शिव से अभिन्नता बतायी गयी है तथा शिव की सूर्यदेव से। इस प्रकार शिव, विष्णु तथा आदित्य ये तीनों ही तात्त्विकरूप से एक ही हैं। अन्य ग्रन्थों की भाँति यहाँ भी स्पष्टरूप से कहा गया है कि भगवान् शिव ही(ब्रह्मारूप से) सृष्टि करनेवाले, विष्णुरूप से पालन तथा रुद्ररूप से संहार करनेवाले हैं(एका. पु. 13/48 इत्यादि)। अतः इस तरह के उद्धरणों में भी त्रिदेवों की एकता का स्पष्टरूप से प्रतिपादन किया गया है।

एक स्थलपर स्वयं भगवान् शिव ब्रह्माजी से कहते हैं कि हमारे और विष्णु के बीच कोई भेद नहीं है और न ही आप और मेरे में कोई भेद है।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं जगद्योने पितामह!।
भवतो मम विष्णोश्च नास्ति भेदः शृणुष्व च।।
निर्भेदावयवा वां हि भवानहमतो यतः। (एकाम्र पु. 14/41, 42)

एक प्रसंग में भगवान् शिव एवं विष्णु दोनों ही एक दूसरे के प्रति कह रहे हैं कि हम दोनों में कोई अन्तर नहीं है(एका. पु. 18/84, 86)। भगवान् शिव मुनियों तथा देवों आदि द्वारा मुक्तिप्रदायक ज्ञान के बारे में प्रश्न किये जानेपर उत्तर देते हुए एक स्थलपर कहते हैं कि जो हम तीनों(देवों) में भेद करता है वह नरक को प्राप्त करता है। जो विष्णु हैं वही ब्रह्मा हैं तथा जो ब्रह्मा हैं वही महेश्वर

हैं। महान् ईश्वर ही यह आत्मा तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर है। ब्रह्मा तथा विष्णु एक एवं निरञ्जन हैं उन दोनों से परे परमेश्वर है। वह तीनों गुणों से परे है। उस गुणातीत ईश्वर से परे सदाशिव हैं जिन्हें परमब्रह्म कहा जाता है।

नरकं प्रतिपद्येत अस्माकं भेदकृत् पुमान्।
यस्तु विष्णुः स वै ब्रह्मा ब्रह्मा चैव महेश्वरः।।
महानीश्वर एवात्मा विष्णुब्रह्ममहेश्वरः।
ब्रह्माविष्णु स एवैको निरञ्जन उदाहृतः।
तस्मात् परतरो देवो विख्यातः परमेश्वरः।।
स बाह्यस्त्रिगुणेभ्यस्तु ईश्वरः परमः स्वराट्।
तस्मात् सदाशिवो देवः परं ब्रह्म स उच्यते।। (एकाम्र पु. 47/94, 96-98)

शिव ही ब्रह्मा हैं, विष्णु हैं तथा वे ही ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक हैं। उस प्रभु की ही तीन मूर्तियाँ तीनों गुणों के कारण हैं। एक ही सत्ता सृष्टि, स्थिति एवं संहार के लिये तीन शरीर या रूप धारण करती है। और वह सत्ता सदाशिव है।

शिवो ब्रह्मा शिवो विष्णु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकौ।
त्रयस्त्रिगुणसम्पन्ना स्त्रयीमूर्त्तिभृतः प्रभुः।।
एकोऽपि त्रितयं याति सर्गस्थित्यन्तकारणात्। (एकाम्र पु. 59/50-51)

उपसंहार

मूलतः उड़िया लिपि मे लिखे गये इस उपपुराण में एकाम्रक्षेत्र (भुवनेश्वर के आस-पास का क्षेत्र) के माहात्म्य की चर्चा विशेषरूप से की गयी है। इसमें लगभग 6000 श्लोक तथा 70 अध्याय हैं।

इस पुराण में भगवान् शिव को परमतत्त्व स्वीकार करते हुए उसके सगुण एवं निर्गुण दोनों पक्षों की चर्चा की गयी है। उन्हें निर्गुण, निराकार, निराभास, निरञ्जन, एक, परमतत्त्व, परमब्रह्म, स्वयंभू, निर्विकार, चिदानंद, परमानंद, ॐकारस्वरूप, इन्द्रियातीत, मन-वाणी से परे, अजन्मा, सुर, नर, मुनि, असुर तथा ब्रह्मा-विष्णु द्वारा अज्ञेय, सनातन, पुराण-पुरुष, सृष्टि, स्थिति तथा संहार का कारण, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप, पंचमुखी, जटाधारी, शशीकला से युक्त, त्रिलोचन, चिताभस्म से विभूषित, व्याघ्र एवं गज चर्मधारी, नागेन्द्र को धारण करनेवाले, पिनाक, शूल, यष्टि, वज्र आदि आयुधों को धारण करनेवाले, स्फटिक के समान निर्मल, कर्पूर के समान गौरवर्णवाले, अतिकृपालु, तरुण शरीरवाले, भूतपति, पार्वती को आधे अंग में धारण करनेवाले, तीनों भुवनो का मंगल करनेवाले, सभी प्रकार के भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले, सर्वश्रेष्ठ देवता, अव्यय, अनन्त, असंख्य, सभी गुणों के आधार, गुणातीत, सांख्य-योगस्वरूप, विभु, विश्वेश्वर, भक्तवत्सल, मूर्त एवं अमूर्त, देव, असुर, मनुष्य, मुनि, गन्धर्व आदि सभी द्वारा पूज्य, सर्वज्ञानमय, वरदाता, अप्रमेय, अपार, अयोनिज, जन्म, मृत्यु, तथा जरा से रहित, दिगम्बर, पशुपति, रुद्राक्षमालाधारी, यज्ञ एवं वषट्कार स्वरूप, द्वन्द्व एवं मोह

को शान्त करनेवाले, सबके शरणस्थल, योगियों के ध्येय, निरपेक्ष, लोकसाक्षी, नीलकण्ठ, सभी नामों एवं रूपों को धारण करनेवाले, अमृतदायक, ध्रुव, दिव्य-चैतन्य, निर्विकार, ज्ञानार्णव, परम ज्योति, भक्ति प्रिय तथा ज्ञानगम्य आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है। इन विशेषणों में भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की झलक प्राप्त होती है।

भगवान् शिव चारों पुरुषार्थों को प्रदान करनेवाले, अति कृपालु, भक्तवत्सल, जगत् के आनंद को बढ़ानेवाले, दुःखियों को शरण देनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले तथा सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। इस कारण से इनकी भक्ति करनी चाहिये। इनकी भक्ति से ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, इन्द्रादि देवता तथा अन्य मानव-दानव आदि सभी ने मनोवांछित वर पाये हैं।

एकाम्रक्षेत्र काशी के समान, करोड़ लिंगों से युक्त पवित्र शैव-स्थल है। यहाँ शरीर त्यागनेवाले को मुक्ति तथा स्नान-पूजन करनेवाले की सभी कामनायें पूरी होती हैं और उनके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं। इस क्षेत्र में बिन्दु सरोवर, सिद्धेश्वर तथा रामेश्वर आदि तीर्थ हैं जो समानरूप से पापों को धोनेवाले तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। इस क्षेत्र में भगवान् शिव सदैव विराजमान रहते हैं। इस क्षेत्र की तीन प्रदक्षिणा, चाहे वह किसी भी दिशा से की जाय, करने से एक ही दिन में तीन करोड़ जन्मों के पापों से छुटकारा हो जाता है।

इस पुराण में भगवान् शिव संबंधी कई स्तोत्रों का उल्लेख है, जिनके पाठ से सभी कामनायें पूरी होती हैं तथा अन्त में मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इन सभी स्तोत्रों में तुण्डिकृत शिव-सहस्रनाम की काफी प्रशंसा की गयी है। इसे शिव का सर्वाधिक प्रिय स्तोत्र बताया गया है। पंचाक्षर मंत्र को सर्वश्रेष्ठ मन्त्र बताया गया है तथा ॐकार के जप से मोक्षप्राप्ति की बात कही गयी है।

इस पुराण में शिवरात्रिव्रत की चर्चा में बताया गया है कि इसके प्रभाव से चाण्डाल भी शिव को प्राप्त कर लेता है। यह व्रत पापों को नष्ट करनेवाले तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले है। इस व्रत के अन्तर्गत रात्रि के प्रत्येक प्रहर में दुग्ध, दधि, घृत तथा मधु द्वारा शिव की पूजा तथा व्रतसमाप्ति पर इन्हीं के द्वारा अभिषेक करना चाहिये। तदनन्तर लिंग की पूजा करनी चाहिये। रात्रि के प्रत्येक प्रहर में 32 उपचारों द्वारा शिव-पूजन कर बिल्व-पत्रों की वृष्टि करनी चाहिये। शिवरात्रि की पूजा का दर्शन भी पूजा के समान फल देनेवाले कहा गया है।

अन्य ग्रन्थों की भाँति इस पुराण में भी शिव एवं विष्णु अथवा त्रिदेवों की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन किया गया है। जो शिव एवं विष्णु में भेद करते हैं उन्हें मूर्ख, निर्लज्ज तथा नरकगामी कहा गया है। भगवान् शिव ही सर्ग, स्थिति तथा प्रलय के हेतु गुणों का आश्रय ले अपने को तीन रूपों-ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र-में व्यक्त करते हैं। अतः इन तीनों में कोई भेद नहीं है। जो इनमें अभेद का दर्शन करता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है। क्योंकि उसकी ज्ञानदृष्टि में सर्वत्र एक ही तत्त्व की व्यापकता नजर आती है(इस प्रकार की दृष्टि मोक्षप्राप्ति के लिये आवश्यक शर्त है)।

(प्रस्तुत निबंध डॉ. उपेन्द्र नाथ ढल द्वारा सम्पादित तथा 1986 में नाग पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'एकाम्रपुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)

श्रीमद्देवीभागवत[1] में शैवतत्त्व

श्रीमद्देवीभागवत का महत्त्व शाक्तों के लिये उसी प्रकार का है जिस प्रकार श्रीमद्भागवत का वैष्णवों के लिये। प्राचीन काल से ही शाक्त–भक्त इसे 'शाक्त–भागवत' या देवीभागवत कहते चले आ रहे हैं। इसे यद्यपि महापुराणों में नहीं गिना जाता तथापि शाक्तों के गलये इसका दर्जा किसी भी महापुराण से कम नहीं है। इस पुराण में देवी या शक्ति की ही गरिमा को मण्डित किया गया है। अर्थात् इस पुराण की प्रमुख उपास्या देवी या शक्ति हैं। इस पुराण में भगवान् शिव संबंधी प्रसंगो की अपेक्षाकृत थोड़ी चर्चा है। परन्तु जहाँ कहीं भी चर्चा है वहाँ भगवान् शिव को ही उच्चतम देव स्वीकार किया गया है।

भगवान् शिव का स्वरूप

किसी प्रसंग में वसिष्ठजी ने भगवान् शंकर की स्तुति में उन्हें कल्याणस्वरूप, मंगलकर्त्ता, जटाधारण करनेवाले, पार्वती को अर्द्धांग में धारण करनेवाले, कैलासवासी, चन्द्रमा को ललाट पर धारण करनेवाले, भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाले, भगवान्, नीलकण्ठ, शरणागतों का भय दूर करनेवाले, वृष को वाहन के रूप में प्रयोग करनेवाले, शरणागतवत्सल, सृष्टि, स्थिति एवं संहार के समय ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप धारण करनेवाले, वर देने में सदा तत्पर रहनेवाले तथा देवाधिदेव आदि कहा है। (दे. भा. माहा. अध्या. 3/33–37)

नमो नमः शिवायास्तु शंकराय कपर्दिने।
गिरिजार्द्धाङ्गदेहाय नमस्ते चंद्रमौलये।।
मृडाय सुखदात्रे ते नमः कैलासवासिने।
नीलकण्ठाय भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने।।
शिवाय शिवरूपाय प्रपन्नभयहारिणे।
नमो वृषभवाहाय शरण्याय परात्मने।।
ब्रह्मविष्ण्वीशरूपाय सर्गस्थितिलयेषु च।
नमो देवाधिदेवाय वरदाय पुरारये।।
यज्ञरूपाय यजतां फलदात्रे नमो नमः।
गंगाधराय सूर्येन्दुशिखिनेत्राय ते नमः। (श्रीमददे. भा. माहात्म्य अ. 3/33–37)

उपरोक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि संसार की सृष्टि, स्थिति तथा लय के मूल कारण भगवान् शिव ही हैं तथा वे ही त्रिदेवों के रूप में अपने आपको प्रकट करते हैं। इस प्रकार वे ही जगत् के

---

[1] प्रस्तुत निबंध गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त 'श्रीमद्देवीभागवत' का चतुर्थसंस्करण तथा 'श्रीमद्देवीभागवतम्' जो रामतेज पाण्डेय द्वारा संपादित तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी द्वारा 1986 में प्रकाशित है, पर आधारित है।

मूलकारण तथा परमदेव सिद्ध होते हैं।

किसी प्रंसग में(जिसकी चर्चा इसी पुस्तक के द्वितीय भाग के लेख, 'लक्ष्मीजी का शिवपूजन' में है) लक्ष्मीजी ने भगवान् शिव की उपासना(देवताओं के वर्ष से) एक हजार वर्षतक की। तपस्या के समय उन्होंने भगवान् शिव के जिस रूप का ध्यान किया था वह इस प्रकार है – जिनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं; गौरी जिनके अर्द्धांग की शोभा बढ़ा रही हैं, जिनका कपूर के समान गौर शरीर है, जिनका कण्ठ नीला है और तीन आँखे हैं, जो बाघाम्बर पहने और हाथी के चर्म की चादर ओढ़े हुए हैं, जिनके गले में नरमुण्डों की माला है, जो साँप का यज्ञोपवीत पहने हुए हैं, तथा जिनके मस्तकपर चन्द्रमा अलंकृत है।(दे. भा. स्क. 6 / अध्याय 18 / 14 – 15)

पञ्चाननं दशभुजं गौरी देहार्धधारिणम्।
कर्पूरगौरदेहाभं नीलकंठं त्रिलोचनम्।।
व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम्।
कपालमालाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम्।। (दे. भा. स्क. 6 / 18 / 14 – 15)

इस प्रकार हम भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की झलक इस पुराण में पाते हैं। निर्गुणरूप में वे सबके कारण हैं तथा सगुणरूप में कैलासवासी तथा उपरोक्त विशेषताओं से युक्त हैं।

शंखचूड से युद्ध करने के लिये पहुँचे हुए भगवान् शिव के गुणों को बताते हुए उन्हें भक्तों की मृत्यु को हरनेवाला, गौरीकान्त, सभी संपदाओं तथा तप के फलों को देनेवाला, आशुतोष, भक्तों पर अनुग्रह करनेवाला, विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वम्भर(जगत् का पालन करनेवाला), संहारकारी, कारणों का कारण, नरक समुद्र से तारनेवाला, ज्ञान का बीज, सनातन तथा ज्ञान प्रदान करनेवाला कहा गया है।

भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोहरम्।
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्।।
आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम्।
विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम्।।
विश्वम्भरं विश्ववरं विश्वसंहारकारकम्।
कारणं कारणानाम् च नरकार्णवतारणम्।।
ज्ञांनप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम्। (दे. भा. 9 / 21 / 24 – 27)

इस पुराण में न केवल लक्ष्मीजी को अपितु भगवान् श्रीकृष्ण को भी(पुत्रप्राप्ति के लिये) भगवान् शिव की उपासना करते हुए दिखाया गया है। उपमन्यु से शैवी दीक्षा ले भगवान् श्रीकृष्ण ने शिव को प्रसन्न कर उनसे वरदान प्राप्त किया।(दे. भाग. स्क. 4 / अ. 25 / 29 – 66)

पुत्र के लिये कठोर तपस्या करते हुए जब छः मास बीत गये तब भगवान् शिव ने कृष्णजी के समक्ष प्रकट हो उनसे वरदान माँगने के लिये कहा। उन्हें देख श्रीकृष्ण ने चरणों में प्रणामकर स्तुति

करनी प्रारंभ कर दी। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को देवदेव, जगन्नाथ, सभी प्राणियों के दुःखों का नाश करनेवाले, विश्वयोनि, देव-शत्रुओं का नाश करनेवाले, तीनों लोकों के जन्मदाता, नीलकंठ तथा शूल धारण करनेवाले इत्यादि कहा है।

देवदेव जगन्नाथ सर्वभूतार्तिनाशन।।
विश्वयोने सुरारिघ्न नमस्त्रैलोक्य कारक।
नीलकंठ नमस्तुभ्यं शूलिने ते नमोनमः।। (दे. भा. 4/25/39-40)

किसी प्रसंग में धर्मराज कहते हैं कि भगवान् शंकर के भक्तों से मेरे दूत इस प्रकार डरते हैं, जैसे गरुड़ से सर्प। मैं दूतों को शिवभक्तों के पास जाने से रोकता हूँ। (दे. भा. 9/36/19)

भीताः शिवोपासकेभ्यो वैनतेयादिवोरगा।
स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छंतं वारयाम्यहम्।। (दे. मा. 9/36/19)

उपरोक्त उद्धरणों से पता चलता है कि भगवान् शिव की गरिमा इतनी है कि उनकी उपासना लक्ष्मीजी तथा श्रीकृष्ण जैसे लोग करते हैं तथा जिनसे धर्मराज के दूत भी भय खाते हैं। पुनः भगवान् शिव को ज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा ज्ञान का अधिष्ठाता कहा गया है। उन्होंने ही मुक्ति को प्रकाशित करनेवाले सात्विक तन्त्र-शास्त्रों की रचना की है। (स्क. 9/अ. 12/पृ. 558, संक्षिप्त श्रीमददेवी. भा. गीताप्रेस)

त्रिदेवों की एकता

सूतजी देवीभागवत की कथा सुननेवालों की योग्यता बताते हुए कहते हैं कि "जो ब्रह्मा, विष्णु और शंकर में भेद दृष्टि रखते हैं उन्हें कथा सुनने का अधिकार नहीं है।" (माहात्म्य अ. 5/41-42)

बह्मविष्णुमहेशानां मध्ये ये भेद दर्शिनः।।
.... ये न ते योग्याः कथाश्रवे।। (दे. भा. माहात्य 5/41-42)

हम ऊपर वसिष्ठजी की स्तुति में देख चुके हैं कि एक ही परमतत्त्व भगवान् शिव सृष्टि, पालन तथा संहार के लिये तीन रूप (ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र) धारण करते हैं। अतः निष्कर्ष यह है कि तीनों देव तत्त्वतः एक ही हैं।

ऊपर के सन्दर्भों में हमने एक ज़गह लक्ष्मी द्वारा शिवोपासना की चर्चा की है। उसी प्रसंग में आगे बताया गया है कि लक्ष्मी की तपस्या से प्रसन्न हो भगवान् शिव वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। वे लक्ष्मी के समक्ष पहुँचकर उनसे पूछते हैं कि तुम तपस्या क्यों कर रही हो? क्योंकि तुम्हारे पतिदेव सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ हैं तथा अखिल लोक के अध्यक्ष हैं। ऐसे जगत्प्रभु वासुदेव को छोड़कर मेरी आराधना क्यों कर रही हो? पति की सेवा करना स्त्रियों का सनातन धर्म है, फिर नारायण तों सबके लिये निरन्तर पूज्य हैं। ऐसे देवेश्वर श्रीहरि को छोड़कर तुम मेरी उपासना क्यों कर रही हो?

उत्तर में लक्ष्मीजी ने तपस्या का कारण बताते हुए कहा कि "आपमें और श्रीहरि में कभी

किंचिन्मात्र भी भेद-भाव नहीं है। प्रभो! मैं पतिदेव के पास थी, तभी से मुझे यह रहस्य ज्ञात है। जो आप हैं, वही वे हैं और जो वे हैं, वही आप हैं- इसमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है। आप दोनों महानुभाव एक ही हैं-यह समझकर मैंने आपका चिन्तन किया है, अन्यथा आपकी सेवा करने से मैं दोष की भागिनी बन जाती।"

मयैतद्गिरिजाकांत ज्ञातं पत्युः पुरो हर।
यस्त्वं सोऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः।।
एकत्वं च मया ज्ञात्वा मया ते स्मरणं कृतम्।
अन्यथा मम दोषस्त्वामाश्रयंत्या भवेच्छिव।। (दे. मा. 6/18/31-32)

इस उत्तर को सुनकर पुनः भगवान् शिव लक्ष्मीजी से बोले- देवी! मैं और श्रीहरि बिल्कुल एक हैं-तुमको इस रहस्य का पता कैसे लगा? देवता, मुनि, ज्ञानी और वेदों के पारगामी पुरुष भी तर्क-वितर्क में पड़े रहकर इस एकत्व के रहस्य को नहीं समझ पाते हैं। मेरे बहुत से भक्त भगवान् विष्णु की और उनके भक्त मेरी निन्दा करने में सदा तत्पर रहते हैं। देवी! कलियुग में इस बात की बड़ी विशेषता रहेगी। समय के भेद से यह भेद-भाव बढ़ता चला जा रहा है। भद्रे! मुझमें और श्रीहरि में सम्यक प्रकार से एकता है- यह भाव जानना प्रायः सबके लिये महान् कठिन है। फिर तुम कैसे जान गयी।

कथं ज्ञातस्त्वया देवि मम तस्य च सुन्दरि।
ऐक्यभावो हरेर्नूनं सत्यं मे वद सिंधुजे।।
एकत्वं च न जानंति देवाश्च मुनयस्तथा।
ज्ञानिनो वेदतत्वज्ञाः कुतर्कोपहताः किल।।
मद्भक्ता वासुदेवस्य निंदका बहवस्तथा।
विष्णुभक्तास्तु बहवो मम निंदापरायणाः।।
भवंति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः।
कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः।।
सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभः। (दे. भा. 6/18/33-37)

उत्तर में लक्ष्मीजी ने कहना शुरू किया। एक समय की बात है-भगवान् विष्णु एकान्त में पद्मासन लगाये बैठे ध्यान कर रहे थे। जब वे यों तप कर रहे थे, तब उन्हें देखकर मुझे महान् आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर बाद जब उनकी समाधि टूटी तो मैंने उनसे पूछा कि प्रभो! आप देवताओं के अध्यक्ष एवं जगत् के स्वामी हैं। आपको ही मैं सम्पूर्ण देवताओं में श्रेष्ठ मानती हूँ। फिर आप किसका ध्यान कर रहे हैं? यह प्रसंग मेरे मन को आश्चर्य में डाल रहा है, अतः आप मेरी इस मानसिक उलझन को दूर करने की कृपा करें।

तब भगवान् विष्णु मुझसे बोले-प्रिये! मैं हृदय में जिनका ध्यान कर रहा हूँ वे पार्वतीपति

भगवान् शंकर सबसे प्रधान माने जाते हैं। तुरंत प्रसन्न हो जाना उनका स्वाभाविक गुण है। उनके पराक्रम की कोई सीमा नहीं है। कभी तो ऐसा होता है कि त्रिपुरासुर का वध करनेवाले वे देवेश मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं उनका करता हूँ। उनके प्रिय प्राण मैं हूँ और मेरे प्रिय प्राण वे हैं। हम दोनों का चित्त परस्पर गुँथा हुआ है। अतः दोनों में किंचिन्मात्र भेद नहीं समझना चाहिये। जो भगवान् शंकर से द्वेष करते हैं, वे मेरे भक्त ही क्यों न हों, किन्तु नरक में जाना उनके लिये अनिवार्य है।

कदाचिद् देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः।
ध्यायाम्यहं च देवेशं शंकरं त्रिपुरान्तकम्।।
शिवस्याहं प्रियः प्राणः शंकरस्तु तथा मम।
उभयोरन्तरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसः।।
नरकं यान्ति ते नूनं ये द्विषन्ति महेश्वरम्।
भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्।। (दे. भा. 6/18/45-47)

अन्य शैवतत्त्व

शैवों में ही नहीं अपितु सभी प्रकार के उपासकों में शिवरात्रि व्रत प्रसिद्ध है। इस व्रत की महिमा को बताते हुए इस पुराण में कहा गया है कि इसे करनेवाला व्यक्ति दीर्घकालतक शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। जो शिवरात्रि के दिन भगवान् शंकर को बिल्वपत्र चढ़ाता है वह अनेक युगोंतक कैलास में वास करता है। पुनः श्रेष्ठ योनि में जन्म लेकर भगवान् शिव का परम भक्त होता है। विद्या, पुत्र, सम्पत्ति, प्रजा और भूमि-ये सभी उसके लिये सुलभ होते हैं।(दे. भा. 9/30/72-73)

शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः।
पत्रमानयुगं तत्र मोदते शिवमन्दिरे।।
पुनः सुयोनिं संप्राप्य शिवभक्तिं लभेद्ध्रुवम्।
विद्यावान् ....।। (दे. भा. 9/30/72-73)

जो व्रती पुरुष चैत्र अथवा माघ मास में शंकरजी की पूजा करता है तथा बेंत लेकर उनके सम्मुख रात-दिन भक्तिपूर्वक नृत्य करने में तत्पर रहता है, वह चाहे एक मास, आधा मास, दस दिन, सात दिन अथवा दो ही दिन या एक ही दिन ऐसा क्यों न करे, उसे भगवान् शिव के लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है।(दे. भा. 9/30/74-75)

जो पुरुष प्रतिदिन पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवलिंग की पूजा करता है और जीवनभर इस नियम का पालन करता रहता है, वह भगवान् शिव के धाम में जाता है और लम्बे समयतक शिवलोक में प्रतिष्ठित रहता है, तत्पश्चात् भारतवर्ष में आकर राजेन्द्रपद को सुशोभित करता है।(दे. भा. स्क. 9/अ. 30/110-111)

शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिंगं च पार्थिवम्।

यावज्जीवनपर्यंतं सयाति शिवमंदिरम्।।
मृदो रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते।
ततः पुनरिहागत्य राजेंद्रो भारते भवेत्।। (दे. भा. 9/30/110 - 111)

रुद्राक्ष - धारण की महिमा का वर्णन करते हुए रुद्राक्षों के प्रकार, मालाओं के लक्षण और प्रकारभेद, मालाधारण की विधि, उनके फल तथा रुद्राक्ष की महान् महिमा का बड़े विस्तार से इस पुराण (स्कन्ध 11/अध्याय 3 से 7) में वर्णन किया गया है।

रुद्राक्ष धारणकर प्रणव के साथ पचांक्षर मंत्र (**ॐ नमः शिवाय**) का जप करना चाहिये। निष्कपट भक्ति के साथ प्रसन्नतापूर्वक रुद्राक्ष की माला धारण करना चाहिये। इसे धारण करना भगवान् शंकर के साक्षात् ज्ञान का साधन है। सभी वर्ण रुद्राक्ष की माला धारण कर सकते हैं। भेद यही है कि द्विज मन्त्र से करें और शूद्र बिना मन्त्र के। रुद्राक्ष धारण करने से पुरुष स्वयं भगवान् शंकर के समान हो जाता है। रुद्राक्ष की महिमा का बखान नहीं किया जा सकता। (संक्षिप्त श्रीमद दे. भ. पृ. 691)

रुद्राक्षों के वर्ण, मुखों के अनुसार भेद, उनके देवता तथा धारण करने के फल तथा विधि आदि के वर्णन इस पुराण में भी लगभग उसी प्रकार के पाये जाते हैं जैसे शिवपुराणादि ग्रन्थों में। रुद्राक्षधारी को लहसुन, प्याज, सहिंजना तथा लिसौड़ा का फल आदि नहीं खाना चाहिये। ग्रहण, विषुव, संग्राम, संक्रान्ति, अयन, अमावस्या और पूर्णमासी आदि पर्वो तथा पुण्य दिवसों में सदा रुद्राक्ष धारण किये रहने से व्यक्ति सभी पापों से तुरंत छूट जाता है। विस्तृत जानकारी के लिये देखें - (दे. भा. स्क. 11/अ. 4 - 7)

मद्यं मांसं च लशुनं पलांडुं शिग्रुमेव च।
श्लेष्मातकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः।।
ग्रहणे विषुवे चैव संक्रमे अयने तथा।

……………………………………………………

रुद्राक्षधारणात्सद्यः सर्व पापैः प्रमुच्यते।। (दे. भा. 11/7/40 - 41)

इस पुराण के एकादश स्कन्ध के 15 वें अध्याय में भस्म - माहात्म्य, भस्म - भेद, भस्मधारणविधि आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। भस्म - माहात्म्य को बड़े ही विस्तार से वर्णन करने के बाद त्रिपुण्ड्र की महिमा को भी बताया गया है। इस पुराण की भस्म माहात्म्य - संबंधी एक कथा इसी पुस्तक के द्वितीय भाग में 'दुर्वासा की शिवभक्ति' शीर्षकवाले लेख में वर्णित है। वहाँ बताया गया है कि दुर्वासा के मस्तक से झड़े हुए भस्मकण कुंभीपाक नरक को स्वर्गतुल्य बना दिये थे। नरक का स्वर्ग बनना भस्म की महिमा के कारण संभव हुआ था। (दे. भा. स्क. 11/अ. 15/64 - 67)

उपसंहार

इस उपपुराण में सर्वत्र देवी की ही महिमा का गुणगान हुआ है। इसके बावजूद प्रसंगवश भगवान् शिव के माहात्म्य के साथ-साथ कुछ अन्य शैवतत्त्वों की भी चर्चा इस पुराण में मिलती है। भगवान् शिव को सृष्टि, स्थिति तथा लय का मूल कारण अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के भी परम कारण, भुक्ति-मुक्तिदाता, पार्वती को अर्द्धांग में धारण करनेवाले, लक्ष्मी, कृष्ण, शुक्राचार्य आदि को वर देनेवाले, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, ज्ञान का अधिष्ठाता, मुक्ति को प्रकाशित करनेवाले तन्त्रशास्त्रों की रचना करनेवाले माना गया है। इसमें भगवान् शिव के सगुण-साकार रूप का भी वर्णन किया गया है।

इस 'पुराण में तीनों देवों की एकता का भी प्रतिपादन किया गया है। विशेषकर शिव एवं विष्णु की अभिन्नता का बड़े ही विस्तार से वर्णन किया गया है। शिवरात्रि व्रत, चैत्र एवं माघ मास में शिवपूजा तथा पार्थिव लिंगपूजा के फलों की भी चर्चा की गयी है। इसी प्रकार रुद्राक्षधारण की महिमा के साथ-साथ उसके मुखों के अनुसार भेद, वर्ण, उनके देवता तथा नाना प्रकार के रुद्राक्ष धारण करने के उनके अपने-अपने फलों की चर्चा तथा धारण विधि आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसे धारण करनेवाले को लहसुन, प्याज आदि नहीं खाना चाहिये। इसे पुण्य अवसरों पर धारण किये रहने से व्यक्ति सभी पापों से तुरंत छूट जाता है। रुद्राक्ष की ही भाँति इस पुराण में भस्म माहात्म्य, भस्म के भेद तथा भस्म एवं त्रिपुण्ड्र धारण की विधि आदि का वर्णन विस्तार से किया गया है। रुद्राक्ष एवं भस्म संबंधी बातों का वर्णन अन्य पुराणों या ग्रन्थों के वर्णन के समान ही हैं।

अन्त में अगर हम शिव एवं देवी के अद्वैत को(अर्थात् उनके अभेद को)स्वीकार करें जैसा कि सभी शैवशास्त्रों(तथा इस देवीभागवत् में भी शिवा को शिव का अर्द्धांग मानकर उनकी एकता को माना गया है) ने माना है तो इस पुराण में भी सर्वत्र वर्णित देवी के माहात्म्य को प्रकारान्तर से शिव का ही माहात्म्य समझा जाना चाहिये। दूसरे शब्दों में इस पुराण में सर्वत्र देवी के माहात्म्य की की गयी चर्चा वस्तुतः शिव की ही चर्चा मानी जा सकती है।

* * *

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः।।

(नार. महापु. पूर्वखण्ड 11/100)

जिस प्रकार अनजान में भी स्पर्श की हुई अग्नि जला देती है, ठीक उसी प्रकार दुष्प्रवृति अथवा कुभावपूर्वक अथवा अनिच्छा से भगवान् का स्मरण भी पापों को हरनेवाला होता है।

महाभागवत पुराण में शिवतत्त्व

महाभागवत पुराण देवी की महिमा को मण्डित करनेवाला एक प्रमुख उपपुराण माना जाता है। बृहद्धर्म पुराण में इसकी गणना 18 महापुराणों में की गयी है। महाभागवत पुराण स्वयं भी अपने आप को या तो पुराण या महापुराण कहता है; पर यह कभी भी अपने को उपपुराण नहीं कहता। महाभागवत एवं बृहद्धर्म पुराणों की तुलना से पता चलता है कि बृहद्धर्म भाषा एवं विषय की दृष्टि से महाभागवत से काफी समानता रखता है। महाभागवत का शाक्तों में उसी प्रकार का स्थान है जिस प्रकार देवीभागवत एवं मार्कण्डेय पुराण का। इस पुराण में कुल 81 अध्याय हैं। इस पुराण के प्रमुख वक्ता भगवान् शिव एवं श्रोता नारदजी हैं।

भगवान् शिव का स्वरूप

यद्यपि यह पुराण महादेवी की महिमा को गौरवान्वित करने के लिये लिखा गया है, तथापि इसमें भगवान् शिव की महिमा की भी पर्याप्त चर्चा है। भगवान् शिव को न केवल शक्ति या देवी से अभिन्न बताया गया है, अपितु उन्हें ब्रह्म भी बताया गया है। वे निर्गुण एवं सगुण दोनों हैं। सगुणरूप में वे ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारण कर क्रमशः जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं। भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की झलक हमें उन लोगों की स्तुतियों तथा कथाओं में प्राप्त होती है जिनका उल्लेख इस पुराण में किया गया है।

दधीचि दक्ष के प्रश्न के उत्तर में शिव की विशेषताओं को बताते हुए उन्हें नित्यानन्दमय, पूर्ण, सर्वेश्वरेश्वर (महाभागवत पु. 5/8), सर्वत्रगामी, भगवान्, सब जगह स्थित (महाभागवत पु. 5/11), त्रिलोकेश आदि (महाभागवत पु. 5/17) कहा है।

नित्यानन्दमयः पूर्णः स हि सर्वेश्वरेश्वरः।।
सर्वत्रगामी भगवान् सर्वस्थश्च सदाशिवः।। (महाभागवत पु. 5/8, 11)

ब्रह्मादि देवता, श्रेष्ठ योगीगण तथा तत्त्वदर्शी लोग भी भगवान् शिव के परमस्वरूप को नहीं जान सकते।

ब्रह्माद्यैस्त्रिदशश्रेष्ठैर्योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
यस्य तत्परमं रूपं लक्षितुं नैव शक्यते।। (महाभागवत पु. 5/10)

नन्दी भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें लोकों के आदि, परमपुरुष, संपूर्ण जगत् के विधाता, रक्षक एवं प्रलयकर्त्ता, अद्वैत ब्रह्म, सुरश्रेष्ठ, गौरीपति, वर देनेवाले, अचिन्त्य स्वरूपवाले, चन्द्रमा को धारण करनेवाले, सर्पों को आभूषण के रूप में धारण करनेवाले तथा ब्रह्मादि द्वारा अर्चित आदि विशेषताओं से युक्त बताते हैं।

त्वमादिर्लोकानां परमपुरुषः सर्वजगतां

विधाता संपाता शिव प्रलयकर्ता त्वमपि च।
....
त्वमेकं ब्रह्म त्वं सुरवर भवानीश वरद।।
अचिन्त्यं ते रूपं..................................
नमामि ब्रह्माद्यैर्नमितपदपङ्केरूहयुगम्।। (महाभागवत पु. 6/18, 19)

शिवजी को परम योगी तथा मान एवं अपमान में सम रहनेवाला बताया गया है।

शिवस्तु परमो योगी समः पूजापमानयोः। (महाभागवत पु. 7/99)

भगवान् शिव को सर्वदेवेश (महाभागवत पु. 9/3 आदि), परमेश्वर (वही 9/7 आदि), यज्ञेश्वर (वही 9/8 आदि), देवदेव तथा विभु (वही 9/23 आदि), सभी लोकों के कारण तथा परमात्मा (वही 9/67 आदि), आशुतोष (वही 10/89, 96 आदि) और अव्यय (वही 10/90 आदि) कहा गया है।

दक्षप्रजापति ने भगवान् शिव के ऐश्वर्य से परिचित होने के बाद उनकी स्तुति की। अपनी स्तुति में वे भगवान् शिव के प्रति कहते हैं कि उन्हें न तो विष्णु, न ब्रह्मा, न योगी ही जानते हैं, तब वह कैसे आपके दुर्गम्यरूप को जान सकता है? आप शुद्ध, परम, परात्परतर, ब्रह्मादि द्वारा अर्चित, परमेश्वर, पशुपति, विश्वरूप, विश्वेश्वर तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों द्वारा पूजित हैं। (महाभागवत पु. 10/91-95)

न त्वां जानाति विष्णुर्नच कमलरुहो योगविद्योगमुख्य
एवं दुर्गम्यरूपं कथमतिकुमतिर्ज्ञातुमेवास्य योग्यः।
त्वं शुद्धः परमः परात्परतरो ब्रह्मादिदेवार्चितः
....
ते सर्वे तव मूर्तयः पशुपते त्वं विश्वरूपो यतः। (महाभागवत पु. 10/91-93)

दक्ष की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने जब पूजादि ग्रहण कर लिया तब ब्रह्माजी भगवान् शिव के प्रति कहते हैं कि आप भक्तों पर अनुकम्पा करनेवाले सदाशिव हैं। जो अधम पुरुष आपके बिना अन्य देवों का भजन करते हैं, उनका यज्ञ (फल) नष्ट हो जायगा तथा वे महापातकी कहलायेंगे।

ततो ब्रह्मा महादेवं पुनः प्रोवाच भक्तितः।
भक्तानुकम्पी भगवान् त्वमेव हि सदाशिवः।।
ये त्वां विना सुराश्चान्यान्यजन्ते च नराधमाः।
हतयज्ञा भविष्यन्ति महापातकिनश्च ते।। (महाभागवत पु. 10/99, 102)

शिव एवं शक्ति की अभिन्नता को ध्यान में रखकर ही कहा गया है कि भगवान् शिव

परमब्रह्म हैं।

शिवः प्रधानः पुरुषः शक्तिश्च परमा शिवा।
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्त्वदर्शिनः।। (महाभागवत पु. 18/14)

नारदजी ने भगवान् शिव को एक स्थल पर देवदेव, जगन्नाथ, कृपामय तथा जगत्प्रभु कहा है।

देवदेव जगन्नाथ कृपामय जगत्प्रभो।
.. (महाभागवत पु. 59/1)

भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न हो जब भगवान् शिव ने दर्शन दिया तब उस समय वे पाँच मुखवाले, चाँदी के समान गौर वर्णवाले, त्रिशूल एवं व्याघ्रचर्म को धारण किये हुए, मस्तक पर जटा मण्डित, सभी अंगों में विभूति लगाये, नीलकण्ठ, प्रसन्नमुख, नागेन्द्रविभूषित, मस्तक पर सुन्दर अर्द्धचन्द्र धारण किये हुए थे। (महाभागवत पु. 66/53-54)

भगवान शिव को ऊपरोक्त रूप में देखकर भगीरथ ने 1008 नामों से उनकी स्तुति की। वे अपने सहस्रनाम स्तुति में भगवान् शिव को अन्यान्य विशेषणों तथा संज्ञाओं के साथ-साथ निम्नलिखित से भी युक्त माना है।

परात्पर, अच्युत, अनघ (पापरहित), महासत्त्व, परमेश्वर, महाज्ञानमय, विश्वेश, विश्वाश्रय, जगत्पति, सर्वज्ञाता, अज्ञान विवर्जित, सुरोत्तम, सुरवंद्य, सुरपूज्य, सुरध्येय, सुरेश्वर, शुद्ध, शुद्धबोध, शुद्धात्मा, शिव (कल्याणमय), सर्वशान्ति विधायक, सर्वार्थद (सभी प्रयोजनो को पूरा करनेवाले), शिवद (कल्याणकर्त्ता), गंगाधर, सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि को नेत्ररूप में धारण करनेवाले, शितिकण्ठ, वरद, भयत्राता, भूतात्मा, कामनाशन (कामनाओं का नाश करनेवाले), काशीविहारी, गुरु, मृत्युञ्जय, हरि, लोकों के पाप हरनेवाले, सगुण, निर्गुण, पुण्यद, परोपकारी, पापिष्ठनाशक, पापहारक, पशुपति, पाशबद्धविमोचक, परित्राता, अखिलेश्वर, पुण्डरीकाक्ष सेवित, प्रणतार्तिहर, सभी के प्रपितामह, पुत्र एवं पुत्री प्रदान करनेवाले तथा उनके रक्षक, पुत्रवत् परिपालक, परित्राता, सुरासुर निषेवित, परम वैष्णव, सर्वधर्मविधानज्ञ, सभी रोगों का प्रशमन करनेवाले, सर्वधर्मप्रदर्शक, सकलज्ञ (सब कुछ जाननेवाले), शोक का प्रशमन करनेवाले, समदर्शी, सत्प्रिय, भवबन्धु, भवबन्ध विमोचक, भोगमोक्षफलप्रद, दयावान, नानासुखप्रद, नानामूर्तिधारी, नित्यविज्ञानसंयुक्त, लोकसम्पूज्य, नारायण, नवीनबिल्वपत्रों से तुष्ट रहनेवाले, विद्यापति, चतुर्वेदमय, चतुराननपूजित, मंगल देनेवाले, असाध्यसाधक, शोकापनोदक (शोक को दूर करनेवाले), श्रीसुसेव्य, श्रीपति, श्रीस्वरूप, सर्वग (सर्वत्र गति करनेवाले), केवल आत्मस्वरूप, केवल ज्ञानस्वरूप, बृहदानन्ददायक, सर्वविपत्तिपरिनाशक, विश्वतृप्तिकर, भक्तानामीप्सितकर (भक्तों की इच्छाओं को पूरा करनेवाले), वांछिताभीष्टफलद (वांछित अभीष्ट फल को देनेवाले), जगन्नाथ तथा जगद्योनि इत्यादि। (महाभागवत पु. 67/1-125)

भगीरथ के सहस्रनाम के कुछ श्लोक देखें–

ॐ नमस्ते पार्वतीनाथ देवदेव परात्पर।
अच्युतानघ पञ्चास्य भीमास्य रुचिरानन।।
अजितामितदुर्धर्ष विश्वेश परमेश्वर।
विश्वात्मन्विश्वभूतेश विश्वाश्रय जगत्पते।।
शर्व सर्वविदज्ञानविवर्जित सुरोत्तम।
सुरवन्द्य सुरस्तुत्य सुरराज सुरोत्तम।।
त्वं शुद्धः शुद्धबोधश्च शुद्धात्मा जगतां पतिः।
....................................सगुणो निर्गुणो गुणी।।
परोपकारी पापिष्ठनाशकः पापहारकः।
सुरज्येष्ठः सुरश्रेष्ठः सुरासुरनिषेवितः।।
भवबन्धुर्भवहरो भवबन्धनमोचकः।
भुवनेशो भूतपूज्यो भोगमोक्षफलप्रदः।।
नानासुखप्रदो नानामूर्तिधारी च नर्तकः।
नित्यविज्ञानसंयुक्तो नित्यरूपोऽनिलोऽनलः।।
चतुर्वेदमयश्चक्षुश्चतुराननपूजितः।
असाध्यसाधकः शूरसेव्यः शोकापनोदनः।।
केवलात्मस्वरूपश्च केवलज्ञानरूपकः।

(महाभागवत पु. 67/1, 3, 5, 7, 35, 42, 60, 75-76, 79, 90, 97, 104)

अर्थात्–ॐकारस्वरूप पार्वतीनाथ, देवों के देव, परात्पर, अच्युत, अनघ, पंचवदन, अजित, अमित, दुर्धर्ष, विश्वेश, परमेश्वर, विश्वात्मन्, विश्वभूतेश, विश्वाश्रय, जगत्पति, सर्वज्ञ, अज्ञानरहित, सुरोत्तम, देवताओं द्वारा वन्दित तथा स्तुत्य तथा देवों के राजा आपको नमस्कार है। आप शुद्ध, निर्मलबोधस्वरूप, शुद्धात्मा, जगत् के पति, सगुण, निर्गुण, गुणवान्, परोपकारी, पापियों का नाश करनेवाले, पाप का हरण करनेवाले, देवताओं में ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ, सुरासुर द्वारा सेवित, जगत् के बन्धु, भवहारी, भवबन्धनमोचक, भुवनों के स्वामी, भूतों द्वारा पूज्य, भोगमोक्षफलदाता, नाना सुखों के दाता, नानामूर्तिधारी, नर्तक, नित्य विज्ञान से संयुक्त, अग्नि एवं वायुरूपवाले, चतुर्वेदमय, ब्रह्मा द्वारा पूजित, असाध्य के भी साधक, वीरों द्वारा सेव्य, शोक को दूर करनेवाले, केवल आत्मस्वरूप तथा केवल ज्ञानरूपवाले हैं।

ऊपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् शिव ही (शक्ति से युक्तरूप में) ब्रह्म हैं। जब शक्ति निष्क्रिय रूप में होती है तो शिव निर्गुण होते हैं। जब उनकी इच्छा से शक्ति क्रियाशील

हो जाती है तो ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रादि देवों की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर ये तीनों प्रमुख देव सृष्टिव्यापार को शिवेच्छा के अनुरूप चलाते हैं। निर्गुण शिव बह्मा, विष्णु, योगी तथा विद्वानों - सभी के द्वारा अज्ञेय हैं। यही कारण है कि दक्ष भगवान् शिव के ऐश्वर्य को नहीं पहचान सका और उन्हें एकादश रुद्रों में से एक समझकर उनकी निन्दा की। दक्ष की शिवस्तुति (10/91-93) से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। सगुण शिव के अनेकों विशेषण एवं संज्ञायें इस पुराण में प्रयुक्त हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख ऊपर हो चुका है। सगुण-साकार शिव कैलासवासी हैं। वे सदाशिव के पूर्णावतार हैं जो लोक-कल्याण के लिये वहाँ रहते हैं। जबकि सदाशिव शिवलोक में रहते हैं जहाँ पर ब्रह्मा-विष्णु आदि की भी पहुँच नहीं है।

अपूर्वः शिवलोकः स विष्णुब्रह्मादिदुर्लभः ॥ (महाभागवत पु. 5/12)

शिवोपासना

भगवान् शिव के स्वरूप की ऐसी अनेक विशेषतायें हैं जो शिवभक्ति के आकर्षण को बढ़ाती हैं। उदाहरण के लिये उन्हें आशुतोष अथवा शीघ्र प्रसन्न होनेवाला (महाभागवत पु. 6/89 आदि), शरणागतवत्सल (वही 6/15 आदि), दीनों पर दया करनेवाला (वही 6/20, 67/77), वर देनेवाला (वही 6/18, 67/9, 17 इत्यादि), पूजा से स्वर्ग प्राप्त करानेवाला (वही 6/20 आदि), दयानिधि (वही 10/96, 67/77 आदि), भक्तानुकम्पी (वही 10/99, 6/16 आदि), सुरासुर तथा लोक द्वारा पूज्य (वही 67/5, 60, 80 आदि), कल्याणरूप (वही 67/8), सर्वार्थद अर्थात् सभी प्रयोजनों को पूरा करनेवाला (वही 67/9), कल्याणकर्त्ता (वही 67/9, 95 आदि), भयत्राता (वही 67/19 आदि), कामनाओं का नाश करनेवाला (वही 67/20 आदि), पाप हरनेवाला (वही 67/35, 40-42 आदि), परोपकारी (वही 67/42 आदि), पाश में बँधे हुए को छुड़ानेवाला (वही 67/44-45 आदि), परित्राता (वही 67/47, 54 आदि), प्रणतजनों के दुःख को हरनेवाला (वही 67/51, 130 आदि), पुत्र-पुत्री देनेवाला तथा उनका रक्षक (वही 67/53), पुत्रवत् परिपालक (वही 67/54), सर्वरोगापहारक (वही 67/62), सर्वधर्म प्रदर्शक (वही 67/63), शोकहन्ता (वही 67/65, 97, 100 आदि), समदर्शी (वही 67/71), सहिष्णु (वही 67/72), भवहर (वही 67/75), भोगमोक्ष फलप्रद (वही 67/76 आदि), नाना प्रकार का सुख देनेवाला (वही 67/79), विद्या के स्वामी (वही 67/86 आदि), ब्रह्मा द्वारा पूजित (वही 67/90 आदि), असाध्य-साधक (वही 67/97, 100 आदि), लक्ष्मीजी द्वारा सेव्य (वही 67/98 आदि), सर्वविपत्तिनाशक (वही 67/110 आदि), विश्व को तृप्त करनेवाला (वही 67/112-113) तथा मनोवांछित फल देनेवाला (वही 67/115-116 आदि) आदि-आदि कहा जाता है।

दधीचि दक्ष को समझाते हुए कहते हैं कि भगवान् शिव के अभाव में कोई भी यज्ञकर्म पूरा नहीं होता। अर्थात् वह फलप्रद नहीं होता।

विना तेन (शिवेन) कृतो यज्ञः कदाचिन्न फलप्रदः।
यथाऽर्थवर्जितं वाक्यं श्रुतिहीनो यथा द्विजः।।
गङ्गाहीनो यथा देशस्तथा यज्ञः शिवं विना।
पतिहीना यथा नारी पुत्रहीनो यथा गृही।।
यथा काङ्क्षा निर्धनानां तथा यज्ञः शिवं विना।
दर्भहीना यथा सन्ध्या तिलहीनं च तर्पणम्।।
यथा होमो हविर्हीनस्तथा हीनश्च शम्भुना। (महाभाग. पु. 7/60-63)

भावार्थ यह है कि बिना शिव के किया गया यज्ञ उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार अर्थरहित वाक्य, वेदरहित ब्राह्मण, गंगा से रहित देश, पतिरहित नारी, पुत्रहीन गृहस्थ, निर्धन से धन की आकांक्षा, कुशरहित संध्या, तिलरहित तर्पण तथा हवि से रहित यज्ञ।

ब्रह्माजी भगवान् शिव के प्रति कहते हैं कि जो अधम मनुष्य आपके बिना अन्यान्य देवताओं का भजन करेगा उसका यज्ञ निष्फल होगा तथा वह महापातक का भागी होगा। अर्थात् प्रत्येक यज्ञ में शिव की पूजा आवश्यक है अन्यथा यज्ञकर्ता महापातकी होगा। (महाभागवत पु. 10/102)

इस पुराण में एक स्थल पर भगवान् शिव नारद मुनि से कहते हैं कि घोर कलियुग में पापी मनुष्यों के लिये महादेवजी का पूजन मुक्तिप्रद है।

एव घोरकलौ चापि नराणां पापचेतसाम्।
मुक्तिप्रदं महादेवपूजनं मुनिसत्तम।। (महाभागवत पु. 81/9)

आगे कहा गया है कि कलियुग में शिवपूजा के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है क्योंकि इससे स्वल्पसाधन से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। अर्थात् शिवजी की उपासना से कलियुग में व्यक्ति आसानी से सिद्धि प्राप्त कर लेता है। कलियुग में शंभु की अराधना के समान कोई भी कर्म नहीं है। चाहे कोई शाक्त हो या वैष्णव या शैव, उसे सबसे पहले शंकर की पूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात् अपने इष्टदेव की भक्तिभाव से पूजा करनी चाहिये।

उपायो विद्यते नान्यः सत्यं सत्यं कलौ युगे।
शम्भोराराधनात्स्वल्पसाधनान्मुनिसत्तम।।
शम्भोराराधनसमं नास्ति कर्म कलौ युगे।
शाक्तो वा वैष्णवः शैवः पूर्वं सम्पूज्य शङ्करम्।।
पश्चात्प्रपूजयेत्स्वेष्टदेवतां भक्तिभावतः। (महाभागवत पु. 81/11, 13-14)

जो महादेव सभी लोकों के ईश्वरों के भी ईश्वर हैं, उनके ध्यान से व्यक्ति उनकी समानता को प्राप्त कर लेता है तथा उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जो लोग सच्ची भक्ति से शिवजी, जो सर्वदेवात्मक हैं, की पूजा करता है वह सभी पापो से छूटकर शिवलोक को प्राप्त करता है।

यो ध्यायति महादेवं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्।
स तेन साम्यमायाति न पुनर्जन्मभाग्भवेत्।।
पूजयेद्यस्तु सद्भक्त्या सर्वदेवात्मकं शिवम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात्।। (महाभागवत पु. 81/16-17)

भगवान् शिव आगे कहते हैं कि हे नारद! जो लोग भक्तिपूर्वक अथवा बिना भक्ति के भी शिव की पूजा करते हैं वे लोग यम-यातना से बच जाते हैं। इसमें जरा भी संदेह नहीं है। जिस देश या क्षेत्र में शिव-पूजा एवं शिव-भक्तिपरायण लोग बसते हैं वह देश या क्षेत्र बिना गंगा के भी पवित्र होता है।

शिवं यः पूजयेद्भक्त्याऽप्यभक्त्या वापि नारद।
स नैव यमदण्डयः स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः।।
यत्र देशे वसेच्छम्भुपूजाभक्तिपरायणः।
सोऽपि पुण्यतमो देशो गङ्गाहीनोऽपि चेन्मुने।। (महाभागवत पु. 81/22, 26)

भगवान् शिव सभी प्रकार की कामनाओं, लौकिक अथवा पारलौकिक, को पूरा करने वाले हैं। उनकी उपासना से नन्दी ने गणेश्वर का पद (महाभागवत पु. अ0 6), भगीरथ ने गंगा को (महाभागवत पु. अ0 66-67) तथा दक्ष ने अपने यज्ञ का फल (महाभागवत पु. अ0 10) प्राप्त किया था। शिव की उपासना ब्रह्माजी (महाभागवत पु. 67/90), लक्ष्मीजी (महाभागवत पु. 67/98), विष्णुजी (महाभागवत पु. 10/50) तथा सुरासुर आदि (महाभागवत पु. 67/5, 60, 80 आदि) द्वारा की जाती रही है। तथा उनकी उपासना से उन लोगों ने मनोवाछिंत फल भी प्राप्त किया।

(1) लिंगपूजा तथा शिवनाम महिमा

भगवान् शिव की सगुण पूजा मूलतः लिंगूपजा ही मानी जाती है। लिंगपूजा के माहात्म्य की चर्चा करते हुए कहा गया है कि मनुष्य लिंगार्चन से आरोग्यता एवं प्रजा की पुष्टि को प्राप्त करता है। जो लोग महेश के निकट भक्तिपूर्वक नृत्य करते हैं उन्हें शम्भुलोक प्राप्त होता है जहाँ वे चिरकाल तक आनंद का उपभोग करते हैं। जो लोग शिव के समक्ष गीत एवं वाद्य का आयोजन करते हैं वे शिव के अन्तःपुर में निवास कर प्रमथेश्वर का पद प्राप्त कर लेते हैं।

आरोग्यमतुलं सौख्यं प्रजापुष्टिविवर्धनम्।
शिवलिङ्गार्चनं कृत्वा प्राप्नुयान्मानवोत्तमः।।
यो नृत्यति महेशस्य सन्निधौ भक्तितत्परः।
स प्राप्य शाम्भवं लोकं मोदते सुचिरं मुने।।
गीतं वाद्यं च यः कुर्यान्मनुजः शिवसन्निधौ।
स शम्भोरन्तिकस्थायी भवेत्तत्प्रमथेश्वरः।। (महाभागवत पु. 81/23-25)

शिव की पूजा या तो स्थायीलिंग में या पार्थिवलिंग में की जाती है। पार्थिवलिंग की पूजा के फल को बताते हुए इस पुराण में कहा गया है कि जो लोग प्रयत्नपूर्वक शिव-शक्तियुक्त (अर्थात् अर्घा सहित) श्रेष्ठ पार्थिवलिंग का निर्माण कर पूजा करते हैं उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता। मिट्टी की मूर्ति (लिंग) की बिल्वदलों से पूजा कर मुख को बजाने से भगवान् शिव पूजक को सायुज्यता प्रदान करते हैं।

निर्माय पार्थिवं लिङ्गं शिवशक्त्यात्मकं परम्।
पूजयेत्प्रयतो भूत्वा नहि तं बाधते कलिः।।
मूर्तिर्मृदा बिल्वदलेन पूजा अयत्नसाध्यं वदनेन वाद्यम्।
फलं च सायुज्यपदप्रदानं निःस्वस्य विश्वेश्वर एव देवः।।

(महाभागवत पु. 81/10, 12)

जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि (शाक्त वा वैष्णव) सभी प्रकार के उपासकों के लिये पहले शिव की उपासना आवश्यक है। इसी सन्दर्भ में भगवान् शिव नारदजी से कह रहे हैं कि किसी भी प्रकार की पूजा करने से पहले बिल्वपत्रों से लिंग की पूजा करनी चाहिये अन्यथा शिवपूजा के अभाव में सभी प्रकार की पूजा शूद्रवत (अर्थात् महत्त्वहीन) होती है। जो लोग दर्प या मोह के कारण ऐसा नहीं करते उनका अध:पतन हो जाता है, वे पापात्मा हैं तथा उनकी अर्चना विफल हो जाती है।

आदौ लिङ्गं प्रपूज्येत बिल्वपत्रैश्च नारद।
अन्यथा शूद्रवत्सर्वं शिवपूजां विना कृतम्।।
व्यतिक्रमं तु यो दर्पान्मोहाद्वापि समाचरेत्।
सोऽधः पतति पापात्मा तस्यार्चा विफला भवेत्।। (महाभागवत पु. 81/14-15)

बिल्व-वृक्ष की जड़ के पास भक्तिपूर्वक जो महादेव की पूजा करता है उसे निश्चित रूप से हजारों अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जो लोग गंगा के किनारे अथवा गंगाजल एवं बिल्वपत्रों से महादेव की पूजा करते हैं वे सैकड़ों पाप किये रहने पर भी कैवल्य को प्राप्त करते हैं। काशी या भारत के किसी भी पुण्यदायक स्थल (तीर्थ) पर भगवान् शिव की पूजा करनेवाले का पुनर्जन्म नहीं होता।

बिल्वमूले महादेवं यः पूजयति भक्तितः।
सोऽश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति निश्चितम्।।
गङ्गायां यो महादेवं बिल्वपत्रैः प्रपूजयेत्।
स कैवल्यमवाप्नोति कृतपापशतोऽपि चेत्।।
काश्यां यः पूजयेच्छम्भुं हेलयापि नरोत्तमः।
तस्यान्ते मुक्तिदाता स महेशः स्वयमेव हि।।

पुण्ये भारतखण्डे तु स्थलं यत्पुण्यदायकम्।
तत्र सम्पूज्य विश्वेशं न पुनर्जन्मभाग्भवेत्।। (महाभागवत पु. 81/27-30)

भगवान् शिव नारदजी से कहते हैं कि शिवपूजा के समान कोई भी कर्म नहीं है क्योंकि यह महापातकों से छुड़ानेवाला तथा सभी विपदाओं का निवारण करनेवाला है। शास्त्रों में असंख्य कर्म बताये गये हैं जो पाप को हरनेवाले तथा पुण्य प्रदान करनेवाले हैं। परन्तु उन सबमें शिव की पूजा तथा शिव एवं दुर्गा के नाम का कीर्तन श्रेष्ठतम हैं। भगवान् शिव के नाम का स्मरण कर किया जानेवाला कोई भो वेदशास्त्रादि द्वारा विहित कर्म अक्षय फल देनेवाला होता है।

एतस्मिन्नास्ति कर्मान्यच्छिवपूजासमं मुने।
महापापहरं पुण्यं सर्वापद्विनिवारकम्।।
असङ्ख्यानि च कर्माणि पुण्यदानि महामुने।
उक्तान्यनेकशास्त्रेषु नृणां पापहराणि वै।।
तेषु श्रेष्ठतमं ज्ञेयं शिवसम्पूजनं परम्।
कीर्तनं शिवनाम्नश्च दुर्गानाम्नो विशेषतः।।
संस्मृत्य शम्भोर्नामानि यत्किञ्चित्कुरूते नरः।
कर्म वेदादिशास्त्रोक्तं तदक्षय्यतमं भवेत्।। (महाभागवत पु. 81/32-34, 36)

शिवनाम की महिमा को बताते हुए आगे कहा गया है कि जो भाग्यशाली पुरुष शिव, विश्वनाथ, विश्वेश, हर इत्यादि नामों का उच्चारण करता है उससे गौरीपति प्रसन्न होते हैं तथा उसके संरक्षणार्थ प्रमथगणों के साथ शूल ग्रहण कर वे स्वयं वेग से दौड़ पड़ते हैं। सैकड़ों पापों का करनेवाला भी यदि शिवनाम का स्मरण करता हुआ मर जाता है तो वह शिव के समान हो जाता है। जहाँ कहीं भी शिवजी का स्मरण किया जाता है वहाँ सभी तीर्थों का आगमन हो जाता है।

शिवेति विश्वनाथेति विश्वेशेति हरेति च।
गौरीपते प्रसीदेति यो नरो भाषते सकृत्।।
तस्य संरक्षणार्थाय पृष्ठतः प्रमथैः सह।
शूलमादाय वेगेन स्वयं धावति शूलभृत्।।
शिवनाम स्मरन्मर्त्यस्त्यक्त्वा देहं महामते।
साक्षान्महेशतां याति कृतपापशतोऽपि चेत्।।
यत्र कुत्र च संस्थाय संस्मरेत्परमेश्वरम्।
तत्रैव सर्वतीर्थानि निवसन्ति महामते।। (महाभागवत पु. 81/37-40)

एक स्थल पर नन्दी भगवान् शिव की स्तुति में कहते हैं कि पृथ्वी पर जो लोग आपकी नित्य पूजा कर आपके नामों का कीर्तन करते हैं या भक्तिपूर्वक या अभक्तिपूर्वक सतत आपके मन्त्रों का

जप करते हैं, वे आपके पद को प्राप्त कर सदैव स्वर्ग में रमण करते हैं।

त्वां नित्यं परिपूजयन्ति भुवि ये गायन्ति नामानि ते
मन्त्रं सम्प्रति संजपन्ति सततं भक्त्याप्यभक्त्याथ वा।
तेऽपि त्वत्पदवीमुपेत्य सततं स्वर्गे रमन्ते प्रभो।
....।। (महाभागवत पु. 6/20)

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भगवान् शिव के नाम का कीर्तन या जप या गायन–चाहे भाव–पूर्वक या कुभाव–पूर्वक किसी भी प्रकार से किया जाय उससे व्यक्ति स्वर्ग की प्राप्ति के साथ–साथ शिव की सारूप्यता को भी प्राप्त कर लेता है तथा यथासमय कैवल्य को भी प्राप्त कर लेता है।

(2) रुद्राक्ष का महत्त्व

रुद्राक्ष की महिमा का गान अनेक शास्त्रों में किया गया है। इस पुराण में भी एक पूरा अध्याय रुद्राक्ष की महिमा पर लिखा गया है। रुद्राक्ष के धारण से सैकड़ों जन्मों के अर्जित पापों का विनाश हो जाता है(महाभागवत पु. 80/2)। दर्प या अज्ञानता से गुरु, देवता, महात्मा अथवा ब्राह्मण आदि को नमस्कार न करने से उत्पन्न करोड़ों जन्म के संचित पाप रुद्राक्ष को सिर पर धारण करने से नष्ट हो जाते हैं।(महाभागवत पु. 80/3-4)

यत्पापं सञ्चितं पूर्वं जन्मकोटिषु नारद।
तत्पापं नाशमायाति शिरसाप्यभिधारणात्।। (महाभागवत पु. 80/4)

इसी प्रकार असत्यभाषण, लोभ, उच्छिष्टभक्षण, तथा सुरापान से उत्पन्न करोड़ों जन्म के संचित पाप रुद्राक्ष को कण्ठ में धारण करने से नष्ट हो जाते हैं (वही 80/5)। दूसरों के द्रव्य का अपहरण करने, दूसरों को पीड़ा देने एवं सताने, अस्पृश्य के स्पर्श हो जाने तथा परिग्रह से उत्पन्न करोड़ों जन्म के संचित पाप रुद्राक्ष को कर में धारण करने से नष्ट हो जाते हैं(वही 80/6-7)। असत्प्रसंग के सुनने से होनेवाले संचित पाप रुद्राक्ष को कान में धारण करने से नष्ट हो जाते हैं(वही 80/8)।

परस्त्रीगमन, ब्रह्महत्या तथा वेदविहित कर्मों के त्याग से उत्पन्न अनेक जन्मों के संचित पाप शरीर में कहीं पर भी रुद्राक्ष के धारण से नष्ट हो जाते हैं।

परस्त्रीगमनाद् ब्रह्मवधाद्वेदस्य कर्मणः।
सन्त्यागात्सञ्चितं पापं यत्पूर्वं बहुजन्मसु।
तत्पापं नाशमायाति यत्र कुत्रापि धारणात्।। (महाभागवत पु. 80/9)

संक्षेप में कहा जाय तो रुद्राक्ष के किसी भी अंग में धारण करने से सभी प्रकार के पापों से मुक्ति मिल जाती है।

रुद्राक्ष के आभूषण से युक्त व्यक्ति को देखकर प्रणाम करने से भी सैकड़ों पापों के कर्त्ता का पाप दूर हो जाता है। रुद्राक्षधारी इस पृथ्वी पर रुद्र की भाँति निर्भयपूर्वक विचरता हुआ देवताओं की तरह पूज्य होता है। (महाभागवत पु. 80/10-11)

एक रुद्राक्ष को भी धारणकर शिव, देवी अथवा विष्णु की उपासना करनेवाला शिव की सायुज्यता को प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिव नारदजी से कहते हैं कि मोहवश बिना रुद्राक्ष धारण किये अगर कोई व्यक्ति दैव या पितृकर्म करता है तो उसका कोई फल नहीं होता तथा वह कर्म व्यर्थ हो जाता है।

विधृत्य चैकं रुद्राक्षं शम्भुं वा परमेश्वरीम्।
विष्णु वा योऽर्चयेत्सोऽपि शिवसायुज्यमाप्नुयात्।।
अविधृत्य नरो यस्तु रुद्राक्षं मुनिसत्तम।
कुरुते पैतृकं कर्म दैवं वापि विमोहितः।
न तस्य फलमाप्नोति वृथा तत्कर्म च स्मृतम्।। (महाभागवत पु. 80/12-13)

भगवान् शिव या दुर्गा के मन्त्रों का जप रुद्राक्ष की माला से करने पर शिव की कृपा से व्यक्ति को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। काशी या जिस क्षेत्र में गंगा स्थित है या किसी अन्य तीर्थ में रुद्राक्ष से रहित होकर कभी भी कर्म नहीं करना चाहिये।

रुद्राक्षमालया मन्त्रं यो जपेच्छिवदुर्गयोः।
स प्रयाति नरः स्वर्गं महादेवप्रसादतः।।
काश्यां वा जाह्नवीक्षेत्रे तीर्थेऽन्यस्मिंश्च वा नरः।
रुद्राक्षरहितः कर्म नैव कुर्यात्कदाचन।। (महाभागवत पु. 80/14-15)

दुर्लभ एकमुखी रुद्राक्ष की महिमा बताते हुए कहा गया है कि जिस घर में यह होता है वहाँ स्थिररूप से लक्ष्मी का निवास होता है। उसे कण्ठ या भुजा में धारण करनेवाले के पास दुर्भाग्य या अपमृत्यु नहीं आते। उससे भगवान् शिव प्रसन्न रहते हैं। वह जो कुछ धर्म-कर्म करता है उसका महान् फल होता है। (महाभागवत पु. 80/16-18)

अन्त में कहा गया है कि रुद्राक्षधारी व्यक्ति जहाँ-कहीं भी शरीर छोड़ता है वह अवश्य ही स्वर्ग को जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं।

रुद्राक्षधारी सन्त्यज्य देहं वै यत्र कुत्रचित्।
अवश्यं स्वर्गमाप्नोति तत्र नास्त्येव संशयः।। (महाभागवत पु. 80/19)

(3) शैव स्तोत्र एवं तीर्थ

शिव की उपासना में स्तोत्रों का विशेष महत्त्व है। इस पुराण में भी शिवसंबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण

स्तोत्र हैं। इनमें से पहला स्तोत्र नन्दीकृत है जिसका उल्लेख इस पुराण के अध्याय 6 (श्लोक 18 - 20) में है। इस स्तोत्र की महिमा के बारे में भगवान् शिव कहते हैं कि जो कोई भी भक्तिपूर्वक इसके द्वारा स्तुति करेगा उसका तीनों लोकों में कुछ भी अशुभ नहीं हो सकता। चिरकालतक मर्त्यलोक में रहने के बाद अन्त में वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। (महाभागवत पु. 6 / 24 - 25)

दूसरा प्रमुख स्तोत्र भगीरथ द्वारा किया गया सहस्रनाम स्तोत्र है। यह स्तोत्र लिंग पुराण (पूर्वार्द्ध / 65 / 54 - 168) तथा (98 / 27 - 159), महाभारत (अनुशासनपर्व 17 / 31 - 153 तथा शान्तिपर्व / 284 / 69 - 180), ब्रह्म पुराण (40 / 2 - 100), शिव पुराण (कोटिरुद्रसंहिता / 35 / 2 - 132), वायु पुराण (1 / 30 / 180 - 284), सूर्य पुराण (41 / 12 - 140) तथा वामन पुराण (सरो. माहात्म्य 26 / 62 - 162) के सहस्रनाम स्तोत्रों से काफी भिन्न है। यह स्तोत्र इस पुराण के अध्याय 67 (श्लोक 1 - 125) में पाया जाता है। महादेवजी कहते हैं कि भगीरथकृत सहस्रनाम स्तोत्र का जो भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह कैवल्य को प्राप्त होता है।

राजा कृतमिदं स्तोत्रं सहस्रनामसंज्ञकम्।
यः पठेत्परया भक्त्या स कैवल्यमवाप्नुयात्।। (महाभागवत पु. 67 / 138)

इसके पाठ करनेवाले को किसी प्रकार का दुःख नहीं होता तथा उसे शिवजी की कृपा से परम ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। यह सभी प्रकार के मंगलो को बढ़ानेवाला है। दुर्भिक्ष, लोकपीड़ा तथा देश में होनेवाले उपद्रव की अवस्था में शिव की धूप - दीपादि से उपासना कर इस स्तोत्र का भक्तिपूर्वक पाठ करना चाहिये। इसके पाठ से यथासमय पर्याप्त वर्षा होती है, अच्छी फसल होती है, सभी प्रकार के पापों का नाश होता है तथा अकाल मृत्यु से बचाव होता है। (महाभागवत पु. 67 / 139 - 146)

वह देश धन्य है तथा वहाँ की प्रजा धन्य है जहाँ पार्थिवलिंग की पूजा के पश्चात् यह सहस्नाम पढ़ा जाता है। फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को भक्तिपूर्वक इसका पाठ अत्यन्त सुख देनेवाला होता है। तथा उसका पुनर्जन्म नहीं होता। गंगा के समीप या कुरुक्षेत्र या प्रयाग में महेश्वर की पूजा के बाद इसका पाठ कैवल्य प्रदान करता है। काशी में इसके पाठ का फल अवर्णनीय है। इसका बिल्व के मूल में स्थित हो पाठ करने से शिवसालोक्य की प्राप्ति होती है। इसका पाठ ग्रह आदि की बाधाओं से भी मुक्त करता है। (महाभागवत पु. 67 / 147 - 148, 151 - 156)

इस पुराण में शैवों के प्रमुख तीर्थ काशी या वाराणसी की महिमा का भी गुण - गान हुआ है। मर्त्यलोक में स्थित वाराणसी नगरी जहाँ भगवान् शिव का दिव्य आलय है उसे मुक्तिक्षेत्र कहा जाता है। वहाँ पर मनुष्य की क्या बात अपितु ब्रह्मादि देवता भी जाकर मृत्यु की इच्छा रखते हैं। क्योंकि वहाँ मरनेवाले को मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

मर्त्येऽपि रम्या नगरी पुरी वाराणसी परा।
मुक्तिक्षेत्रात्मिका चैव देवा ब्रह्मपुरोगमाः।।

अपि मृत्युं समिच्छन्ति किं पुनर्मानवादयः।
एवं दिव्यालयस्तस्य महेशस्य परात्मनः॥ (महाभागवत पु. 5/15-16)

भगवान् शिव वाराणसीपुरी में मरनेवाले प्रत्येक प्राणी, शशक हो या मशक, मानव हो या देव, सभी के कान में तारक ब्रह्म का उपदेश करते हैं। फलस्वरूप प्राणी मुक्त हो जाता है। (महाभागवत पु. 2/15, 21)

(4) शिवपूजा संबंधी कुछ अन्य बातें

जो कोई भगवान् शिव (के लिंग) को पाद्य समर्पित करता है वह पापों से मुक्त हो स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।

पाद्यं यस्तु महेशाय ददाति मनुजोत्तमः।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥ (महाभागवत पु. 81/18)

शिवनिर्माल्य के भक्षण के सन्दर्भ में कहा गया है कि शिवलिंग के ऊपर अर्घ्य आदि जो कुछ भी समर्पित किया जाता है वह प्रसाद अग्राह्य है, उसे खाना नहीं चाहिये। वह सब विष्णुजी के लिये ही ग्राह्य है अन्यों के लिये नहीं। अगर अन्य कोई उसे ग्रहण करता है तो वह विष्णु के कोप का भाजन होता है। लिंग के ऊपर का पदार्थ अगर शालिग्राम शिला से स्पर्श करा दिया जाय तो वह ग्राह्य हो जाता है (क्योंकि तब वह भगवान् विष्णु का प्रसाद बन जाता है)। पुनः अनादिलिंग (स्वयंभूलिंग) का निर्माल्य ग्राह्य है, उसे ग्रहण करने से शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है। मनुष्य उस प्रसाद को खाकर स्वयं शंकर के तुल्य हो जाता है।

अर्घ्यादिकं तु यत्किञ्चिद्दीयते शम्भवे मुने।
सर्वं तत्सम्प्रदद्याच्च लिङ्गोपरि कियत्कियत्॥
अग्राह्यं तन्महाबुद्धे प्रसादं नापि भक्षयेत्।
विष्णोर्ग्राह्यं च नान्यस्य ग्रहणाद्विष्णुकोपभाक्॥
शालिग्रामशिलास्पर्शात् सर्वं तद्ग्राह्यमेव च।
अनादिलिङ्गनिर्माल्यं भुक्त्वा शङ्करतां व्रजेत्।
प्रसादं भक्षयेन्मर्त्यः स्वयं शङ्करतां व्रजेत्॥ (महाभागवत पु. 81/19-21)

भगवान् शिव एवं विष्णु

सभी शास्त्रों एवं पुराणों की भाँति इस पुराण में भी भगवान् शिव एवं विष्णु की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन किया गया है। दक्ष ने अपने यज्ञ में भगवान् शिव की गरिमा को न जान पाने के कारण उन्हें निमन्त्रित नहीं किया था। उसकी दृष्टि में भगवान् विष्णु ही सर्वेश्वर एवं यज्ञ के फलदाता हैं। उसकी दृष्टि में 11 रुद्रों में से ही एक रुद्र शिव हैं जो ब्रह्माजी के पुत्र हैं। अतः वे विष्णुजी की भाँति पूजनीय नहीं हैं। दक्ष यह नहीं समझ पाता कि 'रुद्ररूप शिव' 'सदाशिव' के ही पूर्णावतार हैं और सदाशिव परब्रह्म हैं जिनसे ही ब्रह्मा, विष्णु आदि की उत्पत्ति हुई है। भगवान् विष्णु शिव की प्रकृति (या

माया) के ही साकाररूप हैं। फलस्वरूप शिव एवं विष्णु में तात्त्विक अभिन्नता है।

दक्ष की इस अज्ञानता को ही दूर करने के लिये दधीचिजी उससे कहते हैं कि जो विष्णु हैं वही महादेव हैं और स्वयं शिव ही नारायण हैं। इन दोनों में कहीं भी और कभी भी भेद नहीं हैं। उनमें से किसी एक से द्वेष करने पर दूसरा कभी भी प्रसन्न नहीं होगा।

यो विष्णुः स महादेवः शिवो नारायणः स्वयम्।।
नानयोर्विद्यते भेदः कदाचिदपि कुत्रचित्।

....।।

एकं द्विषन्तमपरो न प्रसन्नः कदाचन्। (महाभागवत पु. 7/63-65)

दक्ष के यज्ञ का विनाश करने हेतु वीरभद्रादि प्रमथगणों के पहुँच जाने पर भगवान् विष्णु मन में सोचते हैं कि मूढ़मति दक्ष यज्ञ में शिव से द्वेष करता है। अतः शिव से विद्वेष रखने के कारण वह मेरा भी विद्वेषी है क्योंकि मैं ही शिव हूँ अथवा शिव ही विष्णु हैं, हम दोनों में भेद नहीं है। वह हमारे विष्णुरूप की तो विशेष प्रार्थना करता है पर महादेवरूप की निन्दा करता है। अतः उसके द्विविध विचार एवं कर्म के अनुसार ही मैं भी कर्म करूँगा। मैं विष्णुरूप से उसकी रक्षा तथा शिवरूप में संहार करूँगा। मैं(प्रमथगणों से) प्रेमपूर्वक युद्ध कर पराजित हो जाऊँगा, तदनन्तर रुद्ररूप से मैं उसका शमन करूँगा। और अन्त में सभी देवताओं सहित उसके यज्ञ को सम्पूर्ण करूँगा।

दक्षो मूढमतिः शम्भुं विद्विषन्कुरुते मखम्।

....।।

शिवविद्वेषणेनैव विद्विष्टोऽस्मि न संशयः।
अहं शिवः शिवो विष्णुर्भेदो नास्त्यावयोर्यतः।।
अनेन विष्णुरूपेण प्रार्थितोऽस्मि विशेषतः।
निन्दितोऽस्मि महादेवस्वरूपेणाहमेव हि।।
अस्यापि भावद्वैविध्यं कर्मणा मनसापि च।
विधत्ते द्विविधं भावं करिष्याम्यहमेव तत्।।
रक्षिता विष्णुरूपेण संहर्ता शिवरूपतः।
कृत्वा स्नेहात्स्वयं युद्धं लब्ध्वा तत्र पराजयम्।।
रुद्ररूपेण तं दक्षं शमयिष्याम्यसंशयम्।
पश्चात्तु यज्ञं सम्पूर्णं करिष्यामि सुरैः सह।। (महाभागवत पु. 10/41-46)

जब वीरभद्र एवं विष्णुजी में घोर संग्राम चल रहा था तो इसी बीच में आकाशवाणी द्वारा वीरभद्र को बताया जाता है कि जो विष्णु हैं वही महादेव हैं और जो शिव हैं वही स्वयं नारायण हैं। इन दोनों में कहीं भी और कभी भी भेद नहीं है। इस आकाशवाणी को सुनकर वीरभद्र ने विष्णुजी को नमस्कार

कर उनसे युद्ध से विरत हो दक्ष को पकड़कर उसका शिर काट डाला। (महाभागवत पु. 10/63-67)

योविष्णुः स महादेवः शिवो नारायणः स्वयं।
...।। (महाभागवत पु. 10/64)

भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें हरि (महाभागवत पु. 67/33), नारायण (वही 67/81) तथा श्रीपति (वही 67/98) आदि कहा गया है। इन विशेषणों या संज्ञाओं से भी यही स्पष्ट होता है कि शिवजी एवं विष्णुजी में अभिन्नता है, क्योंकि दोनों की समान संज्ञाएँ तथा विशेषण हैं।

भगवान् शिव का राधा के रूप में अवतार

भगवान् की लीलाएँ मनुष्य, देवता, दानव अथवा ऋषि-मुनि सभी के लिये अगम्य होती हैं। भगवान् शिव की एक ऐसी ही अद्‌भुत लीला का वर्णन किया जा रहा है जिसमें उन्होंने किसी कल्प में राधा के रूप में अवतार लिया था।

एक बार भगवान् शिव ने देवी से यह निवेदन किया कि धरती पर वह पुरुषरूप में अवतार लें तथा वे स्वयं स्त्रीरूप में अवतार लेंगे। देवी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। तदनन्तर पृथ्वी ने ब्रह्माजी को यह निवेदन किया कि वे दुर्योधन एवं कंसादि दुष्टों के भार से उसे मुक्ति दिलायें। फलस्वरूप ब्रह्माजी कैलास पर जाकर देवी से दुर्योधन एवं कंसादि राक्षसों (जो पिछले जन्म में विष्णु द्वारा मारे गये थे) के भार से पृथ्वी को मुक्त करने के लिये प्रार्थना की। तब देवी ने उन्हें कहा कि मैं पुरुषरूप से वसुदेव के घर अवतार लेकर आपका कार्य करूँगी। इस प्रकार भगवान् शिव की इच्छा तथा ब्रह्माजी के निवेदन के कारण देवी ने कृष्ण के रूप में वसुदेव-देवकी के यहाँ अवतार लिया।

भगवान् शिव ने स्त्री के रूप में वृषभानु के घर राधारूप से अवतार लिया। उनकी अष्ट मूर्तियों ने भी धरती पर रूक्मिणी तथा सत्यभामा आदि के रूप में जन्म लेकर कृष्ण की पटरानियाँ बनीं। इसी प्रकार देवी की सखियाँ जया एवं विजया भी पुरुषरूप में श्रीदाम एवं वसुदाम के रूप में अवतरित हुईं। भगवान् विष्णु एक अंश से श्रीकृष्ण के अग्रज बने तथा दूसरे अंश से अर्जुन। ब्रह्माजी की प्रार्थना के अनुसार कृष्णरूपधारी देवी ने कंस एवं दुर्योधनादि दुष्ट राक्षसों से पृथ्वी को मुक्त किया। भगवान् शिव के राधारूप में अवतरित होने की कथा का वर्णन इस पुराण (के अध्याय 49 से 54) में किया गया है। 58 वें अध्याय के अन्त में कहा गया है कि पुरुषरूप में लीलापूर्वक जगन्माता धरती के भार को उतारने के बाद अपने स्वरूप में स्थित हो अपने धाम को लौट गयीं। किसी अन्य कल्प में द्वापर के अन्त में विष्णुजी अपने पूर्ण अंश से श्रीकृष्ण रूप में अवतरित होंगे।

पुंरूपेण जगन्माता लीलया धरणीतले।
हृत्वा च पृथ्वीभाराञ्चलेनैव महामते।।
भूयः स्वरूपमाश्रित्य स्वस्थानं समुपागमत्।
कल्पान्तरे तु भूपृष्ठे द्वापरान्ते महामुने।।

विष्णुः श्रीकृष्णरूपेण पूर्णांशेन जगत्प्रभुः।
शम्भोर्वरप्रदानेन सम्भविष्यति लीलया।
निहनिष्यति भूभारमेवमेव महामते।। (महाभागवत पु. 58/50-52)

उपसंहार

यह उपपुराण देवी की महिमा को बतानेवाला एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी कारण से बृहद्धर्म पुराण ने इसकी गणना अठारह महापुराणों के अन्तर्गत की है। इस पुराण के अन्तर्गत भी नाना प्रसंगों में भगवान् शिव को ही परम ब्रह्म या तत्त्व स्वीकार किया गया है। इसमें भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की चर्चा है। निर्गुणरूप में उन्हें अद्वैतब्रह्म, अचिन्त्य, नित्यानन्दमय, पूर्ण, ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी के द्वारा अगम्य, परात्पर, अच्युत, शुद्धात्मा, केवल ज्ञानस्वरूप, शुद्धबोध तथा केवल आत्मस्वरूप आदि कहा गया है। सगुणरूप धारणकर शिव अनेक विशेषताओं से युक्त हो जाते हैं।

सगुणरूप में वे परमेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्ररूप धारणकर क्रमशः जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले, सर्वेश्वर, भगवान्, परमपुरुष, सुरश्रेष्ठ, ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देव, दानव एवं मानव द्वारा अर्चित, यज्ञेश्वर, पशुपति, अनघ, शुद्ध, पंचमुखी, चन्द्रमा, गज एवं व्याघ्रचर्म आदि को धारण करनेवाले, नागों का आभूषण पहननेवाले, नीलकण्ठ, शक्ति को अर्द्धांग में धारण करनेवाले, शिर पर जटा-जूट एवं गंगा को धारण करनेवाले, जगत्पति, भयत्राता, परोपकारी, परित्राता, भोग एवं मोक्ष को प्रदान करनेवाले, सभी प्रकार के रोगों को हरनेवाले, मंगलकारी, असाध्यसाधक, लोकसम्पूज्य, दयावान, कामनाओं का नाश करनेवाले, मृत्युञ्जय, नानारूपधारी, विश्वयोनि, सर्वज्ञ तथा समदर्शी आदि विशेषताओं से युक्त हैं।

भगवान् शिव भोग-मोक्षदाता, आशुतोष, असाध्य-साधक तथा सभी प्रकार के मनोवांछित फल प्रदान करनेवाले हैं। भगवान् शिव की ये विशेषताएँ उनकी भक्ति के प्रमुख आकर्षण हैं। भगवान् शिव ही यज्ञादि सभी शुभ (वा अशुभ) कर्मों के फलदाता हैं इसीलिये उनकी पूजा के बिना किसी भी प्रकार की पूजा या शुभकर्म निरर्थक होते हैं। पहले शिव की पूजा करके ही दूसरे इष्ट की पूजा करनी चाहिये। पुनः घोर कलियुग में शिव-पूजा के अलावा मुक्ति का कोई अन्य उत्तम उपाय नहीं है। जो लोग भक्तिपूर्वक अथवा अभक्तिपूर्वक किसी भी प्रकार से शिव की उपासना करते हैं वे लोग यमयातना से बच जाते हैं।

शिव की उपासना मूलतः लिंग की उपासना है। लिंगोपासना या तो स्थायीलिंग की या पार्थिवलिंग की होती है। पार्थिवलिंग की बिल्वपत्रों से की गयी पूजा को श्रेष्ठ बताया गया है। जो लोग बिना शिव-पूजा के ही अन्य देवों की पूजा करते अथवा कोई शुभ कर्म करते, उनकी पूजा अथवा कर्म निष्फल होता है तथा वे पाप के भागी होते हैं।

भगवान् शिव के नाम की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि इसके जप से भगवान् शिव

प्रसन्न हो अपने गणों के साथ उसकी रक्षा में तत्पर रहते हैं। जहाँ शिव का नाम लिया जाता है वहाँ सभी तीर्थ उपस्थित हो जाते हैं। उनके नाम का स्मरण करते हुए मरनेवाले को शिवसायुज्यता प्राप्त होती है। उनके नाम के जप से सभी प्रकार के पापों से मुक्ति हो जाती है। उनका नाम चाहे भाव से जपें चाहे कुभाव से, उसका अवश्य ही फल प्राप्त होता है।

रुद्राक्ष की महिमा बताते हुए कहा गया है कि इसके धारण से सभी प्रकार के पापों का नाश हो जाता है। बिना रुद्राक्ष धारण किये हुए अगर कोई देव या पितृकर्म किया जाय तो उसका कोई फल नहीं होता। किसी भी तीर्थ में बिना रुद्राक्षधारण के कोई भी शुभकर्म नहीं करना चाहिये। रुद्राक्षधारी मरने के बाद स्वर्ग को प्राप्त करता है। रुद्राक्षमाला से शिव एवं दुर्गा के मन्त्रों का जप करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

इस पुराण में शिवसंबंधी दो प्रमुख स्तोत्र हैं जिनके पाठ से व्यक्ति को भोग एवं मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं। पहला नन्दीकृत है जिसका उल्लेख छठें अध्याय (श्लोक 18 – 20) में है, तथा दूसरा भगीरथ कृत सहस्रनाम स्तोत्र है जिसका उल्लेख अध्याय 67 (श्लोक 1 - 125) में हुआ है। यह स्तोत्र लिंग पुराण, महाभारत, सूर्य पुराण, शिव पुराण, वायु पुराण, ब्रह्म पुराण तथा वामन पुराण में वर्णित सहस्रनाम स्तोत्रों से काफी भिन्न है। इस स्तोत्र का अमित फल बताया गया है। काशी तीर्थ की महिमा के सन्दर्भ में बताया गया है कि यहाँ मरनेवाले प्राणी के कान में भगवान् शिव स्वयं तारकब्रह्म का उपदेश करते हैं जिसके प्रभाव से वह मुक्त हो जाता है।

शिवनिर्माल्य के भक्षण के बारे में कहा गया है कि लिंग के ऊपर चढ़ाये द्रव्य का उपभोग नहीं करना चाहिये। ऊपर चढ़ाया गया द्रव्य विष्णुजी के भोग के लिये होता है। उसका भोग करनेवाला विष्णुजी के कोप का भाजन होता है। लिंग पर चढ़े द्रव्य को शालिग्राम शिला से स्पर्श कर उपभोग किया जा सकता है। परन्तु स्वयंभू अथवा अनादिलिंग के निर्माल्य को ग्रहण करना चाहिये। अनादिलिंगों के प्रसाद को ग्रहण करने से मनुष्य भगवान् शिव के तुल्य हो जाता है।

इस पुराण में भगवान् शिव एवं विष्णु की एकता को विस्तारपूर्वक बताया गया है। दोनों ही देवता तत्त्वतः एक हैं। शिव ही विष्णु हैं अथवा विष्णु ही शिव हैं। एक की निंदा दूसरे की निन्दा है। अतः इनमें से किसी की भी निन्दा करनेवाला पातकी एवं नरकगामी होता है।

अन्त में भगवान् शिव ने किसी कल्प में एकबार लीलापूर्वक स्त्रीरूप में धरती पर अवतार लिया था तथा देवी ने पुरुष रूप में। ब्रह्माजी की धरती के भार को उतारने की प्रार्थना तथा शिव की इच्छा से देवी ने धरती पर वासुदेव-देवकी के यहाँ श्रीकृष्णरूप में तथा भगवान् शिव स्वयं वृषभानु के यहाँ राधा के रूप में अवतरित हुए। शिव की अष्टमूर्तियाँ रूक्मिणी तथा सत्यभामादि कृष्ण की आठ पटरानियों के रूप में अवतरित हुईं तथा देवी की सखियाँ जया एवं विजया श्रीदाम एवं वसुदाम के रूप

में। किसी अन्य कल्प में भगवान् विष्णु अपने पूर्णांश के साथ कृष्ण के रूप में धरती पर अवतरित होंगे।

(यह लेख ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली द्वारा 1983 में प्रकाशित तथा डॉ0 पुष्पेन्द्र कुमार द्वारा संपादित 'श्रीमहाभगवतपुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)

* * *

श्रोत्रिय ब्राह्मण के लक्षण

नारदजी द्वारा यह पूछे जाने पर कि कौन सा ब्राह्मण पूज्य है ब्रह्माजी कहते हैं कि उत्तम श्रोत्रियकुल में उत्पन्न होकर भी जो वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता, वह पूजित नहीं होता। ब्रह्माजी नारदजी से आगे कहते है कि "विश्वामित्र यद्यपि क्षत्रियकुल में उत्पन्न हैं, तथापि अपने सत्कर्मो के कारण वे मेरे समान हैं।" पृथ्वी के तीर्थस्वरूप श्रोत्रिय ब्राह्मणों के लक्षण बताते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि ब्राह्मण के बालक को जन्म से ब्राह्मण समझना चाहिये। संस्कारों से उसकी 'द्विज' संज्ञा होती है तथा विद्या पढ़ने से वह 'विप्र' नाम धारण करता है। इस प्रकार जन्म, संस्कार और विद्या - इन तीनों से युक्त होना श्रोत्रिय ब्राह्मण का लक्षण है। ऐसा ही ब्राह्मण अत्यन्त पूजनीय है।

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।।
विद्ययायातिविप्रत्वंत्रिभिः श्रोत्रियलक्षणम्।

(पद्म महापु. सृष्टिखण्ड 46/129-30)

आगे अधम ब्राह्मणों का लक्षण बताते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि मन्त्र और संस्कार से हीन, शौच(पवित्रता) और संयम से रहित, बलिवैश्व किये बिना ही भोजन करनेवाले, दुरात्मा, चोर, मूर्ख, सब प्रकार के धर्मों से शून्य, कुमार्गगामी, श्राद्ध आदि कर्म न करनेवाले, गुरु-सेवा से दूर रहनेवाले, मन्त्रज्ञान से वंचित तथा धार्मिक मर्यादा भंग करनेवाले - ये सभी के सभी ब्राह्मण अधम से भी अधम हैं। उन दुष्टों से बात भी नहीं करनी चाहिये। वे सब-के-सब नरकगामी होते हैं। उनका आचरण दूषित होता है; अतएव वे अपवित्र और अपूज्य होते हैं।

मंत्रसंस्कारहीनाश्च शुचिसंयमवर्जिताः।
मोघाशिनोदुरात्मानो ब्राह्मणाश्चाधमाधमाः।।
अपिस्तेयरतामूढाः सर्वधर्मविवर्जिताः।
उन्मार्गगामिनोनित्यं ब्राह्मणाश्चाधमाधमाः।।
श्राद्धादिकर्मरहिता गुरुसेवाविवर्जिताः।
अमन्त्राभिन्नमर्यादाएतेसर्वाधमाधमाः।।
असंभाष्याइमेदुष्टास्सर्वेनिरयगामिनः।
अमेध्यास्तेदुराचाराअपूज्याश्चसमंततः।। (पद्म महापु. सृष्टिखण्ड 47/13-16)

देवीपुराण में शिवतत्त्व

देवीपुराण प्राचीन एवं प्रमुखतम शाक्त उपपुराणों में से एक है। वर्तमान देवीपुराण में 128 अध्याय हैं, जबकि कुछ पाण्डुलिपियों में 138 अध्याय हैं। परन्तु विषय-वस्तु एवं श्लोक-संख्या की दृष्टि से सभी पाण्डुलिपियाँ समान प्रतीत होती हैं। महामुनि वसिष्ठ ऋषियों के पूछे जाने पर इस पुराण का प्रवचन करते हैं। कुछ विद्वानों के मत से वर्तमान देवीपुराण संपूर्ण नहीं है। इस पुराण के प्रथम अध्याय में ऋषियों ने कुछ प्रश्न किये हैं जिनमें उन्होंने देवीपुराण के विषयों पर भी प्रकाश डालने की प्रार्थना की है। विषयों की जो सूची वहाँ दी गयी है उसको देखने के बाद यदि हम देवीपुराण के वर्ण्यविषयों पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि मुख्य रूप से इन्हीं विषय-वस्तुओं का वर्णन वहाँ मिलता है। अत: देवीपुराण की अपूर्णता संबंधी निष्कर्ष उचित प्रतीत नहीं होता। इस पुराण में व्याकरण (यथा सन्धि, समास, छन्द, लिंग, वचन, शब्दरूप, तथा कारक आदि) के नियमों का उलंघन अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में सर्वत्र देवी का ही माहात्म्य भरा पड़ा है। इसमें शिवसंबंधी बहुत ही कम संदर्भों की चर्चा की गयी है, और जहाँ कहीं कोई सन्दर्भ आया भी है तो वहाँ बहुत ही संक्षेप में शिव के स्वरूप की चर्चा है। ऐसा होने पर भी, भगवान् शिव सर्वश्रेष्ठ देव हैं, ऐसा निष्कर्ष निकालना पाठक के लिये बहुत ही सरल है।

किसी प्रसंग में ब्रह्मा एवं विष्णु भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें सूक्ष्म, श्रेष्ठतम, अनन्त, कारणत्रय (जगत् का निमित्त, उपादानादि कारण अथवा सृष्टि, पालन तथा संहार के कारण), ध्यानगम्य, पराध्यक्ष, सभी भूतों के साक्षी, गुणत्रय (सत्त्व, रज आदि अथवा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप), आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी (जिनकी) मूर्ति (हैं), तन्मात्रा, कर्म, बुद्धि तथा इन्द्रियों के विधाता, प्रधान (प्रकृति), पुरुष, आत्मा, नियामकशक्ति, विद्याके जनक, व्यापक, त्रिशूल धारण करनेवाले, कालदण्ड, यमराज का अन्त करनेवाले, कालकूट विष को कण्ठ में धारण करनेवाले, गंगाजल को अपनी जटा में धारण करनेवाले, त्रिपुर एवं काम को जला देनेवाले, भूतों के स्वामी, गजचर्म को धारण करनेवाले, वासुकि एवं अनन्त को मेखला के रूप में धारण करनेवाले, देवदेव, संसार को उत्पन्न करनेवाले, महाकाल, ईश्वर, सदाशिव, सत्य में वास करनेवाले, पशुपति, सर्वेश तथा परमेष्ठि कहते हैं (देवीपु. 7/7-17)। स्तुति के कुछ अंश को देखें-

जय सूक्ष्म परानन्त कारणत्रयतवे।
ध्यानगम्य पराध्यक्ष साक्षिभूत गुणत्रये।।
जय ह्याकाश-वायवग्नि-तोय-धात्री च मूर्त्तये।।

जय तन्मात्र – कार्माख्य – बुद्धीन्द्रिय – विधातवे।
जय बुद्धि – मन – गर्व – प्रधानपुरुषात्मने।।
जय डिण्डि महाकाल शम्भुशङ्कर ईश्वर।
जय रुद्र हर घोर सत्यवास सदाशिव।। (देवीपु. 7/7–9, 16)

अर्थात् – सूक्ष्म, अनन्त, पर, कारणत्रय, गुणत्रय, ध्यानगम्य, पराध्यक्ष, साक्षिभूत तथा भगवान् शिव की जय हो। आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी जिनकी मूर्तियाँ हैं, उनकी जय हो। तन्मात्रा, कर्म, बुद्धि तथा इन्द्रियों के विधाता की जय हो। मन, बुद्धि, अहंकार, प्रधान(प्रकृति), पुरुष तथा आत्मास्वरूप भगवान् शिव की जय हो। डिण्डि, महाकाल, शम्भु, शंकर तथा ईश्वर की जय हो। रुद्र, हर, घोर, सत्य में वास करनेवाले तथा सदाशिव की जय हो।

इस पुराण के दसवें अध्याय में योग – शास्त्र का दस परिच्छेदों में वर्णन हुआ है। योगशास्त्र के दूसरे परिच्छेद में एक स्थल पर कहा गया है कि जो श्रेष्ठ है, सभी भूतों के कारणों का कारण है, उस ईशान शिव को जानकर व्यक्ति निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

यः श्रेष्ठः सर्वभूतानां कारणानाञ्च कारणम्।
तमीशानं शिवं ज्ञात्वा नरो निर्वाणमर्हति।। (देवीपु. 10/2/4)

आगे योगशास्त्र के दसवें परिच्छेद में शिव को निर्गुण, मन से अग्राह्य, अनुपमेय, प्रकाशमान, प्रधान, पुरुष, ईशान तथा सभी भूतों का स्वामी कहा गया है। उन्हें सर्वगत, सर्वज्ञ, सबका कारण तथा अक्षत – ऐश्वर्य – सम्पन्न भी कहा गया है।

निर्गुणं मनसाग्राह्यमनौपम्यं महाद्युतिम्।
प्रधानपुरुषेशानं सर्वभूतपतिं शिवम्।।
अनुत्पाद्यं सर्वगतं सर्वज्ञं सर्वकारणम्।
अक्षतैश्वर्य – सम्पन्नं देवमेकं महेश्वरम्।। (देवीपु. 10/10/5, 8)

किसी प्रसंग में शुक्राचार्य अपनी स्तुति में भगवान् शिव को ब्रह्मा, उपेन्द्र, मरुद्गण, वसुगण, विद्याधर, मुनि तथा दैत्यगण द्वारा पूजित, चराचर जगत् में व्याप्त, विश्वात्मा, कारणों का कारण, पशुपति, परमदेव, अमरत्व, धर्म, अर्थ आदि को प्रदान करनेवाले, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, लौकिक सुख एवं स्वर्ग प्रदान करनेवाले, परमकारण, सुरासुरगुरु, लोकाधिपति, सर्वज्ञ, प्रभु, ईश्वर, त्रिनयन, सर्वात्मा, परापरज्ञ तथा योगेश्वर आदि कहा है। (देवीपु. 33/9 – 12, 18, 24 – 25, 39)

व्याप्तं येन चराचरं जगदिदं विश्वात्मना मूर्तिभिः।
कस्तं कारण – कारणं पशुपतिं देवं परं नार्च्चयेत्।।
देवं सर्व्वसुरासुर प्रणमितं शम्भुं परं कारणम्।।
ये लोकाधिपति सुरासुर गुरुं ब्रह्मेन्द्र सम्पूजितम्।

...।
सर्व्वज्ञं प्रभुमीश्वरं त्रिनयनं सर्व्वात्मना भाविताः।। (देवीपु. 33/11, 24-25)

भावार्थ यह है कि जिस विश्वात्मा की मूर्तियाँ इस चराचर जगत् में व्याप्त हैं उस कारणों के कारण श्रेष्ठ पशुपति की क्यों नहीं अर्चना करते। परम कारण शंभु सुरासुर सभी के द्वारा प्रणाम किये जाते हैं। वे सर्वज्ञ प्रभु त्रिनयन एवं सर्वात्मा हैं।

ऊपर के उद्धरण भगवान् शिव को परमतत्त्व या ब्रह्म सिद्ध करते हैं। इनमें भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों ही रूपों का संकेत है। उन्हीं से सम्पूर्ण चराचर, देव-दानव, ब्रह्मा-विष्णु आदि की सृष्टि होती है, उनके द्वारा ही उनका पालन तथा अन्त में संहार होता है। क्योंकि वे सबके कारण, बल्कि कारणों के भी कारण हैं। वे धर्म, अर्थ आदि प्राप्ति करानेवाले हैं अर्थात् वे लौकिक सुख, स्वर्ग एवं मोक्ष को प्राप्त करानेवाले हैं। उनका ज्ञान ही मोक्ष कहलाता है।

शिवोपासना

ऊपर कहा जा चुका है कि सभी भूतों में श्रेष्ठ तथा कारणों के कारण ईशान शिव को जानकर व्यक्ति निर्वाण को प्राप्त कर लेता है (देवीपु. 10/2/4)। भगवान् शिव का ज्ञान (या उनकी प्राप्ति) ही निर्वाण या मोक्ष कहलाता है। योगसाधना के प्रकरण में कहा गया है कि ज्ञान से वैराग्य, वैराग्य से धर्मसंचय, धर्म से योग और योग से महेश्वर के गुणों की प्राप्ति (अर्थात् मुक्ति) होती है।

ज्ञानाद् भवति वैराग्यं वैराग्याद् धर्मसञ्चयः।
धर्माच्च योगो भवति योगान्माहेश्वरा गुणाः।। (देवीपु. 10/1/15)

इसी प्रकरण में आगे कहा गया है कि आत्मा ध्याता, मन ध्यान का आश्रय तथा सूक्ष्म महेश्वर ध्येय है।

आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयः सूक्ष्मो महेश्वरः। (देवीपु. 10/6/6)

पुनः कहा गया है कि शुद्ध मन एवं चित्त से स्थिरतापूर्वक टिके रहकर परापरस्वरूप शिव को प्रणाम करे। उसमें चित्त को तन्मय कर निष्ठा से उसके परायण हो जाने से योगाग्नि द्वारा सभी दोषों का नाश हो जाता है और वह शाश्वत शिव का दर्शन पाता है। और उसके दर्शन से शिव के समान गुणों की प्राप्तिरूप सिद्धि मिलती है तथा जन्म एवं मोह के बन्धनों से वह मुक्त हो जाता है।

निर्गुणं मनसा ग्राह्यमनौपम्यं महाद्युतिम्।
प्रधानपुरुषेशानं सर्वभूतपतिं शिवम्।।
स्थितं स्थितेन मनसा शुद्धं शुद्धेन चेतसा।
परापरस्वरूपेण यत्सूक्ष्ममुपनयेत् पुनः।।
तच्चित्तस्तन्मयो युक्तस्तन्निष्ठस्तत्परायणः।
दोषैर्योगाग्निनिर्दग्धैः शिवं पश्यति शाश्वतम्।।

अनुत्पाद्यं सर्वगतं सर्वज्ञं सर्वकारणम्।
अक्षतैश्वर्य–सम्पन्नं देवमेकं महेश्वरम्।।
यं दृष्ट्वा लभते सिद्धिं समानगुणलक्षणम्।
यं दृष्ट्वा जन्म–मोहाभ्यां नैव संयुज्यते पुनः।। (देवीपु. 10/10/5-9)

भगवान् शिव के लिंग की पूजा ब्रह्मा, विष्णु, मरुद्गण, इन्द्र, वसु तथा विद्याधर आदि द्वारा आदरपूर्वक की जाती है।

ब्रह्मोपेन्द्र मरुन्महेन्द्र वसुभिर्विद्याधरैः सादरैः।
लिङ्गं यस्य सदार्च्चितं मुनि गणैरन्यैश्च दैत्यादिभिः।। (देवीपु. 33/9)

भगवान् शिव की उपासना से तीनों लोक का राज्य, अमरता, धर्म, अर्थ तथा कामादि सभी कुछ प्राप्त हो सकता है। अर्थात् शिवोपासना से भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त हो सकता है (देवीपु. 33/11-12)। शिव की प्रसन्नता से सिद्धों को रसायन द्रव्य सुलभ हो जाता है (वही 33/22)। जो लोग शिव की शरणागति को ग्रहण कर अन्य कार्यों को छोड़कर तीनों काल (सुबह, दोपहर तथा शाम) में शिव की अर्चना, जप तथा होमकार्य करते रहते हैं वे नाना प्रकार के ऐश्वर्य एवं भोगों को भोगकर काल की गति से कर्मों के क्षय हो जानेपर ऐश्वर्य सम्पन्न राजा के रूप में पैदा होते हैं।

ये सर्व्वे शरणागताः सुपुरुषास्त्यक्तान्यकार्य्या दशा।
त्रैकाल्याचर्चन जप्य होमनिरताद्रोगादिभि वर्जिताः।।
ते भोगान् विविधाननुभूय सकलान् कालेन कर्म्मक्षयाद्।
वित्तैश्वर्य्यसमन्विताः क्षितितले जायन्ति ते भूमिपाः।। (देवीपु. 33/23)

जो लोग सुरगुरु भगवान् शिव की पूजा करते हैं उनका नाना योनियों में भटकना समाप्त हो जाता है (वही 33/25)। इसके विपरीत जो लोग उनकी उपासना नहीं करते वे सदा दीन–दुःखी रहते तथा वे धरती पर जन्म लेते रहते हैं (वही 33/24)। जो लोग प्रतिदिन भावपूर्वक कपूर, अगरु, चन्दन, दुग्ध–स्नान आदि द्वारा विधिपूर्वक शिवजी की अर्चना करते हैं वे सभी भोगों को भोगकर दिव्यपद को प्राप्त करते हैं।

ये त्वन्ये सुकृतैषिणः प्रतिदिनं प्रोत्थाय भावान्विताः।
कर्पूरागरुचन्दनैः सुरुचितैः स्रग्भिस्तथा भूषणैः।।
क्षीरादिस्नपनैर्विधानविहितैः कुर्वन्ति शर्व्वार्च्चनम्।
भोगान् सर्व्व गतानुभूय सुधियो गच्छन्ति दिव्यं पदम्।। (देवीपु. 33/26)

जो कुपथगामी, जड़बुद्धि तथा मूर्ख शान्त, अजन्मा तथा प्रधान पुरुष शिव की मोहवश निन्दा करता है वह मृत्यु के उपरान्त यमराज के नाना दूतों द्वारा यातना पाकर क्रन्दन करता हुआ बलात् नरक को प्राप्त होता है।

ये केचित् कुपथाश्रिता जडधियो मन्दाममज्ञाः शठाः।
देवं शान्तमजं प्रधानपुरुषं निन्दन्ति मोहाच्छिवम्।।
मृत्योद्गोचरमागताः यम भटैर्नानाविधैः शासनैः।
शाम्यन्ते नरकेषु ते प्रतिवलैश्चाक्रन्दमाणा भृशम्।। (देवीपु. 33/27)

आगे कहा गया है कि जो दुष्ट पुरुष शिव से द्वेष या उनकी निन्दा करते हैं वे अधोगति को प्राप्त करते हैं, वे तामिस्त्र, क्रकच, असिपत्र, कुम्भी तथा महारौरव नरक को जाते हैं, वे हजारों योनियों में दुःख को भोगते हुए रोगी, जड़, वासनान्ध, वधिर एवं दुष्ट मनुष्य के रूप में पैदा होते हैं।

द्वैष्टारस्तु शिवस्य ये कुपुरुषा गच्छन्ति तेऽधोगतिम्।
तामिस्त्रे क्रकचासिपत्र नरके कुम्भी महारौरवे।।
योनि मार्ग सहस्त्र खिन्नगमनाः प्राप्येह मानुष्यकम्।
रोगार्तो जड़ वासनान्धवधिरा जायन्ति योनौ खलाः।। (देवीपु. 33/29)

संसार को क्षणिक जानकर सदैव शिव की शरण लेनी चाहिये (वही 33/30)। जिन्होंने न दान दिया है, न वेद पढ़ा है तथा जो न शील, सत्य, तप एवं कीर्त्ति से सम्पन्न हैं, उनका कल्याण बिना शिव की आराधना के संभव नहीं (वही 33/31)।

जो लोग शिव के चरणकमलों का संसर्गवश या उत्सुकता अथवा कौतुक से एक क्षण के लिये भी स्मरण करता है, जप करता है, तो उसे ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु वा कुबेर का लोक प्राप्त हो जाता है। और जो शान्त भाव से उन्हें समर्पित होकर सतत प्रणाम करता है, वह सभी क्लेशों से छूटकर अन्त में रुद्रतेज में लीन हो जाता है।

संसर्गात् कौतुकाद्वा क्षणमपि यैः जप्तं पादेषु पद्मेषु शम्भो।
याति ब्रह्मेन्द्र विष्णु द्रविणपति पुरांस्त्रीनति क्रम्य लोकान्।।
शान्त्या भावेन यस्तं प्रणमति सततं सर्व्व विन्यस्त सर्गी।
संछिन्न क्लेश पाशैः प्रविशति विरजो रुद्र तेजो निधानम्।। (देवीपु. 33/36)

जो मनुष्य रागमुक्त होकर परापरज्ञ, योगेश्वर एवं देवताओं के गुरु शिवजी का सतत स्मरण करते हैं वे ध्यान द्वारा पाप एवं मोहजाल से मुक्त होकर जन्म-मरण के चक्र से छूट जाते हैं।

ये मानवा विगतराग परापरज्ञा योगेश्वरं सुरगुरुं सततं स्मरन्ति।
ध्यानेन ते प्रहत किल्बिष मोहजाला मातुः पयोधर रसं न पुनः पिवन्ति।।
(देवीपु. 33/39)

अन्त में कहा गया है कि वह शरीर उत्तम है जो सदैव भगवान् शिव को प्रणाम करता है, वे नेत्र सुन्दर हैं जो शिव का दर्शन करते हैं, वह बुद्धि उत्तम है जो शंकर का ध्यान करती है तथा वह जिह्वा मृदुभाषी तथा हितकारी है जो नित्य शिव की स्तुति करती है। वह चित्त कुशल है जिसमें शिव

निश्चल रूप से स्थित हैं, वे कान श्रेष्ठ हैं जो शिवामृत रस का श्रवण करते हैं, वे हाथ श्रेष्ठ हैं जो शिवसंबंधी धर्म-कर्म तथा पूजा में रत रहते हैं तथा वे पैर श्रेष्ठ हैं जो भावपूर्वक शिव की प्रदक्षिणा में नित्य रत रहते हैं।

तद् गात्रं प्रणिपातरेणुधवलं सर्व्वस्य यत् सर्व्वदा।
ते नेत्रे तपसार्ज्जिते सुरुचिरे ताभ्यां हरो दृश्यते।।
सा बुद्धिर्विमलेन्दु शङ्‌ख धवला या शङ्‌करध्यायिनी।
सा जिह्वा मृदुभाषिणी हितकरी या स्तौति नित्यं शिवम्।।
तच्चित्त चपलं चिनोति कुशलं यन्निश्चलं शङ्‌करम्।
ते श्रोत्रे परमे शिवामृतरसं याभ्यां हरः श्रूयते।।
ते हस्ताः शिव धर्म्मं कर्म्मं निरताः पूजा प्रमाणोत्सुका।
तौ पादौ समयौ प्रदक्षिणरतौ नित्यं विभोर्भावितौ।। (देवीपु. 33/40-41)

इस पुराण में नाना प्रकार के पुष्पों से की गयी शिवपूजा का फल बताया गया है। वैशाख मास में पाटला तथा ज्येष्ठ में कमल एवं अर्जुन द्वारा शिव की पूजा से सभी कामनायें पूरी होती हैं। अषाढ़ में बिल्व एवं कल्हार(सायंकाल में फूलनेवाला श्वेतकमल), श्रावण में नोमाली तथा भादों में कदम्ब एवं चम्पा से की शिवपूजा से सभी कामनायें पूरी होती हैं। अश्विन मास में कमल की माला से तथा कार्तिक मास में शतपत्र(कमल) के फूलों से शिव की अर्चना से सभी कामनायें पूरी होती हैं। मार्गशीर्ष में नीलोत्पल, पुष्य मास में कुंज तथा कजा, माघ में कुन्द तथा फाल्गुन में मरुपत्र तथा माधवी से की शिवपूजा शुभदायक होती है। चैत्र मास में वस्त्र, गंध एवं पुष्प से की जानेवाली शिव-पूजा से व्यक्ति को सुवर्ण, गाय, भूमि, वस्त्र, अन्न तथा विद्यादान का फल प्राप्त होता है तथा उसे वाजपेय एवं सैकड़ों राजसूय यज्ञों का फल प्राप्त होता है।

वैशाखे तु प्रकर्त्तव्या पूजा पाटलजैः स्रजैः।
सर्व्वकाममवाप्नोति ज्यैष्ठे पद्माज्र्जुनैस्तथा।।
अषाढे बिल्वकल्हारैरिहितं लभते फलम्।
नोमालीकुसुमैः पूजा न मे कार्य्या महाफला।
कदम्ब चम्पकैरीषे सर्व्वकाम फलप्रदा।।
पूजा पङ्‌कजमालाभ्यां सर्व्वाभ्युदयदायिका।
शतपत्रिकया पूजा कार्त्तिके सर्व्वकामिका।।
मार्गे नीलोत्पला पूजा पुष्ये कुंज कजास्तथा।
माघे कुन्दकृता पूजा सर्व्वकाम प्रदायिका।।
फाल्गुने मरुपत्रोत्था माधवी शुभदायिका।

एवं संवत्सरं चैत्र्यां यः कुर्याद् ग्रहसत्तम।।
गन्धपुष्पान्न वस्त्रैश्च तस्य पुण्यफले शृणु।
हेमगो भूमि वस्त्रान्न विद्यादान फलं लभेत्।।
वाजपेय महामेध राजसूय शताधिकम्।
..।। (देवीपु. 62/1-7)

इस पुराण के 63 वें अध्याय(श्लोक 2-17) में शिव के मान्य तीर्थों तथा उन तीर्थों से संबंधित भगवान् शिव के 68 नामों का वर्णन किया गया है। इन तीर्थों तथा उनके नामों का प्रातःकाल उठकर स्नान आदि से पवित्र होकर पाठ करने से व्यक्ति सभी पापों से छूटकर शिवलोक को प्राप्त करता है।(देवीपु. 68/18)

इस पुराण के 76 वें अध्याय में शिवसंबंधी कुछ तीर्थों जैसे काशी, नर्मदा, केदार तथा कुरुक्षेत्र आदि के माहात्म्य की भी चर्चा है। उदाहरण के लिये रामेश्वर ब्रह्महत्या को दूर करनेवाला, कुरुक्षेत्र सभी पापों को दूर करनेवाला तथा काशी तथा मायापुरी अनन्त पुण्य देनेवाला तीर्थ है।

इस पुराण में भगवान् शिव से संबंधित कुछ स्तोत्र दिये गये हैं जिनमें से शुक्राचार्यकृत स्तोत्र महत्त्वपूर्ण है। इसके प्रतिदिन के पाठ से व्यक्ति को यज्ञों का फल प्राप्त होता है, मनोवांछित लक्ष्य की पूर्ति होती है तथा अन्त में भगवान् शिव के शाश्वत पद को व्यक्ति प्राप्त करता है। यह स्तोत्र इस पुराण के 33 वें अध्याय(श्लोक 6-43) में है। इच्छुक पाठक वहाँ देख लें।

सभी प्रमुख ग्रन्थों में भगवान् शिव को अर्द्धनारीश्वर कहा गया है। अर्थात् पार्वती उनके आधे अंग में विराजमान रहती हैं। शिव सदैव शक्तियुक्त होते हैं। शिव-शक्ति का अद्वैत ही परम तत्त्व है। जो शिव हैं वही शक्ति हैं। शिव-शक्ति की एकरूपता का संकेत इस पुराण में भी मिलता है। एक स्थल पर कहा गया है कि जो नन्दा(देवी का या शक्ति का एक रूप) हैं वही साक्षात् शिव हैं, इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। नन्दा का शिव से तादात्म्य बतलाने के बाद कहा गया है कि नन्दा से बढ़कर कोई न तो ध्यान है न तप और न ही तीर्थ।

या नन्दा सा शिवः साक्षान्नन्दारूपधरः शिवः।
उभयोरन्तरं नास्ति नन्दायास्तु शिवस्य च।।
न नन्दापरमं ध्यानं न नन्दापरमं तपः।
न नन्दापरमं तीर्थं शिवः साक्षात् प्रभाषते।। (देवीपु. 95/39-40)

इस पुराण में देवी की महिमा को ही सर्वत्र प्रधानता दी गयी है। परन्तु अगर हम देवी को शिव से अभिन्न मानते हैं तो देवी की महिमा का वर्णन प्रकारान्तर से शिव की ही महिमा का वर्णन है। ऊपर का दिया गया उदाहरण देवी एवं शिव की अभिन्नता को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

उपसंहार

वर्तमान देवीपुराण, जो शाक्तों का एक प्राचीन उपपुराण है, में 128 अध्याय हैं। इस पुराण में व्याकरण के अनेक नियमों, यथा सन्धि, समास, छन्द, लिंग, वचन, कारक तथा शब्दरूपों आदि का उलंघन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।

इस पुराण में शिव संबंधी बहुत ही कम प्रसंग पाये जाते हैं। परन्तु जो प्रसंग प्राप्त होते हैं उनसे भगवान् शिव सर्वश्रेष्ठ देव तथा परब्रह्म अथवा परमतत्त्व सिद्ध होते हैं। ब्रह्मा एवं विष्णु शिव की स्तुति में उन्हें श्रेष्ठतम, अनन्त, कारणत्रय, सभी भूतों के साक्षी, गुणत्रय, प्रधान(प्रकृति), पुरुष, आत्मा, नियामकशक्ति, कालदण्ड, यमराज का अन्त करनेवाले, कालकूट एवं गंगा को धारण करनेवाले, देवदेव, संसार को उत्पन्न करनेवाले, महाकाल, ईश्वर, सदाशिव, सत्य में निवास करनेवाले, सर्वेश, परमेष्ठि, तथा वासुकि एवं अनन्त को मेखला के रूप में धारण करनेवाले आदि-आदि कहते हैं।

शिव को सभी से श्रेष्ठ, सभी भूतों के कारणों के कारण, निर्गुण, मन से अग्राह्य, अनुपमेय, प्रकाशमान तथा सभी भूतों का स्वामी भी कहा गया है। उन्हें जानकर व्यक्ति निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

उन्हें ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण, वसुगण, विद्याधर, मुनि तथा दैत्यगण आदि द्वारा पूजित, विश्वात्मा, अमरत्व, धर्म, अर्थ आदि को प्रदान करनेवाला, परम कारण, सुरासुरगुरु, लोकाधिपति, सर्वात्मा, योगेश्वर तथा परापरज्ञ आदि भी कहा गया है।

भगवान् शिव का ज्ञान या उनकी प्राप्ति ही निर्वाण कहलाता है। योग का लक्ष्य शिवतत्त्व की प्राप्ति है। ध्यान का विषय भी भगवान् शिव हैं। शिव को प्रणाम करने तथा उनमें चित्त को तन्मय कर उनपर अश्रित हो जाने से योगीजनों के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं और वे शिव का दर्शन पाते हैं फलस्वरूप वे जन्म एवं मोह के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।

भगवान् शिव के लिंग की पूजा ब्रह्मा, विष्णु, मरुद्गण, इन्द्र, वसु तथा विद्याधर आदि द्वारा आदरपूर्वक की जाती है। शिवोपासना से त्रिलोकी का राज्य, अमरता, धर्म, अर्थ कामादि सभी-कुछ प्राप्त हो सकता है। शिवलिंग की पूजा विविध उपचारों से करनेवाले को भी भोग, स्वर्ग एवं शिवत्त्व की प्राप्ति होती है। जो लोग शिवोपासना नहीं करते, उन्हें दुःख एवं बार-बार जन्म-मरण प्राप्त होता रहता है। जो शिव के चरणकमलों का संसर्गवश या उत्सुकतावश भी एक क्षण के लिये भी स्मरण करता है अथवा जप करता है तो उसके सभी क्लेश समाप्त हो जाते हैं तथा अन्त में वह रुद्रतेज में लीन हो जाता है।

जो लोग मोहवश शिव की निन्दा करते हैं वे नाना प्रकार के घोर नरकों में जाते हैं तथा यमयातना भोगने के बाद रोगी, जड़, बधिर तथा दुष्ट मनुष्य के रूप में पैदा होते हैं। वही व्यक्ति उत्तम है जिसका शरीर शिव को प्रणाम करने के लिये झुकता है तथा जिसके कान, हाथ, जिह्वा आदि

इन्द्रियाँ शिव से संबंधित विषयों का सेवन करती हैं। इस पुराण में अलग-अलग महीनों में अलग-अलग प्रकार के फूलों से शिर्वाचन करने के फल को भी बताया गया है। जैसे अषाढ़ में बिल्व, भादों में कदम्ब, फाल्गुन में माधवी आदि से पूजन करने पर सभी प्रकार की कामनायें पूरी होती हैं। इस पुराण में शिव के 68 नामों तथा उनसे संबंधित तीर्थों का भी नामोल्लेख है जिसका पाठ पापों से मुक्ति दिलाकर शिवलोक को प्राप्त कराता है। काशी, नर्मदा, केदार एवं कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों के माहात्म्य की भी चर्चा की गयी है।

यह पुराण मूल रूप में देवी की महिमा को बतलानेवाला है। परन्तु इसमें शिव को देवी या शक्ति से अभिन्न भी बताया गया है। अत: देवी की महिमासंबंधी जो कुछ भी बातें हमें इस पुराण में प्राप्त होती हैं वे प्रकारान्तर से शिव की ही मानी जानी चाहिये।

(यह लेख डॉ0 पुष्पेन्द्र कुमार शर्मा द्वारा संपादित तथा श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्, दिल्ली द्वारा 1976 में प्रकाशित 'देवीपुराणम्' की प्रति पर आधारित है।)

* * *

आचार का महत्त्व

बिना सदाचार के किसी भी प्रकार की भक्ति, साधना अथवा धार्मिक-कृत्य निष्फल होते हैं। नारदमहापुराण में कहा गया है-

वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वापि महेश्वरे।
आचारात्पतितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तम।।
पुण्यक्षेत्राभिगमनं पुण्यतीर्थनिषेवणम्।
यज्ञो वा विविधो ब्रह्मंस्त्यक्ताचारं न रक्षति।।
आचारत् प्राप्यते स्वर्ग आचारात्प्राप्यते सुखम्।
आचारात्प्राप्यते मोक्ष आचारात् किं न लभ्यते।।

(नार. महापु. पूर्वखण्ड 4/25-27 तथा बृहन्नारदीय पु. 4/11)

अर्थात्-वेद, श्रीहरि की भक्ति अथवा भगवान् महेश्वर की भक्ति भी आचार से पतित मूढ़ की रक्षा नहीं कर सकती। पुण्यक्षेत्र तथा तीर्थों का सेवन तथा विविध प्रकार के यज्ञ आचारहीन की रक्षा नहीं कर सकते। आचार से स्वर्ग, सुख तथा मोक्ष क्या कुछ नहीं प्राप्त हो सकता? अर्थात् आचार से ही सभी कुछ प्राप्त होता है।

कालिका पुराण[1] में शिवतत्त्व

कालिका पुराण की गणना उपपुराणों में होती है। इस पुराण का मुख्य विषय देवी-माहात्म्य को प्रतिष्ठित करना है। मार्कण्डेय पुराण की भाँति इसमें भी देवी के माहात्म्य की चर्चा विस्तार से की गयी है। इस पुराण के प्रमुख वक्ता मार्कण्डेय मुनि हैं। इस पुराण में कई कथाओं का रूप परम्परा से पायी जानेवाली कथाओं से हटकर है। देवी के माहात्म्य से संबंधित होनेपर भी प्रसंगवश शिव की महिमा का गान किया गया है। उस स्थल पर उन्हें ही सर्वोच्च देव स्वीकार किया गया है।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में भगवान् शिव को परम तत्त्व अथवा ब्रह्म स्वीकार किया गया है तथा उनके निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की चर्चा की गयी है। निर्गुणरूप में वे परात्पर, मन-वाणी से अगोचर, देव-दानव सभी से अज्ञेय, स्वयंभू, एक, नित्य, शुद्ध, अव्यक्त तथा अचिन्त्य आदि हैं। सगुणरूप में वे सृष्टिकर्त्ता, पालन एवं संहारकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप, जगत्स्वरूप, विश्वात्मा, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, जगत्पति, देवों के देव तथा भोग-मोक्ष आदि के दाता हैं।

इस पुराण में दक्ष-यज्ञविध्वंस की कथा लीक से हटकर है। सती को जब यह पता चला कि दक्ष ने यज्ञ में न तो उनको और न ही शिव को आमंत्रित किया है तो उन्होंने पति के अपमान से उत्पन्न शोक के कारण योग के सहारे अपने प्राण को वहीं(कैलास) पर त्याग दिया। जब शिव को सती की सखियों विजया आदि से इसका पता चला तो उन्होंने क्रोध कर स्वयं यज्ञभूमि में जाकर दक्ष के यज्ञ का विनाश कर दिया। उस समय जब सभी देव एवं ऋषिगण आदि भाग चले तो यज्ञ मृग का रूप धारण कर आकाश में भागा। शिव उसका पीछा करने लगे। पुनः ब्रह्मा के संकेत से यज्ञ आकाश से नीचे उतरकर माया का आश्रय ले सती के शरीर में प्रवेश कर गया। जब पीछा करते हुए शिव सती के शव के समीप आये तो उन्हें पुनः सती की याद सताने लगी। शोक से भरकर वे सती के शरीर को कन्धे पर रखकर पागलों की तरह घूमने लगे। उनकी इस दशा को देखकर योग माया से अदृश्य होकर ब्रह्मा, विष्णु एवं शनैश्चर ने सती के शव के अन्दर प्रवेशकर उसे खण्ड-खण्ड कर दिया। जहाँ पर सती का सिर गिरा था वहाँ शिव रुककर शोकाकुल होकर लम्बी-लम्बी साँसे लेने लगे। वहाँ पर उन्हें बैठे देखकर ब्रह्मादि देवगण दूर से ही सांत्वनापरक वचन बोलते हुए उनके समीप आने लगे। उन देवों को आते देखकर शिवजी वहीं पर लिंग-रूप में परिणत हो गये। जगद्गुरु लिंग-रूप शिव को संतुष्ट करने के लिये देवगणों ने उनकी स्तुति करनी शुरू कर दी।

अपनी स्तुति में देवगणों ने शिव को महादेव, सबके अन्तःकरण, वर देनेवाले, अव्यय, अनादि,

---

[1] यहाँ पर 'कालिका पुराण' की जिस प्रति का उपयोग किया गया है वह डॉ. चमनलाल गौतम द्वारा संपादित तथा संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली(उ. प्र.) द्वारा 2 खण्डों में प्रकाशित है। यह पुराण संक्षिप्त करके छापा गया है, इसलिये यहाँ जो संदर्भ दिये जायँगे वे मूल पुराण के संदर्भों से भिन्न हो सकते हैं।

योगविद्या, शान्त, ब्रह्म, लिंगमूर्ति, जटाधारी, विद्या की शक्ति को धारण करनेवाले, ज्ञानरूपी अमृत के अन्त (अर्थात् ज्ञानामृत की पराकाष्ठा), प्रलय समुद्र में स्थित रहनेवाले, प्रलय तथा स्थिति के कारण, श्रेष्ठतम, परमात्मा, परमार्थस्वरूप, ज्ञान के दीपक, स्रष्टा, महेश्वर, सभी भूतों के स्वामी, भगवान्, सभी कारणों के भी कारण आदि कहा है (कालिका पुराण, प्रथम खण्ड 18 / 55 - 67)। स्तुति के कुछ अंश देखें -

आदिमध्यान्तभूताय स्वभावानलदीप्तये।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये।।
प्रलयार्णवसंस्थाय प्रलयस्थितिहेतवे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये।।
ॐ नमः परमार्थाय ज्ञानदीपाय वेधसे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये।। (कालिका. पु. 1/18/60, 61, 64)

अर्थात् - जो सभी भूतों के आदि, मध्य एवं अन्त हैं, जो स्वाभाविक रूप से अग्नि के समान तेजस्वी हैं ऐसे लिंगमूर्ति ब्रह्मस्वरूप शान्त शिव को नमस्कार है। जो प्रलय के समुद्र में विराजमान हैं तथा प्रलय एवं स्थिति के कारण हैं, उन लिंगमूर्ति ब्रह्मस्वरूप शान्त शिव को नमस्कार है। परमार्थस्वरूप, ज्ञान के दीपक तथा स्रष्टा को नमस्कार है। लिंगमूर्ति ब्रह्मस्वरूप शान्त शिव को नमस्कार है।

देवताओं द्वारा उपरोक्त स्तुति के बाद भगवान् शिव लिंगरूप त्यागकर अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो गये। उनके प्रकट होने के बाद ब्रह्मा ने उनकी पुनः स्तुति करनी आरंभ कर दी। अपनी इस स्तुति में उन्होंने शिव को हिरण्यबाहु, ब्रह्मा, विष्णु, जगत्पति, सृष्टि, स्थिति एवं विनाश के हेतु, चराचर जगत् में व्याप्त अष्टमूर्तिस्वरूप, मुमुक्षुओं द्वारा आराधित होकर मुक्ति देनेवाले, राग - द्वेषादि बन्धनों से छुड़ानेवाले, परम तत्त्व तथा शुद्ध आदि कहा है। (कालिका पु. प्रथम खण्ड 18 / 70 - 82)

हिरण्यबाहो ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं जगतः पतिः।
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुस्त्वं केवलं हरः।।
त्वामाराध्य महादेव मुक्तिं याता मुमुक्षवः।
रागद्वेषादिभिस्त्यक्ताः संसारविमुरवा बुधाः।। (कालि. पु. 1/18/70, 72)

अर्थात् - हे हर! आप ही हिरण्यबाहु ब्रह्मा, विष्णु तथा जगत्पति हैं, आप ही जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं विनाश के कारण हैं। हे महादेव! आप की आराधना से मुमुक्षु मुक्ति पाकर राग - द्वेषादि से मुक्त हो जाते तथा बुद्धिमान् लोग संसार से विमुख (अथवा वैराग्यवान्) हो जाते हैं।

एक अन्य स्थल पर ब्रह्माजी भगवान् शिव के स्वरूप के बारे में कहते हैं कि वे विष्णुस्वरूप, श्रेष्ठ, शान्त, सूक्ष्म, स्थूलतर, निरंजन, यतियों द्वारा ध्येय, परात्पर, निर्मल, सर्वगामी, राग, लोभ आदि

मल से रहित हैं।

प्रभविष्णुः परः शान्तः सूक्ष्मः स्थूलतरः सदा।
.. ।।
निरञ्जनं ध्यानगम्यं यतीनां परात्परं निर्मलं सर्वगामी।
मलैर्हीनं रागलोभादिभिर्यत ....।। (कालिका पु. 1/19/5-6)

मार्कण्डेयजी जगत् में सार तत्त्व क्या है? इसकी चर्चा करते हुए कहते हैं कि एकमात्र शान्त, अनन्त, अच्युत, परात्पर, ज्ञानमय, विशेष, अद्वैत, अव्यक्त, अचिन्त्यरूपवाले शिव के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सार नहीं है।

एकं शिवं शान्तमनन्तमच्युतं परात्परं ज्ञानमयं विशेषम्।
अद्वैतमव्यक्तमचिन्त्यरूपं सारं त्वेकं नास्ति सारं तदन्यत्।।
(कालिका पु. 1/28/4)

भगवान् शिव को अर्द्धनारीश्वर(कालि. पु. 2/3/66), अक्षर एवं परम ब्रह्म(2/3/73), सर्वभूतेश(2/4/172), सर्वज्ञ, सर्वत्र गमन करनेवाले, सर्वात्मा, सबके हृदय में निवास करनेवाले, सबको विभूति प्रदान करनेवाले(2/5/36), विभूतिधारी, व्याघ्रचर्म, जटा, तथा कपालधारी, सर्प के आभूषण धारण करनेवाले, गले में विष को धारण करनेवाले, त्रिनेत्र, अव्यक्तजन्मा, ब्रह्मा तथा इन्द्रादि द्वारा अज्ञेय(2/5/69-71, 87), शान्त, सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारण, प्रपंचरहित, जगत् के हितस्वरूप तथा परमगति(2/5/95-96) कहा गया है।

अन्य स्थलों पर शिव को प्रधान, सत्त्व, रज एवं तम से युक्त, समस्त जगत् के पुरुष(2/6/18), चन्द्रशेखर, देवदेव, जगत्पति, शाप एवं अनुग्रहकर्त्ता, प्रलय-काल में सभी लोकों का संहार करनेवाले, भक्तों को विभूति प्रदान करनेवाले, अनेक रूप धारण करनेवाले तथा सुन्दर रूपवाला(2/6/26-27) कहा गया है। वसिष्ठजी बेताल एवं भैरव से भगवान् शिव के बारे में बताते हुए कहते हैं कि वे तेजोमय, सदाशुद्ध, ज्ञानामृत से परिपूर्ण, जगत्स्वरूप, चिदानन्द, ब्रह्मा एवं विष्णु का रूप धारण करनेवाले महादेव सदा महायोग[1] से युक्त रहते हैं। उनके स्वरूप का कथन करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

तेजोमयः सदा शुद्धो ज्ञानामृतविवर्धितः।
जगन्मयश्चिदानन्दः शौरिब्रह्मस्वरूपधृक्।।
महादेवो महामूर्तिर्महायोगयुतः सदा।
जगत् तस्य रूपाणि तानि को गदितुं क्षमः।। (कालि. पु. 2/8/124-125)

भगवान् शिव पाँच मुख, दस भुजा तथा पन्द्रह नेत्रवाले, त्रिशूल, खट्वांग, डमरू, नीलकमल

---

[1] महायोग के लिये इसी पुस्तक के लेख 'लिंग पुराण में शिवतत्त्व तथा उसकी उपासना' को देखिये।

आदि को धारण करनेवाले, अष्टमूर्तिरूप तथा अष्ट ऐश्वर्यों से युक्त हैं। उनका सद्योजात नामक मुख शुद्ध स्फटिक के समान शुक्ल वर्ण का, वामदेव पीत वर्ण का, अघोर नील वर्ण का, तत्पुरुष रक्त वर्ण का तथा ईशान श्याम वर्ण का है (2/8/136-150)।

जब बेताल एवं भैरव की पूजा से सन्तुष्ट हो भगवान् शिव ने उन्हें दर्शन दिया तो उन दोनों ने शिव की स्तुति की। वे अपनी स्तुति में शिव को सर्वज्ञानमय, परम, संसारसागर से उबारनेवाले, परमात्मा, परेश, पुरुषोत्तम, कूटस्थ, जगद्व्यापी, प्रधान, तत्त्वज्ञान के घर, सांख्य-योग के धाम, नित्य, अनित्य, जगत्कर्त्ता, लयकर्त्ता, एक और अनेक रूपवाले, शान्त, जगन्मय, निर्विकार, निराधार, नित्यानन्द, सनातन, विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्ररूप, जगत्पति, योगेश्वर, अगम्य, देवदेव, देवताओं के शरणस्थल, विकल्पहीन, मुनियों की गति, योगियों द्वारा गम्य, विश्वात्मन्, ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करनेवाले, विष्णुरूप से स्थिति बनाये रखनेवाले तथा रुद्ररूप से अन्त करनेवाले, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी तथा आकाशरूप, यज्ञ, मंत्र तथा होता-रूप, अष्टमूर्तिरूप, अनन्तमूर्ति, सहस्रबाहु, सहस्रमूर्ति, नित्य और अनित्य स्वरूपवाले, नित्यधामस्वरूप, परतत्त्व, ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा अगम्यलिंगवाले, देव-दानव द्वारा अगम्य तथा परमेश्वर आदि संज्ञाओं तथा विशेषणों से विभूषित करते हैं (2/8/179-198)। स्तुति के कुछ अंश इस प्रकार हैं-

त्वं परः परमात्मा च परेशः पुरुषोत्तमः।
त्वं कूटस्थो जगद्व्यापी प्रधानः परमेश्वरः।।
त्वं नित्यस्त्वमनित्यश्च जगत्कर्ता लयः स्मृतः।
एकोऽनेकस्वरूपश्च शान्तचेष्टो जगन्मयः।।
निर्विकारो निराधारो नित्यानन्दः सनातनः।
त्वं विष्णुस्त्वं महेन्द्रस्त्वं ब्रह्मा त्वं जगतां पतिः।। (कालि. पु. 2/8/180, 182-183)

अर्थात्- तुम पर, परमात्मा, सर्वश्रेष्ठ स्वामी, पुरुषोत्तम, कूटस्थ, जगत् में व्याप्त, प्रधान एवं परमेश्वर हो। तुम नित्य, अनित्य, जगत्कर्त्ता, लयकर्त्ता, एक और अनेक रूपवाले, शान्त चेष्टावाले तथा विश्वरूप हो। तुम निर्विकार, निराधार, नित्यानन्द, सनातन, विष्णु, इन्द्र, ब्रह्मा तथा जगत्पति हो।

उपर्युक्त सभी उद्धरणों में कथित शिव के विशेषण तथा उनकी संज्ञायें उन्हें परब्रह्म सिद्ध करती हैं। वही परब्रह्म सगुणरूप धारण करके सभी प्रकार की उपाधियों से विभूषित हो जाता है। इस जगत् में शिव ही एकमात्र तत्त्व है जिसका अभिन्न अंग शक्ति या देवी हैं। शिव शक्तियुक्त है, दोनों में अभेद है। भेद केवल सृष्टि-प्रक्रिया के प्रारंभ हो जानेपर होता है। सृष्टि के लय हो जानेपर तथा सृष्टि से पूर्व शिव-शक्ति में अभेद ही रहता है। शिव की इच्छा से शक्ति क्रियाशील हो जगत् की सृष्टि आदि व्यापार को चालू कर देती है।

शिवोपासना

भगवान् शिव को वरदाता(1/18/56), परमार्थस्वरूप(1/18/64), आराधित होनेपर राग-द्वेषादि से मुक्त कराकर मुक्ति दिलानेवाले(1/18/72), यति लोगों के ध्यान का विषय(1/19/6 तथा 8), सबकी गति तथा जगत् के हितस्वरूप(2/5/95-96) शाप एवं अनुग्रह में समर्थ(2/6/26), भक्तों को विभूति प्रदान करनेवाले(2/6/27), मुनियों की गति(2/8/187) तथा ध्यान एवं पूजन दोनों साथ करने से शीघ्र प्रसन्न होनेवाले(2/8/123) कहा गया है। इन विशेषताओं के कारण भगवान् शिव की उपासना सबको अवश्य करनी चाहिये।

भगवान् शिव की उपासना षडक्षर मन्त्र द्वारा करना सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। शिव से यथेष्ट वर की प्राप्ति हेतु नारदजी गौरी को षडक्षर मन्त्र का ही उपदेश देते हैं। यह मन्त्र शंकरजी को अत्यन्त प्रिय है।

आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति महेश्वरः।
ओम् नमः शिवायेति च सर्वदा शंकरप्रियः।।
चिन्तयन्ती तु तद्रूपं नियमस्था षडक्षरम्।
मन्त्रं जप त्वं गिरिजे तेन तुष्टो भवेद्धरः।। (कालि. पु. 2/5/8-9)

अर्थात्- (नारदजी पार्वती से कहते हैं कि) आराधना करने से महेश्वर प्रत्यक्ष दर्शन देंगे। **'ओम् नमः शिवाय'** यह(मन्त्र) शंकर को सदा ही प्रिय है। तुम उनके स्वरूप का चिन्तन करते हुए नियम में स्थित रहकर षडक्षर मन्त्र का जप करो, इससे शिव सन्तुष्ट हो जायँगे।

गिरिजा को जो उपदेश दिया गया है वह सभी के लिये है। गिरिजा को तो लोगों को उपदेश देने के लिये माध्यम बनाया गया है। इस उपदेश का भाव यह है कि जप का नियम लेकर निश्चित मात्रा में शिव का ध्यान करते हुए जप करें। ऐसा करने से शिवजी सन्तुष्ट हो दर्शन देते हैं।

इस षडक्षर मन्त्र का उपदेश वसिष्ठजी ने बेताल तथा भैरव को भी दिया है। संध्याचल पर(जहाँ वसिष्ठजी शिवाराधना करते थे) वसिष्ठजी के पास बेताल तथा भैरव जाकर आग्रह करते हैं कि "आप हमें उस मन्त्र एवं नियम या तप को बताइये जिससे शिव की आराधना शीघ्र फल देनेवाली हो।" उत्तर में वसिष्ठजी कहते हैं कि केवल ध्यान से देर में फल प्राप्त होता है जबकि ध्यान एवं पूजन दोनों करने से शीघ्र ही भगवान् शिव प्रसन्न हो जाते हैं(2/8/116-118, 123)।

तदनन्तर वसिष्ठजी कहते हैं कि आप दोनों पंचाक्षर मन्त्र(ॐ को जोड़ देने से षडक्षर हो जाता है), जो पंचवक्त्र भी कहा जाता है, से ईश्वर की पूजा कीजिये। आगे वे पंचाक्षर मन्त्र का ध्यान तथा पूजाविधि का विस्तार से वर्णन करते हैं। ध्यान में शंभु के पाँच मुख, विशाल शरीर, जटा-जूट एवं चन्द्रमा से अलंकृत, दस भुजा, व्याघ्रचर्म का परिधान धारण किये, कण्ठ में विष धारण किये, नागों के हार से सुशोभित वक्ष, भुजंग ही जिनके किरीट का बन्धन तथा कंकण हैं, भस्म से संपूर्ण अंग विभूषित, प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र, वृषभ के ऊपर सवार, हाथी के चर्म को ओढ़े हुए-ऐसे रूप

का चिन्तन करना चाहिये। उनके पाँचों मुखों के विभिन्न वर्णों तथा आकृतियों का तथा विभिन्न हाथों में शक्ति, त्रिशूल, खट्वांग, वर, अभय, अक्षसूत्र, भुजंग, डमरू, उत्पल आदि को धारण किये हुए रूप का ध्यान करना चाहिये।

ध्यान के बाद द्वारपालों का चिन्तन कर गणेश आदि का पूजन करे। इसके अनन्तर पाँच भूतों की विशुद्धि का चिन्तन करे। पश्चात् आठ नामों द्वारा अष्टमूर्तियों की अर्चना करे। फिर आठ देवियों - बाला, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकरणी, देवी, बल - प्रमथिनी तथा मनोन्मथिनी - का पूजन करे। इस रीति से शम्भु का पूजन करके ध्यान में परायण मनवाला हो जावे। फिर अपने गुरुदेव का और (पंचाक्षर) मन्त्र का ध्यान करके माला के माध्यम से जप करे। (कालि. पु. 2 / 8 / 129 - 158)

इस पुराण में मालाधारण करने का मन्त्र तथा मन्त्रों के जप की विधि का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। किसी भी प्रकार के मन्त्र को जपने से पहले माला पर जल छिड़ककर मण्डल में रखकर अथवा दाहिने हाथ में लेकर निम्नलिखित मन्त्र से उसका पूजन करना चाहिये -

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।।[1]
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।

(कालि. पु. 2 / 12 / 113 - 114 तथा 2 / 14 / 145)

माला की वन्दना के बाद उसे दाहिने हाथ में लेकर मध्यमा वा अनामिका पर स्थापित कर अगूँठे के अग्रभाग से जप करें। जप करते समय तर्जनी को माला से दूर ही रखे अर्थात् उससे स्पर्श न कराये। यह ध्यान रखना चाहिये कि माला के मनके आपस में स्पर्श न करें। अर्थात् जप करते समय एक बार में एक ही मनके का स्पर्श (अगूँठे अथवा जप करनेवाली अगुँली से) हो। अगर मन्त्र जपते समय एक बार में दो मनके का एक साथ स्पर्श हो जाय तो वह जप निष्फल हो जाता है। जपते समय माला को हृदय के समीप रखे। देवता का चिन्तन करते हुए ही जप करना चाहिये। बायें हाथ से माला का स्पर्श न करे। रुद्राक्ष की माला उत्तम होती है। माला किस प्रकार की होनी चाहिये इसका भी विस्तार से वर्णन किया गया है। (कालि. पु. 2 / अध्याय 12)

हाथ में माला इस प्रकार ग्रहण करना चाहिये कि वह जप करते समय हाथ से छूट न जाय अथवा टूट कर गिर न जाय। माला का हाथ से गिर जाना या टूट जाना विघ्नकारक होता है। ठीक तरह से जप किया जाय तो वह फलदायी होगा अन्यथा माला टूटने आदि जैसी गलती पर फल उल्टा भी हो सकता है।

बिना संख्या से जो जप किया जाता है वह जप निष्फल होता है। माला से जप करके उस

---

[1] कर्मकाण्ड की पुस्तकों में इस मन्त्र के साथ एक और मन्त्र दिया गया है जो इस प्रकार है -

ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये।।

(नित्यकर्म - पूजा प्रकाश, पृ. 46, गीताप्रेस, गोरखपुर)

माला का मस्तक में अथवा प्रांशु स्थान में विन्यास करना चाहिये। इसके अनन्तर स्तुति का पाठ करना चाहिये और अन्त में जिस कामना के निमित्त जप किया जा रहा हो उसका निवेदन करना चाहिये।

अनाख्यातं च यज्जप्तं तस्य तन्निष्फलं भवेत् ।
जप्त्वा मालां शिरोदेशे प्रांशु स्थानेऽथ वा न्यसेत् ।।
स्तुतिपाठं ततः कुर्यादिष्टकामं निवेद्य च । (कालि. पु. 2/12/36-37)

इस पुराण में वाराणसी की महिमा बताते हुए कहा गया है कि वहाँ पर आराधना करने पर भगवान् शिव शीघ्र ही दर्शन देते हैं। यहाँपर भगवान् शिव स्वयं नित्य निवास किया करते हैं। यह पुरी आकाश में स्थित है। यहाँ जो अपने प्राण त्यागता है उसको यहाँ दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है। उसे महादेव स्वयं ही संसार के आवागमन की ग्रन्थी से मुक्त करते हैं तथा वह अगले जन्म में परमयोगी हो जाता है। और इस प्रकार वह निर्वाण को प्राप्त कर लेता है(कालि. पु. 2/8/61-65)।

दूसरा सिद्धिदायक क्षेत्र कामरूप है। वहाँपर शंकरजी पार्वतीसहित सदा ही सन्निहित रहा करते हैं। शम्भु के नेत्र से भस्मीभूत हुए कामदेव ने भगवान् शम्भु के अनुग्रह से वहाँपर रूप को प्राप्त किया था, इसीलिये तभी से वह क्षेत्र कामरूप नामवाला हो गया। यहाँ धर्म, अर्थ और काम सभी की प्राप्ति होती है।(2/8/70-78)

त्रिदेवों की एकता

इस पुराण में त्रिदेवों की एकता का विस्तृत विवेचन दो-तीन अध्यायों में किया गया है। एक स्थल पर ब्रह्माजी भगवान् से कह रहे हैं कि हम सब(ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) एक ही स्वरूपवाले हैं, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर-तीनों एक ही शक्ति के स्वरूप हैं। हम सब कार्यों के भेद से ही भिन्न-भिन्न रूपवाले हैं। यदि कार्यों में भेद न हो तो इन रूपों के भेद का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। मूलतः एक होकर भी भिन्न-भिन्न स्वरूपों को ग्रहण कर हम तीन हो जाते हैं।

एकस्वरूपा हि वयं भिन्ना कार्यस्य भेदतः ।
कार्यभेदो न सिद्धश्चेद्रूपभेदोऽप्रयोजनः ।।
एक एव त्रिधा भूत्वा वयं भिन्नस्वरूपिणः। (कालि. पु. 1/9/32-33)

किसी प्रसंग में विष्णुजी भगवान् शिव से कह रहे हैं कि ब्रह्माजी आपसे भिन्न नहीं है, न आप ही ब्रह्माजी से भिन्न हैं और आप दोनों से मैं भी भिन्न नहीं हूँ; हम दोनों की यह अभिन्नता सनातन(अर्थात् सदा से चली आ रही है) है। आप कौन हैं? मैं कौन हूँ तथा ब्रह्मा कौन हैं? ये तीनों ही सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारणभूत एक ही सत्ता के तीन अंश हैं।

न ब्रह्मा भवतो भिन्नो न शम्भुर्ब्रह्मणस्तथा ।
न चाहं युवयोर्भिन्नोऽभिन्नत्वं सनातनम् ।।

……………………………………………………

अंशत्रयमिदं भिन्नं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्।। (कालि. पु. 1/11/51, 53)

आगे कहा गया है कि एक परमेश्वर ही तीन शरीरों (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) में प्रकाश किया करते हैं। ज्ञानरूप परमात्मा अनादि हैं। वे सृजन, पालन एवं संहार करनेवाले होनेपर भी एक ही हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश पृथक्-पृथक् संज्ञा प्राप्त करनेवाले हैं (कालि. पु. 1/12/36-38)।

उपसंहार

इस शाक्त पुराण में मुख्य रूप से देवी-माहात्म्य की चर्चा है फिर भी प्रसंगवश शिव के माहात्म्य का वर्णन प्राप्त होता है। इस पुराण में शिव को परम तत्त्व मानते हुए समस्त सृष्टि का उन्हीं से विस्तार दिखाया गया है। निर्गुण शिव जब माया का आश्रय लेकर सगुण रूप धारण करते हैं तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य देव-असुर सहित समस्त चराचर जगत् का निर्माण होता है। प्रलयकाल में जब वे अपनी माया को समेट लेते हैं तो माया उनके अन्दर सुप्त हो जाती है और वे स्वयं निष्क्रिय या आत्मलीन हो जाते हैं।

निर्गुणरूप में शिव एक, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निष्प्रपंच, अज्ञेय, अव्यक्त, स्वयंभू तथा अचिन्त्य आदि हैं। सगुणरूप में वे सृष्टिकर्त्ता, पालन एवं संहारकर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप, विश्वरूप, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, अव्यय, जगत्पति, सर्वेश, वरदाता, मोक्षदाता, शाप एवं अनुग्रहकर्त्ता, पंचमुखी, दस भुजा तथा 15 नेत्रवाले, सर्प, चन्द्रमा, मुण्डमाला, पिनाक, डमरू, त्रिशूल, मृगचर्म आदि को धारण करनेवाले, ऐश्वर्यदाता, अष्टमूर्ति एवं अष्ट ऐश्वर्य को धारण करनेवाले, परमगति, सहस्रबाहु, सहस्रमूर्ति तथा कूटस्थ आदि हैं।

चूँकि शिव वरदाता, मोक्षदाता, ऐश्वर्यदाता, शाप एवं अनुग्रह के सामर्थ्य से युक्त हैं, इसलिये उनकी उपासना करनी चाहिये। भगवान् शिव को प्रसन्न करने के लिये सर्वोत्कृष्ट साधन है पंचाक्षर-मंत्र के द्वारा उपासना। इस पुराण में पंचाक्षर मन्त्र के द्वारा शिवोपासना की विधि की विस्तार से चर्चा की गयी है। माला के द्वारा मन्त्र को किस प्रकार जपना चाहिये, माला कैसी हो तथा किन-किन क्षेत्रों में उपासना से शीघ्र सिद्धि मिलती है, इसकी चर्चा इस पुराण में की गयी है। कहा गया है कि वाराणसी एवं कामरूप (कामाख्या) में साधन करने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है।

* * *

सन्त का प्रभाव

यत्र सन्तः प्रवर्त्तंते तत्र दुःखं न बाधते।
वर्तते यत्र मार्तण्डः कथं तत्र तमो भवेत्।। (नार. महापु. पूर्वखण्ड 7/71)

जहाँ पर सन्त विराजमान होते हैं वहाँपर दुःख बाधा नहीं पहुँचा सकते। क्या कभी सूर्य के रहते अंधकार छा सकता है?

मुद्गल पुराण में शिवतत्त्व

महर्षि मुद्गल प्रणीत इस पुराण की गणना अतिपुराणों में होती है। इसमें भगवान् गणेश की महिमा को प्रतिपादित किया गया है। यह ग्रन्थ गाणपत्यों के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस विशाल ग्रन्थ में 9 प्रमुख अध्याय (जिसमें कई उप-अध्याय हैं) तथा 1003 पृष्ठ (लगभग 22000-23000 श्लोक) हैं। यद्यपि इस पुराण में सर्वत्र भगवान् गणपति के माहात्म्य की ही चर्चा है तथापि अल्प मात्रा में पाये जानेवाले भगवान् शिवसंबंधी संदर्भों में शिवजी को ही परमब्रह्म अथवा परमतत्त्व स्वीकार किया गया है।

भगवान् शिव का स्वरूप

सती ने अपने पिता दक्ष के द्वारा आयोजित यज्ञ में जाने के लिये शिव से अनुमति प्राप्त करने हेतु जिस तरह से निवेदन किया है उसमें उसने उन्हें नीलकण्ठ, कल्याणकारी, सगुण, निर्गुण एवं मृड (सुखदाता) कहा है।

नीलकण्ठ नमस्तुभ्यं शंकराय शिवाय च।
सगुणाय मृडायैव निर्गुणाय नमो नमः।। (मुद्गल पु. 1/3/41)

सती दक्ष के यज्ञ में भगवान् शिव का भाग न देखकर दक्ष से अन्य बातों के अतिरिक्त यह कहती हैं कि दो अक्षरों वाला 'शिव' निर्गुणब्रह्म है जिसने सगुणरूप धारण किया हुआ है। इस बात को तुम नहीं जानते इस कारण से मैं बहुत दुःखी हूँ।

शिवेति द्व्यक्षरं ब्रह्म निर्गुणं गुणधारणम्।
न जानासि यतस्त्वं भोस्तेनाहं दुःखिताभृशम्।। (मुद्गल पु. 1/4/59)

एक स्थल पर स्तुति करते हुए शिवजी को शान्त, त्रिशूली, महादेव, पशुपति, काल एवं परमेश्वर आदि कहा गया है। (मुद्गल पु. 1/4/76-77)

नमः शिवाय शांताय शूलिने शंभवे नमः।
महादेवाय रुद्राय पशूनां पतये नमः।।
संहाररूपी त्वं...।
..................महाबाहो नमस्ते परमेश्वर।।

दक्ष भगवान् शिव की गरिमा को पहचानने के बाद उनकी स्तुति करते हैं। अपनी स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव को सम्पूर्ण जगत् का आधार तथा कालरूप कहा है। 'काल' की विशेषता बताते हुए वे कहते हैं कि काल से ही फल, मूल, अन्नादि, सर्दी, गर्मी, सूर्य का तपना, वृष्टि, अनावृष्टि आदि होता है। काल से ही ब्रह्मा सृष्टि की रचना, विष्णु पालन तथा रुद्र संहार करते हैं। जो कुछ भी अस्तित्वमान है, वह काल के अधीन है। वह काल ही भगवान् शिव हैं जिनकी संज्ञा ब्रह्म दी जाती है। वेद एवं वेदज्ञ उन्हें साक्षात् ब्रह्म कहते हैं। आगे दक्ष ने अपनी स्तुति में शिव को दयासिन्धु,

परमेश्वर, सगुण, निर्गुण, सृष्टिकर्त्ता, संहर्त्ता, पालनकर्त्ता, अनंत गुणों की राशि, अवर्णनीय, जिसका अन्त ब्रह्मादि द्वारा भी नहीं जाना जाता, ब्रह्ममय, पूर्णमूर्ति, अनादि, मध्य एवं अन्त से रहित तथा भक्तों के भय को हरनेवाला कहा है (मुद्गल पु. 1/4/91-100)।

कालेन सृज्यते सृष्टिर्ब्रह्मणा वै पुनः पुनः।
कालेन पालनं तत्र कुरुते विष्णुरव्ययः।।
कालेन स्वेच्छया शंभुः संहारं प्रकरोति च।
यत्किंचिदिह तत्सर्वं कालाधीनं न संशयः।।
स एव कालो भगवानीश्वरो ब्रह्मसंज्ञितः।
शिवः साक्षाच्च वेदेषु कथ्यते वेदवादिभिः।।
सगुणाय नमस्तुभ्यं निर्गुणाय नमोनमः।
सृष्टिकर्त्रे च संहर्त्रे पात्रे नानास्वरूपिणे।।
अनंतगुणराशिस्त्वं वर्णनीयं किमप्य हो।
नान्तं ब्रह्मादयो जग्मुर्मादृशानां च का कथा।।
नमो नमो ब्रह्ममयाय देवादये शिवायाथ च पूर्णमूर्ते।
अनादिमध्यान्तविहीन न भूम्ने नमो नमो भक्तभयापहन्त्रे।।
(मुद्गल पु. 1/4/94-96, 98-100)

पार्वतीजी किसी प्रसंग में भगवान् शिव को देवताओं, नागों, राक्षसों, मनुष्यों आदि सभी द्वारा पूज्य, उनके स्वामी, उन्हें वर प्रदान करनेवाले, सबके ईश्वर, पुरातन तथा माया एवं विकारों से हीन कहा है।

शिव त्वं सर्वदेवानां नागानां रक्षसां तथा।
मानवानां च सर्वेषां पूज्यः स्वामी न संशयः।।
तेभ्यः वरप्रदाता त्वं सर्वाधीशः पुरातनः।
मायाविकारहीनश्च शिवस्तेन प्रकीर्तितः।। (मुद्गल पु. 1/5/21-22)

सृष्टि के आदि में एक बार ब्रह्मा एवं विष्णु में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर विवाद उठा था। फलस्वरूप इसका निर्णय करने के लिये दोनों ने एक दूसरे के उदर में क्रमशः प्रवेश किया तथा उसमें अनंत सृष्टियों को देखकर एक दूसरे को महान् समझने लगे। ब्रह्माजी जब विष्णु के उदर से बाहर निकलना चाहते थे उस समय विष्णु ने निकलने के सारे द्वार बन्द कर लिये। परन्तु ब्रह्माजी ने योग-बल के सहारे नाभी कमल के रास्ते बाहर निकल कर विष्णु से कहा कि हम दोनों ही श्रेष्ठ एवं सर्वेश्वर हैं। अतः इसका प्रमाण प्राप्त करना चाहिये। प्रमाण प्राप्त करने के लिये सर्वप्रथम शिव का आवाहन किया गया। भगवान् शिव प्रकट हो उनसे पूछते हैं कि आप लोगों ने मुझे क्यों स्मरण किया

है? उत्तर में दोनों ने कहा कि हम आपका ऐश्वर्य देखना चाहते हैं। उन दोनों के गर्वयुक्त वचन सुनकर भगवान् शिव ने उनसे कहा कि मैं ही सबका कर्त्ता हूँ, मेरे से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। ऐसा कहकर उन्होंने अपना सर्वत्र स्थित ज्योतिरूप महालिंग प्रकट किया। उनके इस रूप को देखकर वे दोनों विस्मित हुए तथा ब्रह्माजी ने उस ज्योतिर्लिंग के ऊपरी भाग तथा विष्णु ने उसके निचले भाग को जानने के लिये क्रमशः ऊपर एवं नीचे की दिशा में प्रस्थान किया। परन्तु वे दोनों उस लिंग का आदि एवं अन्त न पाकर निराश होकर वापस लौटे और भगवान् शिव की गरिमा को जानकर उनकी स्तुति करने लगे। वे अपनी स्तुति में उन्हें शूलपाणी, रुद्र, कालरूप, त्र्यंबक, वृषभेश्वरवाहन, आदिदेव, महादेव, जिनके रूप एवं स्वभाव को कोई नहीं जानता, महेश्वर, विभु, जिनके भजन से लोग निर्भय रहते है तथा परमेश्वर कहते हैं। जिसके वाम भाग में विष्णु, दक्षिण भाग में ब्रह्मा तथा जिसके लिंग में संपूर्ण चराचर विश्व स्थित है, उसकी महिमा अपार है। उनकी प्रार्थना को सुनकर भगवान् शिव पूर्ववत् अपने स्वरूप में लौट आये तथा उनसे वर माँगने को कहा(मुद्‌गल पु. 1/13/43-50)।

आदिदेवाय देवाय महादेवाय ते नमः।।
प्रसीद भगवन् शंभो नांतं पश्यावहे विभो।
किं रूपं किंस्वभावं त्वां न जानीवः कथंचन।।
..।
येन ते भजनं देव जनाः कुर्वन्ति निर्भयाः।।
वामभागे स्थितं विष्णुं दक्षिणांगे पितामहम्।
विश्वं चराचरं सर्वं लिंगे तत्रास्य संस्थितम्।।
..।
उपसंहर रूपं तत्त्वमेव परमेश्वरः।। (मुद्‌गल पु. 1/13/43-45, 47-48)

अर्थात्- आदिदेव महादेव को नमस्कार है। हे सर्वव्यापी भगवान् शंभु हम आपके अन्त को नहीं जान पा रहे हैं आप प्रसन्न होइए। आपका क्या रूप एवं स्वभाव है इसे कोई नहीं जानता। ....आपका भजन लोगों को निर्भय करता है। जिसके वाम भाग में विष्णु एवं दक्षिण भाग में पितामह स्थित हैं तथा जिसके लिंग में यह सम्पूर्ण चराचर विश्व स्थित है ....। हे परमेश्वर आप इस रूप को त्याग दीजिये।

शिवोपासना

भगवान् शिव चूँकि सर्वश्रेष्ठ देव हैं इसलिये उनकी ही उपासना करना सर्वश्रेष्ठ है। भगवान् शिव को देवताओं, राक्षसों तथा मनुष्यों आदि द्वारा पूज्य तथा उन्हें उनका पद प्रदान करनेवाला (1/5/21-22), दयासिन्धु(1/4/97 तथा 8/13/5 आदि), कल्याणकारी(1/3/41) तथा भक्तों के भय को हरनेवाला(1/4/100 तथा 1/13/45 आदि) कहा गया है। भगवान् शिव

सर्वदेवमय हैं, इसलिये उनकी पूजा से सभी चराचर की पूजा हो जाती है- ऐसा वेद-शास्त्रों तथा बुद्धिमानों द्वारा कहा गया है।

पूजिते शंकरे सर्वं पूजितं सचराचरम्।
मया वेद विवादेषु तथा संकथितं बुधैः।। (मुद्गल पु. 8/13/16)

भगवान् शिव ही समस्त यज्ञादि कर्मों के फलदाता हैं। यही कारण है कि सती यज्ञ में भगवान् शिव के भाग को न देखकर दक्ष से कहती हैं कि तुम्हारा यह यज्ञ-कर्म वेद-विरुद्ध है तथा रुद्र-भाग से विहीन यज्ञ कभी भी फलप्रद नहीं होगा (मुद्गल पु. 1/3/57-58)।

रुद्रभागविहीनोऽयं यज्ञो नैव फलप्रदः। (मुद्गल पु. 1/3/58)

भगवान् शिव की उपरोक्त विशेषताएँ ही शिवभक्ति के विशेष आर्कषण हैं। भगवान् शिव की भक्ति से बाणासुर एवं शुक्राचार्य आदि ने मनोवांछित फल पाया। शुक्राचार्य से बाणासुर ने पंचाक्षर मन्त्र (**ॐ नमः शिवाय**) प्राप्त कर शिव की उपासना की थी (मुद्गल पु. 8/13/3) तथा उससे शिव को प्रसन्न कर यथोचित वरदान प्राप्त किया। अन्य ग्रन्थों में भी इस पंचाक्षर मंत्र को सर्वश्रेष्ठ मन्त्र बताया गया है।

इस पुराण में भगवान् शिव से संबंधित कुछ स्तोत्र हैं जिनका पाठ लोगों की मनोकामना को पूरा करता है। उदाहरण के लिये दक्ष प्रजापति द्वारा रचित स्तोत्र (मुद्गल पु. 1/4/91-100) तथा ब्रह्मा-विष्णु द्वारा की गयी ज्योतिर्लिंग की स्तुति (मुद्गल पु. 1/13/42-48)। भगवान् शिव को स्तोत्र बहुत ही प्रिय हैं, यही कारण है कि वे मात्र स्तोत्र से भी प्रसन्न होकर मनोवांछित वर प्रदान करते हैं।

किन्हीं भी देवपुरुषों या महात्माओं की निन्दा नरक देनेवाली होती है। परन्तु अगर हम सर्वश्रेष्ठ देव भगवान् शिव की निन्दा करें तो उसका क्या फल होगा? इसकी कल्पना कठिन है। इस पुराण में भी बताया गया है कि शिवनिन्दा नरक देनेवाली होती है।

शिवनिन्दाकराः शास्त्रे नारका ज्ञानवर्जिताः। (मुद्गल पु. 1/2/37)

अर्थात्- शास्त्रों में शिवनिन्दक को नरकगामी तथा मूर्ख कहा गया है।

उपसंहार

यह पुराण गणपति भगवान् की विशेषता प्रतिपादित करनेवाला होनेपर भी भगवान् शिव की महत्ता को स्वीकार करता है। यह पुराण अन्य साम्प्रदायिक पुराणों की ही तरह होने के कारण भगवान् शिवसंबंधी प्रसंगों की चर्चा बहुत ही अल्प मात्रा में करता है। फिर भी उन चर्चाओं में भगवान् शिव की महिमा प्रकट होती है।

भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की चर्चा इसमें प्राप्त होती है। सगुण रूप में वे ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र होकर सृष्टि का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं। वे सम्पूर्ण चराचर के स्वामी,

महादेव, परमेश्वर, सर्वव्यापी, शान्त, त्रिशूलधारी, उमापति, जगदाधार, कालरूप, दयासिन्धु, भक्तो के भय को हरनेवाला, कल्याणकारी, आदि, मध्य एवं अन्तहीन, नीलकण्ठ, आदि हैं। निर्गुण रूप में वे ब्रह्म, पूर्ण तथा ब्रह्मादि सभी द्वारा अज्ञेय हैं। भगवान् शिव सर्वश्रेष्ठ, कल्याणकारी, करुणानिधि तथा शीघ्र प्रसन्न होनेवाले देव हैं इसलिये इनकी उपासना करनी चाहिये। इनकी उपासना से सभी चराचर की उपासना हो जाती है। इनकी उपासना का सर्वोत्तम साधन पंचाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र द्वारा ही उपासना करके बाणासुर ने भगवान् शिव को प्रसन्न किया था।

(यह लेख निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई द्वारा 1976 में प्रकाशित 'मुद्‌गलपुराणं' की प्रति पर आधारित है।)

* * *

तीर्थफल का भागी कौन?

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।।
प्रतिग्रहादुपावृतः संतुष्टो नियतः शुचिः।
अहंकार निवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते।।
अकल्किको निराहारोऽलब्धाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वदोषैर्यः स तीर्थफलमश्नुते।।
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलोदृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते।।

(पद्म महापु. स्वर्गखण्ड 11/9-12)

वसिष्ठजी राजा दिलीप से कहते है कि "तीर्थसेवन का फल उसे मिलता है जिसके हाथ, पैर और मन अच्छी तरह वश में हो; जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् हो तथा जिसने दान लेना छोड़ दिया हो। जो संतोषी, नियमपरायण, पवित्र, अहंकार-शून्य और उपवास (व्रत) करनेवाला हो; जो अपने आहार और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर चुका हो; जो सब दोषों से मुक्त हो तथा जिसमें क्रोध का अभाव हो। जो सत्यवादी, दृढ़-प्रतिज्ञ तथा सम्पूर्ण भूतों के प्रति अपने-जैसा भाव रखनेवाला हो, उसी को तीर्थ का पूरा फल मिलता है।" अतः तीर्थ-फल की प्राप्ति के लिये उपरोक्त गुणों से युक्त होने का प्रयास करना चाहिये।

कल्कि, वासुकि एवं नरसिंह पुराणों में शिवतत्त्व

कल्कि उपपुराण में छः हजार एक सौ श्लोक (कल्कि पुराण 3/21/28) हैं। परन्तु वर्तमान में इतने श्लोक प्राप्त नहीं होते। इसलिये कुछ लोगों के मत से यह पुराण संपूर्ण नहीं है। आजकल लगभग 1350 श्लोक ही प्राप्त होते हैं। इसके तीन अंश हैं। प्रथम एवं द्वितीय अंश में सात-सात तथा तृतीय अंश में 21 अध्याय हैं। इस उप-पुराण में विष्णु के भावी कल्कि अवतार के चरित्र का वर्णन है। इसमें विष्णु की महिमा का विशेष कथन किया गया है। इसमें भगवान शिव संबंधी बहुत ही कम सन्दर्भ पाये जाते हैं।

वासुकि पुराण, विद्वानों की राय में, न तो महापुराण है और न ही उप पुराणों की गणना में आता है। यह नीलमत या एकाम्र जैसे लौकिक या स्थानीय पुराणों की कोटि में आ सकता है। यह पुराण किसी अन्य पुराण का हिस्सा मात्र लगता है। इस पुराण के अन्त में लिखा है-

"इति श्री भुवनकोशवर्णनोद्योते काश्मीररखण्डे भद्राश्रमे वासुकिस्थानवर्णनं नाम नवतितमः पटलः।"

उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि (किसी अज्ञात पुराण का) वासुकिस्थानवर्णन नामक नौवाँ पटल ही वासुकि पुराण है। इस पुराण में आजकल कुल 503 श्लोक पाये जाते हैं। इस पुराण के प्रमुख वक्ता भगवान् शिव एवं श्रोता पार्वती देवी हैं। इस पुराण में भगवान् शिव की प्रधानता का वर्णन है।

भविष्य (III/3/28/10-14) और एकाम्र (1/18-20) पुराणों के अन्तर्गत नरसिंह पुराण को महापुराण के रूप में तथा कूर्म, गरुड, मत्स्य, पद्म, स्कन्द, देवीभागवत और बृहद्धर्म पुराणों में उप-पुराण के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें 68 अध्याय हैं। इस पुराण में मुख्यतः विष्णु अवतार नृसिंह की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है। इस पुराण में भी भगवान् शिव संबंधी प्रसंग लगभग नगण्य हैं।

भगवान् शिव का स्वरूप

अपने गुरु परशुरामजी से प्रेरित हो भगवान् कल्कि ने शिवजी से अस्त्र-शस्त्रादि की प्राप्ति हेतु बिल्वोदकेश्वर नामक महादेवजी के पास जाकर उन्हें संतुष्ट करने के लिये स्तुति की। अपनी स्तुति में वे भगवान् शिव को संसार के स्वामी, सभी प्राणियों में विराजमान, वासुकि नाग को कण्ठ में धारण करनेवाले, पंचवदन, त्रिलोचन, आदिदेव, आनंद के धाम, योग के अधिपति, कामनाओं का नाश करनेवाले, शिरपर गंगाजी को धारण करनेवाले, जटा-जूट धारण करनेवाले, महाकाल, माथेपर चन्द्रमा को धारण करनेवाले, खंग और शूल आदि शस्त्रों को धारण करनेवाले, संसार को प्रलय के समय भस्म करनेवाले, पंचभूत एवं तन्मात्रास्वरूप, काल, कर्म एवं स्वभावानुसार जगत्-प्रपंच की सृष्टि करनेवाले, जगत् के पालनार्थ विष्णुरूप धारण करनेवाले तथा परम देवता कहते हैं। (कल्कि पुराण/प्रथमांश/3/14-20)

यो भूतादिः पञ्चभूतैः सिसृक्षुस्तन्मात्रात्मा काल कर्म्मस्वभावैः।
प्रहृत्येदं प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दो रमते तं नमामि।।
स्थितौ विष्णुः सर्व्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्म्मसेतून् बिभर्ति।
ब्रह्माद्यांशे योऽभिमानी।
गुणात्मा शब्दाद्यङ्गैस्तं परेशं नमामि।।
यस्याज्ञया वायवो वान्ति लोके ज्वलत्यग्निः सविता याति तप्यन्।
शीतांशुः खे तारकैः सग्रहैश्च प्रवर्त्तते।
तं परेशं प्रपद्ये।।
यस्याश्वासात् सर्व्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बु कालः प्रमाता।
मेरुर्मध्येभुवनानाञ्च भर्त्ता तमीशानं विश्वरूपं नमामि।।

(कल्कि पु. 1/3/17-20)

अर्थात्-तुम पंचभूत एवं तन्मात्रास्वरूप होकर काल, कर्म एवं स्वभाव के अनुसार (प्रपंच की) सृष्टि करते हो। अन्त में इन सबका हरण करके तुम जीवत्व को प्राप्त हो ब्रह्मानंद का भोग करते हो, तुमको नमस्कार करता हूँ। तुम जगत् के पालन के लिये सर्व जिष्णु विष्णुरूप धारण करके, धर्म के सेतुस्वरूप साधुओं की रक्षा करते हो। तुम सगुण होकर आकाशादि अवयव से ब्रह्मादि के अंशाभिमानी होते हो। तुम परम देवता हो। तुमको नमस्कार करता हूँ। तुम्हारी आज्ञा से संसार में वायु प्रवाहित हो रही है, अग्नि प्रज्वलित हो रही है, सूर्य देव ताप देते हुए भ्रमण कर रहे हैं, तुम्हारी आज्ञा से आकाश में नक्षत्र एवं चन्द्रमा उदय होते हैं। तुम परम देवता हो। तुम्हारा आश्रय ग्रहण करता हूँ। तुम्हारी आज्ञा से पृथ्वी सर्वधात्री होकर सबको वहन करती है; जिस समय आवश्यकता होती है, उसी समय देव जल वर्षाता है; समस्त भुवन के मध्य में स्थितहोकर सुमेरुपर्वत पृथ्वी को धारण करता है। तुम विश्वरूप हो, हे ईशान! तुमको नमस्कार है।

ऊपर के सन्दर्भों को देखने से भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की झलक मिलती है। भगवान् शिव को महेश्वर, कल्याणमय तथा आशुतोष भी कहा गया है। (कल्कि पु. 1/3/13)

वासुकि भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें महादेव, कैलासपर्वतवासी, जटा-मुकुट से शोभित, भगवान्, देवताओं द्वारा पूजित, महेशान, अज्ञान का भेदन करनेवाले, भूत-भावन, देवदेवेश, त्रैलोक्येश, सृष्टिसंहारक, सत्य एवं धर्मस्वरूप, लोकेश्वर, प्रभु, देवताओं के आचार्य, परमात्मा, योगियों के ईश्वर, महाप्रभु, अर्द्धचन्द्र को धारणकरनेवाले तथा कण्ठ में सर्प का हार पहननेवाले इत्यादि कहा है। (वासुकि पुराण /174-180)

त्रैलोक्येश! नमस्तेऽस्तु सृष्टिसंहारकारक।
त्वं धर्मस्त्वं च वै सत्यं त्वं वै लोकेश्वरः प्रभुः।।

सुराचार्य! नमस्तेऽस्तु त्रिदशेश्वर।
परमात्ममहायोगिन्योगीश्वर! महाप्रभो।। (वासुकि पुराण/178-179)

अर्थात्-हे तीनों लोकों के स्वामी! तुम सृष्टि के संहारक, धर्म एवं सत्यस्वरूप, लोकों के ईश्वर तथा प्रभु हो, तुम्हें नमस्कार है। हे देवताओं के आचार्य! हे योगीश्वर! तुम परमात्मा, महायोगी, महाप्रभु तथा सभी देवों के स्वामी को नमस्कार है।

(अनन्त मुनि के पिता)विद्रुम अपने पुत्र की नपुन्सकता को दूर करने के लिये शिववन(हरिद्वार के पास) में जाकर धूप, दीप, चन्दनादि से विधिपूर्वक महादेवजी की पूजा-स्तुति करने लगे। वे अपनी स्तुति में भगवान् शिव को मंगलदायक, शान्त, समस्त प्रणियों के आश्रय, सभी लोकों के स्वामी तथा आनंद का भोग करानेवाला जटा-जूट, गंगा एवं वासुकी को धारण करनेवाला आदि-आदि कहा है।(कल्कि पु. 2/4/18)

शिवं शान्तं सर्व्वलोकैकनाथं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषणम्।
जटाजूटबद्धगङ्गातरङ्गवन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम्।।

(कल्कि पु. 2/4/18)

वासुकि एवं कल्कि दोनों पुराणों के उपरोक्त सन्दर्भ भगवान् शिव को परमतत्त्व सिद्ध करते हैं। वे ही सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में अवस्थित हैं। सगुणरूप धारणकर वे प्राणियों के काल एवं कर्मादि के अनुसार सृष्टि की रचना करते, पालन करते एवं अन्त में सबका संहार करते हैं। वे ही ब्रह्मा एवं विष्णु का रूप धारण करते हैं। वे ही तीनों लोकों के स्वामी तथा देवताओं के भी गुरु है।

शिवोपासना

भगवान् शिव को शीघ्र प्रसन्न होनेवाले अर्थात् आशुतोष(कल्कि पु. 1/3/13), कामनाओं या वासनाओं का नाश करनेवाले(कल्कि पु. 1/3/15), साधु पुरुषों की रक्षा करनेवाले(कल्कि पु. 1/3/18), (मुक्ति प्रदायक)गंगा को धारण करनेवाले(कल्कि पु. 1/3/15), देवताओं द्वारा पूजित (वासुकि पु./175), अज्ञान का नाश करनेवाले(वासुकि पु./176), सत्य एवं धर्मस्वरूप(वासुकि पु./178), देवताओं के गुरु तथा योगियों के ईश्वर(वासुकि पु./179) तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले (नरसिंह पु. 63/17) आदि कहा गया है। इतना ही नहीं भगवान् कल्कि को शिवोपासना से शीघ्रगामी तथा नाना रूप धारण करनेवाला गारुड अश्व, सर्वज्ञ तोता तथा महाप्रभावाली खंग, जिसके बलपर पृथ्वी के भार को हल्का किया जा सकता है, तथा अन्य वरदान प्राप्त हुआ(कल्कि पु. 1/3/9, 25-27), पद्मावती को कल्कि का पति के रूप में प्राप्त होने का वरदान प्राप्त हुआ(कल्कि पु. 1/4/37-40, 44), नागराज वासुकि को भगवान् शिव से उनके सानिध्य का वरदान प्राप्त हुआ(वासुकि पु./181-182 आदि) तथा भगवान् राम ने शिवोपासना से शिव की परम भक्ति का वरदान पाया(नृसिंह पु. 52/122)। इन्द्र ने मुक्ति की कामना से कैलास पर जाकर शिव की

आराधना की(नृसिंह पु. 63/17)। अनन्त मुनि के पिता विद्रुम ने उनकी नपुन्सकता को शिवोपासना के द्वारा ही दूर किया(कल्कि पु. 2/4/20)।

भगवान् शिव की उपरोक्त विशेषताओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि शिवोपासना से व्यक्ति आसानी से भोग एवं मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसी कारण से कल्कि एवं राम जैसे अवतारी पुरुषों ने भी भगवान् शिव की उपासना की है।

एक बार इन्द्र ने विषय-भोगों की निरर्थकता को विचार किंकिणियों से युक्त अपने विमान पर चढ़ कर मुक्ति की कामना से भगवान् शिव की आराधना हेतु कैलास की ओर प्रस्थान किया था।

विमृश्य चैतत् स सुराधिनाथो विमानमारुह्य सकिङ्किणीकम्।
नूनं हराराधनकारणेन कैलासमभ्येति विमुक्तिकामः।।

(श्रीनरसिंह पुराणम् 63/17)

भगवान् शिव की सगुण उपासना मुख्यतः लिंगोपासना ही है। रावणविजय के उपरान्त अयोध्या की ओर लौटते हुए श्रीराम ने सेतु के मध्य भगवान् शिव की स्थापना की तथा उनकी कृपा से श्रीराम ने उनकी भक्ति को प्राप्त किया। तभी से भगवान् शिव वहाँ रामेश्वर नाम से पूजे जाते हैं। भाग्यवान् पुरुष को उनके दर्शन से सभी प्रकार की हत्याओं के पाप से मुक्ति मिल जाती है।

प्रतिष्ठाय महादेवं सेतुमध्ये स राघवः।।
लब्धवान् परमां भक्तिं शिवे शम्भोरनुग्रहात्।
रामेश्वर इति ख्यातो महादेवः पिनाकधृक।।
तस्य दर्शनमात्रेण सर्वहत्यां व्यपोहति। (श्रीनरसिंह पु. 52/121-123)

वासुकि पुराण में अनेक शैव-तीर्थों का उल्लेख मिलता है। इनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया जायगा। केदारतीर्थ के बारे में कहा गया है कि वह महापातकों का नाश करनेवाला है। श्रावण मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी या पूर्णमासी को जो कोई भी वहाँ स्नान करता है वह जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है तथा पितृपक्ष, मातृपक्ष तथा बन्धुपक्ष के सभी लोगों को तारकर शिव-सायुज्यता को प्राप्त कर लेता है। (वासुकि पु./126-129)

केदारं नाम तत्तीर्थं महापातकनाशनम्।
तत्र स्नात्वा नरो विद्वान्न भूयो जनिमाप्नुयात्।।
श्रावणे मासे सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे चतुर्दशी।
ऋक्ष श्रवणसंयुक्ता पूर्णिमायां विशेषतः।।
यः कश्चित्स्नाय्यते तत्र न भूयो भुवि जायते।
पितृपक्षं मातृपक्षं बन्धुपक्षमथापि वा।।
उत्तार्य परमेशानि शिव सायुज्यतां व्रजेत्। (वासुकि पु./126-129)

वासुकि को भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर वरदान दिया था कि जहाँ-जहाँ उसके स्थान हैं वहाँ-वहाँ वे(भगवान्) भी निवास करेंगे। वासुकि के निवास के पाँच मुख्य स्थान विन्ध्यशैल के मध्य स्थित कलिंगविषयतीर्थ, हिमालय में स्थित केदारतीर्थ, चित्रकूटतीर्थ, वितस्तासिंधुसंगमतीर्थ तथा भद्रावकाशतीर्थ हैं। इन सभी स्थानों पर वरदान के कारण भगवान् शिव भी सदा निवास करते हैं। अतः इन तीर्थे का महान् फल है।(वासुकि पु./184-185)

वासुकि के तीर्थों के दर्शन, विधिवत् पूजा, स्नान तथा परिक्रमा आदि से व्यक्ति 101 पीढ़ियों को तार देता है तथा उसके पितर स्वर्ग को चले जाते हैं। वह स्वयं भोग-मोक्ष को प्राप्तकर सभी पापों से विशुद्ध हो रुद्रलोक को चला जाता है।(वासुकि पु./205-209)

……

पितरः स्वर्गमायान्ति भोगमोक्षौ स्वयं लभेत्।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं च गच्छति।। (वासुकि पु./209)

भाद्रपद में चतुर्दशी के दिन वासुकितीर्थ में विधिपूर्वक स्नान करने से व्यक्ति सभी पापों से छूटकर शिवलोक को जाता है।(वासुकि पु./263-264)

रुद्रपुरीतीर्थ में भगवान् शिव सदा विराजमान रहते हैं। इस तीर्थ में नाना प्रकार के भक्त शिवोपासना में रत रहते हैं। कोई लिंगपूजा में रत रहता है तो कोई स्तोत्रों से शिवाराधन में। वेदान्ती लोग शम-दम आदि षडांगों का पालन करते हैं। वहाँ पर कोई हवन तो कोई ध्यानपरायण तो कोई जपपरायण है। नाना प्रकार से लोग वहाँ भगवान् शिव की आराधना करते हैं।(वासुकि पु./311-321)

अषाढ़ के शुक्लपक्ष की दशमी को वासुकिकुण्ड पर पिण्डदान करने से महान् पुण्य होता है तथा पितृ लोगों का त्राण हो जाता है। तर्पण के बाद महादेव की विधिपूर्वक पूजा से व्यक्ति सभी पापों से छूटकर शिवसायुज्यता को प्राप्त होता है।(वासुकि पु./329-331)

गुह्येश्वर गुहा-स्थानतीर्थ के ईश्वर सदाशिव हैं। वहाँ पर मुनिगण, सिद्धगण, गन्धर्वगण, देवगण, किन्नर, इन्द्रादि लोकपाल तथा अन्य स्वर्गवासी लोग गुह्येश्वर महादेव की सेवा-पूजा में सदैव लगे रहते हैं। गुह्येश्वर महादेव सभी प्रकार के पापों का नाश करनेवाले हैं। उनकी पूजा से व्यक्ति निष्पाप हो जाता है। वहाँ शिव की पूजा से बाल्य एवं युवा अवस्था कृत पापों, वाणी, कर्म एवं मानसकृत पापों, अगम्यागमन, मित्रद्रोह आदि जनित पापों से छुटकारा हो जाता है।(वासुकि पु./388-395)

तस्माद्-गुह्येश्वरो देव! सर्वपापप्रणाशकः।।
सम्पूज्य परमेशनि! नरो विगतकल्मषः।
वाल्ये यद्वा कृतं पापं यौवने चापि यत्कृतम्।।
वाचाकृतं कर्मणा वा मनसा यच्च चिन्तितम्।
अगम्यागमनं चैव मित्रद्रोहमथापि वा।।

...।

सर्व नाशयते पापं ईश्वरः परिपूजितः।। (वासुकि पु./392 - 395)

स्थानेश्वरतीर्थ सभी प्रकार के पापों से मुक्ति दिलानेवाला है। वहाँ स्नान कर देवताओं और पितरों का तर्पण करने से व्यक्ति अपने सात पीढ़ियों का उद्धार कर देता है। एक बार स्नान कर लेने से दस जन्म के पापों से छुटकारा हो जाता है। वहाँ के सात तीर्थ गया के समान फलदायी हैं। वहाँ स्नान एवं शुद्ध मन से विधिवत् भक्ति करने से व्यक्ति शिवसायुज्यता को प्राप्त कर लेता है।(वासुकि पु./408 - 414)

बालखिल्यैश्वरतीर्थ में बालखिल्यों द्वारा पूजित लिंग की उपासना से सिद्धि प्राप्त होकर 21 पीढ़ियों को नरक से छुटकारा मिल जाता है। (वासुकि पु./466 - 468)

वासयोग्या - अरणीतीर्थ पर नदी के किनारे आठ लिंग प्रतिष्ठित हैं। वहाँ स्नान एवं पूजा से व्यक्ति को भोग एवं मोक्ष प्राप्त होता है। (वासुकि पु./482 - 484)

नीरु एवं चन्द्रायणी संगम पर एकादश रुद्र सदा निवास करते हैं। वहाँपर जलरूप में साक्षात् सदाशिव विराजते हैं। वहाँ भाद्रपद के कृष्णपक्ष में, विशेषकर अमावस्या को स्नान कर देवता एवं पितरों का तर्पण कर जप - होमादि करना चाहिये। तदनन्तर दान तथा विप्र - पूजा इत्यादि करने से अनन्त फल प्राप्त होता है। वह अपने पितरों को तार देता है। गया में पिण्डदान का जो फल होता है, वह उसे प्राप्त हो जाता है। कुलों का उद्धार कर वह स्वर्गगामी होता है तथा जबतक ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र बने रहते हैं तबतक वह पितरों के साथ रुद्रलोक में आनंद प्राप्त करता है।(वासुकि पु./490 - 497)

सगुणोंपासना में तीर्थों के सेवन के अलावा स्तोत्रों का भी काफी महत्त्व बतलाया गया है। कल्कि पुराण में भगवान् शिव के प्रति कल्कि द्वारा किये गये स्तोत्र(कल्कि पु. 1/3/14 - 20) का फल बताते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करेगा वह लोक एवं परलोक दोनों जगह अपने स्वार्थ को पूरा कर लेगा। इसके श्रवण या पाठ से विद्यार्थी को विद्या, धर्मार्थी को धर्म तथा कामार्थी को काम प्राप्त होगा। जो पाठक इस स्तोत्र में रुची रखते हों उन्हें उपरोक्त संदर्भ देखना चाहिये।

भगवान् शिव की उपासना में त्रिपुण्ड्र का विशेष महत्त्व बताया गया है। कल्कि पुराण में इसके महत्त्व पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है कि द्विजों को मिट्टी, भस्म या चन्दन आदि से तिलक एवं त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। केश पर्यन्त खिंचा हुआ उज्ज्वल त्रिपुण्ड्र धर्म - कर्म का अंग है। पुण्ड्र एक अंगुल चौड़ा हो, ऐसे तीन पुण्ड्र एक साथ हों तो उसे त्रिपुण्ड्र कहते हैं। त्रिपुण्ड्र में ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी का वास रहता है। इसके दर्शन करने से पाप का नाश होता है। यहाँ भाव यह है कि कम से कम ब्राह्मण को अवश्य ही त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये क्योंकि उसे धर्म का प्रतिनिधि माना जाता है।(कल्कि पु. 1/4/19 - 20)

मृद्भस्मचन्दनाद्यैस्तु धारयेत्तिलकं द्विजः।
भाले त्रिपुण्ड्रं कर्म्माङ्गं केशपर्य्यन्तमुज्ज्वलम्।।
पुण्ड्रमङ्गुलिमानन्तु त्रिपुण्ड्रं तत्त्रिधा कृतम्।
ब्रह्मविष्णुशिवावासं दर्शनात् पापनाशनम्।। (कल्कि पु. 1/4/19-20)

त्रिदेवों की एकता

हिन्दू धर्म एवं दर्शन में त्रिदेवों की अभिन्नता को स्वीकार किया गया है। सभी प्रमुख ग्रन्थों में इनकी एकता का सशक्त ढंग से प्रतिपादन हुआ है। यह प्रतिपादन इतना व्यापक एवं सर्वमान्य रहा है कि बाद के ग्रन्थों में इसकी पुनः याद दिलाने की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई। यही कारण है कि उपरोक्त ग्रन्थों में इन तीनों देवों की एकता का मात्र संकेत भर किया गया है। उदाहरण के लिये नरसिंह पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि परात्पर भगवान् विष्णु(परमतत्त्व) रजोगुण से युक्त होकर ब्रह्मारूप से सृष्टि करते नरसिंह आदि रूपों में क्रमशः सभी युगों में(कल्पान्ततक) सृष्टि की रक्षा करते हैं। तथा रुद्ररूप से जगत् का संहार करते हैं। विष्णुजी ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करते तथा जगत् के पालनार्थ रामादि रूप धारण करते और अन्त में रुद्ररूप से विश्व का संहार करते हैं।

रजोगुणयुतो देवः स्वयमेव हरिः परः।
ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्सृष्टौ प्रवर्तते।।
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना।
नरसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत्।।
ब्राह्मेण रूपेण सृजत्यनन्तो जगत्समस्तं परिपातुमिच्छन्।
रामादिरूपं स तु गृह्य पाति भूत्वाथ रुद्रः प्रकरोति नाशम्।।

(नरसिंह पु. 1/65-67)

यहाँ पर बतलाया गया है कि परब्रह्म विष्णु(न कि विष्णु देव) ही ब्रह्मादिरूप धारण कर जगत् की रचना, रक्षा तथा संहार का कार्य करता है। अर्थात् तीनों प्रमुख देव मूलतः एक ही हैं क्योंकि वे सब एक ही ब्रह्म की अभिव्यक्तियाँ हैं।

प्रमुख शास्त्रों में शिव एवं विष्णु में भेद देखनेवाले की दुर्गति बतायी गयी है। भेद देखनेवाले को घोर नरक की प्राप्ति होती है। वहाँ वे लम्बे समयतक यातना भोगते रहते हैं। कल्कि पुराण में भी इस दुर्गति की तरफ संकेत किया गया है। भक्त राजा शशिध्वज कल्कि भगवान् से युद्ध करने से पहले कहता है कि "आप विभु हैं, मैं आप पर दृढ़ प्रहार करूँगा। परन्तु प्रहार करने के समय जो मैं आपको दूसरा(अपने से अलग) समझूँ तो मुझको वह लोक प्राप्त हो, जो लोक शिव एवं विष्णु में भेद समझनेवाले को प्राप्त होता है।"

परबुद्धिर्यदि दृढं प्रहर्त्ता विभवे त्वयि।

> शिवविष्णोर्भेदकृते लोकं यास्यामि संयुगे।। (कल्कि पु. 3/9/6)

इस संदर्भ में शशिध्वज अपनी अद्वैत भक्ति की निष्ठा की अडिगता की पुष्टि के लिये शपथ जैसी उक्ति का प्रयोग करते हुए कहता है कि मुझे वह गति प्राप्त हो जो शिव एवं विष्णु में भेददर्शी को प्राप्त होती है(अर्थात् मुझे दुर्गति या नरक की प्राप्ति हो)।

भावार्थ यह है कि शिव एवं विष्णु में भेद नहीं करना चाहिये। भेद करनेवाले को नरक या दुर्गति की प्राप्ति होती है।

एक स्थल पर कल्किजी भगवान् शिव की स्तुति में कहते हैं कि आप जगत् की सृष्टि ब्रह्मारूप से करते हैं तथा विष्णुरूप से धर्म एवं साधुओं की रक्षा करते हैं तथा प्रलय के समय लोकों का नाश करते हैं।

> स्थितौ विष्णुः सर्व्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्म्मसेतून् बिभर्ति।
> ब्रह्माद्यांशे योऽभिमानी। गुणात्मा शब्दाद्यङ्गैस्तं परेशं नमामि।।
> ....लोकनाशो यस्य क्रोधोद्धूतलोकोऽस्तमेति।
> (कल्कि पु. 1/3/18, 16)

उपरोक्त उद्धरण का भाव यह है कि परमतत्त्व शिव ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्ररूप धारण कर सृष्टि का व्यापार चलाते हैं। अतः तीनों देव मूलतः एक ही हैं।

उपसंहार

कल्कि, वासुकि एवं नरसिंह ये तीनों ही उपपुराणों की श्रेणी में आते हैं। कल्कि पुराण का लगभग 20 प्रतिशत अंश प्राप्य है, जबकि वासुकि पुराण को किसी अन्य(अज्ञात) पुराण का अंश माना जाता है। कल्कि एवं नरसिंह वैष्णव उपपुराण हैं जिनमें भगवान् शिवसंबंधी प्रसंग अत्यल्प हैं। परन्तु जहाँ उनका प्रसंग आया है, उन्हें ही परम तत्त्व स्वीकार किया गया है। उनके सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों की झलक हमें इन पुराणों में प्राप्त होती है।

इन पुराणों में भगवान् शिव को संसार का स्वामी, सभी प्राणियों में विराजमान रहनेवाले, आदि देव, आनंद के धाम, योग के अधिपति, काम का नाश करनेवाले, काल, कर्म एवं स्वभावानुसार जगत् की सृष्टि करनेवाले, जगत् के पालनार्थ विष्णुरूप धारण करनेवाले, परम देवता, संसार का प्रलय करनेवाले, पंचवदन, त्रिलोचन, गंगाधारी, जटा-जूट से विभूषित, खंग, शूल आदि आयुधों को धारण करनेवाले, महादेव, आशुतोष, महेश्वर, सर्वज्ञ, कैलासवासी, देवताओं द्वारा पूजित, अज्ञान का भेदन करनेवाले, त्रैलोक्येश, सत्य एवं धर्म स्वरूप, देवताओं के आचार्य, परमात्मा, योगियों के ईश्वर, अर्द्धचन्द्र को धारण करनेवाले, कण्ठ में वासुकि को धारण करनेवाले तथा भूत-भावन आदि कहा गया है।

भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, मुक्तिदाता, कामनाओं या वासनाओं का नाश करनेवाले,

साधु पुरुषों की रक्षा करनेवाले, अज्ञान का नाश करनेवाले, सत्य एवं धर्मस्वरूप तथा देव – दानवों आदि द्वारा पूजित हैं। कल्कि, वासुकि, राम, इन्द्र तथा विद्रुम जैसे महान् अवतारी पुरुषों तथा देवों ने भगवान् शिव की उपासना से मनोवांछित फल पाया है।

भगवान् शिव की उपरोक्त विशेषताओं को ध्यान में रखने पर शिवभक्ति का आकर्षण अधिक बढ़ जाता है। फलतः भगवान् शिव की उपासना को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिये।

इन पुराणों में केदार, काशी, वासुकि कुण्ड, गुह्येश्वर, स्थानेश्वर, आदि तीर्थों का वर्णन मिलता है। यहाँ स्नान, शिवलिंगोपासना, ध्यान, जप, होम, तर्पण आदि का अनंत फल बताया गया है। इन सबके प्रभाव से व्यक्ति अपने पूर्वजों का उद्धार कर स्वयं स्वर्ग एवं रुद्रलोक में चिरकालतक निवास कर शिवसायुज्यता को प्राप्त कर लेता है।

कल्कि पुराण में कल्किकृत शिवसंबंधी स्तोत्र का उल्लेख है। जिसके पाठ से विद्यार्थी को विद्या, धर्मार्थी को धर्म तथा कामार्थी को काम की प्राप्ति होती है।

कल्कि एवं नरसिंह पुराणों में त्रिदेवों की एकता संबंधी सूत्र पाये जाते हैं। शिव एवं विष्णु में भेद करनेवाले की दुर्गति होती है – इसका भी संकेत कल्कि पुराण में पाया जाता है।

(उपरोक्त लेख पुराणों की निम्नलिखित प्रतियों पर आधारित है –

(1.) कल्किपुराणम्; टीकाकार, बलदेवप्रसाद मिश्र, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1986. (2.) श्रीवासुकिपुराणम्; संपादक, अनन्तराम शास्त्री, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1981. (3.) श्रीनरसिंहपुराणम्; संपादक एवं (अंग्रेजी में) अनुवादक, सिद्धेश्वर जेना, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1987)

* * *

आत्मबुद्धिः सुखकरी गुरुबुद्धिः विशेषतः।
परबुद्धिर्विनाशाय स्त्रीबुद्धिः पलयङ्करी॥

(नार. महापु. पूर्वखण्ड 11/94)

अपनी बुद्धि का सदुपयोग सुख देनेवाला होता है परन्तु गुरु की बुद्धि या सलाह विशेष रूपसे सुखदायी होती है। दूसरे व्यक्ति की बुद्धि पर चलने से विनाश होता है (क्योंकि वह राग – द्वेषयुक्त होती है)। जबकि स्त्री की बुद्धि (जो वास्तव में बुद्धि न होकर भावावेग है) का अनुकरण प्रलयंकर अर्थात् महाविनाशक होता है।

सौर पुराण[1] में शिवतत्त्व

सौर पुराण उपपुराणों की श्रेणी में आता है। इसे सूर्य पुराण भी कहा जाता है। इस पुराण के वक्ता सूर्यदेव हैं। इस पुराण के प्रमुख देवता भगवान् शिव हैं। अतः इसे एक शैव-उपपुराण माना जाता है।

भगवान् शिव का स्वरूप

सूर्यदेव अपने पुत्र मनु के इस प्रकार प्रश्न करने पर कि-ये समस्त ब्रह्मादि देवता किसमें स्थित हैं? किसमें लय को प्राप्त होते हैं? वह कौन सा सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है जिसका प्रतिपादन वेदों में हुआ है? उत्तर देते हैं कि-एकमात्र अद्वय भगवान् शिव ही ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों के रूप में भाँति-भाँति की लीला करते हैं। एकमात्र परमात्मा शिव ही सबके आदि कर्त्ता हैं जिसे वेदों में इन्द्र, मित्र आदि कहा गया है। उनसे न तो कोई महान् है और न ही सूक्ष्म, उन महात्मा शंकर से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। अर्थात् वे ही सम्पूर्ण जगत् के रूप में व्यक्त हैं। वे एक, सत्यस्वरूप तथा सर्वश्रेष्ठ हैं। रुद्रदेव से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। उसी से समस्त देव उत्पन्न होते हैं तथा उसी में विलीन या लय को प्राप्त होते हैं।

एकोऽपि बहुधा भाति लीलया केवलः शिवः।
ब्रह्मविष्ण्वादिरूपेण देवदेवो महेश्वरः।।

……………………………………………………

तमेकं परमात्मानमादिकर्तारमीश्वरम्।
प्राहुर्बहुविधं तज्ज्ञा इन्द्रं मित्र इति श्रुतिः।।
न तस्मादधिकः कश्चिन्नाणीयानपि कश्चन।
तेनेदमखिलं पूर्णं शङ्करेण महात्मना।।
शृण्वन्तु देवताः सर्वाः सत्यमस्मद्वचः परम्।
नास्ति रुद्रान्महादेवादधिकं दैवतं परम्।। (सौ. पु. 2/4, 7, 8, 34)

एक स्थल पर ब्रह्माजी ने शिव की स्तुति में उन्हें देवों के देव, ईश्वर, परमब्रह्म, शान्त, परमेष्ठी, निष्कल, पुरुष, अक्षर, परंज्योति, ॐकार, परमेश्वर, अनन्त, परमपुरुष, प्रधान तथा प्रकृति आदि कहा है।

त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः।
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः।।
त्वमक्षरं परं ज्योतिरोंकारः परमेश्वरः।
त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा।। (सौ. पु. 23/31-32)

भगवान् शिव सभी के जन्मादि के कारण हैं तथा वे ब्रह्मा एवं विष्णु के भी कारण और उनके पूर्वज हैं।(सौ. पु. 38/16)

---

[1] प्रस्तुत निबंध 1986 में नाग पब्लिशर्स द्वारा प्रकाशित 'सौरपुराणम्', जो श्रीकाशीनाथ शास्त्रि द्वारा संशोधित है, पर आधारित है।

शिवविवाह से पहले शिव के पास आनेवाले वाराती देवगण भगवान् शिव को इस रूप में देखते हैं- वे नीले कण्ठ से युक्त, तीन नेत्रोंवाले, चारों ओर मुखवाले, करोड़ों सूर्य की आभावाले, जगत् के आनंददाता, उत्पत्ति, स्थिति तथा संहारकर्त्ता, अनुग्रहकर्त्ता, अप्रमेय, आकाररहित, सभी ओर हाथ पैर, आँख, शिर तथा कानवाले, सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त करके स्थित, देव और असुरों द्वारा वन्दित तथा मुमुक्षुओं द्वारा ध्यायित हैं।

नीलकण्ठं त्रिनेत्रं च शूलिनं सर्वतोमुखम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं जगदानन्दकारिणम्।।
जगदुत्पत्तिसंहारस्थित्यनुग्रहकारिणम्।
अप्रमेयमनाकारमप्रपञ्चमनाकुलम्।।
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य संस्थितम्।।
सुरासुरैर्वन्द्यमानं ध्यायमानं मुमुक्षुभिः।
इदं रूपं समालोक्य देवदेवस्य शूलिनः।। (सौ. पु. 57/23, 25, 27-28)

उपरोक्त सभी सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि भगवान् शिव ही परब्रह्म हैं जिनके निष्कल एवं सकल (निर्गुण एवं सगुण) दो रूप हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा समग्र सृष्टि के कर्त्ता, धर्त्ता तथा संहर्त्ता हैं। वह नीलकण्ठी, त्रिनेत्रधारी तथा चारों दिशाओं में मुखवाला है। उस एक ब्रह्म को ही वेदों में इन्द्र, मित्र आदि नामों से पुकारा जाता है। वह अनुग्रहकर्त्ता तथा लोगों को सुख प्रदान करनेवाला है। उस महादेव से कोई भी महान् नहीं है और न ही श्रेष्ठ। इस प्रकार इस पुराण के अनुसार भगवान् शिव ही परमतत्त्व हैं जिनसे समस्त प्रकृति, पुरुष तथा देवों की सृष्टि होती है, वे ही जगत् के आदि कर्त्ता हैं। सम्पूर्ण विश्व ही उनका स्वरूप है।

शिवोपासना

भगवान् शिव की उपासना सभी लोग करते हैं- चाहे वे देव हों या दानव या मानव या कोई अन्य। उदाहरण के लिये भगवान् विष्णु ने शिवाराधन से सुदर्शन चक्र प्राप्त किया (अध्याय 41) तथा राजा श्वेत ने मृत्यु को जीता (अध्याय 69)। ब्रह्मा को वेदों का ज्ञान प्राप्त होना तथा विष्णु का सर्वपूज्य होना (अध्याय 66) शिवोपासना का ही परिणाम है। भगवान् शिव शीघ्र-प्रसन्न होनेवाले देव हैं। शिवभक्ति की इतनी महिमा है कि दम्भपूर्वक किये जानेपर भी संसार से मुक्ति हो जाती है। अगर कोई प्रेमपूर्वक भक्ति करे तो उसका क्या पूछना। भगवान् शिव कहते हैं कि मेरी भक्ति भवबन्धन से छुड़ानेवाली होती है। भक्ति से सुगमतापूर्वक मैं प्राप्य हूँ। अतः मेरी भक्ति का अनुसरण करना चाहिये।

येऽपि दम्भं समाश्रित्य भक्तानामुपजीविकाः।

संसारात्तेऽपि मुच्यन्ते किं पुनर्मत्परा जनाः।।
मयि भक्तिः सदा कार्या भवपाशविमोचनी।
भक्तिगम्यस्त्वहं वत्स मम योगो हि दुर्लभः।। (सौ. पु. 11/10, 22)

एक स्थल पर सूतजी ऋषियों से कहते हैं कि भगवान् शंकर से परे या श्रेष्ठ न कोई धर्म है, न अर्थ, न सुख और न मोक्ष ही। अर्थात् भगवान् शंकर की प्राप्ति चारों पुरुषार्थों से श्रेष्ठ है। उन्हें प्राप्त कर लेने पर कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता।

नास्ति शम्भोः परो धर्मो नास्त्यर्थः शंकरात्परः।
शिवादन्यत्सुखं नास्ति मोक्षो नैव हरात्परः।। (सौ. पु. 38/3)

भगवान् शिव का अच्छी प्रकार किया गया भजन या स्मरण कष्टों का नाश करनेवाला है। भक्तिपूर्वक सतत या प्रतिदिन शिव की पूजा करने से व्यक्ति को आत्मोपलब्धि हो जाती है।

सकृत्संस्मरणाच्छंभोर्नश्यन्ति क्लेशसंचयाः।
शिवं संपूजयेन्नित्यं भक्तिमात्मोपलब्धये। (सौ. पु. 46/40, 42)

भगवान् शिव की पूजा से सभी देवों की पूजा सम्पन्न हो जाती है क्योंकि वे सर्वदेवमय हैं; वे ही सभी देवों के रूप में व्यक्त हो रहे हैं।

पूजिते सर्वदेवेशे सर्वदेवनमस्कृते।
पूजिताः सर्वदेवाः स्युर्यतोऽसौ सवर्गो विभुः।। (सौ. पु. 47/31)

शिवभक्ति की यह महिमा है कि यदि वह श्वपच में भी हो तो वह श्रेष्ठ मुनि है तथा वह द्विजों से भी बढ़कर है। परन्तु शिवभक्तिविहीन द्विज भी श्वपच अर्थात् शूद्र से भी नीच है।

श्वपचोऽपि मुनिश्रेष्ठाः शिवभक्तो द्विजाधिकः।
शिवभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः।। (सौ. पु. 47/43)

नारदजी से ब्रह्माजी शिवभक्ति की महिमा के सन्दर्भ में कहते हैं कि शुभाशुभ कर्मो के ढेर को भगवान् शिव की उपासना उसी प्रकार जला देती है जिस प्रकार ईंधन को अग्नि। शिवभक्ति से भावित म्लेच्छ की समानता न तो चारों वेदों को जाननेवाला और न ही अग्निष्टोम आदि यज्ञ करनेवाला ही कर सकता है। संसाररूपी सर्प से डरे हुए व्यक्ति को मुक्त करनेवाले महादेवजी हैं – ऐसा वेद कहते हैं। जिनकी लेशमात्र कृपा से ब्रह्मा को ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो जाती है तथा विष्णु को विष्णुत्व की, उस शिव की आराधना क्यों नहीं करते? शिव के निमित्त दान, होम, स्नान तथा जप का अक्षय फल होता है – ऐसा स्वयं भगवान् शिव ने कहा है।

शुभानामशुभानां च कर्मणां राशिसंचयम्।
करोति भस्मसाद्भक्तिर्भवस्याग्निर्यथेन्धनम्।।
म्लेच्छोऽपि वा यदि भवेद्भवभक्तिसमन्वितः।

न तत्समश्चतुर्वेदी नाग्निष्टोमायिज्ञकृत्।।
भवव्यालमुखस्थानां भीरूणां देहिनां मुने।
तस्माद्विमोचकस्तेषां महादेव इति श्रुतिः।।
यस्य प्रसादलेशेन ब्रह्मत्वं प्राप्तवानहम्।
विष्णुत्वमपि विष्णुश्च स शिवः कैर्न सेव्यते।।
शिवे दानं शिवे होमः शिवे स्नानं शिवे जपः।
अक्षयानि फलान्येषामित्याह भगवाञ्छिवः।। (सौ. पु. 64/14-15, 21, 26-27)

परमानन्द के विग्रह तथा गुणों के धाम केवल भगवान् शिव के ध्यान से व्यक्ति कैवल्य को प्राप्त हो सकता है, किसी अन्य के ध्यान से नहीं। मोहपाश में बँधे लोगों के मोह का नाश उमापति के स्मरण से ही होता है-ऐसा वेदों का कथन है। ज्योतिस्वरूप जो परमब्रह्म है, जो अक्षर एवं अव्यय है तथा जो सर्वग्राही है, उस भगवान् शिव की शरण लेनी चाहिये। जिनके दर्शन की आकांक्षा भगवान् विष्णु तथा ब्रह्मादि देवता करते हैं तथा योगीजन जिन्हें अपनी आत्मा में दर्शन करना चाहते हैं उन भगवान् शंकर की शरण लेनी चाहिये। क्षण अथवा मुहूर्तमात्र के स्मरण, ध्यान अथवा पूजा से महेश्वर शीघ्र ही कैवल्य प्रदान करते हैं अतः उस महेश्वर की उपासना करनी चाहिये। (सौ. पु. 32/12-14, 19, 24)

अस्त्यनन्तगुणावासः परानन्दैकविग्रहः।
ध्यातः कैवल्यपदः पुंसां महादेवो न चापरः।।
मोहपाशनिबद्धानां महामोहात्मतां हरेत्।
स्मरणान्मोचकस्तेषामुमापतिरिति श्रुतिः।।

……………………………………………………

दर्शनं तस्य काङ्क्षन्ते हरिब्रह्मादयः सुराः।
योगिनो नियतात्मानस्तमीशं शरणं व्रज।।
क्षणं मुहूर्तमथवा ध्यातः सम्पूजितः स्मृतः।
प्रददात्याशु कैवल्यं यस्तं भज महेश्वरम्।। (सौ. पु. 32/12-13, 19, 24)

भगवान् शिव की स्तुति में शिविरूप इन्द्र कहते हैं कि "भगवान् शंकर की कृपा की प्राप्ति जबतक नहीं होती तबतक जीव संसाररूपी गर्त में बार-बार गिरता रहता है।" अर्थात् भगवान् शिव की कृपादृष्टि के बिना आवागमन से मुक्ति नहीं मिलती। (सौ. पु. 32/43)

शिवभक्तों की इतनी महिमा बतायी गयी है कि उनके पूजन से साक्षात् भगवान् शिव पूजित हो जाते हैं। अतः शिव की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये उनके भक्तों का सम्मान एवं पूजन करना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या अन्त्यज आदि सभी शिवभक्त सदा और सर्वत्र सभी अवस्थाओं में पूजा के योग्य हैं।

भक्तानां पूजनाच्छंभुः प्रीतो भवति नारद।।
यत्कृतं शिवभक्तानां तेन प्रीतो भवेच्छिवः।।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाऽन्त्यजजातितः।।
शिवभक्तः सदा पूज्यः सर्वावस्थां गतोऽपि वा। (सौ. पु. 64/75-76, 41-42)

मुमुक्षु लोग अन्य सभी को छोड़कर एकमात्र निरंजन शिव का सदा ध्यानकर मुक्त हो जाते हैं।

मुमुक्षुभिः सदा ध्येयः शिव एको निरंजनः।
सर्वमन्यत्परित्यज्य भक्त एव विमुच्यते।। (सौ. पु. 2/9)

(1) भक्ति का महत्त्व

भगवान् शिव की प्राप्ति उनकी कृपा से ही हो सकती है न कि स्वप्रयास से। यद्यपि कृपा के लिये साधन करने की आवश्यकता होती है। भगवान् की कृपा उनके प्रति भाव रखने से ही प्राप्त की जा सकती है। बिना भाव से किया गया यज्ञ, दान, तप तथा ध्यान- सब निष्फल होते हैं। उमापति, जिनका वाचक प्रणव है, जो ज्ञानमूर्ति हैं, जिनका गान वेदों में हुआ है, उनकी कृपा के लेशमात्र से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

वाचकः प्रणवो यस्य ज्ञानमूर्तेरुमापतेः।
अनुग्रहं विना तस्य कथं जानाति शूलिनम्।।
एक एवेति यो रुद्रः सर्ववेदेषु गीयते।
तस्य प्रसादलेशेन मुक्तिर्भवति किंकरी।। (सौ. पु. 7/29-30)

भगवान् शिव को न दान से, न तप से न अश्वमेधादि यज्ञों से ही जाना जा सकता है। वे तो अनन्य भक्ति से ही जाने जाते हैं।

न दानैर्न तपोभिर्वा नाश्वमेधादिभिर्मखैः।
भक्त्यैवानन्यया राजंज्ञायते भगवान् शिवः।। (सौ. पु. 2/14)

भगवान् शिव स्कन्द के पूछने पर कि वे कैसे प्रसन्न होते हैं? कहते हैं कि "मैं न तप से, न दान से और न ही यज्ञ से प्रसन्न होता हूँ। मैं तो थोड़ी-सी भक्ति से सन्तुष्ट हो जाता हूँ। त्रिपुण्ड्रधारी, सदा शान्त रहनेवाला, अहंकाररहित, रुद्राक्ष धारण करनेवाला सत्य संकल्प भक्त मेरे लिये उत्तम है।"

नाहं प्रसन्नस्तपसा न दानेन न चेज्यया।।
तुष्टोऽहं भक्तिलेशेन क्षिप्रं यच्छे परं पदम्।
त्रिपुण्ड्रधारी सततं शान्तो रुद्राक्षकंकणः।।
निर्दम्भः सत्यसंकल्पो भक्तः स्यादुत्तमो मम। (सौ. पु. 11/6-8)

(2) शिवनाम एवं पंचाक्षर – मन्त्र की महिमा

शिव का यज्ञ में भाग न देखकर ब्रह्माजी दक्ष प्रजापति से कहते हैं कि जिन्हें (शिव को) वेद पशुओं (जीवों) का मोचक (छुटकारा दिलानेवाला) कहता है, उनका नामस्मरण करने मात्र से पापों के पंजर नष्ट हो जाते हैं।

स एव मोचको देवः पशुनां न इतिश्रुतिः।
नामसंकीर्तनाद्यस्य भिद्यते पापपञ्जरम्।। (सौ. पु. 7/24)

वहीं पर आगे कहा गया है कि किसी भी प्रसंग से – कौतुहल, लोभ, भय या अज्ञान से यदि किसी व्यक्ति द्वारा 'हर' शब्द का उच्चारण कर लिया जाय तो उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

प्रसङ्गात्कौतुकाल्लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा।
हर इत्युच्चरन्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (सौ. पु. 7/31)

जीवन कभी भी समाप्त हो सकता है क्योंकि यह क्षणभंगुर है। अतः इस पुराण में नामजप की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि यमपुरी की वृक्षावली निकट ही दिखलायी देती है, इसलिये शिव का स्मरण कर, शिव का ही ध्यान कर और शिव का ही सर्वकाल में चिन्तन कर। जो प्रमादवश 'शिव' इस दो अक्षर का उच्चारण नहीं करता वह अभागा तथा सोचनीय है।

निकटा एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमाः।
शिवं स्मर शिवं ध्याय शिवं चिन्तय सर्वदा।।
शोचन्ते ते परं हीना अभाग्याश्च दिने दिने।
प्रमादेनापि यैर्नोक्तं शिव इत्यक्षरद्वयम्।। (सौ. पु. 47/34, 28)

इस पुराण में पंचाक्षर मंत्र की बहुत ही महिमा बतायी गयी है। पंचाक्षर मंत्र **(नमः शिवाय)** के साथ पत्र-पुष्प आदि चढ़ाने का अनन्त फल बताया गया है। शिवमुख से निर्गत सात करोड़ महामन्त्र पंचाक्षर मन्त्र की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं। दीक्षा-प्राप्त अथवा अदीक्षित वा विधिपूर्वक या अविधिपूर्वक पंचाक्षर मंत्र का जापक शिव के अनुचर या गण का पद प्राप्त कर लेता है। पंचाक्षर मंत्र तथा बिल्वपत्र से शिव की श्रद्धा से पूजा करने से व्यक्ति भगवान् शिव के पद को प्राप्त कर लेता है।

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पत्रं पुष्पमथापि वा।
यः प्रयच्छति शर्वाय तदनन्तफलं सकृत्।।
सप्तकोटिमहामन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः।
पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।
दीक्षितोऽदीक्षितो वाऽपि विधानादन्यथाऽपि वा।
पञ्चाक्षरं जपेद्यस्तु शिवस्यानुचरो भवेत्।।

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण बिल्वपत्रैःशिवार्चनम्।
करोति श्रद्धया यस्तु स गच्छेदैश्वरं पदम्।। (सौ. पु. 65/1-3, 6)

(3) लिंगार्चन का महत्त्व

ब्रह्माजी नारद को लिंगार्चन की महिमा बताते हुए कहते हैं कि तीनों लोक में लिंगार्चन से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है। लिंगार्चन से समस्त विश्व की पूजा हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। माया से मोहित प्राणी महेश्वर को नहीं जानते (अर्थात् लिंगरूप महेश्वर के रहस्य को नहीं जानते)। हे नारद! शिवलिंग में सभी तीर्थों का निवास होता है इसलिये उसकी भक्तिभाव से नित्य पूजा करनी चाहिये।

नास्ति लिङ्गार्चनात्पुण्यमधिकं भुवनत्रये।
लिङ्गेऽर्चितेऽखिलं विश्वमर्चितं स्यान्न संशयः।
मायया मोहितात्मानो न जानन्ति महेश्वरम्।।
शिवलिङ्गे वसन्त्येव तानि सर्वाणि (तीर्थानि) नारद।
तस्माल्लिङ्गं सदा पूज्यं भक्तिभावेन नित्यशः। (सौ. पु. 64/30-31, 35)

भगवान् विष्णु से लिंगपूजा का महत्त्व बताते हुए भगवान् शिव ने कहा है कि मेरी लिंगमूर्ति की पूजा करो। लिंगार्चन से मैं अज्ञान का नाश कर देता हूँ। लिंगार्चन से किसी भी प्रकार का सांसारिक भय नहीं होता।

लिङ्गे मां पूजय हरे लिङ्गमूर्तिधरो ह्यहम्।
लिङ्गाराधनतः क्षिप्रमज्ञानं नाशयाम्यहम्।।
लिङ्गार्चनरतानां च नास्ति संसारजं भयम्।। (सौ. पु. 66/38-39)

(4) शिवपूजन संबंधी अन्य बातें

शिवमन्दिर में सेवाकर्म का भी महान् फल बताया गया है। शिवालय में झाड़ू- पोछा या कोई छोटा-मोटा कर्म भी पापात्मा व्यक्ति को नरक जाने से रोकता है।

व्याजेनापि हि ये कुर्युः किंचित्कर्म शिवालये।
न ते यान्तीह नरकं पापात्मानोऽपि मानवाः।। (सौ. पु. 48/26)

शिवपूजा में बिल्वपत्रादि का बड़ा महत्त्व है। इस पुराण में बिल्वपत्र के साथ-साथ बिल्व-वृक्ष की भी महिमा विस्तार से बतायी गयी है। इसमें कहा गया है कि बिल्ववृक्ष का दर्शन, स्पर्शन तथा पूजन एक दिन के किये पापों को नष्ट कर देता है।

दर्शनाब्दिल्ववृक्षस्य स्पर्शनाद्वन्दनादपि।
अहोरात्रकृतं पापं नश्यते ऋषिसत्तमः।। (सौ. पु. 65/7)

आगे कहा गया है कि भक्तिपूर्वक बिल्ववृक्ष के नीचे मौन रहकर रात्रिकालपर्यन्त शिवनाम

के जप से व्यक्ति सभी पापों से छूटकर शिव के परम पद को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्माजी नारद से कहते हैं कि (भगवान् शिव को बिल्वपत्र इतने प्रिय हैं कि) अगर सूखे एवं बासी बिल्वपत्र से भी भगवान् शिव की पूजा की जाय तो सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है।

भक्त्या बिल्वदलैर्मौनी हरनाम जपेन्निशि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम्।।
शुष्कैः पर्युषितैः पत्रैरपि बिल्वस्य नारद।
पूजयेद्गिरिजानाथं मुच्यते सर्वपातकैः।। (सौ. पु. 65/12-13)

शिवपूजा में विहित और निषिद्ध पुष्पों का भी विवेचन इस पुराण में हुआ है। शिव की पूजा में बन्धूक, केतकी, कुन्द, जूही, मदन्तिका, शिरीष और अर्जुन के फूल नहीं चढ़ाना चाहिये।

बन्धूकं केतकीपुष्पं कुन्दयूथीमदन्तिकाः।
शिरीषं चार्जुनं पुष्पं प्रयत्नेन विवर्जयेत्।। (सौ. पु. 65/39)

कनक एवं कदंब के पुष्प रात में ही चढ़ाना चाहिये। एक हजार आक के फूलों से एक करवीर का फूल, एक हजार करवीर से एक बिल्वपत्र, एक हजार बिल्वपत्रों से एक शमी, एक हजार शमी-फूलों से एक कुशपुष्प, एक हजार कुशपुष्पों से एक पद्मपुष्प, एक हजार पद्मपुष्पों से एक बकपुष्प, एक हजार बकपुष्पों से एक धतूरे का फूल, एक हजार धतूरे के फूलों से एक वृहतपुष्प, एक हजार वृहतपुष्पों से एक द्रोणपुष्प, एक हजार द्रोणपुष्पों से एक अपामार्गपुष्प, एक हजार अपामार्गपुष्पों से एक नीलोत्पल तथा एक हजार नीलोत्पल से उसकी एक माला श्रेष्ठ होती है। (सौ. पु. 65/29-35)

पुनः जलज, उत्पल एवं चम्पक पुष्पों में कभी पर्युषित (बासी) होने का दोष नहीं होता (सौ. पु. 65/43)। इस पुराण में विभिन्न प्रकार के फूलों-फलों एवं धूप, नैवेद्यादि से शिवलिंग की पूजा से होनेवाले नाना प्रकार के फलों की भी चर्चा की गयी है। (सौ. पु. 65/43-82)

चण्ड द्वारा अधिकृत लिंगो का निर्माल्य (प्रसाद) सबके लिये ग्राह्य नहीं होता, अतः इस पुराण में ऐसे लिंगो के नाम बताये गये हैं जिनपर चण्ड का अधिकार नहीं होता। स्वयंभूलिंग (अर्थात् अपने आप प्रकट अर्थात् जो किसी द्वारा निर्मित न हो), बाणलिंग, रत्ननिर्मितलिंग, रस (पारे द्वारा) - निर्मित लिंग तथा सिद्धों द्वारा प्रतिष्ठित लिंग में चण्ड का अधिकार नहीं होता। (सौ. पु. 66/15)

शिवनिर्माल्य के धारण की प्रशंसा में कहा गया है कि शिव पादोदक (लिंग से गिरता जल) तथा निर्माल्य को (भक्तिपूर्वक) लेने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। इसके धारण से मन, वाणी और कर्म से उत्पन्न पाप स्पर्श नहीं करते।

पादोदकं च निर्माल्यं भक्तैर्धार्यं प्रयत्नतः।
न तान्स्पृशन्ति पापानि मनोवाक्कायजान्यपि।। (सौ. पु. 66/16)

सभी तीर्थों में वाराणसी को उत्तम मानते हुए इस पुराण में कहा गया है कि "यह तीर्थों तथा क्षेत्रों में सर्वोत्तम तीर्थ व क्षेत्र है जो भगवान् शिव को अति प्रिय है।" वहाँपर स्वयं भगवान् शिव सभी देहधारियों को तारकज्ञान का उपदेश करते हैं जिससे वे संसार से मुक्त हो जाते हैं।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम्।
वाराणसीतिनगरी प्रिया देवस्य शूलिनः।।
यत्र विश्वेश्वरो देवः सर्वेषामिह देहिनाम्।
ददाति तारकं ज्ञानं संसारान्मोचकं परम्।। (सौ. पु. 4/5-6)

इस पुराण में भगवान् शिव की सबसे महत्त्वपूर्ण स्तुति विष्णु द्वारा की गयी सहस्रनाम स्तुति है। भगवान् विष्णु ने भगवान् शिव की हजार नामों से स्तुति कर सुदर्शनचक्र को प्राप्त किया था। यह स्तुति यदा-कदा कुछ परिवर्तनों के साथ शिवपुराण[1] तथा लिंगपुराण[2] में वर्णित सहस्रनामों की स्तुतियों के समान ही है। सुदर्शनचक्र की प्राप्ति की कथा तथा सहस्रनाम स्तोत्र इस पुराण के अध्याय 41(श्लोक 12 से 140 तक) में उपलब्ध होता है। अन्यत्र इस पुस्तक में कुछ शिवपुराणोक्त तथा कुछ अन्य प्रकार के स्तोत्र भी दिये गये हैं। उक्त सहस्रनाम के पाठ से व्यक्ति को मनोवांछित फल प्राप्त होता है तथा अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसीप्रकार अन्य स्तोत्रों के पाठ से भी व्यक्ति उत्तम फल प्राप्त करता है।

भगवान् शिव एवं विष्णु

सूतजी से ऋषि लोग एक बार यह पूछते हैं कि जिन भगवान् शिव से ब्रह्मा और विष्णु को अपना-अपना पद प्राप्त हुआ है उनको छोड़कर कुछ लोग केशव(विष्णु) के दास क्यों बनते हैं? यद्यपि भगवान् शिव विष्णु से पहले अस्तित्वमान हैं तब भी अन्तकाल में प्रायः करके लोग भगवान् गरुडध्वज को क्यों याद करते हैं?

केचिल्लोका महेशानं त्यक्त्वा केशवकिंकराः।
तत्र किं कारणं सूत वद संशयनाशक।।
अन्तकाले स्मरन्त्येव प्रायेण गरुडध्वजम्।
विद्यमाने शिवे विष्णोः प्रभौ श्रीपार्वतीपतौ।। (सौ. पु. 38/6-7)

इन प्रश्नों का सूतजी उत्तर देते हैं कि जब-जब(विभिन्न कल्पों में) भगवान् शिव विष्णु की भक्तिपूर्ण आराधना से प्रसन्न हुए तब-तब उन्होंने विष्णुजी को वरदान दिया कि उनसे (विष्णुजी से) परे तत्त्व को विरले ही लोग जान सकेंगे। इसी कारण से हे महर्षियों! कोई-कोई विरला ही शिव को जानता है और वरदान के प्रभाव से ही विष्णु के नाम का गुणगान प्रायः होता है। विष्णु के स्मरणमात्र से पाप का नाश हो जाता है, भगवान् शम्भु के प्रसाद से ही ऐसा है इसमें विचारने योग्य कोई बात नहीं है। शम्भु को तत्त्व से जाननेवाला तो केवल स्वयं नारायण हैं(अन्य कोई नहीं)।

---

1. शिव पुराण, कोटिरुद्रसंहिता अध्याय 35/श्लोक 2-132
2. लिंग पुराण, पूर्वभाग, अध्याय 98/श्लोक 27-159

यदा यदा प्रसन्नोऽभूद्भक्तिभावेन धूर्जटिः।
विष्णुनाऽऽराधितो भक्त्या तदाऽसौ दत्तवान्वरान्।।
त्वत्तः परं प्रभुं नैव प्रायेण ज्ञास्यति स्फुटम्।
विरलाः केचिदेतद्वै निष्ठां वेत्स्यन्ति तत्त्वतः।।
हेतुना तेन विप्रेन्द्राः शिवं जानन्ति केचन।
प्रायेण विष्णुनामानि गृणन्ति वरदानतः।।
विष्णोः स्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्।
शम्भुप्रसाद एवैष नास्ति कार्या विचारणा।।
यः शम्भुं तत्त्वतो वेत्ति स तु नारायणः स्वयं। (सौ. पु. 38/8-12)

सूतजी आगे कहते हैं कि विष्णु एवं ब्रह्मा के आदि कारण एवं पूर्वज भगवान् शिव को विष्णुमाया से मोहित होने के कारण मूर्ख लोग नहीं जान पाते।

जन्मादिकारणं शम्भुं विष्णुं ब्रह्मादिपूर्वजम्।
न जानन्ति महामूर्खा विष्णुमायाविमोहिताः।। (सौ. पु. 38/16)

भगवान् विष्णु के पूज्य होने के कारण का उल्लेख एक अन्य स्थल पर भी मिलता है। ब्रह्माजी ने नारदजी को लिंगोत्पत्ति की कथा सुनाते हुए कहा था कि विष्णु एवं हमारे विवाद को निपटाने के बाद भगवान् शिव ने भगवान् विष्णु को सर्वपूज्य होने का तथा मुझे वेदों के ज्ञान का वरदान दिया था।

मत्प्रसादेन सर्वस्मादधिको भव माधव।
मद्भक्तानां त्वमेवाग्र्यः पूज्यो मान्यस्त्वमेव हि।। (सौ. पु. 66/37)

भावार्थ यह है कि "मेरी कृपा से तुम हम सबसे श्रेष्ठ बन जाओ। तुम मेरे भक्तों में भी पूज्य एवं मान्य होगे।"

उपरोक्त संदर्भों में यह कहा गया है कि भगवान् शिव के वरदान के प्रभाव से ही भगवान् विष्णु की पूजा या मान्यता ज्यादा प्रचलित है। भक्ति एवं भक्त की महिमा को बढ़ाने या समझाने के लिये ही इस प्रकार की शिवलीला हुई। भक्ति शास्त्रों में भी भक्त को भगवान् से बड़ा माना गया है।[1] इसी प्रकार भगवान् के नाम को भी भगवान् से बड़ा माना गया है। भवान् विष्णु के परम शिवभक्त

---

[1] उदाहरण के लिये रामचरितमानस के उस प्रसंग को लें जहाँपर श्रीराम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दे रहे हैं। भक्त को भगवान् से बड़ा मानना नवधा भक्ति का एक अंग है।

'मोतें संत अधिक करि लेखा' (मानस अरण्यका. 35/2)

भावार्थ हैं-संतों को मुझसे (राम से) अधिक करके मानना (सातवें प्रकार की भक्ति है)। शिव पुराण (रुद्र संहिता-सती खण्ड अध्याय 25) में भी श्रीविष्णु के पूज्य बनजाने की एक कथा का वर्णन है। वहाँ भी श्रीविष्णु की भक्ति को उनके पूज्य बन जाने का कारण बताया गया है।

होने का यही प्रमाण है कि उनकी भक्ति से प्रसन्न हो भगवान् शिव ने उन्हें उपरोक्त दुर्लभ वरदान दिया।

उपसंहार

इस शैव-उपपुराण में भगवान् शिव को ईश्वर, परमब्रह्म, निष्कल(निर्गुण), अक्षर, ॐकार, अनादि, अनन्त, परमपुरुष, परमेश्वर, प्रधान, सत्य, शान्त, परंज्योति, प्रकृति आदि कहा गया है। वही सबका कारण(यहाँतक कि ब्रह्मा एवं विष्णु का भी) तथा विश्वरूप है। वह अप्रमेय, उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का कारण है। वह नीलकंठी तथा तीन नेत्रोंवाला तथा चारों ओर मुखवाला है। उसे ही वेदों में इन्द्र, मित्र आदि नामों से पुकारा जाता है। भगवान् शिव ही परमतत्त्व हैं। वे ही अनुग्रहकर्त्ता तथा लोक को सुख प्रदान करनेवाले हैं। उनसे न कोई महान् है और न ही श्रेष्ठ।

भगवान् शिव की भक्ति से ही व्यक्ति को कैवल्य नामक मुक्ति तथा भोगादि की प्राप्ति होती है। वे शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं और वे भक्ति से (अन्य साधनों की अपेक्षा) सुगमतापूर्वक प्राप्य हैं, इसलिये उनकी ही भक्ति का अनुसरण करना चाहिये। पुनः भगवान् शिव सर्वदेवमय एवं सबके आदि कारण हैं, इसलिये उनकी उपासना से सभी की उपासना स्वतः ही हो जाती है। इस कारण से भगवान् शिव की ही उपासना करनी चाहिये।

भगवान् शिव की भक्ति से ही भगवान् विष्णु को सुदर्शनचक्र की प्राप्ति तथा सर्वपूज्य होने का वरदान मिला, ब्रह्मा को वेदों का ज्ञान तथा राजा श्वेत की मृत्यु पर विजय प्राप्त हुई थी।

भगवान् शिव तप, दान तथा यज्ञादि से प्राप्य नहीं हैं, वे तो भक्ति से या भाव से ही प्राप्य हैं। शिवनाम की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि कौतुहल, लोभ, भय या अज्ञान-किसी भी प्रकार से 'हर' या 'शिव' शब्द का उच्चारण कर लिया जाय तो उससे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार पंचाक्षर मंत्र(**नमः शिवाय**) के माहात्म्य को बतलाते हुए कहा गया है कि भगवान् शिवप्रसूत सात करोड़ मन्त्रों का यह शिरोमणि है। इस मन्त्र का विधिपूर्वक या अविधिपूर्वक-किसी प्रकार से भी जप करने पर भगवान् शिव के गण का पद तथा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। बिल्वपत्र तथा इस मंत्र से श्रद्धापूर्वक भगवान् शिव की पूजा से शिवपद की प्राप्ति हो सकती है।

लिंगार्चन के महत्त्व को समझाते हुए कहा गया है कि लिंग में सभी तीर्थ निवास करते हैं तथा इसकी पूजा से सभी की पूजा हो जाती है, इसलिये सदैव लिंगार्चन करना चाहिये। इससे अज्ञान का नाश हो जाता है। फलस्वरूप संसारभय से मुक्ति मिल जाती है।

शिवमंदिर में झाड़ू-सफाई आदि छोटे कर्म भी व्यक्ति को नरक जाने से बचाते हैं। बिल्ववृक्ष तथा बेलपत्र की काफी महिमा बतायी गयी है। बिल्ववृक्ष के नीचे उपासना करना तथा बिल्वपत्र से शिवपूजा महती फलदायी है। बिल्वपत्र कभी बासी नहीं होता अतः इसके सूखे हुए पत्ते भी चढ़ाने पर शिव प्रसन्न हो पापों से मुक्त कर देते हैं।

शिवपूजा में विहित – निषिद्ध पुष्पों की सूची तथा उनसे पूजा करने के फल आदि को विस्तार से इस पुराण में बताया गया है। चंड के अधिकार से रहित शिवलिंगों के वर्णन के साथ शिवनिर्माल्यभक्षण की महिमा बतायी गयी है। इसी प्रकार वाराणसी तीर्थ की महिमा बताते हुए कहा गया है कि यह सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि भगवान् शिव स्वयं ही यहाँ मरनेवालों को तारक मंत्र का उपदेश करते हैं। इस पुराण में प्रसिद्ध शिवसहस्रनाम स्तोत्र, जो भगवान् विष्णु द्वारा प्रसूत है का भी वर्णन है जिसके नियमित जप से भोग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अन्त में भगवान् विष्णु की व्यापकरूप में पूजा होने का कारण बताया गया है। विष्णु की भक्ति से प्रसन्न हो भगवान् शिव ने उन्हें सर्वपूज्य होने का वरदान दिया था। भगवान् शिव की इस प्रकार की लीला (जिसमें भक्त को भगवान् से भी बड़ा सिद्ध किया गया है) भक्ति की महत्ता को सिद्ध करने के लिये ही की गयी है।

◆ ◆ ◆

तृष्णा की अजरता

जीर्यंति जीर्यतः केशाः दंता जीर्यंति जीर्यतः।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते।। (नार. महापु. पूर्वखण्ड 35/21)

बुढ़ापे में केश एवं दाँत बूढ़े हो जाते हैं। समय के साथ आँख एवं कान भी जीर्ण हो जाते हैं। परन्तु समय के साथ तृष्णा जवान होती जाती है।

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी मता।
अधर्मबहुला चैव घोररूपानुबंधिनि।।
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
यासौ प्राणांतिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।।
अनाद्यंता तु सा तृष्णा ह्यन्तर्देहगता नृणाम्।
विनाशयति संभूता लोहं लोहमलो यथा।।

(स्कन्दमहापुराणम् – माहेश्वरखण्ड – कौमारिकाखण्ड 46/40 – 42)

तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठ और सदा उद्वेग में डालनेवाली मानी गयी है। इसके द्वारा बहुत से अधर्म होते हैं। तृष्णा का रूप भी बड़ा भयंकर है। वह सबके मन को बाँधनेवाली है। खोटी बुद्धिवाले पुरुषों के द्वारा बड़ी कठिनाई से जिसका त्याग हो पाता है, जो इस शरीर के वृद्ध होनेपर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राणांतकारी रोग के समान है, उस तृष्णा का त्याग करनेवाले को ही सुख मिलता है। तृष्णा का आदि और अन्त नहीं है। जैसे लोहे की मैल लोहे का नाश करती है, उसी प्रकार तृष्णा मनुष्यों के शरीर के भीतर रहकर उनका विनाश करती है।

बृहन्नारदीयपुराण में शिवतत्त्व

यह एक वैष्णव उपपुराण है। यह पुराण नारद एवं सनत्कुमार के संवाद से शुरू होता है। इसके वक्ता नारदजी एवं श्रोता सनत्कुमारजी हैं। इन दोनों के संवाद को ही सूतजी ने ऋषियों के समक्ष सुनाया, जिसे बृहन्नारदीय पुराण कहा गया। इसमें 38 अध्याय और लगभग 3500 श्लोक हैं। वैष्णव उपपुराण होने के बावजूद भी इसमें भगवान् शिव के माहात्म्य का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। इस पुराण के अन्तर्गत नारद महापुराण की कई बातें, विशेषतया शिव-माहात्म्य संबंधी, यथावत् प्राप्त होती हैं। दूसरे शब्दों में इस पुराण पर नारद महापुराण का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

भगवान् शिव का स्वरूप

नारदजी भगवान् शिव को निर्गुण परब्रह्म बताते हुए उन्हें एक स्थल पर शुद्ध, अक्षर, अनन्त, कालरूप, महेश्वर, गुणों को धारण करनेवाला, जगत् का आदि एवं विभु कहा है।

एष शुद्धोऽक्षरोऽनन्तः कालरूपी महेश्वरः।
गुणरूपी गुणाधारी जगतामादिकृद्विभुः।। (बृहन्नारदीयपुराण 3/32)

भगवान् विष्णु एक स्थल पर शिवजी की महिमा बताते हुए उन्हें सभी प्रकार के पुरुषार्थों को प्रदान करनेवाला, अनादि तथा सभी कामनाओं को पूरा करनेवाला कहा है (बृहन्नारदीय पु. 15/74-76)।

भगवान् शिव को सभी देवताओं का स्वरूप तथा लोकों का कारण (बृहन्नारदीयपु. 15/80) बताया गया है। भगीरथ भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें जगन्नाथ, भक्तों के दुःख को दूर करनेवाला, प्रमाणों से परे, देवों के ईश, प्रणवस्वरूप, जगत्स्वरूप, सर्ग, स्थिति एवं अन्त करनेवाला, आदि, मध्य एवं अन्त से रहित, अनन्त, अजन्मा, अव्यय, तुष्टिवर्धक, लोकेश, नीलकण्ठ, पशुपति, चैतन्य-स्वरूप, पुष्टि प्रदान करनेवाला, पापों को दूर करनेवाला, कल्याणप्रद, पिनाक, शूल, पाश, कपाल, मुग्दर, घंटा आदि को हाथों में धारण करनेवाला, पंचमुख तथा अष्टभुजावाला, नागों का यज्ञोपवीत पहननेवाला, समस्त पापों को दूर करनेवाला, प्रधान, पुरुष, स्वप्रकाश, सनातन परमज्योति, उमाकान्त, नीलकण्ठ, मृत्युञ्जय, जटाधारी, योगियों के ध्येय, स्वतंत्र, एक एवं गुणों के धाम आदि कहा है (बृहन्नारदीय पु. 15/81-96) स्तुति के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं।

प्रणमामि जगन्नाथं प्रणतार्त्तिप्रणाशनम्।
प्रमाणागोचरं देवमीशानं प्रणवात्मकम्।।
जगद्रूपम्.........सर्गस्थित्यन्तकारणम्।
आदिमध्यान्तरहितमनन्तमजमव्ययम्।
यमामनन्ति योगीन्द्रास्तं वन्दे तुष्टिवर्द्धनम्।। (बृहन्नारदीयपुराण 15/81-83)

अर्थात्-भक्तों के दुःखों का नाश करनेवाले जगत्पति को प्रणाम। जो प्रणवस्वरूप, प्रमाणों से अगोचर तथा देवताओं के स्वामी हैं, उन्हें प्रणाम। जो जगत्स्वरूप, सृष्टि, पालन एवं प्रलय करनेवाले

हैं, आदि, मध्य अन्त से रहित, अनन्त, अजन्मा, अव्यय हैं, जिन्हें योगीन्द्र लोग मानते हैं तथा जो तुष्टि प्रदान करनेवाले हैं, उन्हें नमस्कार है।

उपरोक्त स्तुति में भगवान् शिव को ॐकारस्वरूप या प्रणवस्वरूप मानकर भगवान् शिव को परब्रह्म स्वीकार किया गया है। इस पुराण में उपनिषदों की भाँति ही ॐकार के अकार को ब्रह्मा, उकार को विष्णु, मकार को रुद्र का तथा अर्धमात्रा को परात्पर ब्रह्म अर्थात् परम शिव स्वीकार किया गया है।

अकारं ब्रह्मणोरूपमुकारं विष्णुरूपवत्।
मकारं रुद्ररूपं स्यादर्द्धमात्रा परात्मकम्।। (बृहन्नारदीयपुराण 31/158)[1]

संक्षेप में भगवान् शिव निर्गुणरूप में प्रणवस्वरूप, प्रमाणों से परे, अनन्त, सनातन तथा सबके कारण कहे गये हैं। सगुणरूप में उन्हें पाँच मुख तथा आठ भुजावाला, पिनाक, कपाल, त्रिशूल आदि आयुधों को धारण करनेवाला, सृष्टि, स्थिति, प्रलय करनेवाला, सभी देवों का ईश्वर तथा जगद्गुरु आदि कहा गया है।

शिवोपासना

इस पुराण में भगवान् शिव को सभी कामनाओं को पूरा करनेवाला (बृहन्नारदीयपु. 15/76), भक्तों के दुःखों को दूर करनेवाला (वही 15/81), पापों का नाश करनेवाला तथा कल्याण करनेवाला (**नमः कल्मषनाशाय नमो मीढुष्टमाय ते**; वही 15/85 तथा 88), समस्त प्रकार के शुभों को प्रदान करनेवाला (वही 15/95) तथा भोग एवं मोक्ष का वर देनेवाला (वही 15/102) कहा गया है। एक स्थल पर कहा गया है कि जहाँ शिव की पूजा होती है वहाँ लक्ष्मी तथा सभी देवता निवास करते हैं (बृहन्नारदीयपु. 11/6)।

शिवपूजापरो वापि..........................।
यत्र तिष्ठति तत्रैव लक्ष्मीः सर्व्वाश्च देवता।।

दूसरों को कष्ट पहुँचानेवाले भूत-बेताल आदि लिंगार्चन करनेवाले सद्भक्तों से दूर भाग जाते हैं।

परपीडारता ये च भूतवेतालकादयः।
नश्यन्ति यत्र सद्भक्तो..............लिङ्गार्च्चने रतः।। (बृहन्नारदीयपुराण 11/9)

मन, वाणी एवं कर्म से जहाँ शिव की पूजा होती है वहाँ श्रीहरि भी विराजते हैं (वही 6/52)।

---

[1] माण्डूक्योपनिषद् के निम्नलिखित मन्त्र से इस श्लोक की तुलना करें-

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव।
संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद।। (माण्डू. 12)

कर्मणा मनसा वाचा यो................भजते सदा।
शिवं वा पूजयेन्नित्यं तत्र संन्निहितो हरिः।।

भगवान् विष्णु अदिति से कहते हैं कि शिव-पूजा-परायण व्यक्ति सदा मेरे में ही निवास करता है। (वही 11/56)।

कलियुग में शिवपूजा एवं शिव के नामों का जप व्यक्ति को शिवतुल्य बना देता है तथा उसे कलि बाधा नहीं पहुँचाता (बृहन्नारदीयपु. 38/101, 109)।

शिवपूजापरा ये तु शिवनामपरायणाः।
त एव शिवतुल्याश्च घोरे कलियुगे द्विजाः।। (बृहन्नारदीयपुराण 38/101)

शिवपूजा से सभी धार्मिक कृत्य पूरे हो जाते हैं अर्थात् उनकी न्यूनता या कमी पूरी हो जाती है (वही 38/124, 131)। स्पृहारहित हो शिवपूजा करनेवाला सबको पवित्र कर देता है (वही 37/63)। भगवान् शिव का ध्यान करनेवाले को उत्तम भगवात् कहा गया है (वही 5/38)। शिव का ध्यान करनेवाले को वन्दनीयों में उत्तम स्वीकार किया गया है (वही 3/61)।

गुरुभक्तः शिवध्यानी आश्रमाचारतत्परः।
अनसूयः सदा शान्तः स वन्द्योऽस्माभिरुत्तमः।। (बृहन्नारदीयपुराण 3/61)

अर्थात्-गुरुभक्त, शिवध्यानी, आश्रम के आचार में तत्पर, शान्त तथा अनसूयाव्रतधारक वन्दनीयों में श्रेष्ठ हैं।

भक्तिपूर्वक दक्षिणा के साथ महादेव का यजन करनेवाले को उत्तम भागवत अर्थात् भगवान् का भक्त कहा गया है (वही 5/55)। भगवान् शिव की उपासना का निर्देश देते समय विष्णुजी भगीरथ से कहते हैं कि वे स्वयं भगवान् शिव की उपासना करते हैं (वृहन्नारदीयपु. 15/75)।

अहमप्यद्रिजानाथं यजामि प्रत्यहं नृप।
तस्मादाराधयेशानं स्तोत्रैः स्तुत्यं सुखप्रदम्।। (बृहन्नारदीयपुराण 15/75)

अर्थात् - हे राजा (भगीरथ) मैं (विष्णु) भी गिरिजानाथ के प्रति यजन करता हूँ। अतः तुम भी ईशान की स्तोत्रों द्वारा आराधना कर सुख प्राप्त करो।

भगवान् विष्णु मार्कण्डेयजी से भागवत (भगवान के भक्त) के लक्षणों को बताते हुए कहते हैं कि-

शिवप्रियाः शिवासक्ताः शिवपादार्च्चने रताः।
त्रिपुण्ड्रधारिणो ये च ते वै भागवतोत्तमाः।। (बृहन्नारदीयपुराण 5/53)

अर्थात्-शिव के प्रेम में आसक्त तथा उनकी पूजा में रत त्रिपुण्ड्रधारी व्यक्ति भागवतों में उत्तम है।

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिव की उपासना भोग-मोक्ष प्रदान करने के

साथ-साथ कलियुग के दोषों से मुक्त करनेवाली है। शिव की उपासना इतनी महत्त्वपूर्ण है कि भगवान् विष्णु भी उनकी उपासना करते हैं। शिव की उपासना से वैष्णवों को विष्णु की भी प्राप्ति हो जाती है। वास्तव में शिव की पूजा से सभी देवों की पूजा सम्पन्न हो जाती है तथा तत्-तत् देवों के उपासकों को उनके इष्ट की प्राप्ति भी हो जाती है। क्योंकि शिवजी को सभी देवों का स्वरूप बताया गया है। शिव के उपासक को श्रेष्ठ भागवत अर्थात् भगवद्भक्त एवं पूजनीयों में श्रेष्ठ बताया गया है।

(1) शिवनाम महिमा

सभी धार्मिक ग्रन्थों की भाँति इस पुराण में भी नाम-जप के माहात्म्य को स्वीकार करते हुए शिवनाम की महिमा का प्रतिपादन किया गया है। कहा गया है कि जप से देवता (इष्ट) प्रसन्न हो जाते हैं (बृहन्नारदीय पु. 31/97)। शिवनाम के सन्दर्भ में कहा गया है कि-

> **शिवपूजापरा ये तु शिवनामपरायणाः।**
> **...।।** (बृहन्नारदीय पुराण 38/101)

अर्थात्-इस घोर कलियुग में शिवपूजापरायण वा शिवनामपरायण व्यक्ति को शिवतुल्य समझना चाहिये।

आगे कहा गया है कि शिव, शंकर, रुद्र, ईश, नीलकण्ठ तथा त्रिलोचन आदि शब्दों के उच्चारण करनेवाले को कलि बाधा नहीं पहुँचाता। इसी प्रकार महादेव, विरूपाक्ष, गंगाधर, मृड, अव्यय आदि कहनेवाला निःसंदेहरूप से कृतार्थ हो जाता है। भावार्थ यह है कि शिवजी के नामों का जापक कलिदोषों से छूटकर अपने जीवन के लक्ष्य को पूरा कर लेता है।

> **शिव शङ्कर रुद्रेश नीलकण्ठ त्रिलोचन।**
> **इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः।।**
> **महादेव विरूपाक्ष गङ्गाधर मृडाऽव्यय।**
> **इतीरयन्ति ये नित्यं ते कृतार्था न संशय।।** (बृहन्नारदीयपु. 38/109-110)

शिव के नामों का जप करने से सभी प्रकार के धार्मिक कृत्यों की पूर्णता सम्पन्न हो जाती है। अर्थात् धार्मिक कर्म की न्यूनता की पूर्ति के लिये शिव के नामों का जप करना चाहिये। (वही 38/124)

एक स्थल पर नारदजी कहते हैं कि जो शिव, नीलकण्ठ तथा शंकर का सदा उच्चारण करता है, वह वन्दनीयों में श्रेष्ठ है।

> **शिवेति नीलकण्ठेति शङ्करेति च यो बुवन्।**
> **सर्वभूतहितो नित्यं स वन्द्योऽस्माभिरुत्तमः।।** (बृहन्नारदीयपु. 3/60)

भगवान् शिव के नामों का जप करनेवाले रुद्राक्षधारी व्यक्ति को भी उत्तम भागवत बताया

गया है (वही 5/54)। आगे बताया गया है कि शिवाग्नि के कार्य में रत, पंचाक्षरमन्त्र का जप करनेवाला तथा शिव का ध्यान करनेवाला उत्तम भागवत है।

शिवाग्निकार्य्यनिरताः पञ्चाक्षरजपेरताः।
शिवध्यानरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः।। (बृहन्नारदीयपु. 5/58)

मन्त्रों के जप तीन प्रकार के बताये गये हैं - वाचिक, उपांशु तथा मानस। ये तीनों उत्तरोत्तर एक दूसरे से श्रेष्ठ हैं। इस पुराण में इन सभी प्रकार के जपों के स्वरूप को बताते हुए इनके फलों को समझाया गया है। वाचिक जप से समस्त यज्ञों का फल प्राप्त होता है। उपांशु जप से वाचिक का दुगना फल प्राप्त होता है तथा मानसिक जप से, जिसमें मन्त्रार्थ का भी विचार किया जाता है, योग में सिद्धि प्राप्त होती है (वही 31/93-96)।

(2) लिंगार्चन

भगवान् शिव की सगुण पूजा मूलतः लिंगपूजा ही होती है। इस पुराण में विविध प्रकार से की गयी लिंगपूजा के फलों को बताते हुए कहा गया है कि लिंग को कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तथा सोमवार को दुग्ध द्वारा स्नान कराने पर व्यक्ति को शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। अष्टमी तथा सोमवार को भक्तिपूर्वक नारियल के जल से लिंगस्नान कराने पर भी व्यक्ति शिव-सायुज्य प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तथा अष्टमी को घृत एवं मधु से स्नान करानेवाला भी शिव-सायुज्य प्राप्त करता है। सोमवार को पुष्प-जल या फल के जल से स्नान करानेवाला सौ कल्पोंतक स्वर्ग में निवास करता है। तिल के तेल से स्नान कराने पर तीन पीढ़ियों के साथ शिव-सारूप्य की प्राप्ति होती है। गन्ने के रस से लिंग को स्नान कराने पर अपने कुल के साथ सौ करोड़ कल्पोंतक शिवलोक में निवास का अवसर प्राप्त होता है। द्वादशी के दिन घी एवं दूध से स्नान करानेवाला दस हजार जन्मों के पापों को धो डालता है तथा अपने करोड़ों कुल के लोगों के साथ शिवसायुज्य को प्राप्त करता है। (बृहन्नारदीयपु. 13/84-91)

घृतेन स्नापयेलिङ्गं पुण्यवान् द्वादशीदिने।
क्षीरेण वा महाभाग तत्फलं वदतः शृणु।।
जन्मायुतार्ज्जितैः पापैर्विमुक्तो मनुजोत्तमः।
कुलकोटिसमायुक्तः शिव सायुज्यमाप्नुयात्।। (बृहन्नारदीयपु. 13/90-91)

कमल के फूलों से शिव की पूजा करनेवाला अपनी तीन पीढ़ियों के साथ विष्णुलोक को जाता है। रात्रि के समय धतूर के फूलों से शिव की पूजा करनेवाला सभी पापों से मुक्त हो युगोंतक विष्णुलोक में निवास करता है। आक के फूलों से पूजा करनेवाला शिवसारूप्य को प्राप्त करता है। जातिपुष्प से पूजा करने पर पापों से मुक्ति तथा रुद्र-पुष्प से शिव-सारूप्य की प्राप्ति होती है। शमी तथा मनोहर फूलों से पूजा करने पर सभी कामनाओं की पूर्ति तथा अपामार्ग से, विशेषतया चतुर्दशी के दिन, पूजा करने पर शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है। (वही 13/96-103)

अपामार्गदलैर्यस्तु पूजयेद्गिरिजापतिम्।
स याति शिवसायुज्यं चतुर्दश्यां विशेषतः।। (बृहन्नारदीयपु. 13/102)

घृतयुक्त गुग्गुल का धूप भगवान् शिव को भक्तिपूर्वक समर्पित करनेवाला सभी पापों से छूट जाता है। तिल के तेल का दीप शंकरजी को समर्पित करने पर सभी कामनायें पूरी होती हैं। घृत के दीप से व्यक्ति सभी पापों से छूट जाता है तथा उसे गंगास्नान का फल प्राप्त होता है। (वही 13/103-105)।

भगवान् शिव को अखण्ड दीप समर्पित करनेवाला प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है (वही 13/182)। लिंग की विधिपूर्वक एक बार दक्षिणावर्त या वामवर्त प्रदक्षिणा करने पर ब्रह्महत्या के पापों से मुक्ति, दो बार करने से राज्य की प्राप्ति तथा तीसरी बार परिक्रमा करने से चन्द्रमा का साम्राज्य प्राप्त हो जाता है। परन्तु प्रदक्षिणा करते समय सोमसूत्र (अर्थात् लिंग पर चढ़ाये हुए जल आदि को बाहर ले जानेवाली नाली) का उलंघन नहीं करना चाहिये।[1]

शिवं प्रदक्षिणं कृत्वा सव्यासव्यविधानतः।
यत् फलं समवाप्नोति तन्मे निगदतः शृणु।।
राजन् प्रदक्षिणैकेन मुच्यते ब्रह्महत्यया।
द्वितीयेनाधिराजत्वं तृतीयेनेन्दुसम्पदम्।।
शिवप्रदक्षिणे मर्त्यः सोमसूत्रं न लङ्घयेत्। (बृहन्नारदीयपु. 13/186-188)

निर्जन स्थान जहाँपर पूजा न होती हो वहाँपर स्थित शिवलिंग पर चुल्लु भर जल चढ़ानेवाला लाखों अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर लेता है। पत्र-पुष्प से उपरोक्त लिंग की पूजा से करोड़ों अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। इसी प्रकार भक्ष्य-भोज्य पदार्थ तथा फलों से पूजा करने पर शिवसायुज्य की प्राप्ति होती है (बृहन्नारदीयपु. 13/162-165)।

शिवलिंग की पूजा करने का फल तो होता ही है, इसके दान का भी बहुत बड़ा फल बताया गया है। कहा गया है कि करोड़ों ब्रह्माण्ड के दान का जो फल प्राप्त होता है वह फल शिवलिंग के दान से प्राप्त हो जाता है।

ब्रह्माण्डकोटिदानेन यत् फलं लभते नरः।
तत् फलं समवाप्नोति शिवलिङ्ग प्रदानतः।। (बृहन्नारदीयपु. 13/146)

(3) शिवोपासना संबंधी अन्य बातें

भगीरथ से धर्मराज शिवमंदिर बनवाने की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इसे बनानेवाला मातृ एवं पितृ कुल के करोड़ों लोगों को तार देता है परन्तु उससे पहले वे तीन कल्पोंतक विष्णुलोक में सुख भोगते हैं (बृहन्नारदीयपु. 13/40-41)।

---

[1] नाली के ढके होने पर उसका उलंघन हो सकता है।

इसी प्रकार जीर्ण-शीर्ण शिव-मंदिर के परिष्कार के फल को बताते हुए धर्मराज कहते हैं कि इससे सैकड़ों जन्मों के अर्जित पाप नष्ट हो जाते हैं तथा तीन पीढ़ियों के व्यक्तियों का एक कल्पतक विष्णुलोक में रहने के पश्चात् मोक्ष हो जाता है।

शीर्णस्पुटितसन्धानं यः करोति नरोत्तमः।
शिवस्यायतने..........................शृणु तत्फलम्।।
शतजन्मार्जितैः पापैर्मुक्तो वंशत्रयाऽन्वितः।
स्थित्वा विष्णुपुरे कल्पं तत्रैव परिमुच्यते।। (बृहन्नारदीयपु. 13/170-171)

कार्तिक एवं अषाढ़ तथा पूर्णिमा को शिवजी की प्रसन्नता हेतु वृषोत्सर्ग करनेवाला अपने सात जन्मों के पापों से छूटकर सात पीढ़ियों के लोगों के साथ रुद्ररूप धारण कर अन्य रुद्रों के साथ सुख भोगता है। इसी प्रकार शिवलिंग से अंकित महिष का उत्सर्ग करनेवाला यमलोक का दर्शन नहीं करता।

कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यां वा आषाढ्यां वाऽपि भूपते।
वृषभं शिवतुष्ट्यर्थमुत्सृजेत्तत्फलं शृणु।।
सप्तजन्मार्जितैः पापैर्विमुक्तो रुद्ररूपधृक्।
कुलसप्ततिसंयुक्तो रुद्रेण सह मोदते।।
शिवलिङ्गाङ्कितं कृत्वा महिषं यः समुत्सृजेत्।
न तस्य यातनालोकदर्शनं भवति प्रभो।। (बृहन्नारदीयपु. 13/135-137)

इसी प्रकार गायों को घास प्रदान करनेवाला उत्तम रुद्रलोक को प्राप्त करता है।

गवां तृणप्रदानेन रुद्रलोकमनुत्तमम्। (बृहन्नारदीयपु. 13/153)

श्राद्ध में अनेक कुपात्र लोगों के साथ-साथ शिवभक्ति विहीन को भी भोजन के लिये निमन्त्रण नहीं देना चाहिये (बृहन्नारदीयपु. 26/15)।

अन्य ग्रन्थों की भाँति इस पुराण में भी वाराणसी को उत्तम तीर्थ एवं क्षेत्र स्वीकार किया गया है। सभी देवताओं द्वारा इस तीर्थ का सेवन किया जाता है।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्रणाञ्च तथोत्तमम्।
वाराणसीति विरव्यातं सर्व्वदेवनिषेवितम्।। (बृहन्नारदीयपु. 6/37)

काशी में स्थित विश्वेश्वर लिंग को ज्योतिर्लिंग कहा जाता है। इसके दर्शन से परम ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। वाराणसी में स्थित मिट्टी, पत्थर तथा लकड़ी आदि से निर्मित अथवा चित्रित्त भगवान् शिव की मूर्ति अथवा चित्र में श्रीहरि भी विद्यमान रहते हैं।

काशीविश्वेश्वरं लिङ्गं ज्येतिर्लिङ्गं तदुच्यते।
तं दृष्ट्वा परमं ज्योतिराप्नोति मनुजोत्तमः।।
शिलामृद्दारुपाषाणलेरव्यजा मूर्तिरुत्तमा।

शिवस्याऽप्यच्युतस्याऽपि तत्र सन्निहितो हरिः।। (बृहन्नारदीयपु. 6/48-49)

यद्यपि तीर्थों एंव क्षेत्रों में काशी को उत्तम माना गया है परन्तु इस पुराण में यह भी कहा गया है कि तीर्थादि का फल आचारवान् को ही प्राप्त होता है।

पुण्यक्षेत्राभिगमनं पुण्यतीर्थनिषेवनम्।
यज्ञो वा विविधो ब्रह्मन्त्यक्ताचारं न रक्षति।। (बृहन्नारदीयपु. 4/26)

इस पुराण में वर्णित भगीरथ के स्तोत्र का तीनों सन्ध्यायों में पाठ करनेवाला अपनी सभी कामनाओं को पूरा कर लेता है। इस स्तोत्र की जानकारी के इच्छुक पाठक इस पुराण के अध्याय 15 (श्लोक 81-99) को देखें।

सत्यवान् एवं निरहंकारी व्यक्ति भगवान् शिव का प्रिय होता है।

सत्यवान्निरहङ्कारस्तस्य प्रीत उमापतिः।। (बृहन्नारदीयपु. 32/20)

शिवनिन्दक की गति न तो इस लोक में और न परलोक में ही होती है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण इस पुराण में किया गया है (बृहन्नारदीयपु. 14/68)।

शिवनिन्दापराणाञ्च.......................................।
...........................नेहाऽमुत्र च निष्कृतिः।।

त्रिदेवों की एकता

सभी प्रमुख ग्रन्थों में तीनों प्रमुख देवों की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन किया गया है। इस पुराण में भी जगह-जगह बल देकर इनकी एकता को प्रतिपादित किया गया है।

एक स्थल पर कहा गया है कि परात्पर निर्गुण तत्त्व ही गुणों को धारणकर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के रूप में भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। गुणों अथवा उपाधिभेद से वही सनातन तत्त्व जगत् की सृष्टि, पालन तथा संहाररूपी कार्य करता है (बृहन्नारदीयपु. 29/70-72, 3/2-4, 24 आदि)।

इस पुराण में अनेक स्थलों पर शिव एवं विष्णु में तादात्म्य अर्थात् (एकरूपता) का प्रतिपादन किया गया है। इन दोनों देवों में भेदबुद्धि रखनेवाले की निन्दा तथा अभेदबुद्धिवाले की प्रशंसा की गयी है।

अभेददर्शी देवेशे नारायणशिवात्मके।
सवन्द्यो ब्राह्मणो नित्यमस्माभिः किमु सत्तमः।। (बृहन्नारदीयपु. 3/63)

भागवत के लक्षणों को बताते हुए एक स्थल पर कहा गया है कि-

शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि।
समबुद्ध्या प्रवर्त्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः।। (बृहन्नारदीयपु. 5/57)

भावार्थ यह है कि भागवत वही है जिसकी बुद्धि में शिव एवं विष्णु में भेद का अभाव है।

एक स्थल पर कहा गया है कि श्रीहरि ही लिंग का रूप धारण करते हैं तथा लिंग (शिव) ही

श्रीहरि का रूप धारण करता है। ईश एवं हरि में कोई अन्तर नहीं है, भेद करने पर पाप लगता है। अनादि परात्पर देव (निर्गुणतत्त्व) की ही हरि एवं शंकर दोनों संज्ञायें हैं (अर्थात् उस निर्गुणतत्त्व को ही कोई श्रीहरि और कोई सदाशिव अथवा शंकर कहता है)। अज्ञान के सागर में डूबे पापी व्यक्ति ही इनमें भेद करते हैं। जो देव जगदीश एवं कारणों के कारण हैं वे ही अव्यय रुद्ररूप धारण करते हैं। रुद्र ही विष्णुरूप में समस्त जगत् का पालन करते हैं तथा ब्रह्मा के रूप में सृष्टि करते हैं तथा वे ही स्वयं श्रीहरि हैं। हरि, शंकर एवं ब्रह्मा के बीच जो भेद करते हैं वे चन्द्रमा एवं ताराओं के बने रहनेतक नरक भोगते हैं। तथा जो इनमें अभेद का दर्शन करते हैं वे परमानन्द को प्राप्त करते हैं – ऐसा शास्त्रों का निर्णय है।

हरिरूपधरं लिङ्गं लिङ्गरूपधरो हरिः।
ईषदप्यन्तरं नास्ति भेदकृत्पापमश्नुते।।
अनादिनिधने देवे हरिशङ्करसंज्ञिते।
अज्ञानसागरे मग्ना भेदं कुर्व्वन्ति पापिनः।।
यो देवो जगतामीशः कारणानाञ्च कारणम्।
युगान्ते जगदत्त्येतद्रुद्ररूपधरोऽव्ययः।।
रुद्रो वै विष्णुरूपेण पालयत्यखिलं जगत्।
ब्रह्मरूपेण सृजति तदत्त्येव स्वयं हरिः।।
हरिशङ्करयोर्मध्ये ब्रह्मणश्चाऽपि यो नरः।
भेदकृन्नरकं भुङ्क्ते यावदाचन्द्रतारकम्।।
हरं हरिं विधातारं यः पश्येदेकरूपिणम्।
स याति परमानन्दं शास्त्राणामेष निर्णयः।। (बृहन्नारदीयपु. 6/41-46)

भगवान् विष्णु भगीरथ को शिवपूजा के लिये प्रेरित करने हेतु उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि भगवान् शिव मेरी ही दूसरी मूर्ति हैं अतः अपनी सामर्थ्यानुसार स्तोत्रों से शिव का यजन अर्थात् पूजन करो।

मम मूर्त्त्यन्तरं शम्भुं यज स्तोत्रैः स्वशक्तितः। (बृहन्नारदीयपु. 15/74)

अदिति भगवान् विष्णु की स्तुति में कहती हैं कि महादेवजी हरिरूप हैं तथा जनार्दन ही शिवरूप हैं। वे ही जगत्पति तथा जगद्गुरु हैं।

हरिरूपी महादेवः शिवरूपी जनार्द्दनः।।
इति लोकस्य ते नाथ नताऽस्मि जगतां गुरुम्।। (बृहन्नारदीयपु. 11/30)

उपरोक्त सभी उद्धरणों से त्रिदेवों की तात्त्विक एकता सिद्ध होती है। भगवान् शिव एवं विष्णु में तादात्म्य होने के कारण ही शिवोपासक वैष्णव को विष्णुलोक की प्राप्ति होती है। तथा शिव की प्रतिमाओं अथवा चित्र में भगवान् विष्णु भी निवास करते हैं (वही 11/56, 6/49, 52)।

उपसंहार

इस वैष्णव उपपुराण में 38 अध्याय तथा लगभग 3500 श्लोक हैं। इसमें नारद महापुराण की कई बातें बिना किसी परिवर्तन के पायी जाती हैं। भगवान् शिव को परात्पर निर्गुण ब्रह्म स्वीकार करते हुए कहा गया है कि वे ही सगुणरूप धारण कर जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय के हेतु बनते हैं। अर्थात् वे ही अनेक नाम-रूप धारण करते हैं। निर्गुणरूप में उन्हें प्रमाणों से परे, प्रणवस्वरूप, अनन्त, सनातन तथा सबका कारण कहा गया है। सगुणरूप में उन्हें ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप, पंचमुखी, अष्ट भुजावाले, पिनाक, त्रिशूल, कपाल आदि को धारण करनेवाले, चन्द्रमा तथा नागों के यज्ञोपवीत को धारण करनेवाले, सभी देवों के ईश्वर, जगद्गुरु, भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले आदि-आदि कहा गया है।

चूँकि भगवान् शिव भोग-मोक्षदाता, पापों का नाश करनेवाले, समस्त शुभों को प्रदान करनेवाले तथा विष्णु आदि देवों द्वारा पूज्य हैं अतः उनकी उपासना सभी को करनी चाहिये। लिंगार्चन अथवा शिवपूजा से वैष्णवजनों को विष्णुलोक की तथा अन्यों को शिवलोक की प्राप्ति होती है। चूँकि भगवान् शिव सभी देवों के स्वरूप हैं अतः उनकी पूजा से सभी देवों की पूजा सम्पन्न हो जाती है। अर्थात् उन-उन की पूजा का फल उपासक को प्राप्त हो जाता है। कलियुग में शिवपूजा एवं शिवनामजप की विशेष महिमा बतायी गयी है। शिव के नामों का जप करनेवाला कलि के दोषों से मुक्त हो जाता है तथा वह शिवसायुज्य को प्राप्त कर लेता है।

इस पुराण में विभिन्न प्रकार से की जानेवाली शिवलिंग की पूजा के फलों को भी बताया गया है। पंचाक्षर मन्त्र का जप करनेवाला उत्तम भागवत कहा गया है। त्रिपुण्ड्र एवं रुद्राक्ष धारण कर शिव की आराधना करनेवाले को भी उत्तम भागवत कहा गया है। लिंगपूजा के अतिरिक्त लिंग के दान का भी अत्यधिक फल बताया गया है। इसके दान का फल करोड़ों ब्रह्माण्ड के दान के फल के बराबर होता है।

श्राद्ध में शिवभक्तिविहिन को भी भोजन के लिये निमन्त्रण नहीं देना चाहिये। वाराणसी को उत्तम तीर्थ तथा क्षेत्र स्वीकार किया गया है। परन्तु किसी तीर्थ या क्षेत्र के सेवन का फल, आचारवान् को ही प्राप्त होता है, आचारविहीन को नहीं।

इस पुराण में तीनों देवों की एकता का भी प्रतिपादन सशक्तरूप से किया गया है। निर्गुण शिवतत्त्व ही सृष्टिकार्य हेतु अपने को त्रिदेवों के रूप में प्रकट करता है। निर्गुण शिवतत्त्व को कोई शिव तो कोई विष्णु कहता है। क्योंकि जो शिव है वही विष्णु है। जो इन दोनों में भेद करता है वह चन्द्र तथा तारागण की आयुपर्यन्त नरक में वास करता है तथा वह अज्ञानी है। जो इनमें अभेद को देखता है वह परमानन्द को प्राप्त करता है-ऐसा शास्त्रों का निर्णय है। अतः अभेदबुद्धि से ही तीनों देवों की उपासना करनी चाहिये।

(यह लेख चौखम्बा अमरभारती, वाराणसी द्वारा 1975 में प्रकाशित 'बृहन्नारदीयपुराणम्' जो पं. हृषीकेश शास्त्री द्वारा सपादित है, की प्रति पर आधारित है।)

शिवप्रोक्त गीताओं में शिवतत्त्व

त्रिलोकी के गुरु भगवान् शंकर स्वभाव से ही विशुद्ध बोधमय, विज्ञानमय, परमानन्दमय, सर्वतन्त्र-स्वतंत्र एवं अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न हैं। प्राय: सभी शैवागमों और पुराणों का यही स्पष्ट कथन है कि भगवान् शिव में सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिज्ञान, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्तशक्ति एवं अनन्त शक्ति-ये छ: तत्त्व सदा विद्यमान रहते हैं।

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोध: स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्ति:।
अनन्त शक्तिश्च विभोर्विधिज्ञा: षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य:।।

(वायु पु. 1/12/31 तथा ईश्वरगीता 8/13)

भगवान् शंकर में ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश एवं कान्ति अक्षुण्णरूप से स्थिर रहते हैं इसलिये उनकी भगवान् संज्ञा सार्थक है। उन्हें त्रिभुवनगुरु कहा गया है। प्राय: सभी आगम तथा रहस्य आदि उनके द्वारा ही उपदिष्ट हैं। आगम उन्हें कहते हैं जो शिव द्वारा उपदिष्ट हैं।

आगंत शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ।
तस्मादागम इत्युक्तो विद्वद्‌भिस्तत्त्वदर्शिभि:।। (कुलार्णवतन्त्र 17)

शैवागमों के अतिरिक्त यामल, डामर, सौर-आगम यहाँतक कि वैष्णव आगमों की अहिर्बुध्न्य, सदाशिव तथा सनत्कुमार आदि संहिताएँ भी भगवान् शिव द्वारा उपदिष्ट हैं किन्तु इन सब में शिव-गीताएँ विशेष महत्त्व की हैं।

यद्यपि शिवप्रोक्त गीताएँ अनेक हैं जो पद्म[1], कूर्म[2], वराह[3], स्कन्द[4] आदि पुराणों में बिखरी हुई हैं पर इनमें से शिवगीता, ईश्वरगीता तथा महेश्वरगीता[5] को ही प्रस्तुत लेख में सम्मिलित किया जायगा।

शिवगीता में शिवतत्त्व

सभी शिवप्रोक्त गीताओं में यह सबसे बड़ी है जिसमें लगभग 850 श्लोक पाये जाते हैं। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थपर अत्यन्त विशिष्ट विद्वानों की अनेक व्याख्याएँ, टीकाएँ तथा भाष्यादि भी उपलब्ध हैं अत: यह उपनिषदादि की तरह प्रामाणिक मानी जाती है। टीकाओं में तात्पर्यबोधिनी, तात्पर्यदीपिका, शिवगीताव्याख्या, शिवगीताभाष्य, तात्पर्यप्रकाशिका आदि संस्कृत टीकाएँ विशेषरूप से उल्लेख्य हैं। इनमें से अधिकांश अद्वैत वेदान्त के उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा निर्मित हैं।

श्रीमत्परमशिवेन्द्र सरस्वती द्वारा रचित 'तात्पर्यप्रकाशिका' नाम की व्यख्या काफी विस्तृत एवं मूलग्रंथ को स्पष्ट करनेवाली है। कुछ स्थलों पर इन्होंने श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, आगम, व्याकरण एवं वेदान्तादि दर्शनों के वचनों से तथा कालाग्नि, रुद्र, जाबाल, मुण्डक, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर,

---

[1] शिवगीता [2] ईश्वरगीता [3] रुद्रगीता [4] ब्रह्मगीता

[5] 'महेश्वरगीता' महाभारत के दाक्षिणात्य पाठ के अनुशासनपर्व के अन्तर्गत पायी जाती है। इसके बहुत से श्लोक उत्तरभारतीय पाठवाले गीताप्रेस, गोरखपुर से छपे महाभारत के अनुशासनपर्व (के 141 से 143 अध्याय) में भी प्राप्त होते हैं।

अर्थवशिरस् तथा बृहज्जाबाल आदि उपनिषदों के वचनों और लौगाक्षि, भारद्वाज, मनु, बोधायन आदि स्मृतियों, स्मृतिरत्नावली, धर्मसारसुधानिधि, स्मृतिसारसमुच्चय आदि निबंध-शास्त्रों एवं शिवरहस्य, सूतसंहिता, शंकरसंहिता, सौरसंहिता, अंशुमद्भेदागम आदि विशिष्ट ग्रन्थों के अनेक वचनों से शैवज्ञान की पुष्टि की है।

शिवगीता को पद्मपुराण के अन्तर्गत बताया गया है किन्तु वर्तमान में उपलब्ध पद्मपुराण के संस्करणों में यह उपलब्ध नहीं होती। नारद पुराण में 18 पुराणों की विषयसूची को संक्षेप में बताया गया है। उसमें पद्मपुराण के पतालखण्ड के विषयों के अन्तर्गत शिवगीता का उल्लेख है-

....
गौतमारव्यानकं चैव शिवगीता ततः स्मृता।
कल्पान्तरी रामकथा भारद्वाजाश्रमस्थितौ।।
.... (नारदपु. पूर्वभाग-चतुर्थपाद)

(..............गौतम का उपारव्यान और शिवगीता तथा कल्पान्तर में भरद्वाजआश्रम में श्रीरामकथा आदि विषय पातालखण्ड के अन्तर्गत हैं।)

शिवगीता के उपोद्घात में श्रीसूतजी ने शौनकादि ऋषियों से कहा है कि मोक्ष दान तथा तप आदि कर्मों के अनुष्ठानों से प्राप्त नहीं होता अपितु, ज्ञान ही मोक्ष का कारण है (शिवगीता 1/2) और इस ज्ञान का गुप्त रहस्य शिवगीता में प्रकाशित है, जिसे दण्डकारण्य में भगवान् शंकर ने उस समय श्रीराम को उपदिष्ट किया था, जिस समय रावण द्वारा सीता का अपहरण हो चुका था और सीता के वियोग में विलाप करते हुए श्रीराम की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी[1]। पुण्यों से ही शिवचरित्र सुनने की इच्छा होती है तथा शिव-चरित्र-श्रवण से ज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे जीव की मुक्ति होती है। अतः एकमात्र भगवान् शिव ही ध्येय हैं।

भगवान् शिव का स्वरूप

भगवान् शिव को वायु, रुद्र, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु आदि का कर्त्ता बताया गया है (शि. गी. 3/20-21)। उन्हें सर्वव्यापी, धाता, विधाता, कालाग्नि एवं परमात्मा कहा गया है। उन्हें देवता, मुनि, ब्रह्मा, इन्द्र, मनु आदि कोई भी यर्थाथरूप से नहीं जानता (17/27-29)। भगवान् शिव ही वेदों द्वारा स्तुत्य हैं। पितामह ब्रह्मासहित सम्पूर्ण लोक जिनको नमस्कार करते हैं तथा योगीजन जिनका ध्यान करते हैं और जो कर्मों का फल देनेवाले हैं, वे ही भगवान् शिव हैं (17/31-32)।

भगवान् शिव कहते हैं कि "आदि में मैं जगत् की सृष्टि करने से परमेष्ठी ब्रह्मा कहा जाता

---

[1] लीलावश भगवान् राम ने अपने को शोचनीय स्थिति में डाला था ताकि उससे लोककल्याण एवं आदर्श की स्थापना तथा नारदादि भक्तों के संकल्प पूरे हो सकें।

हूँ तथा पालन करने से उत्तम पुरुष परमात्मा इस नाम से गाया जाता हूँ। मैं ही सम्पूर्ण योगियों का अविनाशी गुरु हूँ.........................मैं ही योगियों को संसारबंधन के सभी प्रकार के क्लेश से छुड़ानेवाला हूँ ....मैं ही संसार को उत्पन्न, पालन तथा संहार करनेवाला हूँ.................मेरी महाशक्ति लोकों को मोहनेवाली माया है...................मैं योगियों के हृदय में स्थित होकर माया का नाश करता हूँ..............मैं ही सम्पूर्ण जगत् हूँ और मुझमें ही सब जगत् है। अर्थात् सबकुछ मैं ही हूँ....................मैं ही भगवान्, ईश्वर, स्वयंज्योति एवं सनातन हूँ, मैं ही परमात्मा परब्रह्म हूँ, मुझसे परे दूसरा कोई नहीं है।"

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मा हि गीयते।।
अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः।
..
अहं हि सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह।
..
अहमेव हि संहर्ता स्रष्टाहं परिपालकः।
माया वै मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी।।
..
नाशयामि च तां मायां योगिनां हृदि संस्थितः।। (शिवगीता 17/40-44)
अहमेव जगत्सर्वं मय्येव सकलं जगत्।।
..
अहं हि भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातन।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते।। (शि. गी. 17/46-47)

आगे बताया गया है कि भगवान् शिव की एक शक्ति जगत् की सृष्टिकरने के कारण ब्रह्मा दूसरी शक्ति जगत् का पालनकरने के कारण विष्णु तथा तीसरी शक्ति संहारकरने के कारण रुद्र कहलाती है (शि. गी. 17/48-50, 58; 5/36, 37)।

भगवान् शिव सगुण एवं निर्गुण दोनों ही हैं। लीलावश वे सगुण हो जाते हैं। शिवगीता के छठे अध्याय में भगवान् राम शिवजी से पूछते हैं कि- "आप कहते हैं कि मैं ही जगत् की उत्पत्ति और पालनकर्त्ता हूँ इसमें मुझे बड़ा आश्चर्य है। स्वच्छ स्फटिकमणि के समान जिनका शरीर और तीन नेत्र तथा मस्तक पर चन्द्रमा है आप ऐसे परिच्छिन्न और पुरुषाकृति मूर्ति धारण किये हैं और पार्वती--सहित प्रमथ आदि गणों के साथ यहीं विहार करते हैं फिर आपने पंचभूतादि यह चराचर जगत् कैसे पैदा किया है?" (शि. गी. 6/1-3)।

उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि हे राम! यह सब तो देवताओं की भी

बुद्धि में नहीं आता पर मैं तुमसे कहता हूँ। पंच महाभूत, चौदह भुवन, समुद्र, पर्वत, देवता, राक्षस, ऋषि, स्थावर-जंगम, गन्धर्व, प्रमथ, नारद आदि जो दीखते हैं यह सब मेरी विभूति हैं। सृष्टि से पहले मैं ही था, वर्तमान में भी मैं ही हूँ और अन्त में भी मैं ही रहूँगा। इस लोक में मेरे सिवा और कुछ भी नहीं है। मुझसे अलग कोई वस्तु नहीं है। नित्य एवं अनित्य मैं ही हूँ। मैं ही सावित्री, गायत्री, स्त्री, पुरुष, नपुंसक हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, उमा, स्कन्द, गणपति, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, यह सात लोक, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह आदि यह सब मैं ही हूँ। (शि. गी. 6/4-6, 10-11, 13, 22-23)

ब्रह्मा विष्णुर्महेशोऽहमुमा स्कन्दो विनायकः।
इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चाहं निर्ऋतिर्वरुणोऽनिलः।।
कुबेरोऽहं तथेशानो भूर्भुवः स्वर्महर्जनः।
तपः सत्यं च पृथ्वी चापस्तेजोऽनिलोप्यहम्।। (शि. गी. 6/22-23)

भगवान् शिव आगे कहते हैं कि-ब्रह्मा, हरि, भगवान् व और दूसरे देव भी मेरा आदि और अंत नहीं जानते अतः मैं अनन्त हूँ।[1]

ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान्।
ततोऽन्ये च सुरायस्मानन्तोऽहमितीरितः।। (शि. गी. 6/33)

प्रलयकाल में कोई दूसरा स्थित नहीं रहता केवल मैं ही तीनों गुणों से परे स्वयं ब्रह्मरुद्रस्वरूप सब प्राणियों को अपने में लय करके स्थित होता हूँ।

न द्वितीयो यतश्चास्ति तुरीयं ब्रह्म यत्स्वयम्।
भूतान्यात्मनि संहृत्य चैको रुद्रो वसाम्यहम्।। (शि. गी. 6/38)

पुनः मैं चर और अचर जगत् के सभी प्राणियों का सदा ईश्वर हूँ तथा सब विद्याओं का अधिपति हूँ। इससे मेरा ईशान नाम सार्थक है-

ईशानश्चास्मि जगतां सर्वेषामपि सर्वदा।
ईशानः सर्वविद्यानां यदीशानस्ततोऽस्म्यहम्।। (शि. गी. 6/40)

मैं निरन्तर सब लोकों की उत्पत्ति, पालन और संहार करता हूँ, इस कारण मुझे महेश कहते हैं।(शि. गी. 6/42)।

सभी वस्तुएँ मुझ ही से उत्पन्न हैं और मुझमें ही प्रतिष्ठित हैं और अंत में मुझमें ही लय हो जाती हैं। मैं ही अद्वय ब्रह्म हूँ। मैं ही सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म और महान् से भी महान् हूँ। मैं ही विश्वरूप निर्लेप पुरातन पुरुष सर्वेश्वर तेजोमय और शिवरूप हूँ(शि. गी. 6/52-53)। जो मुझे तत्त्व से जानता

---

[1] यहाँ निर्गुण सदाशिव को लक्ष्य करके कहा गया है कि उन्हें सगुण ब्रह्मा व हरि आदि नहीं जानते। वास्तव में निर्गुणरूप में तीनों एक ही तत्त्व हैं।

है वही संसार से मुक्त होता है (शि. गी. 6/57)।

उपरोक्त तथा अन्यान्य भगवान् शिव की विभूतियों के सुनने के उपरान्त रामजी पूछते हैं- "हे भगवन्! जो कुछ मैंने प्रश्न किया है वह तो उसी प्रकार स्थित है। हे महेश्वर! आपने उस विषय का कोई उत्तर नहीं दिया। आपका देह परिच्छिन्नपरिमाणवाला है फिर सब संसार की उत्पत्ति, पालन एवं नाश आप किस प्रकार करते हैं"? (शि. गी. 7/1-2)

उपरोक्त प्रश्न करने पर भगवान् शिव कहते हैं कि सूक्ष्म वट के बीज में जिस प्रकार महान् वट का वृक्ष छिपा रहता है और उसी से वह वृक्ष स्थूलरूप में भी प्रकट हो जाता है उसी प्रकार मेरे सूक्ष्म शरीर से सब भूतों का जन्म, पालन और नाश होता है (शि. गी. 7/5)। इस उत्तर से भी श्रीराम को संतुष्टि नहीं हुई तब भगवान् शिव ने उन्हें दिव्यनेत्र देकर अपना दिव्यरूप दिखाया जिसे देखकर संतुष्ट हो भगवान् शिव की उन्होंने स्तुति की। इस स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव की उन सभी विभूतियों का वर्णन किया है जिसका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं।

वे कहते हैं - "हे भगवन्! सच्चिदानन्दरूप समुद्र में हंसरूप, नीलकण्ठ, कालस्वरूप भक्तजनों के सम्पूर्ण पातक दूर करनेवाले तथा सबके साक्षी आपको नमस्कार है"। (शि. गी. 7/37)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भगवान् के सगुण-साकाररूप को बुद्धि से नहीं जाना जा सकता क्योंकि वह तो भगवान् की लीला (जो माया को धारणकर होता है) का एक अंग होता है। उसका ज्ञान तो शिव की कृपा से ही हो सकता है। जब वह जिसको दिव्य नेत्र देता है उसे ही उसकी माया समझ में आती है।

नवें अध्याय में भगवान् शिव पुनः कहते हैं कि संसार मुझसे ही उत्पन्न होता है और मुझसे ही धारण किया जाता है। मैं संगरहित निरहंकार शुद्ध सनातन ब्रह्म हूँ, मैं अनादिसिद्ध माया से युक्त होकर जगत् का कारण होता हूँ। मेरी माया का वर्णन नहीं हो सकता। उसमें सत्त्व, रज तथा तम ये तीन गुण रहते हैं। (शि. गी. 9/1, 3-4)

मत्तो हि जायते विश्वं मयैवैतत्प्रधार्यते।।
असंगो निरहंकारः शुद्धं ब्रह्म सनातनः।
अनाद्यविद्यायुक्तः सञ्जगत्कारणतां व्रजेत्।।
अनिर्वाच्या महाविद्या त्रिगुणा परिणामिनी।
रजः सत्त्वं तमश्चेति त्रिगुणाः परिकीर्तिताः।। (शि. गी. 9/1, 3-4)

दसवें अध्याय में भगवान् शिव कहते हैं- "मैं ही सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्त, परमानन्द, परमात्मा, परमज्योति, माया से मोहित जीवों को न दीखनेवाला, संसार का कारण, नित्य विशुद्ध, सर्वात्मा, सर्वान्तर्यामी, निःसंग, क्रियारहित, सब धर्मों तथा मन से परे हूँ। मुझे कोई इन्द्रिय नहीं ग्रहण कर सकती, मैं सम्पूर्ण का ग्रहण करनेवाला हूँ, मैं सम्पूर्ण लोकों का ज्ञाता हूँ परन्तु मुझे कोई नहीं

जानता। मैं सम्पूर्ण विकारों से रहित हूँ, (बाल्य, यौवनादि)परिणाम आदि विकार भी मुझमें नहीं हैं, जहाँ मन के सहित वाणी जाकर निवृत्त हो जाती है उस आनन्दब्रह्म मुझको प्राप्त होकर प्राणी कहीं से भी भय को प्राप्त नहीं होता।" (शि. गी. 10/5-9)

सत्यज्ञानात्मकोऽनन्तः परमानन्दविग्रहः।
परमात्मा परं ज्योतिरव्यक्तोव्यक्तकारणम्।।
नित्यो विशुद्धः सर्वात्मा निर्लेपोऽहं निरञ्जनः।
सर्वधर्मविहीनश्च ग्राह्यो मनसापि च।।
नाहं सर्वेन्द्रियग्राह्यः सर्वेषां ग्राहको ह्यहम्।
ज्ञाताहं सर्वलोकस्य मम ज्ञाता न विद्यते।।
दूरः सर्वविकाराणां परिणामादिकस्य च।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।।
आन्नदं ब्रह्म मां ज्ञात्वा न बिभेति कुतश्चन।। (शि. गी. 10/5-9)

वहीं पर आगे कहा गया है- "अनादि माया से युक्त निर्विकार अविनाशी एक मैं ही नामरूप-रहित ब्रह्म जगत् का कर्त्ता परमेश्वर हूँ।"

अनाद्यविद्यया युक्तस्तथाप्येकोऽहमव्ययः।
अव्याकृतब्रह्मरूपो जगत्कर्ताहमीश्वरः।। (शि. गी. 10/13)

उपरोक्त संदर्भो के अतिरिक्त भी अनेक स्थलों पर भगवान् शिव को ही परमसत् अथवा ब्रह्म माना गया। ब्रह्म होने के नाते शास्त्रों में वर्णित ब्रह्म की सभी विशेषताएँ भी उनमें पायी जाती हैं। उन विशेषताओं से संबधित अनेकों सन्दर्भ शिवगीता में बिखरे हुए हैं जैसे- (12/3, 5; 13/15-16; 14/1-3; 6/1-57 आदि)

शिवभक्ति की महिमा

शिवगीता के प्रथम अध्याय में सूतजी कहते हैं कि करोड़ जन्मों के पुण्यसंचय होने से शिव में भक्ति उत्पन्न होती है। शिवजी की कृपा से जब प्राणी दृढ़ भक्तिमान् होता है, तब भक्ति में विघ्न डालनेवाले देवता भयभीत हो चले जाते हैं। उस भक्ति के करने से शिवजी के चरित्रश्रवण करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है जिसके सुनने से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति होती है। जिसकी शिवजी में दृढ़ भक्ति है वह करोड़ों पापों से ग्रसा हो तो भी मुक्त हो जाता है। अनादर से, मूर्खता से, परिहास से, कपट से भी जो मनुष्य शिवभक्ति करते हैं वे चांडाल होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं।(शि. गी. 1/16-21)

अनादरेण शाठ्येन परिहासेन मायया।
शिवभक्तिरतश्चेत्स्यादन्त्यजोऽपि विमुच्यते।। (शि. गी. 1/21)

इस कारण से शिवभक्ति सदा सबके करने योगय है। इस प्रकार की भक्ति (अर्थात् शिवभक्ति)

के वर्तमान रहनेपर भी जो मनुष्य संसार से न छूटे तो उसके समान दूसरा कोई भी मूर्ख नहीं। शिवजी भक्त के अतिरिक्त उनसे नियमपूर्वक द्रोह करनेवाले पर भी प्रसन्न हो मनोवांच्छित फल प्रदान करते हैं। जो लोग केवल जल को ही नियम से शिवार्पण करते हैं उनसे भी शिवजी प्रसन्न होकर त्रैलोक्य दे देते हैं और जो यह भी न कर सकें तो नियम से नमस्कार व प्रदक्षिणा करें। जो प्रदक्षिणा में भी असमर्थ हों तो केवल मन में ही शिवजी का ध्यान करें। (शि. गी. 1/22-26)

चलते-बैठते भी जो उनका स्मरण करते हैं उनको भी वे अभीष्ट पदार्थ प्रदान करते हैं। चन्दन, बेलकाष्ठ तथा वन में उत्पन्न हुए फल शिवजी को अधिक प्रिय हैं(ग्राम-नगर में उत्पन्न उत्तम फल-फूलों में उनकी प्रीति कम है)। इन पदार्थों से उनकी सेवा करने पर सभी दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं।(शि. गी. 1/27-29)

जो व्यक्ति ऐसे देवता को छोड़कर अन्य देवता का भजन-सेवन करता है, वह मानो गंगा को छोड़कर मृगतृष्णा के जल की इच्छा करता है। परन्तु जिनको करोड़ों जन्मों के पाप चिपट रहे हैं, तथा जिनका चित्त अज्ञान के अंधकार से आच्छादित हो रहा है, उनको शिवजी की भक्ति प्रकाशित नहीं होती। शिवभक्ति में देश, काल तथा स्थान का कुछ नियम नहीं है, जहाँ जिसका चित्त रमे वहीं ध्यान करे।(शि. गी. 1/30-32)

न कालनियमो यत्र न देशस्य स्थलस्य च।
यत्रास्य चित्तं रमते तस्य ध्यानेन केवलम्।। (शि. गी. 1/32)

भगवान् राम ने वनवास के दौरान किष्किन्धा में अगस्त्यजी के निर्देशन में लिंगपूजा कर भगवान् शिव को प्रसन्न किया था फलस्वरूप उन्हें शिवगीता का ज्ञान तथा दिव्यधनुष, अक्षयतरकस और महापाशुपतास्त्र प्राप्त हुए।(शि. गी. 4/2-4 तथा 5/13)

भगवान् शिव रामजी को कह रहे हैं कि मेरी त्रिगुणात्मक माया का उल्लंघन करना महाकठिन है। जो मेरी शरणागत होकर मुझको प्राप्त हो जाते हैं वे ही इस माया को तरते हैं।(शि. गी. 14/34-35)

पुनः अनेक प्रकार की योनियों में उत्पन्न हुए किसी एक प्राणी की करोड़ों जन्म के संचित पुण्य से मेरे प्रति भक्ति जाग्रत होती है, वही श्रद्धायुक्त मेरा भक्त ज्ञान को प्राप्त करता है। इस कारण(हे राम!) और सब त्यागकर केवल मेरी भक्ति करो। दूसरे और सब धर्मों को छोड़कर एक मेरी शरण में हो, मैं तुमको सब पापों [1] से छुड़ाकर मुक्त कर दूँगा, तुम सोच मत करो।(शि. गी. 14/38-40)।

---

[1] यहाँ इस कथन से यह नहीं समझना चाहिये कि भगवान् राम पापी थे। भगवान् राम नरलीला के माध्यम से जगत् का हित एवं आदर्श स्थापित करना चाहते थे। मनुष्य पर दुःख पूर्वकृत पापों के कारण आते हैं (**पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः**, ब्रह्मवैवर्त पु., ब्रह्मखण्ड 16/51)। नरलीला के दौरान राम को वनवास तथा सीताहरण आदि का दुःख मिला। इस दुःख को सामान्य जन पूर्वपापों का परिणाम ही मानेंगे। इसीलिये यहाँ यह उपदेश दिया गया है कि शिव की शरण लेने से अथवा शिवभक्ति से पूर्वपाप समाप्त हो जाते हैं।

शिवोपासना

शिवगीता में निर्गुण, सगुण, ज्ञान, भक्ति एवं योग आदि अनेक तरह की उपासनाओं का उल्लेख है। सगुणोपासना में लिंगार्चन, भस्म, रुद्राक्ष, (सहस्र)नाम-जप आदि का महत्त्व बताया गया है। ज्ञानयोग की साधना में सभी वस्तुओं को भगवान् शिव की विभूति मानकर उनमें समदृष्टि रखना तथा आत्मस्वरूप का सतत चिन्तन करना, श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना आदि का निर्देश किया गया है। अन्त में भक्तियोग की चर्चा करते हुए उसे श्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है कि भगवान् शिव इससे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं।

जो शान्ति आदि साधन से युक्तहोकर श्रवण, मनन, निदिध्यासनपूर्वक शिव को ही आत्मरूप जानता है वह अद्वैत स्वप्रकाश ब्रह्म के तद्रूप को प्राप्त होता है, जो जीव का यथार्थ स्वरूप है। अद्वैत ब्रह्म को आत्मरूप जानकर सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् को जो शिव के ही रूप में देखता है उसकी यथासमय शिवस्वरूप के ज्ञान से अविद्या नष्ट हो जाती है और वह मन, वाणी से परे शिव का सायुज्य प्राप्त कर लेता है।(शि. गी. 13/8-14)

राम भगवान् शिव से पूछते हैं कि जो अतिसूक्ष्म और इन्द्रियों से अग्राह्य है वह ब्रह्म ग्राह्य कैसे हो सकता है? उस सूक्ष्म में चित्त की वृत्ति किस प्रकार हो सकती है? इसका उपाय बताईये(शि. गी. 14/4)। इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव का यह कथन है कि जो निर्गुण को कठिन समझते हैं वे पहले सगुण उपासना करें, किसी भी सगुण उपासना करनेवाले की अधोगति नहीं होती(शि. गी. 11/54)। वे आगे कहते हैं-पहले सगुण उपासना करते-करते चित्त को एकाग्र करें और बाद में निर्गुणस्वरूप में चित्त की वृत्ति प्रवृत्त करें।(शि. गी. 14/5)

उपासना के सन्दर्भ में भगवान् शिव रामजी से कहते हैं कि जितने देवता हैं यह सब मेरे ही रूप हैं, वास्तव में मुझसे भिन्न नहीं हैं। जो दूसरे देवताओं के भक्त हैं और श्रद्धापूर्वक उनका पूजन करते हैं, वे भी मेरा ही भेदबुद्धि से यजन करनेवाले हैं। इस सम्पूर्ण संसार में मेरे सिवा और कुछ नहीं है, इसी कारण से मैं सब क्रिया का भोक्ता और सबका फल देनेवाला हूँ। जो पुरुष जिस भाव से मेरी उपासना करते हैं, उसी भावना के अनुसार उसी देवता के रूप में मैं उन्हें वांछित फल देता हूँ। विधि से अविधि से, किसी प्रकार से भी मेरी जो उपासना करते हैं उनको मैं प्रसन्न होकर फल देता हूँ।(शि. गी. 12/3-7)

> ये त्वन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः।
> तेऽपि मामेव राजेन्द्र यजन्त्यविधिपूर्वकम्।।
> यस्मात्सर्वमिंद विश्वं मत्तो न व्यतिरिच्यते।
> सर्वक्रियाणां भोक्ताहं सर्वस्याहं फलप्रदः।।
> येनकारेण ये मर्त्या मामेवैकमुपासते।

तेनाकारेण तेभ्योऽहं प्रसन्नो वाञ्छितं ददे।।
विधिनाऽविधिना वापि भक्त्या ये मामुपासते।
तेभ्यः फलं प्रयच्छामि प्रसन्नोऽहं न संशयः।। (शि. गी. 12/4-7)

उपासना की विधि चार प्रकार की है - संपत्, आरोप, संवर्ग और अध्यास। अल्प वस्तु का भी गुणयोग से मन की वृत्ति से अनन्त गुणों की भावना से चिन्तन करना (जैसे मूर्ति में अनन्त गुणविशिष्ट भगवान् का ध्यान करना) संपत् कहलाता है। एक देश वा अंग में सम्पूर्ण उपास्य वस्तु का आरोप करके जो उपासना होती है उसे आरोप कहते हैं जैसे ओंकार की उदगीथसामरूप से उपासना करना। बुद्धिपूर्वक किसी वस्तु में विवक्षित धर्म का आरोप करके उसकी उपासना करना अध्यास कहलाता है। आरोप और अध्यास का स्वरूप बहुधा एक सा ही होता है उसमें थोड़ा ही फर्क है। उदाहरणार्थ कन्या को देवीरूप मानना। कर्म या क्रियायोग से उपासना करने का नाम संवर्ग है। (शि. गी. 12/10-14)

उपासना अंतरंग एवं बहिरंग दो प्रकार से होती है। केवल अन्तःकरण से ही सब पूजन की कल्पना करना अंतरंग उपासना कहलाती है। संपदादि जो चार प्रकार की उपासना बतायी गयी है वह दृढ़ बुद्धि की उपासना है। (सगुण उपासना में)मूर्ति की उपासना करते समय उसके प्रत्येक अंगों में अक्षय दृष्टि लगाकर उपासना करनी चाहिये। (शि. गी. 12/15, 17)

उपासना के लिये जहाँ अपना चित्त स्वच्छ और एकाग्रता युक्त हो वहाँ सुख से कम्बल अथवा मृगचर्म पर स्थितहोकर गर्दन एवं शरीर को सीधा रक्खें तत्पश्चात् विधिपूर्वक भस्मधारण[1] कर सम्पूर्ण इन्द्रियों को रोककर तथा भक्तिपूर्वक गुरु को प्रणाम करके ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त प्राणायाम करे। पश्चात् शुद्ध स्फटिकमणि के समान शरीरवाले अर्द्धांग में पार्वती को धारण किये, व्याघ्रचर्म ओढ़े नीलकण्ठ, त्रिलोचन, जटा-जूट धारण किये, चद्रमा सिर पर धरे, नागों का यज्ञोपवीत पहने, पीठ की ओर के उँचे दोनों हाथो में मृग और परशु धारण किये, सब अंगो में विभूति लगाये तथा सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित भगवान् शिव का ध्यान करे।(शि. गी. 12/18-31)

भगवान् शिव कहते हैं कि वेद एवं शास्त्र के वचनों से मुझे कोई नहीं पा(जान) सकता परन्तु जो एकाग्रचित्त से सदैव मेरा ध्यान करता है, मैं उसे प्राप्त होता हूँ और उसका फिर त्याग नहीं करता। जो पाप से विमुख नहीं है, जिसकी तृष्णा शान्त नहीं है, श्रवण, मनन, निदिध्यासन से जिसका मन समाहित नहीं है, जिसका मन चंचल है ऐसा पुरुष शास्त्र के अध्ययन से मुझे नहीं जान सकता।(शि. गी. 12/32-33)

श्रीराम द्वारा भक्तिसंबंधी प्रश्न करने पर भगवान् शिव कहते हैं कि जो यज्ञ, दान, स्वाध्याय जप-तप आदि कर्मों को करते हुए इन्हें मुझे अर्पण कर देते हैं, वे मेरे प्रिय भक्त हैं। अग्निहोत्र की पवित्र भस्म लाकर अथवा उसे श्रोत्रिय ब्राह्मण के स्थान से लाकर **"अग्निरिति"** इत्यादि मंत्रों से

---

[1] भस्मधारण कि विधि उपनिषद्वाले अध्याय में दी गयी है। उसी विधि को यहाँ स्वीकार किया गया है।

यथाविधि अभिमंत्रित कर अपने शरीर में उसे लगाकर और भस्म द्वारा ही जो मेरा अर्चन करता है उससे अधिक मेरी भक्ति करनेवाला दूसरा नहीं है। जो प्राणी मस्तक और कण्ठ में रुद्राक्ष को धारण करता है और पंचाक्षरी (**'नमः शिवाय'**) का जप करता है वह मेरा भक्त है और मुझे प्यारा है। भस्म लगानेवाला, भस्म पर शयन करनेवाला, सदा जितेन्द्रिय तथा रुद्रसूक्त का जापक और अनन्य बुद्धि से मेरा चिन्तन करनेवाला सदेह शिवस्वरूप हो जाता है। जो रुद्रसूक्त व अथर्वशीर्ष के मन्त्रों का जप करता है, कैवल्योपनिषद् व श्वेताश्वतर उपनिषद् का जप करता है उससे अधिक मेरा दूसरा भक्त इस लोक में नहीं है। (शि. गी. 15/1-8)

भगवान् शिव आगे कहते हैं-सम्पूर्ण वेद-शास्त्र तथा उपनिषदादि जिसका प्रवचन करते हैं तथा जिसकी प्राप्ति के लिये मुनिगण ब्रह्मचर्यादि नियमों-साधनों का पालन करते हैं, उस ओंकाररूपी अक्षर का अवलम्बन मैं ही हूँ। यह चतुर्मात्रात्मक ओंकार (अकार, उकार, मकार एवं अर्धमात्रा) मेरा ही स्वरूप है। यह सम्पूर्ण पूर्वोत्पन्न, वर्तमान एवं जायमान चित्र-विचित्र संसार इस ओंकार में प्रतिष्ठित है। यह ओंकार शिव का रूप है। अतः इस सम्पूर्ण विश्व को सनातन ब्रह्मस्वरूप ओंकार शिव में प्रविलीन करते हुए नित्य उसका जप करना चाहिये। जो ऐसा करता है वह मुक्त ही है इसमें सन्देह नहीं।

जातं च जायमानं च तत्सर्वं रुद्र उच्यते।
तस्मिन्नेव पुनः प्राणाः सर्वमोङ्कार उच्यते।।
प्रविलीनं तदोङ्कारे परं सनातनम्।
तस्मादोङ्कारजापी यः स मुक्तो नात्र संशय।। (शि. गी. 15/23-24)

वे पुनः कहते हैं कि श्रौत, स्मार्त अथवा शैवाग्नि से उत्पन्न भस्म को ॐकार से अभिमन्त्रित करके ओंकार द्वारा जो मेरा पूजन करता है, उससे अधिक संसार में मेरा प्रियभक्त नहीं है। घर अथवा वन की अग्नि की भस्म को ओंकार से अभिमंत्रित करके जो अपने शरीर में लगाता है वह शूद्र होने पर भी मुक्त हो जाता है। दर्भांकुर (कुशपुष्प) बिल्वपत्र तथा वन-पर्वत में पैदा हुए फूलों से ओंकार द्वारा जो मेरी नित्य पूजा करता है वह मेरा प्रिय है। पुष्प, फल, मूल, पत्र अथवा जल को जो ओंकार जप-पूर्वक मेरे निमित्त दान करता है तो उसका फल वह करोड़ गुना हो जाता है। प्रदोष के समय जो मेरे स्थान में जाकर मेरी पूजा करता है वह पराश्री को प्राप्त कर अन्त में मुझमें लीन हो जाता है। अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या इन तिथियों में सर्वांग भस्म लगाकर रात्रि के समय जो मेरा पूजन करता है, वह मेरा भक्त मुझे अति प्रिय है। जो एकादशी के दिन व्रती रहकर प्रदोष के समय मेरा पूजन करता है और विशेष करके जो सोमवार के दिन मेरी पूजा करता है वह भक्त मुझे प्रिय है। जो पंचामृत, पंचगव्य, पुष्प, सुगन्धयुक्त जल अथवा कुश के जल से मुझे स्नान कराता है; दूध, घी, मधु, गन्ने के रस, पके आम के फल अथवा नारियल के जल से अथवा गंधयुक्त जल से रुद्रमंत्र[1] उच्चारण करता

---

[1] यहाँ रुद्रमंत्र का अर्थ रुद्राष्टाध्यायी के मंत्रों से है।

हुआ मेरा अभिषेक करता है उससे अधिक मुझे कोई प्यारा नहीं है। (शि. गी. 15/25-35)

पुनः जो जल में स्थित हो सूर्य की ओर मुख किये ऊपर को बाहें उठाये सूर्य के बिम्ब में मेरा ध्यान करता हुआ अथर्वांगिरस का जप करता है वह मेरे शरीर में प्रवेश कर जाता है। जो ईशावास्यादि मंत्रों को सावधान हो मेरे सम्मुख जप करता है। वह मेरी सायुज्यमुक्ति को प्राप्त हो मेरे लोक में अक्षय सुख भोगता है।(शि. गी. 15/36-39)

भगवान् राम पुनः भागवान् शिव से प्रश्न करते हैं कि-भगवन्! इस मोक्षमार्ग के अधिकारी कौन हैं? इसके उत्तर में शिवजी कहते हैं-चारों वर्ण, चारों आश्रम तथा स्त्रियाँ भी पाशुपत-व्रत की अधिकारिणी हैं। जिसे मेरी पूजा में विशेष भक्ति हो, वे सभी अधिकारी हैं।(शि. गी. 16/1-4)

अज्ञों का उपहास करनेवाले, भक्तिहीन, विभूति एवं रुद्राक्षधारी पाशुपतव्रतवालों से द्वेष करनेवाले-इनमें से किसी का भी इस मार्ग का अधिकार नहीं है। जो मुझसे, ब्रह्म का उपदेश करनेवाले गुरु से, पाशुपतव्रत धारण करनेवालों से या विष्णुजी से द्वेष करता है, उसका करोड़ जन्मों में भी उद्धार नहीं होता। चाहे कोई अनेक प्रकार के यज्ञादि कर्म में तत्पर हो पर वह शिवज्ञान से रहित हो तो उसमें शिवभक्ति न होने के कारण संसार से मुक्त नहीं हो सकता।(शि. गी. 16/5-7)

काशी, द्वारका, श्रीशैल पर्वत, व्याघ्रपुर(पुण्डरीक)-इन क्षेत्रों में शरीर छोड़ने से व्यक्ति को शिव की कृपा से तारकब्रह्म की प्राप्ति होती है।(शि. गी. 16/9)

तीर्थ के फल को प्राप्त करने का अधिकारी कौन है? इसकी चर्चा करते हुए शिवगीता में कहा गया है कि जिसके हाथ-पैर और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा मन वश में हैं, जो विद्या, तप एवं कीर्ति से युक्त हैं वे ही तीर्थ का फल प्राप्त करते हैं।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।। (शि. गी. 16/10)

भगवान् शिव पुनः कहते हैं कि नामसंकीर्तन एवं ध्यान में सबका अधिकार है। ध्यान की श्रेष्ठता बताते हुए कहते हैं कि तप, वेदाध्ययन आदि दूसरे कर्म ध्यान के सहस्रांश भी नहीं हैं। जाति, आश्रम, अंग, देश, काल एवं आसनादि साधन कोई भी ध्यानयोग के समान नहीं हैं। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति सभी पातकों से मुक्त हो जाता है।(शि. गी. 16/12-15)

आगे भगवान् शिव नाम की महिमा के बारे में बताते हैं। वे कहते हैं कि अतिआश्चर्य, भय तथा शोक प्राप्त होनेपर वा छींकने अथवा किसी रोग में किसी भी बहाने से मेरा नाम उच्चारण करनेवाला परमगति को प्राप्त हो जाता है। पापी भी यदि देहान्त में मेरा स्मरण करे व इस(**नमः शिवाय**) पंचाक्षरी विद्या का उच्चारण करे तो निःसन्देह उसकी मुक्ति हो जाती है।(शि. गी. 16/17-18)

आश्चर्ये वा भये शोके क्षुते वा मम नामयः।

व्याजेन वा स्मरेद्यस्तु स याति परमां गतिम्।।
महापापैरपि स्पृष्टो देहान्ते यस्तु मां स्मरेत्।
पञ्चाक्षरीं वोच्चरति स मुक्तो नात्र संशयः (शि. गी. 16/17-18)

विभूति और रुद्राक्ष सबको धारण करना चाहिये - चाहे वे योगी ही क्यों न हों। शिवभक्ति प्राप्त करनेवाले को ये दोनों धारण करना जरूरी है। जो अग्निहोत्र की भस्म और रुद्राक्ष धारण करता है वह महापापी होने पर भी मुक्त हो जाता है। अन्तकाल में जो रुद्राक्ष एवं विभूति धारण किये हुए हो तो उसे चाहे महापाप ही लगे हों तथा नरों में भी नीच हो तो उसे यमदूत स्पर्श नहीं करते। भगवान् शिव यह भी कहते हैं कि शिवोपासना के अन्य कर्म करे अथवा न करे जो केवल शिव का नाम जपता है वह सदा मुक्तस्वरूप है।

अन्यानि शैवकर्माणि करोतु न करोतु वा।
शिवनाम जपेद्यस्तु सर्वदा मुच्यते तु सः।। (शि. गी. 16/22)

"जो कोई बेलवृक्ष के जड़ की मिट्टी शरीर में लगाता है उसके निकट यमदूत नहीं जा सकते" - ऐसा कहकर बिल्व - वृक्ष की महत्ता को बताया गया है।

बिल्वमूलमृदा यस्तु शरीरमुपलिम्पति।
अन्तकालेऽन्तकजनैः स दूरीक्रियते नरः।। (शि. गी. 16/25)

भगवान् शिव से रामजी पुनः प्रश्न करते हैं कि - "किन मूर्तियों में पूजन करने से आप प्रसन्न होते हैं?" भगवान् शिव उत्तर देते हैं - मिट्टी, गोबर, भस्म, चंदन, रेत, काष्ठ, पत्थर, लोहा, केशरादि रंग, कांसा, जस्ता, पीतल, तांबा, रूपा, सोना, अनेक प्रकार के रत्न, पारा अथवा कपूर - इनमें से जो प्राप्त हो सके और जो इष्ट हो उससे शिवलिंग की मूर्ति बनाये। इस प्रकार प्रीति से मेरी उपासना करे तो कोटिगुना फल होता है। गृहस्थी पुरुषों को मिट्टी, काष्ठ, लोहा, कांसा अथवा पत्थर की प्रतिमा का पूजन करने से सदा आनन्द की प्राप्ति होती है। बिल्ववृक्ष के नीचे अथवा उसके फल में जो मेरी आराधना करता है वह महालक्ष्मी को प्राप्तकर अन्त में शिवलोक को प्राप्त होता है। बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर जो विधिपूर्वक मन्त्रों को जपे तो एक ही दिन में उसे पुरश्चरण का फल मिलता है। जो मनुष्य बेल के वन में कुटिया बनाकर नित्यप्रति निवास करे तो उसके जपमात्र से सब मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। पर्वत के ऊपर, नदी के किनारे, बिल्व के नीचे, शिवालय में, अग्निहोत्र की शाला में, विष्णु के मन्दिर में जो मन्त्र जपता है उसके जप में दानव, यक्ष, राक्षस विघ्न नहीं कर सकते। उसे कोई पाप स्पर्श नहीं कर सकता और वह शिव के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है।(शि. गी. 16/27-36)

बिल्ववृक्षं समाश्रित्य यो मन्त्रान्विधिनाजपेत्।।
एकेन दिवसेनैव तत्पुरश्चरणं भवेत्।
यस्तु बिल्ववने नित्यं कुटिं कृत्वा वसेन्नरः।।

सर्वे मन्त्राः प्रसिद्ध्यन्ति जपमात्रेण केवलम्।
पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले शिवालये।।
अग्निहोत्रे केशवस्य संनिधौ वा जपेत्तु यः।
नैवास्य विघ्नं कुर्वन्ति दानवा यक्षराक्षसाः।।
तं न स्पृशंति पापानि शिवसायुज्यमृच्छति। (शि. गी. 16/32-36)

ऊनी वस्त्र के आसनपर पूजा करने से मनुष्य की सब कामनायें पूरी हो जाती हैं। मृगचर्म के आसनपर पूजा करने से मुक्ति और व्याघ्रचर्म से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। कुशासन से ज्ञान, पत्र के आसन से अरोग्यता, पत्थर के आसन से दुःख एवं काष्ठ के आसन से अनेक प्रकार के रोग होते हैं। वस्त्र के आसन से लक्ष्मी प्राप्त होती है। पुनः पृथ्वी पर बैठकर जपने से मंत्र सिद्ध नहीं होता। उत्तर वा पूर्व को मुख करके जप और पूजा करनी चाहिये।(शि. गी. 16/39-41)

माला के बारे में बताया गया है कि स्फटिक की माला से साम्राज्यपद, कुश की ग्रन्थि की माला से आत्मज्ञान और रुद्राक्ष की माला से सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धी होती है। 108 मनकों की माला सबसे उत्तम होती है। माला को जप करते समय गुप्त रखनी चाहिये।(शि. गी. 16/50)

योनिमुद्रा(बाँया चरण गुदास्थान पर रखें अर्थात् वहाँ एड़ी लगावें और दाहिना चरण उपस्थ के ऊपर रखकर बैठें) के आसन से बैठकर सावधान होकर जप करने से प्रत्येक मंत्र अवश्य सिद्ध हो जाता है(शि. गी. 16/52-53, 55)। ब्राह्ममुहूर्त से लेकर मध्याह्न कालतक मंत्र का जप करना चाहिये, उसके उपरान्त जप करने से कर्त्ता का नाश होता है-यह सम्पूर्ण काम्यफलों के पुरश्चरण की विधी है। परन्तु नित्य-नैमित्तिक तपश्चर्या का नियम नहीं है, चाहे जबतक जितनी इच्छा हो जप करता रहे, उसमें कोई दोष नहीं होता।(शि. गी. 16/56-58)

भगवान् शिव कहते हैं कि जो मेरी मूर्ति का ध्यान करता हुआ निष्काम बुद्धि से रुद्रध्याय, षडक्षर(**ॐ नमः शिवाय**), ओंकार अथवा अथर्वशीर्ष वा कैवल्य उपनिषद् के मंत्रों का जो जितेन्द्रिय होकर जप करता है वह उसी देह से स्वयं शिव हो जाता है।(शि. गी. 16/59-60)

यस्तु रुद्रं जपेन्नित्यं ध्यायमानो ममाकृतिम्।
षडक्षरं वा प्रणवं निष्कामो विजितेन्द्रियः।।
तथाथर्वशिरोमन्त्रं कैवल्यं वा रघुत्तम।
स तेनैव च देहेन शिवः संजायते स्वयम्।। (शि. गी. 16/59-60)

भगवान् शिव कहते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, गुरुमूर्ति या आत्मरूप में जो मनुष्य मेरी उपासना करते हैं उन्हें लवमात्र की पूजा से ही सम्पूर्ण फल एवं सायुज्य की प्राप्ति होती है(शि. गी. 16/36-37)। अपनी आत्मा में जो पूजन करता है, उसकी बराबरी का दूसरा पूजन नहीं(परन्तु ऐसा करना सबसे कठिन है) हैं।

पुनः भगवान् शिव कहते हैं कि "मेरे भक्त पापरहित हो जाते हैं, उनका कभी नाश नहीं होता। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्तों का कभी नाश नहीं होता" (यदि वे बीच में ही सिद्धी प्राप्त होने से पूर्व मर जाते हैं तो वे योगी के घर में जन्म ले सत्संग को प्राप्त हो मुक्त हो जाते हैं) (शि. गी. 17/36)। "जो मूर्ख मेरे भक्तों की निन्दा करता है वह साक्षात् मेरी ही निन्दा करता है और अगर प्रेम से उनका पूजन करता है तो वह मानो मेरा ही पूजन करता है" (शि. गी. 17/37)। "जो प्रेम से, मेरे आराधन के निमित्त, पत्र, पुष्प, फल या जल नियमित होकर प्रदान करता है वह भक्त मेरा प्यारा है" (शि. गी. 17/39) ।

"कोई मुझे ज्ञान से देखते हैं, कोई ध्यान से, कोई भक्तियोग और कोई कर्मयोग से अर्थात् कर्मकाण्ड के माध्यम से। परन्तु इन सब भक्तों में वह मुझे सबसे अधिक प्यारा है जो नित्य ज्ञान द्वारा मेरी आराधना करता है।"

ध्यायेन मां प्रपश्यंति केचिज्ज्ञानेन चापरे।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे।।
सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम।
योहि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा।। (शि. गी. 17/51-52)

मोक्ष या परमात्मा की प्राप्ति के लिये काम, कोध, पिशुनता, पाखण्ड, माया, मोह, लोभ एवं शोक को शनैः शनैः छोड़ना चाहिये। इसी प्रकार सभी सिद्धियों को भी तृण के समान त्याग देना चाहिये चाहे वे स्वयं ही क्यों न प्राप्त हों। किये हुए कर्मो के फल की इच्छा न करना तथा उनका त्याग कर सदा संगरहित होना चाहिये। इस प्रकार शून्य वा अशून्य में होकर कुछ भी न विचारे। न कुछ चिन्तन करे, न कल्पना करे, न मनन करे, कारण कि वे (शिव) मन के भी परे हैं। मन के नष्ट होने से चिन्ता और इन्द्रियों का लय हो जाता है फलस्वरूप उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। (शि. गी. 18/26-34)

जिसमें मोह और अहंकार नहीं है, जो संपूर्ण संग से रहित है तथा जो सभी प्राणियों में अपने को और अपने में सभी प्राणियों को देखता है, वह जीवनमुक्त है। जिसके हृदय की सारी कामनाएँ नष्ट हो गयी हैं, वह जीवनमुक्त है और अमृतत्त्व को प्राप्त होता है।

निर्मोहो निरहंकारो निर्लेपः संगवर्जितः।
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
यः पश्यनसंचरत्येष जीवन्मुक्तोऽभिधीयते।।
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य वशं गताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम्।। (शि. गी. 13/29 तथा 31)

मोक्ष न स्वर्ग की तरह और न ही किसी दूसरे नगर या ग्राम की तरह कोई स्थान है अपितु हृदयस्थित अज्ञानग्रन्थि के नाश हो जाने का नाम ही मोक्ष है-

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ।। (शि. गी. 13/32)

ज्ञानीपुरुष चाहे तीर्थ में शरीर छोड़े या चाण्डाल के घरपर, वह ज्ञान के द्वारा ही मुक्त हो जाता है-

तीर्थे चाण्डालगेहे वा यदि वा नष्टचेतनः।
परित्यजन्देहमिमं ज्ञानादेव विमुच्यते।। (शि. गी. 13/34)

शिवगीता में आया है कि-

"भगवान् राम ने अगस्त्यजी के उपदेशानुसार शिवलिंग की स्थापना कर विरजादीक्षा ले सर्वांग में विभूति लगाकर रुद्राक्ष धारणकर शिवलिंग को गोदावरी के जल से अभिषेककर वन के फल-फूलों से पूजन किया। वे भस्म पर सोते तथा व्याघ्रचर्म के आसन पर बैठे रात-दिन अनन्य बुद्धि से शिवसहस्रनाम[1] का जप करते थे।" (शि. गी. 4/2-4)

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि शिवसहस्रनाम का जप भी भगवान् शिव के दर्शन का एक अच्छा साधन है। "यह शिवसहस्रनाम सब वेदों का सार है तथा शिवजी को प्रत्यक्ष करनेवाला है" ऐसा कहकर अगस्त्यजी ने राम से कहा कि तुम इसे दिन-रात जपो।

वेद साराभिधं नित्यं शिवप्रत्यक्षकारकम्।
उक्तं च तेन राम त्वं जप नित्यं दिवानिशम्।। (शि. गी. 3/32)

ईश्वरगीता में शिवतत्त्व

ईश्वरगीता कूर्म पुराण के उपरिभाग के प्रारंभ में ही पायी जाती है। इसमें लगभग 500 श्लोक हैं। इसमें शिवगीता के बहुत से श्लोक पाये जाते हैं। यह गीता भी भगवद्गीता या शिवगीता की तरह धार्मिक एवं दार्शनिक महत्त्व रखती है। इसपर अनेक विद्वानों द्वारा टीका लिखी गयी है जिनमें से विज्ञानभिक्षु, यज्ञेश्वरसूरी एवं भासुरानन्द प्रसिद्ध हैं।

सूतजी से ऋषियों ने सम्पूर्ण संसार के दुःखों को नष्ट करनेवाले ब्रह्मविषयक ज्ञान सुनाने का आग्रह किया था। वह ब्रह्मविषयकज्ञान पूर्वकाल में कूर्मरूप धारणकर विष्णुजी ने मुनियों को बतलाया था। उसी ज्ञान को व्यासजी सूतजी एवं मुनियों के समक्ष बताने से पहले कहते हैं कि यह ज्ञान प्राचीन काल में सनत्कुमार आदि प्रमुख योगीश्वरों द्वारा पूछनेपर स्वयं प्रभु महादेवजी ने बताया था।

---

[1] शिव सहास्रनाम कई प्रकार के हैं यहाँपर श्रीराम जिस सहस्रनाम का जप करते थे वह सहस्रनाम इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। यह सहस्रनाम तण्डि ऋषि द्वारा भूलोक पर प्रचारित किया गया था। यह सहस्रनाम महाभारत (17/31-153 अनुशा. प.) में पाया जाता है।

भगवान् शिव का स्वरूप

भगवान् शिव को ईश्वर, महादेव, भूतपति, मुनियों के स्वामी, तपस्या द्वारा पूजित होनेवाले देव, सहस्त्रमूर्ति, विश्वात्मा, जगत्रूपी यन्त्र के प्रर्वतक, संसार के जन्म, रक्षा एवं संहार के कर्त्ता, ईशान, शम्भु, अम्बिकापति, परमेश्वर, शशांकशेखर, त्रिलोचन आदि कहा गया है (ईश्वरगीता 1/31-35)। उन्हें वृषध्वज तथा त्रिशूलधारी भी कहा गया है (ई. गी. 1/42, 43)।

भगवान् शिव कहते हैं कि समस्त वेदों में सर्वात्मा एवं सर्वतोमुख के रूप में प्रतिपादित मायावी, अव्यक्त, परमेश्वरस्वरूप मैं ही यह आत्मा हूँ। मैं अर्न्तयामी, सनातन, सर्वकाम, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर और सभी ओर हाथ-पैरवाला हूँ। हाथ और पैर के बिना भी मैं गति करने एवं ग्रहण करनेवाला हूँ। मैं सभी प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ। मैं बिना नेत्रों के देखता एवं बिना कानों के सुनता भी हूँ। मैं इस सम्पूर्ण जगत् को जानता हूँ। तत्त्वदर्शी लोग मुझे अद्वितीय महान् पुरुष कहते हैं (ई. गी. 2/45-48)। वे पुनः कहते हैं कि मैं सर्वव्यापी ज्ञानस्वरूप शान्त परमेश्वर ब्रह्म हूँ। मेरी अपेक्षा उत्कृष्टतर कोई तत्त्व नहीं है। मेरा ज्ञान प्राप्त करने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस जगत् में मुझ व्योमस्वरूप अव्यक्त महेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई स्थावर जङ्गमात्मक नित्य तत्त्व नहीं हैं (ई. गी. 3/20-21)।

> सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः।
> नास्ति मत्तः परं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते।।
> नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्।
> ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम्।। (ईश्वरगी. 3/20-21)

भगवान् शिव सभी पदार्थों के भीतर स्थित हैं फिर भी लौकिक प्राणी उन सर्वसाक्षी को नहीं जान पाते। मुनि, देवता, ब्रह्मा, मनु, इन्द्र एवं अन्य अतितेजस्वी लोग भी उन्हें नहीं देख पाते। वेद निरन्तर उनकी अद्वितीय परमेश्वर के रूप में स्तुती करते हैं। वैदिक यज्ञों द्वारा लोग अग्निस्वरूप भगवान् शिव का ही पूजन करते हैं। भगवान् शिव ही सभी देवों का शरीर ग्रहण कर सम्पूर्ण हवियों का भोग करनेवाले एवं सभी फल को देनेवाले हैं। (ई. गी. 4/3-8)

> सोऽहं धाता विधाता च कालोऽग्निर्विश्वतोमुखः।।
> न मां पश्यन्ति मुनयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः।
> ब्रह्मा च मनवः शक्रो ये चान्ये प्रथितौजसः।।
> अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः।
> सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंस्थितः।। (ईश्वरगी. 4/4-5, 8)

भगवान् शिव ने सृष्टि के आदि में ब्रह्मा की रचना कर उन्हें वेदों का ज्ञान दिया। वे ही सभी योगियों के सनातन गुरु, धार्मिकों के रक्षक तथा विद्वेषियों को नष्ट करनेवाले हैं। वे ही संसार के

कारण, पालक एवं संहार करनेवाले मायावी हैं। माया उनकी शक्ति है जिससे वे लोक को मोहित करते हैं। वे सम्पूर्ण शक्तियों के प्रवर्त्तक, निवर्त्तक एवं आधार हैं। उनकी एक शक्ति ब्रह्मा का रूप धारणकर विविध जगत् की सृष्टि करती है। दूसरी शक्ति जगन्नाथ नारायण का रूप धारणकर जगत् की रक्षा करती है तथा रुद्ररूपिणी काल नाम तीसरी तामसी शक्ति सम्पूर्ण जगत् का संहार करती है।(ई. गी. 4/15-18, 20-23, 6/3 आदि)

भगवान् शिव का वाचक ॐकार है तथा यह ओंकार ही मुक्ति का बीज है (ई. गी. 5/29)। एक स्थल पर ऋषियों ने भगवान् शिव की स्तुति में कहा है- "आप ही विष्णु, चतुरानन, एवं भगवान् ईश रुद्र हैं। आप विश्वनाभि, प्रकृति, प्रतिष्ठा, सर्वेश्वर, एवं परमेश्वर हैं। आपको अद्वितीय, पुराणपुरुष, आदित्यवर्ण, तमोगुणातीत, चिन्मात्र, अव्यक्त, अचिन्त्यरूप, आकाश, ब्रह्म, शून्य, प्रकृति एवं निर्गुण कहते हैं।" (ई. गी. 5/36-37)

त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानधीशः।
त्वं विश्नाभिः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि।।
त्वमेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
चिन्मात्रमव्यक्तमचिन्त्यरूपं खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिं निर्गुणं च।।

(ईश्वरगी. 5/36-37)

ईश्वरगीता के छठे अध्याय में भगवान् शिव ऋषिगणों को अपना सर्वव्यापी स्वरूप बतलाकर अपनी भगवत्ता का निरूपण करते हैं। वे कहते हैं कि मैं ही सब कुछ हूँ और सभी देवी-देवता, जड़-चेतन उनकी आज्ञा के अनुसार ही अपना-अपना कार्य करते हैं। जिसके द्वारा मोहरूपी कल्मष को धोकर उस परमपद का दर्शन होता है वह विद्या भी महेश की आज्ञा के वश में रहनेवाली है। यह संसार उनकी शक्ति से ही शक्तिमान् है। उनके द्वारा ही सम्पूर्ण जगत् प्रेरित किया जाता है और उनमें ही उसका लय हो जाता है। वे ही भगवान्, ईश, स्वयंप्रकाश, सनातन, परमात्मा और परम ब्रह्म हैं। उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।(ई. गी. 6/49-51)

विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत् पदम्।
साऽपि विद्या महेशस्य नियोगवशवर्तिनी।।
बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत्।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं मय्येव प्रलयं व्रजेत्।।
अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते।। (ई. गी. 6/49-51)

संसार के सभी जीवों को पशु कहा जाता है। ज्ञानीलोग उन पशुओं के पतिस्वरूप भगवान् शिव को पशुपति कहते हैं। वे अपनी लीलावश इन पशुओं को मायारूपी पाश से बाँधते हैं। वेदवादी लोग

उन्हें ही पशुओं को मुक्त करनेवाला कहते हैं। उन अव्यय भूताधिपति परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी मायारूपी पाश में बँधे हुए लागों को मुक्त करनेवाला नहीं है। (ई. गी. 7/18-20)

आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्त्तिनः।
तेषां पतिरहं देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः।।
मायापाशेन बध्नामि पशुनेतान् स्वलीलया।
मामेव मोचकं प्राहुः पशुनां वेदवादिनः।।
मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम्।। (ई.. गी. 7/18-20)

आत्मा का बन्धन करने के कारण क्लेश नामक अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश इन अचल तत्त्वों को पाश कहा जाता है। माया को इन पाँचो पाशों का कारण कहा जाता है। वह अव्यक्त मूलप्रकृतिस्वरूप शक्ति भगवान् शिव में रहती है। वे ही मूलप्रकृति, प्रधान एवं पुरुष हैं। महत्तत्त्व आदि विकार हैं। वे देवाधिदेव सनातन हैं। वे ही बन्धन एवं बन्धन करनेवाले और वे ही पाश एवं पशु हैं। वे सभी कुछ जानते हैं, किन्तु उनको जाननेवाला कोई नहीं है। उन्हें आदि पुराणपुरुष कहा जाता है। (ई. गी. 7/29-32)

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं चाभिनिवेशकम्।
क्लेशाख्यानचलान् प्राहुः पाशानात्मनिबन्धनान्।।
एतेषामेव पाशानां माया कारणमुच्यते।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति।।
स एव मूल प्रकृतिः प्रधानं पुरुषोऽपि च।
विकारा महदादीनि देवदेवः सनातनः।।
स एव बन्धः स च बन्धकर्त्ता स एव पाशःपशवःस एव।
स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता, तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्।। (ई. गी. 7/29-32)

ऋषियों के पूछने पर कि "आप परमेश्वर निष्कल, निर्मल, नित्य, तथा निष्क्रिय होनेपर भी विश्वरूप कैसे हैं?" भगवान् शिव कहते हैं- "द्विजो! मैं विश्व नहीं हूँ और मुझसे अतिरिक्त विश्व भी नहीं है। यह सब माया के निमित्त से है और वह माया भी आत्मा को आश्रित कर रहती है। आदि और अन्त से रहित शक्तिरूप माया परमात्मा पर आश्रित है, माया के कारण परमात्मा से यह प्रपञ्चरूप संसार उत्पन्न हुआ है। मुझ अव्यक्त को कारण कहा जाता है। मैं ही आनंदस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, अक्षर परम ब्रह्म हूँ। मुझसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसी कारण ब्रह्मवादियों ने मेरा विश्वरूपत्व निश्चित किया है..................मैं कारणरहित, सनातन, परम ब्रह्म परमात्मा हूँ, अतः मुझमें कोई दोष नहीं है (ई. गी. 9/1-6)।" तात्पर्य यह है कि जगत् में विषमता, क्रूरता आदि दोषों का असाधारण कारण

मनुष्यकृत कर्म हैं, ईश्वर नहीं। ईश्वर तो सामान्यकारण है, अतः वह दोषरहित है।

एक स्थल पर भगवान् शिव ऋषियों से कहते हैं कि "जो इन अव्यक्त विष्णु अथवा मुझ देव महेश्वर को एक ही भाव से देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये आदि और अन्त से रहित आत्मरूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और फिर वैसे ही पूजा भी करो।" वे पुनः कहते हैं कि- जो लोग विष्णु को दूसरा देवता मानकर मुझे दूसरा देवता समझकर देखते हैं, वे घोर नरकों में जाते हैं, मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूँ(ई. गी. 11/114-116)। यहाँ भाव यह है कि भगवान् शिव ही विष्णु आदि रूपों में लीला कर रहे हैं। अतः जो व्यक्ति सर्वत्र(न कि केवल भगवान् विष्णु में) भगवान् शिव के ही दर्शन करता है और सर्वत्र उनकी विभूति के ही दर्शन करता है वही मोक्ष का अधिकारी है। वास्तव में तीनों देव(ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र) तात्त्विक दृष्टि से एक ही हैं-वे सब सदाशिव की ही विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। अतः यहाँ उपदेश यह है कि हम भेद-दृष्टि न रखकर सबमें भगवान् शिव को ही देखें और शिव समझकर उनकी उपासना करें।

येत्विमं विष्णुमव्यक्तं मां वा देवं महेश्वरम्।
एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः।।
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्।
मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव हि।।
येऽन्था मां प्रपश्यन्ति मत्वेमं देवतान्तरम्।
ते यान्ति नरकान् घोरान् नाहं तेषु व्यवस्थितः।। (ई. गी. 11/114-116)[1]

शिवोपासना

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं कि भगवान् शिव ही लीलावश जीवरूपी पशुओं को मायारूपी पाश से बाँधते हैं तथा उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी माया-रूपी पाश में बँधे हुए लोगों को मुक्त करनेवाला नहीं है(ई. गी. 7/18-20)। शिवजी कहते हैं कि जो दूसरे देवों के भक्त हैं, वे यदि मेरी भावना से युक्त होकर(दूसरे) देवताओं की पूजा करते हैं अर्थात् दूसरे देवों में मेरी ही भावना करते हैं तो वे भी(मुझमें) भावना करने के कारण मुक्त हो जाते हैं। अतएव समस्त अनीश्वर देवताओं[2] का परित्यागकर जो मुझ ईश का ही आश्रय ग्रहण करता है, वह परमपद को प्राप्त करता है(ई. गी. 11/90-91)।

---

[1] ये तीनों श्लोक थोड़े अन्तर के साथ पद्मपुराण(स्वर्गखण्ड 50/19-22) में भी पाये जाते हैं।

[2] एक ही देवता पूजक की दृष्टि में तबतक अनिश्वर है, जबतक पूजक उसे किसी तुच्छ फल का अधिष्ठतामात्र समझता है। अगर उसी देवता को परमेश्वर के भाव से निष्काम होकर पूर्ण समर्पण-भाव के साथ पूजा जाय तो वह देवता अनिश्वर नहीं रह जाता। उपरोक्त उद्धरण (11/90) से स्पष्ट है कि देवता विशेष में ईश्वर की भावना रखनेवाला भी मुक्त हो जाता है।

अत: मोक्षप्राप्ति के लिये भगवान् शिव की उपासना करनी चाहिये। ईश्वरगीता में ज्ञान, ध्यान, कर्म, योग, भक्ति आदि साधन मोक्षप्राप्ति के लिये सुझाये गये हैं।

(ज्ञानमार्गी) मोक्षार्थियों को अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वव्यापी एवं अव्यय (शिवरूप आत्मा) की उपासना तथा उसका श्रवण एवं मनन करना चाहिये। जिस समय मुमुक्षु अपने आत्मा में ही सभी भूतों को एवं सभीभूतों में अपने आत्मा को देखने लगता है उस समय उसे ब्रह्म (शिव) की प्राप्ति होती है। जब वह पारमार्थिकरूप में केवल अद्वितीय आत्मा (शिव) का साक्षात्कार करता है एवं सम्पूर्ण जगत् को मायामात्र समझने लगता है, उस समय वह शान्त (मुक्त) हो जाता है। (ई. गी. 2/29-31)

भगवान् शिव कहते हैं कि मनुष्य श्रेष्ठ भक्ति के बिना अनेक प्रकार के तप, दान एवं यज्ञों द्वारा मुझे नहीं जान सकता। (ई. गी. 4/2)

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्।। (ई. गी. 4/2)

उपरोक्त उद्धरण का यह अभिप्राय नहीं है कि यज्ञ, दान, तप का कोई मूल्य नहीं है। यहाँ तो सिर्फ यही कहना है कि इनसे न तो ईश्वर की प्राप्ति और न ही मोक्ष मिल सकता है। इन क्रियाओं से लौकिक एवं स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति तथा अनेक प्रकार के दु:खों से निवृत्ति हो सकती है। पुन: ये क्रियायें चित्त को शुद्ध करने में सहायक हो सकती हैं बशर्ते निष्काम भाव से की जायँ।

भगवान् शिव कहते हैं कि कुछ लोग ध्यान द्वारा, अन्य लोग ज्ञान द्वारा, दूसरे लोग भक्ति योग से एवं अन्य कुछ लोग कर्मयोग के द्वारा मेरा साक्षात्कार करते हैं। जो ज्ञान द्वारा शिवजी की नित्य आराधना करता है वह अन्य सभी प्रकार के भक्तों में भगवान् शिव का सर्वाधिक प्रिय होता है। परन्तु ज्ञान की साधना सर्वसुलभ नहीं है।

ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे।।
सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम।
यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा।। (ई. गी. 4/24-25)

भगवान् शिव की आराधना करनेवाले अन्य जो तीन प्रकार (कर्ममार्गी, ध्यानी, भक्तियोगी) के भक्त हैं वे भी उन्हें प्राप्त करते हैं एवं उनका पुनर्जन्म नहीं होता। भगवान् शिव, शिवगीता की भाँति यहाँ भी कहते हैं कि - मेरे भक्तों का विनाश नहीं होता। मेरे भक्त निष्पाप हो जाते हैं। प्रारम्भ में ही मैंने प्रतिज्ञा की है कि मेरे भक्त नष्ट नहीं होते। जो मेरे भक्त की निन्दा करता है वह मूढ़ देवाधिदेव का निन्दक होता है। जो भक्तिपूर्वक भक्त की पूजा करता है वह सदा मेरी पूजा करता है। मेरी आराधना के लिये जो नियमपूर्वक पत्र, पुष्प, फल एवं जल प्रदान करता है वह मेरा प्रिय भक्त है। (ई. गी. 4/12-14)

न मद्भक्ता विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः।
आदावेतत् प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति।।
यो वै निन्दति तं मूढो देवदेवं स निन्दति।
यो हिं तं पूजयेद् भक्त्या स पूजयति मां सदा।।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात्।
यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः।। (ई. गी. 4/11-14)

(प्रकृति एवं महदादि)चौबीस तत्त्व, माया, कर्म और गुण-ये पशुपति के पाश एवं जीवरूपी पशुओं को बाँधनेवाले क्लेश हैं। बन्ध नामवाले दो पाशों को धर्म एवं अधर्म कहा गया है। भगवान् शिव को अर्पित किये गये कर्म बन्धन नहीं करते(ई. गी. 7/28)। अर्थात् भगवद्अर्पण बुद्धि से समस्त कर्मों को करनेवाला पाशों में नहीं बँधता(धर्मयुक्त कार्य भी अगर सकाम है तो वह बन्धन का कारण होता है) और वह मुक्त हो जाता है।

ईश्वरगीता के 11वें अध्याय में योगसाधना के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी है। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है एवं ज्ञान से योग की प्रवृत्ति होती है। योग एवं ज्ञान से सम्पन व्यक्ति पर महेश्वर प्रसन्न होते हैं। जो नित्य एक, समय दो समय या तीन समय शैवयोग का साधन करते हैं उन्हें महेश्वर जानना चाहिये।(ई. गी. 11/3-4)

योग दो प्रकार का होता है-अभावयोग एवं महायोग। जिसमें सभी आभासों से रहित शून्यमय स्वरूप का चिन्तन होता है एवं जिसके द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है उसे अभाव योग कहते हैं। जिसमें नित्यानन्दस्वरूप निरञ्जन आत्मा एवं शिव में अभेद प्रतीति होती है उसे परमेश्वरस्वरूप महायोग कहा गया है। अन्य सभी प्रकार के योगों में श्रेष्ठ वह योग है जिसमें विमुक्त पुरुष विश्व को साक्षात् ईश्वर के रूप में देखते हैं(ई. गी. 11/5-9)। इस गीता में योग के प्रकार बतलाने के बाद अष्टांगयोग(जिसकी चर्चा पतंजलि के योगसूत्रों में की गयी है) का सविस्तार वर्णन किया गया है।

भलीभाँति सुरक्षित, सुन्दर पवित्र स्थान, पर्वत की गुफा, नदी के तट, पवित्रदेश, देवमदिर, सुंदर पवित्र गृह एवं जन्तुओं से रहित स्थानों में भगवान् शिव के भक्तों को, श्रेष्ठ योगियों, उनके शिष्यों, गणेश, गुरु एवं भगवान् शिव को नमस्कार करने के बाद सावधानीपूर्वक योगानुष्ठान करना चाहिये(ई. गी. 11/50-52)। योगदर्शन के अष्टांगयोग को ही थोड़े-बहुत संशोधन के साथ स्वीकार कर उसे पाशुपतयोग नाम दिया गया है।

भगवान् शिव कहते हैं कि-मुझमें मन लगानेवाला, मुझे नमस्कार करनेवाला एवं मेरी आराधना करनेवाला मत्परायण व्यक्ति मुझे प्राप्त कर लेता है। इस संसार में जो मनुष्य मुझमें चित्त लगाकर मेरा पूजन करते हैं उनके योग-क्षेम का मैं निर्वाह करता हूँ। पुत्र, स्त्री, गृह आदि में आसक्ति का परित्यागकर और शोकरहित तथा अपरिग्रही होकर विरक्त पुरुष को मृत्युपर्यन्त(शिव) लिङ्ग में

परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये। जो सम्पूर्ण भोगों को त्यागकर सदा लिङ्ग का पूजन करते रहते हैं, उन्हें मैं एक जन्म में ही परम ऐश्वर्य प्रदान करता हूँ।

येऽर्चयन्ति सदा लिङ्गं त्यक्त्वा भोगनशेषतः।
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमैश्वरम्।। (ई. गी. 11/93)

नियमपूर्वक भक्ति करनेवाले दूसरे लोग विधिपूर्वक कहीं भी (शिवलिङ्ग की) भावना करते हुए उस महेश्वर के लिङ्ग की अर्चना करते हैं। जल में, अग्नि के मध्य में, आकाश में, सूर्य में, रत्नादि में अथवा अन्यत्र कहीं भी ईश्वरीय लिङ्ग की भावना करके ईश की उपासना करनी चाहिये। यह सम्पूर्ण जगत् लिङ्गमय है एवं यह (सम्पूर्ण संसार) लिङ्ग में ही प्रतिष्ठित है। अतएव जहाँ कहीं भी लिंगस्वरूप में शाश्वत ईश की आराधना करनी चाहिये। क्रियाशीलोंका[1] (लिङ्ग) अग्नि में; मनीषियों[2] का जल, आकाश और सूर्य में; अज्ञानियों[3] का काष्ठ आदि में और योगियों[4] का लिङ्ग हृदय में स्थित रहता है (ई. गी. 11/95-98)।

अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम्।
काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गं तु योगिनाम्।। (ई. गी. 11/98)

ओंकार को भगवन् शिव का वाचक तथा मुक्ति का बीज माना गया है (ई. गी. 5/29) इसलिए उन्हें ओंकारमूर्ति भी कहते हैं (ई. गी. 8/9)। जिस व्यक्ति को ज्ञान नहीं हुआ है उस पुरुष को वैराग्य एवं प्रीतिपूर्वक जीवनपर्यन्त एकाग्र मन से ब्रह्म के शरीरस्वरूप प्रणव (ॐकार) का जप करना चाहिये अथवा संयत चित्तवाले एकाकी द्विज को मरणपर्यन्त शतरुद्र का जप करना चाहिये। ऐसा करने से वह परमपद प्राप्त करता है (ई. गी. 11/99-100)। जो पुरुष एकाग्र मन से मरणपर्यन्त वाराणसी में निवास करता है उसे भी ईश्वर के अनुग्रह से परमपद प्राप्त होता है। वाराणसी में प्राण निकलते समय महेश्वर सभी प्राणियों को श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करते हैं जिससे वे बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। नीच एवं पाप योनिवाले प्राणी भी वाराणसी में निवास करने के कारण ईश्वर के अनुग्रह से संसार से तर जाते हैं, किन्तु पापाक्रान्त चित्तवाले मनुष्यों को वहाँ निवास करने में विघ्न होते हैं। अतएव

---

[1] 'क्रियाशील' शब्द से उन द्विजों को समझना चाहिये जो श्रौत-स्मार्त क्रियाओं में दत्तचित्त हैं। इनका प्रमुख आराध्य अग्नि होता है।

[2] 'मनीषी' शब्द से उन्हें समझना चाहिये जो यथाविधि श्रौत-स्मार्त क्रियाओं के अनुष्ठान से शुद्धान्तःकरण होकर ब्रह्मनिष्ठा की ओर अग्रसर है।

[3] 'अज्ञानी' शब्द से उन्हें समझना चाहिये जो वेद-शास्त्र के प्रति निष्ठावान् हैं, पर इहलौकिक विविध ऐश्वर्यों के प्रति आसक्त हैं, उन्हें प्राप्त करने के लिये उत्कण्ठित हैं।

[4] 'योगी' शब्द से ब्रह्मनिष्ठ को समझना चाहिये। ब्रह्मनिष्ठ होने से पूर्व संयत एवं एकाग्रचित्त अनासक्त साधक की एक भूमिका होती है। इस भूमिका के लोग भी यहाँ 'योगी' समझे जा सकते हैं।

मुक्ति के लिये निरन्तर धर्माचरण करना चाहिये (ई. गी. 11/101-102, 104-105)।

भगवान् शिव कहते हैं कि जो नारायण हैं, वही मैं ईश्वर हूँ। नारायण नामवाली तथा शान्त अक्षर-संज्ञक मेरी यह परम मूर्ति सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है। लोक में जो भेद दृष्टिवाले लोग इसके विपरीत समझते हैं, वे मेरा दर्शन नहीं कर पाते और बार-बार संसार में जन्म लेते हैं। जो इन अव्यक्त विष्णु अथवा मुझ देव महेश्वर को एक ही भाव से देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये आदि और अन्त से रहित आत्मरूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और फिर वैसे ही पूजा भी करो। जो लोग विष्णु और मुझको अलग-अलग देवता के रूप में देखते हैं वे घोर नरक में जाते हैं, मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूँ। मूर्ख हो, पण्डित हो, ब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल हो, मेरे आश्रित रहनेवाले प्रत्येक को मैं मुक्त कर देता हूँ, किन्तु जो नारायण की निन्दा करनेवाले हैं उन्हें मैं मुक्त नहीं करता। इसलिये मेरे भक्त मुझमें प्रीति उत्पन्न करने के लिये भगवान् विष्णु की पूजा एवं वन्दना किया करें (ई. गी. 11/111-118)।

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम्।
मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम्।।
तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः।
अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय हि।। (ई. गी. 11/117-118)

महेश्वरगीता में शिवतत्त्व

इस गीता में मुख्यतः वर्ण एवं आश्रम से संबंधित सामान्य एवं विशेष धर्मों की सविस्तार व्याख्या की गयी है। परन्तु शिव के स्वरूप एवं उपासनाविधि पर भी अत्यन्त संक्षिप्त चर्चा है। इस गीता में लगभग 400 श्लोक हैं। इस गीता का आरम्भ पार्वती एवं शिव के प्रश्नोत्तर से होता है।

इसमें भगवान् शिव के साकार विग्रह के सन्दर्भ में एक विलक्षण बात बतलायी गयी है कि प्रारंभ में शिव के पास एक मुख था पर बाद में अपनी योगशक्ति से 4 मुँह बना लिये (पाँच नहीं)। (महेश्वरगीता 4 एवं 48)। अतः वे पंचानन न होकर चतुरानन[1] ही माने गये हैं। कहीं-कहीं आजकल भी देवमंदिरों में उनके पाँच मुख की जगह चार मुख ही दिखाये गये होते हैं।

भगवान् शिव पार्वती को बतलाते हैं कि मैं पूर्व दिशावाले अपने मुख से इन्द्रपद का शासन करता हूँ, उत्तर दिशावाले मुख से तुम्हारे साथ संवाद का सुख प्राप्त करता हूँ। पश्चिम दिशा में स्थित मेरा मुख सौम्य है, वह सारे प्राणियों के लिये सुखदायक है। दक्षिण दिशा में स्थित मुख भयानक तथा रौद्र है, उसके द्वारा संपूर्ण प्रजा का संहार किया जाता है। वे पुनः कहते हैं कि लोककल्याण की भावना

---

[1] यहाँ हमें यह नहीं शंका करनी चाहिये कि वे सामान्य विश्वासों के विपरीत पंचानन की जगह चतुरानन क्यों हुए। वास्तव में भगवान् शिव या अन्य देवों के अलग-अलग कल्पों में जो अवतार होते हैं उनमें थोड़ा बहुत अन्तर आ जाता है। जिन कल्पों में वे चतुरानन थे उन्हीं कल्पों की कथा के अनुसार यह गीता कही गयी होगी।

से मैंने जटाधारी ब्रह्मचारी का वेश धारण किया हुआ है। देवताओं के हित साधनार्थ मेरे हाथ में सदा धनुष रहता है।(महेश्वरगीता 5 - 7)

वे पुनः कहते हैं कि जब महासागर मथा जाने लगा तब उसमें से सभी लोकों को नष्ट करने में समर्थ विष प्रकट हुआ तब तीनों लोकों का हितसाधन करने के लिये मैंने उस विष का पान किया। तभी से मुझे सब नीलकण्ठ कहने लगे। भगवान् शिव के बारे में कहा गया है कि वे जिस धनुष को धारण करते हैं उसका नाम पिनाक है, इसे पूर्वकाल में ब्रह्माजी नें उन्हें दिया था। उसी समय ब्रह्माजी ने एक दूसरा धनुष भगवान् विष्णु को दिया था जिसका नाम शाङ्र्ग रखा गया। इसी प्रकार उन्हें वृषध्वज एवं वृषवाहन बनाने में ब्रह्माजी का ही हाथ है।

आगे पार्वती के पूछने पर कि वे स्वर्ग को छोड़कर श्मशान भूमि में क्यों रहते हैं? भगवान् शिव उत्तर देते हैं कि मैं पवित्र स्थान की खोज करने के लिये सदा सम्पूर्ण पृथ्वी पर रात - दिन घूमता रहता हूँ। परन्तु श्मशानभूमि से श्रेष्ठ कोई अन्य स्थान मुझे दिखाई नहीं दिया। इसलिये श्मशानभूमि में ही मेरा मन लग पाता है। श्मशानभूमि से पवित्र कोई अन्य स्थान नहीं है क्योंकि वहाँ अधिक मनुष्य आते - जाते नहीं। यह वीरस्थान है, इसलिये मैं वहाँ रहता हूँ। भूतों से उत्पन्न भय को मेरे अतिरिक्त और कोई भी दूर नहीं कर सकता। इसलिये मैं श्मशान में निवास करता हुआ नित्यप्रति प्रजाओं का पालन करता हूँ। मेरी आज्ञा के अनुसार ही अब यह भूत समुदाय किसी की हत्या नहीं करते। मैं उन भूतों को सम्पूर्ण विश्व के हितार्थ श्मशानभूमि में रखता हूँ।(महेश्वरगीता 35 - 37)

पार्वती के पुनः प्रश्न करने पर कि वे अपना रूप पिङ्गल, विकृत और विकराल क्यों रखते हैं? अपने सारे शरीर में भस्म क्यों रमाते हैं? आपके नेत्र विरूप दिखाई देते हैं। तीक्ष्ण दाढ़े, शीश पर जटाएँ, बाघाम्बर धारण किए हुए आप अपने मुख पर कपिल वर्ण की मूँछे रखते हैं। आपका रौद्र, भयानक और घोर रूप है, आप शूल व पट्टिश धारण किये हुए हैं। इन सबका क्या कारण है?

उत्तर में महेश्वर कहते हैं कि जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ शीत और उष्ण के भेद से दो भागों में विभक्त हैं। अग्नि - सोमरूप यह सम्पूर्ण विश्व उन शीत एवं उष्ण तत्त्वों में गुंथा है। सौम्य गुण सदा भगवान विष्णु में स्थित रहता है और आग्नेय गुण मुझमें। इस प्रकार विष्णु और शिवरूप से मैं सब लोकों कि सदा रक्षा करता हूँ। मेरा विरूप नेत्र, शूल, पट्टिशयुक्त तथा रौद्र आकृतिवाला रूप ही आग्नेय है। यह सम्पूर्ण विश्व के हित में सदा लगा रहता है। यदि मैं इस रूप को त्याग दूँ और इसके विपरीतरूप धारण कर लूँ तो सभी लोकों की दशा भी विपरीत हो जायगी। मैंने लोककल्याण की इच्छा से ही अपना यह रूप बनाया है।(महेश्वरगीता 37 - 44)

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि भगवान् शिव का सगुण - साकाररूप चतुर्मुख है। उनकी अशुभ एवं विकराल वेशभूषा, विचित्र वाहन वृषभ, अपवित्र निवासस्थल श्मशान, भूत - पिशाचों की सेना साथ रखना, गरलपान करना तथा पिनाक आदि धारण करना लोकहितार्थ तथा प्राणियों के पालनार्थ है।

पुनः भगवान् शिव ही विष्णु तथा रुद्ररूप से सृष्टि की व्यस्था का संचालन करते हैं अर्थात् वे ही विष्णु एवं शिव है। भगवान् शिव की स्तुति करते समय ऋषियों द्वारा महेश्वर गीता में कहलवाया गया है कि वे सर्वेश्वर, जगद्गुरु, देवादिदेव, चतुर्मुख तथा भूतपति आदि हैं (महेश्वरगीता 46 - 49)

नमः शङ्कर सर्वेश नमः सर्वजगद्गुरो।
नमो देवादिदेवाय नमः शशिकलाधर।।

……………………………………………………

नमः सोमाय देवाय नमस्तुम्यं चतुर्मुख।
नमो भूतपते शम्भो जह्नुकन्याम्बुशेखर।।

(महेश्वरगीता 46 - 49)

……………………………………………………

पार्वतीजी ने लोककल्याणार्थ धर्म का स्वरूप कथन करने की प्रार्थना की तो भगवान् शिव ने धर्म का पहला लक्षण "अहिंसा" ही बतलाया। "किसी प्राणी की हिंसा न करना, सत्यवचन, जीवों पर दया, मन एवं इन्द्रियों का संयम, यथाशक्ति दान- यही गृहस्थाश्रम का श्रेष्ठ धर्म है। परनारी के संसर्ग से बचना, किसी की वस्तु बिना पूछे न लेना, माँस - मदिरा का सेवन न करना - ये नियम कल्याणकारी हैं (महे. गी. 57 - 59)। आगे चलकर समस्त प्राणियों की रक्षा और यज्ञादि के नाम पर किसी प्रकार की हिंसा न करने पर जोर दिया गया है। हिंसा के दोष से मुक्त हुआ जो पुरूष सब प्राणियों को अभय प्रदान करता है, वही धर्म के फल को पाता है। सभी प्राणियों पर दया करनेवाला, सबके प्रति सरल भाव से वर्तनेवाला और सब प्राणियों को अपने समान देखनेवाला धर्म का सम्पूर्ण फल पाता है। (महेश्वरगीता 239 - 240)

· अधिकांश विद्वान् वैष्णव, जैन एवं बौद्ध धर्म को ही अहिंसा और जीवदया का विशेष रूप से अनुयायी मानते हैं, और शैव तथा तांत्रिकों में जो शिव के उपासक हैं उनको नहीं मानते क्योंकि उनमें मांस - मद्य आदि का बन्धन कम देखने में आता है। पर महेश्वरगीता में सर्वत्र अहिंसा का ही प्रतिपादन किया गया है।

महेश्वरगीता में अधिकांश धर्मशास्त्रों में वर्णित चारों वर्णों और आश्रमों के धर्मों का ही वर्णन किया गया है पर इस संबंध में महेश्वरगीता के विचार ज्यादा उदार हैं। उदाहरण के लिये महेश्वरगीता में कहा गया है कि- "मेरे (शिवजी के) मत में तो यदि शूद्र के स्वभाव और कर्म, दोनों ही श्रेष्ठ हैं तो उसे द्विजातियों से अधिक समझना चाहिये। ब्रह्मणत्व केवल योनि, संस्कार, शास्त्रज्ञान और संतति से ही प्राप्त नहीं होता, उसका प्रधान कारण तो सदाचार है। ……………जो शूद्र सदाचारी है, वह भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर सकता है।[1] (महेश्वरगीता 320 - 322)

स्वभावः कर्म च शुभं यत्र शूद्रेऽपि तिष्ठति।

---

[1] महेश्वरगीता के ये दोनों श्लोक थोड़े शब्दों के परिवर्तन के साथ ब्रह्मपुराण (223/55 - 57) में भी पाये जाते हैं।

विशिष्टः स द्विजातेर्वै विज्ञेय इति मे मतिः।।
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च संतति।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्।।

पुनः "यदि कोई शूद्र शुभ कर्मो और अच्छे आचरणों को करे तो वह भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो सकता है।" (महेश्वरगीता 297)

वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति।।

ब्राह्मण की परिभाषा भगवान् शिव ने यह दी है- "जिसके अन्तर में निर्गुण और निर्मल ब्रह्म का ज्ञान स्थित है, वही यर्थाथरूप में ब्राह्मण है।" (महेश्वरगीता 323)[1]

ऐसे ब्राह्मण की भगवान् शिव प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि- "ब्राह्मण को भूमि का देवता माना गया है............यदि वे न हों तो लोक-परलोक दोनों ही स्थित नहीं रह सकते। जो मनुष्य ब्राह्मणों की निन्दा करता है, उनका धन छीन लेता है, उनपर प्रहार करता या उन्हें क्रोध दिलाता है अथवा काम, लोभ, मोह के वश में उनसे नीच कर्म करवाता है वह मेरा ही अपमान करता, मुझे क्रोध दिलाता, मुझपर ही प्रहार करता, मेरा धन ले लेता और मुझसे ही नीच कर्म कराता है।" (महेश्वरगीता 67-70)

उपसंहार

तीनों गीताओं में भगवान् शिव को जगत् का कारण, पर ब्रह्म, निर्गुण एवं सगुण रूपधारी, लोककल्याणकारी, सृष्टि, संहार एवं पालन कर्त्ता तथा मुक्तिदाता बताया गया है। उनकी उपासना के सन्दर्भ में बताया गया है कि उन्हें ज्ञान, भक्ति, कर्म, ध्यान-योग आदि किन्हीं भी साधनों से पाया जा सकता है। भक्ति की बहुत प्रशंसा की गयी है। भक्ति में भाव की प्रधानता होती है। शिव गीता में कहा गया है कि अनादर से, मूर्खता से, परिहास से, कपट से भी जो मनुष्य शिवभक्ति करते हैं वे चांडाल होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। पुनः शिवभक्ति में देश-काल तथा स्थान का भी कुछ नियम नहीं है, जहाँ जब जिसका चित्त रमे वहीं और उसी समय ध्यान करे। शिव भक्ति के सभी वर्ण तथा आश्रम के लोग अधिकारी हैं।

शिवगीता में आगे कहा गया है कि ओंकार शिव का रूप है अतः विश्व को सनातन ब्रह्मस्वरूप ओंकार शिव में प्रविलीन करते हुए नित्य उसका जप करना चाहिये। इस प्रकार से जप करने पर व्यक्ति मुक्त हो जाता है। इस गीता में रुद्राक्ष एवं भस्म का माहात्म्य बतलाकर कहा गया है कि इसे सभी को धारण करना चाहिये। पंचाक्षर या षडाक्षर मन्त्र की भी काफी महिमा बताकर कहा गया है कि इसके जप से मुक्ति हो जाती है। लिंगपूजा, बिल्वपत्र तथा वृक्ष एवं काशीवास की महिमा बताकर उन्हें मोक्षदायक कहा गया है।

---

[1] निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः।।

भगवान् शिव कहते हैं कि उन्हें श्रेष्ठ भक्ति के बिना अनेक प्रकार के तप, दान, एवं यज्ञों द्वारा नहीं जाना जा सकता। शिवप्रोक्त गीताओं में यह भी कहा गया है कि जो लोग दूसरे देवताओं की भक्ति भगवान् शिव में आस्था रखते हुए करते हैं वे भी मुक्त हो जाते हैं। इनमें यह भी कहा गया है कि भगवान् विष्णु एवं भगवान् शिव दोनों ही तत्त्वत: एक हैं। फलस्वरूप जो इनमें अन्तर करते हैं वे भगवान् शिव का दर्शन नहीं कर पाते। नारायण एवं रुद्र दोनों निर्गुण भगवान् सदाशिव के दो रूप हैं। इसी कारण से भगवान् शिव कहते हैं कि मेरे भक्तों को भगवान् नारायण की निन्दा नहीं करनी चाहिये, उनकी भी वंदना करनी चाहिये।

महेश्वरगीता में सगुण साकार शिव को चर्तुर्मुख बताया गया है। उनकी अशुभ एवं विकराल वेशभूषा, विचिंत्र वाहन वृषभ, अपवित्र निवासस्थल श्मशान, भूत-पिशाचों की सेना साथ रखना, गरलपान आदि लोकहितार्थ तथा प्राणियों के पालनार्थ ही हैं। उन्हें जगद्गुरु, मोक्षदायक एवं देवाधिदेव कहा गया है। महेश्वरगीता में अहिंसा पर अधिक बल दिया गया है। वर्णव्यवस्था को गुण एवं कर्मों पर आधारित माना गया है जिसमें शूद्र अपने कर्मों द्वारा ब्राह्मणत्व तथा ब्राह्मण शूद्रत्व प्राप्त कर सकता है।

भक्तों की प्रशंसा करते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि जो उनको कष्ट पहुँचाता है वह मुझे कष्ट पहुँचाता है तथा जो उनकी पूजा करता है वह मेरी पूजा करता है। मैं अपने भक्तों के योग-क्षेम को स्वयं ही वहन करता हूँ।

(प्रस्तुत लेख मुख्यत: निम्न पुस्तकों पर आधारित है : 1-1989 में वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित तथा पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र द्वारा भाषा-टीका कृत 'शिवगीता'। 2-गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण का कूर्मपुराणांक तथा 3-महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय 141 से 143)

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

निद्रा की विनाशक शक्ति

निद्रा मूलमधर्मस्य निद्रा पापविवर्द्धिनी।
निद्रा दारिद्र्यजननी निद्रा श्रेयोविनाशिनी।।

(नारद महापु. उ. ख. 15/30-31)

अर्थात्-अधर्म की जड़ निद्रा है। निद्रा पापों को बढ़ानेवाली, दरिद्रता की जननी तथा श्रेय का विनाश करनेवाली है।

भगवान् शिव के माहात्म्य संबंधी प्रकीर्ण सन्दर्भ

हिन्दु धार्मिक साहित्य शिव के माहात्म्य से भरे पड़े हैं। उन सभी में निहित सभी सन्दर्भों को एकत्र कर पाना तथा उसे एक ही पुस्तक में लिखना न तो संभव है और न ही वे आम पाठकों के लिये आवश्यक हैं। वेद, उपनिषद्, महापुराणों तथा कुछ महत्वपूर्ण उपपुराणों, महाभारत, प्रमुख रामायणों तथा शिवोक्त प्रमुख गीताओं में शिवतत्त्व संबंधी पाये जानेवाले विचारों की चर्चा के बाद इस अध्याय में हम शिव-महात्म्य संबंधी कुछ प्रकीर्ण संदर्भों की चर्चा करेंगे ताकि पाठक को शिव-महात्म्य संबंधी साहित्य के विस्तार का कुछ ज्यादा ज्ञान हो सके।

समस्त तंत्र ग्रन्थों में शिव की महिमा भरी पड़ी है। हम यहाँ एकाध उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। 'कुलार्णव तन्त्र' में शिव को परब्रह्म, निष्कल, सर्वज्ञ, सब कुछ करनेवाला, सबका स्वामी, निर्मल आश्रयस्थान, ज्योतिस्वरूप, अनादि, अनन्त, निर्विकार, परात्पर, निर्गुण तथा सच्चिदानन्द कहा गया है। उसी शिव का अंश जीव कहा गया है।

अस्ति देवी परब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलाशयः।।
अयं ज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः।
निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तदंशा जीवसंज्ञकाः। (कुलार्णव तंत्र 1/11-12)

'महानिर्वाण तन्त्र' में एक स्थल पर भगवान् शिव कहते हैं कि सभी वेद, पुराण, स्मृति तथा संहिता में मेरा ही प्रतिपादन किया गया है, मेरे अतिरिक्त जगत् का अन्य कोई स्वामी नहीं है।

सर्वैर्वेदैः पुराणैश्च स्मृतिभिः संहितादिभिः।
प्रतिपाद्योऽस्मि नान्योऽस्ति प्रभुर्जगति मां विना।। (महानिर्वाण तन्त्र, उल्लास 2/10)

'उत्पत्ति तंत्र' में कहा गया है कि बिना शिवार्चन के चाहे शाक्त हो, वैष्णव हो, सौर हो या गाणपत्य हो, सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती।

शाक्तो वा वैष्णवो वापि सौरो वा गाणपोऽथवा।
शिवार्चनविहीनस्य कुतः सिद्धिर्भवेत् प्रिये।।

(उत्पत्ति तंत्र, कल्याण, शिवोपासना अंक पृ. 184 से उद्घृत)

शिव संहिता मूलतः योग का ग्रन्थ है, जिसमें शिव-पार्वतीसंवाद के रूप में योग के तत्त्वों का निरूपण है। इस ग्रन्थ में कहा गया है कि आत्मस्थ अर्थात् आत्मा में स्थित भगवान् शिव को छोड़कर जो उनकी पूजा बाहर करता है वह मानो हाथ पर रक्खी वस्तु को छोड़कर, उसे भ्रमित हो अन्यत्र ढूढ़ता है(भाव यह है कि आत्मा जो शिव का अंश है उसी में शिव की भावना कर उसमें ध्यान लगाना, उसकी पूजा करना बेहतर है अपेक्षाकृत उस पूजा के जो मन से बाहर स्थूलरूप से की जाती है। परन्तु जो लोग ध्यान नहीं लगा पाते उनके लिये बाह्यपूजा का भी कुछ मूल्य होता ही है।)

आत्म संस्थं शिवंत्यक्त्वा बहिःस्थं यः समर्चयेत्।
हस्तस्थं पिण्डमुत्सृज्य भ्रमते जीविताशया।। (शिव संहिता 5/7)

आत्मलिंग की पूजा का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि आलस्यरहित हो आत्मलिंग की पूजा प्रतिदिन करने से निःसन्देहरूप से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

आत्मलिंगार्चनं कुर्यादनालस्यं दिने दिने।
तस्य स्यात्सकला सिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा।। (शिव संहिता 5/72)

आगे कहा गया है कि त्रिपुरासुर को समाप्त करनेवाले एकमात्र शिव ही जगत् के परमकारण हैं, उनका पद अक्षय है तथा वे शान्त, अप्रेमय एवं अनामय हैं। उनसे निःसन्देहरूप से सभी कामनाओं की प्राप्ति हो जाती है।

त्रिपुरे त्रिपुरन्त्वेकं शिवं परम कारणम्।
अक्षयं तत्पदं शान्तमप्रमेयमनामयम्।
लभतेऽसौ न सन्देहो धीमान्सर्वमभीप्सितम्।। (शिव संहिता 5/205)

‘गोरक्ष संहिता’ योग का एक अन्य ग्रन्थ है जो गोरखनाथजी द्वारा रचित माना जाता है। गोरक्षनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ हठयोग के आचार्य माने जाते हैं। गोरक्षनाथ ने इन्हीं के मुख से भगवान् श्रीआदिनाथ शिवजी के मुखारविन्द से प्रकट हुए योग-विषयक उपदेशों का ज्ञान प्राप्त करके मुमुक्ष जनों के उपयोगार्थ उनमें से दो सौ श्रेष्ठ एवं हितकर श्लोकों को छाँट कर सार रूप में ‘गोरक्ष संहिता’ के नाम से ग्रन्थ का रूप दिया। आदिनाथ शिव द्वारा ही नाथ सम्प्रदाय का प्रारंभ हुआ और मत्स्य देहधारी मत्स्येन्द्रनाथ शिव द्वारा पार्वती के प्रति कहे उपदेशों को सुनकर परम सिद्ध एवं योगी बन गये। मत्स्येनद्रनाथ के बाद उनके शिष्य गोरक्षनाथ भी योग के आचार्य हुए। हम यहाँ पर गोरक्ष संहिता से कुछ ऐसे उद्धरण प्रस्तुत करेंगे जो शिव की महिमा के सूचक हों।

हम जानते हैं कि योग के आठ अंग हैं जिसमें ‘धारणा’ छठे स्थान पर आती है। योगी क्रमशः पाँचों तत्त्वों की धारणा करता हुआ आगे बढ़ता जाता है। पाँचवें तत्त्व आकाश की धारणा के संबंध में कहा गया है कि- स्वच्छ जल के समान वर्ण तथा ब्रह्मरन्ध्र में स्थित, वर्तुलाकार, ‘हकार’ बीजयुक्त आकाश तत्त्व का अधिष्ठाता देव सदाशिव के सहित चिन्तन करे और मन-प्राण सहित स्वयं भी उसी में लीन हो जाय तो पाँच घटी बीतते-बीतते यह नभोधारणा (आकाश की धारणा) सिद्ध हो जाती है। इसके प्रभाव से मोक्ष के बन्द कपाट खुल जाते हैं, अर्थात् साधक को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

आकाशं सुविशुद्धवारिसदृशं यद्ब्रह्मरन्ध्रस्थितं
तस्मादेन सदाशिवेन सहितं तत्त्वं हकारान्वितम्।
प्राणं तत्र विलीय पंचघटिकं चित्तान्वितं धारये --

देषा मोक्षकपाट पाटन पटुः प्रोक्ता नमोधारणा ।।

(गोरक्ष संहिता – द्वितीय शतक / 58)

आगे कहा गया है कि भौहों के मध्य में नीलाभ परमेश्वर शिव का नित्य ध्यान करते हुए योगी प्राण को जीतकर जीव – ब्रह्म की एकता स्थापित करता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। नासिका के अग्रभाग में निर्गुण, शान्त, विश्वतोमुख, आकाश के समान व्यापक शिव का ध्यान करनेवाला योगी स्वयं भी एकाकी ब्रह्ममय हो जाता है।

ध्यायन्नीलनिभं नित्यं भ्रूमध्ये परमेश्वरम् ।
आत्मानं विजितप्राणो योगीमोक्षमवाप्नुयात् ।।
निर्गुणं च शिवं शान्तं गगने विश्वतोमुखम्।
नासाग्रदृष्टरेकांकी ध्यात्वा ब्रह्ममयो भवेत्।। (गोरक्ष संहिता – द्वितीय शतक / 71 – 72)

जहाँ नाद का प्राकट्य होता है, वह आकाश मन का स्थान है, उसी को आज्ञा चक्र कहते हैं। वहीं आत्मा में शिवजी का ध्यान करके योगी मोक्ष को प्राप्त होता है। वहाँपर निर्मल, व्योमाकार, मरीचि जल के समान एवं सर्वव्यापक आत्मा (रूप शिव) का ध्यान करके योगी मोक्ष को प्राप्त होता है।

आकाशे यत्र शब्दः स्यात्तदाज्ञाचक्रमुच्यते।
तत्रात्मानं शिवं ध्यात्वा योगी मुक्तिमवाप्नुयात्।।
निर्मलं गगनाकारं मरीचिजलसन्निभम्।
आत्मानं सर्वगं ध्यात्वा योगीमुक्तिमवाप्नुयात् ।। (गोर. सं. 2 / 73 – 74)

इसके आगे कहा गया है कि गुदा, नाभि आदि नौ स्थान ध्यान के योग्य माने गये हैं। इन स्थानों में तेजोमय, ब्रह्मात्मक, श्रेष्ठ ज्योतिस्वरूप शिव का ध्यान करके और उन्हें जानकर योगी मुक्त हो जाता है – यह गोरक्षनाथ का कथन है।

एषु बह्मात्मकं तेजः शिवज्योतिरुत्तमम्।
ध्यात्वां ज्ञात्वा विमुक्तः स्यादिति गोरक्षभाषितम्। (गो. सं 2 / 77)

नाथ परम्परा के अन्य ग्रन्थों में शिव को परमकारण, परमेश्वर, परात्पर, स्वयंभू, सर्वतोमुख तथा सभी का कारक कहा है। इतना होते हुए भी शक्ति के बिना शिव कुछ भी नहीं कर सकते। अपनी शक्ति के सहारे से ही (अथवा उससे संयुक्त होकर) सम्पूर्ण जगत् के रूप में भासते अथवा व्यक्त होते हैं।

अतएव परमकारणं परमेश्वरः परात्परः शिवः स्वस्वरूपतया सर्वतोमुखः सर्वाकारतया स्फुरितुं शक्नोतीत्यतः शक्तिमान् शिवोऽपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किंचन। स्वशक्त्या सहितः सोऽपि सर्वस्याभासको भवेत्। (सिद्धसिद्धान्तपद्धति 4 / 13)

शिवशक्ति का संयोग ही परम स्थिति है।

शिवशक्तिसमायोगाज्जायते परमा स्थितिः। (योगबीज - 129)

एक अन्य नाथग्रन्थ में कहा गया है कि 'जिनकी बायीं ओर निर्गुण-स्वरूप (ब्रह्म) और दाहिनी ओर अद्भुत निजाशक्ति - इच्छाशक्ति (परमेश्वरी पराम्बा महामाया) विराजमान हैं और बीच में जो स्वयं पूर्ण अखण्ड (परमशिव) सर्वाधार द्वन्द्वातीत (अलखनिरंजन द्वैताद्वैत विवर्जित स्वरूप) विद्यमान हैं, उन श्रीनाथ (आदि ब्रह्म, आदिनाथ परमेश्वर) को नमस्कार है।

निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथायते नमः।। (गोरक्षसिद्धान्त संग्रह - 1)

'हठयोग प्रदीपिका' के रचयिता ने नादविन्दुकलात्मा शिवस्वरूप गुरु, जिनकी उपासना से योगी निरंजन-पद प्राप्त करता है, को नमस्कार किया है। अर्थात् शिव को योग का गुरु तथा योगी के ध्यान का विषय दोनों माना गया है।

नमः शिवाय गुरवे नादविन्दुकलात्मने ।
निरंजनपदं याति नित्यं यत्र परायणः।। (हठयोगप्रदीपिका 4/1)

'ईशान संहिता' में शिवरात्रि व्रत के बारे में कहा गया है कि यह चाण्डालपर्यन्त सभी मनुष्य के पाप नष्टकर भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करनेवाला है।

शिवरात्रि व्रतं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।
आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।।
(ईशान संहिता, कल्याण, शिवांक पृ. 420 से उद्धृत)

'शिवस्वरोदय' में भगवान् शिव को निरन्जन, निराकार तथा अद्वैतस्वरूप बताया गया है। उसी से समग्र चराचर जगत् की सृष्टि होती है।

निरञ्जनो निराकार एको देवो महेश्वरः। (शिवस्वरोदय श्लोक 6)

'तत्त्व प्रकाश' में कहा गया है कि स्वाभाविक ज्ञान एवं क्रियाशक्ति से सम्पन्न शिव जगत् के आचार्य हैं। भावार्थ यह है कि भगवान् शिव स्वयं ज्ञानस्वरूप हैं परन्तु वे क्रियाशक्ति से भी सम्पन्न हैं। दूसरे शब्दों में माया, जो उनकी क्रियाशक्ति है, से वे सदैव युक्त रहते हैं। ज्ञानस्वरूप होने के कारण उन्हें सभी विद्याओं का आचार्य तथा विद्याओं का अधिपति माना गया है।

ज्ञानक्रियास्वभावं शिवतत्त्वं जगदुराचार्याः।
(तत्वप्रकाश, कल्याण शिवांक पृ. 169 से उद्धृत)

'शैव सिद्धान्त सार' में शिव के त्रिशलधारी, चिताभस्मलेपी और रुण्ड-मुण्डधारी होने की आध्यात्मिक व्याख्या की गयी है। उदाहरण के लिये - वह पापियों को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शूल या पीड़ा देता है, इसी से वह त्रिशूलधारी है। लोहे के त्रिशूल से कोई प्रयोजन नहीं -

शूल त्रयं संवितरन् दुरात्मने
त्रिशूलधारिन् नियमेन शोभसे।।

(शैवसिद्धान्तसार, कल्याण, शिवांक पृ. 153 से उद्धृत)

प्रलयकाल में उनके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं रहता। ब्रह्माण्ड श्मशान हो जाता है, उसकी भस्म और रुण्ड-मुण्ड में वही व्यापक होता है, अतएव 'चिताभस्मलेपी' और 'रुण्ड-मुण्डधारी' कहलाता है न कि वह अघोरियों के समान चिता-निवासी है।

कल्पान्तकाले प्रलुठत्कपाले समग्रलोके विपुलश्मशाने।
त्वमेकदेवोऽसि तदावशिष्टश्चित्ताश्रयो भूतिधरः कपाली।।

(शैवसिद्धान्तसार, वही पृ. 153)

भृंगीश अथवा श्रीसंहिता के अन्तर्गत शिवरात्रि माहात्म्य की चर्चा करते समय भगवान् शिव के गुणों का गान किया गया है।

श्रीनारदजी ने पांचरात्र ग्रन्थ में (जो श्रीरामनुजाचार्य के श्रीवैष्णव सम्प्रदाय का खास साम्प्रदायिक ग्रन्थ है) स्पष्टरूप से आज्ञा दी है कि जिस ग्राम या शहर के मुहल्ले में भगवान् श्रीशंकर का मंदिर न हो वहाँ कोई वैष्णव आपद्धर्म में भी एक रात के लिये भी वास न करे। (कल्याण, शिवांक, पृ. 20)

'कौषीतकि ब्राह्मण' में रुद्रदेव को सर्वश्रेष्ठ देवता घोषित किया गया है।

रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्। (कौषी. ब्रा. 25/13)

भावार्थ यह है कि रुद्रदेव सभी देवताओं से ज्येष्ठ, अर्थात् सभी देवताओं से भी पहले जो अस्तित्व रखता है, एवं श्रेष्ठ हैं। श्रेष्ठ का अर्थ औरों से पूज्य होना है। अतः भगवान् शिव श्रेष्ठ होने के कारण अन्य सभी देवों द्वारा पूज्य भी हैं।

गर्गसंहिता में एक स्थल पर भगवान् श्रीकृष्ण शंकरजी से कहते हैं कि 'तुम मेरे हृदय में हो और मैं तुम्हारे हृदय में। हम दोनों में कोई अन्तर नहीं है। खोटी बुद्धिवाले मूढ़ पुरुष ही हम दोनों में अन्तर या भेद देखते हैं। सदाशिव! मेरे भक्त तुमको नमस्कार करते हैं और तुम्हारे भक्त मुझको। जो मेरी इस बात को (कि हमारे तुम्हारे बीच कोई भेद नहीं है, इस कारण से हम दोनों के भक्तों को हम दोनों को ही प्रणाम करना चाहिये) नहीं मानते हैं, वे घोर नरक मे पड़ेंगे।

ममासि हृदये त्वं तु भवतो हृदये ह्यहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः।।
त्वां नमन्ति च मद्भक्तास्त्वद्भक्ता मां सदाशिव।
ये न मन्यन्ति मद्वाक्यं यास्यन्ति नरकं च ते।।

(गर्गसंहिता, अश्वमेधखण्ड 39/23-24)

'श्रीहरिभक्तिविलास' के नामापराध-प्रकरण में लिखा है कि जो मनुष्य शिव एवं विष्णु के

गुण तथा नाम आदि में भेद बुद्धि रखता है अर्थात् उनको हर दृष्टि से समान नहीं समझता, वह हरिनाम का अपराधी है।

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं।
धिया भिन्नं पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः।।

(श्रीहरिभक्तिविलास, कल्याण, शिवांक, पृ0 175 से उद्धृत)

उपरोक्त ग्रन्थ के शिवरात्रि व्रत के प्रसंग में शिवमहिमापरक और भी कुछ वचन श्रीभगवान् की उक्ति के रूप में उद्धृत किये गये हैं। यथा-

परात्परतरं यान्ति नारायणपरायणाः।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम्।।
यो मां समर्चयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः।
विनिन्दन् देवमीशानं स याति नरकायुतम्।।
मद्भक्तः शङ्करद्वेषी मद्द्वेषी शङ्कर प्रियः।
उभौ तौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ।।

(श्रीहरिभक्तिविलास, कल्याण, शिवांक, पृ0 176 से उद्धृत)

अर्थात्-नारायणभक्त परमधाम को जाता है, परन्तु अगर वह महादेवजी से द्वेष करता है तो वहाँ नहीं जायगा। (श्रीहरि कहते हैं कि)जो भक्तिभाव से मेरी एकान्तिक पूजा करता है और वह शिवजी की निन्दा करता है तो वह दस हजार वर्षोंतक नरक यातना भोगेगा। जो मेरा भक्त होकर शंकरजी की निन्दा करता है या शंकरजी का भक्त होकर मेरी निन्दा करता है वे दोनों ही सूर्य-चन्द्र के बने रहनेतक नरक की यातना भोगेंगे।

भगवान् शिव की भक्ति के माहात्म्यपरक वचन शिव रहस्य में इस प्रकार से हैं। महादेवजी की अर्चना में प्रीति उत्पन्न होना अत्यन्त दुर्लभ है। अगर किसी को यह सुलभ हो गयी है तो उसे मुक्त ही समझना चाहिये। भगवान् शिव को सर्वश्रेष्ठ देव मानकर यत्नपूर्वक पूजने से उसे मुक्ति दुर्लभ नहीं होती। अगर अभिचार के लिये भी नित्य शिव की अर्चना की जाय तो वे मुक्ति एवं भुक्ति दोनों प्रदान करते हैं-इसमें कोई सशंय नहीं है।

महादेवार्चने प्रीतिर्नृणामत्यन्तदुर्लभा।
सुलभा यदि सा न्त्रृणां तदा मुक्ता हि ते नराः।।
यदि देवोत्तमत्वेन ज्ञात्वा देवोत्तमं शिवम्।
समर्चयति यत्नेन तदा मुक्तिर्न दुर्लभा।।
एवमप्यभिचारेण नित्यमभ्यर्चितः शिवः।
ददाति भुक्तिं मुक्तिञ्च सत्यं सत्यं न संशयः।।

(शिवरहस्य, कल्याण, शिवांक, पृ. 480 से उद्घृत)

पराशर पुराण के निम्नलिखित वचनों से यह विदित होता है कि श्रुतियों, स्मृतियों एवं पुराणों में जहाँ कहीं अन्यान्य देवताओं को जगत् का कारण बतलाया गया है-उसका पर्यवसान शंकरजी में ही है। उसमें साफ कहा गया है कि साम्बशिव ही सबके कारण हैं। सत्य, ज्ञान और अनन्त वही हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र आदि उन्हीं के अधीन हैं, उनकी आज्ञा तथा कृपा बिना कुछ नहीं कर सकते।

सर्वकारणमीशानः साम्बः सत्यादिलक्षणः।
न विष्णुर्न विरञ्चिश्च न रुद्रो नापरः पुमान्।।
श्रतुयश्च पुराणानि भारतादीनि सत्तम।
शिवमेव सदा साम्बं हृदि कृत्वा ब्रुवन्ति हि।।

(पराशर पुराण, कल्याण, शिवांक पृ. 75 से उद्धृत)

नीलमत पुराण एक कश्मीरी ग्रन्थ है। इस पुराण में एक स्थलपर स्पष्टरूप से भगवान् शिव को परमतत्त्व अथवा ब्रह्म या सर्वोच्च सत्ता स्वीकार किया गया है। इसमें अन्यत्र बताया गया है कि जब ब्रह्मा ने शिव का अभिवादन किया तो इन्द्र आश्चर्य में पड़ गये और सोचने लगे कि आखिर ब्रह्मा से भी बड़ा देवता कौन हो सकता है? अपनी इस जिज्ञासा को वे ब्रह्मा के सामने रखते हैं तो ब्रह्माजी जवाब में कहते हैं कि ये महेश्वर शिव हैं जो सर्वेश्वर, कारणों के कारण, अचिन्त्य महिमावाले, सनातन ब्रह्म हैं वे ही सबके कर्त्ता एवं सर्वज्ञ हैं, इनकी इच्छा के अनुसार ही जगत् के सभी चराचर प्राणी वर्तते हैं। ब्रह्मा से इन्द्र प्रश्न करते हैं-

सर्वमेतत् त्वमेवैकः त्वत्तः किम परं विभो।
यन्नतोऽसि महाभाग एतान् में संशयो महान्।। (नीलमत पुराण 1087)

ब्रह्माजी उत्तर देते हैं कि-

एष सर्वेश्वरः शक्र एषः कारणकारणम्।
एष चाचिन्त्यमहिमा एष ब्रह्म सनातन।।
स एष सर्वकर्त्ता च सर्वज्ञश्च महेश्वरः।
यदिच्छया जगदिति बर्वर्ति सचराचरम्।।

साम्ब पुराण में शिव को परमात्मा(55/144) और सभी देवों को शिवात्मक(68/49) कहा गया है। इसी प्रकार शिव को सर्वोत्तम बीज(अर्थात् परम कारण) तथा सर्वोत्तम देवता माना गया है। एक स्थल(80/10) पर कहा गया है कि योगी अविनाशी सर्वोच्च देव शिव को प्राप्त कर संसार के आवागमन से मुक्त हो जाता है।

भगवान् शिव की भक्ति से लोगों को भोग एवं मोक्ष आदि की प्राप्ति होती है। इसीलिये योगी हो या सामान्य मनुष्य अथवा अवतारी पुरुष सभी भगवान् शिव की उपासना करते रहे हैं। साम्ब पुराण(80/10) में कहा गया है कि योगी शिव को प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं।

भगवान् शिव की उपासना में लिंगपूजा का बहुत महत्त्व है। साम्ब पुराण में (अध्याय 55 के श्लोक 98 से लेकर सम्पूर्ण अध्याय 83 तक) शिव एवं उनके लिंग का अनेकों स्थल पर उल्लेख हुआ है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पुराण में भी लिंगपूजा की स्वीकृति है।

एकमात्र परब्रह्म भगवान् शिव ही सगुणरूप धारण कर अन्य सभी देवों का रूप धारण करते हैं। साम्ब पुराण (68 / 49) में सभी देवों को शिवात्मक कहा गया है। तात्पर्य यह कि भगवन् शिव सर्वदेवात्मक हैं, वे ही सभी देवों का रूप (अलग-अलग कार्यों के लिये) धारण करते हैं। ब्रह्मा होकर वे सृष्टि करते, विष्णु होकर वे पालन करते तथा रुद्र बनकर सबका संहार करते हैं। अत: तीनों ही प्रमुख देवता तात्त्विक दृष्टि से एक ही हैं अन्तर केवल उनके गुण एवं कार्यों में है।

गुरुनानकदेवजी के पुत्र तथा उदासीन सम्प्रदाय के जनक श्रीचन्दजी भगवान् शिव की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं कि 'उनके सामने 33 सो देव हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं।' ऐसे देव से वे प्रार्थना करते हैं कि वे उनके मन में निवास करें।

श्रीचन्द गंगाधर गुन गावै, हंसा देह सुदरसन पावै।

....

वामै गोद हँसात भवानी, सुर तैंतिस जोरे थित पानी।
माँगहुँ यहु बरु दुहँ कर जोरे, परम हंसु रहु मानस मोरे।।

(श्रीचन्द-शब्द-सुधा, पद सं. 3)

सूरदासजी कृष्णभक्त के रूप में प्रसिद्ध हैं। परन्तु वे भगवान् शिव तथा श्रीकृष्ण की अभिन्नता स्थापित करते हुए एक ही पद में दोनों की महिमा का समानान्तर-रूप में गान करते हैं। उनकी दृष्टि में भगवान् शिव तथा श्रीकृष्ण नाम-रूप-गुण में समान हैं। भक्तों ने अपनी भावना के अनुरूप दोनों के भिन्न-स्वरूप की अवतारणा कर ली है-

हरि-हर संकर, नमो नमो।
अहिसायी, अहि-अंग-विभूषन, अमित-दान, बल-विष-हारी।

....

अज-अनीह-अविरुद्ध-एकरस, यहै अधिक ये अवतारी।
सूरदास सम, रूप-नाम-गुन अंतर अनुचर-अनुसारी।।

(सूरसागर, पद सं. 789)

भक्तिस्वरूपा मीराबाई ने स्वयं को सर्वतोभावेन भगवान् कृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया था तथापि उनके कुछ पदों में शिव के दर्शन के प्रति भी भावाकुलता के दर्शन होते हैं। ऐसा शायद इसी लिये है कि मीरा की दृष्टि में भी शिव एवं कृष्ण में कोई अंतर नहीं है।

म्हारे घर रमतो जोगिया तू आव।

कानाँ बिच कुण्डल, गले बिच सेली, अंग भभूत रमाय।।
तुम देख्याँ बिण कल न परत है, ग्रिह अंगणो न सुहाय।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, दरसन द्यौ ण मोकूँ आय।।

(मीराँ-पदावली, पद सं. 98)

* * *

अहिंसा की प्रशंसा तथा मांसाहार की निन्दा

यो जन्तूनात्मपुष्टमर्थं हिनस्ति ज्ञानदुर्बलः।
दुराचारस्य तस्येह नामुत्रापि सुखं क्वचित्।।
भोक्तानुमन्ता संस्कर्ता क्रयिविक्रयिहिंसकाः।
उपहर्ता घातयिताः हिंसकाश्चाष्टधा स्मृताः।।

(स्कन्द पुराण काशीख. पू. 40/21-22)

जो अज्ञानी अपने शरीर की पुष्टि के लिये दूसरे जीवों की हत्या करता है, उस दुराचारी को न तो इस लोक में सुख मिलता है और न परलोक में ही। जो मांस खाता है, जो जीवों को मारने की अनुमति देता है, जो मांस पकाता है, जो उसको खरीदता है और जो बेचता है, जो अपने हाथों से मारता है, जो बांटता-परोसता तथा जो आज्ञा देकर जीवहिंसा कराता है-ये आठ प्रकार के मनुष्य हिंसक माने गये है।

प्रत्यब्दमश्वमेधेन शतं वर्षाणियो यजेत्।
अमांसभक्षको यश्च तयोरन्त्यो विशिष्यते।।

(स्कन्द पुराण काशीख. पू. 40/23)

जो सौ वर्षोंतक प्रत्येक वर्ष में अश्वमेध यज्ञ द्वारा यजन करता है तथा जो मांस-भक्षण नहीं करता है, इन दोनों की परस्पर तुलना की जाय, तो मांस का त्याग करनेवाला ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

धर्ममूलमहिंसा च मनसा तां च चिन्तयन्।
कर्णमा च तथा वाचा तत एतां समाचरेत्।।

(संक्षिप्त स्कन्द पुराण, गीताप्रेस, ब्राह्मख. चातुर्मा. माहा. 2/1५ पृ. 489 से उद्धृत)

अहिंसा धर्म का मूल है, इसलिये उस अहिंसा को मन, वाणी और क्रिया के द्वारा आचरण में लाना चाहिये।

शिव-नाम की महिमा

शिवपुराण-वायवीयसंहिता (उ. ख. अ. 10/68-70) में सगुणोपासनाके आठ भेद बताये गये हैं। यथा-भक्तों में प्रीति, पूजा का अनुमोदन, स्वयं अर्चा करना, प्रभु के निमित्त अङ्गों की चेष्टा करना, कथा-श्रवण में भक्ति, स्वर, नेत्र और अङ्गों की विक्रिया, भगवान् का नित्य स्मरण और उनका ही आश्रय। इस प्रकार के चिह्न जिसमें हों वही सर्वश्रेष्ठ है, चाहे वह म्लेच्छ ही क्यों न हो-

मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायाञ्चानुमोदनम्।
स्वयमप्यर्चनञ्चैव मदर्थं चाङ्गचेष्टितम्।।
मत्कथाश्रवणे भक्तिः स्वरनेत्राङ्गविक्रियाः।
ममानुस्मरणं नित्यं यश्च मामुपजीवति।।
एवमष्टविधं चिह्नं यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते।।

यद्यपि श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन (भक्ति के नौ अंग जिनका निरूपण शिवपुराण-रुद्रसंहिता-सतीखण्ड 23/22 में हुआ है) सभी समानरूप से फलप्रद हैं, तथापि इनमें स्मरण विशेषरूप से उल्लेखनीय है। निरन्तर नामस्मरण से मनुष्यका अन्तःकरण शुद्ध होकर शीघ्र ही अपना अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। समस्त पुण्यों, श्रेय के सम्पूर्ण साधनों और समस्त यज्ञों में जपयज्ञ को ही सर्वोत्तम माना गया है।

सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः।।

(स्कन्दपु. ब्रह्मखण्ड-ब्राह्मोत्तरखण्ड 1/7)[1]

श्रीमद्भागवत महापुराण में कहा गया है कि चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी, ऐसे लोगों का संसर्गी; स्त्री, राजा, पिता और गाय को मारनेवाला, चाहे जैसा और चाहे जितना बड़ा पापी हो, सभी के लिये यही-इतना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है कि भगवान् के नामों का उच्चारण[2] किया जाय; क्योंकि भगवन्नामों के उच्चारण से मनुष्य की बुद्धि भगवान् के गुण, लीला और स्वरूप में रम जाती है और स्वयं भगवान् की उसके प्रति आत्मीय बुद्धि हो जाती है। बड़े-बड़े ब्रह्मवादी ऋषियों ने पापों के बहुत से प्रायश्चित्त-कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत बतलाये हैं; परन्तु उन प्रायश्चित्तों से पापी की वैसी जड़ से शुद्धि नहीं होती, जैसी भगवान् के नामों का, उनसे गुम्फित

---

[1] यह पुराण नाग पब्लिशर्स दिल्ली द्वारा 1982 में प्रकाशित है।

[2] इस प्रसंग में 'नाम-व्याहरण' का अर्थ नामोच्चारणमात्र ही है।

पदों का[1] उच्चारण करने से होती है। क्योंकि वे नाम पवित्रकीर्ति भगवान् के गुणों का ज्ञान करानेवाले हैं।

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे।।
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम्।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः।।
न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः।।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम्।।

(श्रीमद्भागवत 6/2/9-11)

वहीं पर आगे कहा गया है कि जैसे जान या अनजान में ईंधन से अग्नि क़ा स्पर्श हो जाय तो वह भस्म हो ही जाता है, वैसे ही जानबूझकर या अनजान में भगवान् के नामों का संकीर्तन करने से मनुष्य के सारे पाप भस्म हो जाते हैं। जैसे कोई परम शक्तिशाली अमृत को उसका गुण न जानकर अनजान में पी ले तो भी वह अवश्य ही पीनेवाले को अमर बना देता है, वैसे ही अनजान में उच्चारण करने पर भी भगवान् का नाम[2] अपना फल देकर ही रहता है (क्योंकि वस्तु की स्वाभिक शक्ति विश्वास या श्रद्धा की अपेक्षा नहीं करती)।

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संङ्कीर्तितमघं पुंसो देहेदेधो यथानलः।।

---

[1] 'नामपदैः' कहने का अभिप्राय यह है कि भगवान् का केवल नाम 'हरि-हरि', 'शिव-शिव', 'हर-हर', आदि अन्तःकरण की शुद्धि के लिये-पापों की निवृत्ति के लिये पर्याप्त है। "नमः नमामि" इत्यादि क्रिया जोड़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। नाम के साथ बहुवचन का प्रयोग-भगवान् के नाम बहुत-से हैं, किसी का भी संकीर्तन कर ले, इस अभिप्राय से है। एक व्यक्ति सभी नामों का उच्चारण करे, इस अभिप्राय से नहीं है। क्योंकि भगवान् के नाम अनन्त हैं; सब नामों का उच्चारण संभव नहीं है। तात्पर्य यह है कि भगवान् के एक नाम का उच्चारण करनेमात्र से सब पापों कि निवृत्ति हो जाती है। पूर्ण विश्वास न होने तथा नामोच्चारण के पश्चात् भी पाप करने के कारण ही उसका अनुभव नहीं होता। नामोच्चारण के बाद अगर पाप न किया जाय तो मुक्ति हो जाती है। इसीलिये कहा जाता है कि मरते समय भगवान् का नाम लेकर अजामिल आदि मुक्त हो गये। कारण यह है कि नामोच्चारण के बाद जीवन शेष न रहने से पुनः पाप की संभावना नहीं रहती। जीवन का अन्त कब होगा यह कोई नहीं जानता। इसलिये भगवान् के नामों का सतत जप करते रहना चाहिये।

[2] वस्तु की स्वाभाविक शक्ति इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि यह मुझपर श्रद्धा रखता है कि नहीं जैसे अग्नि या अमृत। इसी प्रकार भगवान् का नाम अपनी स्वाभाविक शक्ति, पापनाशकी शक्ति, के लिये किसी के विश्वास या अविश्वास की अपेक्षा नहीं रखता।

यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युहृतः।।

(श्रीमद्भागवतमहापूराण 6/2/18-19)

पुनः कहा गया है कि जो लोग इस संसारबन्धन से मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिये अपने चरणों के स्पर्श से तीर्थों को भी तीर्थ बनानेवाले भगवान् के नाम से बढ़कर और कोई साधन नहीं है; क्योंकि नाम का आश्रय लेने से मनुष्य का मन फिर कर्म के पचड़ों में नहीं पड़ता। भगवन्नाम के अतिरिक्त और किसी प्रायश्चित्त का आश्रय लेनेपर मन रजोगुण और तमोगुण से ग्रस्त ही रहता है तथा पापों का पूरा-पूरा नाश भी नहीं होता है।

नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात्।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा।।

(श्रीमद्भागवतमहापुराण 6/2/46)

पद्मपुराण में कहा गया है कि नाम-कीर्तन में परिश्रम तो थोड़ा होता है किन्तु फल भारी से भारी प्राप्त होता है-यह देखकर जो लोग इसकी महिमा के विषय में तर्क उपस्थित करते हैं, वे अनेकों बार नरक में पड़ते हैं।

अत्र ये विवदन्ते वै आयासलघुदर्शनात्।।
फलानां गौरवाच्चापि ते यान्ति नरकं बहु। (पद्मपुराण-स्वर्गखण्ड-50/26-27)[1]

वहीं पर आगे कहा गया है कि-अहो! संसार के लोग भाग्यदोष से अत्यन्त वञ्चित हो रहे हैं, क्योंकि वे नामोच्चारणमात्र से मुक्ति देनेवाले भगवान् का भजन नहीं करते।

अहो लोका अतितरां दैवदोषेण वञ्चिता।
नामोच्चारण मात्रेण मुक्तिदं न भजन्ति वै।। (पद्मपुराण-स्वर्गखण्ड-50/32)

वैसाख माहात्म्य के प्रसङ्ग में राजा महीरथ की कथा में महीरथ को उसके मन्त्री ने जो उपदेश दिया है उसमें एक जगह कहा गया है कि-लौकिक धर्म, मित्र, भाई-बन्धु, हाथ-पैरों का चलाना, देशान्तर में जाना, शरीर के क्लेश उठाना तथा तीर्थ के लिये यत्न करना आदि कोई भी परमपद की प्राप्ति में सहायता नहीं कर सकते; केवल परमात्मा में मन लगाकर उनका नाम-जप करने से उस पद की प्राप्ति होती है। (पातालखण्ड-अ. 95 संक्षिप्त पद्मपु., गीताप्रेस, पृ. 601)

नारदजी से ब्रह्माजी कहते हैं कि मेरा कथन सत्य है कि भगवान् के नामों का उच्चारण करनेमात्र से मनुष्य बड़े से बड़े पापों से मुक्त हो जाता है। नामकीर्तनमात्र से कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारका आदि सम्पूर्ण तीर्थों के सेवन का फल प्राप्त हो जाता है।

---

[1] यह पुराण नाग पब्लिशर्स दिल्ली द्वारा 1984 में प्रकाशित है।

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भाषितं मम सुव्रत।
नामोच्चारणमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते।।
कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारका तथा।
सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः।।

(उत्तरखण्ड-72/20 व 22 संक्षिप्त पद्मपु., गीताप्रेस, पृ. 692)

मनुष्य काम, क्रोध, भय, द्वेष, लोभ, दम्भ से अथवा जिस किसी प्रकार से भी यदि भगवान् का भजन करे तो उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता। (पद्मपुराण-पातालखण्ड-19/13)

क्रोधात्कामाद्भयाद्द्वेषाल्लोभाद्दंभान्नरः पुनः।
यथाकथंचिद्विभजन्न सदुःखं समश्नुते।।

यों तो भगवान् के अनेक नाम हैं, किंतु भगवान् शिव स्वयं कहते हैं- "हे वरानने! मेरा 'शिव' यह नाम उत्तमोत्तम है, वही परब्रह्म है। 'शिव' यह नाम मुझ ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। शिव-नाम से यथार्थ में मुझे ही समझो। जो वेदान्त से प्रतिपादित अव्यक्त परब्रह्म है, द्व्यक्षर 'शिव' भी वही है। दो अक्षरों का यह 'शिव' नाम परब्रह्मस्वरूप एवं तारक है, इससे भिन्न कोई तारक नहीं है"-

शिव इत्यस्ति यन्नाम तद्धि नामोत्तमोत्तमम् ।
तदेव परमं ब्रह्म तदेव हि वरानने ।।
शिवनामस्वरूपेण व्यक्तं ब्रह्माहमेव हि ।
शिवनामाहमेवेति विजानीहि यथार्थतः ।।
यदव्यक्तं परं ब्रह्म वेदान्तप्रतिपादितम् ।
तदेवेदं विजानीहि शिव इत्यक्षरद्वयम् ।।
तारकं ब्रह्म परमं शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
नैतस्मादपरं किञ्चित् तारकं ब्रह्म सर्वथा ।।

(शिवरहस्य-सप्तमांश, अ. 23, कल्याण, शिवांक, गीताप्रेस, पृ. 359 से उद्धृत)

भगवान् का नाम चलते-फिरते, दिन-रात, उठते-बैठते, जैसे हो वैसे ही जपना चाहिये, इसमें कोई बाधा नहीं है। फिर भी यदि नियम-संयम एवं पवित्रता से जप किया जाय तो विशेष फलदायी होता है।

अशुचिर्वा शुचिर्वापि सर्वकालेषु सर्वदा ।
नामसंस्मरणादेव संसारान्मुच्यते क्षणात् ।। (पद्मपुराण, पातालखण्ड-80/8)

अर्थात्-'जो मनुष्य पवित्रता अथवा अपवित्रता का विचार न कर सदा-सर्वदा नाम-स्मरण में रत रहता है, वह बहुत शीघ्र संसार(अवागमन) से मुक्त हो जाता है।'

सौरपुराण में जीवन की क्षणभंगुरता को ध्यान में रखते हुए कहा गया है-

निकटा एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमाः।
शिवं स्मर शिवं ध्याय शिवं चिन्तय सर्वदा।। (सौरपुराण, अ. 47/34)

भावार्थ यह है कि अरे मूर्ख! यमपुरी की वृक्षावली निकट ही दिखलायी देती है, इसलिये शिव का स्मरण कर, शिव का ही ध्यान कर और शिव का ही सर्वकाल में स्मरण कर।

शिवधर्मपुराण में कहा गया है कि-

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपञ्जाग्रदुन्मिषन्निमिषन्नपि।
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि शिवं सर्वत्र चिन्तयेत्।।

(शिवधर्मपुराण, अ. 11, शिवांक पृ. 359 से उद्धृत)

भावार्थ यह है कि चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते तथा आँख खोले हुए और मूँदे हुए, पवित्रता में अथवा अपवित्रता में सर्वत्र शिव का ही चिन्तन करना चाहिये।

शिवगीता में भी कहा गया है कि चलते-बैठते में भी जो उनका(शिव का) स्मरण करता है, उसको वे अभिष्ट फल देते हैं।

गच्छन्समुपविष्टो वा तस्याभीष्टं प्रयच्छति।

... (शिवगीता-1/27)

शास्त्रों में नाम-जप का जो फल कहा गया है वह बार-बार बहुत दिनोंतक नामजप करने से भी नहीं मिलता, इसका कारण महात्माओं ने दस प्रकार के नामापराध बतायें हैं जिसे व्यक्ति जान या अनजान में करता रहता है। निम्न दस नामापराधों से बचकर नामजप करने से अतिशीघ्र फल होता है।

गुरोरवज्ञां साधूनां निन्दां भेदं हरौ हरे।
वेदनिन्दां हरेर्नामबलात् पापसमीहनम्।।
अर्थवादं हरेर्नाम्नि पाषण्डं नामसंग्रहे।
अलसे नास्तिके चैव हरिनामोपदेशनम्।।
नामविस्मरणं चापि नाम्न्यनादरमेव च।
संत्यजेद् दूरतो वत्स दोषानेतान् सुदारुणान्।। (नारदपु. पूर्वभाग 82/22-24)

गुरु की अवज्ञा, साधुओं की निन्दा, हरि(भगवान् विष्णु) एवं हर(भगवान् शिव) में भेद बुद्धि, वेद की निन्दा, भगवान् के नाम के बलपर पापाचरण, भगवान् के नामों में अर्थवाद-बुद्धि, नाम-ग्रहण में पाखण्डी, आलसी और नास्तिकों को भगवन्नाम का उपदेश, नाम का विस्मरण और नाम में अनादर, इन भयानक दोषों को दूर से ही त्याग देना चाहिये।

यदि प्रमादवश इन दसों में से कोई-सा भी अपराध हो जाय तो उससे छूटकर शुद्ध होने

का उपाय भी पुनः नामकीर्तन ही है। भूल के लिए पश्चात्ताप करते हुए प्रभुनाम-कीर्तन से नामापराध छूट जाता है-

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्तिप्रयुक्तानि तान्येवार्थ कराणि यत्।। (पद्मपुराण/ब्रह्मखण्ड 25/23)

निरन्तर नामकीर्तन से सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं- अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष चारों पदार्थों की सिद्धि अनायास हो जाती है। भगवान् शिव के नाम का माहात्म्य अनेक शास्त्रों में भरे पड़े हैं-चाहे वे वैष्णव हो या शैव। यथार्थ में तो नाम का माहात्म्य न तो शास्त्र और न ही ऋषि-मुनि और न तो देवता ही कर सकते हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण(जो वैष्णवों का एक प्रमुख पुराण है) में भगवान् श्रीकृष्ण ने शिवलिंग के स्थापन और पूजन का महान् फल बताते हुए कहा है-जो 'महादेव', 'महादेव' और 'महादेव' का उचारण करता है, उसके पीछे मैं उस नाम-श्रवण के लोभ से अत्यन्त भयभीत की भाँति (अर्थात् चुपके-चुपके) जाता हूँ। जो मनुष्य 'शिव' शब्द का उच्चारण करके प्राणों का परित्याग करता है, वह कोटि जन्मों के उपार्जित पाप से मुक्त हो मोक्ष प्राप्त कर लेता है। 'शिव' शब्द कल्याण वाचक है और 'कल्याण' शब्द मुक्ति का। शिव के उच्चारण से मोक्ष या कल्याण की प्राप्ति होती है, इसलिये महादेवजी को शिव कहा गया है।

महादेव महादेव महोदवेति वादिनः।।
पश्चाद्यामि महात्रस्तो नामश्रवणलोभतः।
शिवेति मन्त्रमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः।
शिवं कल्याणवचनं कल्याणं मुक्तिवाचिकम्।।
यतस्तत् प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्तितः।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण-ब्रह्मखण्ड/6/48-51)

वहीं पर आगे कहा गया है कि धन और भाई-बन्धुओं का वियोग होनेपर जो शोक-सागर में डूब गया हो, वह मनुष्य शिव शब्द का उच्चारण करके सर्वथा कल्याण का भागी होता है। 'शि' पापनाशक अर्थ में है और 'व' मोक्षदायक अर्थ में। महादेवजी मनुष्यों के पापहन्ता और मोक्षदाता हैं। इसलिये उन्हें शिव कहा गया है। जिसकी वाणी में 'शिव'-यह मंगलमय नाम विद्यमान है, उसके करोड़ों जन्मों का पाप निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

विच्छेदे धनबन्धूनां निमग्नः शोकसागरे।।
शिवेति शब्दमुच्चार्य्य लभेत् सर्वशिवंनरः।
पापघ्ने वर्तते शिश्च वश्च मुक्तिप्रदे तथा।।

पापघ्नो मोक्षदो न्त्रृणां शिवस्तेन प्रकीर्त्तितः।
शिवेति च शिवंनाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते।।
कोटिजन्मार्जितं पापं तस्य नश्यति निश्चितम्।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण-ब्रह्मखण्ड 6/51-54)

स्कन्दपुराण के माहेश्वरखण्ड के अन्तर्गत केदारखण्ड में कहा गया है कि-जिनकी जिह्वा के अग्रभाग पर सदा भगवान् शंकर का दो अक्षरोंवाला नाम(शिव) विराजमान रहता है वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव' इस अविनाशी नाम का उच्चारण किया है, वे निश्चय ही मनुष्यरूप में रुद्र हैं; इसमें संशय नहीं है।

तेधन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्तथैव च।।
द्व्यक्षरं नाम येषां च जिह्वाग्रे संस्थितं सदा।
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै।।
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः।

(स्कंदपु.-माहे.-केदा.-अध्याय 27/21-22)

शिवपुराण की विद्येश्वर संहिता में कहा गया है कि-जो शिवनामरूपी नौका पर आरूढ़ हो संसाररूपी समुद्र को पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसार के मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। महामुने! संसार के मूलभूत पातकरूपी पादपों का शिवनामरूपी कुठार से निश्चय ही नाश हो जाता है। जो पापरूपी दावानल से पीड़ित हैं, उन्हें शिवनामरूपी अमृत का पान करना चाहिये। पापों के दावानल से दग्ध होनेवाले लोगों को उस शिव-नामामृत के बिना शान्ति नहीं मिल सकती। जो शिवनामरूपी सुधा की वृष्टिजनित धारा में गोते लगा रहे हैं, वे संसाररूपी दावानल के बीच में खड़े होनेपर भी कदापि शोक के भागी नहीं होते। जिन महात्माओं के मन में शिवनाम के प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगों की सहसा और सर्वथा मुक्ति होती है।

शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिंतरन्ति ते।
संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम्।।
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने।
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्।।
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः।
पापदावाग्नितप्तानां शान्तिस्तेन विना न हि।।
शिवेति नामपीयूषवर्षाधारापरिप्लुताः।
संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन।।
शिवनाम्नि महद्भक्तिर्जाता येषां महात्मनाम्।

तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा।।

(शि. पु. वि. सं. 23/29-33)

उसी संहिता में पुनः कहा गया है कि- "शिवनामरूपी दावानल से बड़े-बड़े पाताकों के असंख्य पर्वत अनायास भस्म हो जाते हैं-यह सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं-"

शिवेतिनामदावाग्नेर्महापातक पर्वताः।
भस्मीभवंत्यनायासात्सत्यं सत्यं न संशयः।। (शि. पु. वि. सं. 23/23)

"हे मुने! इतने तो पाप भी पृथ्वी पर नहीं हैं जिन्हें मनुष्य कर सके और वे शिवनाम द्वारा नष्ट न हो जायँ। शिवनाम से सभी प्रकार के पातक नष्ट होकर पवित्रता प्राप्त होती है।"

पातकानि विनश्यन्तियावंति शिवनामतः।
भुवितावंतिपापानि क्रियंतेन नरैर्मुने।। (शि. पु. वि. सं. 23/27)

कूर्मपुराण में व्यासजी अर्जुन से कहते हैं कि कृतयुग में ब्रह्मा, त्रेता में भगवान् सूर्य, द्वापर में भगवान् विष्णु और कलियुग में महेश्वर रुद्र ही मुख्य देवता हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्य तीनों कलियुग में पूजे जाते हैं परन्तु पिनाकधारी रुद्र चारों युगों में पूजे जाते हैं अतः भगवान् शिव का नाम कलियुग में सबसे उत्तम है।

ब्रह्माकृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः।
द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ रुद्रो महेश्वरः।।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्यः सर्व एव कलिष्वपि
पूज्यते भगवान् रुद्रश्चतुर्ष्वपि पिनाकधृक्।। (कूर्मपु. वि. अ. 27/18-19)

जो पुरुष अन्त समय में शिव का स्मरण करता है, वह चाहे ब्रह्महत्यारा हो, चाहे शराबी हो, चोर हो अथवा गुरुस्त्रीगामी ही क्यों न हो, शिव के साथ सायुज्य को प्राप्त होता है।(सौ. पु. अ. 66)

शिवगीता में भगवान् शिव कहते हैं कि यदि कोई महापापी भी देहान्त में मेरा स्मरण करे व(नमः शिवाय) इस पंचाक्षरी विद्या का उच्चारण करे तो निःसन्देह उसकी मुक्ति हो जाती है-

महापापैरपि स्पृष्टो देहान्ते यस्तु मां स्मरेत्।
पञ्चाक्षरीं वोच्चरति स मुक्तो नात्र संशय।। (शिवगीता 16/18)

जो मनुष्य प्रसंगवश, कौतूहल से, लोभ से, भय से अथवा अज्ञान से भी 'हर'-नाम का उच्चारण करता है, वह सारे पापों से छूट जाता है।

प्रसङ्गात्कौतुकाल्लोभाद् भयादज्ञानतोऽपि वा।
हर इत्युच्चरन्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (सौरपुराण 7/31)

इसी तरह शिवगीता में भगवान् शिव द्वारा कहा गया है कि अति आश्चर्य अथवा भय और शोक प्राप्त हुआ हो वा छींकने अथवा और कोई रोग में जो किसी बहाने से भी मेरा (शिव का)

नाम उच्चारण करता है वह परमगति को प्राप्त हो जाता है–

आश्चर्ये वा भये शोके क्षुते वा मम नामयः।
व्याजेन वा स्मरेद्यस्तु स यति परमां गतिम्।। (शिवगीता 16/17)

वहीं पर आगे कहा गया है कि व्यक्ति शिव की उपासना संबंधी अन्य क्रियाएँ करे अथवा न करे परन्तु जो केवल शिव का नाम जपता है वह सदामुक्तस्वरूप है।

अन्यानि शैवकर्माणि करोतु न करोतु वा।
शिवनाम जपेद्यस्तु सर्वदा मुच्यते तु सः।। (शिवगीता 16/22)

श्रीमद्भागवत में सती अपने पिता दक्ष से कह रहीं हैं कि जिनका 'शिव' यह दो अक्षरोंवाला नाम प्रसंगवश एक बार भी मुख से निकल जानेपर मनुष्य के समस्त पापों को तत्काल नष्ट कर देता है और जिनकी आज्ञा का कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता, उन्हीं पवित्रकीर्ति मङ्गलमय भगवान् शंकर से आप द्वेष करते हैं। अवश्य ही आप अमङ्गलरूप हैं।

यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत्।
पवित्रकीर्ति तमलङ्घ्यशासनं
भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः।। (श्रीमद्भागवत पु. 4/4/14)

उपरोक्त उद्धरण से यह भी स्पष्ट है कि जो भगवान् शिव से विमुख होता है वह अमंगल–रूप होता है। अर्थात् न तो उसका भला होता है और न दूसरों का जिनसे वह जुड़ा होता है।

शिवोपनिषद् में कहा गया है कि शिवनाम का कीर्तन करने से सभी पातकों से निवृत्ति हो जाती है तथा व्यक्ति परमपद को प्राप्त कर लेता है।

नामसंकीर्तनादेव शिवस्याशेषपातकैः।
यतः प्रमुच्यते क्षिप्रं मन्त्रोऽयं द्व्यक्षरः परः।।
यः शिवं शिवमित्येवं द्व्यक्षरं मन्त्रमभ्यसेत्।
एकाक्षरं वा सततं स याति परमं पदम्।। (शिवोपनिषद् 1/20–21)

पद्मपुराण में भगवान् शिव की महिमा बतलाते हुए मातलि(इन्द्र के सारथी) राजा ययाति से कहते हैं कि जो लोग भगवान् शिव का प्रसंगवश भी स्मरण या नामकीर्तन अथवा नमस्कार कर लेते हैं, उन्हें अनुपम सुख की प्राप्ति होती है। फिर जो निरन्तर उनके भजन में ही लगे रहते हैं, उनके विषय में तो कहना ही क्या है।(पद्मपुराण–भूमिखण्ड–अध्याय–71/17–18)

प्रसंगेनापियेकुर्युः शंकरस्मरणंनराः।।
तैर्लभ्यंत्वतुलंसौख्यंकिंपुनस्तत्परायणैः। (पद्मपु. भूमिख. 71/17–18)

नारदजी मोह के वशीभूत हो भगवान् विष्णु को श्राप दे देते हैं और भगवान् उसे स्वीकार

कर अपनी माया को हटा लेते हैं। माया के हटते ही नारदजी को ज्ञान हो जाता है और भयभीत होकर श्रीहरि के चरण पकड़ लेते हैं और कहते हैं- "हे शरणागत के दुःखों को हरनेवाले! मेरी रक्षा कीजिये। हे कृपालु! मेरा शाप मिथ्या हो जाय। भगवन्! मैंने आपको अनेक खोटे वचन कहे। मेरे पाप कैसे मिटेंगे? मेरे दिल में जो घोर अशान्ति और आत्मग्लानि की पीड़ा हो रही है वह कैसे मिटेगी?"

तब भगवान् श्रीहरि उत्तर देते हैं कि जाकर शंकरजी के शतनाम[1] का जप करो, इससे तुम्हारे हृदय में तुरन्त शान्ति हो जायगी तथा तुम्हारे पाप मिट जायँगे। रामचरितमानस में तुलसीदास लिखते हैं कि-

मृषा होउ मम श्राप कृपाला।......................................।।
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे।।
जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदयँ तुरत बिश्रामा।।

(रामचरितमानस-बालकाण्ड 137/2-3)

उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि शिवनामजप से पाप-ताप सब मिट जाते हैं। नारदजी का उपरोक्त प्रसंग एवं शतनाम जपने का उल्लेख शिवपुराण रुद्रसंहिता अध्याय-4 में भी है।

रामचरितमानस में आगे उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डिजी के गुरु भगवान् शिव की प्रार्थना में कहते हैं-

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। भजंतीह लोके परे वा नराणां।।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं।।

(रामचरितमानस-उत्तरकाण्ड 107 ख/7)

भावार्थ यह है कि जबतक पार्वती के पति के चरणकमलों को मनुष्य नहीं भजते, तबतक उन्हें न तो इह लोक और न परलोक में सुख-शान्ति मिलती है और न उनके दुःखों का नाश होता है।

भगवान् शंकर परम कृपालु हैं, उनके जैसा शीघ्र प्रसन्न होनेवाला कोई भी नहीं है। अतः उनकी कृपा-प्राप्ति के लिये उनका भजन करना चाहिये। उनकी कृपा की प्राप्ति हो जानेपर मनुष्य न केवल भवसागर से पार हो जाता है, अपितु उसे सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं। तुलसीदास भगवान् शिव की दयालुता एवं नाम की महिमा मानस में इस प्रकार बताते हैं-

जरत सकल सुर बृंद विषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपालु संकर सरिस।।

(रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड, प्रारंभ का सोरठा)

भावार्थ यह है कि जिस भीषण हलाहल विष से सब देवतागण जल रहे थे उसको जिन्होंने

---

[1] भगवान् शिव के जिन शतनामों को नारदजी ने जपा उसका उल्लेख इसी पुस्तक में अन्यत्र हुआ है।

(दयावश) स्वयं पान कर लिया, रे मन्द मन! तू उन शंकरजी को क्यों नहीं भजता? उनके समान कृपालु (और) कौन है?

पुनः **प्रभु समरथ सर्बग्य सिव सकल कला गुन धाम।**
जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम।। (मानस/बा. काण्ड/दोहा 107)

भावार्थ है-हे प्रभो! आप(शिव) समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणस्वरूप हैं। सब कलाओं और गुणों के निधान हैं और योग, ज्ञान तथा वैराग्य के भण्डार हैं। आपका नाम शरणागतों के लिये कल्पवृक्ष(अर्थात् सभी कामनाओं को पूरा करनेवाला) है।

रुद्रहृदयोपनिषद् में व्यासजी शुकदेवजी को भगवान् शिव की महिमा बताते हुए कह रहे हैं कि "भगवान् रुद्र सर्वदेवरूप हैं और सब देवता रुद्रस्वरूप हैं। ....रुद्र ब्रह्मा और विष्णुस्वरूप हैं। .... प्रयोजनानुसार रुद्र ने अपनी एक ही मूर्ति को तीन(ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र) प्रकार से व्यवस्थित किया है। ...."श्री रुद्र रुद्र रुद्र" इस प्रकार से जो बुद्धिमान् जपता है, इससे समस्त देवों का कीर्तन हो जाने के कारण वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।"

सर्वदेवात्मको रुद्रः ......ब्रह्मविष्णुमयो रुद्र......
प्रयोजनार्थ रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधाकृता।

..

श्री रुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः।
कीर्तनात्सर्वदेवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते। (रुद्रहृदयोपनिषद् 4-17)

शिवपुराण में(तथा अन्यत्र भी) कहा गया है कि ज्ञान की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, परन्तु भगवान् का भजन अत्यन्त सुकर है। इसलिये संतशिरोमणि पुरुष मुक्ति के लिये भी शिव का भजन ही करते हैं, ज्ञानस्वरूप मोक्षदाता परमात्मा शिव भजन के ही अधीन हैं।

ज्ञानं तु दुष्करं लोके भजनं सुकरं मतम्।
तस्माच्छिवं च भजत मुक्त्यर्थमपि सत्तमाः।।
शिवो हि भजनाधीनो ज्ञानात्मा मोक्षदः परः।

..

(शि. पु. कोटिरु. संहिता अ. 41/17-18)

आगे कहा गया है कि जो अनन्य भक्ति से युक्त होकर शम्भु का भजन करता है उसे अन्त में अवश्य ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

अनन्यया च भक्त्या वैयुक्तः शम्भुं भजेत्पुनः।
अन्ते च मुक्तिमायाति नात्र कार्या विचारणा।।

(शि. पु. कोटिरु. संहिता अ. 43/36)

पुनः कहा गया है कि मनु ने महान् पापों के लिये महान् और लघु पापों के लिये लघु

प्रायश्चित्त बताये हैं। उन अशेष पापकर्मों के लिये जो-जो प्रायश्चित्त-संबंधी कर्म बताये गये हैं, उन सबमें भगवान् शंकर का स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। जिस पुरुष के चित्त में पापकर्म करने के अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो एकमात्र भगवान् शिव का स्मरण ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। प्रातः, सायं, रात तथा दोपहर आदि में भगवान् शिव का स्मरण करने से पापरहित हुआ मनुष्य समस्त क्लेशों से छूटकर माहेश्वरधाम, स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। (शि. पु. उमा सं. 16/28-32)

माहेश्वरमवाप्नोति मध्याह्नादिषु संस्मरन्।
प्रातर्निशि च संध्यायांक्षीणपापो भवेन्नरः।।
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गं वा समस्तक्लेशसंक्षयम्।
शिवस्यस्मरणादेव तस्य शंभोरुमापतेः।। (शि. पु. उमासंहिता अ. 16/31-32)

आदि में 'नमः' पद से युक्त 'शिवाय'-ये तीन अक्षर जिसकी जिह्वा के अग्रभाग में विद्यमान हैं, उसका जीवन सफल है। पञ्चाक्षर-मन्त्र के जप में लगा हुआ पुरुष यदि पण्डित, मूर्ख, अन्त्यज अथवा अधम भी हो तो वह पापपञ्जर से मुक्त हो जाता है।

नमस्करादिसंयुक्तं शिवायेत्यक्षरत्रयम्।
जिह्वाग्रेवर्तते यस्य सफलं तस्य जीवितम्।।
अंत्यजो वाधमो वापिमूर्खो वा पंडितोऽपि वा।
पंचाक्षरजपे निष्ठोमुच्यते पापपंजरात्।।

(शि. पु. वायवीयसं. उ. ख. 12/36-37)

चलते-फिरते, खड़े होते अथवा स्वेच्छानुसार कर्म करते हुए पवित्र या अपवित्र पुरुष के जप करनेपर भी यह मन्त्र(पञ्चाचर) निष्फल नहीं होता। अन्त्यज, मूर्ख, सदाचार से हीन, पतित आदि सभी का उद्धार करने के लिये कलियुग में इस मन्त्र के जप से बढ़कर कोई उपाय नहीं है।

सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च।
पंचाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे।।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयन्न चनिष्फलः।।

(शि. पु. वायवीयसं. उ. ख. 14/62-63)

नैमिषारण्य में ऋषियों को लोमशजी शिव की महिमा बताते हुए कह रहे हैं कि जो लोग 'शिव' इस दो अक्षर के नाम का उच्चारण करेंगे उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे-इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

शिवेति द्वयक्षरं नाम व्याहरिष्यन्ति ये जनाः।
तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यन्ति न चान्यथा।। (स्क. पु. मा. के. 1/14)

वे आगे कहते हैं कि-हे हरे! और हे हर! इस भगवान् शिव एवं विष्णु[1] के नाम लेने से परमात्मा शिव ने बहुतेरे मनुष्यों की रक्षा की है।

हरे हरेति वै नाम्ना शम्भोश्चक्रधरस्य च।
रक्षिता बहवो मर्त्याः शिवेन परमात्मा।। (स्क. पु. मा. के. 5/87)

स्कन्दपुराण में ही शिवपूजन की महिमा के प्रसंग में कहा गया है कि जिनके मुख से **'नमः शिवाय'** यह पञ्चाक्षर मन्त्र सदा उच्चारित होता रहता है, वे मनुष्य भगवान् शंकर के स्वरूप हैं।(स्क. पु. मा. के. अ. 5/96)

'शिव' यह दो अक्षरों का नाम महापातकों का भी नाश करनेवाला है। जिन मनुष्यों के मुख से 'शिव' नाम का जप होता रहता है, उन्होंने ही इस सम्पूर्ण जगत् को धारण किया है।(स्क. पु. मा. के. अ. 5/100)

शिवेति द्वयक्षरं नाम महापापप्रणाशनम्।
येषां मुखोद्गतं न्त्रृणां तैरिदं धार्यते जगत्।। (स्क. पु. मा. के. 5/100)

भावार्थ यह है कि पंचाक्षर मंत्र को जपने का इतना फल होता है कि मनुष्य शिव के सारूप्य(एक प्रकार की मुक्ति) को प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार शिव का नाम जपनेवाला इतना पवित्र हो जाता है वह संसार की सभी वस्तुओं-नदी, पर्वत, जड़-चेतन आदि-को पवित्र करनेवाला हो जाता है। जब संसार में पाप का बाहुल्य हो जाता है तो संसार का प्रलय हो जाता है। पाप के बाहुल्य को रोकने एवं अपवित्र को पवित्र करने से शिवनाम का जापक संसार का धारण करनेवाला कहलाता है।

षडक्षर मन्त्र की महिमा को अन्यत्र बताते हुए कहा गया है कि जो श्रद्धापूर्वक इसका जप करता है, उसका ब्रह्महत्याजनित पाप भी नष्ट हो जाता है। दस बार षडक्षर मन्त्र(ॐ **नमः शिवाय**) के जप से एक दिन का और बीस बार के जप से मनुष्य एक वर्ष का पाप धो डालता है। भगवान् शिव का यह मन्त्र मनुष्यों के सब पाप और अमंगल हर लेनेवाला है।(संक्षिप्त स्क. पु. नागर खं. अ.-29 पृ. 844 गीताप्रेस, गोरखपुर)

सूतजी उपरोक्त मन्त्र की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि जैसे सब देवताओं में त्रिपुरारि भगवान् शंकर श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब मन्त्रों में शिव का षडक्षर मन्त्र श्रेष्ठ है। वह जप करनेवाले पुरुषों को मोक्ष देनेवाला है। सिद्धि की इच्छा रखनेवाले सब श्रेष्ठ मुनि इस मन्त्र का सम्यग्रूप से

---

[1] यहाँ विष्णु एवं शिव को अभिन्न या एक मानकर ऐसा कहा गया है। क्योंकि दोनों नामों के जापक को फल देनेवाले शिवजी ही है ऐसा कहा गया है।

सेवन करते हैं। देहधारी मनुष्य तभीतक दुःखों से भरे हुए इस भयंकर संसार में भटकते हैं, जबतक कि वे एक बार भी इस मन्त्र का उच्चारण नहीं करते। (स्क. पु. ब्राह्मख. ब्रह्मो. ख. 1/9-10, 17)

देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरांतकः।
मंत्राणां परमो मंत्रस्तथा शैवः षडक्षरः।।
एष पंचाक्षरो मन्त्रो जप्तॄणां मुक्तिदायकः।
संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धिकांक्षिभिः।।

(स्क. पु. ब्राह्मख. ब्रह्मो. ख. 1/9-10)

'शिव' यह दो अक्षर का मन्त्र ही बड़े-बड़े पातकों का नाश करने में समर्थ है और उसमें 'नमः' पद जोड़ दिया गया, तब तो वह मोक्ष देनेवाला हो जाता है।(स्क. महापु. ब्रा. ब्रह्मोत्तरखण्ड अ. 1/22)

महापातकविच्छित्त्यै शिव इत्यक्षरद्वयम्।
अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते।।

भगवान् शिव महादेव, महादेव और महादेव ऐसे नाम उच्चारण करनेवाले के प्रति ऐसे दौड़ते हैं, जैसे वत्सला गौ अपने बछड़े के प्रति-

महादेव महादेव महादेवेति वादिनम्।
वत्सं गौरिव गौरीशो धावन्तमनुधावति।।

(कल्याण के शिवोपासनांक पृ. 65 से उद्धृत)

जो पुरुष तीन बार 'महादेव, महादेव, महादेव' इस तरह भगवान् का नाम उच्चारण करता है, भगवान् एक नाम से मुक्ति देकर शेष दो नाम से सदा के लिये उसके ऋणी हो जाते हैं-

महादेव महादेव महादेवेति यो वदेत्।
एकेन मुक्तिमाप्नोति द्वाभ्यां शम्भू ऋणी भवेत्।।

(कल्याण के शिवोपासनांक पृ. 65 से उद्धृत)

शिव रहस्य में भगवान् शिव के वचन इस प्रकार हैं- "जो गति योगियों और काशी में शरीर छोड़नेवालों की होती है, वही गति मेरे नाम का कीर्तन करनेवालों को प्राप्त होती है। जो मनुष्य मेरे मुक्तिदायक-महेश, पिनाकपाणि, शम्भु, गिरिश, हर, शंकर, चन्द्रमौलि, विश्वेश्वर, अन्धकरिपु, पुरसूदन इत्यादि नामों का उच्चारण करते हुए मेरी अर्चा करते हैं, वे धन्य हैं। जो नीललोहित, दिगम्बर, कृत्तिवास, श्रीकण्ठ, शान्त, निरुपाधिक, निर्विकार, मृत्युञ्जय, अव्यय, निधीश, गणेश्वर-इत्यादि नामों का उच्चारण करते हुए मेरी पूजा करते हैं, वे धन्य हैं। मेरे नामरूपी अमृत का पान करनेवाले और निरन्तर मेरे चरणों का पूजन करनेवाले तथा मेरे लिङ्गों का पूजन करनेवाले मेरे प्रिय भक्त पुनः माता का दूध पीने की न तो इच्छा करते हैं और न उन्हें फिर वह प्राप्त

होता है। वे तो सारे दुःखों से छूटकर मेरे लोक में अनन्त कालतक निवास करते हैं। महेशरूपी नाम की दिव्य अमृतधारा से परिप्लावित मार्ग में से होकर भी जो निकल जाते हैं, वे कदापि शोक को प्राप्त नहीं होते।” (शिवरहस्य-सप्तमांश, प्रथम अध्याय कल्याण, शिवांक पृ. 361)

इसी ग्रन्थ में आगे कहा गया है कि- “भगवान् श्रीशिव यमदूतों को आज्ञा देते हैं कि आज कोई महापापी ब्रह्महत्या करनेवाला मरा है, उसके पापों की गिनती ही नहीं है। उसने मरते समय जो वाक्य कहे उन्हें मैं कहता हूँ, सुनो। ‘आहर अस्त्रम्’ (अस्त्र लाओ), ‘संहर एतौ’ (इनको मारो), ‘प्रहर प्रहर’ (प्रहार करो, प्रहार करो) यह कहता हुआ वह पापी ब्रह्महत्यारा मर गया। किंतु उपर्युक्त वाक्यों के उच्चारण से उसके सारे पाप नष्ट हो गये। ‘आहर’ आदि वाक्यों के अन्तर्भूत ‘हर’ नाम पापों का नाश करनेवाला है। उसी का मरणकाल में उच्चारण होने से उसके सारे पापों का नाश हो गया। बुद्धिपूर्वक अथवा अबुद्धिपूर्वक जो लोग मरण के समय मेरे नाम का उच्चारण करते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। ‘प्रहर प्रहर’ इन वाक्यों में मेरे नाम का जो दो बार उच्चारण हुआ, वही मेरी पूजा के लिये पर्याप्त हो गया। यह मैं भुजा उठाकर डंके की चोट कहता हूँ। मृत्युकाल में जो मेरे नामों का स्मरण करते हैं, मैं उन्हें शीघ्र ही मोक्ष देता हूँ, यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। ‘आहर’ आदि वाक्यों में उपसर्गों को हटा देने से मेरे मुक्तिदायक नाम ही शेष रह जाते हैं। मृत्युकाल में यदि कोई महापातकी भी मेरा नाम लेता है तो उसे मैं उस नाम के प्रभाव से मोक्ष दे देता हूँ। मेरे जितने नाम हैं उन सबमें मुक्ति देने का स्वभाव है। मृत्युकाल में मेरा नाम लेकर अनेक मुनष्य मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं। नाम का माहात्म्य ही ऐसा है, इसमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं करना चाहिये। ‘हर’ यह नाम अनेकों पापों को हरता है। मैं पापों को हरनेवाला हूँ, इसीलिये मुझे लोग ‘हर’ कहते हैं। हाल ही में महापाप करके अन्तकाल में शिवस्मरण करने से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसीलिये हे सौम्य! तुम लोग उसे यहाँ तुरंत ले आओ।”[1]

पुनः श्रीविष्णु ब्रह्माजी से कहते हैं कि “जो ‘शम्भु, शम्भु, महेश’ इन नामों का उच्चारण बराबर आनन्दपूर्वक करते हैं, उनको गर्भवास का भय नहीं होता। ‘हे शिव! हे परमेश!’ इस प्रकार आनन्दपूर्वक जो निरन्तर भगवान् शिव का नाम लेते हैं, उन्हें गर्भ में आना नहीं पड़ता। जो प्रतिदिन आनन्दपूर्वक शंकर का नाम लेते हैं, वे धन्यवाद के पात्र हैं-यह हम सत्य-सत्य कहते हैं। संसाररूपी

---

[1] स्कन्दपुराण में राजा इन्द्रसेन की कथा के प्रसंग में इसी से मिलती-जुलती बातों का उल्लेख है। (स्क. पु. माहे. 5/64-86)। इन्द्रसेन ने अनजाने में ‘हर’ नाम का उच्चारण करके शिवलोक में चण्ड नामक गण का पद पाया। पुनः इस तरह की कथा पद्मपुराण के पातालखण्ड, अध्याय 111 में आती है। वहाँ पर भी मरते समय किसी पापी ने ‘प्रहर’ एवं ‘आहर’ शब्दों के उच्चारणमात्र से शिवलोक को प्राप्त किया क्योंकि इन शब्दों के अन्त में ‘हर’ शब्द लगा है।

घोर सागर से तरने के लिये शंकरनामरूप ही नौका है। इसको छोड़कर संसारसागर से पार होने का कोई और उपाय नहीं है। हे ब्रह्मन्! यह निर्मल शिव-नाम मधुर से भी मधुर हैं और मुक्ति को देनेवाला तथा संसारभय का नाश करनेवाला है।" (शिवरहस्य 7/20 कल्याण, शिवांक पृ. 361)

पूर्वकाल में एक पापी तथा कुष्ठ-रोग से पीड़ित ब्राह्मण कीकट (मगध) देश में रहता था। वह सदा ब्रह्महत्यादि पाप किया करता था। उस ब्राह्मण को वृद्धावस्था में सोमवार के दिन पुत्र पैदा हआ। उसने हर्ष से उस पुत्र का नाम 'सोमवासर' रख दिया। वह ब्राह्मण अपने पुत्र को बराबर हर काम में 'सोमवासर-सोमवासर' कहकर पुकारा करता था। एक दिन उस ब्राह्मण को साँप ने काट लिया। विष की ज्वाला से पीड़ित होकर बार-बार 'सोमवासर-सोमवासर' पुकारते-पुकारते ब्राह्मण का देहान्त हो गया। उसी समय शिव के गण तुरंत एक सुन्दर विमान लाये और उसको उसमें चढ़ाकर कैलास ले गये (शिवरहस्य 7/20 शिवांक पृ. 361-362)। इसी प्रसंग में आगे भगवान् शिव स्वयं यमराज से कहते हैं-

"जो पुरुष प्रसंगवश भी मेरा नाम उत्साहपूर्वक रटेगा, वह सर्वथा पापों से छूट जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। हे यमराज! मेरा नाम पापों के वन को जलाने में दावानल के समान है। मेरे एक नाम का उच्चारण करते ही पापों का समूह तुरंत नष्ट हो जाता है। मेरे नाम का श्रद्धापूर्वक स्मरण करने पर पाप कहाँ ठहर सकते हैं? क्योंकि पापों के झुंड का नाश करने में तो उसे वज्रपात की उपमा दी गयी है। जिस प्रकार कालाग्नि की ज्वालाओं से करोड़ों पर्वत जल गये थे, उसी प्रकार मेरे नामरूपी अग्नि से करोड़ों महापातक नष्ट हो जाते हैं। मैं उस चाण्डाल को भी निःसंदेह घोर संसारसमुद्र से तार देता हूँ, जिसका चित्त मेरे नाम-स्मरण में अनुरक्त है। जिसने पापों के झुंड का नाश करनेवाला मेरा नाम अन्तकाल में स्मरण कर लिया उसने घोर संसार-समुद्र को चुटकियों में पार कर लिया समझो। मेरे नाम का स्मरण मेरे ही स्मरण के तुल्य है और मेरी स्मृति हो जाने पर पाप कहाँ ठहर सकते हैं? हे धर्मराज! किसी पुरुष के अंदर पाप तभीतक ठहरते हैं, जबतक कि वह महापातकों का नाश करनेवाले मेरे नाम का स्मरण नहीं करता। करोड़ों महापातकों का नाश तभीतक नहीं होता, जबतक मन मेरे नाम-स्मरण में लीन नहीं हो जाता। इसने महापातकों का नाश करनेवाले मेरे 'सोम' नामका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ा, इसलिये इसकी मुक्ति में कोई संदेह ही नहीं हो सकता। हे यम ! मैं तुम्हारे हित की एक बात और कहता हूँ, वह यह है कि तुम प्रतिदिन मेरे भक्तों की यत्नपूर्वक पूजा किया करो, क्योंकि वे मुझे सर्वदा प्यारे हैं।" (शिव. सप्त. अ. 20 शिवांक पृ. 362)

ब्रह्माजी महर्षि गौतम से कहते हैं -

"शिवनामरूपी मणि जिसके कण्ठ में सदा विराजमान रहती है, वह नीलकण्ठ का ही स्वरूप बन जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। हे द्विजवर ! तुम नित्य शंकर का पूजन करो और शिवनामामृत

का पान करो, शिवनाम से बढ़कर कोई दूसरा अमृत नहीं है। मृत्यु के समय 'शिव' ये दो अक्षर भगवान् शंकर की कृपा के बिना मनुष्य के होठों पर नहीं आते। शिवनामरूपी कुल्हाड़ी से संसाररूपी वृक्ष जब एक बार कट जाता है तो फिर वह दुबारा नहीं जमता। पाप ही संसाररूपी वृक्ष की जड़ों की जड़ है और शिवनाम का एक बार जप करने से ही उसका नाश हो जाता है।" (शिव. 7/22 शिवांक पृ. 362)

यमराज भी गौतमजी सें कहते हैं-

"महान्-से-महान् पापी भी अथवा जिसने जीवन में कोई भी पाप न छोड़ा हो, वह अन्तकाल में यदि शिवनाम का उच्चारण कर ले तो वह फिर मेरा द्वार नहीं देख सकता। 'शिव'-शब्द का उच्चारण किये बिना ब्राह्मण भी मुक्त नहीं हो सकता और 'शिव'-शब्द का उच्चारण कर चाण्डाल भी मुक्त हो सकता है। यों तो शिवजी के सभी नाम मोक्षदायक हैं, किंतु उन सबमें 'शिव' नाम सर्वश्रेष्ठ है, उसका माहात्म्य गायत्री के समान है।" (शिव. 7/22 शिवांक पृ. 362)

बृहद्धर्मपुराण में भी कहा गया है कि दो अक्षरोंवाला 'शिव'-नाम अमंगलों का नाश करनेवाला है तथा इसके स्मरणमात्र से पापों के ढेर समाप्त हो जाते हैं।

शिवेति द्व्यक्षरं नाम यस्यामङ्गलनाशकम्।।
केवलस्मरणेनैव पापराशीन्निवारयेत्। (बृहद्धर्मपु. 37/58-59)

श्रुति का प्रमाण है कि संसार के दुःख की शान्ति के लिये शिव के नाम से भिन्न कोई दवा नहीं है।

भवव्याधिशान्त्यै भवनाम भिन्नं न भैषज्यमास्ते श्रुतिस्तत्प्रमाणम्
(बृहद्धर्मपु. 39/31)

इस धरती पर जो मनुष्य भगवान् शिव के नाम का कीर्तन करता है उसके फलों को शेषनाग भी बताने में असमर्थ हैं। भगवान् शिव के कीर्तनमात्र से ऐसा मनुष्य भी मुक्ति को प्राप्त कर लेता है जिसने न तो तीर्थ, न तो यज्ञ, न तो दान और न ही व्रत किया हो।

कृत्तिवासेति यो नाम कीर्त्तयेत् भुवि मानवः।
तस्य यत् तत् फलं वक्तुं शेषदेवो न शक्तये।।
विना तीर्थैर्विनायज्ञैर्विनादानैर्विना व्रतैः।
मुक्तिं प्रयान्ति मनुजाः कृत्तिवासेति कीर्त्तनात्।। (एकाम्रपुराणम् 42/71-72)

सौरपुराण (अ. 65) में लिखा है-

'जो बिल्ववृक्ष के नीचे बैठकर तीन रात उपोषित रहकर पवित्रतापूर्वक 'शिव'-नाम का एक लाख जप करता है, वह भ्रूणहत्या के पाप से छूट जाता है।'

'जितने भी स्थूल अथवा सूक्ष्म पाप हैं, वे सारे-के-सारे केवल क्षणभर शिव का चिन्तन करने से तुरंत नष्ट हो जाते हैं।'

'जल के अंदर निमग्न होकर शिव का ध्यान करते हुए प्रसन्न-चित्त से 'हर' इस नाम को केवल आठ बार जपने से मनुष्य पापों से छूट जाता है।'

'महादेव का स्मरण करनेवाले यदि पापी भी हों तो उन्हें महात्मा ही समझना चाहिये, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।'

सौरपुराण में ही अन्यत्र कहा गया है-

'भगवान् शिव के नाम का कीर्तन करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।'

नाम संकीर्तनाद्यस्य भिद्यते पापपञ्जरम् (सौ. पु. 7/24)

'व्यक्ति पञ्चाक्षर मन्त्र के जप से भगवान् शिव का गण हो जाता है।'

पञ्चाक्षर जपेद्यस्तु शिवास्यानुचरो भवेत्।। (सौ. पु. 65/3)

शिवपुराण में कहा गया है कि शिवनाम के स्मरण से धार्मिक कृत्य एवं कर्मों की न्यूनता पूर्ण हो जाती है-

यत्पादपद्मस्मरणाद्यस्यनामजपादपि।
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम्।। (शिवपु., कै. सं. 12/64)

शिवगीता के अनुसार नाम-कीर्तन का सबको अधिकार है-

नामसंकीर्तने ध्याने सर्व एवाधिकारिणः। (शिवगीता 16/12)

परमात्मा के विशिष्ट नाम ये हैं-

न च नामानि रूपाणि शिवस्य परमात्मनः।
तथापि मायया तस्य नामरूपे प्रकल्पिते।।
शिवो रुद्रो महादेवः शंकरो ब्रह्म सत् परम् ।
एवमादीनि नामानि विशिष्टानि परस्य तु ।। (सूतसं., यज्ञवै. खं., अं. 27/28-29)

अर्थात्-भगवान् शिव का कोई भी नाम-रूप नहीं है तथापि माया से अनेक नाम-रूप दिये गये हैं। शिव, रुद्र, महादेव, शंकर, ब्रह्म, सत्, परम आदि नाम उनमें से विशेष जानना चाहिये।

नारद महापुराण में व्यासजी के शिष्य जैमिनि मुनि भगवान् शिव की स्तुति करते हुए कह रहे हैं कि "जो स्मरणमात्र से संसार-बन्धन का नाश करनेवाले हैं, आपके उन दिव्य नामों

का हम सैकड़ों वर्षोंतक कीर्तन करते रहें।" भावार्थ यह है कि भगवान् शिव के अनेकों नाम हैं। वे सभी स्मरणमात्र से भवसागर से पार लगानेवाले हैं। (नारदपु. उत्तरभाग अ. -73/89)

स्मृतिमात्रेण संसारविनाशकराणि ते।
नामानि खलु दिव्यानि प्रब्रवाम शरदः शतम्।। (नार. महा पु. उ. 73/89)

सूतसंहिता का कथन है कि रुद्रजापी महापातकरूपी पंजर से मुक्त होकर सम्यक-ज्ञान प्राप्त करता है और अन्त में विशुद्ध मुक्ति प्राप्त करता है। रुद्राध्याय के समान जपने योग्य, स्वाध्याय करने योग्य, वेदों और स्मृतियों आदि में अन्य कोई मन्त्र नहीं है।

रुद्रजापी विमुच्येत महापातक पञ्जरात्।।
सम्यक ज्ञानं च लभते तेन मुच्येत बन्धनात्।
अनेन सदृशं जप्यं नास्ति सत्यं श्रुतौ स्मृतौ।।

(सूतसंहिता, यज्ञवैभवखंड पूर्वभाग अध्याय 2/36-37)

सूतसंहिता में आगे कहा गया है कि प्रेमपूर्वक शिव या रुद्र का जप करने से अन्य सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अतः रुद्र के जप से भुक्ति एवं मुक्ति की प्राप्ति होती है-ऐसा प्रसिद्ध है।

शिवे रुद्रजपात्प्रीतेप्रीता एवान्य देवताः।
अतो रुद्रजपादेव भुक्तिमुक्ति प्रसिध्यतः।। (सू. सं., यज्ञवै. खं. पू. भा. 2/41)

शिवनाम की महिमा कहाँतक कही जाय? पुष्पदन्ताचार्य ने अपने महिम्न स्तोत्र[1] में कहा है कि 'स्याही के लिये तो काजल का एक पहाड़ हो और समुद्र की दावात में उसे भरकर रखा जाय, कल्पवृक्ष की टहनियों की कलम बनायी जाय और पृथिवी को कागज बनाकर भगवती सरस्वती अनन्त कालतक लिखती रहें तब भी हे प्रभो! आपके गुणों का अन्त नहीं आ सकता।' भला, जब माता सरस्वती ही भगवान् के गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हैं, तब दूसरा कोई इस कार्य को क्या कर सकता है? भगवान् का नाम-कीर्तन जीव के लिये परम अवलम्बन है, इससे बड़ा सहारा और कोई हो ही नहीं सकता। नाम पर विश्वास करनेवाले मनुष्य को इसके प्रमाण की आवश्यकता ही नहीं होती। जिसने भगवन्नाम का आश्रय ले लिया, वह स्नेहमयी जननी की सुखद गोद की

---

[1] **असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे**
सुरतरुवरशारवा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश! पारं नयाति।। (शिवमहि. स्तोत्र 32)

भाँति भगवान् की निरापद गोद में सदा के लिये जा बैठा। परंतु यह विश्वास और श्रद्धा के बिना नहीं होता। विश्वास हुए बिना मनुष्य भगवन्नामका आश्रय नहीं लेता। भगवन्नामका आश्रय लिये बिना मन से जगत् के विषयों का आश्रय नहीं छूटता और जबतक विषयों का आश्रय है, तबतक किसी प्रकार भी सच्चे सुख और शान्ति का अनुभव नहीं हो सकता। वासनानाश का सर्वोत्तम उपाय मन को प्रभु के नाम-जप-कीर्तनादि में बराबर लगाये रहना और विश्वास करना ही है।

* * *

गंगा का माहात्म्य

जो मनुष्य सहस्त्रों योजन दूर से भी गंगाजी का स्मरण करता है, वह पापाचारी होनेपर भी परमगति को प्राप्त होता है।

योजनानां सहस्त्रेषु गंगां स्मरति यो नरः।।
अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमां गतिम्।

(पद्ममहापु. स्वर्गखण्ड 41/14-15)

जिनका चित्त पाप से दूषित है, ऐसे समस्त प्राणियों और मनुष्यों की गंगा के सिवा अन्यत्र गति नहीं है। गंगा के सिवा दूसरी कोई गति है ही नहीं। भगवान् शंकर के मस्तक से निकली हुई गंगा सब पापों को हरनेवाली और शुभकारिणी हैं। वे पवित्रों को भी पवित्र करनेवाली और मंगलमय पदार्थों के लिये भी मंगलकारिणी है।

सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम्।
गतिरन्यत्र मर्त्यानां नास्ति गंगासमा गतिः।।
पवित्राणां पवित्रं या मंगलानां च मंगलम्।
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा।। (पद्ममहापु. स्वर्गखण्ड 43/56-57)

श्रीकृष्ण द्वारा युधिष्ठिर के प्रति महादेवजी के माहात्म्य का कथन[1]

युधिष्ठिर ने कहा– गङ्गानन्दन! आपने ब्रह्माजी के भी ईश्वर कल्याणकारी जगदीश्वर भगवान् शिव के जो नाम सुने हों, उन्हें यहाँ बताइये। जो विराट् विश्वरूपधारी हैं, अव्यक्त के भी कारण हैं, उन सुरासुरगुरू भगवान् शंकर के माहात्म्यका यथार्थरूप से वर्णन कीजिये।

भीष्मजी कहते हैं– राजन्! मैं परम बुद्धिमान् महादेवजीके गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ। जो भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं, किन्तु (सबके आत्मा होने के कारण) सर्वत्र देखने में नहीं आते हैं, ब्रह्मा, विष्णु और देवराज इन्द्रके भी स्त्रष्टा तथा प्रभु हैं, ब्रह्मा आदि देवताओं से लेकर पिशाचतक जिनकी उपासना करते हैं, जो प्रकृति से भी परे और पुरुष से भी विलक्षण हैं, योगवेत्ता तत्त्वदर्शी ऋषि जिनका चिन्तन करते हैं, जो अविनाशी परम ब्रह्म एवं सदसत्स्वरूप हैं, जिन देवाधिदेव प्रजापति शिव ने अपने तेज से प्रकृति और पुरुष को क्षुब्ध करके ब्रह्माजी की सृष्टि की, उन्ही देवदेव बुद्धिमान् महादेवजी के गुणों का वर्णन करने में गर्भ, जन्म, जरा और मृत्यु से युक्त कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है? बेटा! शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायण को छोड़कर मेरे–जैसा कौन पुरुष परमेश्वर शिव के तत्त्व को जान सकता है? ये भगवान् विष्णु सर्वज्ञ, गुणों में सबसे श्रेष्ठ, अत्यन्त दुर्जय, दिव्य नेत्रधारी तथा महातेजस्वी हैं। ये योगदृष्टि से सब कुछ देखते हैं। भरतनन्दन! रुद्रदेव के प्रति भक्ति के कारण ही महात्मा श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रक्खा है। राजन्! कहते हैं कि पूर्वकाल में महादेवजी को बदरिकाश्रम में प्रसन्न करके उन दिव्यदृष्टि महेश्वर से श्रीकृष्ण ने सब पदार्थों की अपेक्षा प्रियतर–भाव को प्राप्त कर लिया अर्थात् वे सम्पूर्ण लोकों के प्रियतम बन गये। इन माधव ने वरदायक देवता चराचरगुरु भगवान् शिव को प्रसन्न करते हुए पूर्वकाल में पूरे एक हजार वर्षतक तपस्या की थी। श्रीकृष्ण ने प्रत्येक युग में महेश्वर को संतुष्ट किया है। महात्मा श्रीकृष्ण की परम भक्ति से वे सदा प्रसन्न रहते हैं। जगत् के कारणभूत परमात्मा शिव का ऐश्वर्य जैसा है, उसे पुत्र के लिये तपस्या करते हुए इन अच्युत श्रीहरि ने प्रत्यक्ष देखा है।

भारत! उसी ऐश्वर्य के कारण मैं परात्पर श्रीकृष्ण के सिवा किसी दूसरे को ऐसा नहीं देखता, जो देवाधिदेव महादेवजी के नामों की पूर्णरूप से व्याख्या कर सके। नरेश्वर! ये महाबाहु श्रीकृष्ण ही भगवान् महेश्वर के गुणों तथा उनके यथार्थ ऐश्वर्य का पूर्णतः वर्णन करने में समर्थ हैं।

वैशम्पायनजी कहते हैं– जनमेजय! महायशस्वी पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर से ऐसा कहकर भगवान् वासुदेव के प्रति शंकरजी की महिमा से युक्त यह बात कही।

भीष्मजी बोले– देवासुरगुरो! विष्णुदेव! राजा युधिष्ठिर ने मुझसे जो पूछा है, उस विश्वरूप शिव के माहात्म्य को बताने के योग्य आप ही हैं। पूर्वकाल में ब्रह्मपुत्र तण्डीमुनि के द्वारा ब्रह्मलोक में

---

[1] प्रस्तुत निबंध गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित सटीक 'महाभारत' (पष्ठ खण्ड) के अनुशासनपर्व के पाँच अध्यायों (14–18) का संक्षिप्त संकलन है।

ब्रह्माजी के समक्ष जिस शिव-सहस्रनाम का निरूपण किया गया था, उसी का आप वर्णन करें और ये उत्तम व्रतका पालन करनेवाले व्यास आदि तपोधन एवं जितेन्द्रिय महर्षि आपके मुख से इसका श्रवण करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा-भगवान् शंकर के कर्मोंकी गति का यथार्थरूप से ज्ञान होना अशक्य है। ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता, महर्षि तथा सूक्ष्मदर्शी आदित्य भी जिनके निवासस्थान को नहीं जानते, सत्पुरूषों के आश्रयभूत उन भगवान् शिव के तत्त्व का ज्ञान मनुष्यमात्र को कैसे हो सकता है? अत: मैं उन असुरविनाशक व्रतेश्वर भगवान् शंकर के कुछ गुणों का आप लोगों के समक्ष यथार्थरूप से वर्णन करूँगा ।

वैशम्पायनजी कहते हैं-जनमेजय! ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण आचमन करके पवित्र हो बुद्धिमान् परमात्मा शिव के गुणों का वर्णन करने लगे ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले-यहाँ बैठे हुए ब्राह्मणशिरोमणियों! सुनो, तात युधिष्ठिर! और गंङ्गानन्दन भीष्म! आप लोग भी यहाँ भगवान् शंकर के नामों का श्रवण करें। पूर्वकाल में साम्ब की उत्पत्ति के लिये अत्यन्त दुष्कर तप करके मैंने जिस दुर्लभ नामसमूह का ज्ञान प्राप्त किया था और समाधि के द्वारा भगवान् शंकर का जिस प्रकार यथावत्-रूप से साक्षात्कार किया था, वह सब प्रसंङ्ग सुना रहा हूँ। युधिष्ठिर! बुद्धिमान् रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न के द्वारा पूर्वकाल में जब शम्बरासुर मारा गया और वे द्वारका में आये, तबसे बारह वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् रूक्मिणी के प्रद्युम्न, चारुदेष्ण आदि पुत्रों को देखकर पुत्र की इच्छा रखनेवाली जाम्बवती मेरे पास आकर इस प्रकार बोली। 'अच्युत! आप मुझे अपने ही समान शूरवीर, बलवानों में श्रेष्ठ तथा कमनीय रूप-सौन्दर्य से युक्त निष्पाप पुत्र प्रदान कीजिये। इसमें बिलम्ब नहीं होना चाहिये। यदुकुलधुरन्धर! आपके लिये तीनों लोकों में कोई भी वस्तु अल्भ्य नहीं है। आप चाहें तो दूसरे-दूसरे लोकों की सृष्टि कर सकते हैं। आपने बारह वर्षोंतक व्रतपरायण हो अपने शरीर को सुखाकर भगवान् पशुपति की आराधना की और रुक्मिणीदेवी के गर्भ से अनेक पुत्र उत्पन्न किये। मधुसूदन! चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेश, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, पद्युम्न और शम्भु- इन सुन्दर पराक्रमी पुत्रों को जिस प्रकार आपने रुक्मिणीदेवी के गर्भ से उत्पन्न किया है, उसी प्रकार मुझे भी पुत्र प्रदान कीजिये।'

देवी जाम्बवतीके इंस प्रकार प्रेरणा देनेपर मैंने उस सुन्दरी से कहा-'रानी! मुझे जाने की अनुमति दो। मैं तुम्हारी प्रार्थना सफल करूँगा।' तब मैं उस राजकुमारी की अनुमति ले नरश्रेष्ठ पिता वसुदेव, माता देवकी तथा राजा उग्रसेन के समीप गया। वहाँ जाकर जाम्बवती ने अत्यन्त आर्त होकर मुझसे जो प्रार्थना की थी, वह सब मैंने बताया और उन सबसे तप के लिये जाने की आज्ञा ली। गद और अत्यन्त बलवान् बलरामजीसे विदा माँगी। उन दोनों ने बड़े दुःख से अत्यन्त प्रेमपूर्वक उस समय मुझसे कहा-'भाई ! तुम्हारी तपस्या निर्विघ्न पूर्ण हो।' गुरुजनों की आज्ञा पाकर मैंने गरुड का चिन्तन

किया। उसने (आकर) मुझे हिमालय पर पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचकर मैंने गरुड को विदा कर दिया।

मैंने उस श्रेष्ठ पर्वतपर वहाँ अद्‌भुत भाव देखे। मुझे वहाँ का स्थान तपस्या के लिये अद्‌भुत, उत्तम और श्रेष्ठ क्षेत्र दिखायी दिया। वह व्याघ्रपाद के पुत्र महात्मा उपमन्यु का दिव्य आश्रम था, जो ब्राह्मी शोभा से सम्पन्न तथा देवताओं और गन्धर्वों द्वारा सम्मानित था। वेद-वेदाङ्गों के पारंगत विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका सेवन करते थे तथा नाना प्रकार के नियमों द्वारा विख्यात हुए महात्मा महर्षि जिसकी शोभा बढ़ाते थे, समस्त प्राणियों के लिये मनोरम उस श्रेष्ठ आश्रम में प्रवेश करते ही मैंने जटावल्कलधारी, प्रभावशाली, तेज और तपस्या से अग्नि के समान देदीप्यमान, शान्तस्वभाव और युवावस्था से सम्पन्न ब्रह्मणशिरोमणि उपमन्यु को शिष्यों से घिरकर बैठा देखा। मैंने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। मुझें वन्दना करते देख उपमन्यु बोले-'पुण्डरीकाक्ष! आपका स्वागत है। आप पूजनीय होकर मेरी पूजा करते हैं और दर्शनीय होकर मेरा दर्शन चाहते हैं, इससे हम लोगों की तपस्या सफल हो गयी।' तब मैंने हाथ जोड़कर आश्रम के मृग, पक्षी, अग्निहोत्र, धर्माचरण तथा शिष्यवर्ग का कुशल समाचार पूछा। तब भगवान् उपमन्यु ने परम मधुर सान्त्वनापूर्ण वाणी में मुझसे कहा-श्रीकृष्ण! आप अपने समान पुत्र प्राप्त करेंगे-इसमें संशय नहीं है। अधोक्षज! आप महान् तप का आश्रय लेकर यहाँ सर्वेश्वर भगवान् शिव को संतुष्ट कीजिये। यहाँ महादेवजी अपनी पत्नी भगवती उमा के साथ क्रीड़ा करते हैं।

जनार्दन! यहाँ सुरश्रेष्ठ महादेवजी को तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य और इन्द्रिय-संयम द्वारा संतुष्ट करके पहले कितने ही देवता और महर्षि अपने शुभ मनोरथ प्राप्त कर चुके हैं। शत्रुनाशक श्रीकृष्ण! आप जिनकी प्रार्थना करते हैं, वे तेज और तपस्या की निधि अचिन्त्य भगवान् शंकर यहाँ शम आदि शुभभावों की सृष्टि और काम आदि अशुभ भावों का संहार करते हुए देवी पार्वती के साथ सदा विराजमान रहते हैं। पहले जो मेरूपर्वत को भी कम्पित कर देनेवाला हिरण्यकशिपु नामक दानव हुआ था, उसने भगवान् शंकर से एक अर्बुद (दस करोड़) वर्षोंतक के लिये सम्पूर्ण देवताओं का ऐश्वर्य प्राप्त किया था। उसी का श्रेष्ठ पुत्र मन्दार नाम से विख्यात हुआ, जो महादेवजी के वर से एक अर्बुद वर्षों तक इन्द्र के साथ युद्ध करता रहा। तात केशव! भगवान् विष्णु का वह भयंकर चक्र तथा इन्द्र का वज्र भी पूर्वकाल में उस ग्रह के अंगों पर पुराने तिनकों के समान जीर्ण-शीर्ण सा हो गया था। निष्पाप श्रीकृष्ण! पूर्वकाल में जल के भीतर रहनेवाले गर्वीले दैत्य को मारकर भगवान् शंकर ने आपको जो चक्र प्रदान किया था, उस अग्नि के समान तेजस्वी शस्त्र को स्वयं भगवान् वृषध्वज ने ही उत्पन्न किया और आपको दिया था, वह अस्त्र अद्‌भुत तेज से युक्त एवं दुर्धर्ष है। पिनाकपाणि भगवान् शंकर को छोड़कर दूसरा कोई उसको देख नहीं सकता था। उस समय भगवान् शंकर ने कहा, 'यह अस्त्र सुदर्शन (देखने में सुगम) हो जाय।' तभी से संसार में उसका सुदर्शन नाम प्रचलित हो गया। तात केशव! ऐसा प्रसिद्ध अस्त्र भी उस ग्रह के अंगो पर जीर्ण सा हो गया। भगवान् शंकर से उसको वर

मिला था। उस अत्यन्त बलशाली बुद्धिमान् ग्रह के अंग में चक्र और वज्र जैसे सैकड़ों शस्त्र भी काम नहीं देते थे। जब उस बलवान् ग्रह ने देवताओं को सताना आरम्भ कर दिया, तब देवताओं ने भी भगवान् शंकर से वर पाये हुए उन असुरेन्द्रों को बहुत पीटा(इस प्रकार उनमें दीर्घकालतक युद्ध होता रहा)।

इसी तरह विद्युत्प्रभ नामक दैत्य पर भी संतुष्ट होकर रुद्रदेव ने उसे तीनों लोकों का आधिपत्य प्रदान कर दिया। इस प्रकार वह एक लाख वर्षोंतक सम्पूर्ण लोकों का अधीश्वर बना रहा। भगवान् ने उसे यह भी वर दिया था कि 'तुम मेरे नित्य पार्षद हो जाओगे' साथ ही उन प्रभु ने उसे सहस्र अयुत(एक करोड़) पुत्र प्रदान किये। अजन्मा भगवान् शिव ने उसे राज्य करने के लिये कुशद्वीप दिया था। इसी प्रकार भगवान् ब्रह्मा ने एक समय शतमुख नामक महान् असुर की सृष्टि की थी, जिसने सौ वर्ष से अधिक कालतक अग्नि में अपने ही मांस की आहुति दी थी। उससे संतुष्ट होकर भगवान् शंकर ने पूछा– 'बताओ, मैं तुम्हारा कौनसा मनोरथ पूर्ण करूँ।' तब शतमुख ने उनसे कहा– 'सुरश्रेष्ठ! मुझे अद्‌भुत योगशक्ति प्राप्त हो। साथ ही आप मुझे सदा बना रहनेवाला बल प्रदान कीजिये।' उसकी वह बात सुनकर शक्तिशाली भगवान् ने 'तथास्तु' कहकर उसे स्वीकार कर लिया। इसी तरह पूर्वकाल में स्वयम्भू के पुत्र क्रतु ने पुत्रप्राप्ति के लिये तीन सौ वर्षोंतक योग के द्वारा अपने आपको भगवान् शिव के चिन्तन में लगा रखा था; अतः क्रतु को भी भगवान् शंकर ने उन्हीं के समान एक हजार पुत्र प्रदान किये।

श्रीकृष्ण! देवता जिनकी महिमा का गान करते हैं, उन योगेश्वर शिव को आप भलीभाँति जानते हैं, इसमें संशय नहीं है। याज्ञवल्क्य नाम से विख्यात परम धर्मात्मा ऋषि ने महादेवजी की आराधना करके अनुपम यश प्राप्त किया। पराशरजी के पुत्र मुनिवर वेदव्यास तो योग के स्वरूप ही हैं। उन्होंने भी शंकरजी की आराधना करके वह महान् यश पा लिया, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। कहते हैं, पूर्वकाल में किसी समय इन्द्र ने बालखिल्य नामक ऋषियों का अपमान कर दिया था। उन ऋषियों ने कुपित होकर तपस्या की और उसके द्वारा भगवान् रुद्र को संतुष्ट किया। तब सुरश्रेष्ठ विश्वनाथ शिव ने प्रसन्न होकर उनसे कहा– 'तुम अपनी तपस्या के बल से गरुड़ को उत्पन्न करोगे, जो इन्द्र का अमृत छीन लायेगा।' पहले की बात है, महादेवजी के रोष से जल नष्ट ह़ो गया था। तब देवताओं ने, जिसके स्वामी रुद्र हैं, उस सप्त कपालयाग के द्वारा दूसरा जल प्राप्त किया। इस प्रकार त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव के प्रसन्न होने पर ही भूतलपर जल की उपलब्धि हुई। अत्रि की पत्नी ब्रह्मवादिनी अनसूया भी किसी समय रुष्ट हो अपने पति को त्यागकर चली गयीं और मन में यह संकल्प करके कि 'अब मैं किसी तरह भी पुनः अत्रिमुनि के वशीभूत नही होऊँगी' महादेवजी की शरण में गयीं। वे अत्रिमुनि के भय से तीन सौ वर्षों तक निराहार रहकर मुसलोंपर ही सोयीं और भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिये तपस्या करती रहीं। तब महादेवजी ने उनसे हँसते हुए कहा– 'देवि! मेरी कृपा

से केवल यज्ञसम्बन्धी चरु का द्रव पीनेमात्र से तुम्हें पति के सहयोग के बिना ही एक पुत्र प्राप्त होगा–इसमें संशय नहीं है। वह तुम्हारे वंश में तुम्हारे ही नामसे इच्छानुसार ख्याति प्राप्त करेगा।

मधुसूदन! ऐश्वर्यशाली विकर्ण ने भक्तसुखदायक महादेवजीको प्रसन्न करके मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त की थी। केशव! शाकल्य ऋषिके मनमें सदा संशय बना रहता था। उन्होंने मनोमय यज्ञ (ध्यान) के द्वारा भगवान् शिव की नौ सौ वर्षोंतक आराधना की। तब उनसे भी संतुष्ट होकर भगवान् शंकर ने कहा–'वत्स! तुम ग्रन्थकार होओगे तथा तीनों लोकों में तुम्हारी अक्षय कीर्ति फैल जायगी। तुम्हारा कुल अक्षय एवं महर्षियों से अलंकृत होगा। तुम्हारा पुत्र एक श्रेष्ठ ब्राह्मण एवं सूत्रकार होगा।' सत्ययुगमें सावर्णि नाम से विख्यात एक ऋषि थे। उन्होंने यहाँ आकर छः हजार वर्षोंतक तपस्या की। तब भगवान् रुद्र ने उन्हें साक्षात् दर्शन देकर कहा–'अनघ! मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। तुम विश्वविख्यात ग्रन्थकार और अजर–अमर होओगे।' जनार्दन! पहले की बात है, इन्द्र ने भक्तिभाव के साथ काशीपुरी में भस्मभूषित दिगम्बर महादेवजी की आराधना की। महादेवजी की आराधना करके ही उन्होंने देवराज पद प्राप्त किया। देवर्षि नारद ने भी पहले भक्तिभाव से भगवान् शंकर की आराधना की थी। इससे संतुष्ट होकर गुरुस्वरूप देवगुरु महादेवजी ने उन्हें यह वरदान दिया कि 'तेज, तप और कीर्ति में कोई तुम्हारी समता करनेवाला नहीं होगा। तुम गीत और वीणावादन के द्वारा सदा मेरा अनुसरण करोगे।'

(1) उपमन्यु द्वारा शिव की आराधना तथा वरप्राप्ति

प्रभो! तात माधव! मैंने भी पूर्वकाल में साक्षात् देवाधिदेव पशुपति का जिस प्रकार दर्शन किया था, वह प्रसंग सुनिये। तात! पहले सत्ययुग में एक महायशस्वी ऋषि हो गये हैं, जो व्याघ्रपाद नाम से प्रसिद्ध थे। वे वेद–वेदाङ्गों के पारंगत विद्वान् थे। उन्हीं का मैं पुत्र हूँ। मेरे छोटे भाई का नाम धौम्य है। माधव! किसी समय मैं धौम्य के साथ खेलता हुआ पवित्रात्मा मुनियों के आश्रम पर आया। वहाँ मैंने देखा, एक दुधारू गाय दुही जा रही थी। वहीं मैंने दूध देखा, जो स्वाद में अमृत के समान होता है। तब मैंने बालस्वभाववश अपनी माता से कहा–'माँ मुझे खाने के लिये दूध–भात दो।' घर में दूध का अभाव था; इसलिये मेरी माता को उस समय बड़ा दुःख हुआ। माधव! तब वह पानी में आटा घोलकर ले आयी और दूध कहकर दोनों भाइयों को पीने के लिये दे दिया। तात! उसके पहले एक दिन मैंने गाय का दूध पीया था। पिताजी यज्ञ के समय एक बड़े भारी धनी कुटुम्ब के घर मुझे ले गये थे। वहाँ दिव्य सुरभी गाय दूध दे रही थी। उस अमृत के समान स्वादिष्ट दूध को पीकर मैं यह जान गया था कि दूध का स्वाद कैसा होता है और उसकी उपलब्धि किस प्रकार होती है। तात! इसीलिये वह आटे का रस मुझे प्रिय नहीं लगा। अतः मैंने बालस्वभाववश ही अपनी माता से कहा–माँ! तुमने मुझे जो दिया है, यह दूध–भात नहीं है।'

माधव! तब मेरी माता दुःख और शोक में मगन हो पुत्र स्नेहवश मुझे हृदय से लगाकर मेरा

मस्तक सूँघती हुई मुझसे बोली– 'बेटा! जो सदा वन में रहकर कन्द, मूल और फल खाकर निर्वाह करते हैं, उन पवित्र अन्तःकरणवाले मुनियों को भला दूध–भात कहाँ से मिल सकता है? 'जो बालखिल्यों द्वारा सेवित दिव्य नदी गंगा का सहारा लिये बैठे हैं, पर्वतों और वनों में रहनेवाले उन मुनियों को दूध कहाँ से मिलेगा? जो पवित्र हैं, वनमें ही होनेवाली वस्तुएँ खाते हैं, वनके आश्रमों में ही निवास करते हैं, ग्रामीण आहार से निवृत्त होकर जंगल के फल–मूलों का ही भोजन करते हैं, उन्हें दूध कैसे मिल सकता है? बेटा! यहाँ सुरभी गाय की कोई संतान नहीं है; अतः इस जंगल में दूध का सर्वथा अभाव है। नदी, कन्दरा, पर्वत और नाना प्रकार के तीर्थों में तपस्यापूर्वक जप में तत्पर रहनेवाले हम ऋषि–मुनियों के भगवान् शंकर ही परम आश्रय हैं। वत्स! जो सबको वर देनेवाले, नित्य स्थिर रहनेवाले और अविनाशी ईश्वर हैं, उन भगवान् विरूपाक्ष को प्रसन्न किये बिना दूध–भात और सुखदायक वस्त्र कैसे मिल सकते हैं? बेटा! सदा सर्वतोभाव से उन्हीं भगवान् शंकर की शरण लेकर उनकी कृपा से ही इच्छानुसार फल पा सकोगे।' शत्रुसूदन! जननी की वह बात सुनकर उसी समय मैंने उनके चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर माताजी से यह पूछा– 'अम्ब! ये महादेवजी कौन हैं? और कैसे प्रसन्न होते हैं? ये शिव देवता कहाँ रहते हैं और कैसे उनका दर्शन किया जा सकता है? मेरी माँ! यह बताओ कि शिवजी का रूप कैसा है? वे कैसे संतुष्ट होते हैं? उन्हें किस तरह जाना जाय अथवा वे कैसे प्रसन्न होकर मुझे दर्शन दे सकते हैं?' सच्चिदानन्दस्वरूप गोविन्द! सुरश्रेष्ठ मधुसूदन! मेरे इस प्रकार पूछनेपर मेरी पुत्रवत्सला माता के नेत्रों में आँसू भर आये। वह मेरा मस्तक सूँघकर मेरे सभी अंगो पर हाथ फेरने लगी और कुछ दीन–सी होकर यों बोली।

माता ने कहा–जिन्होंने अपने मन को वश में नहीं किया है, ऐसे लोगों के लिये महादेवजी का ज्ञान होना बहुत कठिन है। उनकी प्राप्ति के मार्ग में बड़े–बड़े विघ्न हैं। दुस्तर बाधाएँ हैं। उनका ग्रहण और दर्शन होना भी अत्यन्त कठिन है। मनीषी पुरुष कहते हैं कि भगवान् शंकर के अनेक रूप हैं। उनके रहने के विचित्र स्थान हैं और उनका कृपाप्रसाद भी अनेक रूपों में प्रकट होता है। पूर्वकाल में देवाधिदेव महादेव ने जो–जो रूप धारण किये हैं, ईश्वर के उस शुभ चरित्र को कौन यथार्थरूप से जानता है? वे कैसे क्रीड़ा करते हैं और किस तरह प्रसन्न होते हैं? यह कौन समझ सकता है। वे विश्वरूपधारी महेश्वर समस्त प्राणियों के हृदयमन्दिर में विराजमान हैं। वे भक्तों पर कृपा करने के लिये किस प्रकार दर्शन देते हैं? यह शंकरजी के दिव्य एवं कल्याणमय चरित्र का वर्णन करनेवाले मुनियों के मुख से जैसा मैंने सुना है वह बताऊँगी। वत्स! उन्होंने ब्राह्मणों पर अनुग्रह करने के लिये देवताओं द्वारा कथित जो–जो रूप ग्रहण किये हैं, उन्हें संक्षेप से सुनो। वत्स! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, वे सारी बातें मैं तुम्हे बताऊँगी। ऐसा कहकर माता फिर कहने लगी–भगवान् शिव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार तथा सम्पूर्ण देवताओं का शरीर धारण करते हैं। वे भगवान् पुरुषों, देवाङ्गनाओं, प्रेतों, पिशाचों, किरातों, शबरों, अनेकानेक जलजन्तुओं तथा जंगली भीलों के भी रूप ग्रहण कर लेते

हैं। कूर्म, मत्स्य, शङ्ख, नये-नये पल्लवों के अकुंर से सुशोभित होनेवाले वसंत आदि के रूपों में भी वे ही प्रकट होते हैं। वे महादेवजी यक्ष, राक्षस, सर्प, दैत्य, दानव और पातालवासियों का भी रूप धारण करते हैं। कभी छः मुख और कभी बहुत से मुखवाले हो जाते हैं। कभी तीन नेत्र धारण करते हैं। कभी बहुत से मस्तक बना लेते हैं। उनके पैर और कटिभाग अनेक हैं। वे बहुसंख्यक पेट.और मुख धारण करते हैं। उनके हाथ और पर्श्वभाग भी अनेकानेक हैं। अनेक पार्षदगण उन्हें सब ओर से घेरे रहते हैं। वे ऋषि और गन्धर्वरूप हैं। सिद्ध और चारणों के भी रूप धारण करते हैं। उनका सारा शरीर भस्म रमाये रहने से सफेद जान पड़ता है। वे ललाट में अर्द्धचन्द्र का आभूषण धारण करते हैं। उनके पास अनेक प्रकार के शब्दों का घोष होता रहता है। वे अनेक प्रकार की स्तुतियों से सम्मानित होते हैं, समस्त प्राणियों का संहार करते हैं, स्वयं सर्वस्वरूप हैं तथा सबके अन्तरात्मारूप से सम्पूर्ण लोकों में प्रतिष्ठित हैं।

वे सम्पूर्ण जगत् के अन्तरात्मा, सर्वव्यापी और सर्ववादी हैं, उन भगवान् शिव को सर्वत्र और सम्पूर्ण देहधारियों के हृदय में विराजमान जानना चाहिये। जो जिस मनोरथ को चाहता है और जिस उद्देश्य से उसके द्वारा भगवान् की अर्चना की जाती है, देवेश्वर भगवान् शिव वह सब जानते हैं। इसलिये यदि तुम कोई वस्तु चाहते हो तो उन्हीं की शरण लो। वे कभी आनन्दित रहकर आनन्द देते, कभी कुपित होकर कोप प्रकट करते और कभी हुंकार करते हैं, अपने हाथों में चक्र, शूल, गदा, मुसल, खड्ग और पट्टिश धारण करते हैं। वे धरणीधर शेषनागरूप हैं। वे नाग की मेखला धारण करते हैं। नागमय कुण्डल से कुण्डलधारी होते हैं। नागों का ही यज्ञोपवीत धारण करते हैं तथा नागचर्म का ही उत्तरीय(चादर) लिये रहते हैं। वे जप करते हैं और वे ही जपे जाते हैं; वे तप करते हैं और वे ही तपे जाते हैं(उन्हीं के उद्देश्य से तप किया जाता है)। वे दान देते और दान लेते हैं तथा योग और ध्यान करते हैं। यज्ञ की वेदी में, यूप में, गोशाला में तथा प्रज्वलित अग्नि में वे ही दिखायी देते हैं। कभी ऊर्ध्वकेश(ऊपर उठे हुए बालवाले), कभी महालिङ्ग, कभी नंग-धड़ंग और कभी विकराल नेत्रों से युक्त हो जाते हैं। कभी गोरे, कभी साँवले, कभी काले, कभी सफेद, कभी धूएँ के समान रंगवाले एवं लोहित दिखायी देते हैं। कभी विकृत नेत्रों से युक्त होते हैं। कभी सुन्दर विशाल नेत्रों से सुशोभित होते हैं। कभी दिगम्बर दिखायी देते हैं और कभी सब प्रकार के वस्त्रों से विभूषित होते हैं।

वे रूपरहित हैं। उनका स्वरूप ही सबका आदिकारण है। वे रूप से अतीत हैं। सबसे पहले जिसकी सृष्टि हुई हैं, जल उन्हीं का रूप है। इन अजन्मा महादेवजी का स्वरूप आदि-अन्त से रहित है। उसे कौन ठीक-ठीक जान सकता है। भगवान् शंकर प्राणियों के हृदय में प्राण, मन एवं जीवात्मा रूप से विराजमान हैं। वे ही योगस्वरूप, योगी, ध्यान तथा परमात्मा हैं। भगवान् महेश्र्वर भक्तिभाव से ही गृहीत होते हैं। बेटा! तुम उन्हीं के भक्त बनकर उन्हीं में आसक्त रहो। सदा उन्हीं पर निर्भर रहो और उन्हीं के शरणागत होकर महादेवजी का निरन्तर भजन करते रहो। इससे तुम्हें मनोवाञ्छित वस्तु

की प्राप्ति होगी।

शत्रुसूदन श्रीकृष्ण! माता का यह उपदेश सुनकर तभी से महादेवजी के प्रति मेरी सुदृढ भक्ति हो गयी। तदनन्तर मैंने तपस्या का आश्रय ले भगवान् शंकर को संतुष्ट किया। एक हजार वर्षतक केवल बायें पैर के अंगूठे के अग्रभाग के बल पर मैं खड़ा रहा। पहले तो एक सौ वर्षों तक मैं फलहारी रहा। दूसरे शतक में गिरे-पड़े सूखे पत्ते चबाकर रहा और तीसरे शतक में केवल जल पीकर ही प्राण धारण करता रहा। फिर शेष सात सौ वर्षोंतक केवल हवा पीकर रहा। इस प्रकार मैंने एक सहस्त्र दिव्य वर्षोंतक उनकी आराधना की। तदनन्तर सम्पूर्ण लोकों के स्वामी भगवान् महादेव मुझे अपना अनन्य भक्त जानकर संतुष्ट हुए और मेरी परीक्षा लेने लगे। उन्होंने सम्पूर्ण देवताओं से घिरे हुए इन्द्र का रूप धारण करके पदार्पण किया। उस समय उनके सहस्त्र नेत्र शोभा पा रहे थे। उन महायशस्वी इन्द्र के हाथ में वज्र प्रकाशित हो रहा था। वे भगवान् इन्द्र लाल नेत्र और खड़े कानवाले, सुधा के समान उज्ज्वल, मुड़ी हुई सूँड़ से सुशोभित, चार दाँतों से युक्त और देखने में भयंकर मद् से उन्मत्त महान् गजराज ऐरावत की पीठ पर बैठकर अपने तेज से प्रकाशित होते हुए वहाँ पधारे।

उस समय देवराज इन्द्र ने मुझसे कहा 'द्विजश्रेष्ठ! मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। तुम्हारे मन में जो वर लेने की इच्छा हो, वही मुझसे माँग लो।' इन्द्र की बात सुनकर मेरा मन प्रसन्न नहीं हुआ। मैंने ऊपर से हर्ष प्रकट करते हुए देवराज से यह कहा-'सौम्य ! मैं महादेवजी के सिवा तुमसे या दूसरे किसी देवता से वर लेना नहीं चाहता। मुझे महादेवजी को छोड़कर और कोई बात अच्छी ही नहीं लगती है। मैं भगवान् पशुपति के कहने से तत्काल प्रसन्नतापूर्वक कीट अथवा शाखाओं से युक्त वृक्ष भी हो सकता हूँ, परन्तु भगवान् शिव से भिन्न दूसरे किसी के वर-प्रसाद से मुझे त्रिभुवन का राज्य वैभव प्राप्त हो रहा हो तो वह भी अभीष्ट नहीं है। यदि मुझे भगवान् शंकर के चरणारविन्दों की वन्दना में तत्पर रहने का अवसर मिले तो मेरा जन्म चाण्डालों में भी हो जाय तो यह मुझे सहर्ष स्वीकार है। परन्तु भगवान् शिव की अनन्य भक्ति से रहित होकर मैं इन्द्र के भवन में भी स्थान पाना नहीं चाहता। कोई जल या हवा पीकर ही रहनेवाला क्यों न हो जिसकी सुरासुरगुरु भगवान् विश्वनाथ में भक्ति न हो, उसके दुःखों का नाश कैसे हो सकता है? जिन्हें क्षणभर के लिये भी भगवान् शिव के चरणारविन्दों के स्मरण का वियोग अच्छा नहीं लगता, उन पुरुषों के लिये अन्यान्य धर्मों से युक्त दूसरी-दूसरी सारी कथाएँ व्यर्थ हैं। कुटिल कलिकाल को पाकर सभी पुरुषों को अपना मन भगवान् शंकर के चरणारविन्दों के चिन्तन में लगा देना चाहिये। शिव-भक्तिरूपी रसायन के पी लेनेपर संसाररूपी रोग का भय नहीं रह जाता है।[1] जिस पर भगवान् शिव की कृपा नहीं है, उस मनुष्य की एक दिन, आधे दिन, एक मुहूर्त, एक क्षण या एक लव के लिये भी भगवान् शंकर में भक्ति नहीं होती है।'

---

[1] हरचरणनिरतमतिना भवितव्यमनार्जवं युगं प्राप्य।
संसारभयं न भवति हरभक्तिरसायनं पीत्वा।। (महाभारत अनु. प. 14/184)

'शक्र! मैं भगवान् शंकर की आज्ञा से कीट या पतंग भी हो सकता हूँ, परन्तु तुम्हारा दिया हुआ त्रिलोकी का राज्य भी नहीं लेना चाहता। महेश्वर के कहने से यदि मैं कुत्ता भी हो जाऊँ तो उसे मैं सर्वोत्तम मनोरथ की पूर्ति समझूँगा, परन्तु महादेवजी के सिवा दूसरे किसी से प्राप्त हुए देवताओं के राज्य को लेने की भी मुझे इच्छा नहीं है। न तो मैं स्वर्गलोक चाहता हूँ, न देवताओं का राज्य पाने की अभिलाषा रखता हूँ। न ब्रह्मलोक की इच्छा करता हूँ और न निर्गुण ब्रह्मका सायुज्य ही प्राप्त करना चाहता हूँ। भूमण्डल की समस्त कामनाओं को भी पाने की मेरी इच्छा नहीं है। मैं तो केवल भगवान् शिव की दासता को ही वरण करता हूँ। मेरे स्वामी भगवान् पशुपति जबतक प्रसन्न नहीं होते हैं, तबतक मैं जरा-मृत्यु और जन्म के सैकड़ों आघातों से प्राप्त होनेवाले दैहिक दुःखों का भार ढोता रहूँगा। जो त्रिभुवन के साररूप हैं, जिनसे बढ़कर सारतत्त्व दूसरा नहीं है, जो जगत् के आदिकारण, अद्वितीय तथा अजर-अमर हैं, उन भगवान् रुद्र को भक्तिभाव से प्रसन्न किये बिना कौन पुरुष इस संसार में शान्ति पा सकता है। यदि मेरे दोषों से मुझे बारंबार इस जगत् में जन्म लेना पड़े तो मेरी यही इच्छा है कि उस-उस प्रत्येक जन्म में भगवान् शिव में मेरी अक्षय भक्ति हो'।

इन्द्र ने पूछा-ब्रह्मन्! कारण के भी कारण जगदीश्वर शिव की सत्ता में क्या प्रमाण है, जिससे तुम शिव के अतिरिक्त दूसरे किसी देवता का कृपा-प्रसाद ग्रहण करना नहीं चाहते?

उपमन्यु ने कहा-देवराज! ब्रह्मवादी महात्मा जिन्हें विभिन्न मतों के अनुसार सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त, नित्य, एक और अनेक कहते हैं, उन्हीं महादेवजी से हम वर माँगेंगे। जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, ज्ञान ही जिनका ऐश्वर्य है तथा जो चित्त की चिन्तन शक्ति से भी परे हैं और इन्हीं कारणों से जिन्हें परमात्मा कहा जाता है, उन्हीं महादेवजी से हम वर प्राप्त करेंगे। योगीलोग महादेवजी के समस्त ऐश्वर्य को भी नित्य सिद्ध और अविनाशी बताते हैं। वे कारणरहित हैं और उन्हीं से समस्त कारणों की उत्पत्ति हुई है। अतः महादेवजी की ऐसी महिमा है, इसलिये हम उन्हीं से वर माँगते हैं। जो अज्ञानान्धाकार से परे चिन्मय परमज्योतिःस्वरूप हैं, तपस्वीजनों के परम तप हैं तथा जिनका ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी पुरुष कभी शोक नहीं करते हैं, उन्हीं भगवान् शिव से हम वर प्राप्त करना चाहते हैं। पुरंदर! जो सम्पूर्ण भूतों के उत्पादक तथा उनके मनोभावों को जाननेवाले हैं, समस्त प्राणियों के पराभव(विलय) के भी जो एकमात्र स्थान हैं तथा जो सर्वव्यापी और सब कुछ देने में समर्थ हैं, उन्हीं महादेवजी की मैं पूजा करता हूँ। जो युक्तिवाद से दूर हैं, जो अपने भक्तों को सांख्य और योग का परम प्रयोजन(आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति और ब्रह्मसाक्षात्कार) प्रदान करनेवाले हैं, तत्त्वज्ञ पुरुष जिनकी सदा उपासना करते हैं, उन्हीं महादेवजी से हम वर के लिये प्रार्थना करते हैं। मघवन्! ज्ञानी पुरुष जिन्हें देवेश्वर इन्द्ररूप तथा सम्पूर्ण भूतों के गुरुदेव बताते हैं, उन्हीं से हम वर लेना चाहते हैं। जिन्होंने पूर्वकाल में आकाशव्यापी बह्माण्ड एवं लोकस्त्रष्टा देवेश्वर ब्रह्माको उत्पन्न किया, उन्हीं महादेवजी से हम वर प्राप्त करना चाहते हैं।

देवराज! जो अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार-इन सबका स्रष्टा हो, वह परमेश्वर से भिन्न दूसरा कौन पुरुष है? यह बताओ। शक्र! जो मन, बुद्धि, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा और दस इन्द्रिय-इन सबकी सृष्टि कर सके, ऐसा कौन पुरुष है, जो भगवान् शिव से भिन्न अथवा उत्कृष्ट हो? यह बताओ। ज्ञानी महात्मा ब्रह्माजी को ही सम्पूर्ण विश्व का स्रष्टा बताते हैं। परन्तु वे देवेश्वर महादेवजी की अराधाना करके ही महान् ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। जिस भगवान् में ब्रह्मा और विष्णु से भी उत्तम ऐश्वर्य है, वह परमेश्वर महादेव के सिवा दूसरा कौन है? यह बताओ तो सही। दैत्यों और दानवों के प्रमुख वीर हिरण्यकशिपु आदि में जो तीनों लोकों पर आधिपत्य स्थापित करने और अपने शत्रुओं को कुचल देने की शक्ति सुनी गयी है, उसपर दृष्टिपात करके मैं यह पूछ रहा हूँ कि देवेश्वर महादेव के सिवा दूसरा कौन ऐसा है जो दिति के पुत्रों को इस प्रकार अनुपम ऐश्वर्य से सम्पन्न कर सके? दिशा, काल, सूर्य, अग्नि, अन्य ग्रह, वायु, चन्द्रमा और नक्षत्र-ये महादेवजी की कृपा से ही ऐसे प्रभावशाली हुए हैं। इस बात को तुम जानते हो, अत: तुम्हीं बताओ, परमेश्वर महादेवजी के सिवा दूसरा कौन ऐसी अचिन्त्य शक्ति से सम्पन्न है?

यज्ञ की उत्पत्ति और त्रिपुर का विनाश भी उन्हीं के द्वारा सम्पन्न हुआ है। प्रधान-प्रधान दैत्यों और दानवों को आधिपत्य प्रदान करने और शत्रुमर्दन की शक्ति देनेवाले भी वे ही हैं। सुरश्रेष्ठ पुरंदर! कौशिकवंशावतंस इन्द्र! यहाँ बहुत-सी युक्तियुक्त सूक्तियों को सुनानें से क्या लाभ? आप जो सहस्त्र नेत्रों से सुशोभित हैं तथा आप को देखकर सिद्ध, गन्धर्व, देवता और ऋषि जो सम्मान प्रदर्शित करते हैं, वह सब देवाधिदेव महादेव के प्रसाद से ही सम्भव हुआ है। इन्द्र! चेतन और अचेतन आदि समस्त पदार्थों में 'यह ऐसा है' इस प्रकार का जो लक्षण देखा जाता है, वह सब अव्यक्त, मुक्तकेश एवं सर्वव्यापी महादेवजी के ही प्रभाव से प्रकट है; अतएव सबकुछ महेश्वर से ही उत्पन्न हुआ है-ऐसा समझो। भगवान् देवराज! भूलोक से लेकर महर्लोकतक समस्त लोक-लोकान्तरों में, पर्वत के मध्यभाग में, सम्पूर्ण द्वीप स्थानों में, मेरुपर्वत के वैभवपूर्ण प्रान्तों में सर्वत्र ही तत्त्वदर्शी पुरुष महादेवजी की स्थिति बताते हैं। शक्र! यदि तेजस्वी देवगण महादेवीजी के सिवा दूसरा कोई सहारा देखते हैं तो असुरों द्वारा कुचले जानेपर वे उसी की शरण में क्यों नहीं जाते हैं? देवता, यक्ष, नाग और राक्षस-इनमें जब संघर्ष होता और परस्पर एक-दूसरे से विनाश का अवसर उपस्थित होता है, तब उन्हें अपने स्थान और ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले भगवान् शिव ही हैं। बताओ तो सही, अन्धकको, शुक्रको, दुन्दुभिको, महिषको, यक्षराज कुबेर की सेना के राक्षसों को तथा निवातकवच नामक दानवों को वरदान देने और उनका विनाश करने में भगवान् महेश्वर को छोड़कर दूसरा कौन समर्थ है?

योगीजन ज्ञान, सिद्धि और क्रिया-योग द्वारा भगवान् शिव की ही सेवा करते हैं तथा ऋषि, गन्धर्व और सिद्धगण उन्हें ही परम कारण मानकर उनका आश्रय लेते हैं। देवता और असुर सब

लोग कर्म, यज्ञ और क्रियायोग द्वारा सदा जिनकी सेवा करते हैं, उन कर्मफल रहित महादेवजी को मैं सबका कारण कहता हूँ। महादेवजी का परमपद स्थूल, सूक्ष्म, उपमारहित, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य, सगुण, निर्गुण तथा गुणों का नियामक है। इन्द्र! जो सम्पूर्ण विश्व के अधीश्वर, प्रकृति के भी नियामक, सम्पूर्ण लोकों के संहार के भी कारण हैं, भूत, वर्तमान और भविष्य – तीनों काल जिनके ही स्वरूप हैं, जो सबके उत्पादक एवं कारण हैं, क्षर – अक्षर, अव्यक्त, विद्या – अविद्या, कृत – अकृत तथा धर्म और अधर्म जिनसे ही प्रकट हुए हैं, उन महादेवजी को ही मैं सबका परम कारण बताता हूँ। देवेन्द्र! सृष्टि और संहारके कारणभूत देवाधिदेव भगवान् रुद्र ने जो भग – चिन्हित लिङ्गमूर्ति धारण की है, उसे आप यहाँ प्रत्यक्ष देख लें। यह उनके कारणस्वरूप का परिचायक है। इन्द्र! मेरी माता ने पहले कहा था कि महादेवजी के अतिरिक्त अथवा उनसे बढ़कर कोई लोकरूपी कार्य का कारण नहीं है; अत: यदि किसी अभीष्ट वस्तु के पाने की तुम्हारी इच्छा हो तो भगवान् शंकर की शरण लो। सुरेश्वर! तुम्हें प्रत्यक्ष विदित है कि ब्रह्मा आदि प्रजापतियों के संकल्प से उत्पन्न हुआ यह बद्ध और मुक्त जीवों से युक्त त्रिभुवन भग और लिङ्ग से प्रकट हुआ है तथा सहस्त्रों कामनाओं से युक्त बुद्धिवाले तथा ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि एवं विष्णुसहित सम्पूर्ण देवता और दैत्यराज महादेवजी से बढ़कर दूसरे किसी देवता को नहीं बताते हैं।

जो सम्पूर्ण चराचर जगत् के लिये वेद – विख्यात सर्वोत्तम जाननेयोग्य तत्त्व हैं, उन्हीं कल्याणमय देव भगवान् शंकर का कामना – पूर्ति के लिये वरण करता हूँ तथा संयतचित्त होकर सद्य:मुक्ति के लिये भी उन्हीं से प्रार्थना करता हूँ। दूसरे – दूसरे कारणों को बतलाने से क्या लाभ है? भागवान् शंकर इसलिये भी समस्त कारणों के भी कारण सिद्ध होते हैं कि हमने देवताओं द्वारा दूसरे किसी के लिङ्ग को पूजित होते नहीं सुना है। भगवान् महेश्वर को छोड़कर दूसरे किसके लिङ्ग की सम्पूर्ण देवता पूजा करते हैं अथवा पहले कभी उन्होंने पूजा की है, यदि तुम्हारे सुनने में आया हो तो बताओ। ब्रह्मा, विष्णु तथा सम्पूर्ण देवताओंसहित तुम सदा ही शिवलिङ्ग की पूजा करते आये हो; इसलिये भागवान् शिव ही सबसे श्रेष्ठतम देवता हैं। प्रजाओं के शरीर में न तो पद्मका चिन्ह है, न चक्र का चिन्ह है और न बज्रका ही चिन्ह उपलक्षित होता है, सभी प्रजा लिङ्ग और भग के चिन्ह से युक्त हैं, इसलिये यह सिद्ध है कि सम्पूर्ण प्रजा माहेश्वरी है (महादेवजी से ही उत्पन्न हुई है)। देवी पार्वती के कारणस्वरूप भावसे संसार की समस्त स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं; इसलिये भग के चिन्ह से अंकित हैं और भगवान् शिव से उत्पन्न होने के कारण सभी पुरुष लिङ्ग के चिन्ह से चिन्हित हैं – यह सबको प्रत्यक्ष है; ऐसी दशा में जो शिव और पार्वती के अतिरिक्त अन्य किसी को कारण बताता है, जिससे कि प्रजा चिन्हित नहीं है, वह अन्य कारणवादी दुर्बुद्धि पुरुष चराचर प्राणियों सहित तीनों लोकों से बाहर कर देने योग्य है। जितना भी पुलिङ्ग है, वह सब शिवस्वरूप है और जो भी स्त्रीलिङ्ग है उसे उमा समझो। महेश्वर और उमा – इन दो शरीरों से ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है। सूर्य, चन्द्रमा और

अग्नि जिनके नेत्र हैं, जो त्रिभुवन के सारतत्त्व, अपार, ईश्वर, सबके आदिकारण तथा अजर–अमर हैं, उन रुद्रदेव को प्रसन्न किये बिना इस संसार में कौन पुरुष शान्ति पा सकता है। अतः कौशिक! मैं भगवान् शंकर से ही वर अथवा मृत्यु पाने की इच्छा रखता हूँ।

बलसूदन इन्द्र! तुम जाओ या खड़े रहो, जैसी इच्छा हो करो । मुझे महेश्वर से चाहे वर मिले, चाहे शाप प्राप्त हो, स्वीकार है, परन्तु दूसरा देवता यदि सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलों को देनेवाला हो तो भी मैं उसे नहीं चाहता। देवराज इन्द्र से ऐसा कहकर मेरी इन्द्रियाँ दुःख से व्याकुल हो उठीं और मैं यह सोचने लगा कि यह क्या कारण हो गया कि महादेवीजी मुझपर प्रसन्न नहीं हो रहे हैं। तदन्तर एक ही क्षण में मैने देखा कि वही ऐरावत हाथी अब वृषभरूप धारण करके स्थित है। उनका वर्ण हंस, कुन्द और चन्द्रमा के समान श्वेत है। उनकी अंगकान्ति मृणाल के सम्मान उज्ज्वल और चाँदी के समान चमकीली है। जान पड़ता था, साक्षात् क्षीरसागर ही वृषभरूप धारण करके खड़ा हो। हिमालय पर्वत के शिखर अथवा श्वेत बादलों के विशाल खण्ड के सम्मान प्रतीत होनेवाले उस नन्दिकेश्वर पर देवाधिदेव भगवान् महादेव भगवती उमा के साथ आरूढ़ हो पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति शोभा पा रहे थे। मैंने देखा, भगवान् महेश्वर स्थिर भाव से खड़े हैं। उनके कण्ठ में नील चिन्ह शोभा पा रहा था। उनके अठारह भुजाएँ थी। वह भगवान् स्थाणु समस्त आभूषणों से विभूषित थे। महादेवीजी ने श्वेत वस्त्र धारण कर रखा था। उनके श्रीअङ्गों में श्वेत चन्दन का अनुलेप लगा था। उनकी ध्वजा भी श्वेत वर्ण की ही थी। वे श्वेत रंग का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले और अजेय थे। वे अपने ही समान पराक्रमी दिव्य पार्षदोंसे घिरे हुए थे।

गोविन्द! मैंने अमित तेजस्वी महादेवजी के सम्पूर्ण तेजोमय आयुधों को मूर्तिमान् होकर उनकी सेवा में उपस्थित देखा था। उन महात्मा रुद्रदेवका इन्द्रधनुष के समान रंगवाला जो पिनाक नाम से विख्यात धनुष है, वह विशाल सर्प के रूप में प्रकट हुआ था। उसके सात फन थे। उसका डीलडौल भी विशाल था। तीखी दाढ़ें दिखायी देती थीं। वह अपने प्रचण्ड विष के कारण मतवाला हो रहा था। उसकी विशाल ग्रीवा प्रत्यंचा से आवेष्टित थी। वह पुरुष शरीर धारण करके खड़ा था। भगवान् का जो बाण था, वह सूर्य और प्रलय कालीन अग्नि के समान प्रचण्ड तेज से प्रकाशित होता था। यही अत्यन्त भयंकर एवं महान् दिव्य पशुपत अस्त्र था। उसकी जोड़ का दूसरा अस्त्र नहीं था। समस्त प्राणियों को भय देनेवाला वह विशालकाय अस्त्र अनिर्वचनीय जान पड़ता था और अपने मुख से चिनगारियों सहित अग्नि की वर्षा कर रहा था। वह भी सर्प के ही आकार में दृष्टिगोचर होता था। महाबाहो! सम्पूर्ण शस्त्रों का विनाश करनेवाला वह पशुपत अस्त्र ब्रह्मा, नारायण, इन्द्र, आग्नेय और वारूण अस्त्र से भी बढ़कर शक्तिशाली था। गोविन्द! उसी के द्वारा महादेवजी ने लीलापूर्वक एक ही बाण मारकर क्षणभर में दैत्यों के तीनों पूरों को जलाकर भस्म कर दिया था। भगवान् महेश्वर की भुजाओं से छुटने पर वह अस्त्र चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकी को आधे निमेष में ही भस्म कर देता है। इस लोक में जिस

अस्त्र के लिये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं में से भी कोई अवध्य नहीं है, उस परम उत्तम आश्चर्यमय पशुपतास्त्र को मैंने यहाँ प्रत्यक्ष देखा था। त्रिशूलधारी भगवान् शंकर का सम्पूर्ण लोकों में विख्यात जो वह त्रिशूल नामक अस्त्र है, वह शूलपाणि शंकर के द्वारा छोड़े जानेपर इस सारी पृथ्वी को विदीर्ण कर सकता है, महासागर को सुखा सकता है अथवा समस्त संसार का संहार कर सकता है। श्रीकृष्ण! पूर्वकाल में त्रिलोकविजयी, इन्द्रतुल्य पराक्रमी चक्रवर्ती राजा मान्धाता लवणासुर के द्वारा प्रयुक्त हुए उस शूल से सेना सहित नष्ट हो गये थे। गोविन्द! भगवान् रुद्र के निकट मैंने उसका भी दर्शन किया था। पूर्वकाल में महादेवजी ने संतुष्ट होकर परशुराम को जिसका दान किया था और जिसके द्वारा महासमर में चक्रवर्ती राजा कार्तवीर्य अर्जुन मारा गया था, क्षत्रियों का विनाश करनेवाला वह तीखी धार से युक्त परशु[1] मुझे भगवान् रुद्र के निकट दिखायी दिया था। गोविन्द! जमदग्निनन्दन परशुराम ने उसी परशु के द्वारा इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर दिया था। वह सर्पयुक्त कण्ठवाले महादेवजी के कण्ठ के अग्रभाग में स्थित था। निष्पाप श्रीकृष्ण! बुद्धिमान् भगवान् शिव के असंख्य दिव्यास्त्र हैं। मैंने यहाँ आपके सामने इन प्रमुख अस्त्रों का वर्णन किया है।

उस समय महादेवजी के दाहिने भाग में लोकपितामह ब्रह्मा हंसयुक्त दिव्य विमान पर बैठे हुए शोभा पा रहे थे और बायें भाग में शंख, चक्र और गदा धारण किये भगवान् नारायण गरुड़ पर विराजमान थे। कुमार स्कन्द मोर पर चढ़कर हाथ में शक्ति और घंटा लिये पार्वतीदेवी के पास ही खड़े थे। महादेवजी के आगे मैंने नन्दी को उपस्थित देखा, जो शूल उठाये दूसरे शंकर के समान खड़े थे। स्वायम्भुव आदि मनु, भृगु आदि ऋषि तथा इन्द्र आदि देवता - ये सभी वहाँ पधारे थे। समस्त भूतगण और नाना प्रकार की मातृकाएँ उपस्थित थीं। वे सब देवता महात्मा महादेवजी को चारों ओर से घेरकर नाना प्रकार के स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति कर रहे थे। ब्रह्माजी ने रथन्तर सामका उच्चारण करके उस समय भगवान् शंकर की स्तुति की। नारायण ने ज्येष्ठसाम द्वारा देवेश्वर शिव की महिमाका गान किया। इन्द्र ने उत्तम शतरुद्रिय का सस्वर पाठ करते हुए परब्रह्म शिव का स्तवन किया। ब्रह्मा, नारायण और देवराज इन्द्र - इन तीनों के बीच में विराजमान भगवान् शिव शरद्ऋतु के बादलों के आवरण से मुक्त हो परिधि (घेरे) में स्थित हुए सूर्यदेव के समान शोभा पा रहे थे। केशव! उस समय मैंने आकाश में सहस्त्रों चन्द्रमा और सूर्य देखे। तदनन्तर मैं सम्पूर्ण जगत् के पालक महादेवजी की स्तुति करने लगा।

(उपमन्यु द्वारा की गयी स्तुति के कुछ अंशों को हम यहाँ प्रस्तुत करेंगे।)

नमः श्यामाय गौराय अर्धपीतार्धपाण्डवे।
नारीनरशरीराय स्त्रीपुंसाय नमोऽस्तु ते।। (298)

आप हरिहररूप होने के कारण आधे शरीर से सांवले और आधे से गोरे हैं। आधे शरीर में

---

[1] परशुराम की जिस स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने यह दिव्य परशु एवं अन्य अस्त्र-शस्त्र प्रदान किया था उसका वर्णन इस पुस्तक में अन्यत्र किया गया है।

पीताम्बर धारण करते हैं और आधे में श्वेत वस्त्र पहनते हैं। आपको नमस्कार है। आप के आधे शरीर में नारी के अवयव हैं और आधे में नर के। आप स्त्री-पुरुषरूप हैं। आपको नमस्कार है।

शंयोरभिस्रवन्ताय अथर्वाय नमो नमः।
नमः सर्वार्तिनाशाय नमः शोकहराय च।।
नमो मेघनिनादाय बहुमायाधराय च।
बीजक्षेत्राभिपालाय स्रष्ट्राराय नमो नमः।।
नमः सुरासुरेशाय विश्वेशाय नमो नमः।
नमः पवनवेगाय नमः पवनरूपिणे।। (309-311)

आप यज्ञपूरक 'शंयु' नामक देवता के प्रसादरूप हैं और अथर्ववेदस्वरूप हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। जो सबकी पीड़ा का नाश करनेवाले और शोकहारी हैं, उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है। जो मेघ के समान गम्भीर नादकरनेवाले तथा बहुसंख्यक मायाओं के आधार हैं, जो बीज और क्षेत्रका पालन करते हैं और जगत् की सृष्टि करनेवाले हैं, उन भगवान् शिव को बारंबार नमस्कार है। आप देवताओं और असुरों के स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विश्व के ईश्वर हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आप वायु के समान वेगशाली और वायुरूप हैं। आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

ईशानाय भवघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने।
नमो विश्वाय मायाय चिन्त्याचिन्त्याय वै नमः।। (316)

आप सबके ईश्वर, संसार-बन्धन का नाश करनेवाले तथा अन्धकासुर के घातक हैं। आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण मायास्वरूप तथा चिन्त्य और अचिन्त्यरूप हैं। आपको नमस्कार है।

आत्मा च सर्वभूतानां सांख्ये पुरुष उच्यते।
ऋषभस्त्वं पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः।। (318)

आप समस्त प्राणियों में आत्मा और सांख्यशास्त्र में पुरुष कहलाते हैं। आप पवित्रों में ऋषभ तथा योगियों में निष्कल शिवरूप हैं।

आदिस्त्वमसि लोकानां संहर्ता काल एव च।
यच्चान्यदपि लोके वै सर्वतेजोऽधिकं स्मृतम्।।
तत् सर्वं भगवानेव इति में निश्चिता मतिः।
नमस्ते भगवन् देव नमस्ते भक्तवत्सल।।
योगेश्वर नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वसम्भव। (326-328)

आप ही सम्पूर्ण लोकों के आदि हैं। आप ही संहार करनेवाले काल हैं। संसार में और भी जो-जो वस्तुएँ सर्वथा तेज में बढ़ी-चढ़ी हैं, वे सभी आप भगवान् ही हैं-यह मेरी निश्चित धारणा है। भगवन्! देव! आपको नमस्कार है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। योगेश्वर! आपको नमस्कार है।

विश्व की उत्पत्ति के कारण! आप को नमस्कार है।

इस प्रकार भगवान् शिव की स्तुति करके मैंने उन्हें भक्तिभाव से पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया। फिर दोनों हाथ जोड़कर उन्हें अपना सब कुछ समर्पित कर दिया। तात! तदनन्तर मेरे मस्तक पर शीतल जल और दिव्य सुगन्ध से युक्त फूलों की शुभ वृष्टि होने लगी। उसी समय देव-किंकरों ने दिव्य दुन्दुभि बजाना आरम्भ किया और पवित्र गन्ध से युक्त पुण्यमयी सुखद वायु चलने लगी। तब पत्नी सहित प्रसन्न हुए वृषभध्वज महादेवजी ने मेरा हर्ष बढ़ाते हुए-से वहीं सम्पूर्ण देवताओं से कहा-देवताओ! तुम सब लोग देखो की महात्मा उपमन्यु की मुझमें नित्य एक भाव से बनी रहनेवाली कैसी उत्तम भक्ति है। श्रीकृष्ण! शूलपाणि महादेवजी के ऐसा कहने पर वे सब देवता हाथ जोड़ उन वृषभध्वज शिवजी को नमस्कार करके बोले-भगवन्! देवदेवश्वर! लोकनाथ! ये द्विजश्रेष्ठ उपमन्यु आपसे अपनी सम्पूर्ण कामनाओं के अनुसार अभीष्ट फल प्राप्त करें। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवताओं के ऐसा कहनेपर सबके ईश्वर और कल्याणकारी भगवान् शिव ने मुझसे हँसते हुए-से कहा।

भगवान् शिवजी बोले- 'बस उपमन्यो! मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। मुनिपुङ्गव! तुम मेरी ओर देखो। ब्रह्मर्षे! मुझमें तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति है। मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है। तुम्हारी इस भक्ति से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है, अतः मैं तुम्हें आज तुम्हारी सभी मनोवाञ्छित कामनायें पूर्ण किये देता हूँ।'

परम बुद्धिमान् महादेवजी के इस प्रकार कहने पर मेरे नेत्रों से हर्ष के आँसू बहने लगे और सारे शरीर में रोमांच हो आया। तब मैंने धरतीपर घुटने टेककर भगवान् को बारंबार प्रणाम किया और हर्षगद्गद वाणीद्वारा महादेवजी से इस प्रकार कहा-देव! आज ही मैंने वास्तव में जन्म ग्रहण किया है। आज मेरा जन्म सफल हो गया; क्योंकि इस समय मेरे सामने देवताओं और असुरों के गुरु आप साक्षात् माहादेवजी खड़े हैं। जिन अमित पराक्रमी महादेवजी को देवता भी सुगमता-पूर्वक देख नहीं पाते हैं उन्हीं का मुझे प्रत्यक्ष दर्शन मिला है; अतः मुझसे बढ़कर धन्यवाद का भागी दूसरा कौन हो सकता है? अजन्मा, अविनाशी, ज्ञानमय तथा सर्वश्रेष्ठरूप से विख्यात जो सनातन परम तत्त्व है, उसका ज्ञानी पुरुष इसी रूप में ध्यान करते हैं(जैसा कि आज मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ)।

स एष भगवान् देवः सर्वसत्त्वादिरव्ययः।
सर्वतत्त्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषः परः ।।
योऽसृजद् दक्षिणादङ्गाद् ब्रह्माणं लोकसम्भवम्।
वामपार्श्वात् तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः।।
युगान्ते चैव सम्प्राप्ते रुद्रमीशोऽसृजत् प्रभुः।
स रुद्रः संहरन् कृत्स्नं जगत् स्थावरजङ्गमम्।।
कालो भूत्वा महातेजाः संवर्तक इवानलः।
युगान्ते सर्वभूतानि ग्रसन्निव व्यवस्थितः।। (346-349)

जो सम्पूर्ण प्राणियों का आदिकारण, अविनाशी, समस्त तत्त्वों के विधान का ज्ञाता तथा प्रधान परम पुरुष है, वह ये भगवान् महादेवजी ही हैं। इन्हीं जगदीश्वर ने अपने दाहिने अंग से लोकस्त्रष्टा ब्रह्मा को और बायें अंग से जगत् की रक्षा के लिये विष्णु को उत्पन्न किया है। प्रलयकाल प्राप्त होनेपर इन्हीं भगवान् शिव ने रुद्र की रचना की थी। वे ही रुद्र सम्पूर्ण चराचर जगत् का संहार करते हैं। वे ही महातेजस्वी काल होकर कल्प के अन्त में समस्त प्राणियों को अपना ग्रास बनाते हुये-से प्रलयकालीन अग्नि के सदृश स्थित होते हैं।

ये ही देवदेव महादेव चराचर जगत् की सृष्टि करके कल्पान्त में सबकी स्मृति-शक्ति को मिटाकर स्वयं ही स्थित रहते हैं। ये सर्वत्र गमन करनेवाले, सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मा तथा समस्त भूतों के जन्म और वृद्धि के हेतु हैं। ये सर्वव्यापी परमेश्वर सदा सम्पूर्ण देवताओं से अदृश्य रहते हैं। प्रभो! यदि आप मुझपर संतुष्ट हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो हे देव! हे सुरेश्वर! मेरी सदा आप में भक्ति बनी रहे। सुरश्रेष्ठ! विभो! आपकी कृपा से मैं भूत, वर्तमान और भविष्य को जान सकूँ; ऐसा मेरा निश्चय है। मैं अपने बन्धु-बान्धवों सहित सदा अक्षय दूध-भात का भोजन प्राप्त करूँ और हमारे इस आश्रम में सदा आप का निकट निवास रहे। मेरे ऐसा कहनेपर लोकपूजित चराचरगुरु महातेजस्वी महेश्वर भगवान् शिव मुझसे यों बोले।

भगवान् शिव ने कहा-'ब्रह्मन्! तुम दुःख से रहित अजर-अमर हो जाओ। यशस्वी, तेजस्वी तथा दिव्य ज्ञान से सम्पन्न बने रहो। मेरी कृपा से तुम ऋषियों के भी दर्शनीय एवं आदरणीय होओगे तथा सदा शीलवान्, गुणवान्, सर्वज्ञ एवं प्रियदर्शन बने रहोगे। तुम्हें अक्षय यौवन और अग्नि के समान तेज प्राप्त हो। तुम्हारे लिये क्षीरसागर सुलभ हो जायगा। तुम जहाँ-जहाँ प्रिय वस्तु की इच्छा करोगे, वहाँ-वहाँ तुम्हारी सारी कामना सफल होगी और तुम्हें क्षीरसागर का सांनिध्य प्राप्त होगा। तुम अपने भाई-बन्धुओं के साथ एक कल्पतक अमृत-सहित दूध-भात का भोजन पाते रहो। तत्पश्चात् तुम मुझे प्राप्त हो जाओगे। तुम्हारे बन्धु-बान्धव, कुल तथा गोत्रकी परम्परा सदा अक्षय बनी रहेगी। द्विजश्रेष्ठ! मुझमें तुम्हारी सदा अचल भक्ति होगी तथा द्विजप्रवर! तुम्हारे इस आश्रम के निकट मैं सदा अदृश्यरूप से निवास करूँगा। बेटा! तुमं इच्छानुसार यहाँ रहो। कभी किसी बात के लिये चिन्ता न करना। विप्रवर! तुम्हारे स्मरण करनेपर मैं पुनः तुम्हें दर्शन दूँगा।'

ऐसा कहकर वे करोड़ों सूर्यो के समान तेजस्वी भगवान् शंकर उपर्युक्त वर प्रदान करके वहीं अन्तर्धान हो गये। श्रीकृष्ण! इस प्रकार मैंने समाधि के द्वारा देवाधिदेव भगवान् शंकर का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया। उन बुद्धिमान् महादेवजी ने जो कुछ कहा था वह सब मुझे प्राप्त हो गया है। श्रीकृष्ण! यह सब आप प्रत्यक्ष देख लें। यहाँ सिद्ध महर्षि, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और अप्सराएँ विद्यमान हैं। देखिये, यहाँ के वृक्ष, लता और गुल्म सब प्रकार के फूल और फल देनेवाले हैं। ये सभी ऋतुओं के फूलों से युक्त, सुखदायक पल्लवों से सम्पन्न और सुगन्ध से परिपूर्ण हैं। महाबाहो! देवताओं के भी देवता

तथा सबके ईश्वर महात्मा शिव के प्रसाद से ही यहाँ सबकुछ दिव्य भाव से सम्पन्न दिखायी देता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–राजन् उनकी यह बात सुनकर मानो मुझे भगवान् शिव का प्रत्यक्ष दर्शन हो गया हो, ऐसा प्रतीत हुआ। फिर बड़े विस्मय में पड़कर मैंने उन महामुनि से पूछा। 'विप्रवर! आप धन्य हैं। आप से बढ़कर पुण्यात्मा दूसरा पुरुष कौन है? क्योंकि आपके इस आश्रम में साक्षात् देवाधिदेव निवास करते हैं। मुनि श्रेष्ठ! क्या कल्याणकारी भगवान् शिव मुझे भी इसी प्रकार दर्शन देंगे? मुझपर भी कृपा करेंगे?

(2) भगवान् कृष्ण की तपस्या

उपमन्यु बोले–निष्पाप कमलनयन! जैसे मैंने भगवान् का दर्शन किया है, उसी प्रकार आप भी थोड़े ही समय में महादेवजी का दर्शन प्राप्त करेंगे; इसमें संशय नहीं है। पुरुषोत्तम! मैं दिव्यदृष्टि से देख रहा हूँ। आप आजसे छठे महीने में अमित पराक्रमी महादेवजी का दर्शन करेंगे। यदुश्रेष्ठ! पत्नीसहित महादेवजी से आप सोलह और आठ वर प्राप्त करेंगे। यह मैं आप से सच्ची बात कहता हूँ। महाबाहो! बुद्धिमान् महादेवजी के कृपा-प्रसाद से मुझे सदा ही भूत, भविष्य और वर्त्तमान- तीनों काल का ज्ञान प्राप्त है। माधव! भगवान् हरने यहाँ रहनेवाले इन सहस्त्रों मुनियों को कृपापूर्ण हृदयसे अनुगृहीत किया है। फिर आपपर वह अपना कृपाप्रसाद क्यों नहीं प्रकट करेंगे। आप जैसे ब्रह्मणभक्त, कोमलस्वभाव और श्रद्धालु पुरुष का समागम देवताओं के लिये भी प्रशंसनीय है। मैं आप को जपनेयोग्य मन्त्र प्रदान करूँगा, जिससे आप भगवान् शंकर का दर्शन करेंगे।

श्रीकृष्ण कहते हैं–तब मैंने उनसे कहा–ब्रह्मन्! महामुने! मैं आपके कृपाप्रसाद से दैत्यदलोंका दलन करनेवाले देवेश्वर महादेवजी का दर्शन अवश्य करूँगा। भरतनन्दन! इस प्रकार महादेवजी की महिमा से सम्बन्ध रखनेवाली कथा कहते हुए उन मुनीश्वर के आठ दिन एक मुहूर्त के समान बीत गये। आठवें दिन विप्रवर उपमन्यु ने विधिपूर्वक मुझे दीक्षा दी। उन्होंने मेरा सिर मुड़ा दिया। मेरे शरीर में घी लगाया तथा मुझसे दण्ड, कुशा, चीर एवं मेखला धारण कराया। मैं एक महीनेतक फलाहार करके रहा और दूसरे महीने में केवल जलका आहार किया। तीसरे, चौथे और पाँचवे महीने में मैं दोनों बाँहें ऊपर उठाये एक पैर से खड़ा रहा। आलस्य को अपने पास नहीं आने दिया। उन दिनों वायुमात्र ही मेरा आहार रहा। भारत! पाण्डुनन्दन! छठे महीने में आकाश के भीतर मुझे सहस्त्रों सूर्यो का सा तेज दिखायी दिया। उस तेज के भीतर एक और तेजोमण्डल दृष्टिगोचर हुआ, जिसका सर्वाङ्ग इन्द्रधनुष से परिवेष्टित था। विद्युन्माला उसमें झरोखे के समान प्रतीत होती थी। वह तेज नील पर्वतमाला के समान प्रकाशित होता था। उस द्विविध तेज के कारण वहाँ का आकाश बकपंक्तियों से विभूषित-सा जान पड़ता था। उस नील तेज के भीतर महातेजस्वी भगवान् शिव तप, तेज, कान्ति तथा अपनी तेजस्विनी पत्नी उमादेवी के साथ विराजमान थे।

कुन्तीनन्दन! जो सम्पूर्ण देवसमुदाय की गति हैं तथा सबकी पीड़ा हर लेते हैं, उन भगवान् हरको

जब मैंने देखा, तब मेरे रोंगटे खड़े हो गये और मेरे नेत्र आश्चर्य से खिल उठे। भगवान् के मस्तक पर मुकुट था। उनके हाथ में गदा, त्रिशूल और दण्ड शोभा पाते थे। सिर पर जटा थी। उन्होंने व्याघ्रचर्म धारण कर रखा था। पिनाक और वज्र भी उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनकी दाढ़ तीखी थी। उन्होंने सुन्दर बाजूबंद पहनकर सर्पमय यज्ञोपवीत धारण कर रखा था। वे अपने वक्षःस्थल पर अनेक रंगवाली दिव्य माला धारण किये हुए थे, जो गुल्फदेश(घुटनों) तक लटक रही थी। जैसे शरद्‌ऋतु में संध्या की लाली से युक्त और घेरे से घिरे हुए चन्द्रमा का दर्शन होता हो, उसी प्रकार मैंने मालावेष्टित उन भगवान् महादेवजी का दर्शन किया था। प्रमथगणों द्वारा सब ओर से घिरे हुए महातेजस्वी महादेव परिधि से घिरे हुए शरत्काल के सूर्य की भाँति बड़ी कठिनाई से देखे जाते थे। इस प्रकार मन को वश में रखनेवाले और कर्मेन्द्रियों द्वारा शुभकर्म का ही अनुष्ठान करनेवाले महादेवजी की, जो ग्यारह सौ रुद्रों से घिरे हुए थे, मैंने स्तुति की। बारह आदित्य, आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव तथा अश्विनीकुमार–ये भी सम्पूर्ण स्तुतियों द्वारा सबके देवता महादेवजी की स्तुति कर रहे थे। इन्द्र तथा वामनरूपधारी भगवान् विष्णु–ये दोनों अदितिकुमार और ब्रह्माजी भगवान् शिव के निकट रथन्तर साम का गान कर रहे थे। बहुत से योगीश्वर, पुत्रोंसहित ब्रह्मर्षि तथा देवर्षिगण भी योगसिद्धि प्रदान करनेवाले, पिता एवं गुरुरूप महादवजी की स्तुति करते थे। देवेश्वर शिव मेरे सामने खड़े थे। भारत! मेरे सामने महादेवजी को खड़ा देख प्रजापतियों से लेकर इन्द्रतक सारा जगत् मेरी ओर देखने लगा। किंतु उस समय महादेवजी को देखने की मुझमें शक्ति नहीं रह गयी थी। तब भगवान् शिवने मुझसे कहा–'श्रीकृष्ण! मुझे देखो, मुझसे वार्तालाप करो। तुमने पहले भी सैंकड़ों और हजारों बार मेरी आराधना की है। तीनों लोकों में तुम्हारे समान दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है।'[1] जब मैंने मस्तक झुकाकर महादेवजी को प्रणाम किया, तब देवी उमा को बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय मैंने ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा प्रशंसित भगवान् शिव से इस प्रकार कहा।

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः।। (407)

श्रीकृष्ण कहते हैं–सबके कारण भूत सनातन परमेश्वर! आपको नमस्कार है। ऋषि आप को ब्रह्माजी का भी अधिपति बताते हैं। साधु पुरुष आपको ही तप, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण तथा सत्यस्वरूप कहते हैं।

त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः।
धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः।।
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।

---

[1] ततो मामब्रवीद् देवः पश्य कृष्ण वदस्व च।
त्वया ह्याराधितश्चाहं शतशोऽथ सहस्रशः।।(405)
त्वत्समो नास्ति मे कश्चित् त्रिषु लोकेषु वै प्रियः।(406)

त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम्।।
यानीन्द्रियाणीह मनश्च कृत्स्नं ये वायवः सप्त तथैव चाग्नः।
ये देवसंस्थास्तवदेवताश्च तस्मात् परं त्वामृषयो वदन्ति।। (408 – 410)

आप ही ब्रह्मा, रुद्र, वरुण, अग्नि, मनु, शिव, धाता, विधाता और त्वष्टा हैं। आप ही सब ओर मुखवाले परमेश्वर हैं। समस्त चराचर प्राणी आप ही से उत्पन्न हुए हैं। आपने ही स्थावर-जङ्गम प्राणियों सहित इस समस्त त्रिलोकी की सृष्टि की है। यहाँ जो-जो इन्द्रियाँ, जो सम्पूर्ण मन, जो समस्त वायु और सात अग्नियाँ[1] हैं, जो देवसमुदाय के अंदर रहनेवाले स्तवन के योग्य देवता हैं, उन सबसे परे आप की स्थिति है। ऋषिगण आपके विषय में ऐसा ही कहते हैं।

वेदाश्च यज्ञाः सोमश्च दक्षिणा पावको हविः।
यज्ञोपगं च यत् किंचिद् भगवांस्तदसंशयम्।।
इष्टं दत्तमधीतं च व्रतानि नियमाश्च ये।
ह्रीः कीर्तिः श्रीर्द्युतिस्तुष्टिः सिद्धिश्चैव तदर्पणी।।
कामः क्रोधो भयं लोभो मदः स्तम्भोऽथ मत्सरः।
आधयो व्याधयश्चैव भगवंस्तनवस्तव।।
कृतिर्विकारः प्रणयः प्रधानं बीजमव्ययम्।
मनसः परमा योनिः प्रभावश्चापि शाश्वतः।।
अव्यक्तः पावनोऽचिन्त्यः सहस्रांशुर्हिरण्मयः।
आदिर्गणानां सर्वेषां भवान् वै जीविताश्रयः।। (411 – 415)

वेद, यज्ञ, सोम, दक्षिणा, अग्नि, हविष्य तथा जो कुछ भी यज्ञोपयोगी सामग्री है, वह सब आप भगवान् ही हैं, इसमें संशय नहीं है। यज्ञ, दान, अध्ययन, व्रत और नियम, लज्जा, कीर्ति, श्री, द्युति, तुष्टि तथा सिद्धि-ये सब आपके स्वरूप की प्राप्ति करानेवाले हैं। भगवन्! काम, क्रोध, भय, लोभ, मद, स्तब्धता, मात्सर्य, आधि और व्याधि-ये सब आपके ही शरीर हैं। क्रिया, विकार, प्रणय, प्रधान, अविनाशी बीज, मन का परम कारण और सनातन प्रभाव-ये भी आपके ही स्वरूप हैं। अव्यक्त, पावन, अचिन्त्य, हिरण्मय सूर्यस्वरूप आप ही समस्त गणों के आदिकारण तथा जीवन के आश्रय हैं।

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा विश्वः शम्भुः स्वयम्भुवः।
बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च संवित् ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः।।
पयार्यवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते।

---

[1] गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य-ये पाँच वैदिक अग्नियाँ हैं। स्मार्त छठी और लौकिक सातवीं अग्नि है।

त्वां बुद्ध्वा ब्राह्मणो वेदात् प्रमोहं विनियच्छति।। (416 – 417)

महान्, आत्मा, मति, ब्रह्मा, विश्व, शम्भु, स्वयम्भू, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, संवित्, ख्याति, धृति और स्मृति – इन चौदह पर्यायवाची शब्दों द्वारा आप परमात्मा ही प्रकाशित होते हैं। वेद से आपका बोध प्राप्त करके ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण मोह का सर्वथा नाश कर देते हैं।

हृदयं सर्वभूतानां क्षेत्रज्ञस्त्वमृषिस्तुतः।
सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः।।
सर्वतःश्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि।
फलं त्वमसि तिग्मांशोर्निमेषादिषु कर्मसु।।
त्वं वै प्रभार्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि संश्रितः।
अणिमा महिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः।।
त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोकाः प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये।
ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसत्त्वा जितेन्द्रियाः।। (418 – 421)

ऋषियों द्वारा प्रशंसित आप ही सम्पूर्ण भूतों के हृदय में स्थित क्षेत्रज्ञ हैं। आपके सब ओर हाथ – पैर हैं। सब ओर नेत्र, मस्तक और मुख हैं। आपके सब ओर कान हैं और जगत् में आप सबको व्याप्त करके स्थित हैं। जीव के आँख मीचने और खोलने से लेकर जितने कर्म हैं, उनके फल आप ही हैं। आप अविनाशी परमेश्वर ही सूर्य की प्रभा और अग्नि की ज्वाला हैं। आप ही सबके हृदय में आत्मारूप से निवास करते हैं। अणिमा, महिमा और प्राप्ति आदि सिद्धियाँ तथा ज्योति भी आप ही हैं। आपमें बोध और मनन की शक्ति विद्यमान है। जो लोग आपकी शरण में आकर सर्वथा आपके आश्रित रहते हैं, वे ध्यानपरायण, नित्य योगयुक्त, सत्यसंकल्प तथा जितेन्द्रिय होते हैं।

यस्त्वां ध्रुवं वेदयते गुहाशयं प्रभुं पुराणं पुरुषं च विग्रहम्।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति।।
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं त्वां च मूर्तितः।
प्रधानविधियोगस्थस्त्वामेव विशते बुधः।। (422 – 423)

जो आपको अपनी हृदयगुहा में स्थित आत्मा, प्रभु, पुराण – पुरुष, मूर्तिमान् परब्रह्म, हिरण्मय पुरुष और बुद्धिमानों की परम गतिरूप में निश्चित भाव से जानता है, वही बुद्धिमान् लौकिक बुद्धि का उल्लङ्घन करके परमात्मभाव में प्रतिष्ठित होता है। विद्वान् पुरुष महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा – इन सात सूक्ष्म तत्वों को जानकर आपके स्वरूपभूत छः अंगों[1] का बोध प्राप्त करके प्रमुख विधियोग का आश्रय ले आप में ही प्रवेश करते हैं।

कुन्तीनन्दन! जब मैंने सबकी पीड़ा का नाश करनेवाले महादेवजी की इस प्रकार स्तुति की, तब

---

[1] सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त शक्ति तथा अनन्त शक्ति – ये महेश्वर के स्वरूपभूत छः अंग बताये गये हैं।

वह सम्पूर्ण चराचर जगत् सिंहनाद कर उठा। ब्राह्मणों के समुदाय, देवता, असुर, नाग, पिशाच, पितर, पक्षी, राक्षसगण, समस्त भूतगण तथा महर्षि भी उस समय भगवान् शिव को प्रणाम करने लगे। मेरे मस्तक पर ढेर-के-ढेर दिव्य सुगन्धित पुष्पों की वर्षा होने लगी तथा अत्यन्त सुखदायक हवा चलने लगी। जगत् के हितैषी भगवान् शंकर ने उमा देवी की ओर देखकर मेरी ओर देखा और फिर इन्द्र पर दृष्टिपात करके मुझसे स्वयं कहा-शत्रुहन् श्रीकृष्ण! मुझमें जो तुम्हारी पराभक्ति है, उसे सब लोग जानते हैं। अब तुम अपना कल्याण करो; क्योंकि तुम्हारे ऊपर मेरा विशेष प्रेम है।[1]

(श्रीमहाभारत - अनुशासनपर्व - दानधर्मपर्व / अध्याय - 14)

(3) श्रीकृष्ण को शिव-पार्वती से वर की प्राप्ति

श्रीकृष्ण कहते हैं-भारत! तदनन्तर मन को वश में करके तेजोराशि में स्थित महादेवजी को मस्तक झुकाकर प्रणाम करने के अनन्तर बड़े हर्ष में भरकर मैंने उन भगवान् शिव से कहा-धर्म में दृढ़तापूर्वक स्थिति, युद्ध में शत्रुओं का संहार करने की क्षमता, श्रेष्ठ यश, उत्तम बल, योगबल, सबका प्रिय होना, आपका सांनिध्य तथा दस हजार पुत्र-ये ही आठ वर मैं माँग रहा हूँ। मेरे इस प्रकार कहने पर भगवान् शंकर ने कहा, 'एवमस्तु-ऐसा ही हो।' तब सबका धारण-पोषण करनेवाली सर्वपावनी तपोनिधि रुद्रपत्नी जगदम्बा उमादेवी एकाग्रचित्त होकर बोलीं-'निष्पाप श्यामसुन्दर! भगवान् ने तुम्हें साम्ब नामक पुत्र दिया है। अब मुझसे भी अभीष्ट आठ वर माँग लो। मैं तुम्हें वे वर प्रदान करती हूँ।' पाण्डुनन्दन! तब मैंने जगदम्बा के चरणों में सिर से प्रणाम करके उनसे कहा-'ब्राह्मणों पर कभी मेरे मन में क्रोध न हो। मेरे पिता मुझपर प्रसन्न रहें। मुझे सैकड़ों पुत्र प्राप्त हों। उत्तम भोग सदा उपलब्ध रहें। हमारे कुल में प्रसन्नता बनी रहे। मेरी माता भी प्रसन्न रहें। मुझे शान्ति मिले और प्रत्येक कार्य में कुशलता प्राप्त हो-ये आठ वर और माँगता हूँ।'

भगवती उमा ने कहा-'अमरों के समान प्रभावशाली श्रीकृष्ण! ऐसा ही होगा। मैं कभी झूठ नहीं बोलती हूँ। तुम्हें सोलह हजार रानियाँ होगी। उनका तुम्हारे प्रति प्रेम रहेगा। तुम्हें अक्षय धनधान्य की प्राप्ति होगी। बन्धु-बान्धवों की ओर से तुम्हें प्रसन्नता प्राप्त होगी। मैं तुम्हारे इस शरीर के सदा कमनीय बने रहने का वर देती हूँ और तुम्हारे घर में प्रतिदिन सात हजार अतिथि भोजन करेंगे।'[2]

---

[1] **विदुः कृष्ण परां भक्तिमस्मासु तव शत्रुहन्। क्रियतामात्मनः श्रेयः प्रीतिर्हि त्वयि मे परा।।** (428)

[2] यहाँ श्रीकृष्ण के माँगे हुए आठ वरों को 'एवं भविष्यति' इस वाक्य के द्वारा देने के पश्चात् पार्वतीजी अपनी ओर से आठ वर और देती हैं। इनमें 'अमरप्रभाव' इस सम्बोधन के द्वारा देवोपम प्रभाव का दान ही पहला वरदान सूचित किया गया है। 'मैं कभी झूठ नहीं बोलती' इस कथन के द्वारा 'तुम भी कभी झूठ नहीं बोलोगे' यह दूसरा वर सूचित होता है। सोलह हजार रानियों के प्राप्त होने का वर तीसरा है। उनका प्रिय होना चौथा वर है। अक्षय धन-धान्य की प्राप्ति पाँचवा वर है। बान्धवों की प्रीति छठा, शरीर की कमनीयता सातवाँ और सात हजार अतिथियों का भोजन आठवाँ वर है। इससे पहले उपमन्यु द्वारा जो सोलह और आठ वर के प्राप्त होने की बात कही गयी थी, उसकी सङ्गति लग जाती है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं – भरतनन्दन! भीमसेन के बड़े भैया! इस प्रकार महादेवजी तथा देवी पार्वती मुझे वरदान देकर अपने गणों के साथ उसी क्षण अन्तर्धान हो गये। नृपश्रेष्ठ! यह अत्यन्त अद्भुत वृत्तान्त मैंने पहले महातेजस्वी ब्राह्मण उपमन्यु को पूर्णरूप से बताया था। उत्तम व्रत का पालन करनेवाले नरेश! उपमन्युने देवाधिदेव महादेवजी को नमस्कार करके इस प्रकार कहा–

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे।। (11)

उपमन्यु बोले – महादेवजी के समान कोई देवता नहीं है। महादेवजी के समान कोई गति नहीं है। दान में शिवजी की समानता करनेवाला कोई नहीं है तथा युद्ध में भी भगवान् शंकर के समान दूसरा कोई वीर नहीं है। (श्रीमहाभारत, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व अ० – 15)

(4) ब्रह्मपुत्र तण्डि की शिवभक्ति

उपमन्यु (श्रीकृष्ण से) कहते हैं – तात! सत्ययुग में तण्डि नाम से विख्यात एक ऋषि थे, जिन्होंने भक्तिभाव से ध्यान के द्वारा दस हजार वर्षोंतक महादेवजी की आराधना की थी। उन्हें जो फल प्राप्त हुआ था, उसे बता रहा हूँ, सुनिये। उन्होंने महादेवजी का दर्शन किया और स्तोत्रों द्वारा उन प्रभु की स्तुति की। इस तरह तण्डि ने तपस्या में संलग्न होकर अविनाशी परमात्मा महामना शिव का चिन्तन करके अत्यन्त विस्मित हो इस प्रकार कहा था– 'सांख्यशास्त्र के विद्वान् पर, प्रधान, पुरुष, अधिष्ठाता और ईश्वर कहकर सदा जिनका गुणगान करते हैं, योगीजन जिनके चिन्तन में लगे रहते हैं, विद्वान् पुरुष जिन्हें जगत् की उत्पत्ति और विनाश का कारण समझते हैं, देवताओं, असुरों और मुनियों में भी जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है, उन अजन्मा, अनादि, अनन्त, अनघ और अत्यन्त सुखी, प्रभावशाली ईश्वर महादेवजी की मैं शरण लेता हूँ।' इतना कहते ही तण्डि ने उन तपोनिधि, अविकारी, अनुपम, अचिन्त्य, शाश्वत, ध्रुव, निष्कल, सकल, निर्गुण एवं सगुण ब्रह्मका दर्शन प्राप्त किया, जो योगियों के परमानन्द, अविनाशी एवं मोक्षस्वरूप हैं। वे ही मनु, इन्द्र, अग्नि, मरुद्गण, सम्पूर्ण विश्व तथा ब्रह्माजी की भी गति हैं। मन और इन्द्रियों के द्वारा उनका ग्रहण नहीं हो सकता। वे अग्राह्य, अचल, शुद्ध बुद्धि के द्वारा अनुभव करने योग्य तथा मनोमय हैं। उनका ज्ञान होना अत्यन्त कठिन है। वे अप्रमेय हैं। जिन्होंने अपने अन्तःकरण को पवित्र एवं वशीभूत नहीं किया है, उनके लिये वे सर्वथा दुर्लभ हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं। अज्ञानमय अन्धकार से अत्यन्त परे हैं। जो देवता अपने को प्राणवान्–जीवस्वरूप बनाकर उसमें मनोमय ज्योति बनकर स्थित हुए थे, उन्हीं के दर्शन की अभिलाषा से तण्डि मुनि बहुत वर्षों तक उग्र तपस्या में लगे रहे। जब उनका दर्शन प्राप्त कर लिया, तब उन मुनीश्वर ने जगदीश्वर शिव की इस प्रकार स्तुत की।

तण्डि ने कहा – 'सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! आप पवित्रों में भी परम पवित्र तथा गतिशील प्राणियों की उत्तम गति हैं। तेजों में अत्यन्त उग्र तेज और तपस्याओं में उत्कृष्ट तप हैं। गन्धर्वराज विश्वावसु,

दैत्यराज हिरण्याक्ष और देवराज इन्द्र भी आपकी वन्दना करते हैं। सबको महान् कल्याण प्रदान करनेवाले प्रभो! आप परम सत्य हैं। आपको नमस्कार है। विभो! जो जन्म–मरण से भयभीत हो संसारबन्धन से मुक्त होने के लिये प्रयत्न करते हैं, उन यतियों को निर्वाण(मोक्ष) प्रदान करनेवाले आप ही है। आप ही सहस्त्रों किरणोंवाले सूर्य होकर तप रहे हैं। सुख के आश्रयरूप महेश्वर! आपको नमस्कार है।'

'ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव तथा महर्षि भी आपको यथार्थरूप से नहीं जानते हैं। फिर हम कैसे जान सकते हैं। आपसे ही सबकी उत्पत्ति होती है तथा आप में ही यह सारा जगत् प्रतिष्ठित है। काल, पुरुष और ब्रह्म – इन तीन नामों द्वारा आप ही प्रतिपादित होते हैं। पुराणवेत्ता देवर्षियों ने आप के ये तीन रूप बताये हैं। अधिपौरुष, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवत, अधिलोक, अधिविज्ञान और अधियज्ञ आप ही हैं। आप देवताओं के लिये भी दुर्ज्ञेय हैं। विद्वान् पुरुष आपको अपने ही शरीर में स्थित अन्तर्यामी आत्मा के रूप में जानकर संसार – बन्धन से मुक्त हो रोग – शोक से रहित परमभाव को प्राप्त होते हैं।'

त्वां विदित्वात्मदेहस्थं दुर्विदं दैवतैरपि।
विद्वांसो यान्ति निर्मुक्ताः परं भावमनामयम्।। (19)

'प्रभो! यदि आप स्वयं ही कृपा करके जीव का उद्धार करना न चाहें तो उसके बारंबार जन्म और मृत्यु होते रहते हैं। आप ही स्वर्ग और मोक्ष के द्वार हैं। आप ही उनकी प्राप्ति में बाधा डालनेवाले हैं तथा आप ही ये दोनों वस्तुएँ प्रदान करते हैं। आप ही स्वर्ग और मोक्ष हैं। आप ही काम और क्रोध हैं तथा आप ही सत्त्व, रज, तम, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, इन्द्र, सूर्य, यम, वरुण, चन्द्रमा, मनु, धाता, विधाता, और धनाध्यक्ष कुबेर भी आप ही हैं। पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश, वाणी, बुद्धि, स्थिति, मति, कर्म, सत्य, असत्य तथा अस्ति और नास्ति भी आप ही हैं। आप ही इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के विषय हैं। आप ही प्रकृति से परे निश्चल एवं अविनाशी तत्त्व हैं। आप ही विश्व और अविश्व – दोनों से परे विलक्षण भाव हैं तथा आप ही चिन्त्य और अचिन्त्य हैं। जो यह परम ब्रह्म है, जो वह परमपद है तथा जो सांख्यवेत्ताओं और योगियों की गति है, वह आप ही हैं – इसमें संशय नहीं है। ज्ञान से निर्मल बुद्धिवाले ज्ञानी पुरुष यहाँ जिस गति को प्राप्त करना चाहते हैं, सत्पुरुषों की उसी गति को निश्चित रूप से हम प्राप्त हो गये हैं; अतः आज हम निश्चय ही कृतार्थ हो गये। अहो, हम अज्ञानवश इतने दीर्घकालतक मोह में पड़े रहे हैं, क्योंकि जिन्हें विद्वान् पुरुष जानते हैं, उन्हीं सनातन परमदेव को हम अबतक नहीं जान सके थे।'

'अब अनेक जन्मों के प्रयत्न से मैंने यह साक्षात् आपकी भक्ति प्राप्त की है। आप ही भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले महान् देवता हैं, जिन्हें जानकर ज्ञानी पुरुष मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जो सनातन ब्रह्म देवताओं, असुरों और मुनियों के लिये भी गुह्य है, जो हृदयगुहा में स्थित रहकर मननशील मुनि के लिये भी दुर्विज्ञेय बने हुए हैं, वही ये भगवान् हैं। ये ही सबकी सृष्टि करनेवाले देवता हैं। इनके

सब ओर मुख हैं। ये सर्वात्मा, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हैं। आप शरीर के निर्माता और शरीरधारी हैं, इसलिये देही कहलाते हैं। देह के भोक्ता और देहधारियों की परमगति हैं। आप ही प्राणों के उत्पादक, प्राणधारी, प्राणी, प्राणदाता तथा प्राणियों की गति हैं। ध्यान करनेवाले प्रियभक्तों की जो अध्यात्मगति है तथा पुनर्जन्म की इच्छा न रखनेवाले आत्मज्ञानी पुरुषों की जो गति बतायी गयी है, वह ये ईश्वर ही हैं। ये ही समस्त प्राणियों को शुभ और अशुभ गति प्रदान करनेवाले हैं। ये ही समस्त प्राणियों को जन्म और मृत्यु प्रदान करते हैं। संसिद्धि (मुक्ति) की इच्छा रखनेवाले पुरुषों की जो परम गति है, वह ये ईश्वर ही हैं। देवताओं सहित भू आदि समस्त लोकों को उत्पन्न करके ये महादेव ही (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र, यजमान-इन) अपनी आठ मूर्तियों द्वारा उनका धारण और पोषण करते हैं। इन्हीं से सबकी उत्पत्ति होती है और इन्हीं में सारा जगत् प्रतिष्ठित है और इन्हीं में सबका लय होता है।'

'ये ही एक सनातन पुरुष हैं। ये ही सत्य की इच्छा रखनेवाले सत्पुरुषों के लिये सर्वोत्तम सत्यलोक हैं। ये ही मुक्त पुरुषों के अपवर्ग (मोक्ष) और आत्मज्ञानियों के कैवल्य हैं। देवता, असुर और मनुष्यों को इनका पता न लगने पाये, मानो इसीलिये ब्रह्मा आदि सिद्ध पुरुषों ने इन परमेश्वर को अपनी हृदयगुफा में छिपा रखा है। हृदयमन्दिर में गूढ़भाव से रहकर प्रकाशित न होनेवाले इन परमात्मदेव ने सबको अपनी माया से मोहित कर रखा है। इसीलिये देवता, असुर और मनुष्य आप महादेव को यथार्थरूप से नहीं जान पाते हैं। जो लोग भक्तियोग से भावित होकर उन परमेश्वर की शरण लेते हैं, उन्हीं को यह हृदय-मन्दिर में शयन करनेवाले भगवान् स्वयं अपना दर्शन देते हैं। जिन्हें जान लेने पर फिर जन्म और मरण का बन्धन नहीं रह जाता है तथा जिनका ज्ञान प्राप्त हो जाने पर फिर दूसरे किसी उत्कृष्ट ज्ञेय तत्त्व का जानना शेष नहीं रहता हैं, जिन्हें प्राप्त कर लेने पर विद्वान् पुरुष बड़े-से-बड़े लाभ को भी उनसे अधिक नहीं मानता है, जिस सूक्ष्म परम पदार्थ को पाकर ज्ञानी मनुष्य ह्रास और नाश से रहित परमपद को प्राप्त कर लेता है, सत्त्व आदि तीन गुणों तथा चौबीस तत्त्वों को जाननेवाले सांख्यज्ञान विशारद् सांख्ययोगी विद्वान् जिस सूक्ष्म तत्त्व को जानकर उस सूक्ष्मज्ञानरूपी नौका के द्वारा संसार समुद्र से पार होते और सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं, प्राणायामपरायण पुरुष वेदवेत्ताओं के जानने योग्य तथा वेदान्त में प्रतिष्ठित जिस नित्य तत्त्व का ध्यान और जप करते हैं और उसी में प्रवेश कर जाते है; वही ये महेश्वर हैं। ॐकाररूपी रथपर आरूढ़ होकर वे सिद्ध पुरुष इन्हीं में प्रवेश करते हैं। ये ही देवयान के द्वाररूप सूर्य कहलाते हैं। ये ही पितृयान-मार्ग के द्वार चन्द्रमा कहलाते हैं। काष्ठा, दिशा, संवत्सर और युग आदि भी ये ही हैं। दिव्य लाभ (देवलोक का सुख), अदिव्य लाभ (इस लोक का सुख), परम लाभ (मोक्ष), उत्तरायण और दक्षिणायन भी ये ही हैं।'

'पूर्वकाल में प्रजापति ने नाना प्रकार के स्तोत्रों द्वारा इन्हीं नीललोहित नामवाले भगवान् की आराधना करके प्रजा की सृष्टि के लिये वर प्राप्त किया था। ऋग्वेद के विद्वान् तात्त्विक

यज्ञकर्म में ऋग्वेद के मन्त्रों द्वारा जिनकी महिमा का गान करते हैं, यजुर्वेद के ज्ञाता द्विज यज्ञ में यजुर्मन्त्रों द्वारा दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय – इन त्रिविध रूपों से जाननेयोग्य जिन महादेवजी के उद्देश्य से आहुति देते हैं तथा शुद्ध बुद्धि से युक्त सामवेद के गानेवाले विद्वान् साममन्त्रों द्वारा जिनकी स्तुति गाते हैं, अथर्ववेदी ब्राह्मण ऋत, सत्य एवं परब्रह्म नाम से जिनकी स्तुति करते हैं, जो यज्ञ के परम कारण हैं, वे ही ये परमेश्वर समस्त यज्ञों के परमपति माने गये हैं।'

'मृत्यु, यम, अग्नि, संहार के लिये वेगशाली काल, काल के परम कारण तथा सनातन काल भी – ये महादेव ही हैं। चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, वायु, ध्रुव, सप्तर्षि; सात भुवन, मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, विकारों के सहित विशेषपर्यन्त समस्त तत्त्व, ब्रह्माजी से लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्, भूतादि, सत् और असत् आठ प्रकृतियाँ तथा प्रकृति से परे जो पुरुष है, इन सबके रूप में ये महादेवजी ही विराजमान हैं। इन महादेवजी का अंशभूत जो सम्पूर्ण जगत् चक्र की भाँति निरन्तर चलता रहता है, वह भी ये ही हैं। ये परमानन्दस्वरूप हैं। जो शाश्वत ब्रह्म है, वह भी ये ही हैं। ये ही विरक्तों की गति हैं और ये ही सत्पुरुषों के परमभाव हैं। ये ही उद्वेगरहित परमपद हैं। ये ही सनातन ब्रह्म हैं। शास्त्रों और वेदाङ्गों के ज्ञाता पुरुषों के लिये ये ही ध्यान करने के योग्य परमपद हैं। यही वह पराकाष्ठा, यही वह परम कला, यही वह परम सिद्धि और यही वह परम गति हैं एवं यही वह परम शान्ति और वह परम आनन्द भी हैं, जिसको पाकर योगीजन अपने को कृतकृत्य मनते हैं। यह तुष्टि, यह सिद्धि, यह श्रुति, यह स्मृति, भक्तों की यह अध्यात्मगति तथा ज्ञानी पुरुषों की यह अक्षय प्राप्ति (पुनरावृत्तिरहित मोक्षलाभ) आप ही हैं। प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञों द्वारा सकाम भाव से यजन करनेवाले यजमानों की जो गति होती है, वह गति आप ही हैं। इसमें संशय नहीं है। देव! उत्तम योग – जप तथा शरीर को सुखा देनेवाले नियमोंद्वारा जो शान्ति मिलती है और तपस्या करनेवाले पुरुषों को जो दिव्य गति प्राप्त होती है, वह परम गति आप ही हैं। सनातन देव! कर्म – संन्यासियों को और विरक्तों को ब्रह्मलोक में जो उत्तम गति प्राप्त होती है, वह आप ही हैं। सनातन परमेश्वर! जो मोक्ष की इच्छा रखकर वैराग्य के मार्ग पर चलते हैं उन्हें, और जो प्रकृति में लय को प्राप्त होते हैं उन्हें, जो गति उपलब्ध होती है, वह आप ही हैं। देव! ज्ञान और विज्ञान से युक्त पुरुषों को जो सारूप्य आदि नाम से रहित, निरञ्जन एवं कैवल्यरूप परमगति प्राप्त होती है, वह आप ही हैं। प्रभो! वेद – शास्त्र और पुराणों में जो ये पाँच गतियाँ बतायी गयी हैं, ये आपकी कृपा से प्राप्त होती हैं, अन्यथा नहीं।'

इस प्रकार तपस्या की निधिरूप तण्डिने अपने मनसे महादेवजी की स्तुति की और पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने जिस परम ब्रह्मस्वरूप स्तोत्र का गान किया था, उसी का स्वयं भी गान किया।

उपमन्यु कहते हैं – तण्डि ने स्तुति करते हुए यह बात कही थी कि 'ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव और महर्षि भी आप को यथार्थरूप से नहीं जानते हैं', इससे भगवान् शंकर बहुत संतुष्ट हुए और बोले।

भगवान् श्रीशिव ने कहा – ब्रह्मन्! तुम अक्षय, अविकारी, दुःखरहित, यशस्वी, तेजस्वी एवं

दिव्यज्ञान से सम्पन्न होओगे। द्विजश्रेष्ठ! मेरी कृपा से तुम्हें एक विद्वान् पुत्र प्राप्त होगा, जिसके पास ऋषिलोग भी शिक्षा ग्रहण करने के लिये जायँगे। वह कल्पसूत्र का निर्माण करेगा, इसमें संशय नहीं है। वत्स! बोलो, तुम क्या चाहते हो? अब मैं तुम्हें कौन सा मनोवाञ्छित वर प्रदान करूँ।

तब तण्डि ने हाथ जोड़कर कहा– 'प्रभो! आपके चरणारविन्द में मेरी सुदृढ़ भक्ति हो।'

उपमन्यु ने कहा– देवर्षियों द्वारा वन्दित और देवताओं द्वारा प्रशंसित होते हुए महादेवजी इन वरों को देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। यादवेश्वर! जब पार्षदोंसहित भगवान् अन्तर्धान हो गये, तब ऋषि ने मेरे आश्रमपर आकर यहाँ मुझसे ये सब बातें बतायीं। मानवश्रेष्ठ! तण्डिमुनि ने जिन आदिकाल के प्रसिद्ध नामों का मेरे सामने वर्णन किया, उन्हें आप भी सुनिये। वे सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। पितामह ब्रह्मा ने पूर्वकाल में देवताओं के निकट महादेवजी के दस हजार नाम बताये थे और शास्त्रों में भी उनके सहस्र नाम वर्णित हैं। अच्युत! पहले देवेश्वर ब्रह्माजी ने महादेवजी की कृपा से महात्मा तण्डि के निकट जिन नामों का वर्णन किया था, महर्षि तण्डि ने भगवान् महादेव के उन्हीं समस्त गोपनीय नामों का मेरे समक्ष प्रतिपादन किया था।

(श्रीमहाभारत, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व अ.-16)

(5) शिवसहस्रनामस्तोत्र और उसके पाठ का फल

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं– तात युधिष्ठिर! तदनन्तर ब्रह्मर्षि उपमन्यु ने मन और इन्द्रियों को एकाग्र करके पवित्र हो हाथ जोड़ मेरे समक्ष वह नाम-संग्रह आदि से ही कहना आरम्भ किया।

उपमन्यु बोले– मैं ब्रह्माजी के कहे हुए, ऋषियों के बताये हुए तथा वेद-वेदाङ्गों से प्रकट हुए नामों द्वारा सर्वलोक विख्यात एवं स्तुति के योग्य भगवान् की स्तुति करूँगा। इन सब नामों का आविष्कार महापुरुषों ने किया है तथा वेदों में दत्तचित्त रहनेवाले महर्षि तण्डि ने भक्तिपूर्वक इनका संग्रह किया है। इसलिये ये सभी नाम सत्य, सिद्ध तथा सम्पूर्ण मनोरथों के साधक हैं। विख्यात श्रेष्ठ पुरुषों तथा तत्त्वदर्शी मुनियों ने इन सभी नामों का यथावत्रूप से प्रतिपादन किया है। महर्षि तण्डि ने ब्रह्मलोक से मृत्युलोक में इन नामों को उतारा है; इसलिये ये सत्यनाम सम्पूर्ण जगत् में आदरपूर्वक सुने गये हैं। यदुकुलतिलक श्रीकृष्ण! यह ब्रह्माजी का कहा हुआ सनातन शिव-स्तोत्र अन्य स्तोत्रों की अपेक्षा श्रेष्ठ है और उत्तम वेदमय है। सब स्तोत्रों में इसका प्रथम स्थान है। यह स्वर्ग की प्राप्ति करानेवाला, सम्पूर्ण भूतों के लिये हितकर एवं शुभकारक है। इसका मैं आपसे वर्णन करूँगा। आप परमेश्वर महादेवजी के भक्त हैं; अतः इस शिवस्वरूप स्तोत्र का वरण करें। शिवभक्त होने के ही कारण मैं यह सनातन वेदस्वरूप स्तोत्र आपको सुनाता हूँ। महादेवजी के इस सम्पूर्ण नामसमूह का पूर्णरूप से विस्तारपूर्वक वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता। माधव! जिनके आदि, मध्य और अन्त का पता देवता भी नहीं पाते हैं, उनके गुणों का पूर्णरूप से वर्णन कौन कर सकता है। परंतु मैं अपनी शक्ति के अनुसार उन बुद्धिमान् महादेवजी की ही कृपा से संक्षिप्त अर्थ, पद और अक्षरों से युक्त उनके चरित्र एवं स्तोत्र का वर्णन करूँगा।

उनकी आज्ञा प्राप्त किये बिना उन महेश्वर की स्तुति नहीं की जा सकती है। जब उनकी आज्ञा प्राप्त हुई है, तभी मैंने उनकी स्तुति की है। आदि-अन्त से रहित तथा जगत् के कारणभूत अव्यक्त योनि महात्मा शिव के नामों का कुछ संक्षिप्त संग्रह मैं बता रहा हूँ। श्रीकृष्ण! जो वरदायक, वरेण्य (सर्वश्रेष्ठ), विश्वरूप और बुद्धिमान् हैं, उन भगवान् शिव का पद्मयोनि ब्रह्माजी के द्वारा वर्णित नाम-संग्रह श्रवण करो। प्रपितामह ब्रह्माजी ने जो दस हजार नाम बताये थे, उन्हीं को मनरूपी मथनी से मथकर मथे हुए दही से घी की भाँति यह सहस्त्रनामस्तोत्र निकाला गया है। जैसे पर्वत का सार सुवर्ण और फूल का सार मधु है, उसी प्रकार यह दस हजार नामों का सार उद्‌धृत किया गया है। यह सहस्त्रनाम सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला और चारों वेदों के समन्वय से युक्त है। यह मङ्‌गलजनक, पुष्टिकारक, राक्षसों का विनाशक तथा परम पावन है। जो भक्त हो, श्रद्धालु और आस्तिक हो, उसी को इसका उपदेश देना चाहिये। अश्रद्धालु, नास्तिक और अजितात्मा पुरुष को इसका उपदेश नहीं देना चाहिये।

श्रीकृष्ण! जो जगत् के कारणरूप ईश्वर महादेव के प्रति दोषदृष्टि रखता है, वह पूर्वजों और अपनी संतान के सहित नरक में पड़ता है।[1] यह सहस्त्रनामस्तोत्र ध्यान है, यह योग है, यह सर्वोत्तम ध्येय है, यह जपनीय मन्त्र है, यह ज्ञान है और यह उत्तम रहस्य है। जिसको अन्तकाल में भी जान लेनेपर मनुष्य परमगति को पा लेता है। यह सहस्त्रनामस्तोत्र परम पवित्र, मङ्‌गलकारक, बुद्धिवर्द्धक, कल्याणमय तथा उत्तम है। सम्पूर्ण लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने पूर्वकाल में इस स्तोत्र का अविष्कार करके इसे समस्त दिव्यस्तोत्रों के राजा के पदपर प्रतिष्ठित किया था। तबसे महात्मा ईश्वर महादेव का यह देवपूजित स्तोत्र संसार में 'स्तवराज' के नाम से विरव्यात हुआ। ब्रह्मलोक से यह स्तवराज स्वर्गलोक में उतारा गया। पहले इसे तण्डिमुनि ने प्राप्त किया था, इसलिये यह 'तण्डिकृत सहस्त्रनामस्तवराज' के रूप में प्रसद्धि हुआ। तण्डि ने स्वर्ग से उसे इस भूतलपर उतारा था। यह सम्पूर्ण मङ्‌गलों का भी मङ्‌गल तथा समस्त पापों का नाश करनेवाला है। जिनसे सम्पूर्ण लोक उत्पन्न होते और फिर उन्हीं में विलीन हो जाते हैं, जो सम्पूर्ण भूतों के आत्मा हैं, उन्हीं अमित तेजस्वी भगवान् शिव के एक हजार आठ नामों का वर्णन मुझसे सुनिये। पुरुषसिंह! इसका श्रवणमात्र करके आप अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेंगे।[2]

इसके बाद उपमन्यु ने श्रीकृष्णजी को सहस्त्रनाम स्तोत्र सुनाया। स्तोत्र को सुनाकर उन्होंने श्रीकृष्ण से पुनः इस प्रकार कहा।

---

[1] **यश्चाभ्यसूयते देवं कारणात्मानमीश्वरम्।**
स कृष्ण नरकं याति सह पूर्वैः सहात्मनैः।। (18)

[2] इन एक हजार आठ नामों का उल्लेख इसी पुस्तक के द्वितीय भाग में किया गया हैं। यहाँ केवल उनकी महिमा का वर्णन किया गया है।

श्रीकृष्ण! इस प्रकार बहुत–से नामों में से प्रधान–प्रधान नाम चुनकर मैंने उनके द्वारा भक्तिपूर्वक भगवान् शंकर का स्तवन किया। इस तरह भक्ति के द्वारा भगवान् को सामने रखते हुए मैंने उन्हीं से आज्ञा लेकर उन बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भगवान् यज्ञपति की स्तुति की। जो सदा योगयुक्त एवं पवित्र भाव से रहनेवाला भक्त इन पुष्टिवर्धक नामों द्वारा भगवान् शिव की स्तुति करता है, वह स्वयं ही उन परमात्मा शिव को प्राप्त कर लेता है। यह उत्तम वेदतुल्य स्तोत्र परब्रह्म परमात्मस्वरूप शिव को अपना लक्ष्य बनाता है। ऋषि और देवता भी उसके द्वारा उन परमात्मा शिव की स्तुति करते हैं। जो लोग मन को संयम में रखकर इन नामों द्वारा भक्तवत्सल तथा आत्मनिष्ठा प्रदान करनेवाले भगवान् महादेव की स्तुति करते हैं, उनपर वे बहुत संतुष्ट होते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में जो प्रधानतः आस्तिक और श्रद्धालु हैं तथा अनेक जन्मतक की हुई स्तुति एवं भक्ति के प्रभाव से मन, वाणी, क्रिया तथा प्रेमभाव के द्वारा सोते–जागते चलते–बैठते और आँखों के खोलते–मीचते समय भी सदा अनन्यभाव से उन परम सनातनदेव जगदीश्वर शिव का बारंबार ध्यान करते हैं, वे अमित तेज से सम्पन्न हो जाते हैं तथा जो उन्हीं के विषय में सुनते–सुनाते एवं उन्हीं की महिमा का कथोपकथन करते हुए इस स्तोत्रद्वारा सदा उनकी स्तुति करते हैं, वे स्वयं भी स्तुत्य होकर सदा संतुष्ट होते हैं और रमण करते हैं।

कोटि सहस्त्र जन्मोंतक नाना प्रकार की संसारी योनियों में भटकते–भटकते जब कोई जीव सर्वथा पापों से रहित हो जाता है, तब उसकी भगवान् शिव में भक्ति होती है। भाग्य से जो सर्वसाधनसम्पन्न हो गया है, उसको जगत् के कारण भगवान् शिव में सम्पूर्णभाव से सर्वथा अनन्यभक्ति प्राप्त होती है। रुद्रदेव में निश्चल एवं निर्विघ्नरूप से अनन्यभक्ति हो जाय–यह देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, मनुष्यों में तो प्रायः ऐसी भक्ति स्वतः नहीं उपलब्ध होती है। भगवान् शंकर की कृपा से ही मनुष्यों के हृदय में उनकी अनन्यभक्ति उत्पन्न होती है, जिससे वे अपने चित्त को उन्हीं के चिन्तन में लगाकर परमसिद्धि को प्राप्त होते हैं। जो सम्पूर्ण भाव से अनुगत होकर महेश्वर की शरण लेते हैं, शरणागतवत्सल महादेवजी इस संसार से उनका उद्धार कर देते हैं। इसी प्रकार भगवान् की स्तुति द्वारा अन्य देवगण भी अपने संसारबंधन का नाश करते हैं; क्योंकि महादेवजी की शरण लेने के सिवा ऐसी दूसरी कोई शक्ति या तप का बल नहीं है, जिससे मनुष्यों का संसारबंधन से छुटकारा हो सके। श्रीकृष्ण! यह सोचकर उन इन्द्र के समान तेजस्वी एवं कल्याणमयी बुद्धिवाले तण्डि मुनि ने गजचर्मधारी एवं समस्त कार्यकारण के स्वामी भगवान् शिव की स्तुति की।

तस्यैव च प्रसादेन भक्तिरुत्पद्यते नृणाम्।
येन यान्तिपरां सिद्धिं तद्भागवतचेतसः।।
ये सर्वभावानुगताः प्रपद्यन्ते महेश्वरम्।
प्रपन्नवत्सलो देवः संसारात् तान् समुद्धरेत्।।
एवमन्ये विकुर्वन्तिदेवाः संसारमोचनम्।

मनुष्याणामृते देवं नान्या शक्तिस्तपोबलम्।।
इति तेनेन्द्रकल्पेन भगवान् सदसत्पतिः।
कृत्तिवासाः स्तुतः कृष्ण तण्डिना शुभबुद्धिना।। (167 - 170)

भगवान् शंकर के इस स्तोत्र को ब्रह्माजी ने स्वयं अपने हृदय में धारण किया है। वे भगवान् शिव के समीप इस वेदतुल्य स्तुति का गान करते रहते हैं; अतः सबको इस स्तोत्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यह परम पवित्र, पुण्यजनक तथा सर्वदा सब पापों का नाश करनेवाला है। यह योग, मोक्ष, स्वर्ग और संतोष - सब कुछ देनेवाला है। जो लोग अनन्यभक्तिभाव से भगवान् शिव के स्वरूपभूत इस स्तोत्र का पाठ करते हैं, उन्हें वही गति प्राप्त होती है, जो सांख्यवेत्ताओं और योगियों को मिलती है। जो भक्त भगवान् शंकर के समीप एक वर्षतक सदा प्रयत्नपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है। ब्रह्माजी ने इन्द्र को इसका उपदेश किया और इन्द्र ने मृत्यु को। मृत्यु ने एकादश रुद्रों को इसका उपदेश किया। रुद्रों से तण्डि को इसकी प्राप्ति हुई। तण्डि ने ब्रह्मलोक में ही बड़ी भारी तपस्या करके इसे प्राप्त किया था। माधव! तण्डि ने शुक्र को, शुक्र ने गौतम को और गौतम ने वैवस्वतमनु को इसका उपदेश दिया। वैवस्वत मनु ने समाधिनिष्ठ और ज्ञानी नारायण नामक किसी साध्यदेवता को यह स्तोत्र प्रदान किया। धर्म से कभी च्युत न होनेवाले उन पूजनीय नारायण नामक साध्यदेव ने यम को इसका उपदेश किया। वृष्णिनन्दन! ऐश्वर्यशाली वैवस्वत यम ने नाचिकेता को और नाचिकेताने मार्कण्डेय मुनि को यह स्तोत्र प्रदान किया। शत्रुसूदन जनार्दन! मार्कण्डेयजी से मैंने नियमपूर्वक यह स्तोत्र ग्रहण किया था। अभी इस स्तोत्र की अधिक प्रसिद्धि नहीं हुई है, अतः मैं तुम्हें इसका उपदेश देता हूँ। यह वेदतुल्य स्तोत्र स्वर्ग, आरोग्य, आयु तथा धन-धान्य प्रदान करनेवाला है।

श्रीकृष्ण कहते हैं - कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! जो मनुष्य पवित्रभाव से ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक इन्द्रियों को संयम में रखकर एक वर्षतक योगयुक्त रहते हुए इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है।

(श्रीमहाभारत, अनुशासनपर्व, दानधर्मपर्व अ. - 17)

(6) शिवभक्ति एवं शिवसहस्रनाम की महिमा संबंधी ऋषियों का अनुभव

वैशम्पायनजी कहते हैं - जनमेजय! तदनन्तर मुनिवर व्यास ने युधिष्ठिर से कहा 'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम भी इस स्तोत्र का पाठ करो, जिससे तुम्हारे ऊपर भी महेश्वर प्रसन्न हों। पुत्र! महाराज! पूर्वकाल की बात है, मैंने पुत्र की प्राप्ति के लिये मेरुपर्वत पर बड़ी भारी तपस्या की थी। उस समय मैंने इस स्तोत्र का अनेक बार पाठ किया था। पाण्डुनन्दन! इसके पाठ से मैंने अपनी मनोवाञ्छित कामनाओं को प्राप्त कर लिया था। उसी प्रकार तुम भी शंकरजी से सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लोगे।' तत्पश्चात् वहाँ सांख्य के आचार्य देवसम्मानित कपिल ने कहा - 'मैंने भी अनेक जन्मोंतक भक्तिभाव से भगवान् शंकर की आराधना की थी। इससे प्रसन्न होकर भगवान् ने मुझे भवभयनाशक

ज्ञान प्रदान किया था।' तदनन्तर इन्द्र के प्रिय सखा आलम्बगोत्रीय चारूशीर्ष ने जो आलम्बायन नाम से ही प्रसिद्ध तथा परम दयालु हैं इस प्रकार कहा–

'पाण्डुनन्दन! पूर्वकाल में गोकर्णतीर्थ में जाकर मैंने सौ वर्षोंतक तपस्या करके भगवान् शंकर को संतुष्ट किया। इससे भगवान् शंकर की ओर से मुझे सौ पुत्र प्राप्त हुए, जो अयोनिज, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, परम तेजस्वी, जरारहित, दुःखहीन और एक लाख वर्ष की आयुवाले थे।'

इसके बाद भगवान् वाल्मीकि ने राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा– 'भारत! एक समय अग्निहोत्री मुनियों के साथ मेरा विवाद हो रहा था। उस समय उन्होंने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया कि 'तुम ब्रह्महत्यारे हो जाओ।' उनके इतना कहते ही मैं क्षणभर में उस अधर्म से व्याप्त हो गया। तब मैं पापरहित एवं अमोघ शक्तिवाले भगवान् शंकर की शरण में गया। इससे मैं उस पाप से मुक्त हो गया। फिर उन दुःखनाशन त्रिपुरहन्ता रुद्र ने मुझसे कहा, तुम्हें सर्वश्रेष्ठ सुयश प्राप्त होगा।'

इसके बाद धर्मात्माओं में श्रेष्ठ जमदग्निनन्दन परशुरामजी ऋषियों के बीच में खड़े होकर सूर्य के समान प्रकाशित होते हुए वहाँ कुन्तीकुमार युधिष्ठिर से इस प्रकार बोले– 'ज्येष्ठ पाण्डव! नरेश्वर! मैंने पितृतुल्य बड़े भाइयों को मारकर पितृवध और ब्राह्मणवध का पाप कर डाला था। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं पवित्र भाव से महादेवजी की शरण में गया। शरणागत होकर मैंने इन्हीं नामों से रुद्रदेव की स्तुति की। इससे भगवान् महादेव मुझपर बहुत संतुष्ट हुए और मुझे अपना परशु एवं दिव्यास्त्र देकर बोले– 'तुम्हे पाप नहीं लगेगा। तुम युद्ध में अजेय हो जाओगे। तुमपर मृत्यु का वश नहीं चलेगा तथा तुम अजर–अमर बने रहोगे।' इस प्रकार कल्याणमय विग्रहवाले जटाधारी भगवान् शिव ने मुझसे जो कुछ कहा, वह सब कुछ उन ज्ञानीमहेश्वर के कृपाप्रसाद से मुझे प्राप्त हो गया।'

तदनन्तर विश्वामित्रजी ने कहा, 'राजन्! जिस समय मैं क्षत्रिय था, उन दिनों की बात है, मेरे मन में यह दृढ़ संकल्प हुआ कि मैं ब्राह्मण हो जाऊँ–यही उद्देश्य लेकर मैंने भगवान् शंकर की आराधना की और उनकी कृपा से मैंने अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया।' तत्पश्चात् असित देवल ने पाण्डुकुमार राजा युधिष्ठिर से कहा– 'कुन्तीनन्दन! प्रभो! इन्द्र के शाप से मेरा धर्म नष्ट हो गया था; किंतु भगवान् शंकर ने ही मुझे धर्म, उत्तम यश तथा दीर्घ आयु प्रदान की।' इसके बाद इन्द्र के प्रिय सखा और बृहस्पति के समान तेजस्वी मुनिवर भगवान् गृत्समद ने अजमीढवंशी युधिष्ठिर से कहा– "चाक्षुष मनु के पुत्र भगवान् वरिष्ठ के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक समय अचिन्त्य शक्तिशाली शतक्रतु इन्द्र का एक यज्ञ हो रहा था, जो एक हजार वर्षोंतक चलनेवाला था; उसमें मैं रथन्तर साम का पाठ कर रहा था। मेरे द्वारा उस सामका उच्चारण होनेपर वरिष्ठ ने मुझसे कहा– 'द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारे द्वारा रथन्तर साम का पाठ ठीक नहीं हो रहा है। विप्रयवर! तुम पापपूर्ण आग्रह छोड़कर फिर अपनी बुद्धि से विचार करो। सुदुर्मते! तुमने ऐसा पाप कर डाला है, जिससे यह यज्ञ ही निष्फल हो गया है।' ऐसा कहकर महाक्रोधी वरिष्ठ ने भगवान् शंकर की ओर देखते हुए फिर कहा– 'तुम ग्यारह हजार आठ

सौ वर्षोंतक जल और वायु से रहित तथा अन्य पशुओं से परित्यक्त केवल रुरु तथा सिंहों से सेवित जो यज्ञों के लिये उचित नहीं है ऐसे वृक्षों से भरे हुए विशालवन में बुद्धिशून्य, दुखी, सर्वदा भयभीत, वनचारी और महान् कष्ट में मग्न क्रूर स्वभाववाले पशु होकर रहोगे।' कुन्तीनन्दन! उनका यह वाक्य पूरा होते ही मैं क्रूर पशु हो गया। तब मैं भगवान् शंकर की शरण में गया। अपनी शरण में आये हुए मुझ सेवक से योगी महेश्वर इस प्रकार बोले– 'मुने! तुम अजर–अमर और दुःखरहित हो जाओगे। तुम्हें मेरी समानता प्राप्त हो और तुम दोनों यजमान और पुरोहित का यह यज्ञ सदा बढ़ता रहे।' इस प्रकार सर्वव्यापी भगवान् शंकर सबके ऊपर अनुग्रह करते हैं। ये ही सबका अच्छे ढंग से धारण–पोषण करते हैं और सर्वदा सबके सुख–दुःख का भी विधान करते हैं। तात! समरभूमि के श्रेष्ठ वीर! ये अचिन्त्य भगवान् शिव मन, वाणी तथा क्रिया द्वारा आराधना करने योग्य हैं। उनकी आराधना का ही यह फल है कि पाण्डित्य में मेरी समानता करनेवाला आज कोई नहीं हैं।"

उस समय बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण फिर इस प्रकार बोले– "मैने सुवर्ण–जैसे नेत्रवाले महादेवजी को अपनी तपस्या से संतुष्ट किया। युधिष्ठिर! तब भगवान् शिव ने मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहा–'श्रीकृष्ण! तुम मेरी कृपा से प्रिय पदार्थों की अपेक्षा भी अत्यन्त प्रिय होओगे। युद्ध में तुम्हारी कभी पराजय नहीं होगी तथा तुम्हें अग्नि के समान दुस्सह तेज की प्राप्ति होगी।' इस तरह महादेवजी ने मुझे और भी सहस्त्रों वर दिये। पूर्वकाल में अन्य अवतारों के समय मणिमन्थ पर्वत पर मैंने लाखों–करोड़ों वर्षोंतक भगवान् शंकर की आराधना की थी। इससे प्रसन्न होकर भगवान् ने मुझसे कहा– 'कृष्ण! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मन में जैसी रुचि हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो।' यह सुनकर मैंने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और कहा– 'यदि मेरी परम भक्ति से भगवान् महादेव प्रसन्न हों तो ईशान! आपके प्रति नित्य–निरन्तर मेरी स्थिर भक्ति बनी रहे।' तब 'एवमस्तु' कहकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये।"

जैगीषव्य बोले– 'युधिष्ठिर! पूर्वकाल में भगवान् शिव ने काशीपुरी के भीतर अन्य प्रबल प्रयत्न से संतुष्ट हो मुझे अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ प्रदान की थी।'

गर्ग ने कहा – 'पाण्डुनन्दन! मैंने सरस्वती के तटपर मानस यज्ञ करके भगवान् शिव को संतुष्ट किया था। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे चौंसठ कलाओं का अद्भुत ज्ञान प्रदान किया। मुझे मेरे ही समान एक सहस्त्र ब्रह्मवादी पुत्र दिये तथा पुत्रोंसहित मेरी दस लाख वर्ष की आयु नियत कर दी।'

पराशरजी ने कहा– "नरेश्वर! पूर्वकाल में यहाँ मैंने महादेवजी को प्रसन्न करके मन–ही–मन उनका चिन्तन आरम्भ किया। मेरी इस तपस्या का उद्देश्य यह था कि मुझे महेश्वर की कृपा से महातपस्वी, महातेजस्वी, महायोगी, महायशस्वी, दयालु, श्रीसम्पन्न एवं ब्रह्मनिष्ठ वेदव्यासनामक मनोवाञ्छित पुत्र प्राप्त हो। मेरा ऐसा मनोरथ जानकर सुरश्रेष्ठ शिव ने मुझसे कहा 'मुने! तुम्हारी मेरे प्रति जो सम्भावना है अर्थात् जिस वर को पाने की लालसा है, उसी से तुम्हें कृष्ण नामक पुत्र प्राप्त होगा। सावर्णिक मन्वन्तर के समय जो सृष्टि होगी, उसमें तुम्हारा यह पुत्र सप्तर्षि

के पदपर प्रतिष्ठित होगा तथा इस वैवस्वत मन्वन्तर में यह वेदों का वक्ता, कौरव-वंश का प्रवर्तक, इतिहास का निर्माता, जगत् का हितैषी तथा देवराज इन्द्र का परमप्रिय महामुनि होगा। पराशर! तुम्हारा वह पुत्र सदा अजर-अमर रहेगा।' युधिष्ठिर! ऐसा कहकर महायोगी, शक्तिशाली, अविनाशी और निर्विकार भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये।"

माण्डव्य बोले- "नरेश्वर! मैं चोर नहीं था तो भी चोरीके संदेह में मुझे शूली पर चढ़ा दिया गया। वहीं से मैंने महादेवजी की स्तुति की। तब उन्होंने मुझसे कहा-'प्रियवर! तुम शूल से छुटकारा पा जाओगे और दस करोड़ वर्षोंतक जीवित रहोगे। तुम्हारे शरीर में इस शूल के धँसने से कोई पीड़ा नहीं होगी। तुम आधि-व्याघि से मुक्त हो जाओगे। मुने! तुम्हारा यह शरीर धर्म के चौथे पाद सत्य से उत्पन्न हुआ है। अतः तुम अनुपम सत्यवादी होओगे। जाओ, अपना जन्म सफल करो। ब्रह्मन्! तुम्हें बिना किसी विघ्न-बाधा के सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं तुम्हारे लिये अक्षय एवं तेजस्वी स्वर्गलोक प्रदान करता हूँ।' महाराज! ऐसा कहकर कृत्तिवासा, महातेजस्वी, वृषभ-वाहन तथा वरणीय सुरश्रेष्ठ भगवान् महेश्वर अपने गणों के साथ वहीं अन्तर्धान हो गये।"

गालवजी ने कहा- "राजन्! विश्वामित्र मुनि की आज्ञा पाकर मैं अपने पिताजी का दर्शन करने के लिये घर पर आया। उस समय मेरी माता वैधव्य के दुःख से दुखी हो जोर-जोर से रोती हुई मुझसे बोली-'तात! अनघ! कौशिक मुनि की आज्ञा लेकर घर पर आये हुए वेदविद्या से विभूषित तुझ तरुण एवं जितेन्द्रय पुत्र को तुम्हारे पिता नहीं देख सके।' माता की बात सुनकर मैं पिता के दर्शन से निराश हो गया और मन को संयम में रखकर महादेवजी की आराधना करके उनका दर्शन किया। उस समय वे मुझसे बोले-'वत्स! तुम्हारे पिता, माता और तुम तीनों ही मृत्यु से रहित हो जाओगे। अब तुम अपने घर में शीघ्र प्रवेश करो। वहाँ तुम्हें पिता का दर्शन प्राप्त होगा।' तात युधिष्ठिर! भगवान् शिव की आज्ञा से मैंने पुनः घर जाकर वहाँ यज्ञ करके यज्ञशाला से निकले हुए पिता का दर्शन किया। वे उस समय समिधा, कुश और वृक्षों से अपने-आप गिरे हुए पके फल आदि हव्य पदार्थ लिये हुए थे। पाण्डुनन्दन! उन्हें देखते ही मैं उनके चरणों में पड़ गया; फिर पिताजी ने भी उन समिधा आदि वस्तुओं को अलग रखकर मुझे हृदय से लगा लिया और मेरा मस्तक सूँघकर नेत्रों से आँसू बहाते हुए मुझसे कहा-'बेटा! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम विद्वान होकर घर आ गये और मैंने तुम्हें भर आँख देख लिया।'"

वैशम्पायनजी कहते हैं-जनमेजय! मुनियों के कहे हुए महादेवजी के ये अद्‌भुत चरित्र सुनकर पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर को बड़ा विस्मय हुआ। फिर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने धर्मनिधि युधिष्ठिर से कहा।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले- राजन्! सूर्य के समान तपते हुए-से तेजस्वी उपमन्यु ने मेरे समीप कहा था कि 'जो पापकर्मी मनुष्य अपने अशुभ आचरणों से कलुषित हो गये हैं, वे तमोगुणी या रजोगुणी

वृत्ति के लोग भगवान् शिव की शरण नहीं लेते हैं। जिनका अन्तःकरण पवित्र है, वे ही द्विज महादेवजी की शरण लेते हैं। जो परमेश्वर शिव का भक्त है, वह सब प्रकार से बर्तता हुआ भी पवित्र अन्तःकरणवाले वनवासी मुनियों के समान है। भगवान् रुद्र संतुष्ट हो जायँ तो वे ब्रह्मपद, विष्णुपद, देवताओंसहित देवेन्द्रपद अथवा तीनों लोकों का आधिपत्य प्रदान कर सकते हैं। तात! जो मनुष्य मन से भी भगवान् शिव की शरण लेते हैं, वे सब पापों का नाश करके देवताओं के साथ निवास करते हैं। बारंबार तालाब के तटभूमि को खोद-खोदकर उन्हें चौपट कर देनेवाला और इस सारे जगत् को जलती आग में झोंक देनेवाला पुरुष भी यदि महादेवजी की आराधना करता है तो वह पाप से लिप्त नहीं होता है। समस्त लक्षणों से हीन अथवा सब पापों से युक्त मनुष्य भी यदि अपने हृदय से भगवान् शिव का ध्यान करता है तो वह अपने सारे पापों को नष्ट कर देता है। केशव! कीट, पंतग, पक्षी तथा पशु भी यदि महादेवजी की शरण में आ जायँ तो उन्हें भी कहीं किसी का भय नहीं प्राप्त होता है। इसी प्रकार इस भूतलपर जो मानव महादेवजी के भक्त हैं, वे संसार के अधीन नहीं होते-यह मेरा निश्चित विचार है।' तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं भी धर्मपुत्र युधिष्ठिर से कहा-

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च द्यौर्भूमिरापो वसवोऽथ विश्वे।
धातार्यमा शुक्रबृहस्पती च रुद्राः ससाध्या वरुणोऽथ गोपः।।
ब्रह्मा शक्रो मारुतो ब्रह्म सत्यं वेदा यज्ञा दक्षिणा वेदवाहाः।
सोमो यष्टा यच्च हव्यं हविश्च रक्षादीक्षा संयमा ये च केचित्।।
स्वाहा वौषट् ब्राह्मणाः सौरभेयी धर्मं चाग्र्यं कालचक्रं बलं च।
यशो दमो बुद्धिमतां स्थितिश्च शुभाशुभं ये मुनयश्च सप्त।।
अग्र्या बुद्धिर्मनसा दर्शने च स्पर्शश्चाग्र्यः कर्मणां या च सिद्धिः।
गणा देवानामूष्मपाः सोमपाश्च लेखाः सुयामास्तुषिता ब्रह्मकायाः।।
आभासुरा गन्धपा धूमपाश्च वाचा विरुद्धाश्च मनोविरुद्धाः।
शुद्धाश्च निर्माणरताश्च देवाः स्पर्शाशना दर्शपा आज्यपाश्च।।
चिन्त्यद्योता ये च देवेषु मुख्या ये चाप्यन्ये देवताश्चाजमीढ।
सुपर्णगन्धर्वपिशाचदानवा यक्षास्तथा चारणपन्नगाश्च।।
स्थूलं सूक्ष्मं मृदु चाप्यसूक्ष्मं दुःखं सुखं दुःखमनन्तरं च।
सांख्यं योगं तत्पराणां परं च शर्वाज्जातं विद्धि यत् कीर्तितं मे।। (71-77)

"अजमीढवंशी धर्मराज! जो सूर्य, चन्द्रमा, वसु, अग्नि, स्वर्ग, भूमि, जल, वायु, विश्वदेव, धाता, अर्यमा, शुक्र, बृहस्पति, रुद्रगण, साध्यगण, राजा वरुण, ब्रह्मा, इन्द्र, वायुदेव, ॐकार, सत्य, वेद, यज्ञ, दक्षिणा, वेदपाठी, ब्राह्मण, सोमरस, यजमान, हवनीय हविष्य, रक्षा, दीक्षा, सब प्रकार के संयम, स्वाहा, वौषट्, ब्राह्मणगण, गौ, श्रेष्ठ धर्म, कालचक्र, बल, यश, दम, बुद्धिमानों की स्थिति, शुभाशुभ कर्म, सप्तर्षि,

श्रेष्ठ बुद्धि, मन, दर्शन, श्रेष्ठ स्पर्श, कर्मों की सिद्धि, ऊष्मप, सोमप, लेख, याम तथा तुषित आदि देवगण, ब्राह्मण - शरीर, दीप्तिशाली गन्धप, धूमप ऋषि, वाग्विरुद्ध और मनोविरुद्ध भाव, शुद्धभाव, निर्माण - कार्य में तत्पर रहनेवाले देवता, स्पर्शमात्र से भोजन करनेवाले, दर्शनमात्र से पेय रस का पान करनेवाले, घृत पीनेवाले हैं, जिनके संकल्प करनेमात्र से अभीष्ट वस्तु नेत्रों के समक्ष प्रकाशित होने लगती है, ऐसे जो देवताओं में मुख्य गण हैं, जो दूसरे - दूसरे देवता हैं, जो सुपर्ण, गन्धर्व, पिशाच, दानव, यक्ष, चारण तथा नाग हैं, जो स्थूल, सूक्ष्म, कोमल, असूक्ष्म, सुख, इस लोक के दुःख, परलोक के दुःख, सांख्य, योग एवं पुरुषार्थों में श्रेष्ठ मोक्षरूप परम पुरुषार्थ बताया गया है; इन सबको तुम महादेवजी से ही उत्पन्न हुआ समझो।"

तत्सम्भूता भूतकृतो वरेण्याः सर्वे देवा भुवनस्यास्य गोपाः।
अविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्षन् पुरातनीं तस्य देवस्य सृष्टिम्।। (78)

जो इस भूतल में प्रवेश करके महादेवजी की पूर्वकृत सृष्टि की रक्षा करते हैं, जो समस्त जगत् के रक्षक, विभिन्न प्राणियों की सृष्टि करनेवाले और श्रेष्ठ हैं, वे सम्पूर्ण देवता भगवान शिव से ही प्रकट हुए हैं।

विचिन्वन्तस्तपसा तत्स्थवीयः किंचित् तत्त्वं प्राणहेतोर्नतोऽस्मि।
ददातु देवः स वरानिहेष्टानाभिष्टुतो नः प्रभुरव्ययः सदा।। (79)

ऋषि - मुनि तपस्या द्वारा जिसका अन्वेषण करते हैं, उस सदा स्थिर रहनेवाले अनिर्वचनीय परम सूक्ष्म तत्त्वस्वरूप सदाशिव को मैं जीवन - रक्षा के लिये नमस्कार करता हूँ। जिन अविनाशी प्रभु की मेरे द्वारा सदा ही स्तुति की गयी है, वे महादेव यहाँ मुझे अभीष्ट वरदान दें।

जो पुरुष इन्द्रियों को वश में करके पवित्र होकर इस स्तोत्र का पाठ करेगा और नियमपूर्वक एक मासतक अखण्ड रूप से इस पाठ को चलाता रहेगा, वह अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त कर लेगा। कुन्तीनन्दन! ब्राह्मण इसके पाठ से सम्पूर्ण वेदों के स्वाध्याय का फल पाता है। क्षत्रिय समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर लेता है। वैश्य व्यापारकुशलता एवं महान् लाभ का भागी होता है और शूद्र इहलोक में सुख तथा परलोक में सद्गति पाता है। जो लोग सम्पूर्ण दोषों का नाश करनेवाले इस पुण्यजनक पवित्र स्तवराज का पाठ करके भगवान् रुद्र के चिन्तन में मन लगाते हैं, वे यशस्वी होते हैं। भरतनन्दन! मनुष्य के शरीर में जितने रोमकूप होते हैं, इस स्तोत्र का पाठ करनेवाला मनुष्य उतने ही हजार वर्षोंतक स्वर्ग में निवास करता है।

(इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्व के अन्तर्गत दानधर्मपर्व में मेघवाहनपर्व की कथाविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ।)

* * *

शिव- विष्णु का आलौकिक प्रेम

प्राचीन काल में सुरमुनिसेवित कैलास-शिखरपर महर्षि गौतम का एक आश्रम था। वहाँ एक बार पाताललोक से जगद्विजयी बाणासुर अपनें कुलगुरु-शुक्राचार्य तथा अपने पूर्वज-भक्तशिरोमणि प्रह्लाद, दानवीर बलि एवं दैत्यराज वृषपर्वा के साथ आया और महर्षि गौतम के सम्मान्य अतिथि के रूप में रहने लगा। एक दिन प्रातःकाल वृषपर्वा शौच-स्नानादि नित्य-कर्म से निवृत्त होकर भगवान् शंकर की पूजा कर रहा था। इतने में ही महर्षि गौतम का एक प्रिय शिष्य, जिसका अन्वर्थ नाम शंकरात्मा था और जो अवधूत के वेश में उन्मत्त की भाँति विचरता था, विकराल रूप बनाये वहाँ आ पहुँचा और वृषपर्वा तथा उनके सामने रखी हुई शंकर की मूर्ति के बीच में आकर खड़ा हो गया। वृषपर्वा को उसका इस प्रकार का उद्धत-सा व्यवहार देखकर बड़ा क्रोध आया। उसने जब देखा कि वह किसी प्रकार नहीं मानता तो चुपके से तलवार निकालकर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। जब महर्षि गौतम को यह संवाद मिला तो उनको बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि शंकरात्मा उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय था। उन्होंने उसके बिना जीवन व्यर्थ समझा और देखते-देखते वृषपर्वा की आँखों के सामने योगबल से अपने प्राण त्याग दिये। उन्हें इस प्रकार देहत्याग करते देखकर शुक्राचार्य से भी नहीं रहा गया, उन्होंने भी उसी प्रकार अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया और उनकी देखादेखी प्रह्लादादि अन्य दैत्यों ने भी वैसा ही किया। बात-की-बात में ऋषि के आश्रम में शिव-भक्तों की लाशों का ढेर लग गया। यह करुणापूर्ण दृश्य देखकर ऋषिपत्नी अहल्या हृदयभेदी स्वर से आर्तनाद करने लगीं। उनकी क्रन्दनध्वनि भक्तभयहारी भगवान् भूतभावन के कानोंतक पहुँची और उनकी समाधि टूट गयी। वे वायुवेग से महर्षि गौतम के आश्रमपर पहुँचे। इसी प्रकार गज की करुण पुकार सुनकर एक बार भगवान् चक्रपाणि भी बैकुण्ठ से पावँ-पियादे आतुर होकर दौड़े आये थे। धन्य भक्तवत्सलता! दैवयोग से ब्रह्माजी तथा विष्णुभगवान् भी उस समय कैलास में ही उपस्थित थे। उन्हें भी कौतूहलवश शंकरजी अपने साथ लिवा लाये।

भगवान् त्रिलोचन ने आश्रम में पहुँचकर अपने कृपाकटाक्ष से ही सबको बात-की-बात में जिला दिया। तब वे सब खड़े होकर भगवान् मृत्युञ्जय की स्तुति करने लगे। भगवान शंकर ने महर्षि गौतम से कहा-हम तुम्हारे इस अलौकिक साहस एवं आर्दश त्यागपर अत्यन्त प्रसन्न हैं, वर माँगो। महर्षि बोले-प्रभो! आपने यहाँ पधारकर मुझे सदाके लिये कृतार्थ कर दिया। इससे बढ़कर मेरे लिये और कौन सी वस्तु प्रार्थनीय हो सकती है? मैंने आज सब कुछ पा लिया। मेरे भाग्य की आज देवता लोग भी सराहना करते हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। मैं चाहता हूँ आज आप मेरे यहाँ प्रसाद ग्रहण करें।

भगवान् तो भावके भूखे हैं। उनकी प्रतिज्ञा है-

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। (गीता 9/26)

इसका भावार्थ यह है कि जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेम से पत्र, पुष्प, फल तथा जल आदि अर्पण करता है उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं प्रीतिसहित खाता हूँ।

इसी भावके वशीभूत होकर उन्होंने एक दिन श्रीरामरूप में शबरी के बेर और श्रीकृष्णरूप में सुदामा के तन्दुलोंका भोग लगाया था। उन्होंने महर्षि की अविचल एवं निश्छल प्रीति देखकर उनका निमन्त्रण तुरंत स्वीकार कर लिया और साथ ही ब्रह्मा-विष्णु को भी महर्षि का आतिथ्य स्वीकार करने को राजी कर लिया। जबतक इधर भोजन की तैयारी हो रही थी, तबतक शंकर विष्णु को साथ लेकर आश्रम के एक सुन्दर भवन में गये और वहाँ एक सुकोमल शय्या पर लेटकर बहुत देरतक प्रेमालाप करते रहे। इसके अनन्तर वे आश्रमभूमि में स्थित एक सुरम्य तड़ागपर जाकर वहाँ जलक्रीड़ा करने लगे। रँगीले भोलेबाबा भगवान् श्रीहरि के पद्मदलायत लोचनों पर कमलकिञ्जल्कमिश्रित जल अञ्जलि के द्वारा फेंकने लगे। भगवान् श्रीहरि ने उनके प्रहारको न सह सकने के कारण अपने दोनों नेत्र मूँद लिये। इतने में ही भोले बाबा अवसर पाकर तत्काल उछलकर भगवान् के वृष-सदृश गोल-गोल सुडौल मांसल कन्धों पर आरूढ़ हो गये। वृषभारोहण का तो उन्हें अभ्यास ही ठहरा, ऊपर से जोर से दबाकर उन्हें कभी तो पानी के अंदर ले जायँ और कभी फिर ऊपर ले आवें। इस प्रकार जब उन्हें बहुत तंग किया तो विष्णुभगवान् ने भी एक चाल खेली। उन्होंने तत्क्षण शिवजी को पानी में दे मारा। शिवजी ने भी नीचे से ही भगवान् की दोनों टाँगे पकड़कर उन्हें गिरा दिया। इस प्रकार कुछ देरतक दोनों में पैंतरेबाजी और दाँव-पेंच चलते रहे। विमानस्थित देवगण अन्तरिक्ष से इस अपूर्व आनन्द को लूटने लगे। धन्य हैं वे आँखें जिन्होंने उस अद्‌भुत छटा का निरीक्षण किया।

दैवयोग से नारदजी उधर आ निकले। वे इस अलौकिक दृश्य को देखकर मस्त हो गये और लगे वीणा के स्वर के साथ गाने। शंकर उनके सुमधुर संगीत को सुनकर, खेल छोड़कर जल से बाहर निकल आये और गीले वस्त्र पहने ही नारद के सुर-में-सुर मिलाकर स्वयं राग अलापने लगे। अब तो भगवान् विष्णु से भी नहीं रहा गया। वे भी बाहर आकर मृदङ्ग बजाने लगे। उस समय वह समाँ बँधा जो देखते ही बनता था। सहस्त्रों शेष और शारदा भी उस समय के आनन्द का वर्णन नहीं कर सकते। बूढ़े ब्रह्माजी भी उस अनोखी मस्ती में शामिल हो गये। उस अपूर्व समाज में यदि किसी बात की कमी थी तो वह प्रसिद्ध संगीतकोविद पवनसुत हनुमान्‌जी के आने से पूरी हो गयी। उन्होंने जहाँ अपनी हृदयहारिणी तान छेड़ी वहाँ सबको बरबस चुप हो जाना पड़ा। अब तो सब-के-सब निस्तब्ध होकर लगे हनुमान्‌जी के गायन को सुनने। सब-के-सब ऐसे मस्त हुए कि खान-पानतक की सुधि भूल गये। उन्हें यह भी होश नहीं रहा कि हमलोग महर्षि गौतम के यहाँ निमन्त्रित हैं।

उधर जब महर्षि ने देखा कि उनका पूज्य अतिथिवर्ग स्नान करके सरोवर से नहीं लौटा और मध्याह्न बीता जा रहा है तो वे बेचारे दौड़े आये और किसी प्रकार अनुनय-विनय करके बड़ी मुश्किल से सबको अपने यहाँ लिवा लाये। तुरंत भोजन परोसा गया और लोग लगे आनन्दपूर्वक गौतमजी का आतिथ्य स्वीकार करने। इसके अनन्तर हनुमान्‌जी का गायन प्रारम्भ हुआ। भोलेबाबा उनके मनोहर संगीत को सुनकर ऐसे मस्त हो गये कि उन्हें तन-मन की सुधि न रही। उन्होंने धीरे-धीरे एक चरण हनुमान् की अञ्जलि में रख दिया और दूसरे चरण को उनके कंधे, मुख, कण्ठ, वक्षःस्थल, हृदय के मध्यभाग, उदरदेश तथा नाभिमण्डल से स्पर्श कराते हुए मौज से लेट गये। यह लीला देखकर विष्णु कहने लगे-आज हनुमान् के समान सुकृती विश्व में कोई नहीं है। जो चरण देवताओं को भी दुर्लभ हैं तथा वेदों द्वारा अगम्य हैं, उपनिषद् भी जिन्हें प्रकाश नहीं कर सकते, जिन्हें योगिजन चिरकालतक विविध प्रकार के साधन करके तथा व्रत-उपवासादिसे शरीर को सुखाकर क्षणभर के लिये भी अपने हृदयदेश में स्थापित नहीं कर सकते, प्रधान-प्रधान मुनीश्वर सहस्त्रकोटि संवत्सरपर्यन्त तप करके भी जिन्हें प्राप्त नहीं कर सकते, उन चरणों को अपने समस्त अंगों पर धारण करने का अनुपम सौभाग्य आज हनुमान् को अनायास ही प्राप्त हो रहा है। मैंने भी हजार वर्षतक प्रतिदिन सहस्त्र पद्मों से आपका भक्तिभावपूर्वक अर्चन किया, परंतु यह सौभाग्य आपने मुझे कभी प्रदान नहीं किया।

मया वर्षसहस्त्रं तु सहस्त्राब्दंतथान्वहम्।।
भक्त्या सम्पूजितोऽपीश पादो नो दर्शितस्त्वया।
लोके वादो हि सुमहान् शम्भुर्नारायणप्रियः।।
हरिः प्रियस्तथा शम्भोर्नतादृग्भाग्यमस्ति मे। (पद्म. पा. 114/189-191)

लोक में यह वार्ता प्रसिद्ध है कि नारायण शंकर के परम प्रीतिभाजन हैं, परन्तु आज हनुमान् को देखकर मुझे इस बातपर संदेह-सा होने लगा है और हनुमान् के प्रति ईर्ष्या-सी हो रही है।

भगवान् विष्णु के इन प्रेम-लपेटे अटपटे वचन सुनकर शंकर मन-ही-मन मुस्काराने लगे और बोले-नारायण! यह आप क्या कह रहे हैं? आपसे बढ़कर मुझे और कोई प्रिय हो सकता है? औरोंकी तो बात ही क्या, पार्वती भी मुझे आपके समान प्रिय नहीं हैं-

न त्वया सदृशो मह्यं प्रियोऽस्ति भगवन् हरे।।
पार्वति वा त्वया तुल्या न चान्यो विद्यते मम। (पद्म. पा. 114/191-192)

इतने में ही माता पार्वती भी वहाँ आ पहुँचीं। शंकर को बहुत देरतक लौटते न देखकर उनके मान में स्त्रीसुलभ शंका हुई कि कहीं स्वामी नाराज तो नहीं हो गये। दौड़ी हुई गौतम के आश्रम में पहुँचीं। गौतम की मेहमानी में जो कमी थी वह उनके आगमन से पूरी हो गयी। उन्होंने भी अपने पति की अनुमति लेकर महर्षि का आतिथ्य स्वीकार किया और फिर शंकरजी के समीप आकर उनकी और विष्णुभगवान् की प्रणयगोष्ठी में सम्मिलित हो गयीं। बातों-ही-बातों में उन्होंने विनोद तथा प्रणयकोप

में शंकरजी के प्रति कुछ अवज्ञात्मक शब्द कहे और उनकी मुण्डमाला, पन्नगभूषण, दिग्वस्त्रधारण, भस्माङ्गलेपन और वृषभारोहण आदि का परिहास किया। तब तो विष्णुभगवान् से नहीं रहा गया। आप शंकर की अवज्ञा को नहीं सह सके और बोल उठे– 'देवि! आप जगत्पति शंकर के प्रति यह क्या कह रही हैं? मुझसे आपके ये शब्द सहे नहीं जाते। जहाँ शिवनिन्दा होती हो वहाँ हम प्राण धारण नहीं कर सकते, यह हमारा व्रत है।' यह कहकर वे शिव–गिरिजा के सम्मुख ही नख के द्वारा अपना शिरश्छेदन करने को उद्यत हो गये। शंकरजी ने बड़ी कठिनता से उन्हें इस कार्य से रोका।

किमर्थं निन्दसे देवि देवदेवं जगत्पतिम्।
यत्रेशनिन्दनं भद्रे तत्र नो मरणं व्रतम्।
इत्युक्त्वाऽथ नखाभ्यां हि हरिश्छेत्तुं शिरो गतः।।
महेशस्तु करं गृह्य प्राह मा साहसं कृथाः। (पद्मपु. पा. 114/272–274)

अहा! कैसी अद्भुत लीला है! एक बार रामावतार के समय शंकर ने अपनी स्वामिनी का वेश धारण करने के अपराध में सती शिरोमणि सती का परित्याग कर दिया था। पूर्णरूप से वैष्णव पुराण के इन प्रसङ्गों को ध्यानपूर्वक पढ़कर और व्यर्थ का दुराग्रह छोड़ शिव–विष्णु की एकता के रहस्य को समझने की चेष्टा करनी चाहिये।

(पद्मपुराण पातालखण्ड अध्याय 114)

(उपरोक्त कथा गीताप्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के 'शिवांक' में दी गयी है। यह कथा पद्मपुराण के अलावा नारद महापुराण (के पूर्वखण्ड के 79 वें अध्याय) में भी पायी जाती है।)

* * *

कर्म–फल की अनिवार्यता

अवश्यमेव भोक्तव्यं कर्मणां ह्यक्षयं फलम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

(नार. महापु. पूर्वखण्ड 31/69–70)

कर्मों का फल अक्षय होता है, उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। सैकड़ों करोड़ कल्पों के बीत जानेपर भी वे बिना भोग किये नष्ट नहीं होते। शुभ एवं अशुभ किये कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

ईशान: सर्वदेवानाम्

पिछले अध्यायों में शिवतत्त्व का विवेचन वेदों, उपनिषदों, रामायणों, महाभारत, सभी महापुराणों तथा कुछ प्रमुख उपपुराणों आदि के संदर्भ में किया जा चुका है। उन विवरणों या विवेचनों से जो बातें उभरकर सामने आती हैं उन्हीं में से कुछ-एक की चर्चा यहाँ की जायगी। सभी ग्रन्थों में तीन प्रमुख देवों(ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) की तात्त्विक एकता का मत प्रतिपादित है। परन्तु सृष्टिव्यापार की प्रक्रिया में इन तीनों देवों की भूमिका तथा महत्ता अलग-अलग हो जाती है। उपासक अपनी रुचि, संस्कार या योग्यता तथा आवश्यकता के आधारपर इन देवों के किसी रूप को भी उपासना के लिये चुन सकता है।

त्रिदेवों की एकता

इस सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं तथा प्रत्येक ब्रह्माण्ड के उत्पादक, पालक तथा संहारक क्रमश: ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव हैं। इस प्रकार इस सृष्टि में अनन्त ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव होते हैं। परन्तु समस्त ब्रह्माण्डों के उत्पादक, पालक एवं संहारक जो महाब्रह्मा, महाविष्णु तथा सदाशिव हैं उनकी सत्ता पर ही ब्रह्माण्ड विशेष के ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव की सत्ता निर्भर करती है। इन दो तरह के त्रिदेवों में भी समानता होती है अर्थात् तात्त्विक दृष्टि से ब्रह्माण्ड विशेष के ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तथा निखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र में अभिन्न्ता होती है-भेद केवल अधिकारक्षेत्र का होता है तथा यह अधिकारक्षेत्र उनकी लीला का ही अंग होता है। वे एक दूसरे के अधिकारक्षेत्र में कोई व्यवधान नहीं उत्पन्न करते। उन सभी की क्रियाओं में पूर्ण सामञ्जस्य होता है क्योंकि वे सब एक ही परमशक्ति की योजना की अभिव्यक्तियाँ हैं। निर्गुण परमब्रह्म(या परमशक्ति) प्रकृति अथवा महामाया का आश्रय ले महाब्रह्मा, महाविष्णु तथा सदाशिव के रूप में निखिल ब्रह्माण्डों के जनक, पालक एवं संहारक का कार्य करती हैं। पहले रज, सत्त्व एवं तम के नियामक के रूप में ये तीनों महादेवताओं की अभिव्यक्ति होती है जिनसे बाद में अनेक ब्रह्माण्डों का जन्म होता है तथा उन ब्रह्माण्डों के नियमन के लिये ये तीनों महादेवता अपने को ही अनन्त रूपों में प्रकट करते हैं जो रूप, सामर्थ्य तथा आयुध आदि में समान होते हैं। परमब्रह्म या तत्त्व या परमशक्ति को ही कोई सदाशिव, कोई महाविष्णु तो कोई महादेवी तो कोई गणपति आदि कहते हैं। उस तत्त्व के अनन्त नाम एवं रूप हैं। भक्त अपनी रुचि एवं संस्कार के अनुसार उसे नाम एवं रूप विशेष की संज्ञा देते हैं।

परात्पर सच्चिदानन्द परमेश्वर शिव एक हैं, वे विश्वातीत हैं और विश्वमय भी हैं। वे गुणातीत हैं और गुणमय भी हैं। जब वे अपने अद्वितीय स्वरूप में स्थित रहते हैं, तब विश्वरूपी खेल की जननी प्रकृतिदेवी उनमें विलीन रहती है, वह बाह्य क्रियारहित होने से दीखती नहीं है। पुन: जब वही शान्त शिव अपनी शक्ति को व्यक्त करते हैं तो वह उन्हीं को विविध रूपों में प्रकट कर देती है। एक ही देव विविधरूप धारणकर अपने आप ही अपने-आप से खेलते हैं। जैसे हम स्वप्न की अवस्था में अपने

को अनेक रूपों में बाँटकर सपने के उन रूपों के साथ व्यवहार करते हैं उसी प्रकार ब्रह्म भी अपने द्वारा उत्पन्न नाना रूपों के साथ व्यवहार करता है अथवा लीला करता है। सृष्टि की अवस्था में शिव एवं शक्ति दोनों की लीला चलती है। यही परात्पर परमेश्वर शिव, महाशिव, महाविष्णु, महाशक्ति, गोकुल बिहारी श्रीकृष्ण, साकेताधिपति राम आदि नाम-रूपों से प्रसिद्ध हैं। परमात्मा शिव ही भिन्न-भिन्न सर्ग और महासर्गों में भिन्न-भिन्न नाम-रूपों से अपनी परात्परता को प्रकट करते हैं। जहाँ जटाजूटधारी श्रीशिवरूप सबके आदि उत्पन्नकर्त्ता और सर्वपूज्य अथवा उपास्य हैं तथा अन्य नाम-रूपधारी उपासक हैं, वहाँ वे शिव ही परात्पर महाशिव हैं तथा अन्यान्य देव उनसे अभिन्न होनेपर भी उन्हीं के स्वरूप से प्रकट, नाना रूपों और नामों से प्रसिद्ध होते हुए सत्त्व-रज-तम गुणों को लेकर आवश्यकतानुसार कार्य करते हैं। उस महासर्ग में भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डों में बह्मा, विष्णु, रुद्रादि देवता भिन्न-भिन्न होनेपर भी सब उन एक ही परात्पर महाशिव के उपासक हैं। इसी प्रकार किसी अन्य सर्ग या महासर्ग में महाविष्णु रूप परात्पर होते हैं और अन्य देवता उनसे प्रकट होते हैं, किसी में ब्रह्मा-रूप, किसी में महाशक्ति-रूप, किसी में श्रीकृष्ण रूप और किसी में श्रीरामरूप परात्पर बह्म होते हैं तथा अन्यान्य स्वरूप उन्हीं से प्रकट होकर उनकी उपासना करते और उनके अधीन सृष्टि, पालन एवं विनाश की विविध लीलाएँ करते हैं। इस तरह एक ही प्रभु भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होकर उपास्य-उपासक, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा, शासक-शासित रूप से लीला करते हैं।

सभी अठारह महापुराण एक ही महर्षि वेदव्यास द्वारा रचे हुए माने जाते हैं फिर भी उनमें सृष्टि की उत्पत्ति के वर्णन में विभिन्नता पायी जाती है। शैव पुराणों में शिव से, वैष्णव पुराणों में विष्णु, कृष्ण या राम से और शाक्त पुराणों में देवी से सृष्टि की उत्पत्ति बतलायी गयी है। इसका क्या कारण है? इस प्रश्न पर मूल तत्त्व की ओर लक्ष्य रखकर गम्भीरता से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम में भिन्न-भिन्न पुराणों के वर्णन में भेद रहने पर भी वस्तुतः मूलसिद्धान्त में कोई खास भेद नहीं है। क्योंकि प्रायः सभी कोई नाम-रूप बदलकर आदि में प्रकृति-पुरुष से ही सृष्टि की उत्पत्ति बतलाते हैं। वर्णन में भेद होने अथवा प्रतीत होने के कई कारण हो सकते हैं। जैसे मूलतत्त्व एक होनेपर भी प्रत्येक महासर्ग के आदि में सृष्टिउत्पत्ति का क्रम सदा एक सा नहीं रहता। चूँकि पुराणों में भिन्न-भिन्न महासर्गों का वर्णन है, इससे वर्णन में भेद होना स्वाभाविक है। इसी तरह महासर्ग और सर्ग के आदि में सृष्टिउत्पत्ति-क्रम में भेद रहता है। ग्रन्थों में कहीं महासर्ग का तो कहीं सर्ग का वर्णन है, इसलिये उनमें अन्तर हो सकता है। सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार के क्रम का रहस्य सूक्ष्म एवं दुर्विज्ञेय है, इसे समझानें के लिये नाना प्रकार के रूपकों से उदाहरण वाक्यों द्वारा नाम-रूप बदलकर भिन्न-भिन्न प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति आदि का रहस्य बतलाने की चेष्टा की गयी है। इस तात्पर्य को न समझने के कारण भी विभिन्न ग्रन्थों के वर्णन में विशेष भेद प्रतीत होता है।

यहाँ एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, परात्पर से प्रकट

त्रिदेव उनसे अभिन्न और पूर्ण शक्तियुक्त होते हुए भी तीनों भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रिया करते हैं तथा तीनों की शक्तियाँ भी अपने-अपने कार्य के अनुसार सीमित ही देखी जाती हैं। यहाँ हमें यह नहीं समझना चाहिये कि परात्पर परब्रह्म शिव के अन्य सब (भिन्न-भिन्न) रूप काल्पनिक हैं। सभी रूप भगवान् के होने के कारण नित्य, शुद्ध और दिव्य हैं। प्रकृति के द्वारा रचे जानेवाले विश्वप्रपंच के विनाश होनेपर भी इनका विनाश नहीं होता, क्योंकि ये प्रकृति की सत्ता से परे स्वयं प्रभु परमात्मा के स्वरूप हैं।

नित्यधाम के शिव-शक्ति, विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सावित्री, कृष्ण-राधा और राम-सीता ही समय-समय पर अवताररूप से प्रकट होकर बाह्य लीला करते हैं। ये सब एक ही परमतत्त्व के अनेक नित्य और दिव्यस्वरूप हैं। अवतारों में, कभी तो परात्पर स्वयं अवतार लेते हैं और कभी सीमित शक्ति से कार्य करनेवाले त्रिदेवों में से किसी का अवतार होता है। जहाँ दण्ड और मोह की लीला होती है, वहाँ दण्डित एवं मोहित होनेवाले अवतारों को त्रिदेवों में से तथा दण्डदाता और मोह उत्पन्न करनेवाले को परात्पर प्रभु समझना चाहिये, जैसे नृसिंहरूप को शरभरूप के द्वारा दण्ड दिया जाना और शिवस्वरूप का विष्णु द्वारा मोहिनी-रूप से मोहित होना आदि। कहीं-कहीं परात्पर के साक्षात् अवतार में भी ऐसी लीला देखी जाती है, परन्तु उसका गूढ़ रहस्य कुछ और ही होता है जो उनकी कृपा से ही समझ में आ सकता है।

कुछ लोग शिव को तामसी देव मानकर उनकी उपासना में दोष समझते हैं। वास्तव में यह उनका भ्रम है, जो बाह्य दृष्टिवाले साम्प्रदायिक आग्रही मनुष्यों का पैदा किया हुआ है। जिन भगवान् शिव का गुणगान वेदों, उपनिषदों और वैष्णव कहे जानेवाले पुराणों में भी गाया गया है, उन्हें तामसी बताना अपने तमोगुणी होने का ही परिचय देना है। परात्पर महाशिव तो सर्वथा गुणातीत हैं, वहाँ तो गुणों की क्रिया ही नहीं है। जिस गुणातीत, नित्य, दिव्य साकार चैतन्य रस-विग्रह स्वरूप में क्रिया है, उसमें भी गुणों का खेल नहीं है। भगवान् की दिव्य प्रकृति ही वहाँ क्रिया करती है। और जिन त्रिदेव-मूर्तियों में सत्त्व, रज और तम की लीलाएँ होती हैं, उनमें भी उनका स्वरूप गुणों की क्रिया के अनुसार नहीं है। अपितु भिन्न-भिन्न क्रियाओं के कारण उनपर सत्त्व, रज और तम का आरोप है। वस्तुतः ये तीनों दिव्य चेतन-विग्रह गुणातीत ही हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही हैं। एक ही अक्षर पुरुष के तीन रूप हैं, एक ही शक्ति के तीन व्यापार हैं-दृष्टिमात्र का भेद है। इस सृष्टि में एक ही बिन्दु पर तीनों शक्तियाँ रहती हैं, किन्तु कार्यवश कभी भिन्न-भिन्न स्थान भी ग्रहण कर लेती हैं। चेतन प्राणियों में विशेषकर शक्तियों का स्थान-भेद देखा जाता है। जैसे मनुष्य-शरीर के अन्तर्गत हृदय कमल में ब्रह्मा, नाभि में विष्णु तथा मस्तक में शिव की स्थिति मानी गयी है।

शिव के उपासक निर्गुण ब्रह्म को सदाशिव; सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्म को महेश्वर; सृष्टि के उत्पन्न करनेवाले को ब्रह्मा; पालनकर्त्ता को विष्णु और संहारकर्ता को रुद्र कहते हैं और इन पाँचों को ही शिव का रूप बतलाते हैं। भगवान् विष्णु के प्रति भगवान् शिव कहते हैं-

त्रिधाभिन्नो ह्यहंविष्णोब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे।।

……………………………………………

वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम ।।
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति ।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत् ।।
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम् ।
मूलभूतं सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम् ।।

(शिवपु. रुद्रसं. सृष्टिखण्ड 9/28, 38-40 तथा कल्याण, शिवांक पृ. 62)

"हे विष्णो! हे हरे! मैं स्वभाव से निर्गुण होता हुआ भी संसार की रचना, स्थिति एवं प्रलय के लिये क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-इन तीन रूपों में विभक्त हो रहा हूँ। ……….. वस्तुतः दृश्य पदार्थ मात्र शिवरूप ही हैं, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी-ये सब एकरूप ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धन का कारण है। फिर भी यहाँ मेरा यह शिवरूप नित्य, सनातन एवं सबका मूलस्वरूप कहा गया है। यही सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।"

साक्षात् महेश्वर के इन वचनों से उनका निर्गुणरूप, सर्वव्यापी, सगुण निराकाररूप और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप-ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पंचवक्त्र हैं।

इसी प्रकार विष्णु के उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्म को महाविष्णु; सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्म को वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपों को क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। महर्षि पराशर भगवान् विष्णु की स्तुति करते हुए कहते हैं-

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे।।

……………………………………………

सर्गस्थितिविनाशानां जगतो यो जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ।।
आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् ।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ।।

(विष्णु पु. 1/2/1, 4, 5)

"निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा, एकरूप, सर्वविजयी ………। इस संसार की उत्पत्ति, पालन एवं विनाश करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश के भी मूलकारण, जगन्मय उस सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्मा को मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सर्वभूतों के अन्दर रहनेवाले, अच्युत, पुरुषोत्तम भगवान् को मेरा प्रणाम है।"

उपरोक्त उद्धरण में निर्विकार, नित्य, शुद्ध परमात्मा का निर्गुण स्वरूप समझना चाहिये। वही सगुण होनेपर सृष्टि करता है फलस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रदेव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यहाँ भी श्रीविष्णु के पाँच रूप सिद्ध होते हैं।

इसी तरह महाशक्ति भगवती की स्तुति करते हुए देवगण कहते हैं कि-

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते।।

(मार्कण्डेय पु., देवीमाहात्म्य 11/11, संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक, कल्याण गीताप्रेस पृ. 227)

"ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप से सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाली हे सनातनी शक्ति! हे गुणाश्रये! हे गुणमयी नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार हो।"

स्वयं भगवान् कृष्ण कहते हैं-

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका।।
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी।।

.... (ब्रह्मवै.पु. प्रकृतिख. 66/7-8)

"तुम्हीं विश्वजननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टि की उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप में विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणत्मिका बन जाती हो। यद्यपि तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप सत्य, नित्य एवं सनातनी हो...........।"

इस उद्धरण में महाशक्ति के भी निर्गुण, सगुण तथा त्रिदेवों के स्वरूपधारण करने से पाँच रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार ब्रह्माजी के बारे में कहा गया है कि-

जय देवातिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने।।
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक।
रजोरूपगुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्।।
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्। (देवी पुराण अध्याय-83/12-14)

"आपकी जय हो। उत्तम बुद्धिवाले, अव्यक्त-व्यक्तरूप, त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्व की उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारक ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीनों भावों से भावित होनेवाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेव के लिये नमस्कार है। हे महाभाग! आप रजोगुण से आविष्ट होकर हिरण्यगर्भरूपसे चराचर संसार को पैदा करते हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूप से पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति

धारण करके रुद्ररूप से सम्पूर्ण संसार का संहार करते हैं।"

उपरोक्त वचनों से ब्रह्माजी के भी परात्पर ब्रह्मसहित पाँचों रूपों का होना सिद्ध होता है। इसी तरह भगवान् राम के प्रति कहा गया है–

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्।
एक एव त्रिधा रूपं गृह्णासि कुहकान्वितः॥
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः॥ (पद्मपु. पाता. 46/6-8)

"आप प्रकृति से अतीत साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकला के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप से विश्व की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्व के परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया-संवलित होकर त्रिविध रूप धारण करते हैं। संसार की सृष्टि के समय आप ब्रह्मारूप से प्रकट होते हैं, पालन के समय स्वप्रभामय विष्णुरूप से व्यक्त होते हैं और प्रलय के समय रुद्र का रूप धारण कर लेते हैं।"

इसी प्रकार श्रीकृष्ण के परब्रह्म परमात्मा होने का विविध ग्रन्थों में उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्रीकृष्ण के बारे में कहा गया है कि–

विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्।
फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्॥ (ब्रह्मवै. पु. ब्रह्मखं. 3/24-25)

"आप विश्वरूप हैं, विश्व के स्वामी हैं, नहीं नहीं, विश्व के स्वामियों के स्वामी हैं, विश्व के कारण हैं, कारण के भी कारण हैं, विश्व के आधार हैं, विश्वस्त हैं, विश्वरक्षक हैं, विश्व का संहार करनेवाले हैं और नाना रूपों से विश्व में अविर्भूत होते हैं। आप फलों के बीज हैं, फलों के आधार हैं, फलस्वरूप हैं और फलदाता हैं।"

गीता में भी भगवान् कृष्ण को परब्रह्म (14/27), उत्पत्ति-प्रलयरूप, सबका आधार (9/18), लोकों का महान् ईश्वर (10/3) आदि कहा है।

ऊपर के इन सब अवतरणों से यह सिद्ध होता है कि भगवान् शिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण, तत्त्वतः एक ही हैं। सभी प्रकार के उपासक एक सत्य, विज्ञानानन्दघन परमात्मा को मानकर सच्चे सिद्धान्तपर ही चल रहे हैं। नाम-रूप का भेद है, परन्तु वस्तु-तत्त्व में कोई भेद नहीं। सबका लक्ष्यार्थ एक ही है।

विज्ञानानन्दघन, सर्वव्यापी परमात्मा शिव के तत्त्व को न जानने के कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णु की और कुछ वैष्णव भगवान् शिव की निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्रायः उदासीन से तो रहते ही हैं। परन्तु इस प्रकार के व्यवहार वस्तुतः ज्ञानरहित समझे जाते हैं। यदि यह कहा जाय कि ऐसा न करने से एकनिष्ठ अनन्य उपासना में दोष आता है, तो वह ठीक नहीं है। जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पति को ही इष्ट मानकर उसकी आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पति के माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि और पति के अन्यान्य संबंधी और प्रेमी बन्धुओं की भी पति की आज्ञानुसार पति की प्रसन्नता के लिये यथोचित आदरभाव से मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्म से जरा भी न गिरकर उल्टे शोभा और यश को प्राप्त होती है। वास्तव में दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धि में है अथवा व्यभिचार और शत्रुता में है। यथोचित वैध-सेवा तो कर्त्तव्य है। इसी प्रकार परमात्मा के किसी एक नाम-रूप को अपना-अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्यभाव से भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवों की अपने इष्टदेव की आज्ञानुसार उसी स्वामी की प्रीति के लिये श्रद्धा और आदर के साथ यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।

उपर्युक्त अवतरणों के अनुसार जब एक नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही हैं तथा वास्तव में उनसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है, तब किसी एक नामरूप से द्वेष या निन्दा, तिरस्कार और उपेक्षा करना उस परब्रह्म से ही वैसा करना है। कहीं भी न श्रीशिव या विष्णु ने या श्रीब्रह्मा ने एक दूसरे की निन्दा आदि करने के लिये किसी से कहा है; बल्कि निंदा आदि का निषेध और तीनों को एक मानने की प्रशंसा की है। शिव पुराण[1] में कहा गया है कि-

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रताः।।
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णुः क्वचिद्रुद्रः प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यञ्चातिरिच्यते।।
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिनः।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशयः।।

"ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक दूसरे से उत्पन्न हुए हैं, एक दूसरे को धारण करते हैं, एक दूसरे के द्वारा वृद्धिगत होते हैं, और एक दूसरे के अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्मा की प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णु की और कहीं महादेव की। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक दूसरे की अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा है मानों वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते है कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है वे अगले जन्म में राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"

---

1. कल्याण, शिवांक पृ. 66

स्वयं भगवान् शिव श्रीविष्णुजी से कहते हैं–

मद्दर्शनेफलं यद्वै तदेव तव दर्शने।।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदयेह्यहम्।।
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम।

(शिवपु. रु. सं. सृ. ख. 9/54-56 तथा कल्याण शिवांक पृ. 66)

"मेरे दर्शन का जो फल है वही आपके दर्शन का है। आप मेरे हृदय में निवास करते हैं और मैं आपके हृदय में रहता हूँ। जो हम दोनों में भेद नहीं समझता वही मुझे मान्य है।"

भगवान् राम श्रीशिवजी से कहते हैं कि–

ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः।।
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्।।
ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः।
मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः।।

(संक्षि. पद्मपु. पाता. ख. 46/20-22 गीताप्रेस गोरखपुर)

"आप (शंकर) मेरे हृदय में रहते हैं और मैं आपके हृदय में रहता हूँ। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अन्दर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, जो मनुष्य हमारे अन्दर भेद-भावना करते हैं वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकों में यातना सहते हैं। जो आपके भक्त हैं वे धार्मिक पुरुष सदा ही मेरे भक्त रहे हैं और जो मेरे भक्त हैं वे प्रगाढ़ भक्ति से आपको भी प्रणाम करते हैं।"

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी शिवजी से कहते है–

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः।।
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि।
प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्रबान्धववांस्तथा।।
ज्ञानवान्मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत्।
शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः।

(ब्रह्मवै. पु. ब्रह्मख. अध्याय 6/31-32, 46-47, 49-50)

"मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, वे जबतक चन्द्र और सूर्य का अस्तित्व रहेगा तबतक कालसूत्र(नरक) में पचते रहेंगे। जो शिवलिंग का निर्माण कर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्वर्ग में निवास करता है। शिवलिंग के अर्चन से मनुष्य को प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एंव मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य 'शिव' शब्द का उच्चारण कर शरीर छोड़ता है वह करोड़ों जन्मों के संचित पापों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।"

श्रीरामचरितमानस में भगवान् श्रीराम ने कहा है-

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास।। (लंका कां. 2)
औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।। (उत्तर का. 45)

ऐसी अवस्था में जो मनुष्य दूसरे के इष्टदेव की निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तव में अपने ही इष्टदेव का अपमान करता है। परमात्मा की प्राप्ति से पहले परमात्मा का यथार्थ रूप न जानने के कारण भक्त अपनी समझ के अनुसार अपने उपास्यदेव का जो स्वरूप कल्पित करता है, वास्तव में उपास्यदेव का स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण होता है, तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचि के अनुसार की हुई सच्ची और श्रद्धायुक्त उपासना को परमात्मा सर्वथा सर्वांश में स्वीकार करते हैं। क्योंकि ईश्वर-प्राप्ति के पूर्व ईश्वर का यथार्थ स्वरूप किसी के भी चिन्तन में नहीं आ सकता। अतएव परमात्मा के किसी भी नाम-रूप की निष्काम-भाव से उपासना करनेवाला पुरुष उस नित्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

वास्तव में हरि एवं हर(अथवा कोई अन्य इष्ट) में तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। और न ही कोई किसी से छोटा या बड़ा है। इनमें केवल दृष्टि का भेद है। उपासक के अधिकार और रुचि के अनुसार किसी भी रूप में प्रधान-दृष्टि की जा सकती है। पुराणादि में जो कहीं किसी की और कहीं किसी की प्रधानता लिखी है, वह भी उस अधिकारी का मनोभाव उसरूप में दृढ़ करने के लिये-उसी रूप में 'ब्रह्मदृष्टि' कराने के उद्देश्य से है। किसी के वास्तविक उत्कर्ष वा अपकर्ष का कहीं भी तात्पर्य नहीं है।

नहि निन्दा निन्द्यान् निन्दितुं प्रवर्तते, अपितु स्तुत्यान् स्तोतुम्।

अर्थात्-निन्दा निन्दनीय की निन्दा के उद्देश्य से नहीं होती, अपितु स्तुत्य की स्तुति के उद्देश्य से होती है।

भगवान् शिव एवं अन्य देवों में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। अपने-अपने कार्य के सभी प्रभु हैं। यह उपासक की इच्छा और अधिकार के अनुसार नियत है कि वह किसी भी रूप को अपनी

उपासना के लिये चुन ले, किन्तु किसी को छोटा-बड़ा कहना या निन्दा करना उचित नहीं है।

सर्वधर्मोपपत्तेश्च (ब्रह्मसूत्र 2/1/37) – इस वेदान्तसूत्र के अनुसार सभी गुण, कर्म और नाम उस ब्रह्म के ही हैं। अतः उपासना किसी भी नाम-रूप की की जा सकती है बशर्ते हम अपने उपास्य में उपरोक्त ब्रह्म दृष्टि रक्खें।

रामेश्वर-स्थापना के पश्चात् एक बार विष्णु और शिव के परस्पर पूजन को देखकर विस्मित हो नारदजी ने शिव और विष्णु में कौन बड़ा है-इस बात को जानने के लिये श्रीरामजी से पूछा कि महाराज! 'रामेश्वर' पद में कौन समास है? तब नारदजी की चतुराई समझकर श्रीरामजी ने उत्तर दिया कि रामेश्वर-पद में षष्ठी तत्पुरुष है अर्थात् रामस्य ईश्वरः रामेश्वरः (राम के जो ईश्वर हैं वही रामेश्वर हैं)। यह सुनकर नारदजी कैलास पहुँचे और वहाँ जाकर शिवजी से भी यही प्रश्न किया। शिवजी ने उत्तर दिया कि रामेश्वर-पद में बहुव्रीहि समास है, अर्थात् "राम एव ईश्वरो यस्य स रामेश्वरः" (राम ही जिसके ईश्वर हैं वही रामेश्वर है)। इस उत्तर से नारदजी की शंका और बढ़ी और उन्होंने ब्रह्माजी के पास पहुँचकर उनसे भी यही प्रश्न किया। श्रीब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि रामेश्वर-पद में कर्मधारय समास है, अर्थात् "रामश्चासौ ईश्वरः रामेश्वरः" (राम ही ईश्वर हैं, इसी से ये रामेश्वर कहलाते हैं)। सारांश यह कि जिस प्रकार 'नीलकमल' पद में नील और कमल दोनों भिन्न नहीं हैं उसी प्रकार राम और ईश्वर (शिवजी) भी अभिन्न हैं। अर्थात् राम और शिव दोनों एक ही हैं, उनमें कोई अन्तर नहीं है।

भगवान् के असंख्य नाम एवं रूप हैं परन्तु मनुष्य उन असंख्य नाम-रूपों से प्रेम या भक्ति नहीं कर सकता। प्रेम या भक्ति एक से ही होती है और प्रेम के प्रकट हो जानेपर वह अनेक को एक कर देता है। अनेक में एक को यथार्थतः देखना और एक में ही अनेक को कल्पित देखना-यही सत्य है, पूर्ण है और प्रेम है। शिव अनेक होते हुए भी एक हैं। उनकी ऐसी अनुभूति ही उनकी भक्ति है। इसी प्रकार अन्य देवों के बारे में ऐसी दृष्टि रखना उन-उन देवों की भक्ति कहलाती है।

हरि, हर अथवा अन्य किसी भी उपास्यरूपों में तात्त्विक भेद नहीं होता। भेद केवल उनकी बाहरी क्रिया, रूप और नाम में होता है। जैसे भिन्न-भिन्न नाटकों में एक ही अभिनेता नाना रूप धारण करता है परन्तु वस्तुतः वह जो है सो वही रहता है।

हरिहरयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदेन रूपभेदोऽयम्।
एकस्यैव नटस्यानेकविधा भूमिकाभेदात्।। (कल्याण, शिवांक, पृ 112 से उद्धृत)

अर्थात्-हरि और हर में मूलतः भेद नहीं है। प्रत्यय[1] में ही भेद होता है। नाटक में अभिनेता नाना रूप धारण करता है, परन्तु वस्तुतः वह जो है सो वही रहता है।

---

[1] हरि और हर दोनों शब्दों की प्रकृति (वास्तविक तत्त्व; 'हृ' धातु) एक ही है। परन्तु प्रत्यय (विश्वास; 'इ' एवं 'अ' प्रत्यय) के भेद से रूपभेद हो जाता है। अर्थात् व्याकरण की दृष्टि से दोनों शब्द एक ही धातु से बने हैं तथा उनके अर्थ भी समान हैं तथापि दोनों शब्दों के बाह्य रूप में भेद है।

त्रिदेवो में न कोई छोटा होता है न कोई बड़ा। यदि कोई मनुष्य विभिन्न भावों (जैसे पिता, पति नौकर आदि) के साथ विभिन्न कार्यों को करता है तो क्या उसके व्यक्तित्व में भिन्नता आ जाती है? यदि नहीं आती तो इन त्रिदेवों में भिन्नता क्यों आने लगी? ब्रह्मा उसी समयतक ब्रह्मा हैं जबतक सृष्टि-रचना करते हैं। विष्णु सृष्टि के पालनतक ही विष्णु कहे जायँगे और महादेवजी सृष्टि के नाश करनेतक रुद्र नाम से पुकारे जायँगे। इसके पश्चात् वे तीनों ही एक रूप हो जाते हैं। अतएव उनमें भिन्नता नहीं है।

वैष्णव-सिद्धान्त के अनुसार जगत्-कार्य के लिये छः प्रकार के अवतार होते हैं- पुरुषावतार, लीलावतार, युगावतार, मनवन्तरावतार, शक्त्यावेशावतार और गुणावतार। इनमें शिव गुणावतार हैं। ये सत्वगुण को अंगीकारकर सदाशिवरूप से शिवलोक में अवस्थान-पूर्वक ज्ञानियों को ज्ञानदान, योगियों को योग-शिक्षा एवं भक्तों को निज आचरणद्वारा भक्ति-उपदेश करते हैं, एवं तमोगुण का आश्रयकर रुद्ररूप से सृष्टि-संहार का कार्य करते हैं। परमतत्त्व श्रीकृष्ण के साथ शिव का भेदाभेदसम्बन्ध है। निर्गुण-अवस्था में ये और श्रीकृष्ण एक ही हैं, अर्थात् निजानन्द-प्रदान द्वारा समस्त चराचर का सर्वदा कल्याण करने के कारण तत्वतः श्रीकृष्ण ही सदाशिव स्वरूप हैं; और सगुण-दशा में भक्तावतार होने के कारण श्रीकृष्ण से इनकी भिन्न प्रतीति होती है। चैतन्य महाप्रभु ने श्रीसनातन गोस्वामी को शिक्षा देते समय यही उपदेश दिया था। चैतन्य महाप्रभ के अनुसार भगवान् जब कला या अंशरूप से स्वयं अवतीर्ण होते हैं, तब स्वांशअवतार कहे जाते हैं, और जब किसी अधिकारी जीव को शक्ति-संचार कर भेजते हैं, तब वह विभिन्नांश-अवतार कहाता है। श्रीशिव स्वांश-अवतार हैं अर्थात् इनकी गणना ईश्वर कोटि में है।

अब यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि शिव यदि ईश्वर हैं, कृष्ण एवं विष्णु से अभिन्न हैं, तो वैष्णव-ग्रन्थों में जो इस प्रकार के वचन पाये जाते है कि-

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षते स पाषण्डी भवेत्सदा।। (कल्याण, शिवांक, पृ. 175 से उद्घृत)

अर्थात्-नारायणदेव को जो ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओं के 'समान' देखता है वह मनुष्य पाषण्डी होता है-इनका क्या तात्पर्य है? इसका उत्तर यह है कि यहाँ समान शब्द से पृथक ईश्वर-बुद्धि से अभिप्राय है, अर्थात् नारायण को एक पृथक् ईश्वर मानना तथा शिवादि को एक-एक पृथक ईश्वर मानना; यह बहु-ईश्वरवादरूप पाषण्ड-मत है। इसीलिये वैष्णव-स्मृति श्रीहरिभक्तिविलास के नामापराध-प्रकरण में लिखा है-

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं।
धिया भिन्नं पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः।। (कल्याण, शिवांक, पृ. 175)

अर्थात्-जो मनुष्य शिव एवं विष्णु के गुण-नाम आदि में भेद-बुद्धि रखता है वह हरिनाम

का अपराधी है।

पद्मपुराण जैसे कई सात्त्विक या वैष्णवपरक ग्रन्थों में कहीं-कहीं पर हमें इस प्रकार के वचन भी प्राप्त होते हैं जो साम्प्रदायिकता से प्रेरित होते हैं। इसी प्रकार शैव कहे जानेवाले ग्रन्थों में भी ऐसे वचन मिलते हैं जिन्हें साम्प्रदायिक कहा जा सकता है। ऐसे साम्प्रदायिक स्थलों की कई बार ऐसी व्याख्या संभव होती है जिससे साम्प्रदायिकता समाप्त हो जाती है जैसा हमने ऊपर के श्लोक में देखा। परन्तु हर जगह इस तरह की व्याख्या संभव नहीं हो पाती। ऐसे स्थलों पर ग्रन्थों में मिलावट होती है। इस मिलावट की पहचान समग्र ग्रन्थ के अन्दर निहित सम्पूर्ण विचारधारा के साथ उसकी तुलना करने पर हो सकती है। उदाहरण के लिये पद्म पुराण में एक स्थल (उत्तरखण्ड 236/22) पर कहा गया है कि तामस पुराणों (शैव-पुराणों) के सुनने से नरक की प्राप्ति होती है।[1] इस विचार को उस पुराणस्थ अन्य स्थलों, जहाँ शिव एवं विष्णु की एकता प्रदर्शित की गयी है, से तुलना करें तो स्पष्ट हो जाता है कि यह बात मिलावटी है क्योंकि शिव एंव विष्णु के अभेद होने से उनसे संबंधित ग्रन्थों में भी समानता होगी अर्थात् उनके पढ़ने से वही फल प्राप्त होगा जो वैष्णव या सात्त्विक पुराणों से होगा।

कहीं-कहीं ऐसा भी आता है कि वैष्णव शिवलिंग को नमस्कार न करें। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वैष्णव का शंकर से द्वेष है। इसका तात्पर्य यह है कि वैष्णवों के मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्र का जो तिलक रहता है, उसमें विष्णु के दो चरणों के बीच में लक्ष्मीजी का लाल रंग का चिन्ह (श्री) रहता है। लक्ष्मीजी को शिवलिंग के पास जाने में लज्जा आती है। अतः वैष्णवों के लिये शिवलिंग को नमस्कार करने का निषेध आया है (देखें शिवोपासनांक पृ. 108)। परन्तु तिलक लगाने से पहले वह शिवलिंग की पूजा तथा नमस्कार कर सकता है। पुनः शंकरजी की प्रतिमा के लिये ऐसा कोई निषेध वैष्णव ग्रन्थों में नहीं मिलता। कई बार उपरोक्त निषेध का साम्प्रदायिक अर्थ भी लिया जाता है क्योंकि सृष्टि का निर्माण करनेवाली सर्वोच्च शक्ति की पितारूप में कल्पना करके लिंग को उसके प्रतीक के रूप में पूजा जाता है। वैदिक काल में लिंग सर्वोच्च शक्ति महादेव का प्रतीक था। सृष्टि के प्रारंभ में ब्रह्मा एवं विष्णु के विवाद के दौरान जो ज्योतिर्मय लिंग प्रकट हुआ था वह त्रिदेववाले रुद्र का नहीं अपितु परात्पर ब्रह्म का लिंग अथवा प्रतीक था जो ॐकार मय था। यहाँ लिंग का अर्थ जननेन्द्रिय नहीं है। अतः लक्ष्मी जी को शिवलिंग के सामने आने में लज्जा तभी आयेगी जब उसे जननेन्द्रिय माना जाय। पुराणों में देवदारु वन में शिवलिंग के पतन की कथा अथवा भृगु के शाप की कथा के आधार पर कई लोग शिवलिंग पूजा को शिव-जननेद्रिय की पूजा मानने लगे। यों तो शैव एवं वैष्णव

---

[1] स्वयं भगवान् शिव के मुख से पार्वती देवी के प्रति कहलवाया गया है कि-

सात्विकामोक्षदाः प्रोक्ताराजसाः सर्वदाशुभाः।।
तथैवतामसादेविनिरयप्राप्ति हेतवः। (पद्म. पु. उ. ख. 236/21-22)

अर्थात्-सात्त्विक पुराणों से मोक्ष, राजसिक से शुभ तथा तामस से नरक की प्राप्ति होती है। तामस पुराणों में भगवान् शिव का, राजस में ब्रह्मा का तथा सात्त्विक में विष्णु की महिमा का वर्णन होता है।

सभी ग्रन्थों में समय के साथ-साथ साम्प्रदायिक मिलावटें की गयी हैं, उनसे हमें सावधान रहना चाहिये। इन मिलावटों की पहचान तत्संबंधी ग्रन्थ या ग्रन्थों की सम्पूर्ण विचारधारा के साथ तुलना कर की जा सकती है।

ब्रह्म के शिवस्वरूप की विशेषता

'भगवान् शिव के तत्त्व को कोई नहीं जानता (**न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः कुमार. 5/77**)'- कालिदास की इस उक्ति का समर्थन भीष्म पितामह भी करते हैं। भीष्म पितामह से नीति, धर्म और मोक्ष के सूक्ष्म से सूक्ष्म रहस्य का विवेचंन सुनते हुए महाराज युधिष्ठिर ने जब शिव-महिमा के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो वृद्ध पितामह ने भी यही उत्तर दिया था कि-

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ।। (महा. अनु. 14/3)

"जो सबमें रहते हुए भी कहीं किसी को दिखायी नहीं देते, उन महादेव के गुणों का वर्णन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।"

'मैं असमर्थ हूँ', इतना ही कहकर भीष्मपितामह को सन्तोष नहीं हुआ, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मनुष्य देह-धारी कोई भी महादेव की महिमा नहीं कह सकता-

को हि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः।
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः।। (महा. अनु. 14/7)

आगे भीष्मजी ने युधिष्ठिर को निराश होते देख यों धैर्य दिलाया कि इस सभा में साक्षात् विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण उपस्थित हैं, वे शिव की महिमा कह सकते हैं, साथ ही स्वयं भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की कि आप युधिष्ठिर और सब ऋषि-मुनि आदि को शिव-महिमा सुनावें। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी यहाँ से प्रारम्भ किया कि 'हिरण्यगर्भ, इन्द्र, महर्षि आदि भी शिवतत्त्व को जानने में असमर्थ हैं, मैं उनके कुछ गुणों का ही व्याख्यान करता हूँ।' (महा. अनु. 14/22-24)

उपरोक्त उद्धरणों के अलावा शास्त्रों में हमें अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं जिनमें शिव की महिमा को अवर्णनीय कहा गया है। ऐसा होनेपर भी हम यहाँपर उनकी शास्त्रसम्मत कुछ विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शिव का ही शरीर है। शिव के शरीर इस ब्रह्माण्ड में विष और अमृत-दोनों हैं। विष भी कहीं बाहर नहीं, शिव के शरीर में ही है। किन्तु वे विष को गुप्त-अन्तर्लीन रखते हैं और अमृत को प्रकट करते हैं। जो उपासक शिव के शरीररूप से जगत् को देखते हैं, उनकी दृष्टि में अमृत ही आता है, विष विलीन रहता है। अतएव शंकर की साकार मूर्ति में विष गले के भीतर है, और अमृतमय चन्द्रमा स्पष्टरूप से शिरपर विराजमान है। ईश्वर को शास्त्रों ने 'विरुद्ध धर्माश्रय' माना है; जो धर्म हमें परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं वे सब ईश्वर में अविरुद्ध होकर रहते हैं। सभी विरुद्ध धर्मों को

ब्रह्माण्ड में ही तो रहना है? और ब्रह्माण्ड ठहरा ईश्वर शरीर। यह भाव सगुण साकार शिव की कल्पना में स्पष्ट है, वहाँ अमृत भी है, विष भी; अग्नि(शिव का एक नेत्र) भी है और जल(गंगा) भी।

शिव के अंगों में जगह-जगह साँप लिपटे हुए रहते हैं। इसका स्थूल अभिप्राय यह है कि मंगल और अमंगल सब कुछ ईश्वर-शरीर में है। दूसरा अभिप्राय यह भी है कि संहारकारक शिव के पास संहार की समाग्री भी रहनी चाहिये। समयपर उत्पादन और समयपर संहार-दोनों ईश्वर के कार्य हैं। सर्प से बढ़कर संहारक तमोगुणी अन्य कोई नहीं है क्योंकि यह अपने बच्चे को भी खा जाता है। भगवान् के कर्पूर के समान उज्जवल वर्ण की कल्पना की जाती है। व्यापक ईश्वर चेतन अर्थात् ज्ञानरूप है। ज्ञान को 'प्रकाश' कहते हैं और उसका वर्ण श्वेत होता है। श्वेत वर्ण कृत्रिम नहीं, स्वाभाविक होता है। श्वेत पर और-और रंग चढ़ते हैं और धोकर उतार दिये जाते हैं। श्वेत पहले भी रहता है और पीछे भी। इससे श्वेत वर्ण नैसर्गिक सिद्ध होता है। शिव का श्वेत वर्ण यह बताता है कि ईश्वर का कृत्रिम रूप नहीं है, सब रूप उसमें उत्पन्न होते हैं और लीन हो जाते हैं, वह स्वभावतः एक रूप है या यों कहें कि कृत्रिम रूपों से वर्जित है।

वैज्ञानिक दृष्टि से श्वेत कोई रंग नहीं है। सब रंग-रूपों के समुदाय को श्वेत कहते हैं। सब रूपों या रंगो को जब मिलाया जाय तब वे यदि सब-के-सब मूर्च्छित हो जाँय तो काला रूप बनता है और सब जाग्रत रहें तो श्वेत प्रतीत होता है। यही स्थिति ईश्वर की है। जगत् के सब रूप उसी में ओत-प्रोत हैं किन्तु भेद छोड़कर। भेद अविद्याकृत है। ईश्वर में सभी कुछ अभिन्न रूप से है इसलिये उसे श्वेत कहा गया है।

किसी भी रंग के पदार्थ को जलाने के बाद अन्त में श्वेत भस्म ही शेष रहता है। अतः भस्म मौलिक तत्त्व है, इसे अग्नि नहीं समाप्त कर सकती। भगवान् शिव इसी मौलिक तत्त्व-भस्म से सदा उद्धूलित रहते हैं। इसी मौलिक तत्त्व से वे सृष्टि की रचना करते हैं(यह शिव पुराण में वर्णित सृष्टि -प्रक्रिया में स्पष्ट है)।

कुछ लोग शिव को संहारकर्त्ता कहकर उपासना के योग्य नहीं मानते। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से यह तर्क ठीक नहीं है। क्योंकि एक दृष्टि से जो संहार है, वही दूसरी दृष्टि से उत्पादन एवं पालन है। इन सबमें नाममात्र का भेद है। दूसरे शब्दों में सृष्टि, पालन एवं संहार ये तीनों सापेक्ष हैं निरपेक्ष नहीं। पेड़ का कटना(या संहार) ही लकड़ी के सामान बनाने(सृजन) का आधार होता है। एक की मृत्यु ही दूसरे के जन्म का आधार और तीसरे के पालन का आधार बन सकती है।

इसके अतिरिक्त सृष्टि की भाँति संहार भी तो ईश्वर का कार्य है। और वह अवश्यम्भावी है। समयपर उत्पादन और पालन जैसे नियत हैं, वैसे ही संहार भी नियत है। सृष्टि, पालन तथा संहार तीनों कार्य ईश्वर के द्वारा ही होते हैं। यदि एक ही शक्ति तीनों कार्यों की करनेवाली न मानी जाय तो तार्किक दृष्टि से उसमें कठिनाई आ जायगी। अगर संहार करनेवाला कोई और है तो वह पालक से

जबर्दस्त कहा जायगा-क्योंकि वह उसके पालित को नष्ट कर देता है। ऐसी स्थिति में संहारक ही ईश्वर कहलायेगा, पालक नहीं। इसके अतिरिक्त जो सबका संहार करनेवाला होगा वही तो अन्त में शेष रहेगा, फिर सृष्टि के समय सृष्टि भी वही करेगा। क्योंकि उस समय दूसरा कोई है ही कहाँ, जो सृष्टि करे? इन सब तर्कों का समाधान तभी होगा जबकि एक ही ईश्वर शिव के कार्यापेक्षा से तीनों रूप माने जायँ- उनमें भेद न माना जाय। जिस समय जिस-जिस रूप वा शक्ति की आवश्यकता होती है, उस समय वह उसी-उसी रूप वा शक्ति में प्रकट हो जाता है, तत्त्व एक ही है।

फिर भी कहा जाय कि तत्त्व चाहे एक हो, किन्तु संहारकारक रूप से हमें ध्यान नहीं करना चाहिये-तो यह युक्ति भी निःसार है। सब रूपों के उपासक अपने उपास्य में सभी शक्तियों का ध्यान करते हैं क्योंकि किसी भी शक्ति को उपास्य में विद्यमान न मानने से उसके ईशत्व में कमी आ जायगी। ईश्वर का कार्य यथासमय सब कार्य(सृष्टि से संहारतक) करना है। शिव न केवल जगत् एवं जीवन का विनाश करते हैं अपितु दुष्टों, विपत्तियों, दर्दों, अज्ञान आदि का भी विनाश करते हैं। अशुभ का विनाश ही शुभ का सृजन है। अतः विनाशक ही सर्जक भी होता है।

कई बार शिव की उपासना को उन्हें तमोगुणी कहकर नकारा जाता है। इस भ्रम का हमने पहले भी निराकरण किया है। शिव ईश्वर हैं, वे तमोगुण के वश में नहीं हो सकते। ईश्वर और जीव में यही तो भेद है कि जीव प्रकृति के गुणों के वश में होता है और ईश्वर प्रकृति का नियन्ता होता है। ऐसी हालत में 'शिव तमोगुणी' हैं-इसका अभिप्राय यह है कि वे तमोगुण के नियन्ता हैं। ऐसी स्थिति में सत्त्वगुण के नियमन करने की अपेक्षा तमोगुण के नियमन का कार्य कितना कठिन है और वैसा कार्य करनेवालारूप और भी उत्कृष्ट होना चाहिये-इसका विचारशील स्वयं निर्णय करें।

कुछ लोग भगवान् शंकर पर श्रद्धा रखते हैं परन्तु उन्हें मुक्तिदाता न मानकर लौकिक फलदाता ही समझते हैं और प्रायः लौकिक कामनाओं की सिद्धि के लिये ही उनकी भक्ति या पूजा करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि परम उदार आशुतोष सदाशिव में दया की लीला का विशेष प्रकाश होने के कारण वे भक्तों को मनमानी वस्तु देने के लिये सदा ही तैयार रहते हैं, परन्तु इससे इन्हें मुक्तिदाता न समझना भूल है। जब भगवान् शिव के स्वरूप का तत्त्वज्ञान ही मुक्ति है, तब उन्हें मुक्तिदाता न मानना सिवा भ्रम के और क्या हो सकता है?[1] भगवान् शिव शुद्ध, सनातन, विज्ञानान्दघन परब्रह्म हैं, उनकी उपासना परमलाभ के लिये ही या उनकी भक्ति या प्रेम प्राप्त करने के लिये ही करनी चाहिये। सांसारिक हानि-लाभ प्रारब्धवश होते रहते हैं, इनके लिये चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। शंकर की शरण लेने से कर्म शुभ और निष्काम हो जायँगे, जिससे अपने आप ही संसारिक कष्टों का नाश हो जायगा और पूर्वकृत कर्मों के शेष रहनेतक कष्ट होते भी रहें तो क्या आपत्ति है।

---

[1] "**नमामीशमीशान निर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपं।**" तुलसीदास के रामायण(उत्तरकाण्ड 107 ख/1) में वर्णित इस स्तुति के प्रथम श्लोक में ही उन्हें 'निर्वाणरूप' माना गया है।

शिव के उपासक में जगत् के भोगों के प्रति वैराग्य होना चाहिये। विषय-भोगों में जिनका चित्त आसक्त है, वे परमपद के अधिकारी नहीं हो सकते और उनका पतन ही होता है। ऐन्द्रिय विषयों को प्राप्त करके अथवा विषयों से भरपूर जीवन में रहकर उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहना जनक-सरीखे इने-गिने पूर्वाभ्यास-सम्पन्न पुरुषों का ही कार्य है। अनुभव तो यह है कि विषयों के संग तो क्या, उनके विचार या चिन्तन-मात्र से मन में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। शिवजी विषय माँगनेवाले को विषय और मोक्ष माँगनेवाले को मोक्ष दे देते हैं। वे कल्प वृक्ष हैं। मुँहमाँगा वरदान देनेवाले हैं। यह याद रखना चाहिये कि शिवजी स्वयं कल्याणस्वरूप ही हैं, इससे उनकी उपासना से उपासक का कल्याण बहुत ही शीघ्र हो जाता है। सिर्फ विश्वास करके लग जानेमात्र की देर है। भगवान् के दूसरे स्वरूप बहुत छान-बीन के अनन्तर फल देते हैं, परंतु औढरदानी शिव तत्काल फल दे देते हैं।

औढरदानी या आशुतोष का यह अर्थ नहीं करना चाहिये कि शिवस्वरूप में बुद्धि या विवेक की कमी है। ऐसा मानना तो प्रकारान्तर से उनका अपमान करना है। बुद्धि या विवेक के उद्‌गम- स्थान ही भगवान् शिव हैं। उन्हीं से बुद्धि एवं विद्या प्राप्त कर समस्त देव, ऋषि आदि अपने-अपने कार्यों में लगे रहते हैं। ब्रह्म के अलग-अलग रूपों में कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ रहती हैं। शंकररूप में यही विशेषता है कि वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं और भक्तों की मनोकामना-पूर्ति के समय वे भोले-से बन जाते हैं। परन्तु जब संहार का अवसर आता है तब रुद्र बनते भी उन्हें देर नहीं लगती।

शिव को भोलानाथ मानकर कुछ लोग उन्हें गँजेड़ी, भँगेड़ी, नशेबाज और बावला समझकर उनका उपहास करते हैं। विनोद से भक्त सब कुछ कह सकते हैं और भक्त का आरोप भगवान् स्वीकार भी कर लेते हैं। परन्तु जो वस्तुतः शिव को पागल, श्मशानवासी, औघड़, नशेबाज आदि समझते हैं, वे गहरी भूल में हैं। शंकर का श्मशाननिवास, उनकी उन्मत्तता, उनका विषपान, उनका सर्वांगीपन आदि बहुत गहरे रहस्य को लिये हुए हैं, जिसे श्रीशिव की कृपा से शिव-भक्त ही समझ सकते हैं(उनके उस तरह के कुछ व्यवहारों के रहस्यों की चर्चा पुराणों-संबंधी अध्यायों में आ चुकी हैं)।

जैसे व्यभिचारप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण की रासलीला को व्यभिचार का रूप देकर प्रकारान्तर से अपने व्यभिचारदोष का समर्थन करते हैं, इसी प्रकार सदाचारहीन, अवैदिक क्रियाओं में रत नशेबाज मनुष्य शिव के अनुकरण का ढोंग रचकर अपने दोषों का समर्थन करना चाहते हैं। वस्तुतः शिवभक्त को सदाचारपरायण रहकर गाँजा, भाँग आदि नशे, तथा अपवित्र वस्तुओं के सेवन, अपवित्र आचरण आदि से बचते रहना चाहिये- यही शंकर का आदेश है।

भगवान् शिव की परात्पर ब्रह्म के रूप में उपासना करनेवाले के लिये तो वे परब्रह्म हैं ही पर अनान्य भगवत्स्वरूपों के उपासकों के लिये वे मार्गदर्शक परमगुरु अवश्य हैं। श्रीमद्‌भागवत महापुराण(4/4/27) में श्रीशिव को 'जगद्‌गुरु' कहा गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शिव जगद्‌गुरु हैं। शास्त्रों का आदेश है कि गुरु की प्राप्ति तथा उनकी कृपा बिना इष्टदेव की प्राप्ति नहीं

हो सकती है। इसका तात्पर्य है कि जबतक मनुष्य श्रीशिवजी को प्रसन्नकर उनकी कृपा का पात्र नहीं बन जाता, तबतक उसे इष्ट-साक्षात्कार नहीं हो सकता। गोस्वामी तुलसीदास इस गुरु-तत्त्व के रहस्य[1] का वर्णन करते हुए 'मानस' के प्रारम्भ में कहते हैं-

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्।।
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।। (बाल कां. श्लोक 2-3)

भगवान् राम ने अपने श्रीमुख से स्वयं कहा है-

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि।
भगति मोरि तेहि संकर देइहि।। (लंका का. 2/2)
औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।। (उत्तरकाण्ड 45)

इस प्रकार भगवान् विष्णु के भक्त के लिये भी सद्गुरुरूप से शिव की उपासना आवश्यक है। अन्य वैष्णव ग्रन्थों में भी इसका यथेष्ट उल्लेख है। पुनः शक्ति के उपासक शक्तिमान् शिव को कैसे छोड़ सकते हैं? शिव के बिना अकेली शक्ति की उपासना अधूरी रहती है। गणेश तो शिव के पुत्र ही हैं। पुत्र की पूजा करें और पिता का अपमान करें, यह शिष्ट मार्यादा कभी नहीं हो सकती। अतः गणेश उपासक भी शिवोपासना की उपेक्षा नहीं कर सकते। सूर्यदेव तो भगवान् शिव के तेजोलिंग के ही नामान्तर हैं। सूर्यदेव भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों में से एक हैं अतः उनकी पूजा करनेवाले भी शिव की ही पूजा करते हैं। इसके सिवा अन्यान्य मतावलम्बियों के लिये भी कम-से-कम श्रद्धा-विश्वासरूप शक्ति-शिव की आवश्यकता रहती ही है। योगियों के लिये तो परमयोगीश्वर शिव की आराधना आवश्यक है ही। ज्ञान के साधक न्याय, वैशेषिक, वेदान्त आदि दर्शन परम-कल्याणरूप शिव की प्राप्ति चाहते हैं। तन्त्र तो शिवोपासना के लिये ही बना है। ऐसी अवस्था में जिस किसी भी दृष्टि से शिव को परम परात्पर परमात्मा, महाज्ञानी, महान् विद्वान्, योगीश्वर, देवदेव, जगद्गुरु, सद्गुरु, महान् उपदेशक, उत्पादक, संहारक- कुछ भी मानकर उनकी उपासना करना सबके लिये कर्त्तव्य है।

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-ब्रह्म के इन तीनों रूपों के साथ भिन्न-भिन्न गुण सहज सुलभ होते हैं। जैसे-ब्रह्मा में सृष्टि तथा ब्रह्मविवेचन आदि का गुण, विष्णु में चराचर जगत् के पालन आदि का गुण तथा शिव में सृष्टि-उपरामता, जीवों के कर्मनाश आदि का गुण। शिवजी विकास-प्राप्त सृष्टि से

---

[1] तुलसी के मानस में प्रकटित विचारों तथा यहाँ दिये जा रहे सन्दर्भो की विस्तृत जानकारी के लिये इसी पुस्तक के लेख 'रामायण ग्रन्थों में शिवतत्त्व' को पढ़ें।)

सम्बन्ध नहीं रखते, क्योंकि इसके प्रादुर्भूत होने में जीवों को आदि से अन्ततक कष्ट ही मिलता है।[1]

शिव के एकान्तवास का एक प्रधान कारण यह है कि वे प्रादुर्भूत सृष्टि के किसी कार्य से संबंध नहीं रखते। सृष्टि से संबंध न रखनेपर भी वे दुःखी जीवों का कर्मनाश करने में सदैव उद्यत रहते हैं। यहाँ शंका उठ सकती है कि यदि शिवजी अकारण कर्म-नाश करते हैं तो कर्म-सिद्धान्त का विरोध हो जाता है। बिना कर्मों के भोग के जीव को छुटकारा कैसे मिल जायगा? इसका उत्तर यह है कि यदि कोई बालक मार्ग में थक जाता है तो उसके माता-पिता उसे कन्धे पर चढ़ा लेते हैं। फिर बालक को मार्ग-कष्ट नहीं होता, उसके स्थान में पिता को कष्ट होता है। ऐसा करने से मार्ग और मार्ग-गमन-कष्ट में भेद नहीं पड़ता, पर बालक कष्ट से बच जाता है। इसी प्रकार सर्वसमर्थ प्रभु जीव के कष्टों को स्वयं वहन करके सृष्टि के नियम एवं व्यवस्था को ज्यों-की-त्यों रक्षा करते हुए उसे सुखी कर देते हैं। ऐसा करने का कारण यह है कि वह माया-विस्तार की व्यवस्था में कोई भाग नहीं लेते प्रत्युत उसे कष्टप्रद समझते हैं। सृष्टि के विकास की प्रक्रिया में जो जीव उनके सम्मुख आता है वे उसे कर्मभोग से मुक्तकर उसके स्थान में स्वयं कष्ट सहन करते हैं। इसी कारण से वह एकान्त में उदासीन, सामाधिमग्न एवं संसार से अलग रहते हैं।

यहाँ पर पुनः यह शंका होती है कि यदि जीव के बदले में वह स्वयं कष्ट भोगते हैं तो क्या वह जीवकोटि में नहीं आ जाते? समाधान है कि समुद्र में समुद्र नहीं डूब सकता, अन्य जीव डूबते हैं। दूसरे, यदि कोई डूब रहा हो और समुद्र अपनी प्रबल लहरों द्वारा उसे किनारे पहुँचा दे तो ऐसा करने से समुद्र को क्या विकार उत्पन्न हो सकता है? यह तो उसका प्रतिक्षण का कार्य है। जब शिवजी सारी सृष्टि का एक पलमात्र में नाश कर सकते हैं तब किसी जीव के किसी कर्म का नाश क्यों नहीं कर सकते? यदि विशेष जीव के कर्मों का नाश शिवजी नहीं कर सकते तो सारी सृष्टि का नाश वे कैसे कर सकते हैं? अतः वह कर्मों का नाश कर सकते हैं और सबके दुःखों को सहन करते हुए विकट वेष में रहते हैं।[2]

क्या शिवजी जीवों के कष्टों को स्वयं सहन न करके ऐसे ही उनका नाश नहीं कर सकते? कर सकते हैं, पर वैसा करने पर उसी के साथ सृष्टि का नाश हो जायगा। जैसे सूत के बण्डल का एक

---

1. जब एक बार ब्रह्माजी ने रुद्रदेव को सृष्टि करने का निवेदन किया तो उन्होंने अपने जैसे अमर एवं जरामरण से रहित शक्तिशाली जीवों की रचना कर दी। इसे देख ब्रह्माजी घबराये और ऐसी सृष्टि रोकने के लिये कहा। इसपर शिवजी ने उत्तर दिया कि मैं जरा-मरणयुक्त दुःखी जीवों की सृष्टि नहीं कर सकता। शिव का स्वभाव ही ऐसा है कि वे लोगों का दुःख नहीं देख सकते। शिव द्वारा सृष्ट अमरप्राणी ही रुद्रगण कहलाते हैं। (शिवपुराण, रुद्रसंहिता सृष्टिखण्ड अ. 15)

2. सागर-मन्थन से निकले हलाहल की ज्वाला से जगत् की रक्षा के लिये उन्होनें स्वयं कष्ट सहते हुए उसका पान कर लिया तथा चराचर जगत् को भयमुक्त किया।

भाग उलझ गया है तो उसे सुलझाना पड़ेगा और उसे सुलझाने में सुलझानेवाले को कष्ट सहन करना अनिवार्य होगा। यदि वह ऐसा नहीं करता वरन् उसे तोड़ता है तो सूत के बण्डल में कमी आने से उसके द्वारा निश्चित कार्य का सम्पादन न होगा। अतः दो बुराईयों में से कम बुराई को चुनना अच्छा है। जीवविशेष के कष्टों के लिये सृष्टि का नाश नहीं किया जा सकता।

श्रीशिवजी आशुतोष नाम से महादयालु होने के लिये प्रसिद्ध हैं। देखिये, जिनसे सब घृणा करते हैं उन्हीं को यह अपनाते हैं- जैसे सर्प, भूत, पिशाच। वह अपमानित को मान देते हैं, जिनको कहीं ठिकाना नहीं, उनको अपनी कृपा से अनेक ठिकानों का स्वामी बना देतें हैं। उपरोक्त सब बातों से यह शंका उठ सकती है कि शिवजी की भाँति अकारण कृपा विष्णुजी करते है कि नहीं? वे भी अवश्य करते हैं, पर जीवों के कर्मों का ध्यान रखते हुए करते हैं। जैसे किसी मनुष्य को फोड़ा हुआ है, उससे उसको असह्य वेदना हो रही है। वह चिकित्सक के पास गया। उसने फोड़े को चीर डालने का निश्चय किया और रोगी के फोड़े की जगह को संज्ञाशून्य बना दिया। फोड़े को चीर कर पट्टी बाँध दी। किन्तु चीरने का दुःख रोगी को नहीं हुआ क्योंकि चिकित्सक ने उस जगह को पहले ही संज्ञाशून्य बना दिया था। अतः श्रीविष्णु कर्मभोग कराते हुए कृपा करते हैं। पर जिनके ऊपर उनकी कृपा होती है उसको कर्मभोग में कष्ट नहीं मिलता। ऐसा करने का कारण उनका सृष्टि के पालन से सम्बन्ध रखना है। यदि ऐसा न किया जाय तो संसारचक्र की गति में विघ्न जा जाय। किन्तु शिवजी सृष्टि के नियमों के पालन की चिन्ता किसी जीव के ऊपर कृपा करने में नहीं रखते, क्योंकि वह सृष्टि के संबंध से परे हैं।[1]

कल्पना कीजिये कि एक स्त्री चक्की में गेहूँ पीस रही है। इतने में एक दूसरी स्त्री आयी, उसने चक्की के बीच में एक मोटी और ऊँची लोहे की कील घुसेड़ दी जिससे ऊपर और नीचे के तले में अन्तर पड़ गया, पर चक्की, ज्यों की त्यों गमनशील है। इतना अवश्य है कि उस कील पर रगड़ लगती है पर वह पहले की भाँति चल रही है। इतने में जो गेहूँ चक्की के भीतर है, किसी पदार्थ द्वारा बाहर खींच लिया और कील को भी हटा लिया। इसी प्रकार शिवजी की कृपा विशेष रूप से होती है और संसारचक्र में बाधा नहीं पड़ती।

उपसंहार

परमतत्त्व या ब्रह्म एक ही है जिसके निर्गुण एवं सगुण दो रूप है। इस परम तत्त्व के महाविष्णु या विष्णु, सदाशिव या शिव, कृष्ण, राम, देवी या महामाया, गणपति या गणेश, सूर्यदेव, हरि, हर आदि अनन्त नाम हैं। वही परमतत्त्व अपनी माया का आश्रय लेकर सगुण हो ब्रह्मा, जिष्णु, रुद्र या शिव आदि देवताओं तथा समस्त चराचर के असंख्य नाम-रूपों में अपने को व्यक्त करता है। अतः तात्त्विक दृष्टि से सभी प्रमुख देवों में एकता है परन्तु सृष्टिकार्य में उन सबकी अलग-अलग भूमिका है। इन प्रमुख

---

1. रामचरित मानस में नारदजी पार्वती के भावी पति के संदर्भ में हिमालय से कह रहे हैं कि -

भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।।(बालकां. 69/3)

इसका भाव यह है कि भगवान् शिव प्रारब्ध अर्थात् कर्मों के फल को मिटा सकते हैं।

देवों में न कोई छोटा है न बड़ा। भक्त अपनी-अपनी रुचि के अनुसार ब्रह्म के किसी भी रूप को अपना सकता है। ब्रह्म के सभी रूपों की अलग-अलग विशेषतायें होती हैं। भगवान् शिव की विशेषता यह है कि वे आशुतोष एवं अवढर दानी हैं। भक्तों पर कृपा करते समय वे सृष्टि के नियमों से बँधे भी नहीं रहते जैसा कि अन्य देव बँधे रहते हैं। वे लोगों के कर्मों को स्वयं अपने भुगतकर लोगों को कष्टों से मुक्त करा देते हैं। अतः इन विशेषताओं के कारण भगवान् शिव की उपासना का आर्कषण सबसे बढ़कर है।

* * *

गुरु का महत्त्व

जनकजी कहते हैं-

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत्।
न विना गुरुसंबंधाज्ज्ञानस्याधिगमस्तथा।

(नार. महापु. पूर्वखण्ड 59/19)

अर्थात्-विना ज्ञान-विज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है, और न ही विना गुरु के संबंध के ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति।

सर्वेषामेव लोकानां यथा सूर्यः प्रकाशकः।
गुरुः प्रकाशकस्तद्वच्छिष्याणां बुद्धिदानतः।।

(पद्ममहापु. भूमिखण्ड 85/8)

जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार गुरु शिष्यों को उत्तम बुद्धि देकर उनके अन्तर्जगत् को प्रकाशपूर्ण बनाते हैं।

भूतलपर प्रकट हुए जल से बाहर का ही सारा मल नष्ट होता हैं; किन्तु गुरुरूपी तीर्थ जन्म-जन्मान्तर के पापों का भी नाश कर डालता है। संसार में जीवों का उद्धार करने के लिये गुरु चलता-फिरता उत्तम तीर्थ है।

114630

स्थलजाच्चोदकात् सर्वं बाह्यं मलं प्रणश्यति।।
जन्मान्तरकृतान्पापान् गुरुतीर्थं प्रणाशयेत्।
संसारे तारणायैव जङ्गमं तीर्थमुत्तमम्।।

(पद्ममहापु. भूमिखण्ड 123/52-53)

पुस्तकालय

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Signature Date
Acc 13-12-2000
23-1-2000
R E 23.1.2001
Title 11
Tag 2411
E.A.R 24-1-2001
Any other R E 23.1.2001
Checked 23-1-2001

Recommended By—— डा० मालती गुप्ता

Compiled
1999-2000

STOCK VERIFY
2020
S.K.V. Library

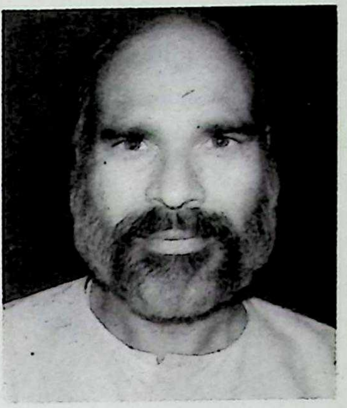

लेखक : डॉ. विनोद शंकर

- एम. ए. (दर्शन शास्त्र) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से **The Concepts of Space and Time in 20th Century Philosophy** विषय पर पी-एच. डी. की उपाधि से सम्मानित।
- दो पुस्तकें **Ontology of Basic Categories of Physical Science** और **Space-Time in Speculative Philosophy and Psychic Science** तथा दर्जनों शोध-पत्र प्रकाशित।
- विज्ञान-दर्शन (मूलतः भौतिक-शास्त्र) में विशेष योग्यता प्राप्त तथा **Indian Associaton for the History and philosophy of science** जो **Indian Science Congress** से सम्बद्ध है, के सन् 1978 से फेलो।
- अनेक विश्वविद्यालयों के दर्शन-शास्त्र विषय की समितियों के सदस्य।
- अनेक छात्र-छात्राएँ भारतीय दर्शन एवं विज्ञान-दर्शन से संबंधित विषयों पर लेखक के निर्देशन में शोध-उपाधि प्राप्त।
- कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं प्रोफेसर।

[illegible]

सुभा पब्लिशर्स

चंडेश्वर मंदिर, गांव – गैन–सरी (कोटी), तहसील – द. गौली
[illegible] – सोलन, हिमाचल प्रदेश ● दूरभाष : 01792 – [illegible]

आकार : 10 X 7½ ● पृष्ठ : 800 ● लेखक : डॉ. [illegible]

मूल्य (पुस्तकालय संस्करण) : रु. 800 [illegible] 87732-[illegible]